

## पुस्तक मळवानु ठेकाणु—

वकील मोहनलाल हिमचद-पादरा (स्टेट वडोदरा)

---

वडोदरा—शियापुरामा, लुहाणामित्र स्टीम प्रिं प्रेसमा, विठ्ठलभाई आशाराम  
ठक्रे ता १-६-१८ ना रोज प्रकाशक-शाह लच्छुभाई करमचद दलाल,  
चपागला-मुबाई-ने माटे छापा प्रसिद्ध कर्यु

## निवेदन.

श्रीमद् बुद्धिसागरसूरि ग्रन्थमालाक ४९ तरीके श्रीमद् देवचद्र प्रथम भाग बहार पडे छे जैन कोममा अठारमी सदीना अते अने ओगणीगमी सदीना प्रारभमा विद्यमान खरतरगच्छीय पडित श्रीमद् देवचद्रजी यएल छे तेमणे जे जे कृतियो बनावी छे ते प्रस्तावनामा पादराना वकील मोहनलाल हेमचद्रभाइए जणावी छे श्रीमद् आनदवनजी, श्रीमद् यशो-विजयजी उपाध्यायनी पेठे जैन कोममा महात्मा ज्ञानी तरीके श्रीमद् देवचद्रजी महाराज प्रख्यात ययेल छे श्रीमद् देवच-द्रजी महाराजना ग्रन्थोनो जैन कोममा सादर साथे प्रचार थयो छे, थाय छे अने भविष्यमा थजे श्रीमद् देवचद्रजी महाराज जेवा द्रव्यानुयोगी गीतार्थयी जैनसब अने खरतर-गच्छनी महत्तामा वृद्धि थएल छे श्रीमद् देवचद्रजी महाराजनो तपागच्छीय आचार्य मुनिवरो साथे घणो सारो सबव हतो श्रीमद् उपाध्यायजी यशोविजयजीकृत ज्ञानसार ग्रन्थ पर तेमणे ज्ञानमजरी नामनी टीका रचेली छे अने दिगजरी शुभचद्रा-धार्यकृत ज्ञानार्णवनो ध्यानचतुष्पदी ग्रन्थमा सार खेंची सर्व गच्छोना महापुरुषो प्रत्ये गुणानुराग दर्शावी भविष्यना जैन सा-धुओ माटे स्वादर्श जीवन मुकी गया छे श्रीमद् द्रव्यानुयोगी गीतार्थ हता तेमनु चारित्र केवु उत्तम हतु ते तेमना बनावेला ग्रन्थो-माना उद्गारोयी सुस्पष्ट थाय छे, अने खरतरगच्छना अद्य-पर्यंत थयेल सर्व आचार्यो मुनिवरोमा श्रीमद् देवचद्रजी महा-राज प्रथम नवरे आवे छे एवा महापुरुषनी कृतिओने छपावी जाहेर करवामा आवे तो तेयी जैन कोम तथा जैनेतर

भारतवधुओपर महान् उपकार करी शकाय एवो विचार प्रथम श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजीना मनमा प्रगट्यो अने तेमणे पादरा निवासी सुश्रावक वकील मोहनलाल हिमचदभाइ, माणेकलाल, प्रेमचदभाइ, मगळभाइ वगरे श्रावकोने जणान्यो अने तेओए श्रीमद् देवचद्रजी महाराजकृत सर्व कृतियोने छपावीने बहार पाडवानो निश्चय कर्पो छे, तथा प्रवृत्ति वरी छे तेना फल तरीके श्रीमद् देवचद्र प्रथमभाग छपाइने बहार पड्यो छे अने द्वितीय भाग अल्पमासमा छपाइने बहार पड्यो एम आशा रहे छे द्वितीय भाग छपाववानो आरभ करवामा आव्यो छे अने तेमां कया ग्रन्थो छपाववामा आवशे तेनु लीष्ट पण प्रस्तावनामा दर्शाववामा आव्यु छे श्रीमद्नी कृतियो छपाववामा मुख्य भाग लेनार अने तेमना रागी पादराना वकील श्रावक मोहनलाल हिमचदभाइ छे तेमणे त्रणसेना आशरे पत्रो लखीने ज्या त्या मुनिराजो तथा श्रावकोने मळीने श्रीमद्नी कृतियो भेगी करी छे अने पोताना अमूल्य वखतनो भोग आपीने श्रीमद्नी कृतियो छपाववानी व्यवस्था करी छे तेयी तेमने धन्यवाद घटे छे श्रीमद्ना ग्रन्थोना अभ्यासयी तेमना रागी बनेल पादरा निवासी द्रव्यानुयोगना अभ्यासी सुश्रावक शा माणेकलाल वरजीवनदास तथा शा प्रेमचदभाइ दलसुख तथा वडु निवासी छगनलाल लक्ष्मीचद तथा भाइलालभाइ चुनीलाल वगरेए वकीलजी मोहनलाल हिमचदभाइनी पेठे श्रीमद्नी कृतियो छपाववामा आर्थिक सहायनी व्यवस्थामा सारो भाग लीघो छे तेयी तेमने धन्यवाद घटे छे वडोदरा—लुहाणामिन स्टीम प्रेसना मालीक विठ्ठलभाइ जाशारामे जल्दी पुस्तक छापवा माटे प्रवृत्ति करी छे तेयी तेमने धन्यवाद आपवामा आवे छे,

तया मुफ्तो शोधमामा पडिन लालचद भगवान् तथा पडित  
जयचद विठ्ठल तथा शास्त्री भाइशरर वंकुठराम तथा मुनि  
कीर्तिसागरजी तथा मास्तर चदुलाल नानचद वगेरेण थोडावणा  
अजे जे जे सहाय करी तेमाटे तेमने वन्यवाद घटे छे

आ पुस्तक छपाववामा आर्थिक सहाय करनाराओनो उप-  
कार मानवामा आवे छे तथा जे जे मुनिराजोए तथा श्राव-  
कोए श्रीमदनी कृतियो मेळववामा साहाय्य करी छे तेनो प्रस्ता-  
वनामा उपकार मानमामा आव्यो छे श्रीमद् देवचद्रजीनी  
कृतियोनु श्वेताम्बर जैनोनी पेठे दिगजर जैनो पण वाचन श्रवण  
मनन करे छे, तेमना वनावेला पुस्तकोनो वधु प्रमाणमा फेलावो  
करवामाटे आर्थिक सहाय कर्नाओनी सहाययी पडतर किंमत  
करता पण मोंचवारीना समयमा घणीज ओठी मात्र रु २)  
किंमत राखवामा आवी छे एक हजार उपर पनवाळा ग्रन्थनी  
विलकुल ओठी किंमत राखीने तेनो जैनोमा सर्वत्र फेलावो  
करवानो इरादो राख्यो छे तेयी हवे वाचको तेनो लाभ लेवा  
चूकरो नहीं एम आशा रखाय छे बालुचर निवासी श्रीशुत्र  
झवेरी अमरचद्रजी बोथराए तेनी १५० प्रतियो लेवानी भाग-  
णीतो ग्रन्थ तैयार थता पूर्वे करी छे ते उपरयी श्रीमद् देव-  
चद्रजीकृत कृतियोनी उपयोगितानो ख्याल आवी शके छे आ  
ग्रन्थनी किंमतनी उपजेली रकम वत्रे भाग उपावता वधशे तो  
तेनो अन्य द्रव्यानुयोगना तथा आध्यात्मिक ग्रन्थो छपाववा-  
मा उपयोग करवामा आवशे तेयी परपराए धार्मिक ग्रन्थोनो  
प्रचार तथा तेओनु प्राकट्य थशे एम अवबोधीने जैनोए  
तथा गुणानुरागी जैनेतरोए श्रीमद् देवचद्र प्रथम भागनो लाभ  
लेवा चूकवु नहीं अव्यात्मज्ञानप्रसारक मडळ तरफयी आप्रमाणे



उपयोगी पुस्तको बहार पड्या छे-पडे छे अने भविष्यमां  
सद्गृहस्थोनी साहाय्ययी उपयोगी पुस्तको बहार पडशे, माटे  
जैनधर्माभिलाषी सज्जनोए आ मडळ्मे सहाय करवी जोइए

श्रीमद् देवचद्रजीकृत पुस्तको छपावचामां अत्यार  
सुधीमां जे जे गृहस्थो तरफथी मदद मळी छे  
तेमनां नामो नीचे प्रमाणे

- ५०१ शा मोहनलाल नाथाभाई पादरा  
 २०० शा मोहनलाल नरोत्तमदास रणु ( पादरा )  
 २०० शा जवेरभाई भगवानदास कावीठा ( बोरसद )  
 १०१ श्रीयुत श्रेष्ठी अमरचदजी बोथरा-वालुचर (मुर्शीदाबाद)  
 ३१ " " बुघसिंहजी बोथरा " "  
 ६१ " " जगपतिसिंहजी दुगड " "  
 ५१ " " हरखचदजी नाहटा " "  
 २५ " " गुलाबचदजी भुरा " "  
 १८६ शा हीरालाल छोटालाल पादरा  
 १५० बाई रतन शा चुनीलाल कहानदासनी विधवा रे  
 इटोला ( वडोदरा )  
 १०१ वकील मोहनलाल हीमचद पादरा  
 २५ सौ बाई जमना वकील मोहनलाल हीमचदना पत्नी  
 पादरा  
 १०० शा लक्ष्मीचद लालचद वडु ( पादरा )  
 १०० बाई चचळ शा दामोदर कल्याणदासनी विधवा वडु  
 ( पादरा )  
 ८९ वेन मणी शा प्रेमचद दलसुखभाईनी भाणेज पादरा

- ८० शा केशवलाल लालचद वडोदरा मामानीपोळ  
 ७५ शा केशवलाल नरोत्तमदास वडु ( पादरा )  
 ७५ वाई आवार शा गोरधनभाई हीराचदनी विधवा  
 अग्रुटण ( उभोई )  
 ५० शा रतनचद लावार्जी कावीटा ( बोरसद )  
 ४१ शा भाईलाल चुनीलाल पादरा  
 २५ वकील नदलाल लल्लुभाई पादरा  
 २५ वाई साक्ळी ते शा मणीलाल चुनीलालनी विधवा  
 पादरा.  
 २० एक गृहस्थ तरफयी पादरा  
 १० शा नीकमलाल घृजलाल राजर्ली ( उभोई ),  
 १० शा मुळर्जी पीतावरदास मुजपुर ( पादरा )  
 ५ वाई रुक्षमणी शा दलसुखभाई प्राणजीवनदासनी  
 दीकरी पादरा  
 ५ वाई टाही ते शा छोटालाल छगनलालनी विधवा  
 पादरा  
 ५ शा माणेकलाल वरजीवनदास  
 "

२३४७

उपर प्रमाणे मदद करनारा सम्य गृहस्थोनो उपकार मान-  
 वामा आवे छे तथा जे जे गृहस्था हवे पळी मदद करणे  
 तेनो द्वितीय भागमा नामसहित उपकार मानवामा आवशे  
 आवा मोंघवारीना प्रसगमा श्रीमद्नी कृतियो छपाववामां आ-  
 र्थिक सहायनी घणी जरूर छे, तपागच्छना श्रावकोनी पेटे  
 खरतरगच्छीय श्रावको जो पोतानो उदार हाथ लवावशे तो

तेओ श्रामदना रागी भक्त बनी तेमना पुस्तकोनो प्रचार करी  
अमूल्य लाभ प्राप्त करशे अने तेयी तेओ भविष्यनी जैन  
कोमना उपकारी बनशे ॥ इत्यल विस्तरेण ॥ ॐअर्हशान्ति ३

अध्यात्मज्ञानप्रसारक मंडळ-मुंबई,  
चपागळी

स १९७४ चैत्र सुदि १

## प्रस्तावना.

श्रीमद् देवचद्रजी कृत सर्व ग्रथो छपाववानो सकल्प.

श्रीमद् देवचद्रजी महाराजकृत सर्व ग्रथो उपाववानो सकल्प सकल्प सवत् १९६८ ना चैत्र मासमा थयो योगनिष्ठ शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागर मूरिश्वरजी विहार करता मुम्बई सुरत थई चैत्र मासमा पादरे पधार्या तनुसमये श्रीमद्देवचद्रजीकृत आगमसार नयचक्रसार विगेरे ग्रथोनु परिशीलन ययु ते वखते गुरु महाराजे तेमना सर्व ग्रथो मेळवी एकत्र करी छपाववा सगवी उपदेश कर्षो तेयी तेम करवा द्रढ निश्चय कर्षो, अने ते सगवी विचारोनो प्रवाह गरु थयो, आद्यमा कया कया ग्रथो उपाववा तेनो निश्चय कर्षो सवत् १९७२ नी सालमा श्रीमद् मूरिजी महाराज विजापुरमा चो-मासु रूढा ते समये तेमनी देखरेख नीचे तथा तेमनी दृष्टि प्रमाणे आगमसार ग्रथ छपाववानो गरु कर्षो, वडोदराना छद्दामिन स्ट्रीम प्रेसना मालीक रा विठ्ठलभाई आशारामे सगवड भरेली रीते पुस्तको छार्पी आपवानु कबुल कर्षु तेयी तेमना प्रेसमा आगमसार ग्रथ प्रथम आपवामा आब्यो, अने एक तरफ तेमना बनावेला पुस्तकोनी शोध अने सग्रह माटे जाहेर खबरो छपाववामा आर्वी

श्रीमद् देवचद्रजी महाराजनु नाम समग्र जैन कोममा प्रख्यात छे जैन कोमनो कोई पण फीरको तेमना नामयी अजाप्यो नयी, सर्व गच्छवाळाओ तेमना ग्रथोनो प्रेमयी उपयोग करे छे तेयी तेमना सर्व ग्रथो छपाववानी जाहेरखबर न्हार

पटवायी जैन काममा आनदनी लागणी फेलाई, तेमना ग्रथो ज्यायी ज्यायी मळे एवो सभव हतो त्या त्या अनेक स्थळे अनेक महाशयो उपर पत्रो लख्या

### ग्रथोनी प्राप्ति माटे पत्रव्यवहार

श्रीमद् मुळचदजी महाराजना सवाडाना आचार्य श्रीविजय कमळसूरिजी, तथा तेमना शिष्य पन्यास केसरविजयजी, तथा मुनी लाभविजयजी, तथा मुनीराज श्रीहेतमुनिजी, तथा प्रवर्तकजी महाराजश्री कान्तिविजयजी, तथा मुनिराजश्री जिनविजयजी, तथा पन्यासजी महाराजश्री दानविजयजी तथा मुनिमहाराजश्री श्रीकृपाचद्रसूरिजी तथा पन्यासजीश्री भावविजयजी ( पाली ) तथा मुनीश्री नागचद्रजी ( कच्छ ) तथा मुनिश्री चित्तविजयजी तथा वालुचर ( मुर्शीदाबाद ) निवासी जवेरी अमरचदजी बोथरा तथा भोजक गीरवरभाई हेमचद तथा रा रा चीमनलाल डी० दलाल तथा जवेरी भोगीलाल ताराचद तथा रा रा मोहनलाल दलीचद देसाई तथा अन्य मुनिराज तथा ग्रहस्थो अने सस्थाओ साथे पत्र-व्यवहार कर्यो

### कया कया ग्रथो ज्यां ज्याथी मळ्या

१ आगमसारना एक जुनी प्रति के जेमा प्रतिमापूजा, पुष्पपूजाचर्चा, गुणस्थानक स्वरूप, पापस्थानक स्वरूप ए चार विषयो के जे छपाएला आगमसारना नहोता ते प्रत पादर्शना भडारमायी मळी अने तेवा वधारावाळी बे प्रतिओ सुरतना श्रीमोहनलालजी महाराजना भडारमायी मळी तथा मुनिश्री लाभविजयजी पासेयी एक प्रति तेवा वधारावाळी मळी

२ नयचक्रमारनी एक जुनी प्रति मृगना मोहनलालजी महाराजना भटारमायी \* मळी ते पृथना उपायला नयचक्रसारना जेवी हती

३ जानमजरी टीकानी जुनी ते ग्रनिओ मुत्त मोहनलालजी महाराजना भटारमायी मळीओ ते मुनिजी मारकून मळी तथा तेननाज तरफयी हागनाज उपायुटी एक प्रति मळी

४ गुरु गुणपद्मिजिकानोटो-तेनी एक प्रति पन्यास गुलात्रविजयजी पासेयी भोजक गीरवरभाई हेमचंदे मेळवी आपी अने तेने श्री आत्मानंद सभा तरफयी उपायुळ मूळ टीका सहितनी मळेळी प्रतना आपारे मुधारी

५ ध्यानदीपिकाचतुपटीनी एक प्रति आचार्य श्रीविजयकमळसुरिजी ( मुळचदजी महाराजना ) मारफत घोराजीना भटारमायी शा जादवजी गज्याणु मोकली तेना आवारे उपावी

६ पाच कर्मत्रयनो टो आनी एक प्रति पन्यास गुलात्र विजयजी पासेयी भोजक गीरवरभाइए मेळवी आपी वीजी प्रति मळी नथी

७ विचार रत्नसारनी एक प्रति प्रवर्तवजी श्री कातिविजयजी महाराज पासेयी तथा एक प्रति अमदावाद श्रीशातिसागरजीना भटारमायी शा जमनादास घेलाभाई मारफत मळी तथा एक प्रति मुनि लाभविजयजी पासेयी मळी

८ प्रश्नोत्तरनी एक प्रति प्र श्रीकातिविजयजी महाराज पासेयी मळी

९ कर्मसवेध अमदावाद डेलाना उपाश्रयना भडारमायी ×  
झवेरी भोगीलालभाई ताराचद मारफत मळी

१० प्रतिमापुष्पपूजासिद्धि

११ गुणस्थानकअधिकार

आ बने विषयो पादराना तथा सुरतना भडारमायी+ तथा  
मुनिलाभविजयजी पासेयी मळेळी आगमसारनी जुनी प्रतिओमायी  
मळेळ छे, अने प्रतिमापुष्पपूजासिद्धिना जुदा लखेला भागनी  
बे प्रतो अमदावाद डेलाना उपाश्रयना ज्ञान भडारमायी म-  
ळेळी छे \* ज्यारे आगमसार छपातो हतो ते वखते आ विषय-  
वाळी प्रतिओ मळेळी नही होवाथी तेनी अदर दाखल करेल  
नयी अने पाउळथी मळवाथी ते आगमसारना पेडा भाग  
तरीके आ ग्रथमा पाउळ दाखल करवामा आवेल छे

श्रीमद् देवचद्र द्वितीय भागमां छापवाना ग्रथो.

१२ (१) विचारसार मूळ-सस्कृत-टीका—श्रीमद् देवच-  
द्रजीकृत विचारसार नामनो ग्रथ छे एवी प्रथम खबर मने  
वालुचर नीवासी श्रीयुत् अमरचदजी बोधराए अत्रेयी छपावेल  
जाहेरखबर वाचीने आपी अने ते ग्रथनी मुळ-टबावाळी एक  
प्रत तेमणे श्रीजिनयश सुरिजीना पुस्तक भडारमायी मोकळी  
आपी अने तेवीज बीजी प्रती रा रा चीमनलाल डी० दलाल

× डाबडो न ३२ बी प्रत न ४२

+ प्रत न ४०९-९६३ पान ६६ ६७

\* डाबडो न २० बी प्रत न ८०-८१ पान १०-७

एमणे वीकानेरयी त्यांना प अनुपचद्रजीयति पासेयी खरीद करी मारापर मोक्ळी आपी तथा तेवीज एक प्रति प्र० श्री कान्तिविजयजी महाराज पासेयी मळी \* तथा आ ग्रयनी सपूर्ण टीकावाळी प्रति अमदावाद टेलाना उपाश्रयना ज्ञानभडारमायी+ मळी तथा तेज भडारमायी टावाळी एक प्रत मळी ' तथा विचारसारनी प्रथमखटनी सस्कृत टीकावाळी प्रत उपाव्यायजी श्रीवीरविजयजी शास्त्रसग्रहमायी प श्रीदानविजयजी महाराज पासेयी मळी (पान ६८) आ स्यळे एक वान जणाववी अगत्यनी छे के अमदावाद टेलाना उपाश्रयनो ज्ञानभडार जे घणो जुनो तथा तेमानो ग्रयसग्रह घणो उत्तम अने अमृत्य छे, परतु कार्यवाहकोना मतभेदना लिघे तेमायी प्रतिओ मेळववा घणी मुश्केलीओ नडी हती, छता अध्यात्मज्ञान रसिक झवेरी भोगीलालभाइ ताराचद एमणे खास प्रयास करी जोडती प्रतिओ कडावी आपी हती तेमाटे तेमनो उपकार मातुछ

१३ (२) अध्यात्मगीता—आ ग्रय प्रथम छपायेलो हतो ते शीवाय तेनी वे प्रतिओ सुरत मोहनलालजी महाराजना ज्ञानभडारमायी मळी हती \*

१४ (३) द्रव्यप्रकाश—नी एक प्रति अमदावाद विद्याशाळाना ज्ञानभडारमायी भोजक गीरधरभाइ मारफत अने एक प्रति पन्यास लाभविजयजी महाराज पासेयी मळी हती.

× टाबडो न ४९ पोथी न ९७ पान ६८

+ टाबडो न ३२ वी पुर्वाघ प्रत न ९० उत्तरार्ध न ९१.

- ,, न ३२ वी प्रत न ९२

\* प्रत न ७०२-४३९ पा १२-४९



१५ (४) चौवीशी मोटी ट्वासह—आ चौवीशीनी प्रथम छपायली प्रतिओ उपरात प्र० श्रीकातिविजयजी महाराज पासेयी आजयी दोढसो वर्षपर सुरतना भणसाली कुडवे लखावेली प्रति मळी छे आ प्रति प्रथम छपाएली चारे आवृतिओ करता वधारे शुद्ध छे छापेली प्रतिओमा जुनी आवृति अमदावाद श्रीशातीसागरजीना भडारमा छे

१६ (५) वीस विहरमानजी स्तवन (वीसी)—आ ग्रथ प्रथम छपायेल छे

१७ (६) गतचौवीसी (स्तवन २१) प्रथम छपाएल छे छे छेला वण स्तवनो शोध कर्या छता मळी शक्या नयी कोइ महाशयना जोवामा आवेने जणावशे तो आभार थशे

१८ (७) स्नात्रपूजा	} आ चारे ग्रथो प्रथम पूजा सग्रहमा छपा- एल छे तेनी जुनी हस्तलीखीत प्रति-
१९ (८) नवपदजीपूजा (उलाळा)	
२० (९) एकवीशप्रकारी पूजा	
२१ (१०) अष्टप्रकारी पूजा	

ओ पादराना पुस्तक भडारमा छे

२२ (११) वीरनिर्वाणना स्तवननी ढाळो—नी एक प्रति अमदावाद विद्याशाळाना भडारमायी भोजक गीरधरभाइ मारफत मळी छे

२३ (१२) बाहुजीन स्तवननो टबो अमदावाद डेलाना उपाश्रयना भडारमायी मळेल छे \* वीजा ओगणीस स्तवननो टबो श्रीमदे लखेलो होय एवो सभव छे पण मळेल नथी

२४ (१३) भार्गी चोवीशीना प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभजीनु स्तवन श्रीयुत अमरचदजी वोथरा तथा भोजकगीरधर हेमचद तरफयी मळेल छे बीजा तेवीस स्तवनो छे एम सामञ्ज्यु छे पण हजु सुधी मळी शक्या नधी

२५ (१४) सीमवरजिनस्तवन मोटु भोजक गीरधरभाई तरफयी मञ्ज्यु छे तेम उपायेलु पण छे

२६ (१५)	}	सिद्धाचळना स्तवनो आ चारे स्तवनो पादराना भडारस्थ टीपणामायी मळेल छे
२७ (१६)		
२८ (१७)		
२९ (१८)		

३० (१९)	दीपाळीनु स्तवन नातु	}	पादराना भडारमायी मळेल छे
३१ (२०)	नवानगरजी स्तवन		
३२ (२१)	ग्रुपपद स्तवन		

३३ (२२)	समवसरणस्तवन	}	आ वे स्तवनो श्रीयुत अमरचदजी वोथरा तथा
३४ (२३)	कुभरयापना स्तवन		

भोजकगी० हे० तरफयी मळेल छे

३५ (२४) सहस्रकुटुनु स्तवन भोजकगी० हे० तरफयी मळेल छे तेमज काँ हेरळडना १९१५ ना खास अकमा उपायेलु छे

३६ (२५) अजितनाथ जिनहोरी होरी सग्रहमा उपायेलु छे

३७ (२६)	प्रभुस्तुति	}	आ स्तुतिओ श्रीयुत अमरचदजी वोथरा तरफयी मळी छे.
३८ (२७)	सिद्धाचळस्तुति		
३९ (२८)	विशस्थानकस्तुति		
४० (२९)	गीरनारस्तुति		
४१ (३०)	ज्ञानबहुमानस्तुति		

४२ (३१) बडी साधुवदनानी ढालो श्रीयुत अमरचदजी बोथरा तरफथी मळेल छे

४३ (३२) अष्टप्रवचन मातानी सझायो

४४ (३३) प्रभजनानी सझाय

४५ (३४) ढढण ऋषिनी सझाय

४६ (३५) समकितनी सझाय

४७ (३६) गजसुकुमालनी सझाय

आ सझायो  
छपायेली छे

४८ (३७) पचेंद्री विषय त्यागपद—श्रीयुत् अमरचदजी बोथरा तरफथी मळ्यु छे

४९ (३८) | सुरत नीवाशी जानकीबाइ उपर लखेला

५० (३९) | पत्रो २—आ बे पत्रो आत्मानदप्रकाशमा

छपाएला छे ते उपरथी लीघा छे

५१ (४०) एक श्रावक उपर लखेलो पत्र—प्र० श्रीका-  
तीविजयजी महाराज पासेथी मळ्यो छे

५२ साधु स्वाध्याय

५३ बे सज्जायो प अजितसागरगणि तरफथी मळेल छे

उपर प्रमाणे ज्याथी पुस्तको स्तवनो सझायो विगेरे मळ्या तेनी वीगत आपी छे श्रीमद् देवचद्रजी महाराजना रागी भक्तोमा श्रीयुत् अमरचदथी बोथरानु नाम प्रथम पद धरावे छे तेमणे श्रीमद्नी केटलीक कृतिओना नाम तथा ते क्या क्या मळी शकरो ते मने पत्र लखी प्रथमथी जणाव्यु हतु तेमना पत्रव्यवहार उपरथी तेमनी श्रीमद् उपरनी भक्तिनो उत्तम ख्याल आवी शके छे “ श्रीमद् देवचद्र ” पहेलो भाग छपायलो तेमनापर मोकल्यो त्यारे तेमने अत्यंत आनद थयो हतो ते सत्रवी पत्रनो उतारो नीचे आप्यो छे

पत्र

“ श्रद्धास्पद धर्मपुत्र वकील मोहनलालभाइ जोग ली० बालुचरसे अमरचंद्र जोयरेका प्रणाम बहुत बहुत बंचियेगा, यहा कुशलमगल है आप लोगोकी कुशल सदा चहाना हु अपरच समाचार बंचियेगा आगु “ श्रीमद् देवचन्द्र ” नामाग्रयका मुद्रिताश आपने कृपापर्वक भेजा सो पतिनपावनि तिथि चैत्र शुक्ल त्रयोदशीके दिनस मुजे मिला था आपकी इस कृपाके लीये मै आपका आ जन्म ऋणी भया हु, उपरोक्त ग्रयका पत्रच समाचार में कलकते चले जानेसे फॉरन देनमे देरि भया आगा हे हमारा ए अपराव क्षमा करियेगा

ओर कलदिनमें कलकतेसे आया हु “ विचारसार ” ग्रंथ पहोचा सो जानियेगा, विकानेरवाले श्रीपूज्यजी कहा है मालूम नही भया मालूम होनेसे उनको पत्र लिखकर सर्व बात पुछकर आपको लिखुगा

x x x x

आगु—कमसेकम हजार पुस्तक छपवाइएगा ऐसा हमारा अनुमान था इसिसे १५१ पुस्तक भेजनेको लिखा था लिकन पुस्तक कम छपेगी तो पु १५१ भेजनेकी जरूरत नहि है, पुस्तक छववानेके खर्च बाबत रुपीया चार पाच रोजमे भेजेगे

श्रीमद्कृत समस्त ग्रयादि छपानेके विचार है एक अक्षर भी छोडनेका इरादा नहि है लिखा सो वाचकर खुशी भये

पूज्याचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरजीसरिजी तपागच्छके होकर श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराजके प्रति इतनी भक्ति रखते है इह इस कालमे अपूर्व है इस लिये श्रीआचार्य बुद्धिसागरसरिजीके चरणमे वारवार नमस्कार हो

x x x x

श्रीमद् समन्वि हमको जो कुछ मालुम था सो बनलाना हमारा फरज था सो हम कथचित पालन किया यह हमारा सौभाग्य है इस लिये हमारी प्रससा की कोई जरूरत नहिं मुजे लज्जित होना पडना है सो मालुम फिजियेगा धर्म स्नेह सविशेष रखीयेगा, पत्रोतर शीघ्र दिजियेगा यद्वा के लायक काम हो सो लिखियेगा इति

### छपाव्या विनाना पुस्तको

( १ ) गुरुगुणवर्णिका टबो ( २ ) ध्यानदीपिका चतुष्पदी ( ३ ) कर्मग्रथ पाचनो टबो ( ४ ) विचाररत्नसार पूर्ण ( ५ ) प्रश्नोत्तर ( ६ ) विचारसार मुळ-टीका अने टबो ( ७ ) कर्मसवेध प्रकरण ( ८ ) प्रतिमापुष्पसिद्धि ( ९ ) गुणस्थानाधिकार ( १० ) द्रव्यप्रकाश ( ११ ) बाहुजिनस्तवन टबो ( १२ ) वीर निर्वाणनी ढालो ( १३ ) पद्मनाभजिनस्तवन ( १४-१५-१६-१६ ) सिद्धाचलना स्तवन ( १८ ) नवानगरस्तवन ( १९ ) ध्रुवपदस्तवन ( २० ) समवसरण स्तवन ( २१ ) कुम्भस्थापनस्तवन ( २२ ) सिद्धाचलस्तुति ( २३ ) वीशस्थानस्तुति ( २४ ) ज्ञानबहुमानस्तुति ( २५ ) गिरिनारस्तुति ( २६ ) कागळ ( २७ ) पचेन्द्रिय विषय-त्यागपद ( २८ ) प्रभुस्तुति साधुपद अन्यपद ए रीते त्रीश छपाव्या वगरना हता ते छपाव्या छे अने ते विनाना पहेळ छपावेला हता ते पुन सुद्ध करी छपावेळ छे

काइ शालना वधा पुस्तको क्या गाममा रच्या

संस्कृत १७७६ फागण सुदि त्रीजे मोटा कोट-मरोट-मापोताना मित्र दुर्गादासना बोधार्थे आगमसंस्तरनी रचना करवामा आर्वी

सवत् १७९६ ना कार्तिक सुदि पाचमे नवानगरमा  
ज्ञानसार उपर ज्ञानमजरी टीका रचवना आवी

सवत् १७६६ ना वेशाख वदि १३ ना रोज मुल्तान शहे-  
रमां भणशाळी मीठुमलना आग्रहयी धनादीपिकाचतुप्पदी रची

सवत् १७९६ ना कार्तिक सुदि १ ना रोज नवानगरमा  
विचारसार ग्रथरच्यो

सवत् १७६७ ना पोष वदि १३ ना रोज द्रव्यप्रकाश  
ग्रथ रच्यो

सवत् १८०४ ना मागशर सुदि १३ ना रोज सिद्धाच-  
ळजीनु स्तवन सुरतमाशी कचरा कीकाना सवमा सिद्धाचळजीना  
दर्शन करी रच्यु

जेसलमेरमा वर्धमान शेठना आग्रहयी पचभावनानी रचना  
करी शाल मळती नयी

लीमळी शहेरमां अघ्यात्मगीतानी रचना करी

भावनगरमा दीवाळीना दीवसे वीरनिर्वाणनु स्तवन (ढालो)  
रची शाल लखी नयी.

ए शीवाय वीजा ग्रथोनी शाल तथा स्थळ मळेल नयी

### श्रीमद्नुं जीवनचरित्र

श्रीमद्नुं जीवनचरित्र हजी परिपूर्ण उपलब्ध ययु नयी ते सवधी  
ज्या त्या पनो लखी हकीकत मेळवना प्रयास करवामा आवे छे  
श्रीमद् देवचद्र द्वितीय भागमा श्रीमद्ना जीवनचरित सवधी  
जे-जे हकीकत मळजे ते दाखल करवामा आवशे तथा तेमनी  
कृतिओ सवधी उपोद्घातमा लेख्य विचारो प्रगट करवामा

आवशे प्रथम भागमा पत्र विस्तार भययी ते दाखल करेल नयी श्रीमदना जीवनचरित सत्रची जे जे महाशयो स्वबरो पूरी पाडशे तेमनी उपकारसह बीजा भागमा नोंव लेवामां आवशे

### अप्रगट कृतियो

श्रीमदनी जे जे कृतियो मळी तेनु लीए उपर आपवामां आव्यु छे तेम छता हजी जे जे अप्रगट कृतियो रही होय ते सबची जाहेरखबरयी तथा पत्रव्यवहारयी प्रयत्न करवामा आवशे श्रीमदनी अप्रगट कृतिओ मेळववामा जे जे महाशयो स्हाय करशे तेमनी बीजा भागमा उपकार सह नोंव लेवाशे

### पुस्तको मेळवी आपनार महाशयोनो उपकार

अमदावाद डेलाना उपाश्रय ज्ञानभडारमायी बने पक्षना मतभेद प्रसंगे पुस्तको न मळी शके तेवा सजोगोमा खास काळजी राखी श्रीमदनी कृतियोनी प्रतिओ अपाववामा झवेरी भोगीलालभाइ ताराचदे जे सहाय आपी छे तेमाटे तेमनो आभार मानुछु श्रीमद् देवचद्रजीनी चौवीशी तथा अन्य वाचनयी तेओनो श्रीमदपर पूर्ण राग प्रगटेलो जणाय छे ने तेयी तेमणे आ कार्यमा सारी स्हाय आपी छे

वालुचरवाळा झवेरी अमरचदजी बोथरा जेओ श्रीमदना पूर्ण रागी ज्ञानरसिक भक्त छे तेमनो तथा श्रीमदनी कृतिना पुस्तको आपवा माटे श्रीमद् प्रवर्तक श्रीज्ञातिविजयजी तथा श्रीमद् विजयकनळसूरीश्वरजी, पन्यास लाभविजयजी, पन्यास केसरविजयजी, पन्यास गुलाबविजयजी, मुनि हेतमुनि, भोजक

गीरधरभाइ हेमचंद्र तथा धोराजीना शेठ जादूजी रमजी विगे-  
रेनो अत वरणपूर्वक आभार मानुछु

आ कार्यना मूळ उत्पाद अने प्रेरक परमपूज्य योगनिष्ठ  
शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिश्वरजी महाराज  
जेओए मात्र आ ग्रय उपाववानो उपदेश करीनेज नर्हा अड-  
कना तमाम ग्रयो शोय्या सुधारवामा तेमज प्रुफो तपासवामा  
आगरे वे वर्षयी सतन प्रयास सेवेले छे एटलुज नही पण  
विचारसारनी सरकृत टीका अने वीजा केटलाक ग्रय एटला  
तो अशुद्ध अने अव्यवस्थित रीते लखायला हता के जे शुद्ध  
करवामा तेओ श्रीनो घणो काळ व्यतीत थयो छे तेओ श्रीनी  
आटली वर्षी काळजी अने स्हाय न होत तो आ कार्य  
कदापी यई शकन नर्हा तेयी तेओश्रीनो जेटले उपकार  
मानीए तेटले ओओ छे, अने तेयी आ कार्यनी सफळताउ  
सर्व मान तेओश्रीनेज घटे छे.

आ पुस्तकसग्रहमा उपाएल ग्रयो पैकी केटलाकनी प्रतिओ  
घणी जुनी पण अशुद्ध होवार्थी तेमज तेनी मेळवणी माटे  
पुरतु साधन नहा मळवार्थी तेने शुद्ध करवा प्रयत्न कर्या  
छता घणी भुले रहीं जवानो सभव छे तेनु शुद्धिपत्रक दाखल  
करेलु छे छता पण कोई रथळे भुले रहेली होय तो ते सुज्ञ  
वाचको सुधारी वाचरो अने मने जणावरो तो तेमनो आभार  
मानी वीजी आवृत्तिमा सुधारो करवामा आवरो

आ ग्रय सवधमा जे काई लखवानुं बाकी रहेलु हरो ते  
वीजी आवृत्तिमा जणाववामा आवरो



छेवटे श्रीमदनी कृतिओ अने जीवनचरित्र सबधी तेमज  
आ ग्रथ सबधी जे जे उपयोगी सुचनाओ आपत्रानु योग्य  
लागे तेवी सुचनाओ आपत्रा सर्व सज्जनोने विनति करी आ  
प्रस्तावना पूर्ण करु छु, अने मारा जीवननो जे काई समय  
आ कार्यमा व्यतित थाय छे तेमाटे मारा आत्माने धन्य  
मानु छु

पादरा  
चैत्र सुदि १ स १९७४ } वकील मोहनलाल हीमचंद्र

---

# अनुक्रमणिका.

	पृष्ठ		पृष्ठ
१ आगमसार			१-७२
त्रणकरण	१	निगोद	३७
षट्द्रव्यनु स्वरूप	३	चार ध्यान	४८
आठपक्ष	७	भाषना	५४
सातनयनु	१५	समकित	५६
चार निक्षेप	२१	निश्चयन्यवहार स्वरूप	६३
चार प्रमाण	३२	पचसमवाय	६८
सप्तभगी	३३		
२ नयचक्रसार			७३-१८८
गुणठाणाआश्रीजीवना भेद	७४	सप्तभगीनु स्वरूप	१०२
द्रव्यगुणपर्याय लक्षणनय-		उत्पादव्ययना भेद	११७
निक्षेप सहित	८०	सामान्य स्वभावना भेद	१२७
पचास्तिकायनु स्वरूप	८८	विशेष स्वभावना भेद	१४०
सामान्य विशेष स्वभावना		नयजान स्वरूप	१४३
लक्षण	९५	प्रमाण स्वरूप	१७९
३ ज्ञानसारिटीका			१८९-४२२
१ पूर्णाष्टक	१८९	७ इन्द्रियजयाष्टक	२४१
२ मग्नोष्टक	१९६	८ त्यागाष्टक	२४८
३ स्थिरताष्टक	२०८	९ क्रियाष्टक	२५७
४ मोहेत्यागाष्टक	३१३	१० तृप्त्यष्टक	२६४
५ ज्ञानाष्टक	२२२	११ निर्लेपाष्टक	२७१
६ समाष्टक.	२३४	१२ निस्पृहाष्टक.	२७८

१३	मौनाष्टक	२८३	२४	शास्त्राष्टक	३६२
१४	विद्याष्टक	२९२	२५	परिग्रहाष्टक	३६७
१५	विवेकाष्टक	२९९	२६	अनुभवाष्टक	३७२
१६	माव्यस्थाष्टक	३०८	२७	योगाष्टक	३७७
१७	निर्भयाष्टक	३२३	२८	निवागाष्टक	३८४
१८	अनात्मशास्त्राष्टक	३२७	२९	भावप्रज्ञाष्टक	३८८
१९	तत्त्वदृष्ट्यष्टक	३३३	३०	ध्यानाष्टक	३९२
२०	सर्व समृद्धयष्टक	३४१	३१	तपोऽष्टक	३९७
२१	कर्मविपाकचिंतनाष्टक	३४६	३२	सर्वनयनयणाष्टक	४०४
२२	भवोद्वेगाष्टक	३५२	३३	टीकाकारप्रशस्ति	४२०
२३	लाकसज्ञात्यागाष्टक	३५७			
४	शुद्धगुणछत्रीशी				४२५-४५०
५	ध्यानदिपीकाचतुःष्पदी				४५३-५७९
१	वारभावनासु स्वरूप खंड १	४५३	४	ध्यानव्येय स्वरूप खंड ४	५२४
२	रत्नत्रयपचमहाव्रत खंड २	४६९	५	धर्मध्यान स्वरूप खंड ५	५४९
३	समितिशुद्धि-भोहजय- वर्णन खंड ३	५०७	६	शुद्धध्यान स्वरूप खंड	५६८
६	कर्मग्रन्थो द्वौ				५८२-७५२
१	पहेलो कर्मग्रन्थ	५८२	४	चौथो कर्मग्रन्थ	६४२
२	बीजो कर्मग्रन्थ	६११	५	पाचमो कर्मग्रन्थ	६८४
३	त्रीजा कर्मग्रन्थ	६२९			
७	विचाररत्नसार				७५३-२३२
८	छुटक प्रश्नोत्तर				७३३-२६६
९	कर्मसवेधप्रकरण				९६७-९९२
१०	प्रतिमापुष्पपूजासिद्धि				९९३-१००४
११	शुण्डानक अधिकार.				१००५-१०२८



॥ श्रीसर्वज्ञाय नमः ॥

॥ अथ ॥

॥ श्रीपडितदेवचन्द्रजीकृत ॥

## आगमसार.



मव्यजीवने प्रतिगोववा निमित्ते मोक्षमार्गनी वचनिका कहे छे तिहा प्रथम जीव अनादिकालनो मिथ्यात्वी हतो ते काललब्धि पामीने ण करण करेछे तेना नाम-पहेलु यथाप्रवृत्ति करण, वीजु अपूर्व करण, अने त्रीजु अनिवृत्ति करण

तेमा पहेलु यथाप्रवृत्ति करण कहेछे ? ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ अतराय, ए चार कर्मनी त्रीस कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति छे, तेमायी ओगणत्रीस कोडाकोडी खपावे अने एक कोडाकोडी बाकी राखे, तथा ? नामकर्म, २ गोत्रकर्म, ए वे कर्मनी वीस कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति छे, तेमायी ओगणीस खपावे अने एक कोडाकोडी राखे, अने मोहनीयकर्मनी सितेर कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति छे तेमायी अगणोतेर खपावे, बाकी एक कोडाकोडी शेष राखे । एवी रीते एक आयुर्कर्म वर्जिने बाकी साते कर्मनी एकपल्योपमना असख्यातमा भागेन्यून एक कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति, राखे,

एवो जे वैराग्यरूप उदासी परिणाम तेने यथाप्रवृत्तिकरण कहिये  
ए पहेलु करण, सर्वसजी पचेंद्रीजीव अनन्तीवार करेछे

हवे बीजु अपूर्वकरण कहेछे ते एक कोटाकोडी साग-  
रोपमनी स्थितिमाहेथी एक मुहूर्त अने अनादि मिथ्यात्व जे  
अनतानुबन्धीआनी चोकडी ते खपात्रवाने अज्ञान हेय ते छाडवु,  
अने ज्ञान उपादेय एटले आदरवु, ए प्राणरूप अपूर्व कहेता  
पहेला क्यारे न आत्यो एवो जे परिणाम ते अपूर्व करण कहिये,  
ए बीजु करण ते समकितयोग्य जीवने याय

हवे बीजु अनिवृत्ति करण कहेछे ते मुहूर्तरूप स्थिति  
खपावीने निर्मल शुद्ध समकित पामे मिथ्यात्वनो उदय मटे  
त्यारे जीव उपशम समकित पामे, एवो जे परिणाम ते अनि-  
वृत्ति करण कहिये ए करण कीधायी गठीभेद थयो कहीए उक्तञ्च  
आवश्यकनिर्मुक्तौ “ जा गठी ता पढम । गठीसमय छेओ भवे-  
बीओ ॥ अनिअट्टिकरण पुण । समत्तपुरक्खडेजीवे ॥ १ ॥  
ऊसर देस दद्धिच्छिय च । विज्जाइ वणदवो पप्प ॥ मिच्छत्त-  
स्साणुदए । उवसमसम्म लहइ जीवो ॥ २ ॥ एम मिथ्यात्वनो  
उदय मट्ठायी जीव समकित पामे, ते समकितनी सदहणाना  
वे भेद छे, एक व्यवहार समकित सदहणा, बीजी निश्चय  
समकित सदहणा

देवश्रीअरिहत देवाधिदेव, अने गुरु सुसाधु जे सूवो अर्थ  
कहे ते, तथा वर्म केवलीनो प्ररुप्यो जे आगममा सातनय तथा  
एक प्रत्यक्ष बीजु परोक्ष ए वे प्रमाण अने चार निक्षेपेकरी सदहे,  
एवी सदहणा ते व्यवहार समकित कहिये ए पुण्यनु कारण तथा  
धर्म प्रगट करवानु कारण छे एवी रुचि ज्ञानविना पण घणा  
जीवाने उपजे.

वीजु निश्चयसमकिन ते आर्वी रीते जे निश्चय देव ते आपणोज आत्मा जीव निष्पन्नस्वरूपी सिद्ध ते सग्रहनयनी-सत्तागपेयता, तथा निश्चयगुरु ते पण आपणो आत्माज तत्त्व-रमणी, अने निश्चयर्म ते आपणा जावनो स्वभावज छे एवी सदहणा ते मोक्षनु कारण छे केमके जीव स्वरूप ओल्ह्या विना कर्मखपे नहीं एवी शुद्ध सदहणा ते निश्चयसमकिन

हवे जाननु स्वरूप कहेछे ते जानना वे भेच्छे एक व्यवहारजान, वीजु निश्चयजान, तेमा जे अन्यमतिना सर्व-शास्त्र जाणवा अथवा जेनागममन्त्रे कद्या जे एकगणितानुयोग ते क्षेत्रमान, वीजो चरणकरणानुयोग ते क्रियाविधि, वीजो वर्मकथानुयोग ए वण अनुयोगनु जाणवापणु ते सर्व व्यव-हारजान छे अथवा अन्तरउपयोगविना जे सूत्रना अर्थ करवा ते पण व्यवहारजान कहिये

हवे निश्चयजान ते उ द्रव्य तथा तेना गुण अने पर्याय सर्वने जाणे तेमा पाच अजीव द्रव्यछे ते हेय-कहेता छाडवायोग्य जाणी छटवा, अने एक जीवद्रव्य ते निश्चयकरी सिद्धसमान मोक्षमयी मोक्षनो जाणनार मोक्षनु कारण मोक्षनो-जावावालो मोक्षमाज रहे छे एहवो आपणो जीव अनतगुणी अरूपीछे तेनेज व्यावे ते निश्चयजान कहिये

हवे एक प्रमास्तिकाय, वीजो अधर्मास्तिकाय, वीजो आका-शास्तिकाय, चोथो पुद्गलास्तिकाय, पाचमो जीवास्तिकाय, अने छटो काल ए उ द्रव्य शाश्वताछे तेनु जान कहे छे. ए छ द्रव्य मन्त्रे पाच अजीव द्रव्यछे अने एक जीव द्रव्य ते चेत-नालक्षणवतछे उपादेयछे

હવે એ છ દ્રવ્યના ગુણ કહેછે પહેલો ધર્માસ્તિકાયના ચાર ગુણ એક અરૂપી, બીજો અચેતન, ત્રીજો અક્રિય, ચોથો ગતિસહાયગુણ બીજા અધર્માસ્તિકાયના પાંચ ગુણછે એક અરૂપી, બીજો અચેતન, ત્રીજો અક્રિય, અને ચોથો સ્થિતિ-સહાયગુણ ત્રીજા આકાશાસ્તિકાયદ્રવ્યના ચાર ગુણછે એક અરૂપી, બીજો અચેતન, ત્રીજો અક્રિય, ચોથો અવગાહના દાન-ગુણ હવે કાલદ્રવ્યના ચાર ગુણ કહેછે એક અરૂપી, બીજો અચેતન, ત્રીજો અક્રિય, ચોથો નવાપુરાણવર્તનાલક્ષણ હવે પુદ્ગલ-દ્રવ્યના ચાર ગુણ કહેછે એકરૂપી, બીજો અચેતન, ત્રીજો સક્રિય ચોથો મિલણવિસ્ખરણરૂપ પૂરણગલન ગુણ હવે જીવદ્રવ્યના ચાર ગુણ કહેછે એક અનતજ્ઞાન, બીજો અનતદર્શન, ત્રીજો અન-ન્તચારિત્ર, ચોથો અનતવીર્ય, એ છ દ્રવ્યના ગુણ કહ્યા તે નિત્યઘ્રુવછે

હવે છ દ્રવ્યના પર્યાય કહેછે ધર્માસ્તિકાયના ચાર પર્યાયછે. એક સ્વદ, બીજો દેશ, ત્રીજો પ્રદેશ, ચોથો અગુરુલઘુ અધ-ર્માસ્તિકાયના ચાર પર્યાય એક સ્વદ, બીજો દેશ, ત્રીજો પ્રદેશ, ચોથો અગુરુલઘુ, પુદ્ગલ દ્રવ્યના ચાર પર્યાય એક વર્ણ, બીજો ગદ્ય, ત્રીજો રસ, ચોથો સ્પર્શ અગુરુલઘુસહિત, તથા આકાશાસ્તિકાયના ચાર પર્યાય એક સ્વદ, બીજો દેશ, ત્રીજો પ્રદેશ, ચોથો અગુરુલઘુ, કાલદ્રવ્યના ચાર પર્યાય એક અતીતકાલ, બીજો અનાગત કાલ ત્રીજો વર્તમાન કાલ, ચોથો અગુરુલઘુ, અને જીવ દ્રવ્યના ચાર પર્યાય એક અવ્યાનાથ, બીજો અનવગાહ, ત્રીજો અમૂર્તિક, ચોથો અગુરુલઘુ એ છ દ્રવ્યનાપર્યાય કહ્યા

હવે છ દ્રવ્યના ગુણપર્યાયનું સાધર્મ્યપણું કહેછે અગુરુ લઘુપર્યાય સર્વદ્રવ્યમા સરીખો છે અને અરૂપીગુણ પાંચ દ્રવ્યમાં

छे. एक पुद्गलद्रव्यमा नयी, तथा अचेतनगुण पाच द्रव्यमाछे  
 एक जीवद्रव्यमा नयी, अने सक्रियगुण जीव तथा पुद्गल ए  
 वे द्रव्यमाछे त्रिकी चारद्रव्यमा नयी, तथा चलणसहायगुण एक  
 धर्मास्तिकायमाछे, वीजा पाच द्रव्यमा नयी, वली स्थिरसहायगुण  
 एक अपर्मास्तिकायमा छे वीजा पाच द्रव्यमा नयी, तथा अव-  
 गाहनागुण ते एक आकाशद्रव्यमाछे, वीजा पाच द्रव्यमा नयी,  
 अने वर्तनागुण ते एक कालद्रव्यमाजछे, वीजा पाच द्रव्यमा  
 नयी, तेमज मिलणविखरणगुण ते पुद्गलमाछे, वीजा द्रव्यमा नयी  
 तथा ज्ञान-चेतना गुण ते एक जीव द्रव्यमा छे, पण वीजा-  
 द्रव्यमा नयी. ए मूलगुण कोइ द्रव्यना कोइ द्रव्यमा मिले नही.  
 एक वर्म, वीजो अधर्म, त्रीजो आकाश, ए त्रण द्रव्यना त्रण  
 गुण तथा चार पर्याय सरिखाछे अने त्रण गुणें करी तो काल-  
 द्रव्य पण ए समान छे

हवे वली अग्यार बोले करी उद्रव्यना गुणजाणवाने गाथा  
 कहेछे

परिणामि जीव मुत्ता, सपएसा एग खित्त किरिआय निच्च  
 कारण कत्ता, सब्रगय इयर अप्पवेसे । ? ।

अर्थ-निश्चयनययी आप आपणा स्वभावे छए द्रव्य परि-  
 णामी छे अने व्यवहारनययी जीव तथा पुद्गल ए वे द्रव्य  
 परिणामी छे तथा एक वर्म, वीजो अधर्म, त्रीजो आकाश अने  
 चोथो काल, ए चार द्रव्य अपरिणामी छे तथा उ द्रव्यमा एक-  
 जीव द्रव्य ते जीवछे, वीजा पाच द्रव्य अजीव छे तथा छ  
 द्रव्यमा एक पुद्गल मूर्तिवन्त रूपी छे अने पाच द्रव्य अमूर्ति-  
 मत अरूपी छे उ द्रव्यमा पाच द्रव्य सप्रदेशी छे, अने एक-  
 काल-द्रव्य अप्रदेशीछे, तेमा एक धर्मास्तिकाय, वीजो अधर्मा-



સ્તિકાય એ બે દ્રવ્ય અસખ્યાત પ્રદેશી છે, અને એક આકાશ-દ્રવ્ય અનતપ્રદેશી છે જીવ દ્રવ્ય અસખ્યાત પ્રદેશી છે, પુદ્ગલપરમાણુ \* અનતપ્રદેશી છે, પરમાણુ આ અનતા છે એમ પાંચ દ્રવ્ય સપ્રદેશી છે અને છઠ્ઠો કાલ અપ્રદેશી છે

છ દ્રવ્યમા એકધર્માસ્તિકાય, વીજો અધર્માસ્તિકાય, ત્રીજો આકાશાસ્તિકાય એ ત્રણ તે એકેક દ્રવ્ય છે, તથા એક જીવ-દ્રવ્ય વીજો પુદ્ગલદ્રવ્ય ત્રીજો કાલદ્રવ્ય એ ત્રણ દ્રવ્ય અનેક-અનેક છે, છ દ્રવ્યમા એક આકાશદ્રવ્ય ક્ષેત્ર છે, અને વીજા પાંચ દ્રવ્ય ક્ષેત્રી છે, નિશ્ચયનયમી છ દ્રવ્ય 'પોતપોતાના કાર્યે સદા પ્રવર્તે છે માટે સક્રિય છે, અને વ્યવહારનયમી જીવ તથા પુદ્ગલ એ બે દ્રવ્ય સક્રિય છે, તેમા પણ પુદ્ગલ સદા સક્રિય છે, અને જીવ દ્રવ્ય તો સસારી થકો સક્રિય છે, પણ સિદ્ધ અવસ્થાયે થકો સસારી ક્રિયા કરવાને અક્રિય છે, તથા બાકીના ચાર દ્રવ્ય તો અક્રિય છે, નિશ્ચયનયમી છ દ્રવ્ય નિત્ય છે ધ્રુવ છે, અમે ઉત્પાદવ્યયેકરી અનિત્ય પણ છે તથા વ્યવહારનયે જીવ અને પુદ્ગલ એ બે દ્રવ્ય અનિત્ય છે, બાકીના ચાર દ્રવ્ય નિત્ય છે, યદ્યપિ ઉત્પાદવ્યયદ્રવ્યપણે સર્વ પદાર્થ પરિણમે છે તો પણ એક ધર્મ, વીજો અધર્મ, ત્રીજો આકાશ, ચોથો કાલ, એ ચાર દ્રવ્ય સદા અવસ્થિત છે તે માટે નિત્ય કહ્યા

છ દ્રવ્યમા એક જીવ દ્રવ્ય અકારણ છે અને પાંચ દ્રવ્ય કારણ છે કેમકે પાંચે દ્રવ્ય જીવને ભોગમા આવે છે માટે કારણ કહિયે કેમકે ધર્માસ્તિકાય ચાલવાનો સાહ્ય આપે છે અધર્માસ્તિકાય ધિરરહેવાનો સાહ્ય આપે છે આકાશાસ્તિકાય અવકાશ આપે છે પુદ્ગલાસ્તિકાય જીવને મધુરાદિ, સુરભિગવાદિક તથા સ્કોમલ સ્પર્શાદિક ભોગપણે થાય છે તથા કાલદ્રવ્ય તે જીવને જરા, બાલ,

\* પુદ્ગલાસ્તિકાયના મ્કન્ધો પર્યાયો અનતપ્રદેશી છે

तारुण्य अवस्था दिष्टे, तथा अनादि ससारी जीव भवस्थिति परिपाक इत्या एक अतर्मुहूर्तकालमा सकलकर्म निर्जरी मोक्ष पहेंचे तिहा सिद्ध अवस्थायें अनतोकाल पर्यंत जीव अन्ता मुखने विलसे माटे कालद्रव्य पण जीवने भोग याय छे पण एक जीवद्रव्य कोइने भोग आप्तो नयी माटे अकारण क्यु अने पाच द्रव्य भोग आपे माटे कारण रुद्रा तथा घणी प्रतोमा तो सक्षेपे पुट्लु छे जे उ द्रव्यमा एक जीव द्रव्य कारण छे पाच द्रव्य अकारणछे ए पण वान घणीरीते मलतीछे माटे जे बहुश्रुत कहे ते खरु मारी वारणा प्रमाणे जीवद्रव्य कारण अने पाच द्रव्य अकारण एम सभवे छे” निश्चयनययी उए द्रव्य कर्ताछे अने व्यवहारनेयें एक जीवद्रव्य कर्ताछे बाकी पाचद्रव्य अकर्ताछे. छद्रव्यमा एक आकाशद्रव्य सर्वव्यापी छे अने पाचद्रव्य लोक व्यापी छे छए एक खेपमा एकटा रूद्रा छे पण एक बीजा साये मली जाय नहीं ए उ द्रव्यनो विचार कह्यो

हवे एकेका द्रव्यमा एक नित्य, बीजो अनित्य त्रीजो एक चोथो अनेक, पाचमो सत्, उट्टो असत्, सातमो वक्तव्य, आठमो अवक्तव्य, ए आठ आठ पक्ष कहेछे

वर्मास्तिकायना चार गुण नित्यछे तथा पर्यायमा धर्मास्तिकायनो एक खव नित्यछे बाकीना देश प्रदेश तथा अगुरुलघु पर्याय अनित्यछे अधर्मास्तिकायना चार गुण तथा एक लोकप्रमाण खव नित्यछे अने एक देश, बीजो प्रदेश, त्रीजो अगुरुलघु ए त्रण पर्याय अनित्यछे तथा आकाशास्तिकायना चार गुण तथा लोकालोकप्रमाणखव नित्यछे अने एक देश, बीजो प्रदेश त्रीजो अगुरुलघु ए त्रण पर्याय अनित्यछे तथा कालद्रव्यना चार गुण नित्यछे अने चार पर्याय अनित्यछे पुद्गल द्रव्यना चार गुण नित्य

अने चार पर्याय अनित्यछे जीवद्रव्यना चारगुण तथा त्रण पर्याय-  
नित्यछे अने एक अगुरुलघु पर्याय अनित्य छे ए रीते नित्या-  
नित्यपक्ष कह्यो

हवे एक अनेकपक्ष कहे छे एक धर्मास्तिकाय वीजो अध-  
र्मास्तिकाय ए बे द्रव्यनो खव लोकाकाशप्रमाण एक छे अने  
गुण अनताछे पर्यायअनताछे प्रदेश असख्याताछे, तेणेंकरी  
अनेकछे, आकाशद्रव्यनो लोकालोकप्रमाणखव एकछे अने गुण  
अनताछे पर्याय अनताछे प्रदेशअनताछे माटे अनेकछे, काल  
द्रव्यनो वर्तनारूप गुण एकछे अने गुण अनताछे, पर्याय अनता  
छे, केमके समय अनताछे अतीत काले अनतासमय गया अने  
अनागतकाले अनता समय आवशे तथा वर्तमानकाले समय एक  
छे माटे अनेकपक्षछे पुद्गलद्रव्यना परमाणु अनताछे ते एकेक  
परमाणुमा अनतागुण पर्यायछे ते अनेकपणुछे अने सर्व परमा-  
णुमा पुद्गलपणु ते एकज छे माटे एक छे

जीवद्रव्य अनताछे एकेका जीवमा प्रदेश असख्याताछे  
तथा गुण अनताछे पर्याय अनताछे ते अनेकपणु छे-पण  
जीवितव्यपणु सर्वजीवोनु एकसरीखुछे माटे एकपणु छे इहा  
शिष्य पुछे छे-जे सर्व जीव एक सरीखा छे तो मोक्षनाजीव  
सिद्ध-परमानदमयी, देखायछे अने ससारीजीव कर्मवश पड्या  
दु.खी-देखाय छे-अने ते सर्व-जुदाजुदा देखाय छे ते केम ?  
तेहने-गुरु-उत्तर-कहे छे-के निश्चयनये तो जीव सिद्ध समान  
छे माटेज-सर्व जीव कर्म खपावीने सिद्ध थाय छे तेयी सर्व  
जीवनी सत्ता-एकछे

- फरि - शिष्य पुछे छे के जो-सर्व जीव-सिद्ध समान  
कहोछो तो-अभव्य जीव पण सिद्ध समान छे एम ठेरयु (ठर्यु) अने

ते तो मोक्षे जाता नयी, तेहने उत्तर जे अभव्यने कर्म चीकणा छे अने अभव्यमा परावर्त धर्म नयी तेयी सिद्ध यता नयी माटे तेनो एहजो ज स्वभावछे जे मोक्षे जजुज नयी अने भव्यजीवमा परावर्त धर्म छे माटे कारण सामग्री मिले पलटण पामे गुणश्रेणि चढी मोक्षे करी सिद्ध थाय पण जीवना मुख्य आठ रुचक प्रदेश जे छे ते निश्चयनययी भव्य तथा अभव्य सर्वना सिद्ध समान छे माटे सर्व जीवनी सत्ता एक सरीखी छे केमके ए आठ प्रदेशने विल्कुल कर्म लागता नयी ते “ श्री आचाराग सूत्रनी श्री सिलागाचार्य कृत टीकाना लोक-विजयान्ययने प्रथमोददेशके साख छे तिहायी सविस्तरपणे जोवु ”

हवे सत् तथा असत् पक्ष कहेछे ए उ द्रव्य ते स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, अने स्वभावपणे सत् एटले उता छे अने परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल तथा परभावपणे असत् एटले अउता छे तेनी रीत बताववाने अर्थे उए द्रव्यना द्रव्य क्षेत्र काल भाव कहिये उँये

धर्मास्तिकायनो मूलगुण चलाण सहायपणो ते स्वद्रव्य, अवर्मास्तिकायनो मूलगुण स्थिति सहायपणो ते स्वद्रव्य, आकाशास्तिकायनो मूल गुण अवगाहपणो ते स्वद्रव्य, कालद्रव्यनो मूल गुण वर्तनालक्षण पणो ते स्वद्रव्य, तथा पुद्गलनो मूलगुण पुरणगलनपणो ते स्वद्रव्य अने जीवद्रव्यनो मूलगुण ज्ञानादिक चेतनालक्षणपणो ते स्वद्रव्य ए छद्रव्यनोस्वद्रव्यपणो कह्यो

हवे स्वक्षेत्र ते द्रव्यनो प्रदेशपणो छे ते देखाडे छे तिहा एकधर्मास्तिकाय, बीजो अधर्मास्तिकाय ए वे द्रव्यनो स्वक्षेत्र असख्यात प्रदेश छे अने आकाशद्रव्यनो स्वक्षेत्र अनंत प्रदेश छे कालद्रव्यनो स्वक्षेत्र समय छे. पुद्गलद्रव्यनो स्वक्षेत्र एक पर-

माण्डे ते परमाणु अनताडे जीवद्रव्यनो स्वक्षेत्र एक जीवना  
असख्याता प्रदेशे

हवे स्वकाल ते छए द्रव्यमा अगुरुलघुनोज छे अने ए  
छ द्रव्यना पोतपोताना गुण पर्यायते सर्व द्रव्यनो स्वभाव जाणवो  
एट्ठे धर्मास्तिकायमा पोतानाज द्रव्य क्षेत्र काल भावछे पण  
बीजा पाच द्रव्यना नयी तथा अधर्मास्तिकाय द्रव्य मव्ये पण  
स्वद्रव्यादिक चार छे पण बीजा पाच द्रव्यना नयी एमज  
आकाशास्तिकायने विषे आकाशनाज स्वद्रव्यादिक चार छे पण  
बीजा पाच द्रव्यना नयी कालद्रव्यमा कालनाद्रव्यादिक चार छे  
बीजा पाच द्रव्यना नयी अने पुद्गलना द्रव्यादिक चार ते पुद्ग-  
लमाज छे पण बीजा पाच द्रव्यना नयी तथा जीव द्रव्यना  
स्वद्रव्यादिक चार ते जीवमा छे पण बीजा पाच द्रव्यना नयी

जे द्रव्य ते गुण पर्यायवत द्रव्यथी अमेदपर्याय होय ते  
द्रव्य कहिये तथा स्वधर्मनो आधारवतपणो ते क्षेत्र कहिये अने  
उत्पाद व्ययनीवर्तना ते काल कहिये तथा विशेष गुण परिणति  
स्वभाव परिणति पर्याय प्रमुख ते स्वभाव कहिये

इहा १ भेद स्वभाव, २ अमेदस्वभाव ३ भव्यस्वभाव ४  
अभव्यस्वभाव ५ परमस्वभाव ए पाच स्वभाव कहेवा तेमा द्र-  
व्यना सर्व वर्मने पोतपोताना स्वस्वकार्यने करवे करी भेद स्व-  
भाव छे, अने अवस्थान पणे अमेद स्वभाव छे अणपलटण स्व-  
भावे अभव्य स्वभाव छे तथा पलटण स्वभावे भव्य स्वभाव छे  
अने द्रव्यना सर्व धर्म ते विशेष वर्मने अनुयायीज परिणमे ते  
माटे ते परम स्वभाव कहिये ए सामान्य स्वभाव जाणवा ए  
रीते छए द्रव्य स्वगुणे सत् छे अने परगुणे असत् छे

हवे वक्तव्य तथा अवक्तव्य पक्ष कहेते ए उ द्रव्यमा अनता गुण पर्याय ते वक्तव्य एतले वचने कहेवा योग्य ते अने अनता गुण पर्याय ते अवक्तव्य एतले वचने कद्या जाय नहीं एवा ते तिहा केवळी भगवते समस्त भाग टीटा तेने अनतमे भागे जे वक्तव्य एतले कहेवा योग्य हुता ते कद्या वली तेनो पण अनतमो भाग श्रीगणार देवे स्रमा गुह्यो ते स्रमा गुह्या ते ने असरयातमे भागे हमणा आगम रखा ते ए उ द्रव्यमा आठपक्ष कद्या

हवे नित्य तथा अनित्य पक्षयी चौभगी उपनी ते कहे छे एक जेनी आदि नयी अने अत पण नयी ते अनादि अनत पहिलो भागो अने जेनी आदि नयी पण अत छे ते अनादि सात वीजो भागो तथा जेनी आदि पण छे अने अत एतले छेहेडो पण छे ते सादि सात वीजो भागो वली जेहने आदि छे पण अत नयी ते सादि अनन नामे चौथो भागो जाणवो

हवे ए चार भागा उ द्रव्यमा फलावी देखाडे ते जीव द्रव्यमा ज्ञानादिक गुण ते अनादि अनत छे नित्य छे, अने भव्य जीवने कर्म साये सप्र तथा ससारीपणानी आदि नयी पण सिद्ध थाय तेवारे अत आव्यो तेयी ए अनादि सात भागो छे, अने देवता तथा नारकी प्रमुखना भव करवा ते सादिसात भागो छे, अने जे जीव कर्म खपावी मोक्ष गया तेनी सिद्धपणे आदिछे अने पाछो ससारमा कोड काले आववु नयी माटे अत नयी तेयी ए सादि अनत भांगो छे ए जीव द्रव्यमा चौभगी कही जीव द्रव्यना चार गुण अनादि अनतछे जीवने कर्म साये सयोग ते अनादि सातछे केमके केवारे पण कर्म छेते छे

હવે ધર્માસ્તિકાયમા ચાર ગુણ તથા સ્વપણો તે અનાદિ અનત છે અને અનાદિ સાત ભાગો નથી તથા ૧ દેશ ૨ પ્રદેશ ૩ અગુરુલયુ એ સાદિ સાત ભાગો છે તથા સિદ્ધના જીવમા ધર્માસ્તિકાયના જે પ્રદેશ રહ્યા છે તે પ્રદેશ આશ્રયીને સાદિ અનત ભાગો છે એવીજ રીતે અધર્માસ્તિકાયમા પણ ચૌભગી જાણવી અને આકાશ દ્રવ્યમા ગુણ તથા સ્વ અનાદિ અનત છે વીજો ભાગો નથી અને ૧ દેશ ૨ પ્રદેશ તથા ૩ અગુરુ લયુ સાદિ સાત છે તથા સિદ્ધના જીવની સાથે સંબંધ તે સાદિ અનત છે

પુદ્ગલ દ્રવ્યમા ગુણ અનાદિ અનત છે જીવપુદ્ગલનો સમ્બંધ અમન્ય ને અનાદિ અનત છે ભવ્ય જીવને અનાદિ સાત છે પુદ્ગલના સ્વ સર્વ સાદિ સાત છે જે સ્વ બાધ્યા તે સ્થિતિ પ્રમાણે રહી સ્વે છે વળી નવા બધાય છે માટે સાદિ અનત ભાગો પુદ્ગલમા નથી

કાલદ્રવ્યમા ગુણ ચાર અનાદિ અનત છે પર્યાયમા અતીત કાલ અનાદિ સાત છે અને વર્તમાનકાલ સાદિ સાત છે અનાગતકાલ સાદિ અનત છે એ કાલનુ સ્વરૂપ તે સર્વ ઉપચારથી છે એ રીતે કાલ દ્રવ્યમા ચૌભગી કહી

હવે દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાલ તથા ભાવમા ચૌભગી કહે છે જીવ દ્રવ્યમા સ્વદ્રવ્યથી જ્ઞાનાદિક ગુણ તે અનાદિ અનત છે સ્વ-ક્ષેત્રે જીવના પ્રદેશ અસંખ્યાતા છે તે સાદિ સાત છે તતોદ્ધર્તનાપણે ફરે છે તે માટે અથવા અવગાહના માટે સાદિ સાત છે પણ ઊતી પણે તો અનાદિ અનત છે સ્વકાલ અગુરુ લયુને ગુણે અનાદિ અનત છે અને અગુરુ લયુ ગુણનો ઉપજવો

તથા વિણશત્રો તે સાદિ સાત છે તથા સ્વભાવ ગુણ પર્યાય તે અનાદિ અનત છે અને ભેદાન્તરે અગુરુલઘુ તે સાદિ સાત છે

ધર્માસ્તિકાયમા સ્વદ્રવ્ય જે ચલણ સહાય ગુણ તે અનાદિ અનત છે અને સ્વક્ષેત્ર અસર્યાત પ્રદેશ લોક પ્રમાણ છે તે અવગાહનાપણે સાદિ સાત છે સ્વકાલ તે અગુરુલઘુ ગુણે કરી અનાદિ અનત છે અને ઉત્પાદ વ્યય તે સાદિ સાત છે સ્વભાવ તે ચાર ગુણ અગુરુલઘુ અનાદિ અનત છે ૧ સ્વ ૨ દેશ ૩ પ્રદેશ તે અવગાહનાને પ્રમાણે સાદિ સાત છે એમ અધર્માસ્તિકાયના પાંચ દ્રવ્યાદિ ચાર ભાગા જાણવા તથા આકાશાસ્તિકાયમા સ્વદ્રવ્ય અવગાહનાદાન ગુણ તે અનાદિ અનત છે અને સ્વક્ષેત્ર લોકાલોક પ્રમાણ અનત પ્રદેશ તે અનાદિ અનત છે સ્વકાલ તે અગુરુલઘુગુણ સર્વથાપણે અનાદિ અનત છે અને ઉપજવે તથા વિણસવે સાદિ સાત છે સ્વભાવ તે ચાર ગુણ તથા સ્વ અને અગુરુલઘુ તે અનાદિ અનત છે તથા દેશ પ્રદેશ તે સાદિ સાત છે તે આકાશ દ્રવ્યના વે ભેદ છે એક ચૌદ-રાજ લોકનો સ્વ લોકાકાશ તે સાદિ સાત છે વીજો અલોકા-કાશનો સ્વ તે સાદિ અનત છે \*

કાલ દ્રવ્યમા સ્વદ્રવ્ય જે નવ પુરાણવર્તના ગુણ તે અનાદિ અનત છે સ્વક્ષેત્ર સમય કાલ તે આદિ સાત છે કેમકે વર્તમાન

\* ચંદ્રરાજ લોકનો સ્વ લોકાકાશ સાદિ સાત છે તે આવી રીતે જે લોકના મન્યમાર્ગે આઠ સ્વક પ્રદેશથી માઢીને સાદિ છે જિહા ચંદ્રરાજ લોકનો અત આવે તિહા સાત તથા ચંદ્રરાજ લોકનો છેલો પ્રદેશ મૂકીને પઠે અલોકની આદિ લેવી પણ અલોકનો અત નથી માટે સાદિ અન્ન કહ્યું છે



સમય એક છે તે માટે તથા સ્વકાલ તે અનાદિ અનત છે સ્વભાવ તે ગુણ ચાર અને અગુરુલઘુ અનાદિ અનત છે અતીત કાલ અનાદિ સાત છે અને વર્તમાનકાલ સાદિ સાત છે અનાગત કાલ સાદિ અનત છે

પુદ્ગલ દ્રવ્યમા સ્વદ્રવ્ય તે દ્રવ્યપણે જે પૂરણગલન વર્મ તે અનાદિ અનન્ત છે અને સ્વક્ષેત્ર પરમાણુ તે સાદિ સાત છે સ્વકાલ સ્થિતિ અગુરુલઘુ ગુણ તે અનાદિ અનત છે અગુરુલઘુનો ઉપજવો વિણશવો તે સાદિ સાત છે સ્વભાવતે ગુણ ચાર અનાદિ અનત છે વર્ણાદિ પર્યાય ચાર ઘટલે વર્ણ ગવ સ્પર્શ તે સાદિ સાત છે એ દ્રવ્યાદિ ચારમા ચૌભગી કહી

હવે ડ દ્રવ્યના સન્ધ આશ્રી ચૌભગી કહે છે, તિહા પ્રથમ આકાશ દ્રવ્ય છે તેમા અલોકાકાશમા કોડ દ્રવ્ય નથી, અને લોકાકાશમા છ દ્રવ્ય છે, તિહા લોકાકાશ દ્રવ્ય તથા વીજુ વર્માસ્તિકાય દ્રવ્ય અને ત્રીજુ અધર્માસ્તિકાય દ્રવ્ય તે અનાદિ અનત સંઘ્રી છે જે લોકાકાશના એકેક પ્રદેશમા વર્મ દ્રવ્ય તથા અધર્મ દ્રવ્યનો એકેક પ્રદેશ રહ્યો છે તે પળ કિવારે વિઠડસે નહીં માટે અનાદિ અનત સંઘ્રી છે, આકાશ સ્ત્ર લોક સર્વ અને જીવ દ્રવ્યનો અનાદિ અનત સંઘ છે, અને સસારી જીવ કર્મ સહિત તથા લોકના પ્રદેશનો સાદિ સાત સન્ધ છે લોકાંત સિદ્ધક્ષેત્રના સિદ્ધ જીવોનો આકાશ પ્રદેશ સાથે સાદિ અનત સન્ધ છે, લોકાકાશ અને પુદ્ગલ દ્રવ્યનો અનાદિ અનત સન્ધ છે આકાશ પ્રદેશની સાથે પુદ્ગલ પરમાણુનો સાદિ સાત સન્ધ છે એમ આકાશ દ્રવ્યની પરે વર્માસ્તિકાય તથા અધર્માસ્તિકાયનો પળ સર્વ સન્ધ જાણવો જીવ અને પુદ્ગલના સન્ધમા અભવ્ય જીવને પુદ્ગલનો અનાદિ અનત

सत्र ने केमके अभव्य जीवना कर्म किवारें खपणे नहीं माटे, अने भव्य जीवने कर्मतु लागवु अनादि कालतु ने पण ते किवारेक छुटणे माटे भव्य जीवने पुद्गल सत्र अनादि सात छे तथा निश्चय नयेकरी उ द्रव्य स्वभाव परिणाम परिणम्या छे ते परिणामीपणो सदा शाश्वतो छे ते माटे अनादि अनत छे अने जीव तथा पुद्गल वेहु द्रव्य मलि सत्र भाव पामे छे ते पर परिणामीपणो छे ते परपरिणामिपणो अभव्य जीवने अनादि अनत छे अने भव्य जीवने अनादि सात छे अने पुद्गलनो परिणामी पणो ते सत्ताये अनादि अनत छे अने पुद्गलनो मित्तो विठडयो ते सात्ति सात छे एटले जीव द्रव्य पुद्गल साये मित्तयो सक्रिय छे अने पुद्गल कर्मथी रहित याय तेवारें जीव द्रव्य अक्रिय छे अने पुद्गल द्रव्य सदा सक्रिय छे

हवे एक, अनेक-पक्षथी निश्चय जान कहेवाने नय कहे छे, सर्व द्रव्यमा अनेक स्वभाव छे, ते एक वचनथी कह्या जाय नहीं माटे माहोमाहे नय करी सक्षेप पणे कहे छे, तिहा मूल नयना वे भेद छे एक द्रव्यार्थिक वीजो पर्यायार्थिक तेमा उत्पाद व्यय पर्याय गौण पणे अने प्रधानपणे द्रव्यनो गुण सत्ताने ग्रहे ते द्रव्यार्थिक नय कहियें तेना दश भेद छे ? सर्व द्रव्य नित्य छे ते नित्य द्रव्यार्थिक २ अगुरु लघु अने खेत्रनी अपेक्षा न करे मूल गुणने पिंडपणे ग्रहे ते एक द्रव्यार्थिक ३ जानादिक गुणे सर्व जीव एक सरीखा छे माटे सर्वने एक जीव कहे स्वद्रव्यादिकने ग्रहे ते सत् द्रव्यार्थिक जेम सल्लक्षण द्रव्य ४ द्रव्यमा कहेवा योग्य गुण अगीकार करे ते वक्तव्य द्रव्यार्थिक ५ आत्माने अज्ञानी कहेवो ते अशुद्ध द्रव्यार्थिक ६ सर्व द्रव्य गुण पर्याय सहित

छे एम कहेवु ते अन्वय द्रव्यार्थिक ७ सर्व जीव द्रव्यनी मूल सत्ता एक छे ते परमद्रव्यार्थिक नय ८ सर्व जीवना आठ प्रदेश निर्मल छे ते शुद्ध द्रव्यार्थिक नय ९ सर्व जीवना असख्यात प्रदेश एक सरीखा छे ते सत्ता द्रव्यार्थिक नय, १० गुणगुणी द्रव्य ते एक छे ते परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक जेम आत्मा ज्ञानरूप छे इत्यादिक ए द्रव्यार्थिक नयना दश भेद कह्या

हवे पर्यायार्थिक नयना ३ भेद कहे छे जे पर्यायने ग्रहे ते पर्यायार्थिक नय कहिये, तेना छ भेद छे १ द्रव्य पर्याय ते जीवने भव्यपणु तथा सिद्धपणु कहेवु, २ द्रव्य व्यजन पर्याय ते द्रव्यनु प्रदेशमान, ३ गुण पर्याय जे एक गुणयी अनेकता थाय जेम वर्माधर्मादिद्रव्य पोताना चलण सहकारादि गुणयी अनेक जीव तथा पुद्गलने सहाय करे, ४ गुण व्यजन पर्याय जे एक गुणना घणा भेद छे ५ स्वभाव पर्याय ते अगुरुलघु पर्याययी जाणवो ए पाच पर्याय सर्व द्रव्यमा छे अने छट्टो विभाव पर्याय ते जीव पुद्गल ए वे द्रव्यमा छे तिहा जीव जे चार गतिना नवा नवा भव करे ते जीवमा विभाव पर्याय तथा पुद्गलमा खद्यपणु ते विभाव पर्याय जाणवो

हवे पर्यायना बीजा छ भेद कहे छे १ अनादि नित्य पर्याय ते जेम पुद्गल द्रव्यनो मेरु प्रमुख, २ सादि नित्य पर्याय ते जीव द्रव्यनु सिद्धपणु, ३ अनित्य पर्याय ते समय समयमा द्रव्य उपजे विणशे छे, ४ अशुद्ध अनित्य पर्याय ते जन्म मरण थाय छे तेणे करी कहेवु, ५ उपाधि पर्याय ते कर्म सबध, ६ शुद्ध पर्याय जे मूल पर्याय सर्व द्रव्यना एक सरीखा छे ए पर्यायार्थिकनु स्वरूप कहु.

हवे सात नय कहे छे ? नैगम, २ सग्रह, ३ व्यवहार, ४ रज्जु सत्र, ५ शब्द ६ सममित्त्व, ७ एव मृत-ए सात नयना नाम जाणवा, तेमा पहलो नैगम नय कहे छे नयी एक गमो ते नैगम कहिये गुणनो एक अज्ञ उपन्यो होय तो नैगमनय कहिय दृष्टान्त जेम कोइक मनुष्यने पाली लाववानो मन ययो, ते वॉरें जगल्मा लाकडु लेवा चाल्यो, रस्तामा कोइक मनुष्य मल्यो तेणें प्रश्रु तु ज्या जाय छे ते वॉरें तेणें क्यु जे पाली लेवा जाउ छु ते पाली तो हजी घडी नयी पण मनमा चिंतवी ते यइ एम गण्यु तेम नैगम नय, सर्व जीवने सिद्ध समान कहे, केमके सर्व जीवना आठ रुचक प्रदेश निर्मल सिद्ध रूप छे तेयी एक अशें सिद्ध छे ते माटे सिद्ध समान सर्व जीव कद्या ते नैगम नयना त्रण भेद छे ? अतीत नैगम २ अनागत नैगम ३ वर्तमान नैगम, ए नैगम नय कद्यो

हवे सग्रह नय कहे छे सत्ताग्रहे ते सग्रह जे एक नाम लीघायी सर्व गुण पर्याय परिवार सहित आवे ते सग्रह नय जाणवो तेनो दृष्टान्त-जेम कोइक मनुष्ये प्रभाते दातण करवाने अर्थे पोताना घरना बारणे वेशीने चाकर पुरुषने क्यु जे दातण लइ आवो, ते वॉरें ते चाकर मनुष्यपाणीनो लोटो तथा रुमाल अने दातण एम सर्व चीज लइ आव्यो हवे शेठें तो एक दातण नाम लइने मगाव्यु हतु पण सर्वनो सग्रह करी चाकर लइ आव्यो तेमज द्रव्य एवु नाम क्यु तो द्रव्यना गुण पर्याय सर्व आव्या ए सग्रह नयना वे भेद छे एक जे द्रव्य पणो सामान्य पणे बोलता जीव तथा अजीव द्रव्यनो भेद पडचो नही ते मेहेलो सामान्य सग्रह, तथा बीजो

विशेषताने अगीकार करे छे, जे जीव द्रव्य एम क्यु तो अजीव सर्व टल्या ते विशेष सग्रह

हवे व्यवहार नय कहे छे. जे बाह्यस्वरूप देखीने भेदनी वेंहेचण करे अने जे बाहेर देखता गुणनेज माने पण अतरग सत्ता न माने एटले ए नयमा आचार क्रिया मुख्य छे अतरग परिणामनो उपयोग नयी केमके नैगम तथा सग्रह नय ते ज्ञान रूप ध्यानना परिणाम विना अज्ञ तथा -सत्ता ग्राही छे तेम इहा करणी मुख्य छे ते व्यवहारनये (पणे) जीवनी व्यवस्था अनेक प्रकारें छे तिहा नैगम तथा सग्रह नय करी सर्व जीव सत्तायें एक रूप छे पण व्यवहार नययी जीवना बे भेद छे एक सिद्ध, बीजा ससारी ते वली ससारी जीवना बे भेद छे एक अयोगी चौदमा गुणठाणावाला तथा बीजा सयोगी ते सयोगीना बे भेद एक केवली-बीजो छद्मस्थ, छद्मस्थना बे भेद एक क्षीण मोही बारमा गुणठाणे वर्तता मोहनीय कर्म खपाव्यु ते, बीजो उपशान्तमोहते उपशान्त मोहना वली बे भेद एक अकषायी इग्यारमा गुणठाणना जीव, बीजा सकषायीना बे भेद छे, एक सूक्ष्म कषायी दशमा गुणठाणना जीव बीजा बादर कषायी ते बादर कषायीना वली बे भेद छे एक श्रेणि प्रतिपन्न, बीजो श्रेणि रहित ते श्रेणी रहितना बे, भेद एक अप्रमादी बीजो प्रमादी ते प्रमादीना बे भेद एक सर्व विरति-बीजो देश विरति, देश विरतिना बे भेद एक विरति परिणामि बीजा अविरति परिणामि, अविरतिना बे भेद एक अविरति समकीति-बीजा अविरति मिथ्यात्वी, ते मिथ्यात्वीना बे भेद एक भन्य-बीजा अभव्य, ते भव्यना बे भेद एक ग्रथिभेदी बीजा ग्रथी अभेदी (अभेद ग्रन्थि) एवी रीते जे जीव जेवो देखाय तेने

तेवो माने ए व्यवहार नय ठे एमज पुद्गलना भेद करवा ते कहे छे पुद्गल द्रव्यना वे भेद छे एक परमाणु, बीजो खव, खंवना वे भेद एक जीवने लगा ते जीव सहित बीजा जीव रहित ते घटो प्रमुख अजीवनो खव, हवे जीव सहित खवना वे भेद छे एक सूक्ष्म खव बीजो वादर खव

इहा वर्गणानो विचार लखीये छ्ये, तिहा पुद्गलनी वर्गणा आठछे १ औदारिक वर्गणा २ वैक्रिय वर्गणा ३ आहारक वर्गणा ४ तैजस वर्गणा ५ भाषा वर्गणा ६ श्वासोच्छ्वास वर्गणा ७ मनो वर्गणा ८ कार्मण वर्गणा—ए आठ वर्गणाना नाम कद्या वे परमाणु भेला थाय त्यारे द्वयणुकरखव कहेवाय ऋण परमाणु भेला थाय तेवारे त्रयणुकरखव थाय एम सख्याता परमाणु मिले सख्याता-णुकरखव थाय, तेमज असख्याते असख्याताणुकरखव थाय, तथा अनता परमाणु मिले अनताणुकरखव थाय ए खव ते सर्व जीवने अग्रहण योग्य छे, अने जेवॉरें अमव्ययी अनतगुण अधिक परमाणु भेला थाय तेवॉरें औदारिक शरीरने लेवा योग्य वर्गणा थाय

एमज औदारिकथी अनतगुणा अधिक वर्गणामा दल भेला थाय तेवॉरें वैक्रिय वर्गणा थाय, वली वैक्रिय थकी अनतगुणा परमाणु मिले तेवॉरें आहारक वर्गणा थाय एम सर्व वर्गणाना एकेकथी अनतगुणा अधिक परमाणु मिले तेवॉरें ते वर्गणा थाय एटले पहेलीथी बीजी वर्गणा, बीजीथी त्रीजी एम सातमी मनो वर्गणार्थी आठमी कार्मण वर्गणामा अनतगुण परमाणु अधिक छे इहां १ औदारिक, २ वैक्रिय, ३ आहारक, ४ तैजस, ए चार वर्गणा वादर छे तेमा पाचवर्ण—वे गन्व—पाच रस, आठ स्पर्श ए बीस गुण छे, तथा १ भाषा २ श्वासोच्छ्वास ३ मन ४ कार्मण ए

ચાર વર્ગના સૂક્ષ્મ છે એમા પાચવર્ણ-બે ગન્ધ, પાચરસ-ચાર સ્પર્શ-  
 એ સોલ ગુણ છે, અને એક પરમાણુમા એક વર્ણ-એક ગવ-  
 એક રસ-બે સ્પર્શ એ પાચ ગુણ છે એમ પુદ્ગલ સ્વરૂપના અનેક  
 ભેદ છે

એ વ્યવહાર નયના છ ભેદ છે ? શુદ્ધ વ્યવહાર તે આ-  
 ગલા ગુણઠાણાનુ ઓહવુ અને ઉપરના ગુણઠાણાનુ ગ્રહણ કરવુ  
 અથવા જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર ગુણ તે નિશ્ચયનય એકરૂપ છે પણ  
 તે શિષ્યને સમજાવવાને જૂદા જૂદા ભેદ કહેવા તે શુદ્ધ વ્યવ-  
 હાર છે ૨ જીવમા અજ્ઞાન રાગ દ્વેષ લાગ્યા છે તે અશુદ્ધપણ  
 છે માટે અશુદ્ધ વ્યવહાર ૩ જે પુણ્યની ક્રિયા કરવી તે શુભ  
 વ્યવહાર ૪ જેથકી જીવ પાપરૂપ અશુભ કર્મ કરે તે ૫ અશુભ  
 વ્યવહાર ધન-ધર-કુટુંબ પ્રત્યક્ષ સર્વ આપણાથી જુદા જુદા છે  
 પણ જીવે અજ્ઞાનપણે આપણા કરી જાણ્યા છે તે ઉપચરિત  
 વ્યવહાર ૬ શરીરાદિક પરવસ્તુ યદ્યપિ જીવથી જુદી છે તોપણ  
 પરિણામિકભાવ લોલીપણે એકઠા મિલી રહ્યા છે તેને જીવ  
 આપણા કરી જાણે છે તે અનુપચરિત વ્યવહાર જાણવો એ  
 વ્યવહાર નય કહ્યો

હવે ઋણ સૂત્ર નયનો વિચાર કહે છે જે અતીત કાલ  
 અને અનગત કાલની અપેક્ષા ન કરે પણ વર્તમાન કાલે જે  
 વસ્તુ જેવા ગુણ પરિણામે વર્તે તે વસ્તુને તેવેજ પરિણામે માને  
 માટે એ નય પરિણામગ્રાહી છે જેમ કોઈક જીવ ગૃહસ્થ છે  
 પણ અતરગ સાધુસમાન પરિણામ છે તો તે જીવને સાધુ કહે  
 અને કોઈક જીવ સાધુને વેપે છે પણ મનના પરિણામ વિષ-  
 યાભિલાષ સહિત છે તો તે જીવ અવ્રતીજ છે એમ ઋણ સૂત્ર  
 માનવુ છે તે ઋણ સૂત્રના વે ભેદ છે એક સૂક્ષ્મ ઋણ સૂત્ર તે

एम् कहे जे सदाकाल सर्व वस्तुमा एक वर्तमान समय वनें ठे एट्ठे जे जीव गया कालें अजानी हतो अने अनागत कालें अजानी भावें अजानी थगे एम् वेहु कालनी अपेक्षा न करे पण एक वर्तमान समये जे जेवो तेने तेवो कहे ते सूक्ष्म ऋजुसूत्र कहियें अने महोटा बाह्यपरिणाम ग्रहे ते स्थूल ऋजुसूत्र नय जाणवो एट्ठे रुजु सूत्र नय कट्यो

हवे शब्दनय कहे ठे जे वस्तु गुणवन अथवा निर्गुण ते वस्तुने नाम कही बोलावियें जे भाषा वर्गणाथी शब्द पणें वचन गोचर थाय ते शब्दनय जे कारणे अरूपी द्रव्य वचनयी कहेवा ते शब्दनय कहियें इहा जे शब्दको अर्थ होय ते पणो जे वस्तुमा वस्तुपणे पामियें ते वारे ते वस्तु शब्दनय कहियें जेम घटनी चेष्टाने करतो होय ते घट. ए शब्दनयमा व्याकरणयी नीपना अने बीजा पण सर्व शब्द लींवा ते शब्दनयना चार भेद छे १ नाम २ स्थापना ३ द्रव्य ४ अने भाव चार निक्षेपाना पण एहिज नाम छे

१ पहेलो नाम निक्षेपो ते आकार तथा गुणरहित वस्तुने नाम करी बोलाववो जेम एक लाकडीनो कटको लेइने कोइके तेहने जीव एवु नाम कट्यु ते नाम जीव जाणवु जेम काली दोरीने सापनी बुद्धियें करी वावेहणे तेहने सापनी हिंसा लागे ए नाम सर्प ययु एवीज रीते नाम तप अथवा नाम सिद्ध जेम वड प्रमुखने सिद्धवड एम् कही बोलावे छे ते नाम निक्षेपो कहियें ए सूत्र सारखें छे

२ स्थापना निक्षेपो कहे छे जे कोइक वस्तुमा कोइक वस्तुनो आकार देखीने तेहने ते वस्तु कहे जेम चित्रामण अथवा काष्ठ पाषाणनी मूर्ति तेने घोडा-हाथीनो आकार छे तो ते



घोडा-हायीं कहेवाय ते स्थापना जाणवी ए स्थापना निक्षेपो नाम निक्षेपे सहित होय जेम स्थापना सिद्ध जिनप्रतिमा प्रमुख ते सद्भाव स्थापना पण होय अने असद्भाव स्थापना पण होय अकृत्रिम जिन प्रतिमा ते नदीश्वरद्वीप प्रमुखने विषे अने जेह इहानी जिन प्रतिमा ते कृत्रिम ते सर्व स्थापना जाणवी जेम चित्रामनी स्त्री जिहा माडी होय तिहा साधु रहे नहीं कारणके स्थापना स्त्री छे ते स्त्री तुल्य जाणवी तेमज जिन प्रतिमा जिन समान जाणवी इहा कोइक अज्ञानी जीव कहे छे जे, स्थापनामा ज्ञानादि गुण नयीं तेयीं स्थापनाने मानवी पृजवी नहीं तेने उत्तर कहे छे के स्थापना रूप स्त्रीमा स्त्रीपणाना गुण नयीं तो पण ते विकारनु कारण थाय छे। तेमज जिन-प्रतिमा पण ध्याननु कारण छे अने जे एम पुछे के हिंसा थाय छे अने भगवते तां दयाने धर्म कह्यो छे तेहने एम कहेवु जे परदेशी राजा केसी गुरुने वादवाने अर्थे बीजे दीवसें मोहोटा आडवरथी आव्यो ते वदनामा हिंसा थइ पण लाभ कारण गणता त्रोटो न थयो बीजो मल्लिनायजीये छ मित्र प्रतिबोधवाने पुतलीनां दृष्टान्त कह्यो, ते हिंसा तो घणी थइ। पण ते लाभना कारणमा गणी छे एम भाव शुद्ध होय तिहा हिंसा लागती नयीं, अथवा कोइक एम कहे छे जे अमे आपणे स्थानके बेठा नमुथ्युण कहिसु अमने लाभ थासे ते खरो पण भगवती सूत्रमा भगवानने वदनाने अधिकारें तो तिहा जइ वदना करवानु फल महोड कहु छे तथा निक्षेपाने अधिकारें कहु जे भाव निक्षेपो एकलो थाय नहीं। पण नाम स्थापना तथा द्रव्य ए त्रण मिल्या भाव निक्षेपो थाय माटे स्थापना अवश्य मानवी हवे जे स्थापना न माने तेने कहियें जे

चित्रामनी मूर्ति ते हिंसाना परिणामयीं फाडे तेहने हिंसा लागे  
छे तेमज जिनवरना व्याने जिनप्रतिमा पृजता लाभ याय छे  
एम युक्ति करता तथा आगमनी साखे पण जिन प्रतिमाने  
जिनसमान माने ते आराप्रक अने जे जिन प्रतिमाने न माने  
तेणे स्थापना निक्षेपो उयाप्यो अने स्थापना उयापी तो द्रव्य  
तथा भाव निक्षेपो स्थापना विना याय नहीं माटे द्रव्य तथा  
भाव पण उयाप्यो एम ऋण निक्षेपा उयाप्या ते जॉर सिद्धान्त  
उयाप्याज माटे जे जिनप्रतिमाने नहीं माने ते विराधक जा-  
णवो ते स्थापना इतर अने यात्रतूकधिक ए वे भेद छे

३ द्रव्य निक्षेपो कहे छे, जेनो नाम पण होय तथा आ-  
कार थापना गुण पण होय अने लक्षण होय पण आत्मोप-  
योग न मिळे ते द्रव्य निक्षेपो जाणवो एटले अजानी जीव  
ते जीव स्वरूपना उपयोग विना द्रव्य जीव छे “अणुवओगो-  
द्व” इति अन्वोगद्वार वचनात् वली कथु छे जे सिद्धान्त  
वाचता पूउता पद अक्षर मात्रा शुद्ध अर्थ करे छे अने गुरु-  
मुखे सदहे छे ते पण शुद्ध निश्चये पोतानी सत्ता ओलख्या विना  
सर्व द्रव्य निक्षेपामा छे जे भाव विना द्रव्यपणो छे ते पुण्य-  
बबनु कारण छे पण मोक्षनु कारण नहीं एटले जे करणी रूप  
कष्ट तपस्या करे छे अने जीव अजीव पदार्थनी सत्ता ओ-  
लखी नहीं तेने भगवती सूत्रमा अवती तथा अपञ्चख्वाणी  
कह्या छे, तथा जे एकली बाह्य करणी करे छे अने पोते साधु  
कहेवाय छे ते मृपावादी छे एम उत्तराध्ययन सूत्रमा कथु छे  
“नमुणी रत्रवासेण” ए वचने “नाणेण य मुणी होइ” ए वचनथी  
जे जानवान् ते मुनि छे अने जे अजानी ते मिथ्यात्वी छे  
तथा कोइक गणिताउयोगना नरक देवताना बोल अथवा यति

श्रावकनो आचार जाणीने कहे जे अमे ज्ञानी छैयें ते पण ज्ञानी नथी पण जे द्रव्य गुण पर्याय जाणे तेने ज्ञानी कहिये श्री उत्तराध्ययने मोक्ष मार्गें कह्यो छे गाथा “ एय पच विहणाणाणा दव्वाणय गुणाणय, पज्जवाणय सव्वेसिं, नाण नाणी हि दसिय ॥ १ ॥ माटे वस्तु सत्ता जाण्या विना ज्ञानी समजवु नही अने नवतत्त्व ओलखे ते समकीति अने एहवा ज्ञान दर्शन विना जे कहे के अमे चारित्रिआ छैयें ते पण मृषावादी छे कारण के श्री उत्तराध्ययन सूत्र मव्ये कहु छे जे “ नाण दसण नाण नाणेण विना न हुति चरण गुणा ” ए वचन छे ते माटे आज केटलाक ज्ञानहीन क्रियानो आडवर देखाडे छे ते ठग छे तेहनो सग करवो नही ए बाह्य करणी अभव्य जीवने पण आवे माटे ए बाह्य करणी ऊपर राचवु नही अने आत्मानु स्वरूप ओलख्या विना सामायक पडिकमणा पच्चख्खाण करवा ते सर्व द्रव्यनिक्षेपामा पुण्याश्रव छे पण सवर नथी श्रीभगवती सूत्र मध्ये कहु छे के “ आयाखलु सामाइय ” ए आलावाथी जाणजो तथा जीव स्वरूप जाण्या विना तप सयम पुण्य प्रकृति ते देवताना भवनु कारण छे “ पुव्व तवेण पुव्व सयमेण देवलोए उव्वज्जति नो चेवण आयत्ता भाववत्तव्वयाए ” ए आलावो भगवतीमा कह्यो छे तथा जे क्रियालोपी आचार हीन अने ज्ञानहीन छे मात्र गच्छनी लजें सिद्धान्त भणे वाचे छे व्रत पच्चख्खाण करे छे ते पण द्रव्य निक्षेपो जाणवो एम श्री अनुयोगद्वारमा कहु छे सेकिंतलोगुत्तरिअदवावस्सय ?

जे इमे समण गुणमुक्कजोगी छक्काय निरणकपा ॥ हयाइव उद्दामा ॥ गयाइव निरकुसा ॥ घट्टामट्टातुप्पोठा ॥ पडुरपडयाउरणा जिणाणमणाणाए सच्छद विहरिउण उभओकाल आवस्सयस्स उवट्ठति ॥ सेत लोगुत्तरिय दव्वावस्सय ॥

अर्थ—जेने छ कायनी दया नथी, घोटानी पेरें उन्मत्त छे, हायी-  
नी पेठे निरकुञ्ज छे, पोताना शरीरने दोषता मसलता उजळे कपडे  
शिणगा करी गच्छना ममत्वभावे माचना स्वच्छाचारी वीतरा-  
गनी आज्ञा भाजता जे तप क्रिया करे छे ते पण द्रव्य निक्षे-  
पामा छे अथवा ज्योतिष वेद्यक करे छे अने पोताने आचार्य  
उपाध्याय कहेवरावीने लोक पासे महिमा करे (कराये छे) छे ते परी-  
वध खोटा रूपेया जेना छे घणा भव भमसे माटे अवदनीक छे  
ए साख उत्तराव्ययनमन्थे अनार्या मुनिना अव्ययनथकी  
जाणवी अने सूत्रना अर्थ गुरुमुखे शिल्या विना तथा नय  
प्रमाण जाण्या विना निश्चय आत्मानु स्वरूप ओलरया विना  
निर्युक्ति विना उपदेश आपे छे ते पोते तो ससारमा बुडया  
छे पण जे तेमनी पासे वेमे छे तेमने पण ससारमा बुटाये  
छे एम प्रश्न व्याकरण सूत्र तथा अनुयोगद्वार सूत्रमा कहु  
छे “ अज्जत्थ चेत सोल सम ” इत्यादि अने भगवती सूत्रमा  
पण कहु छे “ सुतत्थो खलु पढमो, वीओ निज्जुत्ति मिसओ  
भणिओ, इत्तो तईयणुओगो, नाणुत्ताओ जिणवरोहिं ” अने केट-  
लाक एम कहे छे जे अमे सूत्र उपर\* अर्थ करिये छैयें तो  
निर्युक्ति तथा टीका प्रमुखतु शु काम छे ते पण मृषावाद

\* श्री भगवती सूत्रमा “ सुतत्थोखलु पढमो, वीओनिज्जुत्ति  
मिसओ भणिओ ॥ इत्तो तईयणुओगो, नाणुत्ताओजिणवरोहिं ” एवी रीते  
आगमसारनी जूदी जूदी ऋण पतोमा ट्ठसु हतु माटे म पण तेमज  
ट्ठसु छ पण वीजा ठेफाणे ए भगवतीनी साख दीधी उ तिहा तो  
“ सुतत्थो खलुपढमो, वीओनिज्जुत्ति मिसओ भणिओ ॥ तइओय निर-  
विसेसो, एस विहि होइ अणुओगो ” एवो पाठ छे ते खरो जणाय छे  
पठे बहुश्रुत कहे ते खरु

तथा कोइकनु तप एहवु नाम ते नाम तप तथा पुस्तक-  
मा तपनी विधीनु लेखन ते यापना तप अने पुण्यरूप गास-  
खमणादिक करवो ते द्रव्य तप जे परवस्तु ऊपर त्यागनी  
परिणाम ते भाव तप एम सवरादिक सर्गमा चार चार निक्षेपा  
जाणवा तथा श्री अनुयोगद्वार मध्ये कबु छे-यत " जत्थयज  
जाणिज्जा, निख्खेव निख्खेवे निख्खेसेस ॥ जत्थवी य न जाणिज्जा,  
चउक्कगानिख्खेवे तत्थ ॥ १ । ए चार निक्षेपा कह्या एट्ठे  
शब्दनय कह्यो

हवे उट्ठो समभिरूढ नय कहे छे जे वस्तुना केटलाक  
गुण प्रगट्या छे अने केटलाक गुण प्रगट्या नयी पण अ-  
वश्य प्रगट्ठे एहवी वस्तुने वस्तु कहे ते वस्तुना नामातर  
एक करी जाणे जेम जीव चेतन तथा आत्मा एहनो \* एक  
अर्थ कहे ते समभिरूढ नय कहियें ए नय एक अश ओळी  
वस्तुने परेपरी वस्तु कहे जेम तेरमा गुणठाणे केवली होय तेहने  
सिद्ध कहे ए नयना भेद विलकुल नयी ए समभिरूढनय कह्यो

हवे एवभूतनय कहे छे जे वस्तु पोताने गुणे सपूर्ण छे  
अने पोतानी क्रिया करे छे तेने ते वस्तु कही बोलावे जेम  
मोक्षस्थानके जे जीव पहोतो तेने सिद्ध कहे जेम पाणीयी  
भरेलो खाना माथा ऊपर आवतो जल धरण क्रिया करतो, तेने  
घडो कहे ए एवभूतनय कह्यो

हवे सात नयना दृष्टान्त श्री अनुयोगद्वार सूत्रयी लखिय  
छियें जेम कोइक पुरुषे कोइक बीजा पुरुषने पुज्यु जे तमे  
किहा वसोओ तेवारें ते पुरुषे कबु हु लोकमा वसुछु तेवारें

\* एकार्थवाची नामोना नामभेदे भिन्न भिन्न अर्थ करे छे तेने  
समभिरूढनय कये छे

अशुद्ध नैगमवाले पुञ्जु जे लोकना नण भेद छे, १ अत्रोलोक  
२ त्रिगोलोक ३ ऊर्ध्वलोक तेमा तु किहा रहे छे तेवॉरें शुद्ध  
नैगमें कहु जे त्रिगोलोकमा रहुछु वली पुञ्जु जे त्रिगोलोकमा  
असख्याता द्वीप समुद्र छे तेमा तु कया द्वीपमा रहे छे तेवॉरें  
विशुद्ध नैगमें कहु जे जवुर्द्वीपमा रहुछु, ते जवुर्द्वीपमा खेन  
घणा छे, ते तेमा तु कया खेनमा रहे छे, तेवॉरें अतिशुद्ध नैगम  
बोत्थो जे भरतक्षेत्रमा रहुछु, ते भरतक्षेत्रना छ खड छे ते  
माहेला कया खटमा रहे छे तेवॉरें कहु जे मध्यखटमा रहुछु  
एम क्रमे पूछना छेल्ले कहु जे आपणा देशमा रहुछु, तेवॉरें  
फरी पुञ्जु जे देशमा तो नगरगाम घणा छेतो तु किहा रहे छे  
तेवॉरें कहु जे तु अमुक गाममा रहुछु, ते गाममा वली अमुक  
पाटो तथा अमुक घर वतान्यु तिहा सुधी नैगम नय जाणवो

अने सग्रह नय वालो बोल्थो जे मारा पोताना शरीरमा  
वसु छु, तथा व्यवहारनयवालो बोत्थो जे सप्तारे बेटो छु तेट-  
लाज विग्रानामा रहुछु, अने ऋजुसूत्र नयवाले कहु जे मारा  
आत्माना असख्याता प्रदेशमा रहुछु वली शब्दनय कहे जे  
मारा स्वभावमा रहुछु, तेमज समभिरूढनय कहे जे हु मारा  
गुणमा रहुछु, अने एवमूतनयवादी कहे जे जानदर्शन गुणमा  
वसु छु ए दृष्टात कछो तेम सर्व वस्तुमा कहेहु

तथा कोइके प्रदेशमात्र क्षेत्र अगीकार करी पुञ्जु जे ए  
प्रदेश कया द्रव्यनो छे तेवॉरें नैगमनय बोत्थो जे छए द्रव्य-  
नो प्रदेश छे केमके एक आकाश प्रदेशमध्ये उ द्रव्य भेला  
छे तेवॉरें सग्रहनय बोल्थो जे कालद्रव्य तो अप्रदेशी छे ते  
माटे सर्व लोकमा एक समय सरिखो छे पण ते एक आकाश  
द्रव्यना प्रदेशमा जदो नथी माटे काल विना पाच द्रव्यनो

प्रदेश छे तेवारे व्यवहारनय बोल्यो के जे द्रव्य मुख्य देखाय छे तेहनो प्रदेश छे तेवारे ऋजुसूत्रनय बोल्यो के जे द्रव्यनो उपयोग देइ पुछिये ते द्रव्यनो प्रदेश छे जो धर्मास्तिकायनो उपयोग देइ पुछिये तो अधर्मास्तिकायनो प्रदेश छे. जो अधर्मास्तिकायनो उपयोग देइ पुछिये तो अधर्मास्तिकायनो प्रदेश छे तेवारे शब्दनय बोल्यो के जे द्रव्यनो नाम लइ पुछिये ते द्रव्यनो प्रदेश छे हवे समभिरूढनय बोल्यो जे एक आकाश प्रदेश मध्ये धर्मास्तिकायनो एक प्रदेश छे, अधर्मास्तिकायनो एक प्रदेश छे अने जीवना अनता प्रदेश छे पुद्गलना पण अनता प्रदेश छे, तेवारे एवमूतनय बोल्यो के प्रदेशनी जे द्रव्यनी क्रियागुण पर्याय अगीकार करी देखिये ते समय ते प्रदेश ते द्रव्यनो गणिये ए प्रदेशमा सात नय कह्या

हवे जीवमा सात नय कहे छे प्रथम नैगमनयने मते जे गुण पर्यायवत शरीर सहित ते जीव एट्ठे शरीरमा जे बीजा पुद्गल तथा धर्मास्तिकायादिक द्रव्य छे ते सर्व जीवमाज गण्या तेवारे सग्रहनय बोल्यो जे असख्यात प्रदेशी ते जीव एट्ठे एक आकाशना प्रदेश टल्या बीजा सर्व द्रव्य एमा गणाणा तेवारे व्यवहारनय बोल्यो जे विषय लइ काम वात सभारे ते जीव इहा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश तथा बीजा पुद्गल सर्व टल्या पण पाचे इन्द्रिय तथा मन अने लेश्या ए पुद्गल छे ते जीवमा गणाणा, कारणके विषयादिकतो इन्द्रियो छे छे ते जीवयी न्यारा छे पण इहा व्यवहारनयमते जीव भेला लीवा छे तेवारे ऋजुसूत्रनय बोल्यो जे उपयोगवत ते जीव इहा इन्द्रियादिक सर्व टल्या पण अज्ञान तथा ज्ञानना भेद टल्या नहीं. हवे शब्दनय बोल्यो जे नामजीव, स्थापना जीव

द्रव्य जीव भाव जीव इहा जीवमा गुण-निर्गुणनो मेद पडयो नही, तेवारे समभिरूढनय बोल्यो जे जानादिगुणवत ते जीव तेवारे मतिज्ञान श्रुतज्ञान इत्यादिक सावक अवस्थाना गुण ते सर्व जीव स्वरूपमा आन्या हवे एवमूतनयबोल्यो जे अन-तज्ञान, अनतदर्शन, अनत चारित्र, शुद्धसत्तावत ते जीव ए नये जे सिद्ध अवस्थामा गुण हता तेज ग्रह्या ए सात नये जीव द्रव्य कह्यो

हवे सातनये धर्म कहे छे नेगमनय बोल्यो जे सर्व धर्म छे केमके सर्व प्राणी धर्मने चाहे छे ए नय अशरूप धर्मने धर्म एहवु नाम कहे हवे सग्रहनय बोल्यो जे वडेराये आ-दरयो ते धर्म, एणे अनाचार ओडयो पण कुलाचारने धर्म कह्यो, व्यवहारनय बोल्यो जे सुखनु कारण ते धर्म एणे पुण्य कर-णीने धर्म करी मान्यो ऋजुसूत्रनयमते जे उपयोग सहित वैराग्यरूप परिणाम ते धर्म कहिये ए नयमा यथाप्रवृत्तिक-रणना परिणाम प्रमुख सर्व धर्ममा गण्या ते मिथ्यात्वीने पण होय हवे शब्दनय बोल्यो जे धर्मनु मूल समकित छे माटे समकित तेज धर्म तेवारे समभिरूढनय बोल्यो जे जीव अजीव नवतत्त्व तथा उ द्रव्यने ओलखीने जीवसत्ता व्यावे, अजीवनो त्याग करे एहवो ज्ञान दर्शन चारित्रनो शुद्ध निश्चय परिणाम ते धर्म ए नये सावक सिद्धना परिणाम ते धर्मपणे लीघा एवमूतनय बोल्यो जे शुद्ध ध्यान रूपातीतना परिणाम क्षपक श्रेणि कर्म क्षयना कारण ते धर्म जे जीवनो मूल स्वभाव ते वस्तु धर्म जे मोक्षरूप कार्यने करे ते धर्म ए साते नये धर्म कह्यो

हवे सातनये सिद्धपणो कहे छे. नेगमनयनी मते सर्व



જીવ સિદ્ધ છે કેમકે સર્વ જીવના આઠ રુચક પ્રદેશ સિદ્ધ સમાન નિર્મલ છે માટે સગ્રહનય કહે જે સર્વ જીવની સત્તાસિદ્ધ સમાન છે એને પર્યાયાર્થિક નયેકરી કર્મ સહિત અવસ્થા તે ટાલીને દ્રવ્યાર્થિકનયેકરી અવસ્થા અગીકાર કરી તેવો વ્યવહારનય બોલ્યો જે વિદ્યા લઘ્વિ પ્રમુખ ગુણે કરી સિદ્ધ થયો તેસિદ્ધ એ નયે બાહ્ય તપ પ્રમુખ અગીકાર કર્યા હવે ઋજુસૂત્રનય બોલ્યો કે જેણે પોતાના આત્માની સિદ્ધપણાની સત્તા ઓલખી અને ધ્યાનનો ઉપયોગ પણ તેજ વર્તે છે તે સમયે તે જીવ સિદ્ધ જાણવો એ નયે સમકીર્તિ જીવ સિદ્ધ સમાન છે એમ કહ્યું હવે શબ્દનય બોલ્યો જે શુદ્ધ શુદ્ધ ધ્યાન પરિણામ નામાદિક નિર્ક્ષેપે તે સિદ્ધ તેવો સમમિરૂઢનય બોલ્યો જે કેવલજ્ઞાન કેવલદર્શન, યથારહ્યાતચારિત્ર એ ગુણે સહિત તે સિદ્ધ જાણવા એ નયે તેરમા ચડદમા ગુણઠાણાના કેવલીને સિદ્ધ કહ્યા અને એવમૂતનય કહે છે કે જેના સકલ કર્મ ક્ષય થયા લોકને અતે વિરાજમાન અષ્ટગુણ સપત્ર તે સિદ્ધ જાણવા એ રીતે સિદ્ધ પદે સાત નય કહ્યા એમ સાત નય મિલ્યા સમકીર્તિ છે અને જે એક નયને ગ્રહણ કરે તે મિથ્યાત્વી છે એ સાતે નય તેસિદ્ધ તે વચન પ્રમાણ છે અને એ સાત નયમા કોઈ પણ નયને ઉથાપે તેનું વચન અપ્રમાણ છે

હવે પ્રમાણનો વિચાર કહે છે પ્રમાણના બે મેદ છે એક પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ વીજુ પરોક્ષ પ્રમાણ તેમા જે જીવ પોતાના ઉપયોગથી દ્રવ્યને જાણે તે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ કહિયે જેમ કેવલી છ દ્રવ્ય પ્રત્યક્ષ પ્રમાણે જાણે તથા દેખે તે માટે કેવલજ્ઞાન તે સર્વથી પ્રત્યક્ષ જ્ઞાન છે, અને મન પર્યવજ્ઞાન તે મનોવર્ગના પ્રત્યક્ષ જાણે તથા અવધિજ્ઞાન તે પુદ્ગલ દ્રવ્યને પ્રત્યક્ષ જાણે

माटे ए वे जान देश प्रत्यक्ष छे वीजु छद्मस्थजान ते सर्व परोक्ष प्रमाण छे

हवे परोक्ष प्रमाण कहे छे मतिजाननो अने श्रुतजाननो उपयोग परोक्ष प्रमाण छे केमके जे शास्त्रना बल्यी जाणे ते परोक्ष प्रमाण कहिये ते परोक्ष प्रमाणना त्रण भेद छे ? अनुमान प्रमाण, २ आगम प्रमाण, ३ उपमान प्रमाण तेमा अनुमान एट्ठे कोडक सहिनाण देखीने जे जान याय जेम घुमाडो देखीने अग्निनु अनुमान याय अने आगम एट्ठे शास्त्रनी साखयी जे बात जाणिये जेम देवलोक तथा नरक निगोट विगेरेनो विचार आगमयी जाणिये छे ते आगमप्रमाण अने कोडक वस्तुनो दृशान्त आपीने वस्तुने ओलखाववी ते उपमान प्रमाण जाणवो ए प्रमाण कह्या हवे सत् असत् पक्षयी सप्तभगी कहे छे

१ स्यात् केहता अनेकातपणे सर्व अपेक्षा छेइ जीव-द्रव्यमा आपणो द्रव्य आपणो खेत्र आपणो काल आपणो भाव एम आपणे गुण पर्याये जीव छे तेम सर्व द्रव्य आपणे गुणपर्याये छे ते स्यात् अस्ति नामा पहिलो भागो थयो

२ जे जीवमा वीजा पाच द्रव्यना ? द्रव्य २ खेत्र ३ काल ४ भाव ते परद्रव्यना गुणपर्याय जीवमा नयी एट्ठे परद्रव्यना गुणनो नास्तिपणो सर्व द्रव्यमा छे ए स्यात् नास्ति वीजो भाग थयो

३ द्रव्य स्वगुणे अस्ति अने पर गुणे नास्ति ए वे भागा एक समये द्रव्यमा छे जेम जे समये शुद्ध स्वगुणनी अस्ति छे तेज समये परगुणनी नास्ति पण छे, माटे अस्ति नास्ति ए वेहु भागा भेला छे ते स्यात् अस्ति नास्ति वीजो भागो थयो

४ अस्ति अने नास्ति ए वेद भागा एक समयमा छे तो वचने करी अस्ति एटलो बोलता असख्याता समय लागे तेयी नास्ति भागो तेज वखते कहेवाणो नही अने जो नास्ति भागो कह्यो तो अस्ति पणो नाव्यो माटे एकज अस्ति कहेता यका नास्तिपणो तेज समये द्रव्यमा छे ते नही कहेवाणो माटे मृषावाद लागे तेमज नास्ति कहेता अस्तिनो मृषावाद लागे माटे वचने अगोचर छे एक समयमा वेहु वचन बोलया जाय नही केमके एक अक्षर बोलता असख्याता समय लागे छे माटे वचनयी अगोचर छे ते स्यात् अवक्तव्य ए चोथो भागो कह्यो

५ ते अवक्तव्यपणो वस्तुमा अस्तिवर्मनो पण छे माटे स्यात्अस्ति अवक्तव्य पाचमो भागो कह्यो

६ तेमज नास्ति वर्मनो पण अवक्तव्यपणो वस्तु मव्ये छे माटे स्यात् नास्ति अवक्तव्य छटो भागो जाणवो

७ ते अस्तिपणो तथा नास्तिपणो वेहु वर्म एकसमये वस्तु मध्ये छे पण वचनयी अवक्तव्य छे माटे स्यात् अस्ति-नास्तियुगपत्अवक्तव्य ए सातमो भागो कह्यो :

हवे ए सात भागा नित्य तथा अनित्यपणामा लगाडे छे १ स्यात् नित्य २ स्यात् अनित्य ३ स्यात्नित्यानित्य ४ स्यात्-अवक्तव्य ५ स्यात्नित्यअवक्तव्य ६ स्यात्अनित्य अवक्तव्य ७ स्यात् नित्यानित्य युगपत् अवक्तव्य, एमज एक अनेकना सात भागा कहेवा तथा गुणपर्यायमा पण कहेवा केमके सिद्ध मध्ये नय नयी तोपण सप्तभगी तो सिद्धमा छे

हवे सत्ता ओलखाववाने त्रिभगीयो कहे छे १ मिथ्यात्व दशा ते बाधकदशा २ समकित गुणठाणायी माडीने अयोगी केतली गुणठाणा सुधी साधक दशा जाणवी ३ सर्व कर्मयी

रहित ते सिद्ध दशा १ जाननो जाणपणो ते जीवनों गुण.  
 २ तेनो जाता ते जीव ३ जेय ते सर्व द्रव्य १ ध्यान ते जीवना  
 स्वरूपनो २ ते ध्याननो घ्याता जीव ३ ध्येय आत्मानो स्वरूप.  
 १ कर्ता ते जीव २ कर्म ते एक मोक्ष बीजो बन्ध ३ क्रिया  
 ते एक सवर बीजो आस्रव १ कर्म ते चेतनाने कर्म बवना  
 परिणाम २ कर्मनु फल ते चेतनाने जे कर्म उदयना परिणाम  
 ३ जान चेतना ते जीवनों स्वगुण ते आत्माना त्रण भेद छे  
 १ अजानी जाँव शरीरादिक परवस्तुने आत्मबुद्धिये करी माने  
 छे पहेलो बहिरात्मा २ जे देह सहित जीव छे ते पण निश्चये  
 सत्तागुण सिद्ध समान छे एटले पोताना जीवने सिद्ध समान  
 करी ध्यावे ते बीजो अतरात्मा जाणवो ३ कर्म खपावी  
 केवलजान पाम्या ते अरिहत तथा सिद्ध सर्व परमात्मा जाणवा.  
 ए विभगीनो विचार कह्यो एटले आठ पक्षनो विचार कह्यो

हवे एक द्रव्य मव्ये उ सामान्य गुण छे ते कहे छे  
 पहेलो अस्तित्व ते जे उ द्रव्य आपणा गुण पर्याय प्रदेशे  
 करी अस्ति छे तेमा धर्म, अधर्म, आकाश अने जीव ए चार  
 द्रव्यनो असल्याता प्रदेश मिल्या खप थाय छे अने पुद्गलमा  
 खध थवानी शक्ति छे माटे ए पाच द्रव्य अस्तिकाय छे अने  
 छट्टो काल द्रव्यनो समय कोइ कोइथी मिलतो नथी केमके  
 एक समय विणस्या पछे बीजो समय आवे छे माटे काल  
 अस्तिकाय नथी द्रव्यमा ए अस्तित्व पणो कह्यो

२ वस्तुत्व कहेता वस्तुपणो कहे छे ते द्रव्य उए एकठा  
 एक क्षेत्र मव्ये रह्या छे एक आकाश प्रदेशमा धर्मास्तिका-  
 नो एक प्रदेश रह्यो छे तथा अधर्मास्तिकायनो पण एक प्रदेश  
 रह्यो छे अने जीव अनताना अनता प्रदेश रह्या छे -पुद्गल

પરમાણુ અનતા રહ્યા છે તે સર્વ પોતાની સત્તા લીધા થકા રહ્યા છે પણ કોઈ દ્રવ્ય સાથે મિલી જાતો નથી તે વસ્તુપણો

૩ દ્રવ્યત્વ કેહતા- દ્રવ્યપણો તે સર્વ દ્રવ્ય પોતપોતાની ક્રિયા કરે એટલે ધર્માસ્તિકાયમા ચલનગુણ તે સર્વ પ્રદેશ મવ્યે છે. સદા કાલેં પુદ્ગલ તથા જીવને ચલાવવારૂપક્રિયા કરે છે, ઇહા કોઈ પુછે જે લોકાન્ત સિદ્ધક્ષેત્રમા ધર્માસ્તિકાય છે તે સિદ્ધના જીવને ચલાવવાપણો કરતો નથી તેનુ કેમ ? તેને ઉત્તર કહે છે જે સિદ્ધના જીવ અક્રિય છે માટે ચાલતા નથી પણ તે ક્ષેત્રમા જે સૂક્ષ્મ નિગોદના જીવ તથા પુદ્ગલ છે તેહને ધર્માસ્તિકાય ચલાવે છે માટે પોતાની ક્રિયા કરે છે, તેમજ અધર્માસ્તિકાય જીવ તથા પુદ્ગલને સ્થિર રાખવાની ક્રિયા કરે છે, તથા આકાશ દ્રવ્ય તે સર્વ દ્રવ્યને અવગાહનારૂપકાર્ય કરે છે. ઇહા કોઈ પૂછે જે અલોકાકાશમાતો વીજી કોઈ દ્રવ્ય નથી તો અલોકાકાશ કયા દ્રવ્યને અવગાહદાન આપે છે તેને ઉત્તર કહે છે જે અલોકાકાશમા અવગાહ કરવાની શક્તિ તો લોકાકાશ જેવીજ છે પરંતુ તિહા અવગાહનો દાન લેનાર દ્રવ્ય કોઈ નથી માટે અવગાહદાન કરતો નથી અને પુદ્ગલ દ્રવ્ય મિલવા વિચરવારૂપ ક્રિયા કરે છે તથા કાલ-દ્રવ્ય વર્તના રૂપ ક્રિયા કરે છે અને જીવ દ્રવ્ય જ્ઞાન લક્ષણ ઉપયોગરૂપ ક્રિયા કરે છે એમ સર્વ દ્રવ્ય પોતાને પરિણામી સ્વસત્તાની ક્રિયા કરે છે એ દ્રવ્યત્વપણો કહ્યો

૪ પ્રમેયત્વ કેહતા પ્રમેયપણો જે છ દ્રવ્યમા પ્રમેય પણો છે, તેનો પ્રમાણ કેવલી પોતાના જ્ઞાનથી કરે છે, જે ધર્માસ્તિકાય તથા અધર્માસ્તિકાય અને આકાશાસ્તિકાય એકેક દ્રવ્ય છે અને જીવદ્રવ્ય અનતા છે તેહની ગણતિ કહે છે સજી

मनुष्य सख्याता छे, असजी मनुष्य असरयाता छे, नारकी असख्याता छे, देवना असख्याता छे, तिर्यच पचेन्द्रिय असख्याता छे, वेइन्द्री असख्याता छे, तेइन्द्री असख्याता, चौरेंद्रीय असख्याता छे ते यकी पृथ्वीकाय असख्याता, अपकाय असख्याता, तेउकाय असख्याता, वायुकाय असख्याता, प्रत्येकत्रनरपति जीव असख्याता, ते यकी सिद्धना जीव अनता ते यकी वादर निगोदना जीव अनतगुणा एटले वादर निगोद ते कदमूल आडु सरण प्रमुख एहने सुइने अग्रभागें अनता जीव छे ते सिद्धना जीवथी अनत गुणा छे अने सूक्ष्मनिगोद सर्वथी अनत गुणा छे सूक्ष्मनिगोदनो विचार कहे छे जेटला लोकाकाशना प्रदेश छे तेटला गोला छे ते एकेक गोलामा असरयाता निगोद छे निगोद शब्दनो अर्थ ए छे जे अनता जीवनो पिंड मूत एक शरीर तेहने निगोद कहियें ते एकेकी निगोदमव्ये अनता जीव छे ते अतीत कालना सर्व समय तथा अनागतकालना सर्व समय अने वर्तमान कालनो एक समय तेने भेला करी अनत गुणा करीये एटला एक निगोदमा जीव छे एटले अनता जीव छे ए ससारी जीव एकेकाना असख्याता प्रदेशे छे अने एकेका प्रदेशे अनति कर्म वर्गणा लागी छे ते एकेक वर्गणा मव्ये अनता पुद्गल परमाणु छे एम अनता परमाणु जीव साथे लाग्या छे ते यकी अनत गुणा पुद्गल परमाणु जीवथी रहित छुटा छे

गोलाय असखिज्जा,

असख निगोयओ हवइ गोलो ॥

इक्किक्किमि निगोए,

अणतजीवा मुणेयव्वा ॥ १ ॥

अर्थ-लोक माहे असख्याता गोला छे, एकेका गोला मन्वे असख्याति निगोद छे एकेक निगोदमा अनता जीव छे ॥

सत्तरस समहियाकिर ।

इगाणुपाणुमि हुति खुडुभवा ॥

सगतीससयतिहुत्तर ।

पाणू पुण इग मुहुत्तमि ॥ ? ॥

अर्थ-निगोदिया जीव ते मनुष्यना एक उसासमा सत्तर १७ भव जाजेरा करे छे अने सडत्रीससो तिहुतेर ३७७३ श्वासोच्छ्वासे एक मुहूर्त्तमा याय

पणसट्टि सहस्र पणसय ।

छत्तिसा इग मुहुत्त खुडुभवा ॥

आवलियाण दो सय ।

छपन्ना एग खुडुभवे ॥ ? ॥

अर्थ-निगोदना जीव एक मुहूर्त्तमा ६५५३६ भव करे अने निगोदना एक भव २५६ आवलीनो छे शुल्लक भवनो ए प्रमाण छे

अथि अणताजीवा,

जेहिं न पत्तो तसइपरिणामो ॥

उववज्जतिचयति य,

पुणोवि तत्थेव तत्थेव ॥ ? ॥

अर्थ-निगोदमा अनता जीव एहवा छे जे जीव त्रसपणो पहेला किवारें पाम्या नथी अनतो काल पूर्वे गयो अने अनतो काल जाशे पण ते जीव वारवार तिहाज उपजे छे अने तिहाज चवे छे एम एक निगोदमा अनता जीव छे ते निगोदना वे भेद छे एक व्यवहार राशी निगोद अने वीजो अव्य-

वहारराशी निगोद तेमा जे वादर एकेन्द्रियपणो भोंव त्रसपणो पामीने पाठा निगोदमा जाइ पडया छे ते निगोदिया जीवने व्यवहार राशिया कहियें, अने जे जीव कोइपण काले निगोदमायी निकल्या नयी ते जीव अव्यवहारराशीया कहियें अने इहा मनुष्यपणायी जेटला जीव कर्म खपावीने एक समयमा मोक्ष जाय छे तेटला जीव तेज समये अव्यवहारराशी सूक्ष्म निगोदमायी निकलीने उचा आवे छे जो दश जीव मोक्ष जाय तो दश जीव निकले कोइक वेलाए भव्य जीव ओठा निकले तो ते ठेकाणे एक वे अभव्य निकले पण व्यवहारराशीमा जीव कोइ वधे घटे नही एवा निगोदना असख्याता लोकमाहेला गोला ते छदिशीना आव्या पुद्गलने आहारादिपणे ले छे ते सकल गोला कहेवाय अने लोक अतना प्रदेशे जे निगोदना गोला रह्या छे तेने त्रण दिशीना आहारनी फरशना छे माटे विकल गोला कहियें ए सूक्ष्म निगोदमा पाच यावरना सूक्ष्म जीव ते सर्व लोकमा काजलनी कुपलीनी पेरे भरया थका व्यापी रह्या छे अने साधारणपणो ते मात्र एक वनस्पतिमाज छे पण चार थावरमा नयी ए सूक्ष्म निगोदमा अनतु दु ख छे तेनु उदाहरण कहे छे सातमी नरकनु आयुष्य तेत्रीस सागरोपमनु छे तेत्रीस सागरोपमना जेटला समय याय तेटला वखत सातमी नरकमा उत्कृष्टो तेत्रीस सागरोपमने आयुषे कोइक जीव उपजे तेटला भवमा जेटलु छेदन भेदननु दु ख थाय ते सर्व एकठु करियें तेयी अनतगणु दु ख निगोदना जीव, एक समयमा भोगवे छे दृष्टान्त जेम कोइक मनुष्यने साडा त्रण क्रोड लोढानी सुइने अग्नियी तपावीने कोइक देवता समकाले चापे तेने जे वेदना थाय तेयी अनत गुणी वेदना नि-



ગોદ મધ્યે છે અને ભવ્ય જીવને નિગોદહુ કારણ તે અજાન દશા છે માટે તેહનો ત્યાગ કરો એ નિગોદનો વિચાર કહ્યો એ સર્વ પ્રમેયનો પ્રમાતા આત્મા પોતાના જ્ઞાન ગુણે કરી પ્રમેયનો પ્રમાણ કરે એ પ્રમેય પણો કહ્યો

૧ સત્ત્વપણો તે છ દ્રવ્ય એક સમયમા ઉપજે વિણશે છે અને સ્થિરપણે છે ઉત્પાદ વ્યય ધ્રુવપણો તેહિજ સત્ત્વપણો ઉત્પાદ વ્યયધ્રુવયુક્ત સત્ત્વ ઇતિ “તત્ત્વાર્થ વચનાત્” તે વિસ્તારથી કહી દેખાડે છે જે ધર્માસ્તિકાયના અસહ્યાતા પ્રદેશ છે તિહા એક પ્રદેશમા અગુરુલઘુ અસહ્યાતો છે અને વીજા પ્રદેશમા અનતો અગુરુલઘુ છે, ત્રીજા પ્રદેશમા સહ્યાતો અગુરુલઘુ છે એમ અસહ્યાતા પ્રદેશમા અગુરુલઘુપર્યાય ઘટતો વધતો રહે છે તે અગુરુલઘુ પર્યાય ચલ છે તે જે પ્રદેશમા અસહ્યાતો છે તે પ્રદેશમા અનતો થાય છે અને અનતાને ઠેકાણે અસહ્યાતો થાય છે એમ લોકપ્રમાણ અસહ્યાત પ્રદેશમા શરીરનો સમકાલે અગુરુલઘુ પર્યાય ફિરે છે તે જે પ્રદેશમા અસહ્યાતો ફિટીને અનતો થાય છે તે પ્રદેશમા અસહ્યાતપણાનો વિનાશ છે અને, અનત પણાનો ઉપજવો છે અને અગુરુલઘુપણે ગુણ ધ્રુવ છે એમ ઉપજવો વિણસવો અને ધ્રુવ એ ત્રણે પરિણામ છે ઈધર્માસ્તિકાયમા પણ એ ત્રણે પરિણામ અસહ્યાત, પ્રદેશે સદા સમય સમયમા પરિણમી રહ્યા છે, તેમા પણ ઉપજે વિણશે અને થિર રહે છે એમ આકાશના અનતા પ્રદેશમા પણ એક સમયે ત્રણ પરિણામ પરિણમે છે, અને જીવના અસહ્યાતા પ્રદેશ છે તે મધ્યે પણ ઉપજે વિણશે થિર રહે છે તથા પુદ્ગલ પરમાણુમા પણ સમય થાય છે અને કાલનો વર્તમાન સમય ફિટીને અતીત, કાલ, પ્રાય છે, તે સમયમા વર્તમાનપણાનો વિનાશ

छे अने अतीतपणानो उपजवो छे काल पणे घुव छे ए स्थूल यकी उत्पादक व्यय घुवपणो कह्यो अने वस्तुगते मूलपणे जेयने पलटवे जाननो पण ते भासनपणे परिणमवो थाय ते पूर पर्यायना भासननो व्यय अने अमिनव जेयना पर्याय भासननो उत्पाद तथा जानपणानो घुव ए रीते सर्व गुणना वर्मनी प्रवृत्तिरूप पर्यायनो उत्पाद व्यय श्रीसिद्धभगवन्तमा पण थइ रह्यो छे एमज वर्मास्तिकायना प्रदेशें जे क्षेत्र गत असख्यात पुद्गल तथा जीवने पहेले समय चलण सहायीपणो परिणमतो हतो अने वीजे समय अनन्त परमाणु तथा अनन्ता जीव प्रदेशने चलन सहायी थयो तेवोरें असख्याता चलन सहायनो व्यय अने अनता चलन सहायनो उपजवो अने गुणपणे घुव एम धर्मद्रव्य मव्ये उत्पाद व्यय थइ रह्यो छे तेमज अपर्मादिक द्रव्यने विषे पण भाववु तथा वली कार्य कारणपणे उत्पाद व्यय तथा अगुरुलघुना चलननो उत्पाद व्यय पचास्तिकायने विषे कहेवु तथा कालद्रव्य ते उपचार छे तेवु स्वरूप सर्व उपचारयीज कहेवु ए रीते सर्व द्रव्यमा सत्पणो छे जो अगुरुलघुनो भेद न थाय तो पछे प्रदेशनो माहोमाहे भेद केवो थाय ते माटे अगुरुलघुनो भेद सर्वमा छे अने जेनो उत्पाद व्यय रूप सत्पणो एक छे ते द्रव्य एक छे तथा जेनो उत्पाद व्यय सत् पणो जूदो ते द्रव्य पण जूदो छे एउले सत् केहता सत्त्वपणो कह्यो

६ अगुरुलघुपणो कहे छे जे द्रव्यनो अगुरुलघु पर्याय छे ते उ प्रकारनी हानि वृद्धि करे छे तेमा छ प्रकारनी वृद्धि छे १ अनन्त भागवृद्धि, २ असख्यातभागवृद्धि, ३ सख्यातभागवृद्धि, ४ सख्यातगुणवृद्धि, ५ असख्यातगुणवृद्धि, ६ अनत

ગુણવૃદ્ધિ હવે છ પ્રકારની હાનિ કહે છે ? અનતભાગહાનિ, ૨ અસખ્યાતભાગહાનિ, ૩ સખ્યાતભાગહાનિ, ૪ સરખ્યાતગુણહાનિ, ૫ અસરખ્યાતગુણહાનિ, ૬ અનતગુણહાનિ એ રીતે ૭ પ્રકારની વૃદ્ધિ તથા છ પ્રકારની હાનિ તે સર્વ દ્રવ્યમા સદા સમય સમય યદ્ રહી છે વૃદ્ધિ તે ઉપજવો અને હાનિ તે વ્યય કહિયેં એ અગુરુલઘુપણો કહ્યો નહીં ગુરુ તથા નહીં લઘુ તે અગુરુલઘુ સ્વભાવ કહિયેં એ સર્વ દ્રવ્ય મધ્યે છે તે શ્રી ભગવતી સૂત્રે “ સવ્વદ્વા સવ્વગુણ સવ્વપણસા સવ્વપજ્જવા સવ્વઢા અગુરુ લહુઆણ ” અગુરુલઘુ સ્વભાવને આવરણ નથી તથા આત્મા મધ્યે જે અગુરુલઘુગુણ તે આત્માના સર્વ પ્રદેશે ક્ષાયક ભાવ થયે સર્વ ગુણ સામાન્યપણે પરિણમે પણ અધિકા ઓઠા પરિણમે નહીં તે અગુરુલઘુગુણનું પ્રવર્તન જાણવું તે અગુરુલઘુ ગુણને ગોત્રકર્મ રોકે છે એ અગુરુલઘુ સ્વભાવ તે સર્વ દ્રવ્યમા છે

હવે ગુણની ભાવના કહે છે તિહા જેટલા છણ દ્રવ્યમા સરીસ્વા ગુણ છે તે સામાન્ય ગુણ કહિયે, અને જે ગુણ એક દ્રવ્યમા છે અને વીજા દ્રવ્યમા નથી તે વિશેષ ગુણ કહિયેં જે ગુણ કોઈક દ્રવ્યમા છે અને કોઈક દ્રવ્યમા નથી તે સાધારણ, અસાધારણ ગુણ કહિયે એમ એ છ દ્રવ્યમા અનતગુણ, અનન્ત પર્યાય, અનન્ત સ્વભાવ સદા શાશ્વતા છે જેમ શ્રીકેવલી ભગવતે પ્રરુપ્યા તે સર્વ જે રીતે છે તે રીતે સદ્દહના પૂર્વક યથાર્થ ઉપયોગથી શ્રુતજ્ઞાનાદિકથી યથાર્થપણે જાણવા સદ્દહવા તે મોક્ષનું કારણ છે જે જીવ જ્ઞાન પામ્યો તે જીવ વિરતિ કરે છે તે ચારિત્ર કહિયે જ્ઞાનનું ફલ વિરતિપણો છે તે મોક્ષનું તત્કાલ કારણ છે

હવે નિશ્ચય ચારિત્ર અને વ્યવહાર ચારિત્રનો વિચાર કહે

छे तेमा प्रथम व्यवहार चारित्र ते जे प्राणातिपातविरमण प्रमुख पंचमहाव्रतरूप ते सर्व विरति कहिये अने स्थूलप्राणातिपातविरमण व्रतादिक श्रावकना वार व्रत ते देश विरति चारित्र जाणवु ए व्यवहार चारित्र सुखनु कारण छे एवी करणीरूप श्रावकना वार व्रत अने यतिना पाच महाव्रत ते अमन्यने पण आपे तेयी देवतानी गति पामे पण सकाम निर्जराणु कारण न याय इहा कोइ पृष्ठे के मोक्षनु कारण नयी तो एउलु कष्ट शा प्राप्त करिये ? तेने उत्तर जे त्याग बुद्धि निश्चय ज्ञान सहित चारित्र ते मोक्षनु कारण छे माटे निश्चय चारित्र सहित व्यवहार चारित्र पालनु ते निश्चय चारित्र कहे छे शरीर, इन्द्रिय, विषय, कषाय योग ए सर्व परवस्तु जाणी छट्वा तथा आहार ते पुद्गल वस्तु जाणी छट्वा आत्मा अणाहारी छे ते माटे मुजने आहार करवो घटे नही आहार ते पुद्गल छे, आत्मा अपुद्गली छे ते माटे त्याग करवो तद्रूप जे तप ते तप निश्चय चारित्रमा जाणवु चारित्र कहेता चंचलता रहित धिरताना परिणाम अने आत्मस्वरूपने त्रिपे एकत्वपणे रमण तन्मयता स्वरूप विश्रान्ति तत्त्वानुभव ते चारित्र कहिये ते चारित्रना बे भेद छे एक देशविरति, बीजु सर्व विरति तिहा देश विरति कहेता श्रावकना वार व्रत ते वार व्रत निश्चय तथा व्यवहारयी कहे छे

१ प्राणातिपात विरमण व्रत ते परजीवने आपणा जीव सरीखो जाणी सर्व जीवनी रक्षा करे ते व्यवहार दया थइ माटे व्यवहार प्राणातिपात विरमण व्रत जाणवु अने जे आपणो जीव कर्म वश पटयो दु खी याय छे ते आपणा जीवने कर्म-बधनयी मुक्तावबु अने आत्म गुण रक्षा करी गुण वृद्धि करवी

તે સ્વદયા બંધહેતુ પરિણતિ નિવારી સ્વરૂપ ગુણને પ્રગટપણે કરવા જે ગુણ પ્રગટ થયો તે રાક્ષત્રો ઇટલે જ્ઞાને કરી મિથ્યાત્વ ટાલી આપણા જીવને નિર્મલ કરે તે નિશ્ચયથી પ્રાણાતિપાત વિરમણ વ્રત કહિયે

૨ મૃષાવાદ વિરમણવ્રત કહે છે જૂઠુ વચન વિલકુલ બોલવું નહીં તે વ્યવહાર મૃષાવાદ વિરમણવ્રત અને જે પર પુદ્ગલાદિક વસ્તુને આપણી કહેવી તે મૃષાવાદ વચન છે અને જીવને અજીવ કહે તથા અજીવને જીવ કહે ઇત્યાદિક અજ્ઞાન ભાવ તે સર્વ નિશ્ચય મૃષાવાદ છે અથવા સિદ્ધાન્તના અર્થ ઓટા કહે એ મૃષાવાદ જેણે છાડ્યો તે નિશ્ચય મૃષાવાદ વિરમણવ્રત કહિયે, ઇટલે વીજા અદત્તાદાનાદિક વ્રત જો ભાજે (ભાગે) તો તેનો માત્ર ચારિત્ર ભગ થાય પણ જ્ઞાન દર્શનનો ભગ ન થાય અને જેણે નિશ્ચય મૃષાવાદનો ભગ કર્યો તેણે સમક્રિત તથા જ્ઞાન અને ચારિત્ર એ વ્રતનો ભગ કર્યો તથા આગમમા એમ કહ્યું છે જે એક સાધુયે ચોથો વ્રત ભગ કર્યો અને એક સાધુયે વીજો મૃષાવાદ વ્રત ભગ કર્યો તો જેણે ચોથો વ્રત ભગ કર્યો તે આલોચણ લેઈ શુદ્ધ થાય પણ જે સિદ્ધાન્તના અર્થનો મૃષા ઉપદેશ આપે તે આલોચણ લીધે પણ શુદ્ધ થાય નહીં

૩ અદત્તાદાન વિરમણ વ્રત કહે છે જે પારકું ધન વસ્તુ છુપાવે ચોરી કરે ઠગત્રાજી કરી લીધે તે ચોરી છે, ઇટલે પારકી વસ્તુ ધનીના દીધા વિના લેવી નહીં એ વ્યવહારથી અદત્તાદાનવિરમણ વ્રત જાણવું અને જે પાંચ ઇન્દ્રિયા ત્રેવીસ વિષય, આઠ કર્મવર્ગના ઇત્યાદિક પરવસ્તુ લેવી નહીં તથા તેની વાઝા ન કરવી તે આત્માને અગ્રાહ્ય છે માટે તે નિશ્ચયી અદત્તાદાનવિરમણ વ્રત કહિયે. ઇહા કોઈ પૃછે જે વિષયની

अने कर्मनी वाञ्छा कोण करे छे ? तेने उत्तर जे पुण्यने मेलो लेवा योग्य कहे छे ते जीव कर्मनी वाञ्छा करे छे जे पुण्यना ४२ भेद छे ते चार कर्मनी शुभ प्रकृति छे एटले जे व्यवहार अदत्तादान तो नथी लेता पण अतरग पुण्यादिकनी वाञ्छा छे तेने निश्चय अदत्तादान लागे छे

४ मैथुन विरमणव्रत कहे छे जे पुरुष परस्त्रीनो परिहार करे तथा जे स्त्री परपुरुषनो परिहार करे इहा साधुने स्त्रीनो सर्वथा त्याग छे अने गृहस्थने परणेली स्त्री मोकली छे परस्त्रीनो पञ्चखाण छे ते व्यवहारथी मैथुननु विरमण कहिये अने जे विषयना अभिलाषनु तथा ममता तृणानो त्याग परभाव वर्णादिक परद्रव्यना स्वामित्वादिक तेनो अभोगीपणो आत्मा स्वगुण जानादिकनो भोगी छे अने ए पुद्गलखव ते अनता जीवनी एठ छे तेने केम भोगवे ए रीते त्याग निश्चयथी मैथुन विरमण कहिये जेणे बाह्य विषय ठाड्यो छे अने अतरग लालच छुटी नथी तो तेहने ते मैथुनना कर्म लागे छे

५ परिग्रह परिमाणव्रत कहे छे परिग्रह वन-वान्य-दास-दासी-चौपद-जमीन-वस्त्र आभरणनो त्याग तेमा साधुने तो सर्वथा परिग्रहनो त्याग छे तथा श्रावकने इच्छा परिमाण छे जेटली इच्छा होय तेटले परिग्रह मोकलो राखे बीजानी विरति करे ए व्यवहारथी कह्यो अने जे कर्म रागद्वेष अज्ञान द्रव्य ज्ञानावरणीय प्रमुख आठ कर्म अने शरीर इन्द्रियनो परिहार एटले कर्मने पर जाणी ठाड्यो ते निश्चयथी परिग्रहनो त्याग एटले परवस्तुनी मूर्छा ठाडवी जेणे मूर्छा छोडी तेणे परिग्रह ओड्योज छे एम जाणवु

६ दिशिपरिमाण व्रत कहे छे तिहा तिरछि चार दिशी

પાચમી અવો છટ્ટી ઝઘ્ઘ્વં ઇ છ દિશિના ક્ષેત્રનો માનકરી મો-  
કલો રાખે તે વ્યવહારથી દિશિપરિમાણ કહિયેં અને ચાર-  
ગતિમા મટકવુ તે કર્મતુ ફલ છે એમ જાણી તેથી ઉદાસી-  
પણો અને સિદ્ધ અવસ્થા(નો) શુ ઉપાદેયપણો તે નિશ્ચય દિશિ-  
પરિમાણ વ્રત કહિયેં

૭ મોગોપમોગપરિમાણ વ્રત કહે છે જે એકવાર મોગ-  
વવુ તે મોગ અને જે વારવાર મોગવવુ તે ઉપમોગ તેનો પરિ-  
માણ કરે તે વ્યવહાર મોગોપમોગવ્રત કહિયેં, અને જે વ્યવ-  
હારનયે કર્મનો કર્તા મોક્તા જીવ છે અને નિશ્ચયનયે તો કર્મનો  
કર્તા કર્મ છે આત્મા અનાદિનો પરમાવ મોગી યયો છે તેથી  
પરમાવગ્રાહક અને પરમાવરક્ષક થયો એટલે આત્માની જાય-  
કતા, ગ્રાહકતા, મોગ્યતા, રક્ષકતા વીગડે કર્તા પળો વીગડયો  
તેવોરે પરમાવ કર્તા થયો તે પળ પરમાવ રગીપળે આઠ કર્મનો  
કર્તા થયો છે પળ સત્તાય તો સ્વમાવનો કર્તા છે પળ ઉપ-  
કરણ અવરાણા તેથી સ્વકાર્ય કરી શકતો નથી વિમાવને કરે  
છે અજ્ઞાનપળે જીવનો ઉપયોગ મલ્યો છે પળ ન્યારો છે પો-  
તાના જ્ઞાનાદિક ગુણનો કર્તા મોક્તા છે એહવો સ્વરૂપાનુયાયી  
પરિણામ તે નિશ્ચયમોગોપમોગવ્રત ત્યાગ જાણવો

૮ અનર્થદળ્ડવિરમણવ્રત કહે છે કામ વિના જીવનો  
વધ કરવો પારકા વાસ્તે આરમ પ્રમુખ કરવાની આજ્ઞા પ્રમુખે  
આપવી તે વ્યવહાર અનર્થદળ્ડ અને શુમાશુમ કર્મ તે સિધ્યાત્વ  
અવિરતિ કપાય યોગ્યી વધાય છે તેને જીવ આપણા કરી  
જાણે એ નિશ્ચયથી અનર્થદળ્ડ.

૯ સામાયિક વ્રત કહે છે જે મન વચન કાયાના આરમ  
ઢાલીને તેને નિરારમપળે વર્તવે તે વ્યવહાર સામાયિક જાણવો

अने जे जीवना ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य गुण विचारे सर्व जीवना गुणनी सत्ता एकसमान जाणी सर्व जीव साथे समतापरिणामे वने ते निश्चय समतारूप सामायिक कहिये

१० देशावगाशिक व्रत कहे छे जे मन वचन कायाना योग एक टोर करी एकरथानके वेसी वर्म ध्यान करवो ते व्यवहार देशावगाशिक कहिये अने जे श्रुतज्ञाने करी छे द्रव्य ओल्खीने पाच द्रव्यनो त्याग करे अने ज्ञानव्रत जीवने ध्याये ते निश्चय देशावगाशिक व्रत कहिये

११ पौषध व्रत कहे छे जे चार पहोर अथवा आठ पहोर सुधी समता परिणामे सावद्य ठोडी निरारभणें सजायध्यानमा प्रवर्ते ते व्यवहार पोशह कहिये अने पोताना जीवने ज्ञान ध्यानयी पोपीने पुष्ट करे ते निश्चययी पौषध व्रत कहिये जीवने पोताना स्वगुणे करी पोपीजे वेणे पोषध कहिये

१२ अतिथिसविभाग व्रत कहे छे जे पोशहने पारणे अथवा सदा सर्वदा साधुने तथा जैनधर्मश्रावकने पोतानी शक्ति प्रमाणे दान देवु ते व्यवहार अतिथिसविभाग कहिये अने पोताना जीवने अथवा शिष्यने ज्ञाननु दान ते भणवु, भणाववु, सुणवु सुणाववु, ते निश्चययी अतिथिसविभाग व्रत कहिये एट्ठे श्रान्तना वार व्रत कख्या ते समकित सहित जे निश्चय तथा व्यवहारयी वार व्रत वारे ते जीवने पाचमे गुणठाणे देशविरति श्रावक कहिये देश केहता देशयकी थोडीशी व्रतिपणो छे माटे अने यतिने सर्वयी व्रतिपणो छे तेयी पाच महाव्रतज छे साधुने पाच महाव्रतमा सर्व व्रत आन्या ए निश्चयत्यागरूप ज्ञान ध्यान सवर निर्जरामा थिरताना परिणाम ते निश्चय चारित्रना एक उत्सर्ग वीजो अपवाद ए वे मार्ग छे तेमा जे उत्कृष्ट तीक्ष्ण



પાચમી અથો ડઢી ડર્વ ઇ છ દિશિના ક્ષેત્રનો માનકરી મો-  
કલો રાકે તે વ્યવહારથી દિશિપરિમાણ કહિયે અને ચાર-  
ગતિમા મટકવુ તે કર્મનુ ફલ છે ઇમ જાણી તેથી ડદાસી-  
પણો અને સિદ્ધ અપસ્થા(નો) શુ ડપાદેયપણો તે નિશ્ચય દિશિ-  
પરિમાણ વ્રત કહિયે

૭ મોગોપમોગપરિમાણ વ્રત કહે છે જે ઇકવાર મોગ-  
વવુ તે મોગ અને જે વારવાર મોગવવુ તે ડપમોગ તેનો પરિ-  
માણ કરે તે વ્યવહાર મોગોપમોગવ્રત કહિયે, અને જે વ્યવ-  
હારનયે કર્મનો કર્તા મોક્તા જીવ છે અને નિશ્ચયનયે તો કર્મનો  
કર્તા કર્મ છે આત્મા અનાદિનો પરમાવ મોગી થયો છે તેથી  
પરમાવગ્રાહક અને પરમાવરક્ષક થયો ઇટ્લે આત્માની જાય-  
કતા, ગ્રાહકતા, મોગ્યતા, રક્ષકતા વીગડે કર્તા પળો વીગડયો  
તેવોરે પરમાવ કર્તા થયો તે પળ પરમાવ રગીપળે આઠ કર્મનો  
કર્તા થયો છે પળ સત્તાય તો સ્વમાવનો કર્તા છે પળ ડપ-  
કરણ અવરાણા તેથી સ્વકાર્ય કરી શકતો નથી વિમાવને કરે  
છે અજ્ઞાનપળે જીવનો ડપયોગ મલ્યો છે પળ ન્યારો છે પો-  
તાના જાનાદિક ગુણનો કર્તા મોક્તા છે ઇહવો સ્વરૂપાનુયાયી  
પરિણામ તે નિશ્ચયમોગોપમોગવ્રત ત્યાગ જાણવો

૮ અનર્થદળ્ડવિરમળવ્રત કહે છે કામ વિના જીવનો  
વવ કરવો પારકા વાસ્તે આરમ પ્રમુખ કરવાની આજ્ઞા પ્રમુખે  
આપવી તે વ્યવહાર અનર્થદડ અને શુમાશુમ કર્મ તે સિથ્યાત્વ  
અવિરતિ કષાય યોગથી વવાય છે, તેને જીવ આપણા કરી  
જાણે ઇ નિશ્ચયથી અનર્થદડ

૯ સામાયિક વ્રત કહે છે જે મન વવન કાયાના આરમ  
ઢાઢીને તેને નિરામપળે વર્તાવે તે વ્યવહાર, સામાયિક જાણવો

एहवी आगला भवनी वाच्या छे ते अग्रगोच आर्तव्याननो घोथो पायो जाणवो ए आर्तव्यानना चार भेद कद्या ए तिर्यच गतिना कारण छे ए न्यानना परिणाम ते पाचमा अथवा उष्टा गुणठाणा सुधी होय

२ जे कठोर परिणामतु चिंतवन ते रौद्रन्यान तेना चार भेद छे ? जीवहिंसा करिने हर्ष पामे अथवा वीजो कोड हिंसा करतो होय तेने देगी खुशी याय अथवा युद्धनी अनुमोदना करे ते हिंसानुषवी रौद्रन्यान २ जतु बोलीने मनमा हर्ष पामे के जुओ में केवो कपट केळ्यो मारा जटापगानी खर कोटने पढी नहीं, एवो मृषामात् रूप परिणाम ते मृषानुषवी रौद्रन्यान ३ चोरी करी अथवा टगाड करी मनमा खुशी थाय के मारा जेवो जोराग्र कोण छे, तु पारको माल खाउ छु एवो परिणाम ते चोरानुषवी रौद्रन्यान ४ परियह वन वान्य परिवार बणो नवपानी लालच होय ते वन अथवा कुडवने माटे गमे तेतु पाप करे अथवा वणो परियह मिल्यायी जहकार करे ते परियहरक्षणानुषवी रौद्रन्यान ए रौद्रध्यानना चार भेद कद्या ए न्यान नरक गति पमाडवानु कारण छे महा अशुभकर्मनु कारण छे ए पाचमा गुणठाणा सुधी छे, अने उष्टे गुणठाणे पण एक हिंसानुषवीरौद्रव्यानना परिणाम कोडक जीवने होय

हवे वर्मव्यान कहे छे जे व्यवहार क्रियारूप कारण ते धर्म तथा श्रुतज्ञान अने चारित्र ए उपादानपणे साधन वर्म तथा स्तनयी भेदपणे ते उपादान शुद्ध व्यवहार उत्सर्गाडनुयायी ते अपवाद वर्म जाणवो अने अमेद स्तनयी ते साधन शुद्ध निश्चयनये उत्सर्ग वर्म अने ( धम्मो वत्थु सहावो ), जे

परिणाम ते उत्सर्ग अने जे उत्सर्ग राखवाने कारणरूप ते अप-  
वाद-उक्तच ॥ “सवरणमि असुद्ध, दुन्नवि गिन्ह तदेतयाणहिय  
॥ आउर दिट्ठ तेण, ते चेवहीय असचरणे ’ ॥ ? ॥ एट्ठे  
ज्या सुधी साधक भावने बाधक न पडे त्या सुधी जेहनी ना  
कही ते आदरवो नही अने जो साधक परिणाम रहेता न  
दीठा तेवारे जेहनी ना ते आचरे तेने अपवाद मार्ग कहिये  
जे आत्मगुण राखवाने करवो ते अपवाद अने गुणीने रागे  
भक्तिये करवो ते प्रशस्त ए वे तो साधनछे अने जे औदयि-  
कने अखमवायी करवु ते अतिचार छे तथा सबलो अने औदयिक  
माटे अशक्तपणे करवु ते पडिवाइ छे ते मध्ये अपवाद मार्ग  
ते परिणाम टढ रहे तेम आज्ञायें करवो

हवे चार ध्यान कहे छे ? आर्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३  
वर्मध्यान, ४ शुक्लध्यान तिहा पहला बे ध्यान ते अशुभ क-  
हिये अने पाळला बे ध्यान ते शुद्ध छे तिहा मनमा आहट्ट  
दोहट्टना परिणाम ते आर्तध्यान कहिये तेना चार पाया छे  
१ भाइ, मित्र, सज्जन, माता, पिता, स्त्री, पुत्र, धन, प्रमुख इष्ट  
वस्तुनो वियोग थयायी विलाप करे ते पहलो इष्ट वियोगनामा  
आर्तध्यान तथा २ अनिष्ट जे भुडा दुखना कारण, दुश्मन  
दरिद्रीपणो, तथा कुपुत्रादि मलवायी मनमा दुख चिंता उपजे  
ते अनिष्ट सयोग नाम आर्तध्यान ३ शरीरमा रोग उपना  
थका दुख करे, चिंता घणी करे ते रोगचिंतानाम आर्तध्यान  
४ मनमा आगलना वखतनो शोच करे जे आ वर्षमा आ  
काम करशु, आवता वर्षमा अमुक काम करशु तो अमुक  
लाभ थसे अथवा दान शील तपनु फल मागे जे आ भवमा  
तप कीवो छे माटे आवते भवे इद्र चक्रवर्तिनी पदवी मले

३ विपाकविचय वर्मन्यान कहे छे जे एहवो जीव छे तोपण कर्मपत्रे दुग्गी छे ते कर्मनो पिपाक चिन्ने जे जीवनो जानगुण ते जानाप्रणीय कर्म दायो छे अने दर्शनावरणीय कम दर्शनगुण दायो छे, एम आठ कर्म जीवना आठ गुण दाव्या छे एउले आ ससारमा भमता यका जीवने जे सुखदुःख छे ते सर्व कर्मना फीगा छे माटे सुख उपने राखनु नही अने दुःख उपने टिल्गीर यनु नही कर्म स्वरूपनी प्रकृति, स्थिति, रस, अने प्रदेशनो बंध, उदय, उदीरणा, तथा सत्ता, चिन्तनानु एकाग्रता परिणाम ते विपाकविचय वर्मन्यान

४ सस्थानविचयवर्मध्यान कहे छे ते चउद राजमान लोकनु स्वरूप विचारे जे ए लोक ते चउदराज ऊचो छे ते मध्ये सातराज अपोलोक छे विचमा अद्वारसो योजन मनुष्य क्षेत्र त्रिगो लोक छे ते ऊपर काइक ऊणो सातराज ऊर्ध्वलोक छे तेमा सर्प वेमानिक देवता प्रसे छे अने ऊपरें सिद्ध शिला सिद्ध क्षेत्र छे ए रीते लोकनु प्रमाण छे ए लोकनु सरथान वैशाख छे अनतो काल आपणा जीवें ससारमा भमता सर्प लोकने जन्म मरण करी फरस्यो छे, एवु जे लोक स्वरूप तथा लोकने विषे पचास्तिकायनु अपरथान तथा परिणामन द्रव्य मध्ये गुणपर्यायनु अपरथान तेनो जे एकाग्रताये तन्मयचित्तन परिणाम एहनु जे ध्यान ते सस्थान विचय वर्मन्यान कहियें ए वर्मध्यानना चार पाया कइया ए वर्मध्यान चौथा गुणठाण्णथी माडीने सातमा गुणठाणा सुधी छे

हवे शुद्धध्यान कहे छे शुद्ध केहता निर्मल, शुद्ध, पर

वस्तुनो सत्तागत शुद्ध परिणामिक स्वगुण प्रवृत्ति कर्मादिक अनतानन्द रूप सिद्धान्स्थायें रह्यो ते पुनर्मृत उत्सर्ग उपादान शुद्ध धर्म, ते वर्मनु भासन रमण एकाग्रतापणे चिंतन तन्मय-तानो उपयोग एकत्वनो चिंतववो ते धर्म ध्यान कहियें तेना पाया चार छे ते कहे छे

१ आज्ञाविचयधर्मव्यान ते जे वीतराग देवनी आज्ञा साची करी सहदे एटले भगवते छ द्रव्यनु स्वरूप नय प्रमाणे निक्षेपा सहित सिद्ध स्वरूप, निगोद स्वरूप जेम कह्या तेम सहदे, वीतरागनी आज्ञा नित्य अनित्य स्याद्वादपणे निश्चये व्यवहारपणे माने सहदे ते आज्ञा प्रमाणे यथार्थ उपयोग भासन थयो तेने हर्षे करी ते उपयोग मध्ये निरवार, भासन, रमण अनुभवता, एकता, तन्मयपणो ते आज्ञाविचय धर्मव्यान कहियें

२ अपायविचयधर्मव्यान ते जीवमा अशुद्धपणे कर्मना योगयी ससारी अवस्थाम् अनेक अपाय कहेता दूषण छे ते अज्ञान, राग, द्वेष, कषाय, आश्रव ए मारा नयी हु एथकी न्यारो छु हु अनतज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यमयी, शुद्ध, बुद्ध, अविनाशी छु अज, अनादि, अनत, अक्षर, अनक्षर, अचल, अकल, अमल, अगम्य, अनमी, अरूपी, अकर्मा, अव्यक्त, अनुदय, अनुदीरक, अयोगी, अभोगी, अरोगी, अमेदी, अवेदी, अछेदी, अखेदी, अकफ्ययी, असखाइ, अलेशी, अशरीरी, अणाहारी, अव्याबाध, अनवगाही, अगुरुलघु, परिणामी, अतीन्द्रिय, अप्राणी, अयोनि, अससारी, अमर, अपर, अपरपार, अव्यापी, अनाश्रित, अकप, अविरुद्ध, अनाश्रव, अलख, अशोमी, असगी, अना-रक, लोकालोकजायक, एवो शुद्ध चिदानन्द मारो जीव छे, ए-हवो एकाग्रतारूप ध्यान ते अपायविचयधर्मव्यान जाणवो

मल केवल ज्ञान पामे पछे तेरमें गुणटाणे ध्याननरीकापणे छे तेरमाना अते अने चउदमे गुणटाणे ए वे पाया ध्यावें

३ सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति पायो कहे छे ते सूक्ष्म मन, वचन कायाना योग स्वे, अंलेगी कर्ण करी अयोगी याय ते जे अप्रतिपाति निर्मलवीर्य अचलनारूप परिणाम ते सूक्ष्म-क्रियाअप्रतिपाति ध्यान जाणतु इहा सत्ताये ८५ प्रकृति रही हती ते मये ७२ खपावे

४ उच्छिन्नक्रियानुवृत्तिपायो कहे छे जे योग निरुध कीया पछे तेर प्रकृति खपावे, अकर्मा याय, सर्व क्रियार्थी रहित याय ते, समुच्छिन्न क्रिया निवृत्तिशुद्धध्यान कहियें ए ध्यानध्यावता शेष, दल, खरणरूप क्रिया उच्छेदे, अवगाहना देह मानमाथी त्रिजो भाग घटाटे, शरीर मूनी इहायी सातराज ऊपर लोकने अते जाय, सिद्ध याय इहा शिष्य पूछे जे चांदमे गुणटाणे तो अक्रिय छे, तो सात राज उचो गयो ए क्रिया केम करे छे ? तेने उत्तर जे सिद्ध तो अक्रिय छे, परतु पूर्व प्रेरणायें तुनीने दृष्टान्ते जीवमा चालवानो गुण छे वर्मास्तिकायमव्ये प्रेरणा गुण छे, तेयी कर्मरहित जीव मोक्षे जता लोकने अते जइ रहे इहा कोइ पछे जे आगळ उचो अलोक छे तिहा किम जातो नयी ? तेने उत्तर जे आगळ वर्मास्तिकाय नयी माटे न जाय वली कोइ पुछे जे तो अव्योगतियें अथवा तिरच्छी ग-तियें केम नयी जातो ? तेने उत्तर जे कर्मना भारयी रहित ययो, हलुवो ययो, माटे नीचो तथा टापो जिमणो न जाय, कारण के प्रेरक कोइ नयी तथा कपे नहीं केमके अक्रिय छे माटे तथा कोइ पूछे जे सिद्धने कर्म केम लागता नयी ? तेने कहे छे जे कर्म तो जायने अजानयी तथा योगयी लागे छे,

आलम्बन विना आत्माना स्वरूपने तन्मयपणे ध्यावे एहवु  
ध्यान तेने शुकुल्यान कहिये तेहना पाया चार छे ते कहे छे

१ पृथक्त्ववितर्कसप्रविचार—ते पृथक्त्व केहता जीवयी  
अजीव जूदा करवा, स्वभाव विभाव तेने जटा पृथक्पणे वहे-  
चण करवी स्वरूपने विषे पण द्रव्य तथा पर्यायनो पृथक्पणे  
व्यान करी, पर्याय ते गुणमा सक्रमावे अने गुण ते पर्यायमा  
सक्रमण करे ए रीते स्वधर्मने विषे वर्मातरभेद ते पृथक्त्व  
कहिये अने तेनो वितर्क ते जे श्रुतजाने स्थित उपयोग अने  
सप्रविचार ते सविकल्पोपयोग एटले एक चिंत्या पछी बीजो  
चित्तवचो तेने विचार कहिये एटले निर्मल विकल्प सहित पो-  
तानी सत्ताने व्यावे ते पृथक्त्व वितर्कसप्र विचार पेहेलो पायो  
ए आठमा गुणठाणाथी माही अग्यारमा गुणठाणा सुधी छे

२ एकत्व वितर्कअप्रविचार नामा बीजो पायो कहे छे  
जे जीव आपणा गुणपर्यायनी एकता करी व्यावे ते आर्वी  
रीते के जीवना गुणपर्याय अने जीव ते एकज छे, अने  
महारो जीव सिद्धस्वरूप एकज छे एवो एकत्व स्वरूप तन्मय-  
पणे अनता आत्म धर्मनो एकत्वपणे ध्यानवितर्क केहता श्रुत-  
जानावलीपणे अने अप्रविचार केहता विकल्प रहित दर्शन  
ज्ञाननो समयातरे कारणता विना रत्नत्रयीनो एक समयी का-  
रण कार्यतापणे जे ध्यान वीर्य उपयोगनी एकाग्रता ते एकत्व-  
वितर्क अप्रविचार जाणवो ए पायो द्वारमा गुणठाणे ध्यावे ए  
बेहु पायामा श्रुतजानावलीपणो छे पण अधि मन पर्यव  
ज्ञानोपयोगेवर्तता जीव कोइ ध्यान करी सके नहीं, ए वे ज्ञान परा-  
नुयायी छे माटे ए ध्यानयी धनवातिया चार कर्म स्वपावे नि-

नही कारण के हिंसक ऊपर पण उत्तम जीवने कस्णा ऊप-  
 ले जो उपदेश थकी साग मार्ग आवे तो तेने शुद्ध मार्गे आ-  
 णवो कदाचित् मार्गे न आवे तो पण द्वेष न राखवो केमके  
 ते अजाण छे एम समजहु एहवा जे परिणाम ते मन्यग्य  
 भावना ४ सर्व जीवने पोताने तुत्य जाणी दया पाळे, कोइने  
 हणे नही तथा जे दुर्सा अथवा वर्महीन तेहना उपर कस्णा  
 तेना दुख टाळवानो परिणाम तथा वर्महीन जीव देखीने एउो  
 चितवे जे ए जीव किवोरें वर्म पामणे यथार्थ आत्मसाधन  
 पामी स्वरूप धर्मने किवोरें अवलम्बणे एउो परिणाम ते चोयी  
 कस्णा केहना दया भावना ए चार भावना कही

१ हवे वार भावना कहे छे शरीर, कुटुम, वन, परिवार  
 सर्व विनाशी छे जीवनो मूल वर्म अविनाशी छे एम चिंत-  
 ववु ते पहेली अनित्य भावना २ ससारमा मरण समये जीवने  
 शरण राखनार वोइ नयी एक वर्मनो शरण छे एवु चितववु  
 ते वीजी अशरण भावना ३ मारा जीवे ससारमा भमता  
 सर्व भव कीथा छे ए ससारयी हु केवोरें छुटीश, ए ससार  
 मारो नयी हु मोक्षमयी छु एम विचारवु ते गीजी ससार भा-  
 वना ४ ए माहरो जीव एकलो छे, एकलो आव्यो, एकलो  
 जशे, पोताना करेला कर्म एकलो भोगवणे एम चितववु ते  
 चोयी एकत्व भावना ५ आ ससारमा कोइ कोइनो नयी एम चित-  
 ववु ते पाचमी अन्यत्व भावना ६ आ शरीर अपवित्र मलमूत्रनी  
 खाण छे, रोग-जरायी भरयो छे, ए शरीरयी हु न्यारो छु,  
 एम चितववो ते ठुडी अशुचि भावना ७ रागद्वेष, अज्ञान,  
 मिथ्यात्व प्रमुख सर्व आस्रव छे, एम चितववु ते सातमी  
 आस्रव भावना, ८ ज्ञानव्यानमा वर्ततो जीव नवा कर्म बाधे



તે સિદ્ધના જીવને અજ્ઞાન તથા યોગ નથી, માટે કર્મ લાગે નહીં એ ચાર ધ્યાનનો અધિકાર કહ્યો

હવે વલી વીજા ચાર ધ્યાન કહે છે ? પદસ્થ, ૨ પિંડસ્થ, ૩ રૂપસ્થ, ૪ રૂપાતીત તેમા પહેલુ પદસ્થ ધ્યાન કહે છે જે અરિહતાદીક પાચ પરમેષ્ઠીના ગુણ સમારે, તેનો ચિત્તમા ધ્યાન કરે તે પદસ્થધ્યાન ૨ પિંડસ્થ કેહતા શરીરમા રહ્યો જે આપણો જીવ તેમા અરિહત, સિદ્ધ, આચાર્ય, ઉપાધ્યાય અને સાધુપણાના ગુણ સર્વ છે એહવો જે વ્યાન તે પિંડસ્થ ધ્યાન અથવા ગુણીના ગુણ મત્તે એકત્વતા ઉપયોગ કરવો તે પિંડસ્થ વ્યાન ૩ રૂપમા રહ્યો થકો પળ એ મારો જીવ અરૂપી અનત ગુણી છે, જે વસ્તુનો સ્વરૂપ અતિશયાવલની થયા પછે આત્માનુ રૂપ એકતાપણો એહવો જે ધ્યાન તે રૂપસ્થધ્યાન એ ત્રણ ધ્યાન વર્મ ધ્યાનમા ગણવા ૪ નિરજન, નિર્મલ, સકલ્પવિકલ્પ રહિત, અભેદ એક શુદ્ધ સત્તારૂપ ચિદાનંદ તત્ત્વામૃત, અસગ અસ્વંડ, અનતગુણ પર્યાયરૂપ, આત્મસ્વરૂપહુ ધ્યાન તે રૂપાતીત ધ્યાન જાણવુ ઇહા માર્ગનાગુણઠાણા નયપ્રમાણ મતિ આદિક જ્ઞાન ક્ષયોપશમભાવ સર્વ ઝાડવા યોગ્ય થયા એક સિદ્ધના મૂલ ગુણને વ્યાવે તે રૂપાતીત ધ્યાન જાણવો એટલે મોક્ષનુ કારણ જે ધ્યાન તે કહ્યુ

હવે ભાવના કહે છે તેમા વર્મ ધ્યાનની ચાર ભાવના કહે છે ? મૈત્રી ભાવના તે સર્વ જીવ સાથે મિત્રતાનો ભાવ ચિત્તવવો, સર્વનુ મહુ ઇહુ પળ કોઈનુ માહુ ચિત્તવવુ નહીં સર્વ જીવ ઉપર હિત બુદ્ધિ રાખવી તે મૈત્રી ભાવના ૨ ગુણવત અને જ્ઞાનાદિક ગુણ ઉપરેં રાગ તે વીજી પ્રમોદભાવના ૩ જે ધર્મવત ઉપર રાગ અને મિથ્યાત્વી ઉપર રાગ નહીં તેમ દ્વેષ પળ

तेने समकेन ज्ञान कहिये ते समकेत ज्ञान भलोज याय तिहा  
अनुयोगद्वारमा कळो छे

नायम्मि गिन्हियजे, ।

अगिन्हियजे अ इच्छ अच्छामि ॥

जडवमेऽयजो, सो उवणुसो नओताम । ? ।

अर्थ—ज्ञानयी उ द्रव्य जाणीने लेवा योग्य होय ते ले  
अने उाट्वा योग्य उाडे एवो जे उपदेश ते नय उपदेश  
जाणवो हवे समकेननी दश रुचि कहे छे

१ निसर्ग रुचि ते निश्चयनये करी जीवादि नव तच्च  
जाणे आश्रव त्यागे सवर आदरे वीतरागना कळ्या भाव जे छ  
द्रव्य ते द्रव्य क्षेत्र काल भाव सहित जाणे, नामादि चार  
निक्षेपा पोतानी बुद्धिया जाणे सहहे, वीतरागना भाख्या भाव  
ते सत्य एवी सहहणा होय

२ उपदेश रुचि नव तच्च तथा उ द्रव्यने गुरु उपदे-  
शयी जाणी सहहे ते उपदेश रुचि

३ आज्ञा रुचि ते रागद्वेष मोह जेमना गया छे, अज्ञान  
मिद्वयु छे एह्या अरिहत देव तेणे जे आज्ञा कही तेने माने  
सहहे ते आज्ञारुचि

४ सूत्ररुचि १ आचाराग २ सुयगडाग ३ ठाणाग  
४ समवायाग ५ भगवती ६ जाताधर्म कथा ७ उपासकदशाग  
८ अतगडदशाग ९ अनुत्तरोववाइ दशाग १० प्रश्नव्याकरण  
११ विपाक ए इग्याग अग तथा बारमु अग दृष्टिवाद जेमा  
चउद पूर्व हता ते हमणा विच्छेद गया छे तथा १ उवराइ  
२ रायपसेणी ३ जीवाभिगम ४ पन्नवणा ५ जंबुद्वीपपन्नति

નહી તે આઠમી સવર ભાવના ૯ જ્ઞાન સહિત ક્રિયા તે નિર્જરાનુ કારણ છે, તે નવમી નિર્જરા ભાવના ૧૦ ચંદ્રરાજ લોકનુ સ્વરૂપ વિચારનુ તે દશમી લોકસ્વરૂપ ભાવના ૧૧ સસારમા ભમતા જીવને સમકિત જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ પામવી દુર્લભ છે અથવા સમકિત પામ્યો પણ ચારિત્ર સર્વ વિરતિ પરિણામ રૂપ વર્મ પામવો દુર્લભ છે તે અગ્યારમી ચોધિદુર્લભ ભાવના ૧૨ વર્મના કહેણહાર(કથક)ગુરુ તથા શુદ્ધ આગમનુ સામલવુ પુહવી જોગવાઈ મલવિ દોહેલી છે તે બારમી ધર્મદુર્લભ ભાવના પુટલે બાર ભાવના કહી એ ચારિત્રનુ સ્વરૂપ સર્પણ કહ્યુ

પુવો સમકિત સહિત જ્ઞાનચારિત્ર તે મોક્ષનુ કારણ છે, તેના ઉપર મન્ય પ્રાણીયે વિગેષે ઉદ્યમ કરવો અને જો તેવુ જ્ઞાનચારિત્ર નહી પલે તોપણ શ્રેણિક રાજાની પેરે સદ્દેહના શુદ્ધ રાખવો જો સમકિત શુદ્ધ છે તો મોક્ષ નજીક છે સમકિત વિના જ્ઞાનધ્યાન ક્રિયા સર્વ નિ ફલ છે એમ આગમમા કહ્યો છે

જસક્કત કિરડ, અહવા ન સક્કેઈ તહય સદ્દહડ ।

સદ્દહમાણો જીવો, પાવડ અયરામર ઠાણ ॥ ૧ ॥

અર્થ—રે જીવ । તુ કરી શકે તો કર અને જો ન કરી શકે તોપણ જેવો વીતરાંગે વર્મ કહ્યો તે રીતે સદ્દહજે સદ્દહના શુદ્ધ રાખનાર જીવ અજરામર સ્થાનક તે મોક્ષ પદવી પામે

હવે સમકિતનો માર્ગ કહે છે ૧ જીવ, ૨ અજીવ, ૩ પુણ્ય, ૪ પાપ, ૫ આસ્રવ, ૬ સવર, ૭ નિર્જરા, ૮ બધ, ૯ મોક્ષ એ નવ તત્ત્વ છે તેમા મોક્ષનુ કારણ જીવ છે, અને સવર તથા નિર્જરા એ બે ગુણ છે, પુટલે જીવ સવર નિર્જરા મોક્ષ એ ચાર ઉપાદેય છે અને વીજા પાચ હેય છે પુહવો પરિણામ

१० जे पाच अस्तिकायनु स्वरूप जाणे श्रुतजाननो स्व-  
भाव अतरग सत्ता सदहे ते वर्मरुचि

हवे समकितना आठ गुण कहे छे ? नि गका ते जिना-  
गम मध्ये सूक्ष्म अर्थ कह्या ते साचा सदहे तेमा सदहे आणे  
नही तथा सात भययी पण टरे नहि ? निरुखा गुण ते  
पुण्यरूप फलनी चाहना न राखे केमके जिहा इच्छा तिहा  
कर्मनो वप छे माटे ३ निव्विचिगिच्छागुण ते शुभ अशुभ  
पुद्गल एक सरिखा छे तेमा पुण्यना उदययी शुभयोग मिल्या  
खुशी यइ अहकार न करवो तथा पापना उदययी दुखस-  
योग मिल्या दिलगीर थावु नही ४ अमृद्वष्टि गुण ते जे  
आगममा सूक्ष्म निगोदना तथा उ द्रव्यना सूक्ष्म विचार कह्या  
छे ते साभलतो वको मुजाय नही, जे पोतानी वारणामा  
आवे ते वारी राखे अने जे वारणामा न आवे तेने सदहे  
५ उपब्रह्मगुण जे ए आपणा जीवमा अनत जानादिक गुण  
छे ते छुपाववा नही शुद्ध सत्ता जेवी छे तेवी कहेवी, राग  
द्वेष अजान ते कर्मनी उपाधि छे, जीव ए उपाधियी न्यारो  
छे ६ स्थिरिकरण गुण ते आपणा परिणाम जानमा स्थिर  
करवा टगाववा नही अथवा कोइ भव्य प्राणी धर्मयी पडतो  
होय तेने साह्य देइ उपदेश आपी स्थिर करवो ७ वात्सल्यता  
गुण ते जेनी साथे जान ध्यान तप पडिकमणो भेलो करता  
होइये अने सदहेणा पण एकज होय ते आपणो साधर्मि  
भाइ छे तेनी भक्ति करवी अथवा सर्व जीवना जानादि गुण  
आपणा समान छे माटे सर्व जीव ऊपर दया करवी अथवा  
वीजा जीवना पण आपणा तुल्य जानादि गुण छे ते जीवने  
पोषवा योग्य जान व्याननो घणो अभ्यास करावे ८ प्रभावरु

हे गौतम ! मह्वलिपुत्रस्य गोशालकस्यानुकम्पनार्थं बाल्यतपस्विनो वैश्याय-  
नस्य तेजःप्रतिसाहरणार्थं च मया शीतला तेजोलेश्यामुद्गाव्य तदीयोष्णा तेजो-  
लेश्या प्रतिहतैत्यर्थः । तत्र 'अणुरूपणद्वयाए' 'तेयपडिसाहरणद्वयाए' इति पद-  
द्वयेन गोशालकरक्षणार्थं भगवतस्तेजोलेश्यासमुद्गत्र इति स्पष्टीभवति ।

न च रक्षण यदि धर्मस्तर्हि स्वसमवसरणे वर्तमानौ सर्वानुभूतिमुनक्षत्रनामानौ  
शिष्यौ किं न भगवता रक्षितौ ? इति वाच्यम्, भगवतः सर्वज्ञतया तयोरायुः-  
समाप्तिसन्दर्शनात् । ननु यथा समाप्तायुष कोऽपि नैव रक्षितु प्रभवति तथा विप्र-  
मानायुष न कोऽपि हन्तु शक्नुयात् ? इति चेन्न, त्रिपष्टिशलाकापुरुषान् देवान्

यहा यह सदेह हो सकता है कि यदि बचाने में धर्म होता तो  
भगवान्ने अपने समवसरणमें स्थित सर्वानुभूति और सुनक्षत्र नामक  
शिष्यों को क्यों न बचाया ?

इसका समाधान यह है कि-भगवान् सर्वज्ञ थे, इसलिए किसका  
आयुष्य कितना अवशेष है या समाप्त हो चुका है इसे वे अपने निर्मल  
केवल ज्ञानसे जानते थे । सर्वानुभूति और सुनक्षत्र शिष्योंका वर्तमान  
आयुष्य समाप्त हो चुका था ।

प्रश्न—जैसे वर्तमान आयुष्य समाप्त होने पर कोई किसीको बचा  
नहीं सकता वैसे ही आयुष्य रहते हुए कोई किसीको प्राणरहित भी  
नहीं कर सकता ?

अर्ही ओवो स देह थछ शके छे डे—जे ग्याववाभा धर्म थाय छे ते।  
लगवाने पोताना समवसरणभा रहेला सर्वानुभूति अने सुनक्षत्र नामना शिष्योने  
डेभ न ग्याव्या ?

ओनु समाधान ओ छे डे—लगवान् सर्वज्ञ छता, तेथी डोनु आयुष्य डेटछ  
अवशेष रह्यु छे अथवा समाप्त थछ थूक्यु छे ते लगवान् पोताना निर्मल डेवण  
ज्ञानथी गबुता छता सर्वानुभूति अने सुनक्षत्र शिष्योनु वर्तमान आयुष्य  
समाप्त थछ थूक्यु छतु

प्रश्न—जेभ वर्तमान आयुष्य समाप्त थवाथी डोछ डोछने ग्यावी शकतु  
नथी, तेभज आयुष्य भाडी डोय तो डोछ डोछने प्राणरहित पणु करी शकतु नथी

एवविधा च हिंसा काययोगस्य चपलतया सर्वथा परिहर्तुमशक्येति व्यवहार-  
नयमात्रगम्या ।

भावतो हिंसा=प्राणव्यपरोपणेच्छालक्षण आत्मनोऽशुद्धपरिणामः, यथा-  
मकरनाम्नो जलजन्तुविशेषस्य भ्रूमदेशे लब्धजन्मा तण्डुलदध्नोऽन्तर्मुहूर्त्तायुष्को-  
ऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रगर्भनिवासानन्तरमुत्पादशीलस्तण्डुलाभिधानो मत्स्यविशेषस्तत्र स्थित  
एनावलोकयति—

मकरोऽय मत्स्यानशितु तावत्तण्डुलस्तोयमाकर्षति, ततश्च जलवेगादान-  
नान्तःसमागतेषु प्रसुरतरेषु मीनेषु पश्चात्तानवरुध्याऽऽस्यगत नीर निस्सार-  
योगकी चपलताको सर्वथा दूर करना अत्यन्त कठिन होनेके कारण  
व्यवहारनयमात्र है ।

(२) भावहिंसा—प्राणोंसे रहित करनेकी इच्छारूप आत्माका अविशुद्ध  
परिणाम, भावहिंसा कहलाती है ।

जैसे—मगर नामके जलचर-जीव-विशेषकी भौंह पर बारीक चाँवलके  
समान शरीरवाला एक तन्दुल नामका मत्स्य होता है, वह अन्तर्मुहूर्त्त  
गर्भमें रहकर जन्म लेता है, उसकी आयु अन्तर्मुहूर्त्तमात्रकी ही होती  
है । गर्भज होनेके कारण उसको मन होता है । वह वहाँ ( भौंह पर )  
बैठा हुआ मगरका कृत्य देखता है कि वह मगर जलजन्तुओंको खानेके  
लिए पहले अपने मुँहमें पानीको खींचता है, फिर पानीके वेगसे आई-  
हुई मछलियोंको मुँहमें रोककर जब पानीको निकालता है तब दातोंके

सर्वथा हर करवी अत्यत कठिन होवाने कारणे व्यवहारनयमात्र छे

(२) भावहिंसा—प्राणुथी रहित करवानी इच्छाऽय आत्मानो अविशुद्ध  
परिणाम अये भावहिंसा कहलाय छे

जैसे—मगर नामना अयेक जलचर प्राणीनी लम्बर पर बोधा जेवा  
बारीक शरीरवाला अयेक तन्दुल नामना मत्स्य थाय छे अये मत्स्य अतर्मुहूर्त्त  
गर्भमा रहिने जन्म ले छे तेनु आयुध्य अतर्मुहूर्त्त जेटुलु होय छे ते  
गर्भज एव होवाने लीधे तेने मन थाय छे ते मगरनी लम्बर पर बैठेबैठे  
मगरनु कृत्य जुअे छे के आ मगर जलमाना एवोने भावाने माटे पड़ेवा  
पोताना भेडामा प्राणीने अये अये छे, पली प्राणीना वेगथी आवेली माछलीअोने  
भेडामा शैकीने ज्यारे प्राणीने कडी नाअे छे, त्यारे दातना छिद्रो द्वारा प्राणीनी

स्मृतिभ्रंश-योगदुष्प्रणिधान-धर्मानादरभेदादष्टविधः । सा च हिंसा त्रिविधा-  
द्रव्यतो भावत उभयतश्चेति, तत्र—

द्रव्यतो हिंसा=आत्मनो विशुद्धपरिणामस्य सत्त्वेऽप्यकस्मादनिच्छया  
जन्तुविराधन, यथा-भिक्षाचर्यादौ प्रवृत्तस्य समितिगुण्यादिधारकस्य चलनार्थं  
प्रादोत्थाने कृते एकेन चरणेन तिष्ठतः साधोरुत्थापितचरणतले तदानीं कुत-  
श्चिद्भयाद् दुर्लक्ष्यकारणवशाद्वा वेगेन समागतस्य कस्य चिद् द्वीन्द्रियादिजन्तो-  
रितिस्ततः साधुना तद्रक्षणप्रयासे कृतेऽपि अकस्माच्चरणतलसलप्रतया विराधनम् ।

(३) विपर्यय, (४) राग, (५) द्वेष, (६) स्मृति-भ्रंश, (७) योगदुष्प्रणिधान,  
(८) धर्मानादर, के भेदसे आठ प्रकारका है ।

हिंसा तीन प्रकारकी है—(१) द्रव्यहिंसा, (२) भावहिंसा और  
(३) उभयहिंसा ।

(१) द्रव्यहिंसा—आत्माके परिणाम विशुद्ध होने पर भी अकस्मात्  
इच्छाके विना ही जन्तुको पीडा हो जाना द्रव्यहिंसा है, जैसे-आहार  
विहार आदिमें प्रवृत्त, समिति और गुप्तिके धारण करनेवाले मुनिने  
जब एक चरण उठाया तो उठाये हुए चरणके नीचे किसी भयसे या  
अन्य कारणसे कोई द्वीन्द्रिय आदि लघुकाय जीव अचानक नीचे आ  
जाय और साधु उसकी रक्षा करनेका प्रयत्न भी कर रहे हों, फिर भी  
अचानक दब जानेसे विराधना होना । इस प्रकारकी हिंसा, शरीरके

(४) राग, (५) द्वेष, (६) स्मृतिभ्रंश, (७) योगदुष्प्रणिधान, (८) धर्माना-  
दर, के भेद करीने प्रमाद आठ प्रकारके छे

हिंसा त्रय प्रकारनी छे—(१) द्रव्यहिंसा, (२) भावहिंसा, अने  
(३) उभयहिंसा

(१) द्रव्यहिंसा—आत्माना परिष्काम विशुद्ध होवा छता अकस्मात्  
इच्छा विना जन्तुकोनी विराधना यध लय ते द्रव्यहिंसा छे जेभडे—आहार  
विहार आदिमा प्रवृत्त, समिति अने गुप्तिने धारण करवावाजा मुनिअने  
अेक पग उपाडेया त्तारे उपाडेवा पगनी नीचे कांछ लयने द्वीधे अथवा पील  
कांछ कारणथी जेध जेधद्रिय आदि लघुकाय लव अचानक पग नीचे आवी लय,  
अने मुनि अेनी रक्षा करवाने प्रयत्न पण करी रक्षा होय, तो पण अचानक  
दगाध जवाथी विराधना थाय आ प्रकारनी हिंसा, शरीरना योगनी यपलताने

शस्त्रादिना तत्प्रहरण तदभिलापमान वा रज्जोरचेतनत्वेन प्राणव्यपरोपणाऽ-  
भावेऽपि आत्मन उक्तस्वरूपाऽशुद्धपरिणामोदयाच्चतुर्गतिभ्रमणहेतुर्वन्धो नियत  
भवति ।

उभयतो हिंसा=आत्मनोऽशुद्धपरिणामपूर्वक प्राणव्यपरोपण, यथा=केन-  
चिद् व्याप्रेन मृगजिघासया शरप्रक्षेपेण कृत तद्धननम् ।

### संयमः ।

सयमः=सयमन=सम्यग्गुपरमण सावद्ययोगादिति सयमः, स च सप्तदशविधः,

समझकर क्रूर परिणामसे मारा, या मारनेका प्रयास किया तो वहाँ  
रस्सीके अचेतन होनेके कारण यद्यपि प्राणोंका व्यपरोपण नहीं हुआ  
तथापि आत्मामें अशुद्ध परिणामके उदय होनेसे वह भी भावहिंसा है।  
उस हिंसासे निश्चय ही चतुर्गतिमें परिभ्रमण करानेवाले कर्मोंका बन्ध  
होता है।

(३) उभयहिंसा-अशुद्ध परिणामोंसे जीवका घात करना उभयहिंसा  
है, क्योंकि इस हिंसामें आत्माके अशुद्ध परिणाम और प्राणोंका नाश  
दोनों पाये जाते हैं, जैसे-कोई व्याध हरिणको मारनेकी इच्छासे बाण  
चलाता है और उससे उसके प्राणोंका नाश हो जाता है।

### सयम ।

सावद्ययोगसे सम्यक्प्रकारसे निवृत्त होनेको सयम कहते हैं। वह

परिष्ठाभधी भार्थी, अथवा मारवानो प्रयास कर्थी, तो तेमा डोरडु अचेतन  
होवाथी ने डे प्राणुं व्यपरोपण थयु नहि, तो पणु आत्माना अशुद्ध परिष्ठाभने।  
उदय होवाथी अे पणु लावहि सा छे आ हि साथी निश्चितपणु अतुर्गतिमा  
परिभ्रमणु करनारा कर्मेनि णध थाय छे

(३) उभयहिंसा—अशुद्ध परिष्ठाभोथी एवने घात करवे अे उभयहि सा  
छे, डेभडे अे हि माभा आत्माना अशुद्ध परिष्ठाभ तथा प्राणुनो नाश णन्ने  
रहेला होय डे नेभडे-डोर्ध पारधी डरणुने मारवानी धन्धाथी पाणु छोडे छे  
अने अे रीते डणुना प्राणुनो नाश थर्ध णय छे

### स य म

सावद्ययोगथी सम्यक् प्रकारे निवृत्त थयु तेने सयम कहे छे सयम सत्तर



यति तदा दशनान्तरावकाशनिर्गतोद्रकवेगतो बहुतर मीना लघुतरा  
निस्सरन्त्येव । एष त्रिर्जतस्तात्रिरीक्ष्यासौ तण्डुलमत्स्यो मनसि विभावयति—

“ यदि मम वपुरीदृश बृहत् स्यात् तर्हि मम मुखान्निर्गन्तुमेकोऽपि मत्स्यो  
न शक्नुयात्, मया सर्वेऽपि भक्षिता भवेयुः ” इति ।

इत्थ कल्पिताध्यवसायरूपया भावहिंसया स्वकीयमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणमायुष्य  
समाप्य त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाण नरकायुष्य निग्ध्यासौ (तण्डुलमत्स्यः) तमस्तमाऽ-  
भिधाया सप्तम्या नरकपृथिव्या नारकत्वेन समुत्पद्यते ।

यद्वा—अल्पीयसि प्रकाशे रज्जुमालोक्य ‘व्यालोऽय’—मित्वालोचयतः

छिद्रो द्वारा पानीके साथ-साथ बहुतसी छोटीर मछलिया निकल जाती  
है, तब उन निकलती हुई मछलियोंको देखकर तन्दुलमत्स्य विचारता  
है कि—

इस (मगर) के तो दातोंके छिद्रों द्वारा बहुतसी मछलिया निकल  
जाती है, किन्तु, अगर मेरा शरीर मगरके घरावर बड़ा होता तो मैं  
इनमेंसे एकको भी नहीं निकलने देता-सबको भक्षण कर जाता ।

इस प्रकार वह परम कल्पित अध्यवसायरूप भावहिंसासे तैतीस-  
सागरप्रमाण नरकायुष्य बाधकर अन्तर्मुहूर्त्तकी अपनी आयुष्यको समाप्त  
करके तमतमा नामकी सातवीं नरकपृथिवीके अन्दर नारकीपनमें उत्पन्न  
होता है ।

अथवा जैसे-मन्द-मन्द प्रकाशमें किसी हिंसकने रस्सीको सर्प

साथे साथे घड़ीय नानी नानी माछलीओ गडार नीकणी नय छे ओ नीकणी  
बती माछलीओने लेधने तडुल मत्स्य विचार छे के आ मगरना दातना छिद्रोनी  
वाटे घड़ीय माछलीओ गडार नीकणी नय छे, परन्तु ले माइ शरीर मगरना  
बेटुळ मोटु डोत तो हु ओमाथी ओक पखु माछलीने गडार नीकणवा न देत  
गधीयनु लक्षण करी नत

आ प्रमाणे ओ परम कल्पित अध्यवसायरूप भावहिंसाथी तेनीस  
सागरनु नरकायुष्य गधीने अतर्मुहूर्त्तनु आयुष्य समाप्त करे छे अने तमतमा  
नामनी सातमी नरकपृथिवीनी अदर नारकीपणे उत्पन्न थाय छे

अथवा जेम-मद मद प्रकाशमा डोण डि सके दोराने सर्प सभलने कूर

शब्दादिना तत्प्रहरण तदभिलापमात्र या रज्जोरचेतनत्वेन प्राणव्यपरोपणाऽ-  
भावेऽपि आत्मन उक्तस्वरूपाऽशुद्धपरिणामोदयाच्चतुर्गतिभ्रमणहेतुर्वन्धो नियत  
भवति ।

उभयतो हिंसा=आत्मनोऽशुद्धपरिणामपूर्वक प्राणव्यपरोपण, यथा=केन-  
चिद् व्याप्रेन मृगजिघासया शरप्रक्षेपेण कृत तद्धननम् ।

संयमः ।

सयमः=सयमन=सम्यगुपरमण सायनयोगादिति सयमः, स च सप्तदशविधः,

समझकर क्रूर परिणामसे मारा, या मारनेका प्रयास किया तो वहाँ  
रस्सीके अचेतन होनेके कारण यद्यपि प्राणोंका व्यपरोपण नहीं हुआ  
तथापि आत्मामें अशुद्ध परिणामके उदय होनेसे वह भी भावहिंसा है।  
उस हिंसासे निश्चय ही चतुर्गतिमें परिभ्रमण करानेवाले कर्मोंका बन्ध  
होता है ।

(३) उभयहिंसा-अशुद्ध परिणामोंसे जीवका घात करना उभयहिंसा  
है, क्योंकि इस हिंसामें आत्माके अशुद्ध परिणाम और प्राणोंका नाश  
दोनों पाये जाते हैं, जैसे-कोई व्याध हरिणको मारनेकी इच्छासे घाण  
चलाता है और उससे उसके प्राणोंका नाश हो जाता है ।

सयमः ।

सावधयोगसे सम्यक्प्रकारसे निवृत्त होनेको सयम कहते हैं । वह

पशुभ्यामथी भार्ये, अथवा भारवानो प्रयास क्ये, तो तेमा दोरडु अचेतन  
होवाथी ने के प्राणुं व्यपरोपणु यथु नडि, तो पणु आत्माना अशुद्ध परिणामनो  
उदय होवाथी अे पणु भावहिंसा उे आ हिंसाथी निश्चितपणु चतुर्गतिमा  
परिभ्रमणु करनारा कर्मेनि णध थाय छे

(३) उभयहिंसा—अशुद्ध परिणामोथी एवनेो घात करवेो अे उभयहिंसा  
छे, उेभके अे हिंसाभा आत्माना अशुद्ध परिणाम तथा प्राणुनो नाश णन्ने  
रहेला होय उे नेभके-दोर्ध पारधी हरणुने भावानी धन्धाथी आणु छोडे छे  
अने अे शीते हणुना प्राणुनो नाश थु णय छे

सयमः

सावधयोगथी सम्यक् प्रकारे निवृत्त थवु तेने सयम कडे छे सयम सत्तर

तदुक्त समवायाङ्गे—

“ सत्तरसप्ततिहे सजमे पणत्ते तजहा—(१) पुढवीकायसजमे (२) आउकाय-सजमे (३) तेउकायसजमे (४) वाउकायसजमे (५) वणस्सडकायसजमे (६) वेइदियसजमे (७) तेइदियसजमे (८) चउरिंदियसजमे (९) पचिंदियसजमे (१०) अजीवकायसजमे (११) पेफासजमे (१२) उवेहासजमे (१३) अवहट्टु- (परिद्धावणा)सजमे (१४) पमज्जणासजमे (१५) मणसजमे (१६) वयमजमे (१७) कायसजमे ” इति ।

छाया—सप्तदशविधः सयमः प्रज्ञस्तद्यथा—(१) पृथिवीकायसयमः (२) अप्काय-सयमः (३) तेजस्कायसयमः (४) वायुकायसयमः (५) वनस्पतिकायसयमः (६) द्वीन्द्रियसयमः (७) त्रीन्द्रियसयमः (८) चतुरिन्द्रियसयमः (९) पञ्चेन्द्रियसयमः (१०) अजीवकायसयमः (११) प्रेक्षासयमः (१२) उपेक्षासयमः (१३) अपहृत्यसयमः (१४) प्रमार्जनासयमः (१५) मनःसयमः (१६) वाक्सयमः (१७) कायसयमः ।

तत्र (१) पृथिवीकायसयमः=सचित्तपृथिव्या हस्तपादादिना सघटनादि-

सत्तरह प्रकारका है । समवायाङ्गके सत्तरहवें समवायमे कहा है— (१) पृथिवीकायसयम, (२) अप्कायसयम, (३) तेजस्कायसयम, (४) वायु-कायसयम, (५) वनस्पतिकायसयम, (६) द्वीन्द्रियसयम, (७) त्रीन्द्रिय-सयम, (८) चतुरिन्द्रियसयम, (९) पञ्चेन्द्रियसयम, (१०) अजीवकाय-सयम, (११) प्रेक्षासयम, (१२) उपेक्षासयम, (१३) अपहृत्यसयम (परि-ष्ठापनासयम), (१४) प्रमार्जनासयम, (१५) मनःसयम, (१६) वाक्सयम, (१७) कायसयम ।

(१) पृथिवीकायसयम=हाथ पैर इत्यादिसे सचित्त पृथिवीका सघटन (सघटा) आदिका वर्जन करना ।

प्रकारेणो छे समवायागना सत्तरमा समवायमा ते प्रकारे क्ख्हा छे (१) पृथिवीकायसयम, (२) अप्कायसयम, (३) तेजस्कायसयम, (४) वायुकाय सयम, (५) वनस्पतिकायसयम, (६) द्वीन्द्रियसयम, (७) त्रीन्द्रियसयम, (८) चतुरिन्द्रियसयम, (९) पञ्चेन्द्रियसयम, (१०) अजीवकायसयम (११) प्रेक्षासयम, (१२) उपेक्षासयम, (१३) अपहृत्यसयम ( परिष्ठापनासयम ), (१४) प्रमार्जनासयम, (१५) मनःसयम, (१६) वाक्सयम, (१७) कायसयम (१) पृथिवीकायसयम—हाथ पैर इत्यादिसे सचित्त पृथिवीका सघटन वर्जने

विरतिः (२) अप्कायसयमः=सचित्तजलस्य सघटनाद्यकरणम्, (३) तेजस्काय-  
सयमः=पचनपाचनादिनिमित्तकाऽनलारम्भनिवर्तनम्, (४) वायुकायसयमः=  
वस्त्रपात्रव्यजनवक्त्रादिसमुत्पन्नवायुजनितवायुकायोपमर्दननिवृत्तिः, तत्र वस्त्र-  
पात्राणामयतनया निक्षेपणादानप्रक्षेपनिपातनादिकारणवशात्, तथा तेषां (वस्त्र-  
पात्राणां) व्यजनपर्णशाखादीनां च विधूननेन वायुकायविराधनं भवति । अनादृत-  
मुखेन सभाषणे च तन्निर्गतोष्णवायुना तद्विराधनं जायते ।

(५) वनस्पतिमायसयमः=तरुलतिकादिहरितकायमात्रस्य सघटनादिवर्जनम् ।

(२) अप्कायसयमः=सचित्त जलका सघटा आदि न करना ।

(३) तेजस्कायसयमः=पचन पाचन आदि किसी प्रयोजनके लिए  
अग्निके सघटा आदिका वर्जन करना ।

(४) वायुकायसयमः=वस्त्र, पात्र, पखा, फूक आदिसे उत्पन्न हुए  
वायुद्वारा वायुकायकी विराधनाका वर्जन करना ।

वस्त्र, पात्रोंको अयतनासे रखनेसे, अयतनासे लेनेसे, फेंकनेसे,  
गिरानेसे, तथा वस्त्र, पात्र, पखा आदिको हिलाकर वायुकायकी उदीरणा  
करनेसे तथा बोलते समय उष्णवायु निकलनेके द्वारा मुखसे वायुकायकी  
विराधना होती है ।

(५) वनस्पतिकायसयमः-वृक्ष, लता आदि हरित कायके सघटा  
आदिसे निवृत्त होना ।

(२) अप्कायसयमः—सचित्त जलनु सघटन आदि न करवु

(३) तेजस्कायसयमः—राधवु, रधाववु वगेरे कोर्ध प्रथोजनने  
भाटे अग्निनु सघटन आदिने वन्नु

(४) वायुकायसयमः—वस्त्र, पात्र, पजो, कूक धत्यादिथी उत्पन्न थम्मेला  
वायुद्वारा वायुकायनी विराधना वन्धी

वस्त्र, पात्रो धत्यादिने अयतनापूर्वक राधवाथी, अयतनापूर्वक लेवाथी,  
कूकवाथी, पाउवाथी, तथा वस्त्र-पात्र-पजो वगेरेने डलावीने वायुकायनी उदीरणा  
करवाथी तथा जोलती वपते सुभना उना वायुथी वायुकायनी विराधना थाय छे

(५) वनस्पतिकायसयमः—वृक्ष, लता आदि हरितकायना सघटन  
आदिथी निवृत्त थवु

एव (६) द्वीन्द्रियादि- (९) पञ्चेन्द्रियपर्यन्ताना सर्वाऽनुपमर्दनं तत्तत्सयमः  
 (१०) अजीवकायसयमः=बहुमूल्यवत्ता वस्त्रपात्रादीनामनुपादानम्, उपादेय-  
 वस्त्रपात्रादीना सयत्नमुपादानं स्थापनं च, (११) प्रेक्षासयमः=वसतिवस्त्रपात्रा-  
 दीना सयत्नं सविधिं प्रतिलेखनम्, (१२) उपेक्षासयमः=सयममार्गं क्लेशमाक-  
 ल्यतोऽसयममार्गं प्रवर्तमानस्य वा स्वात्मनः परस्य वा असयमदोषान् सयम-

(६-७-८-९) द्वीन्द्रियादिसयम=द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय,  
 और पञ्चेन्द्रिय जीवोंका सर्वथा उपमर्दन न करना तत्तत्सयम, अर्थात्  
 द्वीन्द्रियसयम, त्रीन्द्रियसयम, चतुरिन्द्रियसयम, पञ्चेन्द्रियसयम  
 कहलाता है।

(१०) अजीवकायसयम=बहुत मूल्यवाले वस्त्र पात्र आदिका ग्रहण  
 न करना, तथा कल्पनीय वस्त्र पात्र आदि को यतनाके साथ लेना और  
 रखना।

(११) प्रेक्षासयम=वसती, वस्त्र, पात्र, पाट, पाटला आदिका यतना-  
 पूर्वक सविधि प्रतिलेखन करना।

(१२) उपेक्षासयम=सयममार्गमें अनुकूलप्रतिकूलपरिषर्होंसे क्लेशका  
 अनुभव करनेवाले, अथवा असयममें प्रवृत्ति करनेवाले स्वपरकी आत्माको  
 सयमके गुण और असयमके दोष समझाकर फिर सयममार्गमें प्रवृत्त

(६-७-८-९) द्वीन्द्रियादिसयम—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, अने  
 पञ्चेन्द्रिय जीवोंनु सर्वथा उपमर्दन न करवु, ते ते प्रकारनो सयम, अर्थात्  
 द्वीन्द्रियसयम, त्रीन्द्रियसयम, चतुरिन्द्रियसयम अने पञ्चेन्द्रियसयम  
 कहेवाय छे

(१०) अजीवकायसयम—मूल्यवान वस्त्र पात्र आदिने ग्रहण न करवा,  
 तथा कटपे तेवा न वस्त्र पात्र आदिने यतनापूर्वक लेवा तथा राखवा

(११) प्रेक्षासयम—वसती, वस्त्र, पात्र, पाट, पाटला इत्यादिने यतना  
 पूर्वक तथा विधिसर प्रतिलेखन करवा

(१२) उपेक्षासयम—सयममार्गमा अनुकूल-प्रतिकूल परिषर्होशी  
 क्लेशनो अनुभव करनारा, अथवा असयममा प्रवृत्ति करनारा, स्वपरना  
 आत्माकोने सयमना शुष्ण तथा असयमना दोष समझनीने पछी सयममार्गमा

गुणाश्चावरोभ्य समययोगेषु प्रवर्त्तन समयसमीपानयनलक्षण समयसामीप्य-  
दर्शनमित्यर्थः । यद्वा प्रेक्षासयमः=सकृत्प्रतिलेखनम् । उपेक्षासयमः=पुनः पुनः  
प्रतिलेखनम् । (१३) अपहृत्य(परिष्ठापना)सयमः=उच्चारणादीना विधिना समुत्सर्गः  
परिष्ठापनमित्यर्थः । (१४) प्रमार्जनासयम=विधिना वसतिपात्रादेः परि-  
शोधनम् । (१५-१६-१७) मनोवाक्यासयमः=अकुशला मनावाक्कायाना  
निरोधेन कुशलानामुदीरणम् । तत्राऽऽर्त्तरीन्द्रियानपरिहारपूर्वकधर्मशुक्ल-  
प्रवर्त्तन मनःसयमः । सावद्यपरिहारपूर्वकनिरवद्यभाषण सारसयमः । अयतनापरि-

करना । अथवा वस्त्र पात्र आदिके उपभोग करते समय एक बार प्रति-  
लेखन करना प्रेक्षासयम है, और बारवार चारों ओरसे प्रतिलेखन  
करना उपेक्षासयम है ।

(१३) अपहृत्य(परिष्ठापना)सयम=यतनापूर्वक उच्चार-प्रसवणको  
त्यागना ।

(१४) प्रमार्जनासयम=यतनाके साथ वसती वस्त्र पात्र आदिको  
पूँजना (प्रमार्जन करना) ।

(१५) मनःसयम=अकुशल मनका निरोध करके कुशल मनकी प्रवृत्ति  
करना, अर्थात् आर्त्तध्यान और रौद्रध्यानका त्याग करके धर्म और शुक्ल-  
ध्यानमें मनको लगाना ।

(१६) वचनसयम=अशुभ (सावद्य) वचनका त्यागकर शुभ (निरवद्य)  
वचन बोलना ।

प्रवृत्त कर्त्वा अथवा वस्त्र-पात्र आदिने उपभोग करती वपते ओकेवार प्रतिलेखन  
करवु ओ प्रेक्षासयम छे, अने बार बार चारे णाल्युद्योधी प्रतिलेखन करवु ओ  
उपेक्षासयम छे

(१३) अपहृत्य (परिष्ठापना) सयम—यतनापूर्वक उच्चार-प्रसवणने  
परिठेववा-त्यजवा

(१४) प्रमार्जनासयम—यतनापूर्वक वसती वस्त्र पात्र आदिने  
पूजवा (प्रमार्जवा)

(१५) मनःसयम—अकुशल मनने निरोध करीने कुशल मननी प्रवृत्ति  
करवी, अर्थात् आर्त्तध्यान अने रौद्रध्यानने त्याग करीने धर्मध्यान तथा शुक्ल-  
ध्यानमा मनने लगाववु

(१६) वचनसयम—अशुभ वचनने त्याग करीने शुभ वचन बोलवा

एव (६) द्वीन्द्रियादि- (९) पञ्चेन्द्रियपर्यन्ताना सर्वथाऽनुपमर्दनं तत्तत्सयमः  
 (१०) अजीवकायसयमः=बहुमूल्यवता वस्त्रपात्रादीनामनुपादानम्, उपादेय-  
 वस्त्रपात्रादीना सयत्नमुपादानं स्थापनं च, (११) प्रेक्षासयमः=वसतिवस्त्रपात्रा-  
 दीना सयत्नं सविधिं प्रतिलेखनम्, (१२) उपेक्षासयमः=सयममार्गं क्लेशमाक-  
 ल्यतोऽसयममार्गं प्रवर्तमानस्य वा स्वात्मनः परस्य वा असयमदोषान् सयम-

(६-७-८-९) द्वीन्द्रियादिसयम=द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय,  
 और पञ्चेन्द्रिय जीवोका सर्वथा उपमर्दनं न करना तत्तत्सयम, अर्थात्  
 द्वीन्द्रियसयम, त्रीन्द्रियसयम, चतुरिन्द्रियसयम, पञ्चेन्द्रियसयम  
 कहलाता है।

(१०) अजीवकायसयम=बहुत मूल्यवाले वस्त्र पात्र आदिका ग्रहण  
 न करना, तथा कल्पनीय वस्त्र पात्र आदि को यतनाके साथ लेना और  
 रखना।

(११) प्रेक्षासयम=वसती, वस्त्र, पात्र, पाट, पाटला आदिका यतना-  
 पूर्वक सविधिं प्रतिलेखन करना।

(१२) उपेक्षासयम=सयममार्गमें अनुकूल प्रतिकूल परिषहोंसे क्लेशका  
 अनुभव करनेवाले, अथवा असयममें प्रवृत्ति करनेवाले स्वपरकी आत्माको  
 सयमके गुण और असयमके दोष समझाकर फिर सयममार्गमें प्रवृत्त

(६-७-८-९) द्वीन्द्रियादिसयम—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, अने  
 पञ्चेन्द्रिय जीवोक्तुं सर्वथा उपमर्दनं न करणु, ते ते प्रकारनो सयम, अर्थात्  
 द्वीन्द्रियसयम, त्रीन्द्रियसयम, चतुरिन्द्रियसयम अने पञ्चेन्द्रियसयम  
 कहेवाय छे

(१०) अजीवकायसयम—मूल्यवान वस्त्र पात्र आदिने ग्रहणु न करवा,  
 तथा कल्पे तेवा न वस्त्र पात्र आदिने यतनापूर्वक लेवा तथा राखवा

(११) प्रेक्षासयम—वसती, वस्त्र, पात्र, पाट, पाटला इत्यादिने यतना  
 पूर्वक तथा विधिसर प्रतिलेखन करवा

(१२) उपेक्षासयम—सयममार्गमा अनुकूल-प्रतिकूल परिषहोधी  
 क्लेशनो अनुभव करनारा, अथवा असयममा प्रवृत्ति करनारा, स्वपरना  
 आत्माकोने सयमना शुणु तथा असयमना दोष समझवीने पछी सयममार्गमा

પૂર્વે વાયુકાયસયમવિષયે પ્રોક્ત યત્—‘અનાવૃત્તમુખેન સમાપણે મુખ-નિર્ગતોષ્ણવાયુના વાયુકાયવિરાધન જાયતે’ ઇતિ, તત્ર કેચિદેવ વદન્તિ—આત્મા હિ ભાપણકાલે ચતુઃસ્પર્શવતો ભાપાવર્ગણાપુદ્ગલાન્ ગૃહ્ણાતિ તૈર્વાયુકાયસ્ય વિરાધના ન સમવ્રતિ તસ્યાપિ ચતુઃસ્પર્શવત્ત્વાદિતિ.

તેપામપર્યાપ્તમેતત્કથનમ્, વસ્તુતસ્તુ આત્મા પૂર્વે ચતુઃસ્પર્શરૂપુદ્ગલાનેવ ગૃહ્ણાતિ કિન્તુ સમાપણસમયે તૈજસશરીર સમૃદ્ધૈવ ભાપાપુદ્ગલા નિસ્સરન્તીતિ તૈજસશરીર-સમ્બન્ધેન તેઽપ્સ્પર્શવન્તો જાયન્તે તસ્માદનિવાર્યા વાયુકાયવિરાધના ।

પહેલે વાયુકાયસયમમેં કહા હૈ કિ—ચોલતે સમય મુગ્ધસે નિકલને-વાલી વાયુ ગર્મ હતી હૈ ઓર હસી કારણ ઉસસે વાયુકાયકે જીવોંકી વિરાધના હતી હૈ ।

—યહાં કુઝ લોગોંકા કહના હૈ કિ આત્મા ચાર સ્પર્શવાલે ભાપાવર્ગણાકે પુદ્ગલોંકો ગ્રહણ કરતી હૈ ઓર ચાર સ્પર્શવાલે પુદ્ગલોં સે વાયુકાયકી વિરાધના નહીં હો સકતી, ક્યોંકિ વાયુકાયકે જીવમી ચાર સ્પર્શવાલે હોતે હૈં । ઉનકા યહ કથન અધૂરા હૈ । વાત વાસ્તવ મેં યહ હૈ કિ આત્મા ગ્રહણ તો ચાર સ્પર્શવાલે પુદ્ગલોં કા હી કરતી હૈ કિન્તુ ભાપણ કરતે સમય તૈજસ શરીરકો ગ્રહણ કરકે હી ભાપા—પુદ્ગલ નિકલતે હૈં । તૈજસ શરીરકે સમ્બન્ધસે ભાપા—પુદ્ગલ આઠ સ્પર્શવાલે હો જાતે હૈં, ઓર આઠ સ્પર્શવાલે હોને સે ઉનસે વાયુકાય આદિ કી વિરાધના અવશ્ય હોતી હૈ ।

પૂર્વે વાયુકાય—સયમમા એ કહ્યુ છે કે— ખુલે મોઢે મોલવામા મુખમાથી નીકળતા ગરમ વાયુ વડે વાયુકાયના છવેની વિગધના થાય છે ત્યા કેટલાક લોકોનું કહેવું એવું છે કે આત્મા ચાર સ્પર્શવાળા ભાપાવર્ગણાના પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે અને ચાર સ્પર્શવાળા પુદ્ગલોથી વાયુકાયની વિગધના થઈ શકતી નથી કેમકે વાયુકાયના છવે પછી ચાર સ્પર્શવાળા હોય છે એમનું એ કથન અધૂરું છે વ તુત વાત એવી છે કે આત્મા ગ્રહણ તો ચાર સ્પર્શવાળા પુદ્ગલોનું જ કરે છે, કિન્તુ મોલતી વખતે તૈજસ શરીરને ગ્રહણ કરીને જ ભાપાપુદ્ગલો નીકળે એ તૈજસ શરીરના સબધથી ભાપા—પુદ્ગલ આઠ સ્પર્શવાળા થઈ જાય છે, અને આઠ સ્પર્શવાળા થવાથી, તેનાથી વાયુકાય આદિની વિરાધના અવશ્ય થાય છે



हारेण यतनापुरस्सरकायप्रवर्त्तन कायसयम इति विवेकः ।

प्रकारान्तरेणापि सयमः सप्तदशविधः, यथा—

“पञ्चास्रवाद्विरमण, पञ्चेन्द्रियनिग्रहः कपायजयः ।

दण्डत्रयविरतिश्चेति सयमः सप्तदशभेदः ॥११॥” इति ।

तत्र पञ्चास्रवाद्विरमण=पञ्चास्रवाः प्राणातिपातादय एतेभ्यो विरमणं=निवृत्तिः  
(५), पञ्चेन्द्रियनिग्रहः=तत्तद्विषयेष्वप्रवर्त्तनम्, इष्टानिष्टेषु शब्दादिषु रागद्वेषाकरण-  
मित्यर्थः (१०), कपायजयः=उदयभावममाप्नुवता क्रोधादीना चतुर्णां निरोधः,  
उदयभाव प्राप्ताना च तेषा निष्फलीकरणम् (१४) दण्डत्रयविरतिः=दण्डत्रयै-  
रस्तत्रयैश्वर्यापहारादसारीक्रियते आत्मा यैरिति दण्डास्तेषा त्रय दण्डत्रय=मनो-  
दण्ड-वचोदण्ड-कायदण्ड-लक्षणास्रयो दण्डा इत्यर्थः, तस्माद्विरतिः=निवृत्तिः(१७)।

(१७) कायसयम=अयतनाको छोडकर यतनापूर्वक ही कायकी प्रवृत्ति करना ।

सयमके सत्तरह भेद दूसरे प्रकारसे भी होते हैं, जैसे—प्राणातिपात आदि पाच आस्रवोंका विरमण (५), पाच इन्द्रियोंके इष्ट विषयोंमें राग न करना, अनिष्ट विषयोंमें द्वेष न करना (१०), उदयमें न आणहुए क्रोध आदि चार कपायोंका निरोध करना और उदयमें आये हुएको निष्फल करना, जैसे—क्रोधका उदय होने पर क्षमा रखना, मानका उदय होनेपर मार्दव भाव रखना, मायाका उदय होने पर सरलता रखना, और लोभ-कपायका उदय होने पर निर्लोभता धारण करना (१४), ज्ञान आदि गुणोंका अपहरण (नाश) करके आत्माको दरिद्र बनानेवाले मनदण्ड वचनदण्ड, और कायदण्डका त्याग करना (१७),

(१७) कायसयम—अयतनाने त्यजने यतनापूर्वक कायानी प्रवृत्ति करवी सयमना सत्तर बेद थीके प्रकारे पथु थाय छे जेभके प्राणुतिपात आदि पाच आस्रवोनुं विरमणु (५), पाच इन्द्रियोना इष्ट विषयोभा राग न करयो, अनिष्ट विषयोभा द्वेष न करवो (१०), उदयभा न आवेला क्रोध आदि चार कपायोना निरोध करवो अने उदयभा आवेलांने निष्फल करवा जेभके क्रोधने उदय थता क्षमा राखवी, मानने उदय थता मार्दवभाव राखवो, मायाने उदय थता सरलता राखवी, अने लोभकपायने उदय थता निर्लोभता धारणु करवी (१४), ज्ञान आदि गुणोनु अपहरणु (नाश) करीने आत्माने दरिद्र बनावनास भनदंड, वचनदंड अने कायदंडने त्याग करवो (१७),

अयमाशयः—मुखवस्त्रिकाधारणं विना भाषणे वायुकायादिविराधनस्य दुर्वारतया भाषा सावध्या भवतीति ।

एतद्व्याख्याने अभयदेवसूरिणाऽपि—“जीवसरक्षणतोऽनवद्या भाषा भवति, अन्या तु सावधे” त्युक्तम् । ‘सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण’ इत्यस्य हि वस्त्रमपोह्य मुखोपरि वस्त्रमदत्त्वे (भवद्दत्त्वे) त्यर्थः । यदन्वयव्यतिरेकाभ्यां भाषायां निरवद्यत्व सावधत्व च भवति, भाषाभिव्यक्तिश्च मुखान्नवतीति मुखे प्रियमाणं वस्त्रं ‘मुखवस्त्रिका’ शब्देन शास्त्रे व्यवहियते ।

‘शक्र’ इत्येव वक्तव्ये ‘देवेन्द्रो देवराजः’ इति विशेषणोक्त्या दिव्यशक्ति-

तात्पर्यं यह है कि मुखवस्त्रिका धारण किये बिना भाषण करनेसे वायुकायकी विराधना अनिवार्य है, अत एव वह भाषा सावध है । इसका व्याख्यान करते हुए अभयदेवसूरि लिखते हैं—“जीव सरक्षणतोऽनवद्या भाषा भवति अन्या तु सावध्या ।”—अर्थात् जीवों की रक्षा होनेसे भाषा निरवद्य होती है और इससे भिन्न (जीवों की घात करने वाली) भाषा सावध होती है । मूल पाठके ‘सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण’ इस पदका अर्थ यह है कि—‘मुख पर वस्त्र न धारण करके’ जहाँ वस्त्र धारण नहीं वहाँ भाषा सावध होती है, और जहाँ वस्त्र धारण होता है वहाँ भाषा निरवद्य होती है । भाषा मुखसे निकलती है, इसलिए मुख पर धारण किया जानेवाला वस्त्र ‘मुखवस्त्रिका’ कहलाता है ।

मूलमें ‘शक्र’ कहनेसे ही इन्द्रका बोध हो सकता था, किन्तु

तात्पर्यं એ છે કે મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કર્યા વિના ભાષણ કરવાથી વાયુ કાયની વિરાધના અનિવાર્ય છે, તેથી કરીને એ ભાષા સાવધ છે એનું વ્યાખ્યાન કરતા અભયદેવ સૂરિ લખે છે કે “જીવસરક્ષણતોઽનવદ્યા ભાષા ભવતિ અન્યા તુ સાવધ્યા” અર્થાત્ જીવોની રક્ષા થવાથી ભાષા નિરવધ થાય છે અને એથી ભિન્ન (જીવોની ઘાત કરવાવાળી) ભાષા સાવધ હોય છે મૂળ પાઠના ‘સુહૃમકાય અણિજ્જૂહિતાણ’ પદનો અર્થ એ છે કે ‘મુખ પર વસ્ત્ર ન ધારણ કરીને’, ન્યા વસ્ત્ર ધારણ નથી, ત્યા ભાષા સાવધ છે અને ન્યા વસ્ત્ર ધારણ થાય છે ત્યા ભાષા નિરવધ છે ભાષા મુખમાથી નીકળે છે તેથી મુખ પર ધારણ કરવામા આવનારું વસ્ત્ર ‘મુખવસ્ત્રિકા’ કહેવાય છે

મૂળમાં ‘શક્ર’ કહેવાથી ઇન્દ્રનો બોધ થઈ શકતો હતો, પરંતુ દેવેન્દ્ર

## । મુખવચ્ચિકાવિચારઃ ।

નન્તુ મુખોષ્ણમાયુનાઽપિ યદિ વાયુકાયવિરાધન તદ્દિ મુનીના કય વાયુ-કાયસંયમઃ? ઇતિ ચેત્ ન, યતો ભગવતા શ્રીતીર્થક્રુરેણ મુનીના વાયુકાયસંયમાર્થ મુખવચ્ચિકાવન્ધન પ્રતિપાદિતમ્ ।

તદ્વિના હિ શ્રીન્યાખ્યાપ્રણેતૌ પોઢશતમશતકસ્ય દ્વિતીયોદેશે ભગવતા શક્રેન્દ્રસ્યાપિ માષણ સાવઘત્વેન પરિકથિત, તથાહિ—

‘ગોયમા! જાહે ણ સક્રે દેવિદે દેવરાયા મુહુમકાય અણિજૂહિતાણ માસ માસતિ તાહે ણ સક્રે દેવિદે દેવરાયા સાવજ્જ માસ માસઃ। જાહે ણ સક્રે દેવિદે દેવરાયા મુહુમકાય ણિજૂહિતાણ માસ માસઃ તાહે સક્રે દેવિદે દેવરાયા અસાવજ્જ માસ માસઃ’ ઇત્યાદિ ।

‘ગૌતમ! યદા શક્રો દેવેન્દ્રો દેવરાજઃ સૂક્ષ્મકાયમપોહ માષા માષતે તદા શક્રો દેવેન્દ્રો દેવરાજઃ સાવઘા માષા માષતે । યદા શક્રો દેવેન્દ્રો દેવરાજઃ સૂક્ષ્મકાય દચ્ચા માષા માષતે તદા શક્રો દેવેન્દ્રો દેવરાજઃ અસાવઘા માષા માષતે’ ઇતિ સસ્કૃતમ્ ।

## મુખવચ્ચિકાવિચાર.

જબ મુખસે નિકલનેવાલી વાયુસે વાયુકાય કી વિરાધના હોતી હૈ, તો મુનિ વાયુકાયકા સયમ કૈસે પાલ સકતે હૈ ? હસ પ્રશ્ન કા ઉત્તર યહી હૈ કિ વાયુકાયકે સયમકે લિષ્ હી તીર્થકર ગણધર ભગવાનને મુખવચ્ચિકા ધારણ કરના બતાયા હૈ । ભગવતીસૂત્ર સોલહવેં શતક કે દૂસરે ઉદ્દેશમેં ભગવાનને વિના મુખવચ્ચિકાકે ઇન્દ્ર મહારાજકે માષણકો ખી સાવઘ બતાયા હૈ, યથા—“ ગોયમા ! ” ઇત્યાદિ ।

## મુખવચ્ચિકાવિચાર

એ મુખમાથી નિકળનારા વાયુથી વાયુકાયની વિરાધના થાય છે, તો મુનિ વાયુકાયનો સયમ કેવી રીતે પાળી શકે છે ? એ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ છે કે વાયુકાયના સયમને માટે જ તીર્થકર ગણધર ભગવાને મુખવચ્ચિકા ધારણ કરવાનું બતાવ્યું છે ભગવતી-સૂત્રના સોળમા શતકના પીઠા ઉદ્દેશમા મુખવચ્ચિકા વિનાના ઇન્દ્ર મહારાજના ભાષણને પણ ભગવાને સાવઘ બતાવ્યું છે.— ‘ગોયમા’ ઇત્યાદિ

पुनरपि—

“मुखे बाधी ते मुहपती, हेठे पाटो धारी ।

अति हेठी दाढी थई, जोतर गळे निवारी ॥ १ ॥

“एक काने धजसम कही, खधे पछेडी ठाम ।

केडे खोसी कोथली, नावे पुण्यने काम ॥ २ ॥” इति ।

(श्रावक-ऋषभदासकृते हितशिक्षारासे पृ० ३८ प० १६)

“सुलभ बोधी जीवडा, माडे निज पटकर्म ।

साधु जन मुख मोंपती, बाधी है जिन-धर्म ॥१॥”

(मुनिलब्धिविजयकृते हरिवलमन्त्रीरासे पृ० ७३ दोहा ५)

और भी कहा है—

“मुखे बांधी ते मुहपती, हेठे पाटो धारी ।

अति हेठी दाढी थई, जोतर गळे निवारी ॥१॥

एक काने धज सम कही, खधे पछेडी ठाम ।

केडे खोसी कोथली, नावे पुण्यने काम ” ॥२॥

(श्रावक-ऋषभदासकृत हितशिक्षारासे पृ० ३८ प १६)

“सुलभ-बोधी जीवडा, माडे निज पट-कर्म ।

साधुजन मुख मोंपती बाधी है जिन-धर्म ” ॥१॥

(हरिवलमन्त्रीरास मुनिलब्धिविजयकृत पृ० ७३ दोहा ५)

वणी कहु छे हे—

“मुजे बाधी ते मुहपती हेठे पाटो धारी,

अति हेठी दाढी थई जोतर गळे निवारी (१)

एक काने धज सम कही, खधे पछेडी ठाम,

केडे खोसी कोथली, नावे पुण्यने काम ” (२)

(श्रावक-ऋषभदासकृत ‘हित-शिक्षा-रास’

पृष्ठ ३८ प १६)

“सुलभ बाधी जीवडा, माडे निज पट-कर्म

साधु जन मुख मोंपती बाधी है जिन-धर्म ” (१)

(हरिवल-भन्धी-रास-मुनि लब्धिविजयकृत

पृष्ठ ७३, दोहा ५)

मत्त्वेऽपि तस्य मुखवस्त्रिकाधारणाभावे यदि सात्रधा भाषा तर्हि औदारिक शरीरधारिणा का वार्त्ते ? ति धनितम् ।

सा च मुखवस्त्रिका वायुकायादिमाणिसरसणोपयोगि-मुखोपरिवन्धनीय-मुखपरिमित-सदोरकाऽष्टपुटवस्त्रखण्डविशेषः । अत्राय सङ्ग्रहः—

“वाउकायाइरखट्ट, वज्जई ज सया मुहे ।

सदोरट्टपुड वत्थ, युत्ता सा मुहवत्थिया ॥ १ ॥

मुहमाणा जईलिंग, सन्वसजमकारण ।

पसत्थभावणाबुद्धी-हेऊ य मुहवत्थिया ॥ २ ॥” इति ।

देवेन्द्र और देवराज विशेषणों का देना यह सिद्ध करता है कि जब दिव्य शक्तिमान होने पर भी मुखवस्त्रिका न धारण करने से उसकी भाषा सावध होती है तो औदारिक-शरीर-धारियों की बात ही क्या है? उनकी भाषा अवश्य ही सावध होगी ।

वह मुखवस्त्रिका वायुकाय आदिके प्राणियोंकी रक्षाके लिये उप-योगी, मुख पर बाधने योग्य, मुखके बराबर डोरा सहित आठ पुटवाला, वस्त्रका खण्डविशेष है । यहा सङ्ग्रहाथाएँ हैं—‘वाउ’ इत्यादि,

अर्थात्-वायुकाय आदिकी रक्षाके लिये जो सदा मुख पर बांधी जाती है, वह डोरासहित आठ पुटवाला वस्त्र “मुखवस्त्रिका” कहलाती है ॥१॥ वह मुखवस्त्रिका मुख-प्रमाण होती है, यह मुनिका चिह्न सर्व सयमका कारण तथा प्रशस्त भावना की वृद्धिका कारण है ॥२॥

अने देवराज विशेषणो ओ सिद्ध करे छे के ओ दिव्य शक्तिमान होवा छता पणु मुखवस्त्रिका न धारणु करवाथी ओनी भाषा सावध थाय छे तो औदारिक-शरीरधारिओनी वात न शी ? ओनी भाषा पणु नउर न सावध न थाय

ओ मुखवस्त्रिका वायुकाय आदिना प्राणीओनी रक्षाने माटे उपयोगी, मुख पर बाधवा योग्य, मुखनी पराणर, दोरासहित आठपुटवाणो ; वस्त्रने पठविशेष छे अही सङ्ग्रहाथाओ छे—‘वाउ’ इत्यादि

अर्थात्-वायुकाय आदिनी रक्षाने माटे ओ सदा मुख पर बाधवाभा आवे छे, ते दोरासहित आठपुटवाणु वस्त्र ‘मुखवस्त्रिका’ कहवाय छे (१) ओ मुखवस्त्रिका मुख-प्रमाण होय छे ओ मुनिनु चिह्न सर्व सयमनु कारण तथा प्रशस्त भावनानी वृद्धिनु कारण छे (२)

पुनरपि—

- “ मुखे बाधी ते मुहुपती, हेठे पाटो धारी ।  
अति हेठी दाढी थई, जोतर गळे निवारी ॥ १ ॥
- “ एक काने धजसम कही, खघे पछेड़ी ठाम ।  
केडे खोसी कोथली, नावे पुण्यने काम ॥ २ ॥ ” इति ।  
(श्रावक-ऋषभदासकृते हितशिक्षारासे पृ० ३८ प० १६)
- “ सुलभ बोधी जीवडा, माडे निज पटकर्म ।  
साधु जन मुख मोंपती, बाधी है जिन-धर्म ॥१॥”  
(मुनिलब्धिविजयकृते हरिवलमन्त्रीरासे पृ० ७३ दोहा ५)

और भी कहा है—

- “ मुखे बांधी ते मुहुपती, हेठे पाटो धारी ।  
अति हेठी दाढी थई, जोतर गळे निवारी ॥१॥  
एक काने धज सम कही, खघे पछेड़ी ठाम ।  
केडे खोसी कोथली, नावे पुण्यने काम ” ॥२॥  
(श्रावक-ऋषभदासकृत हितशिक्षारासे पृ० ३८ प १६)
- “ सुलभ-बोधी जीवडा, माडे निज पट-कर्म ।  
साधुजन मुख मोंपती बांधी है जिन-धर्म ” ॥१॥  
(हरिवलमन्त्रीरास मुनिलब्धिविजयकृत पृ० ७३ दोहा ५)

वणी कहु छे डे—

- “ मुजे बाधी ते मुहुपती हेठे पाटो धारी,  
अति हेठी दाढी थई नेतर गणे निवारी (१)
- एक काने धज सम कही, अघे पछेड़ी ठाम,  
केडे जोसी कोथली, नावे पुण्यने काम ” (२)  
(श्रावक-ऋषभदासकृत ‘हित-शिक्षा-रास’  
पृ० ३८ प १६)
- “ सुलभ बाधी जीवडा, माडे निज पट-कर्म  
साधु जन मुख मोंपती बाधी है जिन-धर्म ” (१)  
(हरिवल-मन्त्री-रास-मुनि लब्धिविजय कृत  
पृ० ७३, दोहा ५)

નતુ ભાષણસમયે હસ્તેનાપિ વક્ત્રમાદાય મુલાચ્છાદને ઉક્તજીવરક્ષા નિર્વહતિ કિમન્યદાપિ મુલવલ્લિકાવન્ધનેન ? इति चेदुच्यते—

ન કેવલ ભાષણસમય એવ જીવવિરાધનાસમ્ભવઃ, યતો હસ્તેન વક્ત્રમાદાય મુલાચ્છાદને જીવરક્ષા સમ્ભવેત્, કિન્તુ દીર્ઘશ્વાસનિઃશ્વાસાભ્યા, જૃમ્માતઃ, સ્વભાવાદક્સ્માદપિ ચ, તથા નિદ્રાવસ્થાયા મુલવ્યાદાનાશ્ચ તત્સમ્ભવ इति ન હસ્તેન મુલોપરિ વક્ત્ર ધારયન્તઃ સમ્યગ્ જીવરક્ષા સર્વદા કર્તુ પ્રમત્વન્તિ, વક્ત્રેણ મુલમાચ્છાદ્ય પ્રસુપ્તસ્યાપિ નિદ્રાયા પાર્શ્વપરિવર્તનેન વદ્ધાપસરણે સતિ ક ઉપાયસ્તદાર્ણી સૂક્ષ્મ-

यहाँ यह आशङ्का की जा सकती है कि जब बोलनेका काम पड़े तब हाथमें कपडा लेकर मुँह ढँक लेनेसे वायुकाय आदि जीवोंकी रक्षा हो सकती है, जब बोलते नहीं उस समय भी मुखवल्लिका बांध रखनेसे क्या लाभ है ?

इसका उत्तर यह है कि केवल बोलते समय ही मुखसे हवा नहीं निकलती जिससे हाथमें बन्ध लेकर मुँह ढँक लेनेसे जीवोंकी रक्षा हो जाय । किन्तु दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेनेसे, जभाई लेनेसे, स्वभावसे, अकस्मात्, तथा निद्रावस्था में मुख खुला रहनेसे भी हवा निकलती है । अतएव मुख पर हाथसे बन्ध लगानेसे जीवोंकी सम्यक् प्रकार सर्वदा रक्षा नहीं हो सकती । बन्धसे मुँह ढाँक कर सोया हुआ व्यक्ति नींद में करबट (पसवाडा) बदलता है तब बन्ध खिसक जाता है । उस समय सूक्ष्म,

અહીં એવી આશંકા કરી શકાય છે કે બ્યારે બોલવાનુ કામ પડે ત્યારે હાથમા કપડુ લઇને મ્હો ઢાકી લેવાથી વાયુકાય આદિ જીવોની રક્ષા થઈ શકે છે બ્યારે બોલતા ન હોઈએ, ત્યારે પણ મુખવલ્લિકા બાંધી રાખવાથી શો લાભ છે ?

એનો ઉત્તર એ છે કે કેવળ બોલતી વખતે જ મુખમાથી હવા નીકળતી નથી કે નેથી હાથમા વસ્ત્ર લઇને મ્હો ઢાકી લેવાથી જીવોની રક્ષા થઈ જાય. કિન્તુ દીર્ઘ શ્વાસોચ્છ્વાસ લેવાથી, ખગાસુ ખાવાથી, સ્વભાવથી, અકસ્માત્ તથા નિદ્રાવસ્થામા મ્હો ખુલુ રહેવાથી પણ હવા નીકળે છે તેથી મ્હો પર હાથ વડે વસ્ત્ર લગાડવાથી જીવોની સમ્યક્ પ્રકારે સર્વદા રક્ષા થઈ શકતી નથી વસ્ત્રથી મ્હો ઢાકીને સૂતેલી વ્યક્તિ ઉઘમા બ્યારે પાસુ બદલાવે છે ત્યારે વસ્ત્ર ખસી

व्यापिसम्पातिमजीवसच्चित्तरजःप्रवेशवारणार्थं दीर्घोष्णनिःश्वासोच्छ्वासजनित-  
वायुकायविराधनापरिहारार्थं च ।

तथा चोक्त योगशास्त्रे तृतीयप्रकाशे सप्ताशीतितमश्लोकस्य स्वोपज्ञविवरणे  
हेमचन्द्राचार्येण—

“मुखवस्त्रमपि सम्पातिमजीवरक्षणादुष्णमुखवातविराध्यमानवाह्य-  
वायुकायजीवरक्षणान्मुखे धूलिप्रवेशरक्षणाचोपयोगी”ति ।

तथा चोत्तराध्ययनसूत्रे तृतीयाध्ययने श्रीलक्ष्मीवल्लभीयायां नवमगाथा-  
व्यारयाया सप्तमनिह्वोदाहरणेऽपि—

“तथा सम्पातिमाः सत्त्वाः, सूक्ष्माश्च व्यापिनोऽपरे ।

तेषा रक्षानिमित्तं च, विज्ञेया मुखवस्त्रिका ॥१॥” इति ।

व्यापी और सपातिम जीव तथा सच्चित्त रज आदि मुखमें जानेसे कैसे  
रुक सकते हैं ?, तथा दीर्घश्वासोच्छ्वाससे होनेवाली वायुकायकी विरा-  
धना का क्योंकर परिहार हो सकता है ? इन्हें रोकने का उपाय ही क्या  
है ? हेमचन्द्राचार्य कहते हैं “मुखवस्त्र०” इत्यादि—

अर्थात् “मुखवस्त्र, सपातिम जीवोंकी रक्षा करता है, मुख से  
निकलने वाले उष्ण वायु द्वारा विराधित होनेवाले वाह्य वायुकायके  
जीवोंकी रक्षा करता है, तथा मुँहमें धूली नदी घुसने देता, इसलिये वह  
उपयोगी है ।”

उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे उद्देशकी टीकामें कहा है—“सन्ति०”  
इत्यादि,

अर्थात् “सपातिम, सूक्ष्म और व्यापी जीवोंकी रक्षाके लिये मुख-

व्यय . छे ते समये - सूक्ष्म, व्यापि अने सपातिम एव तथा सच्चित्त रज  
आदि सुभभा नवाथी डेवी रीते रोकध शके ? तथा दीर्घ श्वासोच्छ्वासाथी  
थनादी वायुकायनी विराधनानो डेवी रीते परिहार थध शके ? तेने रोकवानो  
उपाय न शो छे ? हेमचन्द्राचार्य कहे छे डे “मुखवस्त्र०” इत्यादि

अर्थात्—सुभवश्च सपातिम एवोनी रक्षा करे छे, सुभथी नीकणता उष्ण  
वायु द्वारा विराधित थता वायुकायना एवोनी रक्षा करे छे, तथा सुभभा धूण  
पेसवा हेतु नथी, तेथी ते उपयोगी छे ”

उत्तराध्ययन सूत्रना त्रीन उद्देशनी टीकामा कहु छे डे “सन्ति” इत्यादि  
अर्थात्—“सपातिम, सूक्ष्म अने व्यापी एवोनी रक्षाने भाटे सुभवश्चिका



નતુ ભાષણસમયે હસ્તેનાપિ વક્ત્રમાદાય મુલાચ્છાદને ઉક્તજીવરક્ષા નિર્વહતિ  
કિમન્યદાપિ મુલવલ્લિકાવન્ધનેન ? इति चेदुच्यते—

ન કેવલ ભાષણસમય એવ જીવવિરાધનાસમ્ભવઃ, યતો હસ્તેન વક્ત્રમાદાય  
મુલાચ્છાદને જીવરક્ષા સમભવેત્, કિન્તુ દીર્ઘશ્વાસનિઃશ્વાસાભ્યા, જૃમ્માતઃ, સ્વભાવા-  
દક્સ્માદપિ ચ, તથા નિદ્રાવસ્થાયા મુલવ્યાદાનાચ્છ તત્સમ્ભવ इति ન હસ્તેન  
મુલોપરિ વક્ત્ર ધારયન્તઃ સમ્યગ્ જીવરક્ષા સર્વદા કર્તુમશક્તિઃ, વક્ત્રેણ મુલમાચ્છાદ  
પ્રસૂતસ્યાપિ નિદ્રાયા પાર્શ્વપરિવર્તનેન વદ્ધાપસરણે સતિ ક ઉપાયસ્તદાનીં શૂક્ષ્મ-

यहाँ यह आशङ्का की जा सकती है कि जब बोलनेका काम पड़े  
तब हाथमें कपडा लेकर मुँह ढँक लेनेसे वायुकाय आदि जीवोंकी रक्षा  
हो सकती है, जब बोलते नहीं उस समय भी मुखवल्लिका बांध रखनेसे  
क्या लाभ है ? ।

इसका उत्तर यह है कि केवल बोलते समय ही मुखसे हवा नहीं  
निकलती जिससे हाथमें वक्त्र लेकर मुँह ढँक लेनेसे जीवोंकी रक्षा हो  
जाय । किन्तु दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेनेसे, जभाई लेनेसे, स्वभावसे, अक-  
स्मात्, तथा निद्रावस्था में मुख खुला रहनेसे भी हवा निकलती है ।  
अतएव मुख पर हाथसे वक्त्र लगानेसे जीवोंकी सम्यक् प्रकार सर्वदा रक्षा  
नहीं हो सकती । वक्त्रसे मुँह ढँक कर सोया हुआ व्यक्ति नींद में करबट  
(पसबाडा) बदलता है तब वक्त्र खिसक जाता है । उस समय सूक्ष्म,

અહીં એવી આશંકા કરી શકાય છે કે જ્યારે બોલવાનું કામ પડે ત્યારે  
હાથમા કપડું લઈને મોઢા ઢાકી લેવાથી વાયુકાય આદિ જીવોની રક્ષા થઈ શકે  
છે જ્યારે બોલતા ન હોયએ, ત્યારે પણ મુખવલ્લિકા બાંધી રાખવાથી શો  
લાભ છે ?

એનો ઉત્તર એ છે કે કેવળ બોલતી વખતે જ મુખમાથી હવા નીકળતી  
નથી કે જ્યારે હાથમા વક્ત્ર લઈને મોઢા ઢાકી લેવાથી જીવોની રક્ષા થઈ જાય  
કિન્તુ દીર્ઘ શ્વાસોચ્છ્વાસ લેવાથી, અગાસુ ખાવાથી, સ્વભાવથી અકસ્માત્ તથા  
નિદ્રાવસ્થામા મોઢા ખુલુ રહેવાથી પણ હવા નીકળે છે તેથી મોઢા પર હાથ વડે  
વક્ત્ર લગાડવાથી જીવોની સમ્યક્ પ્રકારે સર્વદા રક્ષા થઈ શકતી નથી વક્ત્રથી  
મોઢા ઢાકીને સૂતેલી વ્યક્તિ ઉઘમા જ્યારે પાસુ બદલાવે છે ત્યારે વક્ત્ર ખસી

ध्यायविरचित-सर्वार्थसिद्धि-टीकाया तृतीयाभ्ययनेऽप्येवमेव । एव विशेषा-  
वश्यकवृहद्बृत्तावप्युक्तम् ।

किञ्चाऽऽगमविरोधोऽपि तेषा ( अवद्धमुखवस्त्रिकाया ) दुर्वार एव, तथाहि  
-भगवतीसूत्रे द्वितीयशतकस्य प्रथमोद्देशके स्कन्दकानधारस्यानशनकाले 'नमो-  
त्यु ण' पाठविधौ—

“पुरत्याभिमुहे सपलियकनिसण्णे करयलपरिग्गहिय दसनह सिर-  
सावत्त मत्थण अजलिं कट्टु एव वयासी ” इत्याद्युक्तम् ,

तत्राञ्जलिवद्भस्य करद्वयस्य शिरसि स्थापने पद्मासनसस्थः स्कन्दकोऽनगारः  
कथ तन्मते 'नमोत्यु ण' पाठमनाहतमुखेन व्यधात् । अनाहतमुखेन हि मुनयो  
न भापन्ते, तथाविधभाषणस्याऽऽगमप्रतिपिद्धत्वात् ।

पाध्यायविरचित सर्वार्थसिद्धिनामकी तीसरे अध्ययनकी टीकामें भी इसी  
प्रकार कहा है और ऐसेही विशेषावश्यक वृहद्बृत्तिमें भी कहा है ।

जो मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बाधते, उनके मतमें आगम-विरोध  
अनिवार्य है। भगवतीसूत्र २ श०, १ उ० में स्कन्दक अनगारके अनशन  
समय में 'नमोत्यु ण' के पाठकी विधिमें कहा है—“पुरत्या०” इत्यादि।

इसमें विचारणीय विषय यह है कि अञ्जलि बाध कर दोनों हाथ  
सिर पर धर कर पद्मासन लगाकर पूर्व दिशाकी ओर मुख करके बैठे हुवे  
स्कन्दक अनगारने 'नमोत्यु ण' पाठ खुले मुखसे कैसे उच्चारण किया,  
क्योंकि दोनों हाथ सिर पर रखे हुए थे । और खुले मुखसे तो मुनि  
बोलते नहीं, क्योंकि ऐसा बोलना तो शास्त्रसे निषिद्ध है ।

सर्वार्थ-सिद्धि नामनी त्रीन अध्ययननी टीकाभा पण्णु ओषु ञ कल्लु छे, ओषीण  
रीते विशेषावश्यक वृहद्बृत्तिभा पण्णु कल्लु छे

ओओ सुभ पर सुभवस्त्रिका बाधता नथी, तेमना मतमा आगम-विरोध  
अनिवार्य छे भगवतीसूत्र २ श १ उ मा स्तदक अनगारना अनशन समयमा  
'नमोत्यु ण' ना पाठनी विधिमा कल्लु छे—“पुरत्या०” इत्यादि

ओमा विचारणीय विषय ओ छे के अञ्जलि बाधीने, ओउ हाथ शिर पर  
धारणु करीने, पद्मासन लगावीने, पूर्व दिशा तरङ्ग सुभ करीने ओठेला स्तदक  
अनगारे 'नमोत्यु ण' पाठनु सुत्ता सुभे डेवी रीते उच्चारणु कर्यु ? केभके ओउ  
हाथ माथा पर राषेला डता अने सुत्ते सुभे तो मुनि बोले नहि, कारणु  
के ओम बोलेनु शास्त्रधी निषिद्ध छे

ઓઘનિર્યુક્તૌ દ્વાદશાધિકસપ્તાતતમ (૭૧૨)-ગાથાઽપ્યેવમેઽ વૌધયતિ-

“ સપાતિમરયરેણુ, -પમજ્જણદ્વા વયતિ મુહપત્તિ ।

નાસ મુહ ચ વધઈ, તીણ ડસઈં પમજ્જતો ॥ ૭૧૨ ॥ ”

“ સપાતિમરજોરેણુપ્રમાર્જનાર્યં વદન્તિ મુલ્લપત્રીમ્ ।

નાસિકા મુલ્લ ચ વધ્નાતિ, તયા વસતિ પ્રમાર્જયન્ ॥૭૧૨॥

ઈતિ સસ્કૃતમ્ ।

વસતિ પ્રમાર્જયતા ઘ્રાણે મુલ્લે ચૈતદ્વયેઽપિ મુલ્લવસ્ત્રિકા વન્ધનીયા, અન્યદા મુલ્લ પવેત્યાશયઃ, અન્યથા ભગવતીસૂત્રાપ્યનેકાગમવિરોધાપત્તિર્દુર્વારા સ્યાત્ ।

પવમેવ પ્રવચનસારોદ્ધારે ત્રયોવિંશત્યધિકપચ્ચશતતમગાથા વિદ્યતે, તથા પ્રકરણરત્નાકરસ્યાપિ તૃતીયભાગે, ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રસ્ય કમલસયમોપ-

વસ્ત્રિકા સમજ્ઞની ચાહિયે ” ॥૧॥

ઓઘનિર્યુક્તિ ૭૧૨ વીં ગાથામૈં કહા હૈ-“ સપાતિમ૦ ” ઇત્યાદિ ।

અર્થાત્ “સપાતિમ જીવ, સચિત્ત રજ તથા રેણુકી રક્ષા કરનેકે લિયે મુલ્લવસ્ત્રિકા કા કથન કરતે હૈં । ઓર જવ વસતિકી પ્રમાર્જના કરે તથ નાક ઓર મુલ્લ દોનોં વાધે । ”

અર્થાત્ અન્ય સમયમૈં સિર્ફ મુલ્લહી વાધે, યદ્ તાત્પર્ય હુઆ, અન્યથા ભગવતીસૂત્ર આદિ અનેક આગમોંકા વિરોધ અનિવાર્ય હોગા ।

હસીપ્રકાર પ્રવચનસારોદ્ધારકી ૫૨૩ વી ગાથામૈં કહા હૈ । તથા પ્રકરણરત્નાકરકે તીસરે ભાગમૈં, ફિર ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રકી કમલસયમો-

સમજ્ઞવી જ્ઞેઘ્જે ” (૧)

ઓઘનિર્યુક્તિ ૭૧૨ મી ગાથામા કહ્યુ છે કે-સપાતિમ૦ ઇત્યાદિ અર્થાત્- “ સપાતિમ જીવ, સચિત્ત રજ, તથા રેણુની રક્ષા કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકાનું કથન કરે છે અને ત્યારે વસતિની પ્રમાર્જના કરે ત્યારે નાક અને મુખ બેઠ વાધે ”

અર્થાત્-અન્ય સમયમા સિર્ફ મુખજ વાધે, એ તાત્પર્યાર્થ થયુ, અગર એવુ અર્થ નહીં કરવામા આવે તો ભગવતીસૂત્ર આદિ અનેક આગમોના વિરોધ અનિવાર્ય આવશે

એવીજ રીતે પ્રવચનસારોદ્ધારની ૫૨૩ મી ગાથામા કહ્યુ છે તથા પ્રકરણ રત્નાકરના ત્રીજા ભાગમા, અને ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રની કમલસયમોપોધ્યાયરચિત

दानसूत्रस्य व्याख्याया तट्टीकाराकारेण हरिभद्रसूरिणाऽभिहितम्—

“अयं च प्रकृतसूत्रार्थः—अग्रहाद्विदिःस्थितो विनेयोऽर्द्धानतकायः करद्वय-  
गृहीतरजोहरणो वन्दनायोगत एवमाह—इन्नामि—अभिलपामि हे क्षमाश्रमण !  
वन्दितुं नमस्कारं कर्तुं भवन्तमिति गम्यते ” इत्यादि ।

अत्र ‘करद्वयगृहीतरजोहरणः’ इति विशेषण कथयता हरिभद्रसूरिणा  
‘मुखोपरि मुखवस्त्रिकावन्धनं भगवदभिषेत्’ इति प्रकटीकृतम्, अन्यथा क्षमाश्रमण-  
सूत्रोच्चारणकाले करद्वयस्य रजोहरणग्रहणे प्रतिपद्धतया मुखोपरि मुखवस्त्रिका-  
स्थापनस्योपायान्तरासम्भवात् क्षमाश्रमणदानमेव निर्दिश्य स्यात् । अनावृतमुखेन  
तु मुनीनां भाषणमेवाऽऽगममतिपिद्धमिति नात्र केषाञ्चिद्विवादः ।

किञ्च क्षमाश्रमणदाने सम्बोधनशब्दप्रयोगे गुरोः स्वाभिमुखीकरणार्थं सवि-

श्रमणदान सूत्रकी व्याख्यामें व्याख्याकार हरिभद्रसूरिने भी कहा है—  
“अयं” इत्यादि,

यहाँ “दोनों हाथोंमें रजोहरण लेकर” ऐसा कहनेवाले हरिभद्रसूरिने  
यह प्रगट किया है कि मुख पर मुखवस्त्रिका बाधनेकी भगवानकी आज्ञा  
है । अन्यथा जब दोनों हाथोंमें रजोहरण ले लिया तब मुख पर मुख-  
वस्त्रिका धारण करनेके लिए अन्य उपाय असंभव है । और खुले मुख  
बोलनेसे क्षमाश्रमण देना ही व्यर्थ हो जायगा । साधुओंको खुले मुखसे  
बोलना शास्त्रविरुद्ध है, इस विषयमें किसीको विवाद नहीं है । दूसरी  
बात यह है कि क्षमाश्रमणदानमें ‘हे क्षमाश्रमण !’ इस सम्बोधनका  
प्रयोग किया है । इसलिए गुरुको अपनी ओर अभिमुख करनेके लिए

सूत्रकी व्याख्यामा व्याख्याकार हरिभद्रसूरिणे पणु कहुं छे के—‘अयं’ इत्यादि

अही ‘वेड हाथमा रनेडरणु लधने’ जेम कहेता हरिभद्रसूरिणे जेम  
प्रकट कर्तुं छे के मुख पर मुखवस्त्रिका बाधवानी लगवाननी आज्ञा छे नहि  
तो ने वेड हाथमा रनेडरणु लध लीधा अटले मुख पर मुखवस्त्रिका धारण  
करवाने भाटे अन्य उपाय असंभवित छे, अने खुले मुखे बोलवार्थी क्षमा  
श्रमण आपवानुं न व्यर्थ गनी नथ साधुजोअजे खुले मुखे बोलवुं जे  
शास्त्रविरुद्ध छे, जे संबधमा तो कोधने वाधे नथी नील वात जे छे के क्षमा  
श्रमणदानमा ‘हे क्षमाश्रमण’ जेवे संबोधनना प्रयोग कहेवे छे तेथी करीने  
शुद्धे पोतानी तरहे अभिमुख करवाने भाटे विशेष-प्रयत्न-पूर्वक स्पष्ट

किञ्च-अन्तःकृतदशाङ्गपण्डे वर्गेऽतिमुक्ताग्नये पञ्चदशाभ्ययने—

“ तए ण अहमुक्ते कुमारे भगव गोयम एव चयासी-एह णं भते ! तुब्भे जाण अह तुब्भ भिक्ख दवावेमि त्ति कट्टु भगव गोयम अंगुलीए गेण्हह, गिण्हित्ता जेणेव सए गेहे तेणेव उवागए ” इत्यभिहितम् ।

तत्र भिक्षाचर्या गतस्य गौतमस्वामिनो भिक्षापात्रधारणप्रतिवद्वैकहस्ताङ्गुलित्व स्रतरामेव सिद्धम् । इतरस्य तु करस्यादगुलौ अतिमुक्तकुमारेण मृष्टीताया सत्या तस्य भगवतो गौतमस्वामिनो हस्तेन मुखोपरि मुखवस्त्रिकाधारण नोपपद्यते, सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमजीवसच्चित्तरजःप्रवेशादिवारणाय तदानीमपि मुखवस्त्रिकाधारणमावश्यकमेव ।

किञ्चावश्यके ‘इच्छामि खमासमणो ! वदिउ’ इत्यादि-क्षमाभ्रमण-

अन्तःकृतदशाङ्गके ६ वर्गमें ‘अतिमुक्त’ शीर्षक पन्द्रहवें अध्ययनमें कहा है—“ तए ण इत्यादि ।

इस कथनसे भिक्षाचरी (गोचरी) के लिए-गये हृवे, गौतमस्वामीने हाथमें भिक्षाका पात्र लिया था, यह बात स्वयं सिद्ध है और दूसरे हाथ की अंगुली अतिमुक्त कुमारने पकड़ ली थी। इस प्रकार जब दोनों हाथ गौतमस्वामीके रुधे हुए थे तो मुखवस्त्रिका नहीं रही होगी ?। किन्तु सूक्ष्म, व्यापी, सपातिम जीव तथा-सच्चित् रजका प्रवेश रोकनेके लिए मुखवस्त्रिकाकी उस समय भी आवश्यकता थी ।

आवश्यक सूत्रमें “इच्छामि खमासमणो ! वदिउ” इत्यादि क्षमा-

अन्तःकृतदशाङ्गना ६ वर्गमा ‘अतिमुक्त’ शीर्षक पन्द्रहमा अध्ययनमा-कथु छे ‘तए ण’ इत्यादि

आ कथन मुञ्जुण भिक्षाचरी ( गोचरी ) ने भाटे गयेला गौतम स्वामीके हाथमा भिक्षालु पात्र लीधु छतु ओ वात स्वयंसिद्ध छे अने भीला हाथनी आगणी अतिमुक्त कुमारे पकडी लीधी छती ओ प्रकारे जे गौतम स्वामीना जेठ हाथ देकाठ गया छता, तो ते वभते हाथवठे मुखवस्त्रिका मुख पर डेवी नीते राणी छाय ? किन्तु सूक्ष्म, व्यापी, सपातिम एवे तथा सच्चित् रजने प्रवेश देकवाने भाटे ओ समये पण्ण मुखवस्त्रिकानी आवश्यकता छती

आवश्यक-सूत्रमा ‘इच्छामि खमासमणो वदिउ’ इत्यादि क्षमाभ्रमणदान

દાનસૂત્રસ્ય વ્યાખ્યાયા તટ્ટીકાકારેણ હરિભદ્રસૂરિણાઽભિહિતમ્—

“ અય ચ પ્રકૃતસૂત્રાર્થઃ—અવગ્રહાદ્વહિઃસ્થિતો વિનેયોઽર્દ્ધાવનતકાયઃ કરદ્વય-  
ગૃહીતરજોહરણો વન્દનાયોત્રત એવમાહ-ઇચ્છામિ-અભિલપામિ હે ક્ષમાશ્રમણ !  
વન્દિતુ નમસ્કાર કર્તુ મવન્તમિતિ ગમ્યતે ” ઇત્યાદિ ।

અત્ર ‘ કરદ્વયગૃહીતરજોહરણઃ ’ ડતિ ધિશેષણ કથયતા હરિભદ્રસૂરિણા  
‘ મુલ્લોપરિ મુલ્લવલ્લિકાવન્ધન મગવદમિમેત ’મિતિ પ્રકટીકૃતમ્, અન્યથા ક્ષમાશ્રમણ-  
સૂત્રોચ્ચારણકાલે કરદ્વયસ્ય રજોહરણગ્રહણે પ્રતિવદ્ધતયા મુલ્લોપરિ મુલ્લવલ્લિકા-  
સ્થાપનસ્યોપાયાન્તરાસમ્ભવાત્ ક્ષમાશ્રમણદાનમેવ નિર્વિપય સ્યાત્ । અનાદૃતમુલ્લેન  
તુ મુનીના માપણમેત્રાઽઽગમપ્રતિપિદ્ધમિતિ નાત્ર કેપાત્તિદ્ધિવાદઃ ।

કિન્ન ક્ષમાશ્રમણદાને સમ્બોધનશબ્દપ્રયોગે ગુરોઃ સ્વામિમુલ્લીકરણાર્થ સવિ-

શ્રમણદાન સૂત્રકો વ્યાખ્યામે વ્યાખ્યાકાર હરિભદ્રસૂરિને મી કહા હૈ-  
“ અય ” ઇત્યાદિ,

યહાં “ દોનોં હાથોંમેં રજોહરણ લેકર ” એસા કહનેવાલે હરિભદ્રસૂરિને  
યહ પ્રગટ કિયા હૈ કિ મુલ્લ પર મુલ્લવલ્લિકા ઘાધનેકી મગવાનકી આજા  
હૈ । અન્યથા જવ દોનોં હાથોંમેં રજોહરણ લે લિયા તવ મુલ્લ પર મુલ્લ-  
વલ્લિકા ધારણ કરનેકે લિએ અન્ય ઉપાય અસમ્ભવ હૈ । ઓર ખુલે મુલ્લ  
વોલનેસે ક્ષમાશ્રમણ દેના હી વ્યર્થ હો જાયગા । સાધુઓંકો ખુલે મુલ્લસે  
વોલના શાસ્ત્રવિરુદ્ધ હૈ, હસ વિપયમેં કિસીકો વિવાદ નહીં હૈ । દૂસરી  
ઘાત યહ હૈ કિ ક્ષમાશ્રમણદાનમેં ‘ હે ક્ષમાશ્રમણ ! ’ હસ સમ્બોધનકા  
પ્રયોગ કિયા હૈ । હસલિએ ગુરુકો અપની ઓર અમિમુલ્લ કરને કે લિએ

સૂત્રની વ્યાખ્યામા વ્યાખ્યાકાર હરિભદ્રસૂરિએ પશુ કહુ છે કે—‘ અય ’ ઇત્યાદિ

અહીં ‘ ઘેઉ હાથમા રજોહરણ લઇને ’ એમ કહેતા હરિભદ્રસૂરિએ એમ  
પ્રકટ કર્યું છે કે મુખ પર મુખવલ્લિકા ધાધવાની લગવાનની આજ્ઞા છે નહિ  
તો જો ઘેઉ હાથમા રજોહરણ લઈ લીધો એટલે મુખ પર મુખવલ્લિકા ધારણ  
કરવાને માટે અન્ય ઉપાય અમલવિત છે, અને ખુલે મુખે ઘોલવાથી ક્ષમા  
શ્રમણ આપવાર્તુ જ વ્યર્થ ણી વ્યય સાધુઓએ ખુલે મુખે ઘોલવુ એ  
શાસ્ત્રવિરુદ્ધ છે, એ સમ્બોધના તો કોઇને વાધો નથી ખીજ વાત એ છે કે ક્ષમા  
શ્રમણદાનમા ‘ હે ક્ષમાશ્રમણ ’ એવો સમ્બોધનનો પ્રયોગ કહેલો છે તેથી કરીને  
શુદ્ધને પોતાની તરફ અભિમુખ કરવાને માટે વિશેષ-પ્રયત્ન-પૂર્વક સ્પષ્ટ

શેષમયત્નપૂર્વકોચ્ચૈઃસ્વરેણ મુસ્પટ્ટોચારણ ત્રિધેયમસ્તિ ન ત્યવ્યક્તધ્વનિનેત્યુપાયા  
ન્તરૈણ મુલાનરણસ્ય કર્તુમશક્ચતપોક્તજીવિરાધના પરિહર્તુમશક્ચૈવ ।

અન્યચ તત્રૈવ ક્ષમાશ્રમણદાને ગુરુનિદેશાનન્તરમ્—“અહોકાય, કાયસ-  
ફાસ” ઇત્યસ્ય વ્યાખ્યાયા તેનૈવ હરિભદ્રસૂરિણા વ્યારયાત, તથાદિ—

“તતઃ શિષ્યો નૈપેધિતયા પ્રવિશ્ય ગુરુપાદાન્તિકમ્, નિધાય તત્ર રજોહર-  
ણમ્, તત્ (રજોહરણ) લલાટ ચ કરામ્યા સસ્પૃશન્નિદ મળતિ—અપસ્તાત્કાયઃ  
મધઃકાયઃ=પાદલક્ષણસ્તમધઃકાય પ્રતિ કાયેન=નિજદેહેન સસ્પર્શઃ=કાયસસ્પર્શસ્ત  
કરોમિ, एतच्चानुजानीते—”તિ ।

તત્ર સમિલિતકરદ્વયેન રજોહરણ-લલાટયોઃ સસ્પર્શૈ સતિ ‘અહોકાય,  
કાયસફાસ’ ઇત્યસ્યોચારણ મુખવલ્લિકાવન્ધન વિના નોપપદ્યતે, હસ્તેન મુખોપરિ  
મુખવલ્લિકાસ્થાપન તદાનીં ન સમ્ભવતિ, હસ્તદ્વયસ્યાપિ રજોહરણલલાટસસ્પર્શ-  
મતિવદ્ભવાત્ ।

અપિ ચ-જ્ઞાતાધર્મકથાઙ્ગસૂત્રે ચતુર્દશાધ્યયને—

વિશેષપ્રયત્નપૂર્વક સ્પટ્ટ ઉચ્ચારણ કરનેકી આવશ્યકતા છે । અવ્યક્ત ભાષાસે  
સબોધન કરના સમ્ભવ નથી છે । હસ પ્રકાર જવ દૂસરે ઉપાયસે મુખ નહીં  
ઢેકા જા સકા તો ઉલ્લિખિત જીવોંકી વિરાધના અનિવાર્ય છે । હસકે  
સિવાય હસી ક્ષમાશ્રમણદાનમે ગુરુકી આજ્ઞાકે અનન્તર “અહોકાય  
કાયસફાસ” હસકા ઉચ્ચારણ મુખવલ્લિકા બાધે વિના નહીં હો સકતા  
ઔર હાથસે મુખ પર મુખવલ્લિકા ધારણ કરના ઉસ સમય સમ્ભવ નહીં છે,  
ક્યોંકિ દોનોં હાથ રજોહરણકો ગ્રહણ કરકે લલાટમે લગાયે જાતે છે ।

જ્ઞાતાધર્મકથાઙ્ગ સૂત્રકે ચૌદઢવે અધ્યયનમે કહા છે—“તણ” ઇત્યાદિ ।

ઉચ્ચારણ કરવાની જરૂર છે અવ્યક્ત ભાષાથી સબોધન કરવાને સભવ નથી  
એ રીતે એ ધીબ્ધ ઉપાયથી મુખ નથી ઢાકી શકાય તો ઉપર લખ્યા મુખ  
લવોની વિરાધના થયા વિના રહે નહિ એ ઉપરાત એ ક્ષમાશ્રમણદાનમા  
ગુરુની આજ્ઞાની પછી ‘અહોકાય, કાયસફાસ’ એતુ ઉચ્ચારણ મુખવલ્લિકા બાધ્યા  
વિના થધુ શકતુ નથી અને એ સમયે હાથથી મુખવલ્લિકા ધારણ કરવાનું  
સભવિત નથી, કારણ કે જેઉ હાથ રજોહરણને ગ્રહણ કરીને કપાળે અડાડવાના  
હાય છે

જ્ઞાતાધર્મકથાઙ્ગ સૂત્રના ચૌદમા અધ્યયનમા કહુ છે કે— તણ ઇત્યાદિ

“तएण ताओ अजाओ पोहिलाए एव बुत्ताओ समानीओ दोवि क्खे ठाइत्ति, ठाइत्ता पोहिल एव वयासी-अम्हे ण देवानुप्पिए ! समणीओ निग्गथीओ जाव गुत्तभयारिणीओ, नो खलु कप्पइ अम्ह एयप्पयार क्खेहिंनि निसामित्तए किमग पुण उवदिसित्तए वा” इत्याद्युक्तम् ।

पोहिलया भिक्षार्थं स्वगृहमनुप्रविष्टासु साञ्चीषु काचित् पतिं -वशीकर्तुं चूर्णयोग-मन्त्रयोगादिकानुपायान् पृष्ट्वा सती कर्णा पिधाय प्रोवाच-हे देवानुप्रिये ! वयं श्रमण्यो निर्ग्रन्थ्यो यावद् गुप्तब्रह्मचारिण्यः स्मः, नो खलु कल्पते अस्माक-मेतत्प्रकार-कर्णाभ्यामपि निशामयितुं किमद्ग पुनरुपदेष्टुमित्यर्थः ।

लोके हि अनुचितवार्ताश्रवणसमये झटिति कर्णपिधान इस्ताभ्यामेव विधी-यमान दृश्यते तस्मात् साभ्या हस्ताभ्या कर्णा पिधाय प्रतिवचनदाने मुखवह्निका-धारण उन्धन विना नोपपद्यते, तदभावे वायुकायादिजीवविराधनाऽवश्यम्भाविनी ।

अर्थात्-“पोहिलाके घरमें साञ्चीयाँ भिक्षाके लिए गईं। उसने अपने पतिको वश करनेके लिए एक साध्वीसे चूर्णयोग और मन्त्रयोग आदि उपाय पूछे। तब साञ्चीने तत्काल दोनो कान मूद कर कहा-हे देवानुप्रिये ! हम निर्ग्रन्थ आर्यिका हैं यावत् गुप्तब्रह्मचारिणी हैं। ऐसी बात सुनना भी हमें नहीं कल्पता तो उपदेश देनेकी बात ही क्या है ?”

अनुचित बात सुनते समय लोकमें भी झटपट हाथोंसे कान मूदना देखा जाता है। ऐसी हालतमें दोनों हाथोंसे दोनों कान मूद लेने पर विना मुखवह्निका बाधे उत्तर देना युक्त नहीं हो सकता। यदि मुख-वह्निका के बाधे विना उत्तर दिया तो वायुकाय आदि जीवोंकी विराधना अवश्य हुई।

अर्थात्-“पोहिलाना घरमा साध्वीओ भिक्षाने भाटे गछि तेछे पोताना पतिने वश करवाने भाटे ओके साध्वीने चूर्णयोग अने मन्त्रयोग आदि उपाये पूछ्या, त्यारे साध्वीओ तत्काल ओके काने हाथ भूकीने कछु-छे देवानुप्रिये ! अने निर्ग्रन्थ आर्यिका छीओ तेमज यावत् गुप्तब्रह्मचारिणी छीओ आवी वात साभणवी पछु अमने कल्पती नथी तो पछी उपदेश आपवानी तो वात न शी ?”

अनुचित बात साभणती वधते दोडोमा पछु गटपट हाथथी कान ढाकवामा आवे ओवु ओवामा आवे छे ओवी हालतमा ओके हाथथी ओके कान ढाकी लेता, मुखवह्निका बाध्या विना उत्तर आपवो युक्त नथी होतो ओ मुख-वह्निका बाध्या विना उत्तर आपवामा आवे तो वायुकाय आदि जीवोंकी विराधना अवश्य थाय



किञ्च-मुखवस्त्रिकावन्धनमन्तरेण पट्कायविराधना दुष्परिहार्या, तथाहि-मुखे सूक्ष्मसचिच्चरजःप्रवेशेन पृथिवीकायस्य, वृष्ट्यादिबशात्सचित्तजलकणानामाकस्मिकनिपातेन धूमिकायाः प्रवेशेन वाऽपूकायस्य, तथा यत्र कुत्रापि स्फुलिङ्गा उत्पतन्ति तत्राऽऽकस्मिकसूक्ष्मस्फुलिङ्गनिपातेन तेजस्कायस्य, मुखस्योष्णश्वासनिःश्वासाभ्या वायुवायुकायस्य, 'जत्थ जल तत्थ वण' इतिप्रामाण्याज्जलनान्तरीयकृतया मुखे सचित्तजलविन्दुनिपातेनैव वनस्पतिकायस्यापि, तथा सम्पातिम-व्यापि-सूक्ष्म-जीवसम्पातेन त्रसकायस्य विराधना भवतीति ।

किञ्च मुखवस्त्रिकावन्धने प्रमादवतः पट्कायविराधना दुर्वारा, यतः प्रति-

मुखवस्त्रिकाके बांधे बिना पट्कायकी विराधनाका परिहार नहीं हो सकता । मुखमें सूक्ष्म सचित्त रजका प्रवेश होनेसे पृथ्वीकायकी विराधना होती है । यरसा होने पर सचित्त जलकणोंके अकस्मात् ही मुखमें चले जानेसे अथवा मुखमें धूँअर के चले जाने से अप्कायकी विराधना होती है । इधर-उधर उड़नेवाली अग्निकी चिनगारी कदाचित् मुखमें घुस जाय तो तेजस्कायकी हिंसा होती है । मुखसे निकलती हुई गर्म साससे बाह्य वायुकायकी विराधना होती है । 'जहाँ अप्काय है वहाँ वनस्पतिकाय भी होता है' ( जत्थ जल तत्थ वण ) इस प्रमाणसे मुखमें सचित्त जल गिरनेसे ही वनस्पति कायकी विराधना होती है । तथा सपातिम, व्यापी और सूक्ष्म जीवोंके घुसनेसे त्रसकायकी भी विराधना होती है ।

मुखवस्त्रिकाके बाधनेमें जो साधु प्रमादी होता है उसको पट्कायकी

मुभवस्त्रिका बांध्या बिना पट्कायनी विराधनानो परिहार नथी थछ शकतो मुभमा सूक्ष्म सचित्त रज्जेना प्रवेश थवाथी पृथ्वीकायनी विराधना थाय छे (१) वरसाइ पडंता सचित्त जलकणो अकस्मात् मुभमा जवाथी अथवा मोदाना आकण जवाथी अप्कायनी विराधना थाय छे (२) आही-तही उडती अग्निनी शिष्णुगारी कदाथ मुभमा पेसी जाय तो तेजस्कायनी हिंसा थाय छे (३) मुभमाथी नीकणता गरम श्वासथी बाह्य वायुकायनी विराधना थाय छे (४) न्या अप्काय छे त्या वनस्पति काय पणु होय छे' ( जत्थ जल तत्थ वण ) अे प्रमाणथी मुभमा सचित्त जल पडंवाथी वनस्पतिकायनी पणु विराधना थाय छे (५) तथा सपातिम, व्यापी अने सूक्ष्म जीवो पेसी जवाथी त्रसकायनी पणु विराधना थाय छे (६)

मुभवस्त्रिका बांधवामा जे साधु प्रमादी होय छे तेने पट्कायनी विराधना

लेखनकालेऽन्वस्मै तत्प्रत्याख्यानदानेऽपि प्रतिलेखनोपयोगाभावेन प्रमाद-  
दोषाविष्टः सन् पट्कायविराधको भवतीति भगवतोत्तराध्ययनसूत्रे प्रतिपादितम्,  
तथाहि—

“पडिलेहण कुणतो, मिहो कह कुणड जणवयकह वा ।  
देह व पच्चक्खाण वाण्ड सय पडिच्छड वा ॥ १ ॥

पुढवी-आउक्काण, तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाण ।

पडिलेहणापमत्तो, छण्हपि विराहओ होइ ॥ १ ” इति ।

तर्हि का वार्ता ये मुखवस्त्रिकावन्धनमन्तरेण तिष्ठन्ति तेषां प्रमाददोषस्त-  
ज्जनितपट्कायविराधना नापतेत् ? आगमे हि मुखवस्त्रिकावन्धनपरित्यागे दोष-  
बाहुल्य प्रदर्शितं तच्च प्रागेव प्रतिपादितम् ।

इत्थं च यथा नौकादौ सूक्ष्मेऽपि सुपिरे सति नद्यादौ तन्निमज्जनान्महती

विराधना अवश्य लगेगी क्योंकि भगवानने उत्तराध्ययनसूत्रमें कहा है  
कि—“प्रतिलेखन करनेमें जो साधु प्रमादी है तथा प्रतिलेखनके समय  
साधु परस्पर बातें करे, जनपद आदिकी कथा करे, पचक्खाण देवे, चाचे  
अथवा वचावे तो वह पट्कायका विराधक होता है” तो जो मुखवस्त्रिका  
बाधे विना रहते हैं उनको प्रमाद-दोष तथा प्रमादजन्य पट्कायकी विरा-  
धनाका दोष कैसे नहीं लगेगा ? अर्थात् जरूर लगेगा । मुखवस्त्रिकाके  
नहीं बाधनेमें आगमोंमें जो बहुतसे दोष कहे हैं वे तो पहले प्रतिपादित  
कर ही चुके हैं ।

इस प्रकार जैसे नावमें छोटासा छेद होनेपर नदी आदिमें डूब जानेसे

अवश्य थाय छे केभङ्गे लगवाने उत्तराध्ययनसूत्रमा कहु छे के—“प्रतिलेखन  
करती वधते जे साधु परस्पर वार्तालाप करे, देशन्था आदि कथा करे, पचक्खाण  
करावे, पोते वाचे अने वचावे तो ते पट्कायने विराधक थाय छे ” जे जेभ  
छे तो जे सुभवस्त्रिका बाध्या वगर नडे ते प्रमाददोष अने प्रमादजन्य  
पट्कायनी विराधनाने दोष केभ नडी लागे ? अर्थात् अवश्य लागे सुभवस्त्रिका  
नडी बाधवामा आगमेमा दोष गताव्या छे ते तो पडेलो कडी सुक्या छीजे  
जे प्रकारे जेभ नावमा नाव छिद्र पडवाथी ते नदी आदिमा डूबी

હાનિઃ, અલ્પીયસ્યા અપિ હીરકકણિકાયા ભક્ષणे प्राणानामेव नाशः, वृश्चिकस्फे-  
 पद्गनेऽपि सकलशरीरव्यधनम्, कण्टकाग्रमात्रे घाणाग्रमात्रे च कचिदङ्गे निखाते  
 सकलाङ्गपीडा, नेत्रेऽणुतरस्यापि रजःक्षणस्य निपाते नेत्रोपघातः, नासिकाग्रमात्रे  
 स्वल्पेऽपि देहभागे छिन्ने समग्रशरीरक्षोभोपघातः, स्वल्पेनाऽप्याधाकर्मादिसिक्वेन  
 मिश्रितेऽन्नादौ पूतिकर्मदोषदूषितमाहारजात भवति, स्वल्पेऽपि जिनवचन  
 सन्देहे सर्वचारित्रनाशो जायते, तथैव स्वल्पेऽपि काले मुखवस्त्रिकाबन्धनोपेक्षया  
 पट्कायविराधनाया सत्या चातुर्मासिकप्रायश्चित्ताधिकारितापत्तिः । तथा चोक्त  
 निशीथसूत्रे द्वादशोद्देशकेऽष्टमसूत्रादारभ्य द्वादशसूत्र यावत्—

મહાન્ હાનિ હોતી હૈ, છોટીસી હીરાકી કનીકા ભક્ષણ કરનેસે પ્રાણોંકા  
 હી નાશ હોતા હૈ, વિચ્છૂકે ધોઢાસા કાઠ યાનેસે સારે શરીરમેં વ્યથા  
 હોતી હૈ, કાઠે યા તીરકી જરાસી નોંક કિસી અગમેં ઘુસ જાય તો સબ  
 અગમેં પીડા હોને લગતી હૈ, આંખમેં છોટીસી કિરકિરી ઘુસ જાનેસે  
 આંખમેં તકલીફ હોતી હૈ, જરાસી નાક કટ જાનેસે સબ શરીરકી  
 સુન્દરતા નષ્ટ હો જાતી હૈ । આધાકર્મ આદિ આહારકા એક મી સીધમિલ  
 જાનેસે સબ આહાર પૂતિકર્મદોષસે દૂષિત હો જાતા હૈ, જિનવચનોમેં તનિક  
 મી સન્દેહ કરનેસે સમસ્ત ચારિત્રકા નાશ હો જાતા હૈ, વૈસે હી ધોડી દેર  
 મી મુખવસ્ત્રિકા બાધનેકી ઉપેક્ષા કરનેસે પટ્કાયકી વિરાધના હોતી હૈ,  
 અતઃ ચાતુર્માસિક પ્રાયશ્ચિત્ત લગતા હૈ । નિશીથસૂત્રકે ઘારહવેં ઉદ્દેશકે  
 આઠવેં સૂત્રસે ઘારહવેં સૂત્રતકમેં કહા હૈ—“ જે મિક્લૂં ” ઇત્યાદિ,

જવાથી ભારે હાનિ થાય છે, નાની સરખી હીરા કણીનું ભક્ષણ કરવાથી પ્રાણનો  
 નાશ થાય છે, વીંછી જરા કરડવાથી આખા શરીરમાં વ્યથા થાય છે, કાઠ યા  
 તીરની નાની સરખી અણી કોઈ અગમ પેસી જવાથી આખા અગમ પીડા  
 થવા લાગે છે, આખમાં નાનું સરખું કણ પેસી જવાથી આખમાં તકલીફ થાય  
 છે, નાનું સરખું નાક કપાઈ જવાથી આખા શરીરની સુન્દરતા નષ્ટ થઈ જાય  
 છે, આધાકર્મ આદિ આહારનું એક પણ કણ મળી જવાથી ઘડો આહાર  
 પૂતિકર્મ દોષથી દૂષિત થઈ જાય છે જિનવચનોમાં લગાર પણ સદેહ  
 કરવાથી સમસ્ત ચારિત્રનો નાશ થઈ જાય છે, તેમ થોડા વખત પણ મુખવસ્ત્રિકા  
 બાધવાની ઉપેક્ષા કરવાથી પટ્કાયની વિરાધના થાય છે તેથી ચાતુર્માસિક  
 પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે, નિશીથસૂત્રના ધારમાં ઉદ્દેશના આઠમાં સૂત્રથી ધારમાં સૂત્ર  
 સુધીમાં કહ્યું છે કે ‘ જે મિક્લૂં ’ ઇત્યાદિ,

“जे भिक्खू० पुढवीकायस्स कलमायमवि समारभइ, समारभत वा साइज्जइ । एव जाव वणस्सइकायस्स आवज्जइ चाउम्मासिय परिहारट्टाण”

पुनरपि निशीथभाष्ये समयघातद्वारे महिकाद्यपकाययतनार्थं प्रोक्तम्—

“वासत्ताणावरिया णिकारणे ठत्ति, कज्जे जतणाए ।

हत्थस्सिञ्जगुलिसण्णा, पोत्ततरिया व भासति ॥१॥ इति ।

( नि. भाष्य उ. १९ गा. ५७ )

छाया—‘वर्पात्राणावृता निष्कारणे तिष्ठन्ति, कार्ये यतनया ।

हस्ताक्षयद्गुलीसञ्ज्ञा, पोतान्त एव भापन्ते ॥१॥’ इति ।

चूर्णिकारेण “पोत्ततरिया व भासति” इति पदस्य चूर्णौ हस्तभ्रुवादिसङ्केतेन यदि साधवो नावगच्छन्ति तदाऽवश्यवक्तव्ये सति “मुहपोत्तियअतरिया जयणाए भासति” इति प्रतिपादितम् ।

अनेन स्पष्ट सिध्यति—यत् मुखवस्त्रिका साधुना मुखे पूर्वं बद्धाऽऽसीदिति, तेनैव कारणेन ‘मुखपोतान्त एव यतनया मन्द-मन्द भापन्ते’ इत्युक्तम् ।

फिरभी निशीथ सूत्रके भाष्यमें समयघात नामक द्वारके अन्दर धूअर आदि अप्कायकी यतनाके लिए कहा है ‘वासत्ताणा०’ इत्यादि,

इस गाथामें आये हुए ‘पोत्ततरिया व भासति’ इस पदकी चूर्णि करते समय चूर्णिकारने कहा है—अगर साधु हाथ आँख आदिके इशारेसे नहीं समझ सके और बोलना ही जरूरी समझे तो ‘मुखवस्त्रिकाके अंदर ही यतनासे (धीरे-धीरे) बोले’ इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि साधुओंके मुख पर मुखवस्त्रिका पहले बाधी हुई थी, इसी कारणको लेकर ही ‘मुखवस्त्रिकाके अंदर ही यतनासे (धीरे धीरे) बोले’ ऐसा कहा है ।

वर्णा निशीथसूत्रना भाष्यमा ‘सयमघात’ नामना द्वारमा आकण आदि अप्कायनी यतना कइती वपते कहु छे के ‘वासत्ताणा०’ इत्यादि,

आथी स्पष्ट सिद्ध थाय छे के साधुओना मुख पर मुखवस्त्रिका बाधेदी इती आ कारवुने लीधे व ‘पोत्ततरिया व भासति’ आ पढनी शूर्धि कइता शूर्धिकारे कहु छे के— “साधु इशाराथी न समझे अने जोलवु व पडे तो मुख वस्त्रिकानी अंदर व यतनाथी जोले”

હાનિઃ, અલ્પીયસ્યા અપિ હીરકકણિકાયા ભક્ષણે પ્રાણાનામેવ નાશઃ, વૃશ્ચિકસ્યે પદ્મશનેડપિ સફલશરીરવ્યથનમ્, કણ્ટકાગ્રમાત્રે ઘાણાગ્રમાત્રે ચ ક્વચિદ્ક્રે નિલાતે સફલાદ્ગ્નીપીડા, નેત્રેડ્ણુતરસ્યાપિ રજઃઋણસ્ય નિપાતે નેત્રોપઘાતઃ, નાસિકાગ્રમાત્રે સ્વલ્પેડપિ દેહભાગે ઝિન્ને સમગ્રશરીરશોભોપઘાતઃ, સ્વલ્પેનાડ્પ્યાધાકર્માદિસિન્ધવેન મિશ્રિતૈડ્ઞાદૌ પૂતિકર્મદોપદૂપિતમાહારજાત ભવતિ, સ્વલ્પેડપિ જિનવચન સન્દેહે સર્વચારિત્રનાશો જાયતે, તથૈવ સ્વલ્પેડપિ કાલે મુલ્ખવલ્લિકાન્ધનોપેક્ષયા પદ્કાયવિરાધનાયાં સત્યા ચાતુર્માસિકપ્રાયશ્ચિત્તાધિકારિતાપત્તિઃ । તથા ચોક્ત નિશીથસૂત્રે દ્વાદશોદેશકેડ્ઘમસૂત્રાદારભ્ય દ્વાદશમૂત્ર યાત્—

મહાન્ હાનિ હોતી હૈ, છોટીસી હીરાકી કનીકા ભક્ષણ કરનેસે પ્રાણોંકા હી નાશ હોતા હૈ, વિચ્છૂકે થોડાસા કાટ રાનેસે સારે શરીરમેં વ્યથા હોતી હૈ, કાંટે યા તીરકી જરાસી નોક કિસી અગમેં ઘુસ જાય તો સબ અગમેં પીડા હોને લગતી હૈ, આંખમેં છોટીસી કિરકિરી ઘુસ જાનેસે આંખમેં તકલીફ હોતી હૈ, જરાસી નાક કટ જાનેસે સબ શરીરકી સુન્દરતા નષ્ટ હો જાતી હૈ । આધાકર્મ આદિ આહારકા ઠક ધી સીધ મિલ જાનેસે સબ આહાર પૂતિકર્મદોષસે દૂપિત હો જાતા હૈ, જિનવચનોમે તનિક ધી સન્દેહ કરનેસે સમસ્ત ચારિત્રકા નાશ હો જાતા હૈ, વૈસે હી થોડી દેર ધી મુલ્ખવલ્લિકા વાધનેકી ઉપેક્ષા કરનેસે પદ્કાયકી વિરાધના હોતી હૈ, અતઃ ચાતુર્માસિક પ્રાયશ્ચિત્ત લગતા હૈ । નિશીથસૂત્રકે વારહવેં ઉદેશકે આઠવેં સૂત્રસે વારહવેં સૂત્રતકમેં કહા હૈ—“ જે મિક્ષૂં ” ઇત્યાદિ,

જવાથી ભારે હાનિ થાય છે, નાની સરખી હીરા કણીનું ભક્ષણ કરવાથી પ્રાણનો નાશ થાય છે, વીંછી જરા કરડવાથી આખા શરીરમાં વ્યથા થાય છે, કાટા યા તીરની નાની સરખી આણી કોઈ અગમ પેસી જવાથી આખા અગમ પીડા થવા લાગે છે, આખમાં નાનું સરખું કણ પેસી જવાથી આખમાં તકલીફ થાય છે, નાનું સરખું નાક કપાઈ જવાથી આખા શરીરની સુન્દરતા નષ્ટ થઈ જાય છે, આધાકર્મ આદિ આહારનું એક પણ કણ મળી જવાથી ધધે આહાર પૂતિકર્મ દોષથી દૂષિત થઈ જાય છે જિનવચનોમાં લગાર પણ સદેહ કરવાથી સમસ્ત ચારિત્રનો નાશ થઈ જાય છે, તેમ થોડા વખત પણ મુખવલ્લિકા વાધવાની ઉપેક્ષા કરવાથી પદ્કાયની વિરાધના થાય છે તેથી ચાતુર્માસિક પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે, નિશીથસૂત્રના બારમાં ઉદેશના આઠમાં સૂત્રથી બારમાં સૂત્ર સુધીમાં કહ્યું છે કે ‘ જે મિક્ષૂં ’ ઇત્યાદિ,

वेति भावः । तस्मात्-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाग्रन्थन सकलजैनागमप्रतिपाद्यमिति सिद्धम् । एव च भगवतीसूत्रे 'सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण' इति वाक्यस्य सूक्ष्म-काय=मुखवस्त्रिकाम् 'अणिज्जूहत्ता' =अपोद्य परित्यज्य=अवद्वेत्यर्थो बोध्यः, एवमन्यत्राऽप्युहनीयम् ।

यत्तु-आचाराङ्गसूत्रे उच्छ्वासादिकाले मुखपिधानोपदेशेन मुखवस्त्रिका करणैव धारणीया न तु दोरकेणेति तत्तत्समये एव मुखवस्त्रिकया घ्राणमुखादि-पिधान विधेयमिति च प्रतीयते, दोरकावल्ग्वेन मुखवस्त्रिकायाः सदा धारणीयत्वे तु पुनर्मुखपिधानोपदेशो व्यर्थः स्यादिति वदन्ति तदज्ञानमूलम् । आचाराङ्ग-

आज्ञाभगमे गुरुतर प्रायश्चित्त देना युक्त ही है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मुख पर मुखवस्त्रिका बाधना सब जैनशास्त्रोंमें प्रतिपादन किया गया है । इस प्रकार भगवती सूत्रके 'सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण' वाक्यका अर्थ यह समझना चाहिये कि 'मुखवस्त्रिकाका त्याग करके अर्थात् न बाध करके ।' ऐसा सब जगह समझना चाहिए ।

प्रश्न-आचाराङ्गसूत्रमें उच्छ्वास आदि लेते समय मुख ढँकने का उपदेश दिया है । इससे यह प्रतीत होता है कि मुखवस्त्रिका हाथमें ही रखनी चाहिए डोरेसे नहीं बाँधनी चाहिए, अमुक-अमुक समय पर ही जब उच्छ्वास आदि आवे तब ही नाक या मुख ढँक लेना चाहिए । डोरेसे मुखवस्त्रिका धारण करना उचित हो तो पुनः मुख ढकनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा ।

लगभा गुरुतर प्रायश्चित्त आवे ठे ओ रीते सिद्ध थयु ठे मुष पर मुखवस्त्रिका बाधनी ओवु गधा जैनशास्त्रोमा प्रतिपादन करेडु छे ओटला भाटे भगवती-सूत्रना 'सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण' ओ वाक्यना अर्थ ओम समजवे। ओधंओ ठे 'मुखवस्त्रिकानो त्याग करीने अर्थात् न बाधीने' ओज प्रभाणे गधी जग्याओ समजवु

प्रश्न-आज्ञाभग-सूत्रमा उच्छ्वास आदि लेती वधते मुष ढाकवानो उपदेश आयो ठे ओयी ओम प्रतीत थाय ठे ठे मुखवस्त्रिका हाथमा न राधवी ओधंओ, दोरथा बाधवी ओधंओ नडि अमुड अमुड समये न न्यारे उच्छ्वास आदि आवे त्तारे न नाक या मुख ढाकी लेवु ओधंओ, दोरथी मुखवस्त्रिका धारण करवी उचित होय तो पधी पुन मुख ढाकवानो उपदेश व्यर्थ थथ नशे

કિંચ વિધિપ્રપાગ્રન્થે ચારિત્રાતિચારપ્રાયશ્ચિત્તાધિકારે મુલ્લગ્નિકામન્તરેણ  
ભાષણનિષેધઃ પ્રતિપાદિતઃ ।

કિંચ પૂર્વોક્તદિશા પટ્કાયવિરાધન્સ્ય તદ્વિરાધનાવર્જનપરકમગવદાજ્ઞામદ્  
દોષપ્રસન્નઃ ।

તથા ચ સતિ અવિધિવિધાન, તતો મિથ્યાત્વ, તસ્માચ્ચારિત્રવિરાધના, તત્ત્વ  
દીર્ઘસસારિત્વ પ્રપન્નેત, અત્ પ્રાડ્ઝજ્ઞામદ્ કર્તુર્ગુરુતરપ્રાયશ્ચિત્ત પ્રદર્શિતમ્ ।

ઉક્ત દિ વૃહત્કલ્પભાષ્યે—

“અવરાહે લટુગયરો, આણામગમિ ગુરુતરો કિષ્ણુ ? ।

આણાએ ચિય ચ્વરણ, ત્વમ્મગે કિં ન મગ્ગ તુ ? ॥૧॥” ઇતિ ।

સર્વમેવ ચારિત્ર મગવદાજ્ઞાયામેવ વ્યવસ્થિતમ્, અતસ્તદ્મદ્ગ્ને મૂલોત્તરગુણાદિક  
વસ્તુ કિં ન મગ્મ ? અપિ તુ સર્વમપિ મગ્મમિતિ હેતોસ્ત્વ ગુરુતરપ્રાયશ્ચિત્ત યુક્તમે-

ફિર ‘વિધિપ્રપા’ નામકે ગ્રન્થમેં મી ચારિત્રકે અતિચારીકા  
પ્રાયશ્ચિત્ત કહતે સમય મુલ્લગ્નિકાકે વિના ચોલનેકા સ્પષ્ટ નિષેધ કિયા  
ગયા હૈ ।

તથા-પૂર્વોક્ત રીતિસે પટ્કાયકી વિરાધના કરનેવાલેકો મગવાનકી  
“પટ્કાયકી વિરાધનાકા ત્યાગ કરના” હસ આજ્ઞાકે ભંગ કરનેકા દોષ  
લગતા હૈ । યહ દોષ લગનેસે અવિધિકા વિધાન, અવિધિકા વિધાન  
કરનેસે મિથ્યાત્વ, મિથ્યાત્વસે ચારિત્રકી વિરાધના ઓર ચારિત્રકી વિરા  
ધનાસે દીર્ઘસસારિત્વકી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । હસીસે આજ્ઞામગકા ગુરુતર  
પ્રાયશ્ચિત્ત લગતા હૈ ।

વૃહત્કલ્પભાષ્યમેં કહા હૈ—“અવરાહે” ઇત્યાદિ,

સમસ્ત ચારિત્ર મગવાનકી આજ્ઞામેં હી હૈ । મગવાનકી આજ્ઞાકા  
મગ હોને પર મૂલગુણ ઉત્તરગુણ આદિ સમી નષ્ટ હો જાતે હૈ । અત્

વલી ‘વિધિપ્રપા’ નામના ગ્રન્થમા પણ ચારિત્રના અતિચારીની શુદ્ધિના  
પ્રકરણમા મુખવસ્ત્રિકા વગર ઘોલવાને નિષેધ કર્યુ છે ।

તથા-પૂર્વોક્ત રીતિથી પટ્કાયની વિરાધના કરનારને ભગવાનની “પટ્કાયની  
વિરાધનાને ત્યાગ કરવો” આ આજ્ઞાને ભંગ કરવાને દોષ લાગે છે આ દોષ લાગ  
વાથી અવિધિનું વિધાન, અવિધિ-વિધાનથી મિથ્યાત્વ, મિથ્યાત્વથી ચારિત્રની વિરાધના  
અને ચારિત્રની વિરાધનાથી દીર્ઘસસારિત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે એથી આજ્ઞાભંગનું  
શુદ્ધતર પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે

બૃહત્કલ્પભાષ્યમા કહ્યુ છે— ‘અવરાહે’ ઇત્યાદિ

સમસ્ત ચારિત્ર ભગવાનની આજ્ઞામા જ રહેલુ છે ભગવાનની આજ્ઞાને  
ભંગ થવાથી મૂળગુણ ઉત્તરગુણ આદિ બધુ નષ્ટ થઈ બન્ય છે તેથી આજ્ઞા

वेति भावः । तस्मात्-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाग्रन्थन सकलजैनागमप्रतिपाद्यमिति सिद्धम् । एव च भगवतीसूत्रे 'सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण' इति वाक्यस्य सूक्ष्म-काय=मुखवस्त्रिका 'अणिज्जूहत्ता' =अपोह्य परित्यज्य=अवद्वेत्त्यर्थो बोध्यः, एवमन्यत्राऽप्यूहनीयम् ।

यत्तु-आचाराङ्गसूत्रे उच्छ्वाससादिकाळे मुखपिप्रानोपदेशेन मुखवस्त्रिका करेणैव धारणीया न तु दोरकेणेति तत्तत्समये एव मुखवस्त्रिकया प्राणमुखदि-पिधान विप्रेयमिति च प्रतीयते, दोरकावलम्बेन मुखवस्त्रिकायाः सदा धारणीयत्वे तु पुनर्मुखपिप्रानोपदेशो व्यर्थः स्यादिति वदन्ति तदज्ञानमूलम् । आचाराङ्ग-

आज्ञाभगमे गुरुतर प्रायश्चित्त देना युक्त ही है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मुख पर मुखवस्त्रिका बांधना सत्र जैनशास्त्रोमे प्रतिपादन किया गया है । इस प्रकार भगवती सूत्रके 'सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण' वाक्यका अर्थ यह समझना चाहिये कि 'मुखवस्त्रिकाका त्याग करके अर्थात् न बांध करके ।' ऐसा सत्र जगह समझना चाहिए ।

प्रश्न-आचाराङ्गसूत्रमे उच्छ्वास आदि लेते समय मुख ढँकने का उपदेश दिया है । इससे यह प्रतीत होता है कि मुखवस्त्रिका हाथमे ही रखनी चाहिए डोरेसे नहीं बाँधनी चाहिए, अमुक-अमुक समय पर ही जब उच्छ्वास आदि आवे तब ही नाक या मुख ढँक लेना चाहिए । डोरेसे मुखवस्त्रिका धारण करना उचित हो तो पुनः मुख ढकनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा ।

लगमा गुरुतर प्रायश्चित्त आवे ते अये रीते सिद्ध थयु ते सुभ पर सुभवस्त्रिका बाधवी अये उपा नैनगात्रोमा प्रतिपादन करेखु छे अेटला भाटे भगवती सूत्रना 'सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण' अये वाक्यने अर्थ अयेम समजवे अये अये 'सुभवस्त्रिकाने त्याग करीने अर्थात् न बाधीने' अये प्रभाखे उपा नय्याअे समजवु

प्रश्न-आचाराङ्ग-सूत्रमा उच्छ्वास आदि लेती वपते सुभ ढाकवाने उपदेश आये ते अयेवी अयेम प्रतीत थाय ते ते सुभवस्त्रिका हाथमा न राधवी अये अये, दोरया बाधवी अये नहि अमुक अमुक समये न न्यारे उच्छ्वास आदि आवे तारे न नाड या सुभ ढाकी लेखु अये, दोरया सुभवस्त्रिका धारण करवी उचित होय तो पछी पुनः सुभ ढाकवाने उपदेश व्यर्थ थयु नये



किञ्च विधिप्रपाग्रन्थे चारित्रातिचारमायश्चिताधिकारे मुखवस्त्रिकामन्तरेण भाषणनिषेधः प्रतिपादितः ।

किञ्च पूर्वोक्तदिशा पट्कायविराधनस्य तद्विराधनावर्जनपरकभगवदाज्ञामन्त्र-दोषप्रसङ्गः ।

तथा च सति अविधिविधान, ततो मिथ्यात्व, तस्माच्चारित्रविराधना, ततश्च दीर्घससारित्व प्रपञ्चेत, अत एवाऽऽज्ञामन्त्ररुर्गुरुतरमायश्चित्तं प्रदर्शितम् ।

उक्तं हि बृहत्कल्पभाष्ये—

“अवराहे लहुगयरो, आणाभगमि गुरुतरो किष्णु ? ।

आणाए चिच चरण, तवभगे किं न भगग तु ? ॥१॥” इति ।

सर्वमेव चारित्र भगवदाज्ञायामेव व्यतिस्थितम्, अतस्तद्भङ्गे मूलोत्तरगुणादिकं वस्तु किं न भग्नम् ? अपि तु सर्वमपि भग्नमिति हेतोस्तत्र गुरुतरमायश्चित्तं युक्तमे

फिर ‘विधिप्रपा’ नामके ग्रन्थमें भी चारित्रके अतिचारोंका प्रायश्चित्त कहते समय मुखवस्त्रिकाके बिना धोलनेका स्पष्ट निषेध किया गया है ।

तथा—पूर्वोक्त रीतिसे पट्कायकी विराधना करनेवालेको भगवान्की “पट्कायकी विराधनाका त्याग करना” इस आज्ञाके भंग करनेका दोष लगता है । यह दोष लगनेसे अविधिका विधान, अविधिका विधान करनेसे मिथ्यात्व, मिथ्यात्वसे चारित्रकी विराधना और चारित्रकी विराधनासे दीर्घससारित्वकी प्राप्ति होती है । इसीसे आज्ञामन्त्रका गुरुतर प्रायश्चित्त लगता है ।

बृहत्कल्पभाष्यमें कहा है—“अवराहे” इत्यादि,

समस्त चारित्र भगवान्की आज्ञामें ही है । भगवान्की आज्ञाका भंग होने पर मूलगुण उत्तरगुण आदि सभी नष्ट हो जाते हैं । अतः

वही ‘विधिप्रपा’ नामका ग्रन्थमा पण चारित्रना अतिचारोंकी शुद्धिमा प्रकरणमा मुखवस्त्रिका वजर धोलवाने निषेध कर्तुं छे !

तथा—पूर्वोक्त रीतिथी पट्कायनी विराधना करनारने भगवान्की “पट्कायनी विराधनाका त्याग करने” या आज्ञाका भंग करवाने दोष लागे छे या दोष लागे वाली अविधिनु विधान, अविधि—विधानथी मिथ्यात्व, मिथ्यात्वथी चारित्रनी विराधना अने चारित्रनी विराधनाथी दीर्घससारित्वनी प्राप्ति थाय छे अथी आज्ञाभंगु गुरुतर प्रायश्चित्त लागे छे

बृहत्कल्पभाष्यमा कहु छे— ‘अवराहे’ इत्यादि

समस्त चारित्र भगवान्की आज्ञामा न रहेछु छे भगवान्की आज्ञाका भंग यवाथी भूगुण उत्तरगुण आदि भङ्ग नष्ट थ’ नय छे तथी आज्ञा

वेति भावः । तस्मात्-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाग्रन्थन सकलजैनागमप्रतिपाद्यमिति सिद्धम् । एव च भगवतीसूत्रे 'सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण' इति वाक्यस्य सूक्ष्म-काय=मुखवस्त्रिकाम् 'अणिज्जूहत्ता' =अपोद्य परित्यज्य=अपद्-वेत्यर्थो बोध्यः, एवमन्यत्राऽप्युहनीयम् ।

यत्तु-आचाराङ्गसूत्रे उच्छ्वासादिकाले मुखपिधानोपदेशेन मुखवस्त्रिका करेणैव धारणीया न तु दोरकेणेति तत्तत्समये एव मुखवस्त्रिकया घ्राणमुखादि-पिधान विधेयमिति च प्रतीयते, दोरकावलम्बेन मुखवस्त्रिकायाः सदा धारणीयत्वे तु पुनर्मुखपिधानोपदेशो व्यर्थः स्यादिति वदन्ति तद्वानमूलम् । आचाराङ्ग-

आज्ञाभगमे गुरुतर प्रायश्चित्त देना युक्त ही है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मुख पर मुखवस्त्रिका बाधना सत्र जैनशास्त्रोंमें प्रतिपादन किया गया है । इस प्रकार भगवती सूत्रके 'सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण' वाक्यका अर्थ यह समझना चाहिये कि 'मुखवस्त्रिकाका त्याग करके अर्थात् न बाध करके ।' ऐसा सत्र जगह समझना चाहिए ।

प्रश्न-आचाराङ्गसूत्रमें उच्छ्वास आदि लेते समय मुख ढँकने का उपदेश दिया है । इससे यह प्रतीत होता है कि मुखवस्त्रिका हाथमें ही रखनी चाहिए डोरेसे नहीं बाँधनी चाहिए, अमुक-अमुक समय पर ही जब उच्छ्वास आदि आवे तब ही नाक या मुख ढँक लेना चाहिए । डोरेसे मुखवस्त्रिका धारण करना उचित हो तो पुनः मुख ढकनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा ।

भगमा गुरुतर प्रायश्चित्त आवे छे अे गीते सिद्ध थयु डे मुख पर मुखवस्त्रिका बाधनी अेवुं अवा जैनशास्त्रोमा प्रतिपादन कउेवु छे अेटला भाटे भगवती-सूत्रना 'सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण' अे वाक्यना अर्थ अेम समजये जेअे अे डे 'मुखवस्त्रिकाने त्याग करीने अर्थात् न बाधने' अेअे प्रभाषे अधी जय्याअे समजवु

प्रश्न-आचाराङ्ग-सूत्रमा उच्छ्वास आदि लेती वपते मुख ढाकवाने उपदेश आये छे अेवी अेम प्रतीत थयु डे डे मुखवस्त्रिका हाथमा ज राखवी जेअे, दोरकी बाधनी जेअे नहि अमुक अमुक समये ज न्यारे उच्छ्वास आदि आवे तारे ज नाड या मुख ढाकी लेवु जेअे, दोरकी मुखवस्त्रिका धारण करवी उचित होय तो पछी पुन मुख ढाकवाने उपदेश व्यर्थ थयु जेअे

किञ्च विधिप्रपाग्रन्थे चारित्रातिचारप्रायश्चित्ताधिकारे मुखवस्त्रिकामन्तरेण भाषणनिषेधः प्रतिपादितः ।

किञ्च पूर्वोक्तदिशा षट्कायविराधस्य तद्विराधनावर्जनपरकभगवदाज्ञामन्त्र-दोषप्रसङ्गः ।

तथा च सति अविधिबिधान, ततो मिथ्यात्व, तस्माच्चारित्रविराधना, तत्र दीर्घससारित्व प्रपञ्चेत, अत एवाऽऽज्ञामन्त्रकुर्तुर्गुरुतरप्रायश्चित्तं प्रदर्शितम् ।

उक्तं हि बृहत्कल्पभाष्ये—

“अवराहे लहृगयरो, आणाभगमि गुरुतरो किञ्चणु ? ।

आणाए चिय चरण, तन्भगे किं न भगग तु ? ॥१॥” इति ।

सर्वमेव चारित्र भगवदाज्ञायामेव व्यवस्थितम्, अतस्तद्भङ्गे मूलोत्तरगुणादिकं वस्तु किं न भगम् ? अपि तु सर्वमपि भगमिति हेतोस्तत्र गुरुतरप्रायश्चित्तं युक्तमे

फिर ‘विधिप्रपा’ नामके ग्रन्थमें भी चारित्रके अतिचारोंका प्रायश्चित्त कहते समय मुखवस्त्रिकाके बिना धोलनेका स्पष्ट निषेध किया गया है ।

तथा-पूर्वोक्त रीतिसे षट्कायकी विराधना करनेवालेको भगवान्की “षट्कायकी विराधनाका त्याग करना” इस आज्ञाके भंग करनेका दोष लगता है । यह दोष लगनेसे अविधिका विधान, अविधिका विधान करनेसे मिथ्यात्व, मिथ्यात्वसे चारित्रकी विराधना और चारित्रकी विराधनासे दीर्घससारित्वकी प्राप्ति होती है । इसीसे आज्ञाभगका गुरुतर प्रायश्चित्त लगता है ।

बृहत्कल्पभाष्यमें कहा है—“अवराहे” इत्यादि,

समस्त चारित्र भगवान्की आज्ञामें ही है । भगवान्की आज्ञाका भंग होने पर मूलगुण उत्तरगुण आदि सभी नष्ट हो जाते हैं । अतः

वही ‘विधिप्रपा’ नामका ग्रन्थमा पणु चारित्रना अतिचारोनी शुद्धिना प्रकरणमा सुभयवस्त्रिका वगर धोलवानो निषेध कर्तुं छे ।

तथा-पूर्वोक्त रीतिथी षट्कायनी विराधना करनारने भगवान्की “षट्कायनी विराधनाको त्याग करणे” या आज्ञाको भंग करवानो दोष लागे छे या दोष लागे वाथी अविधिनु विधान, अविधि-विधानथी मिथ्यात्व, मिथ्यात्वथी चारित्रनी विराधना अने चारित्रनी विराधनाथी दीर्घससारित्वनी प्राप्ति थाय छे अथी आज्ञाभंगनु गुरुतर प्रायश्चित्त लागे छे

बृहत्कल्पभाष्यमा कथुं छे— ‘अवराहे’ इत्यादि

समस्त चारित्र भगवान्की आज्ञामा, न रडेछे छे भगवान्की आज्ञाको भंग थाथी भूगणु उत्तरगुण आदि णधुं नष्ट थथे अथ छे तेथी आज्ञा

वेति भावः । तस्मात्-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाग्रन्थन सकलजैनागमप्रतिपाद्यमिति सिद्धम् । एव च भगवतीसूत्रे 'सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण' इति वाक्यस्य सूक्ष्म-काय=मुखवस्त्रिका 'अणिज्जूहत्ता' = अपोह परित्यज्य = अवध्वेत्यर्थो बोध्यः, एवमन्यत्राऽऽप्यूहनीयम् ।

यत्तु-आचाराङ्गसूत्रे उच्छ्वाससादिकाले मुखपिधानोपदेशेन मुखवस्त्रिका करणैव धारणीया न तु दोरकेणेति तत्तत्समये एव मुखवस्त्रिकया घ्राणमुखादि-पिधान विधेयमिति च प्रतीयते, दोरकावल्ग्वेन मुखवस्त्रिकायाः सदा धारणीयत्वे तु पुनर्मुखपिधानोपदेशो व्यर्थः स्यादिति वदन्ति तदज्ञानमूलम् । आचाराङ्ग-

आज्ञाभगमे गुरुतर प्रायश्चित्त देना युक्त ही है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मुख पर मुखवस्त्रिका बाधना सत्र जैनशास्त्रोमे प्रतिपादन किया गया है । इस प्रकार भगवती सूत्रके 'सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण' वाक्यका अर्थ यह समझना चाहिये कि 'मुखवस्त्रिकाका त्याग करके अर्थात् न बाध करके ।' ऐसा सत्र जगह समझना चाहिए ।

प्रश्न-आचाराङ्गसूत्रमे उच्छ्वास आदि लेते समय मुख ढँकने का उपदेश दिया है । इससे यह प्रतीत होता है कि मुखवस्त्रिका हाथमे ही रखनी चाहिए डोरेसे नहीं बाँधनी चाहिए, अमुक-अमुक समय पर ही जब उच्छ्वास आदि आवे तब ही नाक या मुख ढँक लेना चाहिए । डोरेसे मुखवस्त्रिका धारण करना उचित हो तो पुनः मुख ढकनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा ।

लगभा गुरुतर प्रायश्चित्त आवे छे ओ रीते सिद्ध थयु डे मुभ पर मुभवस्त्रिका बाधवी ओवुं गधा नैनशास्त्रोभा प्रतिपादन करेडु छे ओटला भाटे भगवती सूत्रना 'सुहृमकाय अणिज्जूहत्ताण' ओ वाक्यने अर्थ ओम समजवे ओठओ डे 'मुभवस्त्रिकाने त्याग करीने अर्थात् न बाधने' ओन प्रभाओ गधी जग्याओ समजवु

प्रश्न-आचाराङ्ग-सूत्रभा उच्छ्वास आदि लेती वधते मुभ ढकवाने उपदेश आये छे ओवी ओम प्रतीत थाय छे डे मुभवस्त्रिका हाथमे न राखवी ओठओ, दोरकी बाधवी ओठओ नहि अमुक अमुक समये न न्यारे उच्छ्वास आदि आवे तबरे न नाक या मुख ढकी लेवु ओठओ, दोरकी मुभवस्त्रिका धारण करवी उचित होय तो पछी पुन मुभ ढकवाने उपदेश व्यर्थ थय नशे

किञ्च विधिप्रपाग्रन्थे चारित्रातिचारप्रायश्चित्ताधिकारे मुखवस्त्रिकामन्तरेण भाषणनिषेधः प्रतिपादितः ।

किञ्च पूर्वोक्तदिशा पट्टकायविराधस्य तद्विराधनार्जनपरकभगवदाज्ञाम्-दोषप्रसङ्गः ।

तथा च सति अविधिविधान, ततो मिथ्यात्व, तस्माच्चारित्रविराधना, तदथ दीर्घसंसारित्व प्रपन्नेत, अत एवाऽऽज्ञामद्गुरुर्गुरुतरप्रायश्चित्तं प्रदर्शितम् ।

उक्तं हि बृहत्कल्पभाष्ये—

“अवराहे लट्टगयरो, आणाभगमि गुरुतरो किरणु ? ।

आणाण चिय चरण, तन्मगे किं न भग्ग तु ? ॥१॥” इति ।

सर्वमेव चारित्र भगवदाज्ञापामेव व्यवस्थितम्, अतस्तद्गुरे मूलोत्तरगुणा वस्तु किं न भग्ग ? अपि तु सर्वमपि भग्गमिति हेतोस्तत्र गुरुतरप्रायश्चित्तं

फिर ‘विधिप्रपा’ नामके ग्रन्थमें भी चारित्रके अति-प्रायश्चित्त कहते समय मुखवस्त्रिकाके विना बोलनेका स्पष्ट निषेध गया है ।

तथा-पूर्वोक्त रीतिसे पट्टकायकी विराधना करनेवालेको “पट्टकायकी विराधनाका त्याग करना” इस आज्ञाके भंग लगता है । यह दोष लगनेसे अविधिका विधान, अविधि करनेसे मिथ्यात्व, मिथ्यात्वसे चारित्रकी विराधना और विराधनासे दीर्घसंसारित्वकी प्राप्ति होती है । इसीसे आप्रायश्चित्त लगता है ।

बृहत्कल्पभाष्यमें कहा है—“अवराहे” इत्यादि

समस्त चारित्र भगवान्की आज्ञामें ही है ।

भग होने पर मूलगुण उत्तरगुण आदि सभी -

वही ‘विधिप्रपा’ नामका ग्रन्थमें पण प्रकरणमा मुखवस्त्रिका वगर बोलवाने निषेध करे

तथा-पूर्वोक्त रीतिथी पट्टकायनी विराधनाना त्याग करे ” आ जानाने वा वाथी अविधिनु विधान, अविधि-विधानथ आने चारित्रनी विराधनाथी दीर्घसंसारि सुतर प्रायश्चित्त लागे छे

बृहत्कल्पभाष्यमा कथु छे-

समस्त चारित्र भगवान्की अलग थवाथी मूलगुण उत्तरगुण आदि

सादियतनाया अनुपपत्तेः ।

अनेन सूत्रेण 'उच्छ्वासादिकाले आस्यरूपोपरूपरिपिधान पाणिना विधेय' मिति बोधयतो भगवतस्तात्पर्यं मुखवस्त्रिकया पिधाने रूपयन्तः पण्डिताभिमानिन एवमनुयोक्तव्याः—'पाणि' शब्दस्य मुखवस्त्रिकारूपोऽर्थः किं वाच्यो लक्ष्यो व्यङ्ग्यो वा ? । नात्रः, अभिधाशक्तिग्राहकव्याकरणकोशादिभिरुक्तार्थालाभात्, 'पञ्चशाखः शयः पाणि'—रित्यमरकोशव्याख्याया पञ्च शाखा इवादगुलयोऽस्येति पञ्चशाखः, शेतेऽस्मिन् सर्वमिति शयः, ( 'पुसि' ३।३।१२१। ) घः । पणाय-

मुख ढँक लेनेपर भी नाकसे निकलनेवाले उच्छ्वास आदिकी यतना नहीं हो सकती ।

इस सूत्रसे 'उच्छ्वास लेते समय आस्यक और पोपक (मलद्वार)को हाथसे ढँक लेना चाहिए,' ऐसा भगवान् बताते हैं, फिरभी नामधारी पंडित 'मुखवस्त्रिकासे ढँकना चाहिए' ऐसा अर्थ निकालते हैं । उनसे हम पूछते हैं कि तुम हाथका अर्थ मुखवस्त्रिका करते हो सो वह अर्थ वाच्य है, या लक्ष्य है या व्यङ्ग्य है ? । पहला पक्ष तो ठीक नहीं है, क्योंकि अभिधा शक्तिके ग्राहक व्याकरण कोश आदिकोमें यह अर्थ नहीं मिलता । अमरकोशमें हाथके तीन नाम दिये हैं—(१) पञ्चशाख (२) शय और (३) पाणि । व्याख्यामें बताया है कि शाखा जैसी पाँच अंगुलियाँ होती हैं इसलिए इसे पञ्चशाख कहते हैं । उसमें सब वस्तुएँ सोती (रखी जाती) हैं इसलिए शय कहते हैं । उससे सब लेनदेन

देवा छता पणु नाकथी नीकणनार उच्छ्वास आदिनी यतना थछ शकती नथी

आ सूत्रथी उच्छ्वास लेती वपते आस्यक अने पोपक ( मलद्वार ) ने हाथथी ढाडी लेवु नेछअये अयेम भगवान् बतावे छे, छता पणु नामधारी पंडित 'मुखवस्त्रिकाथी ढाकवु नेछअये' अयेवा अर्थ काढे छे अयेमने अये पूछीअये छीअये डे तये हाथने। अर्थ मुखवस्त्रिका करे छे, तो अये अर्थ वाच्य छे, या लक्ष्य छे डे व्यंग्य छे ? पछेदे। पक्ष तो णराणर नथी कारणे डे अलिधा शक्तिना आडक व्याकरणे कोश आदिमा अये अर्थ नथी मणतो अमरकोशमा हाथना तणु नाम आभ्या छे (१) पञ्चशाख, (२) शय अने (३) पाणि व्याख्यामा गताण्यु छे डे शाखा नेवी पाय आगणीअये छेय छे तेथी तेने 'पञ्चशाख' कडे छे अयेमा थधी वस्तुअये सूत्रे ( राभवाभा आवे ) छे तेथी तेने 'शय'

सूत्रपाठो हि तापदेव विद्यते—

“से भिक्खू वा २ उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जभायमाणे वा उद्धोण वा वायनिसग्ग वा करेमाणे पुब्बामेव आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेत्तिता तओ सजयामेव उस्सिज्ज वा जाव वायनिसग्गं वा करेज्जा” (सूत्र १०९) इति ।

छाया—“स भिक्षुर्वार उच्छ्वसन् वा, निःश्वसन् वा, कासमानः (कास कुर्वन्) वा, ध्रुवन् (क्षुत कुर्वन्) वा, जृम्भमाणो वा, उद्भिरन् वा, ((अधिष्ठानेन) वातनिसर्गं वा कुर्वन् पूर्वमेव आस्यक वा पोषक वा पाणिना परिपिधाय ततः सयत एव उच्छ्वसेद् वा यापद् वातनिसर्गं वा कुर्यात्.” इति संस्कृतम् ।

अत्र “आसय” इति लक्षणावृत्त्या घ्राणस्यापि बोधकम्, “उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा छीयमाणे वा” इति पदानि लक्षणाया तात्पर्यग्राहकाणि । ‘आसय’ इत्यस्य मुख्यमात्रपरत्वे तु पाणिना तत्परिविधानेऽपि घ्राणजन्योच्छ्वा-

उत्तर—ऐसा प्रश्न करना अज्ञानता है। आचाराङ्ग सूत्रका पाठ ऐसा है—  
“भिक्षु श्वासोच्छ्वास लेते समय, खांसते समय, छींकते समय, जभाते समय, डकारते समय तथा अधोवायुका त्याग करते समय, पहले मुख अथवा मलद्वारको हाथसे ढँककर फिर यतनापूर्वक श्वास लेवे यावत् अधोवायुका त्याग करे” ।

यहाँ ‘आसय’ (मुख) पद लक्षणाके द्वारा घ्राणकाभी बोधक है । ‘उस्सासमाणे वा निस्सासमाणे वा छीयमाणे वा’ ये पद लक्षणामें तात्पर्यके ग्राही हैं । ‘आसय’ पदसे केवल मुखका अर्थ लिया जाय तो हाथसे

उत्तर—जैवो प्रश्न करवो अज्ञानता छे आचाराङ्ग—सूत्रने पाठ जैवो छे—  
“भिक्षु श्वासोच्छ्वास लेती वपते, छिधरस भाती वपते, छीकती वपते, जभासु भाती वपते, जोडकार भाती वपते तथा अधोवायुने त्याग करती वपते, पहले मुख अथवा मणद्वारने हाथथी ढाडीने पछी यतनापूर्वक श्वास ले यावत् अधोवायुने त्याग करे”

आही ‘आसय’ (मुख) शब्द लक्षणाद्वारा घ्राणुने पक्ष बोधक छे ‘उस्सासमाणे वा निस्सासमाणे वा छीयमाणे वा’ जे पक्ष लक्षणाभा तात्पर्यना आही छे आसय शब्दथी केवण सुभने अर्थ लेवाभा आवे ते हाथथी मुख ढाडी

સાદિયતનાયા અનુપપત્તેઃ ।

અનેન સૂત્રેણ 'ઉચ્છ્વાસાદિકાલે આસ્યક્રપોપકપરિપિધાન પાણિના વિધેય' મિતિ વોધયતો ભગવતસ્તાત્પર્યં મુખવલ્લિકયા પિધાને કલ્પયન્તઃ પઙ્ડિતાભિમાનિન એવમનુયોક્તવ્યાઃ- 'પાણિ' શબ્દસ્ય મુખવલ્લિકારૂપોઽર્થઃ કિં વાચ્યો લક્ષ્યો વ્યજ્ઞયો વા ? । નાદ્યઃ, અભિધાશક્તિગ્રાહકવ્યાકરણકોશાદિભિરુક્તાર્થાભાત્, 'પશ્ચ-શાસ્ત્રઃ શયઃ પાણિ' -રિત્યમરકોશવ્યારપ્યાયા પશ્ચ શાસ્ત્રા ઇવાદગુલયોઽસ્યેતિ પશ્ચશાસ્ત્રઃ, શેતેઽસ્મિન્ સર્વમિતિ શયઃ, ( 'પુસ્તિ' ૩।૩।૧૨૧। ) ઘઃ । પળાય-

મુખ ઢેક લેનેપર મી નાકસે નિકલનેવાલે ઉચ્છ્વાસ આદિકી યતના નહીં હો સકતી ।

ઇસ સૂત્રસે 'ઉચ્છ્વાસ લેતે સમય આસ્યક ઓર પોપક (મલદ્વાર)કો હાથસે ઢેક લેના ચાહિય,' એસા ભગવાન્ વતાતે હીં, ફિરમી નામધારી પડિત 'મુખવલ્લિકાસે ઢેકના ચાહિય' એસા અર્થ નિકાલતે હીં । ડનસે હમ પૂઝતે હીં કિ તુમ હાથકા અર્થ મુખવલ્લિકા કરતે હો સો વહ અર્થ વાચ્ય હૈ, યા લક્ષ્ય હૈ યા વ્યજ્ઞય હૈ ? । પહલા પક્ષ તો ઠીક નહીં હૈ, ક્યોંકિ અભિધા શક્તિકે ગ્રાહક વ્યાકરણ કોશ આદિકોંમે યહ અર્થ નહીં મિલતા । અમરકોશમેં હાથકે ત્રીન નામ દિયે હીં-(૧) પશ્ચશાસ્ત્ર (૨) શય ઓર (૩) પાણિ । વ્યાખ્યામેં વતાયા હૈ કિ શાસ્ત્રા જૈસી પાંચ અગુલિયાં હોતી હીં ઇસલિયે ઇસે પશ્ચશાસ્ત્ર કહતે હીં । ડસમેં સવ વસ્તુએં સોતી (રખી જાતી) હીં ઇસલિયે શય કહતે હીં । ડસસે સવ લેનદેન

લેવા છતા પણ નાકથી નીકળનાર ઉચ્છ્વાસ આદિની યતના થઇ શકતી નથી

આ સૂત્રથી ઉચ્છ્વાસ લેતી વખતે આસ્યક અને પોપક (મલદ્વાર) ને હાથથી ઢાકી લેવું જોઈએ એમ ભગવાન્ બતાવે છે, છતા પણ નામધારી પડિત 'મુખવલ્લિકાથી ઢાકવું જોઈએ' એવો અર્થ કાઢે છે એમને અને પૂછીએ છીએ કે તમે હાથનેા અર્થ મુખવલ્લિકા કરો છો, તો એ અર્થ વાચ્ય છે, યા લક્ષ્ય છે કે વ્યજ્ય છે ? ખહેલો પક્ષ તો ધરાધર નથી કારણ કે અભિધા શક્તિના શાહક વ્યાકરણ કોશ આદિમા એ અર્થ નથી મળતો અમરકોશમા હાથના ત્રણ નામ આપ્યા છે (૧) પશ્ચશાખ, (૨) શય અને (૩) પાણિ વ્યાખ્યામા બતાવ્યું છે કે શાખા જેવી પાચ આગળીઓ હોય છે તેથી તેને 'પશ્ચશાખ' કહે છે એમા ધથી વસ્તુઓ સૂચે (શખવામા આવે) છે તેથી તેને 'શય'



न्यनेनेति पाणिः 'पण न्यवहारे स्तुतौ च' इत्यस्मात् 'अशिपणाग्योरु-  
डायलुकौ च' (उ० ४।१३३) इतीण्, 'आयप्रत्ययस्य लुक् च'—ति व्यु-  
त्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लाभाच्च ।

नापि द्वितीयः, मुख्यार्थकरकरणपिधानतात्पर्यस्य निर्वापेन तात्पर्यान्वय-  
पत्तिरूपलक्षणाजीजस्याभावात् ।

नापि तृतीयः, मुख्यार्थतात्पर्यरूपत्वेनैव करणे पायुपिधानस्यापरकरेण  
मुखग्राणपिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवह्निनातात्पर्यरूपत्वकल्पनाया अन-  
वश्यकत्वात्, अनौचित्याच्च । पायुनिसर्गानन्तर क्षुते जायमाने पायुनिर्गतवायु-  
आदि व्यवहार होते हैं अतः उसे पाणि कहते हैं । "अशिपणाग्यो रुडा-  
यलुकौ च" (उ० ४।१३३) इस सूत्रसे 'इण्' होता है और 'आय' प्रत्ययका  
लुक् होता है । ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे 'कर'का वाचक ही होता है ।

दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ मानना) ठीक नहीं है । लक्ष्य अर्थ वहाँ  
माना जाता है जहाँ मुख्य (शाब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा  
आती हो । यहाँ पर 'हाथसे ढँक कर' ऐसा अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं  
आती, इसलिए लक्षणा नहीं हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है ।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष वाधित है । जब प्रधान अर्थ  
लेनेसे एक हाथसे मलद्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक मुखका ढँकना  
युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवह्निकाके तात्पर्यकी कल्पना करना) अन-  
वश्यक और अनुचित है । अधोवायु निकलते ही किसीको छोंक आने

कडे छे ते वडे णधे लेणुहेणु वगेरेने। वडेवार थाय छे तेथी जेने 'पाण्डि' कडे छे  
अशिपणाग्यो रुडायलुकौ च (उ० ४।१३३) जे सूत्रथी इण् थाय छे अने  
आय प्रत्ययने। लुक् थाय छे जेवी व्युत्पत्ति करवाथी कर ने। वाचक न् णने छे

धीने पक्ष पणु ( लक्ष्य अर्थ मानने ) णरअर नथी लक्ष्य अर्थ त्थ  
मानवामा आवे छे के न्या सुण्य ( शाब्दिक ) अर्थ लेवामा कोथ  
बाधा आवे अर्ही ' हाथथी ढाकीने ' जेवो अर्थ करवामा कोथ बाधा आ  
नथी, तेथी लक्षणा थथ शकती नथी, जेटले जे लक्ष्य अर्थ पणु नथी

तीने पक्ष ( व्यङ्ग्य अर्थ मानने ) पणु बाधित छे न्यारे प्रधान अर्थ  
लेवाथी जेक हाथथी मलद्वार ढाकवु अने धीण हाथे नाक-मुखने  
युक्त छे तो व्यङ्ग्य अर्थ ( मुखवह्निकाना तात्पर्यनी कल्पना करवी ) अन  
अने अनुचित छे अधोवायु नीकणती वणते न कोथने छोंक आववा लागे

सप्तष्टया मुखवस्त्रिकया मुखघ्राणपिधानस्यानौचित्यमापामरमतीतमेव ।

पाणिशब्देऽजहल्लक्षणावृत्तिं स्वीकृत्य 'पाणिस्थितमुखवस्त्रिकये' त्यर्थकल्पनेऽपि नोक्तानौचित्यदोषनिस्तारः । अपिच-आस्यरु-पोपकैतदुभयपरिपिधाने पाणि-नेत्येकमेव साधनमुक्त, तत्र पाणिस्थितमुखवस्त्रिकयेत्यर्थाङ्गीकारे दीर्घोच्छ्वासादी-नामधोवायुनिसर्गस्य च यौगपद्ये सति कथमेकयैव पाणिस्थितया मुखवस्त्रिकया युगपदेव घ्राण मुख पायुथाऽऽवरीतु शक्यत इति "पाणिणा परिपेहिता" इति भगवद्वाक्यस्यानुपपत्तिः । न च 'एकपाणिस्थितया मुखवस्त्रिकयाऽऽस्यकम्, अपरपा-

लगे तो उसी अधोवायुवासित मुखवस्त्रिकासे 'मुख' और नाक मूदना बिलकुल अनुचित है और इस अनौचित्यको हरेक समझ सकता है ।

यदि 'पाणि' शब्दमें अजहल्लक्षणा वृत्ति मानकर 'पाणि' (हाथ) से पाणिमें स्थित मुखवस्त्रिका अर्थ लगे तो भी अनौचित्य दोष नहीं टट सकता । दूसरी बात यह है कि मुख और मलद्वार ढँकनेका पाणिरूप एक ही साधन बताया है । यदि इसका अर्थ मुखवस्त्रिका किया जावे तो जब एक ही साथ अधोवायु और दीर्घ उच्छ्वास आवेगा तब एक ही मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाई जावेगी या मुँहपर ? और यदि साथ ही छींक भी आयगी तो वही नाकमें कैसे लगाई जावेगी ? क्योंकि एक मुखवस्त्रिकासे एक साथ ही सब द्वार नहीं ढँके जा सकते । अतः 'पाणिणा परिपेहिता' यह भगवान्का वचन ठीक नहीं बैठेगा । यदि ऐसा समाधान करना चाहो कि एक हाथकी मुँहपत्तीसे मुँह और दूसरे

ये अधोवायुधी वासित मुखवस्त्रिकाधी मुख અને નાક ઢાકવા એ બિલકુલ અનુચિત છે અને એ અનૌચિત્યને સૌ કોઈ સમજી શકે છે

જો 'પાણિ' શબ્દમાં અજહલ્લક્ષણા વૃત્તિ માનીને, 'પાણિ' (હાથ) થી પાણિમાં સ્થિત મુખવસ્ત્રિકાને અર્થ લેશે તો પણ અનૌચિત્ય દોષ દૂર થઈ શકતો નથી ખીલુ વાત એ છે કે મુખ અને મળદ્વાર ઢાકવાનું પાણિરૂપ એકજ સાધન બતાવ્યું છે જો એનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કરવામાં આવે તો જ્યારે એકી સાથે અધોવાયુ અને દીર્ઘ ઉચ્છ્વાસ આવશે ત્યારે એક જ મુખવસ્ત્રિકા મળદ્વાર પર લગાડવામાં આવશે કે મુખ પર ? અને જો સાથે જ છીંક પણ આવશે તો તે નાક પર કેવી રીતે લગાડવામાં આવશે ? કારણ કે એક મુખવસ્ત્રિકાથી એકી સાથે બધા દ્વાર ઢાકી શકાતા નથી તેથી 'પાણિણા પરિપેહિતા' એવું ભગવાનનું વચન બરાબર બધ બેસશે નહિ જો એવું સમાધાન કરવા ઇચ્છો કે એક હાથની

न्त्यनेनेति पाणिः 'पण व्यवहारे स्तुती च' इत्यस्मात् 'अशिपणाव्यो-  
रुडायलुकौ च' (उ० ४।१३३) इतीण्, 'आयप्रत्ययस्य लृक् चे'-ति व्यु-  
त्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लभाच्च ।

नापि द्वितीयः, मुर्यार्थकरकरणपिधानतात्पर्यस्य निर्वाधेन तात्पर्यानुप-  
पत्तिरूपलक्षणापीजस्याभावात् ।

नापि तृतीयः, मुर्यार्थतात्पर्यमत्त्वेनैवमकरेण पायुपिधानस्यापरकरेण  
मुखघ्राणपिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवह्निकातात्पर्यमत्वमल्पनाया अना-  
वश्यकत्वात्, अनौचित्याच्च । पायुनिसर्गानन्तर क्षुते जायमाने पायुनिर्गतवायु

आदि व्यवहार होते हैं अतः उसे पाणि कहते हैं । "अशिपणाव्यो रुडा-  
यलुकौ च" (उ० ४।१३३) इस सूत्रसे 'इण्' होता है और 'आय' प्रत्ययका  
लृक् होता है । ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे 'कर'का वाचक ही होता है ।

दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ मानना) ठीक नहीं है । लक्ष्य अर्थ वहाँ  
माना जाता है जहाँ मुख्य (शाब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा  
आती हो । यहाँ पर 'हाथसे ढँक कर' ऐसा अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं  
आती, इसलिये लक्षणा नहीं हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है ।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष बाधित है । जब प्रधान अर्थ  
लेनेसे एक हाथसे मलद्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक मुखका ढँकना  
युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवह्निकाके तात्पर्यकी कल्पना करना) अना-  
वश्यक और अनुचित है । अधोवायु निकलते ही किसीको छोक

कडे छे ते वडे गंधा लेखुहेषु वगेरेना वडेवार थाय छे तेथी ओने 'पाणि' कडे छे  
अशिपणाव्यो रुडायलुकौ च (उ० ४।१३३) ओ सूत्रथी इण् थाय छे अते  
आय प्रत्ययना लृक् थाय छे ओवी व्युत्पत्ति करवाथी कर ना वाचक न् ओने छे

पीने पक्ष पणु ( लक्ष्य अर्थ मानवो ) परापर नथी लक्ष्य अर्थ ।  
मानवाभा आवे छे डे न्या मुण्य ( शाब्दिक ) अर्थ लेवाभा डोछ  
भाधा आवे अही ' हाथथी दाकीने ' ओवो अर्थ करवाभा डोछ भाधा आ-  
नथी, तेथी लक्षणा अछ शकती नथी, ओटले ओ लक्ष्य अर्थ पणु नथी

तीने पक्ष ( व्यङ्ग्य अर्थ मानवो ) पणु बाधित छे न्यारे प्रधान  
लेवाथी ओक हाथथी मलद्वार दाकडु ओने पीने हाथे नाक-मुणने  
युक्त छे, तो व्यङ्ग्यार्थ ( मुखवह्निकाना तात्पर्यनी कल्पना करवी ) अनाव-  
अने अनुचित छे अधोवायु नीकणती वभते न् डोछने छोक आववा लागे ।

ससृष्ट्या मुखवस्त्रिकया मुखघ्राणपिधानस्यानौचित्यमापामरप्रतीतमेव ।

पाणिशब्देऽजहल्लक्षणावृत्तिं स्वीकृत्य 'पाणिस्थितमुखवस्त्रिकये' त्यर्थकल्पनेऽपि नोक्तानौचित्यदोषनिस्तारः । अपिच-आस्यरू-पोपकैतदुभयपरिपिधाने पाणि-नेत्येकमेव साधनमुक्तं, तत्र पाणिस्थितमुखवस्त्रिकयेत्यर्थाङ्गीकारे दीर्घोच्छ्वासादी-नामधोवायुनिसर्गस्य च यौगपये सति रुधमेकयैव पाणिस्थितया मुखवस्त्रिकया युगपदेव घ्राण मुख पायुश्चाऽऽवरीतु शक्यत इति "पाणिणा परिपेहिता" इति भगवद्वाक्यस्यानुपपत्तिः । न च 'एकपाणिस्थितया मुखवस्त्रिकयाऽऽस्यकम्, अपरपा-

लगे तो उसी अधोवायुवासित मुखवस्त्रिकासे 'मुख' और नाक मूदना बिलकुल अनुचित है और इस अनौचित्यको हरेक समझ सकता है ।

यदि 'पाणि' शब्दमें अजहल्लक्षणा वृत्ति मानकर 'पाणि' (हाथ) से पाणिमें स्थित मुखवस्त्रिका अर्थ लगे तो भी अनौचित्य दोष नहीं हट सकता । दूसरी बात यह है कि मुख और मलद्वार ढँकनेका पाणिरूप एक ही साधन बताया है । यदि इमका अर्थ मुखवस्त्रिका किया जावे तो जब एक ही साथ अधोवायु और दीर्घ उच्छ्वास आवेगा तब एक ही मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाई जावेगी या मुँहपर ? और यदि नाथ ही छींक भी आयगी तो वही नाकमे कैसे लगाई जावेगी ? क्योंकि एक मुखवस्त्रिकासे एक साथ ही सब द्वार नहीं ढँके जा सकते । अतः 'पाणिणा परिपेहिता' यह भगवान्का वचन ठीक नहीं बैठेगा । यदि ऐसा समाधान करना चाहो कि एक हाथकी मुँहपत्तीसे मुँह और दूसरे

ये अधोवायुथी वासित मुखवस्त्रिकाथी मुख अने नाक ढाकवा ये गिलकुल अनुचित छे अने ये अनौचित्यने सौ केछि सभल्ल शके छे

ने 'पाणि' शब्दमा अजहल्लक्षणा वृत्ति मानीने, 'पाणि' (हाथ) थी पाणिमा स्थित मुखवस्त्रिकाने अर्थ लेशो तोपण्य अनौचित्य दोष हूर यर्थ शकते नथी पील वात छे के के मुख अने मलद्वार ढाकवानु पाणिइप ओकज साधन गताव्यु छे ने ओने अर्थ मुखवस्त्रिका करवामा आवे तो न्यारे ओकी साथे अधोवायु अने दीर्घ उच्छ्वास आवशे त्यारे ओके ज मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाडवामा आवशे के मुख पर ? अने ने साथे ज छींक पण्य आवशे तो ते नाक पर केवी रीते लगाडवामा आवशे ? कारण्य के ओके मुखवस्त्रिकाथी ओकी साथे मधा द्वार ढाकी शकता नथी तेथी 'पाणिणा परिपेहिता' ओयु भगवाननु वचन गरापर मध ओसशे नहि ने ओयु समाधान करवा छन्दो के ओके हाथनी

ન્યનેનેતિ पाणिः 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' इत्यस्मात् 'अग्निपणाग्योरु-  
डायलुकौ च' (उ० ४।१३३) इतीण्, 'आयप्रत्ययस्य लृक् च'-ति व्यु-  
त्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लाभाच्च ।

नापि द्वितीयः, मुर्यार्थकरकरणरूपिधानतात्पर्यस्य निर्वाधेन तात्पर्यानुप-  
पत्तिरूपलक्षणारीजस्याभावात् ।

नापि तृतीयः, मुर्यार्थतात्पर्यस्त्वेनैव करणे पायुपिधानस्यापरकरेण  
मुखघ्राणपिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवस्त्रिकातात्पर्यस्त्वल्पनाया अना-  
वश्यकत्वात्, अनौचित्याच्च । वायुनिसर्गानन्तर क्षुते जायमाने पायुनिर्गतवायु-

आदि व्यवहार होते हैं अतः उसे पाणि कहते हैं । "अग्निपणाग्यो रुडा  
यलुकौ च" (उ० ४।१३३) इस सूत्रसे 'इण्' होता है और 'आय' प्रत्ययका  
लृक् होता है । ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे 'कर'का वाचक ही होता है ।

दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ मानना) ठीक नहीं है । लक्ष्य अर्थ वहाँ  
माना जाता है जहाँ मुख्य (शाब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा  
आती हो । यहाँ पर 'हाथसे ढँक कर' ऐसा अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं  
आती, इसलिए लक्षणा नहीं हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है ।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष बाधित है । जब प्रधान अर्थ  
लेनेसे एक हाथसे मलद्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक मुखका ढँकना  
युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवस्त्रिकाके तात्पर्यकी कल्पना करना) अना-  
वश्यक और अनुचित है । अधोवायु निकलते ही किसीको छोंक आने

કહે છે તે વડે બધા લેણુલેણુ વગેરેનો વહેવાર થાય છે તેથી એને 'પાણિ' કહે છે  
અક્ષિપણાગ્યો રુડાયલુકૌ ચ (ઉ० ૪। ૧૩૩) એ સૂત્રથી ઇણ્ થાય છે અને  
આય પ્રત્યયનો લુક્ થાય છે એવી વ્યુત્પત્તિ કરવાથી કર નો વાચક જ બને છે

બીજો પક્ષ પણ (લક્ષ્ય અર્થ માનવો) ધરાબર નથી લક્ષ્ય અર્થ ત્યા  
માનવામા આવે છે કે ન્યા મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ લેવામા કોઈ પ્રકારની  
બાધા આવે અહીં 'હાથથી ઢાંકીને' એવો અર્થ કરવામા કોઈ બાધા આવતી  
નથી, તેથી લક્ષણા થઇ શકતી નથી, એટલે એ લક્ષ્ય અર્થ પણ નથી

ત્રીજો પક્ષ (વ્યંગ્ય અર્થ માનવો) પણ બાધિત છે ન્યારે પ્રધાન અર્થ  
લેવાથી એક હાથથી મળદ્વાર ઢાંકવું અને બીજા હાથે નાક-મુખને ઢાંકવું  
યુક્ત છે તો વ્યંગ્ય અર્થ (મુખવસ્ત્રિકાના તાત્પર્યની કલ્પના કરવી) અનાવશ્યક  
અને અનુચિત છે અધોવાયુ નીકળતી વખતે જ કોઈને છોંક આવવા લાગે

समष्टया मुखवस्त्रिकया मुखघ्राणपिधानस्यानौचित्यमापामरप्रतीतमेव ।

पाणिशब्देऽजहल्लक्षणावृत्तिं स्वीकृत्य 'पाणिस्थितमुखवस्त्रिकये' त्यर्थकल्पनेऽपि नोक्तानौचित्यदोषनिस्तारः । अपिच-आस्यरू-पोपकैतदुभयपरिपिधाने पाणिनेत्येकमेव साधनमुक्त, तत्र पाणिस्थितमुखवस्त्रिकयेत्यर्थाङ्गीकारे दीर्घोच्छ्वासादीनामधोवायुनिसर्गस्य च यौगपत्रे सति ऋथमेकयैव पाणिस्थितया मुखवस्त्रिकया युगपदेव घ्राण मुख पायुश्चाऽऽवरीतुं शक्यत इति "पाणिणा परिपेहिता" इति भगवद्वाक्यस्यानुपपत्तिः । न च 'एकपाणिस्थितया मुखवस्त्रिकयाऽऽस्यकम्, अपरपा-

लगे तो उसी अधोवायुवासित मुखवस्त्रिकासे 'मुख' और नाक मूदना बिलकुल अनुचित है और इस अनौचित्यको हरेक समझ सकता है ।

यदि 'पाणि' शब्दमें अजहल्लक्षणा वृत्ति मानकर 'पाणि' (हाथ) से पाणिमें स्थित मुखवस्त्रिका अर्थ लगे तो भी अनौचित्य दोष नहीं हट सकता । दूसरी बात यह है कि मुख और मलद्वार ढँकनेका पाणिरूप एक ही साधन बताया है । यदि इसका अर्थ मुखवस्त्रिका किया जावे तो जब एक ही साथ अधोवायु और दीर्घ उच्छ्वास आवेगा तब एक ही मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाई जावेगी या मुँहपर ? और यदि साथ ही छोक भी आयगी तो वही नाकमे कैसे लगाई जावेगी ? क्योंकि एक मुखवस्त्रिकासे एक साथ ही सब द्वार नहीं ढाँके जा सकते । अतः 'पाणिणा परिपेहिता' यह भगवान्का वचन ठीक नहीं बैठेगा । यदि ऐसा समाधान करना चाहो कि एक हाथकी मुँहपत्तीसे मुँह और दूसरे

ये अधोवायुथी वासित मुखवस्त्रिकाथी मुख અને નાક ઢાકવા એ બિલકુલ અનુચિત છે અને એ અનૌચિત્યને સૌ કોઈ સમજી શકે છે

ને 'પાણિ' શબ્દમાં અજહલ્લક્ષણા વૃત્તિ માનીને, 'પાણિ' ( હાથ ) થી પાણિમાં સ્થિત મુખવસ્ત્રિકાનેા અર્થ લેશે તોપણ અનૌચિત્ય દોષ દૂર થઈ શકતો નથી ખીલુ વાત એ છે કે મુખ અને મળદ્વાર ઢાકવાનું પાણિરૂપ એકજ સાધન બતાવ્યું છે ને એનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કરવામાં આવે તો જ્યારે એકી સાથે અધોવાયુ અને દીર્ઘ ઉચ્છ્વાસ આવશે ત્યારે એક જ મુખવસ્ત્રિકા મળદ્વાર પર લગાડવામાં આવશે કે મુખ પર ? અને ને સાથે જ છોક પણ આવશે તો તે નાક પર કેવી રીતે લગાડવામાં આવશે ? કારણ કે એક મુખવસ્ત્રિકાથી એકી સાથે બધા દ્વાર ઢાકી શકાતા નથી તેથી 'પાણિણા પરિપેહિતા' એવું ભગવાનનું વચન બરાબર બધ બેસશે નહિ ને એવું સમાધાન કરવા ઈચ્છે કે એક હાથની

ન્યનેનેતિ પાણિઃ ‘પણ-વ્યવહારે સ્તુતૌ ચ’ इत्यस्मात् ‘अशिपणाग्योरु-  
 ङायलुकौ च’ (उ० ४।१३३) इतीण्, ‘आयप्रत्ययस्य लुक् च’-ति व्यु-  
 त्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लाभाच्च ।

नापि द्वितीयः, मुख्यार्थकरकरणकपिधानतात्पर्यस्य निर्वाधेन तात्पर्याद्विप-  
 पत्तिरूपलक्षणाधीजस्याभावात् ।

नापि तृतीयः, मुख्यार्थतात्पर्यकत्वेनैवकरणेण पायुपिधानस्यापरकरणेण  
 मुखघ्राणपिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवस्त्रिकातात्पर्यकत्वकल्पनाया अना-  
 वश्यकत्वात्, अनौचित्याच्च । वायुनिसर्गानन्तर श्रुते जायमाने पायुनिर्गतवायु-

आदि व्यवहार होते हैं अतः उसे पाणि कहते हैं । “अशिपणाग्यो रुडा  
 यलुकौ च” (उ० ४।१३३) इस सूत्रसे ‘इण्’ होता है और ‘आय’ प्रत्ययका  
 लुक् होता है । ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे ‘कर’का वाचक ही होता है ।

दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ मानना) ठीक नहीं है । लक्ष्य अर्थ वहाँ  
 माना जाता है जहाँ मुख्य (शाब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा  
 आती हो । यहाँ पर ‘हाथसे ढँक कर’ ऐसा अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं  
 आती, इसलिए लक्षणा नहीं हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है ।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष बाधित है । जब प्रधान अर्थ  
 लेनेसे एक हाथसे मलद्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक मुखका ढँकना  
 युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवस्त्रिकाके तात्पर्यकी कल्पना करना) अना-  
 वश्यक और अनुचित है । अधोवायु निकलते ही किसीको छोक आने

કહે છે તે વડે બધા લેણદેણ વગેરેના વહેવાર થાય છે તેથી એને ‘પાણિ’ કહે છે  
 અશિપણાગ્યો રુડાયલુકૌ ચ (ઉ० ૪। ૧૩૩) એ સૂત્રથી ઇણ્ થાય છે અને  
 આય પ્રત્યયનો લુક્ થાય છે એવી વ્યુત્પત્તિ કરવાથી કર નો વાચક જ બને છે

બીજો પક્ષ પણ (લક્ષ્ય અર્થ માનવો) ધરાગર નથી લક્ષ્ય અર્થ ત્યા  
 માનવામા આવે છે કે બ્યા મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ લેવામા કોઈ પ્રકારની  
 બાધા આવે અહીં ‘હાથથી ઢાકીને’ એવો અર્થ કરવામા કોઈ બાધા આવતી  
 નથી, તેથી લક્ષણા થઇ શકતી નથી, એટલે એ લક્ષ્ય અર્થ પણ નથી

ત્રીજો પક્ષ (વ્યંગ્ય અર્થ માનવો) પણ બાધિત છે બ્યારે પ્રધાન અર્થ  
 લેવાથી એક હાથથી મળદ્વાર ઢાકવું અને બીજા હાથે નાક-મુખને ઢાકવું  
 યુક્ત છે તો વ્યંગ્યાર્થ (મુખવસ્ત્રિકાના તાત્પર્યની કલ્પના કરવી) અનાવશ્યક  
 અને અનુચિત છે અધોવાયુ નીકળતી વખતે જ કોઈને છોક-આવવા

समष्टया मुखवस्त्रिकया मुखघ्राणपिधानस्यानौचित्यमापामरमतीतमेव ।

पाणिशब्देऽजहलक्षणावृत्तिं स्वीकृत्य 'पाणिस्थितमुखवस्त्रिकये' त्पर्यकल्पनेऽपि नोक्तानौचित्यदोषनिस्तारः । अपिच-आस्यरु-पोषकैतद्दुभयपरिपिधाने पाणि-नेत्येकमेव साधनमुक्त, तत्र पाणिस्थितमुखवस्त्रिकयेत्यर्थाद्गीकारे दीर्घोच्छ्वासादी-नामधोवायुनिसर्गस्य च यौगपत्ये सति ऋयमेकयैव पाणिस्थितया मुखवस्त्रिकया युगपदेव घ्राण मुख पायुश्चाऽऽवरीतुं शक्यत इति "पाणिणा परिपेहिता" इति भगवद्वाक्यस्यानुपपत्तिः । न च 'एकपाणिस्थितया मुखवस्त्रिकयाऽऽस्यकम्, अपरपा-

लगे तो उसी अधोवायुवासित मुखवस्त्रिकासे 'मुख' और नाक मूदना बिलकुल अनुचित है और इस अनौचित्यको हरेक समझ सकता है ।

यदि 'पाणि' शब्दमें अजहलक्षणा वृत्ति मानकर 'पाणि' (हाथ) से पाणिमें स्थित मुखवस्त्रिका अर्थ लगे तो भी अनौचित्य दोष नहीं हट सकता । दूसरी बात यह है कि मुख और मलद्वार ढँकनेका पाणिरूप एक ही साधन बताया है । यदि इमका अर्थ मुखवस्त्रिका किया जावे तो जब एक ही साथ अधोवायु और दीर्घ उच्छ्वास आवेगा तब एक ही मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाई जावेगी या मुँहपर ? और यदि साथ ही छींक भी आयगी तो वही नाकमें कैसे लगाई जावेगी ? क्योंकि एक मुखवस्त्रिकासे एक साथ ही सब द्वार नहीं ढँके जा सकते । अतः 'पाणिणा परिपेहिता' यह भगवान्का वचन ठीक नहीं बैठेगा । यदि ऐसा समाधान करना चाहो कि एक हाथकी मुँहपत्तीसे मुँह और दूसरे

ये अधोवायुशी वासित मुखवस्त्रिकाथी मुख अने नाक ढाकवा ये बिलकुल अनुचित छे अने ये अनौचित्यने सौ डोछ समझ शके छे

ने 'पाणि' शब्दमा अजहलक्षणा वृत्ति मानीने, 'पाणि' ( हाथ ) थी पाणिमा स्थित मुखवस्त्रिकाने। अर्थ लेशो तोपण्य अनौचित्य दोष हूर यर्थ शकतो नथी थीछ वात ये छे डे मुख अने मणद्वार ढाकवानु पाणिरूप अेकन साधन भताण्यु छे ने अेने। अर्थ मुखवस्त्रिका करवामा आवे तो न्यारे अेकी साथे अधोवायु अने दीर्घ उच्छ्वास आवशे त्यारे अेक न मुखवस्त्रिका मणद्वार पर लगाडवामा आवशे डे मुख पर ? अने ने साथे न छींक पण्य आवशे तो ते नाक पर डेवी रीते लगाडवामा आवशे ? कारण्य डे अेक मुखवस्त्रिकाथी अेकी साथे मधा द्वार ढाकी शकता नथी तेथी 'पाणिणा परिपेहिता' अेवु भगवाननु वचन मरामर मध मेसथे नहि ने अेवु समाधान करवा धरुडो डे अेक हाथनी



ન્યનેનેતિ પાણિઃ ‘પણ વ્યવહારે સ્તુતૌ ચ’ इत्यस्मात् ‘अशिपणाव्यो-  
 ङ्ङायलुकौ च’ (उ० ४।१३३) इतीण्, ‘आयप्रत्ययस्य लृक् च’-ति व्यु-  
 त्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लाभाच्च ।

नापि द्वितीयः, मुख्यार्थकरकरणमपिधानतात्पर्यस्य निर्वाधेन तात्पर्यानुप-  
 पत्तिरूपलक्षणानीजस्याभावात् ।

नापि तृतीयः, मुख्यार्थतात्पर्यवत्त्वेनैव करेण पायुपिधानस्यापरकरेण  
 मुखघ्राणपिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवस्त्रिकातात्पर्यवत्त्वकल्पनाया अना-  
 वश्यकत्वात्, अनौचित्याच्च । पायुनिसर्गानन्तर क्षुते जायमाने पायुनिर्गतवायु-

आदि व्यवहार होते हैं अतः उसे पाणि कहते हैं । “अशिपणाव्यो ङ्ङा-  
 यलुकौ च” (उ० ४।१३३) इस सूत्रसे ‘इण्’ होता है और ‘आय’ प्रत्ययका  
 लृक् होता है । ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे ‘कर’का वाचक ही होता है ।

दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ मानना) ठीक नहीं है । लक्ष्य अर्थ वहाँ  
 माना जाता है जहाँ मुख्य (शाब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा  
 आती हो । यहाँ पर ‘हाथसे ढँक कर’ ऐसा अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं  
 आती, इसलिए लक्षणा नहीं हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है ।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष बाधित है । जब प्रधान अर्थ  
 लेनेसे एक हाथसे मलद्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक मुखका ढँकना  
 युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवस्त्रिकाके तात्पर्यकी कल्पना करना) अना-  
 वश्यक और अनुचित है । अधोवायु निकलते ही किसीको छोक आने

કહે છે તે વડે બધા લેણુદેણુ વગેરેના વહેવાર થાય છે તેથી એને ‘પાણિ’ કહે છે  
 અશિપણાવ્યો રંગાયલુકો ચ (ઉ० ૪। ૧૩૩) એ સૂત્રથી ઇણ્ થાય છે અને  
 આય પ્રત્યયનો લૃક્ થાય છે એવી વ્યુત્પત્તિ કરવાથી કર નો વાચક જ બને છે

બીજો પક્ષ પણ (લક્ષ્ય અર્થ માનવો) ઘરાબર નથી લક્ષ્ય અર્થ ત્યા  
 માનવામા આવે છે કે ન્યા મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ લેવામા કોઈ પ્રકારની  
 બાધા આવે અહીં ‘હાથથી ઢાકીને’ એવો અર્થ કરવામા કોઈ બાધા આવતી  
 નથી, તેથી લક્ષણા થઇ શકતી નથી, એટલે એ લક્ષ્ય અર્થ પણ નથી

ત્રીજો પક્ષ (વ્યંગ્ય અર્થ માનવો) પણ બાધિત છે ન્યારે પ્રધાન અર્થ  
 લેવાથી એક હાથથી મળદ્વાર ઢાકવું અને બીજા હાથે નાક-મુખને ઢાકવું  
 યુક્ત છે તો વ્યંગ્ય અર્થ (મુખવસ્ત્રિકાના તાત્પર્યની કલ્પના કરવી) અનાવશ્યક  
 અને અનુચિત છે અધોવાયુ નીકળતી વખતે જ કોઈ

ससृष्टया मुखवस्त्रिकया मुखघ्राणपिधानस्यानौचित्यमापामरमतीतमेव ।

पाणिशब्देऽजहल्लक्षणावृत्तिं स्वीकृत्य 'पाणिस्थितमुखवस्त्रिकये' त्यर्थकल्पनेऽपि नोक्तानौचित्यदोषनिस्तारः । अपिच-आस्यरू-पोपकैतदुभयपरिपिधाने पाणि-नेत्येकमेव साधनमुक्त, तत्र पाणिस्थितमुखवस्त्रिकयेत्यर्थाङ्गीकारे दीर्घोच्छ्वासादी-नामधोवायुनिसर्गस्य च यौगपत्ये सति रुयमेरुयैव पाणिस्थितया मुखवस्त्रिकया युगपदेव घ्राण मुख पायुश्चाऽऽवरीतु शक्यत इति "पाणिणा परिपेहिता" इति भगवद्वाक्यस्यानुपपत्तिः । न च 'एकपाणिस्थितया मुखवस्त्रिकयाऽऽस्यकम्, अपरपा-

लगे तो उसी अधोवायुवासित मुखवस्त्रिकासे 'मुख' और नाक सूदना बिलकुल अनुचित है और इस अनौचित्यको हरेक समझ सकता है ।

यदि 'पाणि' शब्दमें अजहल्लक्षणा वृत्ति मानकर 'पाणि' (हाथ) से पाणिमें स्थित मुखवस्त्रिका अर्थ लगे तो भी अनौचित्य दोष नहीं टट सकता । दूसरी बात यह है कि मुख और मलद्वार ढँकनेका पाणिरूप एक ही साधन बताया है । यदि हमका अर्थ मुखवस्त्रिका किया जावे तो जब एक ही साथ अधोवायु और दीर्घ उच्छ्वास आवेगा तब एक ही मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाई जावेगी या मुँहपर ? और यदि साथ ही छींक भी आयगी तो वही नाकमें कैसे लगाई जावेगी ? क्योंकि एक मुखवस्त्रिकासे एक साथ ही सब द्वार नहीं ढाँके जा सकते । अतः 'पाणिणा परिपेहिता' यह भगवान्का वचन ठीक नहीं बैठेगा । यदि ऐसा समाधान करना चाहो कि एक हाथकी मुँहपत्तीसे मुँह और दूसरे

ये अधोवायुधी वासित मुखवस्त्रिकाधी मुख अने नाक ढाकवा ये गिलकुल अनुचित छे अने ये अनौचित्यने सौ केध समल्ल शके छे

जे 'पाणि' शब्दमा अजहल्लक्षणा वृत्ति मानीने, 'पाणि' ( हाथ ) थी पाणिमा स्थित मुखवस्त्रिकाने अर्थ लेशो तोपणु अनौचित्य दोष दूर थर्थ शकतो नथी थील वात ये छे के मुख अने मलद्वार ढाकवानु पाणिइप ओकल साधन भताव्यु छे जे ओने अर्थ मुखवस्त्रिका करवामा आवे तो न्यारे ओकी साथे अधोवायु अने दीर्घ उच्छ्वास आवशे त्यारे ओक ल मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाडवामा आवशे के मुख पर ? अने जे साथे ल छींक पणु आवशे तो ते नाक पर केवी रीते लगाडवामा आवशे ? कारणु के ओक मुखवस्त्रिकाधी ओकी साथे मधा द्वार ढाकी शकता नथी तेथी 'पाणिणा परिपेहिता' जेपु भगवाननु वचन भराभर मध भेसथे नहि जे जेपु समाधान करवा धरथे के ओक हाथनी

ન્યનેનેતિ પાણિઃ ‘પણ વ્યવહારે સ્તુતૌ ચ’ ઇત્યસ્માત્ ‘અગ્નિપણાગ્યો-  
હાયલુકૌ ચ’ (૩૦ ધા ૧૩૩) ઇતીળ્, ‘આયપ્રત્યયસ્ય લુક્ ચે’-તિ વ્યુ-  
ત્પાદનેન તત્ર કરવાચન્તસ્યૈવ લાભાચ ।

નાપિ દ્વિતીયઃ, મુર્યાર્થકરકરણરૂપિધાનતાત્પર્યસ્ય નિર્ગાધેન તાત્પર્યાનુપ-  
પત્તિરૂપલક્ષણાગ્રીજસ્યાભાયાત્ ।

નાપિ તૃતીયઃ, મુર્યાર્થતાત્પર્યમત્વેનેવમકરેણ પાયુપિધાનસ્યાપરકરેણ  
મુખપ્રાણપિધાનસ્ય ચોપપચ્યા વ્યદ્ગ્યાર્થમુખવસ્ત્રિક્રાતાત્પર્યમત્વમ્લપનાયા અના-  
વશ્યકત્વાત્, અનોચિત્યાચ । ઘાયુનિસર્ગાનન્તર મૃતે જાયમાને પાયુનિર્ગતવાયુ

આદિ વ્યવહાર હોતે હે અતઃ ઉસે પાણિ કહતે હે । “અગ્નિપણાગ્યો રુદ્ધા-  
યલુકૌ ચ” (૩૦ ધા ૧૩૩) હસ સૂત્રસે ‘ઇળ્’ હોતા હે ઓર ‘આય’ પ્રત્યયકા-  
લુક હોતા હે । એસી વ્યુત્પત્તિ કરનેસે ‘કર’કા વાચક હી હોતા હે ।

દૂસરા ખી પક્ષ (લક્ષ્ય અર્થ માનના) ઠીક નહી હે । લક્ષ્ય અર્થ વહોં  
માના જાતા હે જહોં મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ હેનેમેં કિસી પ્રકારકી બાધા  
આતી હો । યહોં પર ‘હાથસે ઢેક કર’ એસા અર્થ કરનેમેં કોઈ બાધા નહીં  
આતી, હસલિપે લક્ષણા નહી હો સકતી, અતઃ યહ લક્ષ્ય અર્થ ખી નહીં હે ।

ત્રીસરા (વ્યદ્ગ્ય અર્થ માનના) ખી પક્ષ વાધિત હે । જબ પ્રધાન અર્થ  
હેનેસે એક હાથસે મલદ્વાર ઢેકના ઓર દૂસરે હાથસે નાક મુખકા ઢેકના  
યુક્ત હે તો વ્યદ્ગ્ય અર્થ (મુખવસ્ત્રિકાકે તાત્પર્યકી કલ્પના કરના) અના-  
વશ્યક ઓર અનુચિત હે । અઘોવાયુ નિકલતે હી કિસીકો છોક આને

કહે છે તે વહે ઘથો લેણુદેણુ વગેરેનો વહેવાર થાય છે તેથી એને ‘પાણિ’ કહે છે  
અગ્નિપણાગ્યો રુદ્ધાયલુકૌ ચ (૩૦ ધા ૧૩૩) એ સૂત્રથી ઇળ્ થાય છે અને  
આય પ્રત્યયનો લુક્ થાય છે એવી વ્યુત્પત્તિ કરવાથી કર નો વાચક જ અને છે

ખીલે પક્ષ પણ (લક્ષ્ય અર્થ માનવો) ધરાધર નથી લક્ષ્ય અર્થ ત્યા  
માનવામા આવે છે કે ન્યા મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ લેવામા કોઈ પ્રકારની  
બાધા આવે અહીં ‘હાથથી ઢાકીને’ એવો અર્થ કરવામા કોઈ બાધા આવતી  
નથી, તેથી લક્ષણા થઈ શકતી નથી, એટલે એ લક્ષ્ય અર્થ પણ નથી

ત્રીલે પક્ષ (વ્યદ્ગ્ય અર્થ માનવો) પણ બાધિત છે ન્યાદે પ્રધાન અર્થ  
લેવાથી એક હાથથી મળદ્વાર ઢાકવું અને ખીલત હાથે નાક-મુખને ઢાકવું  
યુક્ત છે તો વ્યદ્ગ્ય અર્થ (મુખવસ્ત્રિકાના તાત્પર્યની કલ્પના કરવી) અનાવશ્યક  
અને અનુચિત છે અઘોવાયુ નીકળતી વખતે જ કોઈને છોક આવવા લાગે તો

तापत्तिः, अन्यथा परिधानवस्त्रावृतपोषकावरणोपदेशस्य वैयर्थ्यापत्तिरित्युभयथाऽपि न दोषनिस्तारः । तस्मात्—“ आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहिता ” इति भगवद्वाक्यस्य ‘मुखवस्त्रिका करणैव धारणीया नतु दोरकेणे’—त्यर्थकल्पन साहसमात्रम् ।

मम तु सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमयायुकायादिजीवविराधनापरिहारार्थं वद्धमुख-  
वस्त्रिकस्योच्छ्वासादिकाले मुखोद्गतवायुवेगेन मुखतो दोरकावलम्बिततदपगम-  
सम्भावनायाः सत्त्वेन तन्निवारणाय मुखवस्त्रिकाऽऽवृतस्यापि मुखस्य पाणिना  
परिपिधानमावश्यकमेव । एव परिधानवस्त्राऽऽवृतस्यापि पोषकस्य परिपिधान  
विधेयमेव, उच्छ्वासादीना यौगपत्रेऽयौगपत्रे वा एकेन करेण घ्राणमुखपिधानम्,

फिर आवरण करनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा । अतएव “ आसय  
वा पोसय वा पाणिणा परिपेहिता ” इस भगवद्वाक्य का यह अर्थ  
निकालना कि-‘मुखवस्त्रिका हाथ ही में रखनी चाहिए डोरेसे मुख पर  
नहीं बाधना चाहिए,’ ऐसी कल्पना करना साहसमात्र है ।

हमारे मतसे सूक्ष्म, व्यापी, संपातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी  
विराधनासे बचनेके लिए मुखवस्त्रिका बँधी हुई होने पर भी उच्छ्वास  
आदिके समय मुखसे निकलने वाले वायुके वेगसे मुखवस्त्रिकाके खिसक  
जानेकी संभावना रहती है, इसलिए उस संभावनाको दूर करनेके  
वास्ते मुखवस्त्रिकासे आवृत मुखको फिर हाथसे आवृत करना आवश्यक  
है । इसी प्रकार चोलपट्ट होने पर भी अधोवायुके दिपयमे समझना  
चाहिए । उच्छ्वास आदि यदि एक ही साथ हों तो एक हाथसे मुख

नडि तो आवृतने इरी आवरण करवाने उपदेश व्यर्थ जनी जैसे तेथी करीने  
‘आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहिता’ ओ भगवद्वाक्यने ओवे ओर्थ  
काठवे के ‘मुखवस्त्रिका हाथमा न राखनी नोछये, दोराथी मुख पर बाधनी  
न नोछये’ ओवी कल्पना करवी ओ साहसमात्र छे

अहारे भते सूक्ष्म, व्यापी, संपातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी विरा-  
धनाथी जखवाने भाटे मुखवस्त्रिका बाधी होवा छता उच्छ्वास आदिने समये  
मुखथी नीकणता वायुना वेगथी मुखवस्त्रिका परसी जखानी संभावना रहे छे  
तेथी ओ संभावनाने दूर करवाने भाटे मुखवस्त्रिकाथी बाँडेला मुखने पणु छथी  
बाँडेवानी आवश्यकता छे ओजे रीते चोलपट्ट होवा छता पणु अधोवायुना  
विषयमा समजणु उच्छ्वास आदि ने ओकी साथे न थाय तो ओके हाथथी

णिस्थितया पायुवस्त्रिकया पोषक परिपिधाये' त्यर्थाङ्गीकारेण समाधानं मुञ्चकमिति वाच्यम्, सकृदुच्चरितन्यायविरोधेन तादृशार्थकल्पनायाः कर्तुमशक्यत्वात् ।

किञ्च तेषामयोगपत्रेऽपि पायुपिधायकपत्रखण्डे मुखवस्त्रिकास्वकल्पन परमभ्रान्तिमूलम्, मुखपात्रोरैक्याभावात् । अनावृतस्यैव मुराटेरावरणे तात्पर्यसत्त्वे परिपिधायेत्यत्र परीत्युपसर्गप्रयोगस्याऽऽनर्थक्यापत्तिश्च, अपिपूर्वकादपि ल्यप्प्रत्ययसिद्धेः ।

किञ्च—'आवृतस्य पुनरावरणं व्यर्थमेवेति हेतोरनावृतस्यैवाऽऽवरणार्थमयमुपदेशः' इति वदतस्तत्र हस्तवस्त्रिकाधाररूपस्य मते पोषकस्य परिधाननसनानावरणीयहाथके पायुवस्त्रसे मलद्वार ढक लेवेंगे, सो ठीक नहीं है । 'सकृदुच्चरितन्याय' से ऐसी कल्पना करना शक्य नहीं है ।

अधोवायु और छोक आदि एक साथ न भी हों तो भी अधोवायुकी यतना करनेवाले वस्त्रको मुखवस्त्रिका कहना भारी भूल है, क्योंकि मुख और मलद्वार एक चीज नहीं है—दोनों अलग अलग हैं। यदि खुले मुख बोलनेका तात्पर्य हो तो 'परिपेहिता' पदमें 'परि' उपसर्ग व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि 'अपि' उपसर्गपूर्वक धातुसें भी ल्यप् प्रत्यय होता है।

'ढँके हुएको फिर ढाँकना वृथा ही है, इसलिए वगैर ढँके हुएको ढँकनेके लिए यह उपदेश दिया है।'—यदि हाथमें मुँहपत्ति रखने वाले ऐसा कहेंगे तो यह सिद्ध हो जायगा कि उनका मलद्वार सदा अनावृत ( उघडा हुआ ) रहता है । नहीं तो आवृतको

मुँहपत्तिथी मुँह अने जीब हाथना पायुवस्त्रथी मणद्वार ढाकी लेवासे, तो ते पशानर नथी, कारण के सकृदुच्चरितन्यायथी अेवी कल्पना करवी शक्य नथी

अधोवायु अने छोक आदि अेकी साथे न होय तोपणु अधोवायुनी यतना करनाश वस्त्रने मुँहवस्त्रिका कहेवी अे भोटी भूल छे, कारण के मुँह अने मणद्वार अेक थीन नथी जेठे अलग अलग छे जे अुटवे मुँहे जोलवानु तात्पर्य होय तो परिपेहिता शब्दमा परि उपसर्ग व्यर्थ थछ जशे कारण के अपि उपसर्ग पूर्वक धातुथी पणु ल्यप् प्रत्यय थाय छे

'ढाँकेलाने इरीथी ढाँकनु अे वृथा छे, तेथी ढाँकया वगरनाने ढाँकवाने भाटे आ उपदेश आये छे'—जे हाथमा मुँहपत्ती राखनार अेम कहेथे तो अेम' सिद्ध थथे के अेनु मणद्वार सदा अनावृत ( उघाडु ) रहे छे

तापत्तिः, अन्यथा परिधानवस्त्रावृतपोपकावरणोपदेशस्य वैयर्थ्यापत्तिरित्युभयथाऽपि न दोषनिस्तारः । तस्मात्-“ आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहिता ” इति भगवद्वाक्यस्य ‘मुखवस्त्रिका करणैव धारणीया नतु दोरकेणे’-त्यर्थकल्पन साहसमात्रम् ।

मम तु सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमयायुकायादिजीवविराधनापरिहारार्थं बद्धमुख-  
वस्त्रिकस्योच्छ्वासादिकाले मुखोद्गतवायुवेगेन मुखतो दोरकावलम्बिततदपगम-  
सम्भावनायाः सत्त्वेन तन्निवारणाय मुखवस्त्रिकाऽऽवृतस्यापि मुखस्य पाणिना  
परिपिधानमावश्यकमेव । एव परिधानवस्त्राऽऽवृतस्यापि पोपस्य परिपिधान  
विधेयमेव, उच्छ्वासादीना योगपत्रेऽयोगपत्रे वा एकेन करेण घ्राणमुखपिधानम्,

फिर आवरण करनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा । अतएव “ आसय  
वा पोसय वा पाणिणा परिपेहिता ” इस भगवद्वाक्य का यह अर्थ  
निकालना कि-‘मुखवस्त्रिका हाथ ही में रखनी चाहिए डोरेसे मुख पर  
नहीं बाधना चाहिए,’ ऐसी कल्पना करना साहसमात्र है ।

हमारे मतसे सूक्ष्म, व्यापी, सपातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी  
विराधनासे बचनेके लिए मुखवस्त्रिका बँधी हुई होने पर भी उच्छ्वास  
आदिके समय मुखसे निकलने वाले वायुके वेगसे मुखवस्त्रिकाके खिसक  
जानेकी सम्भावना रहती है, इसलिए उस सम्भावनाको दूर करनेके  
वास्ते मुखवस्त्रिकासे आवृत मुखको फिर हाथसे आवृत करना आवश्यक  
है । इसी प्रकार चोलपट्ट होने पर भी अधोवायुके दिपयमें समझना  
चाहिए । उच्छ्वास आदि यदि एक ही साथ होवें तो एक हाथसे मुख

नहि तो आवृतने इरी आवरण करवाने। उपदेश व्यर्थ जनी जशे तेथी करीने  
‘आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहिता’ जे भगवद्वाक्यने जेवे अर्थ  
कावेवे ते ‘मुखवस्त्रिका हाथमा न राखनी जेधजे, दोरानी मुख पर बाधनी  
न जेधजे’ जेवी कल्पना करवी जे साहसमात्र छे

अभावे मते सूक्ष्म, व्यापी, सपातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी विरा  
धनाथी भयवाने माटे मुखवस्त्रिका बाधी होवा छता उच्छ्वास आदिने समये  
मुखथी नीकणता वायुना वेगथी मुखवस्त्रिका भसी जवानी सम्भावना रहे छे  
तेथी जे सम्भावनाने दूर करवाने माटे मुखवस्त्रिकाथा बाँकेला मुखने पणु हथथी  
बाँडवानी आवश्यकता छे जेन रीते बोलपट्ट होवा छता पणु अधोवायुना  
विषयमा समजणु उच्छ्वास आदि जे जेकी साथे न थाय तो जेक हाथथी

अपरेण पाणुपिधान त्रिधेयमिति भावः ।

पाणिनेत्यत्रैकवचनमपि पाणित्वजातान्वयपरिपक्षयेत्युभयपाणिबोधकत्वेऽप्यनुकूलमेव ।

किञ्च पाणिशब्दस्य मुख्यार्थवाधाऽभावेन गुर्यार्थसाधमूलिका लक्षणापि नाङ्गी-  
करणीया भवति । तथा चोक्तसूक्ष्मव्यापिपभृतित्रिधेयजीवसिद्धिसाधारणाय सदैव  
सदोरकमुखवस्त्रिकाधारण नैतत्सूत्रतो विरुध्यते, किन्तु परिपिधायेत्यत्र परिशब्द-  
प्रयोगेण भगवान् मुखवस्त्रिकापिहितस्यैव मुखस्य पिधानमावेदयतीत्यत्र पल्वितेन ।  
केचित्तु—'विपाकसूत्रे मृगापुत्रा ययने—'तए ण सा मिया देवी त कड-  
सगडिय अणु कड्डेमागीर जेणे प्र भूमिघरे तेणे प्र उवागच्छति, उवाग-

और नाक ढँक छे और दूसरे हाथसे अधोवायुकी यतना करे ।

“पाणिणा” यद्यपि एक वचन है तथापि पाणित्वजातिमें अन्वय होनेसे दोनों हाथोंका बोधक होता है, इसलिए हमारे मतके अनुकूल ही है ।

यहाँ 'पाणि' शब्दके मुख्य अर्थमें बाधा नहीं है अतः लक्षणा भी मानने योग्य नहीं है, क्योंकि लक्षणा वहीं होती है जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा आती हो । इसलिए उक्त सूक्ष्म व्यापी वगैरह विविध जीवोंकी विराधनासे वचने के वास्ते सदैव डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधना इस सूत्रसे विरुद्ध नहीं है । परन्तु 'परिपेहिता' में 'परि' उपसर्गके प्रयोगसे प्रगट है कि महावीर प्रभुने मुँहपत्ति से पिहित (ढँके हुए) मुखको पुनः पिधान करना प्रतिपादित किया है ।

कोई कोई ऐसा कहते हैं कि विपाकसूत्रमें मृगापुत्रके अध्ययनमें

मुष्ण अने नाक ढाकी देवा अने पीला हाथधी अधोवायुनी यतना करवी

पाणिणा ने ऊँ ओकवचन छे तोपणु पाणित्व जातिमा अन्वय यवाधी ओठ हाथनेा बोधक थाय छे तेधी अभावे मते ते शब्द अपुद्रूप न छे

अही पाणि शब्दना मुष्ण अर्थमा बाधा नथी तेधी लक्षणा पणु मानवा येअय नथी, कारण ते लक्षणा त्या थाय छे ते नया मुष्ण अर्थमा बाधा आवती होय तेधी करीने उक्त सूक्ष्म, व्यापी वगैरे विविध जीवोनी विराधनाधी अयवाने माटे सदैव डोरा साथे मुखवस्त्रिका बाधवी अे सूत्रधी विरुद्ध नथी परन्तु परिपेहिता अर्थाँ परि. उपसर्गना प्रयोगधी स्पष्ट थाय छे ते महावीर प्रभुअे मुँहपत्तिधी पिहित (ढाँकेला) मुष्णने पुन पिधान करवानुं प्रतिपादित कर्युं छे  
कोई कोई अेभ कडे छे के विपाकसूत्रमा मृगापुत्रना अध्ययनमा लप्यु छे-

च्छित्ता चउप्पुडेण वत्थेण मुह वधमाणी भगव गोयम एव वयासि-तुब्भे-  
 वि ण भते ! मुहपोत्तियाण मुह वधेह । तए ण से भगव गोयमे मियाए  
 देवीए एव वुत्ते समाणे मुहपोत्तियाण मुह वधइ ” इत्युक्त, तस्यायमाशयः-  
 मृगापुत्र दर्शयितुं प्रवृत्ता मृगादेवी भूमिगृहद्वारोद्घाटनकाले दुर्गन्धाघ्राणवारणाय  
 चतुष्पुटेन वस्त्रेण स्वमुखं ऋणन्ती भगवन्तं गौतमं जगद-हे भदन्त ! त्वमपि मुख-  
 पोतिकया मुखं ऋणन्ती, ततः स भगवान् गौतमो मृगादेव्यैः मुक्तः सन् मुखपोति-  
 कया मुखं वध्नाति (स्म) इति । इदमनेन सुस्पष्टं प्रतीयते-गौतमस्वामिनो मुखो-  
 परि मुखवस्त्रिका वद्धा नासीत् किन्तु हस्त एव धृतेति, अत एव मृगादेवी दुर्गन्धा-  
 घ्राणप्रतिवन्धाय “तुब्भेचि ण भते! मुहपोत्तियाण मुह वधेह” इति प्रार्थित-  
 वतीत्याहुः’ तत्र सम्यक्-उष्णमुखवायुतः सम्पातिमसूक्ष्मव्यापिजीवानां रक्षणार्थं

ऐसा लिखा है-“तए ण सा” इत्यादि।

इसका आशय यह है कि मृगादेवी जब मृगापुत्रको आहार देनेके  
 लिए भोंयरेके किवाड खोलने लगी तब नारुमे दुर्गन्ध आनेका निवारण  
 करनेकेलिए चार पडवाला वस्त्र मुख पर बाधकर भगवान् गौतमस्वामीसे  
 कहने लगी-‘हे भदन्त । आप भी मुखवस्त्रिकासे मुख बाध लीजिये’।  
 मृगादेवीका कथन सुनकर भगवान् गौतम मुखवस्त्रिकासे मुख बाधते हैं  
 (बाध लिया)। ‘इससे यह विलकुल स्पष्ट है कि पहले गौतमस्वामीके  
 मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बधी हुई थी, किन्तु हाथमे थी, इसीसे  
 मृगादेवीने मुखवस्त्रिका बाधनेकी प्रार्थना की थी । उनका यह  
 कहना ठीक नहीं है, क्योंकि मुखकी उष्ण वायुसे संपातिम, सूक्ष्म  
 और व्यापी जीवोंकी रक्षा करनेके लिए तथा बाह्य वायुकायकी

‘तए ण सा’ इत्यादि श्लोको आशय ये थे वे मृगादेवी द्वारा मृगापुत्रने आहार  
 देनेके लिये खोलनेवाले किवाड के लिये नारुमे दुर्गन्ध आनेकी निवार-  
 णके लिये चार पडवाला वस्त्र मुख पर बाधनेके लिये गौतम स्वामीने कहेवा-  
 ला कि-‘हे भदन्त ! आप भी मुखवस्त्रिकासे मुख बाध लीजिये’।  
 कथन साक्ष्यके लिये भगवान् गौतम मुखवस्त्रिकासे मुख बाधे थे (बाध लीधु)  
 आधी श्लोके तदन स्पष्ट थाय थे वे पड़ेला गौतम स्वामीना मुख पर मुखवस्त्रिका  
 बाधली नहोती, किन्तु हाथमे होती, तैथी मृगादेवीके मुखवस्त्रिका बाधवानी  
 प्रार्थना करी होती श्लोकके अर्थ ये कहेषु अरण्यर नथी कारणे वे अथवा उष्ण वायुकी  
 संपातिम, सूक्ष्म अने व्यापी जीवोंकी रक्षा करवाने लिये तथा बाह्य वायुकायकी



अपरेण पाणुपिधान त्रिधेयमिति भावः ।

पाणिनेत्यत्रैकवचनमपि पाणित्वजातान्ययविरक्षयेत्युभयपाणिबोधकत्वेऽप्यनुकूलमेव ।

किञ्च पाणिशब्दस्य मूर्यार्थवाधाऽभावेन मूर्यार्थमाधमृत्तिका लक्षणापि नाश्री करणीया भवति । तथा चोक्तमूक्ष्मव्यापिमभृतित्रिधिजीर्द्विसाधारणाय सदैव सदोक्तमुखवस्त्रिकाधारण नैतत्सूत्रतो विरुध्यते, किन्तु परिपिधायेत्यत्र परिसूत्र-प्रयोगेण भगवान् मुखवस्त्रिकापिहितस्यैव मुखस्य पिधानमावेदयतीत्यल पञ्चवितेन ।

केचित्तु—‘विपाकसूत्रे मृगापुत्राभ्ययने—“ताण ण सा मिया देवी त कड-सगडिय अणु कड्डेमागीरे जेणेव भूमिधरे तेणेव उवागच्छति, उवाग

और नाक ढँक ले और दूसरे हाथसे अधोवायुकी यतना करे ।

“पाणिणा” यद्यपि एक वचन है तथापि पाणित्वजातिमें अन्वय होनेसे दोनों हाथोंका बोधक होता है, इसलिए हमारे मतके अनुकूल ही है ।

यहाँ ‘पाणि’ शब्दके मुख्य अर्थमें बाधा नहीं है अतः लक्षणा भी मानने योग्य नहीं है, क्योंकि लक्षणा वहीं होती है जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा आती हो । इसलिए उक्त सूक्ष्म व्यापी वगैरह विविध जीवोंकी विराधनासे बचने के वास्ते सदैव डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधना इस सूत्रसे विरुद्ध नहीं है । परन्तु ‘परिपेहिता’ में ‘परि’ उपसर्गके प्रयोगसे प्रगट है कि महावीर प्रभुने मुँहपत्ति से पिहित (ढँके हुए) मुखको पुनः पिधान करना प्रतिपादित किया है ।

कोई कोई ऐसा कहते हैं कि विपाकसूत्रमे मृगापुत्रके अध्ययनमें

मुभ्य अने नाक ढाकी लेवा अने पीना हाथथी अधोवायुनी यतना करवी

पाणिणा जे के ओकवचन छे तोपणु पाणित्व जातिमा अन्वय थावाथी जेठे हाथने बाधक थाय छे तेथी अभावे मते ते शब्द अनुकूल न छे

अडि पाणि शब्दना मुभ्य अर्थमा बाधा नथी तेथी लक्षणा पणु मानवा योग्य नथी, कारण के लक्षणा त्या थाय छे के नया मुभ्य अर्थमा बाधा आवती होय तेथी करीने उक्त सूक्ष्म, व्यापी वगैरे विविध जीवानी विराधनाथी अथवाने भाटे सदैव डोरा साथे मुभ्यवस्त्रिका बाधनी जे सूत्रथी विरुद्ध नथी परन्तु परिपेहिता अडि परि उपसर्गना प्रयोगथी स्पष्ट थाय छे के महावीर प्रभुजे मुहपत्तिथी पिहित (ढाकेला) मुभने पुन पिधान करवानु प्रतिपादित कथुं छे केडि केडि ओम कडे छे के विपाकसूत्रमा मृगापुत्रना अध्ययनमा लण्यु छे-

च्छिता चउप्पुडेण वत्थेण मुह पधमाणी भगव गोयम एव वयासि-तुब्भे-  
 वि ण भते ! मुहपोत्तियाए मुह वधेह । तण ण से भगव गोयमे मियाए  
 देवीए एव वुत्ते समाणे मुहपोत्तियाए मुह पधड ” इत्युक्त, तस्यायमाशयः-  
 मृगापुत्र दर्शयितुं प्रवृत्ता मृगादेवी भूमिगृहद्वारोद्घाटनकाले दुर्गन्धाघ्राणवारणाय  
 चतुप्पुटेन वस्त्रेण स्वमुखं बन्धन्ती भगवन्तं गौतमं जगद्-हे भदन्त ! त्वमपि मुख-  
 पोतिकया मुखं बध्नात, ततः स भगवान् गौतमो मृगादेव्यैवमुक्तः सन् मुखपोति-  
 कया मुखं बध्नाति (स्म) इति । इदमनेन सुस्पष्टं प्रतीयते-गौतमस्वामिनो मुखो-  
 परि मुखवस्त्रिका बद्धा नासीत् किन्तु इस्त एव धृतेति, अत एव मृगादेवी दुर्गन्धा-  
 घ्राणप्रतिबन्धाय “तुब्भेवि ण भते! मुहपोत्तियाए मुह वधेह” इति प्रार्थित-  
 वतीत्याहुः’ तन्न सम्यक्-उष्णमुखवायुतः सम्पातिमसूक्ष्मव्यापिजीवानां रक्षणार्थं

ऐसा लिखा है-“तण ण सा” इत्यादि।

इसका आशय यह है कि मृगादेवी जब मृगापुत्रको आहार देनेके  
 लिए भोंयरेके किवाड़ खोलने लगी तब नारुमे दुर्गन्ध आनेका निवारण  
 करनेकेलिए चार पडवाला वस्त्र मुख पर बाधकर भगवान् गौतमस्वामीसे  
 कहने लगी-‘हे भदन्त । आप भी मुखवस्त्रिकासे मुख बाध लीजिये’।  
 मृगादेवीका कथन सुनकर भगवान् गौतम मुखवस्त्रिकासे मुख बाधते हैं  
 (बाध लिया)। ‘इससे यह विलकुल स्पष्ट है कि पहले गौतमस्वामीके  
 मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बधी हुई थी, किन्तु हायमे थी, इसीसे  
 मृगादेवीने मुखवस्त्रिका बाधनेकी प्रार्थना की थी । उनका यह  
 कहना ठीक नहीं है, क्योंकि मुखकी उष्ण वायुसे संपातिम, सूक्ष्म  
 और व्यापी जीवोकी रक्षा करनेके लिए तथा बाह्य वायुकायकी

‘तण ण सा’ इत्यादि अनेना आशय अे उे के मृगादेवी त्त्यारे मृगापुत्रने आहार  
 देवाने माटे लोयाराना कभाड भोखवा लागी त्त्यारे नाकभा दुर्गन्ध आवती निवार  
 वाने माटे आर पडवाणु वस्त्र मुण पर गाधीने लगवा । गौतम स्वामीने कडेवा  
 लागी उे-डे लदन्त । आप पणु मुभवस्त्रिकाथी मुण गाधी त्त्यो मृगादेवीनु  
 कथन सासणीने लगवान् गौतम मुभवस्त्रिकाथी मुण गावे उे ( गाधी लीधु )  
 आधी अे तदन स्पष्ट थाय छे उे पडेला गौतम स्वामीना मुण पर मुभवस्त्रिका  
 गाधेली नडेाती, किन्तु हाथभा डती, तेथी मृगादेवीअे मुभवस्त्रिका गाधवानी  
 प्रार्थना करी डती अेमनु अे कडेवु गराणर नथी कारणु के मुणना उष्ण वायुथी  
 संपातिम, सूक्ष्म अने व्यापी जीवोनी रक्षा करवाने माटे तथा बाह्य वायुकायनी

अपरेण पाण्डुपिधान त्रिधेयमिति भावः ।

पाणिनेत्यत्रैकवचनमपि पाणित्वजातास्त्वयप्रिसयत्स्युभयपाणिबोधकत्वेऽ-  
प्यनुकूलमेव ।

किञ्च पाणिशब्दस्य मुख्यार्थवाधाऽभावेन मृत्पार्थसाधमूलिका लक्षणापि नारी  
करणीया भवति । तथा चोक्तमृदमव्यापिमभृतित्रिधिजीरहिंसावारणाय सदैव  
सदोरकमुखवस्त्रिकाधारण नैतत्सूत्रतो विरुध्यते, किन्तु परिपिधायेत्यत्र परिसूत्र  
प्रयोगेण भगवान् मुखवस्त्रिकापिहितस्यैव मुखस्य पिधानमावेदयतीत्यल पल्वितेन।

केचित्तु—‘विपाकसूत्रे मृगापुत्राध्ययने—“तए ण सा मिया देवी त कड  
सगडिय अणुकड्डेमागी२ जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छति, उवाग-

और नाक ढँक ले और दूसरे हाथसे अधोवायुकी यतना करे ।

“पाणिणा” यद्यपि एक वचन है तथापि पाणित्वजातिमें अन्वय होनेसे  
दोनों हाथोंका बोधक होता है, इसलिए हमारे मतके अनुकूल ही है ।

यहाँ ‘पाणि’ शब्दके मुख्य अर्थमें बाधा नहीं है अतः लक्षणा भी  
मानने योग्य नहीं है, क्योंकि लक्षणा वहीं होती है जहाँ मुख्य अर्थ में  
बाधा आती हो । इसलिए उक्त सूत्रम व्यापी वगैरह विविध जीवोंकी  
विराधनासे बचने के वास्ते सदैव डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर  
बाँधना इस सूत्रसे विरुद्ध नहीं है । परन्तु ‘परिपेहिता’ में ‘परि’  
उपसर्गके प्रयोगसे प्रगट है कि महावीर प्रभुने मुँहपत्ति से पिहित (ढँके  
हुए) मुखको पुनः पिधान करना प्रतिपादित किया है ।

कोई कोई ऐसा कहते हैं कि विपाकसूत्रमे मृगापुत्रके अध्ययनमें

मुष्ण अने नाक ढाकी देवा अने भील्ल हाथथी अधोवायुनी यतना करवी

पाणिणा ले के अेकवचन छे तोपणु पाणित्व जातिमा अन्वय थवाथी जेठ  
हाथनेो बोधक थाय छे तेथी अभादे भते ते शण्ड अवुद्धण न छे

अही पाणि शण्डना मुष्ण अर्थमा गाधा नथी तेथी लक्षणा पणु मानवा  
योग्य नथी, कारणु के लक्षणा त्या थाय छे के ल्या मुष्ण अर्थमा गाधा आवती  
होय तेथी करीने उक्त सूत्रम, व्यापी वगैरे विविध एवेनी विराधनाथी णयवाने  
भाटे सदैव डोरा साथे मुखवस्त्रिका गाधवी अे सूत्रथी विद्ध नथी परन्तु  
परिपेहिता अही परि. उपसर्गना प्रयोगथी रूपए थाय छे के महावीर प्रभुअे  
मुहपत्तिथी पिहित (ढाकेला) मुष्णने पुन पिधान करवानु प्रतिपादित कथुं छे

कोई कोई अेभ कडे छे के विपाकसूत्रमा मृगापुत्रना अध्ययनमा लण्यु छे-

किञ्च दुर्गन्मात्राणवारणोद्देशेनापि तत्प्रार्थना नोपपन्नते, मुखमात्रमन्थने कृतेऽपि घ्राणेन्द्रियस्याऽनावरणेन तदुद्देशसिद्धयसम्भवादिति मुखमात्रे बन्धनान्वयतात्पर्यस्यानुपपत्त्या तत्समीपवर्तिनि घ्राणेऽपि लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति गम्यते । लक्षणाश्रयणस्याऽऽवश्यकत्वादेवाऽऽचाराङ्गसूत्रेऽपि—“से भिक्खू वार उस्तास-माणे वा नीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जभायमाणे वा उहोए वा वायनिसग्ग वा करेमाणे पुन्वामेव आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहिता” इत्यादिपाठः सगच्छते, तत्राप्यास्यकशब्दे लक्षणाश्रयणाऽभावे तु पाणिनाऽऽस्यरूपरिपिधाने सति तज्जन्योच्छ्वासादियतनाया उपपत्तावपि घ्राणजन्योच्छ्वासनिःश्वाससुतयतनाया अनुपपत्त्या तेषामागमविरोधः सुस्पष्ट एव ।

लिए मुख बाधनेकी प्रार्थना करना युक्त नहीं है, क्योंकि मुख बाध लेने पर भी दुर्गन्धका आना नहीं रुक सकता, अतः यहाँ मुख बाँधनेका अर्थ अयुक्त होनेसे मुखके समीपवर्ती नासिका बाँधनेका तात्पर्य लक्षणासे विदित होता है । लक्षणाका आश्रय लेना आवश्यक होनेसे ही आचाराङ्गसूत्रका “से भिक्खू वा०” इत्यादि पाठ ठीक बैठता है ।

यहाँ पर भी यदि ‘आसय’ (मुख) शब्दमें लक्षणाका आश्रय न लिया जाय तो हाथसे मुख ढँक लेने पर मुखजन्य उच्छ्वास निःश्वास आदिकी यतना संभव हो सकती है किन्तु घ्राणजन्य उच्छ्वास-निःश्वास छौंककी यतना नहीं हो सकती । अतः उन लोगोंके मतमें आगमसे विरोध होना स्पष्ट है ।

पेसवा देवाने माटे मुण गाधवानी प्रार्थना करवी युक्त नथी कारणु के मुण गाधी देवा छता दुर्गंध आववानुं रोक्री शकतु नथी अेटले अही मुण गांधवानो अर्थ अयुक्त होवाथी मुणनी निऽट आवेलु नाक गाधवानुं तात्पर्य लक्षणाथी विदित थाय छे लक्षणांनो आश्रय लेवो आवश्यक होवाथी न आचाराग सूत्रो “से भिक्खू वा०” इत्यादि पाठ परापर बाध भेसे छे

तेमा पणु ने आसय (मुख) शब्दमा लक्षणांनो आश्रय लेवामा न आवे तो हाथथी मुण ढाक्री लेता मुणजन्य उच्छ्वास निःश्वास आदिनी यतना संभवित थऽ शके छे, किंतु घ्राणजन्य उच्छ्वास-निःश्वास छौंकनी यतना थऽ शकती नथी अेटले अे लोकोना भतमा आगमथी विरोध थाय छे अे स्पष्ट छे

વાઘનાપુકાયરક્ષાર્થે ચ મુલ્લવલ્લિકાચન્ધનસ્ય સકરુજૈનાગમતાત્પર્યત્રિપયતયા મુલ્લવલ્લિકા વદ્ધા નાસીદિતિ કલ્પન તાત્પર્ય્યાત્પરિમિત સક્રુજાગમવિરુદ્ધ ચ । इदमत्र तत्रम्-दुर्गन्धाघ्राणपारणाय 'मृह यधेह' इति प्रार्थनाऽनुपपन्ना, मुखेन गन्धग्रहणानुपपत्तेः, तस्मादत्र 'मृह' शब्दो न मुखमात्रपरः किन्तु यथा 'गङ्गाया घोषः' इत्यत्र गङ्गाशब्दस्य प्रवाहरूपे शमयाये (मुग्धार्थे) घोषान्वय तात्पर्यानुपपत्त्या तत्समीपपरिच्छिन्नि तीरे लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति मन्यते, तथा मुखे वद्धाया एव तस्याः पुनस्तत्रैव वन्धनार्थप्रार्थना निष्फलतया नोपपद्यते,

રક્ષા કરનેકે લિપ મુલ્લવલ્લિકા વાઘના સવ જૈન-આગમોમે તોત્પર્યરૂપસે વિધાન કિયા ગઘા હૈ, ઇસલિપ 'ઉનકે મુલ્લ પર મુલ્લવલ્લિકા નહીં વધી થી' ઁસા કહના મિથ્યાત્વકા હી પ્રતાપ હૈ ઓર સવ શાસ્ત્રોસે વિરુદ્ધ હૈ । તાત્પર્ય ઘટ હૈ કિ દુર્ગન્ધસે ઘચનેકે લિપ મુલ્લ વાઘનેકી પ્રાર્થના ઉચિત નહીં હૈ, ક્યોંકિ મુલ્લસે ગન્ધકા ગ્રહણ નહીં હોતા । અતઁવ ઘઠોં મુલ્લસે કેવલ મુલ્લહી અર્થ નહીં હૈ । જસે "ગગામે ઘોષ (અહીરોંકી વસતી) હૈ । ઇસ વાક્યસે ઁસા મતલબ નહીં નિકલ સકતા કિ ગગાકી વીચધારમેં અહીરોંકી વસતી હૈ, ક્યોંકિ ઁસા હોના અનુપપન્ન હૈ । અતઁવ જવ વાક્યકે મુલ્લ (શાબ્દિક) અર્થમેં વાઘા આતી હો તવ લક્ષણાસે ઘસરા મતલબ લેના પઢતા હૈ કિ-ગગાકે કિનારે અહીરોંકી વસતી હૈ । ઇસીપ્રકાર મુલ્લવલ્લિકાકા જવ પહલેસે વધી હુઈ હૈ તવ પુનઃ વાઘનેકી પ્રાર્થના વ્યર્થ પઢતી હૈ, તથા દુર્ગન્ધ નાકમે ન ઘુસને ઘેનેકે

રક્ષા કરવાને માટે મુખવલ્લિકા બાધવી એવુ બધા જૈન-આગમોમા તાત્પર્યરૂપે વિધાન કરવામા આવ્યુ છે તેથી એમના મુખ પર મુખવલ્લિકા બાધેલી નહોતી એમ કહેવુ એ મિથ્યાત્વનો જ પ્રતાપ છે અને બધા શાસ્ત્રોથી વિરુદ્ધ છે તાત્પર્ય એ છે કે દુર્ગન્ધથી બચવાને માટે મુખ બાધવાની પ્રાર્થના ઉચિત નથી, કારણ કે મુખથી બધનું ગ્રહણ થતુ નથી એટલે અહીં મુખમાં કેવળ મુખનો જ અર્થ થતો નથી જેમ " ગગામા ઘોષ ( આહીરોની વસતી ) છે " એ વાક્યથી એવી મતલબ નથી નીકળી શકતી કે ગગાની વચ્ચે પાણીના પ્રવાહમા આહીરોની વસતી છે, કેમકે એમ કોવુ અનુપપન્ન છે એટલે કે બ્યારે વાક્યના મુખ્ય (શબ્દિક) અર્થમા બાધા આવે છે ત્યારે લક્ષણાથી બીજી મતલબ લેવી પડે છે, કે ગગાને કિનારે આહીરોની વસતી છે એ રીતે મુખવલ્લિકા એ પહેલેથી બાધી રાખેલી છે તે પુન બાધવાની પ્રાર્થના વ્યર્થ બને છે તથા દુર્ગન્ધ ના ।

किञ्च दुर्गन्धाप्राणवारणोद्देशेनापि तत्प्रार्थना नोपपद्यते, मुखमात्रवन्धने कृतेऽपि घ्राणेन्द्रियस्याऽनावरणेन तद्द्वेषसिद्धयसम्भवादिति मुखमात्रे वन्धनान्वयतात्पर्यस्यानुपपत्त्या तत्समीपवर्तिनि घ्राणेऽपि लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति गम्यते । लक्षणाश्रयणस्याऽऽवश्यकत्वादेवाऽऽचाराङ्गसूत्रेऽपि—“से भिक्खू चार उस्सास-माणे वा नीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जभायमाणे वा उट्ठोए वा वायनिसग्ग वा करेमाणे पुञ्चामेव आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहित्ता” इत्यादिपाठः सगच्छते, तत्राप्यास्यकशब्दे लक्षणाश्रयणाऽभावे तु पाणिनाऽऽस्यरूपरिपिधाने सति तज्जन्योच्छ्वासोद्वासादियतनाया उपपत्तावपि घ्राणजन्योच्छ्वासनिःश्वासक्षुत्तयतनाया अनुपपत्त्या तेषामागमविरोधः स्पष्ट एव ।

लिपि मुख बाधनेकी प्रार्थना करना युक्त नहीं है, क्योंकि मुख बांध लेने पर भी दुर्गन्धका आना नहीं रुक सकता, अतः यहाँ मुख बाँधनेका अर्थ अयुक्त होनेसे मुखके समीपवर्ती नासिका बाँधनेका तात्पर्य लक्षणासे विदित होता है । लक्षणाका आश्रय लेना आवश्यक होनेसे ही आचाराङ्गसूत्रका “से भिक्खू वा०” इत्यादि पाठ ठीक बैठता है ।

यहाँ पर भी यदि ‘आसय’ (मुख) शब्दमें लक्षणाका आश्रय न लिया जाय तो हाथसे मुख ढँक लेने पर मुखजन्य उच्छ्वास निःश्वास आदिकी यतना संभव हो सकती है किन्तु घ्राणजन्य उच्छ्वास-निःश्वास छौंककी यतना नहीं हो सकती । अतः उन लोगोंके मतमें आगमसे विरोध होना स्पष्ट है ।

पेसवा देवाने भाटे भुण गाधवानी प्रार्थना करवी युक्त नथी कारणे डे भुण गाधी लेवा छता दुगंध आववानुं शेकी शकतु नथी अटले अही भुण गांधवानी अर्थ अयुक्त होवाथी भुणनी निकट आवेलु नाक गाधवानुं तात्पर्य लक्षणाथी विदित थाय छे लक्षणाको आश्रय लेवे आवश्यक होवाथी न आचाराग सूत्रो “से भिक्खू वा०” इत्यादि पाठ गरापर मध जेसे छे

तेमा पणु जे आसय (मुख) शब्दमा लक्षणाको आश्रय लेवामा न आवे तो हाथथी भुण ढाकी लेता भुणजन्य उच्छ्वास निःश्वास आदिनी यतना संभवित थई शके छे, किंतु घ्राणजन्य उच्छ्वास-निःश्वास छौंकनी यतना थई शकती नथी अटले जे दोडोना मतमा आगमथी विरोध थाय छे जे स्पष्ट छे

ઘાણવાયુઠાયરક્ષાર્થે ચ મુલ્લવલ્લિકાગ્ન્યનસ્ય સકલજૈનાગમતાત્પર્યવિપયતયા મુલ્લવલ્લિકા વદ્ધા નાસીદિતિ કલ્પન તાગ્નિમિધ્યાત્વવિલ્લસિત સકલાગમવિલ્લુદ્ધ ચ । ઇદમત્ર તત્ત્વમ્-દુર્ગન્ધાઘાણપારણાય 'મુલ્લ વધેહ' ઇતિ પ્રાર્થનાનુપપન્ના, મુલ્લેન ગન્ધગ્રહણાનુપપન્ને; તસ્માદત્ર 'મુલ્લ' શબ્દો ન મુલ્લમાત્રપરઃ કિન્તુ યથા 'ગઙ્ગાયા ઘોષઃ' ઇત્યત્ર ગઙ્ગાશબ્દસ્ય પ્રવાહરૂપે ગમ્યાયે (મુલ્લપ્રાર્થ) ઘોષાન્વય-તાત્પર્યાનુપપન્નયા તત્સમીપરત્તિનિ તીરે લક્ષણાટ્ટર્યા તાત્પર્યમિતિ મન્યતે, તથા મુલ્લે વદ્ધાયા ઇવ તસ્યાઃ પુનસ્તત્રૈવ વન્ધનાર્થપ્રાર્થના નિષ્ફલતયા નોપપદ્યતે,

રક્ષા કરનેકે લિણ મુલ્લવલ્લિકા ઘાંધના સવ જૈન-આગમોમ્ તાત્પર્યરૂપસે વિધાન કિયા ગયા હૈ, ઇસલિણ 'ઉનકે મુલ્લ પર મુલ્લવલ્લિકા નહીં વધી ધી' ઇસા કહના મિધ્યાત્વકા હી પ્રતાપ હૈ ઓર સવ શાસ્ત્રોસે વિલ્લુદ્ધ હૈ । તાત્પર્ય ઘટ્ હૈ કિ દુર્ગન્ધસે વચ્ચનેકે લિણ મુલ્લ ઘાંધનેકી પ્રાર્થના ઉચિત નહીં હૈ, ક્યોંકિ મુલ્લસે ગન્ધકા ગ્રહણ નહીં હોતા । અતઇવ ઘટ્ મુલ્લસે કેવલ મુલ્લહી અર્થ નહીં હૈ । જસે "ગંગામ્ ઘોષ (અહીરોંકી વસતી) હૈ । ઇસ વાક્યસે ઇસા મતલબ નહીં નિકલ સકતા કિ ગંગાકી વીચધારમ્ અહીરોંકી વસતી હૈ, ક્યોંકિ ઇસા હોના અનુપપન્ન હૈ । અતઇવ જવ વાક્યકે મુલ્લ (શાબ્દિક) અર્થમ્ વાધા આતી હો તવ લક્ષણાસે ઘસરા મતલબ લેના પડતા હૈ કિ-ગંગાકે કિનારે અહીરોંકી વસતી હૈ । ઇસીપ્રકાર મુલ્લવલ્લિકાકા જવ પહલેસે વધી હુઈ હૈ તવ પુનઃ ઘાંધનેકી પ્રાર્થના વ્યર્થ પડતી હૈ, તથા દુર્ગન્ધ નાકમ્ ન ઘુસને ઢેનેકે

રક્ષા કરવાને માટે મુલ્લવલ્લિકા ઘાંધવી એવુ ઘાધા જૈન-આગમોમા તાત્પર્યરૂપે વિધાન કરવામા આવ્યુ છે તેથી એમના મુલ્લ પર મુલ્લવલ્લિકા ઘાંધેલી નહોતી એમ કહેવું એ મિધ્યાત્વનો જ પ્રતાપ છે અને ઘાધા શાસ્ત્રોથી વિરુદ્ધ છે તાત્પર્ય એ છે કે દુર્ગન્ધથી બચવાને માટે મુલ્લ ઘાંધવાની પ્રાર્થના ઉચિત નથી, કારણ કે મુલ્લથી ઘાંધનું ગ્રહણ થતુ નથી એટલે અહીં મુલ્લથી કેવળ મુલ્લનો જ અર્થ થતો નથી જેમ "ગંગામા ઘોષ ( આહીરોંકી વસતી ) છે" એ વાક્યથી એવી મતલબ નથી નીકળી શકતી કે ગંગાની વચ્ચે પાણીના પ્રવાહમા આહીરોંકી વસતી છે, કેમકે એમ હોવુ અનુપપન્ન છે એટલે કે જ્યારે વાક્યના મુલ્લ (શાબ્દિક) અર્થમા ઘાધા આવે છે ત્યારે લક્ષણથી ધીલ મતલબ લેવી પડે છે, કે ગંગાને કિનારે આહીરોંકી વસતી છે એ રીતે મુલ્લવલ્લિકા ને પહેલેથી ઘાંધી શબ્દેલી છે તો પુનઃ ઘાંધવાની પ્રાર્થના વ્યર્થ બને છે તથા દુર્ગન્ધ નાકમા

किञ्च दुर्गन्माघ्राणवारणोद्देशेनापि तत्प्रार्थना नोपपद्यते, मुखमात्रवन्धने कृतेऽपि घ्राणेन्द्रियस्याऽनावरणेन तदुद्देशसिद्धयसम्भवादिति मुखमात्रे बन्धनान्वयतात्पर्यस्यानुपपत्त्या तत्समीपवर्तिनि घ्राणेऽपि लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति गम्यते । लक्षणाश्रयणस्याऽऽवश्यकत्वादेवाऽऽचाराङ्गसूत्रेऽपि—“से भिक्खू वा२ उस्सास-माणे वा नीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जभायमाणे वा उड्डोए वा वायनिसग्ग वा करेमाणे पुब्बामेव आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहिन्ता” इत्यादिपाठः समञ्छते, तत्राप्यास्यकशब्दे लक्षणाश्रयणाऽभावे तु पाणिनाऽऽस्यरूपरिपिधाने सति तज्जन्योच्छ्वासादियतनाया उपपत्तावपि घ्राणजन्योच्छ्वासनिःश्वासक्षुतयतनाया अनुपपत्त्या तेषामागमविरोधः स्पष्ट एव ।

लिए मुख बाधनेकी प्रार्थना करना युक्त नहीं है, क्योंकि मुख बाध लेने पर भी दुर्गन्धका आना नहीं रुक सकता, अतः यहाँ मुख बाँधनेका अर्थ अयुक्त होनेसे मुखके समीपवर्ती नासिका बाँधनेका तात्पर्य लक्षणासे विदित होता है । लक्षणाका आश्रय लेना आवश्यक होनेसे ही आचाराङ्गसूत्रका “से भिक्खू वा०” इत्यादि पाठ ठीक बैठता है ।

यहाँ पर भी यदि ‘आसय’ (मुख) शब्दमें लक्षणाका आश्रय न लिया जाय तो हाथसे मुख ढँक लेने पर मुखजन्य उच्छ्वास निःश्वास आदिकी यतना सम्भव हो सकती है किन्तु घ्राणजन्य उच्छ्वास-निःश्वास छोककी यतना नहीं हो सकती । अतः उन लोगोंके मतमें आगमसे विरोध होना स्पष्ट है ।

पेसवा देवाने भाटे सुभ गाधवानी प्रार्थना करवी युक्त नथी कारणु के सुभ गाधी देवा छता दुग्धि आववानु शेकी शकतु नथी अेटले अही सुभ गांधवानी अर्थ अयुक्त होवाथी सुभनी निकट आवेलु नाके गाधवानु तात्पर्य लक्षणाथी विदित थाय छे लक्षणांनो आश्रय देवो आवश्यक होवाथी न आचाराग सूत्रो “से भिक्खू वा०” इत्यादि पाठ अरागर अध मेसे छे

तेमा पणु ने आसय (सुभ) शब्दमा लक्षणांनो आश्रय देवामा न आवे तो हाथथी सुभ ढाकी देता सुभजन्य उच्छ्वास निःश्वास आदिनी यतना सम्भवित थय शके छे, किंतु घ्राणजन्य उच्छ्वास-निःश्वास छीकिनी यतना थय शकती नथी अेटले अे वेदोना मतमा आगमथी विरोध थाय छे अे स्पष्ट छे



નન્વેવ મુલવલ્લિકા ભવતુ વન્ધનીયા તથાપિ દોરકસ્ય વન્ધને નિવન્ધનતા ડગમતો ન લભ્યતે, તથા ચ તત્પ્રાન્તભાગેનાપિ વન્ધન મુસમ્પાદમ્, અન્ધમેતેન દોરકપરિગ્રહેણેતિ ચેન્ન, મુલવલ્લિકાવન્ધનસ્ય શાસ્ત્રપ્રતિપાત્રતાયા સિદ્ધાયા તન્ના લ્પમેવ દોરકમપેક્ષ્ય નિરવધપ્રકારેણ તદ્રન્ધનસિદ્ધૌ સત્યા ચારિત્રમાલિન્યાપાદક-પ્રકારાન્તરાશ્રયણસ્યાનોચિત્યાત્, મુલવલ્લિકાપ્રાન્તભાગેન શિરઃપચ્ચાદ્યામે ન્યૂન તાવશાદ્ગ્નિરિહમાપ્તાવુચિતાધિકતન્માનલ્પનાયામુત્સૂત્રપ્રરૂપણાપત્તેશ્ચ ।

કિન્ચ-મુલોપરિ મુલવલ્લિકાયા વન્ધન દોરકેણૈવ સમુચિત ભગવદભિપ્રેત ચ,

પ્રશ્ન-ઉક્ત પ્રકારસે મુગ્ધ પર મુગ્ધવલ્લિકા વાંધના તો સિદ્ધ જુઆ કિન્તુ ડોરા લગાકર વાંધના આગમમે કહીં નહીં પાયા જાતા । ડસલિલે મુલવલ્લિકાકે છોર (પહ્લા) સે ખી ઉસે વાંધ સકતે હં, ડોરાકી વ્યા આવશ્યકતા હૈ ?

ઉત્તર-ઉનકા યહ કથન ઠીક નહીં હૈ । વ્યોકિં જવ યહ સિદ્ધ હો જુકા કિ આગમમે મુલવલ્લિકાકા વાંધના પ્રતિપાદિત કિયા ગયા હૈ તો છોડેસે ડોરેસે નિર્દોષતાપૂર્વક વન્ધનકી સિદ્ધિ હોને પર ચારિત્રકો મલિન કરને વાલે દૂસરે તરીકેકામમે લાના અનુચિત હૈ । મુલવલ્લિકાકે છોરસે, સિરકે પીઠે ન્યૂનતાકે વશસે ગાઠ ન લગા સકનેસે મુલ વલ્લિકાકે ઉચિત પ્રમાણસે અધિકકી કલ્પના કરની પડેગી, ઓર એસી કલ્પના કરનેસે ઉત્સૂત્રપ્રરૂપણાકા દોષ લગેગા ।

દૂસરી વાત યહ હૈ કિ ડોરેસે હી મુલ પર મુલવલ્લિકા વાંધના

પ્રશ્ન-એ પ્રકારે મુખ પર મુખવલ્લિકા વાંધવાનું તો સિદ્ધ થયું, પર ડ દોરો લગાવીને વાંધવાનું આગમમા કયાય મળી આવતું નથી તેથી કરીને મુખ વલ્લિકાના છેડાથી પણ તેને વાંધી શકાય છે દોરાની શી આવશ્યકતા છે

ઉત્તર-એનું કથન ધરાધર નથી, કારણ કે જો એ સિદ્ધ થઈ ચૂક્યું કે આગમમા મુખવલ્લિકા વાંધવાનું પ્રતિપાદિત કરવામા આવ્યું છે તો નાના સરખા દોરાથી નિર્દોષતા-પૂર્વક વાંધનની સિદ્ધિ થતા ચારિત્રને મલિન કરનારો ધીલો પ્રકાર કામમા લેવો એ અનુચિત છે, મુખવલ્લિકાના છેડાથી શિરની પાછળ ન્યૂનતાને કારણે ગાંઠ ન વાંધી શકાવાથી મુખવલ્લિકાને ઉચિત પ્રમાણથી વધારે (લાંબી) રાખવાની કલ્પના કરવી પડશે, અને એવી કલ્પના કરવાથી ઉત્સૂત્ર-પ્રરૂપણાનો દોષ લાગશે

ધીલ વાત એ છે કે દોરાથી જ મુખ પર મુખવલ્લિકા વાંધવી ઉચિત છે

लोके हि वन्दन गुणेनैव प्रसिद्ध तत्रापि यथायोग्यमेव सूत्रदोरकादयस्तदर्थमादीयन्ते, यथा पुष्पपुस्तकवसनादिग्रन्थानां यथाक्रम मृदुमेव दोरकमुपादत्ते ।

किञ्च-सामाचारीग्रन्थे-“मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे वद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्” इत्युक्त देवचन्द्रसूरिणाऽपि । अत्र मुखवस्त्रिकाया वन्दनक्रियारूपत्वेन प्रतिपादनात् तदौचित्याच्च सा दोरकरूपमनुरूपं करणमपेक्षत एव । तन्मान्तभागेन ग्रन्थिदाने तु तत्र करणत्वकल्पन देवचन्द्रसूरिविरुद्धमयुक्तं च, कर्मत्व-करणत्वयोर्विरोधात् ।

उचित है और यही बात भगवानको भी इष्ट है । लोकमें किसी वस्तुका बाँधना डोरेसे ही प्रसिद्ध है । उसमें भी यथायोग्य सूत्रका डोरा आदि बाँधनेके काम में लाये जाते हैं, जैसे फूल, पुस्तक या कपडा बाँधने वाले क्रमशः कोमल डोरेको ही काममें लाते हैं ।

सामाचारी ग्रन्थ में देवचन्द्रसूरिने लिखा है-“मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य मुखे वद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम् ।” इस वाक्य में मुखवस्त्रिकाको बाँधनेरूप क्रियाका कर्म बताया है और वह उचित भी है । इसलिये वह (क्रिया) मुखवस्त्रिकाके अनुरूप डोरारूप करणकी अपेक्षा रखती है । तात्पर्य यह है कि जब मुखवस्त्रिका कर्म है तब करण भी कोई होना चाहिये और वह करण अर्थात् जिससे बाँधनारूप क्रिया होती है, डोरा ही होना चाहिए । गाँठ लगानेमें करणत्वकी कल्पना करना देवचन्द्रसूरिसे विरुद्ध है और अयुक्त है, क्योंकि कर्मत्व और करणत्वका विरोध है ।

અને એ જ વાત ભગવાનને પણ ઈષ્ટ છે લોકોમાં કોઈ વસ્તુને બાંધવાનું કાર્ય દોરાથી જ પ્રસિદ્ધ છે તેમાં પણ યથાયોગ્ય સૂતરનો દોરો વગેરે બાંધવાના કામમાં લેવામાં આવે છે, જેમકે ફૂલ, પુસ્તક યા કપડું બાંધનારા ક્રમશઃ ડોમળ દોરાને જ કામમાં લે છે

સામાચારી અથવા દેવચન્દ્રસૂરિએ લખ્યું છે “ મુખવસ્ત્રિકા પ્રતિલેખ્ય મુખે વદ્ધ્વા પ્રતિલેખયતિ રજોહરણમ્ ” એ વાક્યમાં મુખવસ્ત્રિકાને બાંધવારૂપ ક્રિયાનું કર્મ બતાવ્યું છે અને તે ઉચિત પણ છે તેથી કરીને એ (ક્રિયા) મુખવસ્ત્રિકાને અનુરૂપ દોરારૂપ કરણની અપેક્ષા રાખે છે તાત્પર્ય એ છે કે જે મુખવસ્ત્રિકા કર્મ છે તો કરણ પણ હોવું જોઈએ એ એ કરણ અર્થાત જેવડે બાંધવારૂપ ક્રિયા થાય છે તે દોરો જ હોવો જોઈએ ગાંઠ બાંધવામાં કરણત્વની કલ્પના કરવી એ દેવચન્દ્રસૂરિથી વિરુદ્ધ છે અને અયુક્ત છે, કારણ કે કર્મત્વ અને કરણત્વનો વિરોધ છે

नन्वेव मुखवस्त्रिका भवतु बन्धनीया तथापि दोरकस्य बन्धने निबन्धनता ऽऽगमतो न लभ्यते, तथा च तत्प्रान्तभागेनापि बन्धन मुसम्पादम्, अन्येतेन दोरकपरिग्रहेणेति चेन्न, मुखवस्त्रिकाबन्धनस्य शास्त्रप्रतिपाद्यताया सिद्धाया तत्राप्येव दोरकमपेक्ष्य निरग्रप्रकारेण तद्वन्धनसिद्धौ सत्या चारित्रमालिन्यापादकप्रकारान्तराश्रयणस्यानौचित्यात्, मुखवस्त्रिकाप्रान्तभागेन गिरःपञ्चाङ्गागे न्यूनतावशाद्गन्धिरहमाप्तावुचिताधिऋतन्मानमल्पनायामुत्सृजप्ररूपणापत्तेश्च ।

किञ्च—मुखोपरि मुखवस्त्रिकाया बन्धन दोरकेणैव समुचित भगवदभिप्रेत च,

प्रश्न—उक्त प्रकारसे मुख पर मुखवस्त्रिका बाँधना तो सिद्ध हुआ किन्तु डोरा लगाकर बाँधना आगममें कही नहीं पाया जाता । इसलिए मुखवस्त्रिकाके छोर (पट्टा) से भी उसे बाँध सकते हैं, डोराकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—उनका यह कथन ठीक नहीं है । क्योंकि जब यह सिद्ध हो चुका कि आगममें मुखवस्त्रिकाका बाँधना प्रतिपादित किया गया है तो छोटेसे डोरेसे निर्दोषतापूर्वक बन्धनकी सिद्धि होने पर चारित्रको मलिन करने वाले दूसरे तरीके काममें लाना अनुचित है । मुखवस्त्रिकाके छोरसे, सिरके पीछे न्यूनताके वशसे गाँठ न लगा सकनेसे मुखवस्त्रिकाके उचित प्रमाणसे अधिककी कल्पना करनी पड़ेगी, और ऐसी कल्पना करनेसे उत्सृजप्ररूपणाका दोष लगेगा ।

दूसरी बात यह है कि डोरेसे ही मुख पर मुखवस्त्रिका बाधना

प्रश्न—ऐसे प्रकारे मुख पर मुखवस्त्रिका बाधवानु तो सिद्ध थ्यु, पर उ दोरे लगावीने बाधवानु आगममा क्याय भणी आवतु नथी तेधी करीने मुखवस्त्रिकाना छेडाथी पणु तेने बाधी शकाय छे दोरानी शी आवश्यकता छे

उत्तर—ऐनु कथन गराणर नथी, जरणु के जे जे सिद्ध थथ थूकथु के आगममा मुखवस्त्रिका बाधवानु प्रतिपादित करवाभा आव्यु छे तो नाना सरभा दोराथी निर्दोषता—पूर्वक बाधननी सिद्धि थता चारित्रने मलिन करनारो गीजे प्रकार काममा लेवे जे अनुचित छे, मुखवस्त्रिकाना छेडाथी शिरनी पाछण न्यूनताने कारणे गाँठ न बाधी शकावाथी मुखवस्त्रिकाने उचित प्रमाणथी वधादे (लाणी) राभवानी कल्पना करवी पडथे, अने जेवी कल्पना करवाथी उत्सृजप्ररूपणानो दोष लागथे

भील बात जे छे के दोराथी ज मुख पर मुखवस्त्रिका बाधवी उचित छे

लोके हि बन्धन गुणेनैव प्रसिद्धं तत्रापि यथायोग्यमेव सूत्रदोरकादयस्तदर्थमादीयन्ते, यथा पुष्पपुस्तकप्रसनादिग्रन्थनार्थी यथाक्रम मृदुमेव दोरकमुपात्ते ।

किञ्च-सामाचारीग्रन्थे-“मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्ये मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्” इत्युक्तं देवचन्द्रसूरिणाऽपि । अत्र मुखवस्त्रिकाया बन्धनक्रियाकर्मत्वेन प्रतिपादनात् तदोचित्याच्च सा दोरकरूपमनुरूप करणमपेक्षत एव । तत्प्रान्तभागेन ग्रन्थिदाने तु तत्र करणत्वकल्पनं देवचन्द्रसूरिविरुद्धमयुक्तं च, कर्मत्व-करणत्वयोर्विरोधात् ।

उचित है और यही बात भगवानको भी इष्ट है । लोकमें किसी वस्तुका बाँधना डोरेसे ही प्रसिद्ध है । उसमें भी यथायोग्य सूत्रका डोरा आदि बाँधनेके काम में लाये जाते हैं, जैसे फूल, पुस्तक या कपड़ा बाँधने वाले क्रमशः कोमल डोरेको ही काममें लाते हैं ।

सामाचारी ग्रन्थ में देवचन्द्रसूरिने लिखा है-“मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्ये मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम् ।” इस वाक्य में मुखवस्त्रिकाको बाँधनेरूप क्रियाका कर्म बताया है और वह उचित भी है । इसलिये वह (क्रिया) मुखवस्त्रिकाके अनुरूप डोरारूप करणकी अपेक्षा रखती है । तात्पर्य यह है कि जब मुखवस्त्रिका कर्म है तब करण भी कोई होना चाहिये और वह करण अर्थात् जिससे बाँधनारूप क्रिया होती है, डोरा ही होना चाहिए । गाँठ लगानेमें करणत्वकी कल्पना करना देवचन्द्रसूरिसे विरुद्ध है और अयुक्त है, क्योंकि कर्मत्व और करणत्वका विरोध है ।

अने अने वात भगवानने पणु धृष्ट छे दोडोभा डेअ वस्तुने गाधवानु कार्य होराथी अ प्रसिद्ध छे तेभा पणु यथायोग्य सूतरने दोरे वगेरे गाधवाना कामभा लेवामा आवे छे, नेभडे डूल, पुभतक या कपडु गाधनारा कामश डोभण होराने अ कामभा ले छे

सामाचारी ग्रन्थमा देवचन्द्रसूरिने लक्ष्ये छे “मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्ये मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्” अ वाक्यमा मुखवस्त्रिकाने गाधवाइय क्रियानु कर्म गाताव्यु छे अने ते उचित पणु छे तेथी ढरीने अ (क्रिया) मुखवस्त्रिकाने अनुरूप होराइय करणनी अपेक्षा राणे छे तात्पर्य अने छे तेने मुखवस्त्रिका कर्म छे तो करण पणु होवुने अने अने करण अर्थात् नेवडे गाधवाइय क्रिया थाय छे ते दोरे अ होवोने अने गाँठ गाधवामा करणत्वनी कल्पना ढरीने अ देवचन्द्रसूरिथी विरुद्ध छे अने अयुक्त छे, कारणे के कर्मत्व अने करणत्वने विरोध छे

मुखवस्त्रिकाग्रन्थनार्थं कर्णयुगले शस्त्रेण छिद्रकरणं तु अतीवाऽज्ञानविगृह्णितम्, छिद्रकरणस्य शास्त्रानुक्ततया शस्त्रप्रयोगसाध्यतया दुष्करतया च तदपेक्षया निरवग्रत्वेन दोरकाश्रयणस्यैवोचित्यात् ।

नन्वेव दोरकाश्रयणे सदोरःमुखवस्त्रिकाधारकाणां भाषणकाले मुखोत्पत्तिजलरूपैराद्रीभूताया मुखवस्त्रिकायामशुचिस्थानतया समूर्च्छिमजीवा उत्पद्यन्ते, हस्तेन मुखवस्त्रिकाधारणे तु न तथाविधजीवोत्पत्तिसम्भवः, तथा च दोरकपरिग्रहो दुराग्रहमात्रमिति चेन्न, मुखोत्पन्नजलरूपानां भगवता जीवोत्पत्तिस्थानतयाऽनुक्त-

मुखवस्त्रिका बाँधनेके लिए—कानों में छेद कर लेना तो बड़ी भारी अज्ञानता है । क्योंकि साधुपनेके लिए किसी अवयवको छेदना शास्त्रों में निषिद्ध है और शस्त्रसाध्य होनेसे दुष्कर भी है । उसकी अपेक्षा निर्दोषरूपसे डोरेका आश्रय लेना ही उचित है ।

प्रश्न—डोरेका आश्रय लेनेसे डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर धारण करनेवालोंकी मुखवस्त्रिका भाषण करते समय मुखसे निकलनेवाले पानी के कर्णोंसे गीली हो जायगी और गीली होनेसे अशुचिस्थान हो जानेके कारण वहाँ समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति होगी । हाथमें मुखवस्त्रिका धारण करनेसे समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । इसलिए डोराका ग्रहण करना दुराग्रहमात्र है ।

उत्तर—ऐसा कहना उचित नहीं है । क्योंकि मुखसे निकलने वाले जलके कर्णोंको भगवान्ने जीवोत्पत्तिका स्थान नहीं बताया है । ऐसा भी

मुखवस्त्रिका बाधवाने माटे कानमा छिद्र पडावी देवा अने तो बाहे अज्ञानता छे, कारणु के साधुपणाने माटे केछ अणवणने छेदवु शास्त्रमा निषिद्ध छे अने शस्त्रसाध्य होवाथी दुष्कर पणु छे अने गदले निर्दोष रूपे दोराने आश्रय देवा न उचित छे

प्रश्न—दोराने आश्रय देवाथी दोरा—सहित मुखवस्त्रिका मुख पर धारण करनाराम्यानी मुखवस्त्रिका बाधणु करती वधते मुखमाथी नीकणता पाणीना कण्ठोथी लीनी थछ नशे अने लीनी थवाथी अशुचिस्थान थछ नवाने कारणु एना समूर्च्छिम जीवोनी उत्पत्ति थशे होथन । मुखवस्त्रिका धारणु करवाथी समूर्च्छिम जीवोनी उत्पत्ति थती नथी तेथी करीने दोरानु ग्रहणु करवु अने दुराग्रह थाय छे

उत्तर—अने कडेवु उचित नथी, कारणु के मुखथी नीकणता नणन कण्ठाने भगवाने जीवोत्पत्तिनु स्थान थतावु नथी, अने पणु न कही शक्य

त्वात् । न चैतेषां जलकणानां खेलाशतयाऽशुचिस्थानतया वा जीवोत्पत्तिस्थानत्व  
प्रतीयत इति वाच्यम्, तत्र खेलाशताप्रतीतेर्भ्रान्तिमूलकत्वात् । वैद्यकशास्त्रे हि  
खेलस्य मुखजलकणानां च भेदः सुस्पष्टः, तथाहि खेलशब्दः श्लेष्मण्यर्थे वर्तते,  
आमाशयो, हृदय, कण्ठः, शिरः, सन्धयश्चैतानि श्लेष्मणः स्थानानि, तथाचोक्त  
भावप्रकाशे—

“आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु ।

स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥” इति,

अस्य स्वरूप धर्माश्रोक्ताः सुश्रुतसहिताया यथा—

“श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः, पिच्छलः शीत एव च ।

मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्, विदग्धो लवणः स्मृतः ॥” इति,

नहीं कहना चाहिए कि वे जलकण खेलके अशहं, इसलिए अशुचिस्थान  
हैं और अशुचिस्थान होनेसे जीवोत्पत्तिके स्थान हैं । क्योंकि उन जल-  
कणोंको खेल (कफ) का अश समझना भ्रान्तिमूलक है । ‘खेल’ शब्दका  
अर्थ श्लेष्म है । आमाशय, हृदय, कण्ठ, शिर और सन्धियाँ श्लेष्मके स्थान  
हैं । भावप्रकाश में लिखा है—

आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु ।

स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥ १ ॥

अर्थात्—“आमाशय, हृदय, कण्ठ, शिर और सधिभाग, इन  
स्थानों में मनुष्यों को अनुक्रम से कफ रहता है ।”

सुश्रुतसहितामें श्लेष्मका स्वरूप और गुण इस प्रकार बनावे हैं—

डे ओ जलकण खेल (कफ) ना अशरूप होय छे अने तेथी अशुचिस्थान  
छे अने अशुचिस्थान होवाथी जीवोत्पत्तिना स्थान छे ओ जलकणोभा कफने  
अश समजवे ओ भ्रान्तिमूलक छे खेल शब्दने अर्थ श्लेष्म छे आमाशय,  
हृदय, कण्ठ, शिर अने सधि ओ श्लेष्मनु स्थान छे भावप्रकाशमा लख्यु छे डे—

आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु ।

स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥

अर्थात्—“आमाशय हृदय कण्ठ शिर अने सधिभाग ओ स्थानोभा मनुष्योने  
अनुक्रमथी कफ गडे छे ”

सुश्रुतसहितामें श्लेष्मनु स्वरूप अने गुण आ आदि बताव्या छे—

१ विदग्ध—पका या जला हुआ ।

मुखवस्त्रिकाग्रन्थनार्थं कर्णयुगले गच्छेण छिद्रकरणं तु अतीवाऽज्ञानविभ्रं  
म्मितम्, छिद्रकरणस्य शास्त्रानुक्ततया गन्धप्रयोगसाध्यतया दुष्करतया च  
तदपेक्षया निरवयवत्वेन दोरकाश्रयणस्यैवोचित्यात् ।

नन्वेव दोरकाश्रयणे सद्दोरकमुखवस्त्रिकाधारकाणां भाषणकाले मुखोत्पत्तित  
जलरूपैराद्रीभूताया मुखवस्त्रिकायामभुचिस्थानतया समूर्च्छिमजीवा उत्पद्येरन्,  
इस्तेन मुखवस्त्रिकाधारणे तु न तथापिधजीवोत्पत्तिसम्भवः, तथा च दोरकपरिग्रहो  
दुराग्रहमात्रमिति चेन्न, मुखोत्पन्नजलरूपानां भगवता जीवोत्पत्तिस्थानतयाऽनुक्त

मुखवस्त्रिका बाँधनेके लिए—कानों में छेद कर लेना तो बड़ी भारी  
अज्ञानता है । क्योंकि साधुपनेके लिए किसी अवयवको छेदना शास्त्रों  
में निषिद्ध है और शस्त्रसाध होनेसे दुष्कर भी है । उसकी अपेक्षा  
निर्दोषरूपसे डोरेका आश्रय लेना ही उचित है ।

प्रश्न—डोरेका आश्रय लेनेसे डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर धारण  
करनेवालोंकी मुखवस्त्रिका भाषण करते समय मुखसे निकलनेवाले पानी  
के कणोंसे गीली हो जायगी और गीली होनेसे अशुचिस्थान हो जानेके  
कारण वहाँ समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति होगी । हाथमें मुखवस्त्रिका धारण  
करनेसे समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । इसलिए डोराका  
ग्रहण करना दुराग्रहमात्र है ।

उत्तर—ऐसा कहना उचित नहीं है । क्योंकि मुखसे निकलने वाले  
जलके कणोंको भगवान्ने जीवोत्पत्तिका स्थान नहीं बताया है । ऐसा भी

मुखवस्त्रिका बाधवाने माटे कानमा छिद्र पडावी लेवा अने तो बारि अज्ञानता  
छे, कारण के साधुपणुने माटे केछ अणवयवने छेदु शास्त्रमा निषिद्ध छे अने  
शस्त्रसाध्य होवाथी दुष्कर पणु छे अने पहले निर्दोष रूपे होराने आश्रय  
लेवा न उचित छे

प्रश्न—होराने आश्रय लेवाथी होरा—सहित मुखवस्त्रिका मुख पर धारण  
करनाराज्यानी मुखवस्त्रिका बाधणु करती वणते मुखमाथी नीकणता पाणुनी  
कणुथी लीनी थथ नथे अने लीनी थवाथी अशुचिस्थान थथ नवाने कारणे  
ता समूर्च्छिम जीवोनी उत्पत्ति थथे हाथमा मुखवस्त्रिका धारणु करवाथी समूर्च्छिम  
जीवोनी उत्पत्ति थती नथी तेथी करीने होरानु अणुणु करणु अने दुराग्रह थथ छे

उत्तर—अने कणु उचित नथी, कारण के मुखथी नीकणता नणना  
कणुने भगवाने जीवोत्पत्तिनु स्थान गताणु नथी, अने पणु न कडी शक्य

त्वात् । न चैतेषां जलकणानां खेलगतयाऽशुचिस्थानतया वा जीवोत्पत्तिस्थानत्व  
प्रतीयत इति वाच्यम्, तत्र खेलगताप्रतोतेभ्रान्तिमूलकत्वात् । वैधकशास्त्रे हि  
खेलम्य मुखजलकणानां च भेदः सुस्पष्टः, तथाहि खेलशब्दः श्लेष्मण्यथे वर्त्तते,  
आमाशयो, हृदय, कण्ठ, शिरः, सन्धयश्चैतानि श्लेष्मणः स्थानानि, तथाचोक्त  
भावप्रकाशो-

“आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु ।

स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥” इति,

अस्य स्वरूप धर्माशोक्ताः सुश्रुतसहिताया यथा-

“श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः, पिच्छलः शीत एव च ।

मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्, विदग्धो लवणः स्मृतः ॥” इति,

नहीं कहना चाहिए कि वे जलकण खेलके अंश हैं, इसलिए अशुचिस्थान  
हैं और अशुचिस्थान होनेसे जीवोत्पत्तिके स्थान हैं । क्योंकि उन जल-  
कणोंको खेल (कफ) का अंश समझना भ्रान्तिमूलक है । ‘खेल’ शब्दका  
अर्थ श्लेष्म है । आमाशय, हृदय, कण्ठ, शिर और सन्धियाँ श्लेष्मके स्थान  
हैं । भावप्रकाश में लिखा है-

आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु ।

स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥ १ ॥

अर्थात्-“आमाशय, हृदय, कण्ठ, शिर और सन्धिभाग, इन  
स्थानों में मनुष्यों को अनुक्रम से कफ रहता है ।”

सुश्रुतसहितामें श्लेष्मका स्वरूप और गुण इस प्रकार बताये हैं-

के अने जलकण खेल (कफ) का अंश रूप होय छे अने तेथी अशुचि-स्थान  
छे अने अशुचिस्थान होवाथी जीवोत्पत्तिना स्थान छे अने जलकणोभा कफने  
अंश समजवो अने भ्रान्तिमूलक छे खेल शब्दने अर्थ श्लेष्म छे आमाशय,  
हृदय, कण्ठ, शिर अने सन्धि अने श्लेष्मनु स्थान छे भावप्रकाशमा लख्य छे के-

आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु ।

स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥

अर्थात्-“आमाशय हृदय कण्ठ शिर अने सन्धिभाग अने स्थानोभा मनुष्योने  
अनुक्रमथी कफ रहे छे ”

सुश्रुतसहितामा श्लेष्मनु स्वरूप अने गुण आ प्रकारे बताव्या छे -

१ विदग्ध-पका या जला हुआ ।



મુખજલસ્ય તુ રસનામૂલ તદગ્રભાગથેતિદ્વયમુત્પત્તિસ્થાનમ્, इदं च चर्चित-  
 સ્યાન્નસ્ય પિણ્ડીભવને કણ્ઠનલિકયાઽધોનયને પાચને ચ નિમિત્તમ્ । અત एव  
 યોગચિન્તામણૌ પ્રથમાધ્યાયે-

“ રસાઽષ્ટદ્માસમેદોઽસ્થિમજ્જાશુક્રાણિ ધાતવઃ ।

इत्युक्त्वा कस्य धातोः किं मलम् ? इति प्रदर्शयितुं पुनरभिहितम्-

“ जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रक्षकम्, ” इत्यादि ।

श्लेष्मा श्वेतो गुरु. स्निग्धः पिच्छलः शीत एव च ।

मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्, विदग्धो लवणः स्मृतः ॥१

અર્થાત્-શ્લેષ્મ (કફ) સફેદ, ગુરુ, ચિકના, પિચ્છલ ઓર શીત  
 હોતા હૈ । નહીં જલા હુઆ યા કઘા કફ મધુર હોતા હૈ ઓર પકા યા  
 જલા હુઆ નમકીન હોતા હૈ ।

મુખજલકે કેવલ દો ઉત્પત્તિસ્થાન હૈં-(૧) જિહ્વાકા મૂલ ઓર (૨)  
 જિહ્વાકા અગ્રભાગ । યહ મુખજલ ચવાચે હુए અન્નકો પિણ્ડ બનાને તથા  
 કણ્ઠકી નલીકે નીચે લેજાને તથા પચાનેકા કારણ હૈ । ઇસીસે યોગ-  
 ચિન્તામણિ ગ્રન્થકે પ્રથમ અધ્યાયમેં “રસાઽષ્ટદ્માસમેદોઽસ્થિમજ્જાશુક્રાણિ  
 ધાતવ.” એસા કહ કર કિસ ધાતુકા કયા મલ હૈ, સો બતાનેકે લિए  
 ફિર કહા હૈ-“જિહ્વાનેત્રકપોલાના, જલ પિત્ત ચ રક્ષકમ્” । અર્થાત્

श्लेष्मा श्वेतो गुरु स्निग्ध. पिच्छल. शीत एव च ।

मधुरस्त्वविदग्धः स्यात् विदग्धो लवण. स्मृतः ॥

અર્થાત્-“ શ્લેષ્મ ( કફ ) સફેદ, ગુરુ, ચિકણા, પિચ્છલ, અને શીત હોય છે  
 નહિ બળેલો યા કઘો કફ મધુર હોય છે અને પાકો યા બળેલો કફ ખારો  
 હોય છે ”

મુખજળના માત્ર બે ઉત્પત્તિ સ્થાન હોય છે (૧) જિહ્વાનું મૂળ અને  
 (૨) જિહ્વા (જીભ)ને અગ્રભાગ બે મુખજળ આવેલા અન્નનો પિંડ બનાવવાનું  
 તથા કઠની નળીની નીચે લઈ જવાનું તથા પચાવવાનું કારણ છે તેવી યોગ  
 ચિન્તામણિ ગ્રંથના પ્રથમ અધ્યાયના રસાઽષ્ટદ્માસમેદોઽસ્થિમજ્જાશુક્રાણિ ધાતવ.  
 એમ કહીને કઈ ધાતુનો કયો મળ છે તે બતાવવાને માટે પછી કહ્યું છે કે  
 જિહ્વાનેત્રકપોલાનાં જલ પિત્ત ચ રક્ષકમ્ । અર્થાત્-જિભ નેત્ર અને ગાલનું જલ

जिह्वानेत्ररूपोलाना जल रसधातोर्मल, रज्जक पित्त रुधिरस्य मलमिति तदर्थः । इत्थ जिह्वारूपोलदेशे जायमान जल मुखजल, तदीयरुणिका एव भाषणकाले कदाचिद् बहिरुत्पत्तन्तीति विशदीभवति, श्लेष्मा तु न कस्यचिद् धातोर्मल, स हि दोषत्रयान्तःपातित्वात्तत्स्वरूपम्, अत एव योगचिन्तामणौ प्रथमाध्याये धातुमलतः पृथक्कृत्य दोषत्रयोपादान कृत, यथा शारीररूपकरणे—

“ कलाः सप्ताशयाः सप्त, धातवः सप्त तन्मलाः ।  
 सप्तोपधातवः सप्त, त्वचः सप्त प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥  
 त्रयो दोषा नवशत, स्नायूना सन्धयस्तथा ।  
 दशाधिक च द्विशतमस्थना च द्विशत मत्तम् ॥ २ ॥  
 सप्तोत्तर मर्मशत, शिराः सप्तशत तथा ।  
 चतुर्विंशतिरारयाता, धमन्यो रसवाहिकाः ॥ ३ ॥  
 मासपेक्ष्यः समारयाता, नृणा पञ्चशत युधैः ।  
 स्त्रीणा च विंशत्यधिकाः, ऋण्डराश्चैव षोडश ॥ ४ ॥  
 नृदेहे दश रन्त्राणि, नारीदेहे त्रयोदश ।  
 एतत्समासतः प्रोक्त, विस्तरेणावुनोच्यते ॥ ५ ॥ ” इति ।

जीभ, नेत्र और गालका जल रसधातुका मल है तथा रजक पित्त रुधिरका मल है । इसप्रकार जीभ और गालोमें उत्पन्न होनेवाला जल मुखका जल कहलाता है और उसीकी कणिका भाषण करते समय कभी-कभी बाहर निकल जाती है, यह बात स्पष्ट है । श्लेष्मा किसी धातुका मल नहीं है, वह तीन दोषोंमेंसे एक दोष है, इसीसे योगचिन्तामणिमें धातुओंके मलोंसे पृथक् करके तीन दोष अलग बताये हैं, देखो शारीरक प्रकरण “ कलाः सप्ताशयाः ” इत्यादि श्लोक ५ ।

रस धातुने मल छे तथा रजक पित्त रुधिरने मल छे ओ रीते लल अने गालमा उत्पन्न थनाइ जल मुखनु जल उडेवाय छे अने तेनी क्विक्काओ लोपथु करती वभते डोष-डोष वार गडार नीकणी नय छे ते बात स्पष्ट छे श्लेष्म डोष धातुने मल नथी, ते त्रयु दोषोभाने ओउ दोष छे तेयी योगचिन्ता मणिमा धातुओना भलोथी नूदा पाडीने त्रयु दोष अलग गतावेला छे लुओ शारीरक प्रकरण “ कला सप्ताशयाः ” इत्यादि श्लोक ५

મુલ્જલસ્ય તુ રસનામૂલ તદગ્રભાગથેતિદ્વયમુત્પત્તિસ્થાનમ્, ઇદ ચ ચર્વિત  
સ્વાલ્લસ્ય પિણ્ડીભવને કણ્ઠનલિક્રયાડ્ઠોનયને પાચને ચ નિમિત્તમ્ । અત एव  
યોગચિન્તામણૌ પ્રથમાધ્યાયે-

“ રસાઽસૃદ્માસમેદોઽસ્થિમજ્જાશુક્રાણિ ધાતવઃ ।

ઇત્યુક્ત્વા કસ્ય ધાતોઃ કિં મલમ્ ? ઇતિ પ્રદર્શયિતુ પુનરભિહિતમ્-

“ જિહ્વાનેત્રકપોલાના જલ પિત્ત ચ રક્તમ્, ” ઇત્યાદિ ।

શ્લેષ્મા શ્વેતો ગુરુઃ સ્નિગ્ધઃ પિચ્છલઃ શીત एव च ।

મધુરસ્ત્વવિદગ્ધઃ સ્યાદ્, વિદગ્ધો લવણઃ સ્મૃતઃ ॥૧

અર્થાત્-શ્લેષ્મ (કફ) સ્પેદ, ગુરુ, ચિકના, પિચ્છલ ઓર શીત  
હોતા હૈ । નહીં જલા હુઆ યા કઢા કફ મધુર હોતા હૈ ઓર પકા યા  
જલા હુઆ નમકીન હોતા હૈ ।

મુલ્જલકે કેવલ દો ઉત્પત્તિસ્થાન હૈ-(૧) જિહ્વાકા મૂલ ઓર (૨)  
જિહ્વાકા અગ્રભાગ । યહ મુલ્જલ ચવાયે હુએ અગ્રકો પિણ્ડ ઘનાને તથા  
કણ્ઠકો નલીકે નીચે લેજાને તથા પચાનેકા કારણ હૈ । ઇસીસે યોગ  
ચિન્તામણિ ગ્રન્થકે પ્રથમ અધ્યાયમેં “રસાસૃદ્માસમેદોઽસ્થિમજ્જાશુક્રાણિ  
ધાતવઃ” એસા કહ કર કિમ ધાતુકા કયા મલ હૈ, સો બતાનેકે લિએ  
ફિર કહા હૈ-“જિહ્વાનેત્રકપોલાના, જલ પિત્ત ચ રક્તમ્” । અર્થાત્

શ્લેષ્મા શ્વેતો ગુરુઃ સ્નિગ્ધઃ પિચ્છલઃ શીત एव च ।

મધુરસ્ત્વવિદગ્ધઃ સ્યાત્ વિદગ્ધો લવણઃ સ્મૃતઃ ॥

અર્થાત્-“શ્લેષ્મ ( કફ ) સ્પેદ, ગુરુ, ચિકના, પિચ્છલ, અને શીત હોય છે  
નહિ બળેલો યા કઢો કફ મધુર હોય છે અને પાકો યા બળેલો કફ ખારો  
હોય છે ”

મુખજળના માત્ર બે ઉત્પત્તિ સ્થાન હોય છે (૧) જિહ્વાના મૂળ અને  
(૨) જિહ્વા (જીભ)ના અગ્રભાગ એ મુખજળ આવેલા અગ્રનો પિંડ બનાવવાનું  
તથા કઠની નળીની નીચે લઇ જવાનું તથા પચાવવાનું કારણ છે તેથી યોગ  
ચિન્તામણિ ગ્રન્થના પ્રથમ અધ્યાયના “રસાસૃદ્માસમેદોઽસ્થિમજ્જાશુક્રાણિ ધાતવઃ”  
એમ કહીને કઇ ધાતુનો કયો મળ છે તે બતાવવાને માટે પછી કહ્યું છે કે  
જિહ્વાનેત્રકપોલાના જલ પિત્ત ચ રક્તમ્ । અર્થાત્-જિહ્વા નેત્ર અને ગાત્રન જલ

शब्दानुपादानात् । वस्तुतस्तु निष्ठीवनशब्दस्य भावव्युत्पन्नतया प्रक्षेपणात्मकनि-  
रसनक्रियावाचित्व युक्तम्, अतएव—

“रक्तनिष्ठीवन दाहो, मोहश्छर्दन-विभ्रमौ ।

प्रलापः पिटिका तृष्णा, रक्तप्राप्ते ज्वरे तृणाम् ॥” इति,

रक्तज्वरलक्षण प्रतिपादयता माधवनिदानकृता निर्गमनेऽप्यर्थे निष्ठीव-  
नशब्दः प्रयुक्तः । क्वलीकृतस्य द्रव्यस्य मुखान्निरसनेऽपि निष्ठीवनत्वमुक्तं,  
भावप्रकाशे यथा—

“वातपित्तकफत्रस्य द्रव्यस्य क्वल मुखे ।

अर्थे निःक्षिप्य सचर्व्य, निष्ठीवेत् क्वले विधिः ॥” इति,

तिव्वअकव्वराख्ये वैद्यग्रन्थे पञ्चमाध्याये प्रथमप्रकरणेऽपि जिह्वामूलतो

निष्ठीवनका वास्तविक अर्थ है क्षेपण करना, या त्यागना। इसीसे ‘माध  
वनिदान’ कर्ताने रक्तज्वर के लक्षण बताते समय निकलनेके अर्थमें  
निष्ठीवन शब्दका प्रयोग किया है—

रक्तनिष्ठीवन दाहो, मोहरश्छर्दनविभ्रमौ ।

प्रलापः पिटिका तृष्णा, रक्तप्राप्ते ज्वरे तृणाम् ॥ १ ॥

भावप्रकाशमें कौर (क्वल)के बाहर निकालनेको निष्ठीवन कहा है—

“वातपित्त०” इत्यादि,

“तिव्व अकव्वर” नामक यूनानी वैद्यक ग्रन्थमें भी जिह्वके मूलसे  
मुखजलकी उत्पत्ति स्पष्टरूपसे बताई गई है “जीभकी जड़में एक  
मासकालोथडा है जिसमेंसे लुआय और मुखका पानी निकलता है और  
जीभको तर रखता है और खानेकी चीजोंमें मिला करता है ।” तथा

अर्थ छे—क्षेपण करु या त्यागवु तेथी ‘माधवनिदान’ कर्ताने रक्तज्वरना  
लक्षणो गतावती वभते नीकलवाना अर्थमा निष्ठीवन शब्दने प्रयोग कर्थो छे

रक्तनिष्ठीवन दाहो, मोहश्छर्दनविभ्रमौ ।

प्रलापः पिटिका तृष्णा, रक्तप्राप्ते ज्वरे तृणाम् ॥ १ ॥

भावप्रकाशमा ज्ञानीयानु गहार नीजानु अने निष्ठीवन कडेल छे —  
वातपित्त० इत्यादि

“तिव्व अकव्वर” नामक यूनानी वैद्यक ग्रन्थमा पणु लहाना मूलमाथी  
मुभजलनी उत्पत्ति स्पष्टरूपे गतावी छे “लहाना मूलमा मासने लोथो छे  
नेमाथी लुआय अने मुभनु पाणी नीकणे छे अने लहने तर राणे छे अने

एव च मुखजलस्य खेलतो भेदः स्पष्ट एव । न च खेलशब्दस्य निष्ठीवनार्थक-  
तया निष्ठीवनात्मके मुखजले खेलशब्दमट्टत्या तस्यापि जीवोत्पत्तिस्थानत्व  
दुर्वारमेवेति वाच्यम्, निष्ठीव्यते=निरस्यते=प्रक्षिप्यते यच्चनिष्ठीवनमिति 'नि'पू-  
र्वकात् 'ष्ठीवु निरसने' इति धातोर्ग्राह्यत्वात् कर्मणि ल्युटि निष्पन्नस्य निष्ठीव-  
नशब्दस्य योगेन मुखनिर्गतपदार्थमात्रे प्रयोगो भवति, एव च निष्ठीवनशब्दस्यैव  
प्रक्षिप्तखेलार्थरुत्त्व सि यति न तु खेलशब्दस्य निष्ठीवनार्थरुत्त्वम्, तथा च  
मुखनिर्गतजलरूपेषु न जीवोत्पत्तिसिद्धिः, जीवोत्पत्तिस्थानपरिगणने निष्ठीवन-

इस प्रकार स्पष्ट है कि मुखका जल झलेष्मसे भिन्न है ।

प्रश्न—'खेल' शब्दका अर्थ 'थूक' है, और थूक तथा मुखजल एक ही है । अतः मुखजलमें खेल शब्दकी प्रवृत्ति होनेसे वह जीवोत्पत्तिका स्थान होगा ही ।

उत्तर—ऐसा कहना ठीक नहीं है । क्योंकि 'निष्ठीवन' शब्द 'नि'-  
उपसर्गपूर्वक 'ष्ठीवु निरसने' धातुसे बना है । अतः मुखसे निकलने  
वाला कोई भी पदार्थ निष्ठीवन कहलाता है । इससे यह सिद्ध होता है  
कि त्यागा हुआ खेल आदि निष्ठीवन कहला सकता है किन्तु निष्ठीवन  
'खेल' नहीं कहला सकता । इसलिए मुखसे निकलने वाले जलकणोंमें  
जीवोत्पत्तिकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि जीवोत्पत्तिके स्थानोंमें 'निष्ठी  
वन' शब्द नहीं दिया है । वास्तवमें निष्ठीवन शब्द भावल्युद्धन्त होनेसे  
प्रक्षेपणरूप निरसन क्रियाका वाची है, ऐसा मानना युक्त है । अर्थात्

એ રીતે સ્પષ્ટ થાય છે કે મુખનુ જલ એ સ્ત્રોષ્મથી ભિન્ન છે

પ્રશ્ન—'ખેલ' શબ્દનો અર્થ 'થૂક' છે, અને થૂક તથા મુખજલ એક જ છે એટલે મુખજલમાં ખેલ શબ્દની પ્રવૃત્તિ થવાથી તે જીવોત્પત્તિનું સ્થાન થશે જ

ઉત્તર—એમ કહેવું બરાબર નથી નિષ્ઠીવન શબ્દ 'નિ'-ઉપસર્ગ-પૂર્વક  
ષ્ટીવુ નિરસને ધાતુથી બન્યો છે એટલે મુખથી નીકળતો કોઈ પદાર્થ નિષ્ઠીવન  
કહેવાય છે તેથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે ત્યાગેલો ખેલ આદિ નિષ્ઠીવન કહી શકાય  
છે, પરંતુ નિષ્ઠીવન 'ખેલ' નથી કહી શકતો તેથી મુખથી નીકળતા જલકણોમાં  
જીવોત્પત્તિની સિદ્ધિ થતી નથી, કારણ કે જીવોત્પત્તિના સ્થાનોમાં 'નિષ્ઠીવન'  
શબ્દ આપ્યો નથી વન્તુત નિષ્ઠીવ । શબ્દ ભાવલ્યુદ્ધન્ત હોવાથી પ્રક્ષેપણરૂપ  
નિરસન ક્રિયાનો વાચક છે એમ માનવું યુક્ત છે અર્થાત્ નિષ્ઠીવનનો વાસ્તવિક



મુખજલોત્પત્તિઃ સ્પષ્ટ પ્રતિપાદિતા । શરીરવિજ્ઞાને ચ મુખજલસ્ય પાચનશક્તિમત્ત્વ  
પ્રકૃટિતમ્ ।

અશુચિસ્થાનતયા મુખજલસ્ય જીવોત્પત્તિસ્થાનત્વાપાદન તુ સર્વથા નિર્મૂલમેવ,  
તથાહિ-યાવન્તિ જીવોત્પત્તિસ્થાનાનિ સન્તિ તાનિ પ્રજ્ઞાપનાશ્ત્રુતે નિર્દિષ્ટાનિ, યથા-

“ ઉચ્ચારેસુ વા પામચણેસુ વા ચેલેસુ વા સિંઘાણગ્ણસુ વા વતેસુ વા  
પિત્તેસુ વા પૂયેસુ વા સોણિગ્ણસુ વા સુક્રેસુ વા સુક્રપુદ્ગલપરિશાદેસુ વા  
વિગયજીવકલેવરેસુ વા ધીપુરિસસજીગ્ણસુ વા નગરનિદ્વમણેસુ વા સન્વેસુ  
ચેવ અસુદ્દાણેસુ, एत्थ ण समुच्छिडमणुस्सा समुच्चति ” इति ।

‘શરીર વિજ્ઞાન’ નામક ગ્રન્થમેં મુખજલકે વિષયમેં લિખ્વા હૈ કિ ઉસમેં  
પચાનેકી શક્તિ હોતી હૈ ।

‘અશુચિસ્થાન હોનેસે મુખજલ જીવોત્પત્તિકા સ્થાન હૈ’ ણેસા કરના  
વિલકુલ વેજહ હૈ । જીવોત્પત્તિકે જિતને સ્થાન હૈં ઉન સબકા નિર્દેશ  
પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમેં કિયા હૈ “ ઉચ્ચારેસુ વા ” ઇત્યાદિ,

અર્થાત્ “ ઉચ્ચાર (વિષ્ટા) મે, પ્રસ્રવણ (મૂત્ર)મે, કાફમે, નાકકે મૈલમેં,  
કૈમેં, પિત્તમેં, પીવમેં, સ્ત્રુનમેં, શુક્રમેં, શુક્રપુદ્ગલપરિશાદ (શુક્ર શુક્ર-  
પુદ્ગલોકે ફિર ખીને હોને ) મે, પ્રાણીકી લાશમેં, સ્ત્રીપુરુષકે સયોગમેં,  
નગરકી ગટરમેં, ઇન સબ અશુચિયોંકે સ્થાનોમેં સમુચ્છિડમ મનુષ્ય ઉત્પન્ન  
હોતે હૈ । ”

ખાવાની ચીજેમા મળ્યા કરે છે ” અને “ શરીરવિજ્ઞાન ’ નામના ગ્રંથમા  
મુખજલના વિષયમા લખ્યુ છે કે એમા પચાવવાની શક્તિ હોય છે

‘ અશુચિસ્થાન હોવાથી મુખજલ જીવોત્પત્તિનુ સ્થાન છે ’ એમ કહેલુ ગિલકુલ  
અમૂલક છે જીવોત્પત્તિના જેટલા સ્થાનો છે એ બધાને નિર્દેશ પ્રજ્ઞાપના-સૂત્રમા  
કરેલો છે ઉચ્ચારેસુ વા ઇત્યાદિ “ ઉચ્ચાર (વિષ્ટા)મા, પ્રસ્રવણ (પિસાળ)મા,  
કરમા, નાકના લીટમા, વમન-ઉલટીમા, પિત્તમા, પડમા, લોહીમા, શુક્ર-વીરમા,  
શુક્રપુદ્ગલપરિશાદમા ( શુક્રના સુકાયલા પુદ્ગલ બીના થવામા ), પ્રાણીના  
મુદામા, સ્ત્રીપુરુષના સમાગમમા, નગરની ખાણો (ગટરો)મા, એ બધા અશુચિના  
સ્થાનોમા સમુચ્છિડમ મનુષ્ય ઉત્પન્ન થાય છે ”

अत्र “सन्वेसु चैव असुदृष्टाणेषु” इत्यस्य “सर्वेषु चैव अशुचिस्थानेषु” इति सस्कृतम्, अशुचीना स्थानानि अशुचिस्थानानि तेषु=अशुचिस्थानेषु, यत्रानेकेषामशुचीनामुच्चारणीना स्थितिस्तत्रेत्यर्थः ।

अयमाशयः—यथा पृथिव्यादीना परकायशस्त्रेण परिणतत्वे सति सचित्तत्वमपगच्छति तयोच्चारणीना प्रसन्नवणादिसाङ्कर्ये सति समूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वापगमः स्यादिति शिष्यशङ्कासमाश्रयानाया तन्निरसनार्थमेव पृथक्कृत्येदमुक्तम्—“सन्वेसु चैव असुदृष्टाणेषु” इति, न त्वत्रानुक्तानामशुचीना स्थानेषु, इति तदाशयः । एतेनोच्चारणीना समूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वादेव तत्साङ्कर्येऽपि तादृशजीवोत्पत्ति-

यहाँ सब अशुचियोंके स्थानोंसे तात्पर्य यह है कि जहाँ उच्चार आदि अनेक अशुचियोंकी स्थिति हो वह स्थान ।

मतलब यह कि—परकाय शस्त्रसे परिणत होने पर पृथिवीकाय आदि अचित्त हो जाते हैं, उसी प्रकार जब उच्चार आदि प्रसन्नवण आदिके साथ मिल जाते हैं, तब उनमें समूर्च्छिम जीवोंको उत्पन्न करनेकी शक्ति रहती है या नहीं ? शिष्यके ऐसे प्रश्नकी समाधान होने पर खुलासा करनेके लिए अलग कहा है कि “सब अशुचिस्थानोंमें।” इस वाक्यका “उक्त अशुचियोंके स्थानोंके सिवाय अन्यस्थानोंमें” यह अर्थ नहीं है। उपर्युक्त कथन करनेसे यह स्वयं सिद्ध हो गया कि जब उच्चार आदि समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं तब उन स्थानोंमेंसे यदि दो या तीन आदि मिल जावें तो भी वे जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान रहेंगे। अतएव जो लोग

अब। सर्व अशुचिस्थानाना स्थानानु तात्पर्य ये ठे ठे नया उच्चार आदि अनेक अशुचिस्थानाना स्थिति होय ते स्थान

मतलब ये थे थे—परकाय शस्त्रसे परिणत तथा पृथिवीकाय आदि अचित्त यथ नय थे, ये रीते नयारे उच्चार आदि प्रसन्नवण आदिनी साथे भणी नय थे, त्थारे तेमा समूर्च्छिम जीवोंने उत्पन्न करनेकी शक्ति रहे थे नहि ? शिष्यना येवा प्रश्नकी समाधान होवानी भुवासा करनेके भाटे नूँदे उछु थे थे “सर्व अशुचिस्थानोंमें” या वाक्यने अर्थ “उक्त अशुचिस्थानाना स्थानोंमें सिवाय अन्य स्थानोंमें” येवा नया उपर सुन्न कथन करनेकी ये स्वयंसिद्ध यथ गद्य थे नये उच्चार आदि समूर्च्छिम जीवोंने उत्पत्तिना स्थान थे तो ये स्थानोंमें नये नये या त्रय आदि भणी नय तो पछु ते जीवोंने उत्पत्तिना स्थानों रहे थे तथी करीने नये बोडो अर्थ उछे थे थे पूरकत अर्थ करनेकी



મુખજલોત્પત્તિઃ સ્પષ્ટ પ્રતિપાદિતા । શરીરવિજ્ઞાને ચ મુખજલસ્ય પાચનશક્તિમત્ત  
પ્રકૃતિતમ્ ।

અશુચિસ્થાનતયા મુખજલસ્ય જીવોત્પત્તિસ્થાનત્યાપાદન તુ સર્પયા નિર્મૂલમેવ,  
તથાહિ-યાવન્તિ જીવોત્પત્તિસ્થાનાનિ સન્તિ તાનિ પ્રજ્ઞાપનામૂત્રે નિર્દિષ્ટાનિ, યથા-

“ ઉચારેસુ વા પામવણેસુ વા खेलेसु वा मिघाणणसु वा वतेसु वा  
पित्तेसु वा पूयेसु वा सोणिणसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा  
विगयजीवकलेचरेसु वा धीपुरिससजोणसु वा णगरनिद्धमणेसु वा सन्वेसु  
चेव असुइट्ठाणेसु, एत्थ ण समुच्छिममणुस्सा समुच्चरति ” इति ।

‘શરીર વિજ્ઞાન’ નામક ગ્રન્થમેં મુખજલકે વિષયમેં લિખા હૈ કિ ઉસમેં  
પચાનેકી શક્તિ હોતી હૈ ।

‘અશુચિસ્થાન હોનેસે મુખજલ જીવોત્પત્તિકા સ્થાન હૈ’ ઠેસા કહના  
વિલકુલ વેજડ હૈ । જીવોત્પત્તિકે જિતને સ્થાન હૈં ઉન સબકા નિર્દેશ  
પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમેં ક્રિયા હૈ “ ઉચારેસુ વા ” ઇત્યાદિ,

અર્થાત્ “ ઉચાર (વિષ્ટા) મે, પ્રસ્રવણ (મૂત્ર)મે, કફમેં, નાકકે મૈલમેં,  
કૈમેં, પિત્તમેં, પીવમેં, રૂનમેં, શુક્રમેં, શુક્રપુદ્ગલપરિશાટ ( શુષ્ક શુક્ર  
પુદ્ગલોંકે ફિર ખીને હોને ) મે, પ્રાણીકી લાશમેં, સ્ત્રીપુરુષકે સયોગમેં,  
નગરકી ગટરમેં, ઇન સબ અશુચિયોંકે સ્થાનોંમેં સમૂચ્છિમ મનુષ્ય ઉત્પન્ન  
હોતે હૈ । ”

ખાવાની ચીજોમા મળ્યા કરે છે ” અને “ શરીરવિજ્ઞાન ’ નામના ગ્રંથમા  
મુખજલના વિષયમા લખ્યુ છે કે એમા પચાવવાની શક્તિ હોય છે

‘ અશુચિસ્થાન હોવાથી મુખજલ જીવોત્પત્તિનુ સ્થાન છે ’ એમ કહેલુ ગિલકુલ  
અમૂલક છે જીવોત્પત્તિના જેટલા સ્થાનો છે એ બધાનો નિર્દેશ પ્રજ્ઞાપના-સૂત્રમા  
કરેલો છે ઉચારેસુ વા ઇત્યાદિ “ ઉચાર (વિષ્ટા)મા, પ્રસ્રવણ (પિસાળ)મા,  
કફમા, નાકના લીટમા, વમન-ઉલટીમા, પિત્તમા, પર્શમા, લોહીમા, શુક્ર-વીર્યમા,  
શુક્રપુદ્ગલપરિશાટમા ( શુક્રના સુકાયલા પુદ્ગલ બીના થવામા ), પ્રાણીના  
મુડામા, સ્ત્રીપુરુષના સમાગમમા, નગરની ખાણો (ગટર)મા, એ બધા અશુચિના  
સ્થાનોમા સમૂચ્છિમ મનુષ્ય ઉત્પન્ન થાય છે ”

त्पत्तौ सत्या भगवता शिष्याणा स्पष्टप्रतिपत्तये- “खेलेसु वा वतेसु वा” इत्यादिवत् “सुहजलकणेषु वा” इति वाक्येन तेषुपि पृथक्कृत्य निर्देष्टव्याः स्युः, इति मुखजलकणाना भगवदनुक्तत्वात् तत्र जीवोत्पत्तिर्भवतीति निश्चीयते । इदमत्र तत्त्वम्—

शिष्याणा जीवोत्पत्तिस्थानप्रतीतिं विना सम्यक् समयपालन न स्यादिति हेतोः स्पष्टीकृत्य सकलानि समूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानानि बोधयितुं भगवता तत्तन्नामनिर्देशप्रयत्नोऽङ्गीकृतः, साकल्येन समूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानपरिगणनतात्पर्याभावे तु भगवान्-“सन्वेसु चैव असुइद्वाणेषु” इत्येव व्रयात्, उच्चारमस्रव-

उत्पत्ति होती तो शिष्योंको स्पष्ट बोध करानेके लिए भगवानने जैसे ‘खेलेसु वा वतेसु वा’ इत्यादि अलग अलग नाम गिनाये हैं वैसे ही “सुहजलकणेषु वा” ऐसा और एक सूत्रपाठ रख देते। अतः निश्चित है किमुखसे निकलने वाले जलकणोंमें समूर्च्छिम जीव उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि भगवानने उसे जीवोत्पत्तिका स्थान नहीं बताया है। तात्पर्य यह है कि-

शिष्य जबतक यह न जानलें कि जीवोंके उत्पत्तिस्थान कौन कौन हैं ? तब तक समयका सम्यक् प्रकार परिपालन नहीं कर सकते। इसीसे भगवानने जीवोत्पत्तिके स्थानोंका खुलासा ज्ञान करानेके लिए अलग अलग नाम गिनाये हैं। यदि समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके सब स्थान गिनानेका मतलब न होता तो सिर्फ ‘सन्वेसु चैव असुइद्वाणेषु’ (अशुचि

उत्पत्ति यती होत तो शिष्योंने स्पष्ट बोध कराववाने भगवाने जेभ खेलेसु वा वतेसु वा इत्यादि अलग अलग नाम गण्णाव्या छे तेभ सुहजलकणेषु वा अवे। अेक वधारे सूत्रपाठ राभ्ये होत तेथी करीने निश्चित छे के मुखधी नीकणानारा जलकणोभा समूर्च्छिम अवे। उत्पन्न यता नथी, कारण के भगवाने अेने अवे। उत्पत्तिनुं स्थान गताव्यु नथी

तात्पर्य अे छे के-अ्या सुधी शिष्य जेही न ले के अवे।ना उत्पत्ति स्थान क्या क्या छे, त्या सुधी ते समयनुं सम्यक् प्रकारे परिपालन करी शकते। नथी तेथी भगवाने अवे।उत्पत्तिना स्थानोनुं खुलासाथी ज्ञान कराववाने अलग अलग नामो गण्णाव्या छे जे समूर्च्छिम अवे।नी उत्पत्तिना जधा स्थानो गण्णावानी मतलब न होत तो मात्र सन्वेसु चैव असुइद्वाणेषु (अशुचिना जधा स्थानोभा)

સ્થાનત્વ મુતરા સિદ્ધમિતિ “ સન્વેસુ ચેવ અસુદ્દાણેસુ ” ઇતિ પુનરભિષા-  
નમસદ્ગત વ્યર્થ ચ સ્યાદિતિવાદિનઃ પરાસ્તાઃ, ઉક્તશક્ટાવારણાય તયાઽભિષાન-  
સ્યાઽઽવશ્યકત્વાત્ ।

અયમર્થથ ભગદ્વાક્યાદેવ સ્ફુટીભવતિ, તયાદિ-સર્વેષા મુલ્ખનિર્ગતપદાર્થાનાં  
જીવોત્પત્તિસ્થાનત્વે લાઘવાનુરોધેન “ મુહનિગ્ગણસુ સન્વેસુ ચેવ દન્વેસુ ”  
ઇત્યેવ વક્તવ્યે પુનઃ “ ખેલેસુ વા વંતેસુ વા પિત્તેસુ વા ” ઇતિ તત્તન્નામનિર્દે-  
શપ્રયત્નો ભગવત્કૃતો વ્યર્થઃ સ્યાત્, તસ્માન્નિર્દિષ્ટેતરપદાર્થે જીવોત્પત્તિર્ન ભવતીતિ  
સ્પષ્ટ પ્રતીયતે । અથવા અણીયસ્મુ ભાષણકાલિકેષુ મુલ્ખોત્પતિતજલકળેષુ જીવો-

એસા કહતે હૈં કિ પૂર્વોક્ત અર્થ કરનેસે ‘સન્વેસુ ચેવ અસુદ્દાણેસુ’ કહના  
વ્યર્થ ઓર અસગત હો જાયગા, વે પરાસ્ત હો ગયે । ક્યોંકિ શિષ્યકી  
પૂર્વોક્ત શકાકા નિવારણ કરનેકે લિણ ઉસ કથનકી આવશ્યકતા હૈ ।

યહ અર્થ ભગવાનકે વચનસે હી નિકલતા હૈ, ક્યોંકિ યદિ મુલ્ખસે  
નિકલને વાલે સવ પદાર્થ જીવોત્પત્તિકે સ્થાન હોતે તો સક્ષેપ કરનેકે લિણ  
કેવલ ઇતના કહ દેતે કિ ‘ મુહનિગ્ગણસુ સન્વેસુ ચેવ દન્વેસુ ’ અર્થાત્  
મુલ્ખસે નિકલને વાલે સવ પદાર્થોંમેં સમૃદ્ધિમ જીવ ઉત્પન્ન હોતે હૈં ।  
“ ખેલેસુ વા વંતેસુ વા પિત્તેસુ વા ” હસ પ્રકાર અલગ અલગ ભગવાન ન  
ફરમાતે । હસલિણ સૂત્રમેં નિર્દેશ કિયે હુણ પદાર્થોંકે સિવાય અન્ય કિસી  
પદાર્થમેં જીવોંકી ઉત્પત્તિ નહીં હોતી, યહ યાત સ્પષ્ટ પ્રતીત હોતી હૈ ।  
અથવા યદિ ભાષણ કરતે સમય નિકલે હુણ થોડેસે જલકળોંમેં જીવોંકી

સન્વેસુ ચેવ અસુદ્દાણેસુ કહેલુ વ્યર્થ અને અસ ગત થઈ જશે, તેઓ પરાસ્ત થઈ  
ગયા કારણ કે શિષ્યની પૂર્વોક્ત શકાનુ નિવારણ કરવા માટે એ કથનની  
આવશ્યકતા છે

આ અર્થ ભગવાનના વચનોમાથી જ નીકળે છે કારણ કે એ મુખથી નીકળ  
નારા બધા પદાર્થોં ઉત્પત્તિના સ્થાનો હોત તો સક્ષેપ કરવાને કેવળ એટલુ જ  
કહી દેત કે મુહનિગ્ગણસુ સન્વેસુ ચેવ દન્વેસુ અર્થાત્ મુખથી નીકળનારા બધા  
પદાર્થોંમા સમૃદ્ધિમ હોવો ઉત્પન્ન થાય છે ખેલેસુ વા વંતેસુ વા પિત્તેસુ વા એ  
પ્રમાણે ભગવાન અલગ અલગ કહેત નહિ તેથી કરીને સૂત્રમા નિર્દેશેલા પદાર્થોં  
સિવાય અન્ય કોઈ પદાર્થમા હોવાની ઉત્પત્તિ થતી નથી એ વાત સ્પષ્ટ પ્રતીત  
થાય છે અથવા એ ભાષણ કરતી વખતે નીકળતા થોડા જલકળોંમા હોવાની

त्पत्तौ सत्या भगवता शिष्याणा स्पष्टप्रतिपत्तये- “खेलेसु वा वतेसु वा” इत्यादित्रत् “सुहजलकणेषु वा” इति वाक्येन तेषुपि पृथक्कृत्य निर्देष्टव्याः स्युः, इति मुखजलकणाना भगवदनुक्तत्वान्न तत्र जीवोत्पत्तिर्भवतीति निश्चीयते । इदमत्र तत्त्वम्—

शिष्याणा जीवोत्पत्तिस्थानप्रतीतिं विना सम्यक् समयपालन न स्यादिति हेतोः स्पष्टीकृत्य सकलानि समूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानानि बोधयितु भगवता तत्तन्नामनिर्देशप्रयत्नोऽङ्गीकृतः, साकल्येन समूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानपरिगणनतात्पर्याभावे तु भगवान्-“सन्वेसु चैव असुहृद्वाणेषु” इत्येव ब्रयात्, उच्चारमस्रव-

उत्पत्ति होती तो शिष्योंको स्पष्ट बोध करानेके लिए भगवानने जैसे ‘खेलेसु वा वतेसु वा’ इत्यादि अलग अलग नाम गिनाये हैं वैसे ही “सुहजलकणेषु वा” ऐसा और एक सूत्रपाठ रख देते। अतः निश्चित है कि मुखसे निकलने वाले जलकणोंमें समूर्च्छिम जीव उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि भगवानने उसे जीवोत्पत्तिका स्थान नहीं बताया है। तात्पर्य यह है कि-

शिष्य जतक यह न जानलें कि जीवोंके उत्पत्तिस्थान कौन कौन हैं ? तब तक समयका सम्यक् प्रकार परिपालन नहीं कर सकते। इसीसे भगवानने जीवोत्पत्तिके स्थानोंका खुलासा ज्ञान करानेके लिए अलग अलग नाम गिनाये हैं। यदि समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके सय स्थान गिानेका मतलब न होता तो सिर्फ ‘सन्वेसु चैव असुहृद्वाणेषु’ (अशुचि

उत्पत्ति थती होत तो शिष्येने स्पष्ट बोध कराववाने भगवाने जेभ खेलेसु वा वतेसु वा इत्यादि अलग अलग नाम गणाव्या छे तेभ सुहजलकणेषु वा जेवे जेक वधारे सूत्रपाठ राख्ये होत तेथी करीने निश्चित छे के सुधधी नीकणनारा जलकणोभा स मूर्च्छिम जेवे उत्पन्न थता नथी, कारण के भगवाने जेने जेवे त्पत्तिनुं स्थान गताव्यु नथी

तात्पर्य जे छे के-ज्या सुधी शिष्य जण्णी न वे के जेवोना उत्पत्ति स्थान कया कया छे, त्या सुधी ते समयनुं सम्यक् प्रकारे परिपालन करी शकतो नथी तेथी भगवाने जेवोत्पत्तिना स्थानोनुं खुलासाथी ज्ञान कराववाने अलग अलग नामो गणाव्या छे जे समूर्च्छिम जेवोनी उत्पत्तिना गधा स्थानो गणाववानी मतलब न होत तो मात्र सन्वेसु चैव असुहृद्वाणेषु (अशुचिना गधा स्थानोभा)

णादीनामपशुचिस्थानतयैः तादृशजीवोत्पत्तिस्थानत्वप्रतीतिसिद्धेः, तथा च तत्तदशुचिस्थाननिर्देशस्य वैषम्यापत्तिः । जीवोत्पत्तिस्थानपरिगणनतात्पर्याङ्गीकारे तु क्रियत्स्वशुचिस्थानेषु समूर्च्छिमजीवा उत्पद्यन्ते ? इति जिज्ञासोपशमो न स्यादिति तत्तदशुचिस्थाननिर्देशस्य नानर्थक्य, प्रत्युताऽऽवश्यकतया सार्थक्यमेव, अतएव “ उवत्थिदियनिग्गणसु दब्बेसु वा ” ( उपस्थेन्द्रियनिर्गतेषु द्रव्येषु ) इत्यनु क्त्वा पुनः पुनः—“ पासवणेसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा सोणिएसु वा धीपुरिससजोणसु वा ” इति तत्तन्नाम्ना भगवानुपादिशत्,

के सब स्थानोंमें) इतना ही कह देंते । क्योंकि उचार प्रस्रवण आदि सभी अशुचिस्थान होनेके कारण समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं, यह बात प्रतीतिसे सिद्ध है । ऐसी अवस्थामें अलग-अलग नाम गिनाना अकारय हो जायगा । अगर ऐसा मानें कि जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान गिनानेका मतलब है तो जिज्ञासु शिष्योंका सन्देह तब तक दूर नहीं हो सकता जब तक उन्हें माफ न बता दिया जाय कि किन-किन जगहोंमें समूर्च्छिम जीवोंका जन्म होता है । इसलिए अलग-अलग गिनाना ब्रथा नहीं है, किन्तु आवश्यक होनेसे सार्थक है, इसी कारण “ उवत्थिदिय निग्गणसु वा ” ( उपस्थेन्द्रियनिर्गतेषु ) ऐसा न कहकर चारबार ‘ पास वणेसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा सोणिएसु वा धीपुरिससजोणसु वा ” इस प्रकार हरेकका अलग-अलग नाम गिना कर भगवान्ने कथन किया है । ऐसा कथन न करते तो यह सशय बना रहता

अटवु ७ कही देत जारणु के उन्वार प्रस्रवणु आदि षष्ठा अशुचिस्थानो होवाने कारणे समूर्च्छिम एवोनी उत्पत्तिना स्थान छे, अे वात प्रतीतिथी सिद्ध छे अेवी स्थितिमा अलग अलग नामो गण्णाववा अहेतुक थरु न्तय अगर अेम मानो के एवोनी उत्पत्तिना स्थानो गण्णाववानी मतलब छे तो जिज्ञासु शिष्योना सदेह त्या सुधी दूर नहि थरु शके के न्या सुधी तेभने साइ न गतानी देवामा आवे के कथ कथ न्याओमा समूर्च्छिम एवोना जन्म थाय छे तेथी कहीने अलग अलग गण्णाववु अे वथा नथी, किन्तु आवश्यक होवाथी सार्थक छे अे जारणु उवत्थिदियनिग्गणसु वा ( उपस्थेन्द्रियनिर्गतेषु ) अेम न कहेता चारबार पासवणेसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा सोणिएसु वा धीपुरिससजोणसु वा अे रीते दरेकना अलग अलग नामो गण्णावीने बगवाने कथन करु छे अेषु कथन न करत तो अे सशय पडत के श्री-पुश्पना सलोग विना केवण शुक्शाखित

अथवा “स्त्रीपुरुषसयोगातिरिक्तेषु केवलशुक्रशोणितादिषु समूर्च्छिम-  
जीवा उत्पद्यन्ते न वा ?” इति सशयानपगमे सति मुनीना समयपालन सरुटापन्न  
स्यादिति ।

वस्तुतस्तु भाषणकाले मुखोत्पतिताना जलरूणानामशुचित्वमेव निर्मूलतया  
दुर्बलम्, शास्त्रे प्रज्ञापनासूत्रोक्तेषु चारादिष्वेवाशुचिशब्दप्रयोगदर्शनात्, मुखोत्पतित-  
जलरूणार्थे तत्प्रयोगानुपलब्धे, तथाहि व्यवहारसूत्रभाष्ये तृतीयोद्देशके—

“दब्बे भावे असुई भावे आहारवदणादीहिं” इत्यादिगाथा-(२८६)  
व्याख्यानवसरे—“अशुचिर्द्विधा-द्रव्यतो भावतश्च, तत्र योऽशुचिना लिप्तगात्रो

कि स्त्रीपुरुषके सभोगके सिवाय केवल शुक्र शोणित आदिमें समूर्च्छिम  
जीव उत्पन्न होते हैं या नहीं ? इस प्रकारके सन्देहसे मुनियोंको समय-  
पालन करना मुश्किल हो जाता ।

वास्तवमें मुखसे निकलने वाले जलकणोंको अशुचि कहना ही खोटा  
है, क्योंकि शास्त्रमें प्रज्ञापनासूत्रोक्त उच्चार आदि ही ‘अशुचि’ शब्दसे कहे  
गये हैं, और मुखसे निकलने वाले जलकणके अर्थमें ‘अशुचि’ शब्दका  
प्रयोग नहीं पाया जाता । व्यवहारसूत्रके भाष्यमें, तीसरे उद्देशमें “दब्बे  
भावे असुई” इत्यादि २८६ वीं गाथाका व्याख्यान करते समय कहा है—  
अशुचि दो प्रकारकी है (१) द्रव्य अशुचि और (२) भाव अशुचि ।  
जिस व्यक्तिका शरीर अशुचिसे लिप्त हो अथवा जो विष्टाका त्याग

आदिमा समूर्च्छिम एवो उत्पन्न भवति चे क्वे नहि ? ये प्रकाशना सदेहथी  
मुनिभ्योने समय पालन करवानु मुशुदेव थर्ष पडत

वास्तवमा मुखभावी नीडणनारा नणकणोने अशुचि कडेवा ये जोटु छे,  
कारणु डे शास्त्रमा प्रज्ञापनासूत्रोक्त उच्चार आदिन न अशुचि शब्दथी ओणण  
वामा आव्या छे अने सुभभाधी नीडणनारा नणकणना अर्थमा अशुचि शब्दने  
प्रयोग भणी आवतो नथी व्यवहार सूत्रना भाष्यमा, त्रीन उद्देशमा दब्बे भावे  
असुई इत्यादि २८६ भी गाथानु व्याख्यान कन्ती वपत क्खु डे—

अशुचि ये प्रकारनी छे (१) द्रव्य अशुचि अने (२) भाव अशुचि ने  
व्यक्तितनु शरीर अशुचिथी लेपायलु होय अथवा ने विष्टाने त्याग करीने (नणक

यो वा पुरीपमुत्सृज्य पुतौ न निर्देपयति स द्रव्यतोऽशुचिः” इत्युक्तम्, किञ्च—“ द्रव्ये भावे असुई द्रव्यमि विट्टमादिलित्तो उ । ” इत्यादिगाथा- (२८७) व्याख्यानासरे “अशुचिर्द्विधा द्रव्ये भावे च, तत्र द्रव्ये विष्ठादिना लिप्तः, आदिशब्दान्मूत्रश्लेष्मादिपरिग्रहः ” इत्यभिहितम् । प्रज्ञापनासूत्रोक्ता उचारादय एवाशुचिपदस्यार्थ इत्याशयेनैव प्रकृते द्रव्यभावभेदेन द्विधा विभाजिते ऽप्यशुचिपदार्थे मुखनिर्गतत्रिमुपामनुपादान कृतम् । आवश्यकसूत्रे वन्दनाख्य तृतीयाध्ययने एकादशाधिकैकशततम-( १११ )-गाथाव्यारयाया हरिभद्रसूरिणाऽप्यशुचिस्थानशब्दस्य विद्वप्रधानस्थानार्थस्तमुक्तम् । एवमेव दर्शनशुद्धि-

करके ( दृष्टी जाकर ) मलछार नहीं धोता उस व्यक्तिको द्रव्यसे अशुचि कहते हैं, इत्यादि ।

तथा इसी व्यवहार भाष्यके तीसरे उद्देशकी ‘ द्रव्ये भावे असुई द्रव्यमि विट्टमादिलित्तो उ ” इस २८७ वीं गाथाकी व्याख्या करते समय टीकाकारने कहा है—विष्ठाआदिसे लिप्तको द्रव्य अशुचि कहते हैं । यहाँ आदि शब्दसे मूत्र और श्लेष्म आदिको ग्रहण करना चाहिए, ऐसा कहा है । प्रज्ञापनासूत्रमें कहे हुए उचार आदि ही अशुचि पदका अर्थ है, इसी आशयसे प्रकृतमें द्रव्य भावका भेद कर देने पर भी अशुचि पदार्थोंमें मुखसे निकलने वाले जलकणोंका ग्रहण नहीं किया है ।

आवश्यकसूत्रके वन्दना नामक तीसरे अध्ययनमें हरिभद्रसूरिने १११ वीं गाथाकी व्याख्या करते समय अशुचि शब्दका अर्थ विद्वप्रधान स्थान

बधने) भण्डार नहीं धोता ये व्यक्तिने द्रव्यथी अशुचि कहे छे, इत्यादि

तथा—ये व्यवहारसूत्र भाष्यनी द्रव्ये भावे असुई द्रव्यमि विट्टमादिलित्तो उ ये २८७ वीं गाथानी व्याख्या करती वधते कछु छे—

विष्ठाआदिथी लिप्तने द्रव्य अशुचि कहे छे अर्थात् ‘आदि’ शब्दथी मूत्र अने श्लेष्म आदिनु ग्रहण करवु लेधये येम कछु छे प्रज्ञापनासूत्रमा कहेला उच्यार आदि न अशुचि शब्दने अर्थ छे, ये आशयथी प्रकृतमा द्रव्यभावने लेद करता छता पछु अशुचि पदार्थोंमा सुभथी नीकणता न्यकलेने ग्रहण कर्या नथी

आवश्यक सूत्रना वन्दना नामक तीसरे अध्ययनमा हरिभद्र सूरिने १११ वीं गाथानी व्याख्या करता अशुचि शब्दने अर्थ विद्वप्रधान स्थान - दर्शन

नामके ग्रन्थेऽपि प्रतिपादितम् । उत्तराध्ययनसूत्रे एकोनविंशोऽध्ययने द्वादशगा-  
थाव्याख्याया भावविजयगणिनाऽपि—“अशुचिभ्या=शुक्रशोणिताभ्या सभवम्=  
उत्पन्नम् अशुचिसम्भवम् ” इत्युक्तम् । तत्रैव कमलसयमोपाध्यायेनापि सर्वार्थ-  
सिद्धिटीकायाम्—“ अशुचिसम्भवम् = अशुचिरूपशुक्रशोणितोत्पन्नम् ”—इति  
व्याख्यातम्, सूत्रकृताङ्गे द्वितीयश्रुतस्कन्धे द्वितीयाध्ययने नरकवर्णने पदपठितम-  
( ६६ ) सूत्रे—‘ असुई ’ इत्यस्य टीकायाम्—“ अशुचयो विष्टासृक्खलेदप्रधान-  
त्वात् ” इति शीलाङ्गाचार्येण कथितम् । ह्रैद’ प्रस्वेदः ( पसीना ) इति हिन्दी-  
शब्दसागरकोशः । स च मुखजगद्धिन्न इत्यतिरोहितमेव सर्वेषाम् । प्रस्वेदेऽपि

क्रिया है । दर्शनशुद्धि नामक ग्रन्थमें भी ऐसा ही प्रतिपादन क्रिया है ।  
उत्तराध्ययनसूत्रमें उन्नीसवें अध्ययनकी चारहवीं गाथाकी व्याख्या करते  
समय भावविजयगणिने कहा है—“अशुचिभ्या=शुक्रशोणिताभ्या सभवम्=  
उत्पन्नम् अशुचिसम्भवम् ।” इसी सूत्रकी सर्वार्थसिद्धि नामक टीकामें कमल-  
सयम उपाध्यायने ऐसा व्याख्यान किया है—“ अशुचिसम्भवम्=अशुचि-  
रूप शुक्रशोणितोत्पन्नम् ।

सूत्रकृताङ्गसूत्रमें द्वितीय श्रुतस्कन्धके द्वितीय अध्ययनमें नरकके  
वर्णनमें ६६ वें सूत्रमें ‘ असुई ’ पदकी टीकामें शीलाङ्गाचार्यने कहा है—  
“अशुचयो विष्टासृक्खलेदप्रधानत्वात् ।” यहाँ ह्रैद पसीनाको कहा है ।  
यह बात सत्रको विदित ही है कि मुग्धसे निकलने वाले जलकण और  
पसीना एक नहीं हैं दोनों अलग-अलग हैं । पसीनेमें भी समूर्च्छिम जीव  
उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि समूर्च्छिम जीवोंके उत्पत्ति-स्थानोंकी गिनती

शुद्धि नामक ग्रन्थमा पद्य खेपु न प्रतिपादन कथुं छे उत्तराध्ययन सूत्रमा १८  
मा अध्ययननी गारमी गावानी व्याख्या करता लावविजयगणिये कछु छे डे-  
अशुचिभ्या = शुक्रशोणिताभ्या सभवम् = उत्पन्नम् अशुचिसम्भवम् । आ सूत्रनी  
मवार्थसिद्धि नामक टीकामा कमलसयम उपाध्याये खेपु व्याख्यान कथुं छे डे-  
अशुचिसम्भवम्=अशुचिरूप-शुक्रशोणितोत्पन्नम् ।

सूत्रकृताङ्ग सूत्रमा द्वितीय श्रुतस्कन्धना जीव अध्ययनमा नरकना वर्णनमा  
६६ मा सूत्रमा असुई शब्दनी टीकामा शीलाङ्गाचार्ये कछु छे डे अशुचयो विष्टासृक्-  
खलेदप्रधानत्वात् । अही शब्द पसीनां कछो छे खे वात यी लखे छे डे मुखथी  
नीजगता नजगत्पु अने पसीना खेक नवा-खेड न्यू-न्यूडा छे पसीनामा पद्य  
समूर्च्छिम खेपु उत्पन्न यता नथी, कारण डे समूर्च्छिम खेपुना उत्पत्ति-



न समृद्धिमजीयोत्पत्तिः, तत्परिगणने तस्यानुक्तत्वात्। पिण्डनिर्युक्तौ च पूतिकर्मदोषभेदस्य द्रव्यपूतेरुदाहरणे अशुचिगन्धशब्दस्य पुरीषगन्धार्थकत्वं निगदितम्। मानवधर्मशास्त्रेऽपि भाषणकालिकमुखोद्गतत्रिमुपा मेध्यत्वमेवोक्तं नत्त्वशुचित्वं, यथा मनुस्मृतौ पञ्चमाध्याये—

“ मक्षिका विप्रुपश्छाया, गौरश्वः सूर्यरश्मयः ।

रजो भूर्वायुरग्निश्च, स्पर्शं मेध्यानि निर्दिशेत् ॥ ५ ॥” १३३ ॥ इति ।

किञ्च दोरकाश्रयणमेव हिंसानिदानं मत्वा हस्तेन शिरःपश्चाद्भागे ग्रथिता नेन वा मुखवस्त्रिका धारयताऽपि भाषणकालिकमुखोत्पत्तितजलकणेषु समृद्धिमजीयोत्पत्तिस्थानत्वाभासोपपादनाय प्रकृतोपात्तानि प्रमाणान्यस्य शरणीकरणीयानि,

करते समय भगवान्ने पसीना नहीं कहा है। पिण्डनिर्युक्तिमें पूतिकर्म दोषके भेद द्रव्यपूतिके उदाहरणमें ‘अशुचिगन्ध’ शब्दको विष्ठा गन्ध वाले अर्थमें प्रयोग किया है।

मानवधर्मशास्त्रमें भाषण करते समय निकलने वाले जलकणोंको अशुचि नहीं कहा है। मनुस्मृति पाँचवाँ अध्याय—

“ मक्षिका विप्रुपश्छाया, गौरश्वः सूर्यरश्मयः ।

रजो भूर्वायुरग्निश्च, स्पर्शं मेध्यानि निर्दिशेत् ॥” १३३ ।

डोरा धारण करनेको ही हिंसाका कारण मान कर हाथसे अथवा सिरके पीछे गाठ लगा कर मुखवस्त्रिका धारण करने वालोंको भी इन प्रमाणोंकी शरण लेनी चाहिए, जो यह बतानेके लिए यहाँ दिये गये हैं कि भाषण करते समय मुखसे निकलने वाले जलकणोंमें समृद्धिम जीव स्थानोत्पत्ति गणुत्री उरती वपते लगवाने पसानी कहेये नहीं पिण्डनिर्युक्तिमा पूतिकर्मदोषना लेह द्रव्यपूतिना उदाहरणमा अशुचि-गन्ध शब्दने विष्ठा-गन्धवाणा अर्थमा प्रयोग कर्था छे

मानवधर्मशास्त्रमा लाषणु उरती वपते नीकणता न्णकणुने अशुचि क्खामा नहीं मनुस्मृतिना पायमा अध्यायमा क्खु छे—

मक्षिका विप्रुपश्छाया, गौरश्वः सूर्यरश्मयः ।

रजो भूर्वायुरग्निश्च, स्पर्शं मेध्यानि निर्दिशेत् ॥ १३३ ॥

दोरा धारणु करवाने न् हिंसानु करणु मानीने हाथथी अथवा शिरनी पाछण गाठ वाणीने मुखवस्त्रिका धारणु करनाशब्दोत्पत्ति पणु आ प्रमाणुनु शरणु लेखु लेहथे, ले थे णताववाने माटे अही आपवामा आप्या छे ते-लाषणु उरती वपते सुपथी निकणता न्णकणुमा समृद्धिम एव उत्पन्न नहीं थता, अन्यथा व्याप्यान

अन्यथा तेषामपि धर्मोपदेशकाले द्वित्रहोरापर्यन्त भाषणे मुखोपरि मुखवस्त्रिकाधारणस्याऽऽवश्यकतया तत्र मुखोत्पतितजलरुणैरार्द्रतापत्तिर्वारयितुमशक्यैव, लोके हि अनाहतमुखेन पुस्तक पठता पर प्रति द्रुवता च मुखत्रिमुपः पुस्तके परदेहे च पतन्त्यो लक्ष्यन्ते, पुनः समीतरवर्त्तिमुखवस्त्रिकाया न ताः पतिष्यन्तीति कल्पना किं दुराग्रह नावेदयेदित्यलम् ।

नन्वेव सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवविराधनापरिहारार्थमेव यदि सदा सदीरन्मुखवस्त्रिकाग्रन्धने सावधानता विधीयते तर्हि भोजनकाले तदपसारणावश्यकतया कथं तादृशजीवविराधनापरिहारः ? इति चेच्चित्तमवधेहि ।

उत्पन्न नहीं होते । अन्यथा धर्मोपदेश देते समय वे दो-दो तीन तीन घण्टे बोलते हैं उस समय मुखवस्त्रिका धारण करना आवश्यक होनेके कारण मुखसे निकलने वाले जलकणोंसे मुखवस्त्रिका गीली हो जायगी और इस आपत्ति का निवारण करना शक्य नहीं है ।

लोकमें खुले मुँह पुस्तक पढ़नेवालोंके तथा दूसरोंसे वार्तालाप करने वालोंके मुखसे जलकण निकल कर पुस्तक पर तथा दूसरेकी देह पर गिरते हुए देखे जाते हैं । फिर मुखके पास ही रहनेवाली मुखवस्त्रिका पर कण नहीं गिरेगे, ऐसी कल्पना करना दुराग्रहको ही प्रगट करता है ।

प्रश्न-सूक्ष्म, व्यापी, सपातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी विराधनासे रूचनेके लिए ही यदि सदा डोरा सहित मुखवस्त्रिका बाँधनेमें सावधानी रखी जाती है तो भोजन करते समय उन जीवोंकी विराधनासे कैसे बच सकते हैं ? क्योंकि उस समय मुखवस्त्रिका खोल लेना आवश्यक है ।

वायवी वधते ण्मे त्रलु-त्रलु कलाक सुधी णोले छे, त्यारे भुभवस्त्रिका धारण करवी आवश्यक होवाधी भुभधी नीकणता जलकणुधी भुभवस्त्रिका बीनी यध जशे अने अे आपत्ति निवारवानु शक्य नथी

दोडोभा भुत्थे भुभे पुस्तक वाचनारना तथा णीज्जणे साथे वार्तालाप करनारना भुभभाधी जलकणु नीकणीने पुस्तक पर तथा णीज्जना शरीर पर पडता नेवामा आवे छे तो पछी भुभनी पासे ज रहनेवारी भुभवस्त्रिका पर कणु नहि पडे, अेवी कटपना करवी अे दुराग्रहने प्रकट करे छे

प्रश्न-सूक्ष्म, व्यापी, सपातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी विराधनाधी गन्धवाने माटे ज ने सदा डोरा साथे भुभवस्त्रिका बांधवामा सावधानी राखवामा आवे छे तो भोजन वन्ती वधते अे जीवोंकी विराधनाधी डेवी शीते णथी शक्य ? कारण के अे वधते भुभवस्त्रिका छोडी नाखवानी जरूर पडे छे

अत्रैव चतुर्थाध्ययने- “जय भुजतो भासतो पाव कम्म न बधइ” इति भगवताऽभिहितम्, प्रागुक्तरीत्या मुखवस्त्रिकापन्धनस्याऽऽवश्यकत्वेऽपि तदपसारणमन्तरेण ‘भुजतो’ इति पदतोऽप्याया भोजनक्रियाया अनुपपत्त्या भोजनकाले मुनिना मुखवस्त्रिका मोचनीयेति गम्यते, अत एवात्र-‘जय भुजतो’ इत्यस्य यथाकल्पलब्धान्तमात्ताप्रेषाशनमण्डलदोषवर्जनपूर्वकमभ्यवहरमाणः’ इत्येवाशयो न तु मुखवस्त्रिका बद्धैव भुञ्जान इति, तथा चोक्तयतनापूर्वकभोजनकाले मुखवस्त्रिकापसारणमागमानुकूलमेवेति न तस्य पापकर्मपन्धनहेतुत्वम्, अनेनैवाऽऽ

१ ‘पूर्वोक्तप्रमाणानुसारेण’ इत्यर्थः ।

उत्तर-चित्त लगाकर सुनो। इसी (दशवैकालिक) के चौथे अध्ययनमें भगवान् ने कहा है “जय भुजतो भासतो पाव कम्म न बधइ।” अर्थात् यतनापूर्वक आहार करने और भाषण करनेसे पापकर्मका बन्ध नहीं होता है। पहले कहे गये प्रमाणोंसे मुखवस्त्रिका बाधना सिद्ध होने पर भी उसके निकाले बिना ‘भुजतो’ पदसे बोध्य भोजनक्रिया नहीं हो सकती। इससे ऐसा तात्पर्य निकलता है कि भोजन करते समय मुनिको मुख वस्त्रिका हटा देनी चाहिये। अतः ‘जय भुजतो’ पदका “कल्पके अनुसार प्राप्त हुआ अन्त प्रान्त आदि आहार मण्डलदोषोंका त्याग करके भोगता हुआ” ऐसा अर्थ समझना चाहिए। ऐसा नहीं कि मुखवस्त्रिका बाँधे-बाँधे आहार करे। अत एव उक्त-यतना पूर्वक भोजनकालमें मुख वस्त्रिका त्याग देना आगमके अनुकूल है, अतः उससे पापकर्मका बन्ध

उत्तर-चित्त राणीने साबणो येना (दशवैकालिकना) च यथा अध्ययनमा भगवाने कथु छे के जय भुजतो भासतो पाव कम्म न बधइ अर्थात् यतनापूर्वक आहार करवाधी पापकर्मना ण ध थतो नथी पूर्वोक्त प्रमाणोधी मुखवस्त्रिका बाधधी ये निद्ध थया छता पळु येने काढी नाण्या विना भुजतो गण्ठधी बोध्य लोचन क्रिया थध शकती नथा तेधी येवु तात्पर्य नीकणे छे के लोचन करती वणते, मुनिचे मुखवस्त्रिका हटावी देवी लेधये येटले जय भुजतो पदने अर्थ ‘कल्पने अनुसार प्राप्त थयेले अत प्राप्त आदि आहार मण्डल-दोषोना त्याग करीने लोचवता” ये प्रमाणे समजये लेधये येम न समजवु लेधये के मुखवस्त्रिका बाधी राणीने आहार करे येटले उक्त-यतनापूर्वक लोचनकाणमा मुखवस्त्रिकाने त्याग करये ये आगमने अनुकूल छे, तेधी पापकर्मना ण ध थतो नथी

शयेन च—“ पाव कम्म न वधइ ” इत्युक्त भगवता ।

एव च भगवत्तीर्थङ्करगणधरादिप्रचनपर्यालोचनेन निरवशेषसंशयतिमिराप-  
गमपुरस्सर प्रकाशमाने मानसे वायुकायादिविराधनापरिहाराय सदोरकमुखवस्त्रिका-  
वन्धन साहार्द स्थानमासादयति । रागद्वेषदोषाकलितचेतसा भगवद्वचनामृत-  
रसास्वादप्रश्रिताना विविधसशयपराहते चेतसीममर्थ दुर्लक्ष्यमभिलक्ष्य हस्तदुष्प्राप्य-  
मर्थमाकलयितु सोपानमिवालम्बन तेभ्यः पुरस्कर्तुं सप्रमाणमेतत् सम्यगुपपादितम् ।

नहीं होता । इसी आशयसे भगवान्ने ‘ पाव कम्म न वन्धइ ’ कहा है ।

इस प्रकार भगवान् तीर्थङ्कर गणधरादिकोंके वचनोंकी पर्यालोचना करनेसे सकलसशयरूप अन्धकारके दूर हो जानेके कारण प्रकाशमान ऐसे हृदयमे वायुकाय आदि की विराधनाका दोष टालनेके लिए दोरासहित मुखवस्त्रिकाका वान्धना आल्हादपूर्वक स्थानको धारण करता है ।

रागद्वेषरूपी दोषसे दूषित भगवद्वचनामृतके रसास्वादसे वश्रित पुरुषोंके अनेक दुर्विकल्पोंसे पराहत हुए चित्तमे इस अर्थको दुर्लक्ष्य समझकर उनके लिए हाथसे न प्राप्त होनेवाली वस्तुकी प्राप्तिके लिए सोपान (सीढ़ी) की तरह आलम्बन अगाडी रखकर यह सब सप्रमाण प्रतिपादित किया गया है ।

ये आशयथी भगवाने पाव कम्म न वधइ उछु छे

ये प्रकारे भगवा १ तीर्थं कर गणधरादिना वचनोनी पर्यालोचना करवाथी सकल सशयइय अंधकार इर थयं बनाने लीधे प्रकाशमान येवा हृदयभा, वायुकाय आदिनी विराधनाने दोष टालवाने माटे दोरासहित मुखवस्त्रिकानु आधु ते आल्हादपूर्वक स्थानने धारणु करे छे

रागद्वेष इपी दोषथी दूषित, भगवद्वचनामृतना रसास्वादथी वश्रित येवा पुरुषोना अनेक दुर्विकल्पोथी पराहत येवा चित्तभा आ अर्थने दुर्लक्ष्य समझने तेभने माटे हाथथी न प्राप्त थनारी वस्तुनी प्राप्तिने माटे सोपान (सीढ़ी)ना नेवु आलम्बन आगण राणीने आ आधु सप्रमाण प्रतिपादित करवामा आण्यु छे

अत्र प्रमाणतयोपन्यस्तग्रन्थनामानि विनिययुद्धिभैमल्याप निर्दिश्यन्ते—

- |                                     |                               |
|-------------------------------------|-------------------------------|
| (१) श्री-भगवतीसूत्रम् ।             | (१५) निगीधसूत्रम् ।           |
| (२) हितशिक्षारासः ।                 | (१६) बृहत्कल्पभाष्यम् ।       |
| (श्रावकसूत्रपभदासकृतः)              | (१७) घ्यप्रहारभाष्यम् ।       |
| (३) हरिवलमच्छीरासः                  | (१८) आचाराङ्गसूत्रम् ।        |
| (मुनिलब्धिविजयकृतः)                 | (१९) त्रिपात्रसूत्रम् ।       |
| (४) योगशास्त्रम् (हेमचन्द्राचार्य०) | (२०) सामाचारी ।               |
| (५) ओघनिर्युक्तिः ।                 | (देवचन्द्रमुरिकृता)           |
| (६) प्रवचनसारोद्धारः ।              | (२१) प्रज्ञापनासूत्रम् ।      |
| (७) प्रकरणरत्नाकरः ।                | (२२) भावमकाशः ।               |
| (१०) उत्तराध्ययनसूत्रटीकाः ३ ।      | (२३) सुश्रुतसहिता ।           |
| (१) सर्वार्थसिद्धिटीका ।            | (२४) योगचिन्तामणिः ।          |
| (२) भावविजयकृतवृत्तिः ।             | (२५) माधवनिदानम् ।            |
| (३) पाईटीका ।                       | (२६) त्रिब्वअरुन्वर ।         |
| (११) विशेषावश्यकबृहद्दृष्टिः        | (२७) शरीरविज्ञानम् ।          |
| (१२) अन्तकृद्दशाङ्गम् ।             | (२८) मानवधर्मशास्त्रम् ।      |
| (१३) आवश्यकसूत्रटीका ।              | (२९) पिण्डनिर्युक्तिः ।       |
| (हारिभद्रीया)                       | (३०) सूत्रकृताङ्गम् ।         |
| (१४) ज्ञाताधर्मरुथाङ्गम् ।          | (३१) दशवैकालिकसूत्रम् । इति । |

॥ इति मुखवस्त्रिकाविचारः ॥

यहां विनीत शिष्यकी बुद्धिका विकाशके लिए प्रमाणरूपसे दिये गये ग्रन्थोंकी कुछ नामावली संस्कृत टीकामे दी गई है, पाठकगण वहां देख लें ॥

॥ इति मुखवस्त्रिकाविचार ॥

अही विनीत शिष्यकी बुद्धिना विकासने भाटे प्रमाणरूपसे दिये गये ग्रन्थोंकी नामावली संस्कृत टीकामे दी गई है, त्याची पाठकांज्ये नेह देखी

इति मुखवस्त्रिकाविचार

### तपः

तपः=तपति-ज्ञानावरणीयाद्यष्टविध कर्म दहतीति तपः, तच्च बाह्याभ्यन्तर-भेदाद्द्विधा, तत्र बाह्य तपः पङ्क्तिवत्, तथा चोक्तम्—

“अणसणमूणोयरिया, भिक्वायरिया य रसपरिच्चाओ ।

कायक्किलेसो सलीणया य वज्झो तवो होइ ॥ १ ॥” इति ।

छाया—“अनशनमूनोदरिका, भिक्षाचर्या च रसपरित्यागः ।

कायक्केशः सलीनता च, बाह्य तपो भवति ॥ १ ॥”

(१) अनशन=चतुर्थभक्तादिपाण्मासिकान्त यावज्जीवन वाऽशेषाहारपरिहारः ।

### । तप ।

जिससे ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म भस्म हो जावें उसे तप कहते हैं । वह दो प्रकारका है—(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर । बाह्य तप छह प्रकारका है—

(१) अनशन, (२) ऊनोदरी, (३) भिक्षाचर्या, (४) रसपरित्याग, (५) कायक्केश, (६) सलीनता ।

(१) अनशन=इहलोक परलोक सम्यन्धी कामनारहित चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त, अष्टमभक्त आदि छहमासी तप पर्यन्त, अथवा यावज्जीवन सपूर्ण आहारका परित्याग करना अनशन तप कहलाता है ।

### तप.

येथी ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म भस्मीभूत श्च ज्ञय तेने तप कडे छे तप जे प्रकारने छे (१) बाह्य अने (२) आभ्यन्तर बाह्य तप छे प्रकारने छे—(१) अनशन, (२) ऊनोदरी, (३) भिक्षाचर्या, (४) रसपरित्याग, (५) कायक्केश, (६) सलीनता

(१) अनशन—इहलोक परलोक सम्यन्धी कामना रहितपण्णे, चतुर्थ भक्त, षष्ठ भक्त, अष्टम भक्त (सणग ओक उपवास, जे उपवास, त्रणु उपवास) आदि छे भासी तप सुधी अथवा जिवनपर्यंत स पूर्ण आहारने परित्याग करवे ओ अनशन-तप कडेवाय छे

(२) जनोदरिका=यागताऽद्यादिनोदर परिपूर्यते तत्र फलमात्रमपि न्यूनयित्वा ऽभ्यवहरणम् । (३) भिक्षाचर्या=स्नाभ्यायागिरोधियथाविधिप्रिशुद्धभिक्षाकृते चरणम् (४) रसपरित्यागः=दुग्धादिप्रिकृतित्यागः । (५) कायक्लेशः=शीतोष्णादि-सहिष्णुत्व केशलुञ्चन च । (६) सलीनता=स्त्रीपशुपण्डररहितवसती वर्मवदङ्गो-पाङ्गाद्याकुञ्चनपूर्वमास्थानम् ।

(२) जनोदरी=जितने अन्नसे उदरकी पूर्ति हो जाती है उससे एक ग्रास भी कम आहार करनेको जनोदरी तप कहते हैं । इससे स्वाध्याय, ध्यान आदि क्रियाएँ अच्छीतरह निभती हैं ।

(३) भिक्षाचर्या=जिससे स्वाध्याय, ध्यान आदि क्रियाओंमें विघ्न न आवे, इसप्रकार शास्त्रानुकूल विधिसे विशुद्ध भिक्षाके लिए पर्यटन करना भिक्षाचर्या तप कहलाता है ।

(४) रसपरित्याग=दूध, दही, घृत, तेल, मीठेका त्याग करनेको रस परित्याग कहते हैं ।

(५) कायक्लेश= शीत, उष्ण आदिका सहन करना, अथवा केशलोच करनेको कायक्लेश तप कहते हैं ।

(६) सलीनता=स्त्री-पशु-पण्डकरहित वसतीमें कछुवेकी तरह अङ्गो पाङ्ग, सकुचित करके स्थित होना सलीनता तप कहलाता है ।

(२) जनोदरी—येटला अन्नथी उदर भराय तेथी ओक डोणियो मात्र पशु ओठो आहार करयो ते जनोदरी तप कडेवाय छे तेथी स्वाध्याय, ध्यान, आदि क्रियाओनो सारी रीते निभाव थाय छे

(३) भिक्षाचर्या—तेथी स्वाध्याय, ध्यान आदि क्रियाओभा विघ्न न आवे, ओ प्रकारे शास्त्रानुकूल विधिथी विशुद्ध भिक्षाने भाटे पर्यटन करतु ओ भिक्षाचर्या तप कडेवाय छे

(४) रसपरित्याग—दूध, दही, घी, तेल, मीठेओनो त्याग करयो ओने रसपरित्याग कडे छे

(५) कायक्लेश—ठंड, ताप, आदिने सहन करवा अथवा केशलोच करयो ओ कायक्लेश तप कडेवाय छे

(६) सलीनता—स्त्री-पशु-पण्डक-रहित वसतीमा (स्थानमा) कायणानी पडे अणोपाग सकोथीने रहेतु ते सलीनता तप कडेवाय छे

आभ्यन्तरमपि तपः पद्विध, तथा चोक्तम्—

“ प्रायश्चित्तं त्रिणभो वैयावृत्तं तदेव सज्जाओ ।

ब्राह्मणं च विदस्सग्गो एसो अर्भितरो तवो ॥ १ ॥ ” इति ।

छाया—“ प्रायश्चित्तं त्रिणयः, वैयावृत्त्यं तथैव स्वाध्यायः ।

ध्यानं च व्युत्सर्गः, एतदाभ्यन्तरं तपः ॥ १ ॥ ”

तत्र (१) प्रायश्चित्तम्—उपचिताऽतीचारशोधन, यथाऽऽलोचनाप्रतिक्रमणादि ।

(२) त्रिणयः=गुर्वाचाराधन, यथाऽभ्युत्थानाऽऽसनप्रदानाभिवादनतन्मनोऽनुकूल-  
प्रवृत्त्यादि । (३) वैयावृत्त्यं=साधुनामशनपानान्पानयनादिना साहाय्यकरणम् ।

(४) स्वाध्यायः=श्रुतधर्मारोधन, स च वाचना-पृच्छना-परिवर्तनाऽनुपेक्षा-धर्म-

आभ्यन्तर तपके भी छह भेद हैं—(१) प्रायश्चित्त, (२) त्रिणय,

(३) वैयावृत्त्यं, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान, (६) व्युत्सर्ग ।

(१) प्रायश्चित्त=लगेहुए अतिचारोकी विगुद्धि करना प्रायश्चित्त तप है,  
जैसे आलोचना, प्रतिक्रमण आदि करना ।

(२) त्रिणय=गुरु आदिकी आराधना करना त्रिणय है । गुरु आदिके  
आने पर खड़ा होना, आसन देना, वन्दना करना, उनके मनके अनुकूल  
प्रवृत्ति करना आदि अनेक प्रकारका त्रिणय होता है ।

(३) वैयावृत्त्यं=अशन पान आदि लाकर मुनियोंको सहायता पहुँचाना  
वैयावृत्त्यं (वैयावृत्त) तप कहलाता है ।

(४) स्वाध्याय=श्रुतज्ञानकी आराधना करना स्वाध्याय है । स्वाध्यायके  
पाँच भेद हैं—(१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्तना, (४) अनुपेक्षा

आभ्यन्तर तपना पणु छ लेहो छे (१) प्रायश्चित्त, (२) त्रिणय, (३) वैया  
वृत्त्यं, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान, (६) व्युत्सर्ग

(१) प्रायश्चित्त—लागेला अतिचारोकी विगुद्धि करवी ओ प्रायश्चित्त तप  
छे, जेभडे आलोचना, प्रतिक्रमण वगेरे करवा

(२) त्रिणय—गुरु आदिनी आराधना करवी ओ त्रिणय छे गुरु आदि  
आवे त्पारे जिला थपु, आसन आपपु, वन्दना करवी, ओमना मनने अनुकूल  
प्रवृत्ति करवी वगेरे अनेक प्रकारे त्रिणय थाय छे

(३) वैयावृत्त्यं—अशन पान आदि लावीने मुनिओने सहाय आपवी  
आदि वैयावृत्त्यं (वैयावृत्त) तप उहेवाय छे

(४) स्वाध्याय—श्रुतज्ञाननी आराधना करवी ओ स्वाध्याय छे स्वाध्यायना  
पाँच लेहो छे (१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्तना, (४) अनुपेक्षा,



કથાભેદાત્ પञ्चविधः । (૫) ધ્યાનમ્=પરુમાત્રાચલમ્બનેન પવનાસપૃક્તદીપન્નિભાયા  
 इव चित्तस्य स्थिरीकरणम् ।

यद्यपि तच्चतुर्विधम् आर्त-रौद्र-धर्म-शुक्रभेदात्, तथापि धर्म-शुक्र लक्षण  
 द्वयमेवोपादेय पूर्वद्वयस्य कर्मबन्धहेतुत्वात् । (६) व्युत्सर्गः=कायादिसंचालन

और (५) धर्मकथा ।

शिष્યોંકો આગમ પદ્ધાનેકો 'વાચના' કરતે છે । સદ્ભાવસે સશય દૂર  
 करनेके लिए, अथवा तत्त्वका निश्चय करनेके लिए पूजना 'पूछना'  
 कहलाता है । शुद्ध उच्चारण करके वार-वार मनन करना 'अनुप्रक्षा' है ।  
 धर्मकी चर्चा या उपदेश करनेको 'धर्मकथा' कहते हैं ।

(૫) ધ્યાન=વાયુકે સ્પર્શ નહીં હોનેસે જૈસે દીપકકી જ્યોતિ સ્થિર  
 हो जाती है, वैसेही मनको किसी एक विषयमें स्थिर करलेनेको ध्यान  
 कहते हैं । ધ્યાન યદ્યપિ આર્ત, રૌદ્ર, ધર્મ ઓર શુક્ર ભેદસે ચાર પ્રકારકા  
 है, तथापि यहाँ धर्म और शुक्र ये दो शुभ ध्यान ही उपादेय हैं, यही  
 दोनों तपमें अन्तर्गत हैं, पहलेके दो अशुभ ध्यान कर्मबन्धनके कारण हैं ।

(૬) વ્યુત્સર્ગ=કાયા આદિકે વ્યાપારકો, તથા કષાય આદિકો ત્યાગ  
 कर उपयोगसहित रहनेको 'व्युत्सर्ग' कहते हैं ।

અને (૫) ધર્મકથા

શિષ્યોને આગમ ભણાવવા અને પોતે ભણવું એ વાચના કહેવાય છે સદ્ભાવ  
 पूर्वक सशय हूर करवा भाटे, अथवा तत्त्वको निश्चय करवा भाटे पूछा करवी-  
 पूछवु એ પૂછના કહેવાય છે શુદ્ધ ઉચ્ચારણ કરીને વારવાર આવૃત્ત કરવું તે  
 परिवर्तना कहेवाय છે ભણેલા અર્થનું વારવાર મનન કરવું એ અનુપ્રેક્ષા છે  
 धर्मकी चर्चा अथवा उपदेश करवो એ ધર્મકથા કહેવાય છે

(૫) ધ્યાન—વાયુનો સ્પર્શ નહિ થવાથી જેમ દીવાની જ્યોત સ્થિર રહે  
 છે, તેવી રીતે મનને કોઈ એક અલબ્ધનમાં સ્થિર કરી લેવું એ યાન કહેવાય છે  
 ધ્યાન આત, રૌદ્ર, ધર્મ અને શુકલ એવા ભેદે કરીને ચાર પ્રકારનો છે, તે પછી  
 આડી ધર્મ અને શુકલ એ બે શુભ યાન જ ઉપાદેય છે એ બે યાન તપમાં  
 અતર્ગત છે, પહેલા બે અશુભ ધ્યાન કર્મબંધના કારણ છે

(૬) વ્યુત્સર્ગ—ગયા આદિના વ્યાપારને તથા કષાય આદિને ત્યજીને  
 उपयोग सहित रहवु એ વ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે

निवृत्तिपूर्वकसोपयोगावस्थानम् । एव वाद्याभ्यन्तरभेदेन द्वादशविध तपः सिद्धम् ।

ननु अहिंसा-सयम-तपः-स्वरूपस्य वर्मस्योत्कृष्टमङ्गलत्व प्रतिपाद्यते तत्र तपसोऽनशनादिलक्षणदुःखरूपत्वेन मोक्षहेतुत्व न प्राप्नोति, तद्धि अशातवेदनीय-कर्मोदयात्मकम्, भगवताऽपि क्षुत्पिपासादयः परीपहा वेदनीयकर्मोदयस्वरूपत्वे-नाऽभ्यधायिपत ।

कर्मक्षयो हि यद्यपि मोक्षाद्भवेन श्रूयतेऽपि शास्त्रे, कर्मोदयस्य तु न क्वचिन्मोक्ष-हेतुत्व शास्त्रे लोके वा प्रथितम् । एव सति तस्योत्कृष्टमङ्गलात्मकधर्मरूपत्वकथन-मयुक्तम् ।

इस प्रकार बाह्य और आभ्यन्तरके भेद मिलकर तपके सब धारह भेद होते हैं ।

प्रश्न—अहिंसा, सयम और तपरूप धर्मको उत्कृष्ट मंगल बतलाया है, लेकिन अनशन आदि तप भोजन आदिका त्याग करनेसे होते हैं, इसलिए वे दुःख हैं और दुःख मोक्षका कारण नहीं हो सकता, क्योंकि दुःख असातवेदनीय कर्मके उदयसे होता है । भगवान्ने भी यही प्रतिपादन किया है कि—“क्षुधा पिपासा आदि परिपह वेदनीय कर्मके उदयसे होते हैं ।” कर्मका क्षय तो मोक्षका कारण हो सकता है, परन्तु यह कहीं नहीं सुना कि कर्मका उदय भी मोक्षका कारण है । यह बात न किसी शास्त्रमें है और न लोकमेंही प्रसिद्ध है, इसलिए जब कि तप, कर्मोदय-जन्य होनेसे मोक्षका कारण नहीं हो सकता तो उसे उत्कृष्ट मंगल क्यों

ये प्रमाणे बाह्य अने आष्यतरना लेह भणीने तपना अेकद्वर धार लेह थाय छे

प्रश्न—अहिंसा, सयम अने तप रूप धर्मने उत्कृष्ट मंगल बतलावेले छे, परन्तु अनशन आदि तप लोअनादिने त्याग करवाथी थाय छे, तेथी अे इ ध छे अने इ ध मोक्षनुं कारण थछ शकतु नथी, कारण के इ ध असाता वेदनीय कर्मना उदयथी उत्पन थाय छे लगवाने पणु अेभ न प्रतिपादन कथुं छे ते—“लूभ तरस आदि पण्ड वेदनीय कर्मना उदयथी न थाय छे” कर्मना क्षय तो मोक्षनुं कारण होछ शके छे परन्तु अेवुं थाय साभणु नथी ते कर्मना उदय पणु मोक्षनुं कारण छे अे वात उेछ शास्त्रमा नथी तेभन लोअमा प्रसिद्ध नथी, तेथी ने तप कर्मोदयजन्य होछने मोक्षनुं कारण थछ शकते नथी तो

दुःखरूपत्वेन तपसो मोक्षसाधनस्वीकारे तु व्याधिनाऽऽतुरस्य, राजदण्डेन  
 -तस्करस्य, कशादिघातेनाग्नादेः, दशविधक्षेत्रवेदनया नारमणा, श्वासोच्छ्वास  
 मात्रप्रमितकालेऽपि सार्द्धसप्तदशमितजन्ममरणनिमित्तकाऽनन्तघोरवेदनायुक्ताना  
 निगोदजीवाना च मोक्षापत्तिः, तेषामपि भयद्रभिमत्तमोक्षहेतुदुःखसद्भावादिति ।  
 क्रिञ्चालमेतेन विशेषविचारेण जन्मजरामरणेष्ट्रियोगाऽनिष्टसयोगाद्यनेक-  
 विधदुःखयुक्ताः सर्व एव ससारिण इत्यविशेषेण सर्वेषा मोक्षापत्तिः स्यात् ।

एतदुक्त भवति-तप' समाचरत' श्रुत्विपासादयः समुद्रान्ति, ततश्च प्रवृ

कहा है ? यदि दुःखरूप तपको मोक्षका कारण मानलिया जाय तो अनेक  
 दोष आते हैं, वे ये हैं कि-जो पुष्प रोगसे अत्यन्त पीड़ा पारहा है उसे  
 मोक्ष होजाना चाहिये, राजदण्डसे दुःख भोगनेवाले चोर डाकुओंको  
 मोक्ष होना चाहिए, घोड़ोंपर कोहोंकी मार पढती है, वे दुःखी होते हैं,  
 अतः उन्हेंभी मोक्ष मिलना चाहिये । इसी प्रकार, क्षेत्रवेदनासे दुःखी  
 नारकी जीवोंको तथा एक श्वासोच्छ्वासमे साढ़े सतरह वार जन्म-  
 मरणके अनन्त काल तक दुःख पाने वाले निगोदिया जीवोंको मुक्तिकी  
 प्राप्ति होनी चाहिये । अधिक कहा तक कहें ? ससारके समस्त प्राणी  
 जन्म, मरण, इष्टवियोग, अनिष्टसयोग आदि भाति-भातिके दुःखोंसे  
 दुःखी हैं अत एव सबहीको मोक्ष मिलजाना चाहिये, क्योंकि दुःखको  
 यहा मोक्षका कारण माना है ।

जो अनशन आदि तप करता है उसे क्षुधा पिपासा आदि परिषद

तेने उत्पृष्ट भगव डेम कह्यो छे ? जे दुःख तपने मोक्षनु जरखु मानवामा  
 आवे तो अनेक दोषो आवे छे, जेभडे-जे पुत्र रोगथी अत्यंत पीडा पामी  
 रह्यो छाय तेने मोक्ष थय जेवो जेधये, गण्डेथी दुःख लोगववा वाणा और  
 डाकुओने मोक्ष थये जेधये, घोडा पर याण्डने भार पडे छे तेथी ते दुःखी  
 थाय छे तेनी तेने पख मोक्ष भणवे जेधये जेज प्रमाणे क्षेत्रवेदनाथी दुःखी  
 जेवा नारकी एवोने तथा जेक श्वासोच्छ्वासमा साडी सत्तरवार जन्म-मरणना  
 दुःख अनतकाण सुधी पाभनारा निगोदिया एवोने पख सुदितनी प्राप्ति थयी  
 जेधये वधारे शु कह्यो ? जगतना गधा प्राणीओ जन्म मरण छेने वियोग,  
 अनिष्टनो सयोग वगेरे तरैड तरैडना दुःखी दुःखी छे जेठवे जे गधाने  
 मोक्ष भणी जेवो जेधये, कारण के दुःखने अर्द्ध मोक्षना कारण रूप मान्यो छे  
 जे अनशन आदि तप करे छे तेने क्षुधा-तप आदि परिषद थाय छे

दुःखम्, एतच्च चित्तविक्षेपस्य हेतु', सति च तस्मिन् अप्रशस्त ध्यान, तस्माच्चावश्य कर्मबन्धः, ततश्च चतुर्गतिरससारपरिभ्रमणरूप महदमङ्गलमिति कथकथमप्यहिंसा-सयमविशिष्टस्यापि तपसो मोक्षहेतुत्वरूपमुत्कृष्टमङ्गलत्व न सम्भवदुक्तिरुमिति ।

अत्रोच्यते—तपो न तावद्दुःखात्मक, दुःख हि नामाऽशातवेदनीयकर्मोदय-विपाक. पीडालक्षण आत्मपरिणामः, तपश्चर्यागर्भिताऽनशनादिव्यापारस्य न पीडात्मकाऽऽत्मपरिणामरूपत्वम् ।

किञ्च तप' पक्षीकृत्य मोक्षसाधनत्वाभावसाध्ये यदुक्त दुःखरूपत्वसाधन होते हैं। परिपह होनेसे तीव्र दुःख होता है। दुःखसे चित्तका विक्षेप होता है। चित्तके विक्षेपसे अशुभ ध्यान होता है। अशुभ ध्यानसे कर्मका बन्ध होता है। कर्मबन्धसे चार गतियोमें भ्रमण करना पडता है, इसप्रकार यह बड़ा अमंगल है। जो प्रबल अमंगल है वह अहिंसा और सयमसे युक्त होनेपर भी उत्कृष्ट मंगल नहीं हो सकता। अमृतमें विष मिला देनेसे क्या विष अमृत हो सकता है। कदापि नहीं। इसलिए तपको मोक्षका कारण मानना उचित नहीं है।

उत्तर—तपको दुःख कहना युक्त नहीं है वह दुःखरूप नहीं है। क्योंकि असातावेदनीय कर्मके फलको, जो आत्माका ही एक विभाव परिणाम है, और पीडारूप है उसे दुःख कहते हैं। अनशन आदि तप पीडारूप परिणाम नहीं है, अतः उन्हें दुःख नहीं कहा जा सकता। दूसरी बात यह है—शकाकारने कहा है कि तप मोक्षका कारण नहीं है। क्योंकि वह दुःख है। यहा "तप मोक्षका कारण नहीं" यह

परिपहथी तीव्र दुःख थाय छे दुःखथी चित्तने विक्षेप थाय छे चित्तना विक्षेपथी अशुभ ध्यान थाय छे अशुभ ध्यानथी कर्मने गंध थाय छे कर्मबन्धथी आरे गतिओमा परिभ्रमण करु पडे छे ओ रीते ओ मोटु अभगण छे ले प्रगण अभगण छे ते अहिंसा अने सयमथी युक्त थवा छता पणु उत्कृष्ट मंगण थर् शकतु नथी अमृतमा विष भेगववाथी यु विष अनृत थर् शडे छे ? कदापि नहि तेथी तपने मोक्षनु कारण माननु ओ उचित नथी

उत्तर—तपने दुःख कडेले ओ युक्त नथी ते दुःखरूप नथी कारण के ओ सातावेदनीय कर्म के ले आत्माने ले ओड विभाव परिणाम छे अने पीडारूप छे, तेने दुःख कडे ले अनशन आदि तप पीडारूप परिणाम नथी, तेथी तेने दुःख कडी शकय नहि पीणु वात आ छे शकाकारे कहु के तप मोक्षनु कारण नथी. कारण के ते दुःख छे, परन्तु अर्था "तप मोक्षनु कारण नथी" ओ

તદયુક્ત, તસ્ય દુઃસ્વજયરૂપત્વેન સ્વરૂપાસિદ્ધેઃ ।

તત્ર (તપસિ) જાયમાનાઃ ક્ષુત્તિપાસાદયઃ આત્મનઃ પ્રયત્નમાનવિશુદ્ધપરિણામેન પ્રિજિતાઃ સન્તઃ પીઠાલક્ષણ કાર્યે ન જનયન્તિ । एतेन ક્ષુત્તિપાસાદીના કર્મોદયસ્વરૂપત્વેઽપિ સ્વકાર્યકરણાઽક્ષમતયા ચિત્તવિક્ષેપાજનકત્વ સિદ્ધમ્ ।

પ્રતિજ્ઞા હૈ ઓર “ક્યોંકિ વહ દુઃસ્વ હૈ” યદ્દ હેતુ હૈ । હેતુકા સદા એસા હી પ્રયોગ કરના ઘાલિય જો પ્રતિવાદીકો ભી સિદ્ધ હોવે । યદિ “વહ દુઃસ્વ હૈ” યદ્દ હેતુ સિદ્ધ હોતા તો શકાકારકા સાઁચ સિદ્ધ હો સકતા, પરન્તુ વહ સિદ્ધ નહીં હૈ । ક્યોંકિ પહેલે ઘતલા પુકે હં કિ તપ દુઃસ્વ નહીં હૈ । અત એવ યદ્દ હેતુ સ્વરૂપસેહી અસિદ્ધ હૈ । તપ દુઃસ્વરૂપ નહીં, બલ્કિ દુઃસ્વકો વિજય કરના તપ કહલાતા હૈ ।

અનશન આદિ તપસે હોનેવાલે ક્ષુધા આદિ પરિપદ્ આત્માકે ઘટ્ટે હુણ વિશુદ્ધ પરિણામસે જીત લિયે જાતે હૈં । ક્ષુધા દુઃસ્વ અવશ્ય હૈ પરન્તુ ડસે તપ નહીં કહતે, યલ્કિ ક્ષુધા પર વિજય પાનેકો તપ કહતે હૈં । ક્ષુધાકો જીતના દુઃસ્વ નહીં પરન્તુ સુસ્વ હૈ અત એવ તપ સુસ્વરૂપ હૈ । ક્યોંકિ તપશ્ચર્યા કરનેવાલેકો ભૂખકી પરવાહ હી નહીં રહતી । ઇસલિય શકાકારકા યદ્દ કહના ઠીક નહીં હૈ કિ તપસે પીઢા ઉત્પન્ન હોતી હૈ । ઇસ કથનસે યદ્દ ઘાત અઁઝીતરહ સિદ્ધ હો ગઈ કિ ક્ષુધા આદિ પરિપદ્

પ્રતિજ્ઞા છે અને “કારણ કે તે હુ ખ છે” એ હેતુ છે હેતુનો પ્રયોગ સદા એવો કરવો જોઈએ કે જે પ્રતિવાદીને મતે પણ સિદ્ધ હોય એ “તે હુ ખ છે” એ હેતુ સિદ્ધ હોત તો શકાકારનું સાધ્ય સિદ્ધ કરી શકાત, પરન્તુ એ સિદ્ધ નથી, કારણ કે પહેલા ખતાવી ચૂક્યા છીએ કે તપ એ હુ ખ નથી એટલે એ હેતુ સ્વરૂપથી જ અસિદ્ધ છે તપ હુ ખરૂપ નથી, ખરૂંકે હુ ખ ઉપર વિન્ય મેળવવો એ તપ કહેવાય છે

અનશન આદિ તપથી થનારા ક્ષુધા આદિ પરિપદ્ આત્માના ઘટ્ટા બતા વિશુદ્ધ પરિણામથી છુટાઈ જાય છે ક્ષુધા એ હુ ખ અવશ્ય છે, પરન્તુ તેને તપ ઁઢી શકાય નહિ, ખરૂંકે ક્ષુધા પર વિન્ય પ્રાપ્ત કરવો એ તપ કહેવાય છે ક્ષુધાને ઁતવી એ હુ ખ નથી પરન્તુ સુખ છે એટલે તપ સુખરૂપ છે, કેમકે તપશ્ચર્યા ઁરનારાએને ભૂખની પરવા જ નથી હોતી તેથી શકાકારનું એ કહેવું ઘરાગર નથી કે- ‘તપથી પીઢા ઉત્પન્ન થાય છે’ આ કથનથી એ ઘાત સારી રીતે સિદ્ધ થઈ ગઈ કે ક્ષુધા આદિ પરિપદ્ વેદનીય કર્મના ઉદ્દયથી થાય છે પરન્તુ

अतएव भगवताऽपि क्षुत्पिपासादिपरीपहस्य तपसश्च पृथक्त्वेन प्रतिपादन विहितम् ।

यद्यनशनादिक सर्वत्र दुःखात्मकमेव मन्येत तदा—सिद्धानामपि अशनाद्य-  
ग्राहितयाऽनन्तदुःखसद्भावप्रसङ्गः केन वार्येत । एव च मोक्षमार्गे प्रवर्तकस्य  
शास्त्रस्य तदुक्तधर्मानुष्ठानस्य च वैयर्थ्यापत्तिः ।

अय भावः—यथा व्याधितस्य व्याधिपरिजिहीर्षया स्वयमेव लङ्घनादिप्रवृत्तिः

वेदनीय कर्मके उदयसे होते हैं, परन्तु वे पीडा नहीं उत्पन्न कर सकते ।  
और जब उनसे पीडा नहीं उत्पन्न हो सकती तो चित्तमें विक्षेप भी नहीं  
हो सकता । चित्तमें विक्षेप न होनेसे कर्मका बन्ध भी नहीं हो सकता ।  
उल्टा क्षुधा आदिको जीतनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है और आते हुए  
कर्मोंका निरोध होनेसे सवर भी होता है । इसलिये भगवान् महावीर  
स्वामीने क्षुधा आदि परिपह और तपको अलग अलग कहा है ।

एक बात और भी है—सिद्ध भगवान् कभी आहार नहीं लेते । यदि  
अनशनको दुःख मानलिया जाय तो उन्हें भी दुःखी मानना पडेगा ।  
जब सिद्ध भी दुःखी होंगे तो मोक्षमार्गकी प्ररूपणा करनेवाले शास्त्र व्यर्थ  
होजावेंगे, और उन शास्त्रोंके अनुसार की हुई क्रियाएँ भी व्यर्थ जायँगी ।  
क्योंकि दुःखी बननेके लिए कोई बुद्धिमान तैयार नहीं होगा । मतलब  
यह है कि—जैसे अपना रोग दूर करनेके लिए रोगीकी स्वय ही लघनमें

ते पीडा उत्पन्न करी सकते नथी अने जे तेथी पीडा उत्पन्न नथी थती तो  
चित्तमा विक्षेप पण थछ नथी शकतो, चित्तमा विक्षेप नडि थवाथी कर्मने  
पध पणु नथी थछ शकतो । उ-डु क्षुधा आदिने उत्तवाथी कर्मनी निर्जरा थाय  
छे अने आवता कर्मने निरोध थवाथी सवर पणु थाय छे तेथी लगवान्  
महावीर स्वामी क्षुधा आदि परिषड अने तपने लुधा-लुधा कडेला छे

એક ખીલુ વાત એમ છે કે—સિદ્ધ ભગવાન કદાપિ આહાર લેતા નથી  
જે અનશનને દુઃખ માની લેવામા આવે તો તેમને પણ દુઃખી જ માનવા પડે  
જે સિદ્ધ પણ દુઃખી હોય તો મોક્ષમાર્ગની પ્રરૂપણા કરનાર શાસ્ત્ર વ્યર્થ બની  
બાક્ય, અને જે શાસ્ત્રોને અનુસરીને કરવામા આવતી ક્રિયાઓ પણ વ્યર્થ થાય,  
કારણ કે દુઃખી થવાને કોઈ બુદ્ધિમાન તૈયાર નહિ થાય મતલબ એ છે કે—જેમ  
પોતાનો રોગ દૂર કરવાને માટે રોગી પોતાની મેળે જ લાઘણ કરવામા પ્રવૃત્ત

મણિ-મૌક્તિક-પ્રવાલ-હેમ હીર-રજતાદીના વ્યયદ્ધર્તુઃ સ્વયમેવ સિન્ધુતરણગહન-  
ભયાનકરૂપગમનદુર્ગમપથભ્રમણપટ્ટત્તિઃ પીઠાલ્પણાત્મપરિણામ ન જનયતિ, અન્ય  
થા હિ પ્રતિફૂલકર્મણિ સમુત્સાદ્ધર્પૂર્કસ્વતઃપટ્ટત્તિર્નોપપત્યતે, તથા મુનયોઽપિ વક્ષ્ય  
માણભાવનયા તપસિ પીઠાં નાનુભવન્તિ, તથાહિ-

इह ससारे (१) स्वकृतदुष्कृतसन्ततिप्रशास्त्रकेषु नारकाः कियन्तो भिद्यन्ते,  
प्रवृत्ति होती है । अथवा हीरे, मोती, मृगे, सोने, चांदी आदिकी प्राप्तिके  
लिए मनुष्य, दुस्तर समुद्र तरते हैं, अथवा अपनी इच्छासे ही मोती  
आदिकी प्राप्तिके लिए गहरे समुद्रमें गोते लगाते हैं । बड़े बड़े गहन  
और भयानक जगलोंमें गर्मों आदि अनेक कष्ट उठाते हैं, दुर्गम मार्गमें  
लाभके लिए घूमते फिरते हैं, फिरभी अपने मनमें उसे दुःख नहीं मानते  
न पीड़ाका अनुभव करते हैं, यदि लघन करनेमें और गोते लगाने आदिमें  
कष्ट मालूम होता तो बिना किसीके दवावके अपनी इच्छासे ही उत्साह  
पूर्वक क्यों प्रवृत्ति करते ? इसी प्रकार मुनिराज भी अपनी आत्माकी  
विशुद्धिके लिए अपने आपही प्रमुदित भावसे अनशन आदि तपस्या  
करते हैं । ऐसा करनेमें उन्हें तनिकभी दुःख नहीं होता ।

(१) ससारमें अपने किये हुए कर्मोंके कारण कईएक नरकमें जाकर  
परमाधर्मीद्वारा भाले आदिसे भेदे जाते हैं । कईएक घानीमें तिल या

थाय છે, અથવા હીરા, મોતી, માણિક, સાનું, ચાંદી આદિની પ્રાપ્તિ માટે મનુષ્ય  
દુસ્તર સમુદ્રને તરે છે, અથવા પોતાની ઇચ્છાથી જ મોતી આદિની પ્રાપ્તિ માટે  
ઉંડા સમુદ્રમાં ડુબકી મારે છે, મોટા મોટા ધીર અને ભયાનક જગલોમાં ટાક  
તાપના અનેક કષ્ટો ઉઠાવે છે, દુર્ગમ રસ્તાઓમાં લાલને માટે ભટકતો ફરે છે,  
તોપણ પોતાના મનમાં તેને કુખ માનતો નથી કે પીડાનો અનુભવ કરતો નથી,  
જો લઘન કરવામાં અને ડુબકી મારવા આદિમાં કષ્ટનો અનુભવ થતો હોત તો  
કેાઈએ ક્યાંથી કે આશ્રય ક્યાં વિના પોતાની જ ઇચ્છાથી મનુષ્ય ઉત્સાહ પૂર્વક  
કેમ પ્રવૃત્તિ કરત ? એજ રીતે મુનિરાજ પણ પોતાના આત્માની વિશુદ્ધિને માટે  
પોતાની મેળે જ પ્રમુદિત ભાવથી અનશન આદિ તપશ્ચર્યા કરે છે એમ કરવામાં  
તેને જરા પણ કુખ થતુ નથી

(૧) જગતમાં પોતાના કરેલા કર્મોને કારણે કઈ કઈ જીવો નરકમાં જઈને  
પરમાધર્મીદ્વારા ભાલા આદિથી છેદાય-લેદાય છે કેટલાક ઘણીમાં તલ અથવા

क्रियन्तस्तैलयन्त्रे तिलसर्पपादिवन्निष्पीडयन्ते, ताम्राद्रिभाजनवच्च क्रियन्तः कुटयन्ते, क्रियन्तो दारुवद्विदार्यन्ते, क्रियन्तः रूलशग्याया स्वाप्यन्ते, क्रियन्तः शिलोपरि वस्त्रवत्ताडयन्ते, अनन्तश्रुत्पिपासादिभिः परिभूयन्ते, इत्येव विविध-दुःखसन्ततिमनुभवन्ति ।

(२) अथ तिर्यञ्चोऽपि केचित् समलेश शीतोष्णे सहमानाः, केचिद् गुरुतर भार वहमानाः, केचित्तोत्रादिना ताड्यमानाः, केचिन्मासार्थिभिर्विविधैस्तीक्ष्णाग्र-शस्त्रैरिड्यमानाः, केचिच्च गदकुनिवद्वा. प्रलैः श्रुत्पिपासादिभिः परिभूयमाना लक्ष्यन्ते ।

सरसोंकी तरह पीले जाते हैं । कईएक तांबे पीतल आदिके वर्तनोंकी तरह कूटे जाते हैं । कईएक काठकी भाँति करवतसे चीरे जाते हैं । कईएक तीक्ष्ण काटोंके निशाने पर सुलाये जाते हैं । कईएक शिलापर कपड़ोंकी तरह पड़ाये जाते हैं, और अनन्त भूख प्यास आदि नाना प्रकारके असह्य क्लेश पाते हैं । इस प्रकार भाँति-भाँतिके दुःखोंका अनुभव करते हैं ।

(२) तिर्यञ्च गतिमे भी कोईर तिर्यञ्च दुःखके साथ गर्मी सर्दी सहते हैं, किसी पर भारी जोड़ लादा जाता है, कोई-कोई कौड़ोंकी मार खाते हैं, कोईर पैसे (तीखे) शस्त्रोंसे छेदे जाते हैं, कोई-कोई खूटीसे बधे हुए भूख प्यास आदि नाना प्रकारके दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं ।

सग्सवनी पेटे पीलाय छे डेटलाके ताणा पीतणना वासणुनी नेम कुटाय-पीटाय छे डेटलाके लाकडानी पेटे करवतथी पड़ेगय छे डेटलाके तीक्ष्ण काटाना गिछाना पर सुवाडवामा आवे छे डेटलाके कपडानी पेटे शिलापर पछाडवामा आवे छे, अने अनत भूष-तरस आदि नाना प्रकारना असह्य क्लेश पमाड वामा आवे छे ये प्रमाणे तरेड तरेडना हु जेने अनुभव ये एवे करे छे

(२) तिर्यञ्च गतिमा पणु केछि केछि तिर्यञ्च दुःख साथे टाढ-ताप सहन करे छे, डेटलाक पर भारे गोलो लाहवामा आवे छे, डोऽ केछि थाणुकना मार भाय छे, केछि केछिने कातील शस्त्रोथी छेहवामा आवे छे, केछि केछि थूटे पधायेला भूष-तरस आदि नाना प्रकारना हु जे लोणवता नेवामा आवे छे



(૩) એ મનુષ્યગતિ માત્રા અપિ કેચિદન્યસ્ત્ર, કેચિદ્ધિરસ્ત્ર, કેચિત્ પન્નુસ્ત્ર, કેચિત્કાસશ્માસાદિરોગ, કેચિદ્ધારિષ્ટ ચ સમાપ્ય, હીના દીનાસ્તત્તપીડાપરિહારા-ક્ષમા વિચિધર્દુર્દશામાપન્નાઃ, સ્થાપિરે ફલત્રપુત્રાદિભિરપ્યનાદતાઃ છુટ્પિપાસાદિભિર્વાધ્યમાના ઝિપન્તે ।

(૪) દેવા અપિ પરોત્કર્પનિરીક્ષણેર્પ્યાઢ્વેપાદિજનિતાઽન્તસ્તાપસ્ય પ્રતિકર્તુમશ્ચ વ્યતયા પ્રાયો દુઃખમાજ એ દૃશ્યન્તે ।

(૩) યદિ ભાગ્યોદયસે મનુષ્યગતિ મિલ જાય તો ઉસમેં મી સૈકઢોં દુઃખ મોગને પડ્તે હૈ । કોઈ મનુષ્ય અન્ધા હોજાતા હૈ, કોઈ ઘરિરા હો જાતા હૈ, કોઈ લગડા હોજાતા હૈ । કિસીકો શ્વાસ યા શ્વાંસીકા રોગ હો જાતા હૈ । કોઈ દરિદ્રતાકે દુઃખોંસે દીન હીન હોકર અનેક પ્રકારકી દુર્દશાકા અનુભવ કરતા હૈ । ઘૃદ્વાવસ્થામેં પત્ની પુત્ર આદિ તિરસ્કાર કરતે હૈ । અન્તમેં ક્ષુધા-પિપાસા આદિકે મી દુઃખ ઉઠાકર મરણકી શરણમેં જાના પડ્તા હૈ ।

(૪) કમી દેવગતિ પાકર દેવતા હોજાય તો વહા મી તરહ-તરહકે દુઃખ વિચ્ચમાન હૈ ।

કિસી દેવાતાકી વિભૂતિ અધિક હોતી હૈ, કિસીકી કમ હોતી હૈ, કમ વિભૂતિવાલા અધિકવિભૂતિવાલે દેવતાકો દેવકર ઈર્ષ્યા-દ્વેષ કરતા હૈ, એસા કરનેસે મનમેં અત્યન્ત સન્તાપ હોતા હૈ । ઉસ સન્તાપકો મિટાને મેં જબ અપનેકો અસમર્થ પાતા હૈ તો દુઃખી હોતા હૈ । ઈસલિયે સસારમેં કહીંમી સુખ નહીં દિશ્વલાઈ પડ્તા હૈ ।

(૩) જો ભાગ્યોદયથી મનુષ્યગતિ મળી જાય તો તેમા પણ સેકડો દુખો ભોગવવા પડે છે કેઈ ભાણુસ આધણો થઈ જાય છે, કેઈ ઝાહેરો ણની જાય છે, કેઈ લગડો થાય છે કેઈને શ્વાસ યા શ્વાંસીનો રોગ થાય છે કેઈ દરિદ્રતાના દુખથી હીન-હીન થઈને અનેક પ્રકારની દુર્દશાનો અનુભવ કરે છે ઘૃદ્વાવસ્થામા પત્ની પુત્ર આદિ તેનો તિરસ્કાર કરે છે એવઢે ભૂખ-તરસ આદિના દુખો પણ વેડીને તેને મરણ શરણ થયુ પડે છે

(૪) કદાચ દેવગતિ પામીને દેવતા થઈ જાય તો ત્યા પણ તરેહ તરેહના દુખો વિચ્ચમાન હોય છે કેઈ દેવતાની વિભૂતિ અધિક હોય છે, કેઈની ઓછી હોય છે ઓછી વિભૂતિવાળા અધિક વિભૂતિવાળા દેવતાને જોઈને ઈર્ષ્યા-દ્વેષ કરે છે એમ કરવાથી મનમા અત્યન્ત સન્તાપ થાય છે એ સન્તાપને શમાવવાને જ્યારે તે પોતાને અસમર્થ જુએ છે ત્યારે તે દુખી થાય છે તેથી સસારમા કયાય પણ સુખ જોવામા આવતુ નથી

इत्येवमपारपारावारतरलतरतरङ्गभङ्गमालायमानजन्मजरामरणाधिच्याधीष्ट-  
वियोगाऽनिष्टसयोगादिजनितविविधसन्तापकलापमाकलयन्तः 'कथमेतस्मात्क्ले-  
शकदम्पकादुन्मुक्ता भविष्यामः? इत्युपाय समन्तात् समागम्यन्तो मुनयोऽपि जिने-  
न्द्रप्रतिपादित मोक्षमार्गमाख्य, तत्रापि शुक्लध्यानादितकेवलज्ञानसमनन्तरजाय-  
मानाऽव्यायामन्दानन्दसन्दोहलक्षणमोक्षस्याऽपुनरावृत्तिलक्षण महिमान विनि-  
श्चित्य, ईपत्क्षुत्पिपासाऽऽपादितदुःख मनागपि न गणयन्ति, अत एव तदनशना-

जिसतरह अपार सागरमें चञ्चल तरगे उत्पन्न होती हैं उसी तरह  
ससारमें जन्म, मरण, बुढ़ापा, मानसिक चिन्तायें, शारीरिक व्याधियाँ,  
इष्टवस्तुओंका वियोग, अनिष्टका संयोग आदि अनेक प्रकारके नये-नये  
दुःख उत्पन्न होते रहते हैं। इन विविध प्रकारके दुःखोंको भली भाँति  
सम्यग्ज्ञानद्वारा जाननेसे यह जिज्ञासा होती है कि इस दुःखसमूहसे  
हम कैसे छूटेंगे? इसप्रकार छूटनेका उपाय ढूँढते २ मुनिमहात्मा जिनेन्द्र  
भगवान् द्वारा प्रतिपादित मोक्षके मार्ग पर आरूढ़ हो जाते हैं। फिर  
क्रमशः शुक्लध्यान द्वारा केवलज्ञान पाकर अव्यायाध अनन्त आत्मिक-  
सुख और पुनरागमनरहित मोक्षको प्राप्त करते हैं। ऐसा अपने मनमें  
विचार कर तपमें लीन होनेवाले तपस्वी जन क्षुधा-पिपासाके थोड़ेसे  
दुःखको तनिक भी नहीं गिनते। उनके सामने अनन्त सुखका स्थान  
मोक्षका ध्येय सदा रहता है और उस ध्येयकी प्राप्तिमें क्षुधा आदि

जैसी रीते अपार सागरमा यथल तरगे उत्पन्न थाय छे, तेवी रीते  
ससारमा जन्म, मरण, बुढापा, मानसिक चिन्तायें, शारीरिक व्याधियाँ, इष्ट  
वस्तुओंको वियोग, अनिष्टको संयोग आदि अनेक प्रकारना नया नया दुःख  
उत्पन्न यता रहे छे ओ विविध प्रकारना दुःखोने सारी पेटे सम्यग्ज्ञानद्वारा  
बुद्धिवाधी जैसी जिज्ञासा थाय छे ओ आ दुःखसमूहकी आपछे जैसी रीते  
छूटीशु? ओ रीते छूटवाने उपाय शोधता मुनि महात्मा जिनेन्द्र भगवाने  
प्रतिपादित करेला मोक्षना मार्ग पर आरूढ़ थछे नय छे पछी क्रमश शुक्ल  
ध्यानद्वारा केवल ज्ञान प्राप्त करीने अव्यायाध अनन्त आत्मिकसुख अने  
पुनरागमनरहित मोक्षने प्राप्त करे छे पोताना मनमा जैवो विचार करीने  
तपमा लीन यना तपस्वीजन लूण-तरसना थोडा दुःखने लगावे गलुता नथी  
तेमनी सामे अनन्त सुखना स्थान मोक्षनु ध्येय सदा रहे छे अने ओ ध्येयनी  
प्राप्तिमा क्षुधा आदि परिषोधी यनाइ दुःख नडिवत् अने छे ते पोताना

दिलक्षण तपः परिणामपरमपदसुखजनकतया मुनीनामात्मपरिणामवृत्तिकारण न भवितुमीष्टे नापि च तत्कर्मोद्देश्यस्वरूपमिति प्राक् प्रतिपादितमिति तपसः सर्वथा मोक्षाङ्गत्वेनोत्कृष्टमङ्गलात्मरूपमरूपत्वं सिद्धम् ।

अथोत्कृष्टमङ्गलत्वसम्पादक धर्मस्य महिमानमावेदयति—‘देवा वि’ इत्यादि ।  
धर्म=अहिंसाद्वित्रयस्वरूपे यस्य प्राणिनः मनः=चित्तं सदा=निरन्तरं तिष्ठतीति शेषः, त=धर्मचित्तं प्राणिनः देवा अपि=भजनपत्यादिचतुर्निकाया अपि

परिपहोसे होनेवाला दुःख नहीं के बराबर हैं । वे उन तुच्छ दुःखोंको अपने अन्तकरणमें स्मरण भी नहीं करते । तात्पर्य यह है कि—अनशन आदि तप, परमपद मोक्षके अनन्त अविनाशी सुखका प्रबल कारण होनेसे मुनियोंकी आत्माके परिणामोंमें विकार उत्पन्न नहीं कर सकता है और न औद्ययिक भावमें ही है, अर्थात् तप क्षायोपशमिक भावोंमें है । इस विषयका विस्तारसे प्रतिपादन पहले किया जा चुका है । अब यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी कि तप मोक्षका कारण है और उत्कृष्ट मंगलरूप धर्म है ।

धर्म उत्कृष्ट मंगल है, किन्तु धर्ममें ऐसी कौनसी विचित्र महिमा है जिससे उसे उत्कृष्ट मंगल कहते हैं ? इस प्रश्नका समाधान करनेके लिए कहते हैं—

जिस प्राणीके मनमें अहिंसा, सयम और तपस्वरूप धर्मका निरन्तर निवास रहता है, उस धर्मात्मा प्राणीको भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी

अतः करण्यमा ये तुच्छं दुःखेन स्मरन् पणुं कर्ता नथी तात्पर्यं ये छे के-  
अनशन आदि तप, परमपद मोक्षना अनन्त अविनाशी सुखानु प्रबल कारण  
होवाथी मुनियोना आत्माना परिष्णामोमा विकार उत्पन्न करी शक्तु नथी अने ये  
औद्ययिक भावमा पणु नथी अर्थात् तप क्षायोपशमिक-भावमा छे आ विषयतु  
प्रतिपादन पछेला विस्तारथी करवामा आव्यु छे हवे ये वात सारी रीते सिद्ध  
यथं सूची दे तप मोक्षतु कारण छे अने उत्कृष्ट मंगलरूप धर्म छे

धर्म उत्कृष्ट मंगल छे, परंतु धर्ममा जेवो क्यो विचित्र महिमा छे नथी  
तेने उत्कृष्ट मंगल कह्यो छे ? आ प्रश्नतु समाधान करवाने कहे छे —

जे प्राणीना मनमा अहिंसा, सयम अने तपस्वरूप धर्मना निरन्तर निवास  
रहे छे, ते धर्मात्मा प्राणीने भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषी अने वैभानिक ये

नमस्यन्ति नमस्कुर्वन्ति सम्मानयन्तीति यावत्, किं पुनश्चक्रवर्त्यादयो मनुष्या इत्यर्थः ।

एतादृशोऽयं समुत्कृष्टो धर्मः स्वसमाराधनपद्धतिपरिकराणां वृन्दारकवृन्दवन्दनीयपदारविन्दता जनयति, यदि पुनश्चिविधकरणयोगेन तदाराधनपरायणो भवेत् तदा शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्यायाधमपुनरावृत्ति सिद्धिगतिनाम प्रेय मोक्षपदमपि समासादयेदेव, कैव कथा तदपेक्षया तुच्छतरदेवेन्द्रचक्रवर्त्यादिपदप्राप्तिजनितसौरस्य सस्यानुगतपलालवदिति ।

और वैमानिक इस प्रकार चारों निकायोंके देवता नमस्कार करते हैं अर्थात् समान करते हैं । गाथामें आये हुए 'अपि' शब्दसे प्रकट है कि जब देवताभी वर्मात्मा प्राणीका समान करते हैं तो राजा, महाराज, सम्राट् और चक्रवर्ती आदिकी बात ही क्या है ? वे भी उसके चरणोंमें गिरते हैं । इस प्रकार इस उत्कृष्ट धर्मकी आराधना करनेवाले प्राणी देवोंके द्वारा वन्दनीय हो जाते हैं । यदि कोई तीन करण और तीन योगसे उस धर्मकी आराधना भली-भाँति करे तो वह अवश्यही ऐसी सिद्धिगति (मोक्ष)को प्राप्त करेगा जो परम कल्याणरूप है, अचल है, जिसमें किसी प्रकारका रोगदोष नहीं है, जिसका कभी अन्त नहीं होता, जिसमें पहुँच कर क्षय नहीं होता, और न किसी प्रकारकी बाधा ओष रहती है । अहो ! उस मोक्षका क्या कहना है, जिसके आगे नरेन्द्र, इन्द्र, अहमिन्द्र आदिका सुख इतना तुच्छ है जैसे धान्यके आगे भुसा तुच्छ होता है ।

आरे निकायेना देवता नमस्कार करे छे अर्थात् तेभनु समान करे छे गाथामा आवेला 'अपि' शब्दथी स्पष्ट थाय छे डे न्यारे देवता पण धर्मात्मा प्राणीनु समान करे छे तो राजा, महाराज, सम्राट् अने चक्रवर्ती आदिनी तो बात न कथा छ्डी ? तेओ पणु तेभना अरुणमा पडे छे ओ रीते आ उत्कृष्ट धर्मनी आराधना करनारे प्राणी देवे वडे वदनीय अने छे ने डोछ त्रणु करणु अने त्रणु योगथी ओ धर्मनी आराधना लवी पेडे करे तो ते अवश्य ओवी सिद्धि गति (मोक्ष) ने प्राप्त करे डे ने परम कल्याणरूप छे, अचल छे, तेमा डोछ प्रकारने रोगदोष नथी, नेना कदापि अत आवतो नथी नेमा पडोअवाथी क्षय थतो नथी अने डोछ प्रकारनी बाधा-पीडा थती नवी अछा ! ओ मोक्षनी शी बात छ्डीअे, नेनी आगण नरेन्द्र, इन्द्र अहमिन्द्र आदिनु सुभ ओषु तुच्छ छे डे नेम धान्य आगण श्वतरा तुच्छ छे

નનુ સર્વધર્માણામર્હિસામૂલકત્વાદર્હિસાયામેત્ર સયમતપસોરપિ ધર્મયોઃ સમાવેશે સતિ કિં પુનસ્તયોઃ પૃથક્નિર્દેશઃ ? इति चेन्न,—

તપો વિના સયમો યથાત્સ્યરૂપનેર્મલ્ય ન લભતે, સયમમન્તરેણાડર્હિસાડપિ ન પરિશુદ્ધિમેતિ ઇત્યાશયેનાર્હિસા પ્રતિપાઘ તદ્દિર્મલીકરણાર્થે સયમસ્ય પ્રતિપાદનમ્, તસ્ય ચ પ્રભૂતશક્તિમ્પાદનાય તપસઃ સમારાધનમાત્રસ્યકમિત્યાશ્રયેન, પ્રયાણા પૃથક્નિર્દેશઃ કૃતઃ ।

કિંચ સયમતપસોર્વિપયેડપરોડપિ વિશેષો દ્વચ્યતે—સયમાત્સવરઃ, તપસ્તુ મુલ્યતો નિર્જરામુદ્ધાવત્ સવરમપિ નિષ્પાદયતિ । સયમસ્તપચૈતે દ્વે-રાત્ર આત્મ

પ્રશ્ન—સયમ તપ આદિ સય ધર્મોંકા મૂલ અર્હિસા છે, ડસલિણ સયમ ઓર તપકા અર્હિસામેં હી સમાવેશ હો જાતા હૈ તો ફિર સયમ ઓર તપકો અલગ અલગ ક્યોં કહ્લા હૈ ? સુનો—

ઉત્તર—અલગ અલગ કહનેકા કારણ યહ હૈ કિ તપકે વિના સયમ કી જૈસી ચાહિં વૈસી નિર્મલતા નહીં હોતી ઓર વિના સયમકે અર્હિસાકા ઠીક ૨ પાલન નહીં હો સકતા । ડસ અભિપ્રાયસે અર્હિસાકા પ્રતિપાદન કરકે ડસે નિર્મલ બનાનેકે લિં પ તપકા અલગ કથન કિયા ગયા હૈ । ડસસે તીનોંકા અલગ ૨ કથન ઉચિત હૈ ।

સયમ ઓર તપકે અર્થમે ઓર ઢી વિશેપતા હૈ ઓર વહ યહ હૈ કિ-સયમસે સવર હોતા હૈ, પરતુ તપસે સયમ ઓર નિર્જરા ડોનોં હોતે હૈ ।

અથવા યહ સમજ્ઞના ચાહિંયે કિ સયમ ઓર 'તપ' યે ડોનોં

પ્રશ્ન—સયમ તપ આદિ સર્વ ધર્મોંનું મૂલ અર્હિસા છે, તેથી સયમ અને તપને સમાવેશ અર્હિસામા જ થઈ જાય છે તો સયમ અને તપને જુદા-જુદા કેમ કહ્યા છે ? સાબળો—

ઉત્તર—જુદા જુદા કહેવાનું કારણ એ છે કે તપ વિના સયમની જોઈએ તેવી નિર્મળતા થતી નથી અને સયમ વિના અર્હિસાનું પરાપર પાલન થઈ શકતું નથી એ કારણથી અર્હિસાનું પ્રતિપાદન કરીને તેને નિર્મળ બનાવવાને માટે તપનું જુદું કથન કરવામા આવ્યું છે એથી ત્રણેનું જુદું-જુદું કથન ઉચિત છે

સયમ અને તપના અર્થમા ખીજી પણ વિશેષતા છે અને તે એ કે-સયમથી સવર થાય છે, પણ તપથી સયમ અને નિર્જરા જોઈ થાય છે

અથવા એમ સમજવું જોઈએ કે સયમ અને તપ એ જોઈ શકાતા

રક્ષકાવિવાડહિંસાવ્રતસ્ય સરક્ષકે । યદ્વા ઇતદ્વ્યસ્યાહિંસાપરિપોષકતયા પૃથક્-  
નિર્દેશઃ સગચ્છતે ।

અન્યચ્ચ અહિંસા પ્રાણવ્યપરોપણનિવૃત્તિપ્રધાના, સયમસ્તુ શ્રોત્રાદીન્દ્રિયનિગ્રહ-  
પ્રધાન ઇતિ મદ્દૈલક્ષણ્યમુપલભ્ય પૃથક્નિર્દેશઃ । તપસો વૈલક્ષણ્ય તુ ન કસ્યચિત્  
સશયગોચરઃ સ્વરૂપત ઇવ પરસ્પર ભેદાત્, તથાહિ—અહિંસા નામ સ્વતઃ પરતો  
વા પ્રાણવ્યપરોપણનિવૃત્તિરુપણ, તપસ્તુ છુત્પિપાસાશીતોષ્ણાદિસહિષ્ણુત્વરૂપમિતિ ।

રાજાકે આત્મરક્ષકોંકી તરહ અહિંસાવ્રતકે રક્ષક હૈ, જયતક સયમ  
ઔર તપ ન હૈ તવતક અહિંસાકા સમ્યક્ પાલન નહી હો સકતા ।

એક સમાધાન ઔરમી હૈ—અહિંસામેં પ્રાણોંકે વ્યપરોપણકી નિવૃત્તિકી  
પ્રધાનતા હૈ, ઔર સયમમેં શ્રોત્ર આદિ ઇન્દ્રિયોંકે નિગ્રહકી પ્રધાનતા હૈ ।  
હસ પ્રકાર ઇનમેં કિનની હી પ્રકારકી વઢી ૨ વિશેષતાઁં ડેવ્રકર સૂત્ર-  
કારને પૃથક્ કથન કિયા હૈ । તપકે સ્વરૂપમેં તો ઇતના ભેદ હૈ કિ કિસીકો  
સન્દેહ હો હી નહીં સકતા । અપને યા ડૂસરેકે ઢારા પ્રાણવ્યપરોપણકી  
નિવૃત્તિ કરનેકો અહિંસાકહતે હૈ, ઔર ક્ષુધા પિપાસા શીત ઉષ્ણ આદિકો  
સહન કરના તપ કહલાતા હૈ ।

પ્રશ્ન—ભગવાન્ને અહિંસા સયમ ઔર તપ ઇન તીનોમે તપકો હી  
અન્તમેં ક્યોં કહા ?

આત્મરક્ષકોની પેઠે અહિંસાવ્રતના રક્ષક બને છે જ્યા સુધી સયમ અને તપ  
ન થાય ત્યા સુધી અહિંસાનું સમ્યક્ પાલન થઈ શકતું નથી

એક સમાધાન ધીણુ પણ છે અહિંસામા પ્રાણોના વ્યપરોપણની  
નિવૃત્તિની પ્રધાનતા છે અને સયમમા શ્રોત્ર આદિ ઈન્દ્રિયોના નિગ્રહની પ્રધાનતા છે  
એ રીતે એમા અનેક પ્રકારની મોટી મોટી વિશેષતાઓ જોઈને સૂત્રકારે  
પૃથક્ કથન કર્યું છે તપના સ્વરૂપમા તો એટલો ભેદ છે કે કોઈને સદેહ  
થઈ શકે નહિ પોતાની અથવા ધીજાની ઢારા પ્રાણના વ્યપરોપણની નિવૃત્તિ  
કરવી તેને અહિંસા કહે છે, અને ભૂખ તરસ ાઢ તાપ આદિને સહેવા તે  
તપ કહેવાય છે

પ્રશ્ન—ભગવાને અહિંસા, સયમ અને તપ એ ત્રણમા તપને છેલ્લુ  
કેમ કહ્યું ?

નત્તુ સર્વધર્માણામર્હિસામૂલકત્વાદર્હિસાયામેવ મયમતપસોરપિ ધર્મયોઃ સમાવેશે સતિ કિં પુનસ્તપોઃ પૃથક્નિર્દેશઃ ? इति चेन्न,—

તપો વિના સયમો યથાત્ત્વરૂપનૈર્મલ્ય ન લભતે, સયમમન્તરેણાડર્હિસાડપિ ન પરિશુદ્ધિમેતિ ઇત્યાશયેનાર્હિમા પ્રતિપાત્ર તદ્દિર્મલીકરણાર્થ સયમસ્ય પ્રતિપાદનમ્, તસ્ય ચ પ્રભૂતશક્તિસ્મ્પાદનાય તપસઃ સમારાધનમાવશ્યકમિત્યાશ્ચયેન, ત્રયાણા પૃથક્નિર્દેશઃ કૃતઃ ।

કિન્ચ સયમતપસોરિપયેડપરોડપિ ત્રિશેષો દ્વયતે-સયમાત્સવરઃ, તપસ્તુ મુખ્યતો નિર્જરામુદ્ધાત્યત્ સવરમપિ નિષ્પાદયતિ । સયમસ્તપથૈતે દ્વે-રાજ્ઞ આત્મ

પ્રશ્ન—સયમ તપ આદિ સય ધર્મોંકા મૂલ અર્હિસા હૈ, ઇસલિણ સયમ ઓર તપકા અર્હિસામેં હી સમાવેશ હો જાતા હૈ તો ફિર સયમ ઓર તપકો અલગ અલગ ક્યોં કહા હૈ ? સુનો—

ઉત્તર—અલગ અલગ કહનેકા કારણ યહ હૈ કિ તપકે વિના સયમ કી જૈસી યાહિણ વૈસી નિર્મલતા નહીં હોતી ઓર વિના સયમકે અર્હિસાકા ઠીક ૨ પાલન નહીં હો સકતા । ઇસ અભિપ્રાયસે અર્હિસાકા પ્રતિપાદન કરકે હસે નિર્મલ યનાનેકે લિણ તપકા અલગ કથન કિયા ગયા હૈ । ઇસસે તોનોંકા અલગ ૨ કથન ઉચિત હૈ ।

સયમ ઓર તપકે અર્થમેં ઓર ઘી વિશેષતા હૈ ઓર વહ યહ હૈ કિ સયમસે સવર હોતા હૈ, પરતુ તપસે સયમ ઓર નિર્જરા ડોનોં હોતે હૈ । અથવા યહ સમજના યાહિયે કિ સયમ ઓર ‘તપ’ યે ડોનોં

પ્રશ્ન—સયમ તપ આદિ સર્વ ધર્મોંનુ મૂલ અર્હિસા છે, તેથી સયમ અને તપને સમાવેશ અર્હિસામા જ થઈ જાય છે તો સયમ અને તપને જુદા-જુદા કેમ કહ્યા છે ? સાલણે—

ઉત્તર—જુદા જુદા કહેવાનું કારણ એ છે કે તપ વિના સયમની જોઈએ તેવી નિર્મળતા થતી નથી અને સયમ વિના અર્હિસાનું ધરાબર પાલન થઈ શકતું નથી એ કારણથી અર્હિસાનું પ્રતિપાદન કરીને તેને નિર્મળ બનાવવાને માટે તપનું જુદું કથન કરવામા આવ્યું છે એથી ત્રણેનું જુદું-જુદું કથન ઉચિત છે

સયમ અને તપના અર્થમા ખીજી પણ વિશેષતા છે અને તે એ કે-સયમથી સવર થાય છે, પણ તપથી સયમ અને નિર્જરા બેઉ થાય છે

અથવા એમ સમજવું જોઈએ કે સયમ અને તપ એ બેઉ શબ્દના

रक्षकाविवाऽहिंसाव्रतस्य सरक्षके । यद्वा एतद्द्वयस्याहिंसापरिपोषकतया पृथक्-  
निर्देशः सगच्छते ।

अन्यच्च अहिंसा प्राणव्यपरोपणनिवृत्तिप्रधाना, सयमस्तु श्रोत्रादीन्द्रियनिग्रह-  
प्रधान इति महद्वैलक्षण्यमुपलभ्य पृथक्निर्देशः । तपसो वैलक्षण्यं तु न कस्यचित्  
सशयगोचरः स्वरूपत एव परस्पर भेदात्, तथाहि—अहिंसा नाम स्वतः परतो  
वा प्राणव्यपरोपणनिवृत्तिकरण, तपस्तु क्षुत्पिपासाशीतोष्णादिसहिष्णुत्वरूपमिति ।

राजाके आत्मरक्षकोंकी तरह अहिंसाव्रतके रक्षक है, जयतक सयम  
और तप न हों तयतक अहिंसाका सम्यक् पालन नहीं हो सकता ।

एक समाधान औरभी है—अहिंसामें प्राणोंके व्यपरोपणकी निवृत्तिकी  
प्रधानता है, और सयममें श्रोत्र आदि इन्द्रियोंके निग्रहकी प्रधानता है ।  
इस प्रकार इनमें कितनी ही प्रकारकी चडी २ विशेषताएँ देखकर मृत्र-  
कारने पृथक् कथन किया है । तपके स्वरूपमें तो इतना भेद है कि किसीको  
सन्देह ही नहीं सकता । अपने या दूसरेके द्वारा प्राणव्यपरोपणकी  
निवृत्ति करनेको अहिंसा कहते हैं, और क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदिदुःखों  
सहन करना तप कहलाता है ।

प्रश्न—भगवान्ने अहिंसा सयम और तप इन तीनोंमें तपको  
अन्तमें क्यों कहा ?

आत्मरक्षकेनी पेठे अहिंसाव्रतना रक्षक णने छे ल्या सुधी यथ न  
न थाय त्या सुधी अहिंसानुं सम्यक् पालन थर्क शकतु नया

એક સમાધાન ધીણુ પણ છે અહિંસામા પ્રાણ  
નિવૃત્તિની પ્રધાનતા છે અને સયમમા શ્રોત્ર આદિ ઇન્દ્રિયો  
એ રીતે એમા અનેક પ્રકારની મોટી મોટી  
પૃથક્ કથન કર્યું છે તપના સ્વરૂપમા તો એટલા  
થઈ શકે નહિ પોતાની અથવા ધીણની  
કરવી તેને અહિંસા કહે છે, અને ભૂખ તથા  
તપ કહેવાય છે

પ્રશ્ન—ભગવાને અહિંસા, સયમ તથા તપ  
કેમ કહ્યું ?



कोटिभवसञ्चितानि परुशतमान्यपि कर्माणि तपसाऽऽश्रुता विनश्यन्तीति  
दुस्तरससारसागर शीघ्रमुत्तर्जुमभिलष्यतामर्हिसासयमाऽऽराधनतत्पराणा मुमुक्षुणा-  
मुग्रतपोऽवश्यमाश्रयणीयमित्याशयेनान्ते तपसः पृथङ्निर्देशः कृत इति भावः ।  
इति प्रथमगाथार्थः ॥ १ ॥

ननु धर्मः शरीरेण रक्ष्यते, शरीररक्षण चाहारेण भवति, स च पङ्जीव-  
निरूपोपमर्दनरूपाऽऽरम्भेण निष्पाद्यते, यत्र चारम्भो न तत्र धर्मः समवति,  
यथोक्त श्रीस्थानाङ्गसूत्रे—

“ दो ठाणाइ अपरियाणित्ता भाया णो केवल्लिपन्नत्त धम्म लभेज्जा सव-  
णयाए, तजहा-आरभे चेत्त परिग्गहे चेत्त ” इति, अस्य हि—“ द्वे वस्तुनी अपरि-  
क्षाय आत्मा न केवल्लिमन्नत्त धर्मं श्रोतु लभेत, तद् यथा-आरम्भश्च परिग्रहश्च ”

उत्तर—करोड़ों भवोंमें संचित किये हुए अत्यन्त कठोर कर्म, तपके  
द्वारा शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं । इसलिए दुस्तर ससाररूपी सागरको  
शीघ्र पार करनेकी अभिलाषा रखनेवाले, अहिंसा और सयमकी आरा-  
धनामें तत्पर रहनेवाले मोक्षाभिलाषियोंको अवश्य ही उग्रतपस्या करनी  
चाहिये, इस उद्देश्यसे भगवान्ने तपको अन्तमें अलग कहा है ॥१॥

धर्मका रक्षण शरीरसे होता है और शरीरका निर्वाह आहारसे  
होता है । आहार पृथिवी आदिक षड्जीवनिकायके आरभके विना नहीं  
वन सकता, और ‘जहां आरम्भ है वहां धर्म नहीं’ यह सर्वज्ञ भगवान्ने  
कहा है, क्योंकि ठाणाग (स्थानाङ्ग) सूत्रके दूसरे ठाणेसे यह बात स्पष्ट है ।

उत्तर—करोड़ों भवोंमें संचित किये हुए अत्यन्त कठोर कर्म तपकी द्वारा  
शीघ्र नष्ट થઈ જાય છે એથી દુસ્તર સસારરૂપી સાગરને શીઘ્ર પાર કરવાની  
અભિલાષા રાખનારા, અહિંસા અને સયમની આરાધનામાં તત્પર રહેનારા,  
મોક્ષાભિલાષીઓએ અવશ્ય ઉગ્ર તપસ્યા કરવી જોઈએ એ ઉદ્દેશથી ભગવાને  
તપને છેલ્લું જુદું કહ્યું છે ॥ ૧ ॥

ધર્મનું રક્ષણ શરીરથી થાય છે અને શરીરનો નિર્વાહ આહારથી થાય છે  
આહાર પૃથિવી આદિ છ જીવનિકાયના આરભ વિના નથી બની શકતો, અને  
‘જ્યાં આરભ છે ત્યાં ધર્મ નથી’ એમ સર્વજ્ઞ ભગવાને કહ્યું છે ઠાણાગ  
(સ્થાનાંગ) સૂત્રના ઠાણામાં એ વાત સ્પષ્ટ છે અર્થાત આરભ અને

अर्थादारम्भ-परिग्रहौ ज्ञ-परिज्ञया जन्ममरणादिदुःखहेतुं विज्ञाय प्रत्या-  
ख्यानपरिज्ञया तयोस्त्यागमकृत्या जिनोक्त धर्मं श्रोतुमपि न शक्नोति, पालयितुं  
शक्नोतीति तु दूरापास्तमित्यर्थः, तस्मादुक्तरीत्या त्यागसम्पन्नस्यापि श्रमणस्य  
शरीरसंरक्षणावश्यकता वर्तते तदर्थं चाहारो ग्रहीतव्यः, तत्र का वृत्तिः समाद-  
र्त्तव्ये ? त्याह—‘जहा दुमस्स’ इत्यादि

१ ३ ४ २ ६ ५  
मूलम्—जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियड रसं ।

६ ७ ८ १० १२ ११ १४ १३  
ण च पुप्फं किलामेइ, सो अ पीणेइ अप्पयं ॥२॥

छाया—यथा हुमस्य पुप्पेषु, भ्रमर आपिगति रसम् ।

न च पुप्प क्लामयति, स च प्रीणात्यात्मानम् ॥ २ ॥

अर्थात् आरम्भ और परिग्रह इन दोनोंके यथार्थ स्वरूपको आत्मा  
ज्ञपरिज्ञासे सम्यक् प्रकार जानकर कि ये ही दोनों जन्म जरा मरणके  
दाता चतुर्गतिरूप अनन्त ससारमें परिभ्रमण करानेवाले, छेदन-भेदन-  
आधि-व्याधि-क्लेशरूप दुःखोंके कारण तथा आत्माके विशुद्ध स्वरूपके  
घातक हैं, परतु जयतक प्रत्याख्यानपरिज्ञा द्वारा तीन करण और तीन  
योगसे इनको त्याग न देवे तब तक जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्मको  
सुनने योग्य भी नहीं होता, पालनेकी तो बात ही कहा है ? तात्पर्य यह  
है कि आरम्भ और परिग्रहका त्याग किये बिना धर्मका पूर्ण पालन नहीं  
हो सकता । इसलिए धर्मके आराधक मुनियोंको निरवद्य आहारकी  
विधि कहते हैं—‘जहा दुमस्स’ इत्यादि ।

परिशुद्ध अथ जेठना यथार्थं स्वउपने आत्मा, ज्ञपरिज्ञाथी सम्यक्-प्रकारे नष्टे डे  
अथ जेठे जन्म जरा मरणना दाता, चतुर्गतिरूप अनन्त ससारमा परिभ्रमण  
करावनासा, छेदन-भेदन-आधि-व्याधि-क्लेशरूप दुःखोना कारण तथा आत्माना  
विशुद्ध स्वउपना घातक अथ, परतु नया सुधी प्रत्याख्यानपरिज्ञाद्वारा त्रणु करण  
अने त्रणु योगथी तेने त्यथ न देवाय त्या सुधी जिनेन्द्रभगवाने प्रवेष्टा  
धर्मने साधनवा योग्य पणु थवातु नथी, पछी पाणवानी तो वात न कथा ?  
तात्पर्य अथ छे डे आरल अने परिशुद्धने त्याग थ्यां विना धर्मतु पूर्ण पालन  
थथ शकतु नथी तेथी धर्मना आराधक मुनियोने निरवद्य आहारनी विधि  
कहे अथ—“जहा दुमस्स” इत्यादि

सान्वयार्थः—जहा=जैसे, भमरो=भौरा, हुमस्म=वृक्षके पुष्पेसु=फूलोंमें ( रहे हुए ) रस=रसको आचियइ=मर्यादानुसार पीता है, य=और पुष्कं=फूलको ण कीलामेइ=पीडित नहीं करता है, अ=तोभी सो=इह भौरा अप्पय=अपनेको पीणेइ=सन्तुष्ट कर लेता है । अर्थात्—जैसे भारा अनेक वृक्षोंके फूलोंसे थोड़ा थोड़ा रस उचित मात्रामें लेता है, ऐसा करनेसे वह सन्तुष्ट भी होजाता है और फूलोंकोभी कष्ट नहीं देता ॥ २ ॥

टीका—यथा भ्रमरः—भ्राम्यति=एकत्र नाप्रतिष्ठत इति भ्रमरः=चतुरिन्द्रिय जातिमान् भृङ्गपर्यायवाच्यः प्राणिविशेषः । हुमस्य, जात्येकत्वादेकवचनम्, 'सर्वो गच्छति' इत्यादिवत्, तेन हुमाणामित्यर्थः, हुमपदेन योगमर्यादया लतादीनामपि ग्रहण बोद्धव्यम्, पुष्पेषु स्थितमित्यस्याध्याहारः, रस=मकरन्दम् आपिबति=आ=मर्यादा-पूर्वकम् उचितादधिक परित्यज्य पिवति=पानत्रिपय करोति, अल्प गृह्णातीति भावः । चकारी हेत्वर्थे, तेन-च=अत एव पुष्प न हामयति=न पीडयति-लेशतोऽपि न म्लानयतीति यावत्, च=किञ्च स.=भ्रमरः आत्मानं=स्व प्रीणाति=तोपयतीत्यर्थः ।

पुष्पाणि तु हुमलतादीनामेव भवन्ति पुनर्हुमपदोपादानम्—यथा भ्रमरः सर्वे पायेव हुमलतादीना पुष्पेषु रसमापिप्रति न चोचनीचादिभेदभाव रक्षति 'वृक्षोऽय

जैसे भ्रमर, भ्रमण करके अनेक वृक्ष लता आदिकोंके पुष्पोंका थोड़ा रस मर्यादासे लेता है, अधिक नहीं, यानी ऐसा कि किसीको भी पीडा न देते हुए वह अपनी आत्माको तृप्त कर लेता है ।

प्रश्न—वृक्ष और लताओंमें ही फूल होते हैं फिर हुम (वृक्ष) शब्द देनेका क्या अभिप्राय है ? ।

उत्तर—जैसे भौरा सभी वृक्षों और लताओंके फूलोंका रस पीता है, ऊच-नीच भेद-भाव नहीं रखता कि—इस वृक्षमें कम फूल है और

जेम भ्रमर भ्रमण करीने अनेक वृक्ष लता आदिना पुष्पेनो थोडा थोडा रस मर्यादापूर्वक ले छे, बहु लेतो नथी, अने ज्येवी रीते ले छे के के छे पक्ष पुष्पने जशमे पीडा थाय नडि, जेम ते पीताना आत्माने तृप्त करी ले छे  
प्रश्न—वृक्ष अने लताओंमे पर जे फूल थाय छे, तो वणी हुम (वृक्ष) शब्द कडेवानो शे छेतु छे

उत्तर—जेम भ्रमरो जथा वृक्षो अने लताओंना फूलोना रस पीजे छे, उच-नीचने लेदभाव राभतो नथी के—आ वृक्ष पर ओछा छे अने

मत्पुष्पफलोऽयं च बहुपुष्पफलसमृद्धः' इति, तथा साधुरप्युचनीचादिभेदभाव विहाय सर्वत्र समानभावो गृहस्थकुलानां सकाशाद् यथोचिता भिक्षामाददीतेति सूचनार्थम् ।

यद्वा 'द्रुमस्त' इत्यत्र सम्बन्धसामान्यपण्ड्या द्रुमसम्बन्धिष्विति, अर्थादयं दृष्टान्तो द्रुमससक्तपुष्परसग्राहिणो भ्रमरस्य बोद्धव्यो नेतरस्य, ततश्च यथा भ्रमरो द्रुमसम्बद्धेषु स्थित रसमापियति तथा साधुरपि गृहस्थसम्बन्धिनमेव, अर्थात् तत्स्वत्वयुक्तमेवाऽऽहार गृहीयान्न तु स्वामिविरहितमित्यर्थः ।

इसमें अधिक, इसी प्रकार साधुभी द्रव्य-भावसे ऊच-नीच भेद-भाव न रखकर समानदृष्टिसे गृहस्थियोंके कुलोंमें भिक्षा-वृत्तिके लिए भ्रमण करते हैं। इस आशयको प्रगट करनेके लिए गाथामें 'द्रुम' शब्द दिया गया है।

अथवा यों समझिये कि गाथामें 'द्रुम' शब्दके साथ पृष्ठी विभक्तिका प्रयोग किया गया है, पृष्ठी विभक्तिका अर्थ है 'सम्बन्ध'।

इसलिए यह दृष्टान्त द्रुममें लगे हुए पुष्पके रसको ग्रहण करनेवाले भौरेका ही समझना चाहिए, दूसरे भौरेका नहीं। इससे यह अर्थ निकलता है कि जैसे भ्रमर, द्रुम (वृक्ष) सम्बन्धी पुष्परसको ही ग्रहण करता है, अन्य रसको नहीं, इसीभाँति साधुभी गृहस्थसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थात् जिसपर गृहस्थका अधिकार है उसी आहारको ग्रहण करते हैं, जिस आहारका कोई गृहस्थ स्वामी नहीं होता उसे नहीं ग्रहण करते।

आ पर वधादे उ, ये प्रभाणु साधु पणु द्रव्य-भावधी उच नीचने। लेहलाव न राणीने समान दृष्टिधी गृहस्थाना कुणोभा भिक्षावृत्तिने भाटे प्रमणु करे छे ये आशयने प्रकट करवा भाटे गाथामा द्रुम (वृक्ष) शब्द आपेले छे

अथवा येम समञ्जु के गाथामा द्रुम शब्दनी साथे छड़ी विलक्षितने प्रयोग करवामा आव्ये छे छड़ी विलक्षितने अर्थ सणध थाय छे येथी आ दृष्टात द्रुममा लागेला पुष्पोना रसने अदणु करनारा लभरानु न समञ्जु जेधये, भीज लभरानुनु नदि जेटले ये अर्थ थाय छे के जेम भ्रमर, द्रुम ( वृक्ष ) सणधी पुष्परसने न अदणु करे छे, भीज रसने नदि, तेम साधु पणु गृहस्थधी सणध राभनारा अर्थात् जेनी उपर गृहस्थने अधिकार छेय ते आहारनेन अदणु करे छे जे आहारने जेध गृहस्थ स्वामी नथे छेतो तेने साधु अदणु करतो नथी

सान्वयार्थः—जहा=जैसे, भमरो=भौरा, द्रुमस्म=वृक्षके पुष्पेसु=फूलोंमें ( रहे हुए ) रस=रसको आविषह=मर्यादानुसार पीता है, य=और पुष्क=फूलको ण कीलामेह=पीड़ित नहीं करता है, अ=तोभी सो=वह भौरा अप्पय=अपनेको पीणेह=सन्तुष्ट कर लेता है । अर्थात्—जैसे भौरा अनेक वृक्षोंके फूलोंसे थोड़ा थोड़ा रस उचित मात्रामें लेता है, ऐसा करनेसे वह सन्तुष्ट भी होजाता है और फूलोंकोभी फट नहीं देता ॥ २ ॥

टीका—यथा भ्रमरः—भ्राम्यति=एकत्र नावतिष्ठत इति भ्रमरः=चतुरिन्द्रिय जातिमान् भृङ्गपर्यायवाच्यः प्राणिविशेषः । द्रुमस्य, जात्येकत्वादेकवचनम्, 'सर्वो गच्छति' इत्यादिवात्, तेन द्रुमाणामित्यर्थः, द्रुमपदेन योगमर्यादया लतादीनामपि ग्रहण बोद्धव्यम्, पुष्पेषु स्थितमित्यस्याध्याहारः, रस=मकरन्दम् आपिबति=आ=मर्यादा-पूर्वकम् उचितादधिक परित्यज्य पिबति=पानत्रिपय करोति, अल्प गृह्णातीति भावः । चकारो हेत्वर्थे, तेन-च=अत एव पुष्प न कामयति=न पीडयति-लेशतोऽपि न म्लानयतीति यावत्, च=किञ्च स.=भ्रमरः आत्मान=स्व मीणाति=तोपयतीत्यर्थः ।

पुष्पाणि तु द्रुमलतादीनामेव भवन्ति पुनर्द्रुमपदोपादानम्—यथा भ्रमरः सर्वे पामेव द्रुमलतादीना पुष्पेषु रसमापिबति न चोचनीचादिभेदभाव रक्षति 'वृक्षोऽय-

जैसे भ्रमर, भ्रमण करके अनेक वृक्ष लता आदिकोंके पुष्पोंका थोड़ा रस मर्यादासे लेता है, अधिक नहीं, यानी ऐसा कि किसीको भी पीडा न देते हुए वह अपनी आत्माको तृप्त कर लेता है ।

प्रश्न—वृक्ष और लताओंमें ही फूल होते हैं फिर द्रुम (वृक्ष) शब्द देनेका क्या अभिप्राय है ? ।

उत्तर—जैसे भौरा सभी वृक्षों और लताओंके फूलोंका रस पीता है, ऊच-नीच भेद-भाव नहीं रखता कि—इस वृक्षमें कम फूल हैं और

जेम भ्रमर भ्रमण करीने अनेक वृक्ष लता आदिना पुष्पेना थोड़ा थोड़ा रस मर्यादापूर्वक ले छे, बहु लेतो नथी, अने जेवी रीत ले छे के के छे थु पुष्पने जराभे पीडा थाय नहि, जेम ते पीताना आत्माने तृप्त करी ले छे

प्रश्न—वृक्ष अने लताओं पर जे फूल थाय छे, तो वणी द्रुम (वृक्ष) शब्द छेवानी से छे

उत्तर—जेम भमरो णथा वृक्षो अने लताओंना फूलोना रस पीजे छे, उच-नीचने लेदभाव राखतो नथी के—आ वृक्ष पर जेछा फूल छे अने

मल्पपुष्पफलोऽयं च बहुपुष्पफलसमृद्धः' इति, तथा साधुरप्युच्चनीचादिभेदभाव विहाय सर्वत्र समानभावो गृहस्थकुलानां सकाशाद् यथोचिता भिक्षामाददीतेति सूचनार्थम् ।

यद्वा 'द्रुमस्त' इत्यत्र सम्बन्धसामान्यपठ्या द्रुमसम्बन्धिष्विति, अर्थादयं दृष्टान्तो द्रुमससक्तपुष्परसग्राहिणो भ्रमरस्य बोद्धव्यो नेतरस्य, ततश्च यथा भ्रमरो द्रुमसम्बद्धेषु स्थित रसमापिषति तथा साधुरपि गृहस्थसम्बन्धिनमेव, अर्थात् तत्स्वत्वयुक्तमेवाऽऽहार गृह्णीयात्तु स्वामिविरहितमित्यर्थः ।

इसमें अधिक, इसी प्रकार साधुभी द्रव्य-भावसे ऊच-नीच भेद-भाव न रखकर समानदृष्टिसे गृहस्थियोंके कुलोमें भिक्षा वृत्तिके लिए भ्रमण करते हैं । इस आशयको प्रगट करनेके लिए गाथामें 'द्रुम' शब्द दिया गया है ।

अथवा यों समझिये कि गाथामें 'द्रुम' शब्दके साथ पृष्ठीविभक्तिका प्रयोग किया गया है, पृष्ठी विभक्तिका अर्थ है 'सम्बन्ध' ।

इसलिए यह दृष्टान्त द्रुममें लगे हुए पुष्पके रसको ग्रहण करनेवाले भौंरेका ही समझना चाहिए, दूसरे भौंरेका नहीं । इससे यह अर्थ निकलता है कि जैसे भ्रमर, द्रुम (वृक्ष) सम्बन्धी पुष्परसको ही ग्रहण करता है, अन्य रसको नहीं, इसीभाँति साधुभी गृहस्थसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थात् जिसपर गृहस्थका अधिकार है उसी आहारको ग्रहण करते हैं, जिस आहारका कोई गृहस्थ स्वामी नहीं होता उसे नहीं ग्रहण करते ।

आ पर वधारे ठे, ओ प्रभावे साधु पशु द्रव्य-लावधी उच नीचने लेदलाव न राणीने समान दृष्टिधी गृहस्थेना कुणोमा भिक्षावृत्तिने भाटे भ्रमण करे छे ओ आशयने प्रकट करवा भाटे गाथामा द्रुम (वृक्ष) शब्द आपेले छे

अथवा ओम समञ्जसु के गाथामा द्रुम शब्दनी साथे छद्मी विभक्तिने प्रयोग करवामा आये छे छद्मी विभक्तिने अर्थ सगंध थाय छे अथी आ हृष्टात् द्रुममा लागेला पुष्पोना रसने अद्रव्य करनारा लभरातु न समञ्जसु लोभ्ये, पीला लभरायेतु नहि अेटले ओ अर्थ थाय छे के लोभ भ्रमर, द्रुम ( वृक्ष ) सगंधी पुष्परसने न अद्रव्य करे छे, पीला रसने नहि, तेम साधु पशु गृहस्थनी सगंध राषनारा अर्थात् लेनी उपर गृहस्थने अधिकार होय ते आहारने अद्रव्य करे छे ले आहारने ठोठ गृहस्थ स्वामी नथी होतो तेने साधु अद्रव्य करतो नथी

सान्वयार्थः—जहा=जैसे, भमरो=भौरा, द्रुमस्स=द्रुमके पुष्पेसु=फूलोंमें ( रहे हुए ) रस=रसको आश्रयिष्ठ=मर्यादानुसार पीता है, य=और पुष्कं=फूलको ण कीलामेह=पीड़ित नहीं करता है, अ=तोभी सो=यह भौरा अप्पय=अपनेको पीणेह=सन्तुष्ट कर लेता है । अर्थात्—जैसे भौरा अनेक वृक्षोंके फूलोंसे थोड़ा थोड़ा रस उचित मात्रामें लेता है, ऐसा करनेसे यह सन्तुष्ट भी होजाता है और फूलोंकोभी कष्ट नहीं देता ॥ २ ॥

टीका—यथा भ्रमरः—भ्राम्यति=एकत्र नाप्रतिष्ठत इति भ्रमरः=चतुरिन्द्रिय जातिमान् भृङ्गपर्यायवाच्यः प्राणिविशेषः । द्रुमस्य, जात्येकत्वादेकत्रचनम्, 'सर्वो गच्छति' इत्यादिवत्, तेन द्रुमाणामित्यर्थः, द्रुमपटेन योगमर्यादया लतादीनामपि ग्रहण बोद्धव्यम्, पुष्पेषु स्थितमित्यस्याध्याहारः, रस=मकरन्दम् आपिबति=आ=मर्यादा-पूर्वकम् उचितादधिक परित्यज्य पिबति=पानत्रिपय करोति, अस्य गृह्णातीति भावः । चकारो हेत्वर्थे, तेन-च=अत एव पुष्प न कामयति=न पीडयति-लेशतोऽपि न म्लानयतीति यावत्, च=किञ्च सः=भ्रमरः आत्मानं=स्व प्रीणाति=तोपयतीत्यर्थः ।

पुष्पाणि तु द्रुमलतादीनामेव भवन्ति पुनर्द्रुमपदोपादानम्—यथा भ्रमरः सर्वे पामेव द्रुमलतादीना पुष्पेषु रसमापिप्रति न चोच्चनीचादिभेदभाव रक्षति 'वृक्षोऽय

जैसे भ्रमर, भ्रमण करके अनेक वृक्ष लता आदिकोंके पुष्पोंका थोड़ा रस मर्यादासे लेता है, अधिक नहीं, यानी ऐसा कि किसीको भी पीडा न देते हुए वह अपनी आत्माको तृप्त कर लेता है ।

प्रश्न—वृक्ष और लताओंमें ही फूल होते हैं फिर द्रुम (वृक्ष) शब्द देनेका क्या अभिप्राय है ? ।

उत्तर—जैसे भौरा सभी वृक्षों और लताओंके फूलोंका रस पीता है, ऊच नीच भेद-भाव नहीं रखता कि-इस वृक्षमें कम फूल है और

जेम भ्रमर भ्रमण करीने अनेक वृक्ष लता आदिना पुष्पेना थोडा थोडा रस मर्यादापूर्वक ले छे, बहु लेतो नथी, अने जेवी रीत ले छे के केछ पक्ष पुष्पने जराजे पीडा थाय नडि, जेम ते पीताना आत्माने तृप्त करी ले छे  
प्रश्न—वृक्ष अने लताओं पर जे कूल थाय छे, तो वणी द्रुम (वृक्ष) शब्द कडेवानो शे छेतु छे

उत्तर—जेम भमरो यथा वृक्षो अने लताओंना कूलोना रस पीजे छे, उच-नीचने लेदभाव राखतो नथी के-आ वृक्ष पर जोछा कले छे अने

‘पुष्प’ इत्येकवचनेन ‘यथा भ्रमर एकमपि पुष्पं न कामयति तथा साधु-  
रपि कश्चिदेकमपि दातारं न त्रिपादयेदिति सूचितम् ।

यथा जलधरो न कञ्चिदुद्दिश्य जलं मुञ्चति, यथा या शाखिनः स्वीयनाम-  
गोत्रकर्मोदयेन पुष्प-फलानि स्वभावत एव समुत्पादयन्ति तथा गृहस्था अपि  
स्वधुधावेदनीयोदयेन यथासमयं दिवसे निशाया वा रन्धयन्ति, यथा च यत्र  
भ्रमरा भ्रं गन्तुं शक्नुवन्ति तत्रापि द्रुमाः पुष्प्यन्त्येव तथा साधुना तपोऽवस्थाया  
रात्रौ साधुसंस्थितिरहितेषु ग्रामनगरनिगमादिषु च गृहस्थाः पाकं सम्पादयन्त्ये-  
वेति नास्ति गृहस्थसम्पादितपाकस्य साधुभिक्षाहेतुत्वम् ।

गाथाके उत्तरार्द्धमें ‘पुष्प’ इस एकवचनसे ऐसा सूचित होता है  
कि जैसे भ्रमरा एकभी पुष्पको पीड़ा नहीं पहुँचाता है वैसे ही साधु  
किसी एकभी दाताको कष्ट न पहुँचावे ।

जैसे मेघ, किसीको उद्देश्य करके पानी नहीं बरसाता अथवा जैसे  
वृक्ष, अपने नाम-गोत्र कर्मके उदयसे ही बिना किसीको उद्देश्य करके  
स्वभावसे ही फल-फल उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार गृहस्थ अपने धुधा-  
वेदनीय कर्मके उदयसे जत्र आवश्यकता होती है भोजन बनाते हैं ।  
अथवा जैसे जहाँ भ्रमरे नहीं जा सकते वहाँ परभी वृक्ष फूलते ही हैं, वैसे  
ही साधु जत्र तपस्या करते हैं, या जहाँ साधु नहीं होते उस ग्राम नगर  
आदिमें भी दिन या रात्रिमें गृहस्थ भोजन बनाते ही हैं, इसलिए  
‘गृहस्थ जो भोजन बनाते हैं वह साधुओंके निमित्त होता है’ ऐसा नहीं  
समझना चाहिये ।

गाथाना उत्तरार्धभा ‘पुष्प’ अे अेकवचननथी अेम सूचित थाय अे अे  
अेम अेमरे अेक पणु पुष्पने पीडा उपनवतो नथी, तेमअ साधुअे डोअपणु दाताने  
अेक न उपनवते।

अेम अेघ, अेअने उद्देश्य करीने पाणी वरसावतो नथी, अथवा अेम वृक्ष,  
पेताना नाम गोत्र कर्मना उदयथी अे अेअने उद्देश्य कर्या विना स्वभावथी अे  
अेअ डूल उत्पन्न करे अे, तेम गृहस्थ पेताना धुधा-वेदनीय कर्मना उदयथी  
अ्यारे आवश्यकता लागे अे त्यारे भोजन जनाने अे अथवा अेम अ्यथा अेमरा न  
अेअ अेअे तेवे स्थणे पणु वृक्ष डूल अे, तेम अे साधु अ्यारे तपस्या करे अे  
त्यारे, अने अ्यथा साधु नथी अेअता ते ग्राम नगर आदिमा पणु दिवसे या रात्रिअे  
गृहस्थो भोजन तो जनाने अे अे, अेथी ‘गृहस्थ अे भोजन जनाने अे ते  
साधुअेने निमित्त अेअ अे’ अेम न समअणु अेअअे



‘पुष्पेष्ट’ इति प्रसूनकुसुमादिपर्यायान्तर परिहाय पुष्पपदोपादाने विकसितार्योऽभिप्रेतस्ततश्च यथा भ्रमरो विकसितेष्पेय पुष्पेषु स्थित रस वृद्धति तथा साधुरपि दावृत्त्वभाप्रसन्नेभ्यो निर्जुगुप्सेभ्यश्च कुलेभ्य आहार वृद्धीयादित्यर्थः ।

‘भ्रमरो’ इत्यनेन इतस्ततो भ्रमणेन किञ्चित्किञ्चिदाहारग्रहण सूचितम् । मर्यादार्यकेनोपसर्गेणाऽऽटा ‘यायानाहारोऽपेक्षितस्तावानेव ग्रहीतव्यः’ इति सूचितम् ।

‘पुष्प’ शब्दके प्रसून कुसुम आदि अनेक पर्याय शब्द होनेपर भी गाथामें प्रसून या कुसुम आदि अन्य शब्द न देकर ‘पुष्प’ शब्द ही दिया है, इससे सूत्रकारका आशय खिले हुए फूलोंसे है ऐसा स्पष्ट होता है, क्योंकि खिले हुए फूलका ही नाम पुष्प है, इसलिए भ्रमर, जैसे खिले हुए फूलों पर ही ठहरता है और उन्हींका रसपान करता है उसी प्रकार साधुभी उन्हीं गृहस्थोंसे आहार लेते हैं जिनका साधुओंको आहार देनेका भाव हो, तथा जो कुल दुग्धित न हो ।

भ्रमरके भी पदपद द्विरेक आदि अनेक नाम हैं, उनमेंसे दूसरा कोई शब्द न देकर ‘भ्रमर’ पद दिया है, ‘भ्रमर’ शब्दका अर्थ है भ्रमण करने वाला—एक स्थानपर न ठहरने वाला, इस शब्दको देनेका आशय यह है कि साधुको इधर—उधर भ्रमण करके थोड़ा आहार लेना चाहिए, जिससे गृहस्थ फिर आरंभ न करे । मर्यादा अर्थवाले ‘आ’ उपसर्गको देनेका तात्पर्य यह है कि जितने आहारकी आवश्यकता हो उतनाही लेवे, अधिक नहीं ।

पुष्प शब्दना प्रसून कुसुम आदि अनेक पर्याय शब्दों द्वारा छटा गाथामें प्रसून के कुसुम आदि अन्य शब्द न आपता पुष्प शब्द न आप्यो छे जेभा सूत्रकारने आशय भीलेला इवेने छे जेम स्पष्ट थाय छे, कारण के भीलेला इलेतु न नाम पुष्प छे जेथी भ्रमर, जेम भीलेला इले पर न जेसे छे अने तेरु रसपान करे छे, तेम साधु पण जेवा गृहस्थो पासथी आहार ले छे के जेमने लाव साधुजोने आहार आपवानो होय अने जे कुण दुग्धित न होय

भ्रमरना पण पदपद द्विरेक आदि अनेक नामो छे, तेमाथी भीले केठ शब्द न आपता ‘भ्रमर’ शब्द आप्यो छे भ्रमर शब्दने अर्थ थाय छे भ्रमण करनार—जेक स्थानपर जेसी न रहनेनार, जे शब्द आपवानो आशय जे छे के साधुजे अर्ही—तर्ही भ्रमण करीने थोडा थोडा आहार लेवे जेधजे, जेथी गृहस्थ इरी आरल न करे मर्यादा अर्थवाणे आ उपसर्ग आपवानुं तात्पर्य जे छे के नेटला आहारनी आवश्यकता होय जेटलो न लेवे वधारे नहि

‘पुष्प’ इत्येकवचनेन ‘यथा भ्रमर एकमपि पुष्प न क्लामयति तथा साधु-  
रपि कञ्चिदेकमपि दातार न त्रिपादयेदिति सूचितम् ।

यथा जलधरो न कञ्चिदुद्दिश्य जल मुञ्चति, यथा वा गाखिनः स्वीयनाम-  
गोत्रकर्मोदयेन पुष्प-फलानि स्वभावत एव समुत्पादयन्ति तथा गृहस्था अपि  
स्वशुधावेदनीयोदयेन यथासमय दिवसे निशाया वा रन्धयन्ति, यथा च यत्र  
भ्रमरा न गन्तु शक्नुवन्ति तत्रापि द्रुमाः पुष्प्यन्त्येव तथा साधुना तपोऽवस्थाया  
रात्रौ साधुसंस्थितिरहितेषु ग्रामनगरनिगमादिषु च गृहस्थाः पाक सम्पादयन्त्ये-  
वेति नास्ति गृहस्थसम्पादितपाकस्य साधुभिक्षाहेतुत्वम् ।

गाथाके उत्तरार्द्धमें ‘पुष्प’ इस एकवचनसे ऐसा सूचित होता है  
कि जैसे भैंरा एकभी पुष्पको पीडा नहीं पहुँचाता है वैसे ही साधु  
किसी एकभी दाताको कष्ट न पहुँचावे ।

जैसे मेघ, किसीको उद्देश्य करके पानी नहीं बरसाता अथवा जैसे  
वृक्ष, अपने नाम-गोत्र कर्मके उदयसे ही विना किसीको उद्देश्य करके  
स्वभावसे ही फल-फूल उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार गृहस्थ अपने शुधा-  
वेदनीय कर्मके उदयसे जय आवश्यकता होती है भोजन बनाते हैं ।  
अथवा जैसे जहाँ भौरे नहीं जा सकते वहाँ पर भी वृक्ष फूलते ही हैं, वैसे  
ही साधु जय तपस्या करते हैं, या जहाँ साधु नहीं होते उस ग्राम नगर  
आदिमें भी दिन या रात्रिमें गृहस्थ भोजन बनाते ही हैं, इसलिए  
‘गृहस्थ जो भोजन बनाते हैं वह साधुओके निमित्त होता है’ ऐसा नहीं  
समझना चाहिये ।

गाथाना उत्तरार्धभा ‘पुष्प’ ओ ओकवचनथी ओम सूचित थाय छे डे  
ओम लभरे ओक पणु पुष्पने पीडा उपब्धवतो नथी, तेमज साधुओ डेधपणु दाताने  
कष्ट न उपब्धवते ।

ओम मेघ, डेधने उद्देश्य करीने पाणी बरसावतो नथी, अथवा ओम वृक्ष,  
पेताना नाम गोत्र कर्मना उद्देश्यथी न डेधने उद्देश्य कर्या विना स्वभावथी न  
इणकूल उत्पन्न करे छे, तेम गृहस्थ पेताना शुधा-वेदनीय कर्मना उद्देश्यथी  
न्यारे आवश्यकता लागे छे त्यारे लोजन गनावे छे अथवा ओम न्या लभरा न  
जर्ष शडे तेवे स्थणे पणु वृक्ष कूल छे, तेम न साधु न्यारे तपन्या करे छे  
त्यारे, अने न्या साधु नथी छेता ते ग्राम नगर आदिमा पणु दिवसे या रात्रिसे  
गृहस्थो लोजन तो गनावे न छे, ओथी ‘गृहस्थ न लोजन गनावे छे ते  
साधुओके निमित्त छेय छे’ ओम न समजवु ओधओ

નનુ વિપમોડ્ય ભ્રમરદ્દાન્તઃ, તથાદિ-ભ્રમરો દ્વમાત્મામન્તરેણેવ પુષ્પરસમાદત્ત  
 ભિક્ષુઃ પુનર્યાચિત્વૈય, મિત્ર તન્મર્થ કદાચિદેકસ્મિન્નપિ દિને મુદ્દર્શ્યુરેક દ્વમમુષૈતિ  
 તત્કિ સાધયોડપિ તથૈવ ગૃહસ્થેભ્યો મિક્ષા ગૃહીયુઃ ? કિન્ન ભ્રમરોડસઞ્જી, સાધ-  
 યસ્તુ સઙ્ગિનો જિનચનનિપુણાથ, ભ્રમરોડગ્રતી સાધયસ્તુ પ્રતિનઃ, ભ્રમરો-  
 ડપ્રત્યાખ્યાની સાધયસ્તુ પ્રત્યાર્યાનિનઃ, ભ્રમરોડસયત સાધયસ્તુ સયતાઃ, ઇત્યાદિ  
 વિરુદ્ધધર્મગાલિત્વાદિતિ ચેન્ન, સર્વેવ દ્દાન્તસ્યૈકદેશિરુપત્ત્રાત્, અનેકપુષ્પતઃ  
 પુષ્પાડહાન્તિપૂર્વકકિન્નિત્કિન્નિદુપાદાનમાત્રે દ્દાન્તતાત્પર્યમિતિ નિષ્કર્ષઃ, સ્ફુટી

પ્રશ્ન—ભ્રમરકા ઉદાહરણ વિષમ છે, કારણ યદ્ કિડસકા સાધુઓકે  
 સાધ ઠીક મિલાન નહીં હોતા । ક્યોંકિ, ભ્રમર વૃક્ષકી આજ્ઞા પ્રાપ્ત કિયે  
 વિના હી પુષ્પરસ પીતા છે, સાધુ યાચના કરકે હી ભિક્ષા લેતે હૈ, ભ્રમર  
 ઇક દિનમેં ઇકહી વૃક્ષકે પાસ વારમ્બાર જાતા હૈ ઓર પુષ્પરસકો પીતા  
 હૈ, સાધુ ઇક દિનમે વારમ્બાર ઇક ગૃહસ્થકે ઘરસે ભિક્ષા નહીં લે સકતે,  
 ભ્રમર અસઞ્જી હોતા હૈ, સાધુ સઞ્જી હોતે હૈ, ભ્રમર અપ્રત્યાર્યાની હોતા હૈ,  
 સાધુ પ્રત્યાખ્યાની હોતે હૈ, ભ્રમર અસયત હોતા હૈ, સાધુ સયત હોતે હૈ,  
 ઇત્યાદિ અનેક ભિન્નતાઈ પાચી જાતી હૈ ।

ઉત્તર—ઇસી શકા ઠીક નહીં હૈ, ક્યોંકિ દ્દાન્ત સબ જગહોંમેં ઇક-  
 દેશીય હી હોતા હૈ, ‘પીડા ન પહુચાતે દ્દુષ્ણ અનેક પુષ્પોસે યોડા યોડા  
 લેના’ ઇતને અશોમેં યદ્ દ્દાન્ત સમજ્ઞના ચાહિયે । ઇસ વિષયકા સ્પષ્ટી-

પ્રશ્ન—ભ્રમરનુ ઉદાહરણ વિષમ છે, કારણ કે તે સાધુઓની સાથે ધરાધર  
 બધ છેસતુ નથી ભ્રમર વૃક્ષની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કર્યા વિના જ પુષ્પનો રસ પીએ  
 છે સાધુ યાચના કરીને જ ભિક્ષા લે છે ભ્રમર એક દિવસમા એક જ વૃક્ષની  
 પાસે વાર વાર બધ છે અને પુષ્પરસને પીએ છે, સાધુ એક દિવસમા વાર વાર  
 એક ગૃહસ્થના ઘેરથી ભિક્ષા નથી લઈ શકતા, ભ્રમર અસઞ્જી હોય છે, સાધુ  
 સઞ્જી હોય છે, ભ્રમર અપ્રતી હોય છે, સાધુ પ્રતી હોય છે, ભ્રમર અપ્રત્યા  
 ખ્યાની હોય છે, સાધુ પ્રત્યાખ્યાની હોય છે ભ્રમર અસયત હોય છે, સાધુ  
 સયત હોય છે ઇત્યાદિ અનેક ભિન્નતાઓ રહેલી છે

ઉત્તર—એ શકા ધરાધર નથી, કારણકે દ્દાન્ત બધી જગ્યાએ એક  
 દેશીય જ હોય છે ‘પીડા ઉપજાવ્યા વિના અનેક પુષ્પોમાથી થોડા થોડા રસ  
 લેવો’ એટલા અશમા જ આ દ્દાન્ત સમજ્ઞુ બોધએ આ વિષયનુ સ્પષ્ટી

करिष्यति चैतस्सूत्रकारः स्वयम्-‘महुगारसमा’ इति पञ्चमगाथया ॥२॥

एतदेव विशेषेण स्फोरयितुं दाष्टान्तिकमाह-‘एमेए’ इत्यादि

मूलम्-<sup>१</sup>ए<sup>५</sup>मे<sup>४</sup>ए<sup>३</sup> सम<sup>२</sup>णा<sup>७</sup> मु<sup>६</sup>क्ता, जे<sup>१०</sup> लो<sup>८</sup>ए<sup>११</sup> स<sup>१२</sup>ति सा<sup>१२</sup>हुणो ।

विहंगमा च पुष्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥३॥

छाया-एवमेते श्रमणा मुक्ता, ये लोके सन्ति साधवः ।

विहङ्गमा इव पुष्पेषु, दानभक्तैपणे रताः ॥३॥

सान्वयार्थः—एमेए=इसीप्रकार ये लोए=लोमम जे=जो मुक्ता=द्रव्यभाव-परिग्रहरहित समणा=तपस्वी साहुणो=साधु सति=है, (वे) पुष्फेसु=फूलोंमें विहंगमा च=पक्षियों-भमरोंकी तरह दाणभत्तेसणे=दाता द्वारा दियेजाने वाले आहारकी गवेषणामें रया=लीन रहते हैं । अर्थात्—जैसे पूर्वोक्त प्रकारसे भौरा पुष्परसका पान करता है उसी प्रकार साधु गृहस्थियोंको अमुविधा न पहुंचाते हुए अनेक घरोंसे थोडा-थोडा आहार ग्रहण करते हैं ॥ ४ ॥

टीका—एवम्=उक्तप्रकारेण ये लोके=समयक्षेत्रे सन्ति=वर्तन्ते एते=ते सर्वे श्रमणाः । ‘श्रमणाः, गमनाः समनसः, समणाः’ इत्येतेषां प्राकृते ‘समणा’ इति रूप

करण सूत्रकार स्वयं ‘महुगारसमा’ इस पांचवीं गाथामें करेंगे ॥२॥

अब विशेष खुलासा करनेके लिए दाष्टान्तिक कहते हैं—

इस प्रकार अढ़ाई द्वीपमें जितने श्रमण, मुक्त, साधु हैं वे सब दाताद्वारा दिये जाते हुए आहारकी एषणामें इस प्रकार प्रयत्न करें जैसे भ्रमर पुष्पोंके रसके अन्वेषणमें लीन होता है ।

श्रमण, शमन, समनस, समण, इन सब शब्दोंका प्राकृत भाषामें

कश्च सूत्रकार पीते ५ महुगारसमा ओ पाचमी गाथाभा कश्चे (२)

हुवे विशेष खुलासा करवाने दाष्टान्तिक कहे छे—

आ प्रभाण्णे अढी द्वीपभा नेटला श्रमण्ण, मुक्ता, साधुण्णे छे तेण्णे अथा दाता द्वारा आपवाभा आपता आहारनी अेषण्णामा अेषो प्रयत्न करे के नेभ भ्रमर पुष्पाना रसना शोधनभा लीन थाय छे

श्रमण्ण, शमन, समनस, समण्ण, ओ अथा शब्दोक्त प्राकृत भाषामा

નતુ વિપમોડ્ય ભ્રમરદ્દાન્તઃ, તથાદિ-ભ્રમરો દ્રુમાન્નામન્તરેણ વ પુષ્પરસમાદત્ત મિશ્રુ' પુનર્યાચિત્વૈય, કિञ્ચ તદર્થે કઠાચિદેકસ્મિન્નપિ દિને મુદુર્મુદુરેક દ્રુમશુપેતિ તત્કિ સાધમોડપિ તથૈય ગૃહસ્થેભ્યો મિસા ગૃહીયુઃ ? કિञ્ચ ભ્રમરોડસઙ્ગી, સાધ-વસ્તુ સઙ્ગિનો જિનરચનનિપૂણાશ્ર, ભ્રમરોડયતી સાધવસ્તુ પ્રતિનઃ, ભ્રમરો ડપ્રત્યાખ્યાની સાધવસ્તુ પ્રત્યાગ્યાનિનઃ, ભ્રમરોડસંયતઃ સાધવસ્તુ સયતાઃ, રૂપાદિ-વિરુદ્ધધર્મશાલિત્વાદિતિ ચેન્ન, સર્વે દ્દાન્તસ્યૈકદેશિરૂપત્વાત્, અનેકપુષ્પતઃ પુષ્પાડાન્તિપૂર્વકકિચ્ચિત્કિચ્ચિદુપાદાનમાત્રે દ્દાન્તતાત્પર્યમિતિ નિષ્કર્ષઃ, સ્ફુટી

પ્રશ્ન—ભ્રમરકા ઉદાહરણ વિષય છે, કારણ યદ્ કિ ઉમકા સાધુઓકે સાથ ઠીક મિલાન નહીં હોતા । સ્યોકિ, ધ્રમર વૃક્ષકી આજ્ઞા પ્રાપ્ત કિયે વિના હી પુષ્પરસ પીતા છે, સાધુ યાચના કરકે હી ભિક્ષા લેતે હૈ, ભ્રમર એક દિનમે ંકહી વૃક્ષકે પાસ વારમ્વાર જાતા છે ંર પુષ્પરસકો પીતા છે, સાધુ એક દિનમે વારમ્વાર ંક ગૃહસ્થકે ઘરસે ભિક્ષા નહીં લે સકતે, ભ્રમર અસઙ્ગી હોતા છે, સાધુ સઙ્ગી હોતે હૈ, ભ્રમર અપ્રત્યાખ્યાની હોતા છે, સાધુ પ્રત્યાખ્યાની હોતે હૈ, ભ્રમર અસયત હોતા છે, સાધુ સયત હોતે હૈ, રૂપાદિ અનેક ભિન્નતાઈ પાચી જાતી હૈ ।

ઉત્તર—એસી શકા ઠીક નહીં છે, ક્યોકિ દ્દાન્ત સવ જગત્તેમ્ એક-દેશીય હી હોતા છે, 'પીડા ન પહુચાતે હુએ અનેક પુષ્પોસે થોડા થોડા લેના' રતને અશોમે યદ્ દ્દાન્ત સમજના ચાહિયે । રસ વિષયકા સ્પષ્ટી

પ્રશ્ન—ભ્રમરનુ ઉદાહરણુ વિષય છે, કારણુ કે તે સાધુઓની સાથે વારાબર બધ બેસતુ નથી ભ્રમર વૃક્ષની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કર્યા વિના જ પુષ્પનો રસ પીએ છે સાધુ યાચના કરીને જ ભિક્ષા લે છે ભ્રમર એક દિવસમા એક જ વૃક્ષની પાસે વાર વાર બધ છે અને પુષ્પરસને પીએ છે, સાધુ એક દિવસમા વાર વાર એક ગૃહસ્થના ઘેરથી ભિક્ષા નથી લઈ શકતા, ભ્રમર અસઙ્ગી હોય છે, સાધુ સઙ્ગી હોય છે, ભ્રમર અપતી હોય છે, સાધુ નતી હોય છે, ભ્રમર અપ્રત્યાખ્યાની હોય છે, સાધુ પ્રત્યાખ્યાની હોય છે ભ્રમર અસયત હોય છે, સાધુ સયત હોય છે ંત્યાદિ અનેક ભિન્નતાઓ રહેલી છે

ઉત્તર—એ શકા વારાબર નથી, કારણુકે દ્દાન્ત બધી જગ્યાએ એક દેશીય જ હોય છે ' પીડા ઉપજાવ્યા વિના અનેક પુષ્પોમાથા થોડા થોડા રસ લેવો' એટલા અશમા જ આ દ્દાન્ત સમજલુ બેઠએ આ વિષયનુ સ્પષ્ટી

जीवन्तीति वा समणाः । मुक्ताः=परिग्रहवन्धनरहिताः धर्मोपकरण विहाय सूची-  
कुशाग्रमात्रेणापि परिग्रहेण रिक्ता इति यावत्, तत्र परिग्रहो बाह्याभ्यन्तरभेदाद्द्वि-  
विधः, तयोराद्यो धनधान्यादिरूपो नवविधः । द्वितीयस्तु—

“ मिच्छत वेयतिग, हासाइयच्छक्क च नायव्व ।

कोहाईण चउक्क, चउदस अविभतरा गठी ॥ ” इत्युक्तरूपः ।

साधवः=सानुवन्ति=निष्पादयन्ति स्वपरशिवसुख ये ते, पुष्पेषु=व्याख्यात-  
पूर्वेषु विहङ्गमा इव, विहायसा=गगनेन गच्छन्तीति तथोक्ता, प्रकरणादत्र भ्रमरा  
इत्यर्थः, त इव, भ्रमरतुल्या इति यावत् ।

एव दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्मिथः सादृश्य प्रदर्श्य सम्प्रति यः कश्चिद् भेदस्तमाह-

परिग्रहके बन्धनसे रहित अर्थात् धर्मके उपकरणोके सिवाय सुई या  
कुशकी नोकके चराचर भी परिग्रह न रग्वनेवालोको मुक्त कहते है ।

परिग्रहके दो भेद हैं—(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर । पहला बाह्य  
परिग्रह धन-धान्य आदि नौ प्रकारका है । दूसरा आभ्यन्तर परिग्रह-  
(१) मिथ्यात्व, (२) स्त्रीवेद, (३) पुरुषवेद, (४) नपुंसकवेद, (५) हास्य,  
(६) रति, (७) अरति, (८) शोक, (९) भय, (१०) जुगुप्सा, (११) क्रोध,  
(१२) मान, (१३) माया और (१४) लोभके भेदसे चौदह प्रकारका है ।

स्व और परके मोक्ष सम्बन्धी सुखको साधनेवाले साधु कहलाते हैं ।  
ऐसे साधु, दिये जानेवाले अज्ञान आदिकी उपणामे प्रवृत्त होवें  
—आहार-पानी की विशुद्धिमें लीन रहें ।

यहां तक दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिककी परस्परमे समानता बतलाई है ।

परिग्रहना ऽधनथी रहित अर्थात् धर्मना उपकरणो सिवाय ओक सोय डे  
तणुपवा नेटवो पणु परिग्रह न राणनाराओने मुत्त कडे छे

परिग्रहना ओ लेह छे (१) ऽह्य अने (२) आभ्यन्तर पडेवो ऽह्य परि  
ग्रह धन-धान्यादि नव प्रकारनो छे ऽह्यो आभ्यन्तर परिग्रह—(१) मिथ्यात्व,  
(२) स्त्रीवेद, (३) पुरुषवेद, (४) नपुंसकवेद, (५) हास्य, (६) रति, (७) अरति,  
(८) शोक, (९) भय, (१०) जुगुप्सा, (११) क्रोध, (१२) मान, (१३) माया,  
अने (१४) लोभ, ओ लेहोओ करीने १४ प्रकारनो छे

स्व अने परना मोक्ष सणधी सुणने साधनारा साधु कडेवाय छे ओवा  
साधु, आपवामा आपता अज्ञान आदिनी ओषणामा प्रवृत्त थाय, आहार पाणीनी  
विशुद्धिमा लीन रहे

अर्द्धी सुधी दृष्टान्त अने दार्ष्टान्तिकनी परस्पर समानता बतानी छे ७७

भयति, तत्र श्राम्यन्ति=तपस्पन्त्याहारादिनिरासेन शरीर वल्लेभयन्तीति, भवभ्रम-  
णहेतुभूतविषयेषु खिण्यन्तीति, यद्वा अन्तर्भाषितण्यर्थेऽत्रात् श्राम्यन्ति=दमनेन  
श्रमयन्तीन्द्रियनोइन्द्रियाणीति श्रमणाः, शमयन्ति=शान्तिं नयन्ति कपायनोकपाय-  
रूपाऽनलमिति, शाम्यन्ति=विशद्वृत्तभवाट्टीपर्यटनो गानलोऽज्जलज्वालामाला  
जनितसन्तापकृशापतो निवृत्ता भयन्तीति वा शमनाः । समानानि=स्वपरेषु  
तुल्यानि मनासि येषामिति, कुशलमयैर्मनोभिः सह वर्तन्त इति वा समनसः,  
सम्=सम्यक् अणन्ति=प्रवचन द्युत इति, सम्यक् अण्यन्ते=कपायचतुष्टय जित्वा

‘समण’ रूप होता है । इनमें ‘श्रमण’ का अर्थ यह है कि जो अनशन  
आदि तप करते हैं-परिषद सहते हैं, ससारमें परिभ्रमण करानेवाले  
इन्द्रियोंके विषयोंसे उदास रहते हैं, अथवा जो पांच इन्द्रियोंका तथा  
मनका दमन करते हैं । ‘शमन’का अर्थ यह होता है कि कपाय-क्रोध  
मान माया और लोभ तथा नोकपाय-हास्य रति अरति शोक भय  
जुगुप्सा स्त्रीवेद पुंस्ववेद और नपुंसकवेद-रूपी अग्निको शान्त कर देते हैं,  
विशाल भवाट्टीमें पर्यटन करते हुए भोगरूपी अग्निकी घघकती हुई  
ज्वालाओंसे उत्पन्न हुए सतापके समूहको शुद्ध भावनासे शान्त कर-  
देते हैं । ‘समनस्’ शब्दका यह अर्थ है कि जिनका मन स्व और पर में  
समान है, अथवा जिनके मनोयोग सदा शुद्ध रहते हैं । ‘समण’ शब्दका  
अर्थ यह है कि-जो सम्यक् प्रकारसे प्रवचनका प्रतिपादन करते हैं अथवा  
चारों कपायोंको जीत लेते हैं ।

‘समण’ इयं शायं छे ‘श्रमण’ना अर्थं ज्येवो छे डे-ले अनशन आदि तप  
करे छे-परिषद सहे छे, ससारमा परिभ्रमण करानेवाला इन्द्रियोंना विषयोधी  
उदास रहे छे, अथवा ले पांच इन्द्रियोंनुं तथा मननुं दमन करे छे, ‘शमन’  
ना अर्थं ज्येवो शायं छे डे-कपाय-क्रोध मान माया अने लोभ, तथा नोकपाय-  
हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुंस्ववेद अने नपुंसकवेद-  
रूपी अग्निने शान्त करी नाणे छे, विशाल भवाट्टीमा पर्यटन करता लोगरूपी  
अग्निनी ललकती ज्वालाओंमाथी उत्पन्न थता सतापना समूहने शुद्ध भाव  
नाथी शान्त करी नाणे छे ‘समनस्’ शब्दने अर्थं ज्येवो छे डे-लेनुं मन  
स्व अने परमा समान होय अथवा लेना मनोयोग उद्देश्य शुद्ध रहे ‘समण’  
शब्दने अर्थं ज्येवो शायं छे डे-ले सम्यक् प्रकारे प्रवचननुं प्रतिपादन करे छे  
अथवा चारों कपायोंने जीती ले छे

मपि व्यवच्छिद्यते । आधाकर्मादिदोषव्यावृत्तये 'एषणा'—पदमुपात्तम् ।

एवमुक्तगाथाभ्या दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकप्रदर्शनपुरस्सर साधुभिः कथं भिक्षा प्रहीतव्येत्युक्त, तत्र भिक्षा द्विविधा-लौकिकी लोकोत्तरा च । तयोराद्या दीनवृत्ति-पौरुषपत्नी-भेदाद् द्विविधा, तत्र स्वोदरभरणासमर्थानां हीना-अनाथ-पद्मगुणभृती-नामाद्या, पञ्चास्रवभाजामिन्द्रियपञ्चकविषयासक्तचित्तानां प्रमादपञ्चकप्रवृत्तानां भोगमिपगृह्णूनां सन्ततिसमुत्पादकानां निरुग्रमानां द्वितीया । लोकोत्तराऽपि

निराकरण करनेके लिए 'भक्त' शब्द और आधाकर्मी आदि दोषवाले आहारका व्यवच्छेद करनेके लिए 'एषणा' शब्द गाथामें दिया गया है ।

इन दो गाथाओंमें दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक बतलाकर यह प्रगट किया है कि साधुओंको किस प्रकार भिक्षा लेनी चाहिये?, अतः भिक्षाके भेद कहते हैं—

भिक्षा दो प्रकारकी है-लौकिक भिक्षा और लोकोत्तर भिक्षा । लौकिक भिक्षाके भी दो भेद हैं-(१) दीनवृत्ति, (२) पौरुषपत्नी । अपना पेट भरनेमें असमर्थ, दीन, हीन, अनाथ, लूठों, लगडोंकी भिक्षा दीनवृत्ति कहलाती है । पांच आस्रवोंका सेवन करनेवाले, पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें चित्तको सदा आसक्त रखनेवाले, पांचों प्रकारके प्रमादोंमें प्रवृत्ति करनेवाले, भोगरूपी आमिषमें अभिलाषा रखनेवाले, चाल-बच्चोंको उत्पन्न करनेवाले निकम्मे मनुष्योंको दी जानेवाली भिक्षा पौरुषपत्नी कहलाती है, क्योंकि इससे उनका पौरुष नष्ट हो जाता है ।

आधाकर्मी आदि दोषवाला आहारको व्यवच्छेद करवाने भाटे एषणा शब्द गाथाभा आपवाभा आवेदो छे

आ वे गाथाभ्यामा दृष्टान्तं अने दार्ष्टान्तिकं प्रतापीने अथ प्रकट करवाभा आन्धु छे के साधुभ्यामे देवा प्रकारनी भिक्षा लेवी नेधमे भाटे भिक्षाना लेदो कडे छे—

भिक्षा वे प्रकारनी छे लौकिक भिक्षा अने लोकोत्तर भिक्षा लौकिक भिक्षाना पक्षु वे लेदो छे (१) दीनवृत्ति, (२) पौरुषपत्नी पोतानुं पेट भरवाभा असमर्थ दीन, हीन, अनाथ, लूठा, लगडानी भिक्षा दीनवृत्ति कडेवाय छे पाच आस्र वेनुं सेवन करनारा, पाचे इन्द्रियोना विषयोभा चित्तने सदा आसक्त राधनारा पाचे प्रकारना प्रमादोभा प्रवृत्ति करनारा, भोगरूपी आमिषभा अभिलाषा राध नारा, पाण-पञ्चाने उत्पन्न करनारा, अथ नकाभा मनुष्योने आपवाभा आवती भिक्षा पौरुषपत्नी कडेवाय छे, कारण के तेथी अथेभनुं पौरुष नष्ट थथ जय छे



यद्वा यथा विद्वद्गमाः पुष्पेषु तथा साधवः कुत्र रताः ? इत्याह—‘दानमक्षैपणे रताः’ इति, दीयत इति, अदायीति वा दान=दीयमानमथवा दत्त, तत्र तद्भक्तम्=अन्नादिकं च दानभक्त तस्य एषणम्=अन्वेषणं तस्मिन्, अथवा दान=दत्त, भक्त=मासुरुम्, एषणा=अन्वेषणम् एतेषां समाहारद्वन्द्वे दानमक्षैपणं तस्मिन् रताः=आसक्ता इत्यर्थः ।

बोटिक-शाक्य तापस-गैरिका-ऽऽजीवा अपि लोके श्रमणपदेनोच्यन्ते तेषां निरासार्थमुक्तं ‘मुक्ता’ इति । निह्वादिष्वपि व्यवहारतो मुक्तत्वमस्त्यतस्तद्व्याप्यार्थमाह—‘साहुणो’ इति । मधुरा अदत्ताऽऽदानवृत्त्या कुमुमरसं पिबन्ति श्रमणास्तु दातृभिरदत्तस्यान्नादेर्निघृष्टामपि न कुर्वते ग्रहणस्य तु कथैव केति श्रमरापेक्षया साधूनां व्यतिरेकं दर्शयितुमाह—‘दान’ इति । ‘भक्त’ पदेन सचित्त-

अथ उनमें जो अन्तर है उसे भी बतलाते हैं । वह अन्तर यह है कि जैसे भ्रमर पुष्पोंमें अनुरक्त होता है वैसे साधु गृहस्थद्वारा दिये जाने वाले अशन पान आदिके अन्वेषणमें प्रवृत्त होंगे ।

बोटिक, शाक्य, तापस, गैरिक और आजीविक आदिभी, लोकमें श्रमण कहलाते हैं, उनका निराकरण करनेके लिए गाथामें ‘मुक्ता’ (मुक्ताः) कहा है । निह्व आदिभी व्यवहारसे मुक्त कहलाते हैं अतः उनका निराकरण करनेके लिए ‘साहुणो’ (साधवः) पद दिया है । भ्रमर बिना दिये हुए पुष्पके रसका पान करते हैं किन्तु श्रमण बिना दिये हुएको ग्रहण करनेकी इच्छाभी नहीं करते, ग्रहण करनेकी तो बात ही दूर है, इस भेदको प्रगट करनेके लिए ‘दान’ शब्द, सचित्त आहारका

तेमा न्ने अतर रहेलु छे ते अतावे छे ते अतर अ्ने छे डे—नेम भ्रमर पुष्पोभा अनुरक्त थाय छे तेम गृहस्थे आपेला अनशन पान आदिना शोधनमा प्रवृत्त थाय गोटिक, शाक्य, तापस, गैरिक अने आजीविक आदि पणु भा श्रमणु कहेवाय छे, तेनु निराकरणु करवा भाटे गाथामा मुक्ता (मुक्ताः) कलु छे निह्वनव आदि पणु व्यवहारे करीने मुक्त कहेवाय छे, तेथी तेनु करणु करवाने साहुणो ( साधव ) पद आपेलु छे भ्रमर अणुआपेला पुष्परसनु पान करे छे, किन्तु श्रमणु अणुआपेला लोअननु अणु करवाणी पणु करता नथी, पछी अणु करवाणी वात न कथा रही ? आ लेहने प्रकट करव भाटे दान शण्ड, सचित्त आहारनु निराकरणु करवाने भाटे भक्त शण्ड,

द्वितीया-यथा गौर्यत्र लघुवृणादिक पश्यति तत्राऽल्प यत्र चाधिक तत्र पूर्वापेक्ष-  
याऽधिक कवल गृह्णाति न तु वृणादिकमुन्मूलयति तथा मुनिरपि गृहस्थगृहे यथाऽ-  
वसर यथासामग्रि च या भिक्षा गृह्णाति सा । अथवा विविधवसनरत्नालङ्करणवि-  
भूषिता सुन्दरी युवतिर्गवे घासादिक समर्पयति तदा तदीयरूपलावण्यादिकमप-  
श्यन्ती गौर्दीयमान घासादिकमुपादत्ते, तद्वद् भिक्षुणाऽपि दातृवसनसुवेपरूपलाव-  
ण्यादेः सानुरागावलोकन विहाय केवलमशनपानादिशुद्धौ दृष्टिः स्थापनीयेति  
गोचरीभिक्षासमाचारः ( २ ) ।

तृतीया गडुलेपा-यथा गहपरि समधिकलेपप्रदानेन प्रसृतलेपतो नीरुजोऽपि

( २ ) गोचरी-जैसे गाय जहा कम घास देखती है वहाँ कम कवल  
ग्रहण करती है, जहा अधिक देखती है वहाँ पहलेसे कुछ अधिक ग्रहण  
करती है, घासको जड़से नहीं उखाडती, उसीप्रकार भिक्षु एक स्थानसे  
ही पूर्ण अशन पान आदि न ग्रहण करे किन्तु गृहस्थको फिर आरम्भ  
न करना पडे इस प्रकार विचार कर अशनादि ले उसे गोचरी कहते हैं ।  
अथवा जैसे विविध बहुमूल्य वस्त्र आभूषणोंसे आभूषित सुन्दरी  
युवती स्त्री गायको घास डालने आती है तो गाय उसकी सुन्दरता नहीं  
देखती वरन् घास पर ही दृष्टि रखती है, उसीप्रकार भिक्षु आहारादि  
देती हुई स्त्रीके सौन्दर्य, सुवेप, आभूषण आदिका निरीक्षण न करे  
किन्तु अशनादिकी शुद्धि पर ही दृष्टि रखे उसे गोचरी कहते हैं ।

( ३ ) गडुलेपा-जैसे फोडेके ऊपर आवश्यकतासे अधिक लेप करनेसे

( २ ) गोचरी-जेम गाय न्या ओष्ठु घास नुये छे त्या ओछे। डोणियो  
ले छे, न्या वधु घास नुये छे त्या पडेलाथी वधु भोटो आस ( डोणियो ) ले  
छे, घासने भूणभाथी उपाडती नथी ये रीते बिधु ओक स्थानेथी न पूरा अशन  
पान आदि अलुषु न करे, किंतु गृहस्थने इरीथी आरलसभारल न करवे। पडे  
ओवे। विचार इरीने अशनादि ले, तेने गोचरी कडे छे अथवा जेम विविध गहु  
भूय वस्त्राभूषणुथी सलज थयेली सुन्दर युवती स्त्री गायने घास नीरवा आवे  
छे, तो गाय तेनी सुदरता लेती नथी परन्तु घास पर न दृष्टि राणे छे, ते  
प्रभाषु बिधु आहारादि आपती स्त्रीनु सौदर्य, सुवेश, आभूषणु आदितु निरी  
क्षण न करे, किंतु अशनादिनी शुद्धि पर न दृष्टि राणे तेने गोचरी कडे छे

( ३ ) गडुलेपा-जेम शुभडा उपर नइरी करता वधारे लेप करवाथी लेप

દ્વિત્રિયા-અપ્રશસ્તા પ્રશસ્તા ચ, તન્નાડપ્રસન્ન-પાર્શ્વસ્થાદીનામપ્રશસ્તા મિશ્ણા, પ્રશસ્તા પુનઃ પચ્ચમહાવ્રતધારિણા પટ્કાયરક્ષકાણા સમિતિપચ્ચક-ગુપ્તિત્રયવતા મુનીના પ્રતિમાધારિશ્રાવકાણા ચ, યત પચ્ચભૂતાઃ શ્રાવકા અપિ શ્રમણકલ્પા-પચ્ચ । ઇયમેવ 'સર્વસમ્પત્કરી' -ત્યુન્યતે, અસ્યા અન્યાન્યપિ પદ્ નામાનિ યથા-(૧) માધુકરી, (૨) ગોચરી, (૩) ગઢુલેપા, (૪) અક્ષાઞ્જના, (૫) ગર્તા પૂરણી, (૬) દાહોપશમની ચેતિ । તામ્ મુ માધુકરી-સમનન્તરમુગ્રોક્તસ્વરૂપા (૧) ।

લોકોત્તરભિક્ષા મી દો પ્રકારકી હૈ-(૧) અપ્રશસ્ત ઓર (૨) પ્રશસ્ત । અવસન્ન ઓર પાર્શ્વસ્થ આદિકી ભિક્ષા અપ્રશસ્ત ઓર પચ્ચમહાવ્રતધારી, પટ્કાયરક્ષક, પાચસમિતિ ત્રીનગુપ્તિકા પાલન કરનેવાલે મુનિકી તથા પ્રતિમા (પડિમા)-ધારી શ્રાવકોંકી ભિક્ષા પ્રશસ્ત કહલાતી હૈ ।

પ્રતિમા-(પડિમા)-ધારી શ્રાવકોંકી ભિક્ષા પ્રશસ્ત ઇસ કારણ હૈ કિ વે શ્રાવક હોતે હુણ મી સાધુસરીણી ઉત્કૃષ્ટ ક્રિયાકા પાલન કરતે હૈ । ઇસ ભિક્ષાકો 'સર્વસમ્પત્કરી' મી કહતે હૈ, ક્યોંકિ ઇસસે આત્માકી સમસ્ત સમ્પત્તિ જ્ઞાન દર્શન સુખ આદિકી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । ઇસ ભિક્ષાકે છહ નામ ઓર મી કહતે હૈ—

(૧) માધુકરી (બ્રામરી), (૨) ગોચરી, (૩) ગઢુલેપા, (૪) અક્ષાઞ્જના, (૫) ગર્તાપૂરણી ઓર (૬) દાહોપશમની ।

(૧) માધુકરી (બ્રામરી) કા સ્વરૂપ ઇસસે પહેલેકી ગાથામં કહા જાચુકા હૈ ।

લોકોત્તર ભિક્ષા મે પ્રકારની છે (૧) અપ્રશસ્ત, (૨) પ્રશસ્ત અવસન્ન અને પાર્શ્વસ્થ આદિની ભિક્ષા અપ્રશસ્ત અને પચ્ચ મહાવ્રતધારી, પટ્કાયરક્ષક, પાચ સમિતિ ત્રણ ગુપ્તિનું પાલન કરનારા મુનિની તથા પ્રતિમા-(પડિમા)-ધારી શ્રાવકોની ભિક્ષા પ્રશસ્ત કહેવાય છે

પ્રતિમા-(પડિમા)-ધારી શ્રાવકોની ભિક્ષા પ્રશસ્ત એ કારણથી છે કે એ શ્રાવકો હોવા છતાં સાધુના જેવી ઉત્કૃષ્ટ ક્રિયાનું પાલન કરે છે આ ભિક્ષાને 'સર્વસમ્પત્કરી' પણ કહે છે, કારણ કે તેથી આત્માની સમસ્ત સમ્પત્તિ જ્ઞાન દર્શન સુખ આદિની પ્રાપ્તિ થાય છે એ ભિક્ષાના બીજા છ નામ પણ કહેલા છે (૧) માધુકરી (બ્રામરી), (૨) ગોચરી, (૩) ગઢુલેપા, (૪) અક્ષાઞ્જના, (૫) ગર્તાપૂરણી, અને (૬) દાહોપશમની

(૧) માધુકરી (બ્રામરી) નું સ્વરૂપ પહેલાની ગાથામા કહ્યું છે

द्वितीया-यथा गौर्यत्र लघुवृणादिक पश्यति तत्राऽल्प यत्र चाधिक तत्र पूर्वापेक्ष-  
याऽधिक क्वल गृह्णाति न तु वृणादिकमुन्मूलयति तथा मुनिरपि गृहस्थगृहे यथाऽ-  
वसर यथासामग्रि च या भिक्षा गृह्णाति सा । अथवा विविधवसनरत्नालङ्करणवि-  
भूषिता सुन्दरी युवतिर्गवे घासादिक समर्पयति तदा तदीयरूपलावण्यादिकमप-  
श्यन्ती गौर्दीयमान घासादिकमुपादत्ते, तद्वद् भिक्षुणाऽपि दातव्यसमस्तुवेपरूपलाव-  
ण्यादेः सानुरागावलोरुन विहाय केवलमशनपानादिशुद्धौ दृष्टिः स्थापनीयेति  
गोचरीभिक्षासमाचारः ( २ ) ।

तृतीया गडुलेपा-यथा गद्वपरि समधिकलेपप्रदानेन प्रसृतलेपतो नीरुजोऽपि

(२) गोचरी-जैसे गाय जहा कम घास देखती है वहाँ कम कवल  
ग्रहण करती है, जहा अधिक देखती है वहाँ पहलेसे कुछ अधिक ग्रहण  
करती है, घासको जड़से नहीं उखाडती, उसीप्रकार भिक्षु एक स्थानसे  
ही पूर्ण अशन पान आदि न ग्रहण करे किन्तु गृहस्थको फिर आरम्भ  
न करना पडे इस प्रकार विचार कर अशनादि ले उसे गोचरी कहते हैं ।  
अथवा जैसे विविध बहुमूल्य वस्त्र आभूषणोंसे आभूषित सुन्दरी  
युवती स्त्री गायको घास डालने आती है तो गाय उसकी सुन्दरता नहीं  
देखती वरन् घास पर ही दृष्टि रखती है, उसीप्रकार भिक्षु आहारादि  
देती हुई स्त्रीके सौन्दर्य, सुवेप, आभूषण आदिका निरीक्षण न करे  
किन्तु अशनादिकी शुद्धि पर ही दृष्टि रखे उसे गोचरी कहते हैं ।

(३) गडुलेपा-जैसे फोडेके ऊपर आवश्यकतासे अधिक लेप करनेसे

(२) गोचरी-जेम गाय न्या ओष्ठु घास लुब्धे छे त्या ओष्ठो डोणियो  
ले छे, न्या वधु घाम लुब्धे छे त्या पडेलाथी वधु भोटो आस ( डोणियो ) ले  
छे, घासने भूणभाथी उपाडती नथी अे रीते भिक्षु अेक स्थानेथी न पूरा अशन  
पान आदि ग्रहण न करे, किंतु गृहस्थने इरीथी आरल-समारल न करवे पडे  
अेवो विचार करीने अशनादि ले, तेने गोचरी उडे छे अथवा जेम विविध गहु  
भूय वआभूषणोथी सन्न थअेवी सुन्दर युवती स्त्री गायने घास नीरवा आवे  
छे, तो गाय तेनी सुदरता नेती नथी परन्तु घास पर न दृष्टि राखे छे, ते  
प्रभाष्टे भिक्षु आडानदि आपती स्त्रीनु सौदर्य, सुवेश, आभूषण आदिनु निरी  
क्षण न करे, किंतु अशनादिनी शुद्धि पर न दृष्टि राखे तेने गोचरी उडे छे

(३) गडुलेपा-जेम शुमडा उपर नडरी करता वधारे लेप करवाथी लेप

गडुसन्निहितदेशो विहन्यते, तदेकदेशमात्रे यत्किञ्चिद्व्येपदाने गडुप्रदेशसाकरूपेण लेपाभावाद्भोगो नोपशाम्यति, तद्वत्साधुरपि, निर्दोषपरिमिताहारेण क्षुधा निवर्तयति तद्रूपा (३) ।

चतुर्थे चास्या अक्षाजनेति नाम-यथा शकटेन दूरं गन्तुकामस्तत्र यदि तैलदान न कुर्यात्, तदा चलितुमेवाक्षम तत्र पारयति शकटारोहिण प्रापयितु-मभीष्ट स्थानम् तत्राधिरुतरतैलनिक्षेपस्तु न केवल निष्फलः प्रस्युत हानिं जनयतीति, तद्विभिरवधाशनपानप्रदान विना मोक्षप्रापकसयमपये चलितुमक्षम शरीर

लेप इधर-उधर फैल जाता है और आस-पामका नीरोग प्रदेश भी खराब हो जाता है, और यदि फोड़े पर विलकुल ही लेप न किया जाय तो भी रोग शान्त नहीं होता, वैसेही साधु यदि प्रमाणसे अधिक आहार करे तो प्रमाद आदि दोष उत्पन्न होनेसे स्वाध्याय आदि क्रियाओंका पूर्ण पालन नहीं कर सकता, और विलकुल ही थोड़ा आहार करे तो क्षुधावेदनीयकी शान्ति न होनेसे वैयावृत्य आदि साधुकी क्रियाएँ नहीं हो सकतीं, इसलिए निर्दोष और परिमित आहार लेना 'गडुलेपा' भिक्षा कहलाती है ।

(४) अक्षाजना-जैसे कोई गाडीद्वारा इच्छित स्थान पर जाना चाहता है परन्तु गाडीको विलकुल तैल नहीं देवे तो वह गाडी चल नहीं सकती और यदि अधिक तेल दे दिया जाय तो वह बृथा ही नहीं बरन् हानिकारक भी है, इसीप्रकार मोक्षपुरी तक पहुँचनेके लिए शरीर-रूप शकट (गाडी)

आम-तेम इलाह लय छे अने आसपासने नीरोग प्रदेश पय भगव यथ लय छे अने ने गूभडा उपर गिलकुल लेप न करवामा आवे तो देश शान्त थाय नहि आवी न रीते साधु ने प्रमाद्युथी अधिक आहार करे तो प्रमाद आदि दोष उत्पन्न थवाथी स्वाध्याय आदि क्रियाओतु पूर्ण पालन करी शकते नथी, अने गिलकुल थोडा आहार करे तो क्षुधावेदनीयनी शान्ति नहि थवाथी वैयावृत्य आदि साधुनी क्रियाओ थथ शकती नथी तेथी निर्दोष अने परिमित आहार लेयो अे 'गडुलेपा' भिक्षा कहेवाय छे

(४) नेम कोर भालस गाडामा जेसीने इच्छित स्थान पर नवा धरछे छे परन्तु गाडाने गिलकुल तेल न उने तो अे गाडु आली शकतु नथी अने ने वधारे पडतु तेल उने तो ते वृथा लय छे अेटलु न नहि पय हानिकारक पय नीवडे छे अे रीते मोक्षपुरी सुधी पहुँचवने माटे शरीर-शकट (गाडी)

मपि नाल मुनीन् मोक्ष मापयितुम्, अधिकतराहारपूरित तु निद्राप्रमादादिदोष-  
जात जनयन्तूनमेव विनयश्रुतादिसमाधिं विध्वंसयति, अतः परिमित विशुद्ध  
चाशनपानमुपादेय भिक्षुणेति सेय भिक्षा 'अक्षाञ्जना नाम' (४) ।

पञ्चमी गर्तापूरणी, सा यथा-कस्यापि श्रेष्ठिनो भवनसम्पन्धिनि गमना-  
गमनमार्गे यदि केनापि कारणेन गर्तः सजायते तदा तमवलोक्य स तदानीं  
यदेव सद्यो लोष्टपापाणखण्डादिकमुपलभते तदेवादाय त गर्तं परिपूरयति न  
तूत्तमेनैवेष्टरूपभृतिना गर्तोऽयं पूरयितव्य इति विचारयति, तथा सति महाऽन-  
योत्पत्तिसम्भवः, एवमेव मुनिरपि क्षुधावेदनीयोदयवशाद्रिक्तमुदरमैपणिकैरन्तप्रा-  
न्तादिभिराहारैर्भिर्भर्त्तीति । (५)

को आहारादिरूप तेल विलकुल न दिया जाय तो सयमयात्राका सम्यक्  
निर्वाह नहीं हो सकता और अधिक आहार देनेसे रोगादि होजानेके  
कारण विनय श्रुत आदि समाधि नहीं हो सकती, इसलिए परिमित  
आहार लेना अक्षाञ्जना भिक्षा कहलाती है ॥

(५) गर्तापूरणी-जैसे यदि किसी रईसके घर जाने-आनेके मार्गमें  
किसी कारणसे गड्ढा होजाय तो उसे देखते ही वह रईस शीघ्रतासे  
मिट्टी-पत्थरके टुकड़े आदि जो कुञ्ज पाता है उन्हींको लेकर खड्डुको भर  
देता है । परन्तु ऐसा नहीं विचारता है कि अच्छे २ ईंट-पत्थरों से  
ही इसे भरना चाहिये । यदि न पूरे तो बड़ी आपत्ति आनेकी सभावना  
रहती है । इसीप्रकार मुनि, क्षुधावेदनीयके वशसे अन्त-प्रान्त आदि  
निरवय आहार लेकर खाली उदर भर लेते हैं । इसलिए इसे  
गर्तापूरणी कहते हैं ।

ने आहारादि इप तेल गिलकुल न उजवाभा आवे तो सयम-यात्रानो सम्यक्  
निर्वाह थं शकतो नथी, अने अधिक आहार आपवाभा आवे तो रोगादि  
थवाथी विनय श्रुत आदि समाधि थं शकती नथी तेथी परिमित आहार देवे  
ये 'अक्षाञ्जना' भिक्षा कडेवाय छे

(५) गर्तापूरणी-जेम केड गड्ढस्थने घेर जवा आववाना मार्गं यं केड  
काल्पथी भाडे पडी जाय छे तो तेने दृष्यता ज ते गड्ढस्थ शीघ्र भाटी, पत्थरना  
टुकडा, वजेरे जे कांठ भणे ते लधने भाडाने पूरी नाणे छे पणु जेम नथी  
विचारतो डे सारी छंटे पथशेथीज पूरीजे जे न पूरे तो भारे आपत्ति आवी  
पडवानी सभावना रहे छे जे रीते मुनि क्षुधा-वेदनीयने लीधे अत-प्रात आदि  
निरवय आहार लधने भाटी उदर भरि ले छे तेने गर्तापूरणी कडे छे

પટ્ટી ઢાહોપશમની યથા-ભવને ઉચ્ચનગ્યાળામાલાદન્દગમાને શુદ્ધી યદેવ સગો જલરુદ્દમધૂલિલોપ્ટપ્રથૃતિકમુપલભતે તદેવ પ્રક્ષિપ્ય પાત્રક પ્રશમયતિ ન તુ ગદ્ગાદિસલિલ પ્રતીક્ષતે, તથા સયમરક્ષાર્થ નિર્દોષેણ રુક્ષાદિનાડપ્યાહારેણ શમયતિ ક્ષુધા મુમુક્ષુર્ભિષુરિતિ (૬) ॥ ૩ ॥

પ્રશસ્તૈવ ભિક્ષા સાધુભિર્ગ્રંહીતવ્યા નેતરેતિ નિશમ્ય શિષ્યો ગુરુ પ્રત્યાહ-  
વચ ચ, -ઈત્યાદિ ।

મૂલ્મ-<sup>૧</sup>વચ <sup>૨</sup>ચ <sup>૩</sup>વિત્તિ <sup>૪</sup>લઘ્ભામો, <sup>૫</sup>ન <sup>૬</sup>ય <sup>૭</sup>કોઙ <sup>૮</sup>ઉવહમ્મડ ।

<sup>૯</sup>અહાગઢેસુ <sup>૧૦</sup>રીયતે, <sup>૧૧</sup>પુપ્ફેસુ <sup>૧૨</sup>ભમરા <sup>૧૩</sup>જહા ॥ ૪ ॥

(છાયા) — ય ચ વૃત્તિ લપ્સ્યામહે, ન ચ કોડપિ ઉપદ્યતે ।  
યથાકૃતેષુ રીયન્તે, પુપ્પેષુ ભમરા યથા ॥ ૪ ॥

(૬) ઢાહોપશમની-જિસ સમય ઘરમેં અગ્નિ ધધક જાય ઉસ સમય ઘરકા સ્વામી જલ્દીરમેં જલ કીચઙ ધૂલ મિટી આદિ જો કુછ મિલજાય ઉસીકો ઢાલકર આગ બુઙ્ઙાતા હૈ । ઉસ સમય વહ યહ નહી સોચતા કિ જવ ગગાસિન્ધુકા નિર્મલ નીર મિલેગા ત મી આગ બુઙ્ઙાઙગા, ઉસીપ્રકાર સયમકી રક્ષાકે લિષ મુમુક્ષુ ભિક્ષુ તુચ્છ આદિ નિર્દોષ ભિક્ષાસે ક્ષુધાકો શાન્ત કર લેતા હૈ । હસલિષ હસકો ઢાહોપશમની કહતે હૈ ॥૩॥

‘ પ્રશસ્ત ભિક્ષા હી સાધુકો ગ્રહણ કરની ચાહિયે અન્ય નહી ’ યહ સુનકર શિષ્ય ગુરુસે નિવેદન કરતા હૈ-‘વચ ચ વિત્તિ’ ઈત્યાદિ ।

(૬) ઢાહોપશમની-જે સમયે ઘરમા અગ્નિ લભૂડી ઉઠે તે સમયે ઘરને ધણી જલ્દી-જલ્દી પાણી, કાદવ, ધૂળ, માટી વગેરે જે કાંઈ મળી જાય તે નાખીને આગ ધુઆવે છે તે વખતે તે એમ નથી વિચારતો કે જ્યારે ગગા-સિન્ધુકા નિર્મળ નીર મળશે ત્યારે આગને ધુઆવીશ એ રીતે સયમની રક્ષાને માટે મુમુક્ષુ ભિક્ષુ લુપ્ખી, તુચ્છ, આદિ નિર્દોષ ભિક્ષાથી ક્ષુધાને શાન્ત કરી લે છે તેથી તેને ‘ ઢાહોપશમની ’ કહે છે (૩)

“ પ્રશસ્ત ભિક્ષાજ સાધુએ ગ્રહણ કરવી જોઈએ ખીલ નહિ, ” એમ સાલ જીને શિષ્ય ગુરુ સમીપે નિવેદન કરે છે —વચ ચ વિત્તિ ઈત્યાદિ

गुरु महाराजके प्रति शिष्यकी प्रतिज्ञा—

सान्त्वयार्थः—( हे गुरुमहाराज ! ) वय=हम च=ऐसी वृत्ति=वृत्ति-भिक्षा-वृत्तिको लब्धामो=स्वीकार करेंगे ( जिससे ) कोडय=कोईभी न उवहम्मड= उपमर्दित न हो, ( साधु ) अहागडेसु=सदाकी भाति गृहस्थद्वारा अपने लिए बनाये हुए भोजनमेंही रीयते=सयम यात्राका निर्वाह करते हैं, जहा=जिस प्रकार भमरो=भोरा पुप्फेसु=फूलोंमें निर्वाह करता है । अर्थात् भ्रमण महाराज गृहस्थद्वारा सुदके लिये बनाये हुए आहारसे ही अपनी यात्राका निर्वाह कर लेते हैं ॥ ४ ॥

टीका—एतद्वाथायाः पूर्वार्द्धे समुपात्त चकारद्वय क्रमेण यथा-तथा-शब्दार्थ-वाचक ततश्चायमर्थः—वय च=तथा-तेन रूपेण, वृत्ति=जिनोक्तस्वरूपा प्रशस्ता भिक्षा, लप्स्यामहे=प्राप्स्यामः स्वीकरिष्याम इति यावत्, यथा न कोऽपि त्रस स्थावरप्राणिमात्रमित्यर्थः उपहन्यते=उपहतः ( उपमर्दितः ) भवेत् । एवविध-वृत्तिग्रहणे सदृष्टान्तहेतुमुपन्यस्यति 'अहा०' इति, अत्र 'यत्' इत्यन्याहार्यम्, तथा च-यतः यथाकृतेषु=गृहस्थैरात्मार्थमात्मीयार्थं च सम्पादितेष्वाहारादिषु रीयन्ते=गच्छन्ति सयमयात्रा निर्वाहन्तीति यावत् 'साधवः' इति शेषः । अत्र गतमपि भ्रमरदृष्टान्त विस्पष्टप्रतिपत्तये पुनरुपन्यस्यति 'पुप्फेसु' यथा पुष्पेषु

इस गाथाके पूर्वार्द्धमें दो 'च' आये हैं, एकका अर्थ है 'जैसे' और दूसरेका अर्थ है 'वैसे', इसलिए इसका अर्थ यह हुआ कि—हे भगवन् ! हम वैसेही प्रशस्त भिक्षा ग्रहण करेंगे जैसे (जिस प्रकार) त्रस या स्थावर जीवको किसीभी प्रकारकी बाधा न पहुँचे, क्योंकि गृहस्थोंद्वारा अपने-लिये या अपने कुटुम्बके लिये बनाये हुए आहारको लेकर ही साधु अपनी सयमयात्राका निर्वाह कर लेते हैं । इसी बातको अधिक स्पष्ट करनेके

आ गाथाना पूर्वार्धभा मे च आख्या ते अनेनो अर्थे छे 'जेम' अने पीतानो अर्थे छे 'अेम' अे रीते तेनो अर्थे अेम थयो के-डे लगवन् ! अमे अेम न (अेन प्रकारे) प्रान्त लिक्षा ग्रहणु रीथु के जेम (ने प्रकारे) त्रस या स्थावर एवने केथ पणु प्रान्तो जाधा न पडाये कारणु के गृहस्थोअे पीताने भाटे या पीताना कुटुम्बने भाटे पनावेवो आहार लधने न साधु पीतानी सयम-यात्रानो निर्वाह करी ले छे अे वातने वधु स्पष्ट करवाने भाटे भ्रमरना दृष्टाने इरीथी जेवडावे छे



भ्रमराः, ते हि पुष्पेभ्यो रसमाहरन्तोऽपि तानि (पुष्पाणि) लेभन्तोऽपि न पीडयन्ति । अत्र 'लब्धामो' इत्यस्य 'लप्स्याम' इति व्याख्यानं तु सर्वथा व्याकरणविरुद्धमेव 'लभ' धातोर्नुदात्तेऽपि पठितत्वेन नित्यात्मनेपदित्वात्, न च चक्षिहो द्वित्करणज्ञापितया 'अनुदात्तेऽत्रलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्' इति परिभाषया परस्मैपदमपि युक्तमेवेति ग्रन्थम्, तस्या अगतिरुगतिरतयेष्टप्रयोगत्रिपयत्वात्, वस्तुतस्तु भाष्यानुक्तज्ञापितार्थस्य साधुताया नियामरत्वे प्रमाणाभावादेवमादिकाः परिभाषाश्चिन्त्या एवेति स्पष्ट 'परिभाषेन्दुशेखरे' इत्यतिरोहितं वैयाकरणानाम् । अत्र गाथाया 'लब्धामो' इति, 'उवहम्मइ' इति भविष्यद्वर्त्तमानौ कालावविवक्षितौ, तेन कालत्रयग्रहणं बोध्यम् ॥ ४ ॥

एव मधुकरदृष्टान्तेन यत्फलितं तत्प्रतिपादयन्नुपसहरति—'महुगारसमा' इत्यादि ।

मूलम्—महुगारसमा बुद्धा जे भवंति अणिसिया ।

नाणापिडरया दत्ता तेण बुच्चति साहुणो ॥त्तिवेमि॥५॥

'छाया—मधुका (क) रसमा बुद्धा यतो भवन्त्यनिश्रिताः ।

नानापिण्डरता दान्ताः, तेन उच्यन्ते साधवः ॥ ५ ॥

सान्वयार्थः—(क्योऽं)जे=जो महुगारसमा=भौरेकीभाति बुद्धा=दिवेको अणिसिया=मोहवन्धनरहित नाणापिडरया=अनेक घरोका निरवद्य पिण्ड छेकर समयमें लीन दत्ता=इन्द्रियविजयी भवति=होते हैं, तेण=इसीसे वे साहुणो=साधु बुच्चति=कहलाते हैं । त्तिवेमि=इस प्रकार श्रीसुधर्मा स्वामी

लिए कहे हुए भ्रमर दृष्टान्तको फिर दुहराते हैं कि—जैसे भ्रमर पुष्पोंसे रस ग्रहण करकेभी किसी पुष्पको पीडा नहीं पहुँचाता ॥४॥

मधुकरका उदाहरण देनेसे जो निष्कर्ष निकला उसे सूत्रकार कहते हैं—'महुगारसमा' इत्यादि ।

टि—जे भ्रमर पुष्पोभाथी रस अडखु करीने पखु कोड पुष्पने पीडा उष नवतो नथी (४)

मधुकरना उदाहरणभाथी जे निष्कर्ष नीडखुये तेने सूत्रकार कहे छे—  
महुगारसमा, इत्यादि

जम्बूस्वामीसे कहते हैं—“हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीरसे मैंने जैसा सुना है वैसा ही तेरे लिए कहता हू ॥ ५ ॥

॥ इति प्रथमाध्ययनस्य सान्त्वयार्थः ॥ १ ॥

टीका—अत्र गाथाया ‘जे’ इत्यस्यादौ ‘यतः’ इति, ‘तेण’ इत्यस्यान्ते ‘ते’ इति च पदद्वयमध्याहार्यम्, तथा च—यतः ये मधुका(क)रसमाः=भृङ्गवदनियत-वृत्तयः; बुद्धाः=इदं कर्तव्यमिदमकर्तव्यमित्येव विवेकवन्तः, अनिश्रिताः=निश्चय-रहिताः—निवासकुलादिषु प्रणयनिगडबन्धशून्या इत्यर्थः, नानापिण्डरताः=नाना=अभिग्रहविशेषेण प्रतिगृहाऽल्पाल्पग्रहणयुक्ततया अन्तप्रान्तादिभेदेन च विविधप्रकारा ये पिण्डाः=आहाराद्यास्तेषु रताः=ससक्ताः, दान्ताः=इन्द्रिय-नोइन्द्रियविकारभावाऽनुपहतचित्ताः, भवन्ति=सम्पद्यन्ते, तेन=उक्तप्रकारेण निरव-धृत्तिसमाराधनेन हेतुना ते योगत्रये-न्द्रियपञ्चरु-नवविधविशुद्धब्रह्मचर्याऽर्हिंसाः साधयन्तीति साधवः व्युच्यन्ते=रुध्यन्ते इति गाथार्थः, इत्यन्ये, वस्तु-तस्तु अत्र ‘यतः’ इत्यस्य, ‘ते’ इत्यस्य चाध्याहरण ‘जे’ इत्यस्य प्रथमान्तत्वेन व्याख्यानं च न युक्तं, तथा सति ‘ये’-‘ते’-शब्दयोर्वैयर्थ्यापत्तेः, तस्मात् ‘जे’ इत्यव्ययपद ‘यतः’ इत्यस्यार्थे, अव्ययानामनेकार्थत्वात्, ततश्चा-यमभिसम्बन्धः—यतः मधुकारसमाः बुद्धाः अनिश्रिताः नानापिण्डरताः दान्ता

जो भारेके समान अनियत (कुलकी नेसराय रहित) भिक्षा लेते हैं, कर्तव्य और अकर्तव्यके विवेकी हैं, निवासस्थान तथा कुटुम्ब परिवार आदिमें भ्रमताके बन्धनसे बन्धे हुए नहीं हैं, भौतिके अभिग्रह धारण करके अनेक घरोंसे लिये जाने वाले अन्त-प्रान्त आदि आहारमें अनुरक्त रहते हैं, इन्द्रियों और मनके विकारको दमन करते हैं वे निर्दोष भिक्षा लेकर तीन योग, पाँच इन्द्रियों, नव प्रकारके विशुद्ध ब्रह्मचर्य और अर्हिंसाकी साधना करनेवाले साधु कहलाते हैं ।

वे भ्रमरानी पेटे अनियत ( कुलनी नेसराय रहित ) भिक्षा ले छे, कर्तव्य अने अकर्तव्यनो विवेकी छे, निवासस्थान तथा कुटुम्ब परिवार आदिमा भ्रम ताना बंधनथी बद्ध थयो नथी, तरेह-तरेहना अभिग्रहो धारणु करीने अनेक घरथी लीधेला अत प्रात आदि आहारमा अनुरक्त रहे छे, इन्द्रियो अने मनना विकारोनु दमन करे छे, ते निर्दोष भिक्षा लधने त्रय योग, पाच इन्द्रियो, नव प्रकारनु विशुद्ध ब्रह्मचर्य अने अर्हिंसाणी साधना करनारो साधु कहेवाय छे

ભવન્તિ તેન સાધનઃ ઉચ્યન્તે इति, સાધુવિશેષણાના મધુકારમમાદીના વ્યાખ્યા તુ યથાપૂર્વમેવેતિ યમિતિ વિભાવયન્તુ વિદ્વાસઃ ।

મધુકારસમા અસક્તિનોડપિ ભવન્તિ અતસ્તદ્વચરચ્છેદ્યાર્થમાહ 'બુદ્ધા' इति, મધુકારસમા બુદ્ધાશ્ર પ્રતિમાધારિમ્ભૂતયઃ સયતાડસયતા અપિ ભવન્તિ. તદ્વચાવૃત્તયે 'અણિસ્સિયા' इति । મધુકારસામ્ય ચ સાધૂના ન સાર્વદેશિક ફિન્તુ ચન્દ્રમુલા-દિવદૈરુદેશિકરુમેવેત્યતો યદશે મધુકારસાદૃશ્યાભાસસ્તદ્બોધનાર્થમાહ—'નાણાપિંડરયા દેતા' इति, ભ્રમરા હિ સુગન્ધિભ્ય એવ કુસુમેભ્યઃ સ્વાદ્યમેવ ચ રમમાદત્તે ન ચ

ભૌરેકે સમાન અસજી મી હોતે હં અતઃ બુદ્ધ (કર્તવ્યાકર્તવ્ય વિવેકસે યુક્ત) પદ દિયા હૈ । પ્રતિમા (પડિમા) ધારી શ્રાવક (સયતાસયત) મી ભૌરેકે સમાન ઓર બુદ્ધ હોતે હં ઇસલિણ 'અણિસ્સિયા' પદ દિયા હૈ,

જૈસા કિ પહલે કહા જા ચુકા હૈ ભૌરેકા ઉદાહરણ ણકદેશીય હૈ, કોઈ કહતા હૈ કિ 'ઇસકા મુખ, ચન્દ્રમાકે સમાન હૈ' તો મુખમે ચન્દ્રમાકે સવ ગુણ નહી પાવે જાતે, અર્થાત્ કુછ ગુણ સદૃશ હોતે હં કુછ વિસદૃશ હોતે હ, ભૌરેકા ઉદાહરણ મી કુછ અશોમે મિલતા કુછ અશોમે નહી મિલતા હૈ । જિસ અશમે નહી મિલતા હૈ વહ સૂત્રકારને 'નાણાપિંડરયા' ઓર 'દતા' વિશેષણોસે પ્રગટ કિયા હૈ । ભ્રમર, કેવલ કુસુમોકે સ્વાદિષ્ટ રસકો હી પીતા હૈ ઇસલિણ યહ દાન્ત (ઇન્દ્રિયોકો જીતનેવાલા) નહી હૈ, ઇસ દૃષ્ટાન્તસે દાષ્ટાન્તિકકી વિસદૃશતા હૈ ।

બ્રમરાની પેઠે અસજી પણ હોય છે, તેથી બુદ્ધ (કર્તવ્યા કર્તવ્ય-વિવેકથી યુક્ત) પદ આપેલું છે પ્રતિમા (પડિમા) ધારી શ્રાવક (સયતાસયત) પણ બ્રમરાની સમાન અને બુદ્ધ હોય છે, તેથી અણિસ્સિયા પદ આપ્યું છે

પહેલા કહેવામા આવ્યું છે કે બ્રમરાનું ઉદાહરણ એક-દેશીય છે કાંઈ કહે છે કે—'એનું મુખ ચન્દ્રમા જેવું છે' પણ મુખમા ચન્દ્રમાના બધા ગુણો હોતા નથી અર્થાત્ કાંઈ ગુણ સમાન હોય છે, કાંઈ અસમાન હોય છે બ્રમરાનું ઉદાહરણ પણ કાંઈ અશોમા મળતું છે, કાંઈ અશોમા અણુમળતું છે જે અશોમા અણુમળતું છે તે સૂત્રકારે નાણાપિંડરયા અને દતા વિશેષણોથી પ્રકટ કર્યું છે બ્રમર માત્ર કુસુમોના સ્વાદિષ્ટ રસને જ પીએ છે, તેથી એ દાન્ત (ઇન્દ્રિયોને જીતનાર) નથી આ દૃષ્ટાન્તથી દાષ્ટાન્તિકની અસમાનતા છે

दान्ता भवन्ति । 'त्तिवेमि' इति=उक्तरूप तच्च यथा तीर्थङ्करस्य भगवतो महावीरस्य सकाशान्मया श्रुत न तु स्वजुद्धया कल्पित यतः स्वजुद्धया कथने श्रुत-ज्ञानस्याविनयो भवति, किञ्च उद्गस्याना दृष्टयोऽप्यपूर्णा भवन्ति, तस्माद् यथा भगवत्प्रतिपादितमेव त्वा ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः । इहार्थे चैय सद्ग्रहगाथा—

“सुअणाणस्स अविणओ परिहरणिज्जो सुहादिलासीहिं ।

छउमत्थाण दिट्ठी, पुण्णा णत्थित्ति सडय इडणा ॥ १ ॥” इति,

इति पञ्चमगाथार्थः ॥ ५ ॥

सुधर्मस्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं—हे जम्बू ! ऊपर जो प्रथम अध्ययनका भाव कहा गया है वह अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् श्रीमहावीरसे जैसा मैंने सुना वैसाही कहा है, अपनी बुद्धिसे कल्पना किया हुआ नहीं कहा है, अपनी बुद्धिसे कल्पना करके कहनेसे श्रुतज्ञानकी आशातना होती है, और उद्गस्थोंका ज्ञान भी अधूरा होता है, इसलिए भगवान्द्वारा प्रतिपादित प्रवचन ही तुझे सुनाया है । कहाभी है—

“सुखके अभिलाषी पुरुषोंको श्रुतज्ञानकी आशातनाका त्याग करना चाहिये । क्योंकि उद्गस्थोंकी दृष्टि पूर्ण नहीं होती । इसी अर्थको 'त्तिवेमि' शब्दसे प्रगट किया है” ॥५॥

सुधर्म—स्वामी जम्बू—स्वामीने कहे थे—हे जम्बू ! ऊपर के प्रथम अध्ययनको भाव कह्यो छे ते अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर पासेथी जेवो मे साबज्यो तेवो ज कह्यो छे मे पोतानी बुद्धिथी कल्पना करेवो नथी कह्यो पोतानी बुद्धिथी कल्पना करी कहेवाथी श्रुतज्ञाननी आशातना थाय छे अने छद्मस्थेनु ज्ञान पणु अधूड होय छे, तेथी भगवान् द्वारा प्रतिपादित प्रवचन ज मे तने स लगान्यु छे कहु पणु छे के—

“सुअणा अलिदाषी पुरोअे श्रुतज्ञाननी आशातनानो त्याग करेवो जेअेअे, करणु के छद्मस्थेनी दृष्टि पूर्णु होती नथी आ अर्थने त्तिवेमि शब्दथी प्रकट कर्यो छे” (५)

इति श्री विश्वखिलात-जगद्ब्रह्म-प्रसिद्धाचार्य-पञ्चदशभाषा-कलित-कलित-  
 कलापाऽऽलपक-प्रसिद्ध-गण-पत्र-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक  
 श्री शाहूछत्रपति-कोल्हापुरराज-प्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पदभूषित-  
 कोल्हापुरराजगुरु-मालप्रह्लाचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-  
 पूज्य-श्रीघासीलालप्रतिप्रिचिताया श्रीदशवैकालिकसूत्र-  
 स्याऽऽचारमणिमञ्जुपारयाया व्याख्याया प्रथम  
 द्रुमपुष्पकारयमध्ययन समाप्तम् ॥ १ ॥

— \* —

इसप्रकार दशवैकालिक सूत्रके 'द्रुमपुष्पक'  
 नामक पहले अध्ययनकी आचारमणिमञ्जुया  
 नामक व्याख्याका हिन्दी-भाषानुवाद  
 समाप्त हुआ ॥ १ ॥

— \* —

धति 'द्रुम-पुष्पक' नामना पढेला अध्ययननु  
 गुजराती-भाषानुवाद समाप्त (१).

— \* —



॥ द्वितीयाध्ययनम् ॥

गत प्रथममध्ययनमथ द्वितीयमारभ्यते, तत्रायमभिसम्बन्धः—पूर्वाध्ययने 'धम्मो मगल' इत्यादिना धर्मः प्रशंसितो यः केवल जिनशासन एवोपलभ्यते, ततश्चोक्तरूपधर्मपरिपालनार्थस्वीकृतजिनशासनो नवदीक्षितः कदाचिद्वैर्याभावाच्चारित्रच्युतो न भवेदित्याशयेनास्मिन्नध्ययने 'साधुना धैर्यं धार्यं' मिति वक्तव्य, धैर्यधारण च कामनिवारणमन्तरेण न सभवतीति प्रथम तदेवाह—'कह नु' इत्यादि ।

११ ६ १२ १० १ २ ३ ४  
मूलम—कह नु कुज्जा सामणं, जो कामे न निवारण ।

७ ८ ५ ६  
पए पए विसीअतो, सकप्पस्स वसगओ ॥ १ ॥

छाया—कथ नु कुर्याच्छ्रामण्य, यः कामान्न निवारयेत् ।

पदे पदे विपीदन्, सरूपस्य वश गत' ॥ १ ॥

दूसरा अध्ययन ।

पहले अभ्ययनमें धर्मका स्वरूप और माहात्म्य कहा है वह केवल जैनशासनमें ही पाया जाता है । इसलिए पहले कहे हुए धर्मका पालन करनेके लिए जिसने जैनशासन अर्थात् चारित्रधर्म स्वीकार कर लिया हो परन्तु नवीन दीक्षित होनेसे कभी धैर्य छूट जानेके कारण वह कदाचित् चारित्रसे स्वलित न हो जाय, इस अभिप्रायसे इस अध्ययनमें 'साधुको धैर्य धारण करना चाहिए' यह कहा जायगा । लेकिन धैर्य तब ही रह सकता है जब कि कामके विकारको जीत लिया जाय । अत एव शास्त्रकार सबसे पहले इसी विषयका प्रतिपादन करते हैं—'कह नु—' इत्यादि ।

अध्ययन २ नु

पडेला अध्ययनमा धर्मनु स्वरूप अने माहात्म्य कहु छे ते डेवण जैन शासनमा भणी आवे छे तेवी, पडेला कडेला धर्मनु पालन करवाने भाटे, जेणे जैन शासन अर्थात् चारित्र धर्म स्वीकार्यो होथ परतु नवदीक्षित होवायी केषवार धैर्य छुटी जवायी अने कदाथ चारित्रयी अश्लित न थई जय, तेठला भाटे आ अध्ययनमा " साधुजे धैर्य धारण करु जेधजे " अने कडेवामा आवथे परतु धैर्य त्तारे न रही शडे छे ते न्यारे कामविकारने छुटी लेवामा आवे तेथी शास्त्रकार सौथी पडेला अने विषयनु प्रतिपादन करे छे—कह नु० इत्यादि

सान्वयार्थः—जो=जो कामे=विषयोंको न नियारण=नहीं छोड़ता है, वह सकल्पस्स=इन् त्रियोंके चमगओ=शर्म हो कर पण पण=पद-पद पर विसीअतो=खेदित होता हुआ नु=आश्चर्य है कि यह सामण्य=श्रमणधर्मको कह=कैसे कुज्जा=कर-पाल सकता है। अर्थात्-जो इन्द्रियोंके विषयोंका परित्याग नहीं करता उसकी इच्छाएँ सदैव बढ़ती रहती हैं, उसे कभी सन्तोष नहीं होता, सन्तोष न होनेसे निरन्तर मानसिक कष्ट होता है, विषयोंकी इच्छासे उत्पन्न हुआ मानसिक कष्ट होते रहनेसे चारित्रधर्मकी आराधना नहीं हो सकती, अतः सर्व प्रथम इन्द्रियोंको शर्म करना चाहिये ॥ १ ॥

टीका-यः, काम्यन्ते=अभिलष्यन्ते प्राणिभिरिति कामाः=शब्दादयस्तान् न निवारयेत्=नापनयेत्, अत्र 'सः' इत्यध्याहार्यं यत्तदोर्नित्यसम्बन्धादिति केचित्, वस्तुतस्तु नात्र तच्छब्दाध्याहारावश्यकता, न चाऽनयाहारे साकाङ्क्षत्वदोष इत्याक्षेप्यम्, उत्तरवाम्यगतत्वेन यच्छब्दोपादाने तस्य दोषस्याऽनवकाशात् 'आत्मा जानाति यत्पाप' मित्यादिवत् । सकल्पस्य=अप्राप्तविषयप्राप्तिरूपस्याऽप्रशस्तस्याऽव्यवसायस्य, वशम्=अधीनता गतस्तदधीनवर्ती भूत्वेति भावः, पदे पदे=प्रतिस्थान विपीदन् खेदमनुभवन् कथ=केन प्रकारेण 'नु' क्षेपे वितर्के पृच्छाया वा, श्राम्यति=तपस्यतीति श्रमणः=सचित्ता चित्त-मनोज्ञा मनोज्ञद्रव्याधिकरणक-साम्यभाव हास्यादिपटुविप्रमुक्ति-पचसमितिसमितत्व-गुप्तित्रयगुप्तत्व गुप्तब्रह्मचर्यत्व

जीव, जिन इन्द्रियोंके विषयोंकी कामना (अभिलाषा) करता है उनको 'काम' कहते हैं। जो साधु, इन कामोंका त्याग नहीं करते, वे अप्राप्त विषयकी प्राप्तिरूप अशुभ अव्यवसायके अधीन होकर पद पद पर खेदका अनुभव करते हुए क्या कभी श्रमणताको प्राप्त कर सकते हैं ? कदापि नहीं।

इष्ट, अनिष्ट, सचित्त, अचित्त आदि समस्त वस्तुओं पर समताभाव रखना, हास्य आदि छह नोकषायका त्याग करना,

एव जे इन्द्रियोंकी विषयोंकी कामना (अभिलाषा) करे छे तेने 'काम' कहे छे जे साधु, जे कामोंको त्याग नहीं करता, तेजो अप्राप्त विषयकी प्राप्ति-रूप अशुभ अव्यवसायके अधीन यद्यपि उगवे उगवे जेहने अनुभव करता छे कदापि श्रमणताको प्राप्त करी शक छे ? कदापि नहीं।

इष्ट, अनिष्ट, सचित्त, अचित्त, आदि गंधी वस्तुजो पर समता-भाव राखवे, हास्य आदि छह नोकषायको त्याग करवे। पाच समिति अने त्रय गुप्तिरु

योगत्रयसाधकत्व-सदोरकमुग्धवस्त्रिकोपगोभितमुखत्व-यतनाधर्मवस्त्र-भोगामिप-  
रिक्तत्व-करणसप्तति-चरणसप्ततिपारगत्व-निर्दोषभिक्षणशीलत्व तीर्थङ्कराज्ञाराधकत्व-  
स्वात्मज्ञत्व-निष्परिग्रहत्व-यात्रामात्राज्ञत्व-कर्ममदात्मगोपकत्वा-उल्पपिण्डाउल्पपाना-  
गित्वाउल्पोपधिकत्वा-उल्पकपायत्व-निराश्रयत्व-तीर्णत्वा-उपापत्व निर्ग्रन्थ-प्रवचन-  
प्रवीणत्व गल्यकर्तृत्व-सन्निधिरहितत्वो-रगाद्युपमितत्व-पापश्रुतप्रतिषेधित्व-सुमन-

पाच समिति और तीन गुप्तिका पालन करना, गुप्त-ब्रह्मचारी होना, तीन योगोंको साधना, श्रुतज्ञानरूपी जलसे अन्तःकरणको शुद्ध रखना, सम्यक्त्वसे युक्त रहना, मयमरूपी कवच (चरतर) से सदासन्नद्ध रहना, डोरासहित मुखवस्त्रिकाको मुखपर बाधे हुए रहना, यतना-धर्मको धारण करना, भोगरूपी आमिपसे विरक्त रहना, करणसत्तरी और चरणसत्तरीके पारगामी होना, निर्दोषभिक्षासे ही समययात्राका निर्वाह करना, तीर्थङ्कर भगवानकी आज्ञाका आराधन करना, आत्मज्ञानी होना, परिग्रहका त्याग करना, यात्रा-मात्राको जानना, कच्छुण्की भौति इन्द्रियोंका गोपन करना, अल्प ज्ञान अल्प पानका ग्रहण करना, अल्प उपधि रखना, कपायको त्यागना, आश्रयरहित होना, ससाररूपी सागरसे पार उतरना, पापरहित होना, निर्ग्रन्थ प्रवचनमें प्रवीण होना, माया, मिथ्यात्व और निदान रूप शक्तियोंको काटना, सन्निधिका न रखना, उरगादिकी उपमासे युक्त होना, पापकी प्रस्पष्टता करनेवाले शास्त्रोंका उपदेश नहीं करना, मनको स्वच्छ रखना और अतिचाररहित चारित्रको पालना, तथा मृग जैसे सिंहसे

पालन करवु, शुभ प्रकृत्यागी यवु, त्रयु योगोने साधवा, श्रुतज्ञानउपी जगथी अत उरधुने शुद्ध राणवु, सम्यक्त्वथी युक्त रहेवु, मयमरुपी कवच ( गणतर ) थी सदा सन्नद्ध रहेवु, डोरासहित मुखवस्त्रिकाने मुख पर गाधीने रहेवु, यतना-धर्मने धारणु करवु, भोगउपी आमिपथी विरक्त रहेवु, कच्छुण्णित्तेगी अने य-खुणित्तेगीना पारगामी थवु, निर्दोष भिक्षाथी ज समययात्राने निर्वाह करवो, तीर्थङ्कर भगवाननी आज्ञानु आराधन करवु, आत्मज्ञानी थवु, परिग्रहने त्याग करवो, यात्रामात्राने जगथी, कायजानी पठे इन्द्रियोंनु गोपन करवु, अल्प अज्ञान अल्प पानने अल्प उरवा अल्प उपधि गणवी, कपायने त्यजवा, आश्रयरहित थवु, ससाररुपी सागरथी पार उतरवु, पापरहित थवु, निर्ग्रन्थ प्रवचनमा प्रवीण थवु, माया, मिथ्यात्व अने निदानरुप शक्त्योने कापवा, सन्निधिने न राणवो, उरगादिनी उपमाथी युक्त थवु, पापनी प्रस्पष्टता करवो, शास्त्रोने उपदेश न करवो, मनने स्वच्छ राणव अने अतिचाररहित चारित्रने



-સ્કૃત્ય-નિરતિચારચારિત્રત્વાદિગુણસમ્પન્નઃ, તસ્ય માવઃ કર્મ વા શ્રામણ્યં=શ્રમણધર્મ  
કુર્યાત્=પ્રતિપાલયેત્, ન દ્વિ સકલ્પાધીનચિત્તટ્ટિતયા વ્યાસિત્તસ્ય માવક્રિયા-  
શૂન્ય-દ્રવ્ય-ક્રિયામાત્રપાલનેન શ્રામણ્ય મવતીતિ ગાથાર્થઃ ॥ ૧ ॥

અત્રાય સગ્રહઃ—

“ સચિત્તાચિત્તદન્વેષુ મણુષ્ઠે અમણુષ્ઠપ્ ।  
રક્ષણ્ સમભાવ જો, સમણો સો પટુષ્ઠર્ઈ ॥ ૧ ॥  
દાસ રઈ મય સોગો, દુગુછા ય વસાયયા ।  
અર્ઈ વિષ્પમુકો જો, સમણો સો પટુચ્ઠર્ઈ ॥ ૨ ॥  
પચસમિદ્દિ સમિઓ, તિગુત્તિગુત્તો ય વમયારી જો ।  
પરિસાહેઈ સુજોગ, સો સમણો યુચ્ઠર્ઈ નિચ્ચ ॥ ૩ ॥

છાયા—

“ સચિત્તાચિત્તદ્રવ્યેષુ, મનોજ્ઞે અમનોજ્ઞકે ।  
રક્ષતિ સમભાવ યઃ, શ્રમણઃ સ પ્રોચ્યતે ॥ ૧ ॥  
દાસ્ય રતિભર્ય શોકો, જુગુપ્સા ચ કપાયતા ।  
અર્થૈર્વિષ્મુક્તો યઃ, શ્રમણઃ સ પ્રોચ્યતે ॥ ૨ ॥  
પશ્ચસમિતિભિઃ સમિત્, ત્રિગુપ્તિગુપ્તશ્ચ વ્રહ્મચારી યઃ ।  
પરિસાધયતિ સુયોગ, સ શ્રમણ ઉચ્યતે નિત્યમ્ ॥ ૩ ॥

સર્વથા દૂર ભાગતે હૈં ઉસી-પ્રકાર પાપકર્મ જિસકે પાસ ન ઠહરે વહ  
'શ્રામણ્ય' ( સાધુપન ) કહલાતા હૈં । એસા શ્રામણ્ય તથ તક પ્રાપ્ત નહીં  
હોતા જવ તક વહ કામ-ભોગકા ત્યાગ ન કર દેવેં, જિસકા ચિત્ત  
કામકે સકલ્પ-વિકલ્પોસે વ્યાકુલ રહતા હો ઉસકી ક્રિયાઈ ભાવશૂન્ય  
દ્રવ્યક્રિયાઈ હૈં, કેવલ દ્રવ્યક્રિયાઓંકા પાલન કરનેસે કોઈ શ્રમણ નહીં  
હો સકતા, ઇસ વિષયમે સગ્રહગાથાઈ હૈં ઉનકા અર્થ પહેલે આચુકા હૈં ॥ ૧ ॥

પાણબુ, તથા મૃગ જેમ સિંહથી સદા દૂર ભાગે છે તેમ પાપકર્મ જેની પાસે  
ન ઉભા રહે તે 'શ્રામણ્ય' ( સાધુતા ) કહેવાય છે એવુ શ્રામણ્ય ત્યા સુધી  
પ્રાપ્ત નથી થતુ કે જ્યા સુધી તે કામભોગનો ત્યાગ કરે નહિ, જેનુ ચિત્ત કામના  
સકલ્પવિકલ્પથી વ્યાકુળ રહેતુ હોય છે તેની ક્રિયાઓ ભાવ્યશૂન્ય દ્રવ્ય-ક્રિયાઓ  
હોય છે, કેવળ દ્રવ્ય-ક્રિયાઓનુ પાલન કરવાથી તેમ શ્રમણ થઈ શકતા નથી  
આ વિષયમા સગ્રહ ગાથાઓ છે, જેનો અર્થ પહેલા આવી ગયો છે ॥ ૧ ॥

स्रयनाणसुनीरेण, शुद्धो समत्तरजिओ ।  
 सजमवम्मसनद्धो, समणो सो पवुच्चई ॥ ४ ॥  
 सदोर मुहपत्ति जो, वधई सयय मुहे ।  
 जयणाधम्मणेण जुओ, समणो सो पवुच्चई ॥ ५ ॥  
 भोगामिसपरिहीणो, करणे चरणे य वट्टए सुद्ध ।  
 अदोसभिकवणसीलो, समणो सो वुच्चई निच्च ॥ ६ ॥  
 जिणाणाए समारोहो, आयन्नो निप्परिग्गहो ।  
 जायामायन्नो य मुणी, समणत्ति पवुच्चई ॥ ७ ॥  
 कुम्मो जहा नियगाइ, सए देहम्मि गोवई ।  
 तहा गोवइ अप्पाण, समणत्ति पवुच्चई ॥ ८ ॥  
 अप्पपिंटे अप्पपाणे, अप्पोवहिकसायओ ।  
 निरासवो य तित्तो य, निप्पावो समणो भवे ॥ ९ ॥  
 निग्गयपवयणन्नो, अनियाणो सल्लकत्तओ ।  
 भेसज्जाईण वत्थुण, सत्तिहिं वज्जए मुणी ॥ १० ॥

छाया—

“ श्रुतज्ञानसुनीरेण, शुद्धः सम्यक्त्वरञ्जितः ।  
 सयमवर्मसन्नद्धः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ ४ ॥  
 सदोरा मुखवल्ली यो, वध्नाति सतत मुखे ।  
 यतनाधम्मणेण युतः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ ५ ॥  
 भोगामिपपरिहीणः, करणे चरणे च वर्त्तते शुद्धम् ।  
 अदोषभिक्षणशीलः, श्रमणः स उच्यते नित्यम् ॥ ६ ॥  
 जिनाज्ञाया समारोहः, आत्मज्ञो निप्परिग्रहः ।  
 यात्रामात्राज्ञश्च मुनिः, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ ७ ॥  
 कूर्मो यथा निजाज्ञानि, स्वके देहे गोपयति ।  
 तथा गोपयत्यात्मान, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ ८ ॥  
 अल्पपिण्डोऽल्पपानः, अल्पोपधिकपायकः ।  
 निरास्रवश्च तीर्णश्च, निप्पाप, श्रमणो भवेत् ॥ ९ ॥  
 निर्ग्रन्थप्रवचनज्ञ, अनिदानः शल्यकर्त्तकः ।  
 भैषज्यादीना वस्तूना, सन्धिं वर्जयति मुनिः ॥ १० ॥ ”

उरगाडउमो पाय, -सुयाण पडिसेहओ ।

सुमणो सुहचारित्तो, समणत्ति पटुचर्ड ॥ ११ ॥

मिया जहेउ सीहाओ, दूर चरति सञ्चहा ।

तहा जओ य पायाइ, समणत्ति पटुचर्ड ॥ १२ ॥ इति ।

छाया—

“ उरगाद्युपमः पापश्रुताना प्रतिपेधकः ।

सुमना' भुभचारितः, श्रमण इति प्रोन्यते ॥ ११ ॥

मृगा यथैव सिंहाद्, दूर चरन्ति सर्पया ।

तथा यतश्च पापानि, श्रमण इति प्रोन्यते ॥ १२ ॥” इति छाया ।

पूर्व शब्दादिविषयप्रवृत्तः श्रामण्य पालयितु न शक्नोतीत्युक्त, सम्प्रति  
'द्रव्यक्रिया कुर्वाणोऽपि कल्पितचित्तत्वाद्श्रमण एवे'ति दर्शयितुमाह—

यद्वा पूर्वगाथया भङ्गचन्तेरण शब्दादिविषयविनिवृत्त एव श्रामण्यमर्हतीति  
सूचितम्, शब्दादिविषयविनिवृत्तिश्च रोगादिना कारणेनापि सम्भवतीत्यतस्तद्वचन  
च्छेदार्थं गाथान्तरमाह— 'वत्थ गध'—मित्यादि ।

ऊपर कह चुके हैं कि शब्दादि इन्द्रियविषयोंमें प्रवृत्त साधु श्रामण्य  
(चारित्र) का पालन नहीं कर सकता । अब द्रव्यक्रियाएँ करते हुए भी  
यदि साधुके चित्तमें कलुषता हो तो वह वास्तवमें त्यागी नहीं है, यह  
कहते हैं—

अथवा पहली गाथामें एक विशेष प्रणालीसे यह प्रतिपादन किया  
है कि—शब्दादिविषयोंका त्यागी ही श्रामण्य (साधुपना) पाल सकता  
है, किन्तु रोग आदि कारणोंसे भी शब्दादि विषयोंको नहीं भोग सकता  
तो क्या उस समय वह भी त्यागी कहला सकता है ? कभी नहीं कहला  
सकता, इसी विषयको कहते हैं—'वत्थ गध' इत्यादि ।

ऊपर कहेवाले गद्य छे के शब्द आदि इन्द्रियविषयोंमें प्रवृत्त जेवो साधु  
श्रामण्य (चारित्र) नुं पालन करी शकते नथी उवे द्रव्यक्रियाओं करता पणु जे  
साधुना चित्तमें कलुषता होय तो ते वास्तवमें त्यागी नथी, जे कहे छे—

अथवा पहिली गाथामें एक विशेष प्रणालीसे जेभ प्रतिपादन कर्तुं छे के—  
शब्दादि-विषयोंमें त्यागी न श्रामण्य (साधुता) पाणी शकें छे, किन्तु रोगादि  
कारणोंसे पणु शब्दादि विषयोंमें नथी भोगवी शकते तो शु ते समयमें जे पणु  
त्यागी कहेवाले शकें छे ? नथी कहेवाले, जे विषय उवे कहे ॥ १— इत्यादि

३ ४ ५ ७ ६  
मूलम्—वत्थगंधमलकारं, इत्थीओ सयणाणि य ।

२ १ ८ ६ १० ११ १३  
अच्छंदा जे न भुंजति, न से चाइत्ति बुच्चई ॥२॥

जाया—रस्रगन्धमलङ्कार, स्त्रियः शयनानि च ।

अच्छन्दो यो न भुदक्ते, न स त्यागीत्युच्यते ॥ २ ॥

सान्त्वयार्थं—जे=जो अच्छंदा=पराधीन होनेसे वत्थगंध=वस्त्र गन्ध अल-  
कार=आभूषण इत्थीओ=स्त्रियों य=और सयणाणि=शय्या-(पलंग महल  
विगरे) को न भुजति=नहीं भोगता है से=वह चाइत्ति="त्यागी" ऐसा  
न बुच्चई=नहीं कहा जाता है। अर्थात् अपनी अच्छंदासे विपयोको न भोगनेवाला  
त्यागी कहलाता है। जो रोग आदि किसी कारणसे पराधीन होकर विपयोका  
सेवन नहीं कर सकता वह त्यागी नहीं कहलाता ॥ २ ॥ और—

टीका—अत्र 'अच्छंदा' 'जे' 'भुजति' इत्येतेषु पदेषु बहुवचनप्रयोगः  
सौरत्वात् । तथा चायमर्थः—यः अच्छन्दः=रोगाग्रभिभूततया पराधीनो वस्त्र  
च गन्धश्चानयो. समाहारः वस्त्रगन्ध, तत्र वस्त्र=प्रसिद्ध, गन्ध.=चन्दनरूपुरादि-  
सुगन्धिद्रव्य तत्, अलङ्कार=कुण्डल्वलययादिस्तम्, स्त्यायतः शुक्रशोणिते यासु

१ यत्तु 'बहुवचनोद्देशेऽप्येकवचननिर्देशो विचित्रत्वात्सूत्रगते' इति, यच्च  
'अत्र सूत्रगतेविचित्रत्वाद्बहुवचनेऽप्येकवचननिर्देशः' इति, यदपि च 'किं  
बहुवचनोद्देशेऽप्येकवचननिर्देशः' विचित्रत्वात्सूत्रगतेर्विपर्ययश्च भवत्येवेति कृत्वा-  
ऽऽह—'नासौ त्यागीत्युच्यते' इति, तदिदं त्रितयमपि व्याख्यानं सूत्रपूर्वापराऽननु-  
सन्धानमूलकत्वाद्नुपादेयमेव, यतो द्वितीय-तृतीयगाथयोस्तात्पर्यपर्यालोचनायामेक-  
वचनान्तप्रयोग एव सूत्रकृतोऽभिप्रेत इति सूचीकटाहन्यायेनापि बहुवचनान्तेष्वेक-  
वचनान्तत्वरूपेण युक्तियुक्तमिति ॥

जो मनुष्य रोग आदिसे आक्रान्त होनेके कारण पराधीन है और  
पराधीनता (असमर्थता) के कारण वस्त्र, कस्तूरी, केशर, चन्दन, आदि  
गन्ध, कुण्डल, कटक आदि आभूषण, स्त्री, शय्या और 'च' शब्दसे सवारी

२ मनुष्यो रोगादिथी आक्रान्त होवाने कारणे पराधीन छे अने पराधीनता  
(असमर्थता)ने कारणे वस्त्र, कस्तूरी, केशर, चन्दन आदि गंध, कुण्डल, कटा  
आदि आभूषण, स्त्री, शय्या अने च शब्दथी सवारी, आसन आदिनु सेवन

ताः द्वियः=रामिन्यस्ताः, शय्यते येषु शतानि शयनानि=पल्पङ्ग खट्वाचतुष्टि  
कादीनि, शतानि, चकारात् यानाऽऽसनादीनि, न भुङ्क्ते=न सेवते, सः, त्यागी  
त्यजति=परिमृञ्चति ससारसम्बन्ध तन्त्रील इति, न उच्यते=न कथ्यते, उ  
गाथार्थः ॥ २ ॥

कस्तर्हि त्यागी ? इति चेत्तत्राह-‘जे य कते’ इत्यादि ।

मूलम्-जे य कते पिण् भोण्, लडेवि पिट्टिकुव्वड् ।

साहीणे चयई भोण्, से हु चाइत्ति बुच्चई ॥ ३ ॥

छाया-यश्च कान्तान् प्रियान् भोगान्, ल-धानपि पृष्ठीकरोति ।

स्वाधीनस्त्यजति भोगान्, स एव त्यागी इत्युच्यते ॥ ३ ॥

सान्प्रयार्थ -जे य=जो लडेवि=प्राप्त हुएभी कते=मनोहर पिण्=अभीष्ट म  
गमते भोण्=भोगोको पिट्टिकुव्वड्=त्याग देता है (और) साहीणे=स्वतन्त्र हो  
हुए मोह=विषयोको चयई=त्यागता है से=यह हु=निश्चय करके चाइत्ति  
“त्यागी” ऐसा बुच्चई=महलाता है । अर्थात् भोगोकी प्राप्ति होने-पर भी औ

१-अधिकरणे ल्युट् । २-प्रथमान्तमिदम् । ३-द्वितीयान्तमिदम् । ४-‘भुजोः  
नवने’ इत्यात्मनेपद, सूत्रे तु प्राकृतत्वात्परस्मपदम् ।

आसन आदिका सेवन नहीं करते हैं वे त्यागी अर्थात् ससारके सम्ब  
न्धोंका त्याग करने वाले नहीं कहला सकते हैं, क्योंकि असार समझक  
ममता छोड़ना-रुचि न रखना त्याग कहलाता है । रोग आदिसे ग्रसि  
ऊपर कहे-हुए विषयोंकी ममता नहीं छोड़ता ( रुचि रखता ) है इसलि  
वह त्यागी नहीं कहला सकता ॥२॥

त्यागी किसे कहते हैं ? इसपर सूत्रकार कहते हैं-‘जे य०’ इत्यादि

करता नहीं तेजो त्यागी अर्थात् ससारना सणधेने त्याग करवावाणा न  
कडेवाथ शकता कारण ते असार समझने ममता छोडवी-इत्थि न राणवी जे  
त्याग कडेवाथ छे वेगाइत्थि त्रसित भनुथे उपर कडेला विषयेनी ममता छोड  
नथी, तेथी तेजो त्यागी कडेवाता नथी (२)

त्यागी डेने कडे छे ? जे विषे सूत्रकार कडे छे-जे य० इत्यादि

भोगनेकी स्वतन्त्रता रहते हुए भी जो भोगोंको नहीं भोगता वह सच्चा त्यागी है। गाथामें “चि” शब्द आया है उससे यह प्रगट होता है कि यदि किसीको अशुभ समयमें मनोहर और प्रिय भोग न भी उपलब्ध हो तथापि उसकी इच्छा कदापि भोगनेकी न हो तो भी वह त्यागी ही है ॥ ३ ॥

टीका-‘च’ शब्दः पूर्वगाथोक्तार्थनिवारकत्वेन ‘तु’-शब्दार्थेऽवधारणार्थे वा, ‘खलु’-शब्दोऽवधारणार्थे, तथा चायमर्थः-यस्तु लब्धान्=प्राप्तानपि कान्तान्=कमनीयान् (मनोहरान्) प्रियान्=अभिलषितान्, भोगान्=शब्दादीन् पृष्ठीकरोति=पृष्ठशब्दस्य तत्स्ये लक्षणया अपृष्ठस्थान् पृष्ठस्थान् करोति=दूरतः परिहरतीत्यर्थः, ततो विमुखीभवतीति यावत् । एव तु रोगाद्यवस्थायामपि सभवतीत्यतः स्पष्टयति-स्याग्नीनः=रोगाग्रनभिभूतचित्तः सन् भोगान्=पूर्वोक्तलक्षणान् शब्दादीन्, पुनर्भोगग्रहणं ‘द्विर्बद्धं सुखं भवती’-ति न्यायात्साकल्येन भोगत्वाच्चिच्छन्नपरिग्रहार्थम्, त्यजति=मुञ्चति, स खलु=स एव त्यागीति उच्यते=कथ्यते, न तु पराग्नीन इति गाथार्थः ॥ ३ ॥

उक्तविधस्यापि साधोः सयममार्गे विहरतः कदाचिद् विषयस्मरणेन प्रखलितचित्तता माप्रसादक्षीदिति तदुपाय दर्शयति-“समाए०” इति ।

जो महापुरुष पूर्वपुण्यके उदयसे प्राप्त हुए मनोहर और इष्ट शब्दादि विषयोंको विविध-वैराग्य-भावना भाकर त्याग देते हैं-उनसे विमुख हो जाते हैं और रोग आदिसे पीडित न होनेके कारण स्वाधीन (समर्थ) होते हुए भी विविध-वैराग्य-भावना भाकर समस्त भोगोंको त्याग देते हैं वेही त्यागी कहलाते हैं ॥३॥

सयम मार्गमें विहार करते हुए त्यागी मुनिका मन, स्त्री आदिको देखनेसे कदाचित् विचलित (डावाडोल) हो जाय तो उसको रोकने के लिए उपाय बतलाते हैं-‘समाए०’ इत्यादि ।

७ महापुरुषो पूर्वपुण्यना उदयथी प्राप्त थयोत्ता मनोहर अने इष्ट शब्दादि विषयेने विविध-वैराग्य-भावना भावीने त्यज्ते दे छे-तेनाथी विमुक्त अनी न्यथे छे, अने रोगादिथी पीडित न होवाने कारणे स्वाधीन (समर्थ) होवा छता यथु विविध-वैराग्य-भावना भावीने यथा योगेने त्यज्ते दे छे, तेथो ७ त्यागी इहेवाय छे (३)

सयम-मार्गमा विहार करता त्यागी मुनिनु मन, स्त्री आदिने जेवाथी जे विचलित (डावाडोल) थथ न्यथे तो तेने रोकवाने भाटे उपाय बतावे छे-‘समाए०’ इत्यादि

मूलम्-समाए<sup>१</sup> पेहाए<sup>२</sup> परिब्बयतो<sup>३</sup>, सिया मणो<sup>४</sup> निस्सरई<sup>५</sup> वहिद्धा<sup>६</sup> ।  
 न सा<sup>१०</sup> महं<sup>८</sup> नोवि<sup>६</sup> अहवि<sup>१३</sup> तीसे<sup>११</sup>, डच्चेव<sup>१२</sup> ताओ<sup>१४</sup> विणइज्ज<sup>१७</sup> राग<sup>१९</sup> ॥४॥

छाया-समया प्रेक्षया परित्रजतः, स्यान्मनो निःसरति रदिः ।

न सा मम नो अपि अहमपि तस्याः, इत्येव तस्या विनयेत रागम् ॥४॥

सान्प्रयार्थः-समाए=सम पेहाए=भाषनासे परिच्ययतो=सयममार्गमें विचरते हुए साधुका मणो=मन सिया=कदाचित्-कभी यहिद्धा=सयमगृहसे बाहर निस्सरई=निकल जाय तो "सा=वह स्त्री मह=मेरी न=नहीं है अवि=और अहवि=मैं भी तीसे=उस स्त्रीका नो=नहीं हूँ" इच्चेव=उस प्रकार ताओ=उस स्त्रीसे राग=रागको विणइज्ज=दूर करे ॥ ४ ॥

टीका—समया=रागद्वेषपरिणतिरिक्तया स्वतुल्यया, प्रेक्षया=प्रेक्षतेऽनयेति ऋणव्युत्पत्तिजलाद् दृष्ट्या, परित्रजतः=विहरतः प्रोक्तरूपश्रामण्ये स्थितस्येत्यर्थः मन=हृदय, स्यात्=कदाचित् मोहनीयकर्मप्रकृत्युदयवशाद् भुक्तभोगतया पूर्वकृतरत्यादिस्मरणेन तदन्यथात्वे विषयसेवनवाञ्छया वा, वहिः=सयमयोगाद्बाह्ये विषयादौ नि सरति=निर्गच्छति, अथ किं कर्तव्यं? तदाह 'न सा' इति, सा=परिचिन्त्यमाना स्त्री न मम, अपि=च अहमपि तस्याः=परिचिन्त्यमानाया

रागद्वेषरहित-समतापूर्वक विचरते हुए श्रामण्यमें स्थित मुनिका मन स्त्री आदिको देखने पर मोहनीय कर्मके उदयसे कदाचित् पहले भोगे हुए भोगोंका स्मरण होजानेसे, अथवा विषयसेवनकी इच्छा होनेसे सयमरूपी घरसे बाहर निकल जाय तो उस समय साधुको विचारना चाहिए कि-मैं जिसकी अभिलाषा करता हूँ, वह स्त्री न मेरी है और न

रागद्वेष रहित समतापूर्वक विचरता श्रामण्यभा स्थित मुनिनु मन स्त्री आदिने हेभता मोहनीय कर्मना उदयथी कदाचित् पहलेला लोगवेला लोगोनु स्मरण् थय न्वाथी, अथवा विषय सेवननी इच्छा थवाथी सयमरूपी घरनी अन्तर नीकणी नथ तो ते समये साधुये विचारयु लेथये के हुं नेनी अभिलाषा कइ थु ते स्त्री नथी मारी के नथी हुं तेने अथेवा विचार करीने अ स्त्री प्रत्येना

स्त्रियाः न, इत्येवम्=अनया रीत्या, तस्याः=अभिलष्यमाणायाः स्त्रियास्तत्सम्बन्धनमित्यर्थः, रागम्=दुरभिलाप, विनयेत्=दूरीकुर्यात् ।

वनिताविषये प्रसूत मनस्तदीयरागसवन्धिवहुतरदोपानुचिन्तनेन ततो निर्वर्तयन् मुनिः समा प्रेक्षामवलम्ब्य वनितादर्शनात् प्रागिव रागशून्यो भवेदिति भावः । दोपानुचिन्तन यथा—“रे चित्त ! चारित्रस्य प्राणभृत ब्रह्मचर्यं यावज्जीवनमनुपालयितु कृतप्रतिज्ञस्य तव स्वकृतप्रतिज्ञापरित्यागोद्यमे कुतो न लज्जासमुद्भवः ? । यदा ससारदावदहनपरितप्तस्य तत्र कोऽपि लोके शरण नाभूत् तदा यानेव विषयान् परित्यज्य जिनेन्द्रप्रतिपादित चारित्रधर्म शिरसाऽङ्गीकृत्य त्वया

में उसका हूँ । ऐसा विचार करके उस स्त्रीके विषयका राग-भाव दूर करना चाहिए । तात्पर्य यह है कि—स्त्रीके विषयमें मनकी प्रवृत्ति होनेसे चारित्रकी मलिनता आदि बहुतेरे दोष उत्पन्न होते हैं । उन दोषोका विचार करके मुनि अपने मनको उस तरफसे हटाता हुआ समप्रेक्षाका अवलम्बन करके उसीप्रकार रागरहित होजावे जिस प्रकार स्त्रीको देखनेके पहले था ।

दोषोंका विचार इसप्रकार करे—रे मन ! चारित्रके प्राणोंके समान ब्रह्मचर्यको यावत्जीवन पालन करनेकी तुने प्रतिज्ञा की है, पहले की हुई प्रतिज्ञाका अब परित्याग करते तुझे लज्जा नहीं आती ? जिस समय तू ससाररूपी तीव्र दावाग्निसे सतप्त हुआ और लोकमें कोईभी तुझे न बचा सका उस समय जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्ररूपित चारित्र धर्मको तुने

विषयने। रागभाव हर करवो नोद्ये तात्पर्य ऐ छे डे—स्त्रीना विषयमा मननी प्रवृत्ति थवाथी चारित्रनी मलिनता आदि अनेक दोष उत्पन्न थाय छे ऐ दोषोने। विचार करीने मुनि पोताना मनने ते तरक्षी पाधु डहावता समप्रेक्षातु अवलम्बन करीने ऐवो रागरहित थथ् न्यथ के जेवो ते स्त्रीने डेपता पडेला डते।

दोषोने। विचार आ प्रमाणे करे—डे मन ! चारित्रना प्राणु समान प्रह्व अर्थने एवनपर्यंत पाणवानी ते प्रतिज्ञा करी छे पडेला करेदी प्रतिज्ञाने। डवे परित्याग करता तने शरम नथी आवती ? जे सभये तु ससाररूपी तीव्र दावा-नजथी सतप्त थयो अने डोकमा डोड पधु तने जथावी न शकधु, ते सभये एनेन्द्र भगवाने पडेला चारित्र धर्मने ते स्वीकार कर्यो अने जे डेय विषयोथी



નિરસ્તઃ સરુલઃ સન્તાપઃ, કિમિદાનીં પુનર્ગાન્તાપલેદી શ્વેત્ત્વ મત્તજાનનુસ્મરત્ વિસ્મ  
 રસ્યાત્માનમ્ ? ।

અરે ! વિમ્બૃતઃ કિં બ્રહ્મચર્યમહિમા ? યત્પ્રભાવેનાઽન્વીયસૈવ કાલેન લોકપૂ  
 જિતૈરપિ સુરાસુરમનુજેન્દ્રૈઃ પૂજ્યમાનમસિ પુનઃ કિં તદેવ વિસ્મરસિ ? । इदमप्य-  
 नुचिन्तय—

“ ચિરાયુષ્ઠ સુસથાના, દૃઢસહનના નરાઃ ।

તેજસ્વિનો મહાવીર્યા, મવેયુર્બ્રહ્મચર્યતઃ ॥ ૧ ॥ ” ઇતિ ।

અપિચ અનગ્રાપ્તપરમાર્થતત્ત્વાસ્વાદનમુગ્ધાના સસારામિનન્દિના વિપયામિપો-  
 પભોગમુલ્લસામુકાનામવિવેકિનામેત્ કામિની કમનીયા મત્તુ નામ, પરન્તુ ઇત-

સ્વીકાર ક્રિયા ઓર જિન હેય ત્રિપયોસે મુગ્ધ મોઢકર સકલ જજાલ  
 છોડ દિયે ઉન્હી વિપયોકો વમનચાટનેવાલે શ્વાનકે સમાન ફિર સ્વીકાર  
 કરના ચાહતા હૈ ? એ અધમ મન ! અપને સ્વરૂપકા વિચાર કર ।

અરે મન ! દેવ, બ્રહ્મચર્યની મહિમાસે હી લોકમેં પૂજે જાનેવાલે સુરેન્દ્ર  
 અસુરેન્દ્ર ઓર નરેન્દ્રોંકે દ્વારા તુ પૂજ્ય સમાનનીય કૃઆ હૈ, એસે અમિત-  
 મહિમાવાલે બ્રહ્મચર્યકો મી તુ ત્વયોં મૂલ ગયા હૈ ? કહા મી હૈ—

“ બ્રહ્મચર્યસે દીર્ઘ આયુ, સુન્દર આકાર, ઓર દૃઢ સહનન પ્રાપ્ત હોતે હૈ,  
 બ્રહ્મચર્યસે હી મનુષ્ય, તેજસ્વી ઓર મહાશક્તિશાલી હોતે હૈ ” ॥૧॥

હે જીવ ! કિપાકફલ સરીખે વિપયભોગ સુગન્ધ, સુરૂપ, સુશબ્દ,  
 ઓર સુસ્પર્શ અવિવેકી જીવોંકો મલેહી મનોહર લગે, પર તૃતો

વિમુખ થઇને ગધી જ જાળને છોડી દીધી, તેજ વિષયોનેા વમનચાટનારા શ્વાનની  
 પેઠે ફરીથી તુ સ્વીકાર કરવા ચાહે છે ? હે અધમ મન ! તારા પોતાના સ્વરૂપનેા  
 તુ વિચાર કર

અરે મન ! જો, બ્રહ્મચર્યના મહિમાથી જ, લોકમા પુજતા સુરેન્દ્ર અસુરેન્દ્ર  
 અને નરેન્દ્રોની દ્વારા તુ પૂજ્ય સમાનનીય થયો છે, એવા અપારમહિમાવાળા  
 બ્રહ્મચર્યને પશુ તુ કેમ ભૂલી ગયો છે ? હલુ પશુ છે—

“ બ્રહ્મચર્યથી દીર્ઘ આયુષ્ય, સુદર આકાર, અને દૃઢ સહનન પ્રાપ્ત થાય છે  
 બ્રહ્મચર્યથી જ મનુષ્ય તેજસ્વી અને મહાશક્તિશાલી થાય છે ” (૧)

હે જીવ ! કિપાકફળ એવા વિપયભોગ, સુદર, સુરૂપ, સુશબ્દ અને સુસ્પર્શ  
 અવિવેકી જીવોને ભલે મનોહર લાગે, પરન્તુ તુ તો સયમીઓમા શ્રેષ્ઠ બનવા

दीयानुरागपरिणामदारुणता तिमिरतस्तत्रापि किं सयताग्रगणनीयताऽभिलाषो नोपहासाय जायेत ? ।

अरे मूढ़ ! अस्याः खलु विलासकृत्कलापवैदुष्य विलोक्य लुब्धकप्रसारितजाले कुरङ्ग इव, मार्गवर्तिनि गते तुरङ्ग इव, ज्वलति प्रदीपे पतङ्ग इव किमात्मान निरये निपातयसि ? ।

अहो ! अयोमयशृङ्खलामप्यप्रयति रागपाशः, यत् खलु मधुपः कठिनतरकाष्ठकृन्तनदक्षोऽपि न क्षमो भवति सकुचितकमलपुष्पानुरागनिबद्धमात्मान परित्रातुम् ।

सयमियोंमें श्रेष्ठ बनना चाहता है फिर इनमें अनुराग करनेसे जो भयकर फल उत्पन्न होते हैं उन्हें क्यों भूल जाता है ? इससे तेरी वह उच्च अभिलाषा क्या हास्यास्पद नहीं होगी ? अवश्य होगी ।

अरे मूढ़ ! जैसे व्याध ( शिकारी ) के फैलाए हुए जालमें कुरग ( हरिन ) फस जाता है, रास्तेके गड्डेमे तुरग गिर जाता है, जलते हुए दीपककी ज्वालामें पतंग गिर पडता है वैसेही स्त्रीके हास विलास और हास-भावकी चतुराई देखकर क्यों अपनी आत्माको नरकमे गिराता है ?

अहो ! इस रागके बन्धनके आगे लोहकी वेडीभी तुच्छ है, देखो, भोरा कठिनसे कठिन काष्ठको काट डालनेमें कुशल होता है परन्तु सूर्यके अस्त होजाने पर सकुचित कमल पुष्पके अनुरागके बन्धनमें बधी

धरंछे छे, तो पडी ओमा अनुराग करवाथो ने लय कर इण उत्पन्न थाय छे तेने डेम लूडी नय छे ? तेयी तारी ओ उच्य अभिलाषा शु हास्यास्पद नडि थाय ? अवश्य थरी

अरे मूढ़ ! नेम व्याधे ( शिकारीओ ) इलावेडी नजमा करग ( हरण ) इसाध नय ते रन्तामाना भाडामा तुरग ( घोडे ) पडी नय छे, गणता हीवानी जवणामा पतंग होमाध नय छे, तेम खीना हास्यविलास अने हावलावनी अनुगध नेधने डेम तारा आत्माने नरठमा पाडे ते ?

अहो ! आ रागना गंधननी आगण लोढानी भेडी पण तुच्छ छे नुओ । लभरी कठिनमा कठिन नधने कापी नाणवामा कुशल होय छे परन्तु सूर्यने अस्त थतानी साथे न पीडायला कमल पुष्पना अनुरागना गंधनमा गंधायदी

इह वाद्यरमणीयतास्पदे, नितान्ताशुचिपदे, चपलायत्प्रतिपलचपलरूपलावण्ये, योपिदपचने किमिदं नाम शोभनं विद्यते, यद् गालविधुत्सेवेन, अमृतावयवनिर्मितेव, चन्द्रमण्डलादुद्भूतेन, इयं नीलकमलद्रव्यायताक्षी भृगुवदनयनाभ्यां जीवलोकमाश्रासयन्तीर कमनीया निरीक्ष्यते ।

१ स्त्रीचेष्टाविशेषो हायस्तेन सहिते=सहाये ते च ते नयने च=सहायनयने ताभ्यामित्यर्थः ।

हुई अपनी आत्मा की रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता । इसलिए हे मन ! ऐसे रागमें फँसनेकी इच्छा क्यों कर रहा है ?

ऐ जीव ! ऊपर-ऊपरसे मनोहर मालूम होनेवाले, अन्यन्त अपवित्रताके स्थान, चपला (विजली) की नाई पल-पलमें चपलरूप-लावण्यवाले, स्त्रीके शरीरमें तुझे क्या अच्छापन दिखाई देता है ? जिससे तू उसे यह समझ रहा है कि-मानो वह छितीयाके चद्रमाकी कला है, अमृतके अवयवोंसे बनी हुई है, चन्द्रमाको फाड़कर निकल पडी है, नीलकमलके दल (पत्ता) के समान विशाल नेत्रवाली, तथा लीलायुक्त लोचनोंसे लोकको अवलम्बन देनेवाली मनोहर दीख पडती है ।

१ मूर्ख होनेवाले, कमलके भीतर पडा हुआ भौरा, तकलीफ सहकर सारी रात बिताता है किन्तु अनुराग (प्रीति) के कारण, कमलके कोमल (मोचयम) पत्तोंको भी काटकर उस तकलीफको रफा करनेका साहस नहीं कर सकता ॥

घोताना आत्मानि रक्षा करवाना समर्थ नहीं जानता ? तो हे मन ! येवा रागमा इसावानी धिक्का केम करी रह्यो छे ?

हे लव ! उपर उपरथी मनोहर मालुम पडता, अत्यन्त अपवित्रतानुं स्थान विजलीनी पेटे पल-पलमा अपण इप-लावण्यवाणा स्त्रीना शरीरमा तने कथं सुदरता देभाय छे ? ते ल्येथी तु तेने मानि रह्यो छे के- आ धीजना चद्रमानी कला छे अमृतना अवयवोधी जनेली छे, चद्रमाने झडीने नीकणी पडी छे, नील कमलना दण ( पाहडीओ ) नी समान विशाल नेत्रवाणी तथा लीलायुक्त लोचनोधी लोकने अवलम्बन आपनारी मनोहर देभाय छे

१ मूर्ख अस्त पाग्या पछी कमलनी अहर गोधाज गज्येवा लभसे तकलीफ सहन करीने आभी रात बीतावे छे, परन्तु अनुराग (प्रीति) ने कारणे कमलनी कोमल (मुचयम) पाहडीओने काफी नाभीने ये तकलीफ दूर करवानु साहस नहीं करी सकते।

अनालोन्य प्रवर्तमानः खलु पराभूयते, तस्मादियदपि तावद् विभावय विलासिनीविलसन कुतः स्थानादिदमुद्भवति ? किं चास्य कारणम् ? कथमिदं तिष्ठति ? किमेतस्मान्निःसरत् सततं दरीदृश्यते ? इति,

विरम विरमात्रानुरागकरणात्, अस्य हि शरीरस्य मूत्राद्युपहतमुद्भवस्थानम्, शुरुगोणिते एव कारणम्, अग्नितपीतादिना च स्थितिः, एतस्मान्निःसरीसर्ति च मलमूत्ररुफादिक्रमेण, किं गहुना मृदुतममनोरमवसनविनिर्मितया मलमूत्रास्थि-

हे आत्मन् ! स्मरण रत्न, जो बिना विचारे किसी विषयमें प्रवृत्ति करता है उसकी गड़ी दुर्गति होती है। तू अपना कल्याण चाहता है तो विलासिनियोंके विलासका अच्छीतरह विचार करले। यह सोच देख कि यह शरीर कहाँसे उत्पन्न होता है ? इसका क्या कारण है ? कैसे ठहरता है ? और इससे क्या-क्या घिनौने (घृणाजनक) पदार्थ निकलते हुए दिखाई देते हैं ?

यस कर, रहेनेदे, इस शरीरमें अनुराग मत कर, मलमूत्रसे भरे हुए स्थानसे यह शरीर उत्पन्न हुआ है, रज-वीर्य इसके कारण हैं, खाया पीया भोजन इसकी स्थितिका निमित्त है, और इसके नौ द्वारोंसे मल-मूत्र आदि घृणित पदार्थ निकला करते हैं, अधिक क्या कहें ? कोमल और मनोहर कपड़ेसे गधी-हुई मल-मूत्रकी गठरीमें पामर प्राणीभी अनुराग नहीं करता, फिर अशुचि आदि भावनाओंका समीचीन

हे आत्मन् ! याद कर के, जे बिना विचारे केछ विषयमा प्रवृत्ति करे छे तेनी बारे दुर्गति थाय छे तु पोताना कथायुने आडे छे तो विलासिनीयोना विलासने सारी पेछे विचार करी ले ओठलु विचारी जे के आ शरीर कथाथी उत्पन्न थयु छे ? ओनु शु कारण छे ? ते देवी रीते टडे छे ? अने ओभायी देवा देवा गधाता (घृणाजनक) पदार्थो नीकणता जेवामा आवे छे ?

जस कर, रहेवा दे, आ शरीरमा अनुराग न कर, मलमूत्रथी लरेला स्थानमाथी आ शरीर उत्पन्न थयु छे, रज-वीर्य ओनु कारण छे, पाधेलु-पीधेलु खोजन, ओनी स्थितिनु निमित्त छे, अने तेना नव द्वारे वाटे मग-मूत्र आदि घृणित पदार्थो नीकणया करे छे वधारे शु ठहीओ ? केमण अने मनोहर कपडाथी पाधेली मगमूत्रनी गासडीमा पामर प्राणी पयु अनुराग नहीं करते, तो पछी अशुचि आदि भावनाओनु समीचीन चिंतन करवामा अतुर बुनिओनी तो

कफादिपोट्टलिकया न पामरोऽपि रज्यते, का कथा पुनर्मानाकृत्स्नाना मृनीनाम् ।

उक्तञ्च—“ अम्भःकुम्भशतैर्गुर्ननु वहिर्मुग्धाः ! शुचिस्व क्रियत्,-

काल लम्भयथोत्तम परिमठ कस्तूरिकाद्यैस्तथा ।

षिष्ठाकोष्ठरुमेतदङ्गकमहो ! मध्ये तु शौच कथं,-

ङ्कार नेप्यथ सूचयिष्यथ कथङ्कार च तत्सौरभम् ” ॥ १ ॥

अन्यच्च—“ विरम विरम सगान्मुञ्च मुञ्च प्रपञ्च,

विम्लज विम्लज मोह विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम् ।

कलय कलय वृत्त पश्य पश्य स्वरूप,

कुरु कुरु पुरुषार्थं निर्वृतानन्दहेतोः ॥ २ ॥ इति, ”

चिन्तन करनेमें चतुर मुनियोंका कहना ही क्या है ? वे तो उस ओर आखभी नहीं उठाते । कहा भी है—

“शरीरको सैकड़ों घड़ोंसे चाहे जितना नहलाओ धुलाओ, और केशर कस्तूरी गुलाब आदिकी सुगन्धसे सुगन्धित करो, परन्तु यह शरीर तो मल-मूत्रका भाजन है । हे भव्यो ! इसे कैसे पवित्र बनाओगे ? और कैसे इसकी सुगन्धि फैलाओगे ” ॥१॥

“हे आत्मन् ! तू स्त्री आदिकी ममतासे विरक्त हो विरक्त हो, मोहका त्यागकर त्यागकर, आत्माके स्वरूपको पहचान पहचान, और मोक्षसुखके लिए पुरुषार्थ कर पुरुषार्थ कर” ॥२॥

१ यहा प्रत्येक कर्तव्यको दुहरानेसे अत्यन्त तीव्र प्रेरणा प्रकट होती है ।

शी वात ? तेजो तो तेनी तरङ्ग उथी आणे जेता पणु नथी कळु छे डे—

“शरीरने नेकडे घडा पाणीथी थाडे तेठळु न्हवरावो, धुजो, अने केशर कस्तूरी गुलाब आदिनी सुगंधथी सुगंधित करी, परतु आ शरीर तो मल-मूत्रका भाजन छे डे लव्यो ! तेने डेवी रीते पवित्र जनावशो ! अने डेवी रीते तेना पराग ( केशरभ ) ने डेलावशो ? ” (१)

“हे आत्मन् ! तू स्त्रीआदिनी ममताथी विरक्त था विरक्त था, मोहने त्याग कर त्याग कर, आत्माना स्वरूपने ज्ञानु ज्ञानु, चारित्रने अलयास कर अलयास कर, पोताने पिछाणु पिछाणु, अने मोक्ष सुखने भाटे पुरुषार्थ कर पुरुषार्थ कर” (२)

अपरञ्च—“अमेत्यपूर्णे कृमिजालसङ्कुले, स्वभावदुर्गन्धविनिन्दितान्तरे ।

कलेवरे मूत्रपुरीषभाविते, रमन्ति मृदा विरमन्ति धीराः ॥३॥” इति ।

यद्यपि ससारभीरुभिः परिहेयोऽन्यसद्गो दुस्त्यजः, तथापि ब्रह्मचर्यमहिमान-  
मनुस्मरता मुनीना केवल स्त्रीसङ्गपरिहारेण द्रव्यादिसङ्गः स्वयमेव निवर्तते । यथा  
स्वयम्भूरमणमहासागरमुत्तीर्णस्य पुरतः क्षुद्राकृतिर्गङ्गासमानाऽपि नदी सुखसमु-  
त्तरणीया भवति । उक्तञ्च भगवता उत्तराध्ययनसूत्रस्य द्वाविंशोऽध्ययने—

“एष य सगे समङ्कमिता, मुहुत्तरा चैव हवति सेसा ।

जहा महासागरमुत्तरिता, नई भवे अवि गगासमाणा ॥ १ ॥” इति ,

“अशुचि पदार्थोंसे भरा हुआ, जूँ आदि कीड़ोंसे व्याप्त, स्वाभाविक  
दुर्गन्धके कारण भीतर भी घृणित और मल-मूत्रसे वेष्टित (स्त्रियोंके)  
शरीरमें रमण वे करते हैं जो मूढ हैं, और बुद्धिमान् पुरुष महान् निकृष्ट  
समझ कर उससे अलग रहते हैं ॥ ३ ॥”

यद्यपि विषयोंके सग ससारभीरु पुरुषोंके लिए त्याज्य है और  
उनका त्याग होना कठिन है, तथापि ब्रह्मचर्यकी महिमाका स्मरण करने-  
वाले मुनियोंको एक मात्र स्त्रीसगके त्याग देनेसे अन्य विषयोंके सग  
दुस्त्यज होनेपर भी स्वयमेव निवृत्त हो जाते हैं । अर्थात् ब्रह्मचर्यमें दृढ़  
रहनेवालों पर कोई भी विषय, अपना प्रभाव नहीं डाल सकता । जो  
पुरुष स्वयम्भूरमण महासमुद्रको पार कर चुका है उसके लिए गगा जैसी  
छोटीर नदिया पार करना क्या बड़ी बात है ? भगवान्ने उत्तरा ययन

“अशुद्ध पदार्थोंकी लरेला, जूँ-आदि शीश्याधी व्याप्त, स्वाभाविक  
दुर्गन्धके कारण भीतर भी घृणित और मल-मूत्रकी वेष्टित (स्त्रियोंकी) शरी-  
रमें रमण करने वाले मूढ हैं, और बुद्धिमान् पुरुष तो तेने अत्यंत  
निकृष्ट समझने से तैनायी अलग रहते हैं” (३)

जो के विषयोंको सग ससारभीरु पुरुषोंने माटे त्याज्य छे अने तेना  
त्याग थयो कठिन छे, तोपणु ब्रह्मचर्यना महिमानु स्मरणु करनाश मुनियोंने  
ज्येक मात्र स्त्रीसगने त्याग करवाथी, अन्य विषयोंको सग दुस्त्यज होवा छता पणु  
आपोआप निवृत्त थई नथ छे अर्थात् ब्रह्मचर्यमा दृढ़ रहैनाशज्यो पर डोई  
पणु विषय पोतानो प्रभाव पाडी शकतो नथी जे पुरुष स्वयम्भूरमणु महासमुद्रने  
पार करी चुकथो छे तेने माटे गगा जेथी नानी नानी नदीज्यो पार करवाभा-  
शी मोटी बात छे ? भगवाने पणु उत्तराध्ययन-सूत्रना उर मा अध्ययनमा

कफादिपोट्टलिकया न पामरोऽपि स्यते, का कथा पुनर्भात्रनाकुशलाणा मुनीनाम् ।

उक्तञ्च—“ अम्भःकुम्भशतैर्षु पुननु यद्विर्मुग्धाः ! श्रुचित्प्र क्रियत् ,-

काल लम्भयथोत्तम परिमल वस्तूरिकाग्रैस्तथा ।

पिष्ठाकोष्ठरुमेतदङ्गकमहो ! मध्ये तु शौचं यथ,-

द्वार नेप्यथ मूत्रयिष्यथ यथद्वारं च तत्सौरभम् ” ॥ १ ॥

अन्यच्च—“ विरम विरम सगान्मुञ्च मुञ्च प्रपञ्च,

पिष्टज पिष्टज मोह विद्धि विद्धि स्वतन्त्रम् ।

कलय कलय वृत्त पश्य पश्य स्वरूप,

कुरु कुरु पुरुषार्थं निर्गृतानन्दहेतोः ॥ २ ॥ इति, ”

चिन्तन करनेमें चतुर मुनियोंका रुटना ही क्या है ? वे तो उस ओर  
आखभी नहीं उठाते । कहा भी है—

“शरीरको सैकड़ों घड़ोंसे चाहे जितना नहलाओ धुलाओ, और  
केशर कस्तूरी गुलाब आदिकी सुगन्धसे सुगन्धित करो, परन्तु यह  
शरीर तो मल-मूत्रका भाजन है। हे भव्यो ! इसे कैसे पवित्र बनाओगे ?  
और कैसे इसकी सुगन्धि फैलाओगे ?” ॥१॥

“हे आत्मन् ! तू स्त्री आदिकी ममतासे विरक्त हो विरक्त हो,  
मोहका त्यागकर त्यागकर, आत्माके स्वरूपको पहचान पहचान, और  
मोक्षसुखके लिए पुरुषार्थ कर पुरुषार्थ कर” ॥२॥

१ यहा प्रत्येक कर्तव्यको दुहरानेसे अत्यन्त तीव्र प्रेरणा प्रकट होती है ।

शी वात ? तेजो तो तनी तरङ्ग उथी आपे जेता पणु नथी कहु छे के—

“शरीरने से कडे घडा पाणीथी आडे तेठहु न्हुवरावे, धुजो, अने देशर  
कस्तूरी गुलाब आदिनी सुगधथी सुगधित करे, परतु आ शरीर तो मल-मूत्र  
भाजन छे छे लव्यो ! तेने केवी रीते पवित्र जनावशो ! अने केवी रीते तेना  
पराग ( केशर ) ने फैलावशो ? ” ( १ )

“हे आत्मन् ! तू स्त्रीआदिनी ममताथी विरकत था विरकत था, मोहने  
त्याग कर त्याग कर, आत्माना स्वरूपने जणु जणु, आरित्रने अक्यास कर  
अक्यास कर, मोताने पिछाण पिछाण, अने मोक्ष सुभने भाटे पुरुषार्थ कर  
पुरुषार्थ कर” ( २ )

दोषा विविधशस्त्रास्त्रधारिणः प्रबलशत्रु इव समुत्पिष्टन्ति । तत्रादावार्त्तरौद्रध्यान हृदये पदमारोपयति, तस्मिन् विद्यमाने प्रमादः साहस-मज्ञान-मधर्मो-ऽसिद्धिस्तथा-ज्येऽपि दोषाः समापान्ति । अत्रात्रचर्यस्य सकलप्रमादस्थानत्वेन प्रमादः, अविचारितकार्यकरणमुद्विग्नमुत्पादकत्वेन साहस, बोधिबीजविनाशकत्वेन अज्ञानम्, अधोगतिकारकत्वेन अधर्मः, अष्टविधकर्मजनकत्वेन असिद्धिश्च, एते दोषाश्चेतोऽगृहे सयमरत्नापहाराय यथेच्छमाशु मविशन्ति ।

किञ्च—विषयरागः, सकलपापाना निदानम्, कुठार इव चारित्रतरु छिनत्ति,

दोष इस प्रकार आ खडे होते हैं मानों अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर प्रबल शत्रु आ डटे हों। पहले पहल तो आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान हृदयमे स्थान पा लेते हैं। इनके स्थान पाते ही प्रमाद, साहस, अज्ञान, अधर्म, असिद्धि आदि अनेक दोष उपस्थित होते हैं।

अत्रास्त्रचारीको प्रमादके सब कारण मौजूद रहते हैं इसलिए प्रमाद, विना विचारे कार्य करनेसे साहस, बोधि-रूपी बीजका विनाशक होनेसे अज्ञान, अधोगतिमें लेजानेके कारण अधर्म, और आठो कर्मोंका जनक होनेसे असिद्धि, और इस प्रकारके अनेक दोष शत्रुकी तरह चित्तरूपी घरमे सयमरूपी रत्नको लूटनेके लिए इच्छानुसार प्रवेश कर जाते हैं।

विषयराग सकल पापोंका मूल कारण है, चारित्र-वृक्षको, काटनेके लिए कुठार है, जिस प्रकार कज्जल, सफेद वस्त्रको मलिन कर देता

यथा थाय छे, जखे डे अनेक अस्त्र शस्त्र लधने प्रणज शत्रुओ आवी पडोव्या होय पडोवा तो आर्त्त-ध्यान अने रौद्र-ध्यान हृदयमा स्थान जभावी ले छे तेने स्थान भणवा ज प्रमाद, साहस, अज्ञान, अधर्म, असिद्धि आदि अने दोषो आवी बीभा रडे छे

अत्रास्त्रचारीनी सभीये प्रमादना गधा कारखे। हानर रडे छे अथी प्रमाद, वगर विचारे कार्य करवाथी साहस, बोधि-रूपी बीजनु विनाशक होवाथी अज्ञान, अधोगतिमा लध जवाने कारखे अधर्म, अने आठे कर्मोनु जनक होवाथी असिद्धि अने अथी ज भौवा अनेक दोषो शत्रुनी पेटे चित्तरूपी घरमा सयम रूपी रत्नने लूरी लेवाने इच्छानुसार प्रवेश करे छे

विषयराग सकल पापोंका मूल कारण है, चारित्र वृक्षने कापनासे कोड़ाडे छे



इय दृष्टिरिषा नागीर सन्दर्शनादेर सयमिना शमलक्षण जीयन विनिर्हन्ति ।

अथवा किमिय प्रगाढान्धकारा रजनी ? यदप्रोत्सुका इव चत्वारः कषाय विचरन्ति, अज्ञानपिशाचश्चात्र चारित्र्यलक्षणगुणशरीरग्रसनाय जागरूको लक्ष्यते ।

हे चित्त-सहचर ! ज्ञानप्रकाशेन रागान्धकारमपनीय रात्रिकृतोपसर्ग निवार-  
यता भवता मदीयसाहाय्य क्रियताम् ।

अपि चेद भावनीयम्-मुनीना कृते ब्रह्मचर्यपरित्यागो  
महाऽनर्थकरः, तथा हि ब्रह्मचर्यपरित्यागेच्छायामपि सत्या बहवो

सूत्रके ३२ वें अध्यायनमें 'एष य सगे' इस गाथासे यही प्रतिपादन  
किया है ॥

जैसे जिस नागिनकी दृष्टिमें विष होता है उसके देखनेसे ही जीवनका  
अन्त होजाता है, इसी प्रकार स्त्रीके भी सानुराग देखनेसे चारित्र्य-  
रूपी जीवन नष्ट हो जाता है ।

अथवा यह कैसी प्रगाढ़ अन्धकारमय रजनी है, जिसमें चारों कषाय-  
रूपी उल्लुओंका राज्य है, और चारित्र्य-रूपी शरीरको निगलनेके लिए  
अज्ञानरूपी पिशाच सदा ताकता रहता है । हे मित्र मन ! ज्ञानके प्रका-  
शसे रागरूपी अन्धकारको निवारण कर, स्त्रीरूपी रात्रि द्वारा किये गए  
उपसर्गको हटानेमें मेरी सहायता कर ।

ब्रह्मचर्यका परित्याग करना मुनियोंके लिए महान् अनर्थ करनेवाला है ।  
यहाँ तक कि ब्रह्मचर्य परित्याग करनेकी इच्छा होते ही बहुतसे

एष य सगे એ ગાથાથી એજ પ્રતિપાદન કર્યું છે  
એવી રીતે જે નાગણીની દૃષ્ટિમા વિષ હોય છે તેને જેવાથી જ જીવનનો  
અંત આવી જાય છે, તેવી રીતે સ્ત્રીને અનુરાગપૂર્વક જેવાથી ચારિત્રરૂપ જીવન  
નષ્ટ થઈ જાય છે

અથવા એ ડેવી ગાઢ અધકારમય રાત્રિ છે કે જેમા ચારે કષાયોરૂપી  
ધુવડાનું રાજ્ય છે, અરે ચારિત્રરૂપી શરીરને ગળી જવાને માટે અજ્ઞાનરૂપી પિશાચ  
સદા તાકી રહેલો છે હે મિત્ર મન ! જ્ઞાનના પ્રકાશથી રાગરૂપી અધકારનું  
નિવારણ કર, અને સ્ત્રીરૂપી રાત્રિથી ઉત્પન્ન થતા ઉપસર્ગોને હટાવવામા મને સહાય કર  
બ્રહ્મચર્યનો ત્યાગ કરવો એ મુનિઓને માટે મહાન્ અનર્થકારક છે, એટલે  
સુધી કે બ્રહ્મચર્ય ત્યજવાની ઇચ્છા થતા જ અનેક દોષો એવા રીતે આવીને

दोषा विविधशस्त्रास्त्रधारिणः प्रवलशत्रव इव समुत्तिष्ठन्ति । तत्रादावात्तैरौर्ध्वान हृदये पदमारोपयति, तस्मिंश्च विद्यमाने प्रमादः साहस-मज्ञान-मधर्मो-ऽसिद्धिस्तथा-ऽन्येऽपि दोषाः समायान्ति । अत्रह्यर्च्यस्य सकलप्रमादस्थानत्वेन प्रमादः, अविचारितकार्यकरणमुद्धिसमुत्पादकत्वेन साहस, बोधिवीजविनाशकत्वेन अज्ञानम्, अयोगतिकारकत्वेन अधर्मः, अष्टविधकर्मजनकत्वेन असिद्धिश्च, एते दोषाश्चेतोऽगृहे सयमरत्नापहाराय यथेन्द्रमाशु प्रविशन्ति ।

किञ्च—विषयरागः, सकलपापाना निदानम्, कुठार इव चारित्रतरु छिनत्ति,

दोष इस प्रकार आ खडे होते हैं मानों अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर प्रवल शत्रु आ डटे हों। पहले पहल तो आर्त्त-ध्यान और रौर्ध्वान हृदयमें स्थान पा लेते हैं। इनके स्थान पाते ही प्रमाद, साहस, अज्ञान, अधर्म, असिद्धि आदि अनेक दोष उपस्थित होते हैं।

अत्रह्यन्वारीको प्रमादके सब कारण मौजूद रहते हैं इसलिए प्रमाद, विना विचारे कार्य करनेसे साहस, बोधि-रूपी बीजका विनाशक होनेसे अज्ञान, अयोगतिमें लेजानेके कारण अधर्म, और आठों कर्मोंका जनक होनेसे असिद्धि, और इस प्रकारके अनेक दोष शत्रुकी तरह चित्तरूपी घरमें सयमरूपी रत्नको लूटनेके लिए इच्छानुसार प्रवेश कर जाते हैं।

विषयराग सकल पापोंका मूल कारण है, चारित्र-वृक्षको, काटनेके लिए कुठार है, जिस प्रकार कज्जल, सफेद वस्त्रको मलिन कर देता

गडा थाय ठे, नल्ले डे अनेक अस्त्र शस्त्र लडने प्रणण शत्रुओ आवी पडोअ्या डोय पडोला तो आर्त्त-ध्यान अने रौर्ध्व-ध्यान हृदयमा स्थान नभावी वे छे तेने स्थान भणता न प्रमाद, साहस, अज्ञान, अधर्म, असिद्धि आदि अने दोषो आवी गिला रहे छे

अत्रह्यन्वारीनी सभीषे प्रमादना गधा कान्छो हानर रहे छे ओथी प्रमाद, वगर विचारे कार्य करवाथी साहस, बोधिइपी पीननु विनाशक होवाथी अज्ञान, अयोगतिमा लथ नवाने कारणे अधर्म, अने आठे कर्मोनु जनक होवाथी असिद्धि अने ओवा न पीनत अनेक दोषो शत्रुनी पेटे चित्तइपी घरमा सयम इपी लने लूटी लेवाने इच्छानुसार प्रवेश करे छे

विषयराग गधा पापोनु भूण नल्ले छे, आरित्र वृक्षने कापनारे डोहाडा छे

ફજ્જલ इव मलिनयति स्वच्छमम्बरमिवात्मानम्, भवति चार्गला मोक्षमार्गद्वारस्य  
नरकनिगोदाघनन्तदुःखानाञ्च निधानमिति सर्वाया तमपहाय पराञ्चन्ति चञ्चत्तपः  
सयमाचरणचतुरास्तपस्विनः ।

નવુ વહ્યો મન્ત્રાસ્તથાચિધાઃ સન્તિ યે દેવાના દાનયાનામ્ણપરિ પ્રભાવમાવિ  
ર્ભાવયન્તિ, પરન્તુ કિમેતદાશ્ચર્યમ્ ? યત્ સ્ત્રીણા ચરિત્રે તેડપિ મન્ત્રા દત્તપ્રાયાઃ  
કિમપિ કર્તુ ન પ્રભવન્તિ । અયાસા ચરિત્રસ્યૈતાદૃશપ્રભાવશાલિતા, યત્પુરતો  
મન્ત્રા અપિ પરાભૂય નિવર્તન્તે, તદ્દિ ક ઉપાયસ્તદુદ્ધાવિતરાગરજ્જુકર્તનાય  
સયતાના-?-મિતિ ચેત્,

इन्त ! हृदय-सहचर ! योपित्सविषसस्थितिपरित्याग एव तदीय चरित्राऽऽ-

है उसी प्रकार आत्माको मलिन करने वाला है, मुक्तिके मार्गकी  
अर्गला है, नरक निगोदके दुःखोंका निधान है और विविध व्याधियोंका  
उत्पत्तिस्थान है, अत एव तप और सयमके पालनेमें चतुर तपस्वी लोग  
इस ( विषय राग ) को बिलकुल छोड़कर अलग होते हैं ।

જો મન્ત્ર, દેવોં ઓર દાનવોં પર ખી અપના પ્રભાવ શીઘ્રહી દિશ્વલાતે હૈ  
વે ખી સ્ત્રીજનિત રાગ પર પ્રભાવ નહીં ડાલ સકતે । યહ બહે આશ્ચ  
ર્યકી વાત હૈ । સ્ત્રિયોંકા ચરિત્ર ઇતના પ્રભાવશાલી હોતા હૈ કિ ઉસકે  
સામને મન્ત્ર ખી પ્રભાવહીન હો જાતે હૈ તવ ઉનકે વિષયમેં ઉત્પન્ન હોને  
વાલે રાગ-રજ્જુકો કાટનેકે લિષ્ મુનિયોંકો કયા ઉપાય કરના ચાહિયે ?

हे हृदय-सुहृद् ! स्त्रियोंके समीप रहनेका त्याग करदेना ही उनके

નેમ કાજળ સફેદ વસ્ત્રને મલિન કરી નાખે છે તેમ આત્માને મલિન કરનાર છે,  
મુક્તિના માર્ગની અર્ગલા છે, નરક નિગોદના દુ ખોનું નિધાન છે, અને વિવિધ  
વ્યાધિઓનું ઉત્પત્તિસ્થાન છે તેથી કરીને તપ અને સયમને પાળવામા ચતુર  
એવા તપસ્વી લોકો આ ( વિષયરાગ )ને બિલકુલ છોડીને તેથી દૂર જતા રહે છે

જે મત્ર, દેવો અને દાનવો પર પણ પોતાનો પ્રભાવ તુરત ઘટાવી આપે છે,  
તે મત્ર પણ સ્ત્રીજનિત રાગ પર પ્રભાવ પાડી શકતો નથી, એ મોટા  
આશ્ચર્યની વાત છે સ્ત્રિઓનું ચરિત્ર એટલું પ્રભાવશાળી હોય છે કે તેની સામે  
મત્ર પણ પ્રભાવહીન બની નવ્ય છે તે તેના વિષયમા ઉત્પન્ન થનારા રાગરજ્જુને  
કાપવા માટે મુનિઓએ કયો ઉપાય કરવો જોઈએ ?

हे हृदय-सुहृद् ! स्त्रियोंकी समीपि रहेवानुं छोडी देवु એવ

पादितरागभङ्गोपाय इति धारणामुपैति । उक्तञ्च—

“शृणु हृदय ! रहस्य यत्प्रगस्त मुनीना,  
 न खलु न खलु योपित्सनिधिः सविप्रेयः ।  
 हरति हि हरिणाक्षी क्षिप्रमक्षिभुरप्रैः,  
 पिहितशमतनुत्र चित्तमप्युत्तमानाम् ॥ १ ॥  
 शास्त्रज्ञोऽपि प्रकटविनयोऽप्यात्मवोपेऽपि गाढः,  
 ससारेऽस्मिन् भवति विरलो भाजन सद्गतीनाम् ।  
 येनैतस्मिन् निरयनगरद्वारमुद्धाटयन्ती,  
 वामाक्षीणा भवति कुटिला भ्रूलता कुञ्चिकेव” ॥ २ ॥

वस्तुतस्तु इहाऽनादिससारे स्वस्मिन्नपि शरीरे जीवस्य किं नाम स्वातन्त्र्यम् ?

विषयमें होनेवाले प्रेम-पाशके काटनेका उपाय है । कहा भी है—

“ये मन ! मुनियोकी आत्माका कल्याण करनेवाले रहस्यको सुन, वह यह है कि-स्त्रियोका सम्पर्क (ससर्ग) सर्वथा नहीं करना चाहिये, क्योंकि शम-रूप कवच पहने हुए उत्तम पुरुषोंके अन्तःकरणको भी स्त्रिया अपनी आखेरूपी छुरीकी धारसे छिन्न-भिन्न कर डालती है” ॥१॥

“प्रवचनमे प्रवीण, विनयवान् और गभीर आत्मज्ञानवान् होते हुए भी कोई विरला ही व्यक्ति सद्गतिकी प्राप्ति कर पाता है । क्योंकि ससारमें एक ऐसी कुजी मौजूद है जो जल्दी नरकका द्वार खोल देती है, वह कुजी क्या है ? स्त्रियोंकी टेढ़ी भौंह” ॥२॥

सच है—अनादि-कालीन ससारमें, जीवोंको अपने शरीरमें भी

उत्पन्न यथा प्रेमपाशने कापवानो उपाय छे कछु छे के-डे मन ! मुनियोना आत्मानुं कट्याणु करनारा रड्मथने श्रवणु कर ते आ प्रभाणु छे—

“स्त्रीयोना स पर्क (ससर्ग) सर्वथा न करवो न्नेधये, कारणु के शमरूप कवच पडेरेला उत्तम पुरुषोना अत करणुने पणु स्त्रीयो पोतानी आपोऽपी छुरीनी धारथी छिन्न-विन्न करी नाणे छे”

“प्रवचनमा प्रवीण, विनयवान् अने गभीर आत्मज्ञानवान् होवा छता पणु विरल व्यक्तित्व सद्गतिये प्राप्त करी शके छे कारणु के ससारमा अके अथी कुथी मोखुछे छे के के जल्दी नरकनु द्वार पोली नाणे छे अथे कुथी कथं छे ? स्त्रीनी वाकी लम्भर

पड् छे अनादि-कालीन ससारमा, एथे पासे पोताना शरीरनी पणु

दृश्यते हि लोकेऽपकृष्टमनुजपशुपक्षिसरीसृपादिशरीरोपभोगमवाठठतोऽपि प्राणि-  
नस्तत्तद्गुणयोगेन अनातृतदेशाप्रस्थानाऽभिमताऽक्षपानाऽनवाप्तिशीतवातातपो-  
पलवृष्टिदशमशकादिजनिताऽनेकविधदुर्निवारदुःखोपभोगः सोढव्यो भवतीति,  
स्वातन्त्र्ये तु न कोऽपि तत्तद्गुणमङ्गीकुर्यात् । अङ्गसयोग इत्याङ्गवियोगेऽपि नास्ति  
जीवस्य स्वातन्त्र्यम्, तन्वियोगमनिच्छतामपि सुखसमन्विताना मरणदर्शनात्,  
तमिच्छता दुःखदग्धाना रिपादिभक्षणेऽप्यैकान्तिममरणादर्शनाच्च ।

स्वाधीनता नहीं है । अपकृष्ट-मनुष्य पशु पक्षी साँप आदिके हीन  
शरीरको जो प्राणी चाहते ही नहीं, उन्हें भी वह शरीर धारण  
करना पड़ता है, और उसके संयोगसे अनिष्ट स्थानका निवास,  
अन्न-पानकी अप्राप्ति, गर्मी, सर्दी, ओलोंकी चर्पा, हवा, डस-मच्छर  
आदिसे होनेवाले अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं । यदि ऐसे  
शरीरको धारण करना अपनी इच्छा पर निर्भर होता तो कोई भी  
प्राणी ऐसा दुखदायी शरीरको धारण न करता ।

जिस प्रकार शरीर धारणमें जीव स्वाधीन नहीं है उसी प्रकार  
उसके त्यागनेमें भी स्वाधीन नहीं है । ससारमें जो प्राणी सुखसम्पन्न हैं  
वे वर्तमान शरीरका त्याग नहीं करना चाहते, फिर भी उनकी मृत्यु हो  
जाती है । और मृत्युकी कामना करनेवाले दुःखी जीव विष आदि  
भक्षण कर लेते हैं तो भी कभी कभी बच जाते हैं, अतः सिद्ध हुआ कि  
अपना शरीरभी अपने अधीन नहीं है ।

स्वाधीनता नहीं अपकृष्ट-मनुष्य पशु पक्षी साँप आदिना हीन शरीरने जो प्राणी  
आहता जो नहीं, तेमने पशु जो शरीर धारण करवा पडे छे अने तेना सथे  
गथी अनिष्ट स्थानने निवास, अन्नपाननी अप्राप्ति, ताप, टाढ, कराने वरसाह,  
हवा, डस मच्छर आदिथी उत्पन्न थता अनेक प्रकारना दुःखे लोगववा पडे छे  
जे जेवा शरीरने धारण करवानुं पोतानी धम्छा पर जो निर्भर होन तो डोर्ध  
पशु प्राणी जेवा दुःखदायी शरीरने धारण न करत

जेवी रीते शरीर धारण करवाभा एव स्वाधीन नहीं, तेवी रीते तेने  
त्यजवाभा पशु स्वाधीन नहीं ससारमा जे प्राणीजो सुखसम्पन्न छे तेजो वर्त-  
मान शरीरने त्याग करवा धम्छता नहीं, तो पशु जेभनुं मृत्यु थथं नय छे अने  
मृत्युनी कामना करनारा दुःखी एवे विष आदि भक्षण करी वे छे तोपण डोर्ध  
डोर्ध वार गथी नय छे जे उपरथी सिद्ध थथु के आपणु शरीर पशु आपणुने  
आधीन नहीं

जीवस्य स्वातन्त्र्येण शरीरस्वामित्वे सति अनेकेषां कुसुमसुकुमाराणां सुन्दरावयवानां कृतिपयानामतीतदेवादिशरीराणां विनाशः कथं न वारितः ? तस्माद् देहगेहादि किमपि वस्तु कस्यापि नास्ति, किन्तु अज्ञानवशाज्जीवाः 'इदं मम, इयं मम' त्यादिस्वरूपं ममत्वं कुर्वन्तीति निश्चीयते ।

इत्थं च स्वकीयदेहगेहादौ ममत्वरूपमवानमूलं, कर्मबन्धहेतुश्चेति त्रिवेकिनः स्वदेहेऽपि ममत्वं न कुर्वन्ति, किं पुनरन्यदीयदेहगेहादौ-इत्यनुचिन्तनेन समुत्पन्नया "न सा मम, नाहं तस्याः" इत्याकारया त्रिवेकुरुद्ध्या मनसि प्रसृतं रागप्रशमयेदिति भावः ॥ अत्र गाथायां 'परिब्रूयते' इत्यत्र सौत्रत्वात्पठ्यर्थे प्रथमा, 'बहिर्द्धा' इति प्राकृतत्वात्, यद्वा बहिर्धावतीति विग्रहे षृपोदरादित्वाद्दकारादिलोपः । इति गाथायै ॥ ४ ॥

यदि शरीर पर प्राणीका अधिकार होता तो फूलसे कोमल तथा सुन्दर अवयववाले अतीतकालीन देव आदिके शरीरके वियोगको क्यों न रोक लेता ? सत्य बात तो यह है कि-देह गेह आदि कोई भी वस्तु किसीकी नहीं है । जीव अज्ञानके कारण 'यह मेरा है' 'यह मेरी है' इस प्रकारकी ममता करते हैं, अत एव शरीरमें ममता करना ही अज्ञान-मूलक और परिग्रह होने से कर्म-बन्धका कारण है, ऐसा समझ कर विवेकी जन अपने शरीरमें भी स्नेह नहीं करते तो दूसरेकी देहमें कैसे स्नेह करेंगे ? ऐसा सोच कर, मनमें उत्पन्न हुए भी रागादिको "न वह मेरी है" और "न मैं उसका हूँ" इस प्रकारकी भावनासे दूर कर मुनि, उस निकले हुए मनको फिरसे सयम-धरमें लावे ॥४॥

जैसे शरीर पर प्राणीको अधिकार होता तो कूलथीय केमल तथा सुन्दर अवयववाला अतीतकालीन देवादिना शरीरना वियोगने केम रोक ले सकता नहि ? साथी बात ये छे डे देह गेह आदि कोई पण वस्तु कोईनी नहीं एव अज्ञानने कारणे 'आ भारी छे' ये 'ये भारी छे' ये प्रकारनी ममता राखे छे अथे दे शरीर पर ममता राखी अथे अज्ञानमूलक अने परिग्रह रूप होवाने कारणे कर्मणधनु कारण छे अथे समथने विवेकीजन पोताना शरीर पर पण स्नेह राखता नहीं, तो पण पीठना देह पर केम स्नेह करे ? अथे विचारने मनमा उत्पन्न अथेला रागादिने, "ये भारी नहीं" डे "हुं तेना नहीं" अथे लावनाथी हर करीने, मुनिअे सयमधरथी पहार नीकणेला मनने पाणु सयमधरमा लावे (४)

पूर्वगाथया 'रागव्यपनयः कर्तव्यः' इत्युक्त, स च बाह्यक्रियामन्तरेण न सम्भवतीत्यतस्तत्प्रतिपादनार्थमाह—'आयावयाही' इत्यादि ।

१ ३ २ ४ ५ ६ १ ०  
मूलम्—आयावयाही चय सोगमह्लं, कामे कमाही कमिय खु दुस्ख ।

११ ६ १२ ११ १३ १५ १६ १४  
छिंदाहि दोसं विणएज्ज राग, एव सुही होहिसि संपराए ॥५॥

छाया—आतापय त्यज सौकुमार्य, कामान् क्राम क्रान्तमेव दुःखम् ॥

छिन्धि द्वेष व्यपनय रागम्, एव सुखी भविष्यसि सम्पराये ॥ ५ ॥

सान्त्वयार्थः—स्त्रीपरसे मोह हटानेका उपाय कहते हैं—

आयावयाही=शरीरको तपस्यासे सूखा डालो, सोगमह्लं=सुकुमारता अमीरी-  
को चय=त्यागो, कामे=विषयकी इच्छाओंको कमाही=काबूम करो रोको,  
(ऐसा करनेसे) खु=निश्चय करके दुस्ख=दुःख कमिय=दूर होगा, दोसं=  
द्वेषको छिंदाहि=छेदी-नष्ट करो, राग=रागको विणएज्ज=हटाओ-दूर करो, एव=  
इस प्रकार करनेसे (तुम) संपराए=ससारमें सुखी=सुखी होहिसि=होगोगे ॥५॥

टीका—हे शिष्य ! त्व श्रामण्ययोगाद्बहिर्निर्गत चित्त प्रतिरोद्धुम् आतापय=  
शीतोष्णादिसहनो-त्कुडुकासनाप्रबलम्बना-ऽनशनादिदुष्करतपोविधानैस्तनु तापय,  
सौकुमार्यं=शरीरसुकुमारता त्यज=परिहर, यद्वा आतापयेतिपदेन बोधितमेवार्थ

पूर्व गाथामे, उत्पन्न हुए रागका परित्याग करना कहा किन्तु रागका त्याग तप आदि बाह्य क्रियाओंके बिना नहीं हो सकता । इसलिए अब उनकी प्ररूपणा करते हैं— 'आयावयाही-' इत्यादि,

हे शिष्य ! तपस्या कर-आतापना ले, सुकुमारताका त्याग कर, इन्द्रियोंके विषयोंमें राग न कर, रागके त्यागसे दुःखोंका नाश होही

पूर्व गाथाभा, उत्पन्न थयेला रागनो परित्याग करवानु कष्ट, किन्तु रागनो त्याग तप आदि बाह्य क्रियाओंके बिना थर्ष राकतो नथी तेन्ला माटे येनी प्ररूपणा उरै छे आयावयाही० इत्यादि

हे शिष्य ! तपस्या कर-आतापना ले, सुकुमारतानो त्याग कर, इन्द्रियेना विषयेभा राग न कर, रागना त्यागथी इ ज्येना नाश थर्ष न् नय छे त द्वेषनो

विशद्यति-सौकुमार्यं त्यजेति शरीरसुखसाधने दत्तचित्तो मा भव, शीतवातादिपरि-  
पहसहनयोग्यता सम्पादयेति भावार्थः । काम्यन्त इति कामाः=शब्दादिविषयास्तान्  
क्राम=अतिक्राम-सन्त्यजेत्यर्थः । कामातिक्रमणे सति तु दुःख क्रान्तमेव=गतमेव  
नष्टमेवेत्यर्थः । कामा एव हि दुःखसमुदायनिदानम् ।

ननु ' यथा बुभुक्षापिपासादीनामशनपानादिभिरेव निवृत्तिस्तद्वत्कामानामु-  
पभोगेन भविष्यति ?

जाता है । तू द्वेषका लेश न रहने दे, और रागको छोड़ दे, तो तू ससारमें  
सुखी, अथवा परिपह उपसर्गोंके युद्धमें विजयी होगा । तात्पर्य-हे शिष्य !  
श्रामण्ययोग (सयमरूप घर) से बाहर मन निकल जाय तो शीत उष्ण  
आदि सह कर और उत्कुटुकासन आदिका आश्रय लेकर, तथा अनशन  
आदि तप करके शरीरको सुखा डाल, शरीरकी कोमलताका त्याग कर,  
अर्थात् अपने शरीरको शीत-आतप प्रभृति परिपह सहने योग्य बना ले,  
शारीरिक सुखोंकी सामग्रीमें मन न लगा । जिनकी कामना की जाती है,  
उन्हें काम कहते हैं, उन कामों (शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श आदि इन्द्रिय-  
विषयो) की अपेक्षा न रख । ऐसा करनेसे दुःखोंका अस्तित्व रह नहीं  
सकता, उनका नाश ही समझ, क्योंकि काम ही दुःखोंका कारण है ।

शका-हे गुरुमहाराज ! जैसे भोजन करनेसे भूख शान्त हो जाती है,  
और पानी पीनेसे प्यास बुझती है, वैसेही विषयोंका सेवन करनेसे

अश पणु सहेवा न हे अने रागने छोडी दे, तेथी तु ससारमा सुधी अथवा  
परिश्रद्ध उपसर्गों साथेना युद्धमा विजयी थईश तात्पर्य अे छे डे-डे शिष्य !  
श्रामण्ययोग (सयमरूपी घर) थी गडार मन नीकणी नथ तो टाढ-ताप आदि  
परिश्रद्ध अने उत्कुटुक आसन आदिने आश्रय लधने, तथा अनशन आदि तप  
करीने शरीरने सुखावी नाथ, शरीरनी डोमणताने त्याग कर, अर्थात् पोताना  
शरीरने टाढ ताप आदि परिपह सहेवाने योग्य जनावी ले शारीरिक सुखेनी  
सामग्रीमा मन न लगाड जेनी कामना करवामा आवे छे तेने काम कडे छे अे  
कामे (रूप, रस, गंध, रस, स्पर्श आदि इन्द्रिय-विषयो)नी अपेक्षा न राथ  
अेम उरवाथी दु खेनु अस्तित्व रही शक्ये नहि, अेनेना नाश ज समझ, केमके  
काम ज दु खनु कारणु छे

शका-हे गुरु महाराज ! जेम भोजन करवाथी भूख शान्त थई नथ छे  
अने पाणी पीवाथी तरस छीये छे, तेमज विषयेनु सेवन करवाथी विषय



मैवम्, हे शिष्य ! विषयवासनेन तारत्मकत्वादनर्थमूलम्, विगेषतश्चारित्र-  
मुच्छेदयन्ती रागद्वेषौ दृढीकुरुते । यथा विदेश गतस्य कस्यचित् प्रेयसो जीवित  
स्यापि श्रुताया मरणवार्ताया जना रुदन्ति न तथा तस्मिन्मृतेऽप्यश्रुताया तदीय-  
मरणप्रवृत्तौ, तस्माच्चेतोपिहितिरेव मुग्यतः सुखदुःखमन्धहेतुः, विषयवासनाया-  
समुच्छेदमन्तरेण पुनः पुनरपिधाना कर्मणामहुरण न शक्यते प्रतिरोद्धु, तेषा  
विषयवासनामूलकत्वात् । उक्तञ्च—

विषयसेवनकी इच्छा भी शान्त हो जायगी तो फिर आनापना आदि  
बाह्य तप क्यों करना चाहिए ?

उत्तर—हे शिष्य ! ऐसी शका करना उचित नहीं है, क्योंकि विष-  
योकी वासना (इच्छा) ही सब अनर्थोंकी जड़ है, और चारित्ररूपी  
वृक्षकी जड़को उखाड़नेवाली है । यह रागद्वेषको बढ़ करती है । परदेश  
गया हुआ कोई इष्टमित्र जीवित हो परन्तु उसकी मृत्युका समाचार  
मिले तो सम्बन्धी लोग रोने लगते हैं, और यदि वह मर जाय किन्तु  
मरनेका समाचार न मिले तो कोई भी नहीं रोता । इससे ज्ञात होता है  
कि चित्तका विकार ही सुख-दुःखका मुख्य कारण है ।

इसलिए जब तक मनसे विषयवासनाका समूल त्याग नहीं होता  
तब तक आठों कर्मोंकी उत्पत्ति नहीं रुक सकती, क्योंकि उनका मूल,  
विषय वासना है । कहा भी है—

सेवनगी इच्छा पणु शान्त थं न्य, तो पछी आतापना आदि बाह्य तप  
करवानी शी न३२ ?

उत्तर—हे शिष्य ! ऐसी शका करवी उचित नहीं, कारण के विषयोनी वासना  
(इच्छा) न पछी अनर्थोत्तु भूण छे अने चारित्ररूपी वृक्षना भूणने उखाडनारी छे  
ते रागद्वेषने दृढ करे छे परदेश गयेलो कोई इष्टमित्र भवने छे परतु  
तेना मृत्युना समाचार भणे तो सगा सणधीओ सेवा लागे छे, अने जे ते  
भरी न्य पणु मरवना समाचार न भणे तो डोछ पणु शैतु नहीं, ऐथी  
समन्य छे के चित्तनो विकारन सुखदुःखनु मुख्य कारण छे

जे कारणधी न्यासुधा मनभाथी विषयवासनानो समूणो त्याग नहीं थतो  
त्यासुधा आठे कर्मोनी उत्पत्तिने शैली शकती नहीं, कारण के लेनु भूण विषय  
वासना छे कथु छे के—

“विचारितमल शास्त्र, चिरमुद्राहित मिथः ।

सन्त्यक्तवासनान्मौनाद्, ऋते नास्त्युत्तम पदम् ॥” इति ।

यथा पवनपथे पतत्रिणे. स्वच्छन्द विहरन्ति तथाऽनुपमाऽलौकिकाऽऽनन्दमय-  
मोक्षमार्गसचारिणः सयमिनः प्रतिबन्धरहित विहरन्ति, परन्तु जालवद्धा विहङ्गमा  
उत्पत्तनयत्नवन्तोऽपि यथा निर्बन्धविहाराय न प्रभवन्ति, तद्वद् विषयसेवनाऽऽ-  
शालक्षणविषयवासनाकलितचेतसो मुनयोऽनुपलभ्य मोक्षमार्गमप्रतिबन्धविचरण-  
वञ्चिता भवन्तीति शिष्य ! जानीहि तावद् विषयाशा दुस्तरमहानदीसमानाम् ।  
उक्तञ्च—

“भले ही कोई कितनेही शास्त्रोंका मनन करले, या दूसरोंको सिख-  
लादे, पर जब तक वासनाका परित्याग करके समिति-शुद्धि-आदिरूप  
सयमकी आराधना नहीं कर लेता तबतक मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता” ॥१॥

जैसे-पक्षी आकाशमें स्वच्छन्द विहार करते हैं, उसीप्रकार अनुपम  
अलौकिक आनन्दमय मोक्षमार्गमें विहार करनेवाले सयमी भी अप्र-  
तिबन्धविहारी होते हैं। किन्तु जिस प्रकार जालमें फँसे हुए पक्षी उड़नेका  
यत्न करते हैं पर उड़ नहीं सकते, उसी-प्रकार विषयसेवनकी आशारूप  
वासनासे मुनि मोक्षमार्गको न पाकर अप्रतिबन्ध विहारसे वंचित  
रहते हैं। हे शिष्य ! इस विषय-वासनाको ऐसी विशाल नदी समझ  
कि जिसका पार पाना अत्यन्त कठिन है। कहा भी है—

“भले कोई गमे तेला शास्त्रोंनुं मनन करी वे, अथवा धीनज्योने-शीभवे,  
परन्तु न्यासुधी वासनाने त्याग करीने समिति-शुद्धि आदिरूप सयमनी आरा-  
धना करी लेतो नथी त्यासुधी मोक्ष प्राप्त करी शकतो नथी” (१)

जैसे पक्षी आकाशमा स्वच्छन्द विहार करे छे, तेम अनुपम अलौकिक  
आनन्दमय मोक्षमार्गमा विहार करनारा सयमी पण अप्रतिबन्ध विहारी होय छे.  
परन्तु जेवी-रीते जणमा इसेला पक्षीज्यो उडवाने यत्न करे छे पण उडी  
शकता नथी, तेवी-रीते विषयना सेवननी आशाइप वासनाधी वासित अत करण-  
वाणा मुनिज्यो मोक्षमार्गने न पाभता अप्रतिबन्ध विहारधी वंचित रहे छे  
हे शिष्य ! आ विषयवासनाने जेवी विशाल नदी समज के जेने पार पाभवे  
अत्यन्त कठिन छे कहु, छे के—

મૈત્રમ્, હે શિષ્ય ! ત્રિપયવાસનેવ તાત્સરુગાઝનર્યમૂલ્મ્, ત્રિષેપતશ્ચારિત્ર-  
મુચ્છેદયન્તી રાગદ્વેષી દ્વીકુરુતે । યથા પ્રિદેશ ગતમ્પ કસ્યચિત્ પ્રેયસો જીવિત  
સ્યાપિ શ્રુતાયા મરણપાર્ત્યાયા જના રુદન્તિ ન તથા તમ્મિન્મૃતેડ્પ્યશ્રુતાયા તરીય-  
મરણપ્રવૃત્તૌ, તસ્માન્નેતોપ્રિઠ્ઠિતિરેવ મુગ્યતઃ મુઘ્વદુઃસ્વપ્ન્યદેહુઃ, ત્રિપયવાસનાયા  
સમુચ્છેદમન્તરેણ પુનઃ પુનરપ્પ્રિધાના કર્મણામકુરણ ન શક્યતે પ્રતિરોદુ, તેપા  
ત્રિપયવાસનામૂલ્પત્વાત્ । ઉક્તશ્ચ—

વિપયસેવનકી ઇચ્છા મી જ્ઞાન્ત હો જાયમી તો ફિર આતાપના આદિ  
બાહ્ય તપ ક્યોં કરના ચાહિય ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! જેસી શકા કરના ઉચિત નહીં છે, ક્યોંકિ વિષ-  
યોક્તી વાસના (ઇચ્છા) હી સઘ અનર્થોક્તી જડ્ઠ હૈ, ઓર ચારિત્રરૂપી  
વૃક્ષકી જડ્ઠકો ઉઘાડ્ઠનેવાલી હૈ । યદ્દ રાગદ્વેષકો દૃઢ્ઠ કરતી હૈ । પરદેશ  
ગયા હુઆ કોઈ ઇષ્ટમિત્ર જીવિત હો પરન્તુ ઉસકી મૃત્યુકા સમાચાર  
મિલે તો સમ્બન્ધી લોગ રોને લગતે હૈ, ઓર યદિ વદ્દ મર જાય કિન્તુ  
મરનેકા સમાચાર ન મિલે તો કોઈ મી નહીં રોતા । ઇસસે જ્ઞાત હોતા હૈ  
કિ ચિત્તકા વિકાર હી સુઘ્વ-દુઃસ્વકા મુરય કારણ હૈ ।

ઇસલિયે જવન્તક મનસે વિપયવાસનાકા સમૂલ ત્યાગ નહી હોતા  
તવ તક આઠોં કર્મોંકી ઉત્પત્તિ નહી રુક સકતી, ક્યોંકિ ઉનકા મૂલ,  
વિપય વાસના હૈ । કહા મી હૈ—

સેવનની ઇચ્છા પશુ શાન્ત થઈ જાય, તો પછી આતાપના આદિ બાહ્ય તપ  
કરવાની શી જરૂર ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! જેવી શકા કરવી ઉચિત નથી, કારણ કે વિષયોની વાસના  
(ઇચ્છા) જ ગદ્યા અનર્થોનુ મૂળ છે અને ચારિત્રરૂપી વૃક્ષના મૂળને ઉખાડનારી છે  
તે રાગદ્વેષને દૃઢ કરે છે પરદેશ ગએલો કોઈ ઇષ્ટમિત્ર આવે તો હાથ પરતુ  
તેના મૃત્યુના સમાચાર મળે તો સગા સબધીઓ શેવા લાગે છે, અને જો તે  
મરી જાય પણ મરવાના સમાચાર ન મળે તો કોઈ પણ શંકા નથી, એથી  
સમજાય છે કે ચિત્તનો વિકારજ સુખદુઃખનુ સુખ્ય કારણ છે

જો કારણથી જ્યાસુધી મનમાથી વિપયવાસનાનો સમૂળો ત્યાગ નથી થતો  
ત્યાસુધી આઠે કર્મોંની ઉત્પત્તિને શેકી શકાતી નથી, કારણ કે તેનુ મૂળ વિષય  
વાસના છે કહ્યુ છે કે—

सेवन, तदेवमाकलय तावत्-सुखाशया दीपकोपगमन पतङ्गानाम्, दारुधिया  
ग्राह-ग्रहण-पुरस्सर नदीतरण मनुष्याणाम् । किञ्च बुभुक्षापिपासादिदृष्टान्तस्यान  
वैषम्य विप्रते, नहि कामा उपभोगेन शाम्यन्ति प्रत्युताभ्यासवगादतितरा वृद्धि-  
मेवोपगच्छन्ति, यदुक्तमन्यत्रापि—

“न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णवर्त्मव, भूय एवामिवर्षते ॥१॥” इति,

लोकेऽपि च दृश्यते-यथा यथा ब्रह्मविन्धनानि प्रक्षिप्यन्ते तथा तथाऽसौ

वस तृ यही समझ ले—जैसे सुख पानेकी इच्छासे पतगोंका दीपकमें  
गिरना है, अथवा कोई भोला मनुष्य लकड़ी समझकर ग्राहको पकड लेवे  
और उसीका महारा लेकर नदी पार करना चाहे तो वह कभी सफल-  
मनोरथ नहीं होगा वरन् उसे प्राण त्यागने पड़ेंगे, इसी प्रकार ‘विषय  
भोगनेसे विषयोंकी वासना मिट जायगी’ यह विचारना ठीक नहीं है ।

भूख-प्यासका दृष्टान्त भी यहा मेल नहीं खाता, क्योंकि विषय-सेवनसे  
काम शान्त नहीं होते, बल्कि अधिक-अधिक बढ़ते हैं । कहा भी है—  
“कामोंका सेवन करनेसे काम कदापि शान्त नहीं होते, जैसे घीके  
डालनेसे अग्नि शान्त नहीं होती वरन् बढ़ती ही जाती है ॥१॥”

तथा लोकमें भी देखा जाता है कि—अग्निमें ज्यों-ज्यों इन्धन डाला  
जाता है, त्यों त्यों वह अधिक प्रबल होती जाती है, बुझती नहीं है ।

डे-जेम सुभ पाभवानी धम्छाथी पतगो दीपकमा होमाय छे, अथवा डेध  
लोणो माणुस लाउडु समछने ग्राह (मगर) ने पकडी वे अने तेने आधारे  
नदी पार करवा धम्छे तो कदापि तेना मनोरथ सङ्ग न थाय परन्तु तेने प्राण  
त्यजवानो ज वणत आवे, तेम “विषय लोगववाथी विषयानी वासना मठी जशे ”  
जेम विचारसु जे गराणर नथी

लूपतरसनुं दृष्टात पणु अर्धी जध जेसतु नथी, कान्णु डे विषय-मेवनथी  
काम शान्त थतो नथी, परन्तु वधारे ने वधारे वधे छे उल्लु छे डे— “कामेनुं  
सेवन करवाथी जम कदापि शान्त थतो नथी, जेम धी नाणवाथी अग्नि शान्त  
थतो नथी, परतु वधतो जय छे ” (१) तेमज जगतमा पणु जेवामा आवे छे  
डे- अग्निमा जेम-जेम धधन नाणवामा आवे छे, तेम-तेम ते वधारे प्रणज

“આશા નામ નદી મનોરથજલા તૃષ્ણાતરજ્ઞાકુલા,  
 રાગગ્રાહવતી ત્રિતર્કત્રિદગા ધૈર્યદ્રુમધ્વસિની ।  
 મોહાઽઽવર્તમુદુસ્તરાઽતિગદના મોતુત્રચિન્તાતટી,  
 તસ્યાઃ પારગતા વિથુદમનસો નન્દન્તિ યોગીશ્વરાઃ ॥ ૧ ॥” ઈતિ

અપર ચાઽઽઠ્ઠર્ણય—

“વિપયાશામદાપાશાદ્, યો વિમુક્તઃ મુદુસ્ત્યજાત્ ।

સ એવ કલ્પતે મુક્ત્યૈ નાન્યઃ પદ્શાસ્ત્રવેત્રપિ ॥ ૧ ॥” ઈતિ,

હે શિષ્ય ! એવ વિષયભોગસ્પૃહાઽપિ મહતેઽનર્થાય કલ્પતે, કિં પુનસ્તદુપ-

“આશા, નદીકે સમાન છે, હસમેં મનોરથરૂપી જલ ભરા હુઆ છે; તૃષ્ણાકી તરગે છલાગે માર રહી હેં, રાગરૂપી ગ્રાહ હસમેં નિવાસ કરતે હેં, નાના પ્રકારકે સોચ વિચાર હી હસમેં પક્ષી હેં, યદ નદી ધીરતા-રૂપી વૃક્ષકો વિધ્વસ કરનેવાલી છે, ચિન્તારૂપી હસકા તટ છે, હસકા પાર કરના બહુત કઠિન છે, જો મુનીશ્વર હસ નદીકો પાર કર લેતે હેં વે હી સુખી હોતે હેં ॥ ૧ ॥”

ઔર સુનો—

“વિષયોંકા આશાપાશ દુસ્ત્યાજ્ય છે । જો હસ પાશસે મુક્ત હો જાતે હેં વેહી મોક્ષ-માર્ગકે અધિકારી હોતે હેં, અન્ય નહીં, તાહે વહ સમી શાસ્ત્રોંકે પારગત ક્યોં ન હો ! ॥ ૧ ॥”

હે શિષ્ય ! હસપ્રકાર વિષય ભોગનેકી ઇચ્છા મી મહાન્ અનર્થકો ઉત્પન્ન કરતી છે, તો વિષયોંકે સેવનકે વિષયમે તો કહના હી કયા છે ?

“આશા નદીના જેવી છે, તેમા મનોરથરૂપી જળ ભરેલુ છે તૃષ્ણાના તરગો ઉછળી રહ્યા છે, રાગરૂપી ગ્રાહ એમા નિવાસ કરે છે, નાના પ્રકારના વિચારો તેમા પક્ષીરૂપ છે, એ ધીરતારૂપી વૃક્ષનો ધ્વસ કરવાવાળી છે ચિન્તા એનું તટ છે એ નદીને પાર કરવી અત્યત કઠિન છે, જે મુનીશ્વર એ નદીને પાર કરે છે તે જ સુખી થાય છે,” (૧) અને વળી શ્રવણ કરો—

“વિષયોનો આશાપાશ દુસ્ત્યાજ્ય છે જેઓ એ પાશથી મુક્ત થઈ જાય છે તેઓ જ મોક્ષમાર્ગના અધિકારી અને છે—ખીજા નહિ, પછી ભલે તેઓ બધા શાસ્ત્રોના પારગત કેમ ન હોય ?” (૧)

હે શિષ્ય ! એ રીતે વિષય ભોગવવાની ઇચ્છા જ મહાન્ અનર્થને ઉત્પન્ન કરે છે, તો વિષયોના સેવનની ણાળતામા તો કહેલુ શુ ? બસ, તુ સમજ લે

अथ च-तात्कालिकमेव बुभुक्षानुपशम प्रति भोजनादेरन्वयव्यतिरेकतः कारणता विद्यते, अतस्तादृशबुभुक्षानुपशमनकामनयैव भोजनाद्युपादीयते, अत्र तु यावज्जीवन विषयसेवनेऽप्यप्रशमः साधुजनाऽभिलाषविषय इति तादृशप्रशममुद्दिश्य प्रवर्तमानाना मुनीना विषयसेवन कदापि नोपादेयम्, विषयसेवनसमये हि तदीयवासना रागमनुवर्द्धयन्तीन्द्रियाणि च सञ्चलयन्ती विविधाशुभभावनामुद्भावयति-‘अयमुपभोगो न जातु नश्यतु, उत्तरोत्तरं चानुवर्द्धताम्, न चैनं प्रतिवर्द्धन्तु केऽपि विघ्नाः’ इत्यादि । एव च विषयसेवनेनैव तदभिलाषोपशमः प्रत्युत तद्विपरीतं प्रतिक्षणं वर्द्धमान एव तदभिलाषः पाशवद्ध-

जय भोजन किया जाता है तो क्षुधाकी तात्कालिक शान्ति हो जाती है विना भोजन किये नहीं होती, इसलिए अन्वय-व्यतिरेकद्वारा भोजन तात्कालिक क्षुधा-निवृत्तिके प्रति कारण होता है । इसी कारणसे क्षुधा आदि शान्त करनेके लिए भोजन आदि किया जाता है । साधु जीवन-पर्यन्त विषय-सेवनकी अभिलाषाकी शान्तिकी इच्छा रखते हैं । इस शान्तिके लिए प्रवृत्ति करनेवाले मुनियोंको कदापि विषयसेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि विषयवासना, विषयसेवनके समय राग-भावकी वृद्धि करती है और इन्द्रियोंको सबल बनाकर नाना प्रकारकी दुर्भावनाएँ उत्पन्न करती है कि-‘यह भोग कभी नष्ट न हो जाय, उत्तरोत्तर बढ़ता जाय, इसके भोगनेमें कोई विघ्न न आजावे’ इत्यादि । अत एव विषय-सेवन करनेसे विषयकी अभिलाषा शान्त नहीं होती, बल्कि प्रतिक्षण अधिक-अधिक बढ़ती जाती है । यहा तक कि यह विषयलालसा पुरुषको

ज्यारे लोभन करवाभा आवे छे त्यारे क्षुधानी तात्कालिक शान्ति थई नथ छे, लोभन विना शान्ति थती नथी, तेथी अन्वय व्यतिरेक द्वारा लोभन, तात्कालिक क्षुधानिवृत्तने प्रति कारण भने छे आ कारणथी क्षुधा आदि शान्त करवाने भाटे लोभन आदि करवाभा आवे छे साधु जीवनपर्यन्त विषय-सेवननी अभिलाषानी शान्तनी छंछा राषे छे आ शान्तने भाटे प्रवृत्ति करनारा मुनियोओ कदापि विषयसेवन करवु न जेछंछे, कारण उ विषयवासना विषयसेवनने समये राग-भावनी वृद्धि करे छे, अने इन्द्रियोने सणण गनावीने जेवी नाना प्रकारनी दुर्भावनाओ उत्पन्न करे छे उ-‘आ भोग कदापि नष्ट न थाय, उत्तरोत्तर वधतो नथ, अने लोभववाभा काई विघ्न न आवे’ छत्यादि, जेन्ले विषयसेवनथी विषयना अभिलाषा शान्त थती नथी, अइके प्रतिक्षण अधिक-अधिक वधती नथ छे, ते जेतले सुधा उ जे विषयलालसा पुइपने देवण नकाओ गनावी हे छे

प्राणव्यमधिगच्छति । अन्यच्च दद्रुरोगप्रशमनामिच्छापिणा यथा यथा तदीयकण्डू-  
यनाऽऽदरः क्रियते, तथा तथा दद्रुरोगो र्धमान एवाऽनुभूयते न तु जातु तदु-  
पशमो लक्ष्यते कुत्राऽपि, तद्वद् विषयसेवनतो न विषयवृष्णोपशमः ।

अपर चात्र वैषम्य, तथाहि-विषयसेवनेच्छोपशम प्रति विषयसेवनस्य, बुभुक्षा-  
द्युपशम प्रति भोजनादेरिय कारणत्वमद्वीकृत्य यत् तदुपादेयता त्वयोपपाद्यते  
तन्न मनोरमम्, अन्वयव्यतिरेकी द्वि सर्वसमता कार्यकारणभावनियामकी, तत्राऽ-  
न्वयः-‘तत्सत्त्वे तत्सत्त्वारूपः’ व्यतिरेकस्तु-‘तदभावे तदभावरूपः’ । यथा सर्व-  
विरतिसत्त्वे साधुत्वसत्ता, तदभावे च साधुसत्ताया अभावइत्यन्वय व्यतिरेकाभ्या  
साधुत्वकारण सर्वविरतिचारित्रमिति गम्यते ।

अथ यादादकी खुजलानेसे दाद रोग मिटता नहीं किन्तु बढ़ता ही जाता है ॥

उक्त दृष्टान्तमें और भी विषमता है सो कहते हैं-जैसे बुभुक्षा  
(भूख) आदिको शान्त करनेमें भोजन आदि कारण है, इसी प्रकार  
विषय-सेवनकी इच्छाको शान्त करनेमें विषयोंका सेवन कारण है, ऐसा  
मानकर तुम विषय-सेवनको उपादेय कहते हो सो ठीक नहीं है । यह  
सब मानते हैं कि अन्वय-व्यतिरेकसे कार्य कारणभावका निश्चय होता  
है, कारणके होने पर ही कार्यका होना अन्वय कहलाता है, और कारणके  
अभावमें कार्यका न होना व्यतिरेक कहलाता है । जैसे सर्वविरतिरूप  
चारित्रके होने पर ही साधुता होती है और सर्वविरतिरूप चारित्रके  
अभावमें साधुता नहीं रहती । इस अन्वयव्यतिरेकसे ज्ञात होता है कि  
विरति साधुत्वका कारण है ।

यतो नय छे, झोलवातो नथी अथवा दादरने पञ्जवाणवाथी दादर भटती नथी  
पणु वधती नय छे

उक्त दृष्टान्तमा भील पणु विषमता छे ते कहे छे- जेभ लूप आदिने  
शान्त करवाभा लोअन आदि कारण छे, तेभ विषय-सेवनी इच्छाने शान्त करवाभा  
विषयानु सेवन कारण छे, जेभ मानिने तेभ विषय-सेवनने उपादेय कहे छे  
ते अराणर नथी सो जेभ तो माने छे के-अन्वय व्यतिरेकथी कार्य कारणभावने  
निश्चय थाय छे जणु होवाथी न कार्यनु अनलु अन्वय कहेवाय छे अने कारणना  
अभावमा कार्यनु न अनलु जे व्यतिरेक कहेवाय छे, जेभ सर्वविरतिरूप आरित्र  
होवाथी न साधुता होय छे अने सर्वविरतिरूप आरित्रना अभावमा साधुता  
रहेती नथी आ अन्वय व्यतिरेकथी समनय छे के विरति साधुत्वनु कारण छे

उक्तमर्थं दृष्टान्तेन स्फुटीकरोति—‘पक्खदे०’ इत्यादि,

मूलम्—पक्खदे जलियं जोइ, धूमकेउ दुरासय ।

नेच्छंति वंतय भोत्तु, कुले जाया अगंधणे ॥६॥

छाया—प्रस्कन्दन्ति ज्वलित ज्योतिष, धूमकेतु दुरासदम् ।

नेच्छन्ति वान्त भोक्तु, कुले जाता अगन्धने ॥६॥

सान्धयार्थः—

अगंधणे=अगन्धननामक कुले=कुलमें जाया=उत्पन्न हुए (सर्प) जलिय=जलती हुई धूमकेउ=गुआँ निकालती हुई (और) दुरासय=असह्य-नहीं सहने योग्य (ऐसी) जोइ=अग्निमें पक्खदे=प्रवेश कर जाते हैं, (किन्तु) वतय=उगले हुए विषको भोत्तु=भोगनेकी नेच्छति=इच्छा नहीं करते । अर्थात् अगन्धन सर्प भी त्यागे हुएको फिर ग्रहण नहीं करना चाहते ॥६॥

टीका—गन्धना-अगन्धनभेदेन भुजगा द्विविधास्तत्र गन्धनास्ते ये मन्त्रप्रयोगादित्रशादृष्टप्रदेशे वान्त विष पुनश्चूपन्ति, तद्भिन्ना अगन्धनास्तत्कुलमगन्धन तस्मिन् कुले जाता=समुत्पन्ना. सर्पा इति शेषः, ज्वलित=प्रदीप्त धूमकेतु=धूमकेतु=शिव्ह यस्य त धूम-त्रजमित्यर्थः, अत एव दुरासदम्=दुःखेन आसयते=धातूनामनेकार्थत्वात् सख्यते सवेयते इति वाऽर्थस्त दुष्प्रवेशमिति यावत्, ज्योतिषम्=अग्निम् प्रस्कन्दन्ति=प्रविशन्ति, किन्त्वितिशेषः, वान्तम्=उद्वीर्णं सन्त्यक्तमितियावत्

इसी विषयको दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट करते हैं—‘पक्खदे०’ इत्यादि ।

साँप दो प्रकारके होते हैं—(१) गन्धन और (२) अगन्धन, गन्धन सर्प उन्हें कहते हैं जो मन्त्रादिके बलसे विष होकर काटे हुए स्थानसे उगले विषको फिर चूस लेते हैं । अगन्धन इनसे विपरीत होते हैं । उस अगन्धन कुलमें उत्पन्न हुए साँप अगन्धन सर्प कहलाते हैं । वे सर्प

आ विषयने दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करे छे—पक्खदे० इत्यादि

साँप के प्रकारना थाय छे (१) गन्धन अने (२) अगन्धन गन्धन सर्प के उडेवाय छे के के मन्त्रादिना अणथी विषय थयने उगेला स्थानमा नाणेले अरे तेमाथी पाछे खुसी ले छे अगन्धन सर्प तेथी विपरीत प्रकारने उडेय छे के अगन्धन कुणमा उत्पन्न थयनेला साँप अगन्धन सर्प उडेवाय छे के अर्थ



मित्र पुरुष पुरुषार्थसाधनाक्षम कुरुते, तस्मात् कार्यकारणभावनियामकाऽन्वय-  
व्यतिरेकाभावेन यावज्जीवन विषयसेवनवृष्णाप्रशम प्रति विषयसेवनस्य कारणता-  
ऽनुपपत्त्या तादृशोपशमाऽभिलाषयता सयतानामनुपादेयत्वं सिद्धम् ।

इत्थं पूर्वार्द्धेन ग्राह्यकामपरित्यागमुक्त्या पश्चार्द्धेनाऽऽभ्यन्तरकामपरित्याग-  
माह—‘उिदाहि०’ इति, शब्दादिविषयेषु द्वेष छिन्धि=मुञ्च, तथा राग=कामराग  
व्यपनय=दूरीकुरु, एयम्=एव कृते सति, सम्पराये=जन्ममरणरूपत्वेन नाशमये  
ससारेऽपीति भावः । यद्वा परीपहोपसर्गरूपे सग्रामे, त्रिमितिशेषः, सुखी=स्वात्मि-  
कानन्दभाग् भविष्यसीति गार्थार्थः ॥ ५ ॥

इतना निकम्मा बना देती है कि वह पुरुषार्थ-साधनमें सर्वथा असमर्थ  
हो जाता है, जैसे फन्देमें फँसा हुआ पुरुष कुलभी पुरुषार्थ नहीं कर  
सकता । इसलिए यहाँ कार्य-कारणभावका निश्चय करानेवाले अन्वय-  
व्यतिरेकका अभाव होनेसे यावज्जीवन विषय लालसाकी शान्तिके प्रति  
विषयसेवन कारण नहीं हो सकता । अतः यावज्जीवन विषयाभिलाषाकी  
शान्ति चाहनेवाले मुनियोंको यह उपादेय नहीं है ।

इस प्रकार पूर्वार्द्धमें सूत्रकार ग्राह्य विषयोका त्याग बताकर उत्त-  
रार्द्धमें अन्तरङ्ग-विषयोंके त्यागका उपदेश देते हैं कि-हे शिष्य !  
शब्दादि-विषयोंमें द्वेष तथा रागको दूर कर । ऐसा करनेसे तू जन्म मरण  
स्वरूपवाले विनश्वर ससारमें सुखी, अथवा अनुकूल प्रतिकूल परीषह  
और उपसर्ग रूप सग्राममें विजयी होगा ॥५॥

अने ते पुत्रार्थ-साधनभा सर्वथा असमर्थ णनी न्दथ छे, के नेवी रीते इदमा  
(हेडमा) इसेवे। पुत्र थळ पणु पुत्रार्थ करी शकतो नथी तेथी करीने अर्धी  
कार्य-कारणभावने। निश्चय करवनारा अन्वय-व्यक्तिरेकने। अभाव होवाथी एवम  
पथ त विषयलालसांनी शान्तिनी प्रति विषयसेवन करणु थळ शकतु नथी, अटले  
एवमपर्यंत विषयाभिलाषानी शांतिने आहनारा मुनिओने माटे अ उपादेय नथी

अे प्रजरे पूर्वार्धभा सूत्रकार ग्राह्य विषयोना त्याग गतावीने उत्तरार्धभा  
अतरंग विषयोना त्यागने। उपदेश आपे छे डे-हे शिष्य ! शब्दादि- विषयोभा  
द्वेष तथा रागने दूर कर अेग करवाथी जन्म मरणरूपवर्षवाणा विनश्वर ससारभा  
सुधी, अथवा अनुकूल प्रतिकूल परीषह तथा उपसर्गना सआमभा विजयी थधथ (५)

अरिष्टनेमी भगवति प्रप्रजिते तत्कनिष्ठभ्राता रथनेमी राजीमतीं चक्रमे, सा तु कामवासनाविरक्ता रुदाचन मुद्रासितसरसपायस भुक्त्वा कस्मिंश्चित्कटोरेके समुद्रम्य 'भुज्यता'-मित्युक्त्वा रथनेमये दत्तवती, रथनेमिना च 'कथमिद वान्त क्षत्रियवशात्तसेन मया भोक्ष्यते' इत्युक्त्वा सा प्रोवाच-'तर्हि कथमरिष्टनेमिना त्वद्भ्राता समुज्जिततया वान्ततुल्या मामभिलष्यसि ? न च व्रपसे' इति, ततश्च तद्वचनश्रवणसञ्जातवैराग्योऽसौ प्राराजीत् ।

जब चाईसवें तीर्थकर भगवान् अरिष्टनेमिने दीक्षा ग्रहण कर ली तब उनके छोटे भाई रथनेमिने राजीमतीकी इच्छा की, किन्तु सती-शिरोमणि राजीमती, कामकी वासनासे विरक्त हो चुकी थी । उसने एक रोज सुगन्धित तथा स्वादिष्ट खीर खाई और एक कटोरेमें वमन करके वह रथनेमिको देने लगी और बोली-लीजिये खीर खाइए । रथनेमि यह सुनकर आगवबूले (क्रुद्ध) हो गये और बोले-'मैं क्षत्रियोंके वशका भूषण होकर वमन की हुई खीर कैसे खाऊंगा ?' राजीमतीजी कहने लगी-'अहो श्रेष्ठक्षत्रिय ! तुम वमन की हुई खीर नहीं खाते तो, अपने बड़े भाई श्रीअरिष्टनेमिद्वारा वमन की हुई यानी त्यागी हुई मुझको क्यों चाहते हो ? मेरी इच्छा करते तुम्हें लज्जा नहीं आती ?, सती राजीमतीकी हृदयसे चुम्बनेवाली बात सुनतेही रथनेमिको ससारसे विरक्ति होगई । उन्होंने दीक्षा लेली । कुछ दिनोंके बाद राजीमतीने भी

त्याग्ये षावीसमा तीर्थेऽन् भगवान् अरिष्टनेमिञ्चे दीक्षा अहृष्य करी, त्याग्ये तेमना नाना बाध रथनेमिञ्चे गच्छमतीनी धर्या करी, परन्तु सतीशिरोमणि गच्छमती कामनी वासनाथी चिन्तयथं बूझी हुती तेण्णे अेक दिवस सुगन्धित अने स्वादिष्ट भीर पाथी अने अेक पाठकामा तेतु वमन करीने ते रथनेमिने आपवा लागी अने बोली "त्यो, भीर पाथ्यो ।" रथनेमि अे सासणीने कोधा विष्ट थथ गथे अने बोत्यो 'हु क्षत्रियोना वशनुं ब्रूणथु थथने वमेदी भीर डेम पाथ्य ?' गच्छमती उडेवा लागी 'अहो श्रेष्ठ क्षत्रिय ! तमे वमेदी भीर नथी पाता ते तमारा मोटाबाध श्रीअरिष्टनेमिञ्चे वमेदी अेटये त्यलेदी अेवी मने डेम थाडेो ? भाग भाटेनी धर्या करता तमने सारम नथी आवती ?' हुदयने उणे अेवी सती गच्छमतीनी वात सासगता न रथनेमिने ससारथी विरकित आवी गथ अेमण्णे दीक्षा लीधी डेटलाक दिवस पथी गच्छमतीअे पपु

વિપમિત્તિશેષઃ મોક્તુ નેન્ડન્તિ=નામિલપન્તિ । તિર્યઞ્ચઃ સર્પા અપિ વહ્નિપ્રવેશા-  
પેક્ષયા દુઃસહમનુચિત ચ વાન્તાશનપેવ મન્યન્તે । તસ્માત્ શિષ્ય ! પ્રવચનતત્ત્વામિન્નેન  
ત્વયા નિઃસારતયા પરિત્યક્તસ્ય 'વિપયસ્ય પુનઃ સ્વીકરણ ન વિપ્રેયમિતિ ભાવઃ ।  
મુર્ચ્ચુરાદિશાન્તજ્વાલાગ્નિવ્યવચ્છેદાર્થમાહ-'જલિય' ઇતિ, અદ્ધારોલ્કાદિવ્યાઘ્રત્વર્થમ્  
અગ્નેર્વદ્ધિવ્યમાણત્વયોતનાર્થં ચાહ-'ધુમકેડ' ઇતિ, । તીવ્રતમત્ત્વવોધનાર્થં 'દુરાસય  
ઇતિ । અગ્નિપર્યાયો જ્યોતિઃ-શબ્દઃ પુલ્હિદ્ગઃ । 'જલિય' મિત્યાદિવિશેષણત્રયેણ  
'યન્નાશ્નો પ્રવેશે સઘો ભસ્મસાદ્ ભવતિ વાદશેઽપ્યગન્ધનજ્ઞાઃ સર્પાઃ પ્રવિશન્તિ  
કિન્તુ પરિત્યક્તવિપમાપાતુ નૈવ વાઙ્ઙન્તિ, એવ સત્પુરુષા અપિ પરિત્યક્તાન્  
વિપેયાન્ મરણાન્તેઽપિ ન પુનઃ સેવિતુમિચ્છન્તીતિ વોદ્યતે, ઇતિ ગાયાર્થઃ॥૬॥

અસહ્ય ઓર જલતી અગ્નિમેં પ્રવેશ કર જાતે હેં, કિન્તુ ત્યાગે હુણ વિષકો  
ફિર નહીં ચૂસતે ।

હે શિષ્ય! જબ તિર્યઞ્ચ સર્પ મી ડગલે હુણકો નિગલના નહીં ચાહતે  
તબ તૂ તો પ્રવચનમેં પ્રવીણ હૈ અત એવ નિઃસાર સમજ કર ત્યાગે હુણ  
વિષયોંકા સેવન તુજે તો મૂલકર મી' નહીં કરના ચાહિણ ।

અગ્નિકે 'જ્વલિત' આદિ ત્રીન વિશેષણ દિયે હેં, ડનકા અભિપ્રાય  
યહ હૈ કિ-જિસ અગ્નિમેં પ્રવેશ કરતેહી તત્કાલ ભસ્મ હો જાવે ડસ  
પ્રકારકી અગ્નિમે મી અગન્ધન કુલકે સર્પ પ્રવેશ કરજાતે હૈ પર ત્યાગે  
હુણ વિષકો ગ્રહણ નહીં કરતે । ઇસી પ્રકાર કુલીન પુરુષ મી ત્યાગે હુણ  
વિષયોંકો પ્રાણસકટમે મી ગ્રહણ નહીં કરતે । અર્થાત્ વે દુષ્કર્મ કરકે  
ક્ષણમર મી જીના નહીં ચાહતે ॥૬॥

અસહ્ય અને બળતી આગમા પ્રવેશ કરે છે પરન્તુ એકવાર મૂકેલા ઝેરને પાછું  
ચૂસી લેતો નથી

હે શિષ્ય ! ત્યારે-તિર્યંચ સર્પ પણ મૂકેલા ઝેરને પાછું ગળી જવા  
ઇચ્છતો નથી તો તુ ત્યારે પ્રવચનમા પ્રવીણ છે, એટલે નિસાર સમજને ત્યજેલા  
વિષયોનું સેવન તારે તો ભૂલે-ચૂક્યે-પણ ન કરવું જોઈએ

અગ્નિના 'જ્વલિત' આદિ ત્રણ વિશેષણો આપેલા છે, તેનો હેતુ એ છે કે-  
જે અગ્નિમા પ્રવેશ કરતા જ તત્કાળ ભસ્મ થઈ જવાય એ પ્રકારના અગ્નિમા  
પણ અગન્ધન કુળનો સર્પ પ્રવેશ કરે છે, પરન્તુ ત્યજેલા વિષને ગ્રહણ કરતો  
નથી એ પ્રમાણે કુલીન પુરુષો પણ ત્યજેલા વિષયોને પ્રાણસકટમા પણ ગ્રહણ  
કરતા નથી અર્થાત તેઓ દુષ્કર્મ કરીને ક્ષણ ભર પણ જીવવા ઇચ્છતા નથી' (૬)

रसौ राजीमती पुनर्यदुक्तवती तदेव तिसृभिर्गाथाभिः सूत्रकारो ब्रूते—‘धिरत्यु०’ इत्यादि ।

मूलम-धिरत्यु<sup>३</sup> ते<sup>२</sup> जसोकामी<sup>१</sup>, जो<sup>४</sup> तं<sup>५</sup> जीवियकारणा<sup>६</sup> ।

वतं<sup>७</sup> इच्छसि<sup>८</sup> आवेउं<sup>९</sup>, सेय<sup>१०</sup> ते<sup>११</sup> मरणं<sup>१२</sup> भवे<sup>१३</sup> ॥७॥

छाया—धिगस्तु त्वा (ते) यशःकामिन्, यस्त्व जीवितकारणात् ।

वान्तमिच्छस्यापातु, त्रेयस्ते मरण भवेत् ॥७॥

रथनेमिके प्रति राजीमती कहती है—

सान्वयार्थः—जसोकामी=हे यशके अभिलाषी ते=तुझे धिरत्यु=धिकार हो, जो=जो त=तू जीवियकारणा=असयमजीवन सुखके लिये वत=वमन किये -त्यागे हुएको आवेउ=पीना इच्छसि=चाहता है, (इससे तो) ते=तेरा मरण= मरजाना सेय=अच्छा भवे=है । अर्थात्—सयम धारण करके फिर असयममें आना अत्यन्त निन्दनीय है, और उस असयमकी अपेक्षा सयमी अवस्थामें मृत्यु होजाना अच्छा है ॥७॥ देव—

टीका—कामयते=वाञ्छति तच्छीलः कामी, यशसः=सयमस्य कीर्त्तवा कामी यशःकामी, तत्सम्बुद्धौ हे यशःकामिन् !, यद्वा अकारच्छेदाद् हे अयशःकामिन्=

कुञ्ज कहा उसे सूत्रकार तीन गाथाओंसे कहते हैं— ‘धिरत्यु०’ इत्यादि ।

हे यशके अभिलाषी ? तुझे धिक्कार है, जो असयम जीवनके सुखके लिए वमन किये हुएको खाना चाहता है, इस प्रकारके जीवनसे मर जाना ही अच्छा है ।

हे यश अर्थात् सयम अथवा कीर्त्तिकी इच्छा करनेवाले ! अथवा हे असयम और अपयशके कामी ! तुझे धिक्कार है, तू अत्यन्त निन्दाका

रमणीय शलमतीके ने काँध धरु ते वात सूत्रकार त्रयु गाथाओभा कहे छे — धिरत्यु० इत्यादि

हे यशना अभिलाषी ! तने धिक्कार छे, ने असयम एवमना सुभने भाटे वमेलाने जावा छे छे छे, ओ प्रकारना एवमथी तो भरबु न वधारे साइ छे यश अर्थात् सयम अथवा कीर्त्तिकी इच्छा करना, अथवा हे असयम अने अपयशना कामी ! तने धिक्कार छे, तु अत्यन्त निन्दाने पात्र छे अथवा हे कामी !

अथैकदा गृहीतप्रज्या सा राजीमती साध्वीभिः परिहृता रैवतकपर्वतसम-  
वसुत भगवतमरिष्टनेमिं वन्दितुं प्रजन्ती मन्थेमार्गं जलधरदृष्टप्रहलजलमुशलापारया-  
ऽऽर्द्रगानैकाकिनी फाकतालीयन्यायेन तदेव गिरिचन्द्ररमाससात्, यत्रासौ प्रव्र-  
जितो रथनेमिरपि ततः पूर्वं गत्वा स्थित आसीत्, तमनलोक्यैव 'विविक्तोऽयं  
प्रदेशः' इति विचार्याऽऽर्द्रवह्वाणि प्रसारयामास । तदानीं ता यथाजाता (नग्रा)  
विलोक्य भग्नोऽभ्यन्तरद्गोऽनद्गोपहतचित्तवृत्तिर्निगृत्तिपथप्रिच्युतो रथनेमिः पुनः  
रथनेमिवद्भ्रान्तभावः समपश्यत् । तं भूयो जातकाममालोक्य प्रकामकमनीयाकृति-

दीक्षा लेली । राजीमती, बहुतसी साध्वियोंके परिहारसे परिवृत होकर  
रैवतक पर्वतपर पधारे हुए भगवान् अरिष्टनेमिको वन्दना करने गईं  
तत्र मार्गमें अचानक ही पानीकी मूसलधार वर्षा होने लगी, सारा  
शरीर और वस्त्र, पानीसे भीग गया । सयोगसे राजीमतीने भी उसी  
गुफामें प्रवेश किया जिसमें रथनेमि पहलेसे ही ठहरे हुए थे । जिस  
स्थानपर रथनेमि बैठे थे उधर दृष्टि न पडनेके कारण वे दृष्टिगोचर न  
हुए । राजीमतीने एकान्त स्थान समझ कर भीगे कपडे फैला दिये ।  
राजीमतीको कपडेरहित देखकर रथनेमिका चित्त चलित होगया ।  
उनके मन पर काम विकारने आक्रमण कर लिया । वे सयम मार्गसे  
च्युत होगये । रथकी-नेमि ( पहिये ) की भाँति उनका चित्त घूमने लगा ।  
रथनेमिको इस प्रकार कामातुर देखकर रतिसी रमणीय राजीमतीने जो

दीक्षा लीधी राजीमती अनेक साध्वीयोंना परिवारथी विंटाडने रैवतक पर्वत  
पर पधारेला भगवान् अरिष्टनेमिने वदना करवा गर्ध, त्यारे मार्गमा अथानक  
भूशणधार वरसाद वरसवा लाग्यो तेनु आशु शरीर अने वस्त्रो पाणीथी  
बीज्जर्ध गया सयोगवश राजीमतीये अेज्ज शुद्धिमा प्रवेश कर्यो ते ने शुद्धिमा  
रथनेमि पडेलैथी आवीने रक्षा हुता ने स्थान पर रथनेमि भेडा हुता ते रथण  
पर दृष्टि न पडवाने दीधे ते राजीमतीने दृष्टिगोचर न थथा तेथी ते अेज्जन्त  
प्रदेश न्गण्णिने पोताना बीज्जयला लूगाडा इलापी दीधा त्यारे ते राजीमतीने वन्न  
रहित नेधने रथनेमिनु चित्त चलित थर्ध गयु अेभना मन पर कामविकारै  
आकरं षु कयुं ते सयममार्गथी अ्रष्ट थर्ध गया रथनी नेमि ( पिये ) नी पडे  
तमनु चित्त अ्रमवा लाग्यु रथनेमिने अे प्रभाणु कामातुर नेधने रति नेथी

होकर सजम=सयमको चर=पालो । भावार्थ—राजीमती रथनेमिसे कहती है कि हम दोनो उच्च कुलोमें उत्पन्न हुए हैं, अतः उगले हुए विपको वापिस पीजाने-वाले गन्धन सापोंके समान हमको नीच न होना चाहिए ॥ ८ ॥

टीका—‘अह च’ इत्यादि । चद्वय समुच्चयार्थम्, हे रथनेमे ! अह=राजीमती भोगराजस्य=तन्नम्रा प्रसिद्धस्य अस्मीतिशेषः, अह भोगराजस्य पौत्रीति भावः । त्व च अन्धकवृष्णेः=तन्नाम्रा प्रसिद्धस्य असि, अन्धकवृष्णिपौत्रोऽसीत्यर्थः । ततः किं ? तदाह—कुले=वंशेऽर्थान्निष्कलङ्के गन्धनो=गन्धनकुलसम्भूतसर्पसदृशो, ‘आवा’ मिति गम्यंते, माभूव=नभवेव, तस्मात् निभृतः=निश्चलो विपयादिभिरक्षोभ्यः सन् सयमम्=अनश्वरसुखसाधनभूत निरव्यक्रियाऽनुष्ठान चर=पालय । इति गाथार्थः ८

मूलम्—जइ त काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ ।

वायाविद्धु व्व हडो, अट्टिअप्पा भविस्ससि ॥ ९ ॥

उाया—यदि त्व करिष्यसि भाव, या या द्रक्ष्यसि नारीः ।

वातापिद्ध उव हडो, -ऽस्थितात्मा भविष्यसि ॥ ९ ॥

सान्वयार्थः—जइ=यदि त=तुम जा जा=जो-जो नारिओ=स्त्रीको दिच्छसि=देखोगे (उन उनपर) भाव=तुरे विचार काहिसि=करोगे तो वायाविद्धुव्व=

“अह च’ इत्यादि । हे रथनेमि ! मैं (राजीमती) भोगराजकी पोती और उग्रसेनकी बेटी हूँ, और तुम अन्धकवृष्णिके पौत्र तथा समुद्रविजयके पुत्र हो, इसलिए दोनोही निर्मल कुलोमें उत्पन्न हुए हैं । हमें गन्धन कुलमें उत्पन्न होने वाले सर्पोंके समान नहीं होना चाहिये । अतः विषय आदिको त्याग करके अनन्त सुखके कारणभूत निरतिचार सयमका पालन करो ॥ ८ ॥

अह च इत्यादि हे रथनेमि ! हु (राजीमती) भोगराजकी पोती अने उग्रसेनकी पुत्री छ, अने तमे अन्धकवृष्णिके पौत्र तथा समुद्रविजयके पुत्र छे, अने शीते आपणुं जेउ निर्मल कुलोमा उत्पन्न तथा छीअने आपणुं गन्धन कुलमा उत्पन्न अथेला सर्पाना जेवा न थयुं जेअने भाटे विषय आदिने त्यजने अनन्त सुखका कारणभूत निरतिचार सयमनुं पालन करे (८)

હે અસયમાપયશોઽર્થિન્ ! ત્વા ધિગસ્તુ, નિન્યોઽસિ ત્વમિત્યર્થઃ 'તે' इति द्वितीयार्थे  
 પછી, યદ્વા 'તે' इति पष्ठयन्तमेव, તત્ર 'પૌરુપ' મિત્યસ્ય શેષઃ, ધિગિત્યનેન સમ્બન્ધઃ,  
 તે=તવ પૌરુપ ધિગિત્યર્થઃ । યદ્વા હે કામિન્ ! તે=તવ યશઃ=' અહો ધન્યોઽય  
 તીત્રતપઃસયમત્રતપરિપાલકો મહાત્મે 'ત્યેવ લોકપ્રતીતા કીર્ત્તિમ્ , અથવા અયશ =  
 મા દૃષ્ટૈવ દુષ્ટવેદનરૂપ પાપ ધિગસ્તિત્યર્થઃ, इति त्रयम् , યસ્ત્વ જીવિતકારણાત્=  
 અસયમજીવિતસુખાર્થમિતિ भावः, चात्=ભગવતા પરિત્યક્ત્વાદ્વાન્તસદર્શીં મામ્ ,  
 યદ્વા સયમસેવિત્વેન પરિત્યક્તસ્ય વિપયસ્યૈવમમિલાપોદયાદ્વાન્તતુલ્ય વિપયમ્  
 આપાતુમ્=ઉપસર્ગવશેન ધાત્યર્થભેદાદુપમોક્તુમ્ इच्छसि=કામયસે, તે=તવ મરણ=  
 મૃત્યુઃ શ્રેયઃ=પ્રશસ્ય શ્રેષ્ઠ ભવેત્ , ન પુનરિત્થમનાચરણીયાઽઽચરણમિતિ ગાથાર્થઃ । ૭।

મૂલમ્-અહ ચ<sup>૧</sup> ભોગરાયસ્સ, ત ચ<sup>૨</sup> સિ<sup>૪</sup> અંધગવણિહ્ણો<sup>૩ ૬ ૫</sup> ।

મા<sup>૬</sup> કુલે<sup>૭</sup> ગધના<sup>૮</sup> હોમો<sup>૧૦</sup>, સજમ<sup>૧૨</sup> નિહુઓ<sup>૧૧</sup> ચર<sup>૧૩</sup> ॥ ૮ ॥

છાયા-અહ ચ ભોગરાજસ્ય, ત્વ ચાસિ અન્ધકટુષ્ણેઃ ।

મા કુલે ગન્ધનો ભૂવ, સયમ નિમૃતશ્ચર ॥ ૮ ॥

સાન્વયાર્થઃ-અહચ=મૈ (રાજીમતી) ભોગરાયસ્સ=ભોગકુલકી હૂં, ચ=ઔર  
 ત=તુમ અધગવણિહ્ણો=અધઋષ્ટિણિકુલકે સિ=હો, કુલે=એસે ઉચ્ચ કુલમે  
 ગધના=(દોનો) ગન્ધન મા=નહી હોમો=હોવે । (અત' ) નિહુઓ=નિશ્ચલ

પાત્ર હૈ । અથવા હે કામી ! જગતમે તુમ્હારી હસ પ્રકારકી જો કીર્તિ ફૈલી  
 હુઈ હૈ કિ "યદ્ રથનેમિ મુનિ, અત્યન્ત ઉત્કૃષ્ટ સયમકા પાલન કરને-  
 વાલા મહાત્મા હૈ" હસ કીર્તિકો ધિક્કાર હૈ, ક્યોંકિ તુમ અસયમ રૂપ  
 જીવિતકે લિષ, ભગવાન્ અરિષ્ટનેમિકે દ્વારા ત્યાગી હુઈ મુક્તકો, અથવા  
 સયમ પાલનકે લિષ ત્યાગે હુષ વિષયોંકો ફિર ચાહતે હો, તુમ્હેં મર જાના  
 અચ્છા હૈ કિન્તુ અસયમકી વાછા કરના અચ્છા નહીં હૈ ॥૭॥

જગતમા તારી એ પ્રકારની જે કીર્તિ દેલાઈ છે કે 'આ રથનેમિ મુનિ અત્યત  
 ઉત્કૃષ્ટ સયમનું પાલન કરનારા મહાત્મા છે,' એ કીર્તિને ધિક્કાર છે કેમ કે  
 તમે અસયમરૂપ છવિતને માટે, ભગવાન્ અરિષ્ટનેમિએ ત્યજેલી એવી મને,  
 અથવા સયમપાલનને માટે ત્યજેલા વિષયોને પાછા ચાહેા છે તમારે મરી  
 જવું જ સાઈ છે, પરન્તુ અસયમની વાછના કરવી સારી નથી (૭)

होकर सजम=सयमको चर=पालो । भावार्थ-राजीमती रथनेमिसे कहती है कि हम दोनो उच्च कुलोमें उत्पन्न हुए हैं, अतः उगले हुए विपको वापिस पीजाने-वाले गन्धन सापोके समान हमको नीच न होना चाहिए ॥ ८ ॥

टीका—‘अह च’ इत्यादि । चद्वय समुच्चयार्थम्, हे रथनेमे ! अह=राजीमती भोगराजस्य=तन्नाम्ना प्रसिद्धस्य अस्मीतिशेषः, अह भोगराजस्य पौत्रीति भावः । त्व च अन्धकवृष्णेः=तन्नाम्ना प्रसिद्धस्य असि, अन्धकवृष्णिपौत्रोऽसीत्यर्थः । ततः किं ? तदाह-कुले=त्रशेऽर्थान्निष्कलङ्के गन्धनो=गन्धनकुलसम्भूतसर्पसदृशौ, ‘आवा’ मिति गम्यन्ते, माभूव=नभवेव, तस्मात् निभृतः=निथलो विपयादिभिरक्षोभ्यः सन् सयमम्=अनश्वरसुखसाधनभूत निरव्यक्रियाऽनुष्ठान चर=पालय । इति गाथार्थः ८

मूलम्—जड त काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ ।

वायाविद्धु व्व हडो, अट्टिअप्पा भविस्ससि ॥ ९ ॥

छाया—यदि त्व करिष्यसि भाव, या या द्रक्ष्यसि नारीः ।

वाताग्निद् इव हडो, -ऽस्थितात्मा भविष्यसि ॥ ९ ॥

सान्वयार्थ-जड=यदि त=तुम जा जा=जो-जो नारिओ=स्त्रीको दिच्छसि=देखोगे (उन उनपर) भाव=पुरे विचार काहिसि=करोगे तो वायाविद्धुव्व=

“अह च’ इत्यादि । हे रथनेमि ! मै (राजीमती) भोगराजकी पोती और उग्रसेनकी बेटी हूँ, और तुम अन्धकवृष्णिके पौत्र तथा समुद्रविजयके पुत्र हो, इसलिए दोनोही निर्मल कुलोमें उत्पन्न हुए हैं । हमे गन्धन कुलमें उत्पन्न होने वाले सर्पोंके समान नहीं होना चाहिये । अतः विषय आदिको त्याग करके अनन्त सुखके कारणभूत निरतिचार सयमका पालन करो ॥ ८ ॥

अह च इत्यादि हे रथनेमि ! हु (राजीमती) भोगराजकी पोती अने उग्रसेनकी पुत्री छु, अने तमे अन्धकवृष्णिके पौत्र तथा समुद्रविजयके पुत्र छे, अने शीते आपणु छे निर्मल कुलोमा उत्पन्न तथा छीअने आपणु गन्धन कुलमा उत्पन्न अथेवा सर्पाना जेवा न थलु जेधअने भाटे विषय आदिने त्यजने अनन्त सुखका कारणभूत निरतिचार सयमनु पालन करे (८)



हवासे उडाये हुए हड्डो=हड्डनस्पतिकी भांति अट्टिअप्पा=अस्थिर आत्मावाले-  
चचलचित्त भविस्ससि=हो जाओगे ॥९॥

टीका-‘जइ त०’ इत्यादि । त्व या या नारी=स्त्रीः द्रक्ष्यसि=अवलोकियसे  
यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् ‘तासु तासु’ यदि भाव=रुलुपिताध्ययसायतया दुष्टा  
दृष्टिं करिष्यसि तदा वाताविद्धः=रातेन=रायुना अपिद्धः=भेरितः हडः=निर्मूलो  
वनस्पतिविशेष इव, शैवालमिव या अस्थितात्मा=अस्थितः=अस्थिरः आत्मा  
यस्य स तथोक्तो भविष्यसि, जन्म-जरा-मरणजन्य-जगद्दृष्टीपर्यटनदुःखपरम्परा-  
निराकरणकारणेभ्यः सयमगुणेभ्यः प्रस्खल्याऽपारससारपारावारे विषयवासना-  
वातविकम्पितचेताः शान्तिं न गमिष्यसीति भावः, इति गार्थार्थः ॥९॥

एव राजीमत्या प्रतिरोधितो रथनेमिर्धर्मनिष्ठोऽभवदित्याह-‘तीसे सो०’  
इत्यादि ।

मूलम्—तीसे<sup>२</sup> सो<sup>१</sup> वयण<sup>५</sup> सोच्चा<sup>६</sup>, सजयाइ<sup>३</sup> सुभासियं<sup>४</sup> ।

अंकुसेण<sup>१०</sup> जहा<sup>९</sup> नागो<sup>११</sup>, धम्मै<sup>७</sup> सपडिवाइओ<sup>८</sup> ॥१०॥

‘जइ त’ इत्यादि । यदि तुम जिस जिम् स्त्रीको देखोगे उन  
सब पर विकारदृष्टि डालोगे तो आधीसे उडाये हुए हड्ड वनस्पति अथवा  
सेवालकी तरह अस्थिर हो जाओगे, अर्थात् जन्म-मरणसे होनेवाले  
जगत्सूत्री अटवीमे भ्रमण करनेके कष्टको दूर करनेवाले सयमगुणोसे  
च्युत होनेके कारण ससाररूप अपार समुद्रमे विषयवासनारूपी हवासे  
चचलचित्त होकर भटकते फिरोगे ॥९॥

राजीमतीजीके द्वारा प्रतिबोध पाकर रथनेमि सयममे स्थिर होगया ।  
इसी विषयको सूत्रकार प्रतिपादन करते है-‘तीसे०’ इत्यादि ।

जइ त० इत्यादि, जे तमे जे जे आओने जेशे ते अधी पर विकारदृष्टि  
नाभशे तो आधीथी उडती हड वनस्पति अथवा शेवालकी पेठे अस्थिर थथ  
जेशे, अर्थात् जन्म-मरणथी उत्पन्न दत्ता जगतसूत्री अटवीमा भ्रमण करवाना  
कष्टोने दूर करनारा सयमगुणोथी प्रष्ट थवाने तीथे ससाररूप अपार समुद्रमा  
विषयवासनासूत्री उवाथी अथयण चित्तवाणा थथने भ्रमण करता ईरेशे (९)

राजमतीथी ओवे प्रतिबोध पाओने रथनेमि सयममा स्थिर थथ गया  
ओ विषयनु प्रतिपादन सूत्रकार करे छे-तीसे० इत्यादि

छाया-तस्याः स वचन श्रुत्वा, सयतायाः सुभाषितम् ।

अकुशेन यथा नागो, धर्मे सम्प्रतिपातितः ॥ १० ॥

सान्वयार्थः-सो=वह ( रथनेमि ) तीसे=उस सजयाड=सयमवती ( राजी-  
मती ) के सुभाषिय=सुभाषित वचण=वचनको सोचा=सुनकर धम्मे=धर्ममें  
सपडिवाडओ=आगया-प्राप्त होगया, जहा-जैसे अकुसेण=अकुशसे नागो=  
हाथी मार्गमें जा जाता है ॥ १० ॥

टीका-सः=रथनेमि', सयतायाः=सयमवत्याः तस्याः=राजीमत्याः, सुभाषित-  
मिति वैराग्यसारगर्भितत्वात् वचन=सदुपदेश, श्रुत्वा=समारुर्ण्य 'स्थितः' इति शेषः  
अन्यथा 'सम्प्रतिपातितः' इत्यनेन समानरुचृक्त्वाऽभावात् क्त्वाप्रत्ययोत्प-  
त्तिरसङ्गता स्यात्, यद्वा 'सम्प्रतिपातित' इत्यस्य णिजर्थाऽविवक्षया 'सम्प्रति-  
पन्नः' इत्यर्थः कर्तव्यः । अकुशेन=हस्तिचालनार्थ-लौहमयवक्राग्रास्त्रेण नागो  
यथा=हस्तीव, र्मे=जिनोक्तप्रवचनरूपे, सम्प्रतिपातितः=सस्थापितः सस्थित इति  
वा, यथाऽकुशेन प्रशमितमदो मतङ्गजोऽनुकूल मार्गमयलम्बते तथा राजीमतीवच-  
नेन दूरीकृतमदनमदो रथनेमिरपि जिनोक्तधर्ममार्गमवलम्बितवानिति भावः ॥१०॥

जैसे अकुशसे हाथी ठीक मार्ग पर आजाता है वैसे ही रथनेमि  
सयमवती राजीमतीके वैराग्य-परिपूर्ण वचन ( सदुपदेश ) सुनकर  
जिनेन्द्र भगवानके प्रवचन-रूप धर्म-मार्गमें स्थित हो गये, अर्थात् जैसे  
महावतके अकुशसे मदोन्मत्त हाथीका मद चकनाचूर हो जाता है और  
वह सन्मार्ग पर आजाता है, उसी प्रकार राजीमती-रूपी महावतके  
वचन-रूपी अकुशसे रथनेमि रूपी हाथीका विषयवासना रूपी मद दूर  
होगया और वे जिनोक्त धर्ममार्गमें प्रवृत्त होगये ॥१०॥

जेम अ कुशथी हाथी गराणर मार्ग पर आवी जाय छे, तेमज रथनेमि  
सयमवती राजीमतीना वैराग्यपूर्ण वचन (सदुपदेश) सासणीने जिनेन्द्र भग-  
वान्ना प्रवचनरूप धर्ममार्गमा स्थिर गनी गया अर्थात् जेम महावतना  
अ कुशथी भदोन्मत्त हाथीने भद यूर्ण्य थर्ष जाय छे, अने ते राड पर आवी  
जाय छे, तेम राजीमतीरूपी महावतना वचनरूपी अ कुशथी रथनेमिरूपी हाथीने  
विषयवासनारूपी भद हर थर्ष गयो अने ते जिनोक्त धर्ममार्गमा प्रवृत्त थर्ष  
गया (१०)

सम्प्रत्युपसहरन्नाह-‘एव करति०’ इत्यादि ।

मूलम्-एवं<sup>४</sup> करति<sup>५</sup> संवुद्धा<sup>१</sup>, पंडिया<sup>२</sup> पवियक्खणा<sup>३</sup> ॥

विणियट्टति<sup>७</sup> भोगेसु<sup>६</sup>, जहा<sup>८</sup> से<sup>९</sup> पुरिसुत्तमो<sup>१०</sup> ॥११॥ त्तिवेमि॥

छाया-एव कुर्वन्ति सम्बुद्धाः, पण्डिताः प्रविचक्षणाः ॥

विनिवर्त्तन्ते भोगेभ्यो, यथा स पुरुषोत्तमः ॥ ११ ॥ इति ब्रवीमि ॥

सान्त्वयार्थः-संवुद्धा=सत् असत् के विवेकी पंडिया=विषयदोषोंके ज्ञाता पवि-  
यक्खणा=आगमके मर्मज्ञ पुरुष एव=ऐसा ही करति=करते हैं, (वे) भोगेसु=  
भोगोंसे विणियट्टति=निवृत्त होजाते हैं, जहा=जैसे से=वह पुरिसुत्तमो=पुरु-  
षोंमें श्रेष्ठ (रथनेमि विषयोंसे निवृत्त हो गया) त्तिवेमि=(पूर्ववत्) । भावार्थ-  
जो विवेकी होते हैं वे विषयोंके दोषोंको जानकर उनका परित्याग कर देते हैं,  
जैसे रथनेमिने परित्याग कर दिया था ॥ ११ ॥

॥ इति द्वितीयाभयनस्य सान्त्वयार्थः ॥ २ ॥

टीका-सम्=सम्यग् बुद्धाः=बोध प्राप्ताः हेयोपादेयज्ञानसम्पन्ना इत्यर्थः, सम्बु-  
द्धत्वमेव विशेषयति-‘पण्डिताः प्रविचक्षणाः’ इति विशेषणाभ्याम् । तत्र पण्डिताः=  
विषयप्रवृत्तिदोषज्ञा, प्रविचक्षणाः=विचक्षणश्रेष्ठा. आगममर्मवेदिनः प्राप्तचरण-  
परिणामा वेत्यर्थः, एव=तथा कुर्वन्ति=समाचरन्ति । किं समाचरन्तीत्याह-  
‘विणियट्टति भोगेसु’ इति, भोगेभ्यः=विषयेभ्यः. विनिवर्त्तन्ते=उपरता भवन्ति,  
यथा स=रथनेमि, पुरुषोत्तम =पुरुषेषु श्रेष्ठः ।

उपसहार-‘एव करति०’ इत्यादि ।

हेय और उपादेय वस्तुओंको सम्यक् प्रकार समझनेवाले संबुद्ध,  
विषयोंमें प्रवृत्तिके दोषोंके ज्ञाता, आगमके रहस्यको जाननेवाले अथवा  
चारित्रके फलको प्राप्त करनेवाले प्रविचक्षण मुनिजन ऐसे ही करते हैं,

उपसहार-एव करति० इत्यादि

हेय अने उपादेय वस्तुओंके सम्यक् प्रकार समझना संबुद्ध, विषयोंमें  
प्रवृत्तिना दोषोंका ज्ञाता, आगमका रहस्यके ज्ञानकारा अथवा चारित्रका ज्ञानके  
प्राप्त करनेवाले प्रविचक्षण मुनिजनोंके समूह के उरे छे, अर्थात् योगेशी निवृत्त

ननु कथमसौ पुरुपोत्तमो यो गृहीतसयमो भ्रातृजायामचीकमत ? उच्यते—  
त्रिचित्रा खलु कर्मणा गतिः, गृहीतसयमस्यापि रथनेमेश्चेतसि विषयवासना  
मोहनीयरुमोदयत्रशादुद्बुद्धा, परन्तु वैराग्यचारिधाराधरेण राजीमतीवचनेन  
यदा विषयवलयदावानलजनिततापऋत्विलितो म्लानतामापन्नो रथनेमिचेतस्तरः  
सेचितस्तदैव पुनरसौ सयमामृतरसास्वादनपरो विषयद्विषयविधिदोषाकलनेन

अर्थात् भोगोंसे निवृत्त होते हैं जैसे कि—पुरुषोंमें उत्तम रथनेमिने  
भोगोंकी निवृत्ति की।

प्रश्न—जिन्होंने सयम लेकर भी विषयवासनामें लीन होकर परम  
अनुचित जो कि गृहस्थभी नहीं करता ऐसी साक्षात् अपने-भाईकी  
भार्यापर कुदृष्टि करके भोगोंकी प्रार्थना की, विषयभोगोंकी डच्छामात्र  
भी करना चारित्र्यको मलिन करनेवाला और आत्माको दुर्गतिदाता है  
तो फिर भगवानने विषयानुरागी रथनेमिको पुरुषोंमें उत्तम कैसे कहा ?

उत्तर—कर्मोंकी गति विचित्र होती है, मोहकर्मके उदयसे यद्यपि  
विषयभोगकी अभिलाषा हुई तो भी विषयरूपी दावानलसे उत्पन्न  
सतापसे सतप्त हो मुरझाया हुआ रथनेमिका चित्त-रूपी वृक्ष वैराग्य-  
रसकी बरसा करनेवाले राजीमतीजीके वचनरूपी मेघसे सींचे जाने पर  
शीघ्रही सयमरूप अमृतरसके आस्वादनमें तत्पर होगया। 'विषय परम  
कटुक फल देनेवाले और आत्माको चतुर्गतिमें परिभ्रमण करानेवाले हैं'

थाय छे, के लेवी रीते पुत्र्येभा उत्तम रथनेमिछे लोगेनी निवृत्ति करी

प्रश्न—जेभे सयम लज्जे पण विषयवासनामा लीन थधने परम अनु  
चित्त-डोळ गृहस्थ पण न करे जेवी, साक्षात् पोताना भाईनी भार्या पर कुदृष्टि  
करीने लोगेनी प्रार्थना करी, विषयलोगेनी छच्छा मात्र पण चारित्र्यने मलिन  
करनारी अने आत्माने दुर्गति हेनारी छे, तो पछी भगवाने तेवा विषयानुरागी  
रथनेमिने पुत्र्येभा उत्तम केवी रीते कछ्यो ?

उत्तर—कर्मोंकी गति विचित्र होय छे मोहकर्मना उदयथी जे के विषयलोगेनी  
अभिलाषा उत्पन्न थध, तोपण विषयरूपी दावानलथी उत्पन्न थजेला सतापथी  
सतप्त थज्जे जेभान जनेला रथनेमिनु चित्तरूपी वृक्ष, वैराग्य रसनी वृष्टि कर  
नारा राज्यभतीना वचनरूपी मेघथी सिंचित थता पछी, तुरतर सयमरूपी  
अमृतरसनु आस्वादन करवाभा तत्पर जनी ज्यु 'विषये अत्यंत कडवा फल  
हेनारा अने आत्माने चतुर्गतिमा परिभ्रमण करानारा छे' जे प्रकारनी परग

શાન્તિમુપગતઃ પરમદુઃશરતપઃસેવનપરાયણો ઘટિતિ વખૂવેતિ ત્રિપયસાનિત્યેઽપિ ચિત્તનિગ્રહકારિત્વેન ઘટિતિ ત્રિપયોપરતત્વેન ચ પુરુષોત્તમત્વ તસ્ય નિર્ગાધમેવેત્યલ પલ્લવિતેન ।

ન આધુનિકરથનેમેરુદાહરણોપલભ્માદિદ દશવૈકાલિકમૂઝમનિત્ય સ્યાદિતિ વાચ્યમ્, પર્યાયાર્થિકનયમપેક્ષ્યાઽનિત્યત્વેઽપિ દ્રવ્યાર્થિકનયાપેક્ષયા નિત્યત્વાત્ ।

હસ પ્રકારકી પરમ વૈરાગ્યભાવના દ્વારા, ઇકાન્ત સ્થાનમેં વિષયકા સાન્નિધ્ય રહનેપર મી હન્દ્રિય નિગ્રહ કરકે વિષયોંકો વિપતુલ્ય સમઘ્ન કર તત્કાલ ત્યાગ દિયા ઓર ઉગ્ર તપ-સયમકો પાલન કિયા, ઇસલિયે ભગવાને ઉન્હે પુરુષોમેં ઉત્તમ કહા હૈ ॥

પ્રશ્ન—હે ગુરો ! પ્રવચન અનાદિ ઓર નિત્ય હૈ, કયોંકિ આચારાગ આદિ ચત્તીસોં શાસ્ત્ર અનાદિકાલસે ચલે આતે હૈ, ઓર યહ દશવૈકાલિક સૂત્ર મી ઉન્હો ચત્તીસોંમેં હૈ તો આધુનિક રથનેમિ ઓર રાજીમતીકા ઉદાહરણ આનેસે તો યહ સાદિ ઓર અનિત્ય સિદ્ધ હોતા હૈ ।

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! પર્યાયાર્થિક નયકી અપેક્ષાસે પ્રત્યેક પદાર્થ અનિત્ય હૈ, ઇસી નયકી અપેક્ષા દશવૈકાલિક મી અનિત્ય હૈ, કિન્તુ દ્રવ્યાર્થિક નયકી અપેક્ષાસે ચહ નિત્ય હૈ । અર્થાત્ દશવૈકાલિકમે પ્રરૂપિત મુનિકા આચાર સર્વજ્ઞોક્ત હૈ । સબ સર્વજ્ઞોંકા કયન ઇકહીસા હોતા હૈ । જિસ આચારકા પ્રરૂપણ ચરમ તીર્થકર શ્રીમહાવીરસ્વામીને

વૈરાગ્યભાવના દ્વારા ઇકાન્ત સ્થાનમા વિષયનુ સાન્નિધ્ય હોવા છતા પશુ ઇન્દ્રિય નિગ્રહ કરીને વિષયોને વિપતુલ્ય સમઘ્નને તત્કાળ ત્યજી દીધા અને ઉગ્ર તપ સયમનુ પાલન કર્યુ, તેથી ભગવાને તેમને પુરુષોમા ઉત્તમ કહ્યા છે

પ્રશ્ન—હે ગુરો ! પ્રવચન અનાદિ અને નિત્ય છે કારણ કે આચારાગ આદિ ઇત્રીસે શાસ્ત્ર અનાદિકાળથી આટલા આવે છે અને આ દશવૈકાલિક સૂત્ર પશુ એ ઇત્રીસમાનુ જ છે, તો આધુનિક રથનેમિ અને રાજીમતીનુ ઉદાહરણ આવવાથી તો એ સૂત્ર સાદિ અને અનિત્ય સિદ્ધ થાય છે

ઉત્તર—હે ! શિષ્ય પર્યાયાર્થિક નયની અપેક્ષાથી પ્રત્યેક પદાર્થ અનિત્ય છે એ નયની અપેક્ષાએ દશવૈકાલિક પશુ અનિત્ય છે પરન્તુ દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાથી તે નિત્ય છે અર્થાત્ દશવૈકાલિકમા પ્રરૂપેલો મુનિકો આચાર સર્વજ્ઞોક્ત છે ઇધા સર્વજ્ઞોનુ કથન એકસરખુ જ હોય છે જે આચારનુ પ્રરૂપણ ચરમ તીર્થકર શ્રી મહાવીર સ્વામીએ કર્યુ છે તેની જ પ્રરૂપણા અનાદિ કાળથી ઇધા

‘इति ब्रवीमि’ इति पूर्ववत् ॥ इति गाथार्थः ॥ ११ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्ब्रह्म-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-  
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध-गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-  
श्रीशाहूऽऽनपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूषित-  
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-  
पूज्य-श्रीघासीलालप्रतिविरचिताया श्रीदशवैकालिकसूत्र-  
स्याऽऽचारमणिमञ्जूपाख्याया व्याख्याया द्वितीय  
श्रामण्यपूर्वकाख्यमध्ययन समाप्तम् ॥ २ ॥



किया है उसीकी प्ररूपणा अनादिकालसे सब सर्वज्ञ करते आये है अत एव  
द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे यह दशवैकालिक अनादि और नित्य है। ११।

इति हिन्दीभाषानुवादमें श्रामण्यपूर्वकाख्य  
द्वितीय अध्ययन समाप्त हुआ ॥२॥



सर्वज्ञो करता आया छे अटवे द्रव्यार्थिक नयनी अपेक्षार्थी आ दशवैकालिक  
अनादि अने नित्य छे (११)

इति ‘श्रामण्यपूर्वक’ नामना थील अध्ययननु  
गुजराती-भाषानुवाद समाप्त (२)



કોડ્પ્યાત્મીય ઇતિ, રાગાદયશ્ચ જીવમૃગવાગુરાયમાણત્વાન્મહાશત્રવ ઇત્યહો ! શત્રુ-  
હસ્તગતોઽહ સ્વકીયાઽભ્યુદયનિઃશ્રેયસસાધનાક્ષમઃ સજાતોઽસ્મિ, ધિહ્ મામ્ ।  
ઉક્તશ્ચ—

“ઇહ હિ મધુરગીત નૃત્યમેતદ્રસોઽય,  
સ્ફુરતિ પરિમલોઽય સ્પર્શ ઇપોઽન્નનાનામ્ ।

ઇતિ હતપરમાર્થે-રિન્દ્રિયૈર્ભ્રામ્યમાણઃ,

સ્વહિતકરણધૂર્તૈઃ પશ્ચભિર્વશ્ચિતોઽસ્મિ ॥૧૧॥” ઇતિ,

ઇવધિવિવિધભાવનાભિઃ સર્વથા રાગાદિતો મુક્તાઃ વિપ્રમુક્તાસ્તેપામ્,

કર શુક્રી હૈ, વાસ્તવમેં સસારમેં કોઈં બી મેરા નહીં હૈ । યહ રાગાદિ દોષ, જીવરૂપી હરિણકે લિષ વ્યાધકે સમાન હોનેકે કારણ મહાન્ શત્રુ હૈ । ઁદ હૈ કિ મે ઉન વૈરિયોંકે વશમે પડકર અપને પરમ અભ્યુદય-સ્વરૂપ મોક્ષકે સાધનમેં બી અસમર્થ હોગયા હું મુક્તે ધિક્કાર હૈ । કહા બી હૈ—

“કૈસા કર્ણમધુર ગીત હૈ, કૈસા નેત્રોંકો લુભાનેવાલા નૃત્ય હૈ, કૈસા જિહ્વાકા પ્રિય સ્વાદ હૈ, કૈસા નાસિકાકો આકર્ષિત કરનેવાલા સુગન્ધ હૈ ઓર સ્ત્રી આદિકા સ્પર્શ કૈસા સુખકારી હૈ । ઇસ પ્રકાર અનુ-ભવ કરાકર પરમાર્થકા સત્યાનાશ કરનેવાલી અપના સ્વાર્થ સાધનેમે ધૂર્ત ઇન દગાવાજ પાચોં ઇન્દ્રિયોંને હાય ! મેરી આત્મિક-સમ્પત્તિસે મુક્તે વચિત કર દિયા—મુક્તકો લૂટ લિયા ॥૧૧॥”

ઇસ પ્રકારકી ભાવનાઓં દ્વારા રાગ આદિ શત્રુઓસે સર્વથા મુક્ત

ઓને અનુભવ કરી ચૂકયો છે વાસ્તવમા સસારમા કોઈપણ ભાડ નથી, આ રાગાદિ દોષ જીવરૂપી હરણને માટે વ્યાધ ( પારધી ) ની સમાન હોવાને કારણે મહાન્ શત્રુ છે, ખેદની વાત છે કે હુ ઁ વેરીઓને વશ પડીને પોતાના પરમ અભ્યુદય સ્વરૂપ મોક્ષના સાધનમા પણ અસમર્થ ણની ગયો છુ, મને ધિક્કાર છે કહુ છે કે—

“કેલુ કર્ણમધુર ગીત છે, કેલુ નેત્રોને લોભાવનાડ નૃત્ય છે, કેલો જિહ્વાને પ્રિય સ્વાદ છે, કેલો નાકને આકર્ષિત કરનાર સુગન્ધ છે, અને સ્ત્રી આદિને સ્પર્શ કેલો સુખકારી છે, ઁ પ્રમાણે અનુભવ ઠરાવીને પરમાર્થનું સત્યાનાશ વાળનારી પોતાને સ્વાર્થ સાધવામા ધૂર્ત ઁ દગાવાજ પાચે ઇન્દ્રિયોંને, હાય ! મને મારી આત્મિક-સમ્પત્તિથી વચિત કરી નાખ્યો—મને લુટી લીધો ” (૧)

ઁ પ્રકારની ભાવનાઓ દ્વારા રાગાદિ શત્રુઓથી સર્વથા મુક્ત થનારા,

त्रायिणाम्=त्राण=स्वस्य परस्योभयस्य च रक्षण त्रायः, सोऽस्त्येपामिति त्रायिणः, प्रत्येकजुद्धाः स्वस्य, तीर्थङ्कराः परस्य, स्थविरा उभयस्येतीमे सर्वे त्रायिण उच्यन्ते । निर्ग्रन्थाना=बाह्याऽऽभ्यन्तरपरिग्रहरूपाद् ग्रन्थान्निर्गताः निर्ग्रन्थास्तेषाम् । महर्षीणाम्=महान्तश्च ऋषय इति महर्षयस्तेषाम्, यद्वा 'महर्षीणाम्' इतिच्छाया, महः=जन्मजरामरणदुःखरहितत्वेनैकान्तोत्सवरूपो मोक्षस्तम् ऋषयः=गत्यर्थधातूना प्राप्त्यर्थत्वात् प्राप्नुवन्तीत्येवशीला महर्षिणस्तीर्थङ्करगणधरादयस्तेषाम्, एतत्=द्वापञ्चाशता भेदैर्वक्ष्यमाणम्, अनाचीर्णम्=अनासेवितम्, अस्तीति शेषः । अत्र महर्षिणामित्यन्तेषु कर्तुः शेषत्वविषया पृष्ठी । यतः सयमे सुस्थितात्मानोऽत एव विप्रमुक्ताः, यतो विप्रमुक्ता अतस्त्रायिणः, यतस्त्रायिणोऽतो निर्ग्रन्थाः, यतो निर्ग्रन्था अतो महर्षयः, इति यथोत्तर पूर्व-पूर्वस्य हेतुत्वेन भवति विशेषणसगतिरिति बोद्धव्यम् ।

१ अत्र 'अत इनिठना'-विति मत्वधीय इनि, तान्त्रील्यणिनिस्तु न, तस्य सुप्रन्तपूर्वपदकत्व एव प्रवृत्तेरिति वयम् ॥

होनेवाले, ससारभ्रमणसे भयभीत भव्य जीवोंकी तथा आत्माकी रक्षा करनेवाले, बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहरूपी ग्रन्थिसे रहित, महान् ऋषि-तीर्थकर आदि या जन्म-जरा-मरणके दुःखोंसे रहित होनेके कारण एकान्त आनन्दस्वरूप मोक्षको प्राप्त करनेवाले मुनियोंके, आगे कहेजाने वाले वाचन अनाचार (अनाचीर्ण) हैं । अर्थात् ये वाचन अनाचार मुनियोंके सेवने योग्य नहीं हैं । यहाँ पृष्ठी विभक्तिवाले अनेक विशेषण दिये गये हैं, उन सबमें पहले के विशेषण कारण हैं और आगे आगे के कार्य हैं । जैसे-सयममें भली भाँति स्थित होनेके कारण विप्रमुक्त हैं,

ससार भ्रमणधी भयभीत लव्य लुवोनी तथा आत्मान्नी रक्षा करनेवाले, बाह्य अने आन्तर परग्रहणधी अधिधी रहित, महान् ऋषि तीर्थकर आदि, या जन्म जरा मरणना दुःखधी रहित होवाने कारणे अनेकान्त आनन्दस्वरूप मोक्षने प्राप्त करनेवाले मुनियोंने भाटे, आगण कहेवाला वाचनना वाचन अनाचार (अनाचीर्ण) है अर्थात् ये वाचन अनाचार मुनियोंने सेवना योग्य नहीं अर्धी छड़ी विलकितवाणा अनेक विशेषणो आपवाभा आल्या है, ये अधाभा पडेला-पडेलाना विशेषणु करणु है अने पछी पछीना कार्यु है जेभडे-सयमभा सारी रीते स्थित होवाने कारणे विप्रमुक्त है, विप्रमुक्त होवाधी स्व परना त्राता



નન્વેતાવ્રતા 'યન્નમહાપુરુષૈરનાચીર્ણં તત્તદનાચરણીય, યન્નચ્ચાચીર્ણં તત્તદા-  
ચરણીયમેવેત્યાયાત તત્તશ્ચ તીર્થઙ્કરાર્થં ઘુરસમ્પાદિતૈરઘ્ણિધમહાપ્રાતિહાર્યૈસ્તીર્થઙ્કરા  
યુક્તા' इति वयमप्यस्मदर्थं सम्पादितैः कथं न युक्ता भवेमेति चेद् ? भ्रान्तोऽसि,  
ते हि वीतरागत्वात् कल्पातीताः, वयं तु कल्पस्थिता इति, कल्पातीतानां तेषां  
जिनेश्वराणामष्टमहाप्रातिहार्याणि तीर्थङ्करगोत्रनामप्रकृत्युदयमहिम्ना प्रतिभासि-  
तानि भवन्ति, न तु तानि घुरैः सपाद्यन्ते, अत एव औपपातिकसूत्रे—

“ आगासगण चक्रेण आगासगण छत्तेण आगासियाहिं चामराहिं ”  
इत्यस्य व्याख्यायाम्—

विप्रमुक्त होनेसे स्व-पर के घ्राता (रक्षक) हैं, घ्राता होनेसे निर्ग्रन्थ हैं,  
निर्ग्रन्थ होनेसे महर्षि हैं ।

શક્કા—इस गाथासे यह तात्पर्य निकला कि महापुरुषोंने जिस जिस  
का आचरण नहीं किया वह वह अनाचरणीय है, उन्होंने जिस जिसका  
आचरण किया वे सब आचरण करने योग्य है, यदि ऐसा ही है तो  
तीर्थङ्कर भगवान् देवनिर्मित आठ महाप्रातिहार्योंसे युक्त होते हैं  
इसलिए हम भी हमारे लिए बनाये हुए पदार्थोंसे युक्त क्यों न हों ?

समाधान—हे वत्स ! ऐसा नहीं है, क्योंकि वे वीतराग होनेसे  
कल्पानीत है, और हम कल्पस्थित हैं, इसलिए उन कल्पानीत जिनेश्वरों  
के तीर्थङ्करगोत्र नाम-प्रकृतिके उदयकी महिमासे अष्ट महाप्रातिहार्य  
केवल भासित होते हैं किन्तु देवताओंसे समर्पित नहीं किये जाते,  
अत एव औपपातिक सूत्रके “आगासगण चक्रेण” इत्यादि पदोंकी

(रक्षक) છે, ઘ્રાતા હોવાને કારણે નિર્ગ્રન્થ છે, નિર્ગ્રન્થ હોવાને લીધે મહર્ષિ છે

શક્કા—આ ગાથામાંથી એ તાત્પર્ય નીકળ્યું કે—મહાપુરુષોએ જેનું જેનું  
આચરણ નથી કર્યું છે તે અનાચરણીય છે, અને તેમણે જેનું જેનું આચરણ  
કર્યું તે બધું આચરણ કરવા યોગ્ય છે એ એમ છે તે તીર્થંકર ભગવાન્ દેવ  
નિર્મિત આઠ મહાપ્રાતિહાર્યોથી યુક્ત હોય છે, તેમ આપણે પણ આપણા માટે  
બનાવેલા પદાર્થોથી યુક્ત કેમ ન થવું ?

સમાધાન—હે વત્સ ! એમ નથી, કારણ કે તે વીતરાગ હોવાથી કલ્પાતીત છે,  
અને આપણે કલ્પસ્થિત છીએ એ કલ્પાતીત જિનેશ્વરોના તીર્થંકર-ગોત્ર-નામ  
પ્રકૃતિના ઉદયના મહિમાથી આઠ મહાપ્રાતિહાર્ય કેવળ ભાસિત થાય છે, પરંતુ  
દેવતાઓ તરફથી સમર્પિત થતા નથી, એટલે ઔપપાતિક સૂત્રના આગાસગણ

“आगासगण चक्रेण”-ति आकाशवर्तिना चक्रेण=उर्मचक्रेण, ‘आगासगण छत्रेण’-ति छत्रत्रयेण ‘आगासियाहि’-ति, आकाशम्=अम्बरम् इताभ्या=प्राप्ताभ्याम् आर्कपिताभ्या वा=आकृष्टाभ्यामुत्पाटिताभ्यामित्यर्थः, ‘चामराहि’-ति चामराभ्या प्रकीर्णकाभ्या प्राकृतत्वाच्च लिङ्गव्यत्ययः, ‘लक्षितः इति सर्वत्र गम्यम्” इत्युक्तम् ।

अत्र ‘लक्षितः’ इत्युक्त्याऽन्यकृत इति स्पष्ट निराक्रियते, यथा-अर्द्धमागध-भाषया प्रवृत्ताऽपि तीर्थङ्कराणां समवसरणगतानां देवानां मनुष्याणां तिरश्चा च स्व-स्व-भाषानुरूपा प्रतिभाति किन्तु न सा तादृशी, तस्मादस्मादृशा तदसदृशा तदुक्तरूप एव स्थातव्य, न तु तथाऽनुरणीयमिति दिक् इति गाथार्थः ॥ १ ॥

अनाचीर्णान्याह-‘उद्देशियं’ इत्यादि,

व्याख्यामें कहा है-“आकाशस्थित चक्र, छत्र और चामरोंसे भगवान् लक्षित होते हैं” । यहाँ पर ‘लक्षित’ ऐसा कहनेसे साफ़ यह दिखलाया गया है कि-औरोंको छत्र चामरादिसे युक्त भगवान् लक्षित होते हैं किन्तु वे चक्र-छत्रादि अन्य-(देव)-कृत नहीं हैं । जैसे अर्द्धमागधी-भाषारूप भी तीर्थङ्कर की वाणी, समवसरणमें आये हुए देव मनुष्य तीर्थचोंकी अपनी अपनी भाषाके स्वरूपमें ही प्रतीत होती है किन्तु वस्तुतः वह वैसी नहीं है, अत एव उन कल्पातीतोंकी तुलनामें नहीं पहुँचे हुए हम छद्मस्थोको तो उनके कहे हुए कल्पमें ही रहना चाहिए, न कि उनका अनुकरण करना चाहिए ॥१॥

अथ (५२)-अनाचीर्णोंको दिखलाते हैं-‘उद्देशियं’ इत्यादि ।

चक्रेण इत्यादि पढ़ेना व्याख्यानमा कथुं छे के- “आकाशस्थित चक्र, छत्र अने आभरेथी भगवान् लक्षित थाय छे” अर्द्धी ‘लक्षित’ कहेवाथी ओम साइ साइ गतांशु छे के-पील्लओने छत्र आभरादि युक्त भगवान् लक्षित थाय छे, परतु ते चक्र-छत्रादि अन्य (देव) कृत नहीं होता नेम अधर्मागधीभाषाएप पणु तीर्थङ्करनी वाणी समवसरणमा आवेला देव-मनुष्य-तिर्थेथाने पोलपोतानी भाषाना स्वरूपमा न प्रतीत थाय छे, किन्तु वस्तुतः ते तेवी नहीं होती ओटले ओ कल्पातीतोनी तुलनामा नहि पडोथेला आपणु छद्मस्थोओ तो ओमणु कहेला कल्पमा न रहेणु ओधओ, नहि के तेमनु अनुकरण करणु ओधओ (१)

इवे (५२)-अनाचीर्णों दृशावे छे-उद्देशियं इत्यादि

मूलम्—उद्देशिय<sup>१</sup> कीयगड<sup>२</sup>, नियागमभिहडाणि<sup>३</sup> य<sup>४</sup>।

राइभत्ते<sup>५</sup> सिणाणे<sup>६</sup> य, गधमल्ले<sup>७</sup> य वीयणे<sup>८</sup> ॥२॥

छाया—औद्देशिक क्रीतकृत, नियागमभ्याहृतानि च ।

रात्रिभक्त स्नान च, गन्ध-माल्ये च वीजनम् ॥ २ ॥

सान्वयार्थः—(१) उद्देशिय=औद्देशिक-किसी एक साधुके लिए बनाया हुआ आहार (२) कीयगड=साधुके लिए खरीदा हुआ आहार (३) नियाग=निमंत्रणसे ग्रहण किया हुआ आहार (४) अभिहडाणि=सामने लाकर दिया हुआ आहार (५) राइभत्ते=रात्रिभोजन (६) सिणाणे=स्नान य=और (७) गध=चन्दनादिलेप (८) मल्ले=पुष्पादिमाला (९) वीयणे=पखा ॥ २ ॥

टीका—औद्देशिकम्=उद्देशनमुद्देशस्तत्र भव तत्प्रयोजनमस्येति वा औद्देशिक-साध्वादिकमुद्दिश्य निष्पादितमित्यर्थः (१),

क्रीतकृत=क्रीतेन=क्रीयणेन कृत=सम्पादित साधुकृते मूल्येन गृहीतमिति यावत् ( २ ),

(१) औद्देशिक, (२) क्रीतकृत, (३) नियाग, (४) अभ्याहृत, (५) रात्रिभोजन, (६) स्नान, (७) गन्ध, (८) माल्य, (९) पखा चलाना ।

(१) साधु आदिके लिए जो आहार बनाया जाता है उसे औद्देशिक कहते हैं ।

(२) साधुके लिए मूल्य देकर जो आहारादि खरीद किया गया हो उसे क्रीतकृत कहते हैं ।

(१) औद्देशिक, (२) क्रीतकृत, (३) नियाग, (४) अभ्याहृत, (५) रात्रिभोजन, (६) स्नान, (७) गध, (८) माल्य, (९) पखा चलाना ।

(१) साधु आदिने भाटे ने आहारादि बनाववामा आव्ये होय तेने औद्देशिक कहे छे

(२) साधुने भाटे मूल्य अर्थानि ने आहारादि खरीद करवामा आवेल होय तेने क्रीतकृत कहे छे

नियाग-नि=निरतिगयो यागो निमन्त्रणादिरूपः सस्कारो यस्मिँस्तत्-आम-  
न्त्रितपिण्डस्य कदाचिदपि ग्रहणम्, अनामन्त्रितस्य नित्यग्रहणमिति भावः (३),

अभ्याहृतानि=स्व-पर-ग्राम-गृहादिभेदभिन्नानि साधुनिमित्त सम्मुखमानीय  
दत्तानि, बहुवचन सर्वेषामेवाऽभ्याहृतानामनाचीर्णत्वस्यापनार्थम् (४),

रात्रिभक्त=रात्रिभोजन रात्र्यादिगृहीत भक्त वा (५), स्नान=प्रसिद्धम् (६),

गन्धमाल्ये-गन्धः=चन्दन-केतकादिसौरभम् (७)-

माल्य=पुष्पादिमाला, तयोरितरेतरयोग इति गन्ध-माल्ये (८),

(३) गृहस्थकानिमन्त्रण पाकर कभी भी आहार लेना अथवा प्रतिदिन  
एक ही घरसे आहार लेना नियागपिण्ड है ।

(४) अपने गाँवसे पर गाँवसे अथवा घरसे साधुके सामने लाया  
हुआ आहार अभ्याहृत पिण्ड है ।

अभ्याहृतके लिए गाथामे बहुवचन आया है उसका यह अभिप्राय है  
कि जितनेभी अभ्याहृत (सामने लये हुये) है वे सभी अनाचार है ।

(५) रात्रिमे आहार लेना, दिनमे लेकर रात्रिमें खाना आदि रात्रि-  
भक्त है (६) देशतः सर्वतः स्नान करनेको स्नान-अनाचार कहते हैं ।

(७-८) चन्दन केतक अतर आदिकी सुगन्ध तथा फूलमाला आदिका  
सेवन करना गन्ध-माल्य-अनाचार है ।

(३) गृहस्थानु निमन्त्रण भेजनीने केधवार पशु आहार लेवो अथवा प्रति  
दिन ओकर घरथी आहार लेवो ओ नियागपिंड कडेवाय छे

(४) पोताना गाभथी, परगाभथी अथवा घरथी साधुनी सामे लाववाभा  
आवेला आहार अभ्याहृत-पिंड कडेवाय छे

अभ्याहृतने माटे गाथामा गहुवचन आओयु छे तेना ओ डेतु छे के-  
केटला अभ्याहृत (सामे लावेला) डेय ते गंधा अनाचार छे

(५) रात्रे आहार लेवो, दिनमा लधने रात्रे आवो, धन्यादि रात्रि लकत  
कडेवाय छे (६) देशथी (थोडे भागे) सर्वथी (आगे शरीरे) स्नान करवु ओ  
स्नान अनाचार कडेवाय छे

(७-८) चन्दन, केवडो, अतर आदिनी सुगंध तथा फूल माला आदिनु  
सेवन करवु ओ गंध माल्य अनाचार कडेवाय छे

तथा वीजन=श्रीष्मादिऋतौ तालवृन्तादिना वातादिसञ्चालनम् (९),  
अत्राऽऽरम्भादयो दोषा जायन्त इति स्वयमग्रन्तव्यम् । औद्देशिकक्रीतकृ-  
तयोः स्वरूप समपञ्च पञ्चमाध्ययने रक्ष्यते ॥ २ ॥

मूलम्—सनि<sup>१०</sup>ही गिहि<sup>११</sup>मत्ते य, राय<sup>१२</sup>पिंडे किमि<sup>१३</sup>च्छए ।

सवा<sup>१४</sup>हणा दत्त<sup>१५</sup>पहोयणा य, सपु<sup>१६</sup>च्छणा देह<sup>१७</sup>पलोयणा य ॥३॥  
(छाया)—सनिधि-गृहमत्र च, राजपिण्डः किमिच्छकः ।

सवाहन दन्तप्रधानं च, सप्रच्छन्न देहप्रलोकनं च ॥३॥

सान्वयार्थः—(१०) सनिही=रात्रिमें आहार आदिका सचय (११) गिहि-  
मत्ते=गृहस्थके पात्रमें भोजन करना य=और (१२) रायपिंडे=राजाके लिए  
वनाया हुआ आहार (१३) किमिच्छए=दानशाला या अन्नक्षेत्र आदिका आहार  
(१४) सवाहणा=शरीरकी मालिश करना (१५) दत्तपहोयणा=दात माजना  
य=और (१६) सपुच्छणा=गृहस्थसे कुशलप्रश्न पूछना य=और (१७) देह-  
लोयणा=दर्पण या जलमें मुख आदि देखना ॥३॥

टीका—सनिधीयते=सम्यक्तया नितरा स्थाप्यते नरकादिष्वात्माऽनेनेति  
सनिधि.=सभवादत्र घृतादिसञ्चयकरणम् (१०),

(९) श्रीष्मादि कालमे पत्रा चलाना यह व्यजन-अनाचार है ।

इनसे आरम्भ आदि दोष होते हैं सो स्वयं समझना चाहिये ।  
औद्देशिक और क्रीतकृतका विस्तारपूर्वक विवेचन पाचवें अध्ययनमें  
किया जायगा ॥२॥

(१०) सनिधि जिस अनाचारका सेवन करनेसे आत्मा नरकादि  
कुगतियोंमें गिरती है अर्थात् घृत औषध आदिका रात्रिमें वासी  
रखना सनिधि अनाचार है ।

(९) श्रीष्मादि कालमा पत्रो अलापवो अये व्यजन-अनाचार छे

अथी आरभ आदि दोष लागे छे ते पोतेज्ज समज्जु जेधअये औद्देशिक  
अने क्रीतकृतनु विस्तारपूर्वक विवेचन पाचमा अध्ययनमा करवाता आवशे (२)

(१०) सनिधि-अनाचारनु सेवन करवाता आत्मा नरकादि दुर्गतिमा  
पठे छे, अर्थात् घी ओसड आदि रात्रे वासी राखवा ते सनिधि-अनाचार छे

ગૃહ્યમત્ર=ગૃહિણા=ગૃહસ્થાનામ્ અમત્ર=પાત્ર પ્રસગાદત્ર તસ્મિન્નભ્યવહરણાદિ (૧૧),  
 રાજપિણ્ડ:=રાજાર્થં નિષ્પન્નાઽઽહારઃ (૧૨),  
 કિમિચ્છકઃ='કઃ કિમિચ્છત્યાહારાદિક' -મિત્યેવ વૃચ્છચતે યસ્મિન્ કર્મણિ  
 તત્, અન્નસત્ર-(સદાત્રત)-શાલાદિત આહારાદિગ્રહણમિત્યર્થ (૧૩),  
 સવાહનમ્=અસ્થ્યાદિમુખવિશેષજનક તૈલાદિના શરીરસમર્દનમ્ (૧૪),  
 દન્તપ્રધાવન=દન્તમાર્જનમ્ (૧૫),  
 સપ્રચ્છન=ગૃહસ્થ પ્રતિ કુશલાદિરૂપસાવચપ્રશ્નકરણમ્ (૧૬),  
 દેહપ્રલોકન=જલદર્પણાદિપુ મુખાદિનિરીક્ષણમ્ (૧૭),  
 ચકારાઃ સમુચ્ચયાર્થાઃ । સન્નિયાદિપુ પરિગ્રહાદયો દોષાઃ પ્રતીતાઃ ॥૩॥

(૧૧) ગૃહ્યમત્ર-ગૃહસ્થકે પાત્રમે આહાર આદિ કરના ગૃહ્યમત્ર હૈ ।  
 (૧૨) રાજપિણ્ડ-રાજાકે લિપ્તવનાયાદૃઆ આહાર લેના રાજપિંડ હૈ ।  
 (૧૩) કિમિચ્છક-જિસમે યહ વૃઞ જાતા હૈ કિ કૌન ક્યા  
 યાહતા હૈ ? અર્થાત્ દાનશાલા (સદાત્રત) આદિસે આહાર લેના  
 કિમિચ્છક હૈ ।

(૧૪) સવાહન-અસ્થિ, માસ, ત્વચા, રોમકો આનન્દદાયક ચાર  
 પ્રકારકા મર્દન કરના સવાહન હૈ । (૧૫) દન્ત-પ્રધાવન-દાત ધોના ।

(૧૬) સપ્રચ્છન-ગૃહસ્થસે કુશલ આદિ રૂપ સાવચ પ્રશ્ન પુઞના ।

(૧૭) દેહપ્રલોકન-જલમે અથવા દર્પણ આદિમે અપના મુખ આદિ  
 દેખના । સન્નિધિ આદિમે પરિગ્રહાદિ દોષ પ્રસિદ્ધ હૈ ॥૩॥

(૧૧) ગૃહ્યમત્ર-ગૃહસ્થના પાત્રમા આહાર આદિ કરવો તે ગૃહ્યમત્ર  
 કહેવાય છે

(૧૨) રાજપિંડ-રાજાને માટે ણનાવેલો આહાર લેવો તે રાજપિંડ છે

(૧૩) કિમિચ્છક-એમા એ પૂછવામા આવે છે કે કોને શુ જોઈએ છે ?  
 અર્થાત્ દાનશાલા (સદાત્રત) આદિ પાસેથી આહાર લેવો તે કિમિચ્છક કહેવાય છે

(૧૪) સવાહન-અસ્થિ, માસ, ત્વચા, રોમને આનન્દદાયક ચાર પ્રકારનું  
 મર્દન કરવું એ સવાહન છે (૧૫) દન્તપ્રધાવન-દાત ધોવા

(૧૬) સપ્રચ્છન-ગૃહસ્થને કુશળ આદિ રૂપ સાવચ પ્રશ્નો પૂછવા

(૧૭) દેહપ્રલોકન-જલમા અથવા દર્પણુ આદિમા પોતાનું મુખ આદિ  
 જોવા, સન્નિધિ આદિમા પરિગ્રહાદિ દોષ પ્રસિદ્ધ છે (૩)

૧૮  
મૂલમ્-અઢાવણ ય નાલીણ, છત્તસ્સ ય ધારણઢાણ ।

૨૦ ૨૧ ૨૨  
તેગિચ્છ પાહ્ણા પાણ, સમારંભં ચ જોડ્ણો ॥૪॥

છાયા—અષ્ટાપદ નાલિકાયા, છત્રસ્ય ધારણાર્યાય (ધારણાઢ્ટયા) ।

ચૈકિત્સ્યમુપાનહૌ પાદયોઃ, સમારમ્ભશ્ચ જ્યોતિષઃ ॥૪॥

સાન્વયાર્થઃ—(૧૮) નાલીણ=જૂણે ઉપકરણ-સાધનસે અઢાવણ=ચૌપડ શતરજ્જ આદિ ઁલના, (૧૯) અઢાણ=મુઢીસે છત્તસ્સ=ગતેકા ધારણ=ધારણ કરના (૨૦) તેગિચ્છ=રોગકી ચિન્હિત્સા કરના (૨૧) પાણ પાહ્ણા=પૈરોમિં જૂતે ચપલ મૌજે આદિ પહિનના ચ=ઑર (૨૨) જોડ્ણો=અપ્રિકા સમારમ્ભ=આરમ્ભ કરના ॥૪॥

ટીકા—ચ=તથા, નાલિકા=યથાઢમિમતપતનાર્યે યયા પાશાઃ પાત્યન્તે સા= પાશપાતનદ્રવ્યમ્ તયા, ઉપલક્ષણમેતત્-ઘૂતોપકરણમાત્રસ્ય, અષ્ટાપદમ્-અષ્ટૌ અષ્ટૌ પદાનિ=સ્થાનાનિ (ઘૃહાણિ) સર્વભાગેષુ યસ્મિન્સ્તત્તથા વસ્ત્રાઢધારસ્થાનમ્, ઇહ ચ લક્ષણયા ઘૂતસામાન્યમ્ (૧૮),

ચ=કિંચ્છ છત્રસ્ય=આતપત્રસ્ય ધારણાર્યાય ગ્રહણમિતિ શેષઃ ॥ યઢ્વા-‘ધારણા અઢાણ’ ઇતિચ્છેદ, ‘અઢા’ ઇત્યસ્ય ‘મુઢિ’-રિત્યર્થઃ, ‘ચઢહિં અઢાહિં લોય કરેઈ’

૧ ‘ચત્તમિરઢામિલોંચ કરોતિ’ ઇતિચ્છાયા ॥

(૧૮) અષ્ટાપદ-‘નાલીણ’ અર્થાત્ પાસા ફેંકકર ચૌપડ, શતરજ્જ આદિ ઁલના, અથવા અન્ય પ્રકારસે જુઢા ઁલના ।

(૧૯) છત્રધારણ કરના । ગાયામે ‘ધારણઢાણ’ ઁસા પદ હૈ ઉસે અલગ અલગ કરનેસે ‘ધારણા અઢાણ’ હોતા હૈ । યહૌ આઢ્વા શબ્દકા અર્થ ‘મુઢી’ હૈ । જમ્બૂઢીપગ્નસિમે કહા હૈ કિ- ‘ચઢહિં અઢાહિં લોય કરેઈ’

(૧૭) અષ્ટાપદ-નાલીણ અર્થાત્- પાસા ફેંકીને ચૌપડ, શતરજ્જ, આદિ ખેલવા, અથવા અન્ય પ્રકારે જુઢા ખેલવા

(૧૯) છત્ર ધારણ કરણુ ગાયામા ધારણઢાણ ઁણુ પદ છે, ઁને ઢ્ટા પાડ વાથી ધારણા+અઢાણ થાય છે અહીં અઢા શબ્દનેા અર્થ ‘મુઢી’ છે જમ્બૂ ઢાપગ્નસિમા ઢહુ છે કે-ચઢહિં અઢાહિં લોય કરેઈ અર્થાત્-સપભદેવ ભગવાને,

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यादौ तथादर्शनात्, ततश्च 'अट्टाए' = अट्टाया = मुट्ट्या छत्रस्य धारणा = ग्रहणमित्यर्थः । न च छत्रादिधारण मुट्ट्यादिनैव सम्भवतीति 'अट्टाए' इत्यस्य 'मुखेन पठती' - इत्यादिषु मुखादिवद्वैयर्थ्यमिति शङ्कनीयम्, 'चक्षुभ्यां पश्यति, ऋणाभ्या शृणोति, जिह्वया लेदि' इत्यादि-लोकोक्तिषु चक्षुरादीनामिव यथास्थितवस्तुप्रतिपादनमात्रतात्पर्येणाऽपानरुक्त्यात्, अत्रैव गाथायामुत्तरार्द्धे 'पाहणा

अर्थात्-ऋषभदेव भगवान्ने चार मुट्टी लोच किया । अतः 'धारणट्टाए' का अर्थ 'मुट्टीसे छत्रको ग्रहण करना' हुआ ।

प्रश्न-छत्र तो मुट्टीसे ही पकड़ा जाता है फिर 'अट्टाए'की क्या आवश्यकता है ? जैसे "मुखसे बोलता है" इस वाक्यमें 'मुखसे' इतना अश व्यर्थ है, क्योंकि सिवाय मुखके और किसी अंगसे नहीं बोला जाता, इसी प्रकार यहाँ 'मुट्टीसे' कहना भी वृथा है ?

उत्तर-यह प्रश्न ठीक नहीं, क्योंकि लोकमें "आँखोंसे देखता है, कानोंसे सुनता है, जिह्वासे चखता है" इत्यादि वाक्योंमें 'आँखोंसे' 'कानोंसे', 'जिह्वासे' इन पदोंके बोलनेका अभिप्राय यथास्थित वस्तुका प्रतिपादन करना है, इस गाथाके उत्तरार्द्धमें 'पाहणा पाए' पद आया है इसका अर्थ है कि-पैरोंमें उपानह (जूता), उपानह यद्यपि पैरोंमें ही पहने जाते हैं हाथ या सिरमें नहीं पहने जाते फिरभी 'पाए' कहनेसे

आर मुठी बोव्य क्यो अट्टे धारणाट्टाए ने। अर्थ 'मुठीथी छत्रने श्रद्धे कर्तु' अये। थये।

प्रश्न-छत्र तो मुट्टीथी न पकड़वाना आवे छे, पछी अट्टाए नी शी नरर रहे छे ? नेभके "मुभथी बोले छे" अे वाक्यमा 'मुभथी' अेटले अश व्यर्थ छे, कारण के मुभ पिना णीन्त केरि अगथी बोली शकतु नथी ते न रीते त्या 'मुठीथी' अेम कडेवु अे पणु वृथा छे

उत्तर-अे प्रश्न णराणर नथी, कारण के लोकमा 'आपोधी नेवे छे,' 'कानथी सालणे छे,' 'अलथी आपे छे,' इत्यादि वाक्येमा 'आपोधी,' 'कानथी,' 'अलथी' अे शब्दे आपवाने डेतु यथास्थित वस्तुनु प्रतिपादन करवाने छे आ गाथाना उत्तरार्धमा पाहणा पाए पद आप्थु छे तेने अर्थ छे- 'पगमा उपानह (जूता), ने के लोका पगमा न पहरेवाना आवे छे, हाथे के माथे नडि, तो पणु पाए उडेवाथी पुनरुक्ति थती नथी, कारण के अे शब्दथी



पाए' इत्यत्र 'पाए' इति यदिति, उपलक्षणमेतच्चिरसि शयाकरणमात्रस्य (१९),  
 'चैकित्स्य=चिकित्सा=व्याधिप्रतीकारः, कफपित्तादिवैगुण्य, ग्रहादिवैगुण्य च  
 व्याधेर्निदान तत्प्रशमन तदुपायोपदेशादिनेत्यर्थः (२०),  
 पादयोः=चरणयोः, उपानहौ=चर्मपादुके, उपलक्षणमिदं काष्ठपादुकादीना-  
 मपि (२१),

च=किञ्च ज्योतिषः=वह्नेः समारम्भः=आरम्भकरणम् (२२),

दोपास्त्वत्राऽलीकृत्वाऽदयः स्वयुद्ध्याऽऽगन्तव्याः, चकाराऽऽहापि समुच्चयार्थाः ॥४॥

१- 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च (५।१।१२४) इत्यत्रत्यब्राह्मणादेरा-  
 कृतिगणत्वात्स्वार्थे व्यञ्ज तत् आदिशुद्धिरालोपश्च, यत्तु 'चिकित्साया भावश्चैकि-  
 त्स्य' मिति टीकान्तरकृतस्तद् व्याकरणाऽनवबोधमूलरूपेव, भावप्रत्ययान्ताद्भाव-  
 प्रत्ययस्याऽनुत्पत्तेः, 'चिकित्सायाः कर्म' त्यर्थरूपनमपि केषांचिन्मामादिकमेव  
 चिकित्साया रोगापनयनक्रियारूपायाः स्यात् एव कर्मभूतत्वेन कर्मपर्यायत्वात्,  
 व्यञ्जविधायकसूत्रे हि 'कर्म=क्रिये'-ति वैयाकरणा ॥

पुनरुक्ति नहीं है, क्योंकि इस पदसे यथावस्थित वस्तुका प्रतिपादनमात्र  
 किया गया है, इसलिए 'मुट्टीसे छत्र धरना ऐसा कहना अयुक्त नहीं है।

(२०) चैकित्स्य-चिकित्सा करना, अर्थात् वैद्यक करना, या ग्रह  
 आदिको मात्र चगैरहसे शात करना, या इस विषयका उपदेश देना।

(२१) उपानह (जूना) या मौजा आदि पहनना।

(२२) अग्निका आरम्भ करना,

इनसे भी असत्य आदि दोष समझना चाहिए, अर्थात् जूआ खेलनेसे  
 असत्य, क्लेश, आर्तःपान, परिग्रह आदि, छत्र धारण करनेसे सुकुमारता

यथावांश्चत वस्तुनु प्रतिपादन मात्र करवामा आठ्यु छे तथी 'मुट्टीथी छत्र  
 धरतु' अथे कहेषु अथे अयुक्त नहीं

(२०) चैकित्स्य-चिकित्सा करपी अर्थात् वैदु वरतु, अथवा ग्रहादि ने मात्र  
 वगैरथा शात करवा अथवा अथे विषयने उपदेश आपवे।

(२१) उपानह (जूना) अथवा मौजा आदि पहनेवा

(२२) अग्निने आरंभ करवे। अथे पणु असत्य आदि दोष समझवा  
 न्नेषुअथे

अर्थात्-जुगार खेलवाथी असत्य, क्लेश, आर्तःपान, परिग्रह आदि, छत्र  
 धारण करवाथी सुकुमारता, परिषदने सहन करवामा असाभर्थ आदि अनेक

<sup>२३</sup> मूलम्—<sup>२४</sup>सिज्जायरपिंडं च, <sup>२५</sup>आसदी पलियंकए ।

<sup>२६</sup> गिहतरनिसिज्जा य, <sup>२७</sup>गायस्सुवट्टणाणि य ॥५॥

छाया-शय्यातरपिण्डश्च, आसन्दी पर्य(ल्य)ङ्कः ।

गृहान्तरनिपत्रा च, गात्रस्योद्वर्त्तनानि च ॥५॥

सान्वयार्थः—च=और (२३) सिज्जायरपिंड=शय्यातरका आहार, (२४) आसदी=कुर्सी या खाट (२५) पलियंकए=पलग पालखी डोला आदि, (२६) गिहतरनिसिज्जा=गृहस्थके घरमें बैठना, य=और (२७) गायस्स=शरीरका उव्वट्टणाणि=उवटन करना ॥५॥

टीका—शय्यतेऽस्यामिति शय्या=वसति., शय्ययाऽर्थात्तद्दानेन तरति ससार-सागरमिति शय्यातरः, यद्वा शय्या=प्रोक्तरीत्या वासस्थानम्, 'आतरः=ससार-

१- 'आतरस्तरपण्य स्या'—दित्यमरः, 'उतराई' इति लोकप्रसिद्धम् ।

परिपहके सहनेमें असामर्थ्य आदि अनेक दोष, चिकित्सा करनेसे आरम्भ असत्य आदि दोष, उपानह पहननेसे द्वीन्द्रिय आदि जीवोंका उपमर्दन आदि, तथा अग्निकायका आरम्भ करनेसे छह कायका उपमर्दन आदि दोष होते हैं ॥ ४ ॥ ४ ॥ ४ ॥

(२३) शय्यातरका पिण्ड लेना ।

जिसमें शयन किया जाता है उसे शय्या या वसति कहते हैं । उस शय्याके दानसे ससार-समुद्रको तैरनेवाला शय्यातर कहलाता है । अथवा शय्या है ससाररूपी सागरसे पार होनेका आतर (शुल्क)

दोष, चिकित्सा करवाथी आरल, असत्य आदि दोष, जेडा पड़ेरवाथी द्वीन्द्रिय आदि छवोनु उपमर्दन आदि, तथा अग्निकायने आरल करवाथी छ कायनु उपमर्दन आदि दोष लागे छे (४)

(२३) शय्यातरने पिंड लेवे

जेमा शयन करवाभा आवे छे तेने शय्या या वसति कडे छे जे शय्याना दानथी ससार-समुद्रने तरनार शय्यातर कडेवाय छे अथवा शय्या छे ससार रूपी सागरथी पार थवानु आतर (शुल्क) जेनु, तेने शय्यातर कडे छे, जेमा

पारात्रारोत्तरणशुल्क यस्य स शय्यातरः । अत्र पक्षे यथा रुश्रिन्नदी-पार जिग-  
मिपुर्नाविकाय नदीतरणशुल्क दत्त्वा तत्पार गच्छति तथा समारसमुद्रपार जिग-  
मिपुर्गृहस्थस्तन्नाविकस्वरूपाय महापुरुषाय मृनये शय्या (वसतिस्थान)-रूप-  
मातर (तरणशुल्क) दत्त्वा तत्पार व्रजतीति भाषार्थोऽनुसन्त्रेयः । पक्षद्वयेऽपि साधु-  
वासार्थमाज्ञादायरु इति फलितम्, तस्य पिण्डः=आहारोपभयादिः शय्यातरपिण्ड इति ।

**शय्यातरविचारः ।**

यद्यपि निवासार्थं साधवे स्वानुमतिप्रकाशको वसतिस्वामी शय्यातरशब्द-  
स्यार्थः, तथापि तस्य तदैन शय्यातरत्वं भवति यदा तत्र वसती साधुर्माण्डोपकर-  
णानि स्थापयेत्, प्रतिक्रमणमाचरेत्, रात्रौ शयीत च । अत्राय विवेकः-

जिसका उसे शय्यातर कहते हैं । जैसे कोई नदी पार करनेकी इच्छावाला  
बटोही (भागू) नाविकको नदी पार उतारनेका मूल्य देकर पार उतरता है  
उसीप्रकार ससाररूपी समुद्रके पार उतरनेकी इच्छावाला गृहस्थ  
नाविकके समान साधु महापुरुषोंको शय्या (वसति-स्थान)रूपी उतराई  
(पार उतरनेका मूल्य) देकर ससारसागरसे पार उतरता है, यह अभि-  
प्राय समझना चाहिए । दोनों पक्षोंका अर्थ एक ही है कि शय्यातर उसे  
कहते हैं, जो साधुको ठहरनेके लिए मकानकी आज्ञा देता है । उसके  
आहार औषध आदि पिण्डको शय्यातर-पिण्ड कहते हैं ।

**शय्यातर-विचार**

साधुको ठहरनेके लिए अपनी अनुमति प्रगट करनेवाला उपाश्रयका  
स्वामी शय्यातर कहलाता है, तथापि वह इन अवस्थाओंमें शय्यातर होता है-

कोई नदी पार करनेवाली इच्छा-वाला जाता है नाविकने नदी उतरवानुं लाडु  
आपीने पार उतरने छे, तेम ससार-रूपी समुद्रने पार उतरवानी इच्छा-वाला  
गृहस्थ, नाविक-समान साधु-महापुरुषोंने शय्या-(वसति-स्थान) रूपी लाडु  
(पार उतरना भाटेनु मूल्य) आपीने ससार-सागरथी पार उतरने छे, जेयो  
अर्थ समज्ये जेधजे जेउ पक्षेना अर्थ जेक जे छे छे शय्यातर जेने कडे छे छे  
जे साधुने रहेवाने भाटे मकाननी आज्ञा आपे छे, जेना आहार औषध आदि  
पिंडने शय्यातर-पिंड कडे छे

**शय्यातर-विचार**

साधुने रहेवाने भाटे पीतानी अनुमति आपनार उपाश्रयने स्वामी  
शय्यातर कडेवाय छे, तथापि ते आ अवस्थाओंमा शय्यातर थाय छे -

भाण्डोपकरणस्थापन-प्रतिक्रमणाचरण-शयनाना त्रयाणा प्रत्येक श्रग्यातरत्वे हेतुत्वम्, तेन प्रतिक्रमणाचरण-शयनाभ्या प्रागपि भाण्डोपकरणस्थापनानन्तर वसतिस्वामिनः श्रग्यातरत्वम्, पूर्वगृहीतवसतीं स्थानसकीर्णताया सत्या क्रियान् मुनिरन्य-साधुसकाशे स्वकीयभाण्डोपकरणानि निजाय अन्यस्मिन् समीपतरवर्त्तिन्युपाश्रये तत्स्वामिनिदेशमादाय प्रतिक्रमण कुर्वीत तदा तत्र भाण्डोपकरणस्थापनाभावेऽपि तदीयस्वामिनः श्रग्यातरत्वम् । अन्यत्र प्रतिक्रमण कृत्वा स्थानसकीर्णताय सत्या

(१) साधु वसतिमें भाण्डोपकरण रख देवे ।

(२) प्रतिक्रमण करे, और (३) रात्रिमे शयन करे ।

(१) इन तीनोंमेंसे प्रत्येक क्रिया श्रग्यातर होनेमें कारण है । इसलिए प्रतिक्रमण और शयन करनेसे पहले भी भाण्डोपकरण रख देनेपर वसतिका स्वामी श्रग्यातर हो जाता है ।

(२) पहले जिस वसतिको ग्रहण कर लिया हो उसमें स्थानकी सकीर्णता होनेपर कुछ साधु अपने भाण्डोपकरण अन्य साधुओंके समीप रखकर, पासके दूसरे उपाश्रयमें उसके स्वामीकी आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण करें तो वहा भाण्डोपकरण न रखने पर भी जहा प्रतिक्रमण किया हो उस वसतिका स्वामी श्रग्यातर कहलाता है, इस वसतिका नहीं ।

(३) दूसरे स्थानमें प्रतिक्रमण करके, स्थानकी सकीर्णता होने पर जहा

(१) साधु वसतिमा लाडोपकरण (पात्र वगैरे) राधे (२) प्रतिक्रमण करे अने (३) रात्रे शयन करे

(१) आ त्रल्लेभानी प्रत्येक क्रिया श्रग्यातर थवाभा कारण छे, तेथी प्रतिक्रमण अने शयन पूर्वे पणु लाडोपकरण राधी हे तो वसतिनेो स्वामी श्रग्यातर थउ नथ छे

(२) पहिले जे वसतिनु ग्रहण करी लीधु होय, तेमा स्थाननी सकीर्णता (सकडाश) होवाथी जेठ साधु पोताना लाडोपकरण पीन साधुओनी समीपे रापीने, पासेना पीन उपाश्रयमा तेना स्वामीनी आज्ञा लउने प्रतिक्रमण करे तो त्या लाडोपकरण न राधवा छता पणु न्या प्रतिक्रमण उर्यु होय ते वसतिनेो स्वामी श्रग्यातर कहेवाय छे, आ वसतिनेो नहि

(३) पीन स्थानमा प्रतिक्रमण करीने स्थाननी सकडाशने कारणे न्या

શયનમાત્ર યત્રાચરિત તત્સ્વામિનોઽપિ શય્યાતરત્વમ્ । પરન્ત્યય વિશેષો વોદ્યવ્યઃ-

અન્યસાધુસચિત્રે સ્વક્રીયભાણ્ડોપકરણાનિ સસ્થાપ્યાઽન્યત્ર શયનપ્રતિક્રમણાચરણે મૂલોપાશ્રયસ્વામિનો ન શય્યાતરત્વમ્, ભાણ્ડાદિસ્થાપને સાધુસાનિ-યસ્યૈવ નિમિત્તતા ન તુ 'તત્સ્વામિનઃ', સાધોરભાવે ભાણ્ડાદિસ્થાપનસ્ય શાસ્ત્રાવિદિત્ત્વાત્ । શય્યાતરત્વનિવૃત્તિકરણાય તુ પુનઃ પુનઃ શય્યાતરપરિવર્તન નાચરણીયમ્ । પુનઃ પુનઃ શય્યાતરપરિવર્તન દિ સાધોર્ભિક્ષાલોભ પ્રકાશયતિ, તત્ર વહત્વો દોષા અપિ ચાપતન્તિ, તથાદિ-શય્યાતરપરિવર્તને પૂર્વશય્યાતરો વિભાવયતિ-અત્ર મમ ગૃહે

૧-વસતિસ્વામિનઃ ।

સિર્ફ શયન કિયા હો ઉસ સ્થાનકે સ્વામીકો મી શય્યાતર કહતે હૈ અર્થાત્ ઉસ અવસ્થામે દોનો શય્યાતર હૈ ।

વિશેષ યહ હૈ કિ-દુસરે સાધુઓકે પાસ ભાણ્ડોપકરણ રલ્લકર અન્ય હી કિસી સ્થાનપર પ્રતિક્રમણ ઓર શયન કરે તો જહા ભાણ્ડોપકરણ રલ્લે હૈ, ઉસ સ્થાનકા સ્વામી શય્યાતર નહી કહલાતા । ક્યોંકિ ભાણ્ડો-પકરણ સાધુકે નેસરાય (અધીનતા) મેં હી રલ્લે જાતે હૈ, ગૃહસ્થકે નેસ-રાયમેં રલ્લના શાસ્ત્રવિરુદ્ધ હૈ ।

શય્યાતરત્વકી નિવૃત્તિ કરનેકે લિણ ધારવાર શય્યાતરકા પરિવર્તન નહી કરના ચાહિણ । ઈસા કરનેસે યહ પ્રગટ હોતા હૈ કિ સાધુ ભિક્ષાકા લોમી હૈ, હસમે વહુતસે દોષ મી ઉત્પન્ન હોતે હૈ ।

જૈસે-શય્યાતરકા પરિવર્તન કરનેસે પહલા શય્યાતર હસ પ્રકાર

માત્ર શયન કર્યું હોય તે સ્થાનના સ્વામીને પણ શય્યાતર કહે છે અર્થાત્ એ સ્થિતિમા ગેહ શય્યાતર છે

વિશેષ વાત એ છે કે-બીજા સાધુઓ પાસે ભાણ્ડોપકરણ રાખીને બીજા જ કોઈ સ્થાન પર પ્રતિક્રમણ અને શયન કરે તો જ્યા ભાણ્ડોપકરણ રાખેલા હોય, તે સ્થાનનો સ્વામી શય્યાતર નથી કહેવાતો, તેમકે ભાણ્ડોપકરણ સાધુની નેસરાય (અધીનતા) મા જ રાખવામા આવે છે, ગૃહસ્થની નેસરાયમા રાખવા એ શાસ્ત્રવિરુદ્ધ છે

શય્યાતરત્વની નિવૃત્તિ કરવાને માટે વારવાર શય્યાતરનો પરિચ્યાગ કરવો ન જોઈએ એમ કરવાથી એવું પ્રકટ થાય છે કે સાધુ ભિક્ષાનો લોભી છે, એમાથી અનેક દોષો પણ ઉત્પન્ન થાય છે

જેમ-શય્યાતરનું પરિવર્તન કરવાથી પહેલો શય્યાતર આ પ્રમાણે વિચારે છે-

त्यक्तमदीयोपाश्रयः साधुरसौ निश्चितमागमिष्यतीति तदर्थं सुरसमन्नादिक साध-  
नीयमिति कृत्वा निष्पादितस्यान्नपानादेराधाकर्मिकत्वापत्तिः । यदि तु स्वार्थं  
साधुनिमित्तं च निष्पादितं तदा मिश्रजातदोषापत्तिर्दुर्निवारैव । पूर्वं शय्यातरेण  
त्यक्तोपाश्रयाय साधवे कस्यचिद् वस्तुनः स्थापने स्थापनादोषः कथं साधुना  
वारणीयः । अन्ये दोषाः स्वयमूहनीयाः । तस्माद् श्रुतिं शय्यातरपरिवर्तनं न  
साधुना विवेकम् ।

### वसतियाचनाविधिः ।

अथोपाश्रयस्वामिनस्तदनुपस्थितौ तत्सरक्षकाद्वा वसतियाचनाविधिरभिधीयते-

सोचता है-आज मेरे उपाश्रयकी आज्ञा सतोंने छोड़ दी है, अतः मेरे  
यहाँ अवश्य आवेंगे, इसलिए उनके वास्ते स्वादिष्ट अन्न आदिक बनाना  
चाहिए, ऐसा विचार कर बनाया हुआ अन्नादिक आधाकर्मिक होगा ।  
यदि पहला शय्यातर अपने और साधुके लिए इकट्ठा बनावेगा तो मिश्र-  
जात दोष लगेगा । साधुके आनेकी सभावनासे वह किसी वस्तुको  
स्थापना करेगा तो स्थापना (ठवणा) दोष होगा । -इत्यादि अनेक दोष  
स्वयं समझ लेने चाहिये । इसलिए साधुको वारम्बार शय्यातर बदलना  
नहीं कल्पता है ।

### उपाश्रय-याचनाकी विधि ।

वसति-स्वामीसे अथवा उसकी गैर-मौजूदगीमें उसके सरक्षकसे  
वसति-याचनाकी विधि कहते हैं—

आज मेरा उपाश्रयनी आज्ञा सतोअे छोड़ी दीधी छे, अेटले मेरे त्या ळइर  
आवशे, तेथी अेमने माटे स्वादिष्ट अन्नादि णनाववा ळेधअे अेवेा विचार  
करीने णनावेळु अन्नादि आधाकर्मी णनशे, ळे षडेलेा शय्यातर पोताना माटे  
अने साधुने माटे अेठडु णनावशे तो मिश्रजत दोष लागशे साधु आववानी  
स ळापनाथी ते डोअ वस्तुने स्थापन करशे तो स्थापना-(ठवणा)-दोष लागशे  
-इत्यादि अनेड दोषो पोतानी भेणे समळ लेवा अे कारणुथी साधुने वार वार  
शय्यातर णदलवा कटपता नधी

### (उपाश्रय-याचनानी विधि)

वसतिना स्वामी पासे अथवा तेनी गेरडुअरीमा अेना सरक्षकनी पासे  
वसति-याचना करवानी विधि कडे छे—

मुनिर्देत्—हे आयुष्मन् ! अस्या यमतीं स्थातुमिच्छामि, यावति समये स्थातुमादेशो भवदीयो भवेत् ताननेत्र कालो यापनीयः, तत्रापि यावान् वसति-भूमिभागो ममाप्रस्थानाय भवते रोचेत ताननेत्र ममापेक्षणीय इति ।

ततो गृहस्थः प्रतिव्रयात्—भगवन् ! मुनीश्वर ! क्रियतः कालानवस्थास्यते ? तदा ऋतुयद्देशकाले सांत साधुः “एकमासाधिककाले कल्पे यावद्वत्सर स्थास्यामि” इति, यर्षाकाले तु “चतुरो मासानत्र यापयिष्यामी”-ति वदेत् ।

सागारिकेण साधुकल्पकालमुपलक्ष्य—“एतावत् कालानत्राह न स्थास्यामि ग्रामान्तर गमिष्यामी”-ति कथने तु साधुरेव कथयेत्—“अत्र भयदुपस्थितिसमया-

मुनि—हे आयुष्मन् ! हम इस वसतिमें ठहरना चाहते हैं । तुम जितने समय तक ठहरनेकी आज्ञा दोगे, उतने समयसे अधिक नहीं ठहरेंगे । उसमें भी तुम भूमि का जितना भाग हमें ठहरनेके लिए देना चाहो, उतनाही हमारे लिए पर्याप्त है ।

गृहस्थ पूछे कि—हे मुनिराज ! आप कितने समय तक ठहरना चाहते हैं ? ।

तव मुनि—ऋतुयद्देशकाल हो तो ‘एक मासके कल्पमें जब तक अवसर होगा तब तक रहेंगे’ ऐसा, यदि चातुर्मास हो तो ‘चार मास ठहरनेका हमारा कल्प है’ ऐसा कहे । यदि साधुका कल्प-काल सुनकर गृहस्थ कहे कि—मैं तो थोड़ेही दिन यहाँ रहूँगा फिर ग्रामान्तर जाऊँगा, तो साधुको कहना चाहिए कि—“जब तकतुम यहाँ रहोगे तब तक ही

मुनि—हे आयुष्मन् ! अमे आ वसति (मकान-स्थान) मा रडेवा धरुछीअे छीअे तमे नेटला समय सुधी रडेवानी आज्ञा आपशे, तेटला समयथी वधारे समय रडीशु नडि तेमा पणु तमे भूमिने नेटले भाग अमने रडेवाने माटे आपमा धरुछे तेटले न अमारे माटे पर्याप्त (पूरतो) छे

गृहस्थ—हे मुनिराज ! आप केटला समय सुधी रडेवा धरुछे छे ?

त्यारे मुनि—ऋतुयद्देशकाले जाय तो—‘अेक मासना कल्पमा न्या सुधी अवसर डशे त्या सुधा रडीशु’ अेम कडे, अथवा ने चातुर्मास जाय तो—‘चार मास रडेवाने अमारे कल्प छे’ अेम कडे ने साधुने कल्पकाल सागरीने गृहस्थ कडे के ‘हु तो थोडा न दिवस अर्डी रडीशु’ तो साधुअे कडेपु नेधअे के न्या सुधी तमे अर्डी रडेथे त्या सुधी न अमे रडीशु, तमे नथे

वधिरेव कालो मया क्षपणीयः, तदनन्तरमिमा वसतिं परिहास्यामीति । पुनः सागारिकेण—‘क्रियन्तः साधवो भवन्तः?’ इति पृष्ठः साधुरभिदधीत—समुद्रतरङ्गवत् साधुनामियत्तावधारण क कुर्यात्, यतः क्रियन्तो गच्छन्ति, क्रियन्तश्चागच्छन्ति, ये चागमिष्यन्ति तेऽप्यत्रावस्थान करिष्यन्ति । इत्थ सागारिकाज्ञामादाय तदीयनामगोत्रे विज्ञायोपाश्रये साधुस्तिष्ठेत् । गोचरीं गन्तुमुद्यतो भिक्षुः शय्यातरनामगोत्रे अविज्ञाय भिक्षार्थं न पर्यटेत् ।

कल्प्याकल्प्यविधिः ।

शय्यातरगृहे साधोरकल्प्यानि कल्प्यन्ते, यथा—

‘हम ठहरेंगे, तुम्हारे जाने पर इस वसतिको छोड़ देंगे ।’

यदि गृहस्थ पूछे कि—‘आप कितने साधु हैं?’ तो साधु उत्तर देवे कि—‘समुद्रके तरङ्गोंकी तरह साधुओंकी मर्यादा नहीं है । क्योंकि कितने ही साधु आते हैं और कितनेही चले जाते हैं, जो आवेंगे वे भी यही ठहरेंगे ।’

इस प्रकार गृहस्थकी आज्ञा लेकर, उसका नाम और गोत्र जानकर साधुको ठहरना चाहिए । जबतक साधुको शय्यातरका नाम और गोत्र न मालूम हो जावे तब तक भिक्षाके लिए न जावे ।

कल्प्याकल्प्य—विधि ।

निम्नलिखित वस्तुएँ शय्यातरके घरकी कल्पनीय नहीं हैं—

‘त्यारे आ स्थानने अने छोडी छुथु ’

जे गृहस्थ पूछे के ‘आप डेटला साधुओ छे?’ तो साधु उत्तर आपे के—‘समुद्रना तरंगानी पेंके साधुओनी मर्यादा नहीं, डेमके डेटलाय साधुओ आवे छे अने डेटलाय आया जय छे, जेओ आवथे तेओ पणु अर्द्धे न रहथे ।’

जे प्रमाणे गृहस्थनी आज्ञा लधने, जेनु नाम अने गोत्र ज्ञानीने साधुओ रहवु जेधओ जया सु’री शय्यातरनु नाम अने गोत्र साधुना ज्ञानुवाभा न आवे त्या सुधी भिक्षाने भाटे जय नहि

कल्प्याकल्प्य—विधि

नीचे लपेती वस्तुओ शय्यातरना घरनी साधुने कल्पे नहि—



(१) अशनम्, (२) पानम्, (३) खाद्यम्, (४) स्वाद्यम्, (५) वस्त्रम्, (६) पात्रम्, (७) कम्बल, (८) रजोहरणम्, (९) दौरकम्, (१०) सूची, (११) कर्तरी, (१२) छुरिका, (१३) नखहरणी, (१४) कर्णशोधनी (कानसुचरनी), (१५) दन्तशोधनी (दातसुचरनी), (१६) कण्ठकोद्धारणी (काटाकाङ्गी-चीपिया) (१७) ऋण्टकः कण्ठकोद्धारणीपात्रञ्च (कण्ठककुस्थलिका), (१८) औषधम्, (१९) भैषज्यम्, (२०) शतपाकसहस्रपाकादितैलम्, (२१) पात्र-रञ्जनद्रव्यम् (रोगान् सपेदा आदि), (२२) पात्रादीं रन्प्रकरणाद्युपयोगी शस्त्र-विशेषः (सियार, रेती, इत्यादि), (२३) करगलम्, (२४) छेखनी, (२५) मसी, (२६) मसीपात्रम्, (२७) हिङ्गुलम्, (२८) खटिका, (खडी), इत्यादीनि ।

अथ शय्यातरगृहे साधोरुपादेयानि (कल्प्यानि) निर्दिश्यन्ते-

(१) अशन, (२) पान, (३) खाद्य, (४) स्वाद्य, (५) वस्त्र, (६) पात्र, (७) कम्बल, (८) रजोहरण, (९) डोरा, (१०) सुई, (११) कैंची, (१२) चाकू, (१३) नखहरणी (नहरनी), (१४) कर्णशोधनी (कानकुचरनी), (१५) दन्तशोधनी (दातकुचरनी), (१६) चीपिया, (१७) काटे और काटोंकी कोथली, (१८) औषध, (१९) भैषज, (२०) शतपाक-सहस्रपाक आदि तेल (२१) पात्र रगनेके लिए रोगान्, सुपेता आदि, (२२) पात्रमें छेद आदि करनेके काममें आनेवाले स्यार, रेती आदि ओजार, (२३) कागज, (२४) छेखनी, (२५) स्याही, (२६) हिंगलु, (२७) खड़ी इत्यादि ।

निम्नलिखित वस्तुएँ शय्यातरके घरसे साधुको कल्पनीय हैं-

(१) अशन, (२) पान, (३) भाद्य, (४) स्वाद्य, (५) वस्त्र, (६) पात्र, (७) कागजी (८) रजोहरण, (९) डोरा, (१०) सोय, (११) कातर, (१२) यन्त्र, (१३) नभ उतार वानी नेशणी, (१४) कान-प्रेतरणी, (१५) दात-प्रेतरणी, (१६) चीपिया, (१७) काटे अथवा काटानी कोथली, (१८) ओसड, (१९) लेपण, (२०) शतपाक-सहस्र पाक आदि तेल, (२१) पात्र रगवा भाटेना रोगान् सहेतो वगेरे, (२२) पात्रमा छिद्र आदि करवाना काममा आववाना सारडी, रेती वगेरे ओजार, (२३) कागज, (२४) लेखणी, (२५) शाही, (२६) डींगणो, (२७) भडी, इत्यादि

नीचे लखेले वस्तुओ शय्यातरना घरनी साधुने कल्पे-

(१) तृणम्, (२) लोष्टम्, (३) शिलापट्टकः (पेपणी), (४) शिलापुत्रकः, (५) भस्म, (६) पापाणम्बण्डम्, (७) इष्टका, (८) वृलिः, (९) पीठम्, (१०) फलकम् (आसन-विशेषः), (११) शय्या (शरीरप्रमाणा), (१२) सस्तारकम् (मार्द्धद्वयहस्त-प्रमाण आसनविशेषः), (१३) गोमयम्, (१४) सोपधिकशिष्यः, (१५) स्वाध्या-याद्यर्थं प्रातिहारिक (पडिहारी) पुस्तकम्, इत्यादीनि । इदमप्यनुसन्त्रेयम्—यस्योपाश्रयस्य स्वामिने निवासशुल्कं दत्त्वा गृहस्थो निवासार्थं साधुं निमन्त्रयेत् स उपाश्रयः साधोरकल्प्य इति । उपाश्रयस्यानेकस्वामिनि सति कश्चिदेक एव शय्यातरत्वेन स्थापनीयः, न तु सर्वेऽपि ।

एतादृशशय्यातरस्य पिण्डे चत्वारो भद्रा भवन्ति, यथा—

(१) एकत्र रन्धनम्, एकत्र भोजनम्,

तिनका, (२) पत्थर, (३) शिला, (४) लोढ़ी, (५) राख, (६) पत्थरका-टुकड़ा, (७) ईंट, (८) धूल, (९) जेटा वाजौट, (१०) फलक (आसन), (११) शय्या (शरीरप्रमाण), (१२) सस्तारक (ढाढ हाथका आसन), (१३) गोबर, (१४) उपधि-सहित शिष्य, (१५) स्वाध्याय आदिके लिए पडिहारी (वापस दी जानेवाली) पुस्तक आदि ।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि-जिस उपाश्रयको भाडेपर साधुके लिए खरीदा हो वह उपाश्रय मायुको कल्पनीय नहीं है ।

उपाश्रयके अनेक स्वामी हो तो उनमेंसे एक शय्यातर होता है । ऐसे शय्यातरके पिण्डमें चार भग होते हैं । वे इस प्रकार—

(१) उसी घरमें बनाना उसी घरमें जीमना ।

(१) तणुभु, (२) पत्थर, (३) शिला, (४) लोढ़ी, (५) राख, (६) पत्थरने टुकडे, (७) ईंट, (८) धूल, (९) नानो गान्ठ, (१०) इलक (आसन), (११) शय्या (शरीर प्रमाणा), (१२) सस्तारक (अदी हाथनु आसन), (१३) छाण, (१४) उपधि सहित शिष्य, (१५) स्वाध्याय आदिने भाटे पडिहारी (पाछी आपी देवाय तेवी) पुस्तक आदि

ये पणु याद राखनु लेधये डे ने उपाश्रय साधुने भाटे भाडे राखये डाय ते उपाश्रय साधुने कटपे नहि

उपाश्रयना अनेक स्वामीया डाय तो तेभाथी अेक शय्यातर थाय छे अेवा शय्यातरना पिंडभा आर बागा डाय छे, ते आ प्रमाणे-(१) अेक घरमा

(२) एकत्र रन्धनम् , अन्यत्र गेहादीं भोजनम् ।

(३) पृथक्-पृथग् रन्धनम् , एकत्र भोजनम् ।

(४) पृथक् पृथग् रन्धनम् , पृथक्-पृथग् भोजनम् ।

तत्र द्वितीयचतुर्थभङ्गौ साधोः कल्प्यौ । द्वितीयभङ्गे एकत्र रन्धनेऽपि पश्चात् शय्यातरेतराशस्य पृथकारे शय्यातरमात्राश विहायाऽन्येषा पिण्ड उपादेयः, तत्र तदानीं शय्यातरस्वत्वापगमात् । चतुर्थरूपे तु पिण्डे शय्यातराश्लेशससर्गशङ्कापि नास्ति । शय्यातरस्वत्वापगम एवोपादेयताहेतुरिति निष्कर्षः ।

एव प्रोषितभर्तृकासु अनेकासु सपत्नीष्वेकैव काचित् शय्यातरा कर्तव्या ।

(२) उसी घरमें बनाना दूसरे-दूसरे घरमें जीमना ।

(३) दूसरे-दूसरे घरमें बनाना उसी घरमें जीमना ।

(४) दूसरे-दूसरे घरमें बनाना और दूसरे-दूसरे घरमें जीमना ।

इन चार भगोंमेंसे दूसरा और चौथा भग साधुको कल्पनीय है । दूसरे भगमें एकत्र रन्धन होने पर भी शय्यातरसे भिन्न मनुष्यके अशके अलग होजाने पर शय्यातरका भाग छोडकर अन्यका पिण्ड कल्पनीय है, क्योंकि वहाँ शय्यातरका स्वामित्व नहीं रहता ।

चौथे भगमें तो शय्यातरके स्वत्वके ससर्गकी तनिक भी आशका नहीं है । तात्पर्य यह है कि जहा शय्यातरका स्वत्व (हक) नहीं रहता वही वस्तु साधुको ग्राह्य होती है ।

इसी प्रकार यदि एक शय्यातरकी अनेक पत्नियाँ हों और वह

लोहन बनावतु अने ओज घरमा जमवु (२) ओ घरमा लोहन बनावतु अने  
पीज घरमा जमवु (३) पीज-पीज घरमा बनावतु अने ओ घरमा जमवु  
(४) पीज-पीज घरमा बनावतु अने पीज-पीज घरमा जमवु

आ आर लागोभाथी पीज अने चौथा लागो साधुने कट्ये छे पीज  
लागाभा ओकत्र रसोर्ध थती होय तो पछ शय्यातरथी भिन्न मनुष्योना लाग न्यूडो  
थर्ध बता शय्यातरना लाग छोडीने अन्यना पिंड कट्ये छे, कारण के त्या  
शय्यातरनु स्वामित्व रहेतु नथी

चौथा लागामा तो शय्यातरना स्वत्वना ससर्गनी जरा पछ आशका नथी  
तात्पर्य ओ छे के जेभा शय्यातरनु स्वत्व रहेतु नथी, ते वस्तु साधुने माटे  
ग्राह्य अने छे

ओज रीते जे ओक शय्यातरनी अनेक पत्नीओ होय अने ओ (शय्यातर)

चत्वारो भग्ना अत्रापि पूर्ववदेव ।

अप्रोषितभर्तृकासु तु यथा निष्पादितमन्नादिक नियत शय्यातरो भुङ्क्ते सैव शय्यातरा, यत्रनियत भुङ्क्ते तदा सर्वा अपि शय्यातरा मन्तव्याः, पूर्वोक्त-तृतीयभङ्गेऽय विशेषो बोद्धव्यः—यदा पृथक् पृथग् रन्ध्रन कृतम्, एकत्र कृत्वा भुक्त च तदाऽवशिष्टमन्नादिक विभज्य यदि स्व-स्वगृह नयेत् तादृश शय्यातरस्वत्व-विरहितमन्नादिक साधोः कल्प्यमेवेति । एकत्रीकृतमविभक्त चेन्न कल्प्यमिति तदाशयः ।

(शय्यातर) परदेश चला गया हो तो उनमें किसी एकको ही शय्यातर बनाना चाहिए । पहलेकी नाईं यहा भी चार भग समझना चाहिए । उनका पति परदेश न गया हो तो वह जिस पत्नीके यहां नियमित रूपसे जीमता हो वही शय्यातर होती है ।

यदि नियमित रूपसे न जीमता हो-कभी कहीं कभी कहीं जीमता हो तो सभीको शय्यातर मानना चाहिए ।

पहलेके चार भगोंमेंसे तीसरे भगमे इतना विशेष समझना चाहिए-यदि अलग अलग भोजन बनाया गया हो और एकत्र करके जीमा हो तो बचे हुए अन्न आदिको बाँट लेने पर साधु शय्यातरसे अन्यका आहार आदि ले सकते हैं, क्योंकि उसमेसे शय्यातरका हिस्सा अलग निकल चुका है । हा इकट्ठा कर लिया हो और बाटा न हो तो साधुको कल्प-

परदेश आये गये होय तो ते पत्नीओमाथी दोष ओकने न शय्यातर बना वधी ओधओे पडेलानी पेटे ओमा पणु यार लाग्ग समज्वा ओेओे ओेना पति परदेश न गये होय तो ते न पत्नीने त्या नियमित रीते न नभतो होय ते शय्यातर भने छे ओे नियमित रीते न नभतो होय भने दोषवार ओेकने त्या भने दोषवार थीओेने त्या नभतो होय तो गधी पत्नीओेने शय्यातर मानवी ओेधओे

पडेलाना यार लाग्गमाना त्रीण लाग्गमा ओेट्लु विशेष समज्जुं के-ओे लुड लुड लोअन गनाव्यु होय भने ओेकत्र करीने नभता होय तो वधेला अन्नादिने वडेथी लीधा पछी साधु शय्यातरथी गृहाने आहार आदि लध शके छे, कारणु के ओेमाथी शय्यातरने लाग्ग गृहो डाढवाभा आवी चूथे होय छे छ, ओेककु करेलु होय भने वडेथ्यु न होय तो साधुने कल्पे नछि दोष शय्या

कोऽपि शय्यातरो देशान्तर प्रस्थितः स्वगृहाद्बहिर्गत्वा कुत्रचित् तिष्ठेत् , तत्र यदि गृहादन्यस्थानाद्वाऽशनपानादिकं तदर्थमानीतम् , अथवा बहिःप्रदेश एव निष्पादित चेत् तदा तदशनपानादिकं साधोरकल्प्यम् , रात्रिमासार्थं बहिर्गतस्य साधोस्तु पुनः कल्प्यमेव ।

यदि शय्यातरोऽन्यदीयगृहेऽन्यदीयमन्त्रादिकं परिवेषयेत् , तत्रापि शय्यातरेण दीयमानमन्यदीयमप्यशन-पानादिकं साधोरकल्प्यम् ।

साधोर्भिक्षादाने शय्यातरस्य सहगमनरूपनिमित्तत्वे सति तत्र भिक्षाग्रहणमकल्प्यम् । ग्रामाद्बहिरपि शय्यातरीयगोशालादिसत्त्वे तदीयदुग्गादिकं साधोरकल्प्यम् ।

नीय नहीं है। कोई शय्यातर परदेश जा रहा हो, और घरसे निकलकर कहीं बाहर ठहर गया हो, तो भी उसका अन्न-पान ग्राह्य नहीं है, भलेही वह अन्न पान घरसे उसके लिए लाया गया हो या अन्य स्थानसे लाया गया हो अथवा वहीं पर तैयार किया गया हो। यदि रात्रिमें निवास करनेके लिए साधु बाहर चला गया हो तो कल्पनीय है।

शय्यातर, दूसरे गृहस्थके यहां उसी दूसरे गृहस्थका अन्नादि परोस रहा हो तो भी उसके हाथसे दिया हुआ आहार कल्पनीय नहीं है। यदि किसी भिक्षाकी प्राप्तिमें शय्यातर निमित्त हो अर्थात् दलाली करे तो वह भिक्षा भी साधुको ग्राह्य नहीं है।

गावसे बाहर शय्यातरकी गोशाला आदि हो तो वहांका दूध आदि भी साधुको ग्राह्य नहीं है।

तर परदेश जहाँ रह्यो होय अने घरभाथी नीकणीने कथाक भंडार रह्यो होय तो पशु अने अन्न-पान ग्राह्य नानतु नथी, पछी लक्ष्ये अने अन्न-पान घेरथी अने भाटे लाववाभा आण्यु होय अथवा अन्य स्थानथी लाववाभा आण्यु होय, या त्याज तैयार ननाववाभा आण्यु होय जे शत्रे निवास करवाने भाटे साधु भंडार आल्या गया होय तो कटपे छे

शय्यातर, भीन्न गृहस्थने त्या अने भीन्न गृहस्थना अन्नादि पीरसे तोपशु अने लाधथी अघातो आहार कटपे नहि जे केथं भिक्षानी प्राप्तिमा शय्यातर निमित्त होय अर्थात् दलाली करे तो अने भिक्षा पशु साधुने ग्राह्य थती नथी

गावनी भंडार शय्यातरनी गोशाला आदि होय तो त्याहुं दूध वगैरे पशु साधुने ग्राह्य नने नहि

शय्यातरगृहे भोक्ता भृत्यादिरपि शय्यातर\* । शय्यातरस्य स्वसा दुहिता च तस्मिन् दिवसे पुनरागमनमनिश्चित्य भर्तृकुलादागच्छेत्, तदा साऽपि शय्यातरा । यदि तस्मिन्नहनि भर्तृकुल पुनर्गन्तुकामा शय्यातरगृहमागता चेत् सा शय्यातरगृहे एव शय्यातरत्वमुपयाति अन्यगृहे तु न तस्याः शय्यातरत्वमिति वीज्यम् ।

उपाश्रयस्वामिनि देशान्तरस्थे सति उपाश्रयसरक्षकादाज्ञामादाय यत्र साधु-  
स्तिष्ठेत् तत्रोपाश्रयस्वामिनि समागते साधुना शय्यातरत्व स्वामिन्येव कल्प-  
नीयम्, न सरक्षके ।

शय्यातरमदत्तमन्येन स्वीकृतमप्यशनादिक शय्यातरगृहे सागोरकल्प्यम्,  
व्यवहारशुद्ध्यादिदोषात् ।

शय्यातरके घर जीमनेवाले नोकर-चाकर भी शय्यातर हैं । शय्या-  
तरकी बहिन या बेटी उस दिन वापस लौटनेका निश्चय न करके अपनी  
ससुरालसे आई हो तो वह भी शय्यातर है, यदि वापस लौटनेका  
विचार करके आई हो तो वह शय्यातरके घरमें ही शय्यातर है, दूस-  
रेके घरमें नहीं, अर्थात् दूसरेके घरमें दूसरेका आहारादि यदि वह परोसे  
तो साधु ले सकते हैं ।

जब उपाश्रयका स्वामी परदेशमें रहता हो और उपाश्रयके रखवाले  
से आज्ञा लेकर साधु उसमें ठहरे तो जब उपाश्रयका स्वामी आज्ञावे  
तब वही शय्यातर होता है, रखवाला नहीं ।

शय्यातरने अशन आदिक दूसरे को दे दिया और दूसरेने चाहे उसे  
स्वीकार भी कर लिया हो तो भी शय्यातरके घर पर साधु को वह लेना नहीं

शय्यातरना घेर जन्मनारा नोकर-चाकर पणु शय्यातर छे, शय्यातरनी गडेन  
या पुत्री अथे दिवस पाछा जवानो निश्चय कर्था विना पोताने सासरेथी आवी  
डोय तो ते पणु शय्यातर छे जे पाछा जवानो विचार करीने आवी डोय तो  
शय्यातरना घरमा ज ते शय्यातर छे, धीजना घरमा नहि, अर्थात् धीजना  
घरमा धीजने आहारादि जे ते पीरसे तो साधु लथ शके छे

जे उपाश्रयना स्वामी परदेशमा ग्हेतो डोय अने उपाश्रयना रणेवाणनी  
आज्ञा लथने साधु तेमा रहे तो न्याउ उपाश्रयना स्वामी आवी नथ त्यारे ते  
शय्यातर गने छे, रणेवाण नहि

शय्यातरने अशनादि धीजने आपी दीधु डोय अने धीजने बदे अने  
स्वीकारी पणु दीधु डोय, तो पणु शय्यातरने घेर साधुअे ते लेवु जेधअे नहि,

तदा शय्यातरेण दत्तमन्येनास्त्रीकृतमन्नादिकं शय्यातरगृहाद् बहिरपि साधोरकल्प्यम्, तत्र शय्यातरस्वत्वापगमाभावात् ।

शय्यातरगृहाद् बहिरन्येन स्वीकृत चेत् तदा साधोः कल्प्यमेव, तत्र शय्यातरस्वत्वापगमादिति बोध्यम् ।

शय्यातरगृहाद्बहिस्तेन (शय्यातरेण) दत्तमन्येनाऽस्त्रीकृत चेत् तत्राऽस्त्रीकृताशनपानादेः स्वीकारार्थं 'गृहतामिद'-मित्यादिपररूपा प्रवर्चनाऽपि साधोरकल्प्या । शय्यातरपिण्डग्रहणादिदोषशङ्कासमवात् ।

चाहिए, क्योंकि स्वीकार कर लेनेसे शय्यातरका स्वामित्व तो नहीं रहा पर यहा व्यवहारसे अशुद्धि है ।

यदि शय्यातरद्वारा दिये हुए अन्नादिको अन्य गृहस्थ न स्वीकार करे तो शय्यातरके घरमे या घरसे बाहर कहीं भी साधुको नहीं ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उस आहारादिमें शय्यातरका स्वत्व रहता है । शय्यातरके घरसे बाहर दूसरेने स्वीकार कर लिया हो तो साधुको कल्पनीय है, क्योंकि उसपर शय्यातरका स्वत्व नहीं रहा ।

शय्यातरके घरसे बाहर शय्यातरने किसी दूसरेको दिया हो और दूसरेने स्वीकार न किया हो तो उस-अशनादिके स्वीकार करानेके लिए 'तुम ले लो' इत्यादिरूपसे गृहस्थको प्रेरणा करना भी साधुका कल्प नहीं है, क्योंकि उसमें शय्यातरका पिण्ड लेने आदि अनेक दोषोंकी शंका होती है ।

कारण के स्वीकारी लेवाथी शय्यातरनु स्वामित्व तो रह्यु नहि, पण्यु तेमा व्यपहारथी अशुद्धि रह्येही छे

जे शय्यातरे आपेलु अन्नादि अन्य गृहस्थ न स्वीकारे तो शय्यातरना घरमा या घरभंडार कथाय पण्यु ते साधुअे अडण्यु करवु जेअे नहि, कारण के ते आडा रादिमा शय्यातरनु स्वत्व रह्येहु छेय छे शय्यातरना घरथी भंडार भीअे स्वीकारी वीधु छेय तो ते साधुने कपे, केअे ते अपर शय्यातरनु स्वत्व रह्येहु नथी

शय्यातरना घरनी भंडार शय्यातरे केअे भीअेने आप्यु छेय अने भीअे स्वीकार्यु न छेय तो ते अशनादिने स्वीकार कनावपाने भाटे 'तमे लधु त्ये' इत्यादिअे गृहस्थने प्रेरणा करवी अे पण्यु साधुने कपे नहि, कारण के तेमा शय्यातरना पिंड लेवे वगेरे अनेक दोषोनी शंका रहे छे

अथ शय्यातरपिण्डग्रहणे दोषाः प्रदर्शयन्ते—

- (१) वसतिदुर्लभ्यम्, वसतिस्वामिनो गृहेऽशनपानादिग्रहणनियमे-स्वकीयान्नादिव्ययमालोन्य स्योपाश्रयनिवासार्थमाज्ञा साधवे न कोऽपि दयात्, इत्याशयः।
- (२) प्रवचनलाघवम्, (३) स्वावासस्थान एव भिक्षालाभसभावनाया परिभ्रमणालस्ये सजाते रुदाचित् शय्यातरगृहे आहारायलाभेऽकालभिक्षाचर्याप्रसङ्गः, वेलातिक्रमे सति आर्त्तरीन्द्रध्यानप्रसङ्गः, स्वाध्यायान्तरायः, आत्मकान्तिश्च,

शय्यातरका पिण्ड ग्रहण करनेमें दोष बतलाते हैं—

(१) शय्यातरका पिण्ड ग्रहण किया जाय तो वसति मिलना दुर्लभ (मुश्किल) हो जायगा। गृहस्थ यह विचारेगे कि इन्हें स्थान देनेसे अन्न-पान आदि भी देना पड़ेगा। ऐसा सोचकर गृहस्थ अपने स्थानमें रहनेके लिए साधुओंको स्थान नहीं देगा।

(२) प्रवचनका लाघव होगा।

(३) अपने निवासस्थान पर ही भिक्षा मिल जानेकी सभावनासे साधु भ्रमण करनेमें आलस्य करेंगे, और जब शय्यातरके घर पर आहार नहीं मिलेगा तो अकाल-(असमय)-में गोचरी करनेका प्रसंग होगा, और असमयमें भिक्षा न मिलनेसे आर्त्त-रौद्र ध्यान होंगे, स्वाध्याय आदिमें अन्तराय पड़ेगा, और आत्माको खेद होगा।

शय्यातरको पिंड ग्रहण करवाना रहेला दोषो जातावे छे —

(१) शय्यातरको पिंड ग्रहण करवाना आवे तो वसति (रहेवानु स्थान) भणषु दुर्लभ (मुश्किल) णनी णय गृहस्थ ऐभ विचारशे ठे ऐभने स्थान आपवाथी अन्न-पान आदि पषु हेवा पशे ऐभ विचारीने गृहस्थ पोताना स्थानमा रहेवाने माटे साधुओंने स्थान आपशे नहि

(२) प्रवचनतु लाघव थशे

(३) पोताना निवासस्थान पर न भिक्षा भणी नवानी सभावनाथी साधु भ्रमण करवाना आलस करशे, अने जो शय्यातरका घरथी आहार नहि भणे तो अशले (असमये) गोचरी करवाने प्रसंग आवशे, अने अकाल भिक्षा न भणवाथी आर्त्त-रौद्र ध्यान थशे, स्वाध्यायादिमा अन्तराय पशे अने आत्माने खेद थशे



(४) तीर्थङ्कराज्ञामद्गोऽपीत्यादयो दोषाः प्रसजन्ते, (२३),  
इति शय्यातरविचारः ।

आसन्दी=वेत्रासन, सट्टिका च (२४),

पर्यङ्कः=मञ्चविशेषः, स एव पर्यङ्करुः; स्वार्थे कः । चकाराच्छिडविका दोला-  
त्ताम्रयानादिग्रहणम् (२५),

गृहान्तरनिपद्या=गृह=गृहिनिकेतन तस्याऽन्तरम्=अभ्यन्तर मभ्यमिति  
यावत्, तस्मिन् निपद्या=निपदनम् उपवेशनमित्यर्थः, यद्यपि व्याकरणादीं निपी-  
दन्त्यस्या'मिति विग्रह 'निपद्या=आपणः' इत्युक्त तथाप्यत्र शास्त्रसङ्केतितत्वा  
द्भावक्यवन्तोऽयं निपद्याशब्दः (२६),

गात्रस्य=शरीरस्य उद्धर्त्तानि=मलापनयनद्रव्येण समालेपनानि 'उत्पन्न'  
इतिलोकप्रसिद्धानि, चकारादन्वेषामपि शरीरसम्बन्धिना सस्काराणां ग्रहण  
बोद्धव्यम् (२७),

एषु चारित्रघातादयो दोषाः सुस्पष्टा एव ॥ ५ ॥ ५ ॥

(४) इसके सिवाय तीर्थंकर भगवानने शय्यातर-पिण्डको अकल्प-  
नीय बताया है, इसलिए उनकी आज्ञाका भंग होगा, इत्यादि अनेक  
दोष आते हैं ॥ इति शय्यातर-विचार समाप्त ।

(२४) आसन्दी-बेतकी बनी हुई छिद्रवाली कुर्सीपर बैठना ।

(२५) पर्यङ्क-एक प्रकारका पलंग, पालखी, डोला, ताम्रजाम आदिका  
ग्रहण करना ।

(२६) गृहान्तरनिपद्या-गृहस्थके घरमें बैठना ।

(२७) गात्रोद्धर्त्तन-शरीर पर उबटन आदि करना ॥५॥

(४) એ ઉપરાત તીર્થંકર ભગવાને શય્યાતર પિંડને અકલ્પનીય બતાવ્યો છે,  
તે માટે એમની આજ્ઞાનો ભંગ થશે, ઈત્યાદિ અનેક દોષો ઉત્પન્ન થાય છે

ઈતિ શય્યાતર-વિચાર સમાપ્ત

(૨૪) આસન્દી-નેતરની બનાવેલી છિદ્રવાળી પુરશી પર બેસવું

(૨૫) પર્યંક-એક પ્રકારનો પલંગ, પાલખી, હિંડોળો, મ્યાનો

(૨૬) ગૃહાન્તરનિપદ્યા-ગૃહસ્થના ઘરમાં બેસવું

(૨૭) ગાત્રોદ્ધર્તન-શરીર પર સુગંધી પદાર્થો ચોળવા (૫)

मूलम्-<sup>२८</sup>गिहिणो वेयावडिय, <sup>२६</sup>जाडयाजीववत्तिया ।

<sup>३०</sup>तत्तानिबुडभोइत्त, <sup>३१</sup>आउरस्सरणाणि च ॥६॥

छाया-गृहिणो वैयावृत्य, जात्याजीववृत्तिया (आजीववृत्तिया)  
तप्तानिर्वृतभोजित्व, -मातुरस्मरणानि च ॥ ६ ॥

सान्वयार्थः-(२८) गिहिणो=गृहस्थकी वेयावडिय=वैयावच करना, (२९) जाडया=जातिसे-अपनी ऊची जाति बताकर आजीववत्तिया=जीविका निर्वाह करना, (३०) तत्तानिबुडभोइत्त=अग्निमें सिर्फ तपाया हुआ किन्तु शस्त्रसे अपरिणत-मिश्र भोजन करना, च=और (३१) आउरस्सरणाणि=बीमार होनेपर पूर्वशुक्त वस्तुका स्मरण करना ॥ ६ ॥

टीका-गृहिणः=गृहस्थस्य, वैयावृत्य=गृहस्थायान्नाऽऽनयनप्रदानादि-लक्षण-शुश्रूषाकरणम् (२८),

जात्या='अहमेतादृशजातिविशिष्ट' इत्याद्याद्योपणेन, उपलक्षणमिदं कुलादीनामपि, आजीववृत्तिया-आजीवे=जीविकाया वृत्ति.=स्थितिर्यस्य तद्भाव', यद्वा 'आजीववृत्तिया' इति-छाया, आजीवे=जीविकाया वर्तितु शील यस्यासौ आजीववृत्तिया तस्य भाव इति तदर्थ (२९),

तप्तानिर्वृतभोजित्व=तप्त=रहितोष्णीकृत च तत् अनिर्वृत=शस्त्रापरिणत तप्तानिर्वृतम् अर्द्धपकमिति भावस्तद्भोजितु शीलमस्य तत्रम्, मिथ्यान्नादिसेवनमित्यर्थ (३०)

आतुरस्मरणम्=आतुरा='रोगादिग्रस्तास्तेषां स्मरण=तत्कर्तृरुपूर्वोपशुक्त

(२८) गृहस्थकी वेयावृत्य (सेवा-शुश्रूषा) करना ।

(२९) अपनी जाति या कुल आदि बताकर भिक्षा लेना ।

(३०) आधा पका आधा कच्चा अर्थात् मिश्र अन्न-पानी आदि लेना ।

(३१) रोग आदिकी अवस्थामें पहले सेवन किये हुए विषयोका

(२८) गृहस्थकी वेयावृत्य (सेवा-शुश्रूषा) करना

(२९) आपनी जाति या कुल आदि बताकर भिक्षा लेना

(३०) आधा पका-आधा कच्चा अर्थात् मिश्र अन्न-पानी आदि लेना

(३१) रोग आदिकी अवस्थामें पहले सेवन किये हुए विषयोका स्मरण करना अर्थात्

वस्तुस्मरणमिति फलितम्, यद्वा आतुरशब्दोऽत्र भावप्रधाननिर्देशस्तथाचाऽऽतुरत्वे स्मरणमिति समासः, रोगाद्यवस्थाया पूर्वाऽनुभूतवस्तुस्मरणमित्यर्थ (३१)।

चकार इहापि समुच्चयार्थकः। अत्रासयमादयो दोषा जायन्ते ॥ ६ ॥

<sup>३२</sup>मूलम्-<sup>३३</sup>मूलए <sup>३४</sup>सिंगवेरे य, <sup>३५</sup>उच्छुखडे <sup>३६</sup>अनिव्वुडे ।

<sup>३७</sup>कदे <sup>३८</sup>मूले य <sup>३९</sup>सच्चित्ते, <sup>४०</sup>फले <sup>४१</sup>वीए य <sup>४२</sup>आमए ॥७॥

छायाः-मूलक शृङ्गेर च, इक्षुखण्डमनिर्वृतम् ।

कन्दो मूल च सचित्त, फल वीज चामरम् ॥ ७ ॥

सान्वयार्थ. -य=और (३२) मूलए=मूला (३३) सिंगवेरे=अदरख (३४) उच्छुखडे=गन्ना (सेलडी) अनिव्वुडे=शहसे अपरिणत (३५) कदे=कन्द य=और (३६) मूडे=शिफा (तथा) सच्चित्ते=सचित्त (३७) फले=फल य=और आमए=सचित्त (३८) वीए=वीज । भावार्थ-इनके सेवनसे अनन्तकाय आदि वनस्पतिकायकी विराधना होती है ॥ ७ ॥

टीका-मूलम्=मसिद्धम् (३२), शृङ्गेर=शृङ्गेर=शरीर यस्य तत् आद्रिकमित्यर्थ (३३), च=तथा इक्षुखण्डम्=इक्षुशकलम्, एतन्नयम् अनिर्वृतम्=शह्यापरिणतम् (३४) कन्द =शूरणादिः (३५), मूल=शिफा (३६), च=पुनः, सचित्त=सजीवम् ।

स्मरण करना अर्थात् बीमारीमें हाय! हाय! करना ॥६॥

(३२) सचित्त मूलाका सेवन करना ।

(३३) सचित्त अदरख (आदा) का सेवन करना ।

(३४) सचित्त इक्षुखण्डका सेवन करना ।

(३५) सचित्त शूरण आदि कन्दोका सेवन करना ।

(३६) सचित्त मूलाका सेवन करना ।

जिभादीमा 'हाय ! हाय !' करनी (६)

(३२) सचित्त मूलानु सेवन करणु

(३३) सचित्त आदुनु सेवन करणु

(३४) सचित्त शेरडीना पतीका-ककडा-नु सेवन करणु

(३५) सचित्त शूरणु आदि क होनु सेवन करणु

(३६) सचित्त मूलानु सेवन करणु

फल=कुकुटी-त्रपुपादिकम् (३७), च=तथा बीज=तिलादि, आमकम्=सचित्तम् (३८),  
अज्ञानन्तरायादिविराधनादिदोषा जायन्ते ॥ ७ ॥

मूलम्-<sup>३६</sup>सौवर्चले <sup>६०</sup>सिधवे <sup>४९</sup>लोणे, <sup>४९</sup>रुमालोणे य आमए ।

<sup>४२</sup>सामुद्दे <sup>४३</sup>पसुखारे य, <sup>४४</sup>कालालोणे य आमए ॥८॥

छायाः-सौवर्चल सैन्धवो लवणो, रुमालवणश्चामकः ।

सामुद्रः पाशुसारश्च, काललवणश्चामकः ॥ ८ ॥

सान्त्वयार्थः-आमए=सचित्त (३९) सौवर्चले=सौवर्चल-सचरनमक (४०)  
सिधवे लोणे=सैन्धव-सींगानमक (४१) रुमालोणे=रुमानदीसे निकृता हुआ  
नमक (४२) सामुद्दे=समुद्री नमक य=और (४३) पसुखारे=ऊपर नमक य=  
और आमए=सचित्त (४४) कालालोणे=काला नमक । भावार्थ-उल्लिखित  
नमकोंका सेवन करनेसे पृथ्वीकाय आदिकी विराधना होती है ॥ ८ ॥

टीका-सुवर्चले=देशविशेषे भवः सौवर्चलः=रुचकलवण. (३९),

सिन्धुनयुपलक्षितदेशीयपर्वते भवः सैन्धवः, लवणः=लुनाति=अग्निं दूरयति  
कफादिकमिति लवण, इदं सौवर्चलादेर्विशेषणपदम् (४०),

च=तथा, रुमालवण =रुमा=त्रिशिष्टलवणाकरभूता काचिन्नदी तस्या लवणः,  
आमक =सचित्त, अस्य पूर्वार्द्धे सर्वत्र सम्ग्रन्ध (४१),

(३७) सचित्त ककडी खीरा आदि फलोंका सेवन करना ।

(३८) सचित्त बीजका=तिल आदिका सेवन करना ॥ ७ ॥

(३९) सचित्त रुचक (सौवर्चल सोचर) नमकका सेवन करना ।

(४०) सचित्त सैन्धव (सेधा) नमकका सेवन करना ।

(४१) सचित्त रुमा (नदीविशेषके) नमकका सेवन करना ।

(३७) सचित्त ककडी खीरा आदि फलोंका सेवन करना

(३८) सचित्त बीज तल आदिसे सेवन करना (७)

(३९) सचित्त रुचक लवण (सौवर्चल-सचर)से सेवन करना

(४०) सचित्त सैन्धवसे सेवन करना

(४१) सचित्त रुमा (नदीविशेषका) नमकसे सेवन करना

सामुद्रः=समुद्रोत्थलवणः (४२),

पाथुक्षारः=ऊपरलवणः (४३),

च=तथा काललवणः=कृष्णलवणः 'विडलवण' इतिप्रसिद्धः (४४),

आमकः=सच्चित्तः, 'आमक' इत्यस्योत्तरार्द्धे सर्वत्र सम्बन्धः । अत्र पृथ्वी  
कायविराघनादयो दोषा भवन्ति ॥ ८ ॥

<sup>४५</sup> मूलम्-<sup>४६</sup>ध्रुवणेत्ति <sup>४७</sup>वमणे <sup>४८</sup>य, <sup>४९</sup>वत्थीकम्म-<sup>५०</sup>विरेयणे ।

<sup>५१</sup>अजणे <sup>५२</sup>दत्तवण्णे <sup>५३</sup>य, <sup>५४</sup>गायव्भगविभूसणे ॥९॥

छायाः-धूपनमिति वमन च, वस्तिर्कर्म विरेचनम् ।

अञ्जन दन्तवर्णश्च, गात्राभ्यङ्ग-विभूपणे ॥ ९ ॥

सान्त्वयार्थः-(४५) ध्रुवणेत्ति=रोग मिटाने आदिके लिए किसी स्थानमें  
धूप देना, (४६) वमणे=प्रयत्नपूर्वक वमन करना, (४७) वत्थीकम्म=वस्तीकर्म  
करना, य=और (४८) विरेयणे=विरेच-जुलाव लेना, (४९) अजणे=अजन-  
सुरमा आदि आजना, (५०) दत्तवण्णे=दातून मसी आदिसे दाँत साफ करना,  
(५१-५२) गायव्भगविभूसणे=शरीरको तैल आदिसे मालिश करना (५१)  
तथा बह्व आदिसे भूषित करना (५२) ॥ ९ ॥

टीका—धूपन=रोगानुपशान्तिनिमित्त स्थानकादिषु धूपदानम्, सौगन्ध्यो-  
त्पत्तिनिमित्तमशुक्लादीना धूपादीना वासनञ्च (४५),

(४२) सच्चित्त समुद्री नमकका सेवन करना ।

(४३) सच्चित्त ऊपर नमकका सेवन करना ।

(४४) सच्चित्त काले नमकका सेवन करना ॥ ८ ॥

(४५) रोग आदिकी शान्ति अथवा सुगधिके लिए स्थानक या बह्व  
आदिमे धूप देना ।

(४२) सच्चित्त समुद्रना लवणु सेवन करवु

(४३) सच्चित्त वीपर लवणु (पारा) नु सेवन करवु

(४४) सच्चित्त काला मीक्षानु सेवन करवु (८)

(४५) रोगादिनी शान्ति अथवा सुगधिने भाटे स्थानक या बह्वदिने धूप करवो

वमन=वमिजनरुभेपजादिप्रयोगेण वान्तिरुणम् (४६),

वस्तिरुम=वसतः=तिष्ठतः, मूत्रपुरीपावत्रेति, वस्ते=आच्छादयति मूत्राऽऽ-  
शयपुटमिति वा वस्तिः=नाभेरधोभागः, तस्याः कर्म=तच्छोधनव्यापारो वस्ति-  
कर्म=मलादिशोधनार्थमपानादिमार्गे वृत्तिंकादिप्रवेशनम्, अपानमार्गेण जलकर्षण  
चेत्यर्थः (४७),

विरेचनम्-कोष्ठशुद्धयर्थं स्वर्णमुख्यादिविरेचनसेवनम् (४८)

अञ्जन=शोभावशीकरणार्थं नयनयोः कज्जल-सौवीरादिदानम् (४९),

दन्तवर्णः-वर्णन-वर्णः, दन्ताना वर्णः=उज्ज्वलीकरण दन्तवर्णः=अङ्गुली दन्त-

शाण(मसी)काष्ठादिभिर्दन्तवर्षणम् (५०) ।

गात्राभ्यङ्ग-विभूषणे=अभ्यङ्गश्च विभूषणं चेत्यनयोरितरेतरयोगद्वन्द्व इत्यभ्यङ्ग-  
विभूषणे, गात्रस्य अभ्यङ्ग-विभूषणे गात्राभ्यङ्गविभूषणे, 'द्वन्द्वान्ते द्वन्द्वादौ वा  
श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बन्धयते' इतिन्यायाद् गात्रशब्दस्य प्रत्येकं सम्ब-  
न्धस्तत्र गात्राभ्यङ्ग=गात्रस्य=शरीरस्य अभ्यङ्गः=शतपाक-सहस्रपाकादितैला  
दिनाऽभ्यञ्जनं मर्दनमिति यावत् (५१),

गात्रविभूषणं=वस्त्रालङ्कारादिना शरीरपरिष्करणम् (५२),

१ चौरादिकाद्वर्णयतेर्भावे घञ् ।

(४६) दवाई लेकर वमन करना ।

(४७) मल आदिके शोधनके लिए वस्तिकर्म करना ।

(४८) कोठेकी शुद्धिके लिए सनाय आदिका जुलाव लेना ।

(४९) नेत्रोंमें कज्जल आदि लगाना ।

(५०) मिस्सी आदि लगाकर दात रगना ।

(५१) शतपाक, सहस्रपाक आदि तेलसे शरीरकी मालिश करना ।

(५२) शरीरका वस्त्र आभूषणोंसे मण्डन करना ।

(४६) दवा लधने वमन करवु

(४७) मलादिना शोधन माटे वस्तिकर्म करवु

(४८) ठेके नी शुद्धिके माटे सनायुष्पी आदिना जुलाव लेवे

(४९) आणोमा काज्जल (नेत्र) आणवु

(५०) मस्मी वगेरे लगाडीने दात रगवा

(५१) शतपाक, सहस्रपाक आदि तेलथी शरीरने मर्दन करवु

(५२) शरीरनुं म डन करवु (शोभाववु)

धूपनादिनाऽग्निकायप्रभृतिविराधनादिदोषा जायन्ते ९ ॥

सम्प्रत्युपसहरन्नाह—‘सञ्चमेय’-इत्यादि ।

मूलम्—सञ्चमेयमणाइन्न, निग्गथाण महेसिण ।

सजममि अ जुत्ताण, लहुभूयविहारिणं ॥१०॥

छायाः—सर्वमेतदनाचीर्ण, निर्ग्रन्थाना महर्पीणाम् ।

सयमे च युक्ताना लघुभूतविहारिणाम् ॥ १० ॥

सान्वयार्थः—निग्गथाण=परिग्रहरहित महेसिण=महर्षियोके सजममि=सयममें जुत्ताण=लोहेण य=और लहुभूयविहारिण=वायुके समान अप्रतिबन्धविहार करनेवालोंके एय=ये—पूर्वोक्त वाचन सञ्च=सर अणाइन्न=अनाचीर्ण है। भावार्थ—निर्ग्रन्थ महर्षियोने पूर्वोक्त इन वाचन विषयोका आचरण नहीं किया, अतः ये अनाचीर्ण कहलाते हैं। साधुओंको इनका आचरण नहीं करना चाहिये ॥ १० ॥

टीका—ग्रन्थान्निर्गता निर्ग्रन्था’=रुनरु-रजतादिद्रव्यग्रन्थि-मिश्रयात्वादिभाव-ग्रन्थिरहितास्तेपाम्, महर्पीणाम् महान्तश्च ते ऋषयः महर्षयस्तेपाम्, यद्वा ‘महैषिणा’ मिति च्छाया, महो=निजहित तम् एषयन्ति=गवेपयन्तीति महैषिणस्तेपाम्। सयमे=सकलसावयव्यापारोपरमलक्षणे युक्ताना=व्यापृताना दत्तचित्तानामित्यर्थः,

इन धूप आदिसे अग्निकाय आदि जीवोकी विराधना आदि दोष होते हैं ॥९॥

अब उपसहार करते हैं—‘सञ्चमेय०’ इत्यादि ।

बाह्याभ्यन्तर परिग्रहकी ग्रन्थिसे रहित, अपने हितका अन्वेषण करनेवाले महर्षि तीन करण तीन योगसे सावध व्यापारके त्यागरूप

ये धूप आदिथी अग्निकाय आदि लघुवैणी विराधना आदि दोष लागे छे (९),

हुवे उपसहार करे छे—सञ्चमेय० इत्यादि

बाह्याभ्यन्तर परिग्रहकी अग्निथी रहित, पोटाना हितनु अन्वेषण कराना अर्द्धिओसे त्रय करण त्रय योगथी सावध व्यापारने त्यजवा इय सकण सयमथी

च=पुनः लघुभूतविहारिणाम्=लघुभूतो=वायुस्तद्वदप्रतिबद्ध विहरन्ति तच्छीला-  
स्तेषा वायुवदप्रतिबन्धविहारिणामित्यर्थः । एतत्=पूर्वोक्त सवे द्विपञ्चाशत्प्रकारकम्  
अनाचीर्णम्=अनासेवितम् 'अस्ती'-ति शेषः ॥ १० ॥ १० ॥

अनाचीर्णत्यागिनो मुनयः कोदृशा भवन्ति ?-इत्याह-

मूलम्-<sup>१</sup>पंचासवपरिज्ञाया, <sup>२</sup>तिगुत्ता <sup>३</sup>छसु <sup>४</sup>सजया ।

<sup>५</sup>पचनिग्गहणा <sup>६</sup>धीरा, <sup>७</sup>निग्गथा <sup>८</sup>उज्जुदसिणो ॥११॥

छायाः-पञ्चाभूवपरिज्ञाता,-स्त्रिगुप्ताः पट्सु सयताः ।

पञ्चनिग्रहणा धीरा, निर्ग्रन्था ऋजुदर्शिनः ॥ ११ ॥

सान्त्वयार्थ.-पचासवपरिज्ञाया=पाच आस्रवोके त्यागी, तिगुत्ता=मनोगुप्ति १  
वचनगुप्ति २ कायगुप्ति ३ से युक्त, छसु=उह कायमें सजया=सयमवान्, पचनि-  
ग्गहणा=पाच इन्द्रियोके निग्रह करनेवाले धीरा=परीपह उपसर्ग सहनेमें धीर  
निग्गथा=मुनि उज्जुदसिणो=मोक्षमार्गके आराधक होते हैं । भावार्थ-जो  
अनाचीर्णोंका त्याग करते हैं वे गाथोक्तविशेषणोंसे विशिष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

टीका-पञ्चास्रवपरिज्ञाताः=आस्रवति=आक्षरति मिथ्यात्वादिनालिकाभ्यः  
कर्मसलिलमात्मतडागे यैस्ते आस्रवा हिंसादयः, पञ्च च त आस्रवाश्चेति पञ्चास्रवा

सकल सयमसे युक्त और वायुकी तरह अप्रतिबन्ध विहार करनेवाले  
मुनिराजोंके ये पूर्वोक्त वाचन अनाचीर्ण हैं ॥१०॥

अनाचीर्णोंका न्याग करनेवाले मुनि कैसे होते हैं ? सो कहते हैं-  
'पचासव०' इत्यादि ।

जिनके द्वारा आत्मारूपी तालावमें मिथ्यात्वादिरूप नालाओंसे  
कर्मरूपी जल आता है उन्हें आस्रव कहते हैं । वे आस्रव मिथ्यात्व

युक्त अने वायुनी पेटे अप्रतिबन्ध विहार करनेवाले मुनिराजोंके ये पूर्वोक्त वाचन  
अनाचीर्ण हैं ।

अनाचीर्णोंके त्याग करनेवाले मुनियोंके क्या डोय है ? ते कहे हैं—

पचासव० इत्यादि

वेनी द्वारा आत्मारूपी तालावमें मिथ्यात्वादि-रूप नालाओंकी कर्म-रूपी  
जल आवे है तेने आस्रव कहे हैं ये आस्रवोंके मिथ्यात्व अविरति आदि वेदों



धूपनादिनाऽग्निक्वायप्रभृतिविराधनादिदोषा जायन्ते ९ ॥

सम्प्रत्युपसहरन्नाह—‘सव्वमेय’-इत्यादि ।

मूलम्—स<sup>८</sup>व्वमे<sup>७</sup>यम<sup>६</sup>णा<sup>५</sup>इ<sup>४</sup>न्न<sup>३</sup>, नि<sup>१</sup>ग्ग<sup>२</sup>थाण<sup>३</sup> म<sup>४</sup>हे<sup>५</sup>सिण<sup>६</sup> ।

सज<sup>३</sup>ममि<sup>४</sup> अ<sup>५</sup> जु<sup>६</sup>त्ताण<sup>७</sup>, ल<sup>८</sup>हु<sup>९</sup>भू<sup>१०</sup>यवि<sup>११</sup>हारिण<sup>१२</sup> ॥१०॥

छायाः—सर्वमेतदनाचीर्णं, निर्ग्रन्थाना महर्षीणाम् ।

सयमे च युक्ताना लघुभूतविहारिणाम् ॥ १० ॥

सान्त्वयार्थः—निर्ग्रन्थाण=परिग्रहरहित महर्षिण=महर्षियोके सजममि=सयममें जुत्ताण=लगेहुए य=और लहुभूयविहारिण=वायुके समान अपतिव न्यविहार करनेवालोके एय=ये—पूर्वोक्त वाचन सव्व=सर अणाइन्न=अनाचीर्णहैं। भावार्थ—निर्ग्रन्थ महर्षियोने पूर्वोक्त इन वाचन विपर्यया आचरण नहीं किया, अतः ये अनाचीर्ण कहलाते हैं। साधुओंको इनका आचरण नहीं करना चाहिये ॥ १० ॥

टीका—ग्रन्थान्निर्गता निर्ग्रन्थाः=रुनरु-रजतादिद्रव्यग्रन्थि-मिव्यात्वादिभाव-ग्रन्थिरहितास्तेषाम्, महर्षीणाम् महान्तश्च ते ऋषयः महर्षयस्तेषाम्, यद्वा ‘महर्षिणा’ मिति च्छाया, महो=निजहित तम् एषयन्ति=गवेपयन्तीति महर्षिणस्तेषाम्। सयमे=सरुलसावयव्यापारोपरमलक्षणे युक्ताना=व्यापृताना दत्तचित्तानामित्यर्थः,

इन धूप आदिसे अग्निक्वाय आदि जीवोंकी विराधना आदि दोष होते हैं ॥९॥

अब उपसहार करते हैं—‘सव्वमेय०’ इत्यादि ।

बाह्याभ्यन्तर परिग्रहकी ग्रन्थिसे रहित, अपने हितका अन्वेषण करनेवाले महर्षि तीन करण तीन योगसे सावध व्यापारके त्यागरूप

ये धूप आदिथी अग्निक्वाय आदि लघुवोनी विराधना आदि दोष लागे छे (९), हुवे उपसहार करे छे—सव्वमेय० इत्यादि

बाह्याभ्यन्तर परिग्रहनी अग्निथी रहित, पोताना हितनु अन्वेषण करनारा महर्षिओओ त्रय करण त्रय योगथी सावध व्यापारने त्यजवा रूप सकण सयमथी

छाया-आतापयन्ति ग्रीष्मेषु, हेमन्तेष्वप्रावृताः ।

वर्षासु प्रतिसलीनाः, सयताः सुसमाहिताः)धिकाः ॥ १२ ॥

सान्वयार्थं-सुसमाहिता=प्रशस्त समाधिवाले सजया=सयमी मुनि गि-  
म्हेसु=ग्रीष्मऋतुमें आयावयति=आतापना लेते है, हेमन्तेसु=हेमन्तऋतुमें अवा-  
उडा=अल्पवस्त्र या वस्त्ररहित रहते है, वासासु=वर्षाऋतुमें पडिसलीणा=कछु-  
एकी भाति इन्द्रियोका गोपन करते है, अर्थात् जिस ऋतुमें जिस प्रकारकी तपस्यासे  
अधिक कायक्लेश होता हो उस ऋतुमें वही तपस्या करते है ॥ १२ ॥

टीका-सुसमाधिका.=समाधीयतेऽस्मिन् मनो विवेकिभिरिति समाधिः-प्रश-  
स्तभावाऽवस्थानम्, सु=शोभन. समाधिर्येषां ते तयोक्ताः=विनय-श्रुतादिसमाधि-  
सम्पन्नाः । यद्वा 'सुसमाहिता' इति च्छाया, 'निरवग्रव्यापारविज्ञानदत्तावधानाः'  
इति तदर्थः । सयता=प्रचनमननयतनावन्तः, मुनयः ग्रीष्मेषु=घर्मर्तुषु आतापय-  
न्ति=ऊर्वाभिमुखवस्थानादिना परितापयन्ति स्वतनुमिति शेषः, आतापना  
विदधतीति यावत् । घ्नन्ति=नाशयन्ति शैत्याधिमन्त्रेण चित्तसमाधिमिति हेमन्ताः<sup>१</sup>  
हिमोऽन्तोऽवयवोऽस्त्येषामिति वा पृषोदरादित्वाद् हेमन्तास्तेषु हिमर्तुषु अप्रावृताः=

१ ( ' हन्तेर्मुट् हि च ' उणादिम्. ३ । १२९ ) इति अच् हन्तेर्हिरादेशो मुडा-  
गमो गुणश्च ।

जिस अवस्थामे आत्मज्ञानी जन प्रशस्त-भावोंसे रमण करते हैं  
उसे समाधि कहते हैं । अनाचीर्णोंका त्याग करनेवाले साधु उस विनय  
श्रुत आदि चार प्रकारकी समाधिको प्राप्त करते हैं, अथवा निरवग्र  
व्यापार करनेमे सदा सावधान रहते हैं । तथा प्रवचनके मनन करनेमें  
यत्नवान् रहते हैं । ग्रीष्म ऋतुमे सूर्यके सम्मुख मुख करके भुजाएँ  
फैलाकर आतापना लेते है । शीत ऋतुमे थोड़े कपडे रखते, या कपडोको

२ अवस्थाभा आत्मज्ञानी जन प्रशस्त-भावोत्थी गमयु करे छे तेने  
समाधि कडे छे ३ अनाचीर्णोनि त्याग करनारा साधुओओ विनय श्रुत आदि चार  
प्रकारनी समाधिने प्राप्त करे छे अथवा निरवग्र व्यापार करनारा सदा सावधान  
रहे छे तथा प्रवचननु मनन करवामा यत्नवान् रहे छे आरंभ ऋतुमा  
सूर्यनी सम्मुख मुख राणीने लुब्धकेने पडाणी करीने आतापना ले छे शीत  
ऋतुमा थोडा कपडा राणीने या कपडा ह् करीने ठंडीनी आतापना ले छे,

પરિ=સર્વતોભાવેન જ્ઞાતા:=જ્ઞપરિજ્ઞાતોઽનર્થમ્લમનુભારિતાઃ પ્રત્યાગ્ધ્યાનપરિજ્ઞાતો  
 હૈયત્વેન પરિત્યક્તા યૈસ્તે તથોક્તાઃ, ૧ ત્રિગુણા:=તિમ્મિર્મનોયાદ્યાયગુણિર્ગુણાઃ,  
 પટ્સુ=પૃથિવ્યાદિકાયપટ્કેપુ સયતા:=સમ્યગ્ યતનાવન્ત-પઙ્ગીવનિકાયાપ  
 મર્દનવિરતા इत्यर्थः, પશ્ચનિગ્રહણા:=પશ્ચ=પસર્ગાત્ પશ્ચેન્દ્રિયાણિ નિષ્ક્રન્તિ=વશ-  
 યન્તીતિ તથોક્તાઃ, ધીરા:=પરીપહોપસર્ગાદ્રિપુ ધૃતિમન્ત, નિર્ગ્રન્થા:=મુનયઃ,  
 ઋજુદર્શિનઃ=ઋજુ=અવક્રમ્ અકુટિલસ્વભાવ યથા સ્યાત્તથા દ્રઘુ શીલ યેપા તે  
 તથોક્તાઃ સરલહૃદયા इत्यर्थः, યદ્વા અર્જતે=ઉપાર્જયતિ=સમ્પાદયત્યવિચલમુલ્લમિતિ  
 ઋજુઃ=સમ્યગ્રત્નત્રયલક્ષણો મોક્ષમાર્ગસ્ત પશ્યન્તિ તન્ત્રીલા ઇતિ ઋજુદર્શિનઃ,  
 મોક્ષમાર્ગસાધકા इत्यर्थ ॥ ૧૧ ॥ ૧૧ ॥

મૂલમ્-આયાવયતિ ગિમ્હેસુ, હેમતેસુ અવાઝડાં ।

વાસાસુ પડિસલીણા, સજયા સુસમાહિયા ॥૧૨॥

- ૧ 'પશ્ચાન્નવપરિજ્ઞાતાઃ' અત્ર આહિતાગ્ન્યાદિત્પાન્નિગ્રાન્તસ્ય પરનિપાતઃ ।  
 ૨ 'પશ્ચનિગ્રહણાઃ' અત્ર નન્પ્રાદિત્વાત્કર્ત્તરિ લ્યુઃ ॥

અવિરતિ આદિકે ભેદસે પાંચ પ્રકારકે હૈ । ડન આસ્રવોકો જ પરિજ્ઞાસે  
 અનર્થોક્તા કારણ જાનકર પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાસે ત્યાગતે હૈ । અર્થાત્  
 અનાર્થીણોકા ત્યાગ કરનેવાલે પાંચ આસ્રવોસે વિરત હો જાતે હૈ, મન  
 વચન કાયરૂપ ત્રીન ગુણિયોસે યુક્ત હોતે હૈ, પૃથિવી આદિ ષટકાયકી  
 યતનામે સાવધાન રહતે હૈ, અર્થાત્ પઙ્ગીવનિકાયકી વિરોધનાસે  
 રહિત હોતે હૈ, પાંચ ઇન્દ્રિયોકા દમન કરતે હૈ, પરીપહ ઓર ઉપસર્ગ  
 સહનેમે દૃઢ એસે મુનિ, સરલ હૃદય હોતે હૈ, અથવા અવિનાશી સુખકો  
 પ્રાપ્ત કરનેવાલે યા મોક્ષમાર્ગકે સાધક હોતે હૈ ॥૧૧॥

કરીને પાંચ પ્રકારના છે એ આસ્રવોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી અનર્થોના કારણરૂપ બાણીને  
 પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી ત્યજે છે, અર્થાત્ અનાર્થીણીને ત્યાગ કરનારાઓ પાંચ  
 આસ્રવોથી વિરત થઈ જાય છે, મન વચન કાયા-રૂપ ત્રણ ગુણિયોથી યુક્ત  
 થાય છે, પૃથિવી આદિ છ કાયની યતનામા સાવધાન રહે છે, અર્થાત્ છ ઇવ  
 નિકાયની વિરાધનાથી રહિત થાય છે, પાંચ ઈન્દ્રિયોનું દમન કરે છે, પરીપહ અને  
 ઉપસર્ગ સહેવામા દૃઢ એવા મુનિઓ સરલહૃદય ણને છે, અથવા અવિનાશી સુખને  
 પ્રાપ્ત કરનારા યા મોક્ષમાર્ગના સાધક ણને છે (૧૧)

उपशम प्रापिताः परीपहरिपत्रो यैस्ते तथोक्ताः,<sup>१</sup> धृतमोहाः=मुह्यति=सदसद्विवेक-  
रहितो भवत्यात्माऽनेनेति मोहोऽज्ञान वृतः=समुज्जितो मोहो यैस्ते तथोक्ताः,  
जितेन्द्रियाः=जितानि=रागद्वेषशक्तस्वविषयप्रवृत्त्युपरोधपूर्वक वशीकृतानि इन्द्रि-  
याणि=चक्षुरादीनि यैस्ते एवविधा महर्षयः=मुनयः सर्वदुःखप्रहीणार्थं='प्रहीण'-  
मिति सौत्रत्वाद् भावक्तान्त गृह्यते, तथा च-सर्वाणि च तानि दुःखानि च सर्व-  
दुःखानि सर्वदुःखाना प्रहीण=परित्याग. सर्वदुःखप्रहीण, सर्वदुःखप्रहीणाय इदं  
सर्वदुःखप्रहीणार्थम् 'अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्य'-मिति  
समासः । यद्वा 'प्रहीणार्थ'-मिति तदर्थः, सर्वदुःखप्रहीणार्थं=शारीरिक-मानसिक-  
निखिलदुःखविनाशार्थं प्रक्रामन्ति=समुत्पुञ्जते स्वीया शक्तिं स्फोरयन्तीत्यर्थः ॥१३॥

सम्प्रत्य-अभ्ययनमुपसहारत्वाद्-'दुष्कराड्' इत्यादि-

मूलम्-<sup>१</sup>दुष्कराड्<sup>२</sup> करित्ताणं,<sup>४</sup> दुस्सहाड्<sup>५</sup> सहेत्तु य ।

केड्<sup>६</sup>त्थ देवलो<sup>७</sup>णसु, केड्<sup>८</sup> सिञ्जति<sup>९</sup> नीरया<sup>१०</sup> ॥१४॥

जया'-दुष्कराणि कृत्वा, दुस्सहानि सोढ्वा च ।

केचिदत्र देवलोकेषु, केचित् सिध्यन्ति नीरजस्काः ॥ १४ ॥

सान्त्वयार्थं-दुष्कराड्=दुष्कर आतापना आदि करित्ताण=करके य=और  
दुस्सहाड्=भायर पुरुषोके असह्य ( परीपह आदि ) सहेत्तु=सह करके केई=

१-'निष्ठान्तस्य न पूर्वनिपात', 'लक्षणहेत्वो क्रियाया.' इति सूत्रनिर्देशेन  
पूर्वनिपातप्रकरणस्याऽनित्यत्वात् ।

सत्-असत्के बोधसे वचित करनेवाले मोहको नष्ट कर देते हैं। इन्द्रियोंकी  
अपने अपने विषयमें जो प्रवृत्ति होती है, उस प्रवृत्तिको रोक कर  
इन्द्रियोंको बशमें करके जितेन्द्रिय होते हैं, ऐसे महर्षि शारीरिक और  
मानसिक समस्त प्रकारके समस्त दुःखोंका विनाश करनेके लिए पराक्रम  
फोड़ते हैं ॥१३॥

सत् असत्ना बोधार्थं वचित कर्नाश मोहने नष्ट करी नाणे ठे छद्रियेनी पोत  
पोताना विषयभा ने प्रवृत्ति थाय छे, ते प्रवृत्तिने रोकने छद्रियेने वश राणीने  
जितेन्द्रिय गने छे, येवा महर्षिओ शारीरिक अने मानसिक गथा प्रक्रान्ना गथा  
दुःखोना विनाश करवाने भाटे पराक्रम उरे ठे (१३)

‘अनुदरा कन्ये’—त्यत्रैव नवोऽल्पार्थकृत्वेन अल्पप्रायणाः, यद्वा प्रावरणरहिताः, वर्षाद्यु=माट्टरुखलेषु, प्रतिसलीनाः=हर्मयदिन्द्रियगोपनतत्परा भवन्तीत्यर्थः । ग्रीष्मादिषु बहुवचनप्रयोगः प्रतिवत्सरमेवकरणसमूचनाय ॥ १२ ॥ १२ ॥

मूलम्—परीसहरिउदता, धूयमोहा जिइदिया ।

सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमति महेसिणो ॥१३॥

छाया—परीपहरिपुदान्ता, धूतमोहा जितेन्द्रिया ।

सर्वदुःखप्रहीणार्थं, प्रक्रामन्ति महर्षिणः ॥१३॥

सान्वयार्थं—परीसहरिउदता=परीपहरूपी शत्रुओंको जीतने वाले धूयमोहा=मोहममताके त्यागी जिइदिया=इन्द्रियोंके दमन करनेवाले महेसिणो=महर्षि-मुनिराज सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा=समस्त दुःखोंके नाशके लिए पक्कमति=शक्ति फोडते है-उद्योग करते है ॥ १३ ॥

टीका—‘परीसह०’ इत्यादि ।

परीपहरिपुदान्ता.=परीपहाः=क्षुधा-पिपासादय एव रिपवः=शत्रवः पराभव-कारित्वात् परीपहरिपवः, दाताः=अन्तर्भावितण्यर्थतया दमिता=निगृहीता

दूर कर शीतकी आतापना लेते हैं, वर्षा ऋतुमे कछुवेकी तरह इन्द्रियोंका गोपन करनेमे तत्पर होते हैं ।

ग्रीष्म, हेमन्त, और वर्षा-शब्द गाथामें बहुवचनान्त है, इससे यह आशय निकलता है कि प्रत्येक वर्षकी ऋतुओंमें ऐसा करते हैं ॥१२॥

‘परीसह०’ इत्यादि ।

क्षुधा पिपासा प्रभृति परीपहरूपी शत्रुओंको पराजित करते हैं ।

वर्षाऋतुमा काश्यानी चेंडे इन्द्रियोनु गोपन करवामा तत्पर रहे छे

ग्रीष्म, हेमन्त अने वर्षा शब्द गाथामा णडु-वचनान्त छे, तेथी जेथे आशय नीकणे छे ते प्रत्येक वर्षानी ऋतुओमा जेम करे छे (१२)

परीसह० इत्यादि लूभ, तग्स, इत्यादि परीपह इपी शत्रुओने पराजित करे छे

छाया-सपयित्वा पूर्वकर्माणि, सयमेन तपसा च ।

सिद्धिमार्गमनुप्राप्ता, स्यायिणः परिनिर्वृताः ॥१५॥ इति ब्रवीमि ।

सान्त्वयार्थ'-सिद्धिमर्गमणुप्पत्ता=मोक्षमार्गमें प्राप्त हुए ताडणो=पट्कायके रक्षक (मुनि) सजमेण=सयमके द्वारा य=और तवेण=तपके द्वारा पुण्वकम्माड=पहले प्रपे हुए कर्मोंको खवित्ता=खपा करके परिनिव्वुडे=मुक्त होते हैं। त्ति वेमि=पूर्ववत् ॥ १५ ॥

इति तृतीयाध्ययनस्य सान्त्वयार्थः ।

टीका-सिद्धि'='अविचलसुखनिष्पत्तिस्तस्या मार्ग'='उपायो ज्ञानादिः सिद्धि-मार्गस्तम् अनुप्राप्ता'='अनुगता', त्रायिणः='पङ्जीवनिकायत्राणपरायणान्तःकरणा-सयमेन=सावयव्यापारविरतिलक्षणेन सप्तदशविप्रेन, च=तथा तपसा=ऊनोदरता-दिरूपेण द्वादशविप्रेन तपश्चरणेन पूर्वकर्माणि=प्राग्भवोपाजितज्ञानावरणीयाद्यष्ट-

जो मुनि कर्म बाकी रहेनेसे देवलोकमें जाते हैं, वे भी देवलोक-सम्बन्धी आयुष्यको भोग कर, वहासे चव कर आर्य क्षेत्रमें मनुष्यजाति, और सुकुलमें जन्म लेकर उसी भवमें सिद्धि प्राप्त करते हैं। इसी विषयको सूत्रकार आगेकी गाथामें कहते हैं-“खवित्ता०” इत्यादि ।

वे मुनि, मोक्षमार्गमें प्राप्त होकर सर्वसावयव्यापारके त्यागरूप सत्रह प्रकारके सयमसे, तथा अनशन ऊनोदर आदि बारह प्रकारके तपसे, पहले भवोंमें बाधे हुए ज्ञानवरण आदि आठ प्रकारके समस्त

वे मुनि कर्म बाकी रहेवाने लीधे देवलोकमें जाते हैं, तेथो पणु देव-लोकसम्बन्धी आयुष्यने भोगवीने, त्याथी यहीने आर्यक्षेत्रमें मनुष्यजाति अने सुकुलमें जन्म लधने अत्र लवमा सिद्धि प्राप्त करे छे आ विषयने सूत्रकार आगजनी गाथामा कडे छे-खवित्ता० इत्यादि

ते मुनि, मोक्ष-मार्गमें प्रवेश करीने सर्वसावयव-व्यापारना त्यागउप सत्रह प्रकारना सयमथी, तथा अनशन अनोदरी आदि बार प्रकारना तपथी पडेवाना लवमा बाधेला ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारना लधा करीने नाश

कोई-कोई देवलोकसु=स्वर्गोंमें (उत्पन्न होते हैं), केई=कोई-कोई नीरज्या=कर्म  
रजसे रहित-मुक्त होकर अत्थ=इसी भयमें सिद्धति=सिद्ध होजाते हैं-मोक्ष  
चले जाते हैं ॥ १४ ॥

टीका-दुःखेन कर्तुं योग्यानि दुष्कराणि=आचरितुमशक्यानि ऋषसा या-  
न्यातापनादीनि कृत्वा=प्रिधाय, च=तथा दुःसहानि=कातरचित्तै सोढुमशक्यानि  
परीषहोपसर्गादीनि सोढ्वा=ससद्य केचित्=मुनयः अशिशुकरमाणः देवलोकेषु=  
सौधर्मादिसुरलोकेषु 'यान्ती'-ति शेष., केचित्=कृतिपये नीरजस्का='कर्मरजो-  
विनिर्मुक्ताः अत्र=अत्रैव भवे सि यन्ति=सिद्धा भवन्ति, शिवपदमासादयन्तीत्यर्थ ।  
अत्र टीकान्तरेषु-अत्रे-त्यस्य 'देवलोकेषु' इत्यनेन सहान्वयकरण सर्वथा प्रमाद-  
विजृम्भितम् ॥ १४ ॥ १४ ॥ १४ ॥

कर्मावशेषेण ये मुनयो देवलोक गच्छन्ति ते तत्र देवायुष्कमुपभुज्यततश्च्युता  
आर्यक्षेत्रे मनुष्यजातौ सुकुले च समुत्पन्न तद्भवमोक्षगामिनो भवन्तीति  
दर्शयितुमाह-'खवित्ता' इत्यादि-

मूलम्-खवित्ता पुत्रकम्माइ, सजमेण तवेण य ।

सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, तायिणो परिनिव्वुडे ॥१५॥ त्ति वेमि॥

उपसहार करते हुए कहते हैं- 'दुकराइ०' इत्यादि ।

पूर्वोक्त गुणोंसे विशिष्ट मुनि दुष्कर आतापना आदि क्रियाओंका  
आचरण करके, तथा कायर पुरुष जिन्हें सहन नहीं कर सकते ऐसे  
परीषह और उपसर्गोंको सह कर अवशिष्ट-कर्मवाले कोई मुनि सौधर्म  
आदि देवलोकमें जाते हैं । जो कर्मरजसे सर्वथा मुक्त होजाते हैं वे  
इसी मनुष्य-भवमें सिद्धिपदको प्राप्त करते हैं । दूसरे टीकाकारोंने 'अत्र'  
शब्दको देवलोकके साथ जोड़ा है वह ठीक नहीं है, 'अत्र' शब्दका  
अर्थ-यहाँ- "इसी भवमें" ऐसा है ॥१४॥

इसे उपसहार करता कडे डे-दुकराइ० इत्यादि

पूर्वोक्त गुणोधी विशिष्ट मुनि दुष्कर आतापना आदि क्रियाओंको आचरण  
करने तथा कायर पुरुषों ने सहन करी शकता नहीं थेवा परीषहो अने उपसर्गों  
सहने अवशिष्ट कर्मवाला कडे मुनि सौधर्म आदि देवलोकमें न्यय थे नेओ  
कर्मरज्योी मर्वथा मुक्त थथ न्तर थे तेओ आ मनुष्यभवमा सिद्धिपदने प्राप्त  
करे थे भीन टीकाकारोओ अत्र शण्दने देवलोक सामे जोडयो थे ते पराणर नहीं  
अत्र शण्दने। अर्थ अर्ही 'आ लवमा' ओयो थे (१४)

## ॥ अथ चतुर्थाध्ययनम् ॥

गत तृतीयाध्ययन सम्प्रति चतुर्थमारभ्यते—पूर्वाध्ययने 'अनाचीर्णानि विहायाऽऽचारे धृतिः सधार्या सयमिने'—त्युक्तम्, आचारश्च पङ्क्तिविधजीवाना यथावस्थितस्वरूपमत्रुध्य तत्सरक्षणपुरस्सर भवत्यतोऽत्र पङ्क्तिविकायानामाऽध्ययने तत्स्वरूप तत्सरक्षणोपाय च प्रतिपादयिष्यन् प्रवचनस्याऽऽप्तोपदिष्टत्व प्रदर्शयति—'सुय मे' इत्यादि,

मूलम्—सुय मे आउस । तेणं भगवया एवमक्खाय-इह खल्लु छज्जीवणियानामज्झयण, समणेण भगवया महावीरेण कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपन्नत्ता, सेय मे अहिज्जिउ अज्झयण धम्म-पन्नत्ती ॥१॥

### चौथा अध्ययन ।

अथ चौथा अध्ययन कहते हैं—

तीसरे अध्ययनमें यह प्रतिपादन किया है कि महापुरुषों को अनाचीर्णों का त्याग करके, आचार-(सयम)-में दृढता रखनी चाहिए । आचारमें दृढता तब ही होती है जब पट्काय के जीवोंका वास्तविक स्वरूप जानकर उनकी रक्षा की जाय, इसलिए इस 'पङ्क्तिविकाय' नामक अध्ययनमें पङ्क्तिविकायका स्वरूप और उसकी रक्षाका उपाय बताते हुए 'यह प्रवचन आस-( भगवान्)-द्वारा उपदिष्ट है' इस बातको कहते हैं—'सुय मे०' इत्यादि ।

### अध्ययन ४ थु

हुवे थोथु अध्ययन कडे ठे —

त्रीन अध्ययनमा अेम प्रतिपादन करवामा आठ्युं छे डे-महापुरुषोअे अनाचीर्णानि त्याग करीने आचार (सयम)मा दृढता राखनी जेधअे आचारमा दृढता त्तारे व आवे छे डे त्तारे पट्कायना छुवोनुं वास्तविक स्वरूप ज्ञाणीने तेमनी रक्षा करवामा आवे, तेदला माटे आ 'पङ्क्तिविकाय' नामना अध्ययनमा छ-कायनु स्वरूप अने तेनी रक्षाना उपायो गतावता 'आ प्रवचन आस (भगवान्) द्वारा उपदिष्ट ठे' अे बातने कडे छे-सुय मे० इत्यादि



विधकर्माणि क्षपयित्वा=क्षय नीत्या परिनिर्वृताः=परि सर्वतोभावेन निर्वृता =  
कर्मजनित-सन्तापराहित्येन शीतलीभूताः 'भवन्ती'-ति शेषः, सिध्यन्तीत्यर्थः ।  
इति ब्रवीमीति पूर्वम् ॥ १५ ॥

इति श्री-विश्वप्रख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धाचरु-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-  
कलापाऽऽलापरु-प्रसिद्ध-गत्र-पत्र-नैकग्रन्थनिर्मापरु-त्रादिमानमर्दक-  
श्रीशाहूत्रपति-कोल्हापुरराजपदक-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूषित-  
कोल्हापुरराजगुरु-मालत्रयचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-  
पूज्य-श्रीघासीलालत्रतिप्रिचिताया श्रीदशवैकालिकसूत्र-  
स्याऽऽचारमणिमञ्जूपाख्याया व्याख्याया तृतीय  
'क्षुल्लकाचारकथा'ऽऽख्यमध्ययन समाप्तम् ॥ ३ ॥



कर्मोंको नाश करके सर्वथा मुक्त हो जाते हैं—कर्मजन्य सतापसे रहित  
होकर परमशीतलीभूत होते हैं अर्थात् सिद्ध हो जाते हैं ।

श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं—हे जम्बू ! तीसरे अध्य-  
यनका जैसा भाव भगवानने फरमाया है, वैसा ही तुमसे कहता हूँ ॥१५॥

इति “क्षुल्लकाचारकथा”-नामक तीसरे  
अध्ययनका हिन्दीभाषानुवाद समाप्त ॥३॥



करीने सर्वथा मुक्त थई नथ छे—कर्मजन्य सतापथी रहित थईने परमशीतली  
भूत थाय छे, अर्थात् सिद्ध थई नथ छे

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे—हे जम्बू ! त्रीन अध्ययनने  
जेवा भाव भगवाने फरमाये छे तेवा हु तने कहु छु (१५)

इति 'क्षुल्लकाचारकथा' नामक त्रीन अध्ययननु  
गुणशती-भाषानुवाद समाप्त (३)



गुरुमाराय शिक्षा लब्धयतः शिष्यस्य शास्त्राभ्ययन सफलीभवतीति द्योतितम् ।

अथवा 'आउसतेण' इत्यस्य 'आवसता' इति सस्कृतम्, तस्यापि 'भये'-  
त्यनेनैव सम्पन्नः, आद् प्राग्वन्मर्यादार्थरुस्तथाच-आ=शिष्योचितमर्यादया वसता=  
भगवदन्तिके निवास कुर्वता मयेत्यर्थः । अनेन शिष्यस्य गुरुकुलनिवासः सूचितः ।

भगवता=भग.=ज्ञान सकृत्पदार्थविषयकम् (१), माहात्म्यम्=अनुपम-  
महनीयमहिमसम्पन्नत्वम् (२), यश =विविधानुकूलप्रतिकूलपरीपहोपसर्गसहनसमुद्-  
भूता जगद्रक्षणप्रज्ञासमुत्था वा कीर्त्ति, (३), वैराग्यम्=क्रोधादिकृपायनिग्रहल-  
क्षणम् (४) मुक्तिः=सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षः (५), रूपम्=सुरासुरनरहृदयहारि  
सौन्दर्यम् (६) वीर्यम्=अन्तरायान्तजन्यमनन्तसामर्थ्यम् (७), श्रीः=त्रातिकर्म

'गुरुकी सेवा करके सीखनेसे ही शास्त्रका अभ्ययन सफल होता है'  
यह सूचित होता है (२), 'आवसता' ऐसी भी छाया होती है, अर्थात्  
शिष्यके योग्य मर्यादा पूर्वक भगवानके समीप रहनेवाले मैंने (सुना),  
इस पदसे गुरुकुलमे निवास करना सूचित किया है ।

यहा 'भग' शब्दके दश अर्थ हैं—(१) समस्त पदार्थोंको विषय करने-  
वाला ज्ञान, (२) अनुपम-महिमा, (३) विविध प्रकारके अनुकूल और  
प्रतिकूल परीपहोंको सहन करनेसे उत्पन्न होनेवाली या ससारकी रक्षा  
करनेवाले अलौकिक ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली कीर्त्ति, (४) क्रोध आदि  
कषायोंका सर्वथा निग्रहरूप वैराग्य, (५) समस्त कर्मोंका क्षयस्वरूप मोक्ष,  
(६) सुर-असुर और नरोंके अन्तःकरणको हर लेनेवाला सौन्दर्य,

सेवा करीने शीघ्रवाणी व शास्त्रनु अध्ययन सङ्ग थाय छे' ओ सूचित थाय छे (२),  
आवसता ओवी पणु छाया वाय छे अर्थात् शिष्यने योग्य मर्यादा पूर्वक भगवान्की  
समीपे रहनाय ओवा मे (माभज्यु), ओ पदथी गुरुकुलमे निवास करवानु  
सूचन करेले छे

अड्डी 'भग' शब्दना दस अर्थ छे (१) जधा पदार्थोंने विषय करवा  
वाणु ज्ञान, (२) अनुपम-महिमा (३) विविध प्रकारना अनुकूल अने प्रतिकूल  
परीपहोने सहन करवाथी उत्पन्न थनारी अथवा जगतनी रक्षा करनारा अड्डी  
किं ज्ञानथी उत्पन्न थनारी कीर्त्ति, (४) क्रोध आदि कषायोना सर्वथा निग्रह  
रूप वैराग्य, (५) जधा कर्मोना क्षयस्वरूप मोक्ष, (६) सुर असुर अने नरोना  
अन्त करणने हरनारु सौंदर्य, (७) अतराय कर्मोना नाशथी उत्पन्न थनारु

छाया—श्रुत मया आयुष्मन् ! तेन भगवता पयमारयातम्—इह खलु पट्टजीव-  
निकायानामाभ्ययन, श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिता म्मारयाता  
सुप्रज्ञता, त्रेयो मेऽध्येतुमाभ्ययन धर्मप्रज्ञप्तिः ॥१॥

सान्ध्यार्थः—आउत्म=हे आयुष्मन् शिष्य ! तेण=उस भगवत्या=भगवानने  
एव=ऐसा अश्रवाय=रुहा है, मे=मने सुय=सुना है, इह=यहा इस प्रवचनमें  
खलु=निश्चय करके उज्जीवणियानामज्जयण=पट्टजीवनिकाय नामका अध्य-  
यन है, (वह) सभणेण=श्रमण भगवत्या=भगवान् कास्सवेण=कश्यपगोत्रीयमहा-  
वीरेण=महावीरने पवेइया=प्रवेदित की है, सुअश्रवाया=सम्यक् प्रकारसे कही है,  
सुपन्नत्ता=सम्यक्तया बताई है। धम्मपन्नत्ती=धर्मप्रज्ञप्ति ( नामक यह ) अज्ज-  
यण=अभ्ययन मे=मुझे अहिज्जिउ=पढ़नेको सेय=कल्याणकारी है। अर्थात्  
भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित इस अभ्ययनका अध्ययन करना मुझे कल्याण-  
कारी है ॥१॥

टीका—एति=गच्छतीत्यायुः=सयमलक्षण नीरुज दीर्घं वा जीवितमस्यास्ती-  
त्यायुष्मान् तत्सम्बुद्धौ हे आयुष्मन् ! गुणवच्छिष्यामन्त्रणमेतत् । अनेन धर्माचरणे  
प्राधान्येनायुषोऽपेक्षा विद्यते इति सूचितम् । तेन=लोकत्रयप्रसिद्धेन,

यथा 'आउसतेण' इत्येकपदस्य 'आजुपमाणेन' इति संस्कृत तस्य मयेत्य-  
नेन सम्बन्धः, तथा च आदिति मर्यादायाम्, आ=शास्त्रश्रवणमर्यादाया जुपमा  
णेन=गुरुन् सेवमानेन मयेत्यर्थः । विधिमन्तरेण हि श्रवणे शास्त्ररहस्य श्रोतु-  
रथोमुखकुम्भस्येव न किञ्चिदप्यन्तः प्रविशति । 'आजुपमाणेने'-ति विशेषणेन

हे आयुष्मन् ! अर्थात् सयमरूपी-जीवनवाले ! नीरोग-जीवनवाले !  
या दीर्घजीवी !, इस सम्बन्धनसे धर्मके आचरणसे आयुष्यकी प्रधानता  
सूचित की है (१), अथवा 'आउसतेण' यह एक पद है, इसकी छाया  
'आजुपमाणेन' होती है, अर्थात् गुरुकी सेवा करनेवाले मैंने, इस पदसे

हे आयुष्मन् ! अर्थात् सयम-रूपी-जीवन-वाला ! नीरोगी-जीवन-वाला !  
या दीर्घजीवी !, आ सम्बन्धनसे धर्मना आचरणसे आयुष्यकी प्रधानता  
सूचित करी है (१), अथवा आउसतेण से जो पद है, उसकी छाया आजुपमाणेन  
से प्रभासे थाय है, अर्थात् गुरुकी सेवा करनेवाले मैंने, आ पदकी 'गुरुकी

‘सा च पङ्जीवनिकाया’ इत्यध्याह्रियते उत्तरवाक्याऽऽकाङ्क्षोत्थानाय, श्रम-  
णेन=श्राम्यति=तपस्यतीति श्रमणस्तेन सार्द्धद्वादशवर्षाणि घोरतपश्चरणाच्छ्रमण  
इति प्रसिद्धिं लब्धवता, भगवता, काश्यपेन=कश्यपगोत्रोत्पत्तेन महावीरेण=  
वीरयति=पराक्रमते मोक्षानुष्ठाने इति वीरः<sup>१</sup>, यद्वा वि=विशेषेण ईरयति=गमयति  
प्रापयति मोक्षं प्रति भव्यजनानिति, वि=विशेषेण ईर्त्ते=गच्छति क्षपिताखिलकूर्मा  
मोक्षमिति, वि=विशेषेण ईरयति=कम्पयति कपायादिपरिपन्थिन इति, वि=विशे-  
पेण ईरयति=प्रक्षिपति घनघातिकर्मपटलमपकरनिकरमिवेति, वि=विशेषेण ईरय-  
ति=प्रेरयति प्रवर्चयति सयमाग्रनुष्ठाने प्राणिन इति वा वीरः,<sup>२</sup> महाँथासौ वीरश्च  
महावीरस्तेन श्रीवर्द्धमानस्वामिनेत्यर्थः । प्रवेदिता=प्रकर्षेण सकलप्राणिगणस्य  
स्वस्वभावापरिणमनरूपेण यथावस्थितार्थद्वारेण च वेदिता=केवलाऽऽलोकेन

१ ‘वीर विक्रान्तौ’ अस्मात्पचाग्रच् ।

२ ‘ईर गतौ कम्पने च’ इत्यादादिकात् ‘ईर क्षेपे’ इति चौरादिकाच्च धातोः  
पचाग्रच् ।

साढे चारह वर्ष तरु घोर तपश्चरण करनेके कारण श्रमण नामसे  
प्रसिद्ध काश्यप गोत्रमें उत्पन्न होनेवाले भगवान् महावीरने, वीर शब्दके  
छह अर्थ हैं, अर्थात्—(१) मोक्षके अनुष्ठानमें पराक्रम करनेवाले, अथवा  
(२) भव्य जीवोंको मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले, या (३) समस्त कर्मोंको  
दूर करके मोक्षको प्राप्त होनेवाले, (४) कपाय आदि शत्रुओंको सर्वथा  
हरानेवाले, (५) चार घन-घातिया कर्मोंको कचरेकी तरह दूर करनेवाले  
(६) प्राणियोंको विशेष-रूपसे सयमके अनुष्ठानमें प्रवृत्ति करानेवाले  
श्रीवर्द्धमान स्वामीने, प्रत्येक प्राणीकी अपनी २ भाषामें परिणत होने-  
वाले इस प्रवचनको केवल ज्ञानसे जानकर प्रतिपादन किया है, पूर्वापर-

साडा गार वर्ष सुधी घोर तपश्चर्या करवाने वाले श्रमण नामथी प्रसिद्ध,  
कश्यप गोत्रमा उत्पन्न थयेला भगवान् महावीरे ( वीर शब्दना छ अर्थ छे ),  
अर्था (१) मोक्षना अनुष्ठानमा पराक्रम करनारा, अथवा (२) लव्य लुवेने  
मोक्षनी प्राप्ति करावनारा, या (३) सर्व कर्मोंने दूर करीने मोक्षने प्राप्त थयेला,  
(४) कपाय आदि शत्रुओंने सर्वथा हटावनारा, (५) चार घनघाती कर्मोंने कच-  
रानी पेटे दूर करी देनारा, (६) प्राणीओंने विशेष-रूपथी सयमना अनुष्ठानमा  
प्रवृत्ति करावनारा अथवा श्री वर्द्धमान स्वामीअे, प्रत्येक प्राणीनी पौत-पौतानी  
भाषामा परिष्कृत थवावाणु आ प्रवचन केवज ज्ञानथी लक्ष्मीने प्रतिपादन कथुं छे,

पटलप्रिघटनजनितानन्तचतुष्टयलक्ष्मीः (८), धर्मः=अपरिगदारकपाटोद्घाटनसाधनम्, श्रुतादिरूपो यथाग्यातचारित्ररूपो वा (९), ऐश्वर्यं=त्रैलोक्याप्रिपत्य (१०) चाऽस्यास्तीति भगवान् तेन तथोक्तेन, एषम्='धम्मो मगलमुक्किट्ट'-मित्याग्राभ्य 'तायिणो परिनिव्वुडे' इत्यन्त यासु पूर्वोपदिष्टरूपेण, आग्यातम्-परस्परासङ्कीर्णतया कथितम्, मे=मया श्रुतम्=श्रवणगोचरीकृतम् । रत्नशब्दो चाग्यालङ्कारे । इह=अस्मिन् प्रवचने, पड्जीवनिकायनामाध्ययनम्=पट्ट च ते पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिरसलक्षणा जीवाश्चेति पड्जीवास्तेषां निकायः=समूहः प्रतिपाद्यत्वेनाऽस्ति यस्यामागमपद्धतौ सा 'पड्जीवनिकाया' तन्नाम यस्य तच्च तदध्ययनं चेति 'पड्जीवनिकायानामाध्ययनम् 'अस्ती'-तिशेषः ।

१ सूत्रे 'छज्जीवणिया' इति पद 'स्वरागस्य' ( ४ । ४ । ६२ ) इति निकायाघटकरूपकारस्य लोपे, 'रुगचजतदपय-या प्रायो लुम्' इति ककारलोपे कृते 'नि+आ+आ+' इति स्थिते 'सर्वे दीर्घः' ( १ । २ । ७ ) इति द्वयोरकारयोस्थाने दीर्घादेशे 'अणो यश्रुति' इति यकारश्रुत्या गत्वेन च सिद्धम् । -

(७) अन्तराद्य कर्मके नाशसे उत्पन्न होनेवाला अनन्त बल, (८) घातिया कर्मरूपी पटलके हट जानेसे प्रादुर्भूत होनेवाली अनन्त-चतुष्टय लक्ष्मी, (९) मोक्षके द्वारको खोलनेका साधन श्रुत-चारित्र-यथाख्यातचारित्ररूप धर्म, (१०) तीन लोकाका आधिपत्य रूप ऐश्वर्य ।

ये सब भगवत्कर्मके अर्थ जिनमे पाये जाते हैं उन्हें भगवान् कहते हैं । हे आयुष्मन् ! 'धम्मो मगलमुक्किट्ट' से लेकर 'तायिणो परिनिव्वुडे' तक सब भगवानने ही कहा है और मैंने सुना है । इस अध्ययनका नाम 'पड्जीवनिकाया' है । वह इसलिए कि इसमें पृथिवी आदि पड्जीव निकायोंका वर्णन है ।

अनन्त गण (८) घाती-कर्म-रूपी पडग लडी नवाथी उत्पन्न धनारी अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी, (९) मोक्षना द्वारने जोलवाना साधन श्रुत-चारित्र-यथाख्यात-चारित्र-रूप धर्म, (१०) त्रलु लोकना आधिपत्य-रूप ऐश्वर्य

आ गधा लग शण्डना अर्थो जेनामा भणी आवे छे तेने लगवान् कडे छे छे आयुष्मन् ! धम्मो मगलमुक्किट्ट थी लधने तायिणो परिनिव्वुडे सुधी गधुय लगवाने न कथु छे अने मे साभणु छे आ अध्ययननु नाम 'पड्जीवनिकाया' छे ते अटला गाटे के अभा पृथिवी आदि छे लवनिकायनुं वर्णन छे

पवेइया=प्रवेदित की है, सुअक्खाया=सम्यक्प्रकार कही है, सुपन्नत्ता=सम्यक्तया उताई है। वह धम्मपन्नत्ती अज्झयणं=धर्मप्रज्ञप्ति अपरनामक अभ्ययन अहिज्जिउ=पढना मे=गुझे सेय=श्रेय है ॥२॥

टीका—सा=पूर्वोक्ता पङ्जीवनिकाया खलु कतरा=किंभूता या अध्ययनं नाम=अध्ययनत्वेन प्रसिद्धेत्यर्थः, या च काश्यपेनेत्यादि व्याख्यातपूर्वम्। 'कुरा' इत्यनेन मोक्षाभिलाषिणा शिष्येण सरुलक्रियाकलापे स्वाभिमानपरित्यागपूर्वक गुरुः प्रष्टव्य इति सूचितम् ॥२॥

सम्प्रति सुधर्मस्वामिन उत्तरयन्ति—'इमा खलु०' इत्यादि।

मूलम्—इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया सुअक्खाया सुपन्नत्ता, सेय मे अहिज्जिउ अज्झयण धम्मपन्नत्ती ॥३॥

उया—इय खलु सा पङ्जीवनिकाया नामाभ्ययन श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिता स्वाख्याता सुप्रज्ञप्ता, श्रेयो मेऽयेतुमध्ययन धर्मप्रज्ञप्ति ॥३॥

सान्वयार्थ—सा=वह छज्जीवणिया=पङ्जीवनिकाया खलु=निश्चय करके इमा=वह है जो अज्झयण नाम=अध्ययन नाम से प्रसिद्ध है, और जो कासवेण=कश्यपगोत्रीय समणेण=श्रमण भगवया=भगवान् महावीरेण=महावीरने

हे भगवान् ! पहले बताई हुई पङ्जीवनिकायाका स्वरूप क्या है ? जो इस अभ्ययनरूपसे कही गई है अर्थात् जिसका इस ममस्त अभ्ययनमें वर्णन किया गया है, और भगवान् महावीर स्वामीने यावत् प्ररूपित किया है ? और धर्मप्रज्ञप्ति अपरनामसे प्रसिद्ध उस अभ्ययन का पढना मेरे लिये कल्याणकर है ? इस प्रश्नसे यह आशय निकलता है कि—सुमुक्षु शिष्यको अहंकार त्यागकर समस्त क्रियाएँ गुरुसे पूछनी चाहिए ॥२॥

श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं—'इमा खलु०' इत्यादि।

हे भगवान् ! पढेला गतावेली पङ्जीवनिकायानु स्वरूप डेवु ठे डे ने आ अभ्ययनरूपथी ढडेवाभा आवी ठे ? अर्थात् नेनु आ आभा अभ्ययनमा वर्णन करवाभा आठ्यु छे, अने भगवान् महावीर स्वामीने नेनु प्रश्नयु कर्तुं ठे ? अने धर्मप्रज्ञप्ति ऐम पीन नामथी ने प्रसिद्ध ठे ते अभ्ययननु अभ्ययन करवु मारे माटे कट्याणकारक ठे ? आ प्रश्नथी ऐवो आशय नीकणे छे डे—सुमुक्षु शिष्ये अड ठारने। त्याग करीने गधी क्रियाओे शुद्धने पूछनी नेछओे (२)

श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर आपे छे डे—इमा खलु० इत्यादि

विलोक्य प्रतिपादिता, स्वाख्याता=सृष्टु-पूर्वापरारिरोधिपुक्तयुक्तिभिरुपपन्नतया-  
ऽऽख्याता=उक्ता, सुप्रज्ञप्ता=सृष्टु-सदेमनुजासुरसमाया दिव्यध्वनिना प्रज्ञप्ता=  
प्ररूपिता, यद्वा धातूनामनेकार्थत्वाद्दुपसर्गसमभिव्याहारबलाच्चेह इपिरासेन्नार्थः,  
तथा च-येनैव रूपेणाऽऽख्याता तेनैव रूपेण प्र=नरूपेण ज्ञप्ता=आसेयिता, अशु-  
मात्रतोऽपि हिंसा परिहरता भगवता यथाकथितमाचरितेत्यर्थः । तदेतदध्ययन  
पङ्जीवनिकायाख्य धर्मप्रज्ञप्तिः=धर्मप्ररूपकम्, यद्वा धर्मप्रज्ञप्तिः=एतदपरसङ्गक  
मे=मम अचेतुम्=अध्यसितु श्रेयः=प्रश्नस्य निःश्रेयसकरमित्यर्थः ॥ १ ॥

एतन्निशम्य जम्बूस्वामी परिपृच्छति-‘कयरा०’ इत्यादि ।

मूलम्-कयरा खलु सा छजीवणिया नामज्झयण समणेण  
भगवया महावीरेणं कासवेण पवेइया सुअम्खाया सुपन्नत्ता, सेयं  
मे अहिज्जिउ अज्झयण धम्मपन्नत्तो ? ॥२॥

छाया—कतरा खलु सा पङ्जीवनिकाया नामाययन श्रमणेन भगवता  
महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिता स्वाख्याता सुप्रज्ञप्ता, श्रेयो मेऽध्येतुम् अध्ययन  
धर्मप्रज्ञप्तिः ? ॥२॥

सान्त्वयार्थः—सा खलु=वह छजीवणिया=पङ्जीवनिकाया कयरा=कौनसी  
है ? जो अज्झयण नाम=अययन नाम से प्रसिद्ध है, जो कासवेण=  
कश्यपगोत्रीय समणेण=श्रमण भगवया=भगवान् महावीरेण=महावीरने  
विरोध-रहित और युक्तियो सहित कहा है, देव मनुष्य और असुरोंकी  
सभा-समवसरण-मे दिव्य ध्वनिसे प्ररूपित किया है। अथवा भगवानने  
जैसा कहा है वैसा ही उन्होंने आचरण किया है ।

इसलिय यह पङ्जीवनिकाया नामक, धर्मकी प्ररूपणा करनेवाला  
अध्ययन मेरे अध्ययन करनेके लिए श्रेय है-कल्याणकारी है ॥१॥

यह सुनकर जम्बूस्वामी प्रश्न करते हैं-‘कयरा खलु०’ इत्यादि ।

पूर्वापर विरोध रहित अने युक्तियो सहित कहु छे, देव मनुष्य अने  
असुरोनी सभा-समवसरणुमा दिव्य ध्वनिथी प्ररूपित कर्तु छे अथवा लगवाने  
वेतु कहु छे वेतु तेमछे आचरण कर्तु छे

तेथी करीने आ पङ्जीवनिकाया नामक धर्मनी प्ररूपणु उरनाइ अध्ययन  
भारे अध्ययन करवाने श्रेय छे कल्याणकारी छे (१)

आ सावणीने जम्बूस्वामी प्रश्न करे छे-कयरा खलु० इत्यादि

तेजश्चित्तवदाख्यातम्, अनेकजीव, पृथक्मत्त्वमन्यत्र शस्त्रपरिणतात् । वायुश्चित्त-  
वानाख्यातोऽनेकजीवः पृथक्सत्त्वोऽन्यत्र शस्त्रपरिणतात्, वनस्पतिश्चित्तवाना-  
ख्यातोऽनेकजीवः पृथक्सत्त्वोऽन्यत्र शस्त्रपरिणतात् ॥४॥

सान्त्वयार्थः—तजहा—वह इस प्रकार है— (१) पुढविकाइया=पृथ्वीकायिक,  
(२) आउकाइया=अपकायिक, (३) तेउकाइया=तेजस्कायिक, (४) वाउकाइया=  
वायुकायिक, (५) वणस्सडकाइया=वनस्पतिकायिक, (६) तसकाइया=तसकायिक ॥

अय आचार्य महाराज एरु-एरुकी सचित्तता वतलाते हैं —

(१) पृथ्वीकाय.

सान्त्वयार्थः—(भगवानने) पुढवी=पृथ्वीको चित्तमत=सचित्त अक्खाया=  
रुही है, वह अणेगजीवा=अनेकजीवाली है—अनेकजीवोका पिण्डभूत है, पुढोसत्ता=  
उसमें अनेकजीव भिन्न-भिन्न रहे हुए हैं, अन्नत्थ=सिवाय सत्यपरिणएण=शस्त्र-  
परिणतके, अर्थात् जहा शस्त्र नहीं लगा है वहाका पृथ्वीकाय सब सचित्त है । इसी  
प्रकार छहों कायोमें समझ लेना चाहिये ॥१॥

(२) अपकाय.

सान्त्वयार्थः—आऊ=जल चित्तमत=सचित्त अक्खाया=रुहा है, वह अणेग-  
जीवा=अनेक जीवोका आश्रयभूत है, पुढोसत्ता=वे अनेक जीव भिन्न-  
रहे हुए हैं, अन्नत्थ=सिवाय सत्यपरिणएण=शस्त्रपरिणतके ॥२॥

(३) तेजस्काय

तेऊ=तेजस्काय चित्तमत=सचित्त अक्खाया=रुहा गया है, वह  
अणेगजीवा=अनेक जीवोका आश्रयभूत है, पुढोसत्ता=वे अनेक जीव भिन्न-  
भिन्न रहे हुए हैं, अन्नत्थ=सिवाय सत्यपरिणएण=शस्त्रपरिणतके ॥३॥

(४) वायुकाय

वाऊ=वायु चित्तमत=सचित्त अक्खाया=रुहा गया है, वह अणेगजीवा=  
अनेक जीवोका आश्रय है, पुढोसत्ता=भिन्न-भिन्न जीवोवाला है, अन्नत्थ=सिवाय  
सत्यपरिणएण=शस्त्रपरिणतके ॥४॥

(५) वनस्पतिकाय

वणस्मई=वनस्पति चित्तमत=सचित्त अक्खाया=रुही गई है, वह अणे-



પવેદ્યા=પવેદિત ફી દે, સુઅગ્ન્યાયા=મમ્યરૂપકાર ફરી દે, સુપલ્લતા= સમ્યપ્તયા વતાર્કે દે । યદ ધમ્મપલ્લત્તી અજ્ઞયણ=ર્મમત્તિ અપરનામક અધ્યયન અહિજિત=પદના મે=મુદ્ધે સેય=ત્રેપસ્કારી દે ॥૩॥

ટીકા—‘ ઇમા ’ ઇત્યનેન ‘ વિનીતવિનેયાય કરુણાસઆરચારુદ્ધયેન ગુણા શાસ્ત્રોપદેશઃ કર્તવ્ય ’ ઇતિ સૂચિતમ્ । અન્યત્પ્રાગ્નન્ ॥૩॥

તામેવ પદ્મજીવનિકાયા સૂત્રકારઃ પ્રદર્શયતિ=‘ તજજા ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—તજજા—પુઠવિકાઝયા, આઝકાઝયા, તેઝકાઝયા, વાઝકાઝયા, વણસ્સઝકાઝયા, તસકાઝયા । પુઠવી ચિત્તમતમક્ખાયા અણેગજીવા પુઠોસત્તા અન્નત્થ સત્થપરિણણં । આઝ ચિત્તમતમક્ખાયા અણેગજીવા પુઠોસત્તા અન્નત્થ સત્થપરિણણં । તેઝ ચિત્તમતમક્ખાયા અણેગજીવા પુઠોસત્તા અન્નત્થ સત્થપરિણણં । વાઝ ચિત્તમતમક્ખાયા અણેગજીવા પુઠોસત્તા અન્નત્થ સત્થપરિણણં । વણસ્સઝ ચિત્તમતમક્ખાયા અણેગજીવા પુઠોસત્તા અન્નત્થ સત્થપરિણણં ॥૪॥

છાયા-તયથા-પૃથિવીકાયિકા\* (૧), અપ્કાયિકા. (૨), તેજસ્કાયિકા (૩), વાયુકાયિકા\* (૪), વનસ્પતિકાયિકાઃ (૫), ત્રસકાયિકા. (૬) । પૃથિવી ચિત્તવત્યાખ્યાતા, અનેરૂજીવા, પૃથ્સત્ત્વા, અન્યત્ર શક્ષપરિણતાયા । આપ-થિત્તવત્ય આખ્યાતા., અનેરૂજીવા\*, પૃથ્સત્ત્વા., અન્યત્ર શક્ષપરિણતાભ્ય ।

હસ પાઠકા વ્યાખ્યાન પહેલે ક્રિયા જા ચુકા હૈ । ‘ ઇમા ’ પદસે યદ સૂચિત હોતા હૈ કિ કરુણાસાગર ગુરુ મહારાજ વિનીત શિષ્યકો શાસ્ત્રકા ઉપદેશ અવશ્ય દેવે ॥૩॥

ઉસ પદ્મજીવનિકાયકો સૂત્રકાર દિખાતે હૈ—‘ તજજા ’ ઇત્યાદિ ।

આ પાઠનુ વ્યાખ્યાન પહેલા કરવામા અવ્યુ છે ઇમા શબ્દથી એમ સૂચિત થાય છે કે કરુણાસાગર ગુરુ મહારાજ વિનીત શિષ્યને શાસ્ત્રનો ઉપદેશ બરૂર આપે (૩)

એ પદ્મજીવનિકાયને સૂત્રકાર દર્શાવે છે—તજજા— ઇત્યાદિ

### પૃથિવીકાયઃ ।

પૃથિવી, ચિત્ત=ચેતનાઽસ્યસ્યા ડતિ ચિત્તવતી=સાત્મિકા આખ્યાતા= કેવલજ્ઞાનાઽઽલોકાવલોકિતારિત્ત્વોકાલોક્લક્ષણેન ભગવતા ઋચિતા ।

નનુ પૃથિવ્યાઃ ઋથ સચેતનત્વમિતિ ચેદાર્કર્ણય-(૧) પૃથિવી સચેતના સ્વાનિત- સ્વનિભૂમ્યાદિષુ તત્સજાતીયાવયવાન્તરદ્વારા પરિપૂર્તિદર્શનાત્ મનુષ્યાદિશરીરવત્, તત્પથા-મનુષ્યશરીરસ્થ પ્રણાદિક સ્વય ધ્રિયતે, એવમેવ સ્વાનિત સ્વનિભૂમ્યાદિક સ્વસમાનજાતીયાવયવૈધ્રિયમાણ પ્રાપ્તસમાનરૂપતા ભજતે તસ્માદ્ ગમ્યતે પૃથિવ્યાઃ સચેતનત્વમ્ ।

### પૃથિવીકાય ।

કેવલ-જ્ઞાનરૂપી આલોકસે સમસ્ત લોક ઓર અલોકકો પ્રત્યક્ષ જાનનેવાલે ભગવાને પૃથિવીકો સચેતન કહા હૈ ।

પ્રશ્ન-પૃથિવી સચેતન કસે હૈ ?

ઉત્તર-(૧) પૃથિવી સચેતન હૈ, ક્યોં કિ ઉસમેં સ્વોદી હુઈ સ્વાન આદિકી ભૂમિ સજાતીય અવયવોસે સ્વયમેવ ભર જાતી હૈ, જો સજાતીય અવયવોસે સ્વય ભર જાતા હૈ વહ સચેતન હોતા હૈ, જૈસે મનુષ્યકા શરીર । અર્થાત્ મનુષ્યકે શરીરમે ઘાવ હો જાતા હૈ વહ ઉસી તરહકે અવયવોસે સ્વય ભર જાતા હૈ, ઉસી પ્રકાર સ્વોદી હુઈ સ્વાન આદિકી ભૂમિ ઉસી પ્રકારકે અવયવોસે ભર જાતી હૈ ઓર પહલેકે સમાન હો જાતી હૈ ડસલિલે પૃથિવી સચેતન હૈ ।

### ‘ પૃથિવીકાય ’

કેવળ-જ્ઞાન-રૂપી પ્રકાશથી બધા લોક અને અલોકને પ્રત્યક્ષ જાણવા- વાળા ભગવાને પૃથિવીને સચેતન કહી છે

પ્રશ્ન-પૃથિવી સચેતન કેવી રીતે છે ?

ઉત્તર-(૧) પૃથિવી સચેતન છે, કારણ કે તેમા ખોદેલી ખાણ આદિની ભૂમિ સજાતીય અવયવોથી પોતાની મેળે ભરાઈ જાય છે જે સજાતીય અવયવોથી સ્વયમેવ ભરાઈ જાય છે તે સચેતન હોય છે, જેમકે મનુષ્યનું શરીર અર્થાત્ મનુષ્યના શરીરમા ઘા પડે છે તે એવી તરેહના અવયવોથી પોતાની મેળે ભરાઈ જાય છે, એ જ રીતે ખોદેલી ખાણ આદિની ભૂમિ એ પ્રકારના અવયવોથી ભરાઈ જાય છે અને પહેલાની જેવી બની જાય છે, તેથી પૃથિવી સચેતન છે

ગજીઘા=અનેક જીવોંકા આધાર છે, પુટોસત્તા=મિષ્ટ-મિષ્ટ જીવવાળી છે, અન્નત્થ=સિરાય સત્થપરિણામ્ણં=શસ્ત્રપરિણતકે ॥

ભાવાર્થ:-પાવો સ્થાયરકાય સચિત્ત છે, તે અનેક જીવરૂપ છે, उन जीवोंका अस्तित्व पृथक्-पृथक् है, । इन कार्योंके जो जो शस्त्र है उनसे यदि ये परिणत हो जायें तो अचित्त हो जाते हैं ॥५॥

ટીકા-તથથા=તદેવ પ્રદર્શયતે-પૃથિગ્રી=ઈઠિનસ્વભાગા સૈવ કાયઃ=શરીર યેપા તે પૃથિગ્રીકાયાસ્ત એવ પૃથિગ્રીકાયિકાઃ ('મિનયાદિત્વાત્સ્વાર્થે ઠક્, તસ્યેવા-દેશઃ' એવમગ્રેડપીય પ્રક્રિયા જ્ઞેયા) । આપ =દ્રવલક્ષણાસ્તા એવ કાયો યેપા તેડપ્ કાયાસ્ત એવાપ્કાયિકાઃ । તેજઃ=ઉષ્ણલક્ષણ તદેવ કાયો યેપા તે તેજસ્કાયિકાઃ । વાયુઃ=ચલનસ્વભાવઃ સ એવ કાયો યેપા તે વાયુકાયિકાઃ । વનસ્પતિકાયિકાઃ=વનસ્પતિઃ=લતાતરુગુલ્માદિલક્ષણઃ કાયો યેપા તે તથોક્તાઃ । ત્રસ્યતિ શીતાતપા-દિજનિતપીડયા ઉદ્વિજતે ઇતિ ત્રસઃ, ત્રસનસ્વભાવઃ કાયો યેપા તથોક્તાઃ । અથ પ્રત્યેક સચિત્તા દર્શયન્નાહ—

કઠિનતા-સ્વભાવવાળી પૃથ્વી હી જિનકા શરીર છે ઉન્હેં પૃથ્વીકાયિક કહતે હેં । દ્રવત્વ-સ્વભાવવાળા જલ હી જિનકા શરીર છે ઉન્હેં અપકાયિક કહતે છે । ઉષ્ણતા-સ્વભાવવાળા તેજ હી જિનકા શરીર છે ઉન્હેં તેજસ્કાયિક કહતે છે । ચલન-સ્વભાવવાળા વાયુ હી જિનકા શરીર છે ઉન્હેં વાયુકાયિક કહતે છે । લતા વૃક્ષ ગુલ્મ આદિ વનસ્પતિ હી જિનકા શરીર છે ઉન્હે વનસ્પતિકાયિક કહતે હેં । જિન્હેં શીત-આતપ (ગર્મી) આદિ-દ્વારા ઉત્પન્ન હુઈ પીડાસે ત્રાસ હોતા છે એસા ચલને-ફિરનેવાળા કાય જિનકા હોતા છે ઉન્હેં ત્રસકાયિક કહતે છે ।

અવ એક-એકકી સચિત્તા દિશ્વલાતે હેં—

૧-કઠિનતા-સ્વભાવવાળી પૃથ્વી જ એનું શરીર છે તેને પૃથ્વીકાયિક કહે છે  
૨-દ્રવત્વ-સ્વભાવવાળું જળ જ એનું શરીર છે તેને અપકાયિક કહે છે ૩-ઉષ્ણતા સ્વભાવવાળું તેજ જ એનું શરીર છે તેને તેજસ્કાયિક કહે છે ૪-ચલન-સ્વભાવ વાળો વાયુ જ એનું શરીર છે તેને વાયુકાયિક કહે છે ૫-લતા, વૃક્ષ શુદ્ધ (શુદ્ધ) આદિ વનસ્પતિ જ એનું શરીર છે તેને વનસ્પતિકાયિક કહે છે ૬-એને ઠડી ગરમી આદિ દ્વારા ઉત્પન્ન થએલી પીડાથી ત્રાસ થાય છે એવી હરવા ફરવાવાળી કાયા એની હોય છે તને ત્રસકાયિક કહે છે

હવે અકેકની સચિત્તા દેખાડે છે

(४) विद्रुमायात्मिका पृथिवी सचित्ता, छेदादौ तत्सजातीयधातुत्पत्ति-दर्शनात् अर्शोऽङ्कुरवत्, तत्रथा=अर्शसोऽङ्कुरे जिन्नेऽपि पुनस्तत्समान एवाङ्कुरः प्रादुर्भवति, एव विद्रुमशिलायात्मिकायाः पृथिव्याः खन्यादौ छेदेऽपि तत्सजातीयधातुभिस्तद्विक्तभागः परिपूर्यते, तस्मात्सिद्ध पृथिव्याः सचित्त्वम् ।

अनेकजीवा=अनेके=बहुवो जीवाः=एकेन्द्रिया यस्या सा तथोक्ता । पृथक्-सत्त्वा=पृथक्-पृथग्भूताः=अङ्गुलासख्येयभागमात्रावगाहनामाश्रित्याऽनेके विभिन्न-रूपेण स्थिताः सत्त्वाः=स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा यस्या सा तथोक्ता 'आरयाता' इति पूर्वोक्तेनान्वयः, भगवता प्ररूपितेति तदर्थः ।

ननु तर्ह्युक्तेस्वरूपाया जीवपिण्डभूताया पृथिव्या गमनागमनादिक्रिया कुर्वता

(४) विद्रुम आदिरूप पृथिवी सचित्त है, क्योंकि उसे काट देने पर भी सजातीय धातुकी उत्पत्ति देखी जाती है, जैसे शरीरमे मसा। अर्थात् जैसे मसाको ऊपरसे काट डालने पर भी फिर उसीके समान अवयव ऊग आते हैं, वैसेही-विद्रुम और शिला आदिको खानमे काट देने पर भी सजातीय स्कन्धोंसे कटा हुआ भाग फिर भर जाता है, अतः पृथिवीकी सचेतनता सिद्ध है ।

वह पृथिवी अनेक जीववाली है और वे स्पर्शनेन्द्रियवाले पृथिवी-कायके जीव अगुलके असख्यातवें-भाग-प्रमाण अवगाहनाको आश्रय करके भिन्न-भिन्न स्वरूपसे स्थित हैं, ऐसा भगवानने कहा है ।

शिष्य गुरुसे पूछता है-हे गुरु महाराज ! जनकि पृथिवी जीवोंका

(४) विद्रुम आदि रूप पृथिवी सचित्त छे, कारण छे तेने काफी नापया छता पण सजातीय धातुनी उत्पत्ति जेवामा आवे छे, जेभडे शरीरमा मसा, अर्थात् जेभडे मसाने उपरथी काफी नापया छता पण तेना समान अवयवो जोगी आवे छे, तेम न विद्रुम अने शिला आदिने भाषणमा काफी नापया छता सजातीय स्कन्धोथी अपेक्षा भाग पाछे बराबर नय छे तेथी पृथिवीनी सचेत नता सिद्ध थय छे

जे पृथिवी अनेक-एव-वाणी छे, अने जे स्पर्शनेन्द्रिय-वाणी पृथिवी कायना एवो आगणना असख्यातमा भाग प्रमाणनी अवगाहनाने आश्रय करीने भिन्न-भिन्न स्वरूपे स्थित छे, जेवु भगवाने कहु छे

शिष्य श्रुने पूछे छे-हे गुरु महाराज ! जे पृथिवी, एवोना पिंड-रूप छे

(૨) યદ્વા-પૃથિવી સજીવા દૈનિકઘર્ષણોપચયસદર્શનાત્ ચરણતલવત્, તથા-ચરણતલ ઘૃપ્યતે પુપ્યતિ ચ તદ્વત્ પૃથિવ્યપિ પ્રત્યહ ઘૃપ્યતે ઉપચીયતે ચ તસ્માત્તસ્યાઃ સજીવત્તમ્ । અથવા—

(૩) વિદ્રુમપાપાણાદિરૂપા પૃથિવી સચેતના કાઠિન્યે સત્યપિ વૃદ્ધ્યાદિદર્શનાત્ શરીરસ્થિતાઽસ્થ્યાદિવત્, તથા-શરીરસ્થિતમસ્થ્યાદિક કમટપૃષ્ઠકઠિન સદ્વપિ ચિત્તવદનુભૂયમાનમુપચય ચ ગચ્છત્ સદ્દશ્યતે । एष વિદ્રુમશિલાગ્રાસ્મિકાયાઃ પૃથિવ્યાઃ કાઠિન્યે સત્યપિ વૃદ્ધ્યાદિક પ્રત્યહ દશ્યતે તસ્માત્તસ્યાઃ સચેતનત્તમ્ । અથ ચ—

(૨) પૃથિવી સચેતન છે, ક્યોંકિ ઉસમેં પ્રતિદિન ઘર્ષણ ઓર ઉપચય દેખા જાતા છે જૈસે પૈરકા તલુવા । અર્થાત્ જૈસે તલુવા ઘિસકર ફિર ભર જાતા છે વૈસે હી પૃથિવી ભી ઘિસ કર ભર જાતી છે ઇસલિએ વહ સજીવ છે । અથવા—

(૩) વિદ્રુમ (મૃગા) પાપાણ આદિ-રૂપ પૃથિવી સચેતન છે, ક્યોંકિ કઠિન હોને પર ભી ઉસમેં વૃદ્ધિ દેખી જાતી છે જૈસે શરીરકી હઢી આદિ । અર્થાત્ જૈસે શરીરકી હઢી આદિ કહુએકી પીઠકી ભોંતિ કઠોર હોને પર ભી સચેતન છે ઓર વઢતી છે ઉસી પ્રકાર વિદ્રુમ, શિલા આદિ રૂપ પૃથિવીમે કઠિનતા હોનેપર ભી વૃદ્ધિ આદિ ગુણ પ્રત્યક્ષસે છે ઇસસે સિદ્ધ છે કિ પૃથિવી સચેતન છે । અથવા—

(૨) પૃથિવી સચેતન છે, અરણ્ય કે તેમા પ્રતિદિન ઘર્ષણ અને ઉપચય જોવામા આવે છે, જેમકે પગનું તળીઉ અર્થાત્ જેમ પગનું તળીઉ ઘસાઈને પાછુ ભરાઈ જાય છે, તેમ પૃથિવી પણ ઘસાઈને ભરાઈ જાય છે, તેથી પૃથિવી સચેતન છે અથવા—

(૩) વિદ્રુમ (પ્રવાળ) પથ્થર આદિ-રૂપ પૃથિવી સચેતન છે, કારણ કે કઠિન હોવા છતા તેમા વૃદ્ધિ જોવામા આવે છે, જેમકે શરીરના હાડકા વગેરે, અર્થાત્ જેમ શરીરના હાડકા વગેરે કાચખાની પીઠની જેમ કઠોર હોવા છતા સચેતન છે અને વધે છે, તેવી રીતે વિદ્રુમ, શિલા આદિ-રૂપ પૃથિવીમા કઠિનતા હોવા છતા તેમા વૃદ્ધિ આદિ ગુણ પ્રત્યક્ષ છે એથી સિદ્ધ થાય છે કે પૃથિવી સચેતન છે અથવા—

कृष्णमृत्तिका शस्त्रमित्यादि, परकायशस्त्रं-जलाग्निगोमयचरणसमर्दनादि । उभय-  
कायशस्त्र-जलादिमिश्रमृत्तिका । एव च शस्त्रपरिणतायाः पृथिव्या अचित्ततया न  
तत्रोच्चार-प्रस्रवणादिक्रियासम्पादने काऽपि क्षतिर्मुनीना समयपालन इति सिद्धम् ।

अप्कायः ।

आपः=मौमाऽऽन्तरिक्षोभयलक्षणाः, चित्तवत्यः=सचेतनाः, आख्याताः=  
भगवताऽभिहिताः, तथाहि-भूमिगता आपः सचेतनाः खातभूमिसजातीयस्वभाव-

पीली मिट्टीका शस्त्र काली मिट्टी है । जल, अग्नि, गोवर तथा पैरोंसे  
रोंदना आदि परकाय शस्त्र है । जल आदिसे मिली हुई मिट्टी उभय-  
काय शस्त्र है ।

इस प्रकार शस्त्रपरिणत पृथिवी अचित्त है, अतः उस पर आहार-  
विहार आदि क्रियाएँ करनेसे मुनियोंके अहिंसाव्रत पालनेमें कुछ भी  
क्षति नहीं होती ।

( अप्काय )

पार्थिव और आकाशीय दोनों प्रकारके जलोंको भी भगवानने  
सचित्त कहा है ।

(१) भूमिमें रहा हुआ जल सचेतन है, क्योंकि खोदी हुई भूमिमें  
सजातीय स्वभाववाला जल उत्पन्न होता है, जैसे मेंढक। भूमिको खोदनेसे  
जैसे मेंढक निकलता है और वह सचेतन होता है उसी प्रकार पानी

पृथिवीनुं स्वकाय-शस्त्र छे, नेम पीणी भाटीनुं शस्त्र काणी भाटी छे न्ण,  
अग्नि, छाणु तथा पण वडे सुद्धु वगेरे परकाय-शस्त्र छे न्ण आदिथी भणेत्ती  
भाटी छे उभयकाय शस्त्र छे

ये रीते शस्त्रपरिणत पृथिवी अचित्त छे, तेथी येनी उपर आहार विहार  
आदि द्वियाओ करवाथी मुनिओना अहिंसा व्रतना पालनमा काठ पणु क्षति  
आवती नथी

अप्काय

पार्थिव अने आकाशीय जेठ प्रकारना न्णने पणु भगवाने सचित्त कहु छे  
(१) भूमिमा रडेहु न्ण सचेतन छे, कारणुके जोहेत्ती न्भीनमा सजातीय  
स्वभाववाणु न्ण उत्पन्न वाय छे, नेमडे देउडे भूमिने जोहवाथी नेम देउडे  
नीकणे छे अने ते सचेतन होय छे, तेम पाणी पणु नीकणे छे तेथी ते पणु

સયમિનામહિંસાપ્રત્ય સંરક્ષણ કથ મતિ ? પ્રત્યુતાડવર્યકરણીયોચારપમ્ત્રનાદિ-  
ક્રિયાયા હિંસૈય મત્યતોડહિંસાપ્રતપાલન યન્યામૃતપાલનવન્મમ્મમ્મમિત્થત  
આહ-‘અન્યત્રે’તિ, શસ્ત્રપરિણતાયા અન્યત્ર=શસ્ત્રપરિણતા પૃથિવી વર્જયિત્વાડ્યા  
પૃથિવી સજીવેત્યર્થ’, શસ્યતે=હિંસ્યતે પ્રાણિગણોડનેનેતિ શસ્ત્ર, તદ્ દ્વિવિધ-દ્રવ્ય-  
માત્રમેદાત્ । તત્ર દ્રવ્યશસ્ત્ર-સ્વપરોમયકાયરક્ષણમ્, માત્રશસ્ત્ર પૃથિવી પ્રતિ દુષ્પ  
ણિહિતમનોવાધાયાત્મકમ્, મૃતમેયાન્યેપા તત્તત્કાયાનામપિ માવશસ્ત્ર વોદ્રવ્યમ્ ।  
સ્વકાયશસ્ત્ર પૃથિવ્યા. સ્વેતરર્ણગન્ધાદિમતી પૃથિવ્યેય, યથા પીતમૃત્તિકાયા:

પિપ્પરૂપ હૈ તો ઉસ પર અહિંસાવ્રતકી રક્ષા કૈસે હોગી ? ઉચ્ચાર-પ્રસ્રવણ  
આદિ ક્રિયાઈ અનિવાર્ય ઈં, ઓર ઇન ક્રિયાઓકે કરનેસે હિંસા અનિ-  
વાર્ય હૈ, ઇસલિણ અહિંસાવ્રતકા પાલન ણેસા હી અસમવ હૈ જૈસા વન્યાકે  
પુત્રકા પાલન કરના ।

ઉત્તર-હૈ શિષ્ય ! શસ્ત્રપરિણત પૃથિવીકે સિવાય અન્ય સમસ્ત  
પૃથિવી સચિત્ત હૈ । જિસસે પ્રાણિયોંકી હિંસા હોતી હૈ ઉસે શસ્ત્ર  
કહતે હૈ ।

શસ્ત્ર ડો પ્રકારકા હૈ-(૧) દ્રવ્ય શસ્ત્ર ઓર (૨) ભાવ-શસ્ત્ર । ડનમેસે  
સ્વ-કાય, પર-કાય ઓર ઉમય-કાયકો દ્રવ્ય-શસ્ત્ર કહતે હૈ । પૃથિવીકે  
વિષયમે મન-વચન-કાયકી દુષ્પરિણતિ કરના ભાવ-શસ્ત્ર હૈ ।  
ઇસી પ્રકાર અન્ય સવ કાયકે જીવોંકે ભાવ-શસ્ત્ર સમજ લેને ઝાહિણ ।  
અપનેસે ભિન્ન વર્ણગન્ધવાલી પૃથિવી હી પૃથિવીકા સ્વકાય-શસ્ત્ર હૈ, જૈસે

તો તેની ઉપર ગમનાગમન આદિ ક્રિયાઓ કરનારા સયમીઓના અહિંસાવ્રતની  
રક્ષા કેમ થશે ? ઉચ્ચાર, પ્રસ્રવણ આદિ ક્રિયાઓ અનિવાર્ય છે, અને એ ક્રિયાઓ  
કરવાથી હિંસા અનિવાર્ય છે, તેથી અહિંસા-વ્રતનું પાલન એવું અસંભવિત છે કે  
એવું વધ્યાના પુત્રનું પાલન કરવું અસંભવિત છે

ઉત્તર-હે શિષ્ય ! શસ્ત્રપરિણત પૃથિવી સિવાયની બધી પૃથિવી સચિત્ત છે  
એ વડે પ્રાણીઓની હિંસા થાય છે, તેને શસ્ત્ર કહે છે

શસ્ત્ર એ પ્રકારના છે (૧) દ્રવ્ય-શસ્ત્ર (૨) ભાવ-શસ્ત્ર એમા સ્વકાય,  
પરકાય અને ઉભયકાયને દ્રવ્ય-શસ્ત્ર કહે છે, પૃથિવીના વિષયમા મન વચન  
કાયાથી દુષ્પરિણતિ કરવી એ ભાવશસ્ત્ર છે એજ રીતે બીજી બધી કાયાના  
જીવોના ભાવશસ્ત્ર સમજ લેવા પોતાથી ભિન્ન વર્ણ-ગન્ધ-વાણી પૃથિવીજ

नन्वेवमपा जीवपिण्डभूततयाऽद्भिर्विना सयमिना सयमयात्रा असभवन्निर्वाहा स्यादित्यत आह-शस्त्रेत्यादि,शस्त्रपरिणताभ्योऽन्यत्र-शस्त्रपरिणता अपो विहायान्या आपः सचित्ता इत्यर्थः। शस्त्र-द्रव्यभावभेदाद्द्विविध, द्रव्यशस्त्र-स्वकायपर-कायो-भयकायस्वरूप, भावशस्त्रम्-अपः प्रति मनोवाक्कायाना दुष्प्रणिहितत्वम् । तत्र स्वकायशस्त्र-तडागातुदरुस्य कृपातुदरुम् । एवविधशस्त्रपरिणत जल व्यवहारतोऽ-शुद्धत्वाद्भगवदनादिष्टत्वाच्च सर्वथैवाग्राह्यम् । परकायशस्त्र-द्राक्षा-शारु-तण्डुल-पिष्ट-दाली-चणकादि । अपा शस्त्रपरिणतत्व च वर्णादिना पूर्वावस्थावैलक्षण्यरूपम् ।

हे गुरो ! जलके विना सयमियोंका निर्वाह नहीं हो सकता और वह जीवोंका पिण्ड है, इसलिए उसको पीने आदिके काममें लानेसे सयमकी रक्षा नहीं हो सकती। ऐसी आशङ्का होनेपर गुरु कहते हैं- हे शिष्य ! शस्त्रपरिणत जलके सिवाय अन्य जल सजीव है। यहां परभी शस्त्र, द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है। उसका कथन पहले किया जाचुका है। यह विशेष समझना चाहिए कि तालाब आदिके जलका कृप आदिका जल स्वकायशस्त्र है। इस प्रकारका शस्त्र-परिणत जल व्यवहारसे अशुद्ध होनेके कारण ग्राह्य नहीं है। तथा ऐसे जलके लेनेमें भगवानकी आज्ञा भी नहीं है।

दाग्ध, शारु, चावल, आटा आदि परकायशस्त्र हैं। जलमें पहले जैसा वर्ण गन्ध आदि था उसका बदल जाना शस्त्रपरिणत होना कहलाना है।

हे गुरु ! जल विना सयमीयोनो निर्वाह यद्य शक्यो नथी अने अने अणुयोनो पिंड उ तेथी तेने पीवा आदिना काममा लेवाथी सयमनी रक्षा नहि थर्ध शक्ये अने आशङ्का यथा गुरु कहे छे हे शिष्य ! शस्त्र-परिणत जल सिवायतु अन्य जल सजिव छे अेमा पशु शस्त्र, द्रव्य अने भावना लेहे उनीने मे प्रदान्ना उ अेनुं ज्यन पडेला उवाभा आन्धु उ विशेष अेटलु समजलु हे तणाव आदिना जलानु इपादिनुं जल अे स्वकाय शस्त्र उ अे प्रदान्नुं शस्त्र-परिणत जल व्यवहारथी अशुद्ध होवाने जान्छे आह्य नथी तथा अेषु जल लेवानी भगवाननी आज्ञा पशु नथी

द्राक्ष, शारु, चाण, आटा इत्यादि परकाय शस्त्र छे जलमा पडेला लेवा वर्ण गंध आदि छता तेनुं बदलार्थ जलु अे शस्त्रपरिणत थलु कहेवाय छे



સમ્ભવાત્ મળ્હરુત્ । અન્નરિક્ષ્વોઽપ્યાપઃ મચેતનાઃ મેઘાદિવિકૃતૌ સ્વાભાવિક-  
સમ્ભૂયસપત્નશીલ્ત્વાન્મીનન્ । યદ્વા-આપઃ સચેતનાઃ, ગ્રીષ્મહેમન્તયોઃ સ્વાભા-  
વિકૃશૈલ્યૌણ્યગાપ્પાશુપલ્મ્બાન્મનુપયશરીરન્, તથા-ધૂમિગૃહ્મિતનરમ્ય શ્રીર  
ગ્રીષ્મે શીતલ હેમન્તે ચોષ્ણ મપતિ, મુરગાઞ્ચ ગાપ્પમુદ્ગન્તિ, ણમેવ ગમીરત  
તદાગઠ્ઠપાદિસ્થસલિલ હેમન્તે સગાપ્પોદ્ગમામુષ્ણતા, ગ્રીષ્મે ચ શીતલ્તા ધત્તે ।  
અનેકજીવાઃ પૃથ્વૃસત્ત્વાઃ, આલ્યાતા ડત્પનેનાન્વયઃ, વ્યાગ્યા ચૈવા પદાના  
મગ્વદ્ગોપ્યા ।

નિકલતા હૈ, અતણ્ય વહ્ ભી સચેતન હૈ । આકાઠાકા ભી જલ સચેતન હૈ,  
કયૌંકિ મેઘાદિ-વિકાર હોને પર સ્વચ્ચ હી ગિરને લગતા હૈ-જૈસે મહલી ।  
અથવા-

(૨) જલ સજીવ હૈ, કયૌંકિ ડસમેં ગ્રીષ્મ ઓર હેમન્ત ઋતુમેં  
સ્વાભાવિક શીતતા ડષ્ણતા ઓર માફ આદિ દેચે જાતે હૈં, જિસમેં  
ગ્રીષ્માદિ ઋતુઓમેં શીતતા આદિ પાચે જાતે હૈ વહ્ સજીવ હોતા હૈ,  
જૈસે મનુષ્યકા શરીર । જૈસે મોચરેમે સ્થિત મનુષ્યકા શરીર ગ્રીષ્મ ઋતુમેં  
શીત ઓર હેમન્ત ઋતુમે ડષ્ણ હોતાં હૈ, તથા હેમન્ત ઋતુમેં મુંહસે  
માફ નિકલતી હૈ, વૈસેહી સ્ત્રૂવ મહરે તાલાવ યા કુળકા જલભી હેમન્તમેં  
માફવાલા ઓર ડષ્ણ હોતા હૈ તથા ગ્રીષ્મમેં શીતલ હોતા હૈ ।

અનેકજીવ ઓર પૃથ્વૃસત્ત્વ આદિ પદોકા વ્યાખ્યાન પહ્લે કહે  
હુણ પૃથિવીકાયકે આલાપકકે સમાન સમજ્ઞના ચાહિણ ।

સચેતન ઇ આકાશનુ જળ પશુ સચેતન ઇ, કારણ કે મેઘાદિ-વિકાર યવાથી સ્વચ્ચ  
પડવા લાગે ઇ, જેમકે માહલી અથવા-

(૨) જળ સજીવ ઇ, કારણ કે તેમા ગ્રીષ્મ અને હેમન્ત ઋતુમા સ્વાભાવિક  
શીતતા ડષ્ણતા અને ગાદ્ આદિ જ્વેવામા આવે ઇ જેમા ગ્રીષ્માદિ ઋતુઓમા  
શીતળતા આદિ જણાઈ આવે ઇ તે સજીવ હોય ઇ, જેમકે માણસનું શરીર જેમ  
ભોયરામા રહેલા માણસનું શરીર ગ્રીષ્મ-ઋતુમા શીતલ અને હેમન્ત-ઋતુમા ગરમ  
હોય ઇ તથા હેમન્ત-ઋતુમા મ્હોમાથી ગાદ્ (વરાળ) નીકળે ઇ, એજ રીતે  
ખૂળ ઉડા તળાવ યા કુવાનુ જળ પશુ હેમન્ત ઋતુમા ગાદ્વાળુ અને ડષ્ણ હોય  
ઇ તથા ગ્રીષ્મમા શીતળ હોય ઇ

અનેક જીવ તથા પૃથ્વૃસત્ત્વ આદિ શબ્દોનુ વ્યાખ્યાન પહેલા કહેલા પૃથિવી  
કાયના આલાપકની જેમ સમજ્ઞુ

अङ्गारादीना प्रकाशनशक्तिर्यावदात्मसयोगभाविनी देहस्थत्वात्, खद्योत-  
शरीरपरिणामवत् ।

अङ्गारादीना तापोऽपि आत्मसयोगसद्भावहेतुकः, शरीरस्थत्वात् ज्वरतापवत्,  
न देनेसे हानि (मन्दता) होती है, जैसे मनुष्यका शरीर । अर्थात् मनु-  
ष्यका शरीर आहार देनेसे बढ़ता और न देनेसे घटता है, अतः वह  
सचेतन है । इसी प्रकार तेजस्काय भी ईंधन देनेसे बढ़ती और न देनेसे  
घटती है, अतः वह भी सचेतन है ।

अगार आदिकी प्रकाशन शक्ति जीवके सयोगसे ही उत्पन्न  
होती है, क्योंकि वह देहस्थ है, जो जो देहस्थ प्रकाश होता है वह वह  
आत्माके सयोगके ही निमित्तसे होता है, जैसे जुगनूके शरीरका प्रकाश।  
जुगनूके शरीरमें प्रकाश तब तक ही रहता है जब तक उसके साथ  
आत्माका सयोग रहता है ।

इसी प्रकार अगार आदिका प्रकाश भी तब तक ही रहता है  
जबतक उसमें आत्मा रहती है ।

अगार आदिका ताप भी आत्माके सयोगके ही कारण है क्योंकि वह  
शरीरस्थ है, जितने शरीरस्थ ताप होते हैं वे सब आत्माके निमित्तसे ही

तेनी वृद्धि अने न आपवाथी हानि ( मंदता ) थाय छे, जेभडे मनुष्यनुं शरीर  
अर्थात्-मनुष्यनुं शरीर आहार आपवाथी वधे छे अने न आपवाथी धटे छे,  
तेथी ते सचेतन छे, जेए रीते तेजस्काय पणु ईंधन आपवाथी वधे छे अने  
न आपवाथी धटे छे, तेथी त सचेतन छे,

अगारा आदिनी प्रकाशन-शक्ति एवना सयोगथी ए उत्पन्न थाय छे  
कारणु के जे देहस्थ छे, जे जे देहस्थ प्रकाश होय छे ते ते आत्माना सयोगना ए  
निमित्तथी होय छे, जेभडे आगीयाना शरीरने प्रकाश आगीयाना शरीरमा प्रकाश  
त्यासुधी ए रहे छे के न्यासुधी तेनी साथे आत्माना सयोग रहे छे, जे रीते  
अगारा आदिने प्रकाश पणु त्यासुधी ए रहे छे के न्यासुधी तेमा सचेतन रहे छे

अगारा आदिने ताप पणु आत्माना सयोगना ए कारणु छे, जेभडे  
ते शरीरस्थ छे जेएवा शरीरस्थ ताप होय छे ते एथा आत्माना निमित्तथी ए

તત્ર-વર્ણતો ધૂસરત્યાદિરૂપમ્, ગન્ધતમ્તત્તદ્વસ્તુગમ્યનિયત્વમ્, રસતમ્તિસ્ત-કદુ  
 કપાયત્વાદિરૂપમ્, સ્પર્ગતઃ સ્નિગ્ધરુક્ષત્યાદિરૂપમ્ । ઇત્યમુક્તપ્રકારદ્રાક્ષાદિપાવનજલ  
 પ્રાસુકૃત્વાન્યુનિગ્રાહ્યમ્ । ઉપલક્ષણમેતદગ્નિશસ્ત્રપરિણતમ્પોદકસ્યાપિ । મસ્મિશ્ર  
 જલમગ્રાહ્ય, તત્ર મિશ્રશક્ષાયાઃ સદ્ગ્રાયાત્, શાસ્ત્રે કચિદપ્યપતિપાદિતત્યાચ્ચ । ઉભય-  
 કાયશસ્ત્ર-મૃત્તિકામિશ્રજલમ્ । ભાવશસ્ત્રમુક્તસ્વરૂપમેવેતિ ।

તેજસ્કાયઃ ।

તેજશ્ચિત્તત્ત્વ=સચેતનમ્ આરુયાતમ્=ઉક્તમ્, તથાદિ-

તેજશ્ચત્તનાત્ત્વ ઇન્ધનાગ્રાહારોપાદાનદાનાભ્યા તદ્વૃદ્ધિમાન્યોપલભ્યાત્,  
 મનુષ્યાદિશરીરવત્ ।

જૈસે-ધૂસર વર્ણ હો જાના, જો વસ્તુ ઉસમેં ઢાલી ગઈ હો ઉસકી  
 ગન્ધ આને લગના, તીર્યા, કદુવા, કપાયલા આદિ રસ હો જાના,  
 સ્નિગ્ધ યા રુક્ષ આદિ સ્પર્શ હો જાના । ડસ પ્રકાર યહ દાલ, શાક,  
 ચાવલ, આટા, દાલ, વેસન આદિકા ધોવન પ્રાસુક હોનેસે મુનિકે લિપ  
 ગ્રાહ્ય હૈ । યહ તો ઉપલક્ષણ હૈ, ડસસે યહ મી સમજના ચાહિયે કિ-  
 અગ્નિશસ્ત્રપરિણત અર્થાત્ ઉષ્ણ જલ મી મુનિકો ગ્રાહ્ય હૈ । રાલ્કા પાની  
 ગ્રાહ્ય નહી હૈ, ક્યોંકિ ઉસમેં મિશ્રકી શક્ષા રહતી હૈ । મૃત્તિકા આદિસે  
 મિલા હુઆ જલ ઉભયકાય શસ્ત્ર હૈ । ભાવશસ્ત્ર પહેલે કહ ચુકે હૈ ।

( તેજસ્કાય )

તેજસ્કાયકો મી ભગવાને સચેતન કહા હૈ, યહી કહતે હૈ-

તેજસ્કાય મજીવ હૈ, ક્યોંકિ ઇન્ધન આદિ આહાર દેનેસે ઉસકી વૃદ્ધિ ઓર

એમકે-ધુ ધળા વર્ણતુ થઈ જવુ, એ વસ્તુ તેમા નાખવામા આવી હોય તેની  
 ગંધ આવવા લાગવી, તીર્યો કડવો કસાયલો આદિ રસ થઈ જવો, સ્નિગ્ધ યા  
 રુક્ષ આદિ સ્પર્શ થઈ જવો એ પ્રકારે એ દ્રાક્ષ, શાક, ચોખા, આટો, દાળ,  
 વેસણુ આદિનુ ધોવણુ પ્રાસુક હોવાથી મુનિને માટે ગ્રાહ્ય છે એ ઉપલક્ષણ છે,  
 એથી એમ પણ સમજવુ જોઈએ કે- અગ્નિશસ્ત્ર-પરિણુત અર્થાત્ ઉષ્ણ જળ પણ  
 મુનિને ગ્રાહ્ય છે રાખતું પાણી ગ્રાહ્ય નથી, કારણ કે એમા મિશ્રની શકા રહે છે  
 માટી આદિથી મળેલુ જળ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે (૨) ભાવશસ્ત્ર પહેલે કહી દીધુ છે

( તેજસ્કાય )

તેજસ્કાયને પણ ભગવાને સચેતન કહી છે, એ હવે કહે છે -

તેજસ્કાય સજીવ છે, કારણ કે લાકડા ( ઈંધણુ ) આદિ આહાર આપવાથી

अङ्गारादीना प्रकाशनशक्तिर्यावदात्मसयोगभाविनी देहस्यत्वात्, स्वयत्त-  
शरीरपरिणामवत् ।

अङ्गारादीना तापोऽपि आत्मसयोगसद्भावहेतुरुः, शरीरस्यत्वात् ज्वरतापवत्, न देनेसे हानि (मन्दता) होती है, जैसे मनुष्यका शरीर । अर्थात् मनुष्यका शरीर आहार देनेसे बढ़ता और न देनेसे घटता है, अतः वह सचेतन है । इसी प्रकार तेजस्काय भी ईंधन देनेसे बढ़ती और न देनेसे घटती है, अतः वह भी सचेतन है ।

अगार आदिकी प्रकाशन शक्ति जीवके सयोगसे ही उत्पन्न होती है, क्योंकि वह देहस्थ है, जो जो देहस्थ प्रकाश होता है वह वह आत्मोके सयोगके ही निमित्तसे होता है, जैसे जुगनूके शरीरका प्रकाश । जुगनूके शरीरमें प्रकाश तब तक ही रहता है जब तक उसके साथ आत्माका सयोग रहता है ।

इसी प्रकार अगार आदिका प्रकाश भी तब तक ही रहता है जबतक उसमें आत्मा रहती है ।

अंगार आदिका ताप भी आत्माके सयोगके ही कारण है क्योंकि वह शरीरस्थ है, जितने शरीरस्थ ताप होते हैं वे सब आत्माके निमित्तसे ही

तेनी वृद्धि अने न आपवाथी हानि ( मन्दता ) थाय छे, नेमडे मनुष्यनुं शरीर अर्थात्-मनुष्यनुं शरीर आहार आपवाथी वधे छे अने न आपवाथी घटे छे, तेथी ते सचेतन छे, अने रीते तेजस्काय पणु ईंधन आपवाथी वधे छे अने न आपवाथी घटे छे, तेथी ते सचेतन छे,

अगारा आदिनी प्रकाशन-शक्ति एवना सयोगथी न उत्पन्न थाय छे कारणु के अे देहस्थ छे, ने ने देहस्थ प्रकाश डाय छे ते ते आत्माना सयोगना न निमित्तथी डाय छे, नेमडे आगीयाना शरीरनेा प्रकाश आगीयाना शरीरमा प्रकाश त्यासुधी न रहे छे के न्यासुधी तेनी माथे आत्माना सयोग रहे छे, अे रीते अगारा आदिनेा प्रकाश पणु त्यासुधी न रहे छे के न्यासुधी तेमा सचेतन रहे छे

अगारा आदिनेा ताप पणु आत्माना सयोगना न कारणु छे, केमडे ते शरीरस्थ छे नेटला शरीरस्थ ताप डाय छे ते थधा आत्माना निमित्तथी न

તત્ર-વર્ણતો ધૂસરત્યાદિરૂપમ્, ગન્ધતમ્નાત્તડ્મ્તુસમ્પન્નિયત્તમ્, રસતમ્તિક્ત-વદુ  
કપાયત્વાદિરૂપમ્, સ્પર્ગતઃ સ્નિગ્ધરૂક્ષત્યાદિરૂપમ્ । ઇત્યમુક્તપમાર ટ્રાસાદિગ્રાવનજલ  
પ્રાસુકત્યાન્મુનિગ્રાગમ્ । ઉપલક્ષણમેતદગ્નિશસ્ત્રપરિણતસ્યોદકસ્યાપિ । મસ્મમિષ્ર  
જલમગ્રાહ્ય, તત્ર મિષ્રશક્કાયાઃ સદ્ગ્રાયાત્, શાસ્ત્રે ક્વચિદ્વ્યપતિપાદિતત્યાચ્ચ । ઉભય  
કાયશસ્ત્ર મૃત્તિકામિષ્રજન્મ્ । ભાવશસ્ત્રમુક્તસ્વરૂપમેવેતિ ।

તેજસ્કાયઃ ।

તેજશ્ચિત્તવત્=સચેતનમ્ આરૂપ્યાતમ્=ઉક્તમ્, તથાદિ-

તેજશ્ચતનાત્ત ઇન્ધનાગ્રાહારોપાદાનઠાનાભ્યા તદ્ગદ્ધિમાન્યોપલમ્માત્, મનુષ્યાદિશરીરત્ ।

જૈસે-ધૂસર વર્ણ હો જાના, જો વસ્તુ ઉસમે ડાલી ગઈ હો ઉસકી ગન્ધ આને લગના, તીર્યા, કદુવા, કપાયલા આદિ રસ હો જાના, સ્નિગ્ધ યા રૂક્ષ આદિ સ્પર્શ હો જાના । ઇસ પ્રકાર યહ દાલ, શાક, ચાવલ, આદા, દાલ, વેસન આદિકા ધોવન પ્રાસુક હોનેસે મુનિકે લિપ ગ્રાહ્ય હૈ । યહ તો ઉપલક્ષણ હૈ, ઇસસે યહ મી સમજ્જના ચાહિયે કિ- અગ્નિશસ્ત્રપરિણત અર્થાત્ ઉષ્ણ જલ મી મુનિકો ગ્રાહ્ય હૈ । રાગ્વકા પાની ગ્રાહ્ય નહી હૈ, ક્યોંકિ ઉસમે મિષ્રકી શક્કા રહતી હૈ । મૃત્તિકા આદિસે મિલા હુઆ જલ ઉભયકાય શસ્ત્ર હૈ । ભાવશસ્ત્ર પહેલે કહ ચુકે હૈ ।

( તેજસ્કાય )

તેજસ્કાયકો મી ભગવાને સચેતન કહા હૈ, યહી કહતે હૈ—  
તેજસ્કાય સજીવ હૈ, ક્યોંકિ ઇન્ધન આદિ આહાર દેનેસે ઉસકી વૃદ્ધિ ઓર

એમકે-ધુધળા વર્ણનું થઈ જવું, જે વસ્તુ તેમા નાખવામા આવી હોય તેની ગંધ આવવા લાગવી, તીખો કડવો કસાયલો આદિ રસ થઈ જવો, સ્નિગ્ધ યા રૂક્ષ આદિ સ્પર્શ થઈ જવો એ પ્રકારે એ ટ્રાક્ષ, શાક, ચોખા, આટો, દાળ, વેસણ આદિનું ધોવણુ પ્રાસુક હોવાથી મુનિને માટે ગ્રાહ્ય છે એ ઉપલક્ષણ છે, એથી એમ પણ સમજવું જોઈએ કે- અગ્નિશસ્ત્ર-પરિણત અર્થાત ઉષ્ણ જળ પણ મુનિને ગ્રાહ્ય છે રાખનું પાણી ગ્રાહ્ય નથી, કારણ કે એમા મિષ્રનો શકા રહે છે માટી આદિથી મળેલું જળ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે (૨) ભાવશસ્ત્ર પહેલે કહી દીધું છે

( તેજસ્કાય )

તેજસ્કાયને પણ ભગવાને સચેતન કહી છે, એ હવે કહે છે —

તેજસ્કાય સજીવ છે, કારણ તે લાકડા ( ઈંધણ ) આદિ આહાર આપવાથી

शस्त्रपरिणताचित्ताग्निकायमाह-उष्णमन्न-कृगरौदनादि, उष्णपानक शकौ-  
दनादीनामवस्त्रावणादि (ओसामण इति भाषा), तप्तेष्टका सिकृतादि च, एतेष्वग्नि-  
सयोगनिष्पाद्यत्वादचित्ताग्निकायशब्दो व्यपदिश्यते, क्षुधाद्युपशमनार्थं ग्राह्योऽसौ ।

वायुकायः ।

वायुश्चित्तवानारयातः । कथमस्य सचेतनत्वमिति चेत्तत्प्रमाणाद् गृहाण,  
तथाहि-वायुश्चेतनवान् अनन्यप्रेरिताऽनियततिर्यग्गमनच्चात्, हरिणगवयादिवत्,  
स च 'अनेकजीवः, पृथक्सत्त्वः आरयातः, शस्त्रपरिणतादन्यत्र' इत्यादिकाना  
प्राग्बद्धाख्या बोद्धव्या ।

खिचड़ी, भात आदि उष्ण अन्न, शाकका ओसामण और चावलौका  
मण्ड आदि उष्ण पान, तपी हुई ईंट, बालू आदि शस्त्र-परिणत अचित्त  
अग्निकाय कहलाते हैं । ये सब अग्निके सयोगसे निष्पन्न होते हैं  
इसलिए इनमें अचित्त अग्निकाय शब्दकी प्रवृत्ति होती है ।

( वायुकाय )

वायुकायको भी भगवानने सचित्त कहा है । वायु कैसे सचित्त  
है सो कहते हैं । वायु सचेतन है, क्योंकि दूसरेकी प्रेरणाके बिना  
अनियत रूपसे तिर्यक्गमन करनेवाला है, जैसे हिरन यारोझ (गवय) ।

अनेकजीव और पृथक्सत्त्व आदिकी व्याख्या पहलेके समान  
समझनी चाहिए ।

पिचडी, भात आदि जिनु अन्न, शाकनु ओसामण अने थो मनु ओसा-  
मण, आदि जिनु पान, तपेली ईंट, गरम देती आदि शस्त्रपरिणत अचित्त  
अग्निकाय उडेवाय छे ओ गंधा अग्निना सयोगथी निष्पन्न थाय छे, तेथी  
ओभा अचित्त अग्निकाय शब्दनी प्रवृत्ति थाय छे (३)

( वायुकाय )

वायुकायने पणु लगवाने सचित्त कडी छे वायु डेवी गीने सचित्त छे ते उडे छे -  
वायु सचेतन छे, कारणु डे धीननी प्रेरणा बिना अनियतरूपे तिर्यक् गमन  
करनासे छे, जेवु डे डरणु अथवा शैल (नीलगाय)

अनेक एव अने पृथक्सत्त्व आदिनी व्याख्या पहिलानी पेठे समझनी

ન हि क्वचिदपि विरहितात्मानो ज्वरतापोष्णगात्राः सश्रूयन्ते न रोपलभ्यन्ते, एव  
 मेव निस्तेजस्काद्गारादितोऽणुमात्रोऽपि तापो न जन्यते, तस्माद् यावदात्मसयोगः  
 भाव्येवाद्गारादीना तापजनकमयतः सिद्ध तेजसः सचेतनत्वम् । ‘अनेकजीव,  
 पृथक्सत्त्वम्’ इति प्राग्बत्, ‘आख्यात’-मित्यनेनायः, ‘शस्त्रपरिणतादन्यत्र’  
 इति च पूर्ववत् । शस्त्रस्वरूपमाह, -तत्र स्वकायशस्त्र-करीपाग्नेस्तृणाग्निः, एवविषशस्त्र-  
 परिणतोऽप्यग्निः सर्वयैवाग्राहो व्यस्यारतोऽप्युद्धत्वात् । परकायशस्त्र-जलमृत्तिका-  
 दि । उभयकायशस्त्रमुष्णोदकादि । भायशस्त्रमप्रिकाय प्रति मनसो दुष्प्रणिधानम् ।

होते हैं, जैसे ज्वरके ताप। आत्मारहित शरीर (शय-मुर्दा) में कभी  
 ज्वरका ताप नहीं सुना जाता न उपलब्ध होता है । इसीप्रकार निस्तेजस  
 अंगारमें अणुमात्र भी ताप नहीं होता, अतएव सिद्ध है कि अंगार  
 आदिमें तापजनन शक्ति जब-तक आत्मा रहती है तब तक होती है,  
 इसलिए तेजस्काय सचेतन है । ‘अनेकजीव और पृथक्सत्त्व’ आदि  
 पदोंकी व्याख्या पहलेकी भाँति है ।

यह भी समझ लेना चाहिये कि वही तेजस्काय सचित्त है जो  
 शस्त्र-परिणत न हो । तेजस्कायके शस्त्र ये हैं—जैसे छाणाकी अग्नि  
 शस्त्र तृणाकी अग्नि है । इस प्रकारकी शस्त्रपरिणत अग्नि ग्रह्य नहीं है,  
 क्योंकि वह व्यवहारसे अशुद्ध है । तथा इसके ग्रहण करनेमें भगवानकी  
 आज्ञा भी नहीं है । जल मृत्तिका आदि पर-काय शस्त्र है । उष्णजल  
 उभयकाय शस्त्र है ।

હોય છે, જેમકે જ્વરનો તાપ આત્મારહિત શરીર ( મુર્દુ )મા કદિ જ્વરનો  
 તાપ નથી સાબળવામા આવતો કે નથી જોવામા આવતો, એ રીતે નિસ્તેજસ  
 અગારામા અણુમાત્ર પણ તાપ હોતો નથી તેથી સિદ્ધ પ્રાય છે કે અગારા  
 આદિમા ન્યાસુધી આત્મા હોય છે ત્યાસુધી જ તાપ-જનન-શક્તિ રહે છે તેથી  
 તેજસ્કાય સચેતન છે ‘અનેક-જીવ અને પૃથક્-સત્ત્વ’ આદિ શાબ્દોની વ્યાખ્યા  
 પહેલાની જેમ છે

એ પણ સમજ લેવું જોઈએ કે જોજ તેજસ્કાય સચિત્ત છે કે જે શસ્ત્ર  
 પરિણત ન હોય તેજસ્કાયના શસ્ત્ર આ છે—જેમ છાણાના અગ્નિનું શસ્ત્ર  
 તરણુનો અગ્નિ છે એ પ્રકારનો શસ્ત્રપરિણત અગ્નિ ગ્રાહ્ય નથી, કારણ કે તે  
 વ્યવહારથી અશુદ્ધ છે વળી તેને અહણ કરવાની ભગવાનની આજ્ઞા પણ તથી  
 જણ, માટી વગેરે પરકાય-શસ્ત્ર છે ઉગ્ર પ્રાણી ઉભયક

पूरितोऽपि मिश्रत्वादग्राह्य एव सचित्तवत् । (४)

वनस्पतिकायः ।

वनस्पतिश्चित्तवान् आख्यातः, व्याख्यातु पूर्ववत् । चैतन्यवच्चसिद्धिश्चेत्यम्—  
वनस्पतिः सचेतनः, बाल्यावस्थासन्दर्शनात्, छेदन-भेदनादिभिर्मूर्च्छनादि-  
दर्शनाच्च मनुष्यशरीरवत् । शेष पूर्ववत् । शस्त्र द्रव्यभाषभेदाद्विविध, तत्र द्रव्यशस्त्रं-  
स्वपरोभयकायात्मकम् । स्वकायशस्त्रं—यष्ट्यादि । परकायशस्त्रं पापाणाऽसिर्कर्तार्यादि,

अचित्त वायु साधुओंको ग्राह्य है, किन्तु दूसरे प्रहरका मिश्र वायु  
मचित्त वायुकी तरह अग्राह्य है । (४)

( वनस्पतिकाय. )

वनस्पतिकायको भी भगवानने सचित्त कहा है । वनस्पति सचित्त  
है, क्योंकि उसमें बाल्यावस्था आदि, तथा छेदन भेदन करनेसे म्लानता  
आदि सचेतनके गुण देखे जाते हैं, जैसे मनुष्यका शरीर । अर्थात्  
बाल्य-तरुण आदि अवस्थाएँ और छेदन-भेदन आदि करनेसे म्लानता  
होनेके कारण जैसे मनुष्य-शरीर सचेतन है वैसेही वनस्पतिकाय भी  
सचेतन है । 'अनेकजीव' आदि पदोंका व्याख्यान पहलेकी भाँति  
जानना चाहिए ।

वनस्पति-कायके शस्त्र दो प्रकारके हैं—(१) द्रव्यशस्त्र और  
(२) भावशस्त्र । द्रव्य-शस्त्र स्वकाय, परकाय और उभयकाय है, लकड़ी  
आदि स्वकाय शस्त्र है । लोह पत्थर आदि परकाय शस्त्र हैं, परशु

किन्तु भीष्म प्रहरको मिश्रवायु सचित्तवायुनी पेंडे अग्राह्य छे (४)

( वनस्पतिकाय )

वनस्पतिकायने पशु लगवाने सचित्त कही छे

वनस्पति सचित्त छे, कारण छे तेभा भाट्यावस्था आदि तथा छेदन लेहन  
उत्पाधी म्लानता आदि सचेतनना गुण लेवामा आवे छे, लेभडे मनुष्यनु शरीर,  
अर्थात् भाट्य-तरुण आदि अवस्थाओ अने छेदन लेहन आदि उत्पाधी म्लानता  
थवाने कारणे लेभ मनुष्यनु शरीर सचेतन छे तेभ वनस्पतिकाय पशु सचेतन छे  
अनेक-शुभ' आदि शण्डेनु व्याख्यान पड़ेवानी पेंडे नलषु

वनस्पतिकायना शस्त्र छे प्रजाणा छे (१) द्रव्यशस्त्र अने (२) भावशस्त्र  
द्रव्यशस्त्र स्वकाय, परकाय अने उभयकाय छे लकड़ी आदि स्वकायशस्त्र छे लोह



શસ્ત્ર ધાસ્ય દ્રવ્ય-ભાવ-ભેદાદ્વિધિ, તત્ર દ્રવ્યશસ્ત્ર 'સ્વ પર તદુભય-કાય-ભેદા-  
સ્ત્રિવિધમ્ । સ્વકાયશસ્ત્ર-પૌરસ્ત્યાન્નિયાયોઃ પાશ્ર્વાત્યાદિત્રાયુઃ । પરકાયશસ્ત્રમનલાદિ ।  
ઉભયકાયશસ્ત્રમનલાદિસતત્તો યાયુરેવ । ભાવશસ્ત્ર તુ યાયુ પ્રતિ મનસો દુષ્પત્તિઃ ।

વાયુઃ સચિત્તાચિત્તમિશ્રમ્ભેદાસ્ત્રિધા, તત્ર સચિત્તો ઘનચાતાદિઃ, અચિત્તો દ્વિતિ  
પ્રશ્નતિપુ પૂરિતઃ, સોડપ્યન્તર્મુહર્તાદૂર્ઘ યાયુદેક યામમચેતનઃ, તદન્તુ પૂર્ણદ્વિતીયયામ  
યાવન્મિશ્રઃ, તત્પશ્રાત્સચિત્ત એવ, રોગાન્નરસ્થાયા યાયોરાગચ્યત્ત્વે દ્વિત્યાદિ

૧ ભગવતીશ્વરસ્ય દ્વિતીયશતકે પ્રથમોદેશે યાગ્નધિમારે—

“ સે મતે ! કિં પુદ્ગે ઉદાઙ અપુદ્ગે ઉદાઙ ? ગોં ! પુદ્ગે ઉદાઙ નો અપુદ્ગે ઉદાઙ ”  
છાયા—‘સ (વાયુ.) ભગવન્ ! કિં સ્પૃષ્ટઃ અપદ્રવતિ (મ્નિયતે) અસ્પૃષ્ટઃ અપદ્રવતિ ?  
ગૌતમ ! સ્પૃષ્ટઃ અપદ્રવતિ નો અસ્પૃષ્ટઃ અપદ્રવતિ ’ । અસ્ય ટીકા—‘ સ્પૃષ્ટઃ સ્વકાય-  
શસ્ત્રેણ પરકાયશસ્ત્રેણ વા અપદ્રવતિ=મ્નિયતે ’ ।

વાયુકાયકા શસ્ત્ર દ્રવ્ય-ભાવ-ભેદસે દો પ્રકારકા હૈ, દ્રવ્યશસ્ત્ર-સ્વ  
પર-ઉભયકાયકે ભેદસે ત્રીન પ્રકારકા હૈ । વહા સ્વકાય-શસ્ત્ર પૂર્વ આદિ  
દિશાકે વાયુકા પશ્ચિમ આદિ દિશાકા વાયુ, પરકાય-શસ્ત્ર અગ્નિ આદિ  
હૈ, ઉભયકાય શસ્ત્ર અગ્નિ આદિસે તપા હુઆ વાયુ હી હૈ । વાયુ ત્રીન  
પ્રકારકા હૈ—

(૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત, (૩) મિશ્ર । ઘનચાતા આદિ સચિત્ત હૈ,  
દ્વિતિ યા રબરકી થૈલી આદિમે મરી હુઈ હવા અચિત્ત હોતી હૈ, કિન્તુ  
અન્તર્મુહર્ત્તકે વાદ એક પ્રહર તક અચિત્ત રહતી હૈ, ઉસકે વાદ દુસરે  
પહર તક મિશ્ર અવસ્થામે રહતી હૈ વાદમે સચિત્ત હોજાતી હૈ । રોગ  
આદિ અવસ્થામે વાયુકી આવશ્યકતા હોને પર દ્વિતિ આદિમે મરા હુઆ

વાયુકાયનો શસ્ત્ર દ્રવ્ય ભાવભેદે બે પ્રકારનો છે. દ્રવ્યશસ્ત્ર સ્વ પર ઉભયકાયનો  
ભેદ કરી ત્રણ પ્રકારનો છે, ત્યા સ્વકાયશસ્ત્ર-પૂર્વઆદિ દિશાના વાયુનો પશ્ચિમ-  
આદિ દિશાનો વાયુ, પરકાયશસ્ત્ર અગ્નિ આદિ છે, ઉભયકાયશસ્ત્ર અગ્નિઆદિથી  
તપેલો વાયુ જ છે ભવશસ્ત્ર પહેલાની જેમ સમજી લેવું વાયુ ત્રણ પ્રકારનો છે—

(૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત, (૩) મિશ્ર ઘન વાતા આદિ વાયુ સચિત્ત છે,  
મસક યા રબરની થૈલી આદિમા ભરેલી હવા અચિત્ત છે, પરન્તુ અતર્મુહર્તની  
પછી એક પ્રહર સુધી અચિત્ત રહે છે, ત્યારપછી બીજા પ્રહર સુધી મિશ્ર અવસ્થામા  
રહે છે, અને ત્યારબાદ સચિત્ત બની જાય છે રોગાદિ અવસ્થામા વાયુની  
આવશ્યકતા પડતા મસક આદિની અદર ભરેલો અચિત્ત વાયુ સાધુઓને ગ્રાહ્ય છે,

मूलबीजाः=मूलमेव बीजं येषां ते कमलकन्दप्रभृतयः । पर्वबीजाः=पर्वणि-ग्रन्थौ पर्वैव वा बीजं येषां ते तथा इक्षुप्रमुखा । स्कन्धबीजाः=स्कन्धः-स्युद्ध स एव बीजं येषां ते तथा शङ्खुमीप्रभृतयः । बीजरुहाः=बीजाद् रोहन्ति=प्रादुर्भवन्तीति ते तथा शालिगोत्रमादयः । सम्मूर्च्छिताः=सम्मूर्च्छन्ति=बीजं विनापि दग्धभूमावपि समुद्भवन्तीति ते तथोक्ताः पृथिवीजलसयोगमात्रजनितास्तणविशेषा इत्यर्थः । आपर्त्वात्सिद्धिः । तथा तृणलताः=तृणानि लताश्चेत्यर्थः । वनस्पतिकारिकाः=अवशिष्टाः समस्तवनस्पतय इत्यर्थः । यद्वा 'तृणलतावनस्पतिकारिकाः' इत्येक

मूलबीज-मूलही जिनका बीज हो वह, कमलका कंद आदि मूलबीज हैं ।

पर्वबीज-पोर (गांठ)में या पर्वही जिनका बीज है ऐसे, गन्ना (साठा) आदि पर्वबीज कहलाते हैं ।

स्कन्धबीज-स्कन्ध (गुड)ही जिनका बीज है उस गल्लकी आदिको स्कन्धबीज कहते हैं ।

बीजरुह-चाँवल गेहूँ आदि बीजसे उगनेवाली वनस्पतिको बीजरुह कहते हैं ।

सम्मूर्च्छित-बिना बीजके जलीहृद् भूमिमें भी जो पृथ्वी और जलके सयोगसे उग जावे ऐसी घास आदिको सम्मूर्च्छित कहते हैं ।

तृणलता-तिनका (घास) और लताएँ सब वनस्पतिकारिक हैं ।

अथवा " तृणलतावनस्पतिकारिकाः " यह एकही पद है । दर्भ

मूलबीज—मूलमेव बीजं छे ते कमलने कंद आदि मूलबीज छे

पर्वबीज—गांठ या पर्वमेव बीजं छे येवी शेरडी आदि पर्वबीज कहेवाय छे

स्कन्धबीज—स्कन्धमेव बीजं छे येवा शङ्खुमी आदि ते स्कन्धबीज कहेते

बीजरुह—बीजं विनापि दग्धभूमिमा पशु ये पृथ्वी अने जलने

सम्मूर्च्छित—बीजं विनापि दग्धभूमिमा पशु ये पृथ्वी अने जलने जलने

तृणलता-तिनका ( घास ) अने लता ये घासा वनस्पतिकारिक छे

अथवा तृणलतावनस्पतिकारिका ये ओक न पद छे दर्भ ( घास )

ઉભયકાયશસ્ત્ર-પરશુદાત્રાદિ । ભાવશસ્ત્ર તુ ન પ્રતિ મનોમાન્વિન્યમ્ ॥ ૪ ॥

સમ્પતિ વનસ્પતિમેવ સવિશેષ વર્ણયતિ-‘તજહા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-તજહા-અગ્ગવીયા મૂલવીયા પોરવીયા, સ્વંધવીયા વીય-  
રુહા સમુચ્છિમા તળલયા વળસ્સડકાડયા સવીયા ચિત્તમતમક્ષાયા  
અળેગજીવા પુઢોસત્તા અન્નત્થ સત્થપરિણણં ॥૫॥

છાયા-તપ્પથા-અગ્રવીજા મૂલવીજા: પરવીજા: સ્વંધવીજા: વીજરુહા:  
સમ્મૂચ્છિમાસ્વળલતા વનસ્પતિકાયિકા: સવીજાચિત્તવન્ત આગ્યાતા અનેકવીજા:  
પૃથ્સ્સત્ત્વા અન્યત્ર શક્ષપરિણતેભ્ય: ॥૫॥

યહા વનસ્પતિકાયિકા વિશેષ વર્ણન કરતે હૈં—

સાન્યયાર્થ:—તજહા=વઢ ઇસ પ્રકારસે હૈ-અગ્ગવીયા=જિનકા વીજ અગ્ર  
ભાગમેં હોતા હૈ, મૂલવીયા=જિનકા વીજ મૂલભાગમેં હોતા હૈ, પોરવીયા=જિનકા  
વીજ પોર (સન્ધિ) મેં હોતા હૈ, સ્વંધવીયા=જિનકા વીજ સ્વંધ (ડાલે) મેં  
હોતા હૈ, વીયરુહા=વીજસે ઉગનેપાલે, સમુચ્છિમા=પિના વીજકે ઉત્પન્ન  
હોનેવાલે, તળલયા=તળ ઓર લતાઈ, યે સમી વળસ્સડકાડયા=વનસ્પતિ-  
કાયિક હૈ, સવીયા=વૃક્ષોક્ત અપને-અપને નામપ્રકૃતિકે ઉદયસે ઉત્પન્ન હુઈ  
વીજસહિત સવ વનસ્પતિકાય ચિત્તમત=સચિત્ત અક્ષાયા=કહે ગયે હૈ,  
અન્નત્થ=સિવાય સત્યપરિણણ=શક્ષપરિણતકે, યે વનસ્પતિકાય અળેગજીવા=  
અનેક જીવવાલે ઓર પુઢોસત્તા=ભિન્ન ભિન્ન સત્તાવાલે હૈ ॥૫॥

ટીકા-તથાહિ-અગ્રવીજા:=અગ્રે=અગ્રભાગે વીજ યેપા તે તથા કોરણકાદય: ।

(ફરસા) દાત્ર આદિ ઉભયકાય શસ્ત્ર હૈં । ભાવશસ્ત્ર ઉસકે પ્રતિ મનકે  
પરિણામ દુષ્ટ કરના ॥ ૪ ॥

અવ વનસ્પતિકાયિકા વિશેષ વર્ણન કરતે હૈ-‘ત જહા’ ઇત્યાદિ ।

અગ્રવીજ-જિનકે વીજ અગ્ર-ભાગમે હોતે હૈ એસે કોરણક આદિ  
અગ્રવીજ કહલાતે હૈ ।

પત્થર આદિ પરકાયશસ્ત્ર છે કોહાડો, દાતરડુ આદિ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે ભાવશસ્ત્ર  
એની પ્રતિ મનના પરિણામ દુષ્ટ કરવા તે

હવે વનસ્પતિકાયિકાનું વિશેષ વર્ણન કરે છે-તજહા ઇત્યાદિ

અગ્રવીજ-એના વીજ અગ્રભાગમા હોય છે એવા કોરણ (હામરી શુભ)

આદિ અગ્રવીજ કહેવાય છે

जेसिं केसिचि पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कत सकुचियं पसारिय रुयं भंतं तसिय पलाडय, आगइगइविन्नाया। जे य कीडपयगा। जा य कुथुपिपीलिया। सवे वेइंदिया, सवे तेडदिया, सवे चउरिंदिया, सवे पचिंदिया, सवे तिरिक्खजोणिया, सवे नेरइया, सवे मणुया, सवे देवा, सवे पाणा परमाहम्मिया। एसो खलु छटो जीवनिक्काओ तसकाउत्ति पवुच्चड ॥ ६ ॥

छाया-अथ ये पुनरिमेऽनेके बहवस्त्रसाः प्राणिनस्तथा-अण्डजाः पोटजा जरायुजा रसजाः सस्वेदजा. सम्मूर्च्छिमा उद्भिजा औपपातिकाः, येपा केपा-श्वित्प्राणिनामभिक्रान्त प्रतिक्रान्त सकुचित प्रसारित रत भ्रान्त तस्त पलायितम्, आगतिगतिविज्ञातारः। ये च कीटपतङ्गाः। याश्च कुन्थुपिपीलिकाः। सर्वे द्वीन्द्रियाः, सर्वे त्रीन्द्रियाः, सर्वे चतुरिन्द्रियाः, सर्वे पञ्चेन्द्रियाः, सर्वे तिर्यग्योनिकाः, सर्वे नैरयिकाः, सर्वे मनुजाः, सर्वे देवाः. सर्वे प्राणाः परमधर्माणः। एष खलु षष्ठो जीवनिक्कायस्त्रसकाय इति प्रोच्यते ॥६॥

### (६) त्रसकायवर्णन.

सान्वयार्थः—से=अथ पुण=और जे=जो इमे=ये ( आगे रुहे जानेवाले ) अणेगे=अनेक प्रकारके बहवे=बहुतसे तसा=त्रस पाणा=प्राणी हैं, तजहा=वे इस प्रकार है—(१) अट्ठया=अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले, (२) पोयया=विना जेर (जरायु-आवल-जड)के अर्थात् विना ही कुछ मलभागके वस्त्रसे पूछे हुएके समान उत्पन्न होनेवाले, (३) जराउया=जेरसे लिपटे हुए उत्पन्न होनेवाले, (४) रसया=रसमें उत्पन्न होनेवाले, (५) ससेइमा=पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले, (६) समुच्छिमा=सम्मूर्च्छिम, (७) उब्भिया=पृथ्वीको भेदकर उत्पन्न होनेवाले (शलभ आदि), (८) उववाइया=उपपात जन्मवाले-देव और नारकी, जेसिं-केसिचि=इनमेंसे जिन किन्हीं पाणाण=प्राणियोंका अभिक्कत=अभिमुख गमन होता है, पडिक्कत=प्रतिकूल गमन होता है, सकुचिय=शरीरमें सकोच-सिकुडन होता है, पसारिय=शरीरमें फैलाव होता है, रुय=शब्दका प्रयोग होता है, भन=इपर-उपर भ्रमण होता है, तसिय=उद्वेग होता है, पलाडय=डरसे भागना देखा जाता है, (वे त्रस) आगइगइविन्नाया=आगमन और गमनको जाननेवाले, य=और जे=जो

પદ્મ, તત્ર તૃણાનિ=દમોદીનિ, લતાઃ=ચમ્પકાઽશોકવાસન્ત્યાદયઃ, વનસ્પતિ-  
કાયિકાઃ=વનસ્પતિકાયભેદાઃ-અગ્રવીજાદયઃ સર્વેઽપિ વનસ્પતિકાયિકા एव,  
પુનર્વનસ્પતિકાયિકગ્રહણ સ્વગતમૂક્ષ્માદિસચ્ચભેદરયાપનાર્થમ્ । સ્વવીજા=પૂર્વ-  
વિદિતસ્વસ્વનામગોત્રમઠ્ઠ્યુદયાત્મરુકારણવન્તઃ, અર્થાત્ પૂર્વોક્તા અગ્રવીજાદયા  
સર્વેઽપિ ચિત્તવન્તઃ, ઇત્યાદીનાં વ્યાગ્યા પૂર્વમ્ ।

इति पञ्चस्थावरकायनिरूपणम् ॥५॥

साम्प्रत क्रमप्राप्त त्रसरायस्वरूपमाह-‘से जे०’ इत्यादि ।

મૂલ્મ-સે જે પુણ ઇમે અણેગે વહવે તસા પાળા, તજહા-અંડયા  
પોયયા જરાયુયા રસયા સસેઝમા સંમુચ્છિમા ઉવ્ધિભયા ઉવવાઝયા ।

(દૂબ આદિ) તૃણ, ચમ્પક, અશોક ઓર વાસન્તી આદિ લતાઈ ઓર  
વનસ્પતિકાયકે ભેદ અગ્રવીજ ઓદિ સવ વનસ્પતિકાયિક હૈ । સૂત્રમે  
દૂસરી વાર ‘વનસ્પતિકાયિક’ પદકા ગ્રહણ ડસલિઈ કિયા હૈ કિ-ઉપર  
વતાયે હુઈ ભેદોકે સિવાય સૂક્ષ્મ વાદેર ઓદિ ઓર મી સમસ્ત ભેદોકા  
ગ્રહણ હોજાવે । યે સવ પહેલે દિલલાયે હુઈ અપને અપને નામ-ગોત્રરૂપ  
પ્રકૃતિકે ઉદયરૂપ કારણવાલે હૈ । અર્થાત્ પૂર્વોક્ત વીજ આદિ સવ સચિત્ત  
હૈ ઓર પૃથક્-પૃથક્ સ્પર્શરૂપ ઇન્દ્રિયવાલે હૈ ॥ ૫ ॥

यह पांच स्थावरकायका निरूपण समाप्त हुआ ।

अब क्रमप्राप्त त्रसकार्यका स्वरूप कहते हैं-‘से जे’ इत्यादि ।

તૃણ, ચ પંક, અશોક, અને વાસન્તી આદિ લતાઓ અને વનસ્પતિકાયના ભેદ  
અથ ધીજ આદિ બધા વનસ્પતિકાયિક છે સૂત્રમા ધીજ વાર ‘વનસ્પતિકાયિક’  
શબ્દનુ ગ્રહણ એટલા માટે કરવામા આવ્યું છે કે-ઉપર બતાવેલા ભેદો ઉપરાત  
સૂક્ષ્મ ધોદર આદિ ધીજ પણ બધા ભેદોનુ ગ્રહણ થઈ જવા પામે એ બધા  
પહેલા બતાવેલા પોત પોતાના નામ ગોત્ર રૂપ પ્રકૃતિના ઉદય રૂપ કારણવાળા છે  
અર્થાત્ પૂર્વોક્ત ધીજ આદિ બધા સચિત્ત છે અને પૃથક્-પૃથક્ સ્પર્શરૂપ એક  
ઇન્દ્રિયવાળા છે (૫)

इति पञ्च-स्थावर-कायानु निरूपणु समाप्त

હવે ક્રમપ્રાપ્ત ત્રસકાયનુ નિરૂપણુ કહે છે - સે જે ઇત્યાદિ

एव परिस्पन्दादिसामर्थ्योपेता पोतजाः । यद्वा पोतोवस्त्रम्-(इति शब्दरूपद्रुमः),  
तेन तत्समार्जिता लक्ष्यन्ते, तथा च-पोता इव=वस्त्रसमार्जिता इव गर्भवेष्टनचर्माऽ-  
नावृतत्वात्, जायन्ते=उत्पद्यन्ते इति, पोतात्=गर्भवेष्टनचर्मरहितगर्भात् जायन्त  
इति वा पोतजाः कुञ्जर-शल्लरु-शश-नकुल-मूपिक-चर्मचटिका-वल्लगुलिकादयः ।  
जरायुजाः=जरामेति=गच्छतीति जरायुः=गर्भवेष्टनचर्म तस्माज्जायन्त इति ते=  
नर-महिष-गवादयः । रसजा =रसे=मद्यलक्षणे 'रसजो मद्यकीटः' इति  
हैमात्, जायन्त इति, रसे=विकृतमधुरादौ जायन्त इति वा रजसाः ।  
सस्वेदजाः=सस्वेदात्=प्रमाज्जायन्त इति ते यूका-लिक्षा-मत्कुणप्रमुखाः ।  
सम्मूर्च्छिमाः=सम्मूर्च्छनसम्मूर्च्छ =गर्भाधानमन्तरेणैव स्वयं समुत्पत्तिः, ('मूर्च्छा  
मोह-समुच्छ्राययोः' अस्माद्भावे घञ्, व्युत्पत्तिप्रदर्शनमेतत्, शब्दोऽयं मनोविकले

१ 'अन्येष्वपि दृश्यते'-इति ड

निकलते ही गमन-आगमन आदि क्रियाएँ करनेकी सामर्थ्यसे युक्त पूर्ण  
अवयववाले, या वस्त्रसे पोछे हुएके समान साफ उत्पन्न होनेवाले हाथी,  
शल्लकी, खरगोश, नौला, चूहा आदि पोतज कहलाते हैं (२), जरायु  
(आँवल जड) सहित उत्पन्न होनेवाले मनुष्य महिषादि जरायुज कहलाते  
हैं (३), मदिरा आदि रसोंमें उत्पन्न होनेवाले तथा स्वादसे चलित अर्थात्  
सडे हुए मधुरादि रसोंमें उत्पन्न होनेवाले रसज कहलाते हैं (४), पसीनेसे  
पैदा होनेवाले जू, लीख, खटमल आदि सस्वेदज कहलाते हैं (५) गर्भा-  
धानके विना शरीरनाम-कर्मके उदयसे शरीरके अवयवोंका सग्रह हो  
जानेसे स्वयं ही उत्पन्न होनेवाले जीव सम्मूर्च्छिम कहलाते हैं (६),

नीकणता व गमनागमन आदि क्रियाओं करवाना सामर्थ्यथी युक्त पूर्ण अवयव  
वाणा, या वस्त्र द्वारा लूठेखानी पेंडे साक्ष उत्पन्न थनारा हाथी, शेंगो,  
ससला, नोणिया, उदर आदि पोतज कडेवाय छे (२) जरायु ( नाण वगेरे  
मण लाग ) सहित उत्पन्न थनारा मनुष्य, महिषादि ( भेश वगेरे ) जरायुज  
कडेवाय छे (३) मदिरा आदि रसोमा उत्पन्न थनारा तथा स्वादथी चलित  
अर्थात् सडेला मधुरादि रसोमा उत्पन्न थनारा रसज कडेवाय छे (४) प्रवे  
दथी पैदा थनारा जू, लीख, माकणु, आदि सस्वेदज कडेवाय छे (५) गर्भा  
धान विना शरीरनाम-कर्मना उदयथी शरीरना अवयवोना सग्रह थय जवाथी  
स्वयं उत्पन्न थनारा जीवो सम्मूर्च्छिम कडेवाय छे (६) पृथ्वीने बेतीने उत्पन्न

कीडपयगा=कीट-कीड़े और पयगा पतगिये है, य=और जा=जो कुयुपिवीलिया= कुयवा और चींटियाँ है, वे सब्बे बेडदिया=सब द्वीन्द्रिय सब्बे तेडदिया=सब शीन्द्रिय सब्बे चउरिंदिया=सब चार इन्द्रियमाले सब्बे पचिंदिया=सब पञ्चेन्द्रिय सब्बे तिरिरुप्रजोणिया=सब तिर्यङ्गगतिमाले सब्बे नेरड्या=सब नारकी सब्बे मणुया=सब मनुष्य सब्बे देवा=सब देव सब्बे=पूर्वोक्त सब पाणा=प्राणीमात्र परमात्मिया=सुरके अभिलापी है। एमो=यह खलु=निश्चय करके छटो=उठा जीवनिकाओ=जीवनिकाय तमकाउत्ति="प्रसन्नय" ऐसा पयुचइ=रूढ़ा जाता है ॥६॥

टीका—'से'=अथ=स्थायरपञ्चकनिरूपणानन्तर पुनः इमे=वक्ष्यमाणभेदाः अनेके=द्वीन्द्रियादिभेदेनाऽनेकरूपकाराः नहर'=एकैरुस्या जाती प्रचुरा भिन्नयो नयो वा त्रसाः=त्रसनामकर्मोदयात्, त्रस्यन्ति=आतपात्रभिपीडिता उद्विजन्ते प्रच्छायशीतल स्थल प्रयान्ति वेति तथोक्ताः, प्राणन्ति=जीवन्त्येभिरिति, प्राण्यन्ते=जीव्यन्ते प्राणिन एभिरिति वा (प्रोपच्छा-दन्ति, अण्यतेर्वा करणे घञ्) प्राणा'=उच्छ्वासादयस्ते सन्त्येपामिति प्राणाः प्राणिन इत्यर्थः, तत्रया-अण्डे=पक्ष्यादिप्रादुर्भावकाले जायन्ते=उत्पद्यन्ते इत्यण्डजाः=पक्षि सर्पादयः । पोता एव जाता पोतजाः न जरायुवादिना वेष्टिताः पूर्णावयवयोनिर्निर्गतमात्रा

१ 'त्रसे. पचात्रच' २ 'अर्शआदित्वाद्च'

जो ये आगालप्रसिद्ध द्वीन्द्रिय आदिके भेदसे अनेक, एक एक जातिमे बहुतसे अथवा भिन्न-भिन्न योनिवाले आतप (गर्मी) आदिसे पीडित होनेपर त्रास (उद्वेग) पानेवाले, अथवा छायादार शीतल और निर्भय स्थलमे चले जानेवाले, व्यक्त चेतनावान्, उच्छ्वास आदि प्राण वाले त्रस कहलाते हैं, उनके भेद इस प्रकार है—

पक्षी सर्प आदि अण्डज हैं (१), जरायुसे वेष्टित न होकर योनिसे

जे जे आगाल-प्रसिद्ध द्वीन्द्रियादिना लेहे करीने अनेक, ओके ओके जातिमा घण्टा अथवा भिन्न-भिन्न योनिवाला, गर्मी आदिथी पीडित यता त्रास (उद्वेग) पानेवाला, अथवा छायावाला शीतल अने निर्भय स्थलमा याथा जनारा, व्यक्त चेतनावान् उच्छ्वास आदि प्राणवाला त्रस कहेवाय छे, तेना लेहे आ प्रकारे छे—

पक्षी सर्प आदि अण्डज छे (१) जरायुथी वेष्टित न होउने योनिमाथी

नयोर्विज्ञातारः=वेदितारः=ओषसज्ञया प्रवृत्तिमन्तः स्वस्वाभिकान्तप्रतिक्रान्तादि-  
विषयकाऽवमोषसम्पन्ना भवन्तीत्यर्थः ।

इन्द्रियादिविभागप्रदर्शनेन तानेव परिचाययति 'ये चे' त्यादि, ये च कीट-  
पक्षाः=कीटाः=कृमयो गण्डोलरूपभृतयः, तज्जातीया अन्ये द्वीन्द्रियाश्च, पतङ्गाः=  
माथुरिन्द्रियास्तज्जातीया भ्रमरादयश्च । याश्च कुन्धु-पिपीलिका, कुन्धवश्च  
पिपीलिकाश्चेत्यनयोरितरेतरयोगे 'परवल्लिङ्ग द्वन्द्व तत्पुरुषयो' -रिति परवल्लिङ्गता ।  
कुन्धुः=चलन्त एव परिज्ञेया न स्थिताः मृक्षमत्वात् लघुकायजीवाः, पिपीलिकाः=  
कीटास्तज्जातीयास्त्रीन्द्रियाश्च, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियक्रममुद्बुध द्विचतुस्त्रीन्द्रियेति  
व्युत्प्रेणोपादानमार्पत्वात्प्रवृत्तगतेर्वैचित्र्याच्च । तत सर्वे द्वीन्द्रिया, सर्वे त्रीन्द्रियाः,  
सर्वे चतुरिन्द्रियाः, सर्वे पञ्चेन्द्रियाः, सर्वे तिर्यग्योनिकाः, सर्वे नैरयिकाः, सर्वे

प्रवृत्ति करनेवाले होते हैं । अनुकूलता और प्रतिकूलताको सामान्यतया  
ओषसज्ञासे जानते हैं ।

इन्द्रियोंका विभाग करके फिर उनका कथन करते हैं-

कृमि, लट, गण्डोल आदि उनकी जातिवाले द्वीन्द्रिय हैं । शलभ और  
उनकी जातिके भ्रमर आदि चार इन्द्रियवाले होते हैं । कुन्धु और पिपी-  
लिका (चिउटी) तथा उनकी जातिके अन्य जीव तीन इन्द्रियवाले होते हैं ।  
यह द्वीन्द्रिय बतानेके बाद पहले चार इन्द्रिय फिर तीन इन्द्रियवाले जीव  
बताने हैं, यह कथन आर्ष होनेसे किया गया है, इसलिए सब द्वीन्द्रिय,  
सब त्रीन्द्रिय, सब चतुरिन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय, सब तिर्यञ्च, सब नारकी, सब

प्रतिकूलताने सामान्य रीते ओष-सज्ञासे ठीक ढाँचे में

द्विन्द्रियोना विभाग करीने हुवे ओनु कथन करवाभा आवे ठे -

कृमि (कर्मिया), लट, अणसीया वगैरे ओ ही नतिवाणा द्वीन्द्रिय छे तीड अने  
उनकी नतिवाणा भ्रमर आदि चार द्विन्द्रियवाणा छे कुथवा अने कीडी तथा तेनी  
नतिवाणा पील लुवे त्रय द्विन्द्रियवाणा छे अर्द्धी द्विन्द्रिय गताव्या पछी  
पडेल्ला आर द्विन्द्रियवाणा अने पछी त्रय द्विन्द्रियवाणा गताव्या ठे, ओ कथन आर्ष  
डिवाथी करेछु ठे ओ रीते गधा द्वीन्द्रिय, गधा त्रीन्द्रिय, गधा चतुरिन्द्रिय,  
गधा पञ्चेन्द्रिय, गधा तिर्यञ्च, गधा नारकी, गधा भनुञ्च, गधा देव, ओ प्रकारे



रुद्रः, 1) यदा समन्ततो देहस्य मूर्च्छनम्=अययगयोगमतेन निरृता' सम्मूर्च्छमा=  
 मातापितृसयोग विनैः स्वयं गणुत्पत्ताः=पिपीत्सिमा मसिका मस्कोटकादयः,  
 (आर्पित्वात्सिद्धिः) । उद्भिजाः=उद्भिद्य=पृथिवीं भित्त्वा जायन्त इति ते श्रवणा-  
 दयः । औपपातिकाः=उपपतनमुपपातः (पतधातोर्भावे घञ्) देवनारकाणां प्रसि-  
 द्धगर्भसम्मूर्च्छनरूपजन्मप्रसारद्वयविलक्षण उद्भ्रमस्तेन निरृताः औपपातिकाः=वे-  
 नारकाः, देवा हि पुष्पशय्याया नारकाश्च कुम्भ्याद्रिषु स्वयं समुत्पद्यन्ते । तानेव  
 विशिनष्टि-‘येषां-मित्पादिना, येषां केषाञ्चित्पूर्वोक्तानां प्राणानां=आसोच्छ्वा-  
 सादिप्राणयताम्, अभिक्रान्तम्=आभिमुख्येन अभिमुखं वा प्रज्ञापकस्य क्रमण-  
 गमनमभिक्रान्तं ‘भवती’ ति शेषः । प्रतिक्रान्तं=प्रति=प्रातिहृत्येन प्रतिकूलं वा  
 प्रज्ञापकस्य क्रमणम्, यदा प्रतिक्रान्तं=पराट्टय गमनम्, सकुचितं=सकोचः गात्र-  
 वकुञ्चनम्, प्रसारितं=रुचरणादिप्रसारणं, रुतं=शब्दरुणम्, भ्रान्तम्=इतस्ततो  
 भ्रमणम्, व्रस्तं=वासः=उद्वेग, पलायितं=पलायनं भयादिना स्थानान्तरगमनं  
 ‘भवती’-त्यभ्याहृतेन प्रत्येकं सम्पन्नम् । सर्वं एतैरेऽभिक्रान्तादयः शब्दाः भाव-  
 न्ताः । ते त्रसाः, आगतिगतिविज्ञातारं=आगतिः=आगमनम्, गतिः=गमनं

पृथ्वीको भेदकर उत्पन्न होनेवाले शलम (टिड्डी) आदि उद्भिज्ज हैं (७),  
 गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मोंसे भिन्न देव और नारकोके जन्मको उपपात  
 कहते हैं, उससे उत्पन्न होनेवाले देव और नारकी औपपातिक कह-  
 लाते हैं (८), देव शय्या पर और नारकी कुम्भीमे स्वयं उत्पन्न होते हैं ।

ये सब पूर्वोक्त जीवोंके प्रज्ञापककी अपेक्षा सामने आना, लौटके  
 पीछे जाना, इसी प्रकार अगको सिकोडना, हाथ पैर फैलाना, चोलना,  
 भ्रमण करना, उद्भिन्न होना, भय आदि कारणोंसे भागना आदि क्रियाएँ  
 होती हैं । वे गमन आगमन आदिके जाननेवाले अर्थात् ओघसज्ञासे

थनारा शलम (टीड) आदि उद्भिज्ज कहेवाय छे (७) गर्भं अने सम्मूर्च्छनं  
 जन्मोत्थी भिन्न देव अने नारकोना जन्मने उपपात कहे छे, तेथी उत्पन्नं थनारा  
 देव अने नारकी औपपातिके कहेवाय छे (८) देव शय्या पर अने नारकी  
 कुम्भीमा स्वयं उत्पन्न थाय छे

ये गद्या पूर्वोक्त जीवोंके प्रज्ञापककी अपेक्षासे सामने आवबु, क्षीरने पाछ  
 अबु, ये व रीते अग से कोअवा, हाथ-पग फैलाववा, मोलबु, भ्रमबु, उद्भिन्न  
 थबु, अथादि कारणे भागी अबु, वगेरे क्रियाओ होय छे तेओ गमनागमन  
 आदिने ज्ञानारा अर्थात् ओघ-सज्ञाथी प्रवृत्ति करनारा होय छे अनुकूलता

यांके दण्ड=दण्ड-हिंसा आदि-को स्वयं=स्वयं नेत्र=न समारम्भिज्जा=आरम्भ करे,  
 नेत्र=न अत्रेहिं=दूसरोसे दण्ड=दण्डको समारम्भाविज्जा=आरम्भ करावे, दण्ड=  
 दण्डका समारम्भतेवि=आरम्भ करते हुआको भी अत्रे=दूसरोको न=नहीं  
 समणुजाणेज्जा=भला जाने, जावज्जीवाण=यावज्जीवन-जीवनपर्यन्त ति विह=कृत-  
 मारित-अनुमोदनारूप तीन-करण-पूर्वक (इस प्रकार) ति विहेण=तीन प्रकारके  
 मणेण=मनसे वायाण=वचनसे काएण=कायासे न करेमि=नही करूंगा, न  
 कारवेमि=नही कराऊंगा, अत्रे=दूसरे करतपि=करनेवालेकोभी न समणुजा-  
 णामि=भला नहीं समझूंगा। भते !=हे भदन्त ! तस्स=पूर्वोक्त उस दण्डसे पडि-  
 क्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे जुगुप्सा करता हूँ, गरिहामि=  
 गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ (और) अप्पाण=दण्डसेवन करनेवाले आत्माका  
 वोसिरामि=त्याग करता हूँ ॥६॥

टीका —इत्येषा पूर्वोक्तस्वरूपाणा पण्णा जीवनिक्कायाना=त्रसस्थावरलक्षण-  
 जीवसमुदायानाम्, दण्डयते=सारहीनः क्रियते आत्माऽनेनेति दण्ड=प्राणव्य-  
 परोपणादिस्तम्, स्वयम्=आत्मना नैत्र=न रुदापि समारम्भेत=विदगीत, नैव अन्यै.=  
 स्वव्यतिरिक्तैः कैरपि जनैस्तद्वारेति भावः, दण्डम्=उक्तलक्षणव्यापार सामारम्भयेत्=  
 कारयेत्, दण्ड समारम्भमाणान्=कुर्वाणान् अपि अन्यान् न समनुजानीयात्=  
 अनुमन्येत। क्रियत्समयपर्यन्त ? मित्याह—‘ जावज्जीवाण ’ इति, अत्र यावच्छब्द  
 परिमाणार्थको मर्यादाार्थकोऽवधारणार्थकश्चाव्ययः, जीवन जीवा (‘जीव प्राणधारणे’  
 अस्मात् ‘गुरोव हल.’ (३।३।१०३) इति पाणिनिवचनेन स्त्रियामकारप्रत्यये स्त्रीत्वा-  
 द्वाप् ‘ ईहा, ऊहे ’-त्यादिवत्, ) तथा जीवया जीवामित्यर्थः ( ‘ ततोऽन्यत्रापि  
 दृश्यते ’) इति वचनप्रलाद् यावच्छब्दयोगे द्वितीयायाः प्राप्तवपि सौत्रत्वात्तृतीया,  
 तेन यावन्मम जीवन तावदिति, जीवन मर्यादीकृत्यार्थान्न केवल मरणकाल

जिससे आत्मा ज्ञान दर्शन चारित्र्यसे रहित होजाय उस हिंसा आदि  
 व्यापारको दण्ड कहते हैं। मुनि पूर्वोक्त छह कायोके दण्डका यावज्जीव  
 न स्वयं समारम्भ करे न दूसरोसे करावे और न समारम्भ करनेवाले

जैसी आत्मा ज्ञान दर्शन चारित्र्यसे रहित थी नव, ये हिंसा आदि  
 व्यापारने दण्ड कहे छे मुनि पूर्वोक्त छ कायोना दण्डने यावज्जीवन पीते न  
 समारम्भ करे, न भीगत्यो पाने करावे अने समारम्भ कन्नाश भीगत्योनी न

મનુષ્યાઃ, સર્વે દેવાઃ, સર્વે પ્રાણાઃ=પૂર્વોક્તાઃ મનુષ્યાણિનઃ પરમધર્માણઃ=પરમ  
સુખમેવ ધર્મો યેષા તે સુખામિલાપુકા इत्यर्थः 'પરમા' इत्यत्र दीर्घ आर्षत्वात् ।  
एषः=अनन्तरोदीरितदरूपोऽण्डजादिलक्षणः खलु=निश्चयेन पट्ट'=स्थावरपञ्चका-  
पेक्षया पट्टत्वमापन्नः जीविकायाः=प्राणिसमूहः 'प्रसकाय'-इति प्रोच्यते=  
कथ्यते प्रसकायनाम्ना रयात इत्यर्थः ॥६॥

सर्वे प्राणिनः सुखामिलापिणो भवन्ति, सुखं च तेपामनारम्भेणैव सम्पद्यतेऽत  
इदानीमनारम्भोपदेशः- 'इच्छेसि' इत्यादि ।

मूलम्-इच्छेसिं छण्ह जीविकायाण नेव सय दड समारभिजा,  
नेवन्नेहिं दड समारभाविजा, दड समारभतेवि अन्ने न समणुजा-  
णिजा, जावजीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न  
करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ।  
पडिक्कमामि, निदामि, गरिहामि, अप्पाण वोसिरामि ॥ ७ ॥

छाया—इत्येषा पण्णा जीविकायाना नैव स्वय दण्ड समारभेत, नैवान्यै  
दण्डसामारम्भयेत्, दण्ड समारभमाणानप्यन्यान् न समनुजानीयात्, यावज्जीवया  
त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न  
समनुजानामि । तस्य भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मान व्युत्सजामि ।  
पट्टकायका आरम्भ न करनेका उपदेश देते है—

सान्वयार्थ —इच्छेसिं=इन पूर्वोक्त छण्ह=उह जीविकायाण=जीविका

મનુષ્ય, સર્વ દેવ, હસ પ્રકાર પૂર્વોક્ત સર્વ પ્રાણી સુખકી અભિલાષાવાલે હૈં ।  
હસ છટે જીવિકાયાકો ભગવાનને પ્રસકાય કહા હૈ ॥ ૬ ॥

સમસ્ત પ્રાણી સુખકે અભિલાષી હૈં, કિન્તુ સુખકી પ્રાપ્તિ તબ હી હો  
સકતી હૈ જબ આરમ્બકા પરિત્યાગ કર દિયા જાય, હસલિલે આરમ્બકે  
ત્યાગકા ઉપદેશ દેતે હૈં- 'इच्छेसि' इत्यादि ।

પૂર્વોક્ત યથા પ્રાણી સુખની અભિલાષાવાળા છે એ છઠા જીવિકાયાને લગવાને  
પ્રસ-કાય કહેલ છે (૬)

યથા પ્રાણી સુખના અભિલાષી છે, પરન્તુ સુખની પ્રાપ્તિ ત્યારે થાય છે કે  
ત્યારે આરભને પરિત્યાગ કરવામા આવે, તેથી આરભના ત્યાગને ઉપદેશ આપે છે-  
इच्छेसि इत्यादि

त्रिविधेन कायेने 'त्यन्वये मनोवाक्याना प्रत्येक त्रैविध्य प्राप्नोति तच्चाऽनिष्ट, नह्यत्र मनआदीनि प्रत्येक त्रैविध्यमर्हन्ति किं तर्हि? तद्व्यापारा एवेति चेन्न,

तदभावे हि 'मनसा वाचा कायेन' इत्येतावन्मात्रोक्तौ 'न करोमि न कार्यामि, कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामी' -त्यनेन सह 'यथासख्यमनुदेशः समा-  
नाम्' ( १ । ३ । १० ) इति वचनानुरोपेन 'शत्रु मित्र विपत्ति च जय रज्जय  
भञ्जये' -त्यादिवत्, 'एचोऽयवायावः' ( ६ । १ । ७८ ) इत्यादिवद्वा क्रमिका-  
न्वये 'मनसा न करोमि, वाचा न कार्यामि, कायेन कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजा-

अर्थ होगा कि 'तीन प्रकारके मनसे, तीन प्रकारके वचनसे और तीन प्रकारके कायसे' आरम्भ न करे। अर्थात् मन वचन कायके तीन तीन भेद होंगे। ऐसा अर्थ शास्त्रविद्वद्ब है—शास्त्रोमें भगवानने मन आदिके तीन तीन भेद नहीं बताये हैं, किन्तु मन आदिके व्यापारोंको तीन प्रकारका बताया है।

उत्तर—यह शका ठीक नहीं है। यदि 'त्रिविधेन' न कहकर केवल 'मनसा वाचा कायेन' कह देते तो अर्थ ठीक न बैठता, क्योंकि जैसे कोई कहे कि "हेय और उपादेयको त्यागो और ग्रहण करो।" तो इस वाक्यमें क्रमसे 'हेय' के साथ 'त्यागो'का सम्बन्ध होजाता है और 'उपादेय'के साथ 'ग्रहण करो'का। इसी प्रकार 'चोलपट्टा चादर पहनो, ओढो' कहनेसे यह अर्थ होता है कि "चोलपट्टा पहनो—और चादर ओढो।" इसीप्रकार 'त्रिविधेन' (तीन प्रकारसे) पद न रखते

मनधी, त्रयु प्रकारना वचनधी, अने त्रयु प्रकारनी कायावा' आल न करे अर्थात् मन वचन कायाना पक्ष त्रयु लोद गनशे ओयो अर्थ शास्त्रविद्वद्ब छे शास्त्रभा लगवाने मन आदिना त्रयु लोद गताव्या नधी, परन्तु मन आदिना व्यापारेने ते त्रयु प्रकारना गताव्या छे

उत्तर—अे गका गराणर नधी अे त्रिविधेन न कहीने देवण मनसा वाचा कायेन उच्ये होत तो अर्थ गनणर गध गेसत नडि कारणु के गेम दोध कडे छे "हेय अने उपादेयने त्यागो अने अडण करे" तो अे वाक्यभा कमानुसार 'हेय'नी साथे 'त्याग'नेा सगध थज गाय छे अने 'उपादेय'नी साथे 'अडण करे'नेा अेअ रीते 'चोलपट्टे आदर पडेशे ओढो' उडेवाधी अे अर्थ साथ छे छे 'चोलपट्टे पडेशे अने आदर ओढो' अे रीते त्रिविधेन (त्रयु प्रकारे)

एवाऽपितु ततः प्रागपीति, जीयन एव न तदुत्तर परलोकेऽपीत्यर्थः । दण्ड किंविध? मित्पाह-त्रिविध=तिस्रो विधाः-प्रकारा यस्य स तम्=कृत-कारिताऽनुमत-रूपम्, तत्र कृत=मृतन्त्रेणाऽऽत्मना सम्पादितम्, कारितम्=अन्य (व्यतयन्तर)-द्वारा निष्पादितम्, अनुमत=सायनव्यापारमारभमाणस्य 'त्व साधु करोषि, एवमेव कुर्यन्नास्व' इत्यादिना प्रोत्साहितम्, त्रिविधेन=प्रकारत्रयविशिष्टेन कारणभूतेन, केने? त्याह-'मनसा वाचा कायेने'ति ।

ननु त्रिविधेनेत्यनेन यत्प्रकारत्रय गृह्यते तत् 'मनसे' त्यादिना प्रतिपदमेवोक्तम्, एव सति त्रिविधेनेत्युपादानेन पौनरुक्त्यदोषप्रसक्तं भवति । यद्वा 'त्रिविधेने'ति विशेषण 'मनसे' त्यादेरेण समवति, ततश्च 'त्रिविधेन मनसा, त्रिविधया वाचा,

दूसरोंकी अनुमोदना करे । दण्ड तीन प्रकारका है-(१) कृत, (२) कारित, (३) अनुमोदित ।

कृत-अपनी इच्छासे स्वयं करना ।

कारित-दूसरे व्यक्तिसे कराना ।

अनुमोदित-जो सावध व्यापार कर रहा हो उसे अच्छा समझना ।

यह सब सावध व्यापार तीन कारण तीन योगसे न करे । वे तीन योग ये हैं-(१) मन, (२) वचन, (३) काय ।

प्रश्न-सूत्रमें 'त्रिविधेन' (तीन प्रकारसे) कहा ही है फिर 'मनसा' (मनसे) 'वाचा' (वचनसे) 'कायेन' (कायसे) कहनेसे पुनरुक्ति (कहे हुए को पुनः कहना) होती है । या 'तीन प्रकारसे' यह विशेषण 'मन, वचन, काय' का ही हो सकता है । यदि ऐसा मान लिया जाय तो इसका

अनुमोदना करे दंड त्रय प्रकारने छे (१) कृत, (२) कारित, (३) अनुमोदित

कृत-पोतानी छंछाथी पोते करवु

कारित-णीण व्यक्तित पासे करववु

अनुमोदित-जे सावध व्यापार करी रह्यो होय, तेने साइ जणवु

जे अथा सावध व्यापार त्रय करण त्रय योगथी न करे ते त्रय योग, आ छे-(१) मन, (२) वचन, (३) काया

प्रश्न-सूत्रमा त्रिविधेन (त्रय प्रकारे) कहेलु न छे, पछी मनसा (मनथी), वाचा (वचनथी), कायेन (कायाथी) कहेवाथी पुनरुक्ति (कहेलाने करी कहेलु) थाय छे आ 'त्रय प्रकारे' जे विशेषण 'मन, वचन, काया' नु न छे छे शब्द छे जे जेभ मानवाभा आवे तो जेने अर्थ जेयो थशे छे 'त्रय प्रकारना

दृष्टादित्यर्थः, अत्रापदानस्य शेषत्वविवक्षया पठ्यी । भते ' भदन्त ' भन्दते= कल्याण सुख वा प्रापयतीति भदन्तः, (' अन्तर्भावितण्यर्थाद् ' भदि कल्याणे सुखे च ' त्यस्माद्भातो ' भन्देर्नलोपश्चे 'त्यौणादिकसूत्रेण झच् वातुनकारलोपयोः ' झोऽन्त ' इति अस्यान्तादेश । ) यद्वा भव=ससारमन्तयति=दूरीकरोतीति, (' कर्मण्यण् ( ३ । २ । १ ) इत्यण् शकन्च्वादेराकृतिगणत्वात्पररूपे पृषोदरादित्वाद्भवस्य दः । ) अथवा भवस्य=ससारस्याऽन्तो=ऽवसान येनेति व्यधिरुणपदो बहुव्रीहि पररूपादेशो प्राग्वत् । भयस्य=जन्म-जरा-मरण-निमित्तकस्याऽन्तो=नाशो येनेति भयान्तः, स एव भदन्त इति वा, पृषोदरादित्वादेरस्याकारस्य लोपो यस्य च दः । अपिवा भय ददतीति भयदाः=भोगास्तानन्तयतीति कर्मण्यणिति सूत्रविहिताऽणन्त-भयदान्त-शब्दस्य पृषोदरादित्वाद् भदन्त इति ।

यद्वा दान्त भय येन स भयदान्तः ' निष्ठान्तस्य परनिपात आहिताग्न्यादिपाठात् ' स एव भदन्तः ' यलोप-इस्वौ पृषोदरादिपाठकृतौ ।

अथच भान्ति=दीप्यन्ते ( समुल्लसन्तीत्यर्थात् ) स्वस्वविययेष्विति भानि=इन्द्रियाणि, तानि दान्तानि येन स भदान्तः, स एव भदन्तः ( निष्ठान्तपरनिपातः प्राग्वत् , पृषोदरादित्वादाकारस्य इस्व. ) । यद्वा भाति=सम्यग्ज्ञान-दर्शन-

व्याकरणमें 'भते' शब्द अनेक प्रकारसे सिद्ध होता है, इसलिए उसके अर्थ बहुतसे हैं । जैसे (१) कल्याण और सुखको देनेवाले, (२) ससारका अन्त करनेवाले, (३) जिनकी सेवा भक्ति करनेसे ससारका अन्त हो जाता है, (४) जन्म-जरा-मरणके भयका नाश करनेवाले, (५) भोगोंको त्याग देनेवाले, (६) भयको दमन करनेवाले निर्भय, (७) इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, (८) सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन

व्याकरणमा भते शब्द अनेक प्रकारे सिद्ध थाय छे, तेथी अनेक अर्थ धरुण छे जेवा के (१) कल्याण अने सुखने आपनार, (२) ससारने अत उरनार, (३) जेनी सेवाभक्ति कवाथी ससारने अत आवी नय छे, (४) जन्म जरा मरणना लयने नाश करनार, (५) भोगोने त्याग करनार, (६) लयनु दमन करनार-निर्भय (७) इन्द्रियोनु दमन करनार, (८) सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन

नामी'-त्यनभीष्टोऽर्थ आपद्येत तद्धारणाय त्रिविधेनेत्युक्तम्, तेन मनसा न करोमि, न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि; वाचा न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि; पर कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामीत्यर्थो भवति, यद्वा पूर्वं सामान्यतस्त्रिविधेनेत्युक्त्वा केन त्रिविधेने?ति जिज्ञासाया तत्प्रकारान् दर्शयितु विशेषेणाऽऽह- 'मनसे'-त्यादीति नास्ति पौनरुक्त्यदोषाऽऽपात । केचित् 'मनसा वा वाचा वा कायेन वेति विरूपसप्रहार्य 'त्रिविधेने'-त्युक्तमित्यूचिरे । 'न कारयामी' त्यत्रा-'ऽन्येने'ति-शेषः पूरणीयः । न समनुजानामि=नानुमन्ये । तस्येति-तस्मात्=पूर्वोक्तरूपा

तो ऐसा अनिष्ट अर्थ होजाता कि-मनसे न करे, वचनसे न करावे और कायसे अनुमोदना न करे । इस अनिष्ट अर्थका परिहार करनेके लिए 'त्रिविधेन' पद रखनेसे यह अर्थ हुआ कि-(१) मनसे न करूँ, (२) न कराऊँ, (३) न करते हुए को भला जानूँ । (४) वचनसे न करूँ, (५) न कराऊँ, (६) न करते हुएको भला जानूँ । (७) कायसे न करूँ, (८) न कराऊँ, (९) न करनेवालेको भला जानूँ ।

अथवा पहले सामान्य रूपसे कहा है कि तीन प्रकारसे न करूँ, परन्तु तीन प्रकार कौन-कौनसे हैं ? ऐसी जिज्ञासा होने पर विशेष बता दिया कि "मनसा वाचा कायेन" ये तीन प्रकार हैं, इसलिए पुनरुक्ति आदि कोई दोष नहीं है ।

अथवा मन वचन और कायके निमित्तसे होनेवाले तीन भेदोंका संग्रह करनेके लिए 'त्रिविधेन' पद रखा है ।

शब्द न राख्यो छोट तो अ्यो अनिष्ट अर्थ थर्ष जत के मनथी न करो, वचनथी न करावो अने कायाथी न अनुमोदना करो. अनिष्ट अर्थना परिहार करवाने भाटे त्रिविधेन शब्द आख्यो छे, अ्ये त्रिविधेन शब्द आपवाथी अ्यो अर्थ थयो के-(१) मनथी न करे, (२) न करावु, (३) न करनारने लवो जालु, (४) वचनथी न करे, (५) न करावु, (६) न करनारने लवो जालु, (७) कायाथी न करे, (८) न करावु, (९) न करनारने लवो जालु

अथवा पढेला सामान्यरूपे कहु छे के 'त्रय प्रकारे न करे' परन्तु त्रय प्रकार क्या क्या छे ? अ्यो जिज्ञासा थता विशेष जतावी आख्यु छे के मनसा वाचा कायेन' अ्ये त्रय प्रकार छे अ्यो करीने पुनरुक्ति आदि केछ दोष थतो नथी अथवा मन वचन अने कायाना निमित्ते थनारा त्रय वेदोने सश्रु करवाने भाटे त्रिविधेन शब्द राख्यो छे

चतुर्थी 'नेष्यते, 'निन्दामि, गर्हे' इत्यनयोस्तस्येत्यनेन प्रागुक्तेन सम्बन्धस्तेन—  
अतीतदण्डसम्बन्धिनीं स्वसाक्षिकीं गुरुसाक्षिकीं च निन्दा करोमीति निर्गलितोऽर्थः,  
तस्येत्यत्र सम्बन्ध-सामान्ये पृथ्याः प्रागुक्तत्वात् । यद्वा 'आन्मान'-मित्यस्यैव  
मध्यमणिन्यायाद् देहलीदीपन्यायाद्वा व्युत्सजामीत्यनेन 'निन्दामि, गर्हे' इत्याभ्या  
च सम्बन्धस्तेन भूतकालिकदण्डविधायिनमप्रशस्तमात्मानं जुगुप्से व्युत्सजामि=  
विविधाऽनित्यादिभावनया विशिष्य वा परित्यजामीत्यर्थः ॥७॥

१ " क्रुधद्गृहेर्ष्याऽमृयार्थानां य प्रति कोपः " (१।४।६४) इत्यत्र शब्देन्दुशेखरे  
'न-ह्यकुपितः क्रुध्यती'—ति भाष्येण प्ररूढकोप एव क्रोध इति कुपेस्तदर्थत्वाभावेन  
न तत्रोग इदम् 'कुप्यति रुस्मैचि'-दित्याश्रया वेवेति ।

इसका अर्थ यह होता है कि—हे भगवन् ! अतीत कालमे दण्ड  
(सावद्य व्यापार) करनेवाले आत्मा (आत्मपरिणति) को अनित्य  
आदि भावना भाकर त्यागता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ।  
जैसे घरकी देहलीपर दीपक रखनेसे भीतर भी प्रकाश होता है और  
बाहर भी प्रकाश होता है इसको 'देहली-दीपक' न्याय कहते हैं। कहा भी  
है—“परै एक पद बीचमें, दुहु दिस लागै सोय । सो है 'दीपक देहरी',  
जानत है सब कोय ॥१॥” बीचमें मणि जब देनेसे दोनो ओर मणिका  
प्रकाश होता है, यह 'म-यमणि' न्याय कहलाता है, इसी प्रकार 'अप्पाण'  
का दोनोके साथ सम्बन्ध होता है । अर्थात् सावद्य व्यापारवाली आत्माको  
त्यागता हूँ और उसकी निन्दा करता हूँ, तथा गर्हा करता हूँ ॥७॥

अनेो अर्थ अे थाय छे के- छे भगवन् ! अतीत कालमा दण्ड (सावद्य  
व्यापार) करनारा आत्मा (आत्मपरिणति)ने अनित्य आदि भावना लावीने  
त्याग छु, निन्द छु, गर्हु छु, जेम घरनी डहेली (गारण्य) पर दीपे राभवाथी  
अदर पणु प्रकाश थाय छे अने गडार पणु प्रकाश थाय छे तेने 'देहली-दीपक  
न्याय' कहे छे कहु छे के- “परै अेक पद बीचमें, दुहु दिस लागै सोय,  
सो है 'दीपक-देहरी', जानत है मण डाय (१)” वयमा मणु नडी देवाथी  
गेठे गारण्य मणुने प्रकाश थाय छे तेने 'मध्य-मणु न्याय' कहे छे, अे रीते  
अप्पाण ने गेठेनी साथे सणध थाय छे अर्थात् सावद्य-व्यापारवाणा आत्माने  
त्याग छु अने तेनी निंदा कइ छु, तथा गर्हा कइ छु (७)



ચારિત્રેર્દીપ્યતે ઇતિ भान्तः ( ' मा दीप्ता ' अस्मादीणादिकोऽन्तप्रत्ययः ) स एव भदन्तः, ( ' सिद्धिः पृषोदरादित्वादेव ' ) ।

(एव ययामति व्युत्पत्त्यन्तरेष्वपि निरुक्तोक्तत्रासट्टायनादिप्रतिपादितरीत्या साधनप्रक्रिया बोद्धव्या । ) तत्सम्बोधने हे भदन्त ! = हे भगवन् ! अनेन सम्बोधन निर्देशेन व्रतप्रत्यारूपानादिकं सर्वाऽपि क्रियाः त्रापो गुरुसाक्षिक एव विगतव्य इति बोधितम् । प्रतिक्रामामि = प्रतिनिवर्त्त भूतदण्डात्पृथग्भ्रामामीत्यर्थः । यत्तु टीकान्तरेषु ' पडिषमामी ' - त्यस्य ' प्रतिक्रामामी ' ति त्रायोपलभ्यते सा प्रमाद विजृम्भितैव, ( ' क्रमः परस्मैपदेषु ' ( ७।३।७६ ) इति पाणिनिवचनवलेन क्रमे रूपधादीर्घस्य दुर्वारत्वात् । ) निन्दामि = जुगुप्से । गर्हे = प्रजुगुप्से इत्येवार्थः ।

ननु तर्हि निन्दा-गर्हयोः ' कुत्सा निन्दा च गर्हणे ' - ति कोशरीत्या पर्यायत्वेन पौनरुक्त्य वज्रलेपायितमेवेति चेन्न, यतः स्वसाक्षिकी निन्दा, गुरुसाक्षिकी च गर्हेति परस्पर भवति भेदः । यद्वा ' निन्दा = साधारणी कुत्सा, गर्हा = सैवाति भूयसी ' - ति परस्परमर्थभेदान्नास्ति पर्यायता, यथा प्रटद्ध एव कोपः क्रोधो न साधारण इति कोप-क्रोधयोः पर्यायत्वाभावेन क्रुध्यर्थत्वाभावात् कुपधातुयोगे

औર સમ્યક્ચારિત્રસે દીપનેવાલે । इन सबको 'भते' कहते हैं । इसी प्रकार और अर्थ भी समझने चाहिए । 'भदन्त !' इस सम्बोधनसे यह प्रगट होता है कि समस्त क्रियाएँ गुरु महाराजकी साक्षीसे ही करनी चाहिए । हे भगवन् ! मैं दण्डसे निवृत्त होता हूँ, निन्दा करता हूँ, और गर्हा करता हूँ । कोशोंमें निन्दा और गर्हा शब्दका एक ही अर्थ है इसलिए पुनरुक्ति होती है, ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि निन्दा आत्मसाक्षीसे होती है और गर्हा गुरुसाक्षीसे होती है । अथवा निन्दा साधारण कुत्साको कहते हैं और गर्हा अत्यन्त निन्दाको कहते हैं ।

અને સમ્યક્-ચારિત્રથી દીપ્તિમાન, એ બધાને ભત્તે કહે છે એજ રીતે બીજા અર્થો પણ સમજી લેવા 'ભદન્ત' એ સબોધનથી એમ પ્રકટ થાય છે કે બધી ક્રિયાઓ શુરૂ મહારાજની સાક્ષીએ જ કરવી જોઇએ

હે ભગવન ! હું દડથી નિવૃત્ત થઉં છું, નિન્દા કરું છું અને ગર્હા કરું છું શબ્દકોશોમાં ' નિન્દા ' અને ' ગર્હા ' ગણને એકજ અર્થ છે, તેથી પુનરુક્તિ થાય છે, એમ ન સમજવું કારણ કે નિન્દા આત્મસાક્ષીએ થાય છે અને ગર્હા શુરૂ સાક્ષીએ થાય છે અથવા નિન્દા સાધા ણ કુત્સાને કહે છે અને ગર્હા અત્યંત નિન્દાને કહે છે

परिमाणविशेषे तादात्म्यसम्बन्धेन (अभेदसम्बन्धेन) अन्वये सति द्रोणाभिन्न परिमाणमिति बोधः, ततश्च प्रत्ययार्थपरिमाणस्य परिच्छेद्य-परिच्छेदकभावेन व्रीहपदार्थेऽन्वये द्रोणाभिन्न यत्परिमाण तत्परिच्छिन्नो (तत्परिमितो) व्रीहिरिति बोधः, अत्र प्रत्ययार्थस्य व्रीहान्वयमदर्शनं प्रकृतानुपयोग्यपि प्रसङ्गतः कृतम् । यद्वा-यथा 'उपाध्यायो मुनि'-रित्युपाध्यायशब्दार्थे उपाध्यायपदधारिणि मुनिविशेषे मुनिशब्दार्थस्य मुनिसामान्यस्य तादात्म्यसम्बन्धेन (अभेदसम्बन्धेन) अन्वयः, तथा च-उपाध्यायाभिन्नो मुनिरिति बोधः, तत्र विशेषत्वेन विवक्षित-पदार्थे उपाध्यायपदधारिणि मुनिविशेषे मुनिशब्दार्थस्य मुनित्वस्य सत्त्वाद्बुभयोः

द्वारा अन्वय होता है । इस अन्वयसे "चार आढकरूप परिमाण" (एक प्रकारका तौल) ऐसा बोध होता है । उस प्रत्ययार्थ परिमाण-सामान्यको परिच्छेद्य-परिच्छेदक-भाव सम्बन्धसे व्रीहि पदार्थमे अन्वय होनेसे 'उस परिमाणसे परिमित (मापा हुआ) व्रीहि' ऐसा बोध होता है । यहा व्रीहिमें अन्वय प्रसगवश दिखलाया गया है । अथवा—

"उपाध्यायो मुनिः" यहाँ उपाध्याय शब्दका अर्थ है उपाध्याय-पदधारी मुनिविशेष (१), तथा मुनि शब्दका अर्थ मुनिसामान्य (२), अतः जो उपाध्याय है वही मुनि है, अर्थात् मुनिसे अन्य उपाध्याय नहीं है इसलिए उपाध्याय शब्दार्थको मुनि शब्दार्थके साथ अभेद सम्बन्धसे अन्वय होता है तो 'उपाध्यायसे अभिन्न मुनि' ऐसा बोध होता है । यहा विशेष याने उपाध्यायपदधारी (व्यक्ति) में मुनिके

अन्वयथी "चार आढक रूप परिमाण" (एक प्रकारने तौल) जेवो बोध वाय छे जे प्रत्ययार्थ-परिमाण-सामान्यने परिच्छेद्य-परिच्छेदक-भाव सगधथी व्रीहि पदार्थमा अन्वय थवाथी "जे परिमाणथी परिमित (मापेला) व्रीहि" जेवो बोध वाय छे अही व्रीहिमा अन्वय प्रसगवश जताववामा आये छे अथवा—

उपाध्यायो मुनिः जेमा उपाध्याय शब्दने अर्थ छे-उपाध्याय पदधारी मुनि-विशेष (१), तथा मुनि शब्दने अर्थ छे मुनि-सामान्य (२), जेटले जे उपाध्याय छे तेर मुनि छे, अर्थात् मुनिथी वृद्धे उपाध्याय नथी जेथी करीने उपाध्याय शब्दार्थने मुनि शब्दार्थनी साथे अलेद सगधथी अन्वय थाय छे, अने तेथी 'उपाध्यायथी अभिन्न मुनि' जेवो बोध थाय छे जेमा विशेष करीने उपाध्याय-पदधारी (व्यक्ति)मा मुनिना सामान्य धर्मरूप मुनित्वनु

દण्डपरित्यागो द्विषिः सामान्यविशेषभेदान्, सामान्यतो दण्डपरित्यागोऽर्हिसासामान्यम्, विशेषतो दण्डपरित्यागश्च पञ्च महाव्रतानि ।

નનુ પશ્ચસુ મહાવ્રતેષુ સત્યાદિવ્રતાનામર્હિસાતો ભેદઃ સુસ્પષ્ટ પ્રતીયત ઇતિ કથમર્હિસયા પશ્ચાના મહાવ્રતાના સામાન્ય-વિશેષમાય ઉપપન્નેત ? સામાન્યવિશેષ માયો હિ વિશેષત્વેન વિરક્ષિતપદાર્થમ્ન્ય સામાન્યપ્રમાક્રાન્તત્વાદેય સપન્નેતે, અત ઇવ 'વ્યાપ્યવ્યાપકમાત્રાપન્નયોઃ સામાન્યવિશેષમાયઃ' ડત્યુદ્દોષઃ, યયા 'દ્રોણો વ્રીહિઃ' રિત્યત્ર પ્રથમાવિભક્ત્યર્થસ્ય પરિમાણસામાન્યસ્ય દ્રોણશબ્દાર્થે ચતુરાદકાત્મક

દण्डपरित्याग दो प्रकारका है—(१) सामान्य-दण्डपरित्याग और (१) विशेष दण्डपरित्याग। अर्हिसा-सामान्यको सामान्य-दण्डपरित्याग करते हैं और पंच महाव्रतोंको विशेष दण्डपरित्याग करते हैं ।

પ્રશ્ન—પાંચ મહાવ્રતોમ્ સત્ય આદિ મહાવ્રતોકા અર્હિસાસે સ્પષ્ટ ભેદ પ્રતીત હોતા હૈ, ફિર અર્હિસાકે સાથ સત્ય આદિ મહાવ્રતોકા સામાન્ય-વિશેષભાવ કૈસે હો સકતા હૈ ? સામાન્ય-વિશેષભાવ વહી હોતા હૈ જિસકો વિશેષ બનાવેં ઉસમ્ સામાન્ય ધર્મ મ્ પાયા જાય । ઇસીલિલ્લ યહ કહા ગયા હૈ કિ 'વ્યાપ્ય-વ્યાપકભાવ જિનમ્ હોતા હૈ ડન્હીમ્ સામાન્ય વિશેષભાવ પાયા જાતા હૈ' જૈસે "દ્રોણો વ્રીહિઃ" ડસ વાક્યમ્ પ્રથમા વિભક્તિકા અર્થ પરિમાણ-સામાન્ય હૈ । ડસ પરિમાણ-સામાયકા દ્રોણ શબ્દકે અર્થ ચાર આદકરૂપ પરિમાણ-વિશેષમે અભેદ સમ્બન્ધકે

દડપરિત્યાગ બે પ્રકારનો છે (૧) સામાન્ય-દડપરિત્યાગ અને (૨) વિશેષ-દડપરિત્યાગ અર્હિસાસામાન્યને સામાન્ય દડ-પરિત્યાગ કહે છે, અને પંચ મહાવ્રતોને વિશેષ-દડપરિત્યાગ કહે છે

પ્રશ્ન—પાંચ મહાવ્રતોમા સત્ય આદિ મહાવ્રતોનો અર્હિસાથી સ્પષ્ટ ભેદ પ્રતીત થાય છે, તો પછી અર્હિસાની સાથે સત્ય આદિ મહાવ્રતોનો સામાન્ય વિશેષ-ભાવ કેવી રીતે હોઈ શકે છે ? સામાન્ય-વિશેષ-ભાવ તેમા હોઈ શકે છે કે જેને વિશેષ બતાવે તેમા સામાન્ય ધર્મ પણ મળી આવે તેથી કરીને એમ કહેવામા આવ્યુ છે કે 'જેમા વ્યાપ્ય-વ્યાપકભાવ હોય છે તેમા જ સામાન્ય-વિશેષ-ભાવ મળી આવે છે' જેમકે દ્રોણો વ્રીહિ એ વાક્યમા પ્રથમા વિભક્તિનો અર્થ પરિમાણ-સામાન્ય છે એ પરિમાણ-સામાન્યનો, દ્રોણ શબ્દના મર્દ ચાર આદક રૂપ પરિમાણ-વિશેષમા અલેદ સબધની દ્વારા અન્વય થાય છે એ

दितो विशेषत्व प्रतीयते, यथा च नीलघटो घट इत्यादौ नीलगुणविशिष्टत्वेन नीलघटे घटसामान्यापेक्षया विशेषत्व विद्यते, विशेषत्व चात्र व्याप्यत्वमेव, तथा प्रकृते पञ्चमहाव्रतलक्षणेऽर्हिसाविशेषे कथं विशेषत्वमिति चेच्छृणु-

प्राणातिपातविरमणत्वादिना व्याप्यधर्मेण पञ्चसु महाव्रतेषु विशेषत्वं सुवच-  
मेवेति ।

ननु तर्हि अर्हिसासामान्यस्य किं लक्षणं यत् पञ्चसु महाव्रतेषु व्यापकं भवे ?  
दिति चेद् उच्यते-पद्मजीवनिकायेषु दण्डसमारम्भवर्जनत्वमेवाऽर्हिसा-सामान्यस्य

आढकरूप परिमाणमें चार आढकत्व आदि धर्मसे विशेषता प्रतीत होती है । अथवा “जो नीला घडा है वह घडा ही है” इत्यादि वाक्यों में अन्य घडोंकी अपेक्षा नीले घडेमें नीलेपनसे विशेषता पाई जाती है और वह विशेषता व्याप्यत्वरूप है, वैसे पच महाव्रतरूप अर्हिसा-विशेषमें विशेषता किस धर्मके कारण है ? ।

उत्तर-प्राणातिपातविरमणत्व आदि व्याप्यधर्मोंसे पाच महाव्रतोंमें विशेषता पाई ही जाती है । अर्थात् जहाँ प्राणातिपातविरमणत्व आदि व्याप्य धर्म पाये जाते हैं वहाँ अर्हिसा सामान्यका अस्तित्व रहता ही है ।

प्रश्न-अर्हिसासामान्यका लक्षण क्या है ? जिससे वह पाच महाव्रतोंमें व्यापक होजावे ? ।

उत्तर-पद्मजीवनिकायोंमें दण्डका परित्याग करना अर्हिसा-सामान्यका

परिभाषणमा आर आढकत्व आदि धर्मथी विशेषता प्रतीत थाय छे, अथवा ‘ने नीला घडा छे ते घडा न छे’ इत्यादि वाक्येभा अन्य घडानी अपेक्षाये नीला घडाभा नीलापण्यथी विशेषता भणी आवे छे अने ते विशेषता व्याप्यत्वरूप छे तेम पचमहाव्रतरूप अर्हिसा-विशेषमा विशेषता क्या धर्मने कान्छे छे ?

उत्तर-प्राणातिपातविरमणत्व आदि व्याप्य-धर्मथी पाच महाव्रतोभा विशेषता भणी आवे छे अर्थात् न्या प्राणातिपातविरमणत्व आदि व्याप्य धर्म भणी आवे छे न्या अर्हिसा-सामान्यनु अस्तित्व रहेलु न छेय छे

प्रश्न-अर्हिसा-सामान्यनु लक्षणं कथं छे के नेथी ते पाच महाव्रतोभा व्यापक थय नथ छे ?

उत्तर-पद्मजीवनिकायभा दण्डो परित्याग करवो अे अर्हिसा-सामान्यनु

પદાર્થયોઃ સામાન્ય વિશેષભાવોઽભેદાન્વયશ્ચ મયતિ, તથા પ્રકૃતેઽન્વયો ન સમવતિ, સત્યાદિમહાવ્રતાનામર્હિસાતઃ સુસ્પષ્ટમેદમતીતિવચ્ચાદભેદાન્વયમ્ય વાધાદિતિ વેદ-

પજ્ઞાનામપિ મહાવ્રતાના યસ્તુતોઽર્હિસાત્મકત્વાત્ સામાન્ય-વિશેષભાવઃ સુવોષ ઇત્યમ્ । અર્હિસાસામાન્યસ્વરૂપાચ્ચાત્કરણાય શિષ્યાણાં સુસ્પષ્ટપ્રતિપત્તયે ચ વષ્ટ પરિત્યાગસ્ય દ્વૈવિધ્ય કૃતમ્, એકૈવાઽર્હિસા પચ્ચથા વિભાજિતા ।

નતુ યથા 'દ્રોણો વ્રીહિ' રિત્યાદૌ દ્રોણાદિશબ્દાર્થચતુરાદકાત્મકપરિમાણે ચતુરાદકતાદિધર્મેણ પરિમાણત્વાદિસામાન્યચર્માક્રાન્તાત્ પ્રત્યયાર્થપરિમાણ-

સામાન્યધર્મ સુનિત્યકા અસ્તિત્વ પાયા જાતા છે, અતઃ એવ દોનો પદાર્થોકા સામાન્ય-વિશેષભાવમે અભેદાન્વય હોતા છે ।

અર્થાત્ જૈસે ઇત્ત દો ઉદાહરણોસે અભેદમે સામાન્ય-વિશેષભાવ પાયા જાતા છે, વૈસા અર્હિસાકે સાથ સત્યાદિ વ્રતોકા અભેદ નહીં છે, અતઃ એવ સામાન્ય-વિશેષભાવ નહીં હો સકતા, ક્યોંકિ ઉનકા સ્પષ્ટ ભેદ, પ્રતીત હોતા છે ।

ઉત્તર-પાંચો મહાવ્રત વાસ્તવમે અર્હિસાસ્વરૂપ હેં, ઇસલિયે અર્હિસાસે ભિન્ન નહીં હેં । અર્હિસાકે સ્વરૂપકો સ્પષ્ટ કરનેકે લિયે ઓર શિષ્યોંકો સ્પષ્ટ ઘોષ કરાનેકે લિયે વષ્ટપરિત્યાગકે દો ભેદ કર દિયે હેં, અર્થાત્ એક હી અર્હિસાકો પાંચ મહાવ્રતોમે વિભક્ત કર દિયા છે ।

પ્રશ્ન-જૈસે "દ્રોણો વ્રીહિઃ" ઇત્યાદિ વાક્યોમે પરિમાણત્વ આદિ સામાન્યધર્મસે યુક્ત પ્રત્યયાર્થ પરિમાણ-સામાન્યસે દ્રોણ શબ્દાર્થ ચાર

અસ્તિત્વ મળી આવે છે, તેથી કરીને એક શબ્દોના અર્થોના સામાન્ય-વિશેષ ભાવમા અભેદાન્વય થાય છે

અર્થાત્-એમ એ એક ઉદાહરણથી અભેદમા સામાન્ય-વિશેષ ભાવ મળી આવે છે, તેમ અર્હિસાની સાથે સત્યાદિ વ્રતોના અભેદ નથી, તેથી સામાન્ય-વિશેષ-ભાવ થઈ શકતો નથી, કારણ કે એનો સ્પષ્ટ ભેદ પ્રતીત થાય છે

ઉત્તર-પાંચે મહાવ્રત વસ્તુતાએ અર્હિસાસ્વરૂપ છે, તેથી કરી અર્હિસાથી ભિન્ન નથી અર્હિસાના સ્વરૂપને સ્પષ્ટ કરવાને માટે અને શિષ્યોને સ્પષ્ટ ઘોષ કરાવવાને માટે દૃઢ પરિત્યાગના એ ભેદ કરવામા આવ્યા છે, અર્થાત્ એક જ અર્હિસાન પાંચ મહાવ્રતોમા વિભક્ત કરી ના મવામા આવી છે

પ્રશ્ન-એમ દ્રોણો વ્રીહિ ઇત્યાદિ વાક્યોમા પરિમાણત્વ આદિ સામાન્ય ધર્મથી યુક્ત પ્રત્યયાર્થ પરિમાણ-સામાન્યથી દ્રોણ શબ્દાર્થ ચાર આદકરૂપ

“ आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत् ।  
अनृतवचनादिकेवल,-मुदाहृत शिष्यवोधाय ॥ २ ॥ ”

किञ्च—

“ एग चिय इत्थ वय, निदिद्व जिणवरेहिं सव्वेहिं ।  
पाणाइवायविरमण,-मवसेसा तस्स रक्खट्ठा ॥ ३ ॥ ”

अतथादौ प्राणातिपातविरमणारूप्य प्रथम महाव्रतमाह—‘पढमे०’ इत्यादि ।  
मूलम्—पढमे भते । महद्वए पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वं भते ।

पाणाइवायं पच्चक्खामि, से सुहुमं वा वायर वा तस वा थावर वा  
नेव सय पाणे अइवाइज्जा, नेवन्नेहि पाणे अइवायाविज्जा, पाणे  
अइवायतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण  
मणेण वायाए काएण न करेमि, न कारवेमि, करतपि अन्न न  
समणुजाणामि, तस्स भते । पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण

“असत्य-वचन बोलने आदिसे भी आत्माके परिणामोंकी हिंसा  
होती है, अतः असत्य आदि सभी हिंसारूप है । असत्य आदिका  
अलग कथन शिष्योंको स्पष्ट समझानेके लिए किया गया है ॥२॥”

तथा—

“भगवानने एक प्राणातिपातविरमणको ही मुख्य कहा है अन्य  
व्रत उसीकी रक्षाके लिए हैं ॥३॥”

इसलिये पहले-पहल प्राणातिपात-विरमण महाव्रतका कथन करते  
हैं— “पढमे भते०” इत्यादि ।

“असत्य वचन बोलना वगैरैथी पणु आत्माना परिणामोनी हिंसा थाय छे,  
तेथी असत्य आदि णथा हिंसाइप छे असत्य आदिनुं गूढ कथन शिष्योने  
स्पष्ट समझववाने भाटे करवामा आयु छे ” (२)

तथा—

“ भगवाने अेक प्राणातिपात विरमणुने ए मुख्य कहु छे, अन्य व्रतो  
तेनी रक्षाने भाटे छे ” (३)

तेथी करीने सौधी पडेला प्राणातिपात-विरमणु भडाव्रतनुं कथन करे छे-  
पढमे भते० इत्यादि

लक्षणम्, तच्च पञ्चसु महाव्रतेषु प्रत्येकं भवतीति लक्षणसमन्वयो योग्यः, तथा च महाव्रतान्यत्र व्याप्यानि सामान्यानि दण्डपरित्यागो व्यापकस्तस्य पञ्चमहाव्रतरूपशेषपरिशेषनिवृत्त्यादतो व्यापकस्वरूपसामान्यदण्डपरित्याग व्याप्याय विशेषदण्डपरित्यागलक्षणमहाव्रतान्यभिधत्ते, तेषु प्राणातिपातविरमणात्मिकाया अहिंसायाः प्रधानत्वम्, इतरेषा सस्यक्षेत्रप्रति-वृत्ति ( बाड़ ) प्रतत्परिपात्रार्थतया तदङ्गत्वात्, तथाचोक्तम्—

“ अहिंसैका मता मुन्या, स्वर्गमोक्षमसाधनी ।

अस्याः सरक्षणार्थं च, न्याय्य सत्यादिपालनम् ॥ १ ॥ ”

अन्यच्च—

लक्षण है । यह लक्षण पाँचोंही महाव्रतोंमें पाया जाता है, अतः महाव्रत व्याप्य हैं और सामान्य-दण्डपरित्याग व्यापक है ।

व्यापकरूप सामान्य-दण्डपरित्यागका पूर्व सूत्रमें न्याययान किया है । अब विशेष-दण्डपरित्यागरूप पांच महाव्रतोंका व्याख्यान आरम्भ करते हैं, उनमें प्राणातिपातविरमणरूप अहिंसा प्रधान है, जैसे धान्यकी रक्षाके लिए खेतके चारों ओर बाड़ होती है, उसी प्रकार अन्य महाव्रत अहिंसाके रक्षक होनेसे अंग है ।

कहा भी है—

“ स्वर्ग और मोक्षको सिद्ध करनेवाली एक अहिंसा ही मुख्य है इसीकी रक्षाके लिए सत्यादि महाव्रतोंका पालन करना उचित है ॥ १ ॥ ”

और भी कहा है—

लक्षण छे, ओ लक्षण पांचे महाव्रतोभा भणी आवे छे, तेथी महाव्रत व्याप्य छे, अने सामान्य-दण्डपरित्याग व्यापक छे

व्यापकश्च-सामान्य-दण्डपरित्यागनु व्याख्यान पूर्व-सूत्रमा कहेलु छे हवे विशेष-दण्डपरित्यागश्च पांच महाव्रतानु व्याख्यान शरु क्वाभा आवे छे, तमा प्राणातिपातविरमणरूप अहिंसा प्रधान छे जेम धान्यनी रक्षाने माटे जेतरी आरे भावुओ वाड होय छे, तेम अन्य महाव्रतो अहिंसाना रक्षक होवाने लीधे अंगश्च छे कहलु छे डे—

“ स्वर्ग अने मोक्षने सिद्ध करवावाणी ओक अहिंसा न सुख्य उ तेनी रक्षाने माटे सत्यादि महाव्रतानु पालन करलु उचित छे ” (१)

वणी उल्लु छे डे—

(१) प्राणातिपात-विरमणव्रतम् ।

टीका-भदन्त ! = हे भगवन् ! प्रथमे = आये महाव्रते = महत्-विशालव्रत = शास्त्री-यमर्यादानुसरणम्, महच्च तद् व्रत च महाव्रतम्, महत्त्व चास्य श्रावकाणुव्रतापेक्षया, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावतः सर्वव्यापकत्वेन, महद्भिस्तीर्थं करगणधरादिभिराचरितंत्वेन, महापुरुषाचर्यमाणत्वेन चास्ति, तस्मिन्, प्राणातिपातात् = प्राणाः = स्पर्श-नेन्द्रियादयः सन्त्येवामिति प्राणा = एकेन्द्रियादयो जीवाः ( 'अर्श आदित्वादच्' ) तेषामतिपातो = वियोजन हिंसनमित्यर्थः, तस्माद् विरमण = निवर्तनम् 'अस्ती' ति शेषः, अतोऽहं भदन्त ! = हे भगवन् ! सर्व = स्थूलसूक्ष्मादियावद्भेदविशिष्ट कृत-कारिताऽनुमोदितस्वरूप वा प्राणातिपात प्रत्यारयामि = प्रति = प्रातिकूल्येन आरयामि = रुथयामि सर्वथा परित्यजामीति भावः, तदेव विशेषयति - 'से०' इति, से = अथ = अनन्तरम् अग्रारभ्य सूक्ष्म = सूक्ष्मनामकर्मप्रकृत्युदयसपन्नम् । यत्र-

१ देशीशब्दोऽयम् ।

(१) प्राणातिपातविरमण ।

ये श्रावकके व्रतोकी अपेक्षा विशाल होनेसे महाव्रत कहलाते हैं (१), अथवा सर्व द्रव्य क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा प्राणातिपात आटिका सर्वथा त्याग होता है इस कारण महाव्रत कहलाते हैं (२), या तीर्थकर गणधर आदि महापुरुषोंने इनको अगीकार किया है और वर्त्तमानमें भी महापुरुष इनको अगीकार करते हैं इससे ये महाव्रत कहलाते हैं (३) ।

हे भगवन् ! प्रथम महाव्रतमे प्राणातिपातसे विरमण होता है इसलिए हे भगवन् ! मैं कृत-कारित-अनुमोदनासे सूक्ष्म-स्थूल सब प्रकारके प्राणातिपातका परित्याग करता हूँ । अर्थात् सूक्ष्म नामकर्मकी प्रकृतिसे उत्पन्न

(१) प्राणातिपातविरमण

ये श्रावकना व्रतोनी अपेक्षाये विशाल होवाने लीधे महाव्रत कहेवाय ठे (१) अथवा सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावनी अपेक्षाये प्राणातिपात आदिने सर्वथा त्याग थाय ठे ये वारण्ये ते महाव्रत कहेवाय ठे (२) अथवा तीर्थकर गणधर आदि महापुरुषो येने अगीकारे छे तेथी ये महाव्रत कहेवाय छे (३)

हे भगवन् ! प्रथम महाव्रतमा प्राणातिपातधी विरमण्यु होय छे, तेथी, हे भगवन् ! हे कृत-कारित-अनुमोदनाधी सूक्ष्म-स्थूल सर्व प्रजा-ना प्राणातिपातनी परित्याग करे छे अर्थात् सूक्ष्म-नामकर्मनी प्रकृतिथी उत्पन्न सूक्ष्म



वोसिरामि । पढमे भंते ! महव्वण उवट्टिओमि सब्वाओ पाणाइवा  
याओ वेरमणं ॥ ८ ॥

छाया-प्रथमे भदन्त ! महाव्रते प्राणातिपाताद्विरमण, सर्वे भदन्त ! प्राणा  
तिपात प्रत्याख्यामि, अथ सुक्ष्म वा वाटर वा प्रस वा स्थावर वा नेव स्वय प्राणा  
नतिपातयामि, नैरायैः प्राणानतिपातयामि, प्राणानतिपातयतोऽप्यन्यात्र समनु  
जानामि यावज्जीवया त्रिषिध त्रिषिधेन मनसा याचा कायेन न करोमि न  
कारयामि कुर्यन्तमप्यन्य न समनुजानामि, तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि  
गर्हे आत्मान व्युत्स्रजामि, प्रथमे भदन्त ! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्माद्  
प्राणातिपाताद्विरमणम् ॥

शिष्य पदकायकी विरायना का त्याग करके अर पाँच महाव्रत और  
छठे रात्रि भोजनविरमणव्रतको ग्रहण करता है-

(१) प्राणातिपातविरमण.

सान्प्रयार्थ'-भते ! हे भदन्त !-हे भगवन् ! पढमे=प्रथम महव्वण=महाव्रतमें  
पाणाइचायाओ=प्राणातिपातसे वेरमण=विरमण होता है, (अतः म) भते !-हे  
भगवन् ! सब्ब=सब प्रकारके पाणाइचाय=प्राणातिपात (हिंसा) का पच्च  
क्खामि=त्याग करता हूँ। से=अथ-अत्रसे छेरर (मै) सुट्टम=सुक्ष्म वा=अथवा  
चायर=वाटर वा=अथवा तस=त्रस वा=अथवा थावर=स्थावर पाणे=प्राणियोंका  
सय=स्वय-खुद नेव=नही अइचाइज्जा=अतिपात हनन-करूँगा, नेव=न  
अन्नेहिं=दूसरोसे पाणे=प्राणियोंको अइचायाविज्जा=हनन कराऊँगा, (और)  
पाणे=प्राणियोंको अइचायतेवि=हनन करते हुए भी अन्ने=दूसरोको न=नहीं=  
समणुजाणेज्जा=भला जानूँगा, जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविह=  
कृतकारितअनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेण=तीन प्रकारके  
मणेण=मनसे वायाए=वचनसे काएण-कायसे न करोमि=न करूँगा, न  
कारवेमि=न कराऊँगा, करतपि=करते हुए भी अन्न=दूसरोको न समणु-  
जाणामि=भला नहीं समझूँगा। भते !-हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे  
पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ,  
गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाण=दण्ड सेवन करनेवाले  
आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ। भते=हे भगवन् ! पढमे=प्रथम महव्वण=  
महाव्रतमें मैं उवट्टिओमि=उपस्थित हुआ हूँ, इसलिये मुझे सब्वाओ=सब  
प्रकारके पाणाइचायाओ=प्राणातिपातका वेरमण=त्याग है ॥ ८ ॥ (१)

सम्प्रति शिष्यः स्वस्य-महाव्रतित्व ख्यापयन्नुपसहरति-हे भगवन् ! प्रथमे महाव्रते उपस्थितोऽस्मि=अभ्युद्यतोऽस्मि कृतोग्रमोऽस्मीत्यर्थः । अतोऽग्रप्रभृति मम सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमण सकलप्राणातिपातालम्बनसाव्रव्यापारप्रत्याख्यानम् 'अस्ती'-ति शेषः ॥ ८ ॥ (१)

सलिलेन तरुगुलमलतादीनामिव प्राणातिपातविरमणस्य परिपुष्टिर्मृपात्रादपरित्यागेन भवतीत्यतस्तदनन्तर मृपात्रादपरित्यागलक्षण द्वितीय महाव्रतमाह- 'अहावरे दोचे' इत्यादि ।

मूलम्-अहावरे दोचे भंते । महव्वए मुसावायाओ वेरमण, सब भते । मुसावाय पच्चक्खामि,से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सय मुस वड्ज्जा, नेवन्नेहि मुस वायाविज्जा, मुसं वयतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा । जावजीवाए तिविह तिविहेणं मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते । पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । दोचे भते । महव्वए उवट्ठिओमि सवाओ मुसावायाओ वेरमणं ॥९॥

छाया-अथापरे द्वितीये भदन्त ! महाव्रते मृपात्रादाद्विरमण, सर्वे भदन्त ! मृपात्राद प्रत्याख्यामि, अथ क्रोधाद्वा लोभाद्वा भयाद्वा हासाद्वा नेव

हे भगवन् ! मैं प्रथम महाव्रतको पालनेके लिए उद्यत हुआ हूँ, इस-लिए आजसे मुझे समस्त प्रकारके प्राणातिपातका प्रत्याख्यान है (१) ॥८॥

जैसे वृक्ष-लता आदि पानीसे पुष्ट होते हैं वैसेही मृपात्रादका त्याग करनेसे प्राणातिपातविरमण महाव्रतकी पुष्टि होती है, अत प्राणानिपातविरमणके बाद दूसरे मृपात्रादविरमण महाव्रतका व्याख्यान करते हैं- 'अहावरे दोचे' इत्यादि ।

हे भगवन् ! हे प्रथम महाव्रतने पाणवा भाटे उद्यत थये छु, तेथी आण्थी मारे जथा प्रकारना प्राणुतिपातना प्रत्याख्यान छे (१) (८)

जेम वृक्ष-लता आदि पणीथी पुष्ट थाय छे तेम मृपात्रादने त्याग करवाथी प्राणुतिपातविरमण महाव्रतनी पुष्टि थाय छे जेटवे प्राणुतिपातविरमणनी पछी पील मृपात्रादविरमण महाव्रतनु व्याख्यान करे छे-अहावरे दोचे० इत्यादि

પ્યસ્ય કાયિકી હિંસા ન ભવતિ તથાઽપિ તદ્ગ્રહણં ' ન કેવલ કાયિકયેવ હિંસા કિન્તુ  
 ગાદમનસયોર્દુષ્પણિધાનેનાપિ હિંસા સમપત્યેપેતિ જ્ઞાપનાર્થમ્ । યદ્વા સૂક્ષ્મ=કુચુ-  
 કાયિક કુન્ધ્વાદિકમ્, ચાદરં=સ્થૂલકાયિક ગોગજાદિકમ્, અનયોરપિ ત્રસ-સ્થાવર-  
 ભેદાદ્વૈવિધ્ય, તદાહ-ત્રસ સ્થાવર ચ, તત્ર સૂક્ષ્મત્રસ=કુન્ધ્વાદિકમ્, સૂક્ષ્મસ્થાવરં=  
 પનકાદિવનસ્પતિમ્, ગાદરત્રસમ્=અજ-ગજ-ગચ્યાદિકમ્, ચાદરસ્થાવર=ભૂમ્યાદિકમ્,  
 ઇતીમાન્ પ્રાણાન્=જીવાન્ નૈરંસ્વયમ્=આત્મના અતિપાતયામિ=હન્મિ, નૈવાન્યૈઃ પ્રાણા-  
 નતિપાતયામિ=ઘાતયામિ, પ્રાણાનતિપાતયતોઽન્યાન્ ન સમનુજાનામિ, ડત્યાદિ પ્રામ્વ ।

સૂક્ષ્મ અથવા સૂક્ષ્મ કાયવાલે કુચુવા આદિ ઓર ચાદર (સ્થૂલ) કાયવાલે  
 ગો-હસ્તી આદિ જીવોંકે પ્રાણોંકા કમ્બી અતિપાત નહોં કરૂંગા । યદાપિ  
 સૂક્ષ્મ નામકર્મકી પ્રકૃતિવાલે સૂક્ષ્મ પ્રાણિયોંકી કાયિક હિંસા નહોં હોતી  
 પરન્તુ વચન ઓર મનસે હો સકતી હૈ, જૈસે-‘યહ મર જાય તો અચ્છા હૈ’  
 એસા કહના વચનસે હિંસા હૈ, ઓર ઘાતકી ભાવના કરના મનસે  
 હિંસા હૈ, હસલિપ સૂક્ષ્મકા મ્બી યહોં ગ્રહણ કિયા હૈ । સૂક્ષ્મ ઓર ચાદરકે  
 મ્બી દો દો ભેદ હૈ-(૧) ત્રસ ઓર (૨) સ્થાવર । સૂક્ષ્મ-ત્રસ કુચુવા  
 આદિ હૈ, સૂક્ષ્મ-સ્થાવર પનક આદિ વનસ્પતિ (નીલણ ફૂલણ) હૈ ।  
 ચાદર-ત્રસ મેઢા ઘોઢા રોહ્ણ આદિ । ઓર ચાદર-સ્થાવર ભૂમિ આદિ હૈ ।  
 હન સવ પ્રાણિયોંકો કમ્બી પ્રાણોંસે વિયુક્ત નહી કરૂંગા, ન દૂસરેસે  
 કરાજૂંગા, ન કરનેવાલેકો ભલા જાનૂંગા ।

અથવા સૂક્ષ્મ કાયવાળા કથવા આદિ અને ણાદર (સ્થૂલ) કાયવાળા ગાય હાથી  
 આદિ જીવોના પ્રાણોના કદાપિ અતિપાત નહિ કરે જે કે સૂક્ષ્મ-નામકર્મની  
 પ્રકૃતિવાળા સૂક્ષ્મ પ્રાણીઓની કાયિક હિંસા થતી નથી, તેપણુ વચન અને  
 મનથી થઈ શકે છે, જેમકે-‘એ મરી જાય તો સારૂ’ એમ કહેલુ તે વચનથી  
 હિંસા છે, અને ઘાતની ભાવના કરવી એ મનથી હિંસા છે, તેથી કરીને સૂક્ષ્મને  
 પણુ અહીં ગ્રહણ કરેલ છે સૂક્ષ્મ અને ણાદરના પણુ જે-જે ભેદ છે (૧) ત્રસ,  
 અને (૨) સ્થાવર, સૂક્ષ્મ ત્રસ કથવા આદિ છે સૂક્ષ્મ સ્થાવર લીલન-ફૂલન આદિ  
 વનસ્પતિ છે ણાદર ત્રસ-મેઢા ઘોઢા રોહણ વગેરે છે અને ણાદર સ્થાવર-ભૂમિ  
 આદિ છે એ સર્વ પ્રાણીઓને કદાપિ પ્રાણુથી વિયુક્ત કરીશ નહિ, ખીલ વડે  
 કરાવીશ નહિ અને કરનારને ભલો બાણીશ નહિ.

मित्यनेन सम्बन्धो वक्ष्यते । मृषावादो हि सद्भावप्रतिषेधा-ऽभूतोद्भावना-ऽर्थान्तरा-  
भिधान-गर्हेतिभेदैश्चतुर्विधः, तत्र सद्भावप्रतिषेधः=जीवाजीवादिपदार्थसत्तानिरा-  
करणम्, यथा-‘नास्त्यात्मा, परलोकः, पुण्यपापादिकं चेति (१) । अभूतोद्भावनम्=  
जीवाजीवादितत्त्वानामतद्रूपत्वेन प्रतिपादनम्, यथा-“ आत्माऽयमद्भुष्टमात्रो,  
निष्क्रियः, सर्वगतो वेत्यादि (२) । अर्थान्तराभिधानम्=प्रसिद्धपदार्थस्य पदार्थान्त-  
रत्वेन कथनम्, यथा-गोर्गर्दभत्वेन, गर्दभस्य गोत्वेनाभिधानम् (३) । गर्हा=  
गर्हित=हीनताप्रदर्शनम्, यद्वा हिंसापारुष्यादियुक्त सत्यमपि वचः, यथा-‘अय  
हन्तव्यः’ इत्यादि, ‘एहि अन्ध !, आयाहि अधिर !, आगच्छ पद्मो !’ इत्यादि च (४) ।

विरमण होता है । मृषावाद चार प्रकारका है-(१) सद्भावप्रतिषेध,  
(२) अभूतोद्भावन, (३) अर्थान्तराभिधान, (४) गर्हा । जीव अजीव आदि  
पदार्थोंके अस्तित्वका निराकरण करना सद्भावप्रतिषेध मृषावाद है,  
जैसे-‘आत्मा नहीं, परलोक नहीं, पुण्य नहीं, पाप नहीं’ इत्यादि (१) ।  
जीव अजीव आदि तत्त्वोंका अयथार्थ स्वरूप प्रतिपादन करना अभूतो-  
द्भावन मृषावाद है, जैसे-‘आत्मा अगूठेके बराबर है, निष्क्रिय है या  
सर्वगत है’ (२) । एक पदार्थको दूसरा पदार्थ कह देना अर्थान्तराभिधान  
मृषावाद है, जैसे-‘गायको गधा बताना, या गधेको गाय कहना’ (३) ।  
दूसरेकी हीनता प्रगट करना, अथवा हिंसा और कठोरतायुक्त सत्य  
वचन कहना गर्हारूप असत्य है, जैसे-‘यह मार खालने योग्य है, ओ  
अधे ! इधर आ, ओ बहिरे ! या लगडे ! यहाँ आ’ इत्यादि (४) ।

होय छे मृषावाद आर प्रकारने छे (१) सद्भावप्रतिषेध, (२) अभूतोद्भावन  
(३) अर्थान्तराभिधान, (४) गर्हा छव अछव आदि पदार्थोंना अस्तित्वनु  
निराकरण करवु छे सद्भावप्रतिषेध मृषावाद छे, जेभडे-‘आत्मा नहीं, परलोक  
नहीं, पुण्य नहीं, पाप नहीं’ इत्यादि (१) छव अछव आदि तत्त्वोंनु अथ  
थार्थ स्वरूप प्रतिपादन करवु छे अभूतोद्भावन मृषावाद छे, जेभडे-‘आत्मा  
अगूठा जेवठे छे, निष्क्रिय छे या सर्वगत छे’ (२) छेक पदार्थने पीले पदार्थ  
कही देवे छे अर्थान्तराभिधान मृषावाद छे, जेभडे- ‘गायने गधेठे कहेवे या  
गधेठे गाय कहेवे’ (३) पीठनी हीनता प्रगट करवी, अथवा हिंसा तथा  
कठोरता-युक्त सत्यवचन कहेवे छे गर्हारूप असत्य छे, जेभडे- ‘ओ मारी नाभव  
योग्य छे, ओ आधना ! अर्ही आव, ओ गडेर ! ओ लगडा ! अर्ही आव’  
इत्यादि (४)

स्वयं मृषा त्रदामि नैशान्यैर्मृषा वादयामि, मृषा वदतोऽप्यस्यान् न समनुजानामि ।  
 पात्रजीमूषा, त्रिषि, त्रिषिरेन मनसा वाचा, क्रायेन न करोमि, न कारयामि कुर्व-  
 न्तमप्यन्य न समनुजानामि । तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मनं  
 व्युत्सजामि । द्वितीये भदन्त ! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि (अतः) सर्वस्मात् मृषावा-  
 दाद्विरमणम् ॥ ९ ॥

(२) मृषावादविरमण.

सान्त्वयार्थः—भते! = हे भगवन् ! अहाचरे = इसके बाट दोषे = दूसरे महव्वए =  
 महाव्रतमें = मुसावायाओ = मृषावादसे वेरमण = विरमण होता है (अतः मैं)  
 भते! = हे भगवन् ! सब = सब प्रकारके मुसावाय = मृषावादका पबक्त्वामि =  
 त्याग करता हूँ । से = अथ-अथ से लेकर मैं कोहावा = क्रोधसे लोहावा = लोभसे  
 भयावा = भयसे, हासावा = हास्यसे, सय = सुद, मुसावाय = असत्य, नेव = नहीं  
 वडजा = गोलगा, नेव = न अत्रेहि = दूसरोसे मुम् = असत्य वायाविजा = बोलाऊगा,  
 मुस = असत्य वयतेवि = गोलते हुएभी अत्रे = दूसरोको न समणुजाणिजा = भला  
 नहीं जानूंगा । जावजीवाण = जीवनपर्यन्त (इसको) ति विर = कृत-कारित-अनुमोद  
 नारूप तीन करणसे (तथा) ति विहेण = तीन प्रकारके मणेण = मनसे वायाए =  
 वचनसे काएण = कायसे, न करेमि = न करूंगा, न कारवेमि = न कराऊंगा,  
 करतपि = करते हुएभी अत्र = दूसरेको न समणुजाणामि = भला नहीं सबडंगा ।  
 भते! = हे भगवन् ! तस्स = उस दण्डसे, पडिकमामि = पृथक् होता हूँ, निन्दामि =  
 आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि = गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाण =  
 दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि = त्यागता हूँ, भते! = हे भगवन् !  
 दोचे = दूसरे महव्वए = महाव्रतमें उवडिओमि = उपस्थित हुआ हूँ, इसलिये मुझे  
 सव्वाओ = सब प्रकारके मुसावायाओ = असत्यसे वेरमण = त्याग है ॥ ९ ॥ (२)

(२) मृषावादविरमणव्रतम् ।

टीका—अथ = प्रथम महाव्रतानन्तर हे भदन्त! = हे भगवन् ! अपरे = समनन्तरो  
 दीरितमहाव्रतापेक्षया भिन्ने द्वितीये महाव्रते मृषावादात् = मिथ्याभाषणात् 'विरमणः'

(२) मृषावादविरमण ।

हे भगवन् ! प्रथम महाव्रतके अनन्तर दूसरे महाव्रतमें मृषावादसे

(२) मृषावादविरमण  
 हे भगवन् ! प्रथम महाव्रतनी पछी, पीछे महाव्रत

आत्मनः क्रोधमोहनीयप्रकृत्युदयेन स्वपरचित्तविकृतिजनको निरनुकम्पक्रौर्यवैभाविकपरिणामविशेषस्तस्मात् । लोभात्=लोभः-लोभप्रकृत्युदयवशाद्द्रव्याद्यभिलाषलक्षणो जीवस्य वैभाविकपरिणामस्तस्मात् । भयात्=भय-भयमोहनीयप्रकृत्युदयेनोद्वेगाऽऽवेदको विकारविशेषस्तस्मात् । हासात्=हासः-हास्यमोहनीयप्रकृत्युदयेन वागादिविकृत्या कपोलयुगलोह्लासन-लोचनसकोचन-दशनप्रकाशन-सहकृत-सशब्दप्राय-वदनव्यादानादिलक्षणश्चेतोविकाशस्तस्मात् । नैव स्वय मृपा=मिथ्या वदामि, नैवान्यैर्मृपा वदयामि, मृपा वदतोऽप्यन्यान्न समनुजानामीत्यादि पूर्ववत् ॥ ९ ॥ (२)

करनेवाला अनुकम्पारहित क्रूरतारूप वैभाविक परिणाम क्रोध है !

लोभ प्रकृतिके उदयसे द्रव्य आदिकी अभिलाषारूप जीवके वैभाविक भावको लोभ कहते हैं,

भय मोहनीयके उदयसे उद्वेगको उत्पन्न करनेवाला विकार भय कहलाता है ।

हास्य-मोहनीयके उदयसे वचनोंकी विकृतिके साथ गाल फुलाकर आँखें कुछर मूँदकर दात निकालकर 'ही-ही' शब्द करके मुखको प्रफुल्लित करना हास्य कहलाता है ।

इन सब कारणोंसे मृपावाद होता है । मैं इन कारणोंके वश होकर न स्वय मृपा बोलूँगा, न दूसरोंसे बोलाऊँगा, न किसी मृपा बोलते हुएको भला जानूँगा (२) ॥९॥

वाणो अनुक पारहित क्रूरताइष एवतो वैभाविक-परिष्ठाभ ओ क्रोध छे

लोभ-प्रकृतिना उदये करीने द्रव्य आदिनी अभिलाषाइष एवना वैभाविक भावने लोभ कहे छे

भय-मोहनीयना उदयथी उद्वेगने उत्पन्न करवावाणो विकार भय कहेवाय छे

हास्य-मोहनीयना उदयथी वचनोनी विकृतिनी साथे गाल कुलावीने आणो कर्षक भीचीने दात काटीने 'ही-ही' शब्द करीने मु मने प्रफुल्लित वरु ओ हास्य कहेवाय छे

ओ सर्व कारणोथी मृपावाद उत्पन्न थाय छे हु ओ कारणोने वश थयने नहि स्वय मृपा ( मूठु ) ओलु, नहि भीन पासे ओलावु, के नहि मृपा ओलनाउने लये मलु (२) (६)

इमेऽपि (चत्वारो भेदाः) मत्पेक चतुर्धा-द्रव्य क्षेत्र काठ भाव भेदात् । तत्र द्रव्य विषयकमद्भावप्रतिषेधः-धर्माधर्मादिषुद्रव्याणामन्यथा प्ररूपणम् । क्षेत्रविषयकसद्भावप्रतिषेधः-लोकालोकगोरन्यथा निरूपणम् । काठविषयकमद्भावप्रतिषेधः-क्षण-मुहूर्त्त-दिनसादिस्वरूपाणामन्यथा निरूपणम् । भावविषयकसद्भावप्रतिषेधः-रागद्वेषादीनामन्यथा प्रतिपादनम् । एतमेवाऽभूतोद्भावनानादित्रयेऽपि द्रव्यादिचतुर्भङ्गी योजनीया । तस्माद्भिरमणमिति । हे भगवन् ! सर्वे=ममस्त मृषायाद् प्रत्याख्या मीति पूर्वप्रदोद्धव्यम् ।

તદેવ વિશદયતિ-‘સે’-इति, अथ=अनन्तरम्-अपारभ्य-क्रोधात्=क्रोधः

इन चार प्रकारके मृषावादोंके भी द्रव्य क्षेत्र काल भावके भेदसे चार चार भेद होते हैं । धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आदि षड्द्रव्योंके स्वरूपकी अन्यथा प्ररूपणा करना द्रव्य-सद्भावप्रतिषेध है । लोक और अलोकका अयथार्थ निरूपण करना क्षेत्र-सद्भावप्रतिषेध है । क्षण मुहूर्त्त दिन आदिके स्वरूपका मिथ्या कथन करना काल-सद्भावप्रतिषेध है । राग द्वेष आदि भावोंका विपरीत स्वरूप बताना भाव-सद्भावप्रतिषेध है । इसी प्रकार अन्य तीन भेदोंकी चतुर्भङ्गी समझ लेनी चाहिए, जैसे-द्रव्य अभूतोद्भावन, क्षेत्र अभूतोद्भावन, इत्यादि ।

हे भगवन् ! मैं सब प्रकारके मृषावादका प्रत्याख्यान करता हूँ ।

मृषावाद किस किस कारणसे होता है ? सो कहते हैं—

जीवके क्रोध-मोहनीय प्रकृतिके उदयसे स्व-परके चित्तमे विकार

એ ચાર પ્રકારના મૃષાવાદોના પણ દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ ભાવના ભેદે કરીને ચાર ચાર ભેદ થાય છે ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય આદિ છ દ્રવ્યોના સ્વરૂપની અન્યથા પ્રરૂપણા કરવી એ દ્રવ્ય-સદ્ભાવપ્રતિષેધ છે લોક અને અલોકકુ અયથાર્થ નિરૂપણ કરવું એ ક્ષેત્ર-સદ્ભાવપ્રતિષેધ છે, ક્ષણ મુહૂર્ત્ત દિન આદિના સ્વરૂપનું મિથ્યા કથન કરવું એ કાલ-સદ્ભાવપ્રતિષેધ છે રાગ દ્વેષ આદિ ભાવોનું વિપરીત સ્વરૂપ બતાવવું એ ભાવ-સદ્ભાવપ્રતિષેધ છે એ પ્રકારે અન્ય ત્રણ ભેદોની ચતુર્ભંગી સમજ લેવી, જેમકે-દ્રવ્ય-અભૂતોદ્ભાવન, ક્ષેત્ર-અભૂતોદ્ભાવન, ઇત્યાદિ

હે ભગવન્ ! હું સર્વ પ્રકારના મૃષાવાદના પ્રત્યાખ્યાન કરૂ છું

મૃષાવાદ કયા કયા કારણથી થાય છે । તે હવે કહું છે—

જીવના ક્રોધ-મોહનીય પ્રકૃતિના ઉદયથી સ્વ-પરના ચિત્તમા વિકાર કરવા

मै) भते ! = हे भगवन् ! सञ्च = सब प्रकारके अदिन्नादाण = अदत्तादान (चोरी) का पञ्चक्खामि = प्रत्याख्यान करता हूँ से = अथ-अन से लेकर मैं-गामे वा = ग्राममें नयरे वा = नगरमें रण्णे वा = अरण्यमें अप्प वा = अल्प-थोडा बहु वा = बहुत-घणा अणु वा = सूक्ष्म-छोटा थूल वा = स्थूल-मोटा चित्तमत वा = सचेतन अचित्तमत वा = अचेतन (आदि किसीभी) अदिन्न = विना दिये हुए पदार्थको सय = स्वय नेच = नहीं गिण्हज्जा = ग्रहण करूंगा, नेचत्तेहिं = न दूसरोसे अदिन्न = विना दिया हुआ गिण्हविज्जा = ग्रहण कराऊँगा, अदिन्न = विना दिये हुए पदार्थको गिण्हतेवि = ग्रहण करते हुए भी अन्ने = दूसरेको न समणुजाणामि = भला नहीं जानूँगा, जाव-ज्जीवाए = जीवनपर्यन्त (इसको) तिविह = कृत-कारित-अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेण = तीन प्रकारसे मणेण = मनसे वाघाए = वचनसे काएण = कायसे न करेमि = न करूँगा, न कारवेमि = न कराऊँगा, करतपि = करते हुए भी अन्न = दूसरेको न समणुजाणामि = भला नहीं समझूँगा । भते ! = हे भगवन् ! तस्स = उस दण्डसे पडिक्कमामि = पृथक् होता हूँ, निंदामि = आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि = गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाण = दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि = त्यागता हूँ । भते ! = हे भगवन् ! तच्चे = तीसरे = महञ्चए = महाव्रतमें उवट्ठिओमि = उपस्थि हुआ हूँ, इसलिये मुझे सञ्चाओ = सब अदिन्नादाणाओ = अदत्तादानसे वेरमण = विरमण-त्याग है ॥१०॥ (३)

### (३) अदत्तादानविरमणप्रतम्

टीका— हे भगवन् ! अथ = मृषावादविरमणानन्तरम् अपरे = तृतीये महाव्रते अदत्तादानात् = न दत्तमदत्त = देवगुरुभूपगाथापतिसाधर्मिकैरनुज्ञात तस्याऽऽदान = ग्रहणमदत्तादान तस्माद्विरमणम्, सर्वं भगवन् ! अदत्तादान प्रत्याख्यामि, एतच्च

### (३) अदत्तादानविरमण ।

मृषावादविरमणके बाद तीसरे महाव्रतमे देव गुरु राजा गाथापति और साधमिकके द्वारान दिये हुए पदार्थके ग्रहणका त्याग किया जाता है, इसलिए हे भगवन् ! मैं सर्व अदत्तादानका परित्याग करता हूँ । वह इस प्रकार—

### (३) अदत्तादानविरमणु.

मृषावादविरमणुनी पडी त्रीन्त महाव्रतमा देव शुद्ध, राजन्, गाथापति अने साधमिके न आपेला जेवा पदार्थतु अहणु करवाने त्याग करवाना आवे छे, तेथी छे भगवन् ! हु सर्व अदत्तादानने परित्याग कर छु ते आ प्रकारे—



सत्यपरिपालन चाऽदत्तादान-(वीर्य)-परित्यागपूर्वकं कर्तुं सुशक्यमिति तदन-  
न्तरमदत्तादानविरमणसम्बन्धं तृतीय महाव्रतमाह—‘अहावरे तच्चे’ इत्यादि ।

मूलम्—अहावरे तच्चे भते ! महव्रग अदिन्नादाणाओ वेरमणं,  
सव्वं भते ! अदिन्नादाणं पच्चस्सामि, से गामे वा नगरे वा रत्ते वा  
अप्पं वा वहुं वा अणु वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव  
सयि अदिन्न गिण्हिज्जा, नेवझेहिं अदिन्न गिण्हाविज्जा, अदिन्नं  
गिण्हंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेण  
मणेण वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करतपि अन्न न सम-  
णुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कामामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं  
वोसिरामि । तच्चे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादा-  
णाओ वेरमणं ॥१०॥

छाया—अथापरे तृतीये भदन्त ! महाव्रतेऽदत्तादानाद्विरमण, सर्वं भदन्त !  
अदत्तादान प्रत्याख्यामि, अथ ग्रामे वा नगरे वा अरण्ये वा अल्प वा बहु वा  
अणु वा स्थूल वा चित्तवद्वा अचित्तवद्वा नैव स्वयमदत्त गृह्णामि नैवान्यैरदत्त  
ग्राहयामि, अदत्त गृह्णतोऽप्यन्यान्न समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविध त्रिविधेन  
मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि ।  
तस्मात् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गृहे आत्मान व्युत्सृजामि । तृतीये  
भदन्त ! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्माददत्तादानाद्विरमणम् ॥१०॥

(३) अदत्तादानविरमण

सान्वयार्थ — भते ! = हे भगवन् ! अहावरे = इसके बाद तच्चे = तीसरे मह-  
व्वए = महाव्रतमें अदिन्नादाणाओ = अदत्तादानसे वेरमण = विरमण होता है (अतः

सत्य महाव्रतका पालन अदत्तादानका त्याग करनेसेही हो सकता है,  
इस कारण सत्य महाव्रतके पश्चात् अदत्तादानविरमण नामक तीसरे  
महाव्रतका कथन करते हैं—‘अहावरे तच्चे’ इत्यादि ।

सत्य महाव्रततुं पालन अदत्तादाननो त्याग करवाथी व थछं शुकं छे, ते  
'क्षारणुथी सत्य महाव्रतनी पछी अदत्तादान-विरमणु नामना वीज्जा महाव्रततुं कथन  
करे छे—अहावरे तच्चे इत्यादि

इत्युक्तलक्षण तस्मिन् । अरण्ये=अर्यते-गम्यते एकान्तत्रिविक्रितदेशप्रियैर्याना-  
र्थिभिः, काष्ठान्याहर्तुं काष्ठहारकैर्वैत्यरण्य तस्मिन्, उपलक्षणात्खेटकादौ । एतेषा  
मध्ये कस्मिंश्चिदपि स्थले अल्प=मूल्यतो न्यून दन्तादिपरिशोधनार्थं तृणादिकम्,  
बहु=अधिकमूल्यक सुवर्णादिकम्, अणु=प्रमाणतो लघु माणिक्यादिकम्, स्थूलम्=  
प्रमाणतो विशालमेरुण्डकाष्ठादिकम्, चित्तवत्=सचेतनम्, अचित्तवत्=अचेतन वा,  
एतत्सर्वम् एतदन्यतम वा अदत्त=तत्स्वामिना ग्रहणायाऽनुमत नैव स्वय  
गृह्णामि, नैवान्यैरदत्त ग्राहयामि, अदत्त गृह्णतोऽप्यन्यान् समनुजानामीत्यादिक  
सर्वं व्याख्यातपूर्वम् ।

ननु सामान्येनाऽदत्तादानस्य स्तेयत्वे प्रतिक्षणमनन्यदेयरुर्माण्याददानस्य

एकान्त और पवित्र स्थानके अभिलाषी ध्यानार्थी योगी अथवा  
लकड़ी लानेके लिए लकड़हारे जहाँ जाते हैं वह अरण्य कहलाता है।

इन ग्राम, नगर, अरण्य और उपलक्षणसे खेटक (खेडा) आदि  
किसी स्थानमे कम मूल्यवाला-दाँत खुजानेका तिनका आदि, अधिक  
कीमतवाला-सुवर्ण आदि, प्रमाणकी अपेक्षा अणु-माणिक्य आदि,  
प्रमाणकी अपेक्षा बड़ा-एरुण्डकाष्ठ आदि, सचेतन अथवा अचेतन कोई  
पदार्थ या सब पदार्थ विना स्वामीकी अनुमतिके न स्वय ग्रहण करूँगा,  
न दूसरोंसे ग्रहण कराऊँगा और न ग्रहण करनेवालेको भला जानूँगा।

प्रश्न-हे गुरु महाराज ! विना दी हुई सब वस्तुओंको ग्रहण करना  
यदि अदत्तादान है तो मुनियोंको भी अदत्तादानका प्रसंग आवेगा,

एकान्त अने पवित्र स्थानना अभिलाषी ध्यानार्थी योगी अथवा लाकडी  
लेवाने भाटे कठियारा नया नया ठे ते अरण्य (जंगल) कडेवाय छे

अने ग्राम नगर अरण्य अने उपलक्षणे कडीने खेटक (गामडु) आदि  
ठोड स्थानभा ओछा मूल्यवाणु हात ओतरवानुं तणुभलु वगेरे, वधारे मूल्य-  
वाणु सोनु वगेरे, प्रमाणनी अपेक्षाअने नानु माणिक्यादि, प्रमाणनी अपेक्षाअने  
भोटु ओर डानु लाकडु आदि, सचेतन अथवा अचेतन ठेड पदार्थ या सर्व  
पदार्थ, तेना स्वामीनी अनुमति विना, नहि स्वय हु अहणु वड, नहि भीम  
पाने अहणु कगलु अने नहि अहणु करनारने लये। नालु

प्रश्न-हे गुरु महाराज ! आपवाभा आल्या विनानी गधी वस्तुओने  
अहणु करवी अने अदत्तादान छे तो मुनियोने पणु अदत्तादानना प्रसंग

व्याख्यातपूर्वम् । तदेव विनाशयति- 'से'-इति, अथ=अनन्तरम्-अपारम्भ-प्राग्-  
 ग्रस्यन्ते=अग्रन्ते=विनाशयन्ते बुद्धिबिद्याविवेकादयो गुणा यत्र स इति, ग्रन्थो  
 गोमहिपादीना करैरिति वा ग्रामः (सिद्धिः पृषोदरादिस्वात्) कृषिमञ्जुरभूदामो,  
 दृष्टादिभूयसतिः, कण्ठमयट्टिपरिचेषितृष्टसमूहसम्पन्नो वा तस्मिन् । नगरे=  
 न गन्तुंतीति नगाः=दृष्टाः पर्यताम्, त इव समुद्रताः प्रासादादयो यस्मिन्-  
 क्षमरम्, ('नग पांसु-पाण्डुभ्यश्चे'-ति वार्तिकेन नगञ्च्दाट्.) नकरमिति  
 च्छायापक्षे तु न विद्यते गोमहिपादीनामष्टादशविधः करः=राजप्राङ्गणः  
 (जकात) यत्र तत् । यद्वा—

“पुण्यपापक्रियाभिः, -दयादानप्रवर्तकैः ।

कलाकलापकुशलैः, सर्ववर्णैः समाकुलम् ॥

भाषाभिर्विधिभिश्च, युक्त 'नगर'-मुच्यते ॥”

जहाँ रहनेसे बुद्धि, विद्या, विवेक आदि गुण नष्ट हो जाते हैं उसे  
 ग्राम कहते हैं । अथवा जहाँ गाय भैंस आदिका कर (टेक्स) लिया  
 जाता हो, अथवा पृथ्वीके अधिक भागमें कृषि होती हो, बाजार या  
 दुकाने न हों, काँटोंकी बाड़से घिरे हुए घर हों उस वस्तीको ग्राम (गाँव)  
 कहते हैं ।

जहाँ वृक्ष तथा पर्वतकी तरह अत्यन्त उन्नत महल-हवेलियाँ हों,  
 अथवा गो महिष आदि पर कर (जकात) न लगता हो, अथवा जिस  
 वस्तीमें पुण्य पाप क्रियाओंके ज्ञाता, दया-दानके प्रवर्तक, कलाओंमें  
 कुशल चारों वर्ण हों, और जहाँ नाना देशकी भाषा बोलनेवाले मनुष्य  
 रहते हों उसे नगर कहते हैं ।

न्या रहेवाथी बुद्धि, विद्या, विवेकादि शुद्धो नष्ट थछ न्यथ छे तेने ग्राम  
 कहे छे अथवा न्या गाय बेश आदिना कर (टेक्स) लेवाभा आवे छे, अथवा  
 पृथ्वीना वधारे बाजभा जेती थाय छे, -गणनर अथवा दुकानो डोय नडि, काठानी  
 वाडथी घेरला घर डोय अे वस्तीने ग्राम (गाव) कहे छे

न्या वृक्ष छे पर्वत जेवी अत्यन्त उथी भडेल-हवेलीओ डोय, अथवा  
 गाय-बेश आदि पर कर (जकात) न लागतो डोय, अथवा जे वस्तीमा  
 पुण्य-पाप क्रियाओना ज्ञाता, दया-दानना प्रवर्तक, कलाओमा कुशल थार वड्डो  
 डोय, अने न्या न्यूहा न्यूहा देशानी भाषाओः बोलनारा मनुष्यो रहेता डोय,  
 तेने नगर कहे छे

धर्ममुपार्जयित्वाऽप्रमत्तत्वाच्चीर्धकराणाः धर्मार्जनोपदेशाच्च न स्तेयप्रसङ्गः, अत एवाऽल्प-बहु-स्थूलाऽणुग्रहण सूत्रे कृतमिति ॥ १०-॥ (३)

मैथुनविरमणमन्तर्येण अहिंसादिमहाव्रतानां रक्षणं न भवितुं शक्नोति, यतो मैथुनपरायणः प्राणी त्रस-स्थावर जीवान् दिनस्ति, मिथ्या वदति, अदत्त चाऽऽदत्तेऽतस्तेषां निरपायपरिपालनाय 'मैथुनविरमण'-नामधेयं चतुर्थं महाव्रतमाह- 'अहावरे चउत्थे' इत्यादि ।

जिससे, कर्म, बंध जाते हैं । रक्षा, धर्मोपार्जन, सो, तीर्थकर, भगवानने धर्मोपार्जन करनेका आदेश तथा उपदेश दिया है इसलिए अदत्तादानका प्रसंग नहीं आता ।

सूत्रमें अल्प, बहु, स्थूल, और अणु, इन शब्दोंका ग्रहण भी इसी आशयसे किया गया है, अतः एव, कर्मोंके बन्धन तथा समिति-गुप्ति द्वारा धर्मोपार्जनमें अदत्तादान, नहीं लगता है ॥१०॥ (३)

मैथुनविरमणके बिना अहिंसा आदि महाव्रतोंकी रक्षा नहीं हो सकती, क्योंकि मैथुन सेवन करनेवाला त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करता है, असत्य बोलता है, और अदत्तका आदान करता है । अत एव अहिंसादि महाव्रतोंका निरतिचार पालन करनेके लिए 'मैथुन-विरमण' नामक चतुर्थ महाव्रतका प्रतिपादन किया जाता है- 'अहावरे चउत्थे' इत्यादि ।

धर्मोपार्जन, तो तीर्थकर लगवाने धर्मोपार्जन करवाने आदेश तथा उपदेश आये छे तेथी तेमा अदत्तादानना प्रसंगना आवती नथी

सूत्रमा अल्प, बहु, स्थूल, अने अणु, ये शब्दोनु अल्प, पणु अने आशयथी करवाभा आणु छे अहेले कर्मना बंधन तथा समिति-गुप्ति द्वारा धर्मोपार्जन, अनेमा अदत्तादान लागतु नथी (३) (१०)

मैथुनविरमण बिना अहिंसा आदि महाव्रतोंकी रक्षा थऽ शक्ती नथी, कारण छे-मैथुन सेवन करवावाणे। त्रस-स्थावर जीवोंकी हिंसा करे छे, असत्य बोले छे अने अदत्तनु आदान करे छे तेथी करीने अहिंसादिमहाव्रतोंनु निरतिचार पालन करवाने, माटे 'मैथुनविरमण' नामतु येथु महाव्रतनु प्रतिपादन करवाभा आवे छे-अहावरे चउत्थे इत्यादि ।

સમિતિગુણિમૃતિર્મિર્મ તા મમુપાર્જયાઃ માયોરદત્તાદાનાપતિમસક્તિરિતિ વેશ,

લોરુપસિદ્ધસ્તાદિકરણપટનાઽઽદાનાદિવ્યગ્રહારમ્ય કર્માદિવ્રમાનાત્,  
તયાદિ લોકે મમુપાત્રાદિકમન્યસ્મૈ હસ્તેન શ્રીયતેઽન્યસ્માદ્વાઽઽદીયતે, ઇત્યેવ દા  
નાઽઽદાનાદિવ્યગ્રહારો દૃશ્યતે તસ્ય ન કર્મવિપયકત્વ સમપતિ, તેષાં મૂક્ષમત્વાત્,  
નદિ મૂક્ષમ કર્માદિક દમ્તાદિકરણકપ્રવ્રણપિતરણયોગ્યતા મજતે ઇતિ ।

ક્યોંકિ મુનિ વિના દિયે દૃગ્ કર્મોંકો પ્રતિશ્રવણ ગ્રહણ કરતે હૈ ઓર  
સમિતિ-ગુણિકા પાલન કરકે ધર્મકા મી ઉપાર્જન કરતે હૈ ।

ઉત્તર-હે શિષ્ય ! એમા નહીં હૈ । તાર્યોંસે લેને-દેનેકા જૈસા વ્યવહાર  
લોકમૈં પ્રસિદ્ધ હૈ વૈમા કર્મોંમૈં નહીં હો સકતા, અર્થાત્ લોકમૈં એસા  
વ્યવહાર હોતા હૈ કિ-‘વસ્ત્ર પાત્ર દુસરોંકો હાથસે દિયા જાતા હૈ, દુસરેસે  
લિયા જાતા હૈ’ । ઇસ પ્રકારકા વ્યવહાર કર્મોંકે વિપયમૈં નહીં હોતા  
ક્યોંકિ કર્મ અત્યન્ત સૂક્ષ્મ હૈ, વે ઇન્દ્રિયકે વિપય મી નહીં હોતે તો  
ઉનકા લેન-દેન કૈસે હો સકતા હૈ ? । દુસરી યાત યહ હૈ કિ પ્રમાદકે  
યોગસે અદત્ત પદાર્થકા આદાન (ગ્રહણ) કરના અદત્તાદાન કહલાતા હૈ,  
મુનિરાજકો તદ્વિપયક પ્રમાદ નહી હૈ ઇસલિણ ઉન્હેં અદત્તાદાનકા  
દોષ નહી લગતા । મુનિરાજ તો કમી નહીં યાહતે કિ હમ કર્મોંકો  
ગ્રહણ કરે, કિતુ સમારી આત્મા ઓર કર્મોંકા સ્વભાવ હી એસા હૈ કિ

આવશે, કારણ કે મુનિ વિના અપાયલા કર્મોંને પ્રતિક્ષણ ગ્રહણ કરે છે અને સમિતિ  
ગુણિનું પાલન કરીને ધર્મનું પણ ઉપાર્જન કરે છે

ઉત્તર-હે શિષ્ય ! એમ નથી હાથેથી દેવા દેવાનો એવો વહેવાર લોકમા  
પ્રસિદ્ધ છે તેવો વહેવાર કર્મોંમા નથી હોઈ શકતો, અર્થાત્ લોકોમા એવો વહે  
વાર થાય છે કે-‘વસ્ત્ર પાત્ર ધીબજોને હાથથી આપવામા આવે છે, ધીબ  
પાસેથી દેવામા આવે છે’ એ પ્રકારનો વહેવાર કર્મોંની બાબતમા થતો નથી,  
કેમકે-કર્મ અત્યન્ત સૂક્ષ્મ છે, તે ઇન્દ્રિયનો વિપય જ નથી હોતો તો એની  
લેણ-દેણ કેવી રીતે થઈ શકે ? ધીજી વાત એ છે કે-પ્રમાદના યોગથી અદત્ત  
પદાર્થનું આદાન (ગ્રહણ) કરવું એ અદત્તાદાન ગહેવાય છે મુનિરાજને તદ્વિષ  
યક પ્રમાદ હોતો નથી તેથી તેમને અદત્તાદાનનો દોષ લાગતો નથી મુનિરાજ  
તો કદાપિ એમ નથી ઇચ્છતા કે હું કર્મોંનું ગ્રહણ કરે, કિન્તુ સમારી આત્મા  
અને કર્મોંના સ્વભાવ જ એવો છે કે જેથી કર્મ બધાઈ જાય છે બાકી રહી

दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको चोसिरामि=त्यागता हूँ । भते ! = हे भगवन् !  
चउत्थे=चौथे महव्वए=महाव्रतमें उवट्टिओमि=उपस्थित होता हूँ, इसलिये  
मुझे सव्वाओ=सब प्रकारके मेहुणाओ=मैथुनसे वैरमण=त्याग है ॥११॥ (४)

### (४) मैथुनविरमणप्रतम्.

टीका — हे भगवन् ! अथ अपरे चतुर्थे महाव्रते मैथुनात्=मिथुनेन=स्त्रीपुसाभ्या  
निर्वृत्त कर्म मैथुन प्रत्याख्यामीति प्राग्वत्, तदेव विशदयति-‘से’ इति ।  
अथ=अनन्तरम्-अग्रारभ्य दैव=देवानामिद् मानुष=स्त्री पुससम्बन्धीत्यर्थः,  
तैर्यग्योन=तिर्यग्योनीनामिद् तैर्यग्योन=पश्वादिसम्बन्धीत्यर्थः, मैथुन नैव स्वय  
सेवे, इत्यादि सर्व पूर्ववत् । द्रव्यादिचतुर्भङ्गचपि प्राग्वद्योजनीया ॥११॥ (४)

### (४)-मैथुनविरमण

हे भगवन् ! चौथे महाव्रतमें समस्त प्रकारके मैथुनसे विरमण किया  
जाता है, इसलिए हे भगवन् ! मैं सब तरहके मैथुनका प्रत्याख्यान  
करता हूँ । अप्सराओं सम्बन्धी देवी, स्त्री-पुरुष सम्बन्धी मानुषिक,  
पशु आदि सम्बन्धी तैर्यग्योनिक मैथुनको मैं न स्वय सेवन करूँगा, न  
दूसरोंसे सेवन कराऊँगा, न सेवन करते हुएको भला जानूँगा । द्रव्य  
क्षेत्र काल भावकी चौभगी यहाँपर भी लगानी चाहिए, अर्थात् द्रव्यसे-  
स्त्री आदिके साथ, क्षेत्रसे-किसी क्षेत्रमें, कालसे-किसी कालमें और  
भावसे-किसीभी भावसे, तीन करण तीन योगसे मैथुन सेवन नहीं  
करूँगा ॥११॥ (४)

### (४) मैथुनविरमण

हे भगवन् ! योथा भङ्गान्तमा सर्व प्रकारना मैथुननु विरमणु करवामा  
आवे छे, तेथी हे भगवन् ! हे सर्व प्रकारना मैथुनना प्रत्याख्यान करे छु  
अप्सराओ सणधी देवी, स्त्री-पुरुष-सणधी मानुषिक, पशु-आदि-सणधी  
तैर्यग्योनिक मैथुन नहि हे स्वय मैथु, नहि पीबन्तो पासे सेवन करवु अने  
नहि सेवन करनारने लोला वणु द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावनी चौभगी ओमा पणु  
लगाडवी, अर्थात् द्रव्यथी स्त्रीआदिनी साथे, क्षेत्रथी डोर्ध पणु क्षेत्रमा, कालथी डोर्ध  
कालमा अने भावथी डोर्ध पणु भावे करीने तणु करणु तणु योगथी मैथुन सेवीश  
नहि (४) (११)

मूल्म-अहावरे चउत्ये भते ! महवए मेहुणाओ वेरमणं, सबं भंते ! मेहुण पचस्सामि, से दिव्वं वा माणुस वा तिरिस्खजोणिय वा नेव सयं मेहुण सेविज्जा, नेवत्तेहिं मेहुण सेवाविज्जा, मेहुणं सेवतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविह-तिविहेण मणेणं वायाए काएण न करेमि, न कारवेमि, करतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि। चउत्ये भते! महवए उवट्ठिओमि सदाओ मेहुणाओ वेरमण॥११॥(४)

छाया—अथापरे चतुर्थे भदन्त ! महाप्रते मैथुनाद्विरमण, सर्वे भदन्त ! मैथुन प्रत्याख्यामि, अथ दैव या मानुष या तैर्यग्योन या नैव स्वय मैथुन सेवे, नैवान्यैर्मैथुन सेवयामि, मैथुन सेवमानानप्यन्यान्न समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविध त्रिविधेन मनसा याचा कायेन न करोमि, न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मान व्युत्स्रंजामि। चतुर्थे भदन्त ! महाप्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्मान्मैथुनाद्विरमणम् ॥११॥

(४) मैथुनद्विरमण

सान्वयार्थः—भते ! = हे भगवन् ! अहावरे = इसके बाद चउत्ये = चौथे, महवए = महाव्रतमें, मेहुणाओ = मैथुनसे वेरमण = विरमण होता है, (अतः, मै) भते ! = हे भगवन् ! सब्ब = सब प्रकारके मेहुण = मैथुनका पचक्खामि = प्रत्याख्यान करता हूँ, से = अब से छेकर मै दिव्व वा = देवसम्बन्धी माणुस वा = मनुष्यसम्बन्धी तिरिस्खजोणिय वा = तिर्यश्चसम्बन्धी मेहुण = मैथुनको सय = स्वय नेव = न सेविज्जा = सेवन करूँगा, नेवत्तेहिं = न दूसरोंसे मेहुण = मैथुन सेवाविज्जा = सेवन कराऊँगा, मेहुण = मैथुन सेवतेवि = सेवन करते हुएभी अन्ने = दूसरोंको न समणुजाणिज्जा = भला नहीं समझूँगा, जावज्जीवाए = जीवनपर्यन्त (इसको) तिविह = कृत कारित अनुमोदनारूप तीन क्रमसे (तथा) तिविहेण = तीन प्रकारके मणेण = मनसे वायाए = वचनसे काएण = क्रायसे न करेमि = न करूँगा न कारवेमि = न कराऊँगा करतपि = करते हुएभी अन्न = दूसरोंको न समणुजाणामि = भला नहीं समझूँगा। भते ! = हे भगवन् ! तस्स = उस दण्डसे पडिक्कमामि = पृथक् होता हूँ, निंदामि = आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि = गुरु साक्षीसे गर्हा करत

धूलवा=स्थूल मोटा चित्तमतवा=सचेतन अचित्तमतवा=अचेतन परिग्रह=परिग्रहको सय=स्वयनेव=नही परिगिण्टिजा=ग्रहण करूंगा, नेवनेहिं=न दूसरोसे परिग्रह=परिग्रहको परिगिण्टाविज्जा=ग्रहण कराऊंगा, परिग्रह=परिग्रहको परिगिण्टेवि=ग्रहण करनेवालेभी अन्ने=दूसरोको न समणुजाणिज्जा=भला नहीं जानूंगा। जावज्जीवाण=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविह=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेण=तीन प्रकारके मणेण=मनसे वायाए=वचनसे काएण=कायसे न करेमि=न करूंगा, न कारवेमि=न कराऊंगा, करतपि=करते हुएभी अन्न=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूंगा। भते=!हे भगवन्! तस्स=उस ढण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाण=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको बोसिरामि=त्यागता हूँ। भते=!हे भगवन्! पचमे=पाचवें महव्वए=महाव्रतमें उवट्टिओमि=उपस्थित होता हूँ, एसलिये मुझे सच्चाओ=सब परिग्रहाओ=परिग्रहसे वेरमण=विरमण-त्याग है ॥१२॥ (५)

(५) परिग्रहविरमणव्रतम् ।

टीका — हे भगवन्! अथापरे पञ्चमे महाव्रते परिग्रहात्=परि-सर्वतोभावेन गृह्यते=जन्मजरामरणादिजनितदुःखैर्वेष्टयते आत्माऽनेनेति, यद्वा परिगृह्यते=समृच्छं स्वीक्रियते इति परिग्रहः 'सृच्छा परिग्रहो वृत्तो' इति वचनात्, धर्मोपकरणभिन्न

(५)-परिग्रहविरमण

हे भगवन्! चतुर्थ महाव्रतके पश्चात् पाँचवें महाव्रतमे परिग्रहका पूर्ण प्रत्याख्यान किया जाता है। जिससे आत्मा जन्म-जरा मरण-आदि-जनित नाना दु खोंसे गृहीत होता है, अथवा जो सृच्छा पूर्वक स्वीकार किया जाता है वह परिग्रह कहलाता है, क्योंकि भगवानने सृच्छाको ही परिग्रह बतलाया है। अतएव तीन करण तीन योगसे ग्राम नगर आदिमें

(५) परिग्रहविरमण

हे भगवन्! चतुर्थ महाव्रतकी पछी पाचवा महाव्रतमा परिग्रहना पूर्ण प्रत्याख्यान करवाभा आवे छे तेथी आत्मा जन्म जरा मरणमृणादिजनित नाना प्रकारना दु खोथी अन्त थाय छे अथवा ने भूच्छापूर्वक स्वीकारवाभा आवे छे ते परिग्रह ठडेवाय छे, कान्छ के भगवाने भूच्छाने परिग्रहरूप गतावी छे तेथी करीने त्रणु करणु त्रणु योगे ग्राम नगर आदिमा न स्वय परिग्रह धारणु



मैथुनविरमण च परिग्रहविरमणमन्तरेण न भक्ति सुश्रकमिति मैथुनविरमणान्तर परिग्रहविरमणनामक पञ्चम महाव्रतमाह—‘अहावरे पञ्चमे’ इत्यादि।

मूलम्—अहावरे पञ्चमे भते ! महव्रण परिग्गहाओ वेरमण, सब भते ! परिग्गह पच्चखामि, से अप्प वा बहु वा अणुं वा थूल वा चित्तमंत वा अचित्तमत वा नेव सय परिग्गह परिगिण्हिज्जा, नेव ज्ञेहिं परिग्गह परिगिणहाविज्जा, परिग्गह परिगिण्हतेवि अज्जे न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । पञ्चमे भते ! महव्रण उवट्टिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण ॥१२॥ (५)

छाया—अथापरे पञ्चमे भदन्त ! महाव्रते परिग्रहाद्विरमण, सर्वं भदन्त ! परिग्रह प्रत्याख्यामि, अथ अल्प वा बहु वा अणु वा स्थूल वा चित्तवन्त वा अचित्तवन्त वा नेव स्वय परिग्रह परिगृह्णामि, नैवान्यैः परिग्रहं परिग्राह्यामि, परिग्रह परिगृह्यतोऽप्यन्यान्न समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा क्रायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि । तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गौं आत्मान व्युत्सृजामि । पञ्चमे भदन्त ! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्मात्परिग्रहाद्विरमणम् ॥१२॥ (५)

#### (५) परिग्रहविरमण

सान्त्वयार्थः—भते ! = हे भगवन् ! अहावरे = इसके बाद पञ्चमे = पाचवें मण-व्वए = महाव्रतमें परिग्गहाओ = परिग्रहसे वेरमण = विरमण होता है, (अत. मैं) ते ! = हे भगवन् ! सब्ब = सब प्रकारके परिग्गह = परिग्रहको पच्चखामि = त्यागता हूँ, से = अब से लेकर मैं अप्पवा = अल्प बहुवा = बहुत अणुवा = अणु ठोटा

मैथुनविरमण, परिग्रहके त्यागे विना नहीं हो सकता, इसलिए मैथुनविरमणके अनन्तर परिग्रहविरमणनामक पाचवा महाव्रत कहते हैं—‘अहावरे पञ्चमे’ इत्यादि ।

मैथुन विरमण, परिग्रहना त्याग विना थोड़ा बहुत नहीं, तेथी मैथुन विरमणकी पछी परिग्रहविरमण नामक पाचवा महाव्रत कहे छे—अहावरे पञ्चमे—इत्यादि

मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतंपि अन्न न सम-  
णुजाणामि। तस्स भते। पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण  
वोसिरामि। छट्ठे भते। वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ  
वेरमण ॥ १३ ॥ (६)

छाया—अथापरे पण्डे भदन्त ! व्रते रात्रिभोजनाद्विरमण, सर्वे भदन्त !  
रात्रिभोजन प्रत्यारयामि, अथ अशन वा पान वा खाद्य वा स्वाद्य वा  
नैव स्वय रात्रौ भुञ्जे, नैवान्यान् रात्रौ भोजयामि, रात्रौ भुञ्जानानप्यन्यान्न सम-  
नुजानामि, यावज्जीवया त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न  
कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि  
गर्हे आत्मान व्युत्सृजामि। पण्डे भदन्त ! व्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्माद्रात्रिभोज-  
नाद्विरमणम् ॥ १३ ॥ (६)

### (६) रात्रिभोजनविरमण

सान्वयार्थ.—भते ! = हे भगवन् ! अहावरे = इसके अनन्तर छट्टे = उठे वए =  
व्रतमें राइभोयणाओ = रात्रिभोजनसे वेरमण = विरमण होता है, ( अतः मै )  
भते ! = हे भगवन् ! सव्व = सब प्रकारके राइभोयण = रात्रिभोजनको पचक्खामि =  
त्यागता हूँ, से = अत्र से लेकर मै = असण वा = लड्डू पूरी घी सत्तू आदि अशन,  
पाण वा = दूध शर्बत आदि पान-पीने योग्य, खाइम वा = गन्ध खजूर आदि खाद्य,  
साइम वा = जौंग इलायची आदि खाद्य, नेव = न स्वय = स्वय राइ = रात्रिमें भुजिज्जा  
खाऊँगा, नेवन्नेहि = न दूसरोको राइ = रात्रिमें भुजाविज्जा = खिलाऊँगा, राइ भुज-  
तेवि अन्ने = रात्रिमें भोजन करनेवाले दूसरोकोभी न समणुजाणिज्जा = भला नहीं  
जानूँगा, जावज्जीवाए = जीवनपर्यन्त ( इसको ) तिविह = कृत कारित अनुमोदन-  
रूप तीन करणसे ( तथा ) तिविहेण = तीन प्रकारके मणेण = मनसे वायाए =  
वचनसे काएण = कायसे न करेमि = न करूँगा न कारवेमि = न कराऊँगा,  
करतपि = करते हुएभी अन्न = दूसरेको न समणुजाणामि = भला नहीं समझूँगा।  
भते ! = हे भगवन् ! तस्स = उस ढण्डसे पडिक्कमामि = पृथक् होता हूँ, निदामि =  
आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि = गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाण =  
दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि = त्यागता हूँ, भते ! = हे भगवन् !  
छट्टे = उठे वए = व्रतमें उवट्ठिओमि = उपस्थित होता हूँ, एसलिये मुझे सव्वाओ =  
सब प्रकारके राइभोयणाओ = रात्रिभोजनसे वेरमण = विरमण त्याग है ॥ १३ ॥ (६)

सर्गमित्पर्यस्तस्माद्विरमणम् । हे मगरा ! सर्गं परिग्रहं प्रत्यास्यामि, अब श्राव  
वा नगरे वेत्यादि प्राग्गृहीद्व्यम् ॥१२॥ (५)

द्वाविंशतितीर्थकरणासने ऋजुप्राज्ञपुरुषापेक्षयाऽस्योत्तरगुणत्वेऽपि आषा  
न्तिमतीर्थकरसाधूनामृजुजड-वक्रजडत्वादनर्थपतिरोधार्यं स्फुटमतिबोधार्थं च  
महाव्रतानन्तरं मूलगुणत्वेनोपादानु पृष्ठ रात्रिभोजनविरमणव्रतमाह—‘अहावरे  
छट्टे’ इत्यादि ।

मूलम्—अहावरे छट्टे भते । वए राडभोयणाओ वेरमणं, सब  
भंते । राडभोयणं पच्चमखामि, से असणं वा पाणं वा खाइम वा  
साइम वा नेव सयं राड भुजिजा, नेवचेहिं राड भुजाविजा, राड  
भुंजतेवि अन्ने न समणुजाणिजा, जावजीवाए तिविह तिविहेणं

न स्वयं परिग्रहं धारणं करुंगा, न दूसरेसे धारणं कराऊंगा, न धारणं  
करते हुएको भला जानूंगा ॥१२॥ (५)

अजितनाथ भगवान्से लेकर पार्श्वनाथ जिनेन्द्र पर्यन्त बाईस  
तीर्थकरोंके शिष्य ऋजु (सरल स्वभावके) और प्राज्ञ (समझानेसे  
समझनेवाले) होते हैं। उन शिष्योंकी अपेक्षासे रात्रिभोजन उत्तरगुण  
है। किन्तु ऋषभदेवके शिष्य ऋजु-जड तथा वर्द्धमान-स्वामीके शिष्य  
वक्र और जड होते हैं, अत एव अनर्थको रोकनेके लिए और स्पष्ट बोध  
करानेके लिए पंच महाव्रतोंके बाद मूल-गुणोंमें गिनानेके लिए छट्टे  
रात्रिभोजनविरमण व्रतको कहते हैं—‘अहावरे छट्टे’ इत्यादि ।

हुं करीश, न पीमये द्वासा धारणुं करीश, न धारणुं करनारने बौद्धो  
नष्टीरा (५) (१२)

अजितनाथ भगवान्थी लधने पार्श्वनाथ जिनेन्द्र सुधीना जावीस तीर्थ-  
कराना शिष्यो ऋजु (सरल स्वभाववाला) अने प्राज्ञ (समझववाधी समझ  
नारा) हुता, ते शिष्योनी अपेक्षासे रात्रिभोजन उत्तरगुणुं छे, परतु ऋषभ  
देवना शिष्यो ऋजुजड तथा वर्द्धमानस्वामीना शिष्यो वक्र अने जड हुता तेथी  
अनर्थने रोकवाने माटे अने स्पष्ट बोध करववाने माटे पंच महाव्रतानी पछी  
मूल गुणोभा गाणुववाने माटे छट्टे रात्रिभोजनविरमणुं व्रत कडे छे—अहावरे  
छट्टे इत्यादि

घदनमप्राणातिपातायोक्तम् । अपिच-रात्रिभोजनव्यवस्थापने, रात्रौ भुक्त्वाऽऽत्मनः साधुत्वकथने च मृपावादः । रात्रावभ्यवहरणे हन्यमानप्राणिनिदेशमन्तरेण तत्प्राणापहरणाद्रजन्यधिकरणरुभोजननिषेधलक्षणजिनाज्ञाभङ्गाच्च स्तेयम् । रात्रिभोजनशीलस्यावश्यमेव भिक्षार्थं रात्रावितस्ततः परिभ्रमतः स्त्र्यादिससर्गादब्रह्मदोषप्रसङ्गः । रात्रिभोजने सग्रहोऽनिवार्यस्तेन च मूर्च्छाऽवश्यम्भाविनी, सैव परिग्रहः 'मूर्च्छा परिग्रहो वृत्तो' इति भगवता स्वयमेवाऽभिधानादतो निशाशनमशेषदोषराशिभूतम्, न त्र्यागादृते व्रतपरिपोषस्तस्मात्सर्वं भगवन् ! रात्रि-

करनेसे ही हिंसाका परिहार हो सकता है । रात्रिभोजनका कर्तव्यरूपसे निरूपण करना और रात्रिभोजन करके अपनेको साधु कहना मृपावाद है ।

रात्रिभोजनसे विराधित होनेवाले प्राणियोंकी आज्ञाके विना ही उनके प्राणोंका अपहरण करनेसे, तथा रात्रिभोजन न करनेकी जिन भगवानकी आज्ञाका लोप करनेसे अदत्तादानका दोष लगता है । रात्रिमें भोजन करनेवाला भिक्षाके लिए रात्रिमें भ्रमण भी करेगा, भ्रमण करते समय स्त्री आदिका ससर्ग होनेसे अब्रह्मचर्यका भी दोष लगेगा ।

रात्रिभोजन करनेसे अन्न आदि सामानका भी सग्रह करना पडेगा इससे सनिधि-दोष लगेगा । सग्रह करनेसे मूर्च्छा भी होगी, मूर्च्छाको भगवानने स्वयं परिग्रह कहा है, इसलिए रात्रिभोजन सब दोषोंका कोष है, उसका त्याग किये विना व्रतोंका पालन नहीं हो सकता । इस

थर्ष शब्दे छे रात्रिभोजननु कृतव्यङ्ग्ये निङ्गपण्यु वरपु अने रात्रिभोजन करीने पोताने साधु कडेवडाववेो अये मृपावाद छे

रात्रिभोजनथी विराधित थनारा प्राणीओनी आज्ञा विना न अयेमना प्राणुनु अपहरण्यु करवाथी थता रात्रिभोजन न करवाणी जिनलगवानगी आज्ञानेो लोप करवाथी अदत्तादाननेो दोष लागे छे रात्रे भोजन करनाराओो (भिक्षाने भाटे रात्रे भ्रमण्यु पण्यु करथे भ्रमण्यु करती वण्ठते श्रीआदिनेो ससर्गा थवाथी अब्रह्मचर्यनेो पण्यु दोष लागथे

रात्रिभोजन करवाथी अन्न आदि सामाननेो पण्यु सग्रह करवेो पडथे, तेथी सनिधि-दोष लागथे सग्रह करवाथी मूर्च्छा पण्यु उत्पन्न थथे मूर्च्छाने लगवाने पोने परिग्रहङ्गप कही छे, तेथी रात्रिभोजन सर्व दोषनेो दोष छे

अयेनेो त्याग कर्या विना व्रतानु पालन थर्ष शकतु नथी तेथी छे लगवन् ! हुं

(६) रात्रिभोजनविरमणव्रतम् ।

टीका—हे भगवन् ! अपापरे पण्डे व्रते रात्रिभोजनात्=रात्री=निश्रि भोजन रात्रिभोजन तस्माद् विरमणम् । रात्रिभोजनेन हि सकलमहाव्रतेषु दोषो जन्यते, तथाहि-रात्री दिनरुकिरणाभावाद्गानाग्निमृक्षमतनुधारिजन्तुजातसमुत्पातावपात-सञ्चारमाहुल्यात् हिंसाऽऽप्यग्निनी, दीप्ताग्रहणसमये प्रतिज्ञा कृता यदद्यप्यश्रुति न कस्यापि प्राणिनः प्राणान् पीडयिष्यामीति, रात्रिभोजनेन तु प्राणिवधस्याऽ निवार्यत्वात्कृतप्रतिज्ञामद्गो मयितुमर्हतीति मृषावादः, यद्वा तीर्थकरैर्लोकालोकाऽऽ-लौकिकेवलालोकेनै-तत्सयमपिराधकमालोक्याऽऽदित्यालोके आलोकितान्नपान-

१ केवलालोकस्य करणस्य कर्तृत्वविरमणाय णिनिः । एतत्=रात्रिभोजनम् ।

(६) रात्रिभोजनविरमण ।

हे भगवन् ! पाच महाव्रतोंके पश्चात् छठे व्रतमें रात्रिभोजनसे विरमण किया जाता है। रात्रिभोजनसे समस्त महाव्रतोंमें दोष लगता है। रात्रिके समय सूर्यकी किरणोंके अभावसे सूक्ष्म-शरीरवाले भौतिक-भौतिके जन्तु इधर-उधर उड़ते हैं, नवीन उत्पन्न होते हैं, नीचे ऊपर आते-जाते हैं, इसलिए हिंसा अवश्य ही होती है। दीक्षा लेते समय ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि—‘आजसे किसी प्राणीके प्राणोंको पीडा नहीं पहुँचाऊँगा’ जब रात्रिभोजन किया तो हिंसा अवश्य हुई, इसलिए मृषा-वादका भी दोष लगा। अथवा लोक और अलोकको अवलोकन करनेवाले अलौकिक केवल-आलोकसे अवलोकन करके केवली भगवान्ने कहा है कि-सूर्यके आलोकमे अवलोकन किया हुआ अज्ञान आदिक सेवन

(६) रात्रिभोजनविरमण

हे भगवन् ! पाच महाव्रतोनी पछी छठ्ठा व्रतमा रात्रिभोजनथी विरमण करवाभा आवे छे रात्रिभोजनथी सव महाव्रतोभा दोष लागे छे रात्रिने सभये सूर्यना किरणाना अभावथी सूक्ष्म-शरीरवाणा भात-भातना जन्तुओ अही तही उठे छे, नवीन उत्पन्न थाय छे, नीचे उपर आव न करे छे, तेथी हिंस जर थाय छे दीक्षा लेती वधते अेवी प्रतिज्ञा करी छती छे ‘आजथी कौण प्राणीना प्राणाने पीडा नहि उपलवु जे रात्रिभोजन कथुं तो हिंसा अपश्य थछ, तेथी मृषावादनो दोष लाग्ये। अथवा लोक अने अलोकनु अवलोकन करनारा अलौकिक केवण ज्ञानथी अवलोकन करीने केवणी भगवाने कहु छे के सूर्यना प्रकाशमा अवलोकन करेछु अज्ञान आदि सेववाथी ज हिंसानो परिहार

(१) रात्रौ गृहीत्वा रात्रौ भुङ्क्ते, (२) रात्रौ गृहीत्वा दिवा भुङ्क्ते, (३) दिवा गृहीत्वा रात्रौ भुङ्क्ते, (४) दिवा गृहीत्वा (रात्रिव्यवधानेन) दिवा भुङ्क्ते। उक्तञ्च भगवता निशीथसूत्रस्यैकादशोद्देशे —

“जे भिक्षू दिया असण वा पाण वा खाडम वा साडम वा पडिगाहत्ता दिया भुजइ भुजत वा साडज्जइ ॥सू. ७३॥ जे भिक्षू दिया असण वा ४ पडिगाहत्ता रत्ति भुजइ भुजत वा साडज्जइ ॥सू. ७४॥ जे भिक्षू रत्ति असण वा ४ पडिगाहत्ता दिया भुजइ भुजत वा साडज्जइ ॥सू. ७५॥ जे भिक्षू रत्ति असण वा ४ पडिगाहत्ता

(१) रात्रिमें ग्रहण करके रात्रिमें ही भोजन करना ।

(२) रात्रिमें ग्रहण करके दिनमें भोजन करना ।

(३) दिनमें ग्रहण करके रात्रिमें भोजन करना ।

(४) दिनमें ग्रहण करके (रात्रिभर रात्रिकर दूसरे) दिनमें भोजन करना ।

भगवान्ने निशीथ सूत्रके ग्यारहवें उद्देशमे कहा है—

“जो भिक्षु दिनमें अशन पान ग्वाद्य स्वाद्य ग्रहण करके (दूसरे) दिन भोगे, दूसरेको भोगवावे और अन्य भोगनेवालेको भला जाने ॥७३॥

जो साधु दिनमें अशनादिक लेकर रात्रिमे स्वयं भोगे दूसरेको भोगवावे और अन्य भोगनेवालेको भला जाने ॥सू. ७४॥

जो साधु रात्रिमें अशनादिक लेकर दिनमें भोगे भोगवावे या भोगनेवाले अन्यको भला जाने ॥सू. ७५॥

(१) रात्रे अहण करीने रात्रे न भोजन करवु

(२) रात्रे अहण करीने दिवसे भोजन करवु

(३) दिवसे अहण करीने रात्रे भोजन करवु

(४) दिवसे अहण करीने (रातभर रात्रिने भीने) दिवसे भोजन करवु

भगवाने निशीथ—सूत्रना अगीआरमा उद्देशमा कथु छे—

“जे भिक्षु दिवसमा अशन-पान-ग्वाद्य-स्वाद्य अहण करीने (भीने) दिवसे भोगवे, भीनेने भोगवावे, अन्य भोगवतारने भला न्हावे (सू. ७३)

जे साधु दिवसे अशनादिक लधने रात्रे पोते भोगवे, भीनेने भोगवावे अने अन्य भोगवतारने भला न्हावे (सू. ७४)

जे साधु रात्रे अशनादिक लधने दिवसे भोगे, भोगवावे या भोगवतारने भला न्हावे (सू. ७५)

भोजन प्रत्याग्यामि, तदेव विशदयति 'मे' इति, अथ=अनन्तरम्-अपारम्भ्य-अन्नम्=अदयते=भुज्यते भुधोपगमनार्थं यत् तन्=भोदनं यत् सकु-मुद्रमोदन-घृतपूर-नपन श्रीमभृतिरम्, पान=पीयते यत्तत्पान=द्रुग्गादिक, तिन्तण्डु-शदियावनोक्क च । खाद्य=खादितु योग्यं ग्वायम्=अनित्तद्राक्षावर्जरादि । स्वाद्य=स्वादितु योग्यं स्वाद्य=लम्बचूर्णपूगीकशदि । रात्रिभोजनमपि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावभेदाच्चतुर्धा, तत्र द्रव्यतोऽशनपानादिभ्यम्, क्षेत्रतोऽर्द्धवृत्तीयद्वीपसमुद्रशित, तद्वदिः प्रसिद्धदिनरात्र्यभावात्, कालतो रात्रौ, भावतो निशाशनाभिलाष । रात्रिभोजनस्य स्वरूपतश्चतुर्भङ्गी यथा-

लिए हे भगवन् ! मैं समस्त-रात्रिभोजनका प्रत्याग्यान करता हूँ । अर्थात् भात, दाल, मत्तू, मगकेलडू, घेवर, लप्सी आदि अशन, दूध, तिल और चावलका दौवन आदि पान, प्रासुक दाण, खजूर आदि स्वाद्य, लोंगका चूर्ण, सुपारी आदि स्वाद्य, इन चार प्रकारके आहारोंमेंसे किसी एक प्रकारका भी आहार रात्रिमें नहीं करूंगा ।

रात्रिभोजन भी द्रव्य क्षेत्र काल भावसे चार प्रकारका है । अशन पान आदि द्रव्यसे रात्रिभोजन है । अढाई द्वीपमे रात्रिभोजन करना क्षेत्र-रात्रिभोजन है, क्योंकि अढाई द्वीपके बाहर दिन रात्रिका व्यवहार नहीं है । रात्रिमे भोजन करना कालकी अपेक्षा रात्रिभोजन है । रात्रिमें भोजन करनेकी इच्छा करना भाव-रात्रिभोजन है ।

रात्रिभोजनकी चतुर्भङ्गी इस प्रकार है—

सर्व-रात्रिभोजनना प्रत्याग्यान करे छु अर्थात्-भात, दाण, मगज, मगना लाडु, घेवर, लापसी आदि अशन, दूध, तिल अने गोभानु घेवणु आदि पान, प्रासुक द्राक्ष, खजूर आदि स्वाद्य, लवगनु चूर्ण, सोपारी आदि स्वाद्य, ये चारे प्रकारना आहारभाथी कोछ पणु एक प्रकारना आहार रात्रे छु करीश नहि

रात्रिभोजन पणु द्रव्य-क्षेत्र-काण-भावथी चार प्रकारनु छे अशन-पान आदि द्रव्यथी रात्रिभोजन छे अढी-द्वीपमा रात्रिभोजन करु छे क्षेत्र-रात्रिभोजन छे, केभके-अढी द्वीपनी णडार दिवस-रात्रिना व्यवहार नहीं रात्रे भोजन करु छे काणनी अपेक्षाये रात्रिभोजन छे रात्रे भोजन करवानी इच्छा करवी छे भाव रात्रिभोजन छे

रात्रिभोजननी चतुर्भङ्गी आ प्रभाणु छे —

टीका-इत्येतानि=समनन्तरोदीरितलक्षणानि रात्रिभोजनविरमणपष्ठानि= रात्रौ भोजन रात्रिभोजन, रात्रिभोजनाद्विरमण रात्रिभोजनविरमण, पण्णा पूरण पष्ठ=पदसख्याप्रपूरक, रात्रिभोजनविरमण पष्ठ येषु तानि पञ्च महाव्रतानि आत्महितार्थाय=आत्मने हितम्=इष्टमिति आत्महितम्, आत्मनो हित=मङ्गल-मस्मादिति वाऽऽत्महितो मोक्षः, स एवार्थः=प्रयोजनम् आत्महितार्थस्तस्मै तथोक्ताय उपसम्पन्न=सामस्त्येन स्वीकृत्य विहरामि=सयमपिपये विचरामि ॥१४॥

यतनापुरस्सरमेव व्रतग्रहण सफल भवतीत्यतस्तद्यतनास्वरूप प्रदर्शयते-  
“से भिक्षू वा” इत्यादि ।

मूलम्-से भिक्षू वा भिक्षुणी वा सजयविरयपडिह्यपञ्चक्वाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से पुढविं वा भित्ति वा सिलं वा लेलु वा ससरक्ख वा काय ससरक्ख वा वत्थ हत्थेण वा पाएण वा कट्टेण वा किलिंचेण वा अगुलियाए वा सिलागाए वा सिलागहत्थेण वा न आलिहिज्जा न विलिहिज्जा न घट्टिज्जा न भिदिज्जा, अन्न न आलिहाविज्जा, न विलिहाविज्जा, न घट्टाविज्जा, न भिदाविज्जा, अन्न आलिहत वा, विलिहत वा, घट्टत वा भिदत वा न समणुजाणिज्जा, जावजीवाए ति विह ति विहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि

हे भगवन् । मैं पाच महाव्रतोंको और छठे रात्रिभोजनविरमण व्रतको आत्माके हित-मोक्ष-के लिए स्वीकार करके सयममार्गमें विचरता हूँ ॥४॥

व्रतोंको यतनापूर्वक स्वीकार किया जाय तभी वे सफल होते हैं, इसलिए यतनाका कथन करते हैं-‘से भिक्षू’ इत्यादि ।

हे भगवन् ! हु पाच महाव्रताने अने छठे रात्रिभोजनविरमण व्रतने आत्माने हित-मोक्ष मोक्षने भाटे स्वीकार करीने सयम-मार्गमा विचरुं छु (१४) व्रतानो यतनापूर्वक स्वीकार करवामा आवे त्याहे ते सक्ष्ण धाय छे, तेथी यतनानु कथन करे छे-जे भिक्षू इत्यादि



रतिं भुजइ भुजत वा साइजइ X X X X भावइइ चाउम्मासियं परिहारइण  
॥सू. ७६॥” इति ।

तच्च सर्वमशनादिकं रात्रौ नैव स्वयं भुजे, इत्यादि सर्वं व्याख्यातपूर्वम् ॥१३॥

सम्प्रति गृहीतमहाव्रतः शिष्य उपसहारत्नाह-‘इच्छेयाइ’ इत्यादि ।

मूलम्-इच्छेयाइ पच महव्रयाइं राइभोयणवेरमणछट्टाइ अत्तहि-  
यट्टयाए उवसपज्जित्ताण विहरामि ॥ १४ ॥

छाया—इत्येतानि पञ्च महाव्रतानि रात्रिभोजनविरमणपष्ठानि आत्महिता  
र्थायोपसम्पद्य विहरामि ॥१४॥

उपसहार.

सान्वयार्थं—इच्छेयाइ=ये पहले रुहे हुए राइभोयणवेरमणछट्टाइ=छठे  
रात्रिभोजनविरमण व्रतके साथ पच महव्रयाइ=पाच महाव्रतोंको अत्तहिय  
ट्टयाए=आत्मरूपाणके लिये उवसपज्जित्ताण=स्वीकार करके विहरामि=  
सयममें विचरता हूँ ॥१४॥

जो साधु रात्रिमें अशनादिक लेकरके रात्रिमें भोगे दूसरेको  
भोगवावे और अन्य भोगनेवालेको भला जाने ॥सू. ७६॥ उसे  
चातुर्मासिक प्रायश्चित्त लगता है ।

इन सब अशन आदि चार प्रकारके आहारको रात्रिमें नहीं  
भोगूंगा, इत्यादिका व्याख्यान पहले कर चुके है ॥१३॥ (६)

अब महाव्रतोंको स्वीकार करनेवाला शिष्य उपसहार करता हुआ  
कहता है-‘इच्छेयाइ’ इत्यादि ।

ये साधु, रात्रि अशनादि लधने रात्रि भोगवे, भीजने भोगवावे अने अन्य  
भोगवनारने लवो जाणे (सू ७६) तेने चातुर्मासिक प्रायश्चित्त लागे छे ”

अे सर्व अशनादि चार प्रकारना आहारने रात्रि नहि भोगवु, इत्यादिना  
व्याख्यान पडेला उरवाभा आवेणु छे (१३) (६)

डवे महाव्रतोंने स्वीकार करवावाणे शिष्य उपसहार करता छतो कडे छे-  
इच्छेयाइ इत्यादि

टीका-इत्येतानि=समनन्तरोदीरितलक्षणानि रात्रिभोजनविरमणपष्टानि=  
रात्रौ भोजन रात्रिभोजन, रात्रिभोजनाद्विरमण रात्रिभोजनविरमण, पण्णा पूरण  
पष्ट=पद्सरयापपूरक, रात्रिभोजनविरमण पष्ट येषु तानि पञ्च महाव्रतानि  
आत्महितार्थाय=आत्मने हितम्=इष्टमिति आत्महितम्, आत्मनो हित=मङ्गल-  
मस्मादिति वाऽऽत्महितो मोक्षः, स एवार्थः=प्रयोजनम् आत्महितार्थस्तस्मै तथोक्ताय  
उपसम्पद्य=सामस्त्येन स्वीकृत्य विहरामि=सयमत्रिपये विचरामि ॥१४॥

यतनापुरस्सरमेव प्रतग्रहण सफल भवतीत्यतस्तद्यतनास्वरूप प्रदर्शयते-  
“से भिक्खू वा” इत्यादि।

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजयविरयपडिहयपच्चक्खाय-  
पावकस्से दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा  
जागरमाणे वा से पुढवि वा भित्ति वा सिलं वा लेलुं वा ससरक्ख वा  
काय ससरक्ख वा वत्थं हत्थेण वा पाएण वा कट्टेण वा किर्लिचेण वा  
अगुलियाए वा सिलागाए वा सिलागहत्थेण वा न आलिहिज्जा न  
विलिहिज्जा न घट्टिज्जा न भिदिज्जा, अन्न न आलिहाविज्जा, न  
विलिहाविज्जा, न घट्टाविज्जा, न भिदाविज्जा, अन्न आलिहत वा,  
विलिहत वा, घट्टत वा भिदत वा न समणुजाणिज्जा, जावजीवाए  
तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि

हे भगवन् । मैं पाच महाव्रतोंको और छठे रात्रिभोजनविरमण  
व्रतको आत्माके हित-मोक्ष-के लिए स्वीकार करके सयममार्गमें  
विचरता हूँ ॥४॥

व्रतोंको यतनापूर्वक स्वीकार किया जाय तभी वे सफल होते हैं,  
इसलिए यतनाका कथन करते हैं-‘से भिक्खू०’ इत्यादि ।

हे भगवन् ! हुं पाच महाव्रताने अने छठे रात्रिभोजनविरमण व्रताने  
आत्माने हित-स्वरूप मोक्षने माटे म्थीका० करीने सयम-मार्गमा विचरु छु (१४)

व्रताने यतनापूर्वक म्थीकार करवामा आवे त्यारे ते सक्षण वाय छे, तेथी  
यतनानु कथन करे छे-जे भिक्खू० इत्यादि

करतपि अन्न न समणुजाणामि ! तस्स भते ! पडिऊमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥१॥१५॥

छाया—सभिभुर्वा भिभुकी या मयत-प्रित प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको या परिपहतो या सुप्तो या जाग्रदा, स पृथिवीं वा भित्तिं वा शिला या लेट्टु या सरजस्कं या काय सरजस्क या यथ हस्तेन वा पानेन वा काष्ठेन या किलिञ्चेन या अह्वला या शत्रुकाया या शत्रुकाहस्तेन वा नाऽऽलिखेत् न प्रिलिखेत् न घट्टयेत् न भिन्नात्, अय नाऽऽ लेखयेन्न प्रिलेखयेन्न घट्टयेन्न भेदयेद्, अन्यमालिगन्त या प्रिलिगन्त वा घट्टयन्त वा भिन्दन्त या न समनुजानीयात्, यावज्जीवया त्रियि त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुरन्तमप्यन्य न समनुजानामि । तस्माद् भदन्त ! प्रतिकामामि निन्दामि गर्हे आत्मान व्युत्सजामि ॥१॥१५॥

(१) पृथ्वीकाययतना

सान्वयार्थः—सजयविरयपडिह्यपचरवायपावकम्मे=वर्तमानकालीन सावत्र व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावत्र व्यापारोंसे रहित, वर्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावत्र व्यापारके त्यागी, से=वह पूर्वोक्त भिक्षु वा=साधु भिक्षुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा सघमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहा से=वह पुढविं वा=पृथ्वीको भित्तिं वा=भीत-दीवार-को सिल वा=शिलाको लेट्टु वा=ढेलेको ससरक्ख=सचित्तरजसहित काय वा=शरीरको ससरक्ख=सचित्तरजसहित वत्थ वा=वस्त्रको हत्थेण वा=हाथसे पाएण वा=पैरसे कट्टेण वा=काष्ठसे किलिञ्चेण वा=वास आदिनी खपचसे अगुलियाए वा=अगुलीसे सिलागाए वा=उडसे सिलागहत्थेण वा=ग्रहृतसी छडोसे न आलिहिज्जा=जराभी सघर्षण न करे, न विलिहिज्जा=धारम्वार सघर्षण न करे, न घट्टिज्जा=न घट्टन करे-न बलावे, न भिदिज्जा=न भेदे, अन्न=दूसरेसे न आलिहावि ज्जा=जराभी सघर्षण न करावे, न विलिहाविज्जा=न धारम्वार सघर्षण करावे, न घट्टाविज्जा=न घट्टन करावे, न भिदाविज्जा=न भेदन करावे, आलिहत्त वा=सघर्षण करनेवाले विलिहत्त वा=वार वार सघर्षण करनेवाले घट्टन वा=घट्टन करनेवाले भिदत्त वा=भेदन करनेवाले अन्न= दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न समझे । इसलिय मैं जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविह=कृत-

कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिचिहेण=तीन प्रकारके मणेण= मनसे वायाण=वचनसे काण्ण=कायसे न करेमि=न करूंगा, न कारवेमि=न कराऊंगा, करतपि=करते हुए भी अन्न=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूंगा। भत्ते != हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्वा करता हूँ, अप्पाण=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको बोसिरामि=त्यागता हूँ ॥१॥१५॥

टीका—से=सः=भिक्षावृत्तिकृत्वेन प्रसिद्धः, भिक्षुः=भिक्षितु=याचितु शील धर्मों वा यस्य स भिक्षुः। ('भिक्ष याश्चायामलाभे लाभे चे'-त्यस्माद्वातोः 'आकेस्तच्छील तद्धर्म-तत्साधुकारिणु' इत्यधिकारे 'सनाशसभिक्ष उः' (३।२।१६२) इत्युप्रत्यये भिक्षुपद सि'यति)। अत्र 'उ' प्रत्ययेन ताच्छील्यत्रोतनाद् भिक्षणशीलत्व भिक्षुत्वमिति पर्यवस्यति।

ननु ऋपायाम्बरधारिणामपि भिक्षोपजीवित्वेन तत्रोक्तभिक्षुलक्षणमतिव्याप्तमिति चेन्न—

भिक्षावृत्तिसे प्रसिद्ध भिक्षु कहलाते हैं, अर्थात् याचना करके आहारादि लेनेवालेको भिक्षु कहते हैं।

संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'भिक्षु' पदमे 'उ' प्रत्यय लगा हुआ है। उससे यह प्रगट होता है कि-भिक्षु उसे कहना चाहिए जो किसी वस्तुको विना भिक्षाके न लें, अर्थात् भिक्षणशील भिक्षु कहलाते हैं।

प्रश्न-गेरुआ या अन्य किसी प्रकारके रगसे रगे हुए कपडे पहननेवाले सन्यासी आदि भी भिक्षु माग कर अपने जीवनका निर्वाह करते हैं, इसलिए यह भिक्षुका लक्षण उनमे भी चला जाता है, वे भी भिक्षु कहलावेंगे ?।

भिक्षावृत्तिथी प्रसिद्ध होय ते भिक्षु कहेवाय छे अर्थात् याचना करीने आहारादि लेनाराने भिक्षु कहे छे,

संस्कृत व्याकरणने अनुसरीने भिक्षु शब्दमा उ प्रत्यय लागेले। छे तेथी अत्र अष्ट थाय छे छे भिक्षु अने कहेवे अने छे छे छे वस्तुने भिक्षा विना ले नहि, अर्थात् भिक्षणशील होय ते भिक्षु कहेवाय छे

प्रश्न-गेरुथी या अन्य डोळ प्रहारना रगथी रगेला कपडा पहरेनारा सन्यासी आदि पणु भिक्षा मागीने पोताना एवनने निर्वाह करे छे तेथी अ भिक्षुनु लक्षण अने पणु लागु पडे छे, तेअो पणु भिक्षु कहेवाये ?

करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते । पडिक्कमामि निंदामि  
गरिहामि अप्पाण चोसिगामि ॥१॥१५॥

छाया—मभिभुरां भिभुरी या मयत प्रित्त प्रतिहत—प्रत्याग्यातपापकर्मां विवा  
वा रात्रां वा पक्कं वा परिपटतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स पृथिवी वा भित्ति  
या शिला या लेष्टु या सरजस्सं या काय सरजस्सं वा यत्त हस्तेन वा पादन वा  
फाण्ठेन वा किलिञ्चेन वा अङ्गुल्या वा शत्राकया वा शत्राकाहस्तेन वा  
नाऽऽलिखेत् न चिखेत् न घट्टयेत् न भिन्नात्, अय नाऽऽ  
लेखयेन्न चिलेखयेन्न घट्टयेन्न भेदयेद्, अन्यमालिपन्त या चिलिखत् वा घट्ट  
यन्त या भिन्दन्त या न समनुजानीयात्, यापज्जीयया त्रिपिप त्रिविपेन मनसा  
वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि । तस्माद्  
भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गहं आत्मान व्युत्सजामि ॥१॥१५॥

(१) पृथ्वीकाययतना

सान्ध्यायः—सजयविरयपडिहयपचग्वायपावकम्मे=वर्तमानकालीन  
सायत्र व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सायत्र व्यापारोंसे रहित, वर्तमान  
कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए  
अतिचारोंकी निन्दा करके सायत्र व्यापारके त्यागी, से=वह पूर्वोक्त भिन्नु  
वा=साधु भिन्नुवुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा  
रात्रिमें एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा सत्रमें स्थित सुत्त  
वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहा से=वह  
पुढविं वा=पृथ्वीको भित्ति वा=भीत-दीवार-को सिल वा=शिलाको लेष्टु  
वा=ढेलेको ससरक्ख=सचित्तसहित काय वा=शरीरको ससरक्ख=सचित्त  
रजसहित वत्थ वा=वस्त्रको हत्थेण वा=हाथसे पाएण वा=पैरसे कट्टेण  
वा=काष्ठसे किलिञ्चेण वा=वास आदिनी खपचसे अगुलियाए वा=अगुलीस  
मिलागाए वा=उडसे सिलागहत्थेण वा=बहुतसी छडीसे न आलिहिज्जा=  
जराभी सघर्षण न करे, न विलिहिज्जा=वारम्बार सघर्षण न करे, न घट्टिज्जा=  
न घट्टन करे-न चलावे, न भिदिज्जा=न भेदे, अन्न=दूसरेसे न आलिहावि  
ज्जा=जराभी सघर्षण न करावे, न विलिहाविज्जा=न वारम्बार सघर्षण करावे, न  
घट्टाविज्जा=न घट्टन करावे, न भिदाविज्जा=न भेदन करावे, आलिहत वा=  
सघर्षण करनेवाले चिलिहत वा=वार वार सघर्षण करनेवाले घट्टत वा=घट्टन  
करनेवाले भिदत वा=भेदन करनेवाले अन्न= दूसरेको न समणुजाणिज्जा=  
भला न समझे । इसलिये मैं जावज्जीवाण=जीवनपर्यन्त (इसको) तिचिह=कृत-

तथाहि शब्दस्य द्वे निमित्ते व्युत्पत्तिनिमित्त प्रवृत्तिनिमित्त चेति, तत्र व्युत्पत्तिलभ्यार्थमतीतौ प्रकारीभूतो धर्मो व्युत्पत्तिनिमित्तम्, यथा पङ्कजशब्दस्य पङ्कजनिकर्तृत्वम् । सङ्केतग्रहे प्रकारीभूतो धर्मः प्रवृत्तिनिमित्तम्, यथा पद्मत्वजातिः ।

न च शब्दानां व्युत्पत्तिनिमित्तमेव प्रवृत्तिनिमित्तमिति वाच्यम्, पाचकादिशब्दे तथात्वेऽपि पङ्कजादिशब्दे तद्व्यभिचारात् । तथाहि—पङ्कजपद 'पङ्काज्जायते'

शब्दोंकी प्रवृत्ति दो प्रकारसे होती है । जैसे कमलका वाचक एक पङ्कज शब्द है दूसरा पद्म शब्द है । पकज शब्दका अर्थ है कीचडसे उत्पन्न होनेवाला, कमल कीचडसे उत्पन्न होता है इसलिए पकजत्व व्युत्पत्तिनिमित्त है । अर्थात् पङ्कज शब्दकी व्युत्पत्ति करनेसे जो अर्थ निकलता है वही अर्थ उसके वाच्यमें (अर्थमें) ठीक-ठीक घट जाता है, इसे व्युत्पत्तिनिमित्त कहते हैं ।

दूसरा प्रवृत्तिनिमित्त है । शब्दके सकेतसे बोध्य अर्थमें विशेषणभूत धर्मको प्रवृत्तिनिमित्त कहते हैं, जैसे पद्मत्व या कमलत्व (कमलपन) जाति ।

यदि कोई कहे कि— 'जो व्युत्पत्तिनिमित्त है वही प्रवृत्तिनिमित्त है तो ठीक नहीं है, क्योंकि यद्यपि 'पाचक' आदि शब्दोंमें जो व्युत्पत्तिनिमित्त है वही प्रवृत्तिनिमित्त है तथापि पङ्कज आदि शब्दोंमें यह कथन नहीं घटता, क्योंकि "पक (कीचड)से उत्पन्न होनेवाला पकज है"

शब्दोंकी प्रवृत्ति के प्रकारे थाय छे जेभङ्के-उभगने वाचक ओऽ पङ्कज शब्द छे, भीजे पद्म शब्द छे पङ्कज शब्दने अर्थ डीयडमा उत्पन्न थयेछु ओवे थाय छे कमल डीयडमा उत्पन्न थाय छे, तेथी पङ्कजत्व व्युत्पत्तिनिमित्त छे अर्थात् पङ्कज-शब्दनी व्युत्पत्ति करवाथी जे अर्थ नीकणे छे ते ज अर्थ तेना वाच्यमा (अर्थमा) भराणर भध भेसे छे, तेथी तेने व्युत्पत्तिनिमित्त कहे छे

भीजे प्रवृत्तिनिमित्त छे शब्दना स डेतथी ओध्य अर्थमा विशेषणभूत धर्मने प्रवृत्तिनिमित्त कहे छे जेभङ्के-पद्मत्व या कमलत्व (कमलपणु) जाति

जे कोछ कहे के—'जे व्युत्पत्तिनिमित्त छे तेज प्रवृत्तिनिमित्त छे, तो ते भराणर नथी कारणु के जे के 'पाचक' आदि शब्दोंमा जे व्युत्पत्तिनिमित्त छे तेज प्रवृत्तिनिमित्त छे, तथापि पङ्कज आदि शब्दोंमा जे कथन भध भेसतु नथी, कारणु के 'पक (कीचड)भाथी उत्पन्न थवावाणु पङ्कज छे, —जे व्युत्पत्तिथी

મિહ્યાવૃત્તિરુત્પન્ને સતિ મિદેતરવૃત્તિરહિતર ઠિ મિશ્રુત્વમ્, તથા ચ સ્વામિ નિદેશમન્તરેણાપિ જલાશયાદિતોઽપિ સ્વરમ્તેનાપિ જગદિપ્રગ્ણમ્ય તદીયત્રીવિકા ન્તર્ગતત્વેન, તથા વન્નાચિદ્ મિહ્યાયા અચામે પવન પાવનાદિક્રિયાયા, વન્મૂલફલા દિના ચ જીવનનિર્વાહાત્તેપામુક્તરક્ષણમિશ્રુત્વામાયાન્ ।

ન ચ 'મિહ્યો યદા મિહ્યામાણામ્તદા તન્નાસ્તુ મિશ્રુત્વ પરન્ચ મિહ્યામાણસ્વાવમ્યાપાં કથ તેષુ મિહ્યુશબ્દઃ પ્રયત્તેત તદાનીં મિહ્યાણ્યાપારામાયા?' દિતિ વાચ્યમ્, ઉમ્ ગ્યામપ્યયસ્થાયા મિહ્યુશબ્દસ્ય પ્રવૃત્તિનિમિત્તસદ્ગ્રાવેન મિશ્રુશબ્દપ્રવૃત્તિસમવાન્ ।

ઉત્તર-જો મિહ્યામે હી અપના નિર્વાહ કરતે હં ઓર સિવાય મિશ્રાકે અન્ય વૃત્તિકો કદાપિ સ્વીકાર નહોં કરતે વે હી મિહ્યુ કહલાતે હેં, સન્યાસી આદિ સ્વામીકી આજ્ઞાકે ચિના મી જલાશય આદિસે મી જલ આદિ અપને ઠાથોસે હે હેતે હં । જવ મિહ્યા નહોં મિલતી તવ પવન પાચનાદિ કરતે કરાતે હેં, તથા કન્દ-મૂલ-ફલ-આદિસે નિર્વાહ કર હેતે હેં, હસલિણ વે મિહ્યુ નહોં કહલા સકતે ।

પ્રશ્ન-અચ્છા, જો મિહ્યાસે હી અપના નિર્વાહ કરે ઉસે મિહ્યુ કહતે હેં તો સાધુ જવ મિહ્યાકી ગવેપણા કરેગે તવ હી મિહ્યુ કહલાવેંગે, જિસ સમય સ્વાધ્યાય આદિ અન્ય ક્રિયા કરતે હોંગે ઉસ સમય મિહ્યુ કૈસે કહલાવેંગે ?

ઉત્તર-મિહ્યાકી ગવેપણા કરતે સમય મી સાધુકો મિહ્યુ કહ સકતે હેં ઓર ન કરતે સમય મી કહ સકતે હેં । દોનો અવસ્થાઓમેં મિહ્યુ શબ્દકી પ્રવૃત્તિકા કારણ મૌજૂદ હે ।

ઉત્તર-એઓ મિહ્યાથી જ પોતાનો નિર્વાહ કરે છે અને મિહ્યા સિવાય અન્યવૃત્તિને કદાપિ સ્વીકારતા નથી તેઓ જ મિહ્યુ કહેવાય છે સન્યાસી આદિ સ્વામીની આજ્ઞા વિના પણ જલાશય આદિથી પણ જળ આદિ પોતાના હાથે લઈ લે છે, બ્યારે મિહ્યા નથી મળતી ત્યારે રાઘવા-રઘાવવાની ક્રિયા કરે છે, તથા કદ મૂળ ક્ષણ આદિથી નિર્વાહ કરી લે છે, તેથી તેઓ મિહ્યુ કહેવાઈ શકતા નથી

પ્રશ્ન-હીક, એઓ મિહ્યાથી જ પોતાનો નિર્વાહ કરે તેમને મિહ્યુ કહે છે તો સાધુ બ્યારે મિહ્યાની ગવેપણા કરશે ત્યારે જ મિહ્યુ કહેવાશે, જે સમયે સ્વાધ્યાય આદિ અન્ય ક્રિયા કરતા હશે તે સમયે મિહ્યુ ડેવી રીતે કહેવાશે ।

ઉત્તર-મિહ્યાની ગવેપણા કરતી વખતે સાધુને મિહ્યુ કહી શકાય છે અને ન કરતી વખતે પણ કહી શકાય છે જેઉ અવસ્થામા મિહ્યુ શબ્દની પ્રવૃત્તિનુ કારણ મૌજૂદ છે

त्रिकाऽऽशसाविरहेण समितिगुप्त्यादिधारित्वरूपप्रवृत्तिनिमित्तमादाय भिक्षुत्व-समित्यादिपालकत्वयोर्भिन्नुलक्षणैकार्थसमवायेन कथञ्चित्तादान्म्यलक्षणेन भिक्षुमाणेऽ-भिक्षुमाणे वा भिक्षौ भिक्षुशब्दप्रवृत्तेः, वर्तमानपर्यायमात्रग्रहणलक्षणऋजुसूत्रनया-भिप्रायाच्च भिक्षुत्वसिद्धिः ।

ननु पूर्वोक्तलक्षण प्रवृत्तिनिमित्त कापायाम्बरधारिप्रभृतिष्वपि विद्यते, तेऽपि मार्गं पश्यन्त एव गच्छन्ति, तेन च तेषां समित्यादिपालकत्व, मौनादिसमबलम्ब-नेन गुप्तिपालकत्व चास्ति, ततश्च समिति गुप्तिपालकत्वरूपप्रवृत्तिनिमित्तस्य तेष्वपि सत्त्वेन कुतो न तेषां भिक्षुशब्दव्यवहार्यत्वमिति चेत् ?

यत् इह लोकात्प्राशसाविरहिततया समित्यादिपालकत्वमेव भिक्षुशब्दप्रवृत्ति-निमित्तसे भिक्षु शब्दकी प्रवृत्ति होती है, क्योंकि भिक्षुत्व और समिति-गुप्तिपालकत्व दोनों धर्म भिक्षुमे कथञ्चित् तादात्म्यसम्बन्धरूप एकार्थ-समवायसे रहते हैं । इसलिए भिक्षा न करते समय भी 'समितिगुप्ति-पालकत्व' -रूप प्रवृत्ति-निमित्तसे भिक्षु शब्दकी प्रवृत्ति होती है ।

शङ्का-समिति-गुप्तिपालकता तो गेरुआ आदि वस्त्र पहननेवालोमें भी पाई जाती है । वे भी मार्ग देखकर ही चलते हैं इसलिए वे समितिका पालन करते हैं । और कभी-कभी मौन रखते हैं इसलिए गुप्तिका भी पालन करते हैं । जय उनमें समिति-गुप्तिपालकता पाई जाती है तो उन्हें भी भिक्षु क्यों नहीं कहना चाहिए ?

समाधान-इहलोक और परलोक सम्बन्धी आकाक्षा या स्वार्थरहित

शब्दनी प्रवृत्ति थाय छे, ङारण्य डे भिक्षुत्व अने समितिगुप्ति पालकत्व भेउ धर्मो भिक्षुमा डेअपण्य गीत तादात्म्य सणधरूप अेकार्थ-समवायथी रहे छे तेथी भिक्षा न करती वण्णते पण्य 'समितिगुप्ति पालकत्व' इप प्रवृत्तिनिमित्तथी भिक्षु शब्दनी प्रवृत्ति थाय छे

श ङ-समितिगुप्ति पालकता तो गेरुआ आदि वस्त्र पहनेरनाराओमा पण्य नेवामा आवे छे तेओ पण्य मार्ग नेधने ञ आवे छे, तेथी तेओ समितिनु पालन करे छे, अने डेअडेअवार मौन रहे छे तेथी गुप्तिनु पण्य पालन करे छे, ने तेओमा समितिगुप्ति पालकता नेवामा आवे छे, तो तेमने पण्य भिक्षु डेम न डेअवा नेअओ ?

समाधान-इहलोक अने परलोक सणधी आकाक्षा अथवा स्वार्थरहित थधने



इति व्युत्पत्त्या पङ्कजनिकर्तृत्वात्त्रिंशत्ते शक्ततया पद्मरूपार्थबोधकं सदापि कैक-  
लादिव्यतिमसङ्गाराणाय पद्मत्व(जाति)रूपं प्रवृत्तिनिमित्तमादायैव पद्मं बोधवति  
न त्वितरया ।

एवमत्रापि भिक्षुशब्दस्य भिक्षण व्युत्पत्तिनिमित्तम्, भिक्षत इत्येवशीलो भिक्षु  
रिति व्युत्पत्तः । तथा चाऽभिक्षमाणत्वात्स्थाया भिक्षुत्वापसक्तावपि ऐक्षिकपार

इस व्युत्पत्तिसे पङ्कज शब्द कमलका बोध तो कराता है परन्तु साधु  
साथ शैवाल तथा इस प्रकारसे पैदा होनेवाले गड्डलके फूल आदिका  
अर्थ भी उससे निकलता है, क्योंकि वे भी कीचड़से पैदा होते हैं । यदि  
व्युत्पत्तिनिमित्तको ही शब्दकी प्रवृत्तिमें कारण माना जाय तो शैवाल  
आदिमें भी पङ्कज शब्दका प्रयोग हो जायगा, इस आपत्तिका निवारण  
करनेके लिए व्युत्पत्तिनिमित्तके सिवाय प्रवृत्तिनिमित्त कमलत्व धर्मकी  
भी आवश्यकता है, इससे शैवाल आदिका निराकरण हो जाता है,  
दोनों निमित्तोंसे ठीक-ठीक अर्थका प्रतिपादन हो जाता है कि जो कीचड़से  
उत्पन्न हो और जिसमें कमलत्वरूप सामान्य (जाति) पाया जाय उसे  
पङ्कज कहते हैं ।

इसी प्रकार यहाँ 'भिक्षु' शब्दका व्युत्पत्तिनिमित्त भिक्षण (याचना)  
धर्म है, जिस समय साधु भिक्षण नहीं करते उस समय व्युत्पत्तिनिमित्तसे  
भिक्षु नहीं कहला सकते, फिर भी 'समितिगुत्तिपालकत्व' -रूप प्रवृत्ति

પકજ શબ્દ કમળનો બોધ તો કરાવે છે, પરન્તુ સાથે શેવાળ તથા એ પ્રકાર  
પેદા થનારા ઘીતેલા શીંગોડા આદિનો અર્થ પણ તેમાથી નીકળે છે, કારણ કે  
તે પણ કીચડમાથી પેદા થાય છે એ વ્યુત્પત્તિનિમિત્તને જ શબ્દની પ્રવૃત્તિમા  
કારણરૂપ માનવામા આવે તો શેવાળ આદિમા પણ પકજ શબ્દનો પ્રયોગ થઈ  
જશે એ આપત્તિનું નિવારણ કરવાને માટે વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત ઉપરાંત પ્રવૃત્તિનિમિત્ત  
'કમળત્વ ધર્મ'ની પણ આવશ્યકતા છે તેથી શેવાળ આદિનું નિરાકરણ થઈ જાય છે  
એટલે નિમિત્તોથી બરાબર અર્થનું પ્રતિપાદન થઈ જાય છે કે જે કીચડમાથી ઉત્પન્ન  
થાય અને જેમા કમલત્વરૂપ સામાન્ય (જાતિ) મળી આવે તેને પકજ કહે છે

એ રીતે અહીં 'ભિક્ષુ' શબ્દનો વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત ભિક્ષણ (યાચના)  
ધર્મ છે જે સમયે સાધુ ભિક્ષણ કરતા નથી, તે સમયે વ્યુત્પત્તિનિમિત્તથી ભિક્ષુ  
નથી કહેવાતો, તો પણ 'સમિતિગુત્તિ-પાલકત્વ' રૂપ પ્રવૃત્તિનિમિત્તથી ભિક્ષુ

તેપામુદ્ગમોત્પાદનાદિદોપદુષ્ટાન્નમોજિત્વ-સચિત્તતોયકન્દમૂલાગ્રાસેવિત્વ-પચન-પાચ-  
નાદિક્રિયેચ્છાનિવૃત્ત્યમાત્રાદિદોપદૂપિતત્વાત્, અતો યે સમિતિગુપ્તિધારકા મિષ્ઠા-  
માત્રોપજીવિનોઽચિત્તામેપનીયામુદ્ગમોત્પાદનાદિદોપરાહિત્યેન વિશુદ્ધા પ્રમાણોપેના  
ચ મિષ્ઠા ગૃહ્ણન્તિ, પ્રાણાત્યયસમયેઽપિ પચનપાચનાદિનવકોટિવિશુદ્ધિં નૈવ લ્ખન્ડ-  
યન્તિ ત एव મિશ્રુપદવ્યવહારયોગ્યતા લભન્તે, ઇતિ વિદેલિમમ્ ।

યદ્વા ક્ષોભતે ક્ષુભ્યતિ વા=અન્તર્ભાવિત્પર્યયતયા ક્ષોભયતિ=સચાલ્યતિ  
ચતુર્ગતિક્રસસારે સફલપ્રાણિન ઇતિ ક્ષુપ્=અદ્યવિધ કર્મ (અન્તર્ભાવિત્પર્યયાદ્  
ભૌવાદિકાદ્ દૈવાદિકાદ્વા 'ક્ષુભ સશ્ચલને' અસ્માદ્વાતોઃ 'સમ્પદાદિત્વાત ક્ષિપ્')  
તદ્ જ્ઞાનદર્શનાદિના મિનત્તિ=જ્ઞપયતીતિ મિશ્રુઃ (પૃપોરાદિત્વાત્સિદ્ધિ) ॥

વાલે સન્યાસી આદિ વાસ્તવમેં મિશ્રુ નહીં કહલા સકતે, ક્યોકિ વે  
ઉદ્ગમ-ઉત્પાદના આદિ દોષોંસે દૂપિત અન્ન આદિ અગીકાર કરતે  
સચિત્ત જલ લેતે હેં, સચિત્ત કન્દ મૂલ આદિકા સેવન કરતે હેં, પચન-  
પાચનાદિ ક્રિયાઈ કરતે હેં ઓર ડચ્છાકા દમન નહીં કરતે હ. ૧૧  
વાસ્તવમેં વે હી મિશ્રુ કહલાને યોગ્ય હેં જો સમિતિ-ગુપ્તિકે ધારક તથા  
મિષ્ઠામાત્રસે ઉપજીવી હેં, અચિત્ત ણપનીય ઉદ્ગમ આદિ દોષરહિત  
વિશુદ્ધ પ્રમાણોપેત મિષ્ઠા લેતે હેં ઓર પ્રાણ જાનેકા અવસર આ જાને  
પર મી પચન-પાચન આદિ નવ કોટિકી વિશુદ્ધતાકો લ્ખન્ડિત નહેં કરતે ।

અથવા સસારકે સમસ્ત શરીરધારિયોકો ક્ષોભિત કરનેવાલે જ્ઞાના-  
વરણીય આદિ આઠ કર્મોંકો ભેદનેવાલે મિશ્રુ કહલાતે હેં ।

આદિ વસ્તુત મિશ્રુ કહેવાઈ શકતા નથી, કારણ કે તેઓ ઉદ્ગમ ઉત્પદ ૧ ૧ ।  
દોષોથી દૂપિત અન્ન આદિ અગીકારે છે, સચિત્ત જળ લે છે, સચિત્ત ડફ-મૂળ  
આદિનું સેવન કરે છે, પચન-પાચનાદિ ક્રિયાઓ કરે છે અને ઇચ્છાનું દમન કરત  
નથી એથી કરીને વસ્તુત તેઓ જ મિશ્રુ કહેવાવા યોગ્ય છે કે જેઓ સમિતિ  
ગુપ્તિના ધારક તથા મિષ્ઠામાત્રથી ઉપજીવી છે, અચિત્ત, એપણીય, ઉદ્ગમાદિ-દોષથી  
રહિત, વિશુદ્ધ, પ્રમાણોપેત મિષ્ઠા લે છે, અને પ્રાણ જવાને અવસર આવે તો  
પણ પચન-પાચનાદિ નવ કોટિની વિશુદ્ધતાને ખરિત કરતા નથી

અથવા સમારના સર્વ શરીરધારીઓને ક્ષોભિત કરનારા જ્ઞાનાવરણીય આદ  
આઠ કર્મોને લેદનારા મિશ્રુ કહેવાય છે

निमित्तम्, तच्च तेन न विद्यते तेषां तथापि प्रभवेः, ऐहिककण्टकादिनिवृत्त्यर्थत्वात्, यशःकीर्त्यादिसम्पादनार्थत्वाच्च, नानामतेषां यन्तुतः समितिगुप्यादिपालकत्वं चिद्यते । अन्यथा—‘यात्रादिगण्डवटोऽह तावटेन न हनिष्यामि, यावन्न समालपापि तावद्द मृपात्यागी, यावत्मनिट्रोऽह तावत्तोर्यवती’—त्यागमिमाना अपि केचिद् व्रतधारित्वेन व्यस्रियेरन्, किन्तु तेषामान्तरिकेऽत्रायाः सततानुबन्धितया विद्यमानत्वाच्च व्रतित्वमस्ति ।

किञ्च भिक्षुम्मन्येषु शापायाम्बरधारिणु नैराशय भिक्षुशब्द आत्मसत्ता लभते,

होकर जो समिति-गुप्तिका पालन करते हैं वे ही भिक्षु कहलाते हैं । उनमें ऐसा नहीं पाया जाता । वे हिंसासे घबरेनेके लिए मार्ग देख कर गमन नहीं करते, किन्तु काँटे आदि लग जानेके भयसे मार्ग देखकर गमन करते हैं, और यश कीर्त्ति सम्पादन करनेके लिए मौन रखते हैं, इसलिए वे वास्तवमें समिति-गुप्तिके पालक नहीं हो सकते । यदि उन्हें समिति गुप्तिका पालक माना जाय तो वह मनुष्य भी व्रती कहलायगा, जो ऐसी प्रतिज्ञा करे कि—“मैं जब तक वेड़ीमें जकड़ा हुआ हूँ तब तक इसे नहीं मारूँगा” “जब तक न चोखूँ तब तक मृपावादका त्यागी हूँ” “जब तक सोया रहूँगा तब तक अचौर्य व्रतका पालन करूँगा” वास्तवमें ऐसे मनुष्य व्रती नहीं कहलाते हैं, क्योंकि उनकी आन्तरिक इच्छा पापोंसे निवृत्त नहीं हुई है ।

गेरुआ आदि वस्त्र धारण करनेवाले और अपनेको भिक्षु समझने

वेद्योः समिति गुप्तिनु पालन करे छे तेज्योऽत्र भिक्षु कडेवाय छे तेज्योऽभा येधु जेवाभा आवतु नथो तेज्योः हिंसाथी यथवाने भाटे मार्ग जेधने गमन करता नथी, परन्तु काटा वगेरे पागी जवाना लयथो मार्ग जेधने बाडे छे अने यश कीर्त्ति संपादन करवाने भाटे मौन राखे छे, तेथी तेज्योः वस्तुताज्ये समिति-गुप्तिना पालक नथी थध शकता जे तेभने समिति गुप्तिना पालक मानवाभा आवे तो ज्ये भावुस पणु प्रती उडेवाशे डे जे ज्येनी प्रतिज्ञा करे डे— “ज्या सुधी हुं जेरीथी ज धायलो छु त्यासुधी हुं तेने नछि मारूँ” “ज्या सुधी हुं न जेउ त्यासुधी मृपावाहने त्यागी छु” “ज्या सुधी सूर्य रडीश त्या सुधी अचौर्य व्रतक पालन करीश” वस्तुत ज्येवो भावुस प्रती नथी कडेवातो, करणु डे ज्येनी आतरिक इच्छा पापथी निवृत्त थध नथी

जेइया आदि वस्त्रो धारणु करनारा अने पोताने भिक्षु माननारा सन्यासी

रेकान्तस्थानस्थितोऽद्वितीयः, भावतो रागद्वेपरहितो वा, परिपद्रतः=परि= समन्ततः सीदन्ति=गच्छन्ति गत्वा सहता भवन्ति जना अस्यामिति परिपत्=सभा, ता गतः परिपद्रतः=साध्यादिसङ्घस्थित इत्यर्थः, सृप्तः=स्वा यायादिजनितश्रमाप- नोदार्थं रजनीमध्यमयामयुगलमात्र निद्रितः, जाग्रत्=इन्द्रियादिकरणरूपविषयज्ञान- योग्यावस्थां प्राप्त-निद्राविमुक्तो भवेत् । एवविधो भिक्षुर्वक्ष्यमाणरीत्या दुष्कृत्य न करोतीति प्रदर्शयते-‘से’इति, सः-भिक्षुःपृथिवीं=खनिसमुद्भूतमृत्तिकारूपाम्, भित्तिं= सरिचीरमृत्तिकाम्, शिला=विशालपापाणलक्षणाम्, लेष्टं=पिण्डात्मकमृत्खण्डम्, सरजस्कृ=सचित्तरजोऽवगुण्ठितम्, काय=शरीरम्, वस्त्र=चोलपट्टप्रमुख च, पात्रा- दीनामप्युलक्षणमेतत्, एतेषु अन्यतम किमपि वस्तु हस्तेन=करेण, पादेन=चरणेन, काष्ठेन=खदिरादिदारुखण्डेन, क्लिञ्चेन=वशादिकञ्चिकया, अद्भृत्या=करचरणा- वयवविशेषेण, शलाकया=लोहादिरचितया, शलाकाहस्तेन=पुञ्जीकृतशलाकाभिर्वा नाऽऽलिखेत्=सकृत् अल्प वा न सघर्षयेत्, न विलिखेत्=बहुशोऽविरत विशेषतो वा

स्थित और भावसे रागद्वेपरहित होनेसे एकाकी, अथवा साधुओंके सघमें स्थित, स्वाध्याय आदिसे उत्पन्न श्रमको दूर करनेके लिए रात्रिके बीचके दो प्रहरोंमें सोते हुए, तथा जागते हुए भिक्षु, आगे कहे हुए सावध व्यापार नहीं करते हैं ।

खानसे निकली हुई मृत्तिकारूप पृथ्वीपर, नदीके किनारेकी मिट्टी पर, पत्थरकी शिलापर, मिट्टीके ढेलेपर, सचित्त धूलीसे घूसर काय, चोलपट्ट आदि वस्त्र तथा पात्र पर, अर्थात् इनमेंसे किसीभी पदार्थपर हाथसे, पैरसे, काष्ठसे, वास आदिकी सटक (छड़ी-खापटी)से, अगुलीसे, लोहे आदिकी बनी हुई छडसे, अथवा बहुतसी छडों (सलाइयों)से, न स्वयं एकवार लकीर खींचे, न बार-बार लकीर खींचे अर्थात् इनको

रहित होवाने कारणे ऐकाकी अथवा साधुओंना सघमा स्थित, स्वाध्याय आदिही उत्पन्न थत श्रमने दूर करवाने भाटे रात्रिनी वस्त्रेना जे पहोारमा सूता तथा नगता भिक्षु, आगण कडेला सावध व्यापारने कन्ता नथी

आधुमाथी नीकणेली माटीरूप पृथ्वी पर, नदीना किनारानी माटी पर, पत्थरनी शिला पर, माटीना ढेक्ष पर, सचित्त धूणथी घूसर काय, चोलपट्टे आदि वस्त्र तथा पात्र पर अर्थात् ऐमाना ठोर्ष पण्य पदार्थ पर हाथथी, पैगथी, काष्ठथी, वास आदिनी अपाठथी, आगणीथी, लोहा आदिनी सणीथी अथवा अनेक सणीओथी न पोते ऐकवार रेष्मा होरे, न बारवार रेष्मा होरे, अर्थात्

मिथुनी=साध्वी । 'सजय०' इत्यादीनि मिथुविशेषणानि मिथुन्या अपि बोध्यानि उभयोः समानासारणीयान् ।

(१) पृथिवीकाययतता ।

सयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याग्यात पापकर्मा=सयत'-वर्तमानकालिकर्मवत्सा वयानुष्ठाननिवृत्तः, विरतः-अतीतकालिकपापाजुगुप्सापूर्वक, भविष्यति च सवरपूर्वकमुपरतो निवृत्त इत्यर्थः, अत एव प्रतिहत=वर्तमानकाले स्थित्य अनुभागत्वासेन नाशित, प्रत्याग्यात=पूर्वकृतातिचारनिद्रया भविष्यत्यकरणेन निराकृत पापकर्म=पापानुष्ठान येन स प्रतिहतप्रत्याग्यातपापकर्मा, सयतश्चासौ विरतश्च (विशेषणयोरपि परम्परविशेष्यविशेषणभावविवक्षया समासो गतप्रत्यागतादिभ्यः) सयतविरतश्चासौ प्रतिहतप्रत्याग्यातपापकर्मा चेति तयोक्तः, दिवा=दिवसे, रात्रौ=रजन्याम्, एकः=एकाकी-द्रव्यतो ध्यानादिहेतो

मिथुकी साध्वीको कहते हैं । सजय आदि विशेषण साध्वीके साथ भी समझना चाहिए क्योंकि साधु और साध्वीका आचार प्रायः समान है ।

(१) पृथिवीकाययतना ।

वर्तमान कालके सब प्रकारके सावद्य व्यापारसे निवृत्त होनेके कारण सयत, अतीतकालीन पापसे जुगुप्सा पूर्वक और भविष्यत्कालीन पापसे सवर-पूर्वक निवृत्त होनेसे विरत, सयत और विरत होनेके कारण वर्तमान कालमे स्थितिवन्ध और अनुभागवन्धको हास करके पापकर्मको नष्ट करनेवाले, दिनमे, रात्रिमे, द्रव्यसे ध्यान आदिके लिए एकान्तमे

मिथुनी साध्वीने कहे छे सजय आदि विशेषण साध्वीनी साथे पण सजयवानुं छे, कारणु के साधु अने साध्वीने आचार प्राय समान छे

(१) पृथिवीकाययतना

वर्तमानकालना सर्व प्रकारना सावद्य-व्यापारथी निवृत्त होवाने कारणे सयत, अतीतकालीन पापथी जुगुप्सापूर्वक अने भविष्यत्कालीन पापथी सवर पूर्वक निवृत्त होवाथी विरत, सयत अने विरत होवाने कारणे वर्तमान कालमा स्थितिवन्ध अने अनुभागवन्धना हास करीने पापकर्मने नष्ट करनारा, दिवसमा अने रात्रे, द्रव्यथी ध्यान आदिने भाटे एकान्तमा स्थित अने सावथी राग-द्वेष

मणोणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतंपि अन्नं न सम-  
णुजाणामि । तस्स भत्ते । पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं  
वोसिरामि ॥२॥१६॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा सयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्मा  
दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिपद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा स उदक वा  
अवश्याय वा हिम वा मिहिका वा करु वा हरतनु वा शुद्धोदक वा उदकाद्रि वा  
काय, उदकाद्रि वा वस्त्र, सस्निग्ध वा काय, सस्निग्ध वा वस्त्र नाऽऽपृशेन्न सस्पृशेन्नाऽऽ-  
पीडयेन्न प्रपीडयेन्नास्फोटयेन्न प्रस्फोटयेन्नातापयेन्न प्रतापयेत्, अन्येन नाऽऽमर्शयेन्न  
सस्पर्शयेन्नाऽऽपीडयेन्न प्रपीडयेन्नाऽऽस्फोटयेन्न प्रस्फोटयेन्नाऽऽतापयेन्न प्रतापयेत्,  
अन्यमापृशन्त वा, सस्पृशन्त वा, आपीडयन्त वा, प्रपीडयन्त वा, आस्फोटयन्त वा,  
प्रस्फोटयन्त वा, आतापयन्त वा, प्रतापयन्त वा न समनुजानीयात् । यावज्जीवया  
त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि, न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्य न  
समनुजानामि । तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मान  
व्युत्सृजामि ॥२॥१६॥

(२) अपकाययतना.

सान्वयार्थः—सजयविरयपडिह्यपच्चक्खायपावकम्मै=वर्तमानकालीन  
सावय व्यापारोसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावय व्यापारोसे रहित, वर्तमान  
कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी  
निन्दा करके सावय व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्षु वा=साधु  
भिक्षुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें एगओ  
वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा सधमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे  
वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहा से=वह-उदग वा=जलको हिम वा=हिमको  
महिय वा=कुहरे-धूर-को करग वा=ओलेको हरतणुग वा=घास पर बूद-बूद  
पड़ा हुआ जलविशेषको सुद्धोदग वा=आकाशसे गिरे हुए निमल जलको (और)  
उदउल्ल वा=जलसे भीने हुए-गीले काय=शरीरको उदउल्ल वा वत्थ=जलसे भीगे  
हुए वस्त्रको ससिणिद्ध वा काय=कुड-कुड गीले शरीरको ससिणिद्ध वा वत्थ=  
कुड कुड गीले वस्त्रको न आमुसिज्जा=जराभी स्पर्श न करे, न सफुसिज्जा=  
अधिक स्पर्श न करे, न आवीलज्जा=पीडित न करे, न पवीलिज्जा=अधिक  
पीडित न करे, न अक्खोडिज्जा=स्फोटन न करे, न पक्खोडिज्जा=प्रस्फोटन  
न करे, न आयाविज्जा=तपावे नहीं, न पयाविज्जा=अधिक तपावे नहीं, अष्ट=

न घटयेत् न चालयेत्, न भिन्नात् न विदारयेत् न विदीर्णतां नयेत्, तथाऽन्येन  
 (मृत्रे द्यार्यत्वाद्धितीया) म्रयतिरिक्तजनेन नाऽऽलेपयेत्, न विलेखयेत्, न  
 घटयेत् न मेदयेत्, आम्निगन्त वा त्रिग्वन्तं वा घट्यन्त वा भिदन्त वा अन्य-  
 व्यक्त्यन्तर न समनुजानीयात् नानुमन्येत, इत्येव भगवदुपदिष्टाचारपद्धतिसर-  
 क्षणपरायणान्तःकरणोऽह यावन्नीयया त्रिपिर त्रिपिधेनेत्यादि पूर्ववत् । १॥ १५॥

सम्प्रति क्रममाप्तमपकायपतनामाह—'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

मूलम्—से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय पच्च-  
 क्खायपावकम्मिे दिया वाराओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते  
 वा जागरमाणे वा से उदग वा ओसं वा हिम वा महियं वा करग वा  
 हरतणुगं वा सुद्धोदगं वा उदउद्ध वा कायं उदउद्ध वा वत्थ ससिणिद्ध  
 वा कायं ससिणिद्ध वा वत्थ न आमुसिजा न सफुसिजा न  
 आविलिजा न पविलिजा न अक्खोडिजा, न पक्खोडिजा,  
 न आयाविजा, न पयाविजा, अन्न आमुसत वा, संपुसत वा  
 आवीलतं वा पवीलत वा, अक्खोडत वा, पक्खोडत वा, आयावत  
 वा, पयावतं वा न समणुजाणिजा । जावज्जोवाए तिविह तिविहेण

न धिसे तथा न हिलावे, न विदारे, न दूसरेसे ये सत्र क्रियाएँ करावे  
 और न ये सब क्रियाएँ करते हुए अन्यको भला जाने ।

हे गुरुमहाराज ! इस प्रकार सर्वज्ञ भगवान् द्वारा उपदेश किए हुए  
 आचारकी रक्षा करनेमें मनको तत्पर रखनेवाला मैं तीन कारण तीन  
 योगसे यह सब कार्य नहीं करूँगा ॥ २ ॥ १५ ॥

अब अपकायकी यतनाका प्रतिपादन करते हैं—'से भिक्खू०' इत्यादि ।

ओने न धसे तथा न हिलावे, न विदारे, न पीणओ पासे ओ णवी क्रियाओ  
 कराये अने न ओ णधी क्रियाओ करतारा अन्यने लले। वल्ले

हे शुक महाराज ! ओ प्रकारे सर्वज्ञ भगवाने उपदेशेला आचारनी रक्षा  
 करवामा भतने तत्पर रा मनशि ओवे हे त्रपु उरथु त्रथु योगथी ओ णधा धयं  
 करीश नडि (१) (१५)

हुवे अपकायनी यतनानु प्रतिपादन करे छे—से भिक्खू इत्यादि

शुद्धोदकम्=आकाशात्पतित स्वभावनर्मिल सलिलम् । तथा उदकाद्रै=जलक्लिन्न  
 काय वस्त्र च । सस्निग्धम्=स्निग्धमिति भावक्तान्तम्, स्नेहः=स्निग्धत्वमिति तद-  
 र्थस्तेन सह वर्तमान तत्=विन्दुरहितमीपदारै काय वस्त्र च, स्वय न आमृशेत्=आ=  
 ईपत् 'आडीपदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे' इति कोशात्, मृशेत्=स्पृशेत्, न  
 स्पर्शयुक्त कुर्यादित्यर्थः । न सस्पृशेत्=न स=प्ररूपेण स्पृशेत् । नापीडयेत्, न प्रपीडि-  
 येत् । नाऽऽस्फोटयेत्, न प्रस्फोटयेत् । नाऽऽत्तापयेत्, न प्रतापयेत् । शेष सुगमम् ।  
 एषु ('आमृशेत् सस्पृशेत्' इत्यादिषु) सर्वत्र धात्वर्थाऽविशेषेऽप्युपसर्ग(आ. स. प्र.)-  
 कृतवाच्यवैलक्षण्यान्न पौनरुक्त्यदोषावसर इति बोध्यम् ॥२॥१६॥

सम्प्रति तेजस्काययतनामाह-'से भिक्खू वा' इत्यादि ।

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय-पच्च-  
 क्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा  
 सुत्ते वा जागरमाणे वा, से अगणि वा इगाल वा मुम्मुर वा अच्चि वा  
 जाल वा अलाय वा सुद्धागणि वा उक्क वा न उजेज्जा न घट्टेज्जा  
 न भिंदेज्जा न उज्जालेज्जा न पज्जालेज्जा न निद्वावेज्जा, अन्न

आदिके अकुरोपर जमनेवाले जलविन्दु), वर्षाका निर्मल जल, इन सयको,  
 तथा जलसे बहुत गीला या थोडा गीला शरीर या वस्त्र, इन सयको  
 स्वय एक बार स्पर्श न करे, बार-बार स्पर्श न करे, वस्त्रको एकबार न  
 निचोडे, बार-बार न निचोडे, न एकबार झटके, न बार-बार झटके, न  
 एकबार धूपमें सुखावे, न बार-बार सुखावे, न ये सब क्रियाएँ दूसरेसे  
 करावे, न करते हुएको भला जाने, शेष सुगम है ॥२॥१६॥

अग्निकायकी यतना कहते हैं-'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

जण ये सवने, तथा जणथी णहु लीलु अथवा थोडु लीलु शरीर या वस्त्र,  
 ये सर्वने स्वय ऐकवार स्पर्श नहि कइ, बारबार स्पर्श नहि कइ, वस्त्रने  
 ऐकवार नहि नीथोवु, बारबार नहि नीथोवु, ऐकवार नहि आटकु, बारबार  
 नहि आटकु, ऐकवार तडगभा नहि सुकावु, बारबार नहि सुकावु, नहि ये णधी  
 क्रियाओ णीज्जा पासे उरावु, अने करनारने नहि लवो णाणु शेष लाग  
 सहेवो छे (२) (१६)

अग्निकायनी यतना कहे छे-से भिक्खू वा० इत्यादि



दूसरेसे, न आमुसाविज्जा=मरामी स्पर्श न करावे, न सफुमाविज्जा=भक्ति स्पर्श न करावे, न आगीलाविज्जा=पीडित न करावे, न पत्रीलाविज्जा=अधिक पीडित न करावे, न अग्गोटाविज्जा=स्फोटन न करावे, न पक्को टाविज्जा=प्रस्फोटन न करावे, न आयाविज्जा=तपयावे नहीं, न पयाविज्जा=अधिक तपयावे नहीं, आमुमन चा=मरामी स्पर्श करनेवाले सफुसतं वा=अधिक स्पर्श करनेवाले आगीलंत चा=पीडित करनेवाले पत्रीलत वा=अधिक पीडित करनेवाले अग्गोटत चा=स्फोटन करनेवाले पक्कोडंत वा=प्रस्फोटन करनेवाले आयावत चा=तपानेवाले पयावतं वा=अधिक तपानेवाले अन्न=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न रामझे । जावज्जीवाण=जीवनपर्यन्त ( इसको ) निविह=कृत काति अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेण=तीन प्रकारके मणेण=मनसे वायाण=वचनसे काण्ण=कायसे न करेमि=न करूंगा, न कारवेमि=न कराऊंगा, करतपि=करते हुएभी अन्न=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूंगा । भते !=हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाण=दण्ड-सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥२॥१६॥

### (२) अप्काययतना ।

टीका—स भिक्षुर्वेत्यादि पूर्ववत् । उदक=प्रसङ्गात्कूपादिजलम् भूगर्भोद्भूत स्रोतोजलमित्यर्थः, अवश्याय=मेघमन्तरेण रात्रौ-पतित सूक्ष्मतुपाररूपमपकायम् । हिम=शीतत्वां शीताधिक्येन घनीभूतमपकायम्-‘वर्ष’इति लोके प्रसिद्धम् । मिहिका=हेमन्त-शिशिरयोः कदाचित्तर सान्द्रतया ध्रुमवत्प्रतिभासमानस्वरूपा कुञ्जटिकाम् ‘धुंअर’ इति लोकप्रसिद्धाम् । करक=किरति=क्षरति पानीयमिति करक=वर्षोपलम् । हरतनुम्=भूमिमुद्भिद्य तृणाङ्कुराद्यपरि विन्दुरूपेण स्थितमपकायविशेषम् ।

### (२) अप्काययतना ।

भिक्षु और भिक्षुकी आदि पदोंका-अर्थ पहलेकी भाँति समझना चाहिए । कुण्का पानी अर्थात् भूमिसे सोता (झरना)से निकलनेवाला जल, ओस, पाला, कुहरा (धुंअर), ओला (गडा), हरतनु (भूमिको भेद कर गेहूँ

### (२) अप्काययतना

भिक्षु अने भिक्षुकी आदि शब्दोंको अर्थ पहलेकी भाँति समझना चाहिए । कुण्का पानी अर्थात् भूमिसे सोता (झरना)से निकलनेवाला जल, ओस, पाला, कुहरा (धुंअर), ओला (गडा), हरतनु (भूमिको भेद कर गेहूँ

न घट्टेज्जा=चलावे, नहीं, न भिंदेज्जा= भेदे नहीं, न उज्जालेज्जा=थोडाभी जलावे नहीं, न पज्जालेज्जा=प्रज्वलित करे नहीं, न निव्वावेज्जा=बुझावे नहीं, अन्न=दूसरेसे न उजावेज्जा=बढ़ावे नहीं, न घटावेज्जा=चलवावे नहीं, न भिंदावेज्जा=भिंदावे नहीं, न उज्जालावेज्जा=न जलवावे, न पज्जालावेज्जा=न प्रज्वलित करावे, न निव्वावेज्जा=न बुझावे, उजत वा= बढ़ानेवाले घट्टत वा=चलानेवाले भिंदत वा=भेदनेवाले उज्जालत वा= जलानेवाले पज्जालत वा=प्रज्वलित करनेवाले निव्वावत वा=बुझानेवाले अन्न=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न समझे । जावज्जीवाए=जीवन-पर्यन्त ( इसको ) तिविह=कृत-कारित-अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेण=तीन प्रकारके मणेण=मनसे वायाए=वचनसे काएण=कायसे न करेमि=न करूंगा, न कारवेमि=न कराऊंगा, करतपि= करते हुएभी अन्न=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूंगा । भते !=हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाण=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको बोसिरामि=त्यागता हूँ ॥३॥१७॥

टीका-अग्नि=वह्निम्, अद्धार=निर्धुमज्वालज्वलदिन्धनम्, युग्धुर=प्रविरलस्फुलिङ्ग-समिश्रभस्मरूप तुपानल वा, 'युग्धुरस्तु तुपानल.' इति वैजयन्तीकोशात्, अजालिण्डिकाग्निं वा, अर्चिं=मूलाग्निविच्छिन्न ज्वालाम्, ज्वाला=दह्यमानवृणादिस-म्यद्वाऽऽमूलोद्-व्यवसारितेजोराशिम्, अलात=ज्वलदग्रभाग काष्ठम्, शुद्धाग्निम्=अयःपिण्डानुसवद्द वितुदादिरूप वा, उल्का=मूलवह्नेर्विच्छिन्न २ समन्तात्पसर्पद-ग्निरुणात्मिकाम्, (चिनगारी, तडगिया, इति भाषा) स्वयं न उत्सिञ्चेत्=न तने-

(३) तेजस्कायतना ।

अग्नि, अगारा, गरम राख) चकरीकी लेंडीकी आग, मूलसे टूटी हुई ज्वाला, मूलसे अविच्छिन्न ज्वाला, लुआटा (जलती हुई लकड़ी), गरम लोहेके गोलेकी या विजलीकी अग्नि, अथवा चिनगारी

(३) तेजस्कायतना

अग्नि, अगारा, गरम राख, चकरीकी लेंडीकी आग, मूलकी टूटी लुआटा, मूलकी अविच्छिन्न ज्वाला, लुआटा लकड़ी, गरम लोखणना गोणाने अथवा चिनगारी अग्नि, अथवा चिबुगारी आदिमा पोते धधन (अणतद्यु) नडि

न उंजावेज्जा न घट्टावेज्जा न भिंदावेज्जा, न उज्जालावेज्जा न पज्जालावेज्जा न निद्धावेज्जा, अन्नं उंजंतं वा घट्टत वा भिंदंतं वा उज्जालत्त वा पज्जालंतं वा निद्धावत्त वा न समणुजाणिज्जा। जावज्जीयाए तिविह तिविहेण मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥३॥१७॥

छाया-स मिश्रुरा मिश्रुकी या समयरितमतिदृढप्रत्याख्यातपापमर्मां दिना वा रात्रौ या एरुको या परिपद्रतो या घृप्तो या जाग्रदा, सः अग्निं वा अहार वा मुर्मुर वा अर्धियां ज्वाला या अलात वा शृद्वाग्निं वा उल्का वा नोत्सिञ्चेत् न घट्टयेत् न भिन्धान्नोज्ज्वालयेन्न प्रज्ज्वालयेन्न निर्वापयेद्, अन्येन नोत्सेवयेन्न घट्टयेन्न भेदयेन्नोज्ज्वालयेन्न प्रज्ज्वालयेन्न निर्वापयेद्, अन्यमुत्सिञ्चन्त वा घट्टयत वा भिन्दन्त या उज्ज्वालयन्त या प्रज्ज्वालयन्त वा निर्वापयन्त वा न समनुजानी यात् । यावज्जीवया त्रिषिध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि । तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं च्युत्सृजामि ॥३॥१७॥

(३) तेजस्काययतना.

सान्न्वयार्थः—सजयविरयपडिह्यपचक्त्वायपावकम्मे=वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारोसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोसे रहित, वर्त्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी, से=वह पूर्वोक्त मिक्खु वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी, दिया वा=दिनमें रात्रो वा=अथवा रात्रिमें, एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा सघम स्थित, सुत्ते वा=सेया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहा से=वह अगणिं वा=अग्निको इगाल वा=अगारेको मुम्मुर वा=मुर्मुर-भूभूदर (तुपाग्नि)को अच्चि वा=ज्योति मूलाग्निसे विच्छिन्न ज्वालाको, जाल वा=मूलाग्निसे अविच्छिन्न जलती हुई ज्वालाको, अलाय वा=जिसका अग्रभाग जल रहा हो ऐसे काठको, सुद्धाग्णि वा=शुद्ध अग्नि लोहपिण्डमें सबद्ध अग्नि अथवा विजलीरूप अग्निको, उक्क वा=चिनगारियोंको न उजेज्जा=इधन डालकर बढ़ावे नहीं,

ननेन वा तालवृन्तेन वा पत्रेण वा पत्रभङ्गेन वा शाखया वा शाखाभङ्गेन वा पिङ्गुनेन वा पिङ्गुनहस्तेन वा चैलेन वा चैलकर्णेन वा हस्तेन वा मुखेन वा, आत्मनो वा काय बाह्य वाऽपि पुद्गल न फूत्कुर्यात्, न वीजयेत्, अन्येन न फूत्कारयेत् वीजयेद्, अन्य फूत्कुर्वन्त वा वीजयन्त वा न समनुजानीयात्। यावज्जीवया त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनु जानामि। तस्य भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गह्वे आत्मानव्युत्स्रजामि ॥४॥१८॥

(४) वायुकाययतना.

सान्त्वयार्थः—सजयविरयपटिह्यपचरगायपावकम्भे=वर्तमानकालीन सावय व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावय व्यापारोंसे रहित, वर्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले क्रिये एष अति-चारोंकी निन्दा करके सावय व्यापारके त्यागी से=यह पूर्वोक्त भिक्वृत् वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा सत्रमें रियत मुत्ते वा=सोया एषा जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, यहाँ से=यह निष्पन्न वा=चामरसे, विहृणेणवा=पखेसे, तालिअटेण वा=ताडके पखेसे, पत्तेण वा=पत्तेसे, पत्तभगेण वा=रहुतसेपत्तोंसे, साहाण वा=शाखा टाली-से, साहा संगेण वा=शाखाके खण्डसे, पिङ्गणेण वा=मोरपीलीसे, पिङ्गणहत्थेण वा=मोरपीण्डियोंके समूहसे, चैलेण वा=रुपडेसे, चैलरुणेणवा=रुपडेके तैर-पटे से, हत्थेण वा=हाथसे, मुहेणवा=मुखसे, अप्पणो वा=अपने काय=शरीरको, वा=अथवा बाहिर वि पुग्गल=गहरी पुद्गलोंको भी न फुमेजा=फूकन मारे, न वीजजाण चँवर आदिसे हवा न करे, अन्न=दूसरेसे न फुमायेजा=फूकन माराये, न वीआवेज्जा=हवा न करावे, फुमन्त वा=फूकनेवाले वीअत वा=हवा करनेवाले अन्न=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भय न समझे। जावज्जीवयाण=जीवापर्यन्त (इसको) त्रिविह=कृत करित अनुमोदनाग्यतीन करणमे (तवा) त्रिविह्णेण=तीन प्रकारके मणेण=मनसे वायाण=वचनसे काण्ण=कायमे न करेमि=न करेंगा, न कारचेमि=न कराऊंगा, कर्तंपि=करते हुए भी अन्न=दूसरेको न समणुजाणांमि=भला नहीं समझेंगा। भते!=हे भगवन्! तस्स=उम दण्डम पत्तिक्रामामि=पृथक् होता हूँ, निन्दामि=आत्ममात्मीसे निन्दा करता हूँ, व्युत्स्रजामि=गर्हा करता हूँ, अप्पाण=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माका त्यागता हूँ ॥४॥१८॥

न्यनादिरु प्रसिपेत्, न घट्टयेत्=न सञ्चालयेत्, न मिन्यात्=स्पष्टेष्टकृत्वाडादिना  
 न स्फोटयेत्, न उज्ज्वालयेत्=ताल्लृन्तादिना मरुत्प या न मापयेत् न कर्षयेदि-  
 त्यर्थः, न मञ्जालयेत्=मतत यद्गुणो या न मज्जन्ति कुर्यान्, न निर्वापयेत्=न  
 मिन्यापयेत् न निर्वाण नयेदित्यर्थः, अन्येन न उन्से रयेदित्यान्ि सर्वायुगमम् ।३।१७।

वायुकायपतनामाह—‘से भिक्खू वा०’ इत्यादि ।

मूलम्—से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय-पञ्चक्खाय-  
 पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते  
 जागरमाणेवा, से सिएण वा विहुणेण वा तालिअंटेण वा पत्तेण वा  
 पत्तभगेण वा साहाए वा साहाभगेण वा पिहुणेण वा पिहुणहत्थेण  
 वा चेलेण वा चेलकन्नेण वा हत्थेण वा मुहेण वा अप्पणो वा काय  
 वाहिर वावि पुग्गलं न फुमेज्जा न वीऐज्जा, अन्न न फुमावेज्जा  
 न वीआवेज्जा, अन्न फुमत वा वीअत वा न समणुजाणिज्जा ।  
 जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि,  
 न कारवेमि, करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते । पडिक्कामामि  
 निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥४॥१८॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा सयतविरतप्रतिहतप्रत्यारयातपापकर्मा दिवा  
 वा रात्रौ वा एकको वा परिपद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स सितेन वा विधू-  
 आदिमे स्वयं इन्धन न डाले, न सचालन करे (न सघटा करे), न दड  
 ईट आदिसे उसे भेदे, न परवा आदिसे एकवार प्रज्वलित करे,  
 न बार-बार प्रज्वलित करे, न बुझावे । न ये सब क्रियाएँ दूसरेसे करावे,  
 न करते हुएकी अनुमोदना करे, इत्यादि सब पूर्ववत् ॥३॥१७॥

वायुकायकी यतना कहते हैं—‘से भिक्खू वा०’ इत्यादि ।

नाणे, नडि सथावन करे (नडि सघटन करे), नडि दड डे छट आदिथी तेने  
 लेटे, नडि पभा वगेरेथी तेने ओकवार प्रज्वलित करे, नडि बारबार प्रज्वलित  
 करे, नडि भुञ्जवे, नडि ओ गधी क्रियाओ पीण पासे करावे, करनारणी नडि  
 अनुमोदना करे इत्यादि पूर्ववत् (३) (१७)

वायुकायकी यतना कहे छे—से भिक्खू वा० इत्यादि

मूल्म-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-  
पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिस्तागओ वा सुत्ते वा  
जागरमाणे वा, से वीएसु वा वीयपडट्टेसु वा रूढेसु वा रूढपडट्टेसु  
वा जाएसु वा जायपडट्टेसु वा हरिएसु वा हरियपडट्टेसु वा छिन्नेसु  
वा छिन्नपडट्टेसु वा सचित्तेसु वा सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा न  
गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीडज्जा न तुयट्टिज्जा, अन्न न गच्छाविज्जा  
न चिट्ठाविज्जा न निसीयाविज्जा न तुयट्ठाविज्जा, अन्न गच्छत वा  
चिट्ठतं वा निसीयत वा तुयट्ठतं वा न समणुजाणिज्जा । जावजीवाए  
तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि  
करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि  
गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥ ५ ॥ १९ ॥

छाया—सभिक्षुर्वा भिक्षुकी वा सयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मां दिवा वा  
रात्रौ वा एरुको वा परिपङ्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स जीजेषु वा जीजप्रतिष्ठि-  
तेषु वा रूढेषु वा रूढप्रतिष्ठितेषु वा जातेषु वा जातप्रतिष्ठितेषु वा हरितेषु वा  
हरितप्रतिष्ठितेषु वा छिन्नेषु वा छिन्नप्रतिष्ठितेषु वा सचित्तेषु वा सचित्तकोल-  
प्रतिनिष्ठितेषु वा न गच्छेन्नतिष्ठेन्न निषीदेन्न त्वग्गर्त्तयेत्, अन्य न गमयेन्न स्था-  
पयेन्न निपादयेन्न त्वग्गर्त्तयेत्, अन्य गच्छन्त वा तिष्ठन्त वा निषीदन्त वा त्वग्ग-  
र्त्तयन्त वा न समनुजानीयात् । यावज्जीवया त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन  
न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमन्यन्य न समनुजानामि । तस्य भदन्त ! प्रतिक्रामामि  
निन्दामि गर्हे आत्मान व्युत्सृजामि ॥ ५ ॥ १९ ॥

(५) वनस्पतिकाययतना.

सान्धयार्थ —सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्तमानकालीन  
साधय व्यापारोसे रहित, भूत भविष्यत्कालीन साधय व्यापारोसे रहित, वर्तमान  
कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके, तथा पहले किये हुए  
अतिचारोकी निन्दा करके साधय व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू  
वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनेमें, राओ वा=अथवा

## (४) वायुकाययतना ।

टीका—सितेन=चामरेण श्वेतवर्णगुणरूपेनोपचारात्, त्रिघ्ननेन=वीजनकेन, तालघृन्तेन=ताले=करतले=घृन्त=वन्यनमस्येति, तालस्येव घृन्तमस्येति, ताव्यते=फरादिनाऽऽन्यत इति तालम्, उमयोरेकत्वम्भरणात्, तादृश घृन्तं मस्येति वा तालघृन्त=तालपत्रादिरचित व्यजन तेन, उपलक्षणमिदं निगुह्यजननादीनामपि, पत्रेण=कमलिनीदलादिना, पत्रमत्रेण=दलशकलेन, शाखया=वृक्षभुजया, शाखामत्रेण=तदेकदेशेन, पिहूनेन=मर्दिगर्हेण (मयूरपिच्छेन) पिहूनरस्तेन=पुञ्जीकृतमयूरपिच्छेन, चैलेन=वक्षेण, चैलरुणेन=अञ्जलेन (वस्त्रमान्तेन) हस्तेन=करणे, मुखेन=वदनेन, आत्मनः=स्वस्य फाय=शरीरं प्रायमपि पुद्गलम्=उष्णद्रुग्धादिकं वा स्वयं न फूत्कुर्यात्=न मुखेन धमेत्, न वीजयेत्=चामरादिना वातं न सञ्चालयेत्, अन्येन वा न फूत्कारयेत्, इत्याग्रन्यत्सुगोधम् ॥४॥१८॥

वनस्पतिकाययतनामाह—'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

## (४) वायुकाययतना ।

चाँवरसे, पखेसे, ताड़के घने हुए पखेसे अथवा अन्य बिजली आदिके किसी प्रकारके पखेसे, कमल आदिके पत्तेसे, पत्तेके टुकड़ेसे, वृक्षकी शाखासे, शाखाके खण्डसे, मयूरके पिच्छसे, मयूरके बहुतसे पिच्छोंसे, वस्त्रसे, वस्त्रके पहे (छोर)से, हाथसे, मुखसे, अपने शरीरको तथा अन्य गरम दूध आदि पुद्गलोंको न स्वयं फूँके, न चाँवर आदिसे बीजे वायुका सचालन करे, न दूसरेसे फूँकावे, न बीजावे, न फूँकते हुए तथा बीजते हुए अन्यको भला जाने, इत्यादि सुगम ही है ॥ ४ ॥ १८ ॥

वनस्पतिकायकी यतना कहते हैं—'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

## (४) वायुकाययतना.

आमरथी, पभाथी, ताडना जनावेला पभाथी, अथवा अन्य विजली आदिना कौड प्रकारना पभाथी, कमल आदिना पाहडाथी, पाहडाना टुकडाथी, वृक्षनी शाभाथी, शाभाना थडथी, मयूरना पिच्छथी, मयूरना अनेक पीछाथी, वस्त्रथी, वस्त्रना छेडाथी, छाथथी, सुभथी, पोताना शरीरने, तथा पीठ गरम दूध आदि पुद्गलोंने नहि स्वयं कूँके, नहि आमर आदिथी बीजे-वायुसु सचालन करे नहि पीठ पासे कुँकावे, के कुँकनार तथा बीजनार अन्यने भवे जाते इत्यादि सरल छे

(४) (१८)

वनस्पतिकायकी यतना कहे छे—से भिक्खू वा० इत्यादि

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-  
पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा  
जागरमाणे वा, से वीएसु वा वीयपइट्टेसु वा रूढेसु वा रूढपइट्टेसु  
वा जाएसु वा जायपइट्टेसु वा हरिएसु वा हरियपइट्टेसु वा छिन्नेसु  
वा छिन्नपइट्टेसु वा सच्चित्तेसु वा सच्चित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा न  
गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीइज्जा न तुयट्टिज्जा, अन्न न गच्छाविज्जा  
न चिट्ठाविज्जा न निसीयाविज्जा न तुयट्ठाविज्जा, अन्न गच्छत वा  
चिट्ठतं वा निसीयत वा तुयट्ठतं वा न समणुजाणिज्जा । जावज्जीवाए  
तिविह तिविहेणं मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि  
करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निदामि  
गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥ ५ ॥ १९ ॥

छाया—सभिक्षुर्मा भिक्षुकी वा सयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा  
रात्रौ वा एरुको वा परिपद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स गीजेषु वा गीजप्रतिष्ठि-  
तेषु वा रूढेषु वा रूढप्रतिष्ठितेषु वा जातेषु वा जातप्रतिष्ठितेषु वा हरितेषु वा  
हरितप्रतिष्ठितेषु वा छिन्नेषु वा छिन्नप्रतिष्ठितेषु वा सच्चित्तेषु वा सच्चित्तकोल-  
प्रतिनिश्चितेषु वा न गच्छेन्नतिष्ठेन्न निपीदेन्न त्वग्वर्त्तयेत्, अन्य न गमयेन्न स्था-  
पयेन्न निपादयेन्न त्वग्वर्त्तयेत्, अन्य गच्छन्त वा तिष्ठन्त वा निपीदन्त वा त्वग्व-  
र्त्तयन्त वा न समनुजानीयात् । यावज्जीवया त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन  
न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमायन्य न समनुजानामि । तस्य भदन्त ! प्रतिक्रामामि  
निन्दामि गर्हे आत्मान व्युत्सृजामि ॥ ५ ॥ १९ ॥

(५) वनस्पतिकाययतना

सान्वयार्थ —सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्त्तमानकालीन  
सावत्र व्यापारोसे रहित, भूत भविष्यत्कालीन सावत्र व्यापारोसे रहित, वर्त्तमान  
कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके, तथा पहले किये हुए  
अतिचारोंकी निन्दा करके सावत्र व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू  
वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनेमें, राओ वा=अथवा



रात्रिमें, एगओ चा=अकेरा परिमागओ चा=अथरा सगमें स्थित सुत्ते चा=सोया हुआ जागरमाणे चा=अथरा जागता हुआ रहे, वहाँ से=वह धीणसु चा=शालि आदि बीजोंपर, धीयपइहेसु चा=बीजोंपर रखे हुए शयन आसन आदि पर, रुढेसु चा=अदुरित उनस्पति पर, रुढपइहेसु चा=अदुरित वनस्पति पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, जाणसु चा=पत्ते आनेकी अवस्थावाली उनस्पति पर, जायपइहेसु चा=पत्ते आनेकी अवस्थावाली वनस्पति पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, हरिणसु चा=हरित पर, हरिय-पइहेसु चा=हरित पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, छिन्नेसु चा=कटे हुए हरित पर छिन्नपइहेसु चा=कटे हुए हरित पर रखे हुए आसन आदि पर, सच्चित्तेसु चा=फिर अन्य सचित्त अण्डा आदि सहित वनस्पति पर, सच्चित्त-कोलपडिनिस्सिएसु चा=धुने हुए-सडे काठ पर न गच्छेज्जा=गमन न करे, न चिहेज्जा=न खड़ा होवे न निसीइज्जा=न बैठे, न तुअट्टिज्जा= न सोवे, अन्न=दूसरेको न गच्छावेज्जा=न चलावे न चिट्ठावेज्जा=न खड़ा करे न निसीयावेज्जा=न बैठावे, न तुअट्टाविज्जा=न मुलावे, गच्छत वा=चलते हुए चिद्वत वा=खडे होते हुए निसीयत वा=बैठते हुए तुयदत वा=सोते हुए अन्न=दूसरेको न समणुजाणेज्जा=भला न जाने । जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त ( इसको ) तिविह=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे ( तथा ) तिविहेण=तीन प्रकारके मणेण=मनसे वायाए=वचनसे काएण=कायासे न करेमि=न करूंगा, न कारवेमि=न कराऊंगा, करतपि= करते हुएभी अन्न=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूंगा । भते ! = हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि= आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाण=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥५॥१९॥

(५) वनस्पतिकाययतना

टीका—बीजेषु=शाल्यादिषु, बीजप्रतिष्ठितेषु=बीजोपरिस्थितेषु शयनाऽऽस-नादिषु, एगमग्रेऽपि प्रतिष्ठितपदव्याख्या मर्या, रुढेषु=अदुरितेषु, जातेषु=प्ररो

(५) वनस्पतिकाययतना ।

शालि आदि बीजों पर, बीजों पर रखे हुए शय्या आसन आदि पर, अकुरों

(५) वनस्पतिकाययतना

जागर आदि धीजे पर, धीजे पर भूकेला शय्या पर,

दृणाऽनन्तरकालिकायस्था सम्प्राप्तेषु पत्रितेऽप्यन्यर्थः, हरितेषु=कीरमयूरपक्षसच्छा-  
यता गतेषु, उन्नेषु=कुठारादिना सञ्चितं पृथक्कृतेषु आर्द्रेषु, सचित्तेषु=अन्येष्वपि  
सजीवाण्डादिषु, सचित्तकोलप्रतिनिश्रितेषु=सचित्तैः=सचेतनैः, कोलैः=घुणैः प्रति-  
निश्रितेषु=आश्रितेषु जीवद्घुणयुक्तकाष्ठादिष्वित्यर्थः, न गच्छेत्, न तिष्ठेत्,  
न निपीदेत्=नोपशिशेत्, न त्वग्वर्त्तयेत्=वर्त्तनं वर्त्तः=परिवर्त्तनम् (भावे घञ्)  
त्वचः=त्वग्निद्रियस्य शरीरस्येत्यर्थात् वर्त्तः त्वग्वर्त्तः=वामपार्श्वतः परावृत्त्य दक्षि-  
णपार्श्वेन, दक्षिणपार्श्वतः परावृत्त्य वामपार्श्वेन वा स्वपनम्, त्वग्वर्त्तं करोति त्वग्व-  
र्त्तयति, (त्वग्वर्त्तशब्दात् 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचि टिलोपे धातुत्वाल्लडादयः)  
तस्य विधौ त्वग्वर्त्तयेत्=मुप्यादित्यर्थः ॥५॥१९॥

अथ व्रसकाययतनामाह-'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

पर अकुरोपर रक्खे हुए शयन आदि पर, अकुर अवस्थाके पश्चात् पत्रित  
अवस्थाको प्राप्त वनस्पतिपर, अथवा उसपर रक्खे हुए शयन आदिपर,  
कटी हुई वनस्पतिपर, हरी वनस्पतिपर, तथा इनके सिवाय सजीव अडा  
आदिपर, घुने (सुले) हुए काष्ठ आदिपर न स्वयं गमन करे, न खडा  
होवे, न बैठे, तथा वाँयाँ पसवाडा बदलकर दाहिने पसवाडेसे और न  
दाहिना पसवाडा बदलकर बायें पसवाडेसे सोवे अर्थात् पसवाडा न  
बदले, ये सब क्रियाएँ दूसरेसे भी न करावे, न करते हुएको भला जाने ।  
इसलिए तीन करण तीन योगसे इनका त्याग करता हूँ, इत्यादि  
व्याख्यान पूर्ववत् ॥ ५ ॥ १९ ॥

अथ व्रसकायकी यतना कहते हैं-'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

अकुरो पर, अकुरो उपर भूडेला शयनादि पर, अकुर अवस्था पछी पत्रित  
अवस्थाने प्राप्त थयेली वनस्पति पर, अथवा ते पर भूडेला शयनादि पर, कपेदी  
वनस्पति पर, लीली वनस्पति पर तथा ये उपरात सञ्चित घडा आदि पर, सणेला  
काष्ठ आदि पर नहिं हुं स्वयं गमन करे, नहिं उबो रहुं, नहिं भेसुं, तथा डायु  
पडायु गदलीने जभणु पडणे अने जभापु पडायु गदलीने डणे पडणे नहिं  
सूडि अर्थात् पडणा नहिं गदलुं, ये गंधी कियेओ पीज पाने नहिं कगडुं,  
नहिं करनारने लोओ जणुं ये रीते त्रणुं उरणुं त्रणुं योगथी अनेओ त्याग करे छुं  
इत्यादि व्याख्यान पूर्ववत् (५) (१९)

हुवे व्रसकायकी यतना उडे छे-से भिक्खू वा० इत्यादि

मूलम्—से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्च-  
 क्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा  
 सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीड वा पयग वा कुथु वा पिवीलियं वा  
 हत्थसि वा पायसि वा वाहुसि वा ऊरुसि वा उदरसि वा सीससि  
 वा वत्थसि वा पडिग्गहसि वा कवलसि वा पायपुच्छणंसि वा रय-  
 हरणंसि वा गोच्छगसि वा उडगसि वा दंडगसि वा पीढगसि वा  
 फलगसि वा सेज्जसि वा सथारगसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे  
 उवगरणजाए तओ सजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय  
 पमज्जिय ऐगतमवणेजा नोण सघायमावज्जेजा ॥६॥२०॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा सयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा  
 वा रात्रौ वा एरुको वा परिपद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा स, कीट वा पतङ्ग  
 वा कुन्थु वा पिपीलिका वा हस्ते वा पादे वा बाहौ वा ऊरौ वा उदरे वा शीर्षे  
 वा वस्त्रे वा पात्रे वा ऋवले वा पादप्रोच्छन्नके वा रजोहरणे वा गोच्छे वा उन्दके  
 वा दण्डके वा पीठके वा फलके वा शय्याया वा सस्तारके वा अन्यतरस्मिन् वा  
 तथाप्रकारे उपकरणजाते तत सयत एव प्रत्युपेक्ष्यर प्रभृज्यर एकान्तेऽपनयेन्नैन  
 सघातमापादयेत् ॥६॥२०॥

(६) त्रसराययत्तना.

सान्त्वयार्थः—सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्तमानकालीन  
 सावय व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावय व्यापारोंसे रहित, वर्तमान  
 कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी  
 निन्दा करके सावय व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी  
 वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें गओ वा=अथवा रात्रिमें एगओ वा=  
 अकेला परिसागओ वा=अथवा सघमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ अथवा जाग-  
 रमाणे वा=जागता हुआ रहे, वहा से=वह कीड वा=रीढेको पयग वा= पतगेमी  
 कुथु वा=कुथुवाको पिवीलिय वा=कीडी- चिऊटीको हत्थसि वा=हाथ पर पायसि  
 वा=पैरपर वाहुसि वा=भुजापर ऊरुसि वा=जात्रपर उदरसि वा=पेटपर सीससि  
 वा=सिरपर वत्थसि वा=वस्त्रपर पडिग्गहसि वा=पात्रपर वा=

कम्बल पर पायपुच्छगणसि वा=पैर पोंछनेके उपकरणविशेषपर रघहरणसि वा=रजोहरण पर गोच्छगसि वा=पूजनी पर उडगसि वा=स्थण्डिलपात्र पर दडगसि वा=दड पर पीढगसि वा=चौकी पर फलगसि वा=पाटे पर सेज्जसि वा=शरीरपरिमित शयन करनेके उपकरण पर सधारगसि वा=सस्तारक-साढे तीन हाथ परिमित विजौने पर (अथवा) अन्नघरसि वा=फिर दूसरे तह्पगारे=इसी प्रकारके उवगरणजाण=उपकरणो पर (लगे हुए पूर्वोक्त कीडे आदिको) तओ=उस स्थान-हाथ पैर आदिसे सजया-मेव=यतनाके साथही पडिलेहियर=वार-वार प्रतिलेखन करके पमज्जियर= वार-वार पूजकर एगत=एकान्त-निरुपद्रव स्थान-में अवणेज्जा=छे जाकर रखदे, (किन्तु उनको) नोण सघायमावज्जेज्जा=एकठा न करे ॥२०॥

(६) त्रसकाययतना ।

टीका-हस्ते, पादे, बाहौ, ऊरौ=जानूपरिभागे, उदरे, शीर्षे, वस्त्रे=मुख-वस्त्रिकाचोलपट्टादौ, प्रतिग्रहे=प्रतिगृह्णाति=आधत्ते स्वस्मिन् भक्तपानादिकमिति प्रतिग्रहः=पात्र तस्मिन्, कम्बले, पादप्रोच्छने=प्रोच्छयते=प्रमृज्यतेऽनेनेति प्रोच्छन=प्रमार्जनसाधनम्, पादयोः प्रोच्छन=पादप्रोच्छन तस्मिन्=पादप्रोच्छन-साधने पल्लखण्डे, रजोहरणे, गोच्छे सवित्तरजः समष्टचरणप्रमार्जनिकायाम् 'पूजनी' इति भाषाप्रसिद्धायाम्, उण्डके=स्थण्डिलपात्रे, दण्डे=वृद्धत्वादिना प्रस्थानविप्लवगतिभिर्प्रतिभिरचलम्पनाय धार्यमाणे, नान्यथा, "येराण येरभूमि-पत्ताण कप्पइ दडए वा" इत्यादिना स्थविर-स्थविरभूमिप्राप्तातिरिक्तमुनीना

(६) त्रसकाययतना ।

हाथ, पैर, भुजा, जाँघ, उदर, मस्तक, मुखवस्त्रिका, चोलपट्ट आदि वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-प्रोच्छन=पैर पोंछने का वस्त्रखण्ड, रजोहरण, गोछा=पूजनी (पैरोंमें लगी हुई रजको पोंछनेका उपकरण), स्थण्डिलपात्र, वृद्धावस्था आदिके कारण गमन करनेमें असमर्थ मुनिके (चलनेमें) सहायक दण्ड, क्योंकि भगवानने "स्थविर और स्थविरभूमिको प्राप्त मुनियोंको ही दण्ड धारण करना

(६) त्रसकाययतना

हाथ, भुजा, उदर, मस्तक, मुखवस्त्रिका, चोलपट्ट आदि वस्त्र पात्र, कम्बल, पाद-प्रोच्छन, रजोहरण, पूजणी, स्थण्डिलपात्र, वृद्धावस्थाआदिने कारणे आलवाभा असमर्थ मुनिने सहायक अथवा दंड, कारणे के लक्षणने "स्थविर अने स्थविर भूमिने प्राप्त मुनियोने भाटे व दंड धारण कर्तव्य छे" अथवा कथ्ये छे,

दण्डाग्राहत्वस्य भगवता स्पष्ट प्रतिपादितत्वात्, पीठके=काष्ठनिर्मितचतुरस्रात्रा-  
सनविशेषे "चौकी, चौरग" इति- भाषाप्रसिद्धे, फलके=शयनोपयोगिकाष्ठविर-  
चितपट्टादिरूपे, शय्याया=शयनोपकरणरूपाया सती या, अस्या अपि धर्मोप-  
करणत्वात्, सस्तारके=सस्तार्यते=विस्तार्यते शयनार्थिभिरिति सस्तारः (स+  
स्तृञः कर्मणि घञ्) स एव सस्तारकः=(स्वार्थिकः कः) अर्द्धतृतीयहस्त-  
प्रमाणस्तस्मिन्, दर्भादिनिर्मितास्तरणे इत्यर्थः । अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे=  
तत्सदृशे सयमोपयोगिनि उपकरणजाते=उपक्रियन्ते=उपयुज्यन्ते सयमादिदाढ्यर्थकृते  
यांनि तान्युपकरणानि-साधूना सयमसाधनाद्गीभूतोपकाररुक्त्वपात्रादीनि तेषा  
जात=समूहस्तस्मिन् उपकरणमात्रे इत्यर्थः, समापतित कीटादिकत्रसजीवम्,  
ततः=तस्मात् हस्तादे स्थानात् सयत एव=सम्यग् यतमान एव 'सजयामेव' इति  
मूलपाठे आर्षत्वादीर्घी मकारश्च, प्रतिलेख्य२=प्रत्यवेक्ष्य२ सम्यगवलोक्येत्यर्थः,  
प्रमृज्य२=पौनःपुन्येन प्रमार्जनिरुदिद्वारा निस्सार्य एकान्ते=निरुपद्रवस्थाने अप-  
नयेत्=नीत्वा स्थापयेत् किन्तु सघातम्=एकत्र पुञ्जीकरणेन पीडाजनकपरस्परशरीर-  
सघर्षकारणदृढसयोग सामान्येन सम्मेलन वा नो=नैव आपादयेत्=सप्रापयेत् 'ण'-  
मिति वाक्यालङ्कारे । 'सघातो दृढसयोगः' इति वाचस्पत्यम् । यत्तु केचित्-

कल्पनीय है" ऐसा कहा है, अन्यको दण्ड धारण करना मना है ।  
अत एव उनके द्वारा गृहीत दण्ड पर तथा चौकी पाटा (पट्ट) शय्या  
अर्थात् उपाश्रय, क्योंकि यह भी एक धर्मोपकरण है, सस्तारक अर्थात्  
दर्भ आदिका विछौना, तथा सयममें उपयोगी इस प्रकारका अन्य कोई  
उपकरण, इन सबमें कीट आदि त्रस जन्तु हों तो उन्हें सयमी स्वयं  
सम्यक् प्रकार प्रतिलेखन करके बार-बार पूजनी आदिसे पूजकर बाधा-  
रहित एकान्त स्थानमें यतनासे रक्खें, किन्तु उन्हें इकट्ठा करके न रक्खें,  
क्योंकि ऐसा करनेसे उनको पीडा होनेकी सभावना है । कितनेक

अन्यने दंड धारणनी मनाई छे, अेटले अेमखे धारण करेला दंड पर, तथा चौकी,  
पाट, शय्या अर्थात् उपाश्रय, ङारणु ठे अे पणु अेक धर्मोपकरणु छे सस्तारक  
अर्थात् दर्भ आदिनुं गिछानुं, तथा सयममा उपयोगी अे प्रकारना अन्य ङर्भ  
उपकरणु, अे सर्वमा डीडी-डीडा आदि त्रस ञतु होय तो तेने सयमी स्वयं  
सम्यक् प्रकारे प्रतिलेखन करीने बार बार पूजणी आदिथी पूछने णाधारहित  
अेकान्त स्थानमा यतनाथी भूडे, परन्तु अेने अेटठा करीने न राणे, ङारणु ठे  
अेम करवाथी तेमने पीडा थवानी सभावना रहे छे डेटलाके छडे छे ठे रक्षाने

एकान्तप्रदेशे रक्षार्थं त्रसजीवाना स्यापने साधूनामसंगतिवैयावृत्त्यदोषेण महाव्रत-  
भङ्गो भवतीत्याहुस्तदेतद्भगवदानाविरुद्धम्, अनेनापि सूत्रेण धर्मोपकरणस्थाना  
त्रसजीवाना निरुपद्रवप्रदेशे रक्षार्थं यतनया म्यापनविधानात् ।६। ॥२०॥

इत्येव पट्टकायतनामभिप्रायसम्प्रति तदपरिपालनपरिणामदारुणत्ववर्णयते-  
'अजय चरमाणो' इत्यादि ।

मूलम्-अजय चरमाणो य, पाणभूयाइ हिसइ ।

वधई पावयं कम्म, त से होइ कडुय फलं ॥१॥

छाया-अयत चरश्च, पाणभूतानि द्विनस्ति ।

वध्नाति पापक कर्म, तत्तस्य भवति कडुक फलम् ॥१॥

यतना न पालन करने का बुरा फल रहते हैं-

सान्त्वयार्थः-अजय=अयतनापूर्वक चरमाणो=गमन करता हुआ साधु  
पाणभूयाइ=त्रस स्थावर जीवोक्ती हिंसइ=हिंसा करता है य=और पावय  
कम्म=पापकर्मको वधई=वाधता है, त=उस कारण से=उस पाप कर्मका  
फल=फल कडुय=दुःखदायी होइ=होता है ॥१॥

कहते हैं कि-रक्षाके लिए त्रस जीवको एकान्त स्थानमें रखनेमें साधुको  
असंगतिकी वैयावच करनेरूप दोष लगता है और उससे महाव्रतका  
भंग होता है। यह उनका कहना भगवानकी आज्ञासे विरुद्ध है,  
क्योंकि इस सूत्रसे भगवानने स्पष्ट विधान किया है कि धर्मोपकरणमें  
स्थित त्रस जीवोंको रक्षाके लिए निरुपद्रव स्थानमें यतनासे रखना  
चाहिये ॥ ६ ॥ २० ॥

इस प्रकार पट्टकायकी यतना कहकर "उसकी रक्षा नहीं करनेसे  
भयङ्कर परिणाम होता है" इस वानका उपदेश देते हैं-'अजय चरमाणो'  
इत्यादि ।

भाटे त्रस लुपने अेकात स्थानमा राभवाभा साधुने असयतिनी वैयावच्च करवा  
इप होप लागे ठे अने तेथी महाव्रतनेा लग थाय छे अेमनु अेलु कथन  
लगवाननी आज्ञाथी विरुद्ध छे, का-णु के आ सूत्रथी लगवाने स्पष्ट विधान कथ्यु  
छे ठे धर्मोपकरणमा स्थित त्रस लुपेनी रक्षाने भाटे निरुपद्रव स्थानमा यतनाथा  
तेभने भूइवा लोछअे (६) (२०)

अे गीते पट्टकायनी यतना कइने 'अेमनी रक्षा नहि करवायी लय कर  
परिणाम आवे छे, अे वातनेा उपदेश आवे छे-अजय चरमाणो इत्यादि

ટીકા-અયત=યતનારહિત યથાસ્યાત્તથા ચરન્=ગન્ઠન્ 'સયતઃ' ડતિ શેષઃ,  
 પ્રાણભૂતાનિ=પ્રાણન્તીતિ પ્રાણાઃ=ઉન્દ્ર્યાસાદિમન્તો દ્વીન્દ્રિયપ્રભૃતયો જીવાઃ,  
 ભૂતાનિ=મયનશીલા એકેન્દ્રિયાઃ પૃથિવ્યાદયઃ, પ્રાણાથ્ર ભૂતાનિ ચેતિ પ્રાણભૂતાનિ  
 (દ્વન્દ્વત્વાત્પરવલ્લિદ્ગતા) તાનિ=ત્રસસ્થાવરણીત્યર્થઃ, દ્વિનસ્તિ=દ્વન્તિ, ચ=તથા  
 પાપક્ર=પ=પદ્ધિલમર્થાન્મલિન ભાવપ્રાપયતિ=પ્રાપયતીતિ, પ=ક્ષેમમ્ આ=સમન્તાત્  
 પિયતિ=નાશયતીતિ, પાન-પાસ્તમર્થાત્પ્રાણિનામાત્માનન્દરસપાનમ્ આપ્નોતિ=  
 પ્રાપ્નોતિ=પૃદ્ધાતીતિ, નરકાદિકુગતિષુ જીવાન્ પાતયતીતિ, કર્મરજોભિરાત્માન  
 પાશયતિ¹=મલિનયતીતિ યા પાપ તદેવ પાપક=(કુત્સાયા ક્રુન્) જ્ઞાનાવરણીયાદિ,  
 કર્મ=તત્સમ્બન્ધયતિમૂક્ષમપુદ્ગલસન્ધય યદ્ધાતિ=ઉપાર્જયતિ, તત્=તેન દેતુના, તસ્ય=  
 પાપકર્મણઃ, ફલ=પરિણતિઃ કદુક્રુ=દુઃખદમ્, યદ્વા 'કદુક્રુફલ'-મિતિ ચ્ઙાયા,

૧ પાશયતિ=પાશુર્ધૂલિઃ, 'પાશુર્ના ન દ્વયો રજઃ' ડત્યમર', સોડસ્યાસ્તીતિ  
 પાશુમાન્, પાશુમન્ત ક્રુરોતિ પાશયતિ 'તત્ક્રુરોતિ તદાચ્છે' ડતિ ણિચીષ્ઠ  
 વદ્ધાવાત્ 'વિન્મતોર્લુય' ડતિ મતુપો લુકૃ' તત્તણિલોપઃ ।

યતનારહિત ગમન કરનેવાલા સયત (સાધુ) દ્વીન્દ્રિય આદિ પ્રાણોંકી  
 તથા એકેન્દ્રિય પૃથિવીકાય આદિ ભૂતોંકી અર્થાત્ ત્રસ ઓર સ્થાવર  
 જીવોંકી હિંસા કરતા હૈ, ઓર જ્ઞાનાવરણીયાદિ પાપકર્મકા ઉપાર્જન  
 કરતા હૈ । પાપ (૧) મલિનતાકો પ્રાપ્ત કરાતા હૈ, (૨) નરક આદિ અધો-  
 ગતિમેં પહુંચાતા હૈ, (૩) આત્માકે હિતકા નાશ કરતા હૈ, (૪) પ્રાણિયોંકે  
 આત્મિક આનન્દ રસકો સુખા ડાલતા હૈ, (૫) આત્માકો કર્મરૂપી રજસે  
 મલિન કર દેતા હૈ, ડસલિલે ઉસે પાપ કહ્તે હૈ । અર્થાત્ અયતનાપૂર્વક  
 પ્રવૃત્તિ કરનેસે જીવોંકી હિંસા હોતી હૈ, ઓર જ્ઞાનાવરણીય આદિ અશુભ  
 કર્મોંકા વન્ધ મી હોતા હૈ, ઓર ઉસ પાપકર્મકા પરિણામ દુઃખદાયી

યતનારહિતપણે ગમન કરનાર સયત (સાધુ) દ્વીન્દ્રિય આદિ પ્રાણોની  
 તથા એકેન્દ્રિય પૃથિવીકાય આદિ ભૂતોની અર્થાત્ ત્રસ અને સ્થાવર જીવોની હિંસા  
 કરે છે અને જ્ઞાનાવરણીયાદિ પાપકર્મનુ ઉપાર્જન કરે છે પાપ-(૧) મલિનતાને  
 પ્રાપ્ત કરાવે છે, (૨) નરક આદિ અધોગતિમા પહોચાડે છે, (૩) આત્માના  
 હિતને નાશ કરે છે, (૪) પ્રાણીઓના આત્મિક આનન્દ રસને સુકાવી નાખે છે  
 (૫) આત્માને કર્મરૂપી રજથી મલિન કરી નાખે છે, તેથી તેને પાપ કહે છે  
 અર્થાત્ અયતનાપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરવાથી જીવોની હિંસા થાય છે, અને જ્ઞાનાવરણીય  
 આદિ અશુભ કર્મોના બધ પણ ઉત્પન્ન થાય છે એ પાપકર્મનુ પરિણામ દુઃખ

तत्=पापकर्म तस्य=अयतनया गच्छतः कटुकफल=कटुकम् अनिष्ट फल=परिणामो यस्य तत् अशुभफलप्रदमित्यर्थः, भवति=जायते । अत्र पक्षे 'कटुक'-मित्यत्रानु-स्वार आपत्वात् ॥१॥

मूलम्-अजय चिद्विमाणो य पाणभूयाइं हिंसइ ।

वधई पावय कम्मं, तं से होइ कडुय फलं ॥ २ ॥

छाया—अयत तिष्ठंश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।

वद्नाति पापकर्म, तत्तस्य भवति कटुक फलम् ॥२॥

सान्त्वयार्थः—अजय=अयतनापूर्वक चिद्विमाणो=खडा होता हुआ साधु पाणभूयाइ=त्रस स्यावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है य=और पावयं कम्म=पाप कर्मको वधई=वाधता है, त=उस कारण से=उस पापकर्म का फल=फल कडुय=दुःखदायी होइ=होता है ॥२॥

टीका—'अजय चिद्विमाणो' इत्यादि । अयत=यतनारहित तिष्ठन्=करचर-णादिप्रसारणेनाऽनवहित दण्डवदूर्ध्वावस्थान कुर्वन् । शेष प्राग्वद्व्याख्येयम् ॥२॥

मूलम्-अजय आसमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।

वधई पावयं कम्मं, त से होइ कडुय फलं ॥ ३ ॥

छाया—अयतमासीनश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।

वद्नाति पापकर्म, तत्तस्य भवति कटुक फलम् ॥३॥

सान्त्वयार्थ -अजय=अयतना-पूर्वक आसमाणो=बैठता हुआ साधु पाण-भूयाइ=त्रस स्यावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावय कम्म=पापकर्मको वधई=वाधता है, त=उस कारण से=उस पापकर्म का फल=फल कडुय=दुःखदायी होइ=होता है ॥३॥

होता है, तथा उसका कडुआ फल भोगना पडता है ॥१॥

'अजय चिद्विमाणो' इत्यादि । अयतनापूर्वक खडा होनेसे पापकर्म वधता है और उसका कडुआ फल होता है ॥२॥

वाथी आवे छे, तथा अने कडवा इण लोगववा पडे छे (१)

अजय चिद्विमाणो इत्यादि अयतनापूर्वक ठेला रहेवावाथी पापकर्म अघाय छे अने तेना कडवा इण आवे छे (२)



ટીકા—‘અજય આસમાણો’ ઇત્યાદિ । અયતમામીનઃ=પ્રમાર્જન વિનાઝનુપ યુક્તોઽનરહિત ઉપવિશન્નિત્યર્થઃ । શેષ પૂર્વવત્ ॥૩॥

મૂલમ્—અજય<sup>૧</sup> સયમાણો<sup>૨</sup> ય<sup>૫</sup> પાણભૂયાઙ્<sup>૩</sup> હિંસઙ્<sup>૪</sup> ।

વધર્ઙ્<sup>૮</sup> પાવય<sup>૯</sup> કમ્મ<sup>૭</sup>, ત<sup>૬</sup> સે<sup>૧૦</sup> હોઙ્<sup>૧૧</sup> કહુય<sup>૧૨</sup> ફલ<sup>૧૩</sup> ॥૪॥

છાયા—અયત સ્વપથ, પ્રાણભૂતાનિ હિનસ્તિ ।

વદ્ધાતિ પાપક કર્મ, તત્તસ્ય ભવતિ કટુક ફલમ્ ॥૪॥

સાન્વયાર્થઃ—અજય=અયતના-પૂર્વક સયમાણો=સોતા હુઆ સાધુ પાણ-ભૂયાઙ્=ત્રસ-સ્થાવર જીવોંકી હિંસઙ્=હિંસા કરતા હૈ, ય=ઔર પાવય કમ્મ=પાપકર્મકો વધર્ઙ્=વધતા હૈ, ત=ઉસ કારણ ઉસ પાપકર્મ કા ફલ=ફલ કહુય=દુઃસ્વદાયી હોઙ્=હોતા હૈ ॥૪॥

ટીકા—‘અજય સયમાણો’ ઇત્યાદિ । અયત સ્વપન્=શય્યાપ્રમાર્જનાદિક વિના પ્રકામશય્યાદિના દિવસે વા શયાનઃ । શેષ પૂર્વવત્ ॥૪॥

મૂલમ્—અજય<sup>૧</sup> મુજમાણો<sup>૨</sup> ય<sup>૫</sup>, પાણભૂયાઙ્<sup>૩</sup> હિંસઙ્<sup>૪</sup> ।

વધર્ઙ્<sup>૮</sup> પાવય<sup>૯</sup> કમ્મ<sup>૭</sup>, ત<sup>૬</sup> સે<sup>૧૦</sup> હોઙ્<sup>૧૧</sup> કહુય<sup>૧૨</sup> ફલ<sup>૧૩</sup> ॥૫॥

છાયા—અયત મુજ્જાનથ, પ્રાણભૂતાનિ હિનસ્તિ ।

વદ્ધાતિ પાપક કર્મ, તત્તસ્ય ભવતિ કટુક ફલમ્ ॥૫॥

સાન્વયાર્થઃ—અજય=અયતના-પૂર્વક મુજમાણો=સ્વાતા હુઆ સાધુ પાણ-ભૂયાઙ્=ત્રસ સ્થાવર જીવોંકી હિંસઙ્=હિંસા કરતા હૈ, ય=ઔર પાવય કમ્મ=પાપ-

‘અજય આસમાણો’ ઇત્યાદિ । મૂમિ આદિકી વિના પ્રમાર્જના કિયે હી અયતનાપૂર્વક વૈઠનેસે પાપકર્મ વધતા હૈ ઔર ઉસકા કહુઆ ફલ હોતા હૈ ॥૩॥

‘અજય સયમાણો’ ઇત્યાદિ । અયતનાસે અર્થાત્ શય્યાકી પ્રમાર્જના ન કરકે શયન કરનેસે પાપકર્મ વધતા હૈ ઔર ઉસકા કહુઆ ફલ હોતા હૈ ॥૪॥

અજય આસમાણો ઇત્યાદિ ભૂમિ આદિની પ્રમાર્જના કર્યા વિના અયતના પૂર્વક બેસવાથી પાપકર્મ બધાય છે, અને તેના કડવા ફળ મળે છે (૩)

અજય સયમાણો ઇત્યાદિ અયતનાથી અર્થાત્ શય્યાની પ્રમાર્જના કર્યા વિના શયન કરવાથી પાપકર્મ બધાય છે અને એના કડવા ફળ મળે છે (૪)

कर्मको बधई=बाधता है, त=उस कारण से=उस पापकर्मका फल=फल कडुय=दुःखदायी होइ=होता है ॥५॥

टीका—‘अजय भुजमाणो’ इत्यादि । अयत भुज्जानः=यथाकल्पलब्धान्त-  
प्रान्ताग्राहार सयोजनादिमण्डलदोषपरिहारेण चपड-चपड-शब्दपूर्वकमभ्यवहरन् ।  
अन्यत् सुबोधम् ॥५॥

मूलम्-अजय भासमाणो य, पाणभूयाड हिसइ ।

वधई पावय कम्म, त से होइ कडुअं फलं ॥ ६ ॥

छाया—अयत भापमाणश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।

वघ्नाति पापक कर्म, तत्तस्य भवति कडुक फलम् ॥६॥

सान्वयार्थ.—अजय=अयतना-पूर्वक भासमाणो=गोलता हुआ साधु पाण-  
भूयाड=उस स्थावर जीवोकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावय  
कम्म=पापकर्मको बधई=बाधता है, त=उस कारण से=उस पापकर्मके  
फल=फल कडुय=दुःखदायी होइ=होता है ॥६॥

टीका—‘अजय भासमाणो’ इत्यादि । अयत भापमाण =अयतनया ब्रुवन् ।

‘अजय भुजमाणो’ इत्यादि । साधुके कल्पके अनुसार प्राप्त हुए  
आहारका सयोजना आदि मण्डल दोषोका परित्याग न करके ‘चपड-  
चपड’ आदि शब्द करते हुए भोजन करनेसे पापकर्म बधता है और  
उसका फल कडुआ होता है ॥५॥

‘अजय भासमाणो’ इत्यादि । अयतनापूर्वक भापण करनेसे हिंसा  
होती है और पापकर्मका उध होता है । उस पापकर्मका फल कडुआ  
होता है ।

अजय भुजमाणो इत्यादि साधुना कल्पने अनुभार प्राप्त थयेला आहारना  
सयोजना आदि मंडल दोषोना परित्याग कर्था विना ‘चपड-चपड’ अवाज  
करता सेवन करवाथी पापकर्म उधाय छे अने तेना कडवा इण आवे छे (५)

अजय भासमाणो इत्यादि अयतनापूर्वक भापणु करवाथी हिंसा थाय छे  
अने पापकर्म उधाय छे अने पापकर्मना इण कडवा आवे छे

ટીકા—‘અજય આસમાણો’ ઇત્યાદિ । અયતમાસીનઃ=પ્રમાર્જન વિનાઽનુપ  
યુક્તોઽનવદિત ઉપવિશિષ્ટિત્યર્થઃ । શેષ પૂર્વવત્ ॥૩॥

મૂલમ્—અજયં સયમાણો ય પાણભૂયાઙં હિસઈ ।

વધઈ પાવય કમ્મ, ત સે હોઈ કહુય્ ફલં ॥૪॥

છાયા—અયત સ્વપશ્ર, પ્રાણભૂતાનિ હિનસ્તિ ।

વદ્નાતિ પાપક કર્મ, તત્તસ્ય ભવતિ ક્લુક ફલમ્ ॥૪॥

સાન્વયાર્થઃ—અજય=અયતના-પૂર્વક સયમાણો=સોતા હુઆ સાધુ પાણ  
ભૂયાઈ=ત્રસ-સ્થાયર જીવોંકી હિસઈ=હિંસા કરતા હૈ, ય=ઐર પાવય કમ્મ=  
પાપકર્મકો વધઈ=વાધતા હૈ, ત=ઉસ કારણ ઉસ પાપકર્મ કા ફલ=ફલ  
કહુય્=દુઃસ્વદાયી હોઈ=હોતા હૈ ॥૪॥

ટીકા—‘અજય સયમાણો’ ઇત્યાદિ । અયત સ્વપન્=શય્યાપ્રમાર્જનાદિક  
વિના પ્રકામશય્યાદિના દિવસે વા શયાનઃ । શેષ પૂર્વવત્ ॥૪॥

મૂલમ્—અજય મુજમાણો ય, પાણભૂયાઙં હિસઈ ।

વધઈ પાવય કમ્મ, ત સે હોઈ કહુય્ ફલં ॥૫॥

છાયા—અયત મુજ્જાનશ્ર, પ્રાણભૂતાનિ હિનસ્તિ ।

વદ્નાતિ પાપક કર્મ, તત્તસ્ય ભવતિ ક્લુક ફલમ્ ॥૫॥

સાન્વયાર્થઃ—અજય=અયતના-પૂર્વક મુજમાણો=લાતા હુઆ સાધુ પાણ-  
ભૂયાઈ=ત્રસ-સ્થાયર જીવોંકી હિસઈ=હિંસા કરતા હૈ, ય=ઐર પાવય કમ્મ=પાપ

‘અજય આસમાણો’ ઇત્યાદિ । ભૂમિ આદિકી વિના પ્રમાર્જના  
કિયે હી અયતનાપૂર્વક વૈઠનેસે પાપકર્મ વધતા હૈ ઐર ઉસકા કહુઆ  
ફલ હોતા હૈ ॥૩॥

‘અજય સયમાણો’ ઇત્યાદિ । અયતનાસે અર્થાત્ શય્યાકી પ્રમાર્જના  
ન કરકે શયન કરનેસે પાપકર્મ વધતા હૈ ઐર ઉસકા કહુઆ ફલ  
હોતા હૈ ॥૪॥

અજય આસમાણો ઇત્યાદિ ભૂમિ આદિકી પ્રમાર્જના કર્યા વિના અયતના  
પૂર્વક બેસવાથી પાપકર્મ બધાય છે, અને તેના કહુવા ફળ મળે છે (૩)

અજય સયમાણો ઇત્યાદિ અયતનાથી અર્થાત્ શય્યાકી પ્રમાર્જના કર્યા  
વિના શયન કરવાથી પાપકર્મ બધાય છે અને એના કહુવા ફળ મળે છે (૪)

शिष्यः पृच्छति-‘कह चरे’ इत्यादि ।

टीका—हे भगवन् ! ययेय तर्हि सयतः कथ=केन प्रकारेण चरेत्=विहरेत्?, कथ=केन प्रकारेण तिष्ठेत्=स्थितो भवेत्?, कथ=केन रूपेण आसीत्=उपविशेत्?, कथ शयीत्=स्वप्यात्?, कथ वा भुञ्जानः=अभ्यवहरमाणः, भापमाणश्च पापकर्म=व्याख्यातपूर्वं न वध्नाति ? ॥७॥

गुरुत्तरयति-‘जय चरे’ इत्यादि ।

मूलम्-<sup>१</sup>जय <sup>२</sup>चरे <sup>३</sup>जयं <sup>४</sup>चिद्वे, <sup>५</sup>जयमासे <sup>६</sup>जयं <sup>७</sup>सए ।

<sup>८</sup>जयं <sup>९</sup>भुजंतो <sup>१०</sup>भासतो, <sup>११</sup>पावकम्म <sup>१२</sup>न <sup>१३</sup>वंधई <sup>१४</sup>॥८॥

छाया—यत चरेद् यत तिष्ठेद्, यतमासीत् यत शयीत् ।

यत भुञ्जानो भापमाणः, पापकर्म न वध्नाति ॥८॥

सान्वयार्थः—गुरु महाराज उत्तर देते हैं—जय=यतनापूर्वक चरे=गमन करे जय=यतनापूर्वक चिद्वे=खड़ा होवे जय=यतनापूर्वक आसे=बैठे जय=यतनापूर्वक सए=सोवे (और) जय=यतनापूर्वक भुजंतो=खाता हुआ तथा भासतो=बोलता हुआ पाव कम्म=पापकर्म न वधई=नहीं गधता है ॥८॥

टीका—यतम्=ईर्यासमितिसमन्वित यथा तथा चरेत्=विहरेत्, यत तिष्ठेत्=

शिष्य पृच्छता है-‘कह चरे०’ इत्यादि ।

हे भगवन् ! यदि ऐसा है तो मुनि कैसे चले ? कैसे खड़ा रहे ? कैसे बैठे ? कैसे शयन करे ? कैसे आहार करे ? और कैसे बोले ? जिससे पापकर्म न वधने पावे ॥७॥

गुरु महाराज उत्तर देते हैं-‘जय चरे०’ इत्यादि ।

हे शिष्य ! सयत ईर्यासमितियुक्त होकर चले, यतनासे खड़ा रहे,

शिष्य पूछे छे-कह चरे० इत्यादि

हे भगवन् ! जे जेम ठे तो मुनि केवी रीते आवे ? केवी रीते उलो रहे ? केवी रीते जेसे ? केवी रीते सूजे ? केवी रीते आहार करे ? अने केवी रीते बोले ? के जेथी पाप कर्म गधवा न पावे ? (७)

गुरु महाराज उत्तर आपे छे-‘जय चरे०’ इत्यादि

हे शिष्य ! सयत ईर्यासमितियुक्त थधने आवे, यतनाथी उलो रहे,

ननु यतनापूर्वकभाषणार्थमेव मुनिर्मुखवस्त्रिका बध्नातीति त प्रति पुनरयं विधिर्व्यर्थ एवेति चेन्न, यथाविधिनिम्नमुखवस्त्रिकस्यापि मुनेरनृतकर्कशादिसावय भाषणेऽनाटुतमुखेन भाषणप्रदयतना भवतीति सर्वथा भाषासमितिसमाराधनाऽ-  
वधानमाधातुमस्योपदेशस्य सार्थक्यात् । शेष पूर्ववद्व्याख्येयम् ॥६॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८  
मूलम्-कह चरे कह चिट्टे, कहमासे कह सए ।

९ १० ११ १२ १३ १४  
कह भुजतो भासतो, पावकम्म न वधई ॥ ७ ॥

छाया—कथ चरेत् कथ तिष्ठेत्, कथमासीत् कथ शयीत् ।

कथ भुज्जानो भाषमाणः, पापकर्म न वध्नाति ॥७॥

सान्त्वयार्थ-शिष्य पूजता है-(अगर ऐसा है तो हे गुरु महाराज !)

कह=कैसे चरे=गमन करे?, कह=कैसे चिट्टे=खडा हो?, कह=कैसे आसे=  
बैठे?, कह=कैसे सए=सोवे?, कह=किस प्रकार भुजतो=आहार करता  
हुआ (तथा) भासतो=गोलता हुआ पावकम्म=पापकर्म न वधई=  
नहीं बाधता है ॥७॥

प्रश्न-हे गुरुमहाराज ! अयतनाको दूर करनेके लिए ही मुखवस्त्रिका  
मुख पर बाँधी जाती है, फिर उनके प्रति 'अजय भासमाणो य' ऐसा  
उपदेश देना कैसे सगत है ? ।

उत्तर-हे शिष्य ! सुनो, मुख पर मुखवस्त्रिका सदा बाँधी रहने पर  
भी असत्य कर्कश कठोर आदि बोलनेसे तथा सावय उपदेश देनेसे  
उसी प्रकार अयतना होती है जिस प्रकार खुले मुख बोलनेसे होती है ।  
साधुको भाषासवधी सब प्रकारकी अयतनाका त्याग करना चाहिए  
इसलिए यह अयतनाके त्यागका उपदेश दिया गया है ॥६॥

प्रश्न-हे गुरु महाराज ! अयतनाने दूर करवाने भाटे व मुखवस्त्रिका मुख  
पर बाधवाना आवे छे, पछी तेमनी प्रत्ये 'अजय भासमाणो य' जेवे उपदेश  
आपवे केवी रीते सगत छे ?

उत्तर-हे शिष्य ! मुख पर मुखवस्त्रिका सदा बाँधी रहेवा छता पण असत्य  
कर्कश कठोर आदि बोलवाथी तथा सावय उपदेश आपवाथी जेवा प्रकारनी  
अयतना थाय छे ते जेवा प्रकारनी अयतना उभाडे भेडाजे बोलवाथी थाय छे  
साधुजे भाषासवधी सर्व प्रकारनी अयतनाने त्याग करवे जेधजे, तेथी आ  
अयतनाना त्यागने उपदेश आपवाना आवे छे ॥६॥

डाया—सर्वभूतात्मभूतस्य, सम्यग् भूतानि पश्यतः ।

पिहितास्रवस्य दान्तस्य, पापकर्म न प्रयते ॥९॥

सान्वयार्थः—सद्वचभूयस्त्वभूयस्त्व=सत्र प्राणियोंको अपने समान समझनेवाले सम्म=सम्यक् प्रकार आगमानुसार भूयाड=जीवोंको पासओ=देवने-समझने-वाले पिहिआस्रवस्त्व=आस्रवको रोकनेवाले दन्तस्त्व=जितेन्द्रिय सागुके पाव-कम्म=पापकर्म न वधई=नहीं प्रयता है ॥९॥

टीका—सर्वभूतात्मभूतस्य=सर्वाणि च तानि भूतानि सर्वभूतानि=एकेन्द्रिया-दारभ्य पञ्चेन्द्रियपर्यन्त सर्वे जीवास्तेषु आत्मभूतः=आत्मसदृश, जीव आत्मान रक्षितु यथा प्रयतते तथा यथात्रिसकलजीवरक्षासावगान इत्यर्थः, तस्य, भूतानि सम्यक्=प्रचनप्रतिपादितस्वरूपेण पश्यतः=प्रेक्षमाणस्य निखिलप्राणिगणस्वरूप याथातथ्येन पर्यालोचयत इत्यर्थः । पिहितास्रवस्य=पिहिताः=आन्डादिता आस्र-वा =कर्मागमहेतवो येन स पिहितास्रवः=पतिरुद्धर्मद्वारस्तस्य, दान्तस्य=दमयति-वश नयति इन्द्रियाऽश्वानिति दान्तः=जितेन्द्रियस्तस्य पापकर्म न प्रयते=तस्य पापलेपो न जायत इत्यर्थः ॥९॥

ननु क्रियैव पापकर्मापरोधश्चेत्तर्हि तदर्थमेव यतनीय कृत ज्ञानेनेति चेद-त्रोच्यते—

नहि ज्ञानमन्तरेण क्रिया रुदाचिदपि फलाय म्लपते प्रत्युतोन्मत्तक्रियावदनर्था-

समस्त प्राणियोंमें आत्मतुल्य बुद्धि रखनेवाले, तथा आगमके अनुसार जीवोंका स्वरूप समझनेवालेको, कर्मोंके आगमनके कारण (आस्रव)का निरोध करनेवालेको पापकर्मका वध नहीं होता है ॥९॥

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! यदि केवल क्रियासे पापकर्मोंका निरोध हो जाता है तो क्रिया ही करनी चाहिए, ज्ञानकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—हे शिष्य ! ज्ञानके बिना क्रियाका कुछ फल नहीं होता,

जब प्राणीजोना आत्मतुल्य बुद्धि राखनारा, अने आगमने अनुसार लोचोनु स्वरूप समझनाराने, कर्मोंना आगमनना वारणो (आस्रवो) ना निरोध करनाराम्कोने पापकर्मनु वधन थतु नहीं (६)

प्रश्न—हे गुरु महाराज ! जे केवल क्रियाथी पापकर्मोंना निरोध वऽ नय छे तो क्रिया वऽ करवी जेईछे, ज्ञाननी नी आनश्यऽता छे ?

उत्तर—हे शिष्य ! ज्ञान बिना क्रियानु कथु कण छे।तु नहीं ज्ञानरहित

करचरणादिकमविक्षिपन् समग्रहितो दण्डास्थितिं विदयात्, यतमासीत्= यतनया-हस्तपादाग्राकुञ्चनप्रसारणादिकमकुर्वन् सोपयोगमृपविशेत्-दृढासनादिना स्थिरः सत्ताप्रशयकरार्थमन्तरेण नेतस्ततो भ्राम्येदित्यर्थः, यत शयीत=प्रकाम- शयनीयादिपरिहारेण स्वप्नात्, यत भुञ्जानः=यथाकल्पप्राप्ताहार सयोज- नादिमण्डलदोषप्रर्जनपुरस्सर 'चपड-चपड' इतिशब्दमकुर्वाणोऽभ्यवहरमाणः, यत भाषमाणः=निरवद्यमुखस्त्रिकः सन् हितमितमृद्धादिनिरवद्यभाषयाऽवसरे समाल- पन् पापकर्म न वध्नाति=न वध्नीयात् ॥८॥

किञ्च-'सव्वभूय०' इत्यादि ।

मूलम्-सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइ पासओ ।

पिहिआसवस्स दंतस्स, पावकम्म न वधई ॥९॥

अर्थात् हाथ-पैर न हिलाता हुआ सावधान होकर दडकी तरह खडा रहे, यतनासे बैठे अर्थात् धृथा हाथ पैर न हिलावे, उपयोग-सहित दृढासन आदिसे बैठे, विना कार्यके इधर उधर न हिले, यतनासे शयन करे अर्थात् प्रकाम शय्याका परिहार करता हुआ सोवे, यतनासे आहार करे अर्थात् जैसा निरवद्य आहार मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहे और 'चपड-चपड' आदि शब्द न करते हुए भोजन करे, न भोजनमे राग-द्वेष करे। यतनासे भाषण करे अर्थात् हित मित मधुर और निरवद्य भाषा बोले, खुले मुह न बोले, तथा कर्कश कठोर शब्दोंका उच्चारण न करे और निष्प्रयोजन न बोले। ऐसा करनेसे पापकर्म नहीं वधता है ॥८॥

और-'सव्वभूय०' इत्यादि ।

अर्थात् हाथ-पग न हिलावे ने दडणी जेम उलो रहे यतनाथी जेसे अर्थात् धृथा हाथ-पग न हिलावे, उपयोग सहित दृढासन आदिथी जेसे, कार्य विना आभ-तेम हले नहि, यतनाथी शयन करे, यतनाथी आहार करे, अर्थात् जे निरवद्य आहार भणी जाय तेमा जे सन्तुष्ट रहे अने 'चपड-चपड' अवाज कथा विना बोजन करे, बोजनमा राग-द्वेष न करे यतनाथी भाषण करे अर्थात् हित मित मधुर अने निरवद्य भाषा बोले, अत्य मोठे बोले नहि अने करवाथी पापकर्म नधातु नथी (८)

अने-सव्वभूय० इत्यादि

एवम्=अनेन प्रकारेण क्रियाया ज्ञानपूर्वकत्वाऽप्ररोधरूपेण सर्वसयतः=सर्वरितः साधुरित्यर्थः, तिष्ठति=वर्त्तते, कथमिदमुच्यते? इत्याशङ्कयामाह-अज्ञानी= तत्रातत्त्वविवेकज्ञानविरहितः किं करिष्यति=किं विरास्यति, किं वा=कथं या छेद-पापक, छेदश्च पापक चानयोः समाहारे छेदपापक, तत्र छेद=कल्याणम् उपादेयमित्यर्थः, पापकम्-अकल्याण हेयमित्यर्थः. ज्ञास्यति=वेत्स्यति जन्मनाऽ- न्यत्र किञ्चिदपीत्यर्थः, अतो ज्ञानार्थमेव प्रथमं यतनीयम् "इया अत्राणिण क्रिया" इत्युक्तेः ॥१०॥

ज्ञानमहत्त्वं प्रदर्श्य सम्प्रति तत्प्राप्त्युपायमाह-"सोच्चा जाणड" इत्यादि ।

१ ३ २ ४ ६ ५  
मूलम्-सोच्चा जाणड कल्लाण, सोच्चा जाणड पावग ।

७ ८ ८ १० ११ १२ १३  
उभयपि जाणड सोच्चा, ज सेय त समायरे ॥११॥

उया-श्रुत्वा जानाति कल्याण, श्रुत्वा जानाति पापकम् ।

उभयमपि जानाति श्रुत्वा, यच्छ्रेयस्तत्तमाचरेत् ॥११॥

समस्त क्रियाओंका ग्रहण होता है । अर्थात् मम्मगज्ञानपूर्वक की हुई ही क्रिया सफल होती है, इसलिए मुनि ज्ञानपूर्वक ही क्रियाएँ करते हैं, क्योंकि तत्त्व और अतत्त्वके विवेकसे रहित अज्ञानी क्या कर सकता है? अर्थात् कुछ नहीं कर सकता, और जन्मान्धके समान उसे हेय-उपादेयका ज्ञान ही कैसे होसकता है? अर्थात् नहीं होसकता, अत पहले ज्ञानके लिए प्रयत्न करना चाहिए । कहा भी है-"ज्ञानके विना क्रिया निरर्थक है" ॥१०॥

ज्ञानका महत्त्व बताकर अब उसकी प्राप्तिका उपाय कहते हैं- "सोच्चा जाणड" इत्यादि ।

थाय ते अर्थात् सम्भोज्ञानपूर्वक ठरेली क्रिया व सङ्ग थाय छे तेथी मुनि ज्ञानपूर्वक व क्रियाओ करे छे कारण छे-तत्त्व अने अतत्त्वना विवेकयी रहित अज्ञानी शु करी गडे? अर्थात् ठशु नवी ठगी गडतो, अने व-भाधनी पठे अने छेय-उपादेयनु ज्ञान देवी रीते यथ गडे? अर्थात् तथा य गडतु, तेथी पडेला ज्ञानने भाटे प्रयत्न ठवे जेठे कथु छे ते-"ज्ञान विनानी क्रिया निरर्थक छे" (१०)

ज्ञाननु महत्त्व बतावीने छे अनी प्राप्तिने उपाय उडे छे-सोच्चा जाणड० इत्यादि



नुबन्धिनी स्यादिति ज्ञानरिहितकेरलक्रियाप्रवृत्तिर्लोकाना मा स्म भूदतो ज्ञानस्य क्रियापेक्षया प्राथम्य दर्शयति—‘पढम नाण’ इत्यादि ।

१ २ ३ ४ ५ ७ ९  
मूलम्-पढम नाण तओ दया, एव चिट्टइ सबसंजए ।

८ ९ १० ११ १२ १४ १३  
अन्नाणी किं काही, किं वा नाही छेय-पावग ॥१०॥

छाया—प्रथम ज्ञान ततो दया, एव तिष्ठति सर्वसयतः ।

अज्ञानी किं करिष्यति, किं वा ज्ञास्यति छेरू-पापरुम् ॥१०॥

सान्त्वयार्थः—पढम=पहले नाण=ज्ञान है तओ=उसके पश्चात् दया=दया अर्थात् चारित्र है एव=इसी प्रकार सबसजए=सर्वसयत साधु चिट्टइ=आचरण करते है, अन्नाणी=सम्यग्ज्ञानसे रहित पुरुष किंकाही=क्या कर सकता है—कैसे सयम पाल सकता है अर्थात् नहीं पाल सकता ? (और) किं वा=कैसे छेयपावग=उपादेय और हेयको नाही=जान सकता है?, अर्थात् नहीं जान सकता ॥१०॥

टीका—प्रथमम्=आदौ ज्ञान=ज्ञायन्ते=बुध्यन्ते जीवाजीवादयः पदार्था येन यस्माद् यस्मिन् वा तज्ज्ञान=स्वपरस्वरूपपरिच्छेदलक्षणम्, अपेक्ष्य भवतीत्याशयः, क्रियामात्रस्य ज्ञानपूर्वकत्वे हि स्वाभीष्टसिद्धिकत्वात्, ततः=तदनन्तर दया=केशा-कुलप्राणिसकष्टमोचनेच्छालक्षणाऽनुकम्पा, दयाशब्देन चात्र क्रियामात्रमुपलक्ष्यते,

ज्ञानरहित क्रिया उन्मत्त (पागल) पुरुषकी क्रियाके समान अनर्थको उत्पन्न करती है । ‘कोई जीव ज्ञानरहित क्रिया न करे’ इस अभिप्रायसे ‘पहले ज्ञान फिर क्रिया होनी चाहिए’,—इस बातको शास्त्रकार कहते हैं—‘पढम नाण०’ इत्यादि ।

जिससे स्व-परका बोध होता है उसे ज्ञान कहते हैं । वह ज्ञान प्रथम है, क्योंकि जीव आदि नव पदार्थका ज्ञान होने पर ही सयम अर्थात् षड्जीवनिकायकी दयाका पालन हो सकता है । यहाँ दया शब्दसे

क्रिया उन्मत्त (गाडा) पुरुषकी क्रियानी येठे अनर्थने उत्पन्न करे छे ‘कोई एव ज्ञानरहित क्रिया न करे’ जेवा हेतुथी ‘प्रथम ज्ञान पछी क्रिया होनी जेठे’ आ वातने सूत्रकार कहे छे—पढम नाण० इत्यादि

जे वडे स्वपरनेा बोध थाय छे तेने ज्ञान कहे छे जे ज्ञान प्रथम छे जेठे एव आदि नव पदार्थनु ज्ञान थया पछी ए सयम अर्थात् षड्जीवनिकायनी दयानु पालन यथे शके छे अर्थात् दया शब्दथी पछी क्रियाज्जेन श्रद्धे

मूलम्-<sup>१</sup>जो <sup>२</sup>जीवे <sup>३</sup>वि <sup>४</sup>न <sup>५</sup>याणेइ <sup>६</sup>अजीवे <sup>७</sup>वि <sup>८</sup>न <sup>९</sup>याणइ ।

जीवाजीवे <sup>१०</sup>अयाणतो, <sup>११</sup>कहं <sup>१२</sup>सो <sup>१३</sup>नाहीइ <sup>१४</sup>सजम ॥१२॥

छाया—यो जीवानपि न जानाति, अजीवानपि न जानाति ।

जीवाऽजीवानजानन् कथ, स ज्ञास्यति सयमम् ॥१२॥

सान्प्रयार्थ—जो=जो जोवेवि=जीवोकोभी न याणेइ=नही जानता है (और) अजीवेवि=अजीवोकोभी न याणेइ=नही जानता है, जीवाजीवे=जीवो और, अजीवोको अयाणतो=नहीं जानता हुआ सो=वह सजम=सयमको कह=कैसे नाहीइ=जानेगा ? अर्थात् नहीं जान सकता ॥१२॥

टीका—‘जो जीवेवि’ इत्यादि । यः जीवान्=एकेन्द्रियादीन्, जीवलक्षण तु मत्कृतात्तत्त्वप्रदीपाद्विशेषतोऽगन्तव्यम्, न जानाति=न वेत्ति, तथा अजीवान्=जीवविपरीतलक्षणान् सयमपरिपन्थिन काश्चनरजतादीन् धर्मास्तिकायादीन् वा न जानाति, इत्थ जीवाजीवान्=जीवान् अजीवाँश्चोभयानपि अजानन् सन् स सयम=प्राणातिपातविरमणादिलक्षण समुद्रशविष कथ=केन प्रकारेण ज्ञास्यति=वेत्स्यति, सयमस्य जीवाजीवोभयविषयकज्ञानजन्यत्वात् ॥१२॥

ननु कस्तर्हि सयम विज्ञातुमर्हती ? त्याह-‘जो जीवे वि०’ इत्यादि ।

‘जो जीवे वि०’ इत्यादि । जो पुरुष एकेन्द्रिय आदि जीवोंके स्वरूपको नहीं जानता और न जीवसे भिन्न पुद्गल आदि अजीवोंको जानता है । इस प्रकार दोनोंको ही नहीं जानता हुआ वह अज्ञानी प्राणातिपात आदिसे विरमणरूप सन्नह प्रकारके सयमको कैसे जानेगा ? अर्थात् नहीं जान सकेगा, क्योंकि सयम तब ही हो सकता है जब जीव और अजीवका ज्ञान हो जाय ॥१२॥

सयमका ज्ञाता कौन हो सकता है ? सो कहते हैं-‘जो जीवे वि०’ इत्यादि ।

जो जीवे वि० इत्यादि के पुरुष एकेन्द्रिय आदि लोकोना स्वप्नने लक्ष्यते नथी अने लोचयी भिन्न पुद्गल आदि अलोकोने लक्ष्यते नथी, ओ रीते भेदने लक्ष्यते नथी ते अज्ञानी प्राणातिपात आदिथी विरमणरूप अत्तर प्रकारना सयमने केवी रीते लक्ष्यते ? अर्थात् नहि लक्ष्यी राके, वरन् लोके सयम त्यारे न थर्ध राके छे के त्यारे लोच अने अलोचनं ज्ञान थाय छे (१०)

सयमने ज्ञाता केवल थर्ध शब्द छे ? ते हवे छे छे-जो जीवे वि० इत्यादि

अब जानने का उपाय बताते हैं—

सान्प्रयायः—सोचा=गुरुमुखसे सुनकर कल्याण=कल्याण-दयारूप सयमको जाणइ=जानता है, (तथा) सोचा=सुनकर ही पावग=पाप-दिसारूप असयमको जाणइ=जानता है, (और) उभयपि=दोनोंको भी सोचा=सुनकर ही जाणई=जानता है । (अतः) ज=जो सेय=आत्माके हितकारी हो तं=उसका समापरे=आचरण करे ॥११॥

टीका—श्रुत्वा=गुरुमुखादारूप्यं श्रुतज्ञानप्रियकीकृत्येत्यर्थः, कल्याणम्=कल्यो मोक्षः कर्मबद्धसकलोपाधिव्याधिबाधाधिधुरत्वात्, तम् आ=समन्तादिति-प्रापत्तीति, कल्येन=आरोग्येण आरोग्यकरणेनेत्यर्थः ज्ञानदर्शनचारित्रब्रह्मणमोक्षमार्गो-पदेशद्वारेति भावः, आनयति=जीयति सासारिकविशालविषयकाननसलप्रेष्ट त्रियोगानिष्टसयोगदावानज्वालामालावलीढान् प्राणिन इति कल्याण=दयाभिधानसयमस्वरूप, निपातनाणत्तम्, तदुपादेयभूत जानाति, श्रुत्वा च पापक=नरकादिकुगतिपातिन हेयभूतमसयम जानाति, उभयमपि=उपादेयानुपादेयभूत सयमासयमलक्षण द्वयमपि श्रुत्वैव जानाति । निष्कर्षमाह—अत्र यत् श्रेय.=हित तत् समाचरेत्=विदध्यात् ॥११॥

कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली समस्त आधि-व्याधि और बाधासे रहित मोक्षकी प्राप्ति करानेवालेको, अथवा ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी आरोग्यसे, हितवचन अथवा उपदेशसे ससारके विषयरूपी विशाल वनमे धधकती हुई इष्टवियोग-अनिष्टसयोगरूप दावाग्नीकी ज्वालाओंमें जलते हुए जीवोंको शान्ति देनेवालेको कल्याण कहते हैं । इस कल्याण (सयम) का ज्ञान गुरुमुखसे सुनकर ही होता है । पाप अर्थात् नरक आदि कुग-तियोंमें गिरानेवाले असयमका ज्ञान भी सुननेसे ही होता है, तथा इन दोनोंका भी ज्ञान सुननेसे ही होता है । इसलिए इनमेसे जो श्रेष्ठ (हितकर) हो उसमें प्रवृत्ति करनी चाहिए ॥११॥

कर्मोंकी उत्पन्न थनारी जधी आधि-व्याधि अने बाधाकी रहित मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले अथवा ज्ञान दर्शन चारित्रभी आरोग्यकी, हितवचन अथवा उपदेशकी ससारना विषयकी विशाल वनमा ललुक्ता इष्टवियोग-अनिष्टसयोगकी दावाग्नीकी ज्वालाओंमा जलता लुवेने शान्ति देनेवाले कल्याण कहे छे आ कल्याण (सयम)नु ज्ञान श्रुतुअधी श्रवण करवाधी न थाय छे पाप अर्थात् नरक आदि कुगतिओमा पाडनारा असयमनु ज्ञान पणु सालगवाधी न थाय छे, तथा अने जेनु ज्ञान पणु सालगवाधी न थाय छे, तेथी ओमा ने श्रेष्ठ (हितकर) छाय ओमा प्रवृत्ति करनी जेधये (११)

“ दया भूतेषु वैराग्य, विधिवद्गुरुपूजनम् ।

विशुद्धा शीलवृत्तिश्च, पुण्य पुण्यानुबन्ध्यदः ॥१॥ इति.

( स्थानाङ्गे १स्था. टीका )

हरिभद्रसूरिरप्याह—

“ गेहाद् गेहान्तर कश्चिच्छोभनादधिक नरः ।

याति यद्वत् सुधर्मेण, तद्वदेव भवान्भवम् ॥ १ ॥” इति ।

एतच्च मोक्षार्थिनामप्यादरणीयमेव, पुण्यानुबन्धिपुण्यस्याऽपतनशीलमोक्ष-  
सम्पन्नकरत्वात्, तथा चोक्तम्—

“ शुभानुबन्ध्यतः पुण्य, कर्त्तव्य सर्वथा नरैः ।

यत्प्रभावादपातिन्यो, जायन्ते सर्वसम्पदः ॥१॥” इति ।

प्राणियों पर दया रखना, वैराग्य-भाव होना, आगमके अनुसार  
गुरुओंकी भक्ति करना, शुद्ध शीलका पालन करना, यह पुण्यानुबन्धि  
पुण्य है । (स्थानाङ्ग ०१स्था० टीका)

हरिभद्रसूरिने भी कहा है—

“ जैसे कोई मनुष्य एक अच्छे गृहसे दूसरे बहुत ही अच्छे गृहमे  
जाता है वैसेही पुण्यके प्रभावसे जीव अत्यन्त शुभ गतिको प्राप्त  
होता है ॥१॥ ”

यह पुण्य मोक्षार्थी पुरुषोके लिए भी उपादेय है, क्योंकि इससे  
अविनश्वर-शाश्वत-मोक्षरूपी सम्पत्तिकी उत्पत्ति होती है। कहा भी है—

“मनुष्योको पुण्यानुबन्धि पुण्य अवश्य करना चाहिए, जिसके प्रभावसे  
कभी नष्ट न होनेवाली सत्र प्रकारकी सम्पदाएँ प्राप्त होती है ॥१॥”

प्राणीओ उपर दया राखवी, वैराग्यभाव थवे, आगमने अनुसार  
गुरुओनी लडित करवी, शुद्ध शील पाणवु, ओ पुण्यानुबन्धि पुण्य छे  
(स्थानाङ्ग ०१स्था० टीका)

हरिभद्रसूरिओ पणु कहु छे ते—

“ जेभ ठोछ मनुष्य ओक सारा गृहभाथी पीण भहु ज सारा गृहभा  
नय छे तेभ पुण्यना प्रभावथी एव अत्यन्त शुभ गतिने पाभे छे ”

ओ पुण्य मोक्षार्थी पुण्योने भाटे पणु उपादेय छे, कारणु के तेथी अविन  
श्वर-शाश्वत-मोक्षरूपी सपत्तिकी उत्पत्ति थाय छे कहु छे ते—

“ मनुष्योओ पुण्यानुबन्धि पुण्य अवश्य करवु जेधओ जेना प्रभावथी  
कदापि नष्ट न थाय तेवी सर्व प्रकारनी सपदाओ प्राप्त थाय छे ”

વોધિત્રીજજિનધર્માદિપ્રાપ્તિર્નાયતે, ક્રિયદ્વુના તીર્થકરગોત્રમપિ પુણ્યેનેવ વધ્યતે,  
યો દિ પુણ્ય સર્વથા હેય મન્યમાનસ્તચ્યજતિ અસી સમુપેક્ષિતતરિરિવાડપ્રાપ્તપરતીરો  
મધ્યેસમુદ્ર મજ્જન્નવસીદતિ ।

નત્તુ પુણ્યપાપક્ષયાનન્તરમેવ મોક્ષપ્રાપ્તિઃ શાસ્ત્રે શ્રૂયતે ઇતિ પાપવ્રત્પુણ્યમપ્યનુપાદેય  
મોક્ષાર્થિનામિતિ ચેન્ન,

દ્વિત્રિધિ હિ પુણ્ય પુણ્યાનુબન્ધિ પાપાનુબન્ધિ ચ, તત્ર પુણ્યાનુબન્ધિ પુણ્યસ્ય લક્ષણમુક્તમ્-

પ્રાપ્તિ-હોતી છે । અધિકુ કયા કહા જાય ? તીર્થકર ગોત્ર મી પુણ્યસે હી  
વધતા છે ।

જો પુણ્યકો સર્વથા હેય માનતા હુઆ ઉસકા ત્યાગ કરતા છે વહ  
સસાર-સાગરમે ગોતે લગાતા છે । જૈસે મધ્ય સમુદ્રમે નૌકાકા ત્યાગ  
કર દેનેવાલા પુરુષ સમુદ્રમે ઢૂવતા હુઆ દુઃખ પાતા છે ।

શઙ્કા-પુણ્ય ઓર પાપ દોનોંકા ક્ષય હોનેકે વાદ મોક્ષકી પ્રાપ્તિ  
હોતી છે, એસા શાસ્ત્રોંમે સુના જાતા છે, ઇસલિએ પાપકી તરહ પુણ્ય મી  
મોક્ષાર્થિયોંકે લિએ ઉપાદેય નહી છે ।

સમાધાન-એસા કહના ઠીક નહોં છે, ક્યોંકિ પુણ્ય દો પ્રકારકા છે-  
(૧) પુણ્યાનુબન્ધિ પુણ્ય, (૨) પાપાનુબન્ધિ પુણ્ય । પુણ્યાનુબન્ધિ પુણ્યકા  
લક્ષણ ચહ છે-

વધારે શુ કહેલુ ? તીર્થકર-ગોત્ર પણ પુણ્યથી જ બધાય છે

જે પુણ્યને સર્વથા હેય માનીને તેનો ત્યાગ કરે છે, તે સસાર-સાગરમા  
ગોથા ખાય છે, જેમકે મધ્ય-સમુદ્રમા નૌકાનો ત્યાગ કરી નાખનાર પુરુષ સમુદ્રમા  
ડુબતા હુ ખ પામે છે

શકા-પુણ્ય અને પાપ એ બેઉનો ક્ષય થયા પછી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે,  
એવું શાસ્ત્રોમા સાબળવામા આવે છે તેથી પાપની પિંઠે પુણ્ય પણ મોક્ષાર્થીઓને  
માટે ઉપાદેય નથી

સમાધાન-એમ કહેલુ તે ઠરાવર નથી, કારણ કે પુણ્ય બે પ્રકારના છે  
(૧) પુણ્યાનુબન્ધિ પુણ્ય, (૨) પાપાનુબન્ધિ પુણ્ય । પુણ્યાનુબન્ધિ પુણ્યનુ  
લક્ષણ એલુ છે કે-

“શરીરમાહુ<sup>૧</sup> નાવત્તિ, જીવો ઉચ્ચદ્ નાવિઓ ।

સસારો અણ્ણવો વુત્તો, જ તરતિ મહેસિણો ॥ ૧ ॥” ઇતિ ।

તત્રૈવ દશમાન્વયને મનુષ્યજન્મનો દૌર્લભ્ય ચોક્તમ્—

“શુદ્ધહે સ્વલુ માણુસે ભવે, ચિરકાલેણવિ સન્વપાણિણ” ઇતિ ।

સ્થાનાદ્ગમ્ત્રેડપિ તૃતીયસ્થાનકે ચ—

“તઓ ઠાણાઠ્ દેવેવીહેજ્ઞા ત જહા— (૧) માણુસ ભવ, (૨) આરિણ સ્વેત્તે જમ્મ, (૩) સુકુલપચ્ચાર્યાતિ ।” ઇતિ ।

૧ “શરીરમાહુઃ નૌઃ ઇતિ, જીવ ઉચ્યતે નાવિકઃ ।

સસાર અર્ણવઃ ઉક્તઃ, ય તરન્તિ મહર્ષયઃ ॥૧॥”

૨ દુર્લભઃ સ્વલુ માનુષ્યો ભવઃ, ચિરકાલેનાપિ સર્વપ્રાણિનામ્ ।

૩ ત્રીણિ સ્થાનાનિ દેવા અપીહેરન્, તત્રથા—(૧) માનુષ્ય ભવમ્, (૨) આર્યે ક્ષેત્રે જન્મ, (૩) સુકુલપત્યાયાતિમ્ ।

“ (મનુષ્યકા) શરીર, નૌકાકે સમાન હૈ, જીવ, નાવિક (સ્વેચ્છિયા) કે સદશ હૈ ઓર સસાર, સમુદ્ર સરીલા હૈ, ડસે મહર્ષિ પાર કરતે હૈ ।”

હસી ઉત્તરાધ્યયનકે દસવેં અધ્યયનમે મનુષ્ય-જન્મકી દુર્લભતા વતાઈ હૈ —

“ચિરકાલ તક સવ પ્રાણિયોકે લિણ મનુષ્ય-ભવ અલ્યન્ત દુર્લભ હૈ ।”

સ્થાનાદ્ગમ્ત્રમે તીસરે સ્થાનકમે કહા હૈ—

“ઇન તીન વોલોકી દેવ ધી અભિલાપા રસ્વતે હૈ—(૧) મનુષ્ય-ભવ, (૨) આર્યક્ષેત્રમે જન્મ, (૩) સુકુલકી પ્રાપ્તિ ” ।

‘ (મનુષ્યનુ) શરીર, નૌકા સમાન છે, જીવ, નાવિક (ખલાસી) સમાન છે અને સસાર, સમુદ્ર સરખો છે, તેને મહર્ષિ પાર કરે છે ”

એજ ઉત્તરાધ્યયનના દસમા અધ્યયનમા મનુષ્ય જન્મની દુર્લભતા બતાવી છે—

“ચિરકાળ તુધી સર્વ-પ્રાણીઓને માટે મનુષ્યભવ અત્યંત દુર્લભ છે ”

સ્થાનાગ-સૂત્રમા ત્રીજા સ્થાનકમા કહ્યું છે કે—

“આ ત્રણ ઝાલોની અભિલાપા દેવ પણ રાખે છે (૧) મનુષ્યભવ, (૨) આર્યક્ષેત્રમા જન્મ, (૩) સુકુળની પ્રાપ્તિ ”

किञ्च—मनुष्यजन्मनोऽपि मोक्षप्राप्तिकारणत्वेन शास्त्रे प्रतिपादनात्पुण्य मोक्षार्थिनामुपादेयमेवेत्यस्यीयते, पुण्यमन्तरेण मनुष्यजन्मनो दुर्लभत्वात्, तथा चोक्तमुत्तराध्ययनसूत्रे तृतीयाध्ययने—

“ चत्वारि<sup>१</sup> परमगणि, दुःखहाणि य जतुणो ।

माणुसत्त सुई सद्धा, सजमम्मि य वीरियं ॥ १ ॥” इति ।

ससारार्णयोत्तरणाय नरशरीरस्य नौकारूपत्वेन प्रतिपादनान्मोक्षकारणत्व गम्यते, तथा चोत्तराध्ययनसूत्रे त्रयोविंशाध्ययने—

१ “ चत्वारि परमाद्धानि, दुर्लभानि च जन्तोः ।

मानुपत्व शुचिः श्रद्धा, सयमे च वीर्यम् ॥१॥”

दूसरी बात यह है कि—शास्त्रोंमें मनुष्यभवकी प्राप्ति पुण्यके उदयसे कही गई है, और मनुष्य-भव मोक्ष-प्राप्तिका कारण माना गया है, इससे भी यही सिद्ध होता है कि पुण्य मुमुक्षुओंके लिए उपादेय है, क्योंकि पुण्यके विना मनुष्य-पर्याय मिलना दुर्लभ है। उत्तराध्ययन सूत्रके तीसरे अध्ययनमें कहा है—

“चार परमाग जीवके लिए दुर्लभ हैं—(१) मनुष्य भव, (२) शुचिता, (३) सत्य धर्ममें श्रद्धा, (४) सयममें पराक्रम ॥”

मनुष्य-शरीर ससाररूपी समुद्रको पार करनेके लिए नौकाके समान है, इसलिए ज्ञात होता है कि मनुष्य-शरीर मोक्षका कारण है। उत्तराध्ययन सूत्रके तेईसवें अध्ययनमें कहा है—

णील वात अे छे डे-शास्त्रमा मनुष्यलवनी प्राप्ति पुण्यना उदयथी कही छे अने मनुष्यलव मोक्षप्राप्तिनु कारण मान्यु छे, तेथी पणु अेभ सिद्ध थाय छे डे पुण्य मुमुक्षुअेने भाटे उपादेय छे, कारण डे पुण्य विना मनुष्य पर्याय भणवे दुर्लभ छे उत्तराध्ययन सूत्रना त्रीण अध्ययनमा कहु छे डे—

“चार परमाग लवने भाटे दुर्लभ छे—(१) मनुष्यलव, (२) शुचिता, (३) सत्यधर्ममा श्रद्धा, (४) सयममा पराक्रम”

मनुष्य शरीर ससाररूपी समुद्रने पार करवाने भाटे नौका-समान छे, तेथी समान्य छे डे मनुष्य-शरीर मोक्षनु कारण छे उत्तराध्ययन सूत्रना तेवी समा अध्ययनमा कहु छे डे—

एव तरणितो विप्रयुक्तः पान्थः स्वावलम्बनो भूत्वा सुखेन सन्वर स्वकीय धाम समवाप्नोति, तथा भव्यजीवः ससारतः परस्मिन् पारे विद्यमान मोक्ष गन्तुकामोऽपरपारे मनुष्यशरीरे तिष्ठन् विभावयति—“कथमहं दुःखबहुल चतुर्गतिक्रमसार तरिष्यामि?” इति, तदानीं मुनिजनोपदेशश्रवणतो जैनागमाद्वा दयादानादिपुण्य-महिमानमवगत्य तत्र यदि विवेकी पुण्यमाश्रयते तदा सुखेन ससारसागरमुत्तरति ।

अथवा यथाऽङ्गारकामस्तावत् काष्ठादिषु वह्निं प्रज्वालयति, अन्येन वा प्रज्वालित वह्निमुपादत्ते, ततः काष्ठगतानल जलेन निर्वापयति, वह्निनाशे च सति अङ्गारोत्पत्तिर्भवति, एव वह्न्युपादानं विनाऽङ्गारो लब्धुमशक्यः यथाऽङ्गार

परले पार पहुँचा देती है, आगे गति करनेमें असमर्थ होनेसे पथिक उसका त्याग करके स्वावलम्बी बन कर अपने घर पहुँच जाता है ।

इसी प्रकार भव्य जीव ससारसे परले पार पर अर्थात् मोक्षको जाना चाहता है । वह मनुष्यशरीररूपी इस पार पर ठहरा हुआ विचार करता है कि—‘मैं दुःखोंसे भरे हुए चतुर्गतिक ससार-सागरको कैसे पार कर सकूँगा?’ तब मुनिजनोंके उपदेशसे, अथवा शास्त्रोंसे दया दान आदि पुण्यकी महिमा जान कर पुण्यका आश्रय लेवे तो सुख-पूर्वक ससार-सागरके पार पहुँच सकता है ।

अथवा जैसे कोयले चाहनेवाले पुरुष काष्ठ आदिमें अग्नि जलाता है, अथवा दूसरेके द्वारा जलाई हुई अग्निको ग्रहण करता है, फिर उस अग्निको बुझा देता है । अग्नि बुझ जाने पर कोयला उत्पन्न होता है । इस प्रकार अग्निका आश्रय लिए विना कोयला कदापि नहीं प्राप्त हो सकता ।

नोका आगण गति करवाभा असमर्थ होवाथी पथिक जेणे त्याग करीने स्वावलम्बी पानीने पोताने घेर पडोथी नाथ छे

जे प्रकारे लव्य एव ससारने पेल्लेपार अर्थात् मोक्षे जवा धरंछतो होय छे ते मनुष्य-शरीररूपी आ किनारा पर उलो रड्डीने विचार करे छे के ‘हुं हुं ज्योथी लरेला अतुर्गतिक ससार-सागरने केवी रीते पार करी शकेश?’ त्यारे मुनिजनाना उपदेशथी, अथवा शास्त्रोद्वारा दया दान आदि पुण्यने महिमा नाणीने पुण्यने आश्रय ले तो सुखपूर्वक ससारसागरने पेल्लेपार पडोथी राठे छे

अथवा जेणे जोयला जेधंता होय छे ते पुण्य लाडकाने अग्नि लगाडे छे अथवा पीतज्योत्से सणगावेला अग्निने ग्रहण करे छे, अने पडी जे अग्निने होलवी नाथे छे अग्नि होलवाधं जता जोयला उत्पन्न थाय छे, जे रीते अग्निने आश्रय लीधा



યચ્છૂયતે શાસ્ત્રે તત્ પારમાસાઘ તરણિપરિત્યજનમિવ મુક્તિપ્રાપ્તિમમયાપેક્ષમ્ । યથા સમુદ્રસ્ય પરસ્મિન્ પારે ત્રિપ્રમાન ગૃહ ગન્તુકામઃ પથિકોઽપરતીરે ત્રિભાવયતિ- 'કથમહ તરિપ્યામી'તિ, તદાનીં નાત્ર ત્રિલોક્ય “ નૌરિય પરપારપ્રાપિકૈવ ન તુ મદીયગૃહપ્રાપિકા, અલમસ્યા આશ્રયણેન ” ઇત્યાલોચ્ય યદિ નાત્ર નાત્રલમ્બતે તદાઽસીં ગૃહ ગન્તુ ન શક્નોતિ । યદિ કશ્ચિન્નાવિ સસ્યિતઃ સમુદ્રમધ્યે પૂર્વોક્તભાવના કુર્વાણો નાત્ર પરિત્યજેત્ તદાઽપિ નાસીં ગૃહમુપૈતિ મસ્યુત સમુદ્રસ્ય તરલતરકલ્હોલ- વર્તયુક્તાઽગાધમ્લે પતિતો નિમજ્જતિ ત્રિપતેઽપિ ચ । યસ્તુ પુનર્વિવેકી પથિકો નાવમાશ્રયતિ તયાઽસીં પર પાર પ્રાપ્ય તત પર ચલિતુમક્ષમા તરણિં પરિત્યજતિ,

ક્ષય હોનેસે મોક્ષકી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ” સો હસ પ્રકાર સમજના ચાહિૈ કિ- જૈસે સમુદ્રકો પાર કરકે ફિર નૌકાકા ત્યાગ કિયા જાતા હૈ । જૈસે સમુદ્રકે દૂસરે કિનારે પર યને હુણ ઘરમૈં જાનેકી ઇચ્છા કરનેવાલા પથિક સોચતા હૈ કિ- ‘મૈં સમુદ્રકો કૈસે પાર કર સકૂંગા?’ ઉસી સમય નૌકાકો દેખ કર વહ પથિક યદિ યહ વિચાર કરને લગે કિ ‘હસસે તો મૈં પરલે પાર તક હી પહૂંચ સકૂંગા ઘર તક નહીં પહૂંચૂંગા’ ઇસે વિચારસે નૌકાકા અવલમ્બન ન કરે તો કમી ઘર નહી પહૂંચ સકતા । યદિ નૌકામે વૈઠા હુઆ કોઈ પથિક વીચ સમુદ્રમૈં ઉક્ત વિચાર કરકે નૌકાકા ત્યાગ કરદે તો મી ઘર નહીં પહૂંચ સકતા, બલ્કિ સમુદ્રકી ચચલ તરગૌં ઔર ખૈવરૌંસે યુક્ત અથાહ જલમૈં ગિર પહેગા ઔર મૃત્યુકો મી પ્રાપ્ત હૌ જાયગા કિન્તુ જો વિવેકી પથિક નૌકાકા સહારા લેતા હૈ ઉસે નૌકા

પ્રાપ્તિ થાય છે” તે એ પ્રકારે સમજવું કે-જેમ સમુદ્રને પાર કરીને પછી નૌકાને ત્યાગ કરવામા આવે છે જેમ સમુદ્રના બીજા કિનારા પર બનેલા ઘરમા જવાની ઇચ્છા કરનારો પથિક વિચારે છે કે “હું સમુદ્રને કેવી રીતે ઊતરી શકીશ ?” એ વખતે નૌકાને બેઠીને એ પથિક બે એમ વિચાર કરવા લાગે કે “આથી તો હું પેલા કિનારા સુધી જ પહોંચી શકીશ, ઘર સુધી નહિ પહોંચી શકું,” એવા વિચારથી નૌકાનું અવલગન ન કરે તો તે કદાપિ ઘેર પહોંચી શકશે નહિ બે નૌકામા બેઠેલા કેાઈ પથિક સમુદ્રની વચ્ચે એવો વિચાર કરીને નૌકાને ત્યાગ કરી દે તો પણ ઘેર પહોંચતો નથી બલકે સમુદ્રના ચચળ તરગો અને ભમરીઓથી યુક્ત અથાગ જગમા પડી જશે અને મરણુ પણ પામશે પરન્તુ બે વિવેકી પથિક નૌકાને આશ્રય લે છે તેને નૌકા પેલે પાર પહોંચાડી દે છે

तोषणीटी क्रातोऽवगन्तव्यः । वन्धम्=वध्यते=परतन्त्रीक्रियतेऽनेनाऽऽत्मेति वन्धः= अभीप्सितस्थानप्राप्तिगतिप्रतिरोधलक्षण , जीवकर्मणोरयोगोलकृद्द्वयोरिव तादात्म्यापन्नत्व वा, स च द्रव्यतो निगडादिः, भावतो रागद्वेषादिः, यथा द्रव्यवन्धवद्धो जनोऽभिमतस्थानलाभाभावेन कारागारादावेव विविधवेदनादावृणा दशामासादयन् विपीदति, तथाऽयमात्मा ज्ञानावरणीयादिकर्माष्टकनिगडसन्दानितोऽनन्ताऽस्यसुखसम्पदुल्लसिताऽव्यायाधाऽभिमतशिवस्थानप्राप्तिं विना जन्मजरामरणादिजन्यानन्यसामान्यमष्टसमष्टिं स्पष्टमनुभवन्निहैव ससारगह्वरे विपीदति, तम् ।

आत्मा जिमसे बद्ध-परतन्त्र हो जाती है, वह अर्थात्-अभीष्ट स्थानकी प्राप्ति करानेवाली गतिको रोकनेवाला बन्ध कहलाता है । अथवा जैसे लोहेका गोला और अग्नि एकमेकसे हो जाते हैं, उसी प्रकार जीव और कर्मोंमें एकताका ज्ञान करानेवाला बन्ध होता है । वेडी आदि द्रव्यबन्ध है और रागद्वेष आदि भावबन्ध है । जैसे द्रव्यबन्ध-निगड आदि-से बधा हुआ मनुष्य अभिमत स्थान पर न पहुँच सकनेके कारण कारागार आदिमें ही विविध वेदनाओंके द्वारा दारुण दशा प्राप्त करता हुआ दुःख पाता है, वैसे ही ज्ञानावरण आदि आठ कर्म-स्वरूप भावबन्धरूपी वेडीके कारण अनन्त अविनाशी सुखरूपी सम्पत्तिसे शोभित, अव्यायाध और अभीष्ट मोक्ष-स्थानकी प्राप्तिके विना जन्म जरा मरण आदिसे होनेवाले अपरिमित दुःख भोगता हुआ इसी ससाररूपी गड्डेमें पडा हुआ कष्ट उठाता है ।

आत्मा जेथी बद्ध-परतन्त्र हो जाय छे ते अर्थात् अलीष्ट स्थानकी प्राप्ति करानेवाली गतिने रोकनेवाला बन्ध कहलाय छे अथवा जेभ लोढाने गोणो अने अग्नि ओक मेक जनी जाय छे, तेभ एव अने उर्मेभा ओठतानुं ज्ञान करानेवाला बन्ध होय छे जेडी आदि द्रव्यबन्ध छे अने रागद्वेष आदि भावबन्ध छे जेभ द्रव्यबन्ध उड उठे जेडी आदिथी बंधायलो मनुष्य धारेले स्थाने न पहुँचै शकवाने कारणे कारागार आदिमा न विविध वेदनाओ द्वारा हाउणु द्वारा प्राप्त करता हुय पाय छे तेभ ज्ञानावरण आदि आठ कर्म-स्वरूप भावबन्धरूपी जेडीने कारणे, अनन्त अविनाशी सुखरूपी सम्पत्तिथी शोभित, अव्यायाध अने अलीष्ट मोक्ष-स्थानकी प्राप्ति विना जन्म जरा मरण आदिथी यता अपरिमित दुःख भोगता एव आ ससाररूपी गड्डामा पडीने कष्ट भोगवे छे

प्रति तद्विभवस्य कारणता, भ्रमस्य च प्रतियोगिसापेक्षत्वेन प्रतियोगी वक्ररूपा देयो भवति, तद्वत् मोक्ष प्रति पुण्यभ्रसस्य कारणताया तत्प्रतियोगितया पुण्य मप्युपादेयमेव । पुण्यमर्जयित्वा शुभपरिणामरूप पुण्य ध्यानादिशुद्धपरिणामेन क्षपयित्वा मोक्षो लब्धु शक्यते । इत्थं चाऽऽगमप्रामाण्येन पुण्यस्य भव्यकर्तव्यता सुस्पष्ट सिद्धयति, भव्यकर्तव्यतयाऽऽगमे प्रतिपादितत्वात्, शुद्धभावरूपकारणत्वाच्चिति ।

पापम्=पातयति=शुभपरिणामाद्भ्रसयत्यात्मानमिति, यद्वा पाति=रक्षत्यात्म नोऽशुभपरिणाममिति पाप=पुण्यपरिपन्थि तत्, निस्तरस्तु श्रमणसूत्रीय-मत्कृतमृनि

अर्थात् जैसे कोयलेकी प्राप्तिके लिए अग्निका ध्वस कारण होता है और ध्वस प्रतियोगिसापेक्ष होता है इसलिए अग्निके ध्वसका प्रतियोगी अग्नि भी उपादेय होती है । इसी प्रकार मोक्षका कारण पुण्यका ध्वस है, अतः ध्वसका प्रतियोगी पुण्य भी मोक्षके लिए उपादेय है । उसका उपादान किये बिना मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि पहले शुभ परिणाम रूप पुण्यका उपार्जन करके फिर ध्यान आदि शुद्ध परिणामोंसे उनका क्षय करके मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है ।

इस प्रकार आगममें कर्तव्यरूपसे प्रतिपादन करनेसे तथा शुद्ध भावका कारण होनेसे यह भली भाँति सिद्ध हो गया कि पुण्य अवश्य कर्तव्य है

जो शुभ परिणामोंसे आत्माको दूर रखता है—शुभ परिणाम नहीं होने देता उसे पाप कहते हैं । वह पुण्यका विरोधी है ।

बिना डोयला ज्हापि प्राप्ति यथा नथी अर्थात् जेभ डोयलानी प्राप्ति भाटे अग्निने ध्वस कारणु भने छे अने ध्वस प्रतियोगि-सापेक्ष डोय छे, भाटे अग्निना ध्वसने प्रतियोगी अग्नि पणु उपादेय भने छे अने रीते मोक्षनु कारणु पुण्यने ध्वस छे अटले ध्वसनु प्रतियोगी पुण्य पणु मोक्षने भाटे उपादेय छे अने उपादान कर्था बिना मोक्षनी प्राप्ति यथं शकती नथी कारणु के पडेला शुभ-परिणामरूप पुण्यनु उपादन करीने पछी ध्यान आदि शुद्ध परिणामोधी अने क्षय करीने मोक्ष प्राप्त करी शक्य छे

अने रीते आगममा कर्तव्यरूपे प्रतिपादन कर्तुं होवाथी तथा शुद्ध भावनु कारणु होवाथी अने सारी रीते सिद्ध यथं गथुं के पुण्य अवश्य कर्तव्य छे

आत्माने शुभ परिणामोधी हर रूपे छे—शुभ परिणाम यथा हेतु नथी तेने पाप छे छे ते पुण्यनु विरोधी छे

ફિચ્ચ-યથા મૂર્ત્તામૂર્ત્તયોઃ ઘટાકાશયોઃ સયોગરૂપઃ સમ્બન્ધઃ, કરક્રિયયોર્મૂર્ત્તામૂર્ત્તયોઃ સમવાયસમ્બન્ધઃ પરૈરદ્વીક્રિયતે તથાઽઽત્મકર્મણોર્મૂર્ત્ત-મૂર્ત્તયો સમ્બન્ધે ન કાચિદનુપપત્તિર્નામ । અપિ ચ યથા શરીરમિદમાત્મસમ્બદ્ધ પ્રત્યક્ષમુપલબ્ધતે તથા પ્રેત્ય મવાન્તરગમનનિમિત્ત કાર્મણલક્ષણ શરીરાન્તરમપ્યાત્મસમ્બદ્ધમિતિ સ્વીકર્ત્તવ્યમ્ ।

નન્વપૂર્વાપરપર્યાયાઽદૃષ્ટદેહુકમિદમેવ શરીર ત્વાસ્તિ ન કાર્મણશરીરમિતિ ચેત્, અદૃષ્ટમૂર્ત્ત મૂર્ત્ત વા ? અમૂર્ત્તત્ત્વે કય સ્થૂલમૂર્ત્તશરીરેણ તત્સમ્બન્ધઃ ? ભવન્મતે

અથવા જૈસે આકાશ અમૂર્ત્ત હૈ ઓર ઘટ મૂર્ત્ત હૈ તથાપિ ડન દોનોંકા સયોગ-સમ્બન્ધ હોતા હૈ, ઓર જૈસે મૂર્ત્ત હાય તથા હાયસે હોનેવાલી અમૂર્ત્ત ક્રિયાકા દૂસરોને સમવાય-સમ્બન્ધ સ્વીકાર ક્રિયા હૈ, ડસી પ્રકાર અમૂર્ત્ત આત્મા ઓર મૂર્ત્ત કર્મકા ઘન્ધ ધી યુક્તિ-યુક્ત હી હૈ ।

અથવા જૈસે આત્માસે સબદ્ધ ઘટ શરીર પ્રત્યક્ષસે સિદ્ધ હૈ ડસી પ્રકાર પરલોકમેં ગમન કરાનેવાલા કાર્મણ શરીર ધી આત્માસે સંબદ્ધ હૈ, ંસા સ્વીકાર કરના ડાહિળ ।

યદિ ંસા કહો કિ-‘અપૂર્વ’ યા ‘અદૃષ્ટ’કે કારણ યહી શરીર પરલોકકે લિળ ગતિ કરાતા હૈ તો હમ પૂઁંગે કિ વહ અદૃષ્ટ અમૂર્ત્ત હૈ યા મૂર્ત્ત ?, અમૂર્ત્ત હૈ તો સ્થૂલ મૂર્ત્ત શરીરકે સાથ અદૃષ્ટકા સયોગ કૈસે

અથવા જેમ આકાશ અમૂર્ત છે અને ઘટ મૂર્ત છે, તથાપિ એ બેઉને સયોગ-સબધ થાય છે, અને જેમ મૂર્ત હાય તથા હાયથી થનારી અમૂર્ત ક્રિયાને ધીનબોએ સમવાય-સબધ સ્વીકાર્યો છે, એ પ્રકારે અમૂર્ત આત્મા અને મૂર્ત કર્મને બધ પણ યુક્તિયુક્ત જ છે

અથવા જેમ આત્માથી સબદ્ધ આ શરીર પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે, તેમ પરલોકમા ગમન કરાવનાર કાર્મણ શરીર પણ આત્માથી મબદ્ધ છે એવો સ્વીકાર કરવો જોઈએ

જો એમ કહો કે ‘અપૂર્વ’ યા ‘અદૃષ્ટ’ને કાન્થે આ શરીર પરલોકને માટે ગતિ કરાવે છે, તો અમે પૂછીશુ કે એ અદૃષ્ટ અમૂર્ત છે કે મૂર્ત ?, અમૂર્ત છે તો સ્થૂલ મૂર્ત શરીરની સાથે અદૃષ્ટને સયોગ ડેવી રીતે થયો ?, તમારે મતે

नन्वात्मनोऽमूर्त्तत्वात्कर्मणा च मूर्त्तत्वात् तयोः परस्पर सम्बन्धः सम्भवति, अमूर्त्तत्वेऽपि सम्बन्धस्वीकारे आकाशधर्माधर्मास्तिकायकालैः सदापि सम्बन्ध-प्रसङ्ग इति चेत्,

आत्मनः कर्मणा सह सम्बन्धाभावाऽऽपादने हेतुत्वेनोपन्यस्तममूर्त्तत्व किं सर्वथारूपेण किं वा कथञ्चिद्रूपेण स्वीक्रियते? नात्रः, हेत्वसिद्धेः, सर्वथैवाऽमूर्त्तभू-तस्य सिद्धात्मनः कर्मसम्बन्धाभावो मयाऽपीष्यत एव । आत्मत्वावच्छिन्नस्य सर्वथैवाऽमूर्त्तत्व तु दुर्बलं, ससारिजीवानां कथञ्चिन्मूर्त्तत्वसद्भावात् । कथञ्चित् स्वीक्रियेत चेत्तदा यदपेक्षया मूर्त्तत्व तदपेक्षया सम्बन्धोऽसन्दिग्ध एव । मुक्तात्म-नश्च मूर्त्तत्वाभावात् सम्बन्धाभ्युपगमः ।

प्रश्न—आत्मा अमूर्त्त (अरूपी) है और कर्म मूर्त्त (रूपी) है । इस कारणसे इन दोनोंका परस्पर बन्ध कैसे हो सकता है?, यदि मूर्त्तका बन्ध अमूर्त्तके साथ हो सकता है तो आकाशास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और कालके साथ भी कर्मका बन्ध हो जायगा, क्योंकि वे भी अमूर्त्त हैं ।

उत्तर—तुम कहते हो कि आत्मा अमूर्त्त है, सो यह बताओ कि आत्मा सर्वथा अमूर्त्त है या कथञ्चित् अमूर्त्त है?, यदि कहोगे कि आत्मा सर्वथा अमूर्त्त है तो हेतु असिद्ध हो जायगा, क्योंकि आगममे आत्माको सर्वथा अमूर्त्त नहीं माना गया है ।

अगर 'कथञ्चित् अमूर्त्त' कहोगे तो कथञ्चित् मूर्त्त भी होगी, और जिस (ससारावस्थाकी) अपेक्षासे आत्मा मूर्त्त है उसी अपेक्षासे कर्मका बन्ध होता है । मुक्तात्मा मूर्त्त नहीं है इसलिए वहाँ बन्ध भी नहीं होता ।

प्रश्न—आत्मा अमूर्त्त (अरूपी) છે અને કર્મ મૂર્ત (રૂપી) છે એ કારણે એ બેઉને પરસ્પર બંધ કેવી રીતે થઈ શકે? જો મૂર્તને બંધ અમૂર્તની સાથે થઈ શકે તો આકાશાસ્તિકાય, ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય અને કાલની સાથે પણ કર્મને બંધ થઈ જશે, કારણ કે તે પણ અમૂર્ત છે

ઉત્તર—તમે કહેો છે કે આત્મા અમૂર્ત છે, તો બતાવો કે આત્મા સર્વથા અમૂર્ત છે કે કથંચિત્ અમૂર્ત છે? જો કહેશો કે આત્મા સર્વથા અમૂર્ત છે તો હેતુ અસિદ્ધ થઈ જશે, કારણ કે આગમમાં આત્માને સર્વથા અમૂર્ત માન્યો નથી

અગર 'કથંચિત્ અમૂર્ત' કહેશો તો કથંચિત્ મૂર્ત પણ થશે, અને જે (સસારાવસ્થાની) અપેક્ષાએ આત્મા મૂર્ત છે તે અપેક્ષાએ કર્મને બંધ થાય છે મુક્તાત્મા મૂર્ત નથી તેથી તેને બંધ પણ થતો નથી

मारोडु प्रभवेदिति चेन्न, जीवकर्मणोः खनौ सुवर्णोपलयोरिव सयोगस्याऽनादिकालिकत्वात् ।

नच 'जीवकर्मणोः सम्बन्धस्याऽनादित्वे मोक्षो नैव सम्भवति अनादेरन्ताभावादाकाशात्मनोरिवे'-ति वाच्यम्, अनाग्रनन्तत्वयोरविनाभावाऽभावात्, अनादेरपि घटादिप्रागभावस्य सान्तत्वोपलम्भात्, अनादेरपि बीजाङ्कुरादिसन्तानस्य दाहादिकारणवशात्सान्ततादर्शनाच्च, इत्यलमतिविस्तरेण । बन्धस्वरूपमुच्यते—

उत्तर—जैसे खानमें रहे हुए सुवर्ण तथा पाषाणका सम्बन्ध अनादिकालीन है, वैसेही जीव और कर्मका भी सम्बन्ध अनादिकालीन है ।

कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि जिसकी आदि नहीं होती उसका अन्त भी नहीं होता है, जैसे जीव और आकाशका सम्बन्ध कभी नष्ट नहीं होता, इस नियमके अनुसार यदि जीव-कर्मका सम्बन्ध अनादिकालीन है तो कभी उसका भी अन्त न होगा, फिर किसीको मोक्ष मिल ही नहीं सकेगा ।

उनका यह कथन दूषित है, क्योंकि घट आदिका प्राग् अभाव यद्यपि अनादिकालीन है फिर भी घट उत्पन्न होते ही उसका अन्त हो जाता है ।

बीज तथा वृक्षकी परम्परा भी अनादिकालीन है तथापि यदि बीज जल जाय तो उस परम्पराका अभाव हो जाता है, इसलिए आत्मकर्म-सयोग अनादि होनेपर भी सान्त हो सकता है । बन्धका स्वरूप कहते हैं—

उत्तर—जेम आणुमा रहेला सुवर्ण तथा पाषाणुना सगध अनादि काणने छे तेम एव अने कर्मने। पणु सगध अनादिकाणने छे

कोई-कोई जेम कहे छे के जेनी आदि नथी तेना अत पणु होतो नथी, जेभके एव अने आकाशने सगध कदापि नष्ट थतो नथी जे नियमानुसार जे एव-कर्मने सगध अनादिकाणने छे तो कदापि तेना अत थथे नहि, पछी कडेने मोक्ष भणी शकथे नहि

जेनु जे कथन दूषित छे, कारणु के घट आदिने प्राग् अभाव जे के अनादिकाणने छे, तोपणु घट उत्पन्न थता न तेना अत थथे नथ छे थीन तथा वृक्षनी पर परा पणु अनादिकाणनी छे तथापि जे थीन भणी नथ तो जे पर पराने अभाव थथे नथ छे तेथी आत्म कर्म-सयोग अनादि होवा छता पणु सान्त थथे शकें छे जधने स्वरूप कहे छे—

તદસમ્મતાત્ । સમ્ભવે ચાઽઽત્મકર્મસયોગેન કિમપરાદ્રમ્ ? , અથ મૂર્ત્ત્વમત્ત્રીક્રિયતે તદાઽન્ધસર્પવિલપવેશન્યાયેન મૂર્ત્તામૂર્ત્તયોઃ સમ્બન્ધઃ સ્વીકૃત એવ ॥

નતુ કર્મસયોગાદાત્મનો મૂર્ત્તય સપન્નતે, તસ્મિંશ્ચ સતિ બન્ધસમ્બન્ધો યુજ્યતે, કમવન્ધાત્પૂર્વે તુ આત્મનો મૂર્ત્તવામાત્રાત્ કથમિત્ર બન્ધઃ સમાવનાસરણિ-

દુઆ ? ક્યોંકિ તુમ્હારે મતસે એસા હોના અસમ્ભવ હૈ । વિના અદૃષ્ટકે સમ્બન્ધકે સ્થૂલ શરીરમેં ચેષ્ટા નહીં હો સકની । સમ્ભવ માનો તો આત્મા ઓર કર્મકે સયોગને કયા અપરાધ કિયા હૈ ? । અર્થાત્ જબ અમૂર્ત્ત અદૃષ્ટ ઓર મૂર્ત્ત શરીરકા સમ્બન્ધ હો સકતા હૈ તો આત્મા ઓર કર્મકા મી સયોગ હો સકતા હૈ ।

અગર અદૃષ્ટ (ભાગ્ય) કો મૂર્ત્ત માનો તો અમૂર્ત્ત આત્માકે સાથ ડસકા સમ્બન્ધ સ્વીકાર કરનેસે યહ માન હી લિયા કિ અમૂર્ત્ત ઓર મૂર્ત્તકા સમ્બન્ધ હોતા હૈ । જૈસે અન્ધા સર્પ ઇધર ડધર મ્હટકકર ફિર બિલમેં પ્રવેશ કરતા હૈ વૈસેહી તુમને કલ્પનાસે ઇધર ડધર ડૌડકર અન્તમેં અમૂર્ત્તકા મૂર્ત્તકે સાથ સબન્ધ સ્વીકાર કરહી લિયા ।

પ્રશ્ન-કર્મકા સયોગ હોનેપર આત્મામૂર્ત્ત હોતી હૈ ઓર મૂર્ત્ત હોજાને પર બન્ધ હો સકતા હૈ કિન્તુ કર્મબન્ધ હોનેસે પહેલે તો આત્મા મૂર્ત્ત નહી થી-અમૂર્ત્ત થી, ફિર બન્ધકી સમાવના કૈસે હો સકતી હૈ ? । -

એમ થલુ અસભવિત છે અદૃષ્ટના સબધ વિના સ્થૂલ શરીરમા ચેષ્ટા થઈ શકતી નથી સભવ માનો તો આત્મા અને કર્મના સયોગે શો અપરાધ ક્યોં છે ? અર્થાત્ જો અમૂર્ત્ત અદૃષ્ટ અને મૂર્ત્ત શરીરનો સબધ થઈ શકે છે તો આત્મા અને કર્મનો પણ સયોગ થઈ શકે છે

અગર અદૃષ્ટ (ભાગ્ય)ને મૂર્ત્ત માનો તો અમૂર્ત્ત આત્માની સાથે એનો સબધ સ્વીકારવાથી એમ માની લીધુ કે અમૂર્ત્ત અને મૂર્ત્તનો સબધ થાય છે, જેમ આધણો સર્પ અહીં-તહીં ભટકીને પછી દરમા પ્રવેશ કરે છે, તેમ તમે કલ્પનાથી અહીં-તહીં દોડીને ડેવટે અમૂર્ત્તનો મૂર્ત્તની સાથે સબધ સ્વીકાર કરી લીધો

પ્રશ્ન-કર્મનો સયોગ થયા પછી આત્મા મૂર્ત્ત થાય છે અને મૂર્ત્ત થયા પછી બધ થઈ શકે છે, પરન્તુ કર્મબધ થયા પહેલા તો આત્મા મૂર્ત્ત ન હોતો, અમૂર્ત્ત હોતો, પછી બધની સમાવના કેવી રીતે હોઈ શકે છે ?

दानादिप्रतिपातकत्वम् (८), तद्रूपो बन्धः प्रकृतिबन्ध १ ।

स्थितिः=जपन्यादिभेदेन कर्मणामात्मना सहावस्थान, तद्वृक्षणो बन्धः स्थितिबन्धः २ ।

अनुभागो=रसः=कर्मणा फलदातृत्वशक्तितारतम्य, तत्स्वरूपो बन्धोऽनुभाग-बन्धः ३ ।

प्रदेशः=कर्मदलसञ्चयस्वरूपः=अनन्तानन्तकर्मप्रदेशानामियत्तारूपेण जीव-प्रदेशेषु सम्बन्धस्तद्वृक्षणो बन्धः प्रदेशबन्धः ४ । उक्तञ्च—

“स्वभावः प्रकृति प्रोक्तः, स्थितिः कालावधारणम् ।

अनुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो दलसञ्चयः ॥१॥” इति ।

भोग उपभोग और वीर्यमें विघ्न डालना अन्तराय कर्मका स्वभाव है ८ । इसीको प्रकृतिबन्ध कहते हैं ।

(२) स्थितिबन्ध—यद्ये ह्य कर्म आत्माके साथ जघन्य कितने काल तक रहेंगे और उत्कृष्ट कितने काल तक रहेंगे, इस कालकी मर्यादाको स्थितिबन्ध कहते हैं ।

(३) अनुभागबन्ध—फल देनेवाली कर्मोंकी शक्तिके तारतम्यको अनुभागबन्ध कहते हैं ।

(४) प्रदेशबन्ध—कितने कर्म आत्माके साथ बन्धको प्राप्त हुए हैं, इस प्रकार कर्मप्रदेशोंकी परिगणनाको प्रदेशबन्ध कहते हैं । कहा भी है—

“स्वभावको प्रकृतिबन्ध, कालकी मर्यादाको स्थितिबन्ध, रसको अनुभागबन्ध और कर्मपुद्गलोंके समूहको प्रदेशबन्ध कहते हैं ॥१॥”

ये गोत्रकर्मोंको स्वभाव छे ७ तथा दान लाल लोभ उपलोभ अने वीर्यमा विघ्न नापवुं ये अतराय-कर्मोंको स्वभाव छे ८ अने प्रकृति-बन्ध कहे छे

(२) स्थिति बन्ध—बन्धायला कर्म आत्माना साथे जघन्य डेटला काणसुधी-रुद्धे अने उत्कृष्ट डेटला काणसुधी रुद्धे ये काणनी मर्यादाने स्थितिबन्ध कहे छे

(३) अनुभाग बन्ध—इण आपनादी कर्मोंनी शक्तितना तारतम्यने अनुभाग बन्ध-कहे छे

(४) प्रदेश बन्ध—डेटला कर्मों आत्माना साथे बन्धने प्राप्त थया छे, ये प्रकृते कर्मप्रदेशोंनी परिगणनाने प्रदेश बन्ध कहे छे वल्लु छे के-

“स्वभावने प्रकृतिबन्ध, काणनी मर्यादाने स्थितिबन्ध, रसने अनुभाग बन्ध अने कर्म-पुद्गलाना समूहने प्रदेशबन्ध कहे छे” (१)



- घन्धतुर्विधः-प्रकृति स्थित्य-नुभाग प्रदेशभेदात्, तत्र-प्रकृति-स्वभावः आत्मगृहीतकर्मपुद्गलानां तत्रच्छक्तिरूपतया परिणमनलक्षणः, यथा-निम्बस्य तित्कत्वम्, गुडस्य मधुरत्वमित्यादि, तथा ज्ञानारणीयस्य जीवादिपदार्थानत्र बोधकत्वम् (१), दर्शनारणीयस्य जीवादीनामनालोचकत्वम् (२), वेदनीयस्या-ऽव्याबाधगुणप्राधक्यत्वम् (३), मोहनीयस्य तत्रारुचित्वमप्रतित्वं च (४), आयुषो भ्राषायकत्वम् मोक्षस्य साधनन्तस्थित्याच्छादकत्वमित्यर्थः (५), नाम्नोऽमूर्तत्वगुणनिरोधकत्वम् (६), गोत्रस्यागुरुलघुगुणघातकत्वम् (७), अन्तरायस्य च

घन्ध चार प्रकारका है-(१) प्रकृतिघन्ध, (२) स्थितिघन्ध, (३) अनु-  
भागघन्ध और (४) प्रदेशघन्ध ।

(१) प्रकृतिघन्ध-प्रकृति स्वभावको कहते हैं । अर्थात् आत्माके द्वारा ग्रहण किये हुए कर्मोंमें अमुक अमुक प्रकारकी शक्तिका आजाना । जैसे नीमका स्वभाव कटुकता, गुड़का स्वभाव माधुर्य, इत्यादि । इसी प्रकार ज्ञानावरण कर्मका स्वभाव है-आत्माके ज्ञानको आच्छादित करना १ । दर्शनावरणका स्वभाव है-दर्शनको रोकना २ । अव्याबाध गुणको प्रगट न होने देना वेदनीय कर्मका ३ । जीवादि तत्त्वोंमें रुचि न होने देना तथा चारित्रको रोकना मोहनीय कर्मका ४ । किसी शरीरमें रोक रखना आयुकर्मका ५ । अमूर्त्तत्व गुणको प्रगट न होने देना नामकर्मका ६ । अगुरु-लघुत्व गुणका नाश कर देना गोत्रकर्मका ७ । तथा दान लाभ

- णध चार प्रकारना छे (१) प्रकृति-णध, (२) स्थिति-णध, (३) अनुभाग  
णध अने (४) प्रदेश-णध

(१) प्रकृति णध-प्रकृति स्वभावने कहे छे, अर्थात् आत्मा वडे अदृश्य कश यला कर्मोंमा अमुक-अमुक प्रकारनी शक्ति आवी जवी ते जेम लीणडाने स्वभाव कटुता (कडवाश) छे, जेणने स्वभाव मधुरता (मिठाश) छे, धत्यादि जे रीते ज्ञानावरणीय कर्मने स्वभाव आत्माना ज्ञानने आच्छादित करवाने (ढाकवाने) छे १ दर्शनावरणने स्वभाव दर्शनने रोकवाने छे २ अव्याबाध गुणने प्रकट न थवा देवा जे वेदनीय-कर्मने स्वभाव छे ३ लघुवादि तत्त्वोंमा रुचि न थवा देवी तथा चारित्रने रोकवु जे मोहनीय-कर्मने स्वभाव छे ४ जोर शरीरमा आत्माने रोक रखवु जे आयु-कर्मने स्वभाव छे ५ अमूर्त्तत्व गुणने प्रकट थवा न देवा जे नामकर्मने स्वभाव छे ६ अगुरु-लघुत्व गुणका नाश कर देना गोत्रकर्मका ७ । तथा दान लाभ

पमा, कस्यचिच्चान्तर्मुहूर्त्तपरिच्छिन्ना, एव विभिन्नकर्मणा नियतकालावस्थान स्थिति-  
बन्धः (२) ।

यथा कस्यचिन्मोदकस्यानुभागो(रसो)ऽतिमधुरः स्वल्पमधुरो वा, कस्यचि-  
दतिकडुः स्वल्पकडुको वा, कस्यचिच्च नातिमधुरो नाप्यतिकडुको भवति, द्विगुणी-  
करणादिना च स एव मन्द-मन्दतरत्वादिव्यपदेश च लभते, तथा कर्मणामपि  
शुभाशुभादिरूपेण तीव्र-तीव्रतर तीव्रतम-मन्द-मन्दतर मन्दतमत्वादिभेदभिन्नो  
बन्धोऽनुभागबन्धो रसबन्धव्यपदेश्यः (३) ।

१ शुभकर्मणामनुभागो (रसो) द्राक्षेशुकीरमाक्षीरुदतिमधुरो भवति, यदनुभ-  
किसीकी सत्तर कोडाकोडी सागरोपमकी होती है, किसी कर्मकी अन्त-  
र्मुहूर्त्त मात्रकी होती है, इस प्रकार विभिन्न कर्मोंका अमुक समय तक  
आत्माके साथ स्थित रहना स्थितिवन्ध कहलाता है ।

(३) जैसे किसी मोदकका स्वाद (रस) बहुत मीठा होता है, किसी  
मोदकका कम मीठा होता है, किसीका स्वाद बहुत कडुआ होता है,  
किसीका कम कडुआ होता है, किसीका स्वाद न अधिक मीठा होता है,  
न अधिक कडुआ होता है, उसे ही द्विगुण आदि करदेनेसे वही मन्द  
मन्दतर आदि कहलाने लगता है । वैसे ही कर्मोंका रस शुभ<sup>१</sup> अशुभ  
रूपसे तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मन्द, मन्दतर और मन्दतम आदि भेदोंसे  
विविध प्रकारका होता है । उसे ही अनुभागबन्ध या रसबन्ध कहते हैं ।

१ शुभकर्मोंका अनुभाग (रस) दाख, साठा (गन्ना), दूध या मधुके समान  
होय छे, कोष्ठ कर्मनी स्थिति मात्र अतमुहूर्त्तनी होय छे ओ प्रकारे विभिन्न  
कर्मोंनु अमुक समय सुधी आत्मानी साथे स्थित रहेयु ओ स्थितिवन्ध कहेवाय छे,  
(३) जेभ कोष्ठ मोदकने स्वाद (रस) गडु मीठो होय छे कोष्ठ मोदकने  
ओछो मीठो होय छे, कोष्ठ मोदकने स्वाद गडु कडवो होय छे, कोष्ठने ओछो  
उडयो होय छे, कोष्ठने स्वाद न वधु मीठो के वधु उडयो होय छे, तेने द्विगुण  
(जेवडा) उरवाथी ते मद्द मद्दतर आदि कहेवावा लागे छे, जेज रीते कर्मने  
रस शुभा अशुभ इपथी तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मद्द, मद्दतर, मद्दतम आदि  
बेदेओ करीने विविध प्रकारने थाय छे ओने ज अनुभागवन्ध या रसवन्ध  
कहे छे

१ शुभ कर्मने अनुभाग (रस) द्राक्ष शेरडी दूध या मधुना जेवो अतिमधुर होय छे

एतेषा स्वरूप च सुखायोपाय मोक्षदृष्टान्तेन प्रदर्शयते—

यथा कस्यचिदौषधमोदकस्य प्रकृतिर्नातहारिका, कस्यचित्पित्तहारिका, कचित्कफहारिणी, कस्यचिद् बुद्धिनाशिनी, तथा कस्यचित्कर्मणः प्रकृतिर्गानावरकारिणी, कस्यचिर्दर्शनारणमिधायिनीत्येवमादिभिर्भिन्नशक्तिमता कर्मणा च प्रकृतिबन्धः (१) ।

यथा कस्यचिन्मोदकस्य स्थितिः सप्ताहोरात्रव्यापिनी, कस्यचित्पक्षव्यापि कस्यचनैकादिमास यावत् स्थितिस्तथा कस्यचित्कर्मणस्त्रिंशत्कोटीकोटीसागरोपस्थितिः, कस्यचिर्द्विंशत्कोटीकोटीसागरोपमा, कस्यचन सप्तत्तिकोटीकोटीसाग

सरलतासे समझनेके लिए मोदकका दृष्टान्त देकर चारों बन्धों स्वरूप दिखलाते हैं—

(१) जैसे किसी औषध-मोदककी प्रकृति वातको हरनेवाली होती किसीकी पित्तको हरनेवाली होती है, किसीकी कफको हरनेवाली होती है और किसी मोदककी प्रकृति बुद्धिको नष्ट करनेवाली होती । इसी प्रकार किसी कर्मकी प्रकृति ज्ञानका आवरण करनेवाली होती और किसीकी दर्शनका आवरण करनेवाली होती है । इस प्रकार भिन्न भिन्न शक्तिवाले कर्मोंका बन्ध होना प्रकृतिबन्ध है ।

(२) जैसे किसी मोदककी स्थिति एक सप्ताहकी होती है, कि मोदककी स्थिति एक पक्ष (पखवाड़े)की होती है, किसी मोदककी स्थिति एक मासकी होती है, वैसे ही किसी कर्मकी स्थिति तीस कोडाको सागरोपमकी होती है, किसीको बीस कोडाकोडी सागरोपमकी होती

सरलतासे समझनेके लिए मोदकका दृष्टान्त देकर चारों बन्धों स्वरूप दिखलाते हैं—

(१) जैसे किसी औषध-मोदककी प्रकृति वातको हरनेवाली होती किसीकी पित्तको हरनेवाली होती है, किसीकी कफको हरनेवाली होती है और किसी मोदककी प्रकृति बुद्धिको नष्ट करनेवाली होती । इसी प्रकार किसी कर्मकी प्रकृति ज्ञानका आवरण करनेवाली होती और किसीकी दर्शनका आवरण करनेवाली होती है । इस प्रकार भिन्न भिन्न शक्तिवाले कर्मोंका बन्ध होना प्रकृतिबन्ध है ।

(२) जैसे किसी मोदककी स्थिति एक सप्ताहकी होती है, कि मोदककी स्थिति एक पक्ष (पखवाड़े)की होती है, किसी मोदककी स्थिति एक मासकी होती है, वैसे ही किसी कर्मकी स्थिति तीस कोडाको सागरोपमकी होती है, किसीको बीस कोडाकोडी सागरोपमकी होती

यथा कस्यचिन्मोदकस्य प्रदेशः=रुणिकादिदलसञ्चयः परिमाणेन द्विकर्पमितः,  
कस्यचित्कर्पत्रयमितः, एव कस्मिंश्चित् कर्मदले परिमाणतोऽधिकसख्यकाः, कस्मि-  
श्चिन्न्यूनसख्यकाः, इत्येव न्यूनाधिसख्यरूपेण कर्मवर्गणाभिरात्मनोऽभिसम्बन्धः  
प्रदेशबन्धः (४) ।

मोक्षम्=मोक्षण मोक्षः, स च द्रव्यभावभेदाद्विविधः, तत्र द्रव्यतो निगडादितः,  
भावतो ज्ञानावरणीयाग्रप्रविधकर्मपाशतः पृथग्भवन्मात्मनः, प्रकृते च भावमोक्षस्य  
आत्मनः पुनरप्रादुर्भाव्यशेषकर्मक्षयादनन्तज्ञानशाश्वतावस्थिति-कृतकृत्यत्वाऽव्या-  
वाधसुखस्वरूपस्य ग्रहणम् ।

(४) जैसे किसी मोदकमें आटे आदिके प्रदेश, परिमाणमें दो तोला  
होता है, किसीका तीन तोला होता है। इसी प्रकार किसी कर्मदलमें  
अधिक सख्यावाले प्रदेश हैं, किसी कर्मदलमें कम सख्यावाले प्रदेश  
होते हैं, अतः न्यूनाधिक रूपसे कर्मवर्गणाओके साथ आत्माका सम्बन्ध  
होना प्रदेशबन्ध है।

छूटनेको मोक्ष कहते हैं, मोक्ष भी दो प्रकारका है—(१) द्रव्यमोक्ष  
और (२) भावमोक्ष। वेडी आदिसे छूटना द्रव्यमोक्ष है और ज्ञानावरण  
आदि आठ कर्मरूपी पाशसे आत्माका मुक्त हो जाना भावमोक्ष है।

यहां समस्त कर्मोंके आत्यन्तिक अभावसे उत्पन्न होनेवाले अनन्त  
ज्ञान, शाश्वत स्थिति, कृत-कृत्यता, अव्याघाध सुखस्वरूप भाव-मोक्षका  
ग्रहण किया गया है।

(४) જેમ કેઈ મોદકમાં આટા આદિનો પ્રદેશ પરિમાણમાં બે તોલા  
હોય છે, કેઈમાં ત્રણ તોલા હોય છે, એજ રીતે કેઈ કર્મદળમાં અધિક સખ્યા-  
વાળા પ્રદેશો છે, કેઈ કર્મદળમાં ઓછી સખ્યાવાળા પ્રદેશો હોય છે, એમ  
ન્યૂનાધિક રૂપે કર્મવર્ગણાઓની સાથે આત્માનો સબંધ થયેા એ પ્રદેશબંધ છે

છૂટવાને મોક્ષ કહે છે મોક્ષના પણ બે પ્રકાર છે (૧) દ્રવ્ય-મોક્ષ અને  
(૨) ભાવમોક્ષ, જેડી વગેરેથી છૂટવું એ દ્રવ્યમોક્ષ છે અને જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ  
કર્મરૂપી પાશથી આત્માનું મુક્ત થઈ જવું તે ભાવમોક્ષ છે

અહીં સર્વ કર્મોના આત્યન્તિક અભાવથી ઉત્પન્ન થનારા અનન્ત જ્ઞાન,  
શાશ્વત-સ્થિતિ, કૃતકૃત્યતા, અવ્યાગાધ-સુખ-અવરૂપ ભાવમોક્ષને શ્રદ્ધા કરવામાં  
આવેલ છે

वेन जीवः सान्द्रानन्दसन्द्रोद्दुन्दिलान्तःकरणो जायते । अशुभमर्मणां रसस्तु निम्ब  
किराततिक्तादियदतितरा तिक्तो भवति, यदनुभवेन जीवोऽनिर्वचनीय व्याकुलीभाव  
भजते, तीव्रतीव्रतरत्यादिरोधनार्थं च इष्टान्तः प्रदृश्यते-इक्षुनिम्बयोरन्यतरस्य  
चतु शेटरूपपरिमितो रसः 'स्वाभाविकरस' इत्युच्यते, यत्कितापद्मारोत्कालितो यदा  
शेटरुचतुष्टयस्थाने शेटरुत्रितयमात्रोऽवशिष्येत तदाऽसौ 'तीव्र' इत्युच्यते, पुनरु-  
त्कालनेन शेटरुद्वितयमात्रोऽवशिष्येत तदा 'तीव्रतर' इत्यभिधीयते, पुनरप्युत्का-  
लनेन शेटरुऋमात्रेऽवशिष्टे 'तीव्रतम' इति कथ्यते ।

इक्षु-निम्बयोरेव शेटरुऋमात्रो रसः 'स्वाभाविकरसः' इत्युच्यते, एकशेटरु-  
जलमेलनेन 'मन्दरस' इति, द्विशेटरुजलसंयोजनेन 'मन्दतरो रस' इति, शेटरु  
त्रितयपरिमितजलसम्पन्नेन 'मन्दतमो रस' इति व्यपदेश लभते ।

अतिमधुर होता है, इसके उपभोगसे आत्मामें अत्यन्त आनन्द उत्पन्न होता है ।  
अशुभ कर्मोंका फल नीम चिरायता आदिके समान अत्यन्त तिक्त होता है, इसका  
अनुभव करनेसे जीव अतिशय व्याकुलता प्राप्त करता है । तीन तीव्रतर आदि  
समझानेके लिये उदाहरण देते हैं—इक्षु या नीममेंसे किसीका चार सेर रस  
'स्वाभाविक रस' कहलाता है, यदि अग्रिमें उकालने पर तीन सेर रह जाय  
तो वह तीव्र कहलाता है, फिर उकालने पर दो सेर बच जाय तो तीव्रतर  
कहलाता है, यदि फिर उकालने-पर सिर्फ एक सेर बाकी रह जाय तो  
वह तीव्रतम कहलाता है ।

इक्षु और निम्बका एक सेर रस स्वाभाविक रस, उसमें एक सेर जल मिला  
दिया जाय तो मन्द, दो सेर मिलानेसे मन्दतर, तीन सेर मिलानेसे मन्दतम रस  
कहलाता है ।

केना उपभोग्यथी आत्माया अत्यत आनन्द उत्पन्न याय च अशुभ कर्मोनु इण लीमतेऽ कतिपय  
आदिनी रेड अत्यत तिक्त होय च केना अनुभव करवाथी एव अतिशय व्याकुलता प्राप्त करे च  
तीव्र तीव्रतर आदि सम्भववाने उदाहरणु व्यापे च-शेरीया या लीमतायाथी कडेना कडेना चार सेर रस  
स्वाभाविक रस कडेवाय च ने तेने अग्नि पर उकाणवाथी त्रय सेर रहे तो ते तीव्र कडेवाय च  
द्वी उकाणवाथी जे सेर रहे तो ते तीव्रतर कडेवाय च अने तेने द्वीथी उकाणता मात्र सेर बाकी  
रहे तो ते तीव्रतम कडेवाय च

शेरीया अने लीमताया केक सेर स्वाभाविक रसमा ने केक सेर पाणी मेलववाभा  
आवे तो मन्द, जे सेर पाणी मेलवता मन्दतर अने त्रयु सेर पाणी मेलववाथी मन्दतम रस कडेवाय च

तस्मादात्मनः सकलकर्ममलविरहिता सद्भावस्वरूपा काचिदवस्थाऽवश्यम्भाविनी ।

न च 'दीपस्याऽभ्रस्य वा निरन्वयविनाशदर्शनादात्मनः स (निरन्वयविनाशः) कथं ने-ति शङ्कनीयम्, तयोरपि निरन्वयविनाशानभ्युपगमात्, यथा कर्पूरस्य 'पिपरमेष्ट' इति ख्यातपदार्थस्य वा वातेन द्वियमाणस्य परिणमनसौक्ष्म्यादि-न्द्रियगोचरत्वापायेऽपि न सर्वथाऽभावः किन्त्ववस्थान्तरेण परिणतिमानम्, तथैव प्रदीपपर्यायाऽऽपन्नाः पुद्गलास्तमस्त्वेन परिणमन्ति, एवमभ्रस्यापि विशीर्यमाणस्य पुद्गलपुद्गलः परिणामसूक्ष्मत्वेन दृष्टिपथमप्राप्तोऽपि न पुद्गलत्वेनाऽसद्भूतः। एवमेवा-

नहीं होता। जब सत् पदार्थका अभाव नहीं हो सकता तो आत्माकी भी समस्त कर्मोंसे रहित विद्यमान अवस्था अवश्य होनी चाहिये।

बौद्ध-जब दीपककी ज्वालाका तथा मेघका निरन्वय नाश देखा जाता है तो आत्माका निरन्वय (सर्वथा) नाश क्यों नहीं हो सकता?

जैन-यह कहना सत्य नहीं है कि दीपककी ज्वाला और मेघ का निरन्वय नाश होजाता है। वह सूक्ष्मरूपसे परिणमन होनेसे यद्यपि इन्द्रियगोचर नहीं होता तथापि उसका सर्वथा अभाव नहीं होजाता, वह दूसरी सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होजाता है। इसी तरह प्रदीप अवस्था वाले पुद्गल अन्धकाररूपमें परिणत होजाते हैं। मेघ जब उन्न-भिन्न हो जाता है तो सूक्ष्मरूपमें परिणत होजाने से इन्द्रियोंद्वारा गृहीत नहीं हो सकता तथापि पुद्गल के रूपमें विद्यमान रहता ही है। ऐसे ही समस्त

थते नथी जे सत् पदार्थने अभाव थऽ शकते नथी ते आत्मान्नी पणु सर्व कर्मोथी रहित विद्यमान अवस्था अवश्य होवी जेथंजे

बौद्ध-जे दीपकनी ज्वालाको तथा मेघको निरन्वय नाश जेवाभा आवे छे, ते आत्मानो निरन्वय (सर्वथा) नाश केम न थऽ शके ?

जैन-जेम जेहेतु सत्य नथी के दीपकनी ज्वाला अने मेघको निरन्वय नाश थऽ नथे छे सूक्ष्मरूपथी परिणमन ववाथी जे के ते इन्द्रियगोचर थता नथी, तथापि जेको सर्वथा अभाव थऽ जतो नथा ते पीछे सूक्ष्म अवस्थाने पावे छे जे गीते प्रदीप अवस्थावाला पुद्गल अन्धकाररूपमा परिणत थऽ नथे छे मेघ नथाके उन्न-भिन्न थऽ नथे छे त्याके ते सूक्ष्मरूपमा परिणत थऽ नथेथी इन्द्रियोंद्वारा अहीत थऽ शकते नथा. तोपण पुद्गलना रूपमा विद्यमान

અત્ર ચૌદ્ધા-“દીપનિર્ણયદાત્મનો નિર્ણય મોક્ષઃ” યથોક્તમ્—

“દીપો યથા નિર્ગતિમભ્યુપેતો, નૈરાયર્ણિ ગચ્છતિ નાન્તરિસમ્ ।

દિશ ન કાચ્ચિદ્વિદિશ ન કાચ્ચિત્, સ્નેહક્ષયાત્કેવલમેતિ શાન્તિમ્ ॥૧॥

જીયસ્તથા નિર્ગતિમભ્યુપેતો, નૈરાયર્ણિ ગચ્છતિ નાન્તરિસમ્ ।

દિશ ન કાચ્ચિદ્વિદિશ ન કાચ્ચિત્, હે શક્ષયાત્કેવલમેતિ શાન્તિમ્ ॥૨॥”

इत्याहुस्तच्छाश्वतायस्थितिपदेन निराकृतम्, सतोऽत्यन्तविनाशमात्रात्,

चौद्धमतावलम्बी मानते हं कि-“जैसे दीपक बुझ जाता है उसी प्रकार आत्माका अभाव हो जाना मोक्ष है” । कहाभी है—

“जैसे दीपककी ज्वाला जग नष्ट हो जाती है, तब न भूमिकी ओर जाती है न आकाशकी ओर जाती है, न किसी दिशामे जाती है, न विदिशामे जाती है, किन्तु स्नेह (तेल) का अभाव हो जानेसे शान्त हो जाती है ॥ १ ॥

इसी प्रकार मुक्त जीव न भूमिकी ओर जाता है, न आकाशकी ओर जाता है, न किसी दिशामे जाता है, न किसी विदिशामें जाता है, हा, दु खोका क्षय होजानेसे शान्त होजाता है, अर्थात् मुक्त अवस्थामें जीवका अभाव होजाता है ॥ २॥”

ऐसा माननेवाले बौद्धोंका खण्डन मोक्षके लक्षणमे आये हुए ‘शाश्वत अवस्थिति’ पदसे किया गया है, क्योंकि सत् पदार्थका कभी अभाव

બૌદ્ધમતાવલમ્બીઓ માને છે કે-“જેમ દીપક ખુગાઈ બંધ છે તેમ આત્માનો અભાવ થઈ જવો એ મોક્ષ છે” કહ્યું છે કે—

“જેમ દીપકની જ્વાળા જ્યારે નષ્ટ થઈ બંધ છે, ત્યારે નથી તે ભૂમિની તરફ જતી, નથી આકાશની તરફ જતી, નથી કોઈ દિશામા જતી, નથી વિદિશામા જતી, પરંતુ સ્નેહ (તેલ) નો અભાવ થવાથી શાન્ત થઈ બંધ છે (૧)

એ રીતે મુક્ત જીવ નથી ભૂમિનું તરફ જતો, નથી આકાશની તરફ જતો, નથી કોઈ દિશામા જતો, નથી કોઈ વિદિશામા જતો, હા, દુ ખોનો ક્ષય થઈ જવાથી શાન્ત થઈ બંધ છે, અર્થાત્ મુક્ત અવસ્થામા જીવનો અભાવ થઈ બંધ છે ” (૧)

એમ માનનારા બૌદ્ધોનું ખડન મોક્ષના લક્ષણમા આવેલા ‘શાશ્વત અવસ્થિતિ’ શબ્દ વડે કરવામા આવ્યું છે, કારણ કે સત્ પદાર્થનો કદાપિ અભાવ

मोक्षः?। भिन्नाश्चेत्तर्हि वह्निसैत्ययोरिव तयोर्गुणगुणिभावोऽनुपपन्नः समवायस्या-  
ऽसिद्धत्वात्, अत एव न बुद्ध्यादीनामात्मगुणत्वम् । अन्तु वा अयौक्तिकोऽपि  
गुणगुणिभावस्तथापि ज्ञानसुखाद्यभावादात्मान को जडीरुर्गुम्युत्रच्छेदिच्छेदपि ?  
ईदृशाद्भवदभिमतान्मोक्षात्ससारावस्थैव सम्यक्तराऽस्माकमस्तु, यस्मिन् सत्यपि  
क्लेशे कादाचित्क स्वल्पमपि सुख लभ्यत एव ।

लोकेऽपि भवदभिमतमोक्षमाहात्म्यमुपहस्यते, यथा—

नाश होजायगा तो मोक्ष किस का होगा ? । अगर कहो कि ये गुण  
आत्मासे भिन्न हैं तो उनका आत्मा के साथ गुण-गुणीका सम्बन्ध कैसे  
हूआ ? , भिन्न होनेके कारण जैसे अग्नि और शीतलता में गुण-गुणि  
सम्बन्ध नहीं होता वैसे ही आत्मा और बुद्धि आदि का भी सम्बन्ध  
नहीं हो सकता । यदि समवाय सम्बन्ध से गुण गुणिभाव मान लोगे  
तो बुद्धि आदि गुणों का नाश नहीं हो सकता, क्योंकि समवाय सम्बन्ध  
को तुमने नित्य माना है, अतः बुद्धि आदि आत्मा के गुण ही सिद्ध  
नहीं होते । यद्यपि यह सम्बन्ध युक्ति से तो सिद्ध नहीं होता फिर भी  
मान लोगे तो जबकि मोक्षमें ज्ञान और सुख आदिका अभाव हो जाता  
है तो कौन बुद्धिमान् अपनी आत्मा को इन गुणों से रहित जड के  
समान बनाने का प्रयत्न करेगा ? तुम्हारे इस मोक्षसे तो ससार ही भला  
जिसमें दु खोंके साथ-साथ कभी-कभी थोडा बहुत सुख भी मिल जाता  
है । लोकमें भी तुम्हारे माने हुए मोक्ष की हँसी उड़ाई जाती है, सुनो—

पछी मोक्ष केने। थये ? अगर ने कडे। डे ये शुष् आत्माथी भिन्न छे तो  
आत्मानी साथे केने। शुष् शुष्णीने सणध डेवी रीते थये ? भिन्न होवाने  
कारण्णे नेम अग्नि अने शीतलतामा शुष् शुष्णी सणध नहीं होतो, तेनी रीते  
आत्मा अने बुद्धि आदिने। पण्ण सणध नहीं होथ शकते। ने समवाय सण  
धथी शुष् शुष्णीभाव मानी देखे। तो बुद्धि आदि शुष्णीने। नाश नहीं थथ शकते,  
कारण्ण डे समवाय सणधने तमे नित्य मान्ये। छे अथी बुद्ध आदि आत्माना  
शुष् न सिद्ध थता नहीं ने डे ये सणध युक्तथो तो सिद्ध नहीं थतो,  
तोपण्ण मानी देखे। तो ने मोक्षमा ज्ञान अने सुख आदिने अभाव थथ न्य छे  
तो थये। बुद्धिमान पोताना आत्माने ये शुष्णीथी रहित नउनी समान थना  
ववाने। प्रयत्न करथे ? तमार अवे। मोक्ष करता तो ससार न नारे। डे नेमा  
हुणेनी साथे साथे कथ कथवार थोडु धण्ण सुण पण्ण मणा न्य छे। बोडोमा  
पण्ण तमार मानेवा मोक्षनी कासी उअववाभा आवे छे। भावणे।—



ऽऽत्माऽपि कृत्स्नः कलापविमुक्तः शुद्धः सिद्धो बुद्धोऽनन्तगुणसमृद्धो मोक्षान्वयायामपि विप्रत एवेति ।

अत्र 'अनन्तज्ञाने'-ति विशेषणेन नैयायिकवैशेषिकाभिमत मत निरस्तम् ।  
तथाच—

“बुद्धि-सुख-दुःखेच्छा द्वेष-प्रयत्न धर्मा-अधर्म-सस्कारस्वरूपाणा नवानामात्मविशेषणगुणानामत्यन्तस्निग्धेदो मोक्षः” इति । अत्रोच्यते—बुद्ध्याद्यो गुणा आत्मनो भिन्ना अभिन्ना वा ?, अभिन्नाथेत्तद्विनाशे आत्मनोऽपि विनाशोऽवश्यम्भावी तत्स्वरूपत्वात्, औष्ण्यविनाशे वह्निविनाशवत्, तथा च तदानीं कस्य

कर्मोसे रहित, शुद्ध, सिद्ध, बुद्ध और अनन्त गुणों से समृद्ध आत्मा मोक्ष-अवस्थामें भी विद्यमान रहती है ।

'अनन्तज्ञान' विशेषण से नैयायिक-वैशेषिक मत का निराकरण किया गया है ।

उनकी मान्यता है कि—“बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और सस्कार, इन आत्मा के नौ विशेष गुणोंका अत्यन्त विनाश हो जाना मोक्ष है ।”

यहाँ पूछना यह है कि—बुद्धि आदि गुण आत्मा से भिन्न हैं या अभिन्न ?, यदि अभिन्न हैं तो गुणोंका नाश होनेपर आत्माका भी नाश हो जायगा, क्योंकि आत्मा और गुण भिन्न नहीं हैं—एक ही है, जैसे उष्णताका नाश होनेपर अग्निका नाश होजाता है । जब आत्मा का

तो रहे न छे अथवा न रीते सर्व कर्मोथी रहित, शुद्ध, सिद्ध, बुद्धि अने अनन्त शुद्धोथी समृद्ध आत्मा मोक्ष अवस्थाभा पणु विद्यमान रहे छे

'अनन्त ज्ञान' विशेषणथी नैयायिक-वैशेषिक मतनु निराकरण करवाभा आणु छे

तेनी मान्यता अथवा छे के “बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म अने सस्कार, अथ आत्माना नव विशेष शुद्धोने अत्यन्त विनाश थथ नवे अथ मोक्ष छे”

अर्ही पूछवानु अथ छे के—बुद्धि आदि शुद्ध आत्माथी भिन्न छे के अभिन्न ? अथ अभिन्न छे तो शुद्धोने नाश थथा आठ आत्मानो पणु नाश थथ नथे, कारणु के आत्मा अने शुद्ध भिन्न नथी—अथ न छे, अथ नके उष्णताने नाश थवाथी अग्निने पणु नाश थथ नथ छे, अथ आत्मानो नाश थथ नथे तो

‘आत्मनः’ इतिपदेन प्रत्यादिष्टम् । किञ्च-तन्मते प्रकृति-पुरुषयोः सयोगोऽपि न घटते कुतो मोक्षचर्चा?, तथाहि-नित्या प्रकृतिः प्रवृत्तिस्वभावा तदितरस्वभावा वा? तयोरान्यः साव्यः पक्षः, तत्र तत्प्रवृत्तेरुपरत्यभावेन मोक्षासम्भवात्, उपरत्यभ्युपगमे च प्रकृतेरनित्यत्वप्रसङ्गः । द्वितीयोऽपि पक्षो न क्षोदक्षम प्रवृत्तेरेवाऽसम्भवतः कथमिव भवसम्भवः?, भवाभावे कस्य मोक्षः? एव तन्मते मोक्ष-स्यैवार्योक्तिरुत्वात्कथं तल्लक्षणस्य समीचीनत्व सिध्येत्? ।

हो जाता है, इसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं ।”

ऐसी साख्यमतानुयायियोंकी मान्यता है । ‘आत्मनः’ पदसे उसका निराकरण किया गया है । साख्यमतमें प्रकृति और पुरुषका सयोग ही सिद्ध नहीं होता तब मोक्ष की चर्चा ही क्या करना? सो ही आगे दिखलाते हैं कि-प्रकृति का स्वभाव प्रवृत्ति करनेका है या नहीं?, पहला पक्ष दूषित है, क्योंकि प्रकृतिका स्वभाव यदि सर्वदा प्रवृत्ति करने का है तो उस प्रवृत्तिकी निवृत्ति नहीं होसकती और इसी कारणसे कभी मोक्ष भी नहीं होगा । दूसरा पक्ष भी विचार करनेसे बाधित होजाता है । जब प्रकृति प्रवृत्ति ही नहीं करेगी तो ससार कैसे होगा?, और जब ससार (कर्मसहित अवस्था) ही नहीं तो मोक्ष किससे होगा?, अर्थात् किसी प्रकार मोक्ष ही नहीं बनता । जब मोक्ष नहीं बनता तो उसके लक्षण की निर्दोषता भी सिद्ध नहीं होसकती ।

थर्ष नथ छे, जे अवस्थाने मोक्ष कडे छे ”

जेवी साख्यमतानुयायीज्योनी मान्यता छे आत्मन. शण्ठथी जेनु निराकरण करवाभा आण्यु छे साख्यमतमा प्रकृति जने पुञ्जने सयोग ज सिद्ध नथी थते। तो मोक्षनी चर्चा ज शु करवी? तेज आगण जताववाभा आवे छे के-प्रकृतिने स्वभाव प्रवृत्ति करवाने छे के नडि? पडेके पक्ष दूषित छे, कारण के प्रकृतिने स्वभाव जे सर्वदा प्रवृत्ति करवाने छे तो जे प्रवृत्तिनी निवृत्ति थर्ष शकती नथी, जने ते कारणे उदापि मोक्ष पणु थथे नडि थीजे पक्ष पणु विचार करवाथी बाधित थर्ष नथ छे जे प्रकृति प्रवृत्ति ज नडि करे तो ससार डेवी रीते थथे? जने जे ससार (कर्मसहित अवस्था) ज नथी तो मोक्ष शानाथी थथे? अर्थात् केछ प्रकार मोक्ष ज नथी जनतु, जे मोक्ष नथी जनतु तो तेना लक्षणनी निर्दोषता पणु सिद्ध थर्ष शके नडि

“अर वृन्दावने रम्ये, शृगालस्य व्रजाम्यहम् ।

न तु वैशेषिकीं मुक्तिं, प्रार्थयामि व्रजान् ॥ १ ॥” इति ।

यत् “अनन्तसुखरूपो मोक्षः” इति तदप्यसमीचीनम्, तथाहि—तदन्त-  
सुख मुक्तात्मनो ज्ञानगोचर भवति न या?, आग्ने पक्षे ज्ञानाऽऽनन्त्यप्रसङ्गः, तद-  
न्तरेणाऽनन्तसुखसवेदनाऽसम्भवात् । द्वितीये च सुखस्वभावतामङ्गप्रसङ्गः, सा-  
तसवेदनस्यैव सुखत्वात्, अत एवाऽनन्तज्ञानरिहितसुखस्वभावत्वमोक्षस्य न सि यति ।  
“प्रकृतावुपरताया' पुरुषस्य स्वस्वरूपेणाऽऽस्थान मोक्ष” इति हि साङ्ख्याः, तद्

१ उपरताया=निवृत्तायाम् ।

“मैं मनोहर वृन्दावनमें शृगाल हो जाना पसंद करता हूँ, किन्तु  
वैशेषिकका मोक्ष नहीं चाहता ॥१॥”

जो कहते हैं कि—“मोक्ष अनन्तसुखस्वरूप है” अर्थात् मोक्षमें  
सुख ही अवशिष्ट रह जाना है और कुछ नहीं रहता। उनका यह मानना  
समीचीन नहीं है। वह अनन्त सुख मुक्तात्मा के ज्ञानका विषय है या  
नहीं? पहला पक्ष स्वीकार करो तो अनन्त सुखको जाननेके लिए  
अनन्त ज्ञान भी चाहिए। अनन्त ज्ञानके विना अनन्त सुखका बोध  
नही होसकता। दूसरा पक्ष अगीकार करो तो सुखस्वभावता सिद्ध  
नही होसकती, क्योंकि, सातारूप सवेदनको ही सुख कहते हैं। जब  
सवेदन ही नहीं तो सुख हो ही नहीं सकता है, इसलिए “अनन्त  
ज्ञानसे रहित सुखस्वभाववाला मोक्ष” नहीं मानना चाहिए।

“प्रकृति जब उपरत होजाती है तब पुरुष अपने स्वरूपमें स्थित

“हुं मनोहर वृन्दावनमा शृगाल ( शियाण ) यद्य ज्वानु पसद कइ छ,  
परतु वैशेषिकने मोक्ष नथी पसद करतो ” (१)

ज्येओ कडे छे के “मोक्ष अनत सुभस्वरूप छे” अर्थात् मोक्षमा सुभ ज  
अवशिष्ट रहि जाय छे भीष्ण कथु नथी रहेतु, तेज्योनु जे मानवु पणु  
समीचीन नथी जे अनत सुभ मुक्तात्माना ज्ञानने विषय छे के नहि ?  
पडेवै। पक्ष स्वीकारे तो अनत सुभने बलवाने भाटे अनत ज्ञान पणु जेधजे  
अनत ज्ञान विना अनत सुभने बोध थद्य शकते नथी भीजे पक्ष स्वीकारे  
तो सुभ स्वभावता सिद्ध थद्य शकती नथी कारणु के सातारूप सवेदनने ज  
सुभ कडे छे जे सवेदन ज होतु नथी तो सुभ थद्य ज शकतु नथी तेथी “अनत  
ज्ञानथी रहित सुभस्वभाववाणे मोक्ष” नहि मानवै जेधजे

“प्रकृति ज्यारे उपरत थद्य जाय छे त्यारे पुर्य पीताना स्वरूपमा स्थित

‘आत्मनः’ इतिपदेन प्रत्यादिष्टम् । किञ्च-तन्मते प्रकृति-पुरुषयोः सयोगोऽपि न घटते कुतो मोक्षचर्चा ? तथाहि-नित्या प्रकृतिः प्रवृत्तिस्वभावा तदितरस्वभावा वा ? तयोराग्रः सावग्रः पक्षः, तत्र तत्प्रवृत्तेरुपरत्यभावेन मोक्षासम्भवात्, उपरत्यभ्युपगमे च प्रकृतेरनित्यत्वप्रसङ्गः । द्वितीयोऽपि पक्षो न क्षोदक्षम प्रवृत्तेरेवाऽसम्भवतः कथमिव भवसम्भवः ? भवाभावे कस्य मोक्षः ? एव तन्मते मोक्षस्यैवार्योक्तिरुत्वात्कथ तल्लक्षणस्य समीचीनत्व सिध्येत् ? ।

हो जाता है, इसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं ।”

ऐसी सारथमतानुयायिओंकी मान्यता है । ‘आत्मनः’ पदसे उसका निराकरण क्रिया गया है । सांख्यमतमे प्रकृति और पुरुषका सयोग ही सिद्ध नहीं होता तब मोक्ष की चर्चा ही क्या करना ? सो ही आगे दिखलाते हैं कि-प्रकृति का स्वभाव प्रवृत्ति करनेका है या नहीं ? पहला पक्ष दूषित है, क्योंकि प्रकृतिका स्वभाव यदि सर्वदा प्रवृत्ति करने का है तो उस प्रवृत्तिकी निवृत्ति नहीं होसकती और इसी कारणसे कभी मोक्ष भी नहीं होगा । दूसरा पक्ष भी विचार करनेसे बाधित होजाता है । जब प्रकृति प्रवृत्ति ही नहीं करेगी तो ससार कैसे होगा ? और जब ससार (कर्मसहित अवस्था) ही नहीं तो मोक्ष किससे होगा ? अर्थात् किसी प्रकार मोक्ष ही नहीं बनता । जब मोक्ष नहीं बनता तो उसके लक्षण की निर्दोषता भी सिद्ध नहीं होसकती ।

थर्ष न्य छे, अे अवस्थाने मोक्ष कडे छे ”

अेवी सांख्यमतानुयायीअेनी मान्यता छे आत्मनः शब्दथी अेनु निराकरण करवाभा आर्थु छे सांख्यमतमा प्रकृति अने पुरुषनो सयोग न सिद्ध नथी थतो तो मोक्षनी अर्था न शु करवी ? तेन आगण गताववाभा आवे छे अे-प्रकृतिनो स्वभाव प्रवृत्ति करवानो छे के नडि ? पडेथे पक्ष दूषित छे, कारणु अे प्रकृतिनो स्वभाव ने सर्वदा प्रवृत्ति करवानो छे तो अे प्रवृत्तिनी निवृत्ति थर्ष शकती नथी, अने ते कारणु अेवापि मोक्ष पञ्च थथे नडि थीने पक्ष पञ्च विचार करवाथी बाधित थर्ष न्य छे ने प्रकृति प्रवृत्ति न नडि करे तो ससार अेवी रीते थथे ? अने ने ससार (कर्मसहित अवस्था) न नथी तो मोक्ष शानावी थथे ? अर्थात् केथ प्रकारे मोक्ष न नथी बनतु, ने मोक्ष नथी बनतु तो तेना लक्षणनी निर्दोषता पञ्च सिद्ध थर्ष शके नडि

यद्वाऽऽजीवकाः (सम्प्रदायविशेषाः) मुक्तेः सकाशादात्मनः पुनरागमन-  
मामनन्ति, तथाहि—

“ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य, कर्तारः परम पदम् ।

गन्त्राऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि, भय तीर्थनिष्कारतः ॥१॥” इति,

तत् ‘पुनरप्रादुर्भावतये’—ति पदेनाऽपाकृतम्, यतो मोक्षः कर्मनागे सति  
सम्पद्यते, कर्म च कर्मणैव जन्यते, ततश्च मुक्तारस्याया कर्माभावात्कृत पुनः  
कर्मोत्पत्तिः?, तदभावे च कुतस्तरा ससारागमनम्? ससारस्य कर्महेतुत्वात्, न  
कारणमन्तरेण कार्योत्पत्तिरिति सर्वसमतत्वाच्चेति ।

आजीवक सम्प्रदाय वाले ऐसा कहते हैं कि—“आत्मा मोक्ष से  
वापस लौट आती है। कदाभी है—

“धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले ज्ञानी परम पदको प्राप्त होकर  
जब तीर्थका अनादर होने लगता है तब मोक्षसे फिर ससारमे आ  
जाते हैं ॥१॥”

इनका यह मत ‘पुनरप्रादुर्भावतया’ इस विशेषण से खण्डित हो  
गया है। क्योंकि कर्मोंके नाश होने पर ही मोक्ष होता है, और कर्म  
कर्मोंसे ही उत्पन्न होते हैं। मोक्षमे कर्मोंका अभाव होजानेसे कर्मोंकी  
उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए ससारमे आगमन संभव नहीं है। कारणके  
बिना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होसकती, ऐसा सब सिद्धान्तवाले स्वीकार  
करते हैं।

आलोक्य संप्रदायवाणा अभे कडे छे के—“आत्मा मोक्षधी पाछा इरी  
आवे छे कहु छे के—

“धर्मतीर्थनी स्थापना करनारा ज्ञानीओ परम पदने प्राप्त थदने न्यारे  
तीर्थने अनादर थना लागे छे त्यारे मोक्षभाधी पाछा ससारमा आवी  
जाय छे” (१)

ओने ओ मत ‘पुनरप्रादुर्भावतया’ ओ विशेषणधी अडित थद गथे छे  
कारण के कर्मोंने नाश थवाधी न मोक्ष थाय छे अने कर्म कर्मोंधी न उत्पन्न  
थाय छे मोक्षमा कर्मोंने अभाव थद नवाधी कर्मोंनी उत्पत्ति थती नहीं, तेधी  
ससारमा इरी आववाने संभव नहीं कारण बिना कार्यनी उत्पत्ति थ शकती  
नहीं, ओबु सर्व सिद्धान्तवाणाओ स्वीकारे छे

“आत्मनः सततमूर्ध्वगतिर्मुक्ति”-रिति मण्डलीमतानुयायिनः, तच्च प्रमत्त-  
प्रलपनप्रायम्, लोकाकाशानन्तर धर्मास्तिकायस्यास्तित्वाभावात् । धर्मास्तिकायस्य  
जीवपुद्गलाना गतिनिमित्तत्वं प्रमाणसिद्धं, तथाहि-गमनोन्मुखाना जीवपुद्गलाना  
गतिर्बाह्यनिमित्तसापेक्षा गतित्वात्, बाह्यनिमित्तमत्र धर्मास्तिकायोऽन्यस्यासम्भवात्,  
लोकाकाशाऽनन्तर तदभावाच्च तस्माद्मूर्ध्व गतिसम्भवः । अत एवाऽर्गाणां हार्त-  
मताभिमतमुक्तिस्वरूपमेवेति ।

ननु नरामरतिर्यङ्गनारकपर्यायस्वरूप एव ससारस्तेभ्यः पृथग्भावेन न कस्य-

मण्डलीमत के माननेवाले कहते हैं कि-“आत्मा सदा ऊपर चली जाती है कहीं ठहरती नहीं है” यह कथन उन्मत्त पुरुषके प्रलापके सदृश है, क्योंकि लोकाकाशके बाद धर्मास्तिकायका सद्भाव नहीं है । यह बात प्रमाण से सिद्ध है कि धर्मास्तिकायके विना जीव और पुद्गलोंकी गति विना बाह्य कारण के नहीं होसकती, क्योंकि-‘वह गति है, जो जो गति होती है वह बाह्य निमित्तकी अपेक्षा रखती है’ । गति में बाह्य निमित्त धर्मास्तिकाय ही होसकना, क्योंकि अन्य किसीमें ऐसी शक्ति नहीं है । यह धर्मास्तिकाय लोकाकाशसे आगे नहीं है, इसलिए लोकाकाशसे आगे आत्मा गमन भी नहीं कर सकती’ । अत एव सिद्ध हुआ कि ‘आर्हतमत (जिनमत) में माना हुआ मोक्षका लक्षण ही सर्वथा निर्दोष है’ ।

प्रश्न-मनुष्य, देव, तिर्यश्च और नारकी-पर्यायस्वरूप ही ससार है

मण्डलीमतना माननाशब्दो कहे छे के “आत्मा सदा ऊपर आट्यो जाय छे, कथाय शोभतो-रहेतो नथी” आ कथन उन्मत्त पुरुषना प्रलाप जेवु छे, कारण के लोकाकाशनी पछी धर्मास्तिकायना सद्भाव न नथी अे बात प्रमाणथी सिद्ध थयेवी छे के धर्मास्तिकाय विना एव अने पुद्गलोंने गति बाह्य कारण विना थ शकती नथी, कारण के ‘अे गति छे, जे जे गति होय छे ते ते बाह्य निमित्तनी अपेक्षा राणे छे’ गतिभा बाह्य निमित्त धर्मास्तिकाय न होय गडे छे जेवु के अन्य दोषभा अेरी शकित नथी अे धर्मास्तिकाय लोकाकाशथी आगण नथी, तथी लोकाकाशथी आगण आत्मा गमन करी शकतो नथी अेटले सिद्ध थयु के “आर्हतमत (जैनमत)मा मानेजु मोक्षनु लक्षण न सर्वथा निर्दोष छे”

प्रश्न-मनुष्य, देव, तिर्यश्च अने नारकी-पर्यायस्वरूप न ससार छे अे

नापि श्रदानक्रियामात्रेण ज्ञानाऽभावात् (६) । एवमेव मोक्षोऽप्यन्यतमाभावे न सम्भवत्यपि तु समुदितरत्नत्रयादेवेति । त मोक्ष च जानीयात्=विद्यादित्यर्थः ॥१५॥

और पापाणको पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि वहाँ क्रिया नहीं है । (५) ज्ञान और क्रियामात्रसे भी पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि श्रद्धान नहीं है । (६) श्रद्धान और क्रियामात्रसे भी पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि ज्ञानका अभाव है । इसी प्रकार मोक्ष भी समुदित तीनोंसे प्राप्त होता है, किसी एकके अभावमें नहीं होसकता ।

जिस प्रकार वन में आग लगने पर, वहाँ रहे हुए अन्धा नेत्रोंके अभावसे, पङ्क चरणों के अभावसे और अश्रद्धालु अग्निकी दाहकता शक्ति के प्रति श्रद्धाके अभावसे उस वन से नहीं निकल सकते हैं उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रोंसे रहित होनेके कारण अन्ध जीव, सम्यक्चारित्र्यसे रहित होनेके कारण पङ्क जीव और सम्यग्दर्शन के अभावसे अश्रद्धालु जीव भी जन्म-जरा-मरण रूपी भीषण दुःखोंकी प्रचण्ड अग्नि से जलते हुए इस ससार रूपी वन से नहीं निकल सकते हैं । जैसे-अन्ध, पङ्क, और अश्रद्धालु वनाग्नि में जल मरते हैं उसी प्रकार ये भी ससाराग्निमें जल मरते हैं । परन्तु जिनके नेत्र और दोनों चरण अक्षत हैं, और अग्निकी दाहकता-शक्ति के प्रति भी श्रद्धा है वे जिस प्रकार दवाग्नि-प्रज्वलित वनको पार कर जाते हैं उसी प्रकार जो जीव सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य

करी शकता नहीं कारण के त्या क्रिया नहीं (५) ज्ञान अने क्रिया मात्रथी पणु अलग करी शकता नहीं, कारण के श्रद्धान नहीं (६) श्रद्धान अने क्रियाथी पणु अलग करी शकता नहीं कारण के ज्ञानने अभाव छे अरीते मोक्ष पणु समुदित त्रयेथी प्राप्त थाय छे, केछ अकेने अभाव होय तो मोक्ष प्राप्त थतो नहीं  
जेम वनमा आग लागवाथी, त्या रहेले आधणो नेत्रो न होवाथी, ल गडो पणो न होवाथी, अने अश्रद्धालु अग्निनी दाहकता-शक्ति प्रत्ये श्रद्धा न होवाथी ते वनमाथी नीकणी शकतो नहीं तेम सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रो न होवाथी आधणो एव, सम्यक्चारित्र्य न होवाथी ल गडो एव, अने सम्यग्दर्शन न होवाथी अश्रद्धालु एव पणु जन्म-जरा-मरणरूपी भीषण दुःखोना प्रचण्ड अग्निथी प्रज्वलित आ ससाररूपी वनमाथी नीकणी शकतो नहीं जेम आधणो, ल गडो अने अश्रद्धालु वन गिनमा गणी भरे छे तेम आ एवो पणु ससाराग्निमा गणी भरे छे परन्तु जेना नेत्रो अने जेठ चरणो साभूत छे, अने अग्निनी दाहकता शक्ति प्रत्ये पणु श्रद्धा छे ते जेम दवाग्नि प्रज्वलित वनने पार करी जाय छे तेज प्रकारे जे एवो सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य अने सम्यग्दर्शनथी

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९  
 मूलम्-जया पुण्णं च पाव च, वध मोक्ख च जाणड् ।

१० १७ १६ १९ १७ १३ १८ १५  
 तथा निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ॥१६॥

छाया—यदा पुण्य च पाप च, वन्ध मोक्ष च जानाति ।

तदा निर्विन्ते भोगान्, ये दिव्या ये च मानुषा. ॥१६॥

सान्प्रयार्थः-जया=जय पुण्ण च पाव च=पुण्य और पापको, च=तथा वध  
 मुक्ख=वध और मोक्षको जाणड्=जानता है, तथा=जय जे दिव्वे=जो देव  
 सम्बन्धी य=और जे माणुसे=जो मनुष्यसम्बन्धी (भोग है, उन) भोए=भोगोको  
 निव्विदए=तत्त्वसे विचारता है, अर्थात् निस्सार समझने लगता है ॥१६॥

टीका-‘जया पुण्ण’-मित्यादि । यदा पूर्वप्रतिपादितलक्षणलक्षित पुण्यादिक जानाति  
 तदा ये दिव्याः=दिवि=स्वर्गे भवाः देवसम्बन्धिनः, च=तथा ये मानुषा =मनुष्य-  
 सम्बन्धिनः (भोगाः सन्ति तान् सर्वानपि) भोगान्=भुज्यन्ते=निर्विश्यन्ते=तत्त-  
 दिन्द्रियनोऽन्द्रियानुक्रलतयोपयुज्यन्त इति भोगाः=शब्दादिविषयास्तान् निर्विन्ते=  
 तत्त्वतो विचारयति-“ भोगिभोगोपमाः खल्विमे भोगा अशुचयोऽशुचिसम्भवाः  
 शटन पतन विप्रसन्नस्यमात्रा अशाश्वताश्च, को नाम विवेकी एवत्रिगानिमान् भोगा-

और सम्यग्दर्शन से युक्त हैं वे भी जन्म-जरा-मरणरूप भीषण दुःखोंके  
 प्रचण्ड-अग्नि से जलते हुए इस ससाररूपी वनको पार कर जाते हैं ।

इससे सिद्ध है कि रत्नत्रयमेसे किसी एककी भी कमी होनेसे  
 सिद्धि नहीं प्राप्त होसकती । उम प्रकारके-मोक्षको जाने ॥१६॥

‘जया पुण्णं’ इत्यादि । जय पूर्वोक्तस्वरूपवाले पुण्य, पाप, वध  
 और मोक्षको जानता है तब देवों तथा मनुष्योंके सम्बन्धी भोगोंका  
 वास्तविक विचार करता है । इन्द्रिय और मनकी अनुकूलतारूपसे  
 जिनका उपयोग किया जाता है उन्हें भोग कहते हैं । भोगोंके विषयमे  
 साधु ऐसा विचार करते हैं कि-“ये भोग भुजगके समान भयकर हैं,

युक्त ठे ते लोको पशु जन्म जरा मरणरूप लीखण्डु जे ना प्र १३ अग्निथी प्रत्नवित  
 आ ससाररूपी वनने पार करी नय छे

अथी सिद्ध थाय छे के अ रत्नत्रयमायी केअथेक पण्णे अशु छाय तो  
 सिद्धि प्राप्त थरु शकती नथी, अ प्रकारना भेदाने नाले (१५)

जया पुण्णं इत्यादि न्याये पूर्वोक्त-स्वरूपवाला पुण्य पाप वध अने  
 मोक्षने नाले के त्पारे देवे तथा मनुष्यो मण्णी भोगोने वास्तविक विचार  
 करे छे इन्द्रिय अने मनकी अनुकूलताथे नेना उपयोग क वामा आवे के अने  
 भोग करे छे लोकोना विषयमा साधु अथे विचार करे छे के “अ लोको  
 भुजग (सर्प)ना नेवा लय करे छे, अशुचि छे, अशुचि पदार्थोयी उत्पन्न थाय छे



નુપભોક્તુર્મામલપેદપિ? यस्य या विवेकिनो यान्ताशनेञ्ज, अतिपूतिगन्धिपूयरुधिर  
 मयाहेऽपगाहनाऽऽकाह्ना, शार्दूलसदननिरासाभिदाप, कल्कलायमाने सीसक  
 कटाहादौ पतनस्पृहा, समन्ततो दन्दबामानभयान्तरालपरिभ्रमणसाहसम्, अजगर  
 विषधरमुपधानीकृत्य शयनेञ्छा याजायेत?। “ग्वणमिसासुक्त्वा बहुकालदुक्त्वा”  
 इत्यादि पर्यालोचयन् निर्वेद प्राप्नोतीत्यर्थः ॥१६॥

મૂલમ્-જયા નિર્વિદપ ભોષ, જે દિવે જે ય માણુસે ।

तया चयइ सजोगं, सर्विभतर-वाहिरिय ॥ १७ ॥

छाया-यदा निर्विन्ते भोगान्, ये दिव्या ये च मानुषाः ।

तदा त्यजति सयोग, साभ्यन्तर-वाह्यम् ॥१७॥

સાન્વયાર્થ-જયા=જય જે દિવે=જો દેવસવધી ઓર જે ય માણુસે=મનુષ્ય

અશુચિ હૈં, અશુચિ પદાર્થોસે ઉત્પન્ન હોતે હૈં, સડ જાતે હૈં, ગલ જાતે હૈં,  
 નષ્ટ હોજાતે હૈં, નિત્ય નહી રહતે । કૌન વિવેકી એસે ભોગોંકો ભોગનેકી  
 અભિલાષા કરેગા ? , કિસ વિવેકશીલ વ્યક્તિકો વમન ભક્ષણ કરનેકી  
 ઇચ્છા હોગી ? , અહા ! કૌન ચાહેગા કિ-‘ મૈં અત્યન્ત દુર્ગન્ધવાલે પીપ  
 ઓર રુધિરકે પ્રવાહમે અવગાહન (સ્નાન) કરૂં ? , કયા કોઈં સિંહકી માદ  
 (ગુફા)મૈં નિવાસ કરનેકી ઇચ્છા કરતા હૈં ? , ડકલતે હુએ શીશોકી  
 કઢાહીમૈં કૌન વુદ્ધિમાન્ કૂદનેકી કામના કરતા હૈં ? કોઈં નહી કરતા હૈં ।  
 અથવા ચારોં ઓરસે ધધકતે હુએ ઘરમૈં ઘુસનેકા કૌન સાહસ કર  
 સકતા હૈં ? , ઓર અજગર સર્પકો ઉપધાન (ઉસીસા-સિરહાના) બનાકર  
 કૌન શયન કરના ચાહેગા ? । યે વિષય-ભોગ ક્ષણમાત્ર સુખ દેનેવાલે હૈં  
 ઓર વહત કાલ તક દુ ખ દેનેવાલે હૈં ॥ ” એસા વિચાર કર મુનિ જન  
 નિર્વેદ (વૈરાગ્ય)કો પ્રાપ્ત કરતે હૈ ॥ ૧૬ ॥

સડી બાધ છે ગળી બાધ છે, નષ્ટ થઈ બાધ છે, નિત્ય રહેતા નથી કયો  
 વિવેકી મનુષ્ય એવા ભોગો ભોગવવાની અભિલાષા કરશે ? , કઈ વિવેકશીલ  
 વ્યક્તિને વમન કરેલાનુ ભક્ષણ કરવાની ઇચ્છા થશે ? , અહા ! કોણ ઇચ્છશે કે-  
 હુ અત્યંત દુર્ગંધવાળા પડ અને રુધિરના પ્રવાહમા અવગાહન (સ્નાન) કરીશ ?  
 શુ કોઈ સિંહની શુક્રમા નિવાસ કરવાની ઇચ્છા કરે છે ? ઊકળતા સીસાની  
 કઢાઈમા કયો વુદ્ધિમાન્ મનુષ્ય કૂદી પડવાની કામના કરે ? , કોઈ કરે નહિ  
 અથવા યારે ગાબુએથી અગિયી ધગી ગહેલા ઘરમા પેસવાનુ સાહસ કોણ કરી  
 શકે ? અને અજગર સર્પને ઉપધાન (ઓરીકુ) ણવાની સૂવાની કોણ ઇચ્છા  
 કરશે ? એ વિષય-ભોગ ક્ષણમાત્ર સુખ દેવાવાળા છે અને ઘણા કાળ સુધી દુ ખ  
 દેવાવાળા છે ” એવો વિચાર કરીને મુનિજન નિર્વેદ (વૈરાગ્ય)ને પ્રાપ્ત કરે છે (૧૬)

सम्बन्धी भोए=भोगोको निर्विदए=तत्त्वसे विचारता है, तथा=तव सर्भिन्तर-वाहिरिय=आभ्यन्तर और बाह्य सजोग=सयोगको चयइ=त्याग देता है ॥१७॥

टीका—‘जया निर्विदए’ इत्यादि । यदा दिव्य-मानुष-भोगोपभोगेषु निर्वेदो जायते तदा साऽऽभ्यन्तरबाह्यम्=वर्द्धिर्भवो बाह्य =सुवर्णमणिमाणिक्यादि’, अभ्यन्तरे=अन्त करणे भव आभ्यन्तरः=क्रोधादिः, आभ्यन्तरेण सहित’ साऽऽभ्यन्तरः स चासौ बाह्यथेति साभ्यन्तरबाह्यस्तम्, सयोग=सयुज्यते=सम्बन्धयतेऽनेनाऽऽत्मेति सयोगः=ममत्वकृतसम्बन्धस्तम् त्यजति=परिहरति ॥१७॥

१ ४ ३ २  
मूलम्-जया चयइ संजोग, सर्भिन्तर-वाहिरियं ।

५ ६ ७ ८  
तया मुडे भवित्ताण, पवइए अणगारियं ॥ १८ ॥

छाया—यदा त्यजति सयोग, साभ्यन्तर बाह्यम् ।

तदा मुण्डो भूत्वा, प्रव्रजत्यनगारिताम् ॥१८॥

सान्वयार्थ -जया=जव सर्भिन्तरवाहिरिय=आभ्यन्तर और बाह्य सजोग=सयोगको चयइ=त्याग देता है, तथा=तव मुडे=द्रव्यभावसे मुण्डित भवित्ता=होकर अणगारिय=साधुपनेको पवइए=प्राप्त होता है ॥१८॥

टीका—‘जया चयइ’ इत्यादि । यदा बाह्याऽऽभ्यन्तरसयोगविरहितो भवति तदा मुण्ड =मुण्डन मुण्ड (‘मुडि ग्वण्डने’ इत्यस्माद्भावे घञ्) स च द्वेषा-द्रव्यतो

‘जया निर्विदए०’ इत्यादि । जब देवसम्बन्धी और मनुष्य सम्बन्धी भोगोंको जान लेता है, तब सुवर्ण-मणि-माणिक्य आदि बाह्य परिग्रहका तथा क्रोधादि आन्तरिक परिग्रहका अर्थात् बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका त्याग कर देता है ॥१७॥

‘जया चयइ’ इत्यादि । जब बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका परित्याग करता है तब मुण्डित हो जाता है । मुण्डन दो प्रकारका होता है—

जया निर्विदए० इत्यादि न्यारे देवसणधी अने मनुष्यसणधी लोगोने बाह्यी दे छे, त्यारे मुनि सुवर्ण-मणि-माणिक्यादि बाह्य परिग्रहने तथा क्रोधादि आन्तरिक परिग्रहने अर्थात् बाह्याभ्यन्तर परिग्रहने त्यज दे छे (१७)

जया चयइ० इत्यादि न्यारे बाह्याभ्यन्तर परिग्रहने। मुनि परित्याग करे छे त्यारे मुडित थध बाय छे मुण्डन दो प्रकारका होय छे-(१) द्रव्य मुण्डन

भावतश्च, तत्र द्रव्यतो मस्तरुक्केशापनयनम्, भावतो रागद्वेषापनयनम्, मृण्डन-  
धर्मयोगादधर्म्यपि मृण्डः=मृण्डित इत्यर्थः, भूत्या अनगारिताम्=अनगारिणो भावोऽ-  
नगारिता=साधुत्व सर्वविरतिलक्षण सामायिकादिकमित्यर्थ, ताम् प्रव्रजति=  
प्राप्नोति-प्रव्रजितो भवतीत्यर्थः ॥१८॥

मूलम्-जया मुडे भवित्ताण, पवइण अणगारिय ।

तया संवरमुक्किट्ट, धम्मं फासे अणुत्तरं ॥ १९ ॥

छाया—यदा मृण्डो भूत्या, प्रव्रजत्यनगारिताम् ।

तदा सररमुत्कृष्ट, धर्मं स्पृशत्यनुत्तरम् ॥१९॥

सान्वयार्थः—जया=जय मुडे=द्रव्यभावासे मृण्डित भवित्ता=होकर अण  
गारिय=साधुपनेको पवइण=प्राप्त होता है, तया=तव उक्किट्ट=अत्यन्त प्रशस्त  
अणुत्तर=सर्वश्रेष्ठ संवर=सवर धम्म=धर्मको फासे=स्पर्श करता है-प्राप्त होता है।

टीका—‘जया मुडे०’ इत्यादि । यदा मृण्डो भूत्वाऽनगारिता प्रव्रजति=प्राप्नोति,  
तदा उत्कृष्टम्=अतिप्रशस्तम्, अनुत्तर=निरतिचारतया सर्वश्रेष्ठम् । यद्वा स्थिर=  
निश्चलम् । अथवा जिनागमसिद्धत्वात् प्रतिजल्पविवर्जितम्, यद्वा ‘अनुत्तर’ मित्ये  
तत् क्रियाविशेषणम्, अनुत्तरम्=उक्तार्थक यथा स्यात्तथा स्पृशतीति सम्बन्धः ।

१ अनुत्तरम्=श्रेष्ठ, प्रतिजल्पविवर्जित, स्थिरमिति शब्दकल्पद्रुमः ।

(१) द्रव्यमुण्डन, (२) भावमुण्डन । मस्तरुक्के केशोंका लुञ्चन करना  
द्रव्यमुण्डन कहलाता है । राग द्वेष आदिको दूर करना भावमुण्डन है ।  
दोनों प्रकारोंसे मृण्डित होकर सर्वविरतिरूप सामायिक आदि चारित्रिको  
प्राप्त होता है ॥१८॥

‘जया मुडे०’ इत्यादि । जब मृण्डित होकर सर्वविरतिको प्राप्त  
होता है तब अत्यन्त प्रशस्त निरतिचार होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ निश्चल  
आचरणीय संवर धर्मको स्पर्श करता है । आते हुए कर्म जिस आत्म-

अने (२) भाव मुण्डन मस्तरुक्के केशोंका लुञ्चन करना द्रव्यमुण्डन कहेवाय छे  
राग द्वेष आदिने दूर करवाय छे भाव मुण्डन छे गेठ प्रकारे मुण्डित थाने ‘सर्व  
विरतिरूप सामायिक आदि चारित्रिके प्राप्त थाय छे (१८)

जया मुडे० इत्यादि वयारे मुण्डित थाने सर्व विरतिने प्राप्त थाय छे  
अत्यन्त प्रशस्त निरतिचार थवाने कारणे सर्वश्रेष्ठ निश्चल आचरणीय संवर

सवर=सत्रियते=निरुध्यते आस्रवत्कर्म येन सः, यद्वा सवरण सवरः=स्थगनम् ।  
स द्रव्य भावभेदाभ्या द्विविधः । तत्र द्रव्यतस्तथाविधद्रव्येण (मष्टणमृत्तिकादिना)  
सलिलोपरि तरत्तरण्यादेरनारतप्रविशनीराणा विवराणा पिमानम्, भावतः-समि-  
ति गुप्तिप्रभृतिभिरात्मतरण्या क्षरत्कर्मसलिलाना स्थगनम् । अत्र च भावसवरश्चारि-  
त्रलक्षणो गृह्यते, त तल्लक्षण धर्म स्पृशति=प्राप्नोति, अन्तःकरणत आत्मना सम्ब-  
न्धयतीत्यर्थः ॥१९॥

मूलम्—जया<sup>१</sup> सवरमुक्किट्ट<sup>४</sup> धम्म<sup>२</sup> फासे<sup>५</sup> अणुत्तरं<sup>३</sup> ।

तया धुणइ<sup>७</sup> कम्मरय<sup>६</sup>, अवोहिकलुसकड<sup>८</sup> ॥२०॥

छाया—यदा सवरमुत्कृष्ट, धर्म स्पृशत्यनुत्तरम् ।

तदा धुनाति कर्मरजोऽगोधिकलुपकृतम् ॥२०॥

सान्वयार्थ.—जया=जव उक्किट्ट=अत्यन्त प्रशस्त अणुत्तर=सर्वश्रेष्ठ सवर=  
सवर धम्म=धर्मको फासे=स्पर्श करता है, तया=तव अवोहिकलुसकड=आत्माके  
मिथ्यात्व परिणाम द्वारा उपार्जित क्रिये हुए कम्मरय=कर्मरूपी रजको धुणइ=  
हटा देता है ॥२०॥

परिणामसे रुक जाते हैं उसे सवर कहते हैं । सवर, द्रव्य-भावके भेदसे  
दो प्रकारका है । जल पर चलती हुई नौकाके छेदोंसे उसमें प्रवेश करने-  
वाले जलको चिकनी मिट्टी वस्त्र आदिसे बन्द कर देना द्रव्य-सवर है ।  
आत्मारूपी नौकामे आस्रवरूपी छिद्रों द्वारा आनेवाले कर्मरूपी जलको  
रोक देना भाव-सवर है । यहा भाव-सवर अर्थात् चारित्रका अधिकार है ।  
अर्थात् सर्वविरत मुनि भाव सवर रूपी धर्मको प्राप्त करते हैं । अथवा  
अनुत्तर रूपसे स्पर्श करते हैं, क्योंकि 'अनुत्तर' यह क्रियाविशेषण भी  
हो सकता है ॥१९॥

धर्मने स्पर्श करे छे आवता कर्म के आत्मपरिणामथी रोडाथ जाय छे तेने  
सवर कडे छे सवर द्रव्य-भावना बेहे करीने छे प्रकारने छे जणपर आलती  
नौकाना छिद्रवाटे नौकामा प्रवेश वरनासा जणने थीकणी भाटी, वस्त्र आदिथी गध करी  
हेवु ते द्रव्यसवर छे आत्माइथी नौकामा आस्रवरइथी छिद्रोद्वारा आवनारा कर्मइथी  
जणने रोकी हेवु छे भाव-सवर छे अडी भावसवर अटये चारित्रने अधिकार छे  
अर्थात् सर्वविरत मुनि भावसवरइथी धर्मने प्राप्त करे छे, अथवा अनुत्तर-इथे  
स्पर्श करे छे, का-बुडे 'अनुत्तर' छे क्रियाविशेषण पल छेथ शके छे (१६)

भावतश्च, तत्र द्रव्यतो मस्तककेशापनयनम्, भावतो रागद्वेषापनयनम्, मुण्डन-  
धर्मयोगाद्रम्यपि मुण्डः=मुण्डित इत्यर्थः, भूत्या अनगारिताम्=अनगारिणो भावोऽ-  
नगारिता=साधुत्व सर्वविरतिलक्षण सामायिकादिकमित्यर्थः, ताम् प्रव्रजति-  
प्राप्नोति-प्रव्रजितो भवतीत्यर्थः ॥१८॥

मूलम्-जया मुडे भवित्ताणं, पवइण अणगारियं ।

तया सवरमुक्किट्ट, धम्मं फासे अणुत्तरं ॥ १९ ॥

छाया—यदा मुण्डो भूत्या, प्रव्रजत्यनगारिताम् ।

तदा सवरमुत्कृष्ट, धर्मं स्पृशत्यनुत्तरम् ॥१९॥

सान्न्वयार्थः—जया=जय मुडे=द्रव्यभावासे मुण्डित भवित्ता=होकर अण  
गारिय=साधुपनेको पवइण=प्राप्त होता है, तया=तव उक्किट्ट=अत्यन्त प्रशस्त  
अणुत्तर=सर्वश्रेष्ठ सवर=सवर धम्म=धर्मको फासे=स्पर्श करता है-प्राप्त होता है॥

टीका—‘जया मुडे०’ इत्यादि । यदा मुण्डो भूत्वाऽनगारिता प्रव्रजति=प्राप्नोति,  
तदा उत्कृष्टम्=अतिप्रशस्तम्, अनुत्तर=निरतिचारतया सर्वश्रेष्ठम् । यदा स्थिर=  
निश्चलम् । अथवा जिनागमसिद्धत्वात्‘प्रतिजल्पविवर्जितम्, यदा ‘अनुत्तर’ मित्ये  
तत् क्रियाविशेषणम्, अनुत्तरम्=उक्तार्थक यथा स्यात्तथा स्पृशतीति सम्बन्धः ।

१ अनुत्तरम्=श्रेष्ठ, प्रतिजल्पविवर्जित, स्थिरमिति शब्दरूपद्रुम ।

(१) द्रव्यमुण्डन, (२) भावमुण्डन । मस्तकके केशोंकालुञ्चन करना  
द्रव्यमुण्डन कहलाता है । राग द्वेष आदिको दूर करना भावमुण्डन है ।  
दोनों प्रकारोंसे मुण्डित होकर सर्वविरतिरूप सामायिक आदि चारित्रिको  
प्राप्त होता है ॥१८॥

‘जया मुडे०’ इत्यादि । जब मुण्डित होकर सर्वविरतिको प्राप्त  
होता है तब अत्यन्त प्रशस्त निरतिचार होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ निश्चल  
-आचरणीय सवर धर्मको स्पर्श करता है । आते हुए कर्म जिस आत्म

अने (२) भाव मुण्डन मस्तकना केशानु लुञ्चन क-पु अने द्रव्यमुण्डन कडेवाय छे  
राग द्वेष आदिने दूर करवा अने भाव मुण्डन छे गेठ प्रकारे मुण्डित थाने सर्व  
विरतिरूप सामायिक आदि चारित्रिके प्राप्त थाय छे (१८)

जया मुडे० इत्यादि न्याये मुण्डित थाने सर्व विरतिने प्राप्त थाय छे  
अत्यन्त प्रशस्त निरतिचार थवाने कारणे सर्वश्रेष्ठ निश्चल आचरणीय सवर

उक्तञ्च—

“जीवस्याशुद्धरागादिभावाना कर्म कारणम् ।

कर्मणस्तस्य रागादिभावः प्रत्युपकारिवत् ॥१॥” इति ।

ससारी खल्वात्माऽनादिकालतः कर्म वन्नाति, तद्दुदयादात्मनि रागद्वेषाद्युत्पत्तिः, तदनु यथा वह्निसतप्तायःपिण्डः समन्तात् स्वससृष्टजलमाकर्षति तथाऽऽत्मैकक्षेत्रावगाहिकर्मपुद्गलानादत्ते, तैश्च रागादिक भावकर्मोत्पाद्यते, तच्च पुनरपि द्रव्यकर्मो-

भाव है, अतः द्रव्यकर्म, भावकर्मका कारण भी है और कार्य भी है । कहाभी है—

“जीवके राग आदि अशुद्ध भावोंका कारण द्रव्यकर्म है और रागादि अशुद्ध भाव द्रव्यकर्मके कारण हैं । जैसे कोई पुरुष किसीका उपकार कर देता है तो वह उपकृत पुरुष उस उपकारीका पीछा उपकार करता है ॥१॥”

ससारी जीव अनादिकालसे कर्मोंका बन्ध कर रहा है । उन बंध हुए कर्मोंके उदय होनेपर आत्मामें राग-द्वेष आदिकी उत्पत्ति होती है । रागादिके उदय होनेपर जैसे तपा हुआ लोहेका गोला आस पासके जलको आकर्षित करलेता है वैसे ही आत्मा एकक्षेत्रावगाही अर्थात् जिस आकाशके प्रदेशमें आत्मा स्थित है उसी आकाश प्रदेशमें स्थित कर्मके पुद्गलोको ग्रहण करती है, उन रागादि-भावोंसे फिर द्रव्यकर्म

कर्मभा कार्य कारणभाव रहलेला छे तेथी द्रव्यकर्म, भावकर्मनु कारण छे अने कार्यपणु छे, तेमज्ज भावकर्म द्रव्यकर्मनु कारण छे अने कार्यपणु छे ऽह्यु छे के-

“शुचना रागादि अशुद्ध भावोनु कारण द्रव्यकर्म छे, अने रागादि अशुद्ध भाव द्रव्यकर्मनु कारण छे, जेभ केळ पुरुष केळने उपकार करे छे तो जे उपकृत पुरुष जेना पाछे उपकार करे छे (१)”

ससारी शुच अनादि काण्ठी कर्मोना बंध करी रह्यो छे जे बंधायला कर्मोना उदय थता आत्माभा रागद्वेष आदिनी उत्पत्ति थाय छे रागादिने उदय थता जेभ तपावेलेला लोभउने गोणो आसपासना जणने आकर्षित करी ले छे तेभ आत्मा जेक क्षेत्रावगाही अर्थात् जे आकाशना प्रदेशभा आत्मा स्थित छे जे आकाशप्रदेशभा रहलेला कर्मना पुद्गलोने अडलु करे छे, जे रागादि-भावोणी करी द्रव्यकर्म पाछे छे जे रीते द्रव्यकर्म अने भावकर्म जेक

ટીકા-‘જયા સવર૦’ ઇત્યાદિ । યદા ઉત્કૃષ્ટમ્ અનુત્તર સવર ધર્મ સ્પૃન્નતિ તદા અવોધિકલુષકૃતમ્=વોધન ઘોધિઃ=આત્મનઃ સમ્યગ્ગ્રહપરિણામઃ, તદ્વિપરીતોઽવોધિઃ=મિધ્યાત્વાધ્યયસાયઃ સ ઇય યલુપ=પાપં તેન કૃત=જનિતમ્ અવોધિકલુષકૃતમ્, તત્, ‘કલુષ’-મિત્યત્રાનુસ્વાર આર્પઃ । કર્મરજઃ=ક્રિયતે=મિધ્યાત્વાદિ પરિણામૈઃ સમ્પાદ્યતે યત્તત્ કર્મ, તદ્વિધા-દ્રવ્ય-ભાવમેદાત્, તત્ર દ્રવ્યતઃ-રૂપિકાસ મૃતકજ્જલયત્ સકલલોકસમૃતા આત્મના સદ્ ઘદા વધ્યમાના વન્ચાર્દાશ્ર તથા વિધપુદ્ગલપરમાણયઃ । ભાવતસ્તુ-આત્મનો રાગદ્વેષાદિપરિણામઃ, અનયોશ્ર વીજ વૃક્ષયોરનાદિકાલિકાર્યકારણભાવયત્ પારસ્પરિકાર્યકારણભાવઃ, તથા ચ-દ્રવ્ય કર્મ ભાવકર્મણઃ કારણ કાર્યં ચ । ભાવકર્મ ચ દ્રવ્ય-કર્મણઃ ( કારણ કાર્યં ચ ) ।

‘જયા સવર૦’ ઇત્યાદિ । જય સાધુ ઉત્કૃષ્ટ અનુત્તર સવરધર્મકો સ્પર્શ કરતે હૈં તય આત્માકે મિધ્યાત્વપરિણામરૂપી પાપસે ઉત્પન્ન હુય કર્મરૂપી રજકો ધો ડાલતે હૈં ।

કર્મરજ દો પ્રકારકા હૈ (૧) દ્રવ્યકર્મરજ, ઓર (૨) ભાવકર્મરજ । કુપ્પીમેં ભરે હુય કજ્જલકી તરહ સમસ્ત લોકાકાશમેં વ્યાપ્ત તથા આત્માકે સાથ ઘધે હુય યા ઘધનેવાલે ઓર ઘધતે હુય વિશેષ પ્રકારકે (કાર્મણ જાતિકે) પુદ્ગલપરમાણુઓંકો દ્રવ્યકર્મ કહતે હૈં । આત્માકે રાગ-દ્વેષ આદિ વિભાવ-પરિણામોંકો ભાવકર્મ કહતે હૈં । વૃક્ષસે વીજ ઉત્પન્ન હોતા હૈ ઓર વીજસે વૃક્ષ ઉત્પન્ન હોતા હૈ । દોનો મેં કાર્ય-કારણભાવ અનાદિકાલીન હૈ । ઇસી પ્રકાર દ્રવ્યકર્મ ઓર ભાવકર્મમેં કાર્ય કારણ

જયા સવર૦ ઇત્યાદિ બ્યારે સાધુ ઉત્કૃષ્ટ અનુત્તર સવરધર્મને સ્પર્શ કરે છે ત્યારે આત્માના મિધ્યાત્વ-પરિણામરૂપી પાપથી ઉત્પન્ન થએલા કર્મરૂપ રજને ધોઈ નાખે છે

કર્મરજ બે પ્રકારની છે—(૧) દ્રવ્યકર્મરજ, અને (૨) ભાવકર્મરજ કુપ્પીમા ભરેલા કાળજની પેઠે સમસ્ત લોકાકાશમા વ્યાપ્ત તથા આત્માની સાથે ય ધાયલા તથા ય ધનારા અને ય ધાતા વિશેષ પ્રકારના (કાર્મણ જાતિના) પુદ્ગલપરમાણુઓને દ્રવ્યકર્મ કહે છે આત્માના રાગ-દ્વેષ આદિ વિભાવ-પરિણામને ભાવકર્મ કહે છે વૃક્ષથી ધીજ ઉત્પન્ન થાય છે અને ધીજથી વૃક્ષ ઉત્પન્ન થાય છે તેઉ કાર્ય-કારણભાવ અનાદિકાળનો છે એ પ્રકારે દ્રવ્યકર્મ અને ભાવ

र्थिक-पर्यायार्थिकादिनानान्यैरर्थव्यञ्जनयोगसक्रान्तिसहितानुचिन्तनं पृथक्त्ववितर्क-  
सविचारम् ।

तत्रार्थसक्रान्तिस्तावत्-ध्येयस्यैकपर्यायपरित्यागेन पर्यायान्तरे, व्यञ्जने, योगे  
वा सक्रमः । व्यञ्जनं चात्र चतुर्दशपूर्वात्मरुश्रुतसम्प्रतिशब्दाः, तत्रत्यं किञ्चिदेक  
व्यञ्जनमुपादाय यानमारभ्य व्यञ्जनान्तरेऽर्थे योगे वा सक्रमणं व्यञ्जनसक्रान्तिः ।  
योगसक्रान्तिश्च पुनः काययोगतो मनोयोगे, मनोयोगतो रागयोगे, इत्येवमेकस्माद्  
योगादन्यतरस्मिन् योगे सक्रमणम् । त्रिविधमेतत्सक्रमणं च ध्यातुरनिच्छायामपि  
तादृश-(असक्रान्त)-ध्यानसपादनसामर्थ्याभावाज्जायते ।

उत्पाद आदि पर्यायोक्ता द्वयार्थिक या पर्यायार्थिक आदि विविध नयोसे,  
अर्थ, व्यञ्जन और योगकी सक्रान्ति सहित चिन्तन करना पृथक्त्ववितर्क  
शुद्ध ध्यान है । ध्येय वस्तुकी एक पर्यायको छोड़कर दूसरी पर्यायका  
ध्यान करना या व्यञ्जन अथवा योगमें सक्रान्त होजाना अर्थसक्रान्ति है ।  
यहाँ चौदह पूर्वरूप श्रुतके शब्दोंको व्यञ्जन कहा है । उन शब्दोंमेंसे किसी  
एक शब्दका ध्यान आरम्भ करके फिर किसी दूसरे व्यञ्जनका ध्यान  
करने लगना, अथवा अर्थ या योगमें सक्रान्त होजाना व्यञ्जनसक्रान्ति है ।  
काययोगसे मनोयोगमें, मनोयोगसे वचनयोगमें, इस प्रकार एक योगसे  
दूसरे योगमें सक्रान्त होजाना योगसक्रान्ति है । यह तीनों तरहका  
सक्रमण ध्याताकी इच्छा न होनेपर भी उतनी अधिक सामर्थ्य न होनेके  
कारण होता है ।

आदि नाना प्रकारना पर्यायानुं व्यार्थिक या पर्यायार्थिक आदि विविध नयोथी,  
अर्थ व्यञ्जन अने योगनी सक्रान्तिसहित चिन्तन करवुं अने पृथक्त्ववितर्क शुद्ध  
ध्यान छे, ध्येयवस्तुना अने पर्यायने छोडीने भीन पर्यायानुं ध्यान करवुं या  
व्यञ्जन अथवा योगमा सक्रान्त थर्क नवुं अने अर्थसक्रान्ति छे अर्द्धी अने  
पूर्वर्ष श्रुतना शण्डेने व्यञ्जन कहेल छे, अने शण्डेमाथी ओठअनेक शण्डनुं ध्यान  
आरंभेने पडी कै। भीन व्यञ्जननुं ध्यान लगाववुं अथवा अर्थ या योगमा  
सक्रान्त थर्क नवुं अने व्यञ्जनसक्रान्ति छे काययोगथी मनोयोगमा, मनोयोगथी  
वचनयोगमा, अने प्रकारे अने योगथी भीन योगमा सक्रान्त थर्क नवुं अने योग  
सक्रान्ति छे अने त्रैलोक्यतनुं सक्रमण ध्यातानी इच्छा न होवा छता पणु  
अनेक अधिक सामर्थ्य न होवाने कारणे थाय छे



ત્પાદયતિ, તદેવ રજ इ रजो जीवम्य मास्मिन्यद्देतुन्यान् घातिकर्मचतुष्टयमित्यर्थः,  
तद् धुनाति=व्यपनयति=दूरीकरोतीत्यर्थः ।

કર્મરજોપુનન ચ યદ્યપિ ધર્મધ્યાનેનાપિ જાયતે તથાપિ આત્મન્ટિકતદ્વિધૂન  
શુદ્ધધ્યાનેનૈવ ભવતિ, યયા મલાપગમેન શુચિતાધર્મામિસમ્બન્ધ્યાન્ પટઃ શુક્લ સ્થુ  
ચ્યતે તયા રાગદ્વેપમલાપનપનાન્દુચિધર્મસમ્બન્ધ્યાદ્ ધ્યાનમપિ શુક્લમિત્યુચ્યતે,  
તદ્વતુર્વિધમ્—(૧) પૃથક્ત્વવિતર્કસવિચારમ્, (૨) એકત્વવિતર્કાવિચારમ્, (૩) સૂક્ષ્મ  
ક્રિયાઽનિવર્તિ, (૪) સમુચ્છિન્નક્રિયાઽપ્રતિપાતિ, ડતિ ।

તત્ર પૂર્વગતશ્રુતજ્ઞાનાનુસારેણ ધ્યેયવિશેષગતોત્પાદાદિનાનાપર્યાયાણા દ્રવ્યા  
ઘઘતે હૈં । હસ પ્રકાર દ્રવ્યકર્મ ઓર ભાવકર્મ એક દ્મરેકે ઉત્પાદક હૈં ।  
હન્હોં કર્મોંકો રજ કહતે હૈં, ત્ર્યોંકિ યે આત્મામેં મલિનતા ઉત્પન્ન  
કર દેતે હૈં । સવરધર્મકો ગ્રહ્ણ કરનેસે યદ્ ચાર-ઘાતિકર્મરૂપી રજ દૂર  
હોજાતી હૈં ।

કર્મરજકા દૂર હોના યદ્યપિ ધર્મ-ધ્યાનસે હોતા હૈં તથાપિ આત્મ  
ન્ટિક રૂપસે તેા શુક્લ-ધ્યાનસે હી હોતા હૈં । જૈસે મૈલકો દૂર કરનેસે  
શુચિતાધર્મ આજાતા હૈં, ડસલિણ વસ્ત્રકો શુક્લ ( સફેદ ) વસ્ત્ર કહતે હૈં,  
હસી પ્રકાર રાગ-દ્વેપરૂપી મૈલકે દ્દ જાનેપર શુચિતાધર્મકે સમ્બન્ધસે  
ધ્યાન ભી શુક્લધ્યાન કહલાતા હૈં ।

શુક્લધ્યાન ચાર પ્રકારકા હૈં—(૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક સવિચાર, (૨) એક  
ત્વવિતર્ક-અવિચાર, (૩) સૂક્ષ્મક્રિયા-અનિવર્તિ, (૪) સમુચ્છિન્નક્રિયા  
અપ્રતિપાતિ ।

(૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક પૂર્વગત શ્રુતજ્ઞાનકે અનુસાર કિસી ધ્યેય પદાર્થકી  
બીજના ઉત્પાદક છે એજ કર્મને રજ કહે છે, કારણ કે તે આત્મામા મલિ  
નતા ઉત્પન્ન કરે છે સવરધર્મને અહણ કરવાથી એ ચાર ઘાતિકર્મરૂપી રજ  
દૂર થઈ જાય છે

જે કે કર્મરજ ધર્મધ્યાનથી દૂર થાય છે તેાપણ આત્મન્ટિક રૂપથી તેા  
શુક્લ ધ્યાનથીજ થાય છે જેમ મેલ દૂર કરવાથી શુચિતા-ધર્મ આવી જાય છે  
તેથી વસ્ત્રને શુક્લ ( સફેદ ) વસ્ત્ર કહે છે, તેમ રાગદ્વેષરૂપી મેલ હઠી જતા  
શુચિતાધર્મના સળધથી ધ્યાન પણ શુક્લધ્યાન કહેવાય છે

શુક્લ ધ્યાનના ચાર પ્રકાર છે (૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક-સવિચાર, (૨) એકત્વ  
વિતર્ક-અવિચાર, (૩) સૂક્ષ્મક્રિયા અનિવર્તિ, (૪) સમુચ્છિન્નક્રિયા અપ્રતિપાતિ

(૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક-પૂર્વગત શ્રુતજ્ઞાનને અનુસાર કોઈ ધ્યેય પદાર્થના ઉત્પાદ

र्थिक-पर्यायार्थिकादिनानान्यैरर्थव्यञ्जनयोगसक्रान्तिसहितानुचिन्तनं पृथक्त्ववितर्क-  
सविचारम् ।

तत्रार्थसक्रान्तिस्तावत्-ध्येयस्यैकपर्यायपरित्यागेन पर्यायान्तरे, व्यञ्जने, योगे  
वा सक्रमः । व्यञ्जनं चात्र चतुर्दशपूर्वात्मरुथुतसम्पन्निशब्दाः, तत्रत्य किञ्चिदेक  
व्यञ्जनमुपादाय ध्यानमारभ्य व्यञ्जनान्तरेऽर्थे योगे वा सक्रमण व्यञ्जनसक्रान्तिः ।  
योगसक्रान्तिश्च पुनः काययोगतो मनोयोगे, मनोयोगतो वाग्योगे, इत्येवमेकस्माद्  
योगादन्यतरस्मिन् योगे सक्रमणम् । त्रिविधमेतत्सक्रमणं च ध्यातुरनिच्छायामपि  
तादृश-(असक्रान्त) ध्यानसपादनसामर्थ्याभावाज्जायते ।

उत्पाद आदि पर्यायोक्ता द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक आदि विविध नयोसे,  
अर्थ, व्यञ्जन और योगकी सक्रान्ति सहित चिन्तन करना पृथक्त्ववितर्क  
शुद्ध ध्यान है । ध्येय वस्तुकी एक पर्यायको छोड़कर दूसरी पर्यायका  
ध्यान करना या व्यञ्जन अथवा योगमें सक्रान्त होजाना अर्थसक्रान्ति है ।  
यहाँ चौदह पूर्वरूप श्रुतके शब्दोंको व्यञ्जन कहा है । उन शब्दोंमेंसे किसी  
एक शब्दका ध्यान आरम्भ करके फिर किसी दूसरे व्यञ्जनका ध्यान  
करने लगना, अथवा अर्थया योगमें सक्रान्त होजाना व्यञ्जनसक्रान्ति है ।  
काययोगसे मनोयोगमें, मनोयोगसे वचनयोगमें, इस प्रकार एक योगसे  
दूसरे योगमें सक्रान्त होजाना योगसक्रान्ति है । यह तीनों तरहका  
सक्रमण ध्याताकी इच्छा न होनेपर भी उतनी अधिक सामर्थ्य न होनेके  
कारण होता है ।

आदि नाना प्रकारना पर्यायानु द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक आदि विविध नयेथी,  
अर्थ व्यञ्जन अने योगनी सक्रान्तिसहित चिन्तन करवुं अे पृथक्त्ववितर्क शुद्ध  
ध्यान ऐ, ध्येयवस्तुना अेक पर्यायने छोडीने भीज पर्यायानु ध्यान करवु या  
व्यञ्जन अथवा योगमा सक्रान्त थर्क नवु अे अर्थसक्रान्ति ऐ अर्धी यौद  
पूर्वइय श्रुतना शण्डोने व्यञ्जन कहेल ऐ, अे शण्डोमाथी दोधअेक शण्डनु ध्यान  
आरणीने पछी कैध भीज व्यञ्जननु ध्यान लगाववु अथवा अर्थ या योगमा  
सक्रान्त थर्क नवु अे व्यञ्जनसक्रान्ति ऐ काययोगथी मनोयोगमा, मनोयोगथी  
वचनयोगमा, अे प्रकारे अेक योगथी भीज योगमा सक्रान्त थर्क नवु अे योग  
सक्रान्ति ऐ अे त्रैलु नतनु सक्रमण ध्यातानी इच्छा न होवा छता पणु  
अेटलु अधिक सामर्थ्य न होवाने कारणे थाय ऐ

त्पादयति, तदेव रज इव रजो जीरम्य मालिन्यहेतुत्वात् घातिकर्मचतुष्टयमित्यर्थः,  
तद् धुनाति=यपनयति=दूरीकरोतीत्यर्थः ।

कर्मरजोधुनन च यद्यपि धर्मध्यानेनापि जायते तथापि आत्यन्तिकतद्विधुन  
शुक्रध्यानेनैव भवति, यथा मलापगमेन शुचिताधर्माभिसम्बन्धात् पटः शुक्र इत्यु  
च्यते तथा रागद्वेषमलापनधनाच्छुचिधर्मसम्बन्धाद् ध्यानमपि शुक्रमित्युच्यते,  
तच्चतुर्विधम्-(१) पृथक्त्ववितर्कसविचारम्, (२) एकत्ववितर्काविचारम्, (३) सूक्ष्म  
क्रियाऽनिवर्ति, (४) समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति, इति ।

तत्र पूर्वगतश्रुतज्ञानानुसारेण ध्येयविशेषगतोत्पादादिनानापर्यायाणां द्रव्या

घटते हैं । इस प्रकार द्रव्यकर्म और भावकर्म एक दूसरेके उत्पादक हैं ।  
इन्हीं कर्मोंको रज कहते हैं, क्योंकि ये आत्मामें मलिनता उत्पन्न  
कर देते हैं । सवरधर्मको ग्रहण करनेसे यह चार-घातिकर्मरूपी रज दूर  
होजाती है ।

कर्मरजका दूर होना यद्यपि धर्म-ध्यानसे होता है तथापि आत्य  
न्तिक रूपसे तो शुक्र-ध्यानसे ही होता है । जैसे मैलको दूर करनेसे  
शुचिताधर्म आजाता है, इसलिए वस्त्रको शुक्र ( सफेद ) वस्त्र कहते हैं,  
इसी प्रकार राग-द्वेषरूपी मैलके दूर जानेपर शुचिताधर्मके सम्बन्धसे  
ध्यान भी शुक्रध्यान कहलाता है ।

शुक्रध्यान चार प्रकारका है-(१) पृथक्त्ववितर्क सविचार, (२) एक  
त्ववितर्क-अविचार, (३) सूक्ष्मक्रिय-अनिवर्ति, (४) समुच्छिन्नक्रिय  
अप्रतिपाति ।

(१) पृथक्त्ववितर्क पूर्वगत श्रुतज्ञानके अनुसार किसी ध्येय पदार्थकी

पीठना उत्पादक छे अथ कर्मोने रज कडे छे, कारण के ते आत्माभा भलि  
नता उत्पन्न करे छे सवरधर्मोने अदृश्य करवाथी अथ आर घातिकर्मरूपी रज  
दूर थई जाय छे

जे के कर्मरज धर्मध्यानथी दूर थाय छे तोपण आत्यन्तिक इथथी तो  
शुक्ल ध्यानथीअ थाय छे जेभ भेव दूर करवाथी शुचिता-धर्म आवी जाय छे  
तेथी वस्त्रने शुक्ल (सफेद) वस्त्र कडे छे, तेभ रागद्वेषरूपी मैल उठी जाय  
शुचिताधर्मना सणधथी ध्यान पण शुक्लध्यान कडेवाय छे

शुक्ल ध्यानना आर प्रकार छे (१) पृथक्त्ववितर्क-सविचार, (२) एकत्व  
वितर्क-अविचार, (३) सूक्ष्मक्रिय अनिवर्ति, (४) समुच्छिन्नक्रिय अप्रतिपाति

(१) पृथक्त्ववितर्क-पूर्वगत श्रुतज्ञानने अनुसार ठोअ ध्येय पदार्थना उत्पाद

नन्वर्थव्यञ्जनयोगान्तरेषु सक्रान्तस्य मनसः स्थैर्यासम्भवाद् ध्यानत्वमनुपपन्नमिति चेन्न, एकमेव ध्येय लक्ष्यीकृत्य प्रवृत्तस्य ध्यानस्यार्थादौ सक्रमणेऽपि ध्येयैरुमात्रोद्देश्यकतया मनःस्थिरीकरणरूपाया ध्यानक्रियायास्तत्रापि सद्भावात् ।

इदं च ध्यान भक्तिकथ्युतपाठकानां योगत्रयवता वा मुनिपुङ्गवानां भवति । अनेन ध्यानेन क्षपकश्रेण्या समारूढो मुनिरष्टमगुणस्थानादारभ्य क्रमशो दशमगुणस्थान-चरमसमये बलवदपि मोहनीयकर्म क्षपयित्वा द्वितीयध्यानमाश्रित्य द्वादश गुण-स्थानमधिरोहति ।

उपशमश्रेण्या समारूढस्तु तदानीं मोहनीयकर्म शमयित्वा एकादशमुपशान्त-मोहगुणस्थानमारोहति । इदं च प्रथम ध्यानमष्टमगुणस्थानादारभ्य क्षपकश्रेण्य-

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! इस ध्यानमें अर्थ, व्यञ्जन और योगोंमें मन सक्रान्त होता रहता है, इस कारण स्थिरता नहीं रह सकती, फिर इसे ध्यान कैसे कह सकते हैं ? ।

उत्तर—हे शिष्य ! परिवर्तन तो होता रहता है, परन्तु ध्येय एक ही रहता है । ध्येयकी एकताके कारण यह ध्यान कहलाता है ।

यह ध्यान पूर्वधारी तीन योगवाले श्रेष्ठ मुनियोंको ही होता है । इस ध्यान से दशवें गुणस्थानके अन्त समयमें क्षपकश्रेणीमें आरूढ मुनि बलवान् मोहनीय कर्मका क्षय करके बाहरवें गुणस्थानमें पहुँच जाते हैं, और यदि उपशमश्रेणीमें आरूढ हों तो ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थानमें जाते हैं । यह प्रथम ध्यान उपशमश्रेणीकी अपेक्षासे आठवें

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! आ ध्यानमा अर्थ व्यञ्जन अने योगमा मन सक्रान्त थया करे छे ते कारण्थी स्थिरता रही शकती नथी, तो पछी तेने ध्यान केम कह्नी शकय ?

उत्तर—हे शिष्य ! परिवर्तन तो थया करे छे, परन्तु ध्येय अेकज रह्ने छे ध्येयनी अेकताने कारण्थे अे ध्यान कह्नेवाय छे

अे ध्यान पूर्वधारी त्रयु योगवाणा श्रेष्ठ मुनियेने ज थाय छे आ ध्यानथी दसमा गुणस्थानना अत समये क्षपकश्रेणीमा आरूढ मुनि गणवान् मोहनीय-कर्मना क्षय करीने जाग्मा गुणस्थानमा पहोन्नी नय छे, अने अे उपशम-श्रेणीमा आरूढ होय तो अग्याग्मा उपशान्तमोह गुणस्थानमा नय छे अे प्रथम ध्यान, उपशम-श्रेणीनी अपेक्षाअे करीने आठमा गुणस्थानथी लधने

इदमत्र तात्पर्यम्—

अत्र पूर्वगताः शब्दास्तदर्थानां भाष्येया भवन्ति, परन्तु भ्यातुस्तादृश सामर्थ्यं न भवति येन स कश्चिदेक शब्द तादर्थ्यं वा भाष्येत्, अत एव कश्चिदेकमर्थं तत्पर्यायं वा परित्यज्येतरमर्थमितरपर्यायं वा ध्यायति । इदमेव च परिवर्तनसंक्रमणशब्देनोच्यते । उक्तञ्च—

“ अर्थादर्थान्तरे शब्दान्छब्दान्तरे च सक्रमः ।

योगाद् योगान्तरे यत्र, सविचार तदुच्यते ॥

द्रव्याद् द्रव्यान्तरं याति, गुणाद् याति गुणान्तरम् ।

पर्यायादन्यपर्यायं, सपृथक्त्वं भवत्यतः ॥” इति,

तात्पर्यं यह है कि—इस ध्यानमें पूर्वगत शब्द या उसके अर्थका ध्यान किया जाता है, किन्तु इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि एक ही शब्द या एक ही अर्थका ध्यान करते रहें, अत एव एक पदार्थ या उसकी पर्यायको छोड़ कर दूसरी पर्यायका ध्यान करते हैं । इसी प्रकारके परिवर्तन या बदलनेको संक्रमण कहते हैं । कहा भी है—

“ एक अर्थसे दूसरे अर्थमें, एक शब्दसे दूसरे शब्दमें, तथा एक योगसे दूसरे योगमें संक्रमण होता है, अतः उसे सविचार (सक्रान्ति) कहते हैं ॥१॥

अर्थ व्यञ्जन और योगकी सक्रान्ति रूप होते हुए निज शुद्ध आत्म-द्रव्यको, एक गुणसे दूसरे गुणको, एक पर्यायसे दूसरी पर्यायको प्राप्त होता है, अतः उसे सपृथक्त्व कहते हैं ॥२॥ ”

तात्पर्यं એ છે કે—આ ધ્યાનમાં પૂર્વગત શબ્દ યા તેના અર્થનું ધ્યાન કરવામાં આવે છે, કિંતુ એટલું સામર્થ્ય હોતું નથી કે એકજ શબ્દ યા એકજ અર્થનું ધ્યાન કરતો રહે તેથી કરીને એક પદાર્થ યા એના પર્યાયને છેડીને બીજા પર્યાયનું ધ્યાન કરે છે આ પ્રકારના પરિવર્તનને યા બદલાવાને સંક્રમણ કહે છે કહ્યું છે કે—

“ એક અર્થથી બીજા અર્થમાં, એક શબ્દથી બીજા શબ્દમાં તથા એક યોગથી બીજા યોગમાં સંક્રમણ થાય છે, તેથી તેને સવિચાર (સક્રાન્તિ) કહે છે (૧)

અર્થ વ્યજન અને યોગની સક્રાન્તિરૂપ થતા નિજ શુદ્ધ આત્મ-દ્રવ્યને, એક ગુણથી બીજા ગુણને, એક પર્યાયથી બીજા પર્યાયને પ્રાપ્ત થાય છે, તેથી તેને સપૃથક્ત્વ કહે છે ” (૨)

नन्वर्थव्यञ्जनयोगान्तरेषु सक्रान्तस्य मनसः स्थैर्यासम्भवाद् ध्यानत्वमनुपपन्नमिति चेन्न, एकमेव ध्येय लक्ष्यीकृत्य प्रवृत्तस्य ध्यानस्यार्थादौ सक्रमणेऽपि ध्येयैकमात्रोद्देश्यकृतया मनःस्थिरीकरणरूपाया ध्यानक्रियायास्तत्रापि सद्भावात् ।

इदं च ध्यान भङ्गिकश्रुतपाठकानां योगत्रयवता वा मुनिपुङ्गवानां भवति । अनेन ध्यानेन क्षपकश्रेण्या समारूढो मुनिरष्टमगुणस्थानादारभ्य क्रमशो दशमगुणस्थानचरमसमये बलवदपि मोहनीयकर्म क्षपयित्वा द्वितीयध्यानमाश्रित्य द्वादश गुणस्थानमधिरोहति ।

उपशमश्रेण्या समारूढस्तु तदानीं मोहनीयकर्म शमयित्वा एकादशमुपशान्तमोहगुणस्थानमारोहति । इदं च प्रथम ध्यानमष्टमगुणस्थानादारभ्य क्षपकश्रेण्य-

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! इस ध्यानमें अर्थ, व्यञ्जन और योगोंमें मन सक्रान्त होता रहता है, इस कारण स्थिरता नहीं रह सकती, फिर इसे ध्यान कैसे कह सकते हैं ? ।

उत्तर—हे शिष्य ! परिवर्तन तो होता रहता है, परन्तु ध्येय एक ही रहता है । ध्येयकी एकताके कारण यह ध्यान कहलाता है ।

यह ध्यान पूर्वधारी तीन योगवाले श्रेष्ठ मुनियोंको ही होता है । इस ध्यान से दशवें गुणस्थानके अन्त समयमें क्षपकश्रेणीमें आरूढ मुनि बलवान् मोहनीय कर्मका क्षय करके बाहरवें गुणस्थानमें पहुँच जाते हैं, और यदि उपशमश्रेणिमें आरूढ हों तो ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थानमें जाते हैं । यह प्रथम ध्यान उपशमश्रेणीकी अपेक्षासे आठवें

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! आ ध्यानमा अर्थ व्यञ्जन अने योगमा मन सक्रान्त थया करे छे ते कारण्ण्णी स्थिरता रही सकती नथी, तो पछी तेने ध्यान केम कही सकाय ?

उत्तर—हे शिष्य ! परिवर्तन तो थया करे छे, परन्तु ध्येय अेकत्र रहे छे ध्येयनी अेकताने कारण्ण्णे अे ध्यान कहेवाय छे

अे ध्यान पूर्वधारी त्रयु योगवाणा श्रेष्ठ मुनिअेने न थाय छे आ ध्यानथी इसमा शुषुस्थानना अत समये क्षपकश्रेणीमा आरूढ मुनि गणवान् मोहनीय-कर्मनो क्षय करीने ग्यारमा शुषुस्थानमा पहुँच्यी जाय छे, अने जे उपशम-श्रेणीमा आरूढ होय तो अग्यारमा उपशान्तमोह शुषुस्थानमा जाय छे अे प्रथम ध्यान, उपशम-श्रेणीनी अपेक्षाअे करीने आठमा शुषुस्थानथी लधने

पेक्षया दशमगुणस्थानं यावत्, उपनमध्रेण्यपेक्षया तु षकादशगुणस्थानं यावद्भवतीति विवेकः ।

(२) ततश्चैतद्विचारांश्चिचारमारभते, यथा सिद्धगारुडिकादिमन्त्रः सकलशरीरस्यापि विषम विष मन्त्रसामर्थ्येन सर्वाययेभ्यः समाकृत्य दशस्थाने समानीय सस्तम्भयति, तथा पूर्वगतश्रुतानुसारतोऽर्थ व्यञ्जन योगसक्रान्तिराहित्येनाशेषविषयेभ्यः सहृत्यैकस्मिन्नेव पर्याये योगस्य निर्यातस्थाने दीपशिखावस्थित्यीकरणम्—एकत्ववितर्कांश्चिचारम् ।

गुणस्थानसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है । क्षपकश्रेणीकी अपेक्षासे तो अष्टमसे लेकर दशम गुणस्थान तक होता है, ग्यारहवाँ गुणस्थान उपज्ञातमोह होनेसे क्षपकश्रेणीमें आरूढ मुनि उसका स्पर्श न करते हुए दूसरे ध्यानका आरम्भ करके बारहवें गुणस्थानमें जाते हैं ।

(२) एकत्ववितर्क-अविचार—जैसे मन्त्र जाननेवाला पुरुष समस्त शरीरमें व्याप्त विषको मन्त्रकी शक्तिद्वारा अन्य-अन्य अवयवोंसे खींच कर दशस्थान ( जहाँ विपैला जन्तुने काटा है उस जगह ) पर स्तम्भित कर देता है, वैसे ही पूर्वगत श्रुतके अनुसार अर्थ, व्यञ्जन और योगोंके परिवर्तनसे रहित होकर समस्त विषयोंसे विमुख होकर एक ही पर्यायके ध्यानमें वायुरहित स्थानमें रखे हुए दीपककी शिखा के समान स्थिर होजाना 'एकत्ववितर्क' ध्यान कहलाता है ।

अग्यारमा गुणस्थान सुधी धाय छे क्षपक-श्रेणीनी अपेक्षाये करीने तो आठ-माथी लधने दसमा गुणस्थान सुधी धाय छे, अग्यारमु गुणस्थान उपशान्तमोह होवाथी क्षपक श्रेणीमा आरूढ मुनि येना स्पर्श न करता भील ध्यानने आरंभ करीने आरंभ गुणस्थानमा नय छे

(२) एकत्ववितर्क-अविचार—जेम मन्त्र नक्षुवावायो पुरुष आप्पा शरीरमा व्यापेला विषने मन्त्रनी शक्तिद्वारा अन्य-अन्य अवयवोमाथी जेथी लधने दशस्थान ( न्या जेरी जतु करउथो होय ते स्थान ) पर स्तम्भित करी दे छे, तेम पूर्वगत श्रुतने अनुसार अर्थ व्यञ्जन अने योगना परिवर्तनथी रहित श्रुतने गधा विषयोथी विमुष थर् अेकन पर्यायना ध्यानमा, वायुरहित स्थानमा राजेला दीपकनी शिखानी पंडे स्थिर श्रुत जतु अे 'एकत्ववितर्क' कहैवाथ छे

अपमाशयः—प्रथम ध्यान सपृथक्त्व भवति, इदं तु पृथक्त्वरहितम् । अत्रैकमर्थं विहायाऽर्थान्तरे, तथैकं शब्दं विहाय शब्दान्तरे, तथा योगाद् योगान्तरे सक्रमणं न भवति तस्मादिदमेकत्ववितर्काभिधानं ध्यानमिति । इदं च ध्यानं मनोवाक्काय-योगान्यतमयतामेव महाशुनीनां जायते, अत्र योगानां सक्रमणाभावात् ।

तथा चोक्तम्—“निजात्मद्रव्यमेकं वा, पर्यायमथवा गुणम् ।

निश्चलं चिन्त्यते यत्र, तदेकत्वं विदुर्बुधाः ॥१॥

यद्व्यञ्जनार्थयोगेषु, परावर्त्तविवर्जितम् ।

चिन्तनं तदविचारं, स्मृतं सद्ब्रह्मचानकोविदैः ॥२॥” इति ॥

तात्पर्यं यह है कि पहला ध्यान पृथक्त्व (अनेकप्रकारता) सहित होता है किन्तु दूसरे भेदमें पृथक्त्व नहीं रहता । इसमें एक अर्थसे दूसरे अर्थमें सक्रमण नहीं होता, इसलिए इसे एकत्ववितर्क-ध्यान कहते हैं ।

यह ध्यान मन वचन काय योगोंमेंसे किसी एक योगवाले मुनिराजको ही होता है, अर्थात् इस ध्यानके समय एक ही योगमें स्थिर रहते हैं, क्योंकि इसमें योगोंका सक्रमण नहीं होता । कहा भी है—

“जिस ध्यानमें केवल निज आत्मा का अथवा उसकी एक पर्यायका या एक गुणका ध्यान किया जाता है उसे ‘एकत्व’ कहते हैं ॥१॥ जो व्यञ्जन अर्थ और योगोंके परिवर्त्तनसे रहित चिन्तन किया जाना है उसे ‘अविचार’ कहते हैं ॥२॥”

तात्पर्यं એ છે કે પહેલું ધ્યાન પૃથક્ત્વ (અનેક-પ્રકારતા) સહિત હોય છે કિન્તુ બીજા ભેદમાં પૃથક્ત્વ રહેતું નથી એમાં એક અર્થમાંથી બીજા અર્થમાં, એક શબ્દમાંથી બીજા શબ્દમાં અને એક યોગમાંથી બીજા યોગમાં સક્રમણ થતું નથી, તેથી એને એકત્વવિતર્ક ધ્યાન કહે છે

એ ધ્યાન મન વચન કાયાના યોગોમાંના કોઈ એક યોગવાળા મુનિરાજને જ થાય છે, અર્થાત્ એ ધ્યાનને સમયે એક જ યોગમાં સ્થિર રહે છે, કારણ કે એમાં યોગોનું સક્રમણ થતું નથી કહ્યું છે કે—

“જે ધ્યાનમાં કેવળ નિજ આત્માનું અથવા એના એક પર્યાયનું યા એક ગુણનું ધ્યાન કરવામાં આવે છે, તેને ‘એકત્વ’ કહે છે (૧) વ્યંજન અર્થ અને યોગોના પરિવર્તનથી રહિત ચિંતન કરવામાં આવે છે તેને ‘અવિચાર’ કહે છે (૨)”



पेक्षया दशमगुणस्थानं यावत्, उपशमश्रेण्यपेक्षया तु एकादशगुणस्थानं यावद्भवतीति विवेकः ।

(२) ततश्चैस्त्वचित्कर्काऽविचारमारभते, यथा सिद्धगारुडिकादिमन्त्रः सकृदशरीरस्यापि विषम विष मन्त्रसामर्थ्येन सर्वायवेभ्यः समाकृत्य दशस्थाने समानीय सस्तम्भयति, तथा पूर्वगतश्रुतानुसारतोऽर्थ-व्यञ्जन योगसक्रान्तिराहित्येनाशेषविषयेभ्यः सद्द्वैतैकस्मिन्नेव पर्याये योगस्य निर्गतस्थाने दीपशिखावस्थिरीकरणम्-एकत्वचित्कर्काऽविचारम् ।

गुणस्थानसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है । क्षपकश्रेणीकी अपेक्षासे तो अष्टमसे लेकर दशम गुणस्थान तक होता है, ग्यारहवाँ गुणस्थान उपशातमोह होनेसे क्षपकश्रेणीमें आरूढ मुनि उसका स्पर्श न करते हुए दूसरे ध्यानका आरम्भ करके बारहवें गुणस्थान में जाते हैं ।

(२) एकत्वचित्कर्क-अविचार-जैसे मन्त्र जाननेवाला पुरुष समस्त शरीरमें व्याप्त विषको मन्त्रकी शक्तिद्वारा अन्य-अन्य अवयवोंसे खींच कर दशस्थान ( जहाँ विषैला जन्तुने काटा है उस जगह ) पर स्तम्भित कर देता है, वैसे ही पूर्वगत श्रुतके अनुसार अर्थ, व्यञ्जन और योगोंके परिवर्तनसे रहित होकर समस्त विषयोंसे विमुख होकर एक ही पर्यायके ध्यानमें वायुरहित स्थानमें रखे हुए दीपककी शिखा के समान स्थिर होजाना 'एकत्वचित्कर्क' ध्यान कहलाता है ।

अग्यारमा गुणस्थान सुधी थाय छे क्षपक-श्रेणीनी अपेक्षासे करीने तो आठ-माथी लधने इसमा गुणस्थान सुधी थाय छे, अग्यारमु गुणस्थान उपशान्तमोह डोवाथी क्षपक श्रेणीमा आरूढ मुनि सेना स्पर्श न करता भीज ध्यानना आरंभ करीने बारमा गुणस्थानमा नय छे

(२) एकत्वचित्कर्क-अविचार-जेम मन्त्र ज्ञानुवावाणे पुरुष आभा शरीरमा व्यापेला विषने मन्त्रनी शक्तिद्वारा अन्य-अन्य अवयवोमाथी जेथी लधने दशस्थान ( जथा जेरी जतु उरउथे डोय ते स्थान ) पर स्तम्भित करी दे छे, तेम पूर्वगत श्रुतने अनुसार अर्थ व्यञ्जन अने योगना परिवर्तनथी रहित थधने गधा विषयोथी विगुण थध अेकज पर्यायना ध्यानमा, वायुरहित स्थानमा शोषेला दीपकनी शिखानी पेंडे स्थिर थध जतु अे 'एकत्वचित्कर्क' कहेवाय छे

टीका—यदाऽवोधिरुल्लुपकृत कर्मरजो धुनाति तदा सर्वत्रग=सर्वत्र गच्छति=व्याप्नोतीति सर्वत्रग=सरुललोकालोकव्यापि तत्, ज्ञान=ज्ञायन्ते=परिच्छिद्यन्ते द्रव्य-गुण-पर्यायादयोऽनेनेति ज्ञान=केवलज्ञानमित्यर्थस्तत्, दर्शन=दृश्यन्ते=साक्षात्क्रियन्ते द्रव्यादयो येनेति दर्शनम्=केवलदर्शनमित्यर्थस्तत् । “सामान्यार्यावबोधो दर्शन, विशेषार्थावबोधो ज्ञान”-मित्युभयोर्भेदः, तथाहि—

“ज सामण्यग्रहण दसणमेय विसेसिय नाण” इति, चः समुच्चये, अभि-गच्छति=कर्मजनितसरुलाऽऽवरणाभावादतिशयेन सम्प्राप्नोति सयोगिकेवल्लिगुण-स्थानमारोहतीत्यर्थः ॥२१॥

केवलज्ञान-केवलदर्शनयोः फलमाह-‘जया सव्वत्तग’ इत्यादि ।

जब साधु मिथ्यात्वरूपी पापसे उत्पन्न हुए कर्मरजको नष्ट कर देते हैं तब समस्त लोकाकाश और अलोकाकाशमें व्यापी द्रव्य पर्यायोको जाननेवाला केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्राप्त होता है । पदार्थोका सामान्य ज्ञान होना दर्शन है और विशेष ज्ञान होना ज्ञान है, यही दोनोंमें भेद है, कहाभी है—

“सामान्यका ग्रहण होना दर्शन है और विशेष का ग्रहण होना ज्ञान है ।”

कर्मोंसे उत्पन्न हुए समस्त आवरणोंके अभावसे इन दोनों (ज्ञानदर्शन)को प्राप्त करते हैं ॥ २१ ॥

केवलज्ञान और केवलदर्शन का फल कहते हैं-‘जया सव्वत्तग’ इत्यादि ।

न्याये साधु मिथ्यात्वरूपी पापधी उत्पन्न थयेली कर्मरजने नष्ट करी नाये छे, त्यारे समस्त लोकाकाश अने अलोकाकाशमा व्यापेला द्रव्य पर्यायिने वल्लुपवाणु डेवणज्ञान तथा डेवणदर्शन प्राप्त वाय छे पदार्थोनु सामान्य ज्ञान थयु अे दर्शन छे अने विशेष ज्ञान थयु अे ज्ञान छे अे भेडभा वेड छे डल्लु छे डे—

“सामान्यनु ग्रहणु थयु अे दर्शन छे अने विशेषनु ग्रहणु थयु अे ज्ञान छे ”

कर्मोथी उत्पन्न थयेला सर्व आवरणोना अभावयी अे भेड (ज्ञान दर्शन)ने प्राप्त करे छे (२१)

केवलज्ञान अने केवलदर्शननु क्षण छडे छे-जया सव्वत्तग धत्यादि

इदं ध्यान क्षीणमोहनीयगुणस्थाने एव भवति, एतद्व्यानचरमसमये क्षपक-  
श्रेण्यारूढो मुनिर्ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीयमन्तरायाम्यं च, त्रीणि कर्माणि युग-  
पद् क्षपयति, अस्य ध्यानस्य फलं च केवलज्ञानकेवलदर्शनाऽनन्तवीर्यप्राप्तिरेव,  
प्रकृतध्यानद्वयमन्तरेण केवलज्ञान लब्धुमशक्यम् । एतन्नोमय ध्यान छद्मस्थानां  
जायते, तृतीयचतुर्थे तु केवलिनामेव भवत इति बोद्धव्यम् ॥२०॥

घातिकर्मक्षयजनितफल प्रदर्शयितुमुक्रमते-‘जया धुणइ’ इत्यादि ।

मूलम्-जया धुणइ कम्मरयं, अवोहिकलुसंकडं ।

तया सबत्तगं नाण, दसण चाभिगच्छइ ॥ २१ ॥

छाया—यदा धुनाति कर्मरजोऽवधिकलुपकृतम् ।

तदा सर्वत्रग ज्ञान, दर्शन चाभिगच्छति ॥२१॥

सान्दर्यायः—जया=जव अवोहिकलुसकड=आस्माके मिथ्यास्वपरिणाम  
द्वारा उपार्जित किये हुए कम्मरय=कर्मरूपी रजको धुणइ=हटा देता है, तथा=  
तव सब्वत्तग=सब जगह जानेवाले-सब पदार्थोंको जाननेवाले नाण=ज्ञानको  
च=और दसण=दर्शनको अभिगच्छइ=प्राप्त करता है ॥२१॥

यह ध्यान क्षीणमोहनीय गुणस्थानमें ही होता है । इस ध्यानके  
अन्तमें ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय नामक तीन घाति  
कर्मोंका एक साथ ही क्षय हो जाता है । इस ध्यानका फल केवलज्ञान,  
केवलदर्शन और अनन्तवीर्यकी प्राप्ति है । इन दोनों ध्यानोके विना  
केवलज्ञान नहीं प्राप्त होसकता । ये दोनों ध्यान छद्मस्थोको होते हैं,  
तथा तीसरा और चौथा ध्यान केवलियों को होता है ॥२०॥

घातिकर्मोंके क्षय होनेसे उत्पन्न होनेवाला फल बतलाते हैं-‘जया  
धुणइ’ इत्यादि ।

ये ध्यान क्षीणमोहनीय गुणस्थानमा ए थाय छे ये ध्यानना अतमा  
ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय अने अन्तराय नामना त्रयु घाति-कर्मेनि ओडी  
साथे ए क्षय थई जय छे ये ध्यानतु इल केवण ज्ञान, केवण दर्शन अने अनंत  
वीर्यनी प्राप्ति छे ये जेठ ध्यान विना केवण ज्ञान प्राप्त थई शकतु नथी ये  
जेठ ध्यान छद्म-थाने थाय छे, तथा त्रीणु अने चोथु ध्यान केवणीअने  
थाय छे (२०)

घातिकर्मेनि क्षय थवाथी उत्पन्न थनाइ इण जतावे छे-जया धणइ इत्यादि.

मस्माभिरवलोक्यते तावानेव लोकः?, नहि, अनन्तज्ञानसम्पन्नेन सर्वज्ञेन यो लोक्यते स लोक इति ।

नन्वेतेनाऽलोकस्यापि लोकत्वप्रसङ्गस्तस्यापि सर्वज्ञेनावलोकितत्वात्, तथा-चाऽलोक्यते किं लोकः? न, यतो लोक्यते धर्मास्तिकायात्राधारभूत आकाश-विशेषो यः स लोक इत्यवधार्यम् । स च ऋटितटोभयपार्श्वतोनिहितहस्तद्वयो विस्फारितपादयुगलोऽवस्थितः पुरुष इव नृत्यद्वैरवोपासकाकृतिको वा ऊर्ध्वाऽध-स्तिर्यग्भेदभिन्नधर्तुर्दशरज्जुपरिमितोऽसख्यातप्रदेशात्मक आकाशविशेषस्तम् । तद्वि-परीतोऽलोकः ।

उत्तर-उतना ही नहीं है। अनन्तज्ञानी सर्वज्ञ भगवान् द्वारा जितना देखा जाता है उतना लोक है ।

प्रश्न-केवली भगवान् अलोकको भी देखते हैं तो उनके देखनेसे अलोक भी लोक हो जायगा ?

उत्तर-नहीं होगा। भगवान् ने धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों का आधार-भूत जो आकाश देखा है उसे लोक कहते हैं, ऐसा समझना चाहिये ।

वह लोक कमरपर दोनों हाथ रखकर, पैर फैलाकर खड़े हुए पुरुष के आकारका, अथवा नाचते हुए भैरवोपासक (भोपा) की आकृतिका है। इसके तीन भेद हैं—(१) उर्ध्वलोक, (२) मध्यलोक, (३) अधोलोक । यह चौदह राजू जितना ऊँचा और असख्यात-प्रदेशमय है । अलो-काकाश इससे विपरीत है ।

उत्तर—अटवो न नहि अनन्तज्ञानी सर्वज्ञ भगवान् द्वारा अटवो जेवाय छे अटवो लोक छे

प्रश्न—केवली भगवान् तो अलोकने पण्णुं छे तो अमना जेवाथी अलोक पण्णुं लोक थर्थ न्थे ?

उत्तर—नहि थाय भगवाने धर्मास्तिकाय आदि द्रव्येणुं आधारभूत न् आकाश जेथु छे अने लोक छे छे, अम समण्णुं जेथुं

अ लोक कमर पर गेठ हाथ राणीने, पग डेलावीने जेला पुञ्चना आकारने, अथवा नायता बैरवोपासक (भुना)नी आकृतिने छे तेना पण्णुं लोक छे (१) उर्ध्वलोक, (२) मध्यलोक, (३) अधोलोक अ थौद रण्णुं जेवडा उथे अने असख्यात प्रदेशमय छे अलोकाकाश अथी विपरीत छे

१ २ ३ ४ ५  
मूलम्-जया सवत्तग नाणं, दसण चाभिगच्छड ।

१ ६ १० ११ ७ १२ ८  
तया लोगमलोग च, जिणो जाणड केवली ॥२२॥

श्रया-यदा सर्वत्रग ज्ञान, दर्शनं चाभिगच्छति ।

तया लोफमलोक च, जिनो जानाति केवली ॥२२॥

सा उपार्थः-जया=जय सवत्तग=सब जगद जानेवाले-सब पदार्थोंको जाननेवाले नाण=ज्ञानको च=और दसण=दर्शनको अभिगच्छड=प्राप्त करता है, तया=तय जिणो=वीतराग केवली=केवलज्ञानी होते-हुए लोगमलोग च=लोक और अलोकको जाणड=जानते हैं ॥२२॥

टीका-यदा केवलज्ञान केवलदर्शन च प्राप्नोति तदा जिनः=यातिवर्मविजेता, केवली=केवलज्ञानी सन् लोफ=लोक्यत इति लोफस्त जानाति=करतलामलकव ज्ञानविपयीकरोति ।

आह-ननु कोऽय लोफपदार्थः? यदि केनचिदेको ग्रामोऽवलोकितस्तर्हि किं तावानेव लोकः? न, अपरेण ततोऽप्यधिसग्रामदर्शनात् । तर्हि यावद् ग्रामादिक-

जब सर्वव्यापी ज्ञान तथा दर्शनको प्राप्त करते हैं तब केवली होकर लोक और अलोकको जानते हैं ।

जो देखा जाता है उसे लोक कहते हैं ।

प्रश्न-यदि किसीने एक ग्राम देखा हो तो लोक क्या उतना ही होगा ?

उत्तर-उतना ही नहीं होगा, क्योंकि दूसरे उससे अधिक ग्राम देखते हैं ?

प्रश्न-तो हमलोग जितने ग्रामोंको देखते हैं उतना ही लोक है ?

न्यारे सर्वव्यापी ज्ञान तथा दर्शनने प्राप्त करे छे त्यारे केवली श्रधने लोक अने अलोकने ज्ञे छे

जे जेध शक्य तेने लोक कडे छे

प्रश्न-जे केधजे अेक ग्राम जेधु डाय तो लोक शु अेटले न डाय ?

उत्तर-अेटले न नडि डाय, जरखु के णीजजे अेथी वधारे ग्रामे लुजे छे

प्रश्न-तो आपणे जेटला आमने जेधजे छीजे अेटले न लोक छे ?

मस्माभिरवलोक्यते तावानेव लोकाः ? नहि, अनन्तवानसम्पन्नेन सर्वज्ञेन यो लोक्यते स लोक इति ।

नन्वेतेनाऽलोकस्यापि लोकत्वप्रसङ्गस्तस्यापि सर्वज्ञेनावलोकितत्वात्, तथा-चाऽलोकोऽपि किं लोकः ? न, यतो लोक्यते धर्मास्तिकायाथाधारभूत आकाश-विशेषो यः स लोक इत्यवधार्यम् । स च ऋटितटोभयपार्श्वतोनिहितद्वस्तद्वयो-विस्फारितपादयुगलोऽवस्थितः पुरुष इव नृत्यद्वैरवोपासकाकृतिको वा ऊर्ध्वास-स्थिर्यग्भेदभिन्नश्चतुर्दशरज्जुपरिमितोऽसख्यातप्रदेशात्मक आकाशविशेषस्तम् । तद्वि-परीतोऽलोकः ।

उत्तर-उतना ही नहीं है। अनन्तजानी सर्वज्ञ भगवान् द्वारा जितना देखा जाता है उतना लोक है ।

प्रश्न-केवली भगवान् अलोकको भी देखते हैं तो उनके देखनेसे अलोक भी लोक हो जायगा ?

उत्तर-नहीं होगा। भगवान् ने धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों का आधार-भूत जो आकाश देखा है उसे लोक कहते हैं, ऐसा समझना चाहिये ।

वह लोक कमरपर दोनों हाथ रखकर, पैर फैलाकर खड़े हुए पुरुष के आकारका, अथवा नाचते हुए भैरवोपासक (भोपा) की आकृतिका है। इसके तीन भेद हैं-(१) उर्ध्वलोक, (२) मयलोक, (३) अधोलोक। यह चौदह राजू जितना ऊँचा और असख्याल-प्रदेशमय है। अलो-काकाश इससे विपरीत है ।

उत्तर-ओटलो न नहि अनन्तजानी सर्वज्ञ भगवान् द्वारा ओटलो जेवाय छे ओटलो लोक छे

प्रश्न-जेवणी भगवान् तो अलोकने पणु ज्युंछे छे तो ज्येभना जेवाथी अलोक पणु लोक थछं नशे ?

उत्तर-नहि थाय भगवाने धर्मास्तिकाय आदि द्रव्येणु आधारभूत जे आकाश जेथु छे ज्येने लोक कहे छे, ज्येभ सम्पणु ज्येभे

जे लोक कमर पर जेठ हाथ राणीने, पणु शैलावीने जिलेला पुशुपना आकारने, अथवा नाचता लंज्योपासक (भुवा)नी आकृतिने छे तेना त्रयु लेद छे (१) उर्ध्वलोक, (२) मध्यलोक, (३) अधोलोक जे चौद रणु जेवडा उच्ये ज्ये असख्यात प्रदेशमय छे अलोकाकाश ज्येथी विपरीत छे

१ २ ३ ४ ५  
मूलम्-जया सवत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ।

१ ६ १० ११ ७ १२ ८  
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥२२॥

श्रया-यदा सर्वत्रगं ज्ञानं, दर्शनं चाभिगच्छति ।

तया लोगमलोकं च, जिणो जानाति केवली ॥२२॥

सा-प्रार्थः-जया=जय सवत्तग=मय जगद् जानेवाले-सव पदार्थोंको जाननेवाले नाण=ज्ञानको च=और दंसण=दर्शनको अभिगच्छइ=प्राप्त करता है, तया=तब जिणो=श्रीतराग केवली=केवलज्ञानी होते-हुए लोगमलोग च=लोक और अलोकको जाणइ=जानते हैं ॥२२॥

टीका-यदा केवलज्ञान केवलदर्शन च प्राप्नोति तदा जिनः=प्रातिकर्मविजेता, केवली=केवलज्ञानी सन् लोका=लोकवत् इति लोकस्त जानाति=करतलामलकन ज्ञानविषयीकरोति ।

आह-ननु कोऽयं लोकापदार्थः? यदि केनचिदेको ग्रामोऽवलोकितस्तर्हि किं तावानेव लोकः? न, अपरेण ततोऽप्यधिमग्रामदर्शनात् । तर्हि यावद् ग्रामादिक

जय सर्वव्यापी ज्ञान तथा दर्शनको प्राप्त करते हैं तब केवली होकर लोक और अलोकको जानते हैं ।

जो देखा जाता है उसे लोक कहते हैं ।

प्रश्न-यदि किसीने एक ग्राम देखा हो तो लोक क्या उतना ही होगा ?

उत्तर-उतना ही नहीं होगा, क्योंकि दूसरे उससे अधिक ग्राम देखते हैं ?

प्रश्न-तो हमलोग जितने ग्रामोंको देखते हैं उतना ही लोक है ?

न्यारे सर्वव्यापी ज्ञान तथा दर्शनने प्राप्त करे छे त्यारे केवली यधने लोक अने अलोकने जणु छे

जे जेध शक्य तेने लोक कहे छे

प्रश्न-जे केधजे जेठ ग्राम जेथु डोय तो लोक शु अटलो न डोय ?

उत्तर-अटलो न नहि डोय, कारणु के णिनयो अथी पधारे ग्रामे

जुअे छे

प्रश्न-तो आपणे जेटका ग्रामेने जेधजे छीअे अटलो न लोक छे ?

लोकः सप्रतिपक्षः, व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिप्रेयत्वात्, यो हि व्युत्पत्ति-  
मच्छुद्धपदाभिप्रेयः स सप्रतिपक्ष एव भवति, यथा घटः । यश्च लोकरप्रतिपक्षः  
स एव सद्भूतोऽलोकः, अस्तित्ववत् एव प्रतिपक्षित्वसम्भवात् ।

ननु 'न लोकोऽलोकः' इति व्युत्पत्त्या घटादिष्वन्यतम एवालोकः सिध्यति  
किं पदार्थान्तररूपनया ? इति चेदुच्यते-'न लोकः' इत्यत्र नव पर्युदासार्थक-

लोक अपने प्रतिपक्ष (विरोधी-अलोक) की अपेक्षा रखता है, क्योंकि  
वह व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य (अर्थ) है । जो जो व्युत्प-  
त्तिवाले समासरहित पदका वाच्य होता है वह प्रतिपक्षसहित ही  
होता है, जैसे घट । घट व्युत्पत्तिवाला है और समासरहित है, अर्थात्  
दो पद मिल कर नहीं बना हुआ है, अत एव घटके प्रतिपक्ष-अघट-पट,  
सुकुट, शकट, कट आदि भी अवश्य होते हैं । लोकका जो प्रतिपक्ष है  
वह अस्तित्ववान् अलोक है, क्योंकि अस्तित्ववान् पदार्थ ही किसीका  
प्रतिपक्ष हो सकता है । गधेका साँग आदि नास्तित्ववान् पदार्थ किसीके  
प्रतिपक्ष नहीं होते ॥

प्रश्न-'जो लोक नहीं वह अलोक है' ऐसा माननेसे लोकसे भिन्न  
जितने घट पट आदि पदार्थ है वे सब अलोक होंगे, क्योंकि वे लोक  
नहीं हैं-लोकसे भिन्न हैं । फिर घट आदि पदार्थोंसे भिन्न एक अलग  
अलोक क्यों मानते हो ?

लोक पोताना प्रतिपक्ष (विरोधी अलोक) नी अपेक्षा राणे छे, कारण  
के अ व्युत्पत्तिवाणा समासरहित शब्दने वाच्य (अर्थ) छे ने ने  
व्युत्पत्तिवाणा समासरहित शब्दने वाच्य छे ते प्रतिपक्षसहित न छे  
छे नेम घट, घट व्युत्पत्तिवाणे छे अने समासरहित छे, अर्थात् ने  
शब्दो भणवाथी अनेलो नथी, तेथी घटने प्रतिपक्ष-अघट-पट, सुकुट, शकट,  
कट आदि पक्ष अवश्य छे ते लोकने ने प्रतिपक्ष छे ते अस्तित्ववान् अलोक छे,  
कारण के अस्तित्ववान् पदार्थ न केअने प्रतिपक्ष थछे शके छे गधेअनु  
साँगकु वगेरे नास्तित्ववान् पदार्थ केअने प्रतिपक्ष थते नथी

प्रश्न-'ने लोक नथी ते अलोक छे' अंग मानवाथी लोकथी भिन्न नेटला  
घट पट आदि पदार्थो छे ते अला अलोक थसे, कारण के ते लोक नथी-लोकथी  
भिन्न छे पछी घट आदि पदार्थो भिन्न अके नूढो अलोक केम मानो छे ?



अस्तु लोको जीवपुद्गलाग्नीनामनाभारतयाऽऽस्यानासम्भवात्, अलोकस्तु कथम्, तस्याऽमूर्त्तत्वेनेन्द्रियागोचरतयाऽऽस्तित्वात्प्रथममाणाभावात्, इन्द्रियागोचरे चार्थमन'प्रवृत्तेः कदाऽप्यसम्भवादिति न शङ्कनीयम्, इन्द्रियनोऽन्द्रियविषयत्वाभावमात्रदर्शनेन तदस्तित्वनिराकरणस्याऽऽशङ्क्यत्वात्, अन्यथा हि प्रपितामहादीनामपि तत् एवमावः प्राप्नुयात् । यतः 'आसन् प्रपितामहादयोऽस्मादादिसरीरस्याऽन्यथाऽनुपपन्नत्वात्' इत्यनुमानेन तेषामस्तित्व साध्यते चेदलोकस्याप्यनुमानेन मिदिरनवधैव, तथाहि-

प्रश्न-जीव और पुद्गल आदि बिना आधारके नहीं ठहर सकते, अतः लोकाकाश मानना तो ठीक है, परन्तु अलोकाकाशके अस्तित्वमें क्या प्रमाण है?, कारण यह कि इन्द्रियोंका यह विषय नहीं है, क्योंकि अमूर्त्त है। जिस विषयमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति नहीं होती उसमें मन भी प्रवृत्त नहीं हो सकता। अत एव न इन्द्रियोंसे अलोकाकाशको जान सकते हैं और न मनसे।

उत्तर-यह प्रश्न ठीक नहीं है, क्योंकि इन्द्रिय और मनका विषय न होनेसे उसके अस्तित्वका खण्डन नहीं हो सकता, अन्यथा दादे परदादे आदि पूर्वजोंका भी अस्तित्व सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि वे भी इन्द्रिय और मनके विषय नहीं होते। यदि कोई इस अनुमानसे पूर्वजोंका अस्तित्व सिद्ध करे कि-पितामह (दादा) आदि पूर्वजोंका किसी समयमें अस्तित्व था, क्योंकि उनके बिना हमारा शरीर नहीं बन सकता तो अनुमानसे ही अलोककी भी सिद्धि मान लेनी चाहिए। अनुमान यह है-

प्रश्न-जब अने पुद्गल आदि आधार बिना रही शकता नहीं, तैथी लोकाकाश मानवु अे तो णराणर छे, परन्तु अलोकाकाशना अस्तित्वनुं शु प्रमाण छे?, कारण अे छे के धन्द्रियेना अे विषय नहीं केभडे अमूर्त्त छे के विषयभा धन्द्रियेनी प्रवृत्ति थती नहीं तेभा मन पणु प्रवृत्त थथ शकतु नहीं अेथी करीने धन्द्रियेथी अलोकाकाशने व्वाणी शकतु नहीं तेभज मनथी पणु व्वाणी शकतु नहीं

उत्तर-अे प्रश्न णराणर नहीं केभडे धन्द्रिय अने मननेा विषय न होवाथी तेना अस्तित्वनुं भउन थथ शकतु नहीं अेभ तो दाद पडदादा आदि पूर्वजनेनु पणु अस्तित्व सिद्ध नहिं थाय, केभडे ते पणु धन्द्रिय अने मनना विषय नहीं होता अे डोथ अनुमानथी पूर्वजनेनु अस्तित्व सिद्ध करे के भड (दादा) आदि पूर्वजनेनु डोथ सभये अस्तित्व छतु, कारण के अेना बिना आपणु शरीर णनी शडे नहिं, तो अनुमानथी न अलोकनी पणु सिद्धि भाणी लेवी जेधअे, अनुमान अे छे के-

लोकः सप्रतिपक्षः, व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिप्रेयत्वात्, यो हि व्युत्पत्ति-  
मच्छुद्धपदाभिप्रेयः स सप्रतिपक्ष एव भवति, यथा घटः । यश्च लोकरूपप्रतिपक्षः  
स एव सदभूतोऽलोकः, अस्तित्ववत् एव प्रतिपक्षित्वसम्भवात् ।

ननु 'न लोकोऽलोकः' इति व्युत्पत्त्या घटादिष्वन्यतम एवालोकः सि यति  
किं पदार्थान्तररूपनया ? इति चेदुच्यते-'न लोकः' इत्यत्र नव पर्युदासार्थरू-

लोक अपने प्रतिपक्ष (चिरोधी-अलोक) की अपेक्षा रखता है, क्योंकि  
वह व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य ( अर्थ ) है । जो जो व्युत्प-  
त्तिवाले समासरहित पदका वाच्य होता है वह प्रतिपक्षसहित ही  
होता है, जैसे घट । घट व्युत्पत्तिवाला है और समासरहित है, अर्थात्  
दो पद मिल कर नहीं बना हुआ है, अत एव घटके प्रतिपक्ष-अघट-पट,  
मुकुट, शकट, कट आदि भी अवश्य होते हैं । लोकका जो प्रतिपक्ष है  
वह अस्तित्ववान् अलोक है, क्योंकि अस्तित्ववान् पदार्थ ही किसीका  
प्रतिपक्ष हो सकता है । गधेका सींग आदि नास्तित्ववान् पदार्थ किसीके  
प्रतिपक्ष नहीं होते ॥

प्रश्न-' जो लोक नहीं वह अलोक है ' ऐसा माननेसे लोकसे भिन्न  
जितने घट पट आदि पदार्थ हैं वे सब अलोक होंगे, क्योंकि वे लोक  
नहीं हैं-लोकसे भिन्न हैं । फिर घट आदि पदार्थोंसे भिन्न एक अलग  
अलोक क्यों मानते हो ?

लोक पोताना प्रतिपक्ष (चिरोधी अलोक) नी अपेक्षा राणे ठे, कारण  
के अ व्युत्पत्तिवाणा समासरहित शब्दने वाच्य (अर्थ) छे ने ने  
व्युत्पत्तिवाणा समासरहित शब्दने वाच्य होय छे ते प्रतिपक्षसहित न होय  
छे नेम घट, घट व्युत्पत्तिवाणे छे अने समासरहित छे, अर्थात् ने  
शब्दो भणवाथी जनेलो नथी, तेथी घटने प्रतिपक्ष-अघट-पट, मुकुट, शकट,  
कट आदि पक्ष अवश्य होय छे लोकने ने प्रतिपक्ष छे ते अस्तित्ववान् अलोक छे,  
कारण के अस्तित्ववान् पदार्थ न कोसने प्रतिपक्ष थथ शके छे गधेकानु  
सींगडु वगेरे नास्तित्ववान् पदार्थ कोसने प्रतिपक्ष थतो नथी

प्रश्न-' ने लोक नथी ते अलोक छे ' अने मानवाथी लोकथी भिन्न नेटवा  
घट पट आदि पदार्थो छे ते गधा अलोक थथे, कारण के ते लोक नथी-लोकथी  
भिन्न छे पठी घट आदि पदार्थोथी भिन्न अेक गूढो अलोक केम मानो छे ?

अस्तु लोको जीवपुद्गलादीनामनाभारतयाऽस्थानासम्भवात्, अत्रोक्तस्तु कथम्?, तस्याऽमूर्त्तत्वेनेन्द्रियागोचरतयाऽस्तित्वमाश्रयमाणाभावात्, इन्द्रियागोचरे चाप्येवमनःपट्टे' कदाऽप्यसम्भवादिति न शङ्कनीयम्, इन्द्रियनोऽन्द्रियविषयत्वाभावात्प्रदर्शनेन तदस्तित्वनिराकरणस्याऽशक्यत्वात्, अन्यथा हि प्रपितामहादीनामपि तत् एवाभाव' प्राप्नुयात् । यतः 'आसन् प्रपितामहादयोऽस्मादादिशरीरस्याऽन्यथाऽनुपपन्नत्वात्' इत्यनुमानेन तेषामस्तित्व साध्यते चेदलोकस्याप्यनुमानेन सिद्धिरनवधैव, तथाहि—

प्रश्न—जीव और पुद्गल आदि बिना आधारके नहीं ठहर सकते, अतः लोकाकाश मानना तो ठीक है, परन्तु अलोकाकाशके अस्तित्वमें क्या प्रमाण है?, कारण यह कि इन्द्रियोंका यह विषय नहीं है, क्योंकि अमूर्त्त है। जिस विषयमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति नहीं होती उसमें मन भी प्रवृत्त नहीं हो सकता। अत एव न इन्द्रियोंसे अलोकाकाशको जान सकते हैं और न मनसे।

उत्तर—यह प्रश्न ठीक नहीं है, क्योंकि इन्द्रिय और मनका विषय न होनेसे उसके अस्तित्वका खण्डन नहीं हो सकता, अन्यथा दादे परदादे आदि पूर्वजोंका भी अस्तित्व सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि वे भी इन्द्रिय और मनके विषय नहीं होते। यदि कोई इस अनुमानसे पूर्वजोंका अस्तित्व सिद्ध करे कि—पितामह (दादा) आदि पूर्वजोंका किसी समयमें अस्तित्व था, क्योंकि उनके बिना हमारा शरीर नहीं बन सकता तो अनुमानसे ही अलोककी भी सिद्धि मान लेनी चाहिए। अनुमान यह है—

प्रश्न—जब अने पुद्गल आदि आधार बिना रहि शकता नहीं, तैथी लोकाकाश मानलु अये तो जरागर छे, परन्तु अलोकाकाशना अस्तित्वनु शु प्रमाण छे?, कारण अये छे के इन्द्रियोना अये विषय नहीं केमके अमूर्त्त छे जे विषयमा इन्द्रियोनी प्रवृत्ति थती नहीं तेमा मन पण प्रवृत्त थथ शकतु नहीं अयेथी करीने इन्द्रियोथी अलोकाकाशने जाली शकतु नहीं तेमज मनथी पण जाली शकतु नहीं

उत्तर—अये प्रश्न जरागर नहीं केमके इन्द्रिय अने मनना विषय न होवाथी तेना अस्तित्वनु भडन थथ शकतु नहीं अयेम तो दाद पडादा आदि पूर्वजोनु पण अस्तित्व सिद्ध नहिं थाय, केमके ते पण इन्द्रिय अने विषय नहीं होता जे दोध अनुमानथी पूर्वजोनु अस्तित्व सिद्ध करे के मड (दादा) आदि पूर्वजोनु दोध समये अस्तित्व छतु, कारण के अनेना विना आपणु शरीर जनी शके नहिं, तो अनुमानथी जे अलोकाकी पण सिद्धि भाणी लेवी जेधअे, अनुमान अये छे के—

लोकः सप्रतिपक्षः, व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिप्रेयत्वात्, यो हि व्युत्पत्ति-  
मच्छुद्धपदाभिप्रेयः स सप्रतिपक्ष एव भवति, यथा घटः । यश्च लोकरप्रतिपक्षः  
स एव सद्भूतोऽलोकः, अस्तित्ववत् एव प्रतिपक्षित्वसम्भवात् ।

ननु 'न लोकोऽलोकः' इति व्युत्पत्त्या घटादिष्वन्यतम एवालोकः सि यति  
किं पदार्थान्तररूपनया ? इति चेदुच्यते-'न लोकः' इत्यत्र नव पर्युदासार्थरू-

लोक अपने प्रतिपक्ष (विरोधी-अलोक)की अपेक्षा रखता है, क्योंकि  
वह व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य ( अर्थ ) है । जो जो व्युत्प-  
त्तिवाले समासरहित पदका वाच्य होता है वह प्रतिपक्षसहित ही  
होता है, जैसे घट । घट व्युत्पत्तिवाला है और समासरहित है, अर्थात्  
दो पद मिल कर नहीं बना हुआ है, अत एव घटके प्रतिपक्ष-अघट-पट,  
मुकुट, शकट, कट आदि भी अवश्य होते हैं । लोकका जो प्रतिपक्ष है  
वह अस्तित्ववान् अलोक है, क्योंकि अस्तित्ववान् पदार्थ ही किसीका  
प्रतिपक्ष हो सकता है । गधेका सींग आदि नास्तित्ववान् पदार्थ किसीके  
प्रतिपक्ष नहीं होते ॥

प्रश्न-' जो लोक नहीं वह अलोक है ' ऐसा माननेसे लोकसे भिन्न  
जितने घट पट आदि पदार्थ हैं वे सब अलोक होंगे, क्योंकि वे लोक  
नहीं है-लोकसे भिन्न हैं । फिर घट आदि पदार्थोंसे भिन्न एक अलग  
अलोक क्यों मानते हो ?

लोक पोताना प्रतिपक्ष ( विरोधी अलोक ) नी अपेक्षा राणे छे, कारण  
ते अ व्युत्पत्तिवाणा समासरहित शब्दने वाच्य ( अर्थ ) छे ते अ व्युत्पत्तिवाणा  
समासरहित शब्दने वाच्य छे ते प्रतिपक्षसहित अ छे छे  
छे अने घट, घट व्युत्पत्तिवाणे छे अने समासरहित छे, अर्थात् अ  
शब्दो भगवाथी अनेलो नथी, तेथी घटने प्रतिपक्ष-अघट-पट, मुकुट, शकट,  
कट आदि पद्य अवश्य छे लोकने अ प्रतिपक्ष छे ते अस्तित्ववान् अलोक छे,  
कारण ते अस्तित्ववान् पदार्थ अ ठाणे प्रतिपक्ष थड शडे छे गधेडानु  
शींगडु वजेरे नास्तित्ववान् पदार्थ ठाणे प्रतिपक्ष थते नथी

प्रश्न-' अ लोक नथी ते अलोक छे ' अने मानवाथी लोकथी भिन्न अटला  
घट पट आदि पदार्थो छे ते अथा अलोक थरी, कारण ते ते लोक नथी-लोकथी  
भिन्न छे पछी घट आदि पदार्थोथी भिन्न अके अलोक केम माने छे ?

ત્વાત્, 'પર્યુદાસઃ સદશપ્રાદી'-તિ નિયમાન્નિપેધ્યસદશેનૈવ માવ્યમ્, નિપેધ્યાત્  
 જીવાઽજીવાઽઽદિદ્રવ્યાધારભૂત આકાશવિશેષાત્મકો લોકઃ, અતોઽલોકોઽપ્યા  
 ફાશવિશેષરૂપ एव भवितु योग्यः, यथा 'अधनोऽयम्' इत्युक्ते धनरहितो मनुष्य  
 एव गृह्यते न तु घटपटादिः, तथेहाऽप्यलोको लोकानुरूप एव बोद्धव्य इति ॥२२॥

ઉત્તર—જો લોક નહીં વહ અલોક છે । યહોં નગ્નસમાસ છે ।  
 નગ્નર્થ દો પ્રકારકા હોતા છે । ઁક નગ્નર્થ ઁસા હોતા છે કિ વહ  
 જિસકા નિપેધ ક્રિયા જાતા છે ઁસ નિપેધ્યકે સમાનકા હી ગ્રહણ  
 કરનેવાલા હોતા છે ઁસે પર્યુદાસ કરતે હૈં । કહા ઁહી છે કિ-  
 “પર્યુદાસ સદશકા ઘોધક હોતા છે ।” અત ઁવ લોકકા નિપેધ  
 રૂપ અલોક ઁહી લોકહીકે સમાન હોના ઁહિણ । નિપેધ્ય યહા જીવ  
 અજીવ આદિ દ્રવ્યોંકા આધારભૂત આકાશવિશેષ છે, અતઃ અલોક ઁહી  
 આકાશવિશેષ (જીવ અજીવ આદિ દ્રવ્યોંકે આધારસે ભિન્ન) હોના  
 ઁહિણ । જૈસે કિસીને કહાકિ યહ ‘અધન’ છે । ઁસ વાક્યમેં ‘અધન’  
 શબ્દસે યહ નહી સમજ્ઞા જાતા છે કિ યહ ઘડા છે યા કપડા છે, કિન્તુ  
 ઘનરહિત મનુષ્ય અર્થ હી સમજ્ઞા જાતા છે । ઁસી પ્રકાર યહોં ‘અલોક’  
 શબ્દસે ઘડા નહી સમજ્ઞના ઁહિણ કિન્તુ આકાશવિશેષ હી સમજ્ઞના  
 ઁહિણ । કેવલી ભગવાન્ ઁન લોક ઁર અલોક ઘોનોંકો જાનતે હૈં ॥૨૨॥

ઉત્તર—જો લોક નથી તે અલોક છે એમા નગ્ન સમાસ છે નગ્નર્થ એ  
 પ્રકારના હોય છે એક નગ્નર્થ એવો હોય છે કે તે જેનો નિપેધ કરવામા આવે છે એ  
 નિપેધ્યની સમાનના જ ગ્રહણ કરનાર હોય છે, તેને પર્યુદાસ કહે છે, કહ્યું છે કે-  
 “પર્યુદાસ સદશનો ઘોધક હોય છે” તેથી કરીને લોકના નિપેધરૂપ અલોક પણ  
 લોકની જ સમાન હોવો જોઈએ અહીં નિપેધ્ય જીવ-અજીવ આદિ દ્રવ્યોના આધારભૂત  
 આકાશ વિશેષ છે, તેથી અલોક પણ આકાશ વિશેષ (જીવ અજીવ આદિ દ્રવ્યોના  
 આધારથી ભિન્ન) હોવો જોઈએ, જેમકે ઝોઈએ કહ્યું કે એ ‘અધન’ છે,  
 એ વાક્યમા ‘અધન’ શબ્દથી એમ નથી સમજાતું કે એ ઘડો છે યા કપડું છે,  
 કિન્તુ ‘ધનરહિત મનુષ્ય’ એવો અર્થ જ સમજાય છે એ રીતે અહીં  
 ‘અલોક’ શબ્દથી ઘડો યા કપડું ન સમજાવું જોઈએ, કિન્તુ આકાશવિશેષ જ  
 સમજવો જોઈએ કેવળી ભગવાન્ એ લોક અને અલોક બંને જાણે છે (૨૨)

१ ४ ५ ६ २ ७ ३  
मूलम्-जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ।

८ ६ १० ११ १२  
तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥ २३ ॥

छाया—यदा लोकमलोक च, जिनो जानाति केवली ।

तदा योगान्निरुध्य, शैलेशी प्रतिपद्यते ॥२३॥

सान्प्रयार्थः—जया=जब जिणो=वीतराग केवली=केवलज्ञानी होये हुए लोगमलोग च=लोक और अलोकको जाणइ=जानते हैं, तया=तब जोगे=मन-वचन-कायके योगोका निरुभित्ता=निरोध करके सेलेसिं=शैलेशीकरणको पडि-वज्जइ=प्राप्त करते हैं ॥२३॥

टीका—‘जया लोग’-मित्यादि । यदा जिनः केवली लोकालोक जानाति तदा योगान्=मनोवाक्यायलक्षणान् निरुध्य, तथाहि=मुक्तिपदेऽन्तर्मुहूर्त्तभाविनि आयुष्यन्तर्मुहूर्त्तमात्रावशेषे सति यत्रघातिकर्मचतुष्टय स्वभावतः समस्थितिक स्यात्तदा निष्कलङ्कः परमकल्याणाऽऽस्पदीभूतः केवली सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्याख्य ध्यानमारभते । उत्कृष्ट आयुषः पण्मासावशेषे समुत्पन्नकेवलस्य भगवतस्तु तदा-

“जया लोग०” इत्यादि । जब घातिकर्मोंको जीतनेवाले केवली भगवान् लोक और अलोकको जान लेते हैं तब योगोंका निरोध करके शैलेशी अवस्थाको प्राप्त करते हैं ।

(३) अन्तर्मुहूर्त्त मात्र आयु शेष रहने पर यदि बाकी रहे हुए चारों अघातिया कर्मोंकी स्थिति स्वभावसे ही बराबर हो तो निष्कलङ्क परम कल्याणके आश्रयभूत केवली प्रभु सूक्ष्मक्रिय नामक शुद्ध ध्यानके तीसरे पायेका ध्यान प्रारम्भ करते हैं, किन्तु जिन्हें उत्कृष्ट आयुकर्म छह मास अवशेष रहने पर केवलज्ञान उत्पन्न होता है उन्हें नियमसे केवलिसमुद्धात

जया लोग० इत्यादि न्याये घाती कर्मेनि उत्तवावाणा केवली भगवान् लोक अने अलोकने गल्ली दे छे तयारे योगोने निरोध करीने शैलेशी अवस्थाने प्राप्त करे छे

(३) अन्तर्मुहूर्त्त मात्र आयु शेष रहता जे पाकी रहला तयारे अघाती कर्मेनी स्थिति स्वभावथी गनापर होय तो निष्कलङ्क परम कल्याणना आश्रयभूत केवली प्रभु सूक्ष्मक्रिय नामना शुद्ध ध्यानना त्रीना पायानु ध्यान प्रारंभे छे किन्तु जेभने उत्कृष्ट आयुकर्म छ मास अवशेष रहता जेवणज्ञान उत्पन्न थाय छे, तेभने नियमथी केवली समुद्धात करवे पडे छे, कारण के जेभनु आयुकर्म

युपोऽल्पत्वाद् वेदनीयनामगोत्रकर्मणा च स्थितिवाङ्मूल्याच्च नियतममुद्घातत्वात्,  
तत्कृत्वा वेदनीयादिषु चतुर्षु सगन्धितिकेषु सम्पु तन्नारम्भः ।

यदा जघन्ययोगजनः सञ्ज्ञिपर्याप्तस्य मनोद्रव्याणि समयैर निरुन्धन असख्या-  
तसमयैः सम्पूर्ण मनोयोग, तत्पश्चात्पर्याप्तदीन्द्रियस्य वाग्योगपर्यायतोऽसख्यात  
गुणन्यूनवाग्योगपर्यायान् प्रतिसमय निरुन्धन असख्यातसमयैः सम्पूर्णवाग्योग,  
ततश्च प्रथमसमयसमुत्पन्ननिगोदजीवस्य जघन्यकाययोगपर्यायतोऽसख्यातगुणहीन  
काययोग प्रतिसमय निरुन्धन असख्यातसमयैर्वादरकाययोग च सर्वथा निरुणदि

करना पडता है, क्योंकि उनका आयुकर्म अल्प होता है और उनके  
वेदनीय नाम गोत्र कर्मोंकी स्थिति अधिक होती है, इसलिए वे पहले  
समुद्घातके द्वारा चारों कर्मोंकी स्थिति धराधर करके फिर तीसरे पायेका  
ध्यान आरम्भ करते हैं ।

जब जघन्य योगवाले सञ्ज्ञी पर्याप्तके मनोद्रव्य और मनोद्रव्य  
के व्यापारोंसे असख्यात गुणहीन मनोद्रव्योंका प्रतिसमयमें निरोध करते  
हुए असख्यात समयोंमें सम्पूर्ण मनोयोगका निरोध कर देते हैं । तब  
मनोयोगका निरोध करके पर्याप्त दीन्द्रियके वचनयोगकी पर्यायोंसे  
असख्यात गुणहीन वचनयोगकी पर्यायोंका प्रतिसमय निरोध करते हुए  
समस्त वचनयोगका निरोध करते हैं । वचन योगका सम्पूर्ण निरोध  
करके प्रथम समयमें उत्पन्न निगोदिया जीवके जघन्य काययोग की  
पर्यायो से असख्यातगुणहीन काययोगका प्रतिसमय निरोध करते हुए  
असख्यात समयोंमें वादर काययोगका भी सर्वथा निरोध कर देते हैं ।

अल्प होय छे अने अभिमान वेदनीय नाम गोत्र कर्मोंनी स्थिति वधाये होय छे  
तेथी करीने ते पडेला समुद्घातनी द्वारा थारे कर्मोंनी स्थिति धराधर करीने  
पछी त्रीन पाथानु ध्यान आरंभे छे

वधारे जघन्य योगवाणा सञ्ज्ञी पर्याप्तकना मनोद्रव्य अने मनोद्रव्यना  
व्यापारोथी असख्यातगुणहीन मनोद्रव्योना प्रति समये निरोध करता असख्यात  
समयोभा संपूर्ण मनोयोगना निरोध करीने पर्याप्त दीन्द्रियना वचनयोगना  
पर्यायोथी असख्यातगुणहीन वचनयोगना पर्यायोना प्रतिसमय निरोध करता  
समस्त वचनयोगना निरोध करे छे वचनयोगना संपूर्ण निरोध करीने प्रथम  
समयभा उत्पन्न निगोदिया जीवना जघन्य काययोगना पर्यायोथी असख्यातगुण  
हीन काययोगना प्रतिसमय निरोध करता असख्यात समयोभा वादर काययोगना

तदेदं सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति-ध्यानमुपक्रमते । तत्र श्वासोच्छ्वासरूपं सूक्ष्ममपि काय-  
योग निरुच्य=अयोगित्वं प्राप्येत्यर्थः, शैलेशीम्=शैलाः=पर्वतास्तेपामीशः शैलेशः =  
सुमेरुस्तद्वत् स्थैर्यं यस्यामवस्थाया सा, यद्वा शील=यथाख्यातचारित्र तस्येशः=  
स्वामी शीलेशस्तस्येयमवस्था शैलेशी ता प्रतिपद्यते मध्यमकालेन 'अ-इ-उ-ऋ-लृ'  
इत्येवरूपपञ्चलघ्वक्षरोच्चारणसमकालस्थितिक समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपातिध्यानमनु-  
भवतीत्यर्थः,

अर्थात् समस्त मनोयोग और वचनयोगका तथा वादर काययोगका  
निरोध होने पर सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति नामक तीसरे ध्यानको आरम्भ  
करते हैं । तीसरे ध्यानके समय श्वासोच्छ्वासरूप काययोगकी सूक्ष्म-  
क्रिया ही रहती है । इस ध्यानसे उस सूक्ष्मक्रियाका भी निरोध करके  
अयोगी हो जाते हैं । अयोगी होकर अर्थात् तेरहवें गुणस्थान से चौद-  
हवें गुणस्थानमें पहुँचकर शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होते हैं । जिसमें  
शैलों (पर्वतों) के ईश (स्वामी) सुमेरु पर्वतके समान स्थिरता रहती है  
उसे शैलेशी अवस्था कहते हैं । अथवा-शील (यथाख्यातचारित्र) के  
ईश(स्वामी) को शीलेश कहते हैं, उनकी अवस्थाको शैलेशी कहते हैं ।  
इस शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होकर न धीमे न जल्दी अर्थात् मध्यम  
काल से 'अ-इ-उ-ऋ-लृ' इन पाँच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारणमें जितना  
समय लगता है उतने समय तक चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थानमें  
रह कर समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति ध्यान याते हैं ॥

पञ्च सर्वथा निरोध उरी नापे छे अर्थात् समस्त मनोयोग अने वचनयोगने  
तथा वादर-काययोगने निरोध यथा सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति नामना त्रीज ध्यानने  
आरम्भ करे छे त्रीज ध्यानने समय श्वासोच्छ्वासउप काययोगनी सूक्ष्म क्रिया न  
रहे छे, अने ध्यानथी ते सूक्ष्म क्रियाने पञ्च निरोध उरीने अयोगी थछे नय छे  
अयोगी थछेने अर्थात् तेरहे गुणस्थानेथी ओठमा गुणस्थानमा पहुँचीने  
शैलेशी अवस्थाने प्राप्त थाय छे जेमा शैला (पर्वतो)ना ईश (स्वामी) सुमेरु  
पर्वतनी पेठे स्थिरता रहे छे तेने जेवेरी अवस्था उहे छे, अथवा शील (यथा  
ख्यातचारित्र)ना ईश (स्वामी)ने शीलेश कहे छे, अने अवस्थाने शैलेशी  
कहे छे अने शैलेशी अवस्थाने प्राप्त थछेने, नहि धीमे के नहि जल्दी अर्थात्  
मध्यम कालथी अ-इ-उ-ऋ-लृ अने पाँच ह्रस्व अक्षराना उच्चारणमा जेटवे  
समय लागे ओठला समय सुधी ओठमे अयोगिकेवली गुणस्थानमा रहीने समु-  
च्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति ध्यान ध्यावे छे



ननु सूक्ष्मक्रियाऽनिर्वर्त्याख्यस्य शुक्यायानस्य कथं ध्यानपदप्रतिपाद्यता?, ध्यान हि नाम मनःस्थैर्यम्, केवलिनश्च तदानीं मनसोऽसत्त्वादिति चेन्न, स्थैर्याप्रस्थापन्नत्वमेव ध्यानत्वम्, तच्च यथा स्थिरीभावमापन्नस्य उन्नस्थीय मनसस्तथैव केवलिकाययोगस्यापि सुस्थिरतया सुवचम् ।

नन्वेवमपि समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपात्याख्यस्य शुक्यायानस्य कथं ध्यानत्वम्? तत्र काययोगस्थाप्यभावात्, इति चेदुच्यते—यथा कुम्भकारचक्रं तद्भ्रामकदण्डादिसम्बन्धाभावेऽपि प्राणालीनवेगतो भ्रमति तथा मनोवाक्काययोगनिरोधेऽप्ययोगिनः प्राक्कृतध्यानधारावेगतो ध्यानं सम्पन्नते ।

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! मनकी स्थिरताको ध्यान कहते हैं । केवली भगवान के उस समय मन नहीं रहता, अतः सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति शुकु ध्यान को ध्यान कैसे कहा जा सकता है ?

उत्तर—स्थिरता को ही ध्यान कहते हैं । वह स्थिरता जैसे छद्मस्थके मनोयोगकी होती है वैसे ही केवलीके काययोगकी स्थिरता होती है इसलिए उसे ध्यान कहते हैं ।

प्रश्न—तो समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपात्ति—शुकु—ध्यानको ध्यान कैसे कह सकते हैं ? क्योंकि वहा काययोगका भी अभाव है ?

उत्तर—जैसे कुम्भारका चाक, घुमानेवाले दण्ड आदिके सयोग न होनेपर भी पूर्वकालके वेगसे घूमता रहता है वैसे ही मन वचन काय का निरोध होजाने परभी पूर्व ध्यानकी धारा के वेगसे अयोगी केवलीके ध्यान होता है ।

प्रश्न—हे गुरु महाराज ! मनकी स्थिरताने ध्यान कहे छे डेवणी लगवाने से समये मन रहेतु नहीं ओठले सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति शुकुल ध्यानने ध्यान डेवी रीते कही शक्य ?

उत्तर—स्थिरताने न ध्यान कहे छे से स्थिरता लेवी छद्मस्थना मनोयोगनी होय छे तेवीन डेवणीना काययोगनी स्थिरता होय छे, तेवी तेने ध्यान कहे छे

प्रश्न—तो समुच्छिन्नक्रिया अप्रतिपात्ति—शुकुल—ध्यानने ध्यान डेवी रीते कही शक्य ? कारण के त्या काययोगने पणु अभाव छे

उत्तर—जेभ कुम्भारने आठडे, तेने घुमानेवारा दंड आदिने सयोग न थवा छता पणु पूर्वकाणना वेगथी घुम्था करे छे, तेभन मन वचन कायने निरोध अछि गया पछी पणु पूर्व ध्याननी धाराना वेगथी अयोगी डेवणीने ध्यान होय छे

किञ्च-तत्र द्रव्ययोगाभावेऽपि भावयोगस्य सत्त्वाद् ध्यानमुपपद्यते, जीवोप-  
योगरूपस्य भावमनसस्तत्रापि सद्भावात् । अथ च-यथा पुत्रभिन्नोऽपि पुत्रकार्यकरणेन  
पुत्र उच्यते तथा भवोपग्राहिकर्मनिर्जरणरूपस्य व्यानकार्यस्य करणेन ध्यानत्वोपा-  
चाराद् ध्यानशब्दाभिप्रेयत्व सिद्धम् ।

अथ च-यथैकस्य नानार्थकशब्दस्य उद्भवोऽर्थी भवन्ति, तथा धातूनामनेका-  
र्थत्वाद् ध्यैधातुनिष्पादितस्य ध्यानशब्दस्यापि समुच्चिन्नक्रियाख्य शुक्लध्यानम-  
प्यर्थः । अपर च-उक्तशुक्लध्यानस्य ध्यानत्वेन जिनागमप्रतिपाद्यतया ध्यानत्वं  
निर्वाधमित्यलम् ॥२३॥

मूलम्-जया जोगे निरुभित्ता, सेलेसि पडिवज्जड ।

तया कम्म खवित्ताण, सिद्धिं गच्छड नीरओ ॥२४॥

अथवा-द्रव्ययोगका अभाव होने पर भी भावयोगके सद्भावसे  
ध्यान होता है, क्योंकि जीवका उपयोगरूप भाव-मन उस  
अवस्थामें भी रहता है । अथवा जैसे पुत्र न होकर भी यदि कोई पुत्रका  
कार्य करता है तो वह पुत्र कहलाता है, वैसे ही भवोपग्राही कर्मोंकी  
निर्जरारूप ध्यानका कार्य करनेसे उपचारसे वह ध्यान कहलाता है ।  
अथवा जैसे नानार्थक शब्दके बहुतसे अर्थ होते हैं वैसे ही धातुओके  
भी अनेक अर्थ होते हैं, इसलिए यहाँ 'ध्यै' धातुसे बने हुए ध्यान  
शब्दका अर्थ समुच्चिन्नक्रियाप्रतिपाति-शुक्ल-ध्यान अर्थात् अयोगी  
गुणस्थानवालोंकी क्रिया भी समझ लेना चाहिए । अथवा जिनागममें  
इसको ध्यान कहा है अतः इसमें ध्यानत्व निर्वाध है ॥ २३ ॥

अथवा द्रव्ययोगना अभाव तथा एता पणु लावयोगना सहभावथी ध्यान  
डोय छे कारणु के एवना उपयोगइय लावमन अे अवस्थामा पणु रडे छे अथवा  
नेम पुत्र न डोवा एता ने डोई पुत्रनु कार्य करे छे तो ते पुत्र कडेवाय छे,  
तेमज् लावोपग्राही कर्मोनी निर्जरारूप ध्याननु कार्य करवाथी उपचारे कमीने ते  
ध्यान कडेवाय छे अथवा नेम विविधार्थेण शब्दना घणाय अर्थो थाय छे तेम  
धातुओना पणु अनेक अर्थो थाय छे, अही य्यै धातुथी जनेला ध्यान  
शब्दना अर्थ समुच्चिन्नक्रियाप्रतिपाति-शुक्ल-ध्यान अर्थात् अयोगी गुणस्थान  
वाणओनी क्रिया पणु समझ लेनी अथवा जिनागममा अने ध्यान उहु छे  
तेथी अेमा ध्यानत्व निर्वाध छे (२३)

નનુ સૂક્ષ્મક્રિયાઽનિવર્ત્યાણ્યસ્ય શુભ્યાનસ્ય કથ ધ્યાનપદમતિપાઘતા?, ધ્યાન ઠિ નામ મનઃસ્થૈર્યમ્, કેરલિનશ્ચ તદાનીં મનસોઽસર્યાદિતિ ચ્ચેન્ન, સ્થૈર્યાપસ્થાપદ્મત્વમેવ ધ્યાનત્વમ્, તન્ન યથા મ્થિરીમાત્રમાપદ્મસ્ય ડ્વચ્ચસ્થીય-મનસસ્તૈય કેરલિકાયયોગસ્યાપિ ઇસ્થિરતયા ઇયચમ્ ।

નન્વેયમપિ સમુચ્ચિન્નક્રિયાઽપ્રતિપાત્યાગ્યસ્ય શુભ્યાનસ્ય કથ ધ્યાનત્વમ્? તત્ર કાયયોગસ્યાપ્યમાત્રાત્, ઇતિ ચેદુચ્યતે-યથા કુમ્ભકારચક્ર તદ્ભ્રામકદ્વડા-દિસમ્યન્ધાભાવેઽપિ પ્રાણાલીનવેગતો ભ્રમતિ તથા મનોવાકાયયોગનિરોધેઽપ્યયોગિનઃ પ્રાવૃત્તધ્યાનધારાવેગતો ધ્યાન સમ્પદ્યતે ।

પ્રશ્ન-હે ગુરુમહારાજ ! મનની સ્થિરતાનો ધ્યાન કહતે છે । કેવલી ભગવાન કે ઉસ સમય મન નહીં રહતા, અતઃ સૂક્ષ્મક્રિયાઽનિવર્તિ શુદ્ધ ધ્યાન કો ધ્યાન કૈસે કહા જા સકતા હૈ ? ।

ઉત્તર-સ્થિરતા કો હી ધ્યાન કહતે હૈ । વહ સ્થિરતા જૈસે હ્વચ્ચસ્થકે મનોયોગકી હોતી હૈ વૈસે હી કેવલીકે કાયયોગકી સ્થિરતા હોતી હૈ હસલિણ ઉસે ધ્યાન કહતે હૈ ।

પ્રશ્ન-તો સમુચ્ચિન્નક્રિયાઽપ્રતિપાતિ-શુદ્ધ-ધ્યાનકો ધ્યાન કૈસે કહ સકતે હૈ ? ક્યોંકી વહા કાયયોગકા મી અભાવ હૈ ? ।

ઉત્તર-જૈસે કુભારકા ચાક, ઇમાનેવાલે દળડ આદિકે સયોગ ન હોનેપર મી પૂર્વકાલકે વેગસે ઇમતા રહતા હૈ વૈસે હી મન વચન કાય કા નિરોધ હોજાને પરમી પૂર્વ ધ્યાનકી ધારા કે વેગસે અયોગી કેવલીકે ધ્યાન હોતા હૈ ।

પ્રશ્ન-હે ગુરુ મહારાજ ! મનની સ્થિરતાને ધ્યાન કહે છે કેવળી ભગવાનને એ સમયે મન રહેતુ નથી એટલે સૂક્ષ્મક્રિયાઽનિવર્તિ શુદ્ધ ધ્યાનને ધ્યાન કેવી રીતે કહી શકાય ?

ઉત્તર-સ્થિરતાને જ ધ્યાન કહે છે એ સ્થિરતા જેવી હ્વચ્ચસ્થના મનોયોગની હોય છે તેવીજ કેવળીના કાયયોગની સ્થિરતા હોય છે, તેથી તેને ધ્યાન કહે છે

પ્રશ્ન-તો સમુચ્ચિન્નક્રિયા અપ્રતિપાતિ-શુદ્ધ-ધ્યાનને ધ્યાન કેવી રીતે કહી શકાય ? કારણ કે ત્યા કાયયોગનો પણ અભાવ છે

ઉત્તર-જેમ કુભારનો ચાકડો, તેને ઇમાવનારા દડ આદિને સયોગ ન થવા છતા પણ પૂર્વકાળના વેગથી ઇમ્યા કરે છે, તેમજ મન વચન કાયને નિરોધ થઈ ગયા પછી પણ પૂર્વ ધ્યાનની ધારાના વેગથી અયોગી કેવળીને ધ્યાન હોય છે

टीका-‘जया कम्म’ इत्यादि । यदा सर्वकर्मक्षय कृत्वा नीरजा सिद्धिं गच्छति तदा लोकमस्तकस्थः=सर्वलोकोपरिस्थितः, शाश्वतः=दग्धकर्मवीजत्वात्पुनः ससारसरणरहितो नित्यः, सिद्धः=कृतकृत्यो भवतीति ।

ननु सिद्धाना सर्वकर्मक्षयात् त्रसनामकर्मणोऽप्यविद्यमानत्वेन कथं गति-सम्भवः ? इति चेदुच्यते—

यथा धनुर्मुक्तस्य बाणस्य तद्विरहेऽपि पूर्वप्रयोगसामर्थ्याद्भवति तथा ससारावस्थायामपवर्गप्राप्तये कृतानेकविधप्रणिधानरत्नान्मुक्तात्मनोऽपीति ।

ननु भवतु गतिः किन्तु सा तिर्यगप्रस्ताद्वा न भूत्वोर्ध्वमेव भवतीति कथ-

‘जया कम्म’ इत्यादि । जब सब कर्मोंका क्षय करके निष्कर्म होकर मोक्षगमन करते हैं तब लोकके अग्रभाग पर स्थित, सब कर्मोंसे रहित होनेके कारण कभी ससारमें न आनेसे शाश्वत, सिद्ध होजाते हैं ।

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! सिद्धोंके समस्त कर्मोंका नाश होजाता है अत एव त्रस नाम कर्म भी नहीं रहता, फिर सिद्ध भगवान् लोकके अग्र-भाग तक किस प्रकार गमन कर सकते हैं ।

उत्तर—हे शिष्य जैसे धनुषसे छूटा हुआ बाण धनुषका सम्बन्ध न होने पर भी गति करता है, क्योंकि उसमें पहलेके व्यापारका सामर्थ्य रहता है । वैसे ही ससार अवस्थामें मोक्ष प्राप्त करनेके लिए किये हुए अनेक प्रकारके अनुष्ठानके वेगसे मुक्तात्मा भी गमन करते हैं ।

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! गति तो होती है पर ऊर्ध्व गति ही क्यों

जया कम्म इत्यादि न्यारे सर्व कर्मोंना क्षय करीने निष्कर्म थडने मोक्ष गमन करे छे, त्यारे लोकना अग्रभाग पर स्थित, सर्व कर्मोंवी रहित होवाने कारखे उदापि ससारमा न आववाथी शाश्वत सिद्ध थड न्य छे

प्रश्न—हे गुरु महाराज ! सिद्धोंना यथा कर्मोंना नाश थड न्य छे, अतएव त्रसनाम-कर्म पण रहितु नथी, तो पछी सिद्ध भगवान् लोकना अग्रभाग सुधी केवे प्रकारे गमन करी शके छे ?

उत्तर—हे शिष्य ! जेवी रीते धनुष्यथी छूटेतु पाणु धनुष्यनो सणध न होवा छता गति करे छे, कारख के तेमा पछेयाना व्यापारतु सामर्थ्य रहितु छे, तेवी रीते ससार अवस्थामा मोक्ष प्राप्त करवाने माटे करेवा अनेक प्रकारना अनुष्ठानोना वेगथी मुक्तात्मा पणु गमन करे छे

प्रश्न—हे गुरु महाराज ! गति तो होय छे पणु ऊर्ध्व गति न केम

छाया—यदा योगान्निरुध्य, शैलेशीं प्रतिपद्यते ।

तदा कर्म क्षपयित्वा, सिद्धिं गच्छति नीरजाः ॥२४॥

सान्त्वयार्थः—जया=जब जोगे=योगोंका निरुद्धिस्था=निरोध करके शैलेसिं=शैलेशीकरणको पडिधज्जह=प्राप्त करते हैं, तथा=तब कम्म=कर्ममात्रको खचित्ता=खपा करके नीरओ=कर्मरजरहित-सब कर्मोंसे मुक्त-होकर सिद्धि=मोक्षको गच्छइ=जाते हैं ॥२४॥

टीका—‘जया जोगे०’ इत्यादि । यदा योगनिरोध कृत्वा शैलेशीं प्राप्नोति तदा कर्म=वेदनीयाऽऽयुर्नामगोत्राख्यमघातिकर्मचतुष्टयलक्षण क्षपयित्वा=क्षय नीत्वा सर्वथा विनाश्येत्यर्थः ‘ण’-मिति चाभ्यालङ्कारे, नीरजाः=निर्गत रज =सर्वकर्म मल यस्मादिति, रजस =उक्तलक्षणान्निष्क्रान्तो या नीरजा’=सर्वकर्मोपाधिरहितः साधितात्मा प्रभुः सिद्धिं=सि यन्ति=निष्ठितार्था भवन्ति यस्या सा सिद्धि=शुक्ति-लक्षणा ता गच्छति=प्राप्नोति, गत्यर्थघातूना माप्त्यर्थत्वात् ॥२४॥

मूलम्—जया कम्मं खचित्ताण, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।

तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥२५॥

छाया—यदा कर्म क्षपयित्वा, सिद्धिं गच्छति नीरजाः ।

तदा लोकमस्तकस्थः, सिद्धो भवति शाश्वतः ॥२५॥

सान्त्वयार्थ —जया=जब कम्म=कर्ममात्रको खचित्ता=खपा करके नीरओ=कर्मरजरहित होकर सिद्धिं=मोक्षको गच्छइ=जाते हैं, तथा=तब लोगमत्थयत्थो=लोकके अग्रभाग पर स्थित सासओ=शाश्वत-नित्य सिद्धो=सिद्ध हवइ=होजाते हैं ॥२५॥

‘जया जोगे’ इत्यादि । जब योगोंका निरोध करके शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होते हैं तब वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र, इन चार अघाति कर्मोंका क्षय करके सर्व कर्मोंसे मुक्त होकर भगवान् मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

जया जोगे इत्यादि न्याये योगोना निरोध करीने शैलेशी अवस्थाने प्राप्त थाय छे, त्पारे वेदनीय, आयु, नाम अने गोत्र अने चार अघाती कर्मोना क्षय करीने सब कर्मोथी मुक्त थधने भगवान् मोक्षने प्राप्त थाय छे (२४)

જલોપરિપ્રતિષ્ઠાના ભવતિ તથાઽટ્ટવિધકર્મલેપસમારભરાક્રાન્ત આત્મા જગજ્જલધૌ  
નિમજ્જતિ, તદ્વિરહિતથ્વોર્ધ્વગતિધર્મત્વાદૃર્ધ્વમેવ ગચ્છતિ ।

તથા ચોક્ત મગવતા—

“ જહ મિડલેવાલિત્ત, ગરુય તુવ અહો વયઇ ઇવ ।

આસવકુયકુમ્મગુરુ, જીવા વચ્ચતિ અદરગઇ ॥૧॥

ત ચેવ તન્વિમુક્ક, જલોવરિ ઠાઇ જાયલહુભાવ ।

જહ તહ કુમ્મવિમુક્કા, લોયગપડ્ડિયા હોતિ ॥૨॥”

૧ છાયા—“ યથા મૂલેપાઽલિપ્ત, ગુરુક તુમ્વમધો વ્રજત્યેવમ્ ।

આથવકૃતકર્મગુરવો, જીવા વ્રજન્તિ અધરગતિમ્ ॥૧॥

તદેવ (તુમ્વ) તદ્વિમુક્ત (મૂલેપવિમુક્ત), જલોપરિ તિષ્ઠતિ જાતલઘુભાવમ્ ।

યથા તથા કર્મવિમુક્તા (સિદ્ધા.) લોકાગ્રપ્રતિષ્ઠિતા ભવન્તિ ॥૨॥”

આજાતી છે । ઇસીપ્રકાર આઠ કર્મરૂપી લેપકે ખારસે ખારી આત્મા  
સસારરૂપી સમુદ્રમેં ઢૂની રહતી છે । જવ કર્મરૂપી લેપસે રહિત હોજાતી છે  
તવ ઝર્ધ્વગમનકા સ્વભાવ હોનેસે ઝર્ધ્વગમન કરતી છે । મગવાનને  
કહામી છે—

“ જૈસે મિટ્ટીકે લેપસે લિપ્ત તુમ્વી ખારી હોનેસે નીચેકી ઓર  
જાતી છે વૈસેહી આસ્રવસે ઉત્પન્ન કર્મોસે આત્મા અધોગતિકો પ્રાપ્ત  
હોતી છે ॥૧॥ જૈસે તુમ્વી લેપસે મુક્ત હોનેપર લઘુ હોકર જલકે ડપર  
આજાતી છે ડસી પ્રકાર કર્મસે મુક્ત હોકર આત્મા લોકકે અગ્રભાગ પર  
વિરાજમાન હો જાતી છે ॥૨॥”

એ તુળડી નીચેથી ઉડીને જળની ઉપર આવી નાચ છે એજ પ્રકારે આઠ કર્મ  
રૂપી લેપના ભારથી ભારે એવો આત્મા સસારરૂપી સમુદ્રમા ડુબી રહે છે ન્યારે  
કર્મરૂપી લેપથી રહિત થઈ નાચ છે ત્યારે ઝર્ધ્વગમનનો સ્વભાવ હોવાથી ઝર્ધ્વ  
ગમન કરે છે ભાગવાને કહ્યુ પશ્ય છે કે—

‘ જેમ માટીના લેપથી લિપ્ત તુળડી ભારે હોવાથી નીચેની ઝાણુએ નાચ છે,  
તેમજ આસ્રવથી ઉત્પન્ન થએલા કર્મોથી આત્મા અધોગતિને પ્રાપ્ત થાય છે (૧)  
જેમ તુળડી લેપથી મુક્ત થતા લઘુ થઈને જલની ઉપર આવી નાચ છે, તેમ કર્મથી  
મુક્ત થઈને આત્મા લોકના અગ્રભાગ પર વિરાજમાન થઈ નાચ છે (૨)”

भवसीयते ? इति चेन्नयताम्-तेषां गुरुत्वगुणाभावाद्वाधस्तात्, कायादियोगपर  
प्रेरणयोरभावाच्च न तिर्यग्गतिर्भवति,

यथा-नीरन्ग्रामतिशुष्कामनुपहतां चाऽलाबू कुशादितृणैः परितः सवेष्ट्य तद्  
परि स्निग्धमृत्तिकया सान्द्र त्रिलिप्याऽऽवृत्ते सशोषयेत्, इत्थमष्टवारानुक्तप्रक्रियया  
यथाक्रम तृणवेष्टन मृष्टेपन-सशोषणादीनि विधायाऽगाधसलिले प्रसिन्ना साऽलाबू  
रष्टकत्वोदत्तमृष्टेपनितगौरवेणोर्ध्वसलिलतलप्रतिक्रम्य तदधस्ताद् भूतलसन्ना  
भवति, तदनु मन्दमन्दमनुक्रमतस्तेष्वष्टवारविनिहितमृष्टेपेषु सार्द्रतामुपगम्य विशी  
र्णेषु सत्सु मृत्तिकाश्लेषजन्यभारराहित्येन लघुतामुपगता साऽलाबू भूतलप्रतिक्रम्य

होती है ? नीचेकी ओर अथवा तिरछी गति क्यों नहीं होती ?

उत्तर-हे शिष्य ! नीचेकी ओर उसीकी गति होती है जिसमें  
गुरुत्व गुण ( भारीपन ) पाया जाता है । सिद्धोंमें गुरुत्व गुण नहीं है  
अत एव उनकी गति नीचेकी ओर नहीं होती । काय आदि योग और  
दूसरेकी प्रेरणा न होनेसे तिरछी गति भी नहीं होती ।

जैसे-छिद्ररहित बिलकुल सूखी हुई, बिना टटी फूटी तुम्बीको चारों  
ओर तृणपुञ्जसे बाध करके घूममें सुखा ले, आठ वार ऐसा करके अगाध  
जलमें तुम्बीको डाल दे तो आठवारके लेपके भारीपनसे जलके तलमें  
पहुँचकर वह पृथ्वीसे लग जाती है । उसके पश्चात् गीलेपनसे जब  
धीरे-धीरे वह मिट्टीका लेप छूटने लगता तो क्रमशः मिट्टीके भारसे रहित  
होकर लघुता ( हलकापन ) पाकर वह तुम्बी नीचेसे उठकर जलके ऊपर

थाय छे ? नीचेनी आन्तुअे अथवा तिछीं गति केम नथी थती ?

उत्तर-हे शिष्य ! नीचेनी आन्तुअे तेनी गति थाय छे के जेभा शुद्ध  
शुष्ण ( भारेपण ) डाय छे सिद्धोभा शुद्ध शुष्ण नथी, तेथी तेमनी गति नीचेनी  
आन्तुअे नथी थती काय आदि योग अने भीजननी प्रेरणा न डेवाथी तिछीं  
गति पण थती नथी

जेम छिद्ररहित, बिलकुल सुकायली, तूया कूया बिनानी तुणडीने अरे  
आन्तुअे धास-तरणाथी आधीने तेनी उपर थिकणी भाटीने सारी पठे लेप करीने  
तडकाभा सूखी नाणे, अठ वार जेम करीने अगाध जणभा अे तुणडीने नाणी  
दे तो आठ वारना लेपना भारे पणथी जणने तणीये पडोथीने ते पृथ्वीने  
अडीने रहे छे पछी न्यादे लीलापणथी धीरे धीरे अे भाटीने लेप शूया  
लागे छे तयारे कभश भाटीना भारथी रहित थधने लघुता ( हलकापण ) पागीने

उक्तस्वरूपाः सिद्धाश्वरमगरीरतस्त्वृतीयभागन्यूना उत्कृष्टतो द्वात्रिंशद्गुल-  
समधिकत्रयस्त्रिंशदुत्तरशतत्रयधनुःपरिमिताः, जघन्यतोऽष्टाङ्गलाधिकरत्रिप्रमाणाः ।

यच्च मरुदेवीदेहप्रमाणस्य सपादपञ्चशतधनुर्द्वात्तृतीयभागे पातिते तस्याः  
सार्द्धत्रिंशत्तधनुःपरिमिताऽवगाहना भवति तेनात्र न विरोधः, गजाधिखट्वेन  
वृद्धत्वेन वा शरीरसङ्कोचसम्भवात् ।

यत्तु जघन्यतः सप्तहस्तोन्निष्ठताना सिद्धिः शास्त्रेषु श्रूयते तर्त्तीर्थकरापेक्षया,

सिद्धौके चरम शरीरसे त्रिभाग कम, उत्कृष्ट तीनसौ तेंतीस (३३३)  
धनुष और बत्तीस (३२) अगुलकी, तथा जघन्य एकरत्ति और आठ  
अगुलकी अवगाहना होती है ।

मरुदेवीके शरीरकी अवगाहना सवा पाँचसौ (५२५) धनुषकी थी,  
उसमेंसे तीसरा हिस्सा कम करनेसे साढे तीनसौ (३५०) धनुषकी  
अवगाहना होती है, किन्तु यहाँ पर उत्कृष्ट अवगाहना तीनसौ तेतीस  
धनुष और बत्तीस अगुलकी बताई गई है, इससे यहा विरोध नहीं सम-  
झना चाहिए, क्योंकि मरुदेवी हाथी पर आरूढ थी, इसलिए या वृद्धा-  
वस्थाके कारण शरीरका सिक्कुडना (सकुचित होना) संभव है ।

यह जो आगममें सुना जाता है कि जघन्य सात हाथ ऊँचे शरीर-  
वालोंको मोक्ष प्राप्त होता है सो यह नियम तीर्थकरोंकी अपेक्षासे  
समझना चाहिए । तीर्थकरोंके सिवाय अन्य भव्य जीव दो हाथ ऊँचे

सिद्धोना चरम शरीरथी त्रिभाग ओछी, उत्कृष्ट त्रयुसे। तेत्रीस (३३३)  
धनुष अने गत्रीस (३२) आगणनी तथा जघन्य ओक रत्ति अने आठ आगणनी  
अवगाहना डोय छे

मरुदेवीना शरीरनी अवगाहना सवा पाचसे। (५२५) धनुष्यनी छती,  
तेमाथी त्रीजे लाग ओछे। करवाथी साडे त्रयुसे। (३५०) धनुष्यनी अवगाहना  
डोय छे किन्तु अहीं उत्कृष्ट अवगाहना त्रयुसे। तेत्रीस धनुष अने गत्रीस  
आगणनी गतावी छे, तेथी विरोध समज्ये। नहि, कारण छे मरुदेवी हाथी पर  
आरूढ छती तेने लीधे या वृद्धावस्थाने कारणे शरीरनुं सकुचित थपु अे सकुचित छे  
आगममा ने सलगाय छे ते-जघन्य सात हाथ उंचा शरीरवाणाओने न  
मोक्ष प्राप्त थाय छे ते नियम तीर्थकरानी अपेक्षासे समज्ये। जेधने तीर्थकरे  
सिवायना पीन लव्य लुवे अे हाथ उंचा शरीरवाणा डोवा छता थपु मुक्त



अथवा-यथा यातादिरूपयाधरुविरहादूर्ध्वगतिस्वभावायाः प्रदीपकलिकायाः, वीजबन्धप्रिन्टेदात्रीजसोशगतैरण्डवीजस्य चोर्ध्वगतिः समायते तथाऽऽत्मनोऽपि तादृशगतिस्वभास्य विरोधिर्मन्धप्रिन्टेदादूर्ध्वगतिरेवेति ।

यथैरण्डवीजमूर्ध्वं गत्या पुनःपतति तथा तु न मृक्तात्मनः पातसम्भवः, अयः पतनहेतुभूतगुरुत्वगुणाभावादिति प्रागुक्तमेव ।

ननु शरीराभावात्तेपामात्मप्रदेशाः पारदद्रव्यम् कथं न विकीर्णा भवन्तीति चेन्न, तद्विसर्पकनामकर्मभावात्प्रदेशवत्त्वगुणसद्भावाच्च ।

अथवा-जैसे हवा आदि किसी पात्रकके न होनेसे दीपककी लौ ऊपरको जाती है, वीजकोपके बन्धके टटनेपर एरण्डका वीज ऊपरको जाता है, उसी प्रकार आत्माके ऊर्ध्वगमनके विरोधी कर्मबन्धका सर्वथा अभाव होजानेसे आत्मा ऊर्ध्वगति करती है ।

जैसे एरण्डका वीज पहले ऊपरको जाकर फिर नीचे गिर पड़ता है वैसे आत्मा नहीं गिर सकती, क्योंकि नीचे गिरानेका कारण गुरुत्वगुण आत्मामें नहीं है, यह पहले ही कह चुके हैं ।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज । शरीरका अभाव होनेसे सिद्धोंके आत्माके प्रदेश पारेके समान फैल क्यों नहीं जाते ?

उत्तर-हे शिष्य । आत्मप्रदेशोंको फैलानेवाले नामकर्मका अभाव होनेसे तथा प्रदेशवत्त्व गुणके सद्भावसे सिद्धोंके आत्मप्रदेश नहीं फैलते हैं ।

अथवा, जेभ डवा आदि डोर्ध्व ग्राधक न होवाथी दीपकनी ज्योत ऊपर न जाय छे, पीजकोषनेो षध तूटवाथी अेरडानु पीज ऊपर न जाय छे, तेभ आत्माना ऊर्ध्वगमनना विरोधी कर्मणधनेो सर्वथा अभाव शर्ध नवाथी आत्मा ऊर्ध्वगति न करे छे

जेभ अेरडानु पीज पड़ेला ऊपर नधने पछी नीचे पडी जाय छे, तेभ आत्मा पडी शकतेो नथी कारण डे नीचे पाडवानु कारण गुरुत्व गुण आत्माभा नथी अे पड़ेला डड़ेवाभा आवेलु न छे

प्रश्न-डे गुरु भडाराज ! शरीरनेो अभाव होवाथी सिद्धोना आत्माना प्रदेशो पारानी पडे देलाध डेभ जाता नथी ?

उत्तर-डे शिष्य ! आत्मप्रदेशोने इलावनारा नामकर्मनेो अभाव होवाथी तथा प्रदेशवत्त्व गुणनेो सद्भाव होवाथी सिद्धोना आत्मप्रदेश इलाता नथी

छाया—सुखास्वादकस्य श्रमणस्य, शाताकुलरुस्य निकामशायिनः ।

उत्क्षालनाप्रधौतस्य, दुर्लभा सुगतिस्तादृशरुस्य ॥२६॥

सुगति की दुर्लभता बतलाते हैं—

सान्त्वयार्थः—सुहसायगस्स=सुखकी आसक्ति रखनेवाले सायाउलगस्स=सुखके लिए व्याकुल रहनेवाले निगामसाइस्स=मर्यादासे अधिक सोनेवाले उच्छोलणापहोयस्स=शरीरकी विभूषा करनेवाले तारिसगस्स=ऐसे समण-स्स=साधुको सुगई=सुगति दुल्लहा=दुर्लभ है ॥२६॥

टीका—सुखास्वादकस्य=सुखस्य=प्राप्तमनोरमशब्दानुपभोगस्य आस्वादकः=आसक्त्या ग्राहकस्तस्य, शाताकुलरुस्य=शातार्थम्=सुखार्थम् आकुलरुः=व्यग्रः उद्विग्नो वा तस्य, निकामशायिनः=निकामम्=अतिशयित मध्यवर्तियामद्वयादधिक रात्रौ, निष्कारण दिवसे वा शेते=स्वपिति तच्छीलो निकामशायी=सूत्रार्थमन नादिसमयमुल्लङ्घ्य शयानस्तस्य, उत्क्षालनाप्रधौतस्य=उत्क्षालनया=प्रक्षालनया प्र=प्रकर्षार्थं=विभूषार्थं धौतानि=उज्ज्वलीकृतानि नयन-वदन-नख-पर-चरण-वस्त्रादीनि येन स तस्य शरीरादिविभूषाकारिण इत्यर्थः । तादृशरुस्य=तीर्थकरा-ऽऽज्ञानाराधकस्य, श्रमणस्य=श्रमणश्रुतस्य वेशमात्रेण साधोः सुगतिः=सिद्धि-लक्षणा गतिः दुर्लभा=दुष्प्रापा 'भवती'-ति शेषः ।

प्राप्त हुए मनोज्ञ शब्दादि उपभोगोंको आसक्तिपूर्वक ग्रहण करने-वाले, सुखप्राप्तिके लिए व्याकुल रहनेवाले, दो म'य प्रहरोंसे अधिक रात्रिमें, या कारणविशेष विना दिनमें अर्थात् सूत्रार्थके मनन करनेके समयका उल्लघन होने तक सोनेवाले, तथा विभूषाके लिए आँख, सुख, नख, हाथ पैर, वस्त्र आदिको धोनेवाले अर्थात् शरीरको विभूषित करने-वाले, अतः तीर्थकरकी आज्ञाके विराधक, ऐसे श्रमणको सिद्धिगतिकी प्राप्ति दुर्लभ है ।

प्राप्त थयेला मनोज्ञ शब्दादि उपभोगोंने आसक्तिपूर्वक ग्रहण करनारा, सुखप्राप्तिने भाटे व्याकुल रहनांग, जे मध्य पडेसेथी वधु रात्रिमा या क्षण-विशेष विना दिवसमा अर्थात् सूत्रार्थनु मनन करवाना समथनु उल्लघन थाय त्या सुधी सूतारा तथा विभूषा (शोभा) ने भाटे आप, सुभ, नभ हाथ पग वस्त्र आदिने धोनार अर्थात् शरीरने विभूषित करनारा अटके हे तीर्थकरनी आज्ञाना विराधक, अथवा श्रमणने सिद्धिगतिनी प्राप्ति दुर्लभ छे

અન્યે તુ દ્વિહસ્તોચ્ચિદ્વતા અપિ મિચન્તિ, તદપેક્ષયા તિ પ્રોક્તસ્વરૂપા જઘન્યાડવગા  
હનાડવસેયા ।

પરમુક્તસ્વરૂપો જન્મ-જરા-મરણ-આધિ-વ્યાધિ-વાધા-પટલી-કલ્ક-કૂલી-ભાવ-ગર્ભ-  
નિવાસ-ત્રાસ-સન્ત-વિનિષ્ક્રાન્તઃ શાશ્વતઃ સિદ્ધો ભવતીત્યર્થઃ । ‘શાશ્વત’ પદેન ત્રાસ  
“સમ્પ્રાપ્તસિદ્ધિપદો આત્મા ન પુનઃ સસારિત્યમયાપ્રોતિ હેતોરભાવાત્, ન ચ કારણ  
મન્તરેણ કાર્યોત્પત્તિર્જાયતે” इति बोधितम् ॥૨૦॥

ઉક્ત સુગતિરૂપ ધર્મફલ, સમ્પત્તિ તત્ કસ્ય દુર્લભ ભવતી?—તિ ટર્કયતિ—‘સુહ  
સાયગસ્સ’ इत्यादि ।

મૂલ્મ-<sup>૧</sup>સુહસાયગસ્સ <sup>૨</sup>સમણસ્સ, <sup>૩</sup>સાયાડલગસ્સ નિગામસાઙ્ગસ્સ ।

ઉચ્છોલણાપહોયસ્સ, <sup>૪</sup>દુહ્હા <sup>૫</sup>સુગર્હ તારિસગસ્સ ॥૨૬॥

શરીરવાલે ઠોનેપર ભી મુક્ત હોજાતે હૈં । ઝનકી અપેક્ષાસે હી સિદ્ધોંકી  
જઘન્ય અવગાહના ઇક રત્નિ ઓર આઠ અગુલકી કરી ગર્હ હૈં ।

એસે સિદ્ધ જન્મ-જરા-મરણ, આધિ, વ્યાધિ, વાધા, કલ્ક-કૂલી-ભાવ  
( સસારપરિશ્રમણ ), ગર્ભવાસકે દુઃખોંસે રહિત શાશ્વત સિદ્ધ હોજાતે હૈં ।  
યહાં ‘શાશ્વત’ પદસે યહ બોધિત ક્રિયા હૈં કિ સિદ્ધિ પદકો પ્રાપ્ત આત્મા  
ફિર સસારી અવસ્થાકો પ્રાપ્ત નહીં હોતી હૈં, ક્યોંકિ સસારમૈં આનેકે  
કારણભૂત કર્મોંકા અભાવ હૈં । કારણકે વિના કાર્યકી ઉત્પત્તિ  
નહીં હોતી ॥૨૫॥

યહાં તક ધર્મકા સુગતિરૂપ ફલ કહા, યહ ફલ કિસે દુર્લભ હોતા હૈં  
સો દિખાતે હૈં—‘સુહસાયગસ્સ’ इत्यादि ।

થઈ બય છે એમની અપેક્ષાએ જ સિદ્ધોની જઘન્ય અવગાહના એક રત્ન અને આઠ  
આગળની કહેવામા આવી છે

એવા સિદ્ધો જન્મ-જરા-મરણ, આધિ-વ્યાધિ, વાધા, કલ્ક-કૂલીભાવ (સસાર-  
પરિશ્રમણ), ગર્ભવાસના દુઃખોથી રહિત શાશ્વત સિદ્ધ થઈ બય છે અહીં  
‘શાશ્વત’ શબ્દથી એમ બોધિત કરવામા આવ્યું છે કે સિદ્ધિપદને પ્રાપ્ત થએલો  
આત્મા ફરી સસારી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થતો નથી, કારણ કે સસારમા આવવાના  
કારણભૂત કર્મોના અભાવ છે કારણ વિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થતી નથી (૨૫)

અહીં સુધી ધર્મનું સુગતિરૂપ ફળ કહ્યું, એ ફળ કોને દુર્લભ થાય છે તે  
દર્શાવે છે—સુહસાયગસ્સ ઈત્યાદિ

શીઘ્રમ્ અમરભવનમ્=ન મ્રિયન્ત ઇત્યમરા'='સિદ્ધા આયુષોઽભાવાત્, તેપા ભવનમ્= આલયઃ સત્તા ત્વા તત્ સિદ્ધક્ષેત્ર સિદ્ધસ્વરૂપ વેત્યર્થઃ । યદ્વા ન મ્રિયતે યત્ર તદ્- મરમ્=અવિનાશિ તચ તદ્ ભવન સ્થાન તત્ સિદ્ધપદમિત્યર્થઃ । અથવા ન મ્રિયન્તે અકાલમૃત્યુના ઇત્યમરાઃ=દેવાસ્તેપા ભવન તત્ સ્વર્ગલોકમિત્યર્થઃ । વહુવચન ચોમ- યાર્થઘોતનાર્થમ્, ગચ્છન્તિ=યાન્તિ ॥૨૮॥

ઉપસહારમાહ—'ઇચ્છેય' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-<sup>૭</sup>ઇચ્છેય<sup>૮</sup> છજીવણિય<sup>૯</sup>, સમ્મદિટ્ટી<sup>૧૦</sup> સયા<sup>૧૧</sup> જણ<sup>૧૨</sup> ।

દુલ્લહ લહિત્તુ સામન્નં, કમ્મુણા ન વિરાહિજ્ઞાસિ-ત્તિવેમિ ॥૨૯॥

ગ્રાયા—રત્યેત પહ્જીવનિકાય, સમ્યગ્દષ્ટિઃ સદા યતઃ ।

દુર્લભ લભ ત્વા શ્રામણ્ય, કર્મણા ન વિરાધયેત્ ॥૨૯॥ ઇતિ વ્રવીમિ ।

ઉપસહાર કરતે હૈ—

સાન્વયાર્થ—સમ્મદિટ્ટી=સમ્યક્ત્વી મનુષ્ય સયા=સદૈવ જણ=યતનાવાન્ હોકર દુલ્લહ=દુર્લભ એસે સામન્ન=સાધુપનેનો લહિત્તુ=પ્રાપ્ત કરકે ઇચ્છેય=હસ પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાલે ડહજીવણિય=પહ્જીવનિકાય-હહ પ્રકારકે જીવસમૂહ-ની કમ્મુણા=મન વચન કાયકે વ્યાપારસે ન વિરાહિજ્ઞાસિ=વિરાધના ન કરે, ત્તિવેમિ=શ્રીમુખર્મા સ્વામી જમ્મુસ્વામીસે કહતે હૈ કિ મૈને ભગવાન્ મહાવીર સ્વામીસે જૈસા મુના હૈ વૈસા હી તુમસે કહતા હૈ ॥૨૯॥

- ॥ ઇતિ ચતુર્થાધ્યયનસ્ય શબ્દાર્થ ॥૪॥

સમાન ફિર સયમકો ગ્રહણ કરકે શીઘ્રહી અમરભવન-(સિદ્ધિસ્થાન અથવા સ્વર્ગલોક) કો પ્રાપ્ત હોતે હૈ ।

'અમરભવન' કે દો અર્થ હોતે હૈ—(૧) જહા મૃત્યુ નહીં હોતી એસા સ્થાન મોક્ષ હૈ, કયોંકિ વહા આયુકર્મકા સર્વથા અભાવ હૈ, ઓર (૨) અમરભવન સ્વર્ગલોકકો ભી કહતે હૈ, કયોંકિ સ્વર્ગલોકમે અકાલ મૃત્યુ નહીં હોતી ॥૨૮॥

ઉપસહાર કરતે હૈ—'ઇચ્છેય' ઇત્યાદિ ।

આર્દ્રકુમાર, પુડગીઠ આદિની પેઠે ક્રી સયમને ગ્રહણ કરીને શીઘ્ર અમરભવન (સિદ્ધસ્થાન અથવા સ્વર્ગલોક) ને પ્રાપ્ત થાય છે

'અમરભવન'ના બે અર્થ થાય છે (૧) જ્યાં મૃત્યુ હોતુ નથી એવું સ્થાન મોક્ષ છે, કારણ કે ત્યાં આયુકર્મનો સર્વથા અભાવ હોય છે અને (૨) અમર ભવન સ્વર્ગલોકને પણ કહે છે, કારણ કે સ્વર્ગલોકમા અકાલમૃત્યુ થતુ નથી (૨૮)

ઉપસહાર કરે છે—ઇચ્છેય૦ ઇત્યાદિ

चारित्रस्य महत्त्वात्—'पच्छात्रि ते' इत्यादि ।

११ १० १२ १३ १४ १५  
मूलम्-पच्छात्रि ते पयाया, खिप्पं गच्छति अमरभ्रवणाड ।

१ ६ २ ४ ३ १ ५ ८ ७  
जेसिं पिओ तवो संजमो य खती य वंभचेर च ॥२८॥

छाया—पश्चादपि ते प्रयाता, क्षिप्पं गच्छन्त्यमरभवनाति ।

येषा मिय तपः सयमत्र, क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्यं च ॥२८॥

चारित्र का महत्त्व वतलाते ह—

सान्त्वयार्थः—जेसिं=जिनको तवो=तपस्या सजमो=सयम य=और खती=क्षमा य=तथा वंभचेर=ब्रह्मचर्यं पिओ=प्रिय है, ते=ने पच्छात्रि=पश्चात्मी अर्थात् एतवार चारित्र खण्डित हो जानेपर त्रापस, अथवा वृद्धावस्थामें भी प्रयाया=आये हुए अर्थात् चढते परिणामोंसे सयम स्वीकार कियेहुए खिप्प=शीघ्र अमरभवणाड=स्वर्ग अथवा अपवर्ग=मोक्ष कोभी गच्छन्ति=प्राप्त हो जाते हैं ॥२८॥

टीका—येषा (श्रमणानां) तपः=अनशननादि द्वादशविधम्, सयमः=सावत्र व्यापारविरतिलक्षणः सप्तदशविधः, क्षान्तिः=अमर्षोत्पादकाऽऽक्षेपवचनादिसहन स्वरूपा, ब्रह्मचर्यं=विषयसेवनपरिहारलक्षणम्, चकाराः समुच्चयार्थाः, मियम्=अभीष्ट रुचिरमित्यर्थ, ते (श्रमणाः) पश्चादपि=चारित्रखण्डनानन्तरमपि वृद्धत्वेऽपि वा प्रयाता=प्रवृद्धभावेन गृहीतसयमाः सन्त आर्द्रकुमार-पुण्डरीकादिवत्, क्षिप्प=

चारित्रका महत्त्व दिखाते हैं—'पच्छात्रि ते—' इत्यादि ।

जिन श्रमणोंको अनशन आदि बारह प्रकारका तप, सावत्र व्यापारका त्यागरूप सत्रह प्रकारका सयम, क्रोधजनक आक्षेपपूर्ण वचनोंका सहन करनारूप क्षान्ति, सर्वथा मैथुनका परित्याग, ये प्रिय होते हैं, वे कदाचित् मोहकर्मके उदयसे खण्डित-चारित्र होकर भी, अथवा वृद्ध होनेपर भी चढते परिणामोंसे आर्द्रकुमार, पुण्डरीक आदिके

चारित्रनुं महत्त्व गतावे छे— पच्छात्रि ते० इत्यादि

वे श्रमणोंने अनशन आदि बारह प्रकारको तप, सावत्र व्यापारको त्यागइय सत्तर प्रकारको सयम, क्रोधजनक आक्षेपपूर्ण वचनोंसे सहन करवाइय क्षान्ति, सर्वथा मैथुनको परित्याग, ये प्रिय होय छे, तेको कदाचित् मोहकर्मना उदयशी प्रहितआन्त्रि शर्मने पणु अथवा वृद्ध होवा छता पणु अस्ता परिणुमोथी

शीघ्रम् अमरभवनम्=न प्रियन्त इत्यमरा'='सिद्धा आयुषोऽभावात्, तेषा भवनम्=  
आलयः सत्ता वा तत् सिद्धक्षेत्र सिद्धस्वरूप वेत्यर्थः। यद्वा न प्रियते यत्र तद्-  
मरम्=अविनाशि तच्च तद् भवन स्थान तत् सिद्धपदमित्यर्थः। अथवा न प्रियन्ते  
अकालमृत्युना इत्यमराः=देवास्तेषा भवन तत् स्वर्गलोकमित्यर्थः। बहुवचन चोभ-  
यार्थद्योतनार्थम्, गच्छन्ति=यान्ति ॥२८॥

उपसहारमाह—'इच्छेय' इत्यादि ।

मूलम्—इच्छेयं छज्जीवणिय, सम्मदिट्ठी सया जण ।

दुल्लह लहित्तु सामन्नं, कम्मुणा न विराहिज्जासि-त्तिवेमि ॥२९॥

छाया—इत्येत पड्जीवनिकाय, सम्यग्दृष्टिः सदा यतः ।

दुर्लभ लब्धा श्रामण्य, कर्मणा न विराधयेत् ॥२९॥ इति ब्रवीमि ।

उपसहार करते हैं—

सान्वयार्थः—सम्मदिट्ठी=सम्यक्त्वी मनुष्य सया=सदैव जण=यतनावान्  
होकर दुल्लह=दुर्लभ ऐसे सामन्न=साधुपनेको लहित्तु=प्राप्त करके इच्छेय=इस  
पूर्वोक्त स्वरूपवाले छज्जीवणिय=पड्जीवनिकाय—उह प्रकारके जीवसमूह—की  
कम्मुणा=मन वचन कायके व्यापारसे न विराहिज्जासि=विराधना न करे,  
त्तिवेमि=श्रीगुधर्मा स्वामी जम्भूस्वामीसे कहते हैं कि मैने भगवान् महावीर  
स्वामीसे जैसा सुना है वैसा ही तुमसे कहता हूँ ॥२९॥

- ॥ इति चतुर्थाध्ययनस्य शब्दार्थ ॥४॥

समान फिर मयमको ग्रहण करके शीघ्रही अमरभवन-(सिद्धिस्थान  
अथवा स्वर्गलोक) को प्राप्त होते हैं ।

'अमरभवन' के दो अर्थ होते हैं—(१) जहा मृत्यु नहीं होती ऐसा  
स्थान मोक्ष है, क्योंकि वहा आयुकर्मका सर्वथा अभाव है, और  
(२) अमरभवन स्वर्गलोकको भी कहते हैं, क्योंकि स्वर्गलोकमें अकाल  
मृत्यु नहीं होती ॥२८॥

उपसहार करते हैं—'इच्छेय' इत्यादि ।

आर्द्रकुमार, पुंडरीक आदिनी पेटे इरी सयमने अक्षु करीने शीघ्र अमरभवन  
(सिद्धिस्थान अथवा स्वर्गलोक) ने प्राप्त थाय छे

'अमरभवन'ना छे अर्थ थाय छे (१) नया मृत्यु डोतु नयी जेवु स्थान  
मोक्ष छे, कारणु डे त्या आयुकर्मनेा सर्वाथा अभाव डोय छे अने (२) अमर  
भवन स्वर्गलोकने पणु कडे छे, कारणु डे स्वर्गलोकमा अकालमृत्यु थतु नथी (२८)

उपसहार करे छे—इच्छेय० इत्यादि

टीका-सम्यग्दृष्टिः=सम्यग्-यथाऽऽस्थितत्वेनाऽपिपर्यस्ता दृष्टिः=तच्चरुचिर  
मिमायो या यस्य स तथोक्तः, सम्यग्दर्शनानित्यपर्यः, सदा=नित्य यतः=यतना  
वान् दुर्लभ=दुष्प्राप, श्रामण्य=श्रमणभारं लब्ध्वा=मम्प्राप्य इत्येतम्=उक्तलक्षणम्,  
पद्जीवनिकाय कर्मणा=मनोवाषायण्यापारेण न विराधयेत्=देशतः सर्वतो वा  
न प्रमर्दयेत् न पीडयेदित्यर्थः । 'इति ब्रवीमी'-ति प्राग्म् ॥२९॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धराचरु-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-  
कलापाऽऽलापक-प्रशिद्ध-गण-पद्य नैऋत्यनिर्मापन-यादिमानमर्दरु-  
शाहूजनपति-कोल्हापुरराज प्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूषित-  
कोल्हापुरराजगुरु-मालप्रह्वारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-  
पूज्य-श्रीघासीलालप्रतिप्रिचिताया श्रीदशवैकालिकसूत्र-  
स्याऽऽचारमणिमञ्जूपाख्याया व्याख्याया चतुर्थ  
'पद्जीवनिकाया'-ऽऽख्यमध्ययन समाप्तम् ॥ ४ ॥



तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपका श्रद्धान करनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव दुर्लभ  
श्रमणताको प्राप्त करके सदैव पहले कहे हुए स्वरूपवाले पद्जीवनिकायकी  
मन वचन कायसे एकदेश या सर्वदेशसे कभी भी विराधना न करे-  
पीडा न पहुँचावे ॥ श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं-हे जम्बू !  
अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरसे जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे  
कहा है-इत्यादि पहले के समान समझ लेना ॥२९॥

इति "पद्जीवनिकाया"-नामक चौथा  
अध्ययनका हिन्दीभाषानुवाद समाप्त ॥४॥



तत्त्वोना यथार्थ स्वरूपनु श्रद्धान करवावाणो सम्यग्दृष्टि एव दुर्लभ श्रमण  
ताने प्राप्त करीने सदैव पहिला कहेला स्वरूपवाणा पद्जीवनिकायनी मन वचन  
कायाथी अकदेश या सर्वदेशे करीने कदापि विराधना न करे पीडा न उपभवे  
श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने कहे छे-हे जम्बू ! अन्तिम तीर्थंकर भगवान्  
महावीर पासथी जेवु मे आलज्यु छे तेवु न तने क्यु छे-इत्यादि पहिलानी पेटे  
समझ लेवु (२९)

इति "पद्जीवनिकाया" नामक चौथा अध्ययननु  
गुजरातीभाषानुवाद समाप्त (४)

अथ पञ्चमाध्ययनम् ।

गत चतुर्थाध्ययनम्, तत्र च पद्मजीवनिकायरक्षणलक्षणो भिक्षोराचारः प्रतिपादितः, स हि शरीरस्थित्यधीनपालनकः, शरीर चाक्षरक्षणमन्तरेण शम्भमिव उद्गाल विना गप्पयन्त्रमिव जठरानलतापव्याधिराधोपशमनोपधीभूतमाहारमन्तरेण वर्चितुमक्षममतोऽस्मिन् पञ्चमाध्ययने 'सयमिना रुढा, कस्मात्, केन विधिना, कीदृगादारो ग्रहीतव्यः?' इति सविस्तर प्रतिपादयितुमुपक्रमते—

यद्वा—चतुर्थाध्ययने मूलगुणाः सन्दर्गिताः, इह तु मूलगुणोपापकोत्तरगुणा-

पांचवां अध्ययन ।

चौथे अध्ययनमें पद्मजीवनिकायकी रक्षा-रूप भिक्षुका आचार प्रतिपादित किया गया है । इस आचारका पालन शरीरकी स्थिति पर निर्भर है । जैसे विना आंगन (वागण) के गाड़ी नहीं चल सकती, विना कोयलेके रेलगाड़ी नहीं चल सकती, उसी प्रकार जठराग्निके सताप रूप व्याधिकी बाधाको शान्त करनेके लिए औपत्रिके समान आहारको ग्रहण किये विना शरीरकी स्थिति नहीं रह सकती । इसलिए पाचवें अध्ययनमें विस्तारसे यह प्रतिपादन करते हैं कि 'सयमीको कन, किससे, किस विधिसे, और किस प्रकारका आहार ग्रहण करना चाहिये ?' ।

अथवा—चौथे अध्ययनमें मूल गुणोंका वर्णन किया गया है, इस अध्ययनमें मूलगुणोको पुष्ट करनेवाले उत्तर गुणोंमेंसे पिण्डैपणाका

पाचमं अध्ययन

योथा अध्ययनमा पद्मजीवनिकायनी रक्षा रूप भिक्षुका आचार प्रतिपादित करवाभा आव्ये छे आ आचारनु पालन शरीरनी स्थिति पर निर्भर छे नेम उज्ज्वल विना गाडु आवी शकतु नथी अने कोयला विना रेलगाडी आवी शकती नथी तेम जठराग्निना सताप उप व्याधीनी बाधाने शान्त कर्था विना शरीरनी स्थिति नही शकती नथी ते भाटे पाचमा अध्ययनमा विन्तारथी अे प्रतिपादन करवाभा आव्यु छे ते 'सयमीअे क्यारे, कोनी पायेथी, देवी विधिथी अने देवा प्रकारने आहार ग्रहण करवे जेधअे ?

अथवा—योथा अध्ययनमा मूल गुणानु वर्णन करवाभा आव्यु छे, आ अध्ययनमा मूल गुणाने पुष्ट करवाभा उत्तर गुणोभाथी पिण्डैपणानु कथन करवाभा आवे छे



ન્તર્ગતા વિષ્ણૈષ્ણાઽભિપ્રીયતે । વિષ્ણૈષ્ણા ચ વિષ્ણુસ્વ-સમયમાગયા પ્રસિદ્ધસ્યાન્ન  
 પાનસ્યૈષ્ણારૂપા, તત્ર વિષ્ણુન વિષ્ણુ-“વ્યવ્રમમ્નુતિતરદ્વૃપદાર્થસમુદાયઃ, સદ્વિચિત્-  
 દ્રવ્યવિષ્ણો ભાવવિષ્ણુઃ, તત્ર ક્ષુધાવિધાતકત્વેનાશનાદિરૂપો દ્રવ્યવિષ્ણુઃ, કર્મવિધાત-  
 કત્વેન જ્ઞાનાદિલક્ષણઃ પ્રશસ્તભાવવિષ્ણુઃ, અપ્રશસ્તભાવવિષ્ણુસ્વસયમાદિરૂપઃ  
 પ્રકૃતાનુપયોગિત્વાદુપેક્ષિતઃ । દ્રવ્યવિષ્ણો દિ પ્રશસ્તભાવવિષ્ણુપરિપોષકસ્ત વિના તસ્યા  
 સમ્પાદત્વાત્, તથાદિ-જ્ઞાનાદ્યાત્મકપ્રશસ્તભાવવિષ્ણુસ્યારાધના શરીરસ્થિત્યધીના,  
 શરીરપરિસ્થિતિઆહાર વિના ન યથારત્સાધનાયાલમ્, આહારાદિચ્ચ દ્રવ્યવિષ્ણુ  
 એવેતિ સિદ્ધ દ્રવ્યવિષ્ણુસ્ય પ્રશસ્તભાવવિષ્ણુપરિપોષકત્વમ્ । તસ્ય ચ સાવચનિસ્વચ

કથન કરતે છે । ‘વિષ્ણુ’ શાસ્ત્રીય ભાષામાં અન્ન-પાન નામસે પ્રસિદ્ધ છે,  
 ઉસની ઇષ્ણા કરના ‘વિષ્ણૈષ્ણા’ છે । ઇકુ સ્થાનપર વહુત પદાર્થોંકા  
 સમુદાય હોના વિષ્ણુ કહલાતા છે । વિષ્ણુ દો પ્રકારકા છે-(૧) દ્રવ્યવિષ્ણુ  
 ઓર (૨) ભાવવિષ્ણુ અશન આદિકો દ્રવ્યવિષ્ણુ કહતે હેં, ક્યોંકિ ઉસસે  
 ક્ષુધાકા નાશ હોતા છે । જ્ઞાનાદિ પ્રશસ્ત-ભાવવિષ્ણુ છે, ક્યોંકિ વહ  
 કર્મોંકા નાશ કરનેવાલા છે, અપ્રશસ્ત-ભાવવિષ્ણુ અસયમાદિરૂપ છે,  
 ઉસકા યહાં અધિકાર નહેં છે ।

દ્રવ્યવિષ્ણુ, પ્રશસ્ત-ભાવવિષ્ણુકા પોષક છે, ક્યોંકિ ઉસકે વિના  
 પ્રશસ્ત-ભાવવિષ્ણુકી પ્રાપ્તિ નહીં હોસકતી, અર્થાત્ જ્ઞાનાદિરૂપ  
 પ્રશસ્ત-ભાવવિષ્ણુકી આરાધના શરીરકી સ્થિતિકે અધીન છે,  
 ઓર શરીરકી સ્થિતિ આહારકે વિના નહેં હોસકતી । આહાર આદિ  
 દ્રવ્યવિષ્ણુ હી છે । ઇસસે યહ સિદ્ધ હુઆ કિ દ્રવ્યવિષ્ણુ પ્રશસ્ત ભાવ

‘વિષ્ણુ’ શબ્દ શાસ્ત્રીય-ભાષામા અન્નપાનના નામે ઓળખાય છે, તેની એવળા  
 કરવી એ વિષ્ણૈષ્ણા કહેવાય છે એક સ્થાન પર ઘણા પદાર્થોની સમુદાય હોવો  
 એ ‘વિષ્ણુ’ કહેવાય છે વિષ્ણુ એ પ્રકારનો હોય છે, (૧) દ્રવ્ય-વિષ્ણુ અને  
 (૨) ભાવવિષ્ણુ અશન આદિને દ્રવ્યવિષ્ણુ કહે છે કારણ કે તેથી ક્ષુધાનો નાશ થાય છે  
 જ્ઞાનાદિ એ પ્રશસ્ત-ભાવવિષ્ણુ છે, કારણ કે તે કર્મોનો નાશ કરવાવાળું છે  
 અપ્રશસ્ત-ભાવવિષ્ણુ અસયમાદિરૂપ છે, એનો અહીં અધિકાર નથી

દ્રવ્યવિષ્ણુ એ પ્રશસ્ત-ભાવવિષ્ણુનો પોષક છે કારણ કે તેના વિના પ્રશસ્ત-  
 ભાવવિષ્ણુની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી અર્થાત્ જ્ઞાનાદિ-રૂપ પ્રશસ્ત-ભાવવિષ્ણુની  
 આરાધના શરીરની સ્થિતિને અધીન છે, અને શરીરની સ્થિતિ આહાર વિના  
 હોઈ શકતી નથી આહારાદિ દ્રવ્યવિષ્ણુ છે તેથી એ સિદ્ધ થયું કે દ્રવ્યવિષ્ણુ

भेदाभ्या द्वैविध्येऽपि सयमिभिर्निरवद्यपिण्ड एव ग्राह्य इति तदेपणाधिकारः—‘सपत्ते’ इत्यादि ।

मूलम्—संपत्ते<sup>२</sup> भिक्खकालम्मि<sup>१</sup>, असंभंतो<sup>३</sup> अमुच्छिओ<sup>४</sup> ।

इमेण<sup>५</sup> कमजोगेण<sup>६</sup>, भत्तपाण<sup>७</sup> गवेसए<sup>८</sup> ॥ १ ॥

छाया—सम्प्राप्ते भिक्षाकालेऽसम्भ्रान्तोऽमृच्छितः ।

अनेन क्रमयोगेन, भक्तपान गवेपयेत् ॥१॥

॥ अथ पञ्चमाध्ययनम् ॥

सान्त्वयार्थः—मुनिको आहारपानी लेनेकी विधि कहते हैं—भिक्खकालम्मि=गोचरीका समय सपत्ते=होनेपर असंभतो=उद्वेगरहित (और) अमुच्छिओ=आसक्तिरहित होकर इमेण कमजोगेण=इस आगे वताई जानेवाली विधिसे भत्तपाण=भात-पानीकी गवेसए=गवेपणा करे ॥

टीका—भिक्षाकाले=गोचरीसमये, सम्प्राप्ते=स्वाध्यायाद्यनन्तर द्रव्यक्षेत्र-कालभावानुक्लतया समायाते ‘मुनि’-रिति शेषः, असम्भ्रान्तं=यत्किञ्चिन्निमित्तजनितचित्तव्याक्षेपजन्यत्वरारहित-अनासिप्तचित्त इत्यर्थः, ईर्योपयोगवानिति भावः, ‘कदा कुत्र वाऽशनादिप्राप्तिर्भविष्यती’ त्यादिचिन्ताऽऽहितचाञ्चल्यरहित इति

पिण्डका पोषक है । द्रव्यपिण्ड, सावद्य भी होता है और निरवद्य भी होता है । सयमीको निरवद्य पिण्ड ही ग्रहण करना चाहिए, इसलिए द्रव्यपिण्डकी एपणाका अधिकार आरम्भ किया जाता है ‘सपत्ते’ इत्यादि ।

द्रव्यक्षेत्रकालभावके अनुसार स्वाध्याय आदि क्रियाओंके पश्चात् जन गोचरीका समय हो तब मुनि किसी कारणवश उत्पन्न हुए चित्त-विक्षेपजन्य भ्रान्तिरहित होकर, अर्थात् ईर्या (गमन) में उपयोग रखकर, अथवा ‘कन और कहाँ अशन आदिकी प्राप्ति होगी ?’ इस

प्रश्नत् लावर्षिडने पोषक छे द्रव्यर्षिड सावद्य पणु होय छे अने निरवद्य पणु होय छे सयमीये तो निरवद्यर्षिड न अडणु करवे लेधये ओटला भाटे द्रव्य र्षिडनी ओपणुने अधिकार प्रारलवामा आवे छे—सपत्ते भिक्खकालम्मि र्थ्यादि

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावन अनुसार स्वाध्यायदि क्रियाओंकी पछी न्याये गोचरीने समय थाय त्यारे मुनि कौध कारणवश उत्पन्न थयेला चित्तविक्षेपथी नन्मेली भ्रान्तिथी रहित थधने अथान् र्थ्या (गमन)मा उपयोग राभीने, अथवा क्यारे अने कया अशन आदिनी प्राप्ति थये ? ये प्रकारनी र्थितावन्य

न्तर्गता पिण्डैषणाऽभिधीयते । पिण्डैषणा च पिण्डस्य ममयभाषया प्रमिदस्यान्न-  
पानस्यैषणारूपा, तत्र पिण्डं पिण्ड 'एकप्रसमुत्तत्रहृपदार्थमप्रुणयः, स द्विविधः-  
द्रव्यपिण्डो भावपिण्डश्च, तत्र भुधापिघातकृतेनाशनदिरूपो द्रव्यपिण्डः, कर्मविघात-  
कृत्वेन ज्ञानादिलक्षणः प्रशस्तभावपिण्डः, अप्रशस्तभावपिण्डस्त्वसयमादिरूपः  
प्रकृतानुपयोगित्वाद्दुपेक्षितः । द्रव्यपिण्डो हि प्रशस्तभावपिण्डपरिपोषकत्व विना तस्या  
सम्पाद्यत्वात्, तथाहि-ज्ञानाद्यात्मकप्रशस्तभावपिण्डस्याराधना शरीरस्थित्यधीना,  
शरीरपरिस्थितिआहार विना न यथावत्साधनायात्म, आहारादिभ्यश्च द्रव्यपिण्ड  
एवेति सिद्ध द्रव्यपिण्डस्य प्रशस्तभावपिण्डपरिपोषकत्वम् । तस्य च सावत्रनिरवय

कथन करते हैं । 'पिण्ड' शास्त्रीय भाषामें अन्न पान नामसे प्रसिद्ध है,  
उसकी एषणा करना 'पिण्डैषणा' है । एक स्थानपर बहुत पदार्थोंका  
समुदाय होना पिण्ड कहलाता है । पिण्ड दो प्रकारका है-(१) द्रव्यपिण्ड  
और (२) भावपिण्ड अशन आदिको द्रव्यपिण्ड कहते हैं, क्योंकि उससे  
क्षुधाका नाश होता है । ज्ञानादि प्रशस्त-भावपिण्ड है, क्योंकि वह  
कर्मोंका नाश करनेवाला है, अप्रशस्त-भावपिण्ड असयमादिरूप है,  
उसका यहाँ अधिकार नहीं है ।

द्रव्यपिण्ड, प्रशस्त-भावपिण्डका पोषक है, क्योंकि उसके विना  
प्रशस्त-भावपिण्डकी प्राप्ति नहीं होसकती, अर्थात् ज्ञानादिरूप  
प्रशस्त-भावपिण्डकी आराधना शरीरकी स्थितिके अधीन है,  
और शरीरकी स्थिति आहारके विना नहीं होसकती । आहार आदि  
द्रव्यपिण्ड ही है । इससे यह सिद्ध हुआ कि द्रव्यपिण्ड प्रशस्त भाव

'पिंड' शब्द शास्त्रीय-भाषामा अन्नपानना नामे ओणभाय छे, तेनी ओषण  
करी ओ पिंडेषणु कहेवाय छे ओक स्थान पर धणु पदार्थनि समुदाय होवे  
ओ 'पिंड' कहेवाय छे पिंड ओ प्रकारने होय छे, (१) द्रव्य-पिंड अने  
(२) भावपिंड अशन आदिने द्रव्यपिंड कहे छे कारणु के तेथी क्षुधाने नाश थाय छे  
ज्ञानादि ओ प्रशस्त-भावपिंड छे, कारणु के ते कर्मनि नाश करवावायु छे  
अप्रशस्त-भावपिंड असयमादिरूप छे, ओने अही अधिकार नथी

द्रव्यपिंड ओ प्रशस्त-भावपिंडने पोषक छे कारणु के तेना विना प्रशस्त-  
भावपिंडनी प्राप्ति थई शकती नथी अर्थात् ज्ञानादि-रूप प्रशस्त-भावपिंडनी  
आराधना शरीर नी स्थितने अधीन छे, अने शरीरनी स्थिति आहार विना  
होई शकती नथी आहारादि द्रव्यपिंड छे तेथी ओ सिद्ध थयु के द्रव्यपिंड

भेदाभ्या द्वैत्रियेऽपि सयमिभिर्निरवद्यपिण्ड एव ग्राह्य इति तदेपणाधिकारः-‘सपत्ते’ इत्यादि ।

मूलम्-संपत्ते<sup>२</sup> भिक्खकालम्मि<sup>१</sup>, असंभतो<sup>३</sup> अमुच्छिओ<sup>४</sup> ।

इमेण<sup>५</sup> कमजोगेण<sup>६</sup>, भक्तपाणं<sup>७</sup> गवेसए<sup>८</sup> ॥ १ ॥

छाया—सम्प्राप्ते भिक्षाकालेऽसम्भ्रान्तोऽमुच्छितः ।

अनेन क्रमयोगेन, भक्तपान गवेपयेत् ॥१॥

॥ अथ पञ्चमाध्ययनम् ॥

सान्त्वयार्थः—मुनिको आहारपानी लेनेकी विधि कहते हैं—भिक्खकालम्मि=गोचरीका समय सपत्ते=होनेपर असंभतो=उद्वेगरहित (और) अमुच्छिओ=आसक्तिरहित होकर इमेण कमजोगेण=इस आगे बताई जानेवाली विधिसे भक्तपाण=भात-पानीकी गवेसए=गवेपणा करे ॥

टीका—भिक्षाकाले=गोचरीसमये, सम्प्राप्ते=स्वाध्यायाद्यनन्तर द्रव्यक्षेत्र-कालभावानुकूलतया समायाते ‘मुनि’-रिति शेषः, असम्भ्रान्त.=यत्किञ्चिन्निमित्तजनितचित्तव्याक्षेपजन्यत्वरारहित. अनासित्तचित्त इत्यर्थः, ईर्योपयोगवानिति भावः, ‘कदा कुत्र वाऽशनादिप्राप्तिर्भविष्यती’ त्यादिचिन्ताऽऽहितचाञ्चल्यरहित इति

पिण्डका पोषक है । द्रव्यपिण्ड, सावद्य भी होता है और निरवद्य भी होता है । सयमीको निरवद्य पिण्ड ही ग्रहण करना चाहिए, इसलिए द्रव्यपिण्डकी एपणाका अधिकार आरम्भ किया जाता है ‘सपत्ते’ इत्यादि ।

द्रव्यक्षेत्रकालभावके अनुसार स्वाध्याय आदि क्रियाओंके पश्चात् जत्र गोचरीका समय हो तत्र मुनि किसी कारणवश उत्पन्न हुए चित्त-विक्षेपजन्य भ्रान्तिरहित होकर, अर्थात् ईर्या (गमन) में उपयोग रखकर, अथवा ‘कत्र और कहाँ अशन आदिकी प्राप्ति होगी ?’ इस

प्रशन्त वावपिंडने पोषक छे द्रव्यपिंड सावद्य पणु होय छे अने निरवद्य पणु होय छे सयमीके तो निरवद्यपिंड न अडणु करवे नेधके अटला भाटे द्रव्य पिंडनी अेषणाने अधिकार प्रारंभवाभा आवे छे—सपत्ते भिक्खकालम्मि इत्यादि

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावने अनुसार स्वाध्यायादि क्रियाओंकी पछी न्यारे गोचरीने समय थाय त्यारे मुनि कौध कारणवश उत्पन्न थयेला चित्तविक्षेपथी न-भेदी भ्रान्तिथी रहित थधने अथात् ईर्या (गमन)भा उपयोग राणीने, अथवा कथादे अने कथा अशन अदिनी प्राप्ति थथे ? अे प्रकारनी चिंताजन्य

यावत्, अमुच्छित्तः=भाहारार्थं मनोरमशब्दादिविषयेषु वा नासक्तः सन् अनेन=वक्ष्यमाणेनैतदध्ययनव्यापणितस्वरूपेण क्रमयोगेन=प्रकारेण भक्तपान=भक्त च पान चेत्यनयोः समाहारे भक्तपानम्, भक्तम्,=भोदनादिभ्यम्, पान=शिक्षादिजल मुनियोग्य गवेपयेत्=अन्वेपयेत् (अन्विच्छेत्)। 'सपत्ते' इत्यनेन मुनिना यथासमय कार्यं सम्पादनीय 'मित्यात्रिच्छित्तम्। 'असभतो' इत्यतो मनःस्थैर्यं विषयेमित्युपदिष्टम्। 'अमुच्छित्तो' इत्यनेन विषयशून्यमपाकृतम् ॥१॥

गवेपणाविधिमाह—'से गामे वा' इत्यादि।

मूलम्—से गामे वा नगरे वा, गोयरग्गओ मुणी।

चरे मदमणुविग्गो, अच्चस्सित्तेण चेषसा ॥ २ ॥

छाया—स ग्रामे वा नगरे वा, गोचराप्रगतो मुनिः।

चरेन्मन्दमनुद्विप्रोऽन्यासित्तेन चेतसा ॥२॥

सान्त्वयार्थः—से=वह मुणी=साधु गामे=गाँव वा=अथवा नगरे=नगरमें वा=निश्चयसे गोयरग्गओ=निर्दोष भिक्षाके लिए गया हुआ अणुविग्गो=उद्वेग

प्रकारकी चिन्ताजन्य चचलतासे रहित होकर आहार तथा मनोज्ञ शब्दादि विषयोमें आसक्त न होता हुआ, जैसा इस अध्ययनमें वर्णन किया गया है उस विधिसे, मुनिके योग्य ओदन आदि भक्त तथा दाख आदिका धोचनरूप पानकी गवेपणा करे।

गाथामे 'सपत्ते' पदसे यह सूचित किया है कि मुनिको समय पर ही कार्य करना चाहिए। 'असभतो' पदसे यह प्रगट किया है कि साधुको मनकी स्थिरता रखनी चाहिए। 'अमुच्छित्तो' पदसे विषयोंमें आसक्तिका निराकरण किया गया है ॥१॥

चचलताथी रहित थधने आहार तथा मनोज्ञ-शब्दादि विषयोभा आसक्त न थता, आ अध्ययनभा वक्ष्योया प्रभाछे ॥ विधिथी, मुनिने येज्य ओदन आदि लात तथा दाक्ष आदिना धोवणुइप पाननी गवेपणा करे

गाथामा सपत्ते शण्ठथी अथ सूचित वरवामा आण्यु छे डे मुनिअे समय पर न कार्य करलु न्नेठअे असभतो शण्ठथी अथ प्रकट कथुं छे डे साधुअे मननी स्थिरता राखनी न्नेठअे अमुच्छित्तो शण्ठथी विषयोभा आसक्तिनु निरा करलु करवामा आण्यु छे (१)

रहित होता हुआ अव्वन्त्रित्तेण=शान्त-स्थिर चैयसा=चित्तसे मद=इर्या-  
समिति सोधता हुआ चरे=जावे ॥२॥

टीका—से=अथ=पिण्डगवेपणासमये, यद्वा 'से' इति तच्छब्दस्य प्रथमै-  
क्यचनरूप तेन सः=प्रकान्तः मुनिः=मुणति=प्रतिजानीते सर्वसाव्यव्यापारोप-  
रतिमिति, मन्यते=जानाति जिनाज्ञयाऽनेकान्तात्मकनीचाऽजीवादिपदार्थसार्थ-  
मिति वा मुनि=भनगारः, स च द्विविधः-द्रव्यतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतः-मुनि-  
कृतव्यक्रियास्त्रापविक्रलो लिङ्गमात्रोपजीवी, भावतस्तु-मोहनीयकर्मक्षय-क्षयो-  
पशमसमुद्भूतज्ञानादिरत्नत्रयप्रकटीभूतात्मस्वरूपः, प्रकृते च भावमुनि प्रसङ्गमन्यः।

१ आये 'मुण प्रतिज्ञाने' अस्मादीणादिक इन्, पृषोदरादित्वाणस्य न. ।  
द्वितीये-'मन नाने' इति धातो. 'मनेह्वे'-त्यौणादिकमुत्रेण इन्प्रत्ययः स च क्ति  
अकारस्योकारादेशश्च । यद्वा 'मुणी' इति प्राकृतसम. सस्कृत एव, शब्दसिद्धि-  
रप्युक्तैव, तदा त्रायाया 'मुणि.' इत्यपि समावेशमर्हति ।

अथ गवेपणाकी विधि बताते हैं—'से गामे वा०' इत्यादि ।

'मुनि' शब्दके अनेक अर्थ हैं—(१) जो समस्त सावद्य व्यापारके  
त्यागकी प्रतिज्ञा करते हैं उन्हें मुनि कहते हैं । (२) जिनेन्द्र भगवान्की  
आज्ञाके अनुसार जीव अजीव आदि पदार्थोंको अनेकान्तस्वरूप जानने  
वाले मुनि कहलाते हैं । मुनि दो प्रकारके होते हैं—(१) द्रव्यमुनि और  
(२) भावमुनि । मुनियोंके आचारका पालन न करनेवाला मुनिवेषधारी  
द्रव्यमुनि कहलाता है । मोहनीय कर्मके क्षय और क्षयोपशमसे उत्पन्न  
हुए सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयके द्वारा जिनकी  
आत्माका स्वरूप प्रकट होगया है उन्हें भावमुनि कहते हैं । यहा भाव-  
मुनिका अधिकार समझना चाहिए ।

दुवे गवेपणाकी विधि बतावे छे—से गामे वा० इत्यादि

मुनि शब्दना अनेक अर्थो छे (१) से सर्व सावद्य व्यापारना त्यागनी  
प्रतिज्ञा करे से—तेने मुनि कहे छे (२) जिनेन्द्र भगवाननी आज्ञाने अनुसार  
एव अएव आदि पदार्थोने अनेकान्तस्वरूप जणुवावाणा मुनि कहेवाय छे  
मुनि से प्रकारना होय छे (१) द्रव्यमुनि अने (२) भावमुनि मुनियोना  
आत्मानु पालन न करतारा मुनिवेषधारी द्रव्यमुनि कहेवाय छे, मोहनीय  
कर्मना क्षय अने क्षयोपशमार्थो उत्पन्न थओला सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन अने  
सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयनी द्वारा जना आभातु स्वरूप प्रकट यथ गयु छे  
तेने भावमुनि कहे छे अही भावमुनिने अधिकार समजवे नोथओ,

ग्रामे या=अथवा नगरे, द्वितीय-‘या’-शब्दात् खेटकर्वटादी, गोचराग्रगतः=गोरि चरण=यथायोग्यं स्वल्पस्वल्पग्रहण गोचरः, अग्रः=आशुकादिदोषरहिततया श्रेष्ठः, स चासी गोचरधेति गोचराग्र, आर्पस्त्राद्विशेषणपूर्वनिपातात्, अग्रगोचर इत्यर्थः, तत्र गतः=र्तमानः गोचराग्रगतः अव्याक्षिप्त=स्थिरेण भिक्षागतसरुद्रोपोपयोगरतेत्यर्थः, चेतसा=चित्तेन अनुद्विप्रः=अत्राभादिपरीपहजनितक्षोभरहितः, मन्द=शनैर्यथास्यात्तथा ईर्यापथ शोधयन्नित्यर्थः, चरेत्=गच्छेत्।

‘गोयरग्गओ’ इत्यनेन नमोऽटिग्रिगुद्गाहारो ग्रहीतव्य इति सूचितम्।  
‘अव्वक्खित्तेण चेषसा’ इत्यनेन चित्तस्थैर्येणैव भिक्षादिशुद्धिर्भवतीति ध्वनितम्।  
‘अणुच्चिग्गो’ इत्यतः परीपहसहनसामर्थ्यं बोधितम् ॥ २ ॥

गोचरीगमनप्रकारानाह-‘पुरओ’ इत्यादि ।

यह भागमुनि पिण्ड-गवेपणाका समय होने पर ग्राम, नगर खेडा, कर्वट आदिमें यथायोग्य थोड़ा थोड़ा निर्दोष आहार ग्रहण करता हुआ भिक्षाके समस्त दोषोंका उपयोग रखनेवाले अर्थात् अव्याक्षिप्त चित्तसे अलाभ आदि परीपह जनित क्षोभसे रहित होकर ईर्यापथ शोधते हुए मन्दगतिसे चले ।

‘गोयरग्गओ’ पदसे यह सूचित हुआ है कि साधुको नवकोटि विशुद्ध आहार लेना चाहिए। ‘अव्वक्खित्तेण चेषसा’ इससे यह द्योतित होता है कि चित्तकी स्थिरतासे ही भिक्षाकी शुद्धि निभ सकती है। ‘अणुच्चिग्गो’ पदसे परीपह सहनेका सामर्थ्य प्रकट किया है ॥२॥

गोचरीके लिए गमनविधि बताते हैं-‘पुरओ’ इत्यादि ।

ये भाव मुनि पिण्डगवेपणानो समय यथा ग्राम, नगर, गामडु, कर्वट आदिमा यथायोग्य थोड़ा थोड़ा निर्दोष आहार श्लुषु करता, भिक्षाना यथा दोषानो उपयोग राभववाणो अर्थात् अव्याक्षिप्त-चित्तथी अलाभ आदि परीपहथी उत्पन्न यथा क्षोभथी रहित यथने धर्यापथ शोधता मह गतिसे चले

गोयरग्गओ शब्दथी अेम सूचित थयु छे के साधुअे नवकोटिअे विशुद्ध आहार लेवे। न्नेअे अव्वक्खित्तेण चेषसा अेथी अेम प्रकट थाय छे के चित्तनी स्थिरताथी न भिक्षानी शुद्धि नली शके छे, अणुच्चिग्गो शब्दथी परीपह सह वानु सामर्थ्य प्रकट कर्तुं छे (२)

गोचरीने भाटे गमनविधि बतावे छे-पुरओ इत्यादि

मूलम्-<sup>३</sup>पुरओ <sup>१</sup>जुगमायाए, <sup>४</sup>पेहमाणो <sup>२</sup>महि <sup>१०</sup>चरे ।

वज्जतो <sup>६</sup>वीयहरियाइ, <sup>५</sup>पाणे <sup>६</sup>य <sup>८</sup>दग्मद्विय ॥ ३ ॥

छाया—पुरतो युगमात्रया, प्रेक्षमाणो मही चरेत् ।

वर्जयन् वीजहरितानि, प्राणाँश्च दकमृत्तिकाम् ॥३॥

गोचरी में चलने की विधि कहते हैं—

सान्त्वयार्थः—पुरओ=सामने जुगमायाए=धूसर प्रमाण दृष्टिसे महि=पृथिवीको पेहमाणो=देखता हुआ वीयहरियाइ=बीज, डरी, पाणे=द्वीन्द्रियादिक प्राणी य=और दग्मद्विय=सचित्त जल तथा सचित्त मिट्टीको वज्जतो=वर्जता हुआ चरे=चले ॥३॥

टीका—युगमात्रया=जूसरप्रमाणया तत्प्रमाणप्रसृतयेत्यर्थः 'दृष्ट्ये'ति शेषः । वस्तुतस्तु 'कचिद्वितीयादे,' इति नियमादत्र द्वितीयार्थे पण्ठी, तेन 'जुगमायाए' इत्यस्य 'युगमात्रा'-मिति च्छाया, तथाच-युगमात्रा=प्रोक्तार्था स्वशरीरप्रमितामिति भावः, मही=भूमि मार्गभूमिमिति भावः, पुरतः=स्वाग्रतः प्रेक्षमाणः=सम्यगवलोकयन् वीजहरितानि=प्रसिद्धानि, प्राणान्=द्वीन्द्रियादिप्राणिनः, दकमृत्तिका=सचित्त जल मृत्तिका च वर्जयन्=परिहरन् चरेत्=गच्छेत् ॥३॥

मूलम्-<sup>३</sup>ओवाय <sup>४</sup>विसम <sup>५</sup>खाणु, <sup>६</sup>विजल <sup>७</sup>परिवज्जए ।

सकमेण न गच्छिज्जा, <sup>१०</sup>विज्जमाणे <sup>२</sup>परक्कमे ॥ ४ ॥

छाया—अवपात विपम स्थाणु, विजल परिवर्जयेत् ।

सकमेण न गच्छेत्, विज्जमाने पराक्रमे ॥४॥

सान्त्वयार्थ - परक्रमे=दूसरे मार्गके विज्जमाणे=होनेपर (साधु) ओवाय=जिस मार्गमें गिर पडनेकी शका हो विसम=खड़े आदिके कारण विकट हो खाणु=काटे हुए धान्यके डठलोसे युक्त (और) विजल=झीचडवाला हो उस

अपने शरीर प्रमाण रास्ता सामने भली भाँति अवलोकन करता हुआ, बीज, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय आदि प्राणी सचित्तजल और सचित्त मृत्तिकाको वचाता हुआ गमन करे ॥३॥

घोताना शरीर प्रमाण रास्ता सामने साठी रीते अवलोकन करता, बीज, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रियादि प्राणी, सचित्त जल अने सचित्त माटीने ध्यावी देता गमन करे (३)



ગ્રામે ગા=અથવા નગરે, દ્વિતીય 'ગા'-શબ્દાત્ સ્વેતકર્વટાદૌ, ગોચરાગ્રગતઃ= ગોચરિ ચરણ=યથાયોગ્યં સ્વરૂપસ્વરૂપગ્રહણ ગોચરઃ, અગ્રઃ=આયાજમાદિદોષરહિત તયા શ્રેષ્ઠઃ, સ ધાસૌ ગોચરથેતિ ગોચરાગ્ર, આર્પસ્વાદ્વિશેષણપૂર્વનિપાતામાનઃ, અગ્રગોચર इत्यर्थः, તપ્ર ગતઃ=વર્તમાનઃ ગોચરાગ્રગતઃ અગ્ર્યાશિષ્ઠેન=સ્થિરેણ મિક્ષાગતસરુદ્ધોપોપયોગગતેત્યર્થઃ, ચેતમા=ચિત્તેન અનુદ્વિગ્રઃ=અજ્ઞાભાદિપરીપહ જનિતક્ષોભરહિતઃ, મન્દ=શૈર્ષ્યપાસ્યાતથા ઈર્યાપથ શોધયન્નિત્યર્થઃ, ચરેત્=ગચ્છેત્ ।

'ગોચરગગઓ' इत्यनेन नमोदितिशुद्धाहारो ग्रहीतव्य इति सूचितम् ।  
'अव्वक्खित्तेण चेषसा' इत्यनेन चित्तस्थैर्येणैव भिक्षादिशुद्धिर्भवतीति ध्वनितम् ।  
'अणुव्विग्गो' इत्यतः परीपहसहनसामर्थ्यं बोधितम् ॥ २ ॥

ગોચરીગમનમકારાનાહ-'પુરઓ' इत्यादि ।

વહ ભાગમુનિ પિણ્ડ-ગવેષણાકા સમય હોને પર ગ્રામ, નગર સ્લેહા, કર્વટ આદિમેં યથાયોગ્ય થોડા થોડા નિર્દોષ આહાર ગ્રહણ કરતા હુઆ ભિક્ષાકે સમસ્ત દોષોંકા ઉપયોગ રાખનેવાલે અર્થાત્ અવ્યાક્ષિત્ત ચિત્તસે અલાભ આદિ પરીપહ જનિત ક્ષોભસે રહિત હોકર ઈર્યાપથ શોધતે હુણ મન્દગતિસે ચલે ।

'ગોચરગગઓ' પદસે યહ સૂચિત હુઆ હૈ કિ સાધુકો નવકોટિ-વિશુદ્ધ આહાર લેના યાહિણ । 'અવ્વક્ખિત્તેણ ચેયસા' ઇસસે યહ ઘોતિત હોતા હૈ કિ ચિત્તકી સ્થિરતાસે હી ભિક્ષાકી શુદ્ધિ નિભ સકતી હૈ । 'અણુવ્વિગ્ગો' પદસે પરીપહ સહનેકા સામર્થ્ય પ્રગટ કિયા હૈ ॥૨॥

ગોચરીકે લિણ ગમનવિધિ યતાતે હૈ-'પુરઓ' इत्यादि ।

એ ભાવ મુનિ પિણ્ડવેષણાને સમય થતા ગ્રામ, નગર, ગામડું, કર્વટ આદિમા યથાયોગ્ય થોડા થોડા નિર્દોષ આહાર ગ્રહણ કરતા, ભિક્ષાના બધા દોષોને ઉપયોગ રાખવાવાળો અર્થાત્ અવ્યાક્ષિત્ત-ચિત્તથી અલાભ આદિ પરી પહથી ઉત્પન્ન થતા ક્ષોભથી રહિત થઈને ઈર્યાપથ શોધતા મદ ગતિએ ચાલે

ગોચરગગઓ શબ્દથી એમ સૂચિત થયુ છે કે સાધુએ નવકોટિએ વિશુદ્ધ આહાર લેવો એમ એમ અવ્વક્ખિત્તેણ ચેયસા એથી એમ પ્રકટ થાય છે કે ચિત્તની સ્થિરતાથી જ ભિક્ષાની શુદ્ધિ નભી શકે છે, અણુવ્વિગ્ગો શબ્દથી પરીપહ સહ વાનું સામર્થ્ય પ્રકટ કર્યું છે (૨)

ગોચરીને માટે ગમનવિધિ યતાવે છે-પુરઓ इत्यादि

तत्र गच्छतो हानिमाह-‘पवडते’ इत्यादि ।

मूलम्-पवडते व से तत्थ, पक्खलते व सजए ।

हिसेज्ज पाणभूयाइं, तसे अदुव थावरे ॥५॥

छाया—प्रपतश्च स तत्र, प्रस्खलँश्च सयतः ।

हिंस्यात्प्राणभूतानि, त्रसान् अथवा स्थावरान् ॥५॥

पूर्वोक्त मार्गसे जाने में दोष उताते है—

सान्वयार्थः—से=उस मार्गसे जानेवाला वह सजए=साधु व=यदि तत्थ=वहा पवडते=गिर जाय व=अथवा पक्खलते=रपट पडे तो तसे=त्रस-द्वीन्द्रियादि अदुव=अथवा थावरे=स्थावर-पृथिव्यादि पाणभूयाइं=प्राणी भूतोकी हिंसेज्जा=हिंसा करे। अर्थात् ऐसे मार्गमें जानेसे साधुको आत्म और सयम दोनोंकी विराधनाका सभव है ॥५॥

टीका—तत्र=तस्मिन् अवपातादौ प्रपतन् प्रस्खलँश्च स सयतः=साधुः त्रसान्=द्वीन्द्रियादिलक्षणान्, स्थावरान्=पृथिव्याद्येकेन्द्रियान्, अथवा प्राणभूतानि=त्रसस्थावरोभयविधान् प्राणिनो हिंस्यात्=मर्दयेत् पीडयेदिति यावत् । पतनादिना चाऽऽत्मविराधनाद्यपि नियत भावीति भावः ॥५॥

मार्ग न हो तो यह निषेध नहीं है—अर्थात् अन्य मार्गके अभावमें ऐसे मार्गसे भी जा सकते हैं ॥४॥

ऐसे मार्गमें चलनेसे होनेवाली हानि बताते हैं—‘पवडते’ इत्यादि ।

यदि अवपात आदि पूर्वोक्त मार्गोंमें गमन करनेसे गिर पडे या रपट जावे तो द्वीन्द्रिय आदि त्रस या पृथिवीकायिक आदि स्थावर जीवोंकी अथवा दोनों प्रकारके जीवोंकी हिंसा होती है तथा गिरने आदिसे आत्मविराधना भी अवश्य होती है ॥५॥

तो ज्येने निषेध नहीं—अर्थात् अन्य मार्गने अलावे ज्येवा मार्गथी पणु न्थ शक्य छे (४)

ज्येवा मार्गभा आलवाथी थनारी हानि पतावे छे—पवडते० इत्यादि

जे अवपात आदि पूर्वोक्त मार्गोंभा गमन करवाथी पडी न्थ या लपसी न्थ तो द्वीन्द्रियादि त्रस या पृथ्वीकायिक आदि स्थावर ज्येवानी अथवा जेठ प्रकारना ज्येवानी हिंसा थाय छे, तथा पडवाथी आत्मविराधना पणु अवश्य

मार्गको परिउज्जण=गोठे, तथा मरुमेण=हीउड आदिके कारण निम मार्गमें ईट फाठ आदि लाघनेके लिए रसे हों उसमें भी न गच्छेज्जा=नहीं जावे ॥४॥

टीका—‘ओवायं०’ इत्यादि । ‘परक्रमे’ इति आक्रमणमाक्रमः=अवलम्बन परथासायाक्रमश्च पराक्रमः परस्याऽऽक्रमो वा पराक्रमस्तस्मिन्, यदा ‘परक्रमे’ इतिच्छाया, ततश्च परथासो क्रमश्च परक्रमस्तस्मिन् ‘सर्पया गत्यन्तरे’ इत्यर्थस्तथा च-पराक्रमे अथवा परक्रमे उपाये विद्यमाने=वर्तमाने सति अवपातः १=स्वलन स्थान सत्यप्यालोके येन सञ्चरणे स्वलनमपश्यसम्भाव्य तम्, विषम<sup>२</sup>=दुर्गमत्वा द्विकट मार्गं स्थाणु=नूनसम्प्यादिस्युड तद्रहूल क्षेत्रादिमार्गमित्यर्थः, विजल=विगत जल यस्मात्तत् तयोक्त पङ्किलस्थल परिउर्जयेत्=परित्यजेत्, सक्रमेण=सक्रम्यते=समुष्टद्ध्यते जलरुर्दमादिउहुलविषमस्थान येन स सक्रम<sup>३</sup>=उष्टका-काष्ठ-पापाणादि-निर्मितमार्गविशेषस्तेन न गच्छेत्=न सञ्चरेत् । ‘विज्जमाणे परक्रमे’ इत्यनेनोपायान्तराभावे नाय प्रतिषेध इत्यपवादः सूचितः ॥४॥

१ गतमयतया सभावितस्वलनम् ।

२ उन्नताऽचनतत्वाद्दुर्गमम् ।

‘ओवायं०’ इत्यादि । पर अवलम्बको यहाँ पर परक्रम अथवा पराक्रमसे कहा गया है अत एव अर्थ यह है कि दूसरे मार्गके रहते हुए, जिसमें चलनेसे गिर पडनेकी सभावना हो, दुर्गम होनेके कारण विकट हो, जिसमें काटे हुए ज्वार आदिके डठल हों, और जो कीचट वाला हो, जल-कीचट आदिकी अधिकता होनेसे लाघनेके लिए ईट, काष्ठ, पत्थर आदि रखे हुए हों, उस विषम मार्गसे गमन न करे ।

‘विज्जमाणे परक्रमे’ इस पदसे यह सूचित किया है कि दूसरा

ओवायं० इत्यादि पर अवलम्बने अर्थात् परक्रम अथवा पराक्रमकी कड़ेवासा आवेल छे, अथवा अथवा अर्थ थाय छे के पीछे मार्ग होवा छता, जेमा थाल वाथी पडी न्वानी सभावना होय, दुर्गम होवाने लीधे विकट होय, जेमा कापेथी लुवार आदिना कूटा होय, अने जे डीयडवाणो होय, पाण्णी डीयड वगेरे वधु होवाना कारणे ओणगवा भाटे छिट, लाकडु के पत्थर आदि राखेला होय, अथवा विषम मार्गकी गमन न करे

विज्जमाणे परक्रमे अे शब्दोथी अेभ सूच्यु छे के पीछे मार्ग न होय

तत्र गच्छतो हानिमाह-‘पवडते’ इत्यादि ।

मूलम्-पवडते व से तत्थ, पक्खलते व सजए ।

हिंसेज्ज पाणभूयाइ, तसे अडुव थावरे ॥५॥

छाया—प्रपतश्च स तत्र, प्रस्खलँश्च सयतः ।

हिंस्यात्प्राणभूतानि, त्रसान् अथवा स्यावरान् ॥५॥

पूर्वोक्त मार्गसे जाने में दोष बताते हैं—

सान्वयार्थः—से=उस मार्गसे जानेवाला वह सजए=साधु व=यदि तत्थ=वहा पवडते=गिर जाय व=अथवा पक्खलते=रपट पडे तो तसे=त्रस द्वीन्द्रियादि अडुव=अथवा थावरे=स्थावर-पृथिव्यादि पाणभूयाइ=प्राणी भूतोकी हिंसेज्जा=हिंसा करे। अर्थात् ऐसे मार्गमें जानेसे साधुको आत्म और समय दोनोंकी विराधनाका सम्व है ॥५॥

टीका—तत्र=तस्मिन् अवपातादौ प्रपतन् प्रस्खलँश्च स सयतः=साधुः त्रसान्=द्वीन्द्रियादिलक्षणान्, स्यावरान्=पृथिव्याद्येकेन्द्रियान्, अथवा प्राणभूतानि=त्रसस्यावरोभयविधान् प्राणिनो हिंस्यात्=मर्दयेत् पीडयेदिति यावत् । पतनादिना चाऽऽत्मविराधनाद्यपि नियत भावीति भावः ॥५॥

मार्ग न हो तो यह निषेध नहीं है—अर्थात् अन्य मार्गके अभावमें ऐसे मार्गसे भी जा सकते हैं ॥४॥

ऐसे मार्गमें चलनेसे होनेवाली हानि बताते हैं—‘पवडते०’ इत्यादि ।

यदि अवपात आदि पूर्वोक्त मार्गोंमें गमन करनेसे गिर पडे या रपट जावे तो द्वीन्द्रिय आदि त्रस या पृथ्वीकायिक आदि स्थावर जीवोंकी अथवा दोनों प्रकारके जीवोंकी हिंसा होती है तथा गिरने आदिसे आत्मविराधना भी अवश्य होती है ॥५॥

तो जेना निषेध नथी—अर्थात् अन्य मार्गने अलावे जेवा मार्गथी पणु बरु शक्य छे (४)

जेवा मार्गभा आलवाथी थनारी हानि जतावे छे—पवडते० इत्यादि

जे अवपात आदि पूर्वोक्त मार्गोंभा गमन करनेवाथी पडी जय या लपसी जय तो द्वीन्द्रियादि त्रस या पृथ्वीकायिक आदि स्थावर जेवानी अथवा जेड प्रकारना जेवानी हिंसा थाय छे, तथा पडवाथी आत्मविराधना पणु अवश्य थाय छे (५)

अपकायादियतनामाह—‘न चरेज्ज’ इत्यादि ।

मूलम्—न चरेज्ज वासे वासते, मिहियाण पडंतिण् ।

महावाए च वायते, तिरिच्छसंपाडमेसु वा ॥ ८ ॥

छाया—न चरेद् वर्षे वर्षति, मिहिकायां पतन्त्याम् ।

महावाते वा राति, तिर्यक्सपातेषु वा ॥ ८ ॥

अपकाय आदिकी यतना कहते हैं—

सान्त्वयार्थः—वासे वासते=वर्षा वरसते हुए मिहियाणपडंतिण=धूँअर कुहरा गिरते हुए च=तथा महावाए वायते=महावायु-आँधी-के चलते हुए वा=आँ तिरिच्छसंपाडमेसु=तीड-पतगादिकां के उडते हुए (साधु) न चरेज्ज=गोचरी न जावे ॥ ८ ॥

टीका—वर्षे वर्षति=वृष्टीं सत्याम्, मिहिकाया=धूमिकाया पतन्त्या सत्या महावाते=मचण्डपत्रने राति=रहति सति, तिर्यक्सपातेषु=तिर्यक्पतनशीलेषु शलभादिषु सत्सु न चरेत् । ‘वासे वासते’ इत्यनेन शीकरपातसमयेऽपि गमन निषेधः तस्यापि वृष्टावन्तर्भावात् अपकायविराधनासाधनत्वाच्च ॥ ८ ॥

उक्ता प्रथममहाव्रतविराधनाऽधुना चतुर्थमहाव्रतविराधनाया इतरमहाव्रतविराधना

अपकायादिकी यतना कहते हैं—‘न चरेज्ज वासे०’ इत्यादि ।

जब वर्षा वरस रही हो, कुहरा (धूँअर) पड रहा हो, आँधी चल रही हो, टिड्डी आदि उड रहे हो, तब साधु गमन न करे । ‘वासे वासते’ इस पदसे यह भी ग्रहण कर लेना चाहिए कि जब फुहारे पड रहे हों तब भी गमन न करे, क्योंकि वह भी वर्षाहीमें अन्तर्गत है और उस समय जानेसे अपकायकी विराधना होती है ॥ ८ ॥

प्रथम महाव्रतकी विराधना बनानेके बाद अथ अन्य महाव्रतोंकी विराधना

अपकायादिनी यतना कहे छे—न चरेज्ज वासे० इत्यादि न्यारे वरसाई वरसी रह्यो होय, धुमस (आकण) पडी रह्यो होय आधी आली रही होय, टीड उडी रह्यो होय, त्यारे साधु गमन न करे वासे वासते ये राण्ठथी येम पणु अडणु करी लेवु नेधये के न्यारे वरसाइनी इरइर पडी गडी होय त्यारे पणु गमन न करे, कतरणु के ते पणु वरसाइमा न आवी नय छे, अने ते समये नवाधी अपकायनी विराधना वाय छे (८)

प्रथम महाव्रतनी विराधना भताण्या पछी हुवे पीला

विराधना

हेतुभूततया तामाह—‘न चरेज्ज वेस०’ इत्यादि ।

मूलम्—न चरेज्ज वेससामन्ते, वंभचेरवसाणुए ।

वंभयारिस्स दत्तस्स, हुज्जा तत्थ विसुत्तिया ॥ ९ ॥

छाया—न चरेद् वेशसामन्ते, ब्रह्मचर्यवशानुगः ।

ब्रह्मचारिणो दान्तस्य, भवेत्तत्र विस्रोतसिका ॥९॥

ब्रह्मचर्य ही सत्र व्रतो का कारण है, अतः चतुर्थगत की यतना रुहते है—

सान्न्वयार्थः—वंभचेरवसाणुए=ब्रह्मचर्यकी रक्षा चाहनेवाला साधु वेस-सामन्ते=वेश्याके पाडे-गृहले में न चरेज्ज=गोचरी नही जावे, (क्योकि) तत्थ=वहा (गोचरी जानेसे) दत्तस्स=इन्द्रिय और मनको काबूमें रखनेवाले वंभयारिस्स=ब्रह्मचारी साधुके भी विसुत्तिया=मानसिक विकार हुज्जा=पैदा हो जाता है, साधारण मनुष्यकी तो बातही क्या ? अर्थात् उसके मानसिक विकार जरूर उत्पन्न हो जाता है ॥९॥ क्योकि—

टीका—ब्रह्मचर्यवशानुगः=ब्रह्मचर्य=कामवासनापरित्यागलक्षणप्रतन, वश=स्वायत्तताम् अनुगमयति=प्रापयतीति स तथोक्तः ब्रह्मचारीत्यर्थः । यद्वा ‘ब्रह्मचर्यावसानके’ इति, ‘ब्रह्मचर्यवशाऽऽनये’ इति वा सस्कृत, तस्य ‘वेशसामन्ते’ इत्यनेन विशेषणतया सम्बन्धस्तथा च—ब्रह्मचर्यस्यावसानम्=अन्तो यस्मात्स तस्मिन्—ब्रह्मचर्यविनाशके इति प्रथमस्यार्थः । ब्रह्मचर्य वशमानयति=दर्शनादिना स्वाधीन करोतीति ब्रह्मचर्यवशानयस्तस्मिन् ब्रह्मचर्यभ्रशके इति द्वितीयस्यार्थः । वेशसामन्ते=वेशः=वेश्यागृहम् ‘वेशो वेश्यागृहे गृहे’ इति कोशात्, तस्य सामन्ते=समीपे वेश्यापाटके वा न चरेत्=न गच्छेत् । का हानि ? रित्याह—‘ब्रह्मे’-ति, तत्र=वेशसामन्ते गमनेनेति प्रसङ्गलभ्यम्, दान्तस्य=जितेन्द्रियस्यापि

के कारण होनेसे चतुर्थ महाव्रतकी विराधनाका कथन करते हैं—‘न चरेज्ज वेस०’ इत्यादि ।

ब्रह्मचारी साधु गोचरीके लिए, ब्रह्मचर्यका नाश करनेवाले वेश्या-घरके समीपमें या वेश्याके पाडे (गृहले) में न जावे । वहाँ जानेसे क्या हानि है ? सो बताते हैं—वेश्याके पाडेमें गमन करनेसे जितेन्द्रिय ब्रह्म-

कारण होवाने लीधे चतुर्थ महाव्रतकी विराधनानु उच्यते अरे छे न चरेज्ज वेस० इत्यादि  
 ब्रह्मचारी साधु गोचरीने भाटे, ब्रह्मचर्यने नाश करवावाला वेश्यागृहनी  
 समीपे या वेश्याकोना भडोऽलाभा न जाय त्या जवाभा शी हु-उक्त छे ? ते  
 हवे बतावे छे—वेश्याना भडोऽलाभा गमन करवाथी जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी

अपकायादियतनामाह—'न चरेज्ज' इत्यादि ।

मूलम्—न चरेज्ज वासे वासते, मिहियाण पडंतिण ।

महावाण व वायंते, तिरिच्छसपाइमेसु वा ॥८॥

छाया—न चरेद् वर्षे र्पति, मिहिकायां पतन्त्याम् ।

महावाते वा याति, तिर्यकसपातेषु वा ॥८॥

अपकाय आदिकी यतना कहते हैं—

सान्त्वयार्थ.—वासे वासते=वर्षा वरसते हुए मिहियाण पडतिण=धूँअर कुहरा गिरते हुए च=तथा महावाण वायते=महावायु-आँधी के चलते हुए वा=और तिरिच्छसपाइमेसु=तीड-पतगादिकोंके उडते हुए (साधु) न चरेज्ज=गोचरी न जावे ॥८॥

टीका—वर्षे र्पति=वृष्टी सत्याम्, मिहिकाया=धूमिकाया पतन्त्या सत्या महावाते=प्रचण्डपवने याति=वहति सति, तिर्यकसम्पातेषु=तिर्यक्पतनशीलेषु शलभादिषु सत्सु न चरेत् । 'वासे वासते' इत्यनेन शीकरपातसमयेऽपि गमन निषेधः तस्यापि वृष्टान्तर्भावात् अपकायविराधनासाधनत्वाच्च ॥८॥

उक्ता प्रथममहाव्रतविराधनाऽधुना चतुर्थमहाव्रतविराधनाया इतरमहाव्रतविराधना

अपकायादिकी यतना कहते हैं—'न चरेज्ज वासे०' इत्यादि ।

जब वर्षा वरस रही हो, कुहरा (धूँअर) पड रहा हो, आँधी चल रही हो, टिड्डी आदि उड रहे हो, तब साधु गमन न करे । 'वासे वासते' इस पदसे यह भी ग्रहण कर लेना चाहिए कि जब फुहारे पड रहे हों तब भी गमन न करे, क्योंकि वह भी वर्षाहीमे अन्तर्गत है और उस समय जानेसे अपकायकी विराधना होती है ॥८॥

- प्रथम महाव्रतकी विराधना बतानेके बाद अब अन्य महाव्रतोंकी विराधना

अपकायादिनी यतना कहे उ—न चरेज्ज वासे० इत्यादि न्यारे वरसाई वरसी रह्यो छाय, धुमस (आकण) पडी रह्यो छाय आधी यादी रही छाय, टीड उडी रहा छाय, त्यारे साधु गमन न करे वासे वासते अये प्राण्ठथी अयेम पण अडल्लु करी लेलु जेधअये के न्यारे वरसाइनी इरकर पडी रही छाय त्यारे पणु गमन न करे, कारणु के ते पणु वरसाइमा न आवी जाय छे, अने ते समये नवाधी अपकायनी विराधना थाय छे (८)

प्रथम महाव्रतकी विराधना बतानेके बाद अब अन्य महाव्रतोंकी विराधना

छाया—अनायतने चरतः ससर्गेणाऽभीक्ष्णम् ।

भवेद्वाताना पीडा, श्रामण्ये च संशयः ॥१०॥

वेश्या के पाडे में एकवार जाने का दोष कह कर अब अनेक वार जानेका दोष कहते हैं—

सान्वयार्थः—अणाययणे=वेश्याके पाडेमें अथवा इस प्रकारके दूसरे अयोग्य स्थानोंमें चरतस्स=गोचरी जानेवाले साधुके अभिक्ख ग=बारबार ससग्गीए=ससर्ग होनेके कारण वयाण=महाव्रतोंको पीला=पीडा हुज्ज=होती है अर्थात् वे दूषित हो जाते हैं । (इतना ही नहीं किन्तु उस साधुके) सामन्नम्मि य=चारित्र-साधुपने-में भी ससओ=सन्देह हो जाता है ॥१०॥

टीका—अनायतने=अयोग्यस्थाने वेश्यागृहसमीपादौ अभीक्ष्ण=बारबारम् चरतः=पर्यटतः सागोः ससर्गेण=प्रेक्षणादिसर्पकेण (मूले प्राकृतत्वात्स्त्रीत्वम्) व्रताना=ब्रह्मचर्यादीना पीडा=विरागना, चकारोऽप्यर्थे, नैतावत्येव हानिः किन्त्वन्याऽपीत्याह-श्रामण्ये=चारित्रेऽपि सगयः=पालनीयतासन्देहो भवेत्, तथाहि—

“दुश्चरब्रह्मचर्यादेर्भविष्यति फल न वा ? ।

चेन्न जाने कियत् कीदृक्, रुदा वा तद्भविष्यति ॥१॥

तथाऽप्राप्तसुखप्राप्ति, मुद्दिश्य विहितो मया ।

उपस्थितसुखत्याग उचितः किं न वोचितः ॥२॥” इत्यादि ।

वेश्या-घरके समीप या ऐसेही अन्य अयोग्य स्थानोंमें बार बार गमन करनेवाले साधुके वेश्याको देखने आदि ससर्गसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंमें पीडा होजाती है, अर्थात् व्रत दूषित होजाते हैं । यही एक हानि नहीं है किन्तु उसके श्रामण्य (चारित्र)में भी सदेह होजाता है कि—

“इसदुश्चर ब्रह्मचर्यका फल मिलेगा या नहीं ?, यदि मिलेगा भी तो न जाने कितना मिलेगा, कैसा मिलेगा, और कय मिलेगा ? ॥१॥

मैंने अप्राप्त सुखकी प्राप्तिके लिए प्राप्त सुखका त्याग कर दिया है सो यह—उचित किया है या अनुचित ? ॥२॥” इत्यादि ।

वेश्यागृहनी समीपे या जेवान् अन्य अयोग्य स्थानेमा बारबार जवापडे वेश्याने जेना आदि ससर्गथी साधुना प्रह्वचर्य आदि व्रतोमा पीडा थर्ष नय छे, अर्थात् व्रत दूषित थर्ष नय छे आ जेक न हानि नथी परन्तु जेना श्रामण्य (चारित्र)मा पणु सदेह उत्पन्न थाय छे ते—“आ दुश्चर प्रह्वचर्यनुं इण भगशे के नहि ?, जे भगशे तो पणु शी भगर डेटलु भगशे, डेम भगशे जेने कयारे भगशे ? (१) जे अप्राप्त अपनी प्राप्तिने भाटे प्राप्त सुखने त्याग करी नाप्यो छे ” इत्यादि,



घाम्पचारिणः=साधो रिसोतसिका=तद्रूपलाग्यापत्रोफनचिन्तनादि<sup>१</sup>चत्ररेण वेतो  
 नलिकासमागन्तुद्वावनासलि<sup>२</sup>प्रवाहनिरोधे श्रद्धाभूमिसमूत्पन्नप्रमचर्यमूलकाऽ  
 हिंसासत्याऽस्तेयाऽपरिग्रहरूपाऽऽन्यान्सर्वादि-ज्ञान-क्रियास्कन्धसुदृढ-समितिषु  
 प्यादिशाखाप्रशाखाप्रितता-ऽष्टादशसहस्रशीलाङ्गप्रघ्यान-गुणमा-ऽपवर्ग फलसम्प  
 त्समृद्धसयमद्रुमशीपिणी चित्तविकृतिर्भवेदिति सूत्रार्थः ॥९॥

सकृद्गमनदोष प्रतिपादेदानीमसकृद्गमनदोषान् प्रदर्शयति-‘अणाययणे’ इत्यादि।

मूलम्-अणाययणे चरतस्स, ससङ्गीए अभिसखण ।

हुज्ज वयाण पीला, सामन्नम्मि य ससओ ॥९॥

१ ‘कूड़ा-करकट’ ‘कचरा’ इति भाषा ।

चारी साधुके भी मनमें विकार उत्पन्न होसकना है । अर्थात् वेश्याके  
 रूप-लावण्यका अवलोकन करने और विचार करनेरूप कचरेसे चित्त-  
 रूपी नलद्वारा आत्मामें आता हुआ विशुद्धभावनारूप जलका प्रवाह  
 रुक जाता है । भावना-जलका प्रवाह रुक जानेसे वह सयमरूपी तरु  
 सूख जाता है, जो तरु श्रद्धारूपी भूमिमें उत्पन्न होता है, ब्रह्मचर्य जिसकी  
 जड़े हैं, अहिंसा सत्य-अस्तेय-अपरिग्रह रूपी क्यारी है, जो ज्ञान और  
 क्रियारूपी स्कन्धसे दृढ़ है, समिति-गुप्ति आदि शाखा-प्रशाखाएँ जिसकी  
 फैली हुई हैं, अठारह हजार शीलाङ्ग जिसके पत्ते हैं, ध्यान ही जिसके  
 पुष्प हैं, और मुक्ति सम्पत्तिही जिस वृक्षके फल है ॥९॥

एकवार गमन करनेके दोष बताकर बारबार गमन करनेके दोष  
 कहते हैं-‘अणाययणे’ इत्यादि ।

साधुना मनमा पणु विकार उत्पन्न थर्ध शके छे अर्थात् वेश्याना रूप-लावण्यरु  
 अवलोकन, विचार, धत्यादिश्च कचराथी चित्तश्ची नगद्वारा आत्माभा आवता  
 विशुद्ध लावनाण्णना प्रवाह शैकाथ न्वाथी अे सयमश्ची तश् सुकाथ नय छे,  
 ते ने तश् श्रद्धाश्ची भूमिभा उत्पन्न थाय छे, प्रमचर्य नेना मृण छे, अहिंसा  
 सत्य अस्तेय अपरिग्रहश्ची क्यारी छे, ने ज्ञान अने क्रियाश्ची थड वडे दठ छे,  
 समिति गुप्ति आदि शाखा प्रशाखा नेनी देलाथ रडी छे, अठार छन्तर शीलाग नेना  
 पादडा छे, ध्यान न् नेना पुष्प छे अने मुक्तिस पत्तिन् ते तश्ना इण छे (९)  
 अेकवार गमन करवाना दोष बतावने बारबार गमन करवाना दोष  
 बतावे छे-अणाययणे० इत्यादि

लक्षण विज्ञाय=अवबुध्य एकान्तम्=एकः=अद्वितीयः अन्तो=निश्चयो व्रत-  
रक्षणविषयको मोक्षप्राप्तिविषयको वा एकान्तस्तम् आश्रितः=आस्थितो मुनिः  
वेशसामन्त=वेश्यापाटङ्गमन उर्जयेत्=परित्यजेत् ।

‘वियाणित्ता’ इत्यनेन सम्यगवबोधमन्तरेण दोषपरित्यागो याथातथ्येन न  
सम्भवतीति, ‘एगतमस्सिए’ इत्यनेन च मुनिना सतत मोक्षैकलक्ष्येण भवितव्यमिति  
सूचितम् ॥११॥

मार्गयतनामेव विशिष्याऽऽह-‘साण’ इत्यादि ।

मूलम्-साण सूडय गाविं, दित्तं गोण ह्य गय ।

सडिब्भ कलह जुद्ध, दूरओ परिवज्जए ॥ १२ ॥

छाया-श्वान सूता गा, दप्त गोण ह्य गजम् ।

सडिब्भ कलह युद्ध, दूरतः परिवर्जयेत् ॥१२॥

साधु जहाँ भिक्षा के लिये न जावे उन स्थानों को विशेष रूपसे कहते हैं-  
सान्वयार्थ -साण=जहा काटनेवाला कुत्ता हो सूडय=थोड़े कालकी व्याई  
हुई गाविं=गाय हो दित्तं=मदमस्त गोण=गोधा साण्ड अथवा बैल (और) ह्य=  
घोडा (अथवा) गय=हाथी हो (तथा) सडिब्भ=जहा वच्चे खेल रहे हों कलह=  
परस्पर वाग्मुद्-गाली-गलोच-हो रहा हो जुद्ध=शस्त्र आदिसे युद्ध होता हो (ऐसे  
स्थानको साधु) दूरओ=दूरसे ही परिवज्जण=वर्जे, अर्थात् ऐसी जगह साधु

जानकर व्रतोंकी रक्षा और मोक्षकी प्राप्तिके निश्चयमे स्थित मुनि वेश्याके  
पाडे (चकले)मे भिक्षा आदिके लिए न जावे ।

‘वियाणित्ता’ पदसे यह सूचित किया है कि भलीभाँति जाने बिना  
दोषका अच्छी तरह परित्याग नहीं हो सकता। ‘एगतमस्सिए’ पदसे यह  
प्रगट किया है कि मुनिको सदा मोक्षप्राप्तिका लक्ष्य रखना चाहिये ॥११॥

मार्गकी यतनाको विशेषरूपसे यताते हैं- ‘साण०’ इत्यादि ।

ब्राह्मिने व्रतानी रक्षा अने मोक्षनी प्राप्तिना निश्चयमा स्थित मुनिञ्चे, वेश्याना  
भोडाद्वारा भिक्षा आदिने भाटे जणु नडि

वियाणित्ता शब्दही ज्येभ सूचित क्युं छे डे-सारी रीते ब्राह्म्या विना  
दोषेने। सारी पेटे परित्याग थणु शक्ते नथी एगतमस्सिए शब्दही ज्येभ  
प्रकट क्युं छे डे मुनिञ्चे सदा मोक्षप्राप्तिनुं लक्ष्य राण्यु ज्येभञ्चे (११)

मार्गनी यतनाने विशेषउपेयतावे डे साण० इत्यादि

यद्वा-‘चकारादत्र’ काद्वा त्रिचिक्विस्ता-भेदो-न्माद दीर्घकालिकरोग केवलि-  
प्रसप्तधर्मभ्रगादयो दोषाः सगृहन्ते ॥१०॥

उपसहरति-‘तम्हा एय’ इत्यादि ।

मूलम्-तम्हा एय वियाणित्ता, दोस दुग्गडवडुण ।

वज्जए वेससामत, मुणी एगतमस्सिए ॥११॥

छाया-तस्मादेत विज्ञाय, दोष दुर्गतिवर्द्धनम् ।

वर्जयेद्वेगसामन्त, मृनिरेकान्तमाश्रित\* ॥११॥

सान्त्वयार्थः-तम्हा=इसलिए दुग्गडवडुण=दुर्गतिको बढ़ानेवाले एय=इस  
दोस=दोषको वियाणित्ता=ज्ञानकर एगतमस्सिए=मोक्षाभिलाषी मुणी=गुनि  
वेससामते=वेश्याके पाडे-मोहले-को वज्जए=वर्जे अर्थात् भिक्षादिके लिए वहा  
नही जावे । भावार्थ-इस प्रकारके ससर्गसे साधुका मन उद्विग्न हो जानेसे  
मनमें अनेक कुतर्कणाए होने लग जाती हैं, तब उसका मन ज्ञान ध्यान-आदि  
शुभ कार्योंमें नहीं लगकर आर्त्त-रौद्र ध्यान करने लगता है । इसलिए साधु ऐसे  
ससर्गको ही टाळे ॥११॥

टीका-तस्मादेतो. एत=पूर्वोक्त दुर्गतिवर्द्धन=दुर्गतिप्रापक दोष=प्रतविराधनादि

अथवा गाथामें आये हुए ‘च’ शब्दसे विषयसेवनकी आकाक्षा,  
सयमसे घृणा, भेद, उन्माद, दीर्घकालिक रोग और केवलीप्ररूपित  
धर्मसे भ्रष्टता आदि अनेक दोष समझ लेना चाहिये । अर्थात् ऐसे  
अयोग्य स्थानोमे गमन करनेसे इत्यादि दोष होते हैं ॥१०॥

उपसहार करते हैं-‘तम्हा एय’ इत्यादि ।

इसलिए इस दुर्गतिको बढ़ानेवाले, ब्रतोंकी विराधनारूप-दोषको

अथवा गाथाभा आवेला च शब्दथी विषय-सेवननी आकाक्षा, सयमथी  
घृणा, भेद, उन्माद, दीर्घकालिक रोग अने केवलीप्ररूपित धर्मभाथी भ्रष्टता  
आदि अनेक दोषो समझ लेवा अर्थात् जेवा अयोग्य स्थानोभा गमन करवाथी  
जे प्रकारना दोष थाय छे (१०)

उपसहार करे छे-तम्हा एय इत्यादि

ओटला भटे, जे दुर्गतिने पधारवावाणा, प्रतोनी विराधनाय्य दोषने

लक्षण विज्ञाय=अवबुध्य एकान्तम्=एकः=अद्वितीयः अन्तो=निश्चयो प्रत-  
रक्षणविषयको मोक्षप्राप्तिविषयको वा एकान्तस्तम् आश्रितः=आस्थितो मुनिः  
वेशसामन्त=वेश्यापाटङ्गमन वर्जयेत्=परित्यजेत् ।

‘वियाणित्ता’ इत्यनेन सम्यगप्रबोधमन्तरेण दोषपरित्यागो याथातथ्येन न  
सभवतीति, ‘एगतमस्सिए’ इत्यनेन च मुनिना सतत मोक्षैकलक्ष्येण भवितव्यमिति  
सूचितम् ॥११॥

मार्गयतनामेव विशिष्याऽऽह-‘साण’ इत्यादि ।

मूल्म्-साणं सूडय गाविं, दित्तं गोण ह्य गय ।

सडिब्भ कलह जुद्ध, दूरओ परिवज्जए ॥ १२ ॥

छाया-श्वान मृता गा, दप्त गोण ह्य गजम् ।

सडिब्भ कलह युद्ध, दूरतः परिवर्जयेत् ॥१२॥

साधु जहाँ भिक्षा के लिये न जावे उन स्थानो को विशेष रूपसे कहते हैं-  
सान्वयार्थ.-साण=जहा काटनेवाला कुत्ता हो सूडय=थोड़े कालकी व्याई  
हुई गाविं=गाय हो दित्त=मदमस्त गोण=गो ग्रा साण्ड अथवा बैल (और) ह्य=  
घोडा (अथवा) गय=हाथी हो (तथा) सडिब्भ=जहा बच्चे खेल रहे हों कलह=  
परस्पर वाग्बुद्ध-गाली-गलोच-हो रहा हो जुद्ध=शस्त्र आदिसे युद्ध होता हो (ऐसे  
स्थानको साधु) दूरओ=दूरसे ही परिवज्जए=वर्जे, अर्थात् ऐसी जगह साधु

जानकर ब्रतोंकी रक्षा और मोक्षकी प्राप्तिके निश्चयमे स्थित मुनि वेश्याके  
पाडे (चकले)में भिक्षा आदिके लिए न जावे ।

‘वियाणित्ता’ पदसे यह सूचित किया है कि भलीभाँति जाने बिना  
दोषका अच्छी तरह परित्याग नहीं हो सकता। ‘एगतमस्सिए’ पदसे यह  
प्रगट किया है कि मुनिको सदा मोक्षप्राप्तिका लक्ष्य रखना चाहिये ॥११॥

मार्गकी यतनाको विशेषरूपसे बताते हैं- ‘साण०’ इत्यादि ।

બાણીને વ્રતોની રક્ષા અને મોક્ષની પ્રાપ્તિના નિશ્ચયમા સ્થિત મુનિએ, વેશ્યાના  
મહોત્સવામા ભિક્ષા આદિને માટે જલુ નહિ

વિયાણિત્તા શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે-સારી રીતે બાણ્યા વિના  
દોષોનો સાચી પેઠે પરિત્યાગ થઇ શકતો નથી એગતમસ્સિએ શબ્દથી એમ  
પ્રકટ કર્યું છે કે મુનિએ સદા મોક્ષપ્રાપ્તિનું લક્ષ્ય રાખવું જોઈએ (૧૧)

માર્ગની યતનાને વિશેષરૂપે બતાવે છે સાણ૦ ઇત્યાદિ

फदापि गोचरी नहीं जावे । भाग्यार्थ-पेसे स्यानमें गोचरी जानेसे कुते आदिके फाटखाने आदिके कारण तथा पात्रे फूटजाने आहार गिरजाने आदि अनेक प्रकारसे समय और आत्मा दोनोंकी विराधना होती है ॥१२॥

टीका-भ्रान कुम्भुर, 'हस'-मितीहासपृष्ठप्य सम्बध्यते, तथाच-दसम्=उद्वत दशनस्वभासम् उन्मादिन वेत्यर्थः, नममृतशुन्या अप्युपलक्षणमेतत् । मृता=नव-प्रसूता गा=सौरभेयीं, नममृतमहिष्या अप्युपलक्षणाद् ग्रहणम्, हस=चण्डस्वभाव गण=वृषभ, ह्य=गोटक, गज=इस्तिन च, सडिबम=शिगुकीडनस्यान, कन्ह=वाग्युद्ध, युद्धम्=दण्डादण्डि-शस्त्राशस्त्रि-प्रभृतिभ्यम् दूरतः परिवर्जयेत्, आत्मसयमो भयविराधनाहेतुत्वात् ॥१२॥

गमनप्रकारमाह-'अणुन्नए' इत्यादि ।

१ २ ३ ४  
मूलम्-अणुन्नए नावणए अप्पहिट्टे अणाउले ।

६ ७ ८ ५ ६  
इदियाइ जहाभाग दमइत्ता मुणी चरे ॥१३॥

छाया-अनुन्नतो नावनतोऽप्रहृष्टोऽनाकुलः ।

इन्द्रियाणि यथाभाग, दमयित्वा मुनिश्चरेत् ॥१३॥

जहां उन्मत्त (पागल-हड़क्या) या काटनेवाला कुत्ता, नयी बियाई हुई (प्रसूता) कुतिया, नवप्रसूता गाय या नवप्रसूता भैस आदि, मदोन्मत्त बैल, घोड़ा हाथी हों उस स्थानको, तथा बच्चोंके खेलनेके, कलह (मुँहकी लड़ाई) के और युद्ध (शस्त्रकी लड़ाई) के स्थानको साधु दूरसे त्यागे । अर्थात् जहाँ ये सब हो वहाँ न जावे-दूर ही रहे, क्योंकि इससे आत्मविराधना समयविराधना और उभयविराधना होती है ॥१२॥

चलनेका प्रकार कहते हैं-'अणुन्नए०' इत्यादि ।

न्या उन्मत्त (गाडो-हडक्या) अथवा करडनारो कूतरा, नवी वीयायली (प्रसूता) कूतरा नवप्रसूता गाय या नवप्रसूता भैस आदि, मदोन्मत्त गण्ड घोडा हाथी इत्यादि होय ते स्थानने, तथा पाण्डोये रभवाना, कलह (मुँहकी लड़ाई)ना अने युद्ध (शस्त्रकी लड़ाई)ना स्थानने साधु दूरथी न त्यागे, अर्थात् न्या अथवा घोडा होय त्या न नय-हर न रहे, कारण्य हे तेथी आत्मविराधना, समयविराधना अने उभयविराधना थाय छे (१२)

यावधानो प्रकार कहे छे-अणुन्नए० इत्यादि

गोचरी में घूमते हुए साधु को किस प्रकार की चेष्टा रखनी चाहिये सो बताते हैं—  
 सान्वयार्थः—मुणी—गोचरीमें घूमता हुआ साधु अणुन्नप=द्रव्यसे ऊंचा नहीं  
 देखनेवाला, भावसे जात्यादिगर्वरहित नावणप=द्रव्यसे शरीरको अत्यन्त नहीं  
 नमानेवाला, भावसे दीनतारहित अप्पहिद्वे=मिलनेवाले आहार आदिके विचा-  
 रसे रहित अणाउले=इष्ट अनिष्ट आहार आदिकी प्राप्ति होना न होना आदि  
 व्याकुलतासे रहित (साधु) इदियाइ=श्रोत्र आदि इन्द्रियोका जहाभाग=यथाक्रम  
 अर्थात् जिस समय जिस इन्द्रियका विषय उपस्थित हो उस समय उस इन्द्रियका  
 दमइत्ता=दमन-निग्रह-करके चरे=विचरे ॥१३॥

टीका-अनुन्नतः—अनुच्छिन्नतः, स च द्रव्यत ऊर्चानवलोकयिता, भावतो  
 जात्यादिगर्वरहितः, नाग्रतः=नातिप्रहः, स द्रव्यतो नातीवनताङ्ग, भावतो दैन्य-  
 रहितः। अप्रहृष्टः=अप्रमुदितः उपलप्स्यमानाहारवस्त्रपात्रादिभावनाजन्यप्रमोदरहित  
 इत्यर्थः। अनाकुलः=अशुब्धः इष्टाऽलाभाऽनभीष्टलाभभावनाजनितमनःक्षोभवर्जित  
 इत्यर्थः, मुनिः इन्द्रियाणि=श्रोत्रादीनि यथाभाग=भज्यते-सेव्यते इति भागः=  
 विषयः, भागमनतिक्रम्य यथाभाग=यथाविषय यस्येन्द्रियस्य यो विषयः सम्प्राप्त  
 स्तमनुसृत्येत्यर्थः, दमयित्वा=निग्रह्य मनोज्ञाऽमनोज्ञगन्दादिविषयेषु रागापरागपरि-  
 त्याग कृत्वेत्यर्थः, चरेत्।

मार्गमें चलते समय साधु अनुन्नत अर्थात् द्रव्यसे ऊपरकी ओर न  
 देखता हुआ, और भावसे जाति कुल आदिके अभिमानसे रहित, नाव-  
 न्त अर्थात् द्रव्यसे अत्यन्त न झुका हुआ, तथा भावसे दीनतारहित,  
 अप्रहृष्ट अर्थात् मिलनेवाले आहार आदिके विचारसे प्रमोदरहित,  
 अनाकुल अर्थात् इष्टकी अप्राप्ति तथा अनिष्टकी प्राप्तिके विचारसे उत्पन्न  
 होनेवाली व्याकुलतासे रहित मुनि जहाँ जिस इन्द्रियका विषय उपस्थित  
 हो वहाँ उस इन्द्रियका दमन करके अर्थात् मनोज्ञविषयमें राग और अम-  
 नोज्ञ विषयमें द्वेषका परित्याग करता हुआ भिक्षा आदिके लिए विचरे।

मार्गमा आलती वपते साधु अनुन्नत अर्थात् प्र यथा उपरनी गान्धुये  
 न जेता अने भावधी नतिदुग्ना अलिमानथो रहित, नावनत अर्थात्  
 द्रव्यथी अत्यन्त न नभ्या विना तथा भावधी दीनता रहित अप्रहृष्ट अर्थात्  
 भणवाना आक्षरदिना विचारथी प्रमोदरहित, अनाकुल अर्थात् इष्टनी अप्राप्ति तथा  
 अनिष्टनी प्राप्तिना विचारथी उत्पन्न थनारी व्याकुलताथी रहित न्या ने इन्द्रियने  
 विषय उपस्थित होय त्या ते इन्द्रियनु दमन करीने अर्थात् मनोज्ञ विषयमा राग  
 अने अमनोज्ञ विषयमा द्वेषने परित्याग करता, भिक्षा आदिने भाटे विचरे

‘અણુન્ન’ ‘નારણ’ इत्येताभ्यामीर्यायतनाऽहङ्कारवर्जनैरन्यराहित्यानि सूचितानि । ‘अप्पहिद्वे’ इत्यनेन माभ्यस्थ्य घोषितम् । ‘अणाउले’ इतिपदेन सागो रसलोलुपत्य निराकृतम् । ‘जहाभाग’ इत्यनेन च यत्र यस्येन्द्रियस्य विषय प्राप्तित्वात् तस्यैवदमन वास्तविकमिन्द्रियदमन, न तु दर्शनविषये कर्णविधानमित्यादि घोष्यम् ॥१३॥

१ ३ ४ ५ ६ १  
मूलम्-द्वदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे ।

७ ८ १० ९ ११  
हसतो नाभिगच्छेज्जा, कुल उच्चावय सया ॥१४॥

छाया—द्रुतद्रुतस्य न गच्छेत्, भापमाणश्च गोचरे ।

हसन् नाभिगच्छेत्, कुलमुच्चावच सदा ॥१४॥

सान્વયાર્થઃ—ગોચરે=ભિક્ષાચરીમેં(સાધુ) દવદવસ્સ=અતિ શીઘ્રતાસે દલ્બહર દૌહતા હુઆ ય=તથા ભાસમાણો=ગોલતા હુઆ ન ગચ્છેજ્જા=નહી ચલે (ઔર) હસતો=હસતા હુઆ મી નાભિગચ્છેજ્જા=નહીં જાવે, (તથા) ઉચ્ચાવય=ઉચ્ચ-દ્રવ્યસે સપ્તભૂમિક મહલોચાલે, મારસે-ધન-ધાન્યાદિસે સમૃદ્ધ, નીચ-દ્રવ્યસે ઘાસફૂસકી શોપડીવાલે, મારસે ધન-ધાન્યાદિરહિત કુલ=કુલમેં સયા=હમેશા જાવે. (૨શ્રુ ૧અ ૨૮.) આચારાદ્મૂત્રમેંવતાયે હુઅ સવ કુલોમેં ભિક્ષાકે લિઅ જાવે

‘અણુન્ન’ ઔર ‘નાવણ’ ઇન દો પદોસે ઈર્યાકી યતના, અહ ઙ્કારકા પરિહાર ઔર દીનતાકા ત્યાગ સૂચિત કિયા હૈ । ‘અપ્પહિદ્વે’ પદસે મધ્યસ્થતા પ્રગટ કી હૈ । ‘અણાઉલે’ પદસે સાધુકી રસલોલુપતાકા નિરાકરણ કિયા હૈ । ‘જહામાગ’ પદસે યહ પ્રદર્શિત કિયા હૈ કિ જહાં જિસ ઇન્દ્રિયકા વિષય ઉપસ્થિત હો વહાં ઉસકા દમન કરના હી વાસ્તવમે ઇન્દ્રિયદમન કહલાતા હૈ, કિન્તુ ચક્ષુઃઇન્દ્રિયકા વિષય ઉપસ્થિત હોનેપર યદિ કાન મૂંદ લિઅ જાયૈં તો ઇન્દ્રિય દમન નહીં કહલા સકતા, ઇત્યાદિ ॥૧૩॥

અણુન્ન અને નારણ એ બે શબ્દોથી ઈર્યાની યતના અહ કારનો પરિ હાર અને દીનતાનો ત્યાગ સૂચિત કર્યો છે અપ્પહિદ્વે શબ્દથી મધ્યસ્થતા પ્રગટ કરી છે અણાઉલે શબ્દથી સાધુની રસલોલુપતાનું નિરાકરણ કર્યું છે જહામાગ શબ્દથી એમ પ્રદર્શિત કર્યું છે કે જ્યાં જે ઈન્દ્રિયનો વિષય ઉપસ્થિત હોય ત્યાં તેનું દમન કરવું એજ વસ્તુત ઈન્દ્રિયદમન કહેવાય છે, કિન્તુ ચક્ષુ ઈન્દ્રિયનો વિષય ઉપસ્થિત થતાં જે કાન સંકેતવામા આવે તો તે ઈન્દ્રિયદમન કહેવાતું નથી ઈત્યાદિ (૧૩)

अर्थात् जिस समय जिस देशमें जो कुल दुगुलित न हो उन सब कुलोमें गोचरी जावे, साधुको चाहिए कि ईर्यासमिति सोधता हुआ रागद्वेषरहित होकर भिक्षाके लिए विचरे ॥१४॥

टीका—गोचरे=भिक्षाया भिक्षार्थमित्यर्थः, द्रुतद्रुतस्य=शीघ्र-शीघ्रम् 'द्वदवे' त्यस्याव्ययत्वेऽप्यार्पत्वात्सविभक्तिरुत्वम्, यद्वा क्रियाविशेषणत्वेन द्वितीयान्त-त्वाच्चित्येऽप्यार्पत्वात्पृष्ठयन्तत्वम्, न गच्छेत्=न यायात् । भापमाणः=सलपन च=तथा हसन=हास्य कुर्वन् नाभिगच्छेत् । उच्चावचम्=उदक् च अवाक् च इत्यु-च्चावचम्-( 'मयूरव्यसकादयश्च ' (२१।७२) इति निपातनात्समासः सिद्धिश्च ) उच्चनीचात्मरुमनेरुविधमित्यर्थः । 'उच्चावच नैरुभेद'-मित्यमरः । कुल=गृहम् । तत्र द्रव्यत उच्चगृह-सप्तभूमिन्प्रासादादिन्म्, शरदशशाङ्क यनसार-हार-नीहार कुन्दा-वदात्समुद्योज्ज्वलहर्म्यादिर्क मुत्तुन्नतोरणादिर्क च । भावत उच्चगृह-धनधान्यादि-

१ धातूपात्तभावना प्रति फलाशस्य रुमीभूततया फलसामानाधिकरण्ये द्वितीया ।  
२ 'कुल जनपदे गोत्रे, सजातीयगणेऽपि च । भवने च तनी क्लीव'-मिति मेदिनी ॥

'द्वदवस्स०' इत्यादि । साधु गोचरीके लिए जलद्वीर (दडगडर) न चले । यातर्चीत करता हुआ, तथा हँसता हुआ भी गमन न करे । उच्चनीच अर्थात् धनवान् और निर्धन आदिके कुलोमें सदा भिक्षाके लिए जावे ।

उच्च कुल दो प्रकारका है—(१) द्रव्यसे उच्च और (२) भावसे उच्च । (१) सतमजिला आदि, शरदऋतुके चन्द्रमा, कपूर, हार, बर्फ, या कुन्द पुष्पके समान स्वच्छ, कलई (चूना) पोतनेसे जगमगाता हुआ, और जिसका फाट रु खून ऊंचा हो ऐसे महल आदि द्रव्य-उच्च कहलाते हैं ।

(२) धन-धान्यरूपी सम्पत्तिसे समृद्ध कुल भावसे उच्च कहलाता है । नीचा कुल भी दो प्रकारका है—

द्वदवस्स० इत्यादि साधु गोचरीने भाटे उतावणो उतावणो न थावे वात थीत क्तो के डसतो डसतो पणु न थावे उच्च नीच अर्थात् धनवान् निर्धन आदिना कुणोभा सदा भिक्षाने भाटे नय

उच्चकुल के प्रकारना छे (१) द्रव्यथी उच्च अने (२) भावथी उच्च (१) सात मजला डोय, शरदऋतुने यद्रमा कपूर, (मोतीना) हार, णरई या कुदपुष्पनी पठे च्च (स्वेत) डोय, यूने धोणवाथी जगमगता डोय अने नेनु शरद पूण उच्च डोय येयो मडेव आदि द्रव्य-उच्च कडेवाय छे (२) धन-धान्यरूपी सम्पत्तिथी समृद्ध कुण भावथी उच्च कडेवाय छे नीचकुण पणु के प्रकारना डोय छे—



सम्पदा समृद्धम् । द्रव्यतो नीचगृह-धनधान्यादिरहित दृष्टिगृहम्, सदा=सर्वदा  
अभिगन्त्रेत्=गरेत् ।

अथवा उच्चावचशब्देन उग्रकुलादीनि गृह्यन्ते, तथाहि—

‘उग्नकुलाणि वा भोगकुलाणि वा राइन्नकुलाणि वा रत्तियकुलाणि वा  
इक्खागकुलाणि वा हरिसकुलाणि वा षसियकुलाणि वा रेसियकुलाणि वा  
गडागकुलाणि वा कोट्टागकुलाणि वा गामस्वरकुलाणि वा तुकासकुलाणि वा  
अन्नयरेसु वा तहपगारेसु कुलेसु अद्दुगुच्छिएसु अगर्हिएसु असण वा ४ फाम्पय  
जाव पडिगाहिज्जा (सू. ११- आचाराद्ग २ श्रु० १ अ. २ ड) ।

अत्र ‘अद्दुगुच्छिएसु’ ‘अगर्हिएसु’ इति पदाभ्या यस्मिन् समये यत्कुल  
मज्जुगुप्सितमगर्हित भवेत्तदा तस्मिन्नेव कुले गन्तव्यमिति बोध्यते ।

अत्र ‘द्वदवस्से’-त्यादिना पट्कायरक्षणविचक्षणता समाख्याता ।

(१) द्रव्यसे नीचा, और (२) भावसे नीचा ।

(१) चास, लफ़डी, घास, फूससे घनेहुए झोंपडेको द्रव्यसे नीचा  
कहते हैं । (२) धन-धान्य आदि संपत्तिसे रहित निर्धनके कुलको भावसे  
नीचा कहते हैं । इन सब प्रकारके घरोंमें साधु भिक्षाके लिए जावे ।

अथवा ‘उच्चावच’ शब्दसे उग्रकुलादि समझ लेना चाहिए । वे  
चारह प्रकारके कुल आचाराग सूत्रमें (२श्रु०१अ०२उ०सू ११मे) भगवानने  
कहे हैं । आचाराग सूत्रमे आये हुए ‘अद्दुगुच्छिए’ और ‘अगर्हिए’  
पदसे यह सूचित किया है कि जिस देश और जिस समयमे जो  
कुल अनिन्दित और अगर्हित हो उसमें मुनि, भिक्षाके लिए जावे ।

यहा ‘द्वदवस्स’ इत्यादि पदसे पट्कायकी रक्षामे सावधानी  
प्रगट की है ।

(१) द्रव्यथी नीच्यु अने (२) भावथी नीच्यु (१) चास, लाकडा, घास-पाहडथी  
गनेला अुपडाने द्रव्यथी नीच्यु कडे छे (२) धनधान्यादि संपत्तिथी रहित निर्धनना  
कुणने भावथी नीच्यु कडे छे अे सर्व प्रकारना घरोगा साधु भिक्षाने भाटे न्यथ

अथवा उच्चावच शब्दथी उग्रकुलादि समञ्च लेवा न्नेछअे अे गार प्रकारना कुणो  
आचाराग सूत्रमा (२श्रु०१अ २उ सू०११मा) भगवाने कहे छे आचाराग सूत्रमा आवेला  
अद्दुगुच्छिए अने अगर्हिए शब्दोथी अेभ सूचित क्युं छे के न्ने देश अने न्ने  
समयमा न्ने कुल अनिन्दित अने अगर्हित होय तेमा मुनि भिक्षाने भाटे न्यथ

अर्थात् द्वदवस्स्य इत्यादि शब्दोथी पट्कायनी रक्षामा सावधानी प्रकट करी छे

‘भासमाणो’ पदेनैकस्मिन् समये कार्यद्वय सोपयोग निष्पत्तु न सम्भतीति, ‘हसतो’ इत्यनेन गाम्भीर्यम्, ‘उच्चावच०’ इत्यादिना प्रतिबन्धराहित्य समतासाहित्य च द्योतितम् ॥१४॥

मूलम्-आलो<sup>३</sup>अं थि<sup>३</sup>गगलं दारं<sup>४</sup>, सर्धिं<sup>५</sup> दगभवणाणि यं<sup>७</sup> ।

चरंतो न विणिज्झाए, सकट्टाण विवज्जाए ॥१५॥

उाया—आलोक थिगगल द्वार, सर्धिं दकभवनानि च ।

चरन् न विनिर्घ्यायेत्, शङ्कास्थान विवर्जयेत् ॥१५॥

सान्त्वयार्थः—चरतो=भिक्षाके लिए धूमता हुआ साधु आलोय=जाली-झरोखेकी तरफ थिगगल=ईंट आदिसे भरे हुए भीतके छिद्रकी तरफ दार=दरवाजेकी तरफ सर्धिं=भीतकी सायकी तरफ अथवा चोरोद्वारा किये हुए भीतके छेदकी तरफ य=तथा दगभवणाणि=पलेण्डा आदिकी तरफ न विणिज्झाए=टक टकी लगाकर नहीं देखे, (क्योंकि ये सब) सकट्टाण=शङ्काके स्थान हैं, (इसलिए इन्हें) विवज्जाए=विशेषरूपसे त्यागे । भावार्थ=ऐसे स्थानोंको देखनेसे गृहस्थको साधुके प्रति चोर लम्पट आदिका सन्देह उत्पन्न हो जाता है, तथा एपणाकी ययोचित शुद्धि भी नहीं होती ॥१५॥

टीका—‘आलोअ०’ इत्यादि । चरन्=भिक्षितु गच्छन् मुनिः आलोक=वातायनजालिकाप्रभृति, थिगगल=देशीयभाषया प्रसिद्ध भित्त्यामिष्टकादिरचितम्,

‘भासमाणो’ पदसे यह प्रगट किया है कि एक ही साथ दो कार्य उपयोगपूर्वक नहीं हो सकते । ‘हसतो’ पदसे गभीरता द्योतित की है और ‘उच्चावच०’ इत्यादि पदसे प्रतिबन्ध (नेसराय)-रहितता और समतासे सहितता प्रगट की है ॥१४॥

‘आलोय०’ इत्यादि । भिक्षा लेनेके निमित्त गमन करता हुआ मुनि झरोखा, जाली, भीत, दरवाजा, सेंध (चोरों द्वारा दीवार में किया

भासमाणो शब्दथी अथ प्रकट कर्तुं छे डे अेडीखाये के कार्ये उपयोगपूर्वक थथ शकता नथी हसतो शब्दथी गभीरता प्रकट करी छे अने उच्चावच इत्यादि शब्दथी प्रतिबन्ध (नेसराय) रहितता अने समताथी सहितता प्रकट करी छे (१४)

आलोय इत्यादि भिक्षाने भाटे गमन करतो मुनि अडेणो, वण्णी, वीत्त, दरवाजे, चोरे पाडेणु णाडु (मातरीयाथी पाडेणु णाडेइ) अने उदकसवन अर्थात्

द्वार=विबरम्, सन्धि=तस्करादिखातमितिभाग दकभवनानि=जलस्थानानि, 'वे'  
ति समुच्चये, न=नैव त्रिनिर्णयेत्=समिश्रेण त्रिकोकेत् । यत एतानि (आलो-  
कादीनि) शङ्कास्थानानि=साधोराचारिण्ययसन्देहोत्पादस्थानानि, सूत्रे  
जातावेकचनम्, अतस्तानि त्रिवर्जयेत्=त्रिशेषेण परित्यजेत् ॥१५॥

मूलम्—रत्नो<sup>१</sup> गिहवर्द्धणं<sup>२</sup> च, रहस्सारस्त्रियाण<sup>३</sup> च ।

सकिलेसकर<sup>४</sup> ठाण<sup>५</sup>, दूरओ<sup>६</sup> परिवर्जण<sup>७</sup> ॥ १६ ॥

छाया—राज्ञो गृहपतीना च, रहस्यमारक्षकाणा च ।

सकेशकर स्थान, दूरतः परिवर्जयेत् ॥१६॥

सान्वयार्थः—रत्नो=चक्रवर्ती आदि राजा महाराजाओंके च=तथा गिह  
वर्द्धण=शेठ आदि सद्गृहस्थोंके च=और आरक्त्रियाण=नगरके रक्षक-कोतवाल  
आदिके रहस्स=सलाह करनेके एकान्त स्थानको (साधु) दूरओ=दूरहीसे परि-  
चर्जण=त्यागे; (क्योंकि ऐसे) ठाणं=स्थान सकिलेसकर=असमाधिको पैदा  
करनेवाले होते हैं । भावार्थ=राजा आदिकोंके एकान्त स्थानकी तर्फ देखनेसे  
अथवा वहा जानेसे उनको साधुके प्रति क्रोध अथवा द्रोह आदि अनेक दोषोंकी  
सभावना है ॥१६॥

टीकाः—'रत्नो' इत्यादि । राज्ञः=चक्रवर्द्धचक्रिप्रभृतेः, गृहपतीना=गृहस्वा-  
मिना श्रेष्ठ्यादीनाम् आरक्षकाणा=नगररक्षिणा च रहस्य=रहसि=एकान्ते भव

हुआ छेद-सन्धि) और उदकभवन अर्थात् परेडा आदि की तरफ दृष्टि  
न डाले, क्योंकि ये शकास्थान हैं, इनकी ओर देखनेसे लोगोंको साधुके  
चारित्र्यमें सन्देह उत्पन्न होता है, अतएव इन शकास्थानोंका विशेष  
रूपसे परित्याग करना चाहिए ॥१६॥

'रत्नो' इत्यादि । जिस एकान्त भवनमें चक्रवर्ती, अर्द्धचक्री,  
माण्डलिक आदि राजा, श्रेष्ठी (शेठ) आदि गृहस्थ और नगरकी रक्षा

पाएँगीआरानी तरफ दृष्टि न नाये, कारण के ये जथा शकास्थानो छे तेनी तरफ  
नेवाथी लोकेने साधुना अत्रिभा सदेह उत्पन्न थाय छे तेथी ये शकास्थानोना  
विशेषरूपे परित्याग करये (१५)

रत्नो० इत्यादि, जे एकान्त भवनमा अर्द्धचक्री, अर्द्धचक्री, माण्डलिक आदि  
राजा, श्रेष्ठी (शेठ) आदि गृहस्थ अने नगरनी रक्षा करनारा (काटवाण) वगेरे सलाह

रहस्य=मन्त्रगृहम्, सक्लेशकरम्=असमाधिजनक स्थान हेतुगर्भमिद विशेषण तथा च सक्लेशकरत्वादित्यर्थः, दूरतः परिवर्जयेत्=सर्वथा सत्यजेत् ॥१६॥

१ २ ३ ४ ५ ६  
मूलम्-पडिकुट्टं कुलं न पविसे, मामग परिवज्जए ।

७ ८ ९ १० ११ १३ १२  
अचियत्तं कुल न पविसे, चियत्तं पविसे कुल ॥१७॥

छाया—प्रतिकुट्ट कुल न पविशेत्, मामक परिवर्जयेत् ।

अचियत्त कुल न पविशेत्, चियत्त पविशेत्कुलम् ॥१७॥

सान्त्वयार्थः—पडिकुट्ट=शास्त्रनिषिद्ध कुल=कुल घर-में न पविसे=प्रवेश नहीं करे, मामग=कृपणके परको परिवज्जए=वरजे-नही जावे, अचियत्तं=प्रतीतिरहित अथवा प्रीतिरहित कुल=कुल घर-में न पविसे=प्रवेश न करे, (किन्तु) चियत्त=प्रतीति और प्रीतिवाले कुल=घरमें पविसे=प्रवेश करे ॥१७॥

टीका—‘पडिकुट्ट’ इत्यादि । प्रतिकुट्ट=निषिद्ध, कुल=गृह न पविशेत्, मामक=‘मा मदीय गृह श्रमणा’ प्रविशन्तु’-इति प्रतिषेधकारिणो गृह तथा-सामयिकन्याख्यादर्शनात्, परिवर्जयेत् । अचियत्त=देशीयशब्दोऽयम् अप्रीतिपत्, यत्र साधुप्रवेशेन गृहिणामप्रीतिर्भवेत् तत्, अप्रीतिमद्वा अविश्वस्तमित्यर्थः, यत्र गमनेन परेषा साधुविषयेऽप्यविश्वासी भवेत्, तादृश कुल न पविशेत्,

करनेवाले (कोटवाल) आदि सलाह करते हैं उस भवन को दूरहीसे त्यागे, क्योंकि ऐसे स्थान असमाधिको उत्पन्न करनेवाले होते हैं ॥१६॥

‘पडिकुट्ट’ इत्यादि । शास्त्रोंमें निषेध किये हुए घर में साधु प्रवेश न करे । जिसने अपने घरमें आनेका निषेध कर दिया हो कि ‘श्रमण निर्ग्रन्थ हमारे घर पर न आवें’ उन घरोंका भी साधु त्याग करे । साधु के प्रवेश करनेसे जिस घरवालेको अप्रीति उत्पन्न हो, या जिस कुलमें विश्वास न हो ऐसे कुलमें भी प्रवेश न करे, क्योंकि इससे

(भद्रा) करता होय, ये लवनने भुनि दूरथी व त्यागे, कारणु डे जेवा स्थाने असमाधिने उत्पन्न करवावाजा होय छे (१६)

पडिकुट्ट इत्यादि शास्त्रोभा निषेध करैला गृहमा साधु प्रवेश न करे जेछे पोताना घरमा आववानो निषेध कुर्यो होय डे ‘श्रमण निर्ग्रन्थे अमारा घरमा आववु नडि’ जेवा धरैलो पणु साधु त्याग करै साधुजे प्रवेश करवाथी जे घरवाजान अप्रीति उत्पन्न थाय, या जे कुलमा विश्वास न होय जेवा कुलमा पणु साधु प्रवेश न करै, कारणु डे जेथी साधुपरथी भीज्जजेनो पणु विश्वास

गृहस्थाना समच्छेदासम्भवात् । नन्वेव तर्हि कुत्र मरिशेत्तदाह-चियत्त=प्रीतिमद  
मतीतिमद्वा कुल मरिशेत् ॥१७॥

मूलम्-साणीपावारपिहियं, अप्पणा नवपंगुरे ।

कवाड नोपणुल्लिज्जा, उग्गहं सि अजाइया ॥१८॥

छाया—शाणी-प्रावारपिहितम् आत्मना नाऽपट्टणुयात् ।

कपाट नो मणुदेत्, अग्रह तस्याऽयाचित्वा ॥१८॥

सान्वयार्थः-सि (से)=उस गृहस्वामी की उग्गह=आज्ञा अजाइया=  
लिये विना साणीपावारपिहियं=सन आदिके बने हुए परदेसे ढके हुए घरको  
अप्पणा=साधु खुद नावपगुरे=नहीं खोले, (तथा) कवाडं=किवाडको भी नोप-  
णुल्लिज्जा=नहीं उघाडे, तात्पर्य यह है कि गृहस्वामीको पूछकर ही उघाडना  
चाहिए ॥१८॥

टीका—‘साणीपावार०’ इत्यादि । तस्य=गृहस्वामिनः अवग्रह=निदेशम्,  
अयाचित्वा=अगृहीत्वा आज्ञामन्तरेणेत्यर्थः, शाणीप्रावारपिहितं=शाणी=शणवल्कल-  
निर्मितजवनिका, प्रावारः=ऊर्णादिरचितकम्बलादिस्ताभ्या पिहितम्=आवृतम्,  
यद्वा शणीप्रावारेण=शणरचितपरदया<sup>१</sup> स्थगित ‘द्वार’-मितिशेषः, आत्मना=स्व  
यम् न अपवृणुयात्=नापसारयेत् । तथा कपाटम्=अररम् ‘किवाडे’-ति भाषाप्रसिद्ध  
नो मणुदेद्=न प्रेरयेत् नोद्घाटयेदित्यर्थः, तदुद्घाटनस्य स्नानभोजनादिसमासक्ताना

१ परदा-परान्=परपुरुषान् दर्शनादानेन घृति=खण्डयतीति परदा ।

दूसरोंका साधुपरसे भी विश्वास हट जाता है । साधु उस घरमे प्रवेश  
करे जिसमें प्रवेश करनेसे गृहस्थको प्रीति और विश्वास हो ॥१७॥

‘साणीपावार’ इत्यादि । गृहस्वामीकी आज्ञा लिये विना  
दृष्ट या कम्बल आदि किसी वस्तुसे ढके हुए या सनके परदासे  
बद द्वारको तथा किवाडको स्वयं न खोले, क्योंकि ऐसा करना स्नानादि

छड़ी नय छे साधु अे घरमा प्रवेश करे के अेमा प्रवेश करवाथी गृहस्थने  
प्रीति अने विश्वास उपजे (१७)

साणीपावार० धत्यादि गृहस्वामीनी आज्ञा लीधा विना टाट या काणणी  
आदि केअ परतुथी ढकेलु या सधुना पडहाथी नध करेलु अेलु द्वार तथा  
कवाड, साधु पोते न जोडे, कारणु के अेम करलु अे नानाहि करती श्री आदिने

स्यादीनामप्रतीतिकारणत्वात्, तादृशव्यवहारानौचित्याच्च, तस्मादावश्यकताया  
तस्स्वामिन पृष्ठैवोद्धाटयेदिति भावः ॥१८॥

मूलम्—गो<sup>१</sup>यर<sup>२</sup>ग्ग<sup>३</sup>प<sup>४</sup>विट्टो य, वच्च<sup>३</sup>-मुत्त<sup>४</sup> न धार<sup>५</sup>ए ।

ओ<sup>६</sup>गासं<sup>७</sup> फा<sup>८</sup>सुअं<sup>९</sup> नच्चा, अणु<sup>६</sup>न्नविअ<sup>७</sup> वो<sup>८</sup>सिरे<sup>९</sup> ॥१९॥

छाया—गोचराग्रप्रविष्टिश्च, वर्चो—मूत्र न धारयेत् ।

अवकाश प्राप्तक ज्ञात्वा, अनुज्ञाप्य व्युत्सृजेत् ॥१९॥

सान्त्वयार्थः—गोयरग्गपविट्टो=गोचरीमें गया हुआ मुनिवच्च-मुत्त=मल और  
मूत्रको न धारए=नहीं रोके अर्थात् मल-मूत्र-की वाग उपस्थित होनेपर उनके  
वेगका अवरोध न करे, (किन्तु) फासुय=प्राथम्य-जीवरहित ओगास=स्थण्डिल-  
भूमिको नच्चा=जानकर अणुन्नविअ=गृहस्थकी आज्ञा लेकर वोसिरे=मल मूत्रका  
त्याग करे ॥१९॥

टीका—‘गोयरग्ग०’ इत्यादि । पूर्वं निवृत्तवागोऽपि गोचराग्रप्रविट्टो मुनिः  
पुनस्तद्वाघायामुपस्थिताया वर्चो-मूत्र=मल प्रस्राव च न धारयेत्=नावरुन्ध्यात् ।  
यत उक्तम्—

“जओ मुत्तनिरोहे चक्खुवपाओ भवति, वचनिरोहे जीविओवपाओ

करती हुई स्त्री आदिको अप्रतीतिका कारण है, तथा लोकव्यवहारसे भी  
अनुचित है, अतः आवश्यकता होने पर उसके स्वामीको पूछ करके ही  
किचाड परदा आदि खोलना चाहिए ॥१८॥

‘गोयरग्ग०’ इत्यादि । गोचरी जानेके पहले लघुनीत और  
वडीनीतकी शकाको निवृत्त करलेने पर भी यदि गोचरीके लिए चले  
जाने पर पुनः लघुशका आदि की शका होजाय तो मल-मूत्र को रोके नहीं,  
क्योंकि कहा है—

“मूत्रके निरोध करने से नेत्रोंको हानि होती है और मलका

अप्रतीतिनु काल्प गने छे, तथा लोकव्यवहारयी पणु अनुचित उ तेथी नइर  
पडता तेना न्वाभीने पूछी लजने न उभाड पडहे आदि जोलवा लेधये (१८)

गोयरग्ग० इत्यादि गोचरीमें न्वा पडेता लघुनीति अने वडीनीतिनी  
शजने निवृत्त करवा छता पणु जे गोचरी भाटे नीकणी गया पडी दरी लघु  
शका आदिनी शज शर्ध नय ते भण भूने शिवा नडि, काल्प डे कथु छे डे—

‘मूत्रने निरोध करवाथी नेत्रने हानी थाय छे अने भजने निरोध करवाथी

गृहस्थाना सकलेशसभवात् । नन्वेय तर्हि कुत्र प्रविशेतदाह-चियत्त=मीतिमत्  
प्रतीतिमद्वा कुल प्रविशेत् ॥१७॥

मूलम्-साणीपावारपिहियं, अप्पणा नवपंगुरे ।

कवाडं नोपणुल्लिज्जा, उग्गहं सि अजाइया ॥१८॥

छाया-शाणी प्रावारपिहितम् आत्मना नाऽपगृणुयात् ।

कपाट नो मणुदेत्, अवग्रह तस्याऽयाचित्वा ॥१८॥

सान्वयार्थः-सि(से)=उस गृहस्वामी की उग्गह=आज्ञा अजाइया=  
लिये बिना साणीपावारपिहिय=सन आदिके बने हुए परदेसे ढके हुए घरको  
अप्पणा=साधु खुद नावपगुरे=नहीं खोले, (तथा) कवाड=किवाडको भी नोप-  
णुल्लिज्जा=नहीं उघाडे, तात्पर्य यह है कि गृहस्वामीको पूछकर ही उघाडना  
चाहिए ॥१८॥

टीका-‘साणीपावार०’ इत्यादि । तस्य=गृहस्वामिनः अवग्रह=निदेशम्,  
अयाचित्वा=अगृहीत्वा आज्ञामन्तरेणेत्यर्थः, शाणीपावारपिहित=शाणी=शणवलकल-  
निर्मितजवनिका, पावारः=ऊर्णादिरचितरुम्बलादिस्ताभ्या पिहितम्=आवृतम्,  
यद्वा शाणीपावारेण=शणरचितपरदया<sup>१</sup> स्थगित ‘द्वार’-मितिशेषः, आत्मना=स्व-  
यम् न अपवृणुयात्=नापसारयेत् । तथा कपाटम्=अररम् ‘किवाडे’ ति भाषाप्रसिद्ध  
नो मणुदेद्=न प्रेरयेत् नोद्घाटयेदित्यर्थः, तद्दुद्घाटनस्य स्नानभोजनादिसमासक्ताना

१ परदा-परान्=परपुरुषान् दर्शनादानेन घति=खण्डयतीति परदा ।

दूसरोंका साधुपरसे भी विश्वास हट जाता है । साधु उस घरमें प्रवेश  
करे जिसमें प्रवेश करनेसे गृहस्थको प्रीति और विश्वास हो ॥१७॥

‘साणीपावार’ इत्यादि । गृहस्वामीकी आज्ञा लिये बिना  
दर्र या कम्बल आदि किसी वस्तुसे ढँके हुए या सनके परदासे  
बद द्वारको तथा किवाडको स्वयं न खोले, क्योंकि ऐसा करना स्नानादि

हुडी नथ छे साधु अे घरमा प्रवेश करे के जेमा प्रवेश करवाधी गृहस्थने  
प्रीति अने विश्वास उपजे (१७)

साणीपावार० इत्यादि गृहस्वामीनी आज्ञा दीधा बिना टाट या काणणी  
आदि ढाँध वस्तुथी ढाकेलु या सधुना पडडावां णध करेलु अेलु द्वार तथा  
कवाड, साधु पोते न भोवे, कारणु के अेभ करवुं अे स्नानादि करती अी आदिने

नेत्याह-यत्र=यस्मिन् कोष्ठकादौ, अचक्षुर्विषयः=अत्र 'अ' 'चक्षुर्विषयः' इति पृथक् पदद्वय, तत्र 'अ' इति निपातो नवर्थकः 'अभावे नद्य-ऽ-नो-नाऽपी'-त्यमरात्, तथाच-चक्षुर्विषयः=चक्षुरिन्द्रियजन्यव्यापारप्रसरः अ=न भवेदिति शेषः, ततः क्रिमित्याह=प्राणाः=द्वीन्द्रियादयः दुष्प्रतिलेखकाः=दुर्निरीक्ष्या'भ्रमन्ती'-ति शेषः, तत्र भिक्षा गृह्यतः साधोरीर्यै-पणयोः शुद्धिर्न जायते ॥२०॥

१ ३ ४ ५ २  
मूलम्-जत्थ पुष्पाङ्गं वीयाङ्गं, विष्पङ्गनाङ्गं कुट्टणं ।

६ ७ ८ ९ १०  
अहुणोवलित्तं उल्लं, ददूणं परिवज्जणं ॥ २१ ॥

छाया—यत्र पुष्पाणि बीजानि, विप्रकीर्णानि कोष्ठके ।

अधुनोपलिप्तमाद्रीं, दृष्ट्वा परिवर्जयेत् ॥२१॥

सान्वयार्थः—जत्थ=जिस कुट्टणं=कोठेमें पुष्पाङ्गं=फूल (और) वीयाङ्गं=बीज विष्पङ्गनाङ्गं=विखरे हुए हों उस कोठेको, तथा अहुणोवलित्तं=दूरन्तके लिये हुए उल्लं=गीले कोठेको ददूणं=देखकर परिवज्जणं=वरजे ॥२१॥

टीका—'जत्थ' इत्यादि । यत्र कोष्ठके गृहे वा सचित्तानि पुष्पाणि बीजानि वा विप्रकीर्णानि=इतस्ततः प्रसृतानि भवेयुः, यद्वा तत्काललिप्तमत एवाद्रीं कोष्ठकादि तत् साधुः परिवर्जयेत्=तत्र न गच्छेदित्यर्थः ॥२१॥

ग्रहण न करे । तात्पर्य यह है कि जिस कोठेमें अन्धकारके कारण नेत्रोंकी प्रवृत्ति न होती हो, और इसीलिए द्वीन्द्रिय प्राणी सरलतासे दिखाई न देते हों उसमें भिक्षा लेनेसे ईर्ष्या और एषणा की शुद्धि नहीं होती ॥२०॥

'जत्थ पुष्पाङ्गं इत्यादि । जिस कोठे आदिमें सचित्त पुष्प सचित्त बीज विखरे हुए हों, तथा तत्काल लिपनेसे जो गीला हो उस कोठे या अन्य-गृह आदिमें प्रवेश न करे ॥२१॥

छे डे ने औरअभा अधकारने कारणे नेत्रे काम न करी शकता होय अने तेथी वरीने द्वीन्द्रियादि प्राणी सहेलाधथी न नेज शकता होय तेमा भिक्षा लेवाथी साधुनी धर्या तथा अेषणाणी शुद्धि न्णवाती नथी (२०)

जत्थ पुष्पाङ्गं इत्यादि ने औरअ आदिमा सचित्त पुष्प सचित्त बीज वेरायला होय तथा तत्काल लिपवाभा आन्धे होवाथी वीक्षे होय ते औरअभा या गृहादिमा प्रवेश न करये (२१)



અસોહ્ણા ય આપત્રિરાહ્ણા ઇત્યાદિ ।

નન્વેવ તર્હિ કિં કુર્યાત્ ? ઇત્યાહ-પ્રામુઠ્ઠુ=નિર્જન્ટુઠ્ઠુ નિરવત્રમિત્યર્થઃ, અવ-  
કાશ=સ્થણ્ડિલ જ્ઞાત્વા, અનુજ્ઞાપ્ય=ગૃહસ્થ સમૂચ્ય તદાજ્ઞામાદાયેત્યર્થઃ, વ્યુત્પ્રજેત્=  
પરિત્યજેત્ ॥૧૧॥

મૂલમ્-<sup>૧</sup>ળીયદુ<sup>૨</sup>વાર<sup>૩</sup> તમસં<sup>૪</sup> કુટ્ટગં<sup>૫</sup> પરિવજ્જણ<sup>૬</sup> ।

અચમ્બુવિસઓ<sup>૭</sup> જત્થ<sup>૮</sup>, પાણા<sup>૯</sup> દુપ્પડિલેહગા<sup>૧૦</sup> ॥૨૦॥

છાયા—નીચદ્વાર તામસ, કોષ્ઠઠ્ઠુ પરિવર્જયેત્ ।

અચક્ષુર્વિપયો યત્ર, પ્રાણાઃ દુપ્પતિલેખકાઃ ॥૨૦॥

સાન્વયાર્થઃ—ળીયદુવાર=નીચે દ્વારવાલે તમસ=પ્રકાશરહિત કુટ્ટગં=કોઠેકો  
પરિવજ્જણ=વ્રજે અર્થાત્ વહા આહાર-પાની નહી લેવે, ક્યોકિ જત્થ=જહા  
અચમ્બુવિસઓ=આંઘ્રકા પ્રસાર નહીં હોતા (વહા) પાણા=દ્વીન્દ્રિય આદિ  
પ્રાણિયોકા દુપ્પડિલેહગા=પતિલેખન નહી હો સક્રતા ॥૨૦॥

ટીકા—‘ળીયદુવાર૦’ ઇત્યાદિ । નીચદ્વાર=નીચ=નિમ્ન દ્વાર=પ્રવેશ-નિર્ગમ-  
માર્ગો યસ્ય સ ત તથોક્તમ્, તાદૃશપ્રદેશે પ્રવેશ-નિર્ગમાભ્યામાત્મસયમવિરાધનાયાઃ  
સમ્ભવાત્, તામસમ્=તમોયુક્તમપ્રકાશમિત્યર્થઃ, કોષ્ઠઠ્ઠુ=ગૃહાભ્યન્તરમપવરકાદિક  
પરિવર્જયેત્ ન તત્રાઽઽહારાદિક ગૃહ્ણીયાદિત્યર્થઃ । કિં સામાન્યેનાય નિષેધઃ ?

નિરોધ કરને સે જીવન કો હાનિ પટ્ટુચતી હૈ, તયા વુરી તરહ આત્મ-  
વિરાધના હોતી હૈ ।”

તો કયા કરે સો વતાતે હૈ—જીવરહિત ( નિરવચ ) સ્થાન દેઘકર  
ગૃહસ્થકી આજ્ઞા લેકર ઉસ સ્થાનમે મલ મૂત્રકા ત્યાગ કરે ॥૧૧॥

‘ ળીયદુવાર૦ ’ ઇત્યાદિ । નીચે દ્વારવાલે કોઠેમે ભિક્ષાકે લિણ  
નહી જાના ચાહિયે, ક્યોકિ ઉસમે જાને આનેસે આત્મા ઓર સયમકી  
વિરાધનાકા સમ્ભવ હૈ । તથા અન્ધકારયુક્ત કોઠેમે ભી આહાર આદિ

છવનને હાનિ પહોચે છે, અને ખરાણ રીતે આત્મવિરાધના થાય છે,  
તો શુ કરવુ, તે હવે બતાવે છે—છવરહિત ( નિરવચ ) સ્થાન જોધને  
ગૃહસ્થની આજ્ઞા લધને એ સ્થાનમા મળ મૂત્રને ત્યાગ કરે (૧૯)

ળીયદુવાર ઈત્યાદિ નીચા દ્વારવાળા ઓરડામા ભિક્ષાને માટે ન જવું,  
કારણ કે તેમા જ્યા આવવાથી આત્મા અને સયમની વિરાધતાને સભવ છે  
તથા અધકારયુક્ત ઓરડામા પણ આહાર આદિ થહણ ન કરવા, તાત્પર્ય એ

प्रलोकेत=पश्येत्, अन्यथा रागादिसम्भवात् । अतिदूर=दातुरागमनप्रदेगात्पर  
नावलोकेत, सार्धौ तस्करतादिशङ्कासमवात् । उत्फुल्ल=स्मेर यथा स्यात्तथा नेत्रे  
विस्फार्येत्यर्थः न विनिर्ज्यायेत्=न पश्येत् । रुदाचिद्धिक्षाया अन्नाभे अजल्पन्=  
दैन्योपालम्भवचनानि अद्रुवन् निवर्त्तेत्=प्रत्यावर्त्तेत् ।

‘अससत्त’ इति पदेन दृष्टचनुरागोऽपाकृतः । ‘नाइदूरा०’ इत्यादिना सार्धौ  
चौरत्वाग्राशङ्का निराकृता । ‘उत्फुल्ल०’ इत्यादिना, वराकेणानेन साधुना नाव-  
लोकितो नाप्यनुभूत एतादृशो विभवोऽतोऽय दीनः’ इत्याग्राशङ्का व्युदस्ता ॥२३॥

मूलम्-अडभूमिं न गच्छिज्जा, गोयरग्गओ मुणी ।

कुलस्स भूमि जाणित्ता, मिय भूमिं परक्कमे ॥२४॥

अवलोकन न करे । दाता जिस स्थानसे आता हो उस स्थानसे ज्यादा  
दूर न देखे, क्योंकि दूर तक देखनेसे किसीको ऐसी शका हो जाय  
कि ‘यह चोर है’ इत्यादि । किसी पदार्थकी ओर आखें फाड़-फाड़  
कर न देखे । यदि भिक्षाकी प्राप्ति न हो तो दीन वचन न बोले-न  
बडबडावे, किन्तु मौनसहित पीछा फिर जावे ।

‘अससत्त’ पदसे नेत्रविषयक अनुराग का त्याग प्रगट किया है ।  
‘नाइदूरा०’ इत्यादि पदसे यह सूचित किया है कि साधुको ऐसा  
आचरण करना चाहिए जिससे किसीको चोर आदि होनेका सन्देह न हो ।  
‘उत्फुल्ल०’ इत्यादि पदसे इस सन्देह को दूर किया है कि कोई यह  
न समझे कि-‘अरे! इस बेचारे साधुने ऐसी विभूति न कभी देखी है  
और न कभी भोगी है इसलिए यह बड़ा दीन है ॥२३॥

दाता ने स्थानभाथी आवतो होय ओ स्थानथी वधारे दूर न नेवु, अतरणु ठे  
दूर सुधी नेवाथी डोठने ओवी शका आवी नय ठे ‘आ चोर छे’ इत्यादि  
ने भिक्षानी प्राप्ति न थाय तो दीन वचन न बोलावा, ठे न णउणउवु, परन्तु  
मौनसहित पीछा करवु

अससत्त० शब्दथी नेत्रविषयक अनुरागने त्याग प्रगट कर्यो छे नाइदूरा०  
इत्यादिथी ओम सूचित करवामा आणु ठे ठे साधुओ ओवु आचरणु कणु  
नेओ ठे नेथी डोठने चोर आदि होवाने सदेह न पडे उत्फुल्ल० इत्यादि  
शब्दथी ओ सदेह दूर कर्यो ठे ठे डोठ ओम न समने ठे ‘अरे! आ भिक्षार  
साधुओ ओवी विभूति नथी डोठवार नेध अने नथी डोठवार लोगवी तेथी ओ  
णहु न दीन छे (२३)

२ ३ ४ ५ ६ १०  
मूलम्-एलग दारग साणं, वच्छगं चावि कोट्टए ।

७ ११ १२ ८ ९ ९  
उल्लघिया न पविसे, विउहत्ताण व सजए ॥ २२ ॥

छाया—एडरु दारक श्वान, वत्सरु गार्जपि कोट्टके ।

उल्लघय न प्रविशेत्, व्यूह ग सयतः ॥२२॥

सान्वयार्थः—एलग=भेड दारक=गालक साण=कुत्ते वच्छग=बठडे अपिवा=

इस प्रकार दूसरे अर्थात् बकरा-बकरी पाडा-पाडी आदिको उल्लघिया=शाय करके, चा=अथवा विउहत्ताण=हाथ आदिसे हटाकर सजए=साधु कोट्टए=कोठे-घर-में न पविसे=प्रवेश नहीं करे ॥२२॥

टीका—‘एलग’ इत्यादि । सयतः=भिक्षुः, एडरु=गडरु, दारकम्=अमकम्=श्वान=कुक्कुर, वत्सरु=गोशिशु ग, अपिशन्दादजामहिष्यादिशिशुग्रहणम्, उल्लघय=अतिक्रम्य व्यूह=अपौरुह इस्तादिनाऽपसार्येत्यर्थः, कोट्टके न प्रविशेत् ॥२२॥

१ २ ४ ३ ५  
मूलम्-अससत्त पलोडजा, नाइदूरावलोयए ।

६ ७ ८ १० ९  
उप्फुल्ल न विणिज्जाए, नियट्टिज्ज अयपिरो ॥२३॥

छाया—अससत्त पलोकेत, नातिदूरमवलोकेत ।

उप्फुल्ल न विनिर्घ्यायेत् निवर्त्तेताऽजल्पन् ॥२३॥

सान्वयार्थः—अससत्त=आसक्तिरहित होकर पलोडजा=देखे अर्थात् रागादि पूर्वक किसीको न देखे, नाइदूरावलोयए=अत्यन्त दूर दृष्टि डालकर लम्बी दृष्टिसे न देखे तथा उप्फुल्ल=आँखें फाड-फाडकर अथवा घुसकराता हुआ टकटकी लगाकर नविणिज्जाए=नहीं देखे, (भिक्षाकी प्राप्ति न हो तो) अयपिरो=कुछभी नहीं बोलता हुआ अर्थात् बडबडाहट नहीं करता हुआ वहासे नियट्टिज्ज=बापस लौट जावे ॥२३॥

टीका—‘अससत्त०’ इत्यादि । अससत्तम्=आसक्तिरहित यथास्थान्तथा

‘एलग०’ इत्यादि । भेड तथा बकरा, गालक, कुत्ता, बलडा तथा पाडा-पाडी आदिका उल्लघन करके, अथवा उनको हाथ आदिसे हटाकर साधु कोठे आदिमें प्रवेश न करे ॥२२॥

‘अससत्त०’ इत्यादि । आसत्त होकर रागादिपूर्वक किसीका

एलग० इत्यादि घेदु तथा गडरु, गालक, इतरु, वाछडे तथा पाडा पाडी आदिने ओणगीने अथवा तेने हाथ आदिसे डहावीने साधु ओरउमा प्रवेश न करे (२२)  
अससत्त० इत्यादि आसत्त यजने रागादिपूर्वक डेहधु अवलोकन न करे

भूमिको पूजकर खड़ा रहे और सिणाणस्स=स्नानघरकी तर्फ य=तथा वचस्स=  
दृष्टी-पेशाव घरकी तर्फ सलोग=दृष्टि परिवज्जण=न डाले ॥२५॥

टीका—‘तत्थेव०’ इत्यादि । विचक्षणः=निपुणः तत्रैव=स्वाधिष्ठानस्थान एव  
भूमिभाग प्रतिलिखेत्=सपश्येत्, स्नानस्य=स्नानगृहस्य वर्चसः=वर्चोगृहस्य च  
मलपरित्यागगृहस्येत्यर्थः, सलोक=प्रेक्षण परिवर्जयेत् । ‘विचक्षणो’ इत्यनेनाऽ-  
गीतार्थस्य स्वतन्त्रतया गोचरीगमन निषिद्धम् । ‘सिणाणस्स’ इत्यादिना च  
नग्नस्यादिदर्शनाद्रागादिसम्भव इति सूचितम् ॥२५॥

मूलम्-<sup>१</sup>दगमद्वि<sup>२</sup>यआयाणे, <sup>३</sup>वीयाणि <sup>४</sup>हरियाणि य ।

<sup>५</sup>परिवज्जतो <sup>६</sup>चिद्विज्जा, <sup>७</sup>सविदियसमाहिण् ॥२६॥

उया—दरुमृत्तिकाऽऽदान, गीजानि हरितानि च ॥

परिवर्जयस्तिष्ठेत्, सर्वेन्द्रियसमाहितः ॥२६॥

सान्न्वयार्थ.—(और बहाभी) दगमद्वि<sup>२</sup>यआयाणे=सचित्त जल और मिट्टीयुक्त  
मार्गको वीयाणि=शालि आदि बीजोको य=और हरियाणि=हरित कायको  
परिवज्जतो=वरजता हुआ अर्थात् उससे दृष्टकर सविदियसमाहिण्=सर्व  
इन्द्रियोको गोपता हुआ चिद्विज्जा=खड़ा रहे ॥२६॥

‘तत्थेव०’ इत्यादि । विचक्षण भिक्षु जिस मर्यादित भूमिपर खड़ा है  
वहाँके भूमिभागका प्रतिलेखन करे, स्नानघर तथा उच्चार आदिके  
स्थानकी ओर दृष्टि न डाले । ‘विचक्षणो’ पदसे अगीतार्थ साधुको  
स्वतन्त्र गोचरी करनेका निषेध किया गया है । ‘सिणाणस्स’ इत्यादि  
पदोंसे-‘नग्नस्त्री आदि दीखजानेके कारण रागादि भाव उत्पन्न होना  
सम्भव है’ यह सूचित किया गया है ॥२५॥

तत्थेव० इत्यादि विचक्षणो भिक्षु के मर्यादित भूमि पर खड़ा होय  
त्याना भूमिभागनु प्रतिवेधन करे, स्नान-घर तथा उच्चार आदिना स्थान  
(७७३)नी तरङ्ग दृष्टि न क्रेडे विचक्षणो गृहस्थी अगीतार्थ साधुने स्वतन्त्र  
गोचरी करवाने निषेध करवाया आये। छे सिणाणस्स इत्यादि पदोथी ‘नग्न  
स्त्री आदि देखाई जवाने कारणे रागादि भाव उत्पन्न भवाने सम्भव छे’-येम  
सूचित करवाया आये छे (०५)

छाया—अतिभूमिं न गच्छेत्, गोचराग्रगतो मृनिः ।

कुलस्य भूमिं ज्ञात्वा, मिता भूमिं पराक्रामेत् ॥२४॥

सान्त्वयार्थः—गोचरग्रगतो=गोचरीमें गया हुआ मुणो=साधु अइभूमिं=गृहस्थकी मर्यादित भूमिसे अगाडी उसकी आज्ञाके बिना न गच्छिज्जा=नहीं जावे, (किन्तु) कुलस्स=गृहस्थके घरकी भूमिं=मर्यादित भूमिको जाणिस्ता=जानकर मिय भूमिं=जिस घरमें जहातक जानेकी मर्यादा हो वहातक ही परक्रमे=जावे ॥२४॥

टीका—‘अइभूमिं०’ इत्यादि । गोचराग्रगतो मृनिः अतिभूमिं=परमवेशाय गृहस्थाननुमता भूमिमतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य न गच्छेत् । तर्हि किं कुर्यात् ? इत्याह—कुलस्य भूमिं=मर्यादा स्थित्यर्थिं ज्ञात्वा मिता=परिच्छिन्ना स्वावस्थानयोग्या भूमिं=स्थान पराक्रामेत्=गत्वा तिष्ठेत्, विपरीताचरणे हि गृहस्थरोषादि-सम्भवः ॥२४॥

मूलम्—तत्थेव<sup>२</sup> पडिलेहि<sup>४</sup>ज्जा, भूमिभाग<sup>३</sup> विचक्षणो<sup>१</sup> ।

सिणाणस्स<sup>५</sup> य वच्चस्स<sup>७</sup>, सलोग<sup>६</sup> परिवर्जण<sup>८</sup> ॥२५॥

छाया—तत्रैव प्रतिलिखेत्, भूमिभाग विचक्षणः ।

स्नानस्य च वचंस, सलोक परिवर्जयेत् ॥२५॥

सान्त्वयार्थः—तत्थेव=जिस मर्यादित भूमिपर खडा है उसी भूमिभागे=भूमि-भागको विचक्षणो=विचक्षण साधु पडिलेहिज्जा=प्रतिलेखन करे, अर्थात् वहाकी

‘अइभूमिं०’ इत्यादि । जिस घरमें भूमिकी जितनी मर्यादा हो उसे उल्लघन करके मुनि गृहस्थकी आज्ञा बिना आगे नहीं जावे, किन्तु उस कुलकी मर्यादाको जानकर गमन करने योग्य परिमित स्थान तकही जाकर खडा हो जाय-अर्थात् किसीकी मर्यादाका उल्लघन न करे। इसके विपरीत आचरण करनेसे गृहस्थको क्रोध आने आदिकी संभावना रहती है ॥२४॥

अइभूमिं० इत्यादि के घरमा भूमिनी जेठली मर्यादा छाय अने उल्लघनी मुनि गृहस्थनी आज्ञा बिना आगम न जाय, परन्तु अने कुणनी मर्यादाने नालीने गमन करवा योग्य परिमित स्थान सुधी न नरधने ठावो रहे, अर्थात्—डेधनी मर्यादातु उल्लघन न करे, अथी विपरीत आचरण करवाथी गृहस्थने क्रोध आदि उत्पन्न थवानी संभावना रहे ठे (२४)

गृहिण्यादिः पानभोजन=पान-पेय तिलतण्डुलादिधावनजलम् भोजन=भोज्यमन्ना-  
दिकम् आहरेत्=उपनयेत्-दद्यादित्यर्थः । तत्राय विशेषः=उपनतेषु पानभोजनादिषु  
अकल्पिक=कल्पितुमयोग्यमनेपणीयमित्यर्थ , न गृह्णीयात्=नादरीत, कल्पिक=  
कल्प्य निरवय प्रतिगृह्णीयात् ॥२७॥

१ २ ३ ४ ५  
मूलम्-आहरती सिया तत्थ, परिसाडिज्ज भोयण ।

६ ७ ८ ९ १० ११ १२ ६  
दितियं पडियाडक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ २८ ॥

छाया-आहरन्ती स्यात्तत्र, भोजन परिशाटयेत् ।

ददती प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥२८॥

सान्न्वयार्थः-और-आहरती=आहार-पानी देती हुई ब्रह्म-दात्री सिया=रुदा-  
चित् अगर तत्थ=ब्रह्म भोयण=भोजन-पान परिसाडिज्ज=नीचे गिरावे तो  
दितिय=देती-हुई उस बाईसे (साधु) पडियाडक्खे=कहे कि तारिस=इस  
प्रकारका आहार-पानी मे=मुखे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥२८॥

टीका-‘आहरती’ इत्यादि । आहरन्ती=भिक्षामानीय ददती गृहिणी  
स्यात्=रुदाचित् तत्र स्थाने भोजनम्=आहार परिशाटयेत्=इतस्ततो त्रिकरेत्  
जानुप्रमाणोच्चप्रदेशात् रुणादिमात्रमपि, तदधःप्रदेशाच्च निरन्तर पातयेदिति वृद्धाः,  
तदा ददतीं प्रति भिक्षुः आचक्षीत=ब्रवीत, तादृशम्=उक्तप्रकाररुमन्नादिक मे=  
मम न कल्पते=न-युज्यते न ग्राह्यमिति भावः ।

आदि तिल तण्डुल आदिका धोवन, तथा अन्नादिक देवे तो उनमेसे  
अकल्पनीय (अनेपणीय) पदार्थोंका ग्रहण न करे, कल्पनीयका ग्रहण  
करे ॥ २७ ॥

‘आहरती’ इत्यादि । अशनादि देते समय दाताके हाथसे  
घुटनेसे ऊपरके प्रदेशसे यदि एक भी कण गिर जाय, अथवा घुटनेसे  
नीचेके प्रदेशसे निरन्तर गिर रहा हो तो भिक्षु दातासे कहे कि ऐसा  
अन्नादिक मेरे लिए ग्राह्य नहीं है ।

तल तडुल (श्याभा) आदिनु धोवण तथा अन्नादिक आपे तो अेमाथी अकल्प  
नीय (अनेपणीय) पदार्थेनि अडणु न करे, कल्पनीयने अडणु करे (२७)

आहरतीं इत्यादि अशनादि देती वपते दाताना हाथमाथी घुटनी  
उपरना प्रदेशेथी जे अेक पणु कणु पडी जाय, अथवा घुटनेथी नीचेना प्रदेशेथी  
निरन्तर पडी रह्यु होय तो भिक्षु दाताने कडु के अेवा अशनादि मेरे ग्राह्य नहीं

टीका—‘दगमद्विय०’ इत्यादि । ‘दकमृत्तिकाऽऽदान=दक च मृत्तिका चेति दकमृत्तिके, आदीयते=आनीयतेऽनेनेत्यादान=मार्गः, दकमृत्तिकयोरदान दकमृत्तिकाऽऽदान=जलमृत्तिकाऽऽनयनमार्गस्तत् । मीजानि=सचित्तानि शाल्यादीनि, हरितानि=वनस्पतिमात्राणि, चकारादन्यान्यप्यरूप्यवस्तुजातानि परिवर्जयन्=परित्यजन् सर्वेन्द्रियसमाहितः=तत्तदिन्द्रियविषयव्यासङ्गरहितस्तिष्ठेत्=अवस्थितिं कुर्यात् ॥२६॥

१ ३ २ ५ ४  
मूलम्—तत्थ से चिट्टमाणस्स, आहरे पाणभोयणं ।

१ ० ८ १० ६  
अकप्पियं न गेण्हज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पिय ॥२७॥

छाया—तत्र तस्मै तिष्ठते, आहरेत्पान-भोजनम् ।

अकल्पिक न गृह्णीयात्, प्रतिगृह्णीयात्कल्पिकम् ॥२७॥

सान्त्वयार्थः—तत्थ=ब्रह्म चिट्टमाणस्स=खडे हुए तस्स=उस साधुके लिए (गृहस्थ) पाणभोयण=आहार-पानी आहरे=लाकर देवे तो (साधु उसमें) अकप्पिय=अकल्पनीय आहार आदि न गेण्हज्जा=नहीं लेवे, (किन्तु) कप्पिय=कल्पनीय होवे तो पडिगाहिज्ज=लेवे ॥२७॥

टीका—‘तत्थ से०’ इत्यादि । तत्र=गृहस्थगृहे तिष्ठते तस्मै<sup>२</sup> भिक्षवे

१ दकशब्दो जलपर्यायवचनः—‘प्रोक्त प्राज्ञैर्भुवनमत जीवनीय दक च ।’ इति हलायुधकोशात् ।

२ सूत्रे प्राकृतत्वाच्चतुर्थ्याः षष्ठी ।

‘दगमद्विय०’ इत्यादि । सचित्त जल और मृत्तिका लानेके मार्गका, और शालि आदि सचित्त बीज, वनस्पतिकाय तथा अन्य अकल्प्य पदार्थोंका वर्जन करता हुआ—उनसे दूर दृष्ट कर सब इन्द्रियोंका सयम करता हुआ खडा होवे ॥२६॥

‘तत्थ से’ इत्यादि । गृहस्थके घरमें खडे हुए साधुको गृहिणी (स्त्री)

दगमद्विय० धत्यादि सचित्त जल अने माटीनु अने शालि (डागर) आदि सचित्त धीज, वनस्पतिकाय तथा अन्य अकल्प्य पदार्थोंनु वर्जन करता तेनाधी हर छडीने सर्व धद्रियोना सयम करता जेबो रडे (२६)

तत्थ से धत्यादि गृहस्थना घरभा जेबेला साधुने गृहिणी (स्त्री) आदि

<sup>२</sup> मूलम्-<sup>३</sup>साहद्दु <sup>४</sup>निकखवित्ताण, <sup>५</sup>सचित्तं घट्टियाणिय ।

<sup>६</sup>तहेव <sup>७</sup>समणट्टाए, <sup>८</sup>उदगं <sup>९</sup>संपणुल्लिया ॥ ३० ॥

<sup>१०</sup>ओगाहइत्ता <sup>११</sup>चलइत्ता, <sup>१२</sup>आहरे <sup>१३</sup>पाणभोयणं ।

<sup>१४</sup>दितियं <sup>१५</sup>पडियाइक्खे, <sup>१६</sup>न मे <sup>१७</sup>कप्पइ <sup>१८</sup>तारिसं ॥३१॥

छाया—सहृत्त्य निक्षिप्य, सचित्तं घट्टयित्वा ।

तथैव श्रमणार्थम्, उदकं संपणुद्य ॥३०॥

अवगाह्य चालयित्वाऽऽहरेत्पानभोजनम् ।

ददती प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥३१॥

सान्वयार्थः—समणट्टाए=साधुके लिए साहद्दु=सहरण करके अर्थात् एक वरतनसे दूसरे वरतनमें डालकरके, निकखवित्ताण=सचित्त वस्तु पर आहारादिको रखकर अथवा आहारादिके ऊपर सचित्त वस्तुको रखकर, सचित्त=सचित्त वस्तुका घट्टियाणिय=सघटा स्पर्श-करके, तहेव=उसीप्रकार उदग=सचित्त अर्थात् साधुको संपणुल्लिया=इधर-उधर रखकर, ओगाहइत्ता=वर्षासे आँगनमें भरे हुए पानीमें अवगाहन-प्रवेश-करके, चलइत्ता=रुके हुए जलको नालीद्वारा या हाथसे बाहर निकालकर यदि पाणभोयण=आहार-पानी आहरे=देवे तो दितिय=देती हुई उस वाईसे (साधु) पडियाइक्खे=रुहे कि तारिस=इस प्रकारका आहारपानी मे=पुत्रे न कप्पइ=नही कल्पता है ॥३०-३१॥

टीका—‘साहद्दु’ इत्यादि, ‘ओगाहइत्ता’ इत्यादि च । यदि श्रमणार्थं=मिथुनिमित्तं सहृत्त्य=भाजनाद्भाजनान्तरे सहरणं कृत्वा ,

अवस्थामे आहारं लेनेसे मुझे भी इस हिंसाका भागी बनना पड़ेगा’ ऐसा विचार करके मुनि उससे आहार न ले ॥२९॥

‘साहद्दु’ इत्यादि, और ‘ओगाहइत्ता’ इत्यादि । यदि श्रमणके लिए एक वर्तनसे दूसरे वर्तनमें सहरण करके (निकालकर), निक्षेपण

भारे पण्ये अस्मिन् हिंसा भागी जनपु पश्ये’ अथवा विचार करीने मुनि तेन क्षात्र्ये आहारं न लेति

साहद्दु इत्यादि, अने ओगाहइत्ता इत्यादि को श्रमणने भाटे अथवा वासपुमार्थं पीन वासपुमा सहरण करीने (करीने), निक्षेपण करीने (अथवा



पाकादिगृहकार्याणां प्रायः स्रग्धीनत्वेन तत्रोपस्थितिप्राधान्यात्तद्ग्रहणम् ॥२८॥

मूलम्-संमद्दमाणी पाणाणि, वीयाणि हरियाणि च ।

असजमकरिं नच्चा, तारिसं परिव्रज्जए ॥ २९ ॥

छाया—समर्दयन्ती प्राणान्, वीजानि हरितानि च ।

असयमकरिं ज्ञात्वा तादृशीं परिव्रजेत् ॥२९॥

सान्वयार्थः—तथा—पाणाणि=वेइन्द्रियादिक प्राणियोको वीयाणि=शालि आदि बीजोको य=और हरियाणि=हरी वनस्पतिकायको समद्दमाणी=पैरोसे कुचलती हुई (आहार-पानी देवे तो) उसे असजमकरिं=साधुके लिये अयतना करनेवाली नच्चा=जानकर (साधु) तारिस=सदोप आहार देने वाली उसे परिव्रज्जए=व्रजे अर्थात् उसके हाथसे आहार-पानी नहीं लेवे ॥२९॥

टीका—‘समद्दमाणी०’ इत्यादि । प्राणान् वीजानि हरितानि च समर्दयन्ती=पादसघटनादिना पीडयन्ती अशनादिक दद्यादिति शेषः, तदा असयमकरिं=साधु-निमित्तमयतनाकारिणीम् ज्ञात्वा तादृशीम्=उक्तस्वरूपा सदोपमाहारादिक ददती ता परिव्रजेत्=प्रत्यादिशेत्, तद्वस्ततो नान्नादिक गृह्णीयादित्यर्थ । इय भिक्षादानार्थमागच्छन्ती प्राणादीनि मर्दयतीति तद्विराधना मय्यप्यापयेतेति भावयन् भिक्षा न गृह्णीयादिति भावः ॥२९॥

रसोईका काम प्रायः स्त्रियोंके अधीन रहता है और रसोईमें मुख्यतया स्त्री मौजूद रहती है, अत एव गाथामें स्त्रीका ग्रहण किया है ॥२८॥

‘समद्दमाणी०’ इत्यादि । प्राण बीज वनस्पति आदि सच्चित्तको कुचलती—रौंदती हुई अन्नादि देवे तो साधुके लिए अयतना करनेवाली समद्दकर उसे त्याग देवे, अर्थात् उसके हाथसे अन्नादि ग्रहण न करे । तात्पर्य यह है कि—‘यह भिक्षा देनेके लिए जो अयतना कर रही है ऐसी

रसोईनु काम प्राय स्त्रीओंने अधीन रहे छे अने रसोईमा मुख्यतये स्त्री डांवर रहे छे, तेथी गाथाभा स्त्रीने ग्रहण करवाभा आवी छे (२८)

समद्दमाणी० इत्यादि प्राण बीज वनस्पति आदि सच्चित्तने क्यउती-ढाणती (स्त्री) अन्नादि आपे तो साधुने माटे अयतना करनारी समलने तेने त्यल दे अर्थात् ओना हाथथी अन्नादि ग्रहण न करे तात्पर्य ये छे के—‘आ भिक्षा आपवाने ने अयतना करी रही छे, ओनी अवस्थाभा आहार लेवाथी

निक्षिप्य=एरुस्योपर्यन्यस्य निक्षेपण कृत्वा । निक्षेपण च त्रिधा-सचित्तमचित्त मिश्र वेति, एतानाश्रित्य तिस्रश्चतुर्भङ्ग्यो भवन्ति । तत्र-

[१] सचित्ताऽचित्तयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) सचित्ते सचित्तस्य, (२) सचित्तेऽचित्तस्य, (३) अचित्ते सचित्तस्य, (४) अचित्तेऽचित्तस्य निक्षेपणम् । १ ।

[२] सचित्तमिश्रयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) सचित्त सचित्तस्य, (२) सचित्ते मिश्रस्य, (३) मिश्रे सचित्तस्य, (४) मिश्रे मिश्रस्य निक्षेपणम् । २ ।

[३] अचित्त मिश्रयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) अचित्तेऽचित्तस्य, (२) अचित्ते मिश्रस्य, (३) मिश्रेऽचित्तस्य, (४) मिश्रे

निक्षेपण दोष तीन प्रकारका है-(१) सचित्त, (२) अचित्त, और (३) मिश्र । इन तीनोंको आश्रित करके तीन चौभगियाँ होती हैं ।

[१] सचित्त-अचित्तकी चौभगी-

(१) सचित्तपर सचित्तका, (२) सचित्तपर अचित्तका, (३) अचित्त पर सचित्तका, (४) अचित्तपर अचित्तका । १ ।

[२] सचित्त मिश्रकी चौभगी-

(१) सचित्त पर सचित्तका, (२) सचित्त पर मिश्रका, (३) मिश्रपर सचित्तका, (४) मिश्रपर मिश्रका निक्षेप करना । २ ।

[३] अचित्त-मिश्रकी चौभगी-

(१) अचित्त पर अचित्तका, (२) अचित्त पर मिश्रका । (३) मिश्रपर

निक्षेपण दोष त्रय प्रकारको छे (१) सचित्त, (२) अचित्त, (३) मिश्र अत्र त्रयने आश्रित करवाधी त्रय शौलगीयो थाय छे

[१] सचित्त अचित्तनी शौलगी

(१) सचित्त पर सचित्तनु, (२) सचित्तपर अचित्तनु, (३) अचित्त पर सचित्तनु (४) अचित्तपर अचित्तनु । १ ।

[२] सचित्त मिश्रनी शौलगी-

(१) सचित्त पर सचित्तनु, (२) सचित्त पर मिश्रनु, (३) मिश्र पर सचित्तनु, (४) मिश्र पर मिश्रनु, निक्षेपण करवु । २ ।

[३] अचित्त मिश्रनी शौलगी-

(१) अचित्त पर अचित्तनु, (२) अचित्त पर मिश्रनु, (३) मिश्र पर

(૪) વહાર્દ્રે વહુશુષ્કસ્ય સહરણમ્ ।

[૪] 'આર્દ્રે આર્દ્રસ્યે'—તિ ચતુર્થમ્નસ્ય ચતુર્મઙ્ગી યયા—

(૧) અલ્પાર્દ્રેડલ્પાર્દ્રસ્ય, (૨) અલ્પાર્દ્રે-વહાર્દ્રસ્ય, (૩) વહાર્દ્રેડલ્પાર્દ્રસ્ય,

(૪) વહાર્દ્રે વહાર્દ્રસ્ય સહરણમ્ ।

આમુ પૂર્વોક્તમઙ્ગીપુ પત્યેકચતુર્મઙ્ગયાઃ 'અલ્પશુષ્કેડલ્પશુષ્કસ્ય' 'વહુશુષ્કેડલ્પશુષ્કસ્યે—ત્યાદિરૂપી પ્રથમ તૃતીયમઙ્ગી કલ્પ્યાં શેપાવન્કલ્પ્યાં, તયાગ્રહણે પાત્રોત્થાપનાદિના દાતુઃ કષ્ટ પાત્રસ્ફુટન તદ્વતવસ્તુનિકરણાડપ્રીત્યાદિસમ્ભવાત્ ।

(૩) વહુત ગીલેમેં થોડે સૂલેકા, (૪) વહુત ગીલેમેં વહુત સૂલેકા ।

[૪] 'ગીલેમેં ગીલેકા' ઇસ ચૌથે ભગકી ચૌભગી—

(૧) થોડે ગીલેમેં થોડે ગીલેકા (૨) થોડે ગીલેમેં વહુત ગીલેકા ।

(૩) વહુત ગીલેમેં થોડે ગીલેકા, (૪) વહુત ગીલેમેં વહુત ગીલેકા ।

ઇન ચારોં ચૌભગિયોમેંસે 'થોડે સૂલેમેં થોડા સૂલા મિલાના' ઔર 'વહુત સૂલેમેં થોડા સૂલા મિલાના' યે પહલે ઔર તીસરે ભગ ગ્રાહ્ય હૈં । દૂસરે ઔર ચૌથે ભગ ગ્રાહ્ય નહીં હૈં । ઇસ પ્રકારકે ગ્રહણ કરનેસે વર્તન ઉઠાનેકે કારણ દાતાકો કષ્ટ, વર્તનકા ફૂટજાના, ઔર વસ્તુકા વિચરજાના, ઔર અપ્રીતિ હોના આદિ દૂષણ હોતે હૈં । જૈસે કિસી દાતાને વહુત ગીલેકા યા વહુત સૂલેકા સહરણ કરનેકે લિએ વહા ભારી વર્તન ઉઠાયા તો ડસે કષ્ટ હોગા ।

(૩) ણહુ લીલામા થોડા સૂકાનુ, (૪) ણહુ લીલામા ણહુ સૂકાનુ

[૪] લીલામા લીલાનુ ' એ ચેથા ભાગાની ચૌભગી—

(૧) થોડા લીલામા થોડા લીલાનુ, (૨) થોડા લીલામા ણહુ લીલાનુ, (૩) ણહુ લીલામા થોડા લીલાનુ, (૪) ણહુ લીલામા ણહુ લીલાનુ

આ ચાર ચૌભગીઓમાથી 'થોડા સૂકામા થોડુ સૂકુ મેળવવુ' અને 'ણહુ સૂકામા થોડુ સૂકુ મેળવવુ' એ પહેલા અને ત્રીજા ભાગા ગ્રાહ્ય છે ધીજા અને ચેથા ભાગા ગ્રાહ્ય નથી એ પ્રમાણે ગ્રહણ કરવાથી વાસણ ઉપાડવાને કારણે દાતાને કષ્ટ, વાસણ ફૂટી જવુ અને વસ્તુ વેરાઈ-ઢોળાઈ જવી, અને અપ્રીતિ થવી આદિ દૂષણ થાય છે, જેમકે કેઈ દાતાએ ણહુ લીલાનુ યા ણહુ સૂકાનુ સહરણ કરવાને માટે ણહુ ભારે વાસણ ઉપાડયુ હોય તેને કષ્ટ થાય

निक्षिप्य=एकस्योपर्यन्यस्य निक्षेपण कृत्वा । निक्षेपण च त्रिधा-सचित्तमचित्त मिश्र चेति, एतानाश्रित्य तिस्रश्चतुर्भङ्ग्यो भवन्ति । तत्र-

[१] सचित्ता-ऽचित्तयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) सचित्ते सचित्तस्य, (२) सचित्तेऽचित्तस्य, (३) अचित्ते सचित्तस्य, (४) अचित्तेऽचित्तस्य निक्षेपणम् । १ ।

[२] सचित्तमिश्रयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) सचित्त सचित्तस्य, (२) सचित्ते मिश्रस्य, (३) मिश्रे सचित्तस्य, (४) मिश्रे मिश्रस्य निक्षेपणम् । २ ।

[३] अचित्त मिश्रयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) अचित्तेऽचित्तस्य, (२) अचित्ते मिश्रस्य, (३) मिश्रेऽचित्तस्य, (४) मिश्रे

निक्षेपण दोष तीन प्रकारका है-(१) सचित्त, (२) अचित्त, और (३) मिश्र । इन तीनोंको आश्रित करके तीन चौभगियाँ होती हैं ।

[१] सचित्त-अचित्तकी चौभगी-

(१) सचित्तपर सचित्तका, (२) सचित्तपर अचित्तका, (३) अचित्त पर सचित्तका, (४) अचित्तपर अचित्तका । १ ।

[२] सचित्त-मिश्रकी चौभगी-

(१) सचित्त पर सचित्तका, (२) सचित्त पर मिश्रका, (३) मिश्रपर सचित्तका, (४) मिश्रपर मिश्रका निक्षेप करना । २ ।

[३] अचित्त-मिश्रकी चौभगी-

(१) अचित्त पर अचित्तका, (२) अचित्त पर मिश्रका । (३) मिश्रपर

निक्षेपण दोष त्रय प्रकारको छे (१) सचित्त, (२) अचित्त, (३) मिश्र अत्र त्रयने आश्रित करवाथी त्रय चौभगीयो थाय छे

[१] सचित्त अचित्तनी चौभगी

(१) सचित्त पर सचित्तनु, (२) सचित्तपर अचित्तनु, (३) अचित्त पर सचित्तनु (४) अचित्तपर अचित्तनु । १ ।

[२] सचित्त मिश्रनी चौभगी-

(१) सचित्त पर सचित्तनु, (२) सचित्त पर मिश्रनु, (३) मिश्र पर सचित्तनु, (४) मिश्र पर मिश्रनु, निक्षेपण करवु । २ ।

[३] अचित्त मिश्रनी चौभगी-

(१) अचित्त पर अचित्तनु, (२) अचित्त पर मिश्रनु, (३) मिश्र पर

मिश्रस्य निक्षेपणमिति । ३ ।

पुनरपि पृथिव्यादिकायपट्टकोपरि पृथिव्यादीना निक्षेपणेन प्रथमचतुर्भङ्गी-  
स्थितप्रथमभङ्गस्य 'सचित्ते सचित्तस्ये'-त्येकरूपस्य पट्टत्रिंशद्धेदा भवन्ति, तत्रथा-

(१) पृथिव्या पृथिव्याः, (२) अपाम्, (३) तेजसः, (४) वायोः, (५) वन-  
स्पतेः, (६) त्रसस्य निक्षेपणमिति पट्ट (६) ।

एवमपकायादावपि प्रत्येकरूपायस्य निक्षेपणेन पट्टत्रिंशद् भेदा जायन्ते ।  
एव शेषभङ्गत्रयस्यापि प्रत्येक पट्टत्रिंशद् भेदा भवन्ति । सकलनया प्रथमचतुर्भङ्गया-

अचित्तका, (४) मिश्रपर मिश्रका निक्षेप करना । ३ ।

फिर भी पृथिवी आदि पट्टकाय पर पृथिवीकायका निक्षेपण करनेसे  
प्रथम चतुर्भङ्गीके 'सचित्त पर सचित्तका' इस प्रथम भङ्गके छत्तीस  
भङ्ग होते हैं । वे इस प्रकार हैं—

(१) पृथिवी पर पृथिवीका, (२) अपका, (३) तेजका, (४) वायुका,  
(५) वनस्पतिका और (६) त्रसका निक्षेपण करना ।

इसी प्रकार अपकाय आदि पर पृथिवीकाय आदि छह कार्योंका  
निक्षेपण करनेसे छत्तीस भङ्ग होते हैं, अर्थात् छह काय पर छह कायका  
निक्षेपण होता है अतः छहसे छहका गुणन करनेसे प्रथम भङ्गके छत्तीस  
भेदोंकी सख्या निकलती है । ऐसे 'सचित्त पर सचित्तका' 'सचित्त  
पर मिश्रका' मिश्र पर सचित्तका, और 'मिश्र पर मिश्रका' इन सब  
(४) भङ्गोंकी छत्तीस छत्तीस सख्या जोड़ देनेसे (३६ + ३६ + ३६ + ३६) -

अचित्तनु, (४) मिश्र पर मिश्रनु निक्षेपणु करवु । ३।

वणी पणु पृथिवी आदि पट्टकाय पर पृथिवीकायनु निक्षेपणु करवाथी प्रथम  
अङ्गलगीना 'सचित्त पर सचित्तनु' अये प्रथम भागाना छत्रीस भागा थाय छे  
ते आ प्रमाणे छे—

(१) पृथिवी पर पृथिवीनु, (२) अप् (अण)नु (३) तेजनु (४) वायुनु,  
(५) वनस्पतिनु, (६) त्रसनु निक्षेपणु करवु

अये रीते अपकाय आदि पर पृथिवीकाय आदि छ कार्योंनु निक्षेपणु करवाथी  
छत्रीस भागा थाय छे, अर्थात् छ काय पर छकायनु निक्षेपणु थाय छे अटले  
छने छये गुणवाथी प्रथम भागा छत्रीस लोहानी सख्या नीकणे छे अये  
'सचित्त पर सचित्तनु' 'सचित्त पर मिश्रनु' 'मिश्र पर सचित्तनु' अने  
'मिश्र पर मिश्रनु' अये गधा (४) भागानी छत्रीस छत्रीस सख्या जेडी देवाथी

श्वतुश्चत्वारिंशदुत्तरमेकगत भङ्गा भवन्ति । उक्तप्रकारेण शेषचतुर्भङ्गीद्विकस्यापि भङ्गसम्पादने सकलनया सर्वे भेदा द्वात्रिंशदधिकानिचतुःशतानि (४३२) सम्पद्यन्ते ।

इमे एककायस्योपर्येकस्यैव कायस्य निक्षेपणभेदाः प्रदर्शिताः, किन्तु 'एककाये कायद्वयस्य, कायद्वये चैकस्ये'-त्यादिनिक्षेपणेन चाऽन्येषामपि सम्भवः, यथा- 'पृथिव्या पृथिव्यपकाययो'-रित्यादि, पृथिव्यपकाययोर्वनस्पते'-रित्यादि च स्वयमवसेयमिति विस्तरभयाद्विरम्यते ।

पूर्वोक्तपु भङ्गसमुदयेषु 'अचित्तेऽचित्तनिक्षेपण'-कक्षणभङ्गस्य कल्प्यत्वम्, शेषा

एकमौ चँवालीस (१४४) भग हो जाते हैं । दूसरी दो चौभगियोके भी इतने ही भग होते हैं, उनको जोडनेसे चारसौ वत्तीस (४३२) भग होते हैं ।

ये चारसौ वत्तीस (४३२) भग एक काय पर एक कायका निक्षेपण करनेसे होते हैं, किन्तु एक काय पर दो कायका, जैसे—

पृथिवीकाय पर पृथिवीकायका और अप्कायका निक्षेपण करनेसे, तथा दो कायो पर एक कायका, जैसे पूर्वोक्त दो कायों पर वनस्पति आदि किसी एक कायका निक्षेपण करनेसे और भी बहुतेरे भग होते हैं । सयोगसे वननेवाले इन उत्तर भगोंको स्वय समझ लेना चाहिए, विस्तार भयसे यहाँ नहीं घताते ।

पूर्वोक्त भगोंमेसे अचित्त पर अचित्तका निक्षेपण करनेरूप एक भग कल्पनीय है, अवशेष साक्षात् या पारम्परिक निक्षेपणरूप सब

(३६+३६+३६+३६) अेऽसो शुवाणीस (१४४) भागा थाय छे पीछे जे चोलगी ज्ञाना पणु अेटलाञ्ज लेड थाय छे, अेने जेडवाथी आरमेने णत्रीस (४३२) भागा थाय छे

अे ४३२ भागा अेक काय पर अेक कायनु निक्षेपणु करवाथी थाय छे, परन्तु अेक काय पर जे कायनु, जेभङ्के—

पृथिवी काय पर पृथिवी कायनु अने अप्कायनु निक्षेपणु करवाथी, तथा जे कायो पर अेक कायनु जेमे पूर्वोक्त जे कायो पर वनस्पति आदि काई अेक कायनु निक्षेपणु करवाथी पीछे पणु घणु भागा थाय छे अे सयोगथी यथा उत्तर भागा पोतानी भेजे समल लेवा, णहु विस्तार थवाने कारणु अर्ही आभ्या नहीं

पूर्वोक्त भागाभाथी अचित्त पर अचित्तनु निक्षेपणु करवाइप अेक भागे।

आनन्तर्यस्वरूपाः पारम्पर्यस्वरूपा वा निरिल्ला अकल्प्या एवेति बोद्धव्यम् ।

सचित्त=सचित्तपृथिव्यादिक घट्टयित्वा=सस्पृश्य सचाल्य वा, सस्पर्शन सचित्ताऽचित्त मिश्रभेदात्त्रिषि, तदपि पृथिव्यादिकायपट्टकेन भिन्नमानमष्टादशविध पुनर्दातृ-देय-भेदाभ्या द्विभिधतया सकलनया पट्टत्रिंशद् भेदा जायन्ते, एतेषामपि पुनः-आनन्तर्य-पारम्पर्यभेदाद् द्वासप्ततिर्भेदा भवन्ति । एव कायद्वयकायत्रिकादि सस्पर्शनेनोत्तरोत्तरभूरिभेदाः स्वयभूहनीयाः प्रेक्षावद्भिरिति ।

ननु पारम्परिकसघट्टनेन दीयमानाऽऽहारादिवर्जने पृथ्वीसघट्टनमनिवार्यमिति

भग अकल्प्य हैं ।

सस्पर्शन तीन प्रकारका है—(१) सचित्त सस्पर्शन, (२) अचित्त सस्पर्शन, और (३) मिश्र सस्पर्शन । इन तीनोंके पृथिवी आदि षट्कायके भेदसे अठारह भेद होते हैं । दाता और देय (वस्तु) के भेदसे छत्तीस भेद होते हैं । और अनन्तर तथा परम्पराके भेदसे बहत्तर (७२) भेद होजाते हैं । इनके सिवाय दो कायका या तीन कायका स्पर्श करनेसे और भी भेद होजाते हैं, वे भेद बुद्धिमानोंको स्वय विचार लेने चाहिए।

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! यदि पारम्परिक सघट्टनसे दिये हुए आहार आदिका भी त्याग किया जायगा तो साधु कभी आहार नहीं ले सकेंगे क्योंकि पृथ्वीका सघट्टन अनिवार्य है—आहार आदि पृथिवीपर रहते हैं और सचित्त जल भी पृथ्वी पर रहता है, अतः सचित्त जलका पृथिवीका

कटपनीय छे, जाडीना साक्षात् या पारपरिउ निक्षेपणुइय गंधा बागा अकटपनीय छे ।  
सस्पर्शन त्रय प्रकारना छे—(१) सचित्त सस्पर्शन, (२) अचित्त सस्पर्शन, अने (३) मिश्र सस्पर्शन अे त्रयेना पृथिवी आदि षट्कायना लेहे करीने अठार लेह थाय छे दाता अने देय (वस्तु)ना लेहे करीने छत्तीस लेह थाय छे अने पछी तेवी न परपशना लेहे करीने गोतेर (७२) लेह थाय छे ते उपराल गे कायना या त्रय कायना स्पर्श करवाथी भील पणु लेह थाय छे ते लेहे बुद्धिमानेअे स्वय विचारी लेवा

प्रश्न—हे गुरु महाराज ! जे पारम्परिक सघट्टनथी आपेवा आहारादिने पणु त्याग करवाभा आवशे तो साधु कदापि आहार लह शकथे नहि, कारण के पृथिवीनु सघट्टन अनिवार्य छे—आहारादि पृथिवी पर रहे छे अने सचित्त नण पणु पृथिवी पर न रहे छे अेटेले सचित्त नणनु पृथिवी साथे सघट्टन छे

तत्सघट्टनेऽपि वर्जनप्रसक्तौ भिल्लूणा सर्वदाऽऽहारप्रतिषेधमसङ्ग इति चेन्न, पृथिव्या अचलतया तत्सञ्चलनाद्यभावेन तत्सघट्टने जीववाधाया असम्भवात्, तत्सघट्टिताऽऽहाराऽऽदान भिल्लूणामप्रतिषेधमिति भावः । उक्तपारम्परिकसघट्टिताऽऽहाराऽऽदानविषये प्रतिषेधश्रलाऽऽधारविषयः, तत्र प्राणिपीडासम्भवात् व्यवहारदोषाच्चेति भावः ।

एतेषु मध्ये गाथोक्त सचित्तम्, अन्तर्गर्भितत्वान्मिथ च सस्पृश्य सञ्चाल्य वा तथैव=पुनरपि उदरम्=अपकाय 'सचित्त'-मित्यनुवर्तते सम्प्रणुय=समेय इतस्ततः कृत्वेत्यर्थः ॥३०॥ तथा—

अत्रगाह्य=वर्षाकाले 'गृहाद्गणप्रतिरुद्धजलान्त' प्रविश्य, चालयित्वा=प्रणालिकादिना निस्सार्य च पानभोजनमाहरेत् तदा ददतीमित्यादि पूर्ववत् ॥३१॥

पुरःकर्मदोषमाह—'पुरेकस्मेण' इत्यादि ।

१ 'गृहाद्गणे'ति तु सम्यक्, तवर्गपञ्चमान्तस्याङ्गनशब्दस्यैवाकरग्रन्थेषु निर्णीतत्वादिति श्रीरुचिपत्न्युपाध्यायाः ।

सघटा है और पृथिवीका आहारादिके साथ सघटा है, इसलिए आहारादिका तथा सचित्त जलका पारम्परिक सघटा होता ही है ।

उत्तर—हे शिष्य ! पृथिवी अचल है, उसका मचलन नहीं होता, अत एव ऐसे सघटेसे जीवोंको बाधा नहीं होती, इसलिए पृथिवीसे सघटित आहारका ग्रहण करना साधुओंके लिए निषिद्ध नहीं है । पहले पारम्परिक सघटित आहारका जो त्याग बताया गया है उसे चल-आधार विषयक ही समझना चाहिये, क्योंकि उस सघटनसे प्राणियोंको पीडा होती है तथा व्यवहारदोष भी लगता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अब पुर कर्मदोष कहते हैं—'पुरेकस्मेण०' इत्यादि

अने पृथिवीनु आहारादि साथे सघटन ठे, तेथी करीने आहारादितु तथा सचित्त जलनु पारम्परिक सघटन थतु न होय छे

उत्तर—हे शिष्य ! पृथिवी अचल छे, तेनु सचलन थतु नथी, तेथी जेवा सघटनथी एवने गाथा थती नथी जेथी करीने पृथिवीथी सघटित आहारनु अहणु करवु जे साधुज्येने भाटे निषिद्ध नथी पूवे पारम्परिक सघटित आहारांने जे त्याग गताववाभा आये छे, तेने चल-आधार विषयक न समजये जेधजे, कारण ते जे सघटनथी प्राणीज्येने पीडा थाय छे तथा व्यवहारदोष पणु लागे छे (३०-३१)

उवे पुर कर्मदोष कहे छे—पुरेकस्मेण० इत्यादि



આનન્તર્યસ્વરૂપાઃ પારમ્પર્યસ્વરૂપા વા નિરિલા અરૂપ્યા एवेति बोद्धव्यम् ।

સચિત્ત=સચિત્તપૃથિવ્યાદિક ઘટ્ટયિત્વા=સસ્પૃશ્ય સચાલ્ય વા, સસ્પર્શન સચિ-  
ત્તાઽચિત્ત-મિશ્રમેદાત્ત્રિવિધ, તદપિ પૃથિવ્યાદિકાયપટ્કેન મિગ્રમાનમણદશવિધ,  
પુનર્દાતૃ-દેય-મેદાભ્યા દ્વિવિધતયા સંકલનયા પટ્ત્રિશદ્ મેદા જાયન્તે, एतेषामपि  
पुनः-आनन्तर्य-पारम्पर्यमेदाद् द्वासप्ततिर्भेदा भवन्ति । एव कायद्वयकायत्रिकादि-  
सस्पर्शनेनोत्तरोत्तरभूरिमेदाः स्वयभूहनीयाः मेक्षावद्भिरिति ।

નતુ પારમ્પરિકસઘટ્ટનેન દીયમાનાઽઽહારાદિવર્જને પૃથ્વીસઘટ્ટનમનિવાર્યમિતિ

ભગ અકલ્પ્ય હૈં ।

સસ્પર્શન ત્રીન પ્રકારકા હૈં-(૧) સચિત્ત સસ્પર્શન, (૨) અચિત્ત  
સસ્પર્શન, ઓર (૩) મિશ્ર સસ્પર્શન । ઇન ત્રીનોકે પૃથિવી આદિ પટકાયકે  
ભેદસે અઠારહ ભેદ હોતે હૈં । દાતા ઓર દેય (વસ્તુ) કે ભેદસે છત્તીસ  
ભેદ હોતે હૈં । ઓર અનન્તર તથા પરમ્પરાકે ભેદસે બહત્તર (૭૨) ભેદ  
હોજાતે હૈં । ઇનકે સિવાય ઘો કાયકા યા ત્રીન કાયકા સ્પર્શ કરનેસે  
ઓર મી ભેદ હોજાતે હૈં, વે ભેદ બુદ્ધિમાનોકો સ્વય વિચાર લેને યાહિણ ।

પ્રશ્ન-હે ગુરુમહારાજ ! યદિ પારમ્પરિક સઘટ્ટનસે દિયે હુણ આહાર  
આદિકા મી ત્યાગ કિયા જાયગા તો સાધુ કમી આહાર નહી લે સકો  
ક્યોકિ પૃથ્વીકા સઘટ્ટન અનિવાર્ય હૈં-આહાર આદિ પૃથિવીપર રહતે હૈં  
ઓર સચિત્ત જલ મી પૃથ્વી પર રહતા હૈં, અતઃ સચિત્ત જલકાપૃથિવીકા

કટપનીય છે, ણાકીના સાક્ષાત્ યા પાર પરિઠ નિશ્લેષણરૂપ ણધા ભાગા અકલ્પનીય છે  
સસ્પર્શન ત્રણ પ્રકારના છે -(૧) સચિત્ત સસ્પર્શન, (૨) અચિત્ત સસ્પ  
ર્શન, અને (૩) મિશ્ર સસ્પર્શન એ ત્રણેના પૃથિવી આદિ પટકાયના ભેદ  
કરીને અઠાર ભેદ થાય છે દાતા અને દેય (વસ્તુ)ના ભેદે કરીને છત્તીસ ભેદ  
થાય છે અને પછી તેવી જ પરપરાના ભેદે કરીને ણોતેર (૭૨) ભેદ થાય છે  
તે ઉપરાત એ કાયનો યા ત્રણ કાયનો સ્પર્શ કરવાથી ણીજ પણ ભેદ થાય છે  
તે ભેદે બુદ્ધિમાનોએ સ્વય વિચારી લેવા

પ્રશ્ન-હે ગુરુ મહારાજ ! જે પારમ્પરિક સઘટ્ટનથી આપેલા આહારાદિને  
પણ ત્યાગ કરવામા આવશે તો સાધુ કદાપિ આહાર લઈ શકશે નહિ, કારણ કે  
પૃથિવીનું સઘટ્ટન અનિવાર્ય છે-આહારાદિ પૃથિવી પર રહે છે અને સચિત્ત  
જળ પણ પૃથિવી પર જ રહે છે એટલે સચિત્ત જળનું પૃથિવી સાથે સઘટ્ટન છે

तत्सघटनेऽपि वर्जनप्रसक्तौ भिक्षूणा सर्वदाऽऽहारप्रतिषेधप्रसङ्ग इति चेन्न, पृथिव्या अचलतया तत्सञ्चलनाग्रभावेन तत्सघटने जीववाधाया असम्भवात्, तत्सघटिताऽऽहाराऽऽदान भिक्षूणामप्रतिषेधमिति भावः । उक्तपारम्परिकसघटिताऽऽहाराऽऽदानविषये प्रतिषेधश्चलाऽऽधारविषयः, तत्र प्राणिपीडासम्भवात् व्यवहारदोषाच्चेति भावः ।

एतेषु मध्ये गार्थोक्त सचित्तम्, अन्तर्गर्भितत्वान्मिथ च सस्पृश्य सञ्चाल्य वा तथैव=पुनरपि उदरम्=अन्त्राय 'सचित्त'-मित्यनुवर्त्तते सम्प्रणुय=समेय इतस्ततः कृत्वेत्यर्थः ॥३०॥ तथा—

अवगाह्य=वर्षाकाले 'गृहाङ्गणप्रतिरुद्धजलान्तः प्रविश्य, चालयित्वा=प्रणालिकादिना निस्तार्य च पानभोजनमाहरेत् तदा ददतीमित्यादि पूर्ववत् ॥३१॥

पुरःकर्मदोषमाह—'पुरेकस्मेण' इत्यादि ।

१ 'गृहाङ्गणे'ति तु सम्पक्, तवर्गपञ्चमान्तम्याङ्गनशब्दस्यैवाकरग्रन्थेषु निर्णीतत्वादिति श्रीरुचिपत्युपाध्यायाः ।

सघटा है और पृथिवीका आहारादिके साथ सघटा है, इसलिए आहारादिका तथा सचित्त जलका पारम्परिक सघटा होता ही है ।

उत्तर—हे शिष्य ! पृथिवी अचल है, उसका सचलन नहीं होता, अत एव ऐसे सघटेसे जीवोंको बाधा नहीं होनी, इसलिए पृथिवीसे सघटित आहारका ग्रहण करना साधुओंके लिए निषिद्ध नहीं है । पहले पारम्परिक सघटित आहारका जो त्याग बताया गया है उसे चल-आधार विषयक ही समझना चाहिये, क्योंकि उस सघटनसे प्राणियोंको पीडा होती है तथा व्यवहारदोष भी लगता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अब पुरःकर्मदोष कहते हैं—'पुरेकस्मेण०' इत्यादि

अने पृथिवीनु आहारादि साथे सघटन छे, तेथी करीने आहारादिनु तथा सचित्त जलनु पारम्परिक सघटन थतु न होय छे

उत्तर—हे शिष्य ! पृथिवी अचल छे, तेनु सचलन थतु नहीं, तेथी जेवा सघटनथी छेवोने बाधा थती नहीं जेथी करीने पृथिवीथी सघटित आहारनु ग्रहण करतु जे साधुजोने माटे निषिद्ध नहीं पूर्वे पारम्परिक सघटित आहारादिके त्याग बताया जाओ छे, तेने चल-आधार विषयक न समजवो जेथजे, कारण के जे सघटनथी प्राणीजोने पीडा थाय छे तथा व्यवहारदोष पण लागे छे (३०-३१)

अब पुरःकर्मदोष कहे छे—पुरेकस्मेण० इत्यादि

आनन्तर्यस्वरूपाः पारम्पर्यस्वरूपा वा निखिला अकल्प्या एवेति बोद्धव्यम् ।

सचित्त=सचित्तपृथिव्यादिरु घट्टयित्वा=सस्पृश्य सचाल्य वा, सस्पर्शन सचित्ताऽचित्त-मिश्रभेदात्त्रिभिः, तदपि पृथिव्यादिकायपट्केन भिन्नमानमष्टादशविध, पुनर्दातृ देय-भेदाभ्या द्वित्रिधतया सकलनया पट्त्रिंशद् भेदा जायन्ते, एतेषामपि पुनः-आनन्तर्य पारम्पर्यभेदाद् द्वासप्ततिभेदा भवन्ति । एव कायद्वयकायत्रिकादि-सस्पर्शनेनोत्तरोत्तरभूरिभेदाः स्वयभूहनीयाः प्रेक्षावद्भिरिति ।

ननु पारम्परिकसघट्टनेन दीयमानाऽऽहारादिवर्जने पृथ्वीसघट्टनमनिवार्यमिति

भग अकल्प्य हैं ।

सस्पर्शन तीन प्रकारका है—(१) सचित्त सस्पर्शन, (२) अचित्त सस्पर्शन, और (३) मिश्र सस्पर्शन । इन तीनोंके पृथिवी आदि घटकायके भेदसे अठारह भेद होते हैं । दाता और देय (वस्तु) के भेदसे छत्तीस भेद होते हैं । और अनन्तर तथा परम्पराके भेदसे बहत्तर (७२) भेद होजाते हैं । इनके सिवाय दो कायका या तीन कायका स्पर्श करनेसे और भी भेद होजाते हैं, वे भेद बुद्धिमानोंको स्वय विचार लेने चाहिए।

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! यदि पारम्परिक सघट्टनसे दिये हुए आहार आदिका भी त्याग किया जायगा तो साधु कभी आहार नहीं ले सकेंगे क्योंकि पृथ्वीका सघट्टन अनिवार्य है—आहार आदि पृथिवीपर रहते हैं और सचित्त जल भी पृथ्वी पर रहता है, अतः सचित्त जलका पृथिवीका

कटपनीय छे, गाड़ीना साक्षात् या पारपरिष्ठ निक्षेपण्युत्प षधा भागा अकल्पनीय छे सस्पर्शन त्रय प्रकारना छे—(१) सचित्त सस्पर्शन, (२) अचित्त सस्पर्शन, अने (३) मिश्र सस्पर्शन अने त्रयैना पृथिवी आदि घटकायना लेहे करीने अठार लेह थाय छे दाता अने देय (वस्तु)ना लेहे करीने छत्तीस लेह थाय छे अने पछी तेवी न परपराना लेहे करीने गेतेर (७२) लेह थाय छे ते उपराल जे कायनेा या त्रय कायनेा स्पर्श करवाथी जीण पण लेह थाय छे ते लेहे बुद्धिमानेअे स्वय विशारी लेवा

प्रश्न—हे गुरु महाराज ! जे पारम्परिक सघट्टनथी आपेला आहारादिना पण त्याग करवाभा आवशे तो साधु कदापि आहार लछ शकथे नहि, कारणु जे पृथिवीनु सघट्टन अनिवार्य छे—आहारादि पृथिवी पर रहे छे अने सचित्त नण पण पृथिवी पर न रहे छे अतले सचित्त नणनु पृथिवी साथे सघट्टन छे

तत्सघटनेऽपि वर्जनप्रसक्तौ भिक्षूणा सर्वदाऽऽहारप्रतिषेधप्रसङ्ग इति चेन्न, पृथिव्या अचलतया तत्सञ्चलनाग्रभावेन तत्सघटने जीववाधाया असम्भवात्, तत्सघटिताऽऽहाराऽऽदान भिक्षूणामप्रतिषेधमिति भावः । उक्तपारम्परिकसघटिताऽऽहाराऽऽदानविषये प्रतिषेधश्चाऽऽधारविषयः, तत्र प्राणिपीडासम्भवात् व्यवहारदोषाच्चेति भावः ।

एतेषु मध्ये गाथोक्त सचित्तम्, अन्तर्गर्भितत्वान्मिश्र च सस्पृश्य सञ्चाल्य वा तथैव=पुनरपि उदरम्=अन्काय 'सचित्त'-मित्यनुवर्त्तते सम्प्रणुय=समेयं इतस्ततः कृत्वेत्यर्थः ॥३०॥ तथा—

अवगाह्य=वर्षाकाले 'गृहाङ्गणप्रतिरुद्धजलान्तः प्रविश्य, चालयित्वा=प्रणालिकादिना निस्सार्य च पानभोजनमाहरेत् तदा ददतीमित्यादि पूर्ववत् ॥३१॥

पुरःकर्मदोषमाह—'पुरेकस्मेण' इत्यादि ।

१ 'गृहाङ्गणे'ति तु सम्यक्, तवर्गपञ्चमान्तस्याङ्गणशब्दस्यैवारुरग्रन्थेषु निर्णीतत्वादिति श्रीरुचिपत्न्युपाध्याया ।

सघटा है और पृथिवीका आहारादिके साथ सघटा है, इसलिए आहारादिका तथा सचित्त जलका पारम्परिक सघटा होता ही है ।

उत्तर—हे शिष्य ! पृथिवी अचल है, उसका सचलन नहीं होता, अत एव ऐसे सघटेसे जीवोंको बाधा नहीं होती, इसलिए पृथिवीसे सघटित आहारका ग्रहण करना साधुओके लिए निषिद्ध नहीं है । पहले पारम्परिक सघटित आहारका जो त्याग बताया गया है उसे चल-आधार विषयक ही समझना चाहिये, क्योंकि उस सघटनसे प्राणियोंको पीडा होती है तथा व्यवहारदोष भी लगता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अब पुरःकर्मदोष कहते हैं—'पुरेकस्मेण०' इत्यादि

अने पृथिवीनु आहारादि साथे सघटन छे, तेथी करीने आहारादिनु तथा सचित्त जलनु पारम्परिक सघटन थतु न होय छे

उत्तर—हे शिष्य ! पृथिवी अचल छे, तेनु सचलन थतु नथी, तेथी अने सघटनथी एवने बाधा थती नथी अथी करीने पृथिवीथी सघटित आहारनु अहण करथु अे साधुअेने भाटे निषिद्ध नथी पूवे पारम्परिक सघटित आहारांने न् त्याग गताववाभा आव्ये छे, तेने चल-आधार विषयक न समज्येने अे अे, कारणे छे अे सघटनथी प्राणीअेने पीडा थाय छे तथा व्यवहारदोष थयु लागे छे (३०-३१)

डवे पुर कर्मदोष कडे छे—पुरेकस्मेण० इत्यादि

१ २ ३ ४ ५  
मूलम्-पुरेकस्मिन् हृत्थेण, दृवीए भायणेण वा ।

६ ७ ८ ९ १० ११ १२  
द्वितीय पडिआडक्खे, न मे कप्पड तारिस ॥३२॥

छाया—पुरःकर्मणा हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, तादृश मे न कल्पते ॥३२॥

पुरःकर्म दोष कहते हैं—

सान्त्वयार्थ—पुरेकस्मिन्=साधुके आनेके पहले या सामने साधुके लिए सचित्त जलसे किया हुआ हस्तादिधावन पुरःकर्म कहलाता है, उस पुरःकर्म वाले हृत्थेण=हाथसे दृवीए=उस प्रकारकी कड़की अथवा चमचासे वा=अथवा भायणेण=दूसरे वर्तनसे (आहारादि) द्वितीय=देती हुईको पडियाडक्खे=कहेकि तारिस=इस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पड=नहीं कल्पता है ॥३२॥

टीका—पुरःकर्मणा=पुरः=पूर्वम् अग्रतो या कर्म=क्रिया पुरःकर्म, तेन पुरः कर्मणा, लक्षणया पुरःकर्मयुक्तेनेत्यर्थः, अस्य च हस्तादिभिस्त्रिभिः सम्बन्ध, हस्तेन=कुरेण, दर्व्या=खजाक्या, भाजनेन=अमत्रेण वा ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत् ।

नन्वेव गृहस्थाना पचन-पाचनादिक्रियामन्तरेणाऽऽहाराग्रसभव इति सांवा गमनात्प्राक् पचनादिक्रियाऽवश्य कर्त्तव्या, तथा सति पुरःकर्मदोषदूषितत्वेन

साधुके आनेसे पहले या सामने की जानेवाली क्रिया को पुर कर्म कहते हैं। पुर कर्मयुक्त हाथसे, कुडकी (चमचा) से, अथवा वर्तनसे देनेवालीके प्रति साधु कहे कि ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है ।

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! गृहस्थ जबतक पचन-पाचन आदि क्रिया न करे तब तक आहार बन नहीं सकता है, अत एव मुनिके आगमनके पहले पचन-पाचन आदि क्रिया अवश्य करनी पडती है । ऐसा करनेसे वह आहार पुर कर्मसे दूषित होगा तो भिक्षु कभी भिक्षा ग्रहण नहीं

साधु आवतानी पडेला या साधुनी सामे करवाभा आवती कियाने पुर कर्म कडे छे, पुर कर्मयुक्त कडकीथी के वासवुयी देनारीनी प्रत्ये साधु कडे के ज्येवे आहार भने कल्पते नवी

प्रश्न—हे गुरु महाराज ! गृहस्थ न्यासुधी पचन पाचन आदि क्रिया करतो नथी, त्यासुधी आहार णी शकतो नथी, ज्येठले मुनिना आगमन पडेला पचन पाचन आदि क्रिया नकरवी पडे छे ज्ये करवाधी ज्ये आहार पुर कर्मथी दूषित थाय तो भिक्षु कदापि भिक्षा ग्रहण करी शकें नहि साधुनी सामे करवाभा

साधुनामाहारग्रहणाप्रसक्तिः, साधुसमक्ष क्रियमाणाना क्रियाणा पुरःकर्मत्वे गृहस्थ-कृताऽभ्युत्थानादिक्रियाणामपि पुरःकर्मत्वापत्तौ तद्गृहस्थप्रदत्तभिक्षाया अपि पुरःकर्मदोषयुक्तत्वेन ग्रहणाभावप्रसङ्गः ? इति चेत्, अत्रोच्यते—

व्युत्पत्त्याऽभ्युत्थानगमनपचनपाचनादीनामपि पुरःकर्मत्वसम्भवेऽपि समय-परिभाषावलात् केवल भिक्षादानतः प्राक् साधुमुद्दिश्य सच्चित्तोदकेन हस्तभाजना-दिप्रक्षालनस्यैव पुरःकर्मत्वेन सिद्धान्तितत्वम्, न तु पचन-पाचनाभ्युत्थानादेरपीति ।

अत्र दातृ-द्रव्य गृहाण्याश्रित्याद्यौ भङ्गा भवन्ति यथा—

कर सकते, साधुके सामने की जानेवाली क्रियाको भी पुरःकर्म माना जाय तो गृहस्थकी अभ्युत्थान-चन्दन-आदि क्रियाएँ भी पुरःकर्म कहलायेंगी, इसलिए उसके द्वारा दिया हुआ पुरःकर्मसे दूषित आहार साधु कैसे ग्रहण करेंगे ?

उत्तर-हे शिष्य ! व्युत्पत्तिसे पचन-पाचन आदि क्रियाएँ भले ही पुरःकर्म कहलावें, किन्तु समय (शास्त्र)-की परिभाषासे भिक्षादानसे पहले साधुको उद्देश्य करके सच्चित्त जलसे हाथ या वर्तन आदिका प्रक्षालन करना ही पुरःकर्म कहलाता है, पचन-पाचन आदि क्रियाओंको अथवा खड़े होने आदिको पुरःकर्म नहीं कहते ।

इस पुरःकर्मके, दाता, द्रव्य और गृहकी विवक्षासे आठ भग होते हैं, वे यहाँ बताते हैं—

आवनारी क्रियाने पणु जे पुरःकर्म मानवामा आवे तो गृहस्थनी अभ्युत्थान वदन आदि क्रियाओ पणु पुरःकर्म कहेवाये, तो पछी तेने हाथे आपवामा आवेवो पुरःकर्मथी दूषित आहार साधु देवी रीते ग्रहणु करये ?

उत्तर-हे शिष्य ! व्युत्पत्तिथी पचन पाचन आदि क्रियाओ भले पुरःकर्म कहेवाय, परन्तु समय (शास्त्र) नी परिभाषा प्रमाणे भिक्षादाननी पछेला साधुने उद्देश्य करीने सच्चित्त जलथी हाथ या वासणु आदि धोवा जे पुरःकर्म कहेवाय ते पचन पाचन आदि क्रियाओ अथवा जिना थवा आदिनी क्रिया जे पुरःकर्म कहेवाता नथी

आ पुरःकर्मना, दाता, द्रव्य अने गृहनी विवक्षाओ करीने आठ भाग थाय छे. ते अहाँ बतावे छे—

१ २ ३ ४ ५  
मूलम्-पुरेकम्मणेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।

६ ७ ८ ९ १० ११ १२  
दित्थिय पडिआडक्खे, न मे कप्पड तारिस ॥३२॥

छाया—पुरःकर्मणा हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, तादृश मे न कल्पते ॥३२॥

पुरःकर्म दोष कहते हैं—

सान्वयार्थः—पुरेकम्मणेण=साधुके आनेके पहले या सामने साधुके लिए सचित्त जलसे क्रिया हुआ हस्तादिध्यान पुरःकर्म कहलाता है, उस पुरःकर्म-वाले हत्थेण=हाथसे दव्वीए=उस प्रकारकी कडछी अथवा चमचासे वा=अथवा भायणेण=दूसरे उरतनसे (आहारादि) दित्थिय=देती हुईको पडियाडक्खे=कहेकि तारिस=इस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पड=नहीं कल्पता है ॥३२॥

टीका—पुरःकर्मणा=पुरः=पूर्वम् अग्रतो वा कर्म=क्रिया पुरःकर्म, तेन पुरःकर्मणा, लक्षणया पुरःकर्मयुक्तेनेत्यर्थः, अस्य च हस्तादिभिस्त्रिभिः सम्बन्ध, हस्तेन=करेण, दर्व्या=खजाक्या, भाजनेन=अमत्रेण वा ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत् ।

नन्वेव गृहस्थानां पचन-पाचनादिक्रियामन्तरेणाऽऽहारान्नसम्भवं इति सा वा गमनात्प्राक् पचनादिक्रियाऽवश्यं कर्तव्या, तथा सति पुरःकर्मदोषदूषितत्वेन

साधुके आनेसे पहले या सामने की जानेवाली क्रिया को पुर कर्म कहते हैं। पुरःकर्मयुक्त हाथसे, कडछी (चमचा) से, अथवा वर्तनसे देनेवालीके प्रति साधु कहे कि ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है ।

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! गृहस्थ जबतक पचन-पाचन आदि क्रिया न करे तब तक आहार बन नहीं सकता है, अत एव मुनिके आगमनके पहले पचन-पाचन आदि क्रिया अवश्य करनी पडती है । ऐसा करनेसे वह आहार पुर कर्मसे दूषित होगा तो भिक्षु कभी भिक्षा ग्रहण नहीं

साधु आवतानीं पडेला या साधुनीं सामे करवामा आवतीं क्रियाने पुर कर्म कडे छे, पुर कर्मयुक्त कडछीथी छे वासणुथी देनारीनीं प्रत्ये साधु कडे छे जेवो आहार भने कटपते नथी

प्रश्न—हे गुरु महाराज ! गृहस्थ न्यासुधी पचन पाचन आदि क्रिया करतो नथी, त्यासुधी आहार गनीं शकतो नथी, जेटले मुनिना आगमन पडेला पचन पाचन आदि क्रिया करनी पडे छे जेवो करवाधी जे आहार पुर कर्मथी दूषित थाय तो भिक्षु कदापि भिक्षा ग्रहण करी शके नहि साधुनीं सामे करवामा

साधूनामाहारग्रहणाप्रसक्तिः, साधुसमक्ष क्रियमाणाना क्रियाणा पुरःकर्मत्वे गृहस्थ-  
कृताऽभ्युत्थानादिक्रियाणामपि पुरःकर्मत्वापत्तौ तद्गृहस्थप्रदत्तभिक्षाया अपि पुरः-  
कर्मदोषयुक्तत्वेन ग्रहणाभावप्रसङ्गः ? इति चेत्, अत्रोच्यते—

व्युत्पत्त्याऽभ्युत्थानगमनपचनपाचनादीनामपि पुर कर्मत्वसम्भवेऽपि समय-  
परिभाषावलात् केवल भिक्षादानतः प्राक् साधुमुद्दिश्य सचित्तोदकेन हस्तभाजना-  
दिप्रक्षालनस्यैव पुरःकर्मत्वेन सिद्धान्तितत्वम्, न तु पचन-पाचनाभ्युत्थानादेरपीति ।

अत्र दातृ-द्रव्य-गृहाण्याश्रित्याद्यौ भङ्गा भवन्ति यथा—

कर सकते, साधुके सामने की जानेवाली क्रियाको भी पुरःकर्म माना जाय  
तो गृहस्थकी अभ्युत्थान-चन्दन-आदि क्रियाएँ भी पुरःकर्म कहलायेंगी,  
इसलिए उसके द्वारा दिया हुआ पुरःकर्मसे दूषित आहार साधु कैसे  
ग्रहण करेंगे ?

उत्तर—हे शिष्य ! व्युत्पत्तिसे पचन पाचन आदि क्रियाएँ भले ही  
पुरःकर्म कहलायें, किन्तु समय ( शास्त्र )-की परिभाषासे भिक्षादानसे  
पहले साधुको उद्देश्य करके सचित्त जलसे हाथ या वर्तन आदिका  
प्रक्षालन करना ही पुरःकर्म कहलाता है, पचन-पाचन आदि क्रियाओंको  
अथवा खडे होने आदिको पुरःकर्म नहीं कहते ।

इस पुरःकर्मके, दाता, द्रव्य और गृहकी विवक्षासे आठ भग होते हैं,  
वे यहाँ बताते हैं—

आपनारी क्रियाने पक्षु जे पुर कर्म मानवामा आवे तो गृहस्थनी अभ्युत्थान  
वदन आदि क्रियाओ। पक्षु पुर कर्म कडेवाशे, तो पक्षी तेने हाथे आपवामा  
आवेले। पुर कर्मथी दूषित आहार साधु डेवी रीते ग्रहणु करशे ?

उत्तर—हे शिष्य ! व्युत्पत्तिथी पचन पाचन आदि क्रियाओ। भले पुर कर्म  
कडेवाय, परन्तु समय ( शास्त्र ) नी परिभाषा प्रमाणे भिक्षादाननी पडेला  
साधुने उद्देश्य करीने सचित्त जलथी हाथ या वासणु आदि धेवा ओ न पुर कर्म  
कडेवाय ते पचन पाचन आदि क्रियाओ। अथवा जिना थवा आदिनी क्रिया ओ  
पुर कर्म कडेवाता नथी

आ पुर कर्मना, दाता, द्रव्य अने गृहनी विवक्षाओ करीने आठ भागा  
थाय छे, ते अर्ही बतावे छे—



મૂલમ્-પુરેકમ્મેણ<sup>૧</sup> હત્થેણ<sup>૨</sup>, દઘ્વીણ<sup>૩</sup> ભાયણેણ<sup>૪</sup> વા<sup>૫</sup> ।

દિત્તિયં<sup>૬</sup> પહિઆઙ્કલ્લે<sup>૭</sup>, ન મે<sup>૮</sup> કપ્પહ<sup>૯</sup> તારિસ<sup>૧૦</sup> ॥૩૨॥

છાયા—પુરઃકર્મણા હસ્તેન, દર્વ્યા<sup>૧૧</sup> ભાજનેન વા ।

દદતીં પ્રત્યાચક્ષીત, તાદશ મે ન કલ્પતે ॥૩૨॥

પુરઃકર્મ દોષ કહતે છે—

સાન્વયાર્થઃ—પુરેકમ્મેણ=સાધુકે આનેકે પહલે યા સામને સાધુકે લિણ સચિત્ત જલસે ક્રિયા હુઆ હસ્તાદિધાવન પુરઃકર્મ કહલાતા છે, ઉસ પુરઃકર્મ વાલે હત્થેણ=હાથસે દઘ્વીણ=ઉસ પ્રકારકી કહઝી અથવા ચમચાસે વા=અથવા ભાયણેણ=દૂસરે વરતનસે (આહારાદિ) દિત્તિય=દેતી હુઈકો પહિયાઙ્કલ્લે=કહેકિ તારિસ=ઇસ પ્રકારકા આહાર મે=મુજ્જે ન કપ્પહ=નહી કલ્પતા છે ॥૩૨॥

ટીકા—પુરઃકર્મણા=પુરઃ=પૂર્વમ્ અગ્રતો વા કર્મ=ક્રિયા પુરઃકર્મ, તેન પુરઃ કર્મણા, લક્ષણયા પુરઃકર્મયુક્તેનેત્યર્થઃ, અસ્ય ચ હસ્તાદિભિસ્ત્રિભિઃ સમ્વન્ય, હસ્તેન=કરેણ, દર્વ્યા=સ્વજારુયા, ભાજનેન=અમત્રેણ વા દદતીં પ્રત્યાચક્ષીતેત્યાદિ પૂર્વવત્ ।

નન્વેવ ગૃહસ્થાના પચન-પાચનાદિક્રિયામન્તરેણાઽઽહારાગ્રસમ્ભવ ઇતિ સાન્વા ગમનાત્પ્રાક્ પચનાદિક્રિયાઽવશ્ય કર્તવ્યા, તથા સતિ પુરઃકર્મદોષદૂષિતત્વેન

સાધુકે આનેસે પહલે યા સામને કી જાનેવાલી ક્રિયા કો પુર કર્મ કહતે છે । પુરઃકર્મયુક્ત હાથસે, કુહઝી (ચમચા) સે, અથવા વર્તનસે દેનેવાલીકે પ્રતિ સાધુ કહે કિ એસા આહાર મુજ્જે નહીં કલ્પતા છે ।

પ્રશ્ન—હે ગુરુમહારાજ ! ગૃહસ્થ જ્યવતક પચન-પાચન આદિ ક્રિયા ન કરે તબ તક આહાર બન નહીં સકતા છે, અત એવ મુનિકે આગમનકે પહલે પચન-પાચન આદિ ક્રિયા અવશ્ય કરની પડતી છે । એસા કરનેસે વહ આહાર પુર કર્મસે દૂષિત હોગા તો ભિક્ષુ કમી ભિક્ષા ગ્રહણ નહી

સાધુ આવતાની પહેલા યા સાધુની સામે કરવામા આવતી ક્રિયાને પુર કર્મ કહે છે, પુર કર્મયુક્ત કહઝીથી કે વાસણથી દેનારીની પ્રત્યે સાધુ કહે કે એવો આહાર મને કેવલ નથી

પ્રશ્ન—હે ગુરુ મહારાજ ! ગૃહસ્થ જ્યાસુધી પચન પાચન આદિ ક્રિયા કરતો નથી, ત્યાસુધી આહાર ગની શકતો નથી, એટલે મુનિના આગમન પહેલા પચન પાચનાદિ ક્રિયા જરૂર કરવી પડે છે એમ કરવાથી એ આહાર પુર કર્મથી દૂષિત થાય તો ભિક્ષુ કદાપિ ભિક્ષા ગ્રહણ કરી શકે નહિ સાધુની સામે કરવામા

સાધુનુદ્દિશ્ય કરદર્વ્યાદિપ્રક્ષાલને પુરઃકર્મનિમિત્તકો દોષો ભવત્યેવેતિ ન તદિને તત્રાશનાદિક ગ્રાહ્યમ્ ।

નન્નુ ઋસ્મિશ્ચિદ્ભવને યેન પુરઃકર્મ્માચરિત તદિતરસ્ય કરતો ભિક્ષોપાદાને કથ દોષઃ ? ઇતિ ચેદુચ્યતે—

યથા યેન ત્રિપાક્તમન્ન સમ્પાદ્યતે તદિતરસ્ય હસ્તાદપ્યુપાદીયમાન તદેવાન્ન મહત્તેઽનર્થાય કલ્પતે, તથા પુરઃકર્મદૂપિતમપિ । અત્રાય વિશેષઃ—યત્ર ગૃહે પુરઃકર્મ સમાચરિત તત્ર તસ્મિન્ દિવસે સર્વે દ્રવ્યમકલ્પ્યમેત્ર ॥૩૨॥

યહ સદા સ્મરણ રચના ચાહિયે કિ યદિ સાધુકે નિમિત્ત હાથ યા કુડછી આદિકો ધોયા હો તો પુરઃકર્મ દોષ લગતા હી હૈ, હસલિયે ડસ ઘરમે સાધુ, ભિક્ષા નહી લેવે ।

પ્રશ્ન—હે ગુરુમહારાજ ! કિસી મકાનમેં ઇકને પુર.કર્મ કિયા તો ડસસે આહાર આદિ ન લેકર, દૂસરે વર્તન યા દૂસરે વ્યક્તિકે હાથસે લિયા જાય તો ક્યોં દોષ લગતા હૈ ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! જૈસે—કિસીને વિષ-મિશ્રિત આહાર બનાયા હો તો બનાને વાલેસે ન લેકર દૂસરેકે હાથસે લિયા જાય તો ખી વહ આહાર મહાન્ અનર્થકારી હોતા હૈ, ડસી પ્રકાર, પુરઃકર્મ દૂપિત આહાર આદિ ખી અનર્થકારક હોતા હૈ ।

હતની ફિર વિશેષતા સમજ્ઞની ચાહિયે કિ, જિસ ઘરમેં પુર.કર્મ કિયા ગયા હો ડસ ઘરમેં ડસ દિન સવ દ્રવ્ય અકલ્પ્ય હોતે હૈ ॥ ૩૨ ॥

એ વાત સદા યાદ રાખવી કે જો સાધુને નિમિત્તે હાથ યા કુડછી આદિને ધોવા હોય તો પુર કર્મ હોય લાગે છે જ, તેથી એ દિવસે એ ઘરમા સાધુ ભિક્ષા લે નહિ

પ્રશ્ન—હે ગુરુ મહારાજ ! કેઈ મકાનમા એકે પુર કર્મ કર્યું હોય તો ત્યા તેનાથી આહારાદિ ન લેતા, ખીજા વાસણથી યા ખીજા વ્યક્તિના હાથથી લેવામા આવે તો કેમ હોય લાગે ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! જેવી રીતે કેઈએ વિષમિશ્રિત આહાર બનાવ્યો હોય તો બનાવનારના હાથથી ન લેતા ખીજાના હાથથી લેવામા આવે તોપણ એ આહાર મહાન્ અનર્થકારી થાય છે, તેમ પુર કર્મદૂપિત આહારાદિ પણ અનર્થકારક થાય છે

એટલી વિશેષતા સમજવી જોઈએ કે, જે ઘરમા પુર કર્મ કરવામા આવ્યું હોય તે ઘરમા એ દિવસે બધા દ્રવ્યો અકલ્પનીય બને છે (૩૨)

- (१) स दाता (पुरःकर्मकर्ता), अन्यद् द्रव्यम्, अन्यद्गृहम् ।  
 (२) स दाता, अन्यद्रव्यम् तद्गृहम् (यत्र पुरःकर्म कृतम्) ।  
 (३) स दाता, तद्रव्यम् (यद्रव्यमुद्दिश्य पुरःकर्म कृतम्), अन्यद्गृहम् ।  
 (४) स दाता, तद्रव्य, तद्गृहम् ।  
 (५) अन्यो दाता, तद्रव्य, तद्गृहम् ।  
 (६) अन्यो दाता, तद्रव्यम्, अन्यद्गृहम् ।  
 (७) अन्यो दाता, अन्यद्रव्य, तद्गृहम् ।  
 (८) अन्यो दाता, अन्यद्रव्यम्, अन्यद्गृहम् ।

एष्वष्टसु भङ्गेषु प्रथमाऽष्टमौ भङ्गौ साधूना कल्प्यौ, तदितरे भङ्गा अकल्प्या ।

- १— वही (पुरःकर्म करनेवाला) दाता, अन्य द्रव्य, अन्य गृह ।  
 २— वही दाता, अन्य द्रव्य, वही गृह ।  
 ३— वही दाता, वही द्रव्य, अन्य गृह ।  
 ४— वही दाता, वही द्रव्य, वही गृह ।  
 ५— अन्य दाता, वही द्रव्य, वही गृह ।  
 ६— अन्य दाता, वही द्रव्य, अन्य गृह ।  
 ७— अन्य दाता, अन्य द्रव्य, वही गृह ।  
 ८— अन्य दाता, अन्य द्रव्य, अन्य गृह ।

इन आठ भगोमेंसे पहला भग और आठवाँ भग साधुके लिये कल्प्य है और अन्य सब अकल्प्य हैं ।

१	ऐज (पुर कर्म करनार) दाता,	अन्य द्रव्य,	अन्य गृह
२	ऐज दाता,	अन्य द्रव्य,	ऐज गृह
३	ऐज दाता,	ऐज द्रव्य,	अन्य गृह
४	ऐज दाता,	ऐज द्रव्य,	ऐज गृह
५	अन्य दाता,	ऐज द्रव्य,	ऐज गृह
६	अन्य दाता,	ऐज द्रव्य,	अन्य गृह
७	अन्य दाता,	अन्य द्रव्य,	ऐज गृह
८	अन्य दाता,	अन्य द्रव्य,	अन्य गृह

आ आठ लागामाथी पडेवे लागे अने आठमे लागे साधुने माटे कल्पनीय छे अने भील गधा अकल्पनीय छे

विन्दुनिपातरहित इति यावत्, सरजस्कः=सचित्तरजोऽवगुण्ठितः, हस्तादिवोद्ध्यः, तथा मृत्तिका=साधारणसचित्तमृत्तिका, ऊपः=क्षारमृत्तिका, हरिताल=स्वनामप्रसिद्धपीतवर्णधातुविशेषः, द्विज्जलकः=स्वनामख्यातपार्थिवरागद्रव्यविशेषः, मनःशिला=स्वनामख्यातरक्तवर्णधातुविशेषः 'मैनसील' इतिप्रसिद्धः अजन=सौवीराजनम्, लवण=सचित्तसामुद्रिकलवणम्, गैरिक-वर्णिक-सेटिका-सौराष्ट्रिका-पिष्टकुकुसा इति, मूले आर्पत्वाल्लुप्तविभक्तिक पदम्, तत्र गैरिकः=स्वनामप्रसिद्धो धातुः, वर्णिका=पीतवर्णमृत्तिका, सेटिका=श्वेतमृत्तिका 'खडी' इतिभाषाप्रसिद्धा, सौराष्ट्रिका=गोपीचन्दन पिष्ट=गोध्रमादिचूर्णम्, कुकुसः=तत्कालकण्ठितधान्यतुपः, च=पुनः उत्कृष्ट=कृष्णाम्ण्डा-लात्रपुप-तरम्मुजादीना शस्त्रकृत श्लेष्मणखण्डम्, एतैर्मृत्तिकादिभिरसमृष्टः=साधवे भिक्षा ददामीतिकृत्वा ससर्गसम्मार्जनेन तदलितः, समृष्टः=तत्ससर्गसम्मार्जनेनापि तल्लिप्त एव कृतः=विहितो हस्तादिवोद्ध्य' । पुरःकर्मयुक्तेन हस्तादिनेव उदकाद्रादिहस्तादिना, तथा मृत्तिकादिसमृष्टहस्तादिक केनापि विधिना साधुनिमित्तमसमृष्टीकृत्य सम्मार्ज्यं, एव मृत्तिकादिसमृष्टहस्तादिना च ददती प्रत्याचक्षीत-तादृश मे न कल्पत इति ॥३३॥३४॥

(हाथकी रेखा गीली हो), सचित्त रजसे सहित तथा साधारण सचित्त मिट्टी, खारी मिट्टी, हरताल, द्विज्जल, मैनसील, अजन, सचित्त नमक, गेरू, पीली मिट्टी, खडिया मिट्टी, गोपीचन्दन, ताजा पीसा हुआ गेहू आदिका आटा, तत्काल खाडा हुआ वान्यका तुप (बुस्सा), कुम्भडा (कहू), तुम्बा (ककडी), तथा तरबूजके छोटे-रे खड, इन सबसे हाथ लिप्त हो अथवा किसी प्रकारसे साधुके लिये उसे (सचित्तसे लिप्त हाथको) अलिप्त क्रिया हो और उस हाथसे भिक्षा देवे तो साधु कहें कि 'ऐसा आहार हमे नहीं कल्पता है' ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

रेखाओ लीली होय, सचित्त रजसी सहित, तथा साधारण सचित्त माटी, खारी माटी, हरताल, द्विज्जल, मैनसील, सुरभो, सचित्त भीडु, गेरू, पीली माटी, खडीली माटी, गोपीचन्दन, ताजा दण्डेला धडे आदिने आटे, ताजा भाउला धान्यना तुप (बूडु), जेडडु, हूथी तथा तउभूथना कडडा, ये गंधाथी हाथ लिप्त होय, अथवा डोढ प्रकारे साधुने माटे तेने (सचित्तथी गंधायला हाथने) अलिप्त कथा होय अने ये हाथथी भिक्षा आपे तो साधु कडे के 'ऐसे आहार मने कल्पते नथी' (३३-३४)

मूलम्-एव उदउल्ले ससिणिद्धे ससरक्खे मट्टिया ऊसे ।

हरियाले हिंगुलए, मणोसिला अजणे लोणे ॥३३॥

गेरुय-वन्निय-सेडिय, सोरट्टिय-पिट्ट-कुक्कुस कए य ।

उक्किट्ट-मससट्टे, ससट्टे चेव बोद्धवे ॥ ३४ ॥

छाया—एवम् उदकारः सस्निग्धः, सरजस्को मृत्तिका ऊपः ।

हरिताल द्विदुलक, मनःशिलाऽञ्जन लवणम् ॥३३॥

गैरिक-वर्णिक -सेटिका, सौराष्ट्रिका-पिट्ट-कुक्कुसाः कृतश्च ।

उक्कट्टमससट्टः, ससट्ट एव बोद्धव्यः ॥३४॥

सान्वयार्थः—एव=इसी प्रकार उदउल्ले=टपकते हुए जलसहित ससिणिद्धे=गीली रेखाओंसे सहित या ससरक्खे=सचित्त रजसे गुण्ठित-सहित हाथ आदि हो, (तथा) मट्टिया=सचित्त मिट्टी ऊसे=साजीखार हरियाले=हरताल हिंगुलए=हिंगूल मणोसिला=मैनसिल अजणे=सौवीराञ्जन लोणे=सचित्त नमक ॥ गेरुय=गेरु वन्निय=पीली मिट्टी सेडिय=श्वेत मिट्टी-खड़ी सोरट्टिय=सोरठी मिट्टी गोपी चन्दन पिट्ट=तत्कालका पीसा हुआ आटा (तथा) कुक्कुस=तत्कालके खाड़े हुए धान्यके तुप-भूसे-से भरे हुए य=और उक्किट्ट=चाकूसे बनाये हुए कोले, तूने, करुडी आदिके कोमल कोमल टुकड़े, इन पूर्वोक्त किसी वस्तुसे भी अस्ससट्टे=खरडे-लिपे-हुए हाथ आदिको साधुके लिए किसी प्रकारसे अलिप्त बनाया हो, धोरर या पूछकर साफ किया हो, ऐसे हाथको ससट्टे=चेव कए लिप्तही बोद्धवे=जान लेवे, अर्थात् इस प्रकारके अससट्ट हाथ आदिसे अथवा इनसे समूह हाथ आदि से साधु आहार-पानी नहीं लेवे, यह प्रकरणगत सम्बन्ध है ॥३३-३४॥

टीका—‘एवम् उदउल्ले’ इत्यादि । एवम्=इत्यमेव पुर कर्मवदित्यर्थः । उदकारः=गलत्सचित्तजलविन्दुक, सस्निग्ध =ईपदारः=आर्द्रभूतहस्तरखादिन -

‘एव उदउल्ले’ इत्यादि, ‘गेरुय’ इत्यादि च ।

इसी प्रकार, गिरते हुए सचित्त जलकी बूदोसे युक्त, थोडा, गीला

एव उदउल्ले इत्यादि गेरुय इत्यादि

श्री प्रभाषे, पडता सचित्त नणना जिहुन्धोथी युक्त, थोडा वीला (हाथनी

सचित्तजलेन तत्करादिकालनसम्भवः, तच्च प्रक्षालनादिकं भिक्षुनिमित्तकमिति पश्चात्कर्मदोषो विज्ञेयः, यत्रेवपि त्रेनापि हस्तादिना स्वयं भुञ्जीतान्तरस्मै वा परिवेषयेत्तदा न पश्चात्कर्मदोषः, तत्र पश्चाद्वाग्निं. प्रक्षालनादेर्भिक्षुनिमित्तत्वाभावात्, यत्र दर्व्यादीं पश्चात्कर्मदोषसम्भावनाया अभावस्तत्र नाय प्रतिषेध इत्याशयः ॥३५॥

मूलम्-ससद्वेण<sup>१</sup> य<sup>३</sup> हत्येण<sup>२</sup>, दन्वीए<sup>४</sup> भायणेण<sup>५</sup> वा ।

दिज्जमाण<sup>७</sup> पडिच्छिज्जा<sup>८</sup>, ज<sup>९</sup> तत्थेसणियं<sup>१०</sup> भवे<sup>११</sup> ॥३६॥

उया—ससद्वेण च हस्तेन, दर्व्यां भाजनेन वा ।

दीयमानं प्रतीच्छेत्, यत्तत्रेषणीयं भवेत् ॥३६॥

सान्त्वयार्थं-ससद्वेण=व्यञ्जनादिसे लिप्तं हत्येण=हाथ य=या दन्वीए=कूटजी वा=अथवा भायणेण=वर्तनसे दिज्जमाण=दियाजानेवाला आहारादि हो तत्थे=वहा उस आहारादिम ज=जो एसणिय=उद्गम-उत्पादना-आदि दोषरहित भवे=हो, उसे पडिच्छिज्जा=छेवे ॥३६॥

टीका—‘ससद्वेण’ इत्यादि । टीका स्पष्टा ॥३६॥

और वह प्रक्षालन साबुके निमित्तसे होगा, इसलिये वहाँ पश्चात्कर्मदोष लगता है । यदि ऐसे (लिप्त क्रिये दृष्ट) ही हाथसे स्वयं भोजन करे या दूसरेको परोसे तो पश्चात्कर्मदोष नहीं लगता, क्योंकि रादमें होनेवाले उस प्रक्षालन आदि कर्मका निमित्त, साबु नहीं रहता है-अर्थात् जिस कुडजी आदिमें पश्चात्कर्म होनेकी सम्भावना न हो वहाँ यह निषेध नहीं है-यानी वह लेना कल्पता है ॥ ३५ ॥

‘ससद्वेण’ इत्यादि । ससद्वे हाथ, कुडजी और वर्तनसे दिये जानेवाले आहारमेंसे जो एषणीय अर्थात् उद्गम-उत्पादना-आदिदोषरहित हो वह साबु ग्रहण करें ॥ ३६ ॥

प्रक्षालन साधुना निमित्ते थाय, तेथी तेमा पश्चात्कर्मदोष लागे ते जे जेवा (लिप्त करेवा-भोजयला)न हाथथी पाने भोजन करे या णीजने पीरने तो पश्चात्कर्मदोष लागतो नथी, जणु के तराणाड थनाइ प्रक्षालन-आदि कर्मनु निमित्त साधु रहेतो नथी अर्थात् ते कूटजी आदिमा पश्चात्कर्म थवानी मभावना नडि होय, त्या जे निषेध गी जेठवे हे जे आहार लेवे साधुने कपे ते (३५)

ससद्वेण इत्यादि मसद्वे हाथ, कूटजी जे वासणुथी आपवामा आवता आडा माथी जे एषणीय अर्थात् उद्गम उत्पादना आदि दोषही रहित होय ते साधु ग्रहण करे (३६)

४ ५ १ ७ ८  
मूलम्—अससृष्टेण हृत्थेण, दृवीए भायणेण वा ।

६ १० ११ २ १ ३  
दिज्जमाणं न इच्छिज्जा, पच्छाकम्म जहिं भवे ॥३५॥

छाया—अससृष्टेण हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।

दीयमान नेच्छेत्, पश्चात्कर्म यत्र भवेत् ॥३५॥

सान्वयार्थः—जहिं=जहा पच्छाकम्म=पश्चात्कर्म साधुको आहार आदि देनेके बाद सचित्त जलसे हाथ आदिका धोना भवे=होनेवाला हो उस प्रकारके अससृष्टेण=व्यञ्जन शरु कड़ी आदि-से अलिप्त याने साफ 'ऐसे' हृत्थेण=हाथ दृवीए=कूडली वा=अथवा भायणेण=वर्तनसे दिज्जमाण=दिये जानेवाले आहार आदिकी साधु न इच्छिज्जा=इच्छा न करे, अर्थात् उस आहारादिकी साधु न लेवे ॥३५॥

टीका—पश्चात्कर्म-दोषमाह—'अससृष्टेण०' इत्यादि । यत्र=हस्तादीं पश्चात्=दानानन्तर कर्म भवेत्=सम्भवेत् तादृशेन अससृष्टेण=व्यञ्जनादिनाऽलिप्तेन हस्तेन दर्व्या भाजनेन वा 'अससृष्टेने'-त्येतत्प्रत्येक सम्बन्धयते, दीयमानमाहारादिक नेच्छेत्=नाभिलषेत् मनसाऽपीत्यर्थात् । यत्र स्वार्थं व्यञ्जनादिना हस्तादिक नोपलिप्त किन्तु भिक्षुमुद्दिश्य भक्तादिदानार्थं हस्ताशुपलेपो जायते, तत्र दानानन्तर

अथ पश्चात्कर्मदोष बताते हैं—'अससृष्टेण' इत्यादि । भिक्षा देनेके अनन्तर गृहस्थको साधुके निमित्तसे सचित्त जल आदिके द्वारा हाथ आदि प्रक्षालन करनेकी सभावना हो तो साधु, ऐसे व्यञ्जन आदिसे अलिप्त हाथ, कूडली अथवा वर्तनसे दिये जानेवाले आहारकी अभिलाषा न करे ।

गृहस्थके हाथ अपनेलिये व्यञ्जन आदिसे लिप्त न होंतो उन हाथोंसे साधुको भिक्षा देवे, तदनन्तर सचित्त जलसे हाथका धोना सम्भव है

७६ पश्चात्कर्मदोष बताते हैं—अससृष्टेण इत्यादि

भिक्षा आप्या पछी साधुने निमित्तसे सचित्त जल आदि द्वारा हाथ आदि धोय नाथवाणी गृहस्थने भाटे सभावना होय, तो साधु जेवा व्यञ्जन आदिथी अलिप्त हाथ, कूडली अथवा वासण्थी आप्याभा आवनारा आहारनी अभिलाषा न करे

गृहस्थना हाथ पोताने भाटे व्यञ्जनादिथी लिप्त न होय तो जे हाथथी साधुने भिक्षा आप्ये, पछी सचित्त जलथी हाथ धोवाने सभव छे अने जे

मूलम्-दुण्ह तु भुजमाणाण, दोवि तत्थ निमतए ।

दिज्जमाण पडिच्छिज्जा, ज तत्थेसणिय भवे ॥३८॥

छाया—द्वयोस्तु भुज्जानयो, द्वावपि तत्र निमन्त्रयेताम् ।

दीयमान प्रतीच्छे, चत्तत्रैपणीय भवेत् ॥३८॥

सान्त्वयार्थः—अगर-भुजमाणाण=भोजन या खाद्य पदार्थोंके रक्षण करते हुए दुण्ह=दोमेंसे तु=यदि तत्थ=वहा दोवि=दोनों ही निमतए=निमन्त्रण करे-आहारादि वामे तो तत्थ=उस आहारादिमेंसे ज=जो एसणिय=एपणीय-निर्दोष हो वह दिज्जमाण=दिया जानेवाला आहारादि पडिच्छिज्जा=लेवे ॥३८॥

टीका—यद्युभावपि निमन्त्रयेता तदा तत्र यदेपणीय तद् गृह्णीयादित्यर्थः ॥३८॥

मूलम्-गुव्विणीए उवण्णत्थ, विविह पाणभोयण ।

भुजमाण विवज्जिज्जा, भुत्तसेस पडिच्छए ॥३९॥

छाया—गुर्विण्यै उपन्यस्त, विविज्ज पान भोजनम् ।

भुज्यमान विवर्ज्येद्, भुक्तशेष प्रतीच्छेत् ॥३९॥

सान्त्वयार्थः—गुव्विणीए=गर्भवतीके लिए उवण्णत्थ=पनाकर रखा हुआ विविह=नाना प्रकारका पाणभोयण=खान पान (यदि वह) भुजमाण=खा रही हो तो (उस आहारादिको साथ) विवज्जिज्जा=वरजे न लेवे, (किन्तु) भुत्तसेस=गर्भवतीके भोजन करलेनेके बाद जो शेष रहा हो तो उसे पडिच्छए=लेवे ॥३९॥

टीका—‘गुव्विणीए’ इत्यादि । गुर्विण्यै=गर्भवत्यै, उपन्यस्त=गर्भपोषणार्थ= तदीयरुच्यनुकूलतया सम्पादित स्थापित वा विविज्ज=नैरुप्रकार पान-भोजन=

यदि वे दोनों आहार देनेको उद्यत हों और वह आहार एपणीय हो तो ग्रहण कर लेवे ॥३८॥

‘गुव्विणीए’ इत्यादि । गर्भवती स्त्रीकी इच्छा के अनुसार अर्थात् उसके लिये बनाये हुए तथा गर्भको पुष्ट करनेवाले अनेक प्रकारके पान

के आहार आपवामा अ भेडि उद्यत होय अने अने आहार अपणीय होय तो साथ ते ग्रहण करे (३८)

गुव्विणीए० इत्यादि गर्भवती स्त्रीकी इच्छाने अनुसरीने अर्थात् अने अने आहारके तथा गर्भके पुष्ट करनेके अनेक प्रकारका पान अने भोजन



मूलम्-दुण्ह तु भुंजमाणाणं, एगो तत्थ निमंतए ।

दिज्जमाण न इच्छिज्जा, एदं से पडिलेहए ॥३७॥

छाया—द्वयोस्तु भुञ्जानयोः, एकस्तत्र निमन्त्रयेत् ।

दीयमान नेच्छेत्, छन्द तस्य प्रतिलेखयेत् ॥३७॥

सान्प्रयार्थः—तत्थ=वहा भुजमाणाण=भोजन करते हुए दुण्ह=दोनोमेंसे तु=यदि एगो=एक आदमी निमतए=निमन्त्रित करे—आहारादि देना चाहे तो दिज्जमाण=इह दियाजानेवाला आहारादि (साधु) न इच्छिज्जा=न चाहे-न लेवे, (किन्तु) से=उस नही निमन्त्रण करनेवालेके उद=अभिप्रायको पडिलेहए=देखे ॥३७॥

टीका—‘दुण्ह तु’ इत्यादि । तत्र=तयोः=एकवस्तुस्वामित्वेन प्रसिद्धयोः, द्वयोः भुञ्जानयोः=(अत्र सप्तम्यर्थे षष्ठी भुजधातुश्च पालनाभ्यवहारोभयार्थकस्ततश्च) पालयतोः, भोक्तुमुद्यतयोश्च मध्ये (पालनार्थकत्वे तु परस्मैपद स्वयमूहनीयम्) (यदि) एकः=अन्यतर. निमन्त्रयेत्=दातुमुद्यतेत, तदा दीयमानम् (आहारादि) भिक्षु नेच्छेत्, किन्तु तस्य=दानोद्यतेतरस्य छन्द=अभिप्राय भू नेत्रविकारादिरूपचिह्नैः प्रतिलेखयेत्=पेक्षेत-‘दानमस्येष्ट न वे’-ति निश्चिनुयादित्यर्थः ॥३७॥

ततः किं कुर्यादित्याह—‘दुण्ह तु’ इत्यादि ।

‘दुण्ह तु०’ इत्यादि । यदि एक वस्तुके दो स्वामी हों तथा दो गृहस्थ भोजन करनेके लिये उद्यत हुए हों, और उन दोनोमेंसे एक व्यक्ति आहार देनेके लिये उद्यत हो तो ऐसे आहारकी इच्छा भिक्षु न करे, किन्तु दूसरेके भोह नेत्र आदि विकारसे अभिप्रायका अनुभव करे कि वहराने (देने)में इसकी सम्मति है या नहीं ? ॥ ३७ ॥

इसके पश्चात् क्या करे ? सो कहते हैं—‘दुण्ह तु०’ इत्यादि ।

दुण्ह तु० इत्यादि जे ओक वस्तुना जे स्वामी होय तथा जे गृहस्थो भोजन करता होय अने जे भेमाथी ओक आहार आपवा भाटे उद्यत होय तो जेवा आहारनी इच्छा भिक्षु न करे परंतु पीबना भ्रमरो, नेत्र, आदिना विकारथी अलिप्रायनो अनुभव करे जे पडोरापवाभा जेनी सम्मति छे के नछि ? (३७)

जे पछी शु करे ? ते छडे छे—दुण्ह तु० इत्यादि

त तु=तो वह भक्षपाण=आहार-पानी सजयाण=सायुओंके लिए अकम्पिय= अरूपनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतिय=देनेवालीसे (साधु) पडियाडक्खे=रुहे कि तारिस=इस प्रकारका आहारादि मे=पुझे न कम्पड=नहीं रूपता है । ४०।४१।

टीका-‘सिया य०’ ‘त भवे’ इत्यादि । च=पुनः उत्थिता=दण्डवत्समवस्थिता, कालमासिनी=कालमासशब्देनात्र प्रसवकालमासो गृह्यते, स च सप्तमासादारभ्य सार्द्धसप्तरात्राधिक नवमास यावत्, तद्वती-प्राप्तप्रसवयोग्यसमयेत्यर्थः, गुर्विणी= गर्भवती, स्यात्=रुदाचित्, श्रमणार्थं=साधुनिमित्त-सा एवे दातुमित्यर्थः, निपीदेत्= उपविशेत्, वा=अथवा, निपण्णा=उपविष्टा पुनरुत्तिष्ठेत्, तदा तत्=तया दीयमान भक्त-पान तु सयताना=सयमवताम् अरुलिपक(त)म्=अग्राह्यम्, अतो ददतीं प्रत्याक्षीतेत्यादि पूर्ववत् ।

‘सर्वं वाक्य सावधारण भवती’-तिन्यायेन उन्थिता यदि दातुमुपविशेदेव,

‘सिया य०’ इत्यादि ‘त भवे०’ इत्यादि च । प्रसव-काल-मासवाली अर्थात् सातवें महीनेसे आरम्भ करके साढ़े सात रात सहित नववें महीने तक, अर्थात् सातवें महीनेके बाद प्रसव होनेतकके समयवाली स्त्री, यदि खड़ी हुई हो और सायुको भिक्षा देनेके लिये बैठे, अथवा बैठी हुई हो किन्तु भिक्षा देनेके लिये उठे तो उसके द्वारा दिया जानेवाला आहार, सयमियोंके लिये कल्प्य नहीं है, अतः देनेवाली (स्त्री) से कहे कि ‘ऐसा आहार हमें कल्पता नहीं है ॥’

सच वाक्य, ‘सावधारण अर्थात् निश्चय करानेवाले होते हैं’ इस न्यायके बलसे यहाँ पर यह तात्पर्य निकलता है कि यदि देनेवाली बैठी हो और खड़ी होकरके ही आहार देवे, या खड़ी हो किन्तु बैठ करके ही

सिया य० इत्यादि त भवे० इत्यादि प्रसवकालमासवाणी अर्थात् सातमा महीनाधी आरंभने भाडा सात रात सहित नवमा महीना सुधी, अटवे डे सतमा मडिना पडी प्रसव थाय त्यासुधीना समयवाणी स्त्री ले जषी डाय अने साधुने भिक्षा आपवाने माटे जेसे, अथवा जेडी डाय परन्तु भिक्षा आप वाने माटे उठे तो तेले आपेले आहार सयगीअने माटे कल्पनीय नथी, देनारी अने कडेपु डे ‘अये आडा० भने टपते नथी’

पधा वाक्यो ‘सावधारण्य अर्थात् निश्चय करानेवाला डाय छे’ अे न्याया नुसार अर्डी अे तात्पर्य नीकणे छे डे ले आपनारी जेडी डाय अने जषी थडने न आहार आपे या जषी डाय परन्तु जमीने न आहार आपे तो अे

पान=पेय-प्रपाणकादिक, भोजन=भोज्य मोदकादिक ( तथा ) मुख्यमानम्= उपमुख्यमान च विरर्जयेत्=न गृहीयात् यतस्तद र्गोपकल्पिताऽऽहारादिग्रहणे यथा रुच्यादाराद्यभावात्तदि-ग्रामद्रस्ततश्च गर्भपीडा-तत्पातादिसम्भवः । ननु तर्हि किं सर्वथा विरर्जयेदित्याह--'शुक्ते'ति-भुक्तशेष=भुक्तादयनिष्ठ प्रतीच्छेत्= उपाददीत ॥३९॥

<sup>५</sup> मूलम्-<sup>१</sup>सिया <sup>६</sup>य <sup>७</sup>समणद्वाए, <sup>४</sup>गुचिणी <sup>३</sup>कालमासिणी ।

<sup>२</sup>उट्टिया <sup>८</sup>वा <sup>९</sup>निसीएजा, <sup>६</sup>निसन्ना <sup>१२</sup>वा <sup>१०</sup>पुण्ड्रए ॥४०॥

<sup>१३</sup>तं <sup>१८</sup>भवे <sup>१४</sup>भक्तपाण <sup>१५</sup>तु, <sup>१७</sup>सजयाण <sup>१६</sup>अकप्पिय ।

<sup>२०</sup>दितिय <sup>२३</sup>पडिआडक्खे, <sup>२४</sup>न मे <sup>२१</sup>कप्पइ तारिसं ॥४१॥

छाया—म्याच्च श्रमणार्थ, गुचिणी मालमासिणी ।

उत्थिता वा निपीदेत्, निपण्णा वा पुनरुत्तिष्ठेत् ॥४०॥

तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामकल्पिक(त)म् ।

ददती प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४१॥

सान्वयार्थः—य=और कालमासिणी=नजदीक प्रसवकालवाली गुचिणी= गर्भवती स्त्री सिया=यदि कदाचित् उट्टिया वा=पहलेसे खडी हो (किन्तु) समणद्वाए=साधुके लिए अर्थात् साधुको आहारादि देनेके लिए निसीएज्जा=बैठे वा=अथवा निसन्ना=पहलेसे बैठी हुई (साधुके लिए) पुण=फिर उट्टए=ऊठे,

और भोजन (मोदक आदि) का और वह जिसका उपभोग कर रही हो उस आहारका (साधु) त्याग करे—ग्रहण न करे । क्योंकि उसके लिये बनाये हुए भोजनको ग्रहण करनेसे उसकी इच्छाका भंग होकर गर्भको पीडा पहुँचेगी, और गर्भपात तक होनेका सम्भव हो जायगा । तो क्या वैसा आहार लेवे ही नहीं ? सो कहते हैं—गर्भवती के भोजन कर लेने बाद जो आहार अवशेष रहे उसे ग्रहण करनेमे दोष नहीं है ॥३९॥

(मोदक आदि)ने अपने ते जेने उपभोग करी रही होय ते आहारने साधु त्याग करे—अच्छु न करे, कारण उ जेने माटे जनाववामा आवेला जेजनेने अच्छु करवाथी तेने खुचिने अनुसार भोजन नहि मणे, तेथी जेनी छुछाने भाग अणे अपने गर्भने पीडा पहुँचये अने गर्भपात पण अछु जवाने। सभव रहेसे तो शु जेवे आहार लेवेज नहि ? ते माटे उछे छे उ—गर्भवती जेजने करी रहे त्सारपछी जे आहार अवशेष छे तेने अच्छु करवामा होय नथी (३६)

छाया—स्तन्य पाययन्ती (च), दारक वा कुमारिकाम् ।

त निक्षिप्य रुदन्त-माहरेत्पान-भोजनम् ॥४२॥

तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामकल्पक(त)म् ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४३॥

सान्न्वयार्थः—दारक=लडके कुमारिय=लडकी वा=अथवा नपुसक किसीबी बच्चेको थणग=स्तन्य-दूध पिज्जमाणी=पिलाती हुई त=उस बच्चेको रोयत=रोते हुएको निम्निखवित्तु=भूमि आदि पर रखकर (यदि) पाण-भोयण=आहार-पानी आहरे=देवे, त तु=तो वह भक्तपाण=आहार-पानी सजघाण=साधु-ओके लिए अकल्पिय=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतिय=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कल्पइ= नहीं कल्पता है ॥४२-४३॥

टीका—‘थणग’ इत्यादि । दारक=शिशुम्, कुमारिका=वालिकाम्, ‘वा’ शब्दात्सगृहीत नपुसकञ्च, स्तन्य=दुग्ध पाययन्ती, त=पिबन्त शिशुप्रभृतिरु रुदन्त=क्रन्दन्त निक्षिप्य=भूम्यादौ निधाय पान-भोजनमाहरेत् तदा तद्भक्त-पान तु सय-तानामकल्पक(त) भवेत्, अतो ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृश मे न कल्पत इति ।

अत्रायमभिसन्धिः—यदि दारकादिः केवल स्तन्यपानोपजीवी स्तन्यपानान्न-भोजनोभयोपजीवी वा भवेत् त पाययन्ती स्तन्यपान सन्त्याज्य पानभोजनदद्यात्,

‘थणग’ इत्यादि, ‘त भवे’ इत्यादि ।

स्त्री यदि, लडके, लडकी या नपुसकको दूध पिलाती हो और उस पीनेवाले रोते हुए बालक आदिको, जमीन पर रख कर, पान-भोजन देवे तो साधु कहे कि ‘ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है,’ यहाँ तात्पर्य यह है कि, यदि बालक दूधमुहाँ हो अथवा दूध भी पीता हो और अन्न भी खाता हो, उस बालकको स्तनपान छोडा कर आहार पानी देवे,

थणग० धत्यादि, त भवे० धत्यादि

ले स्त्री पुत्र पुत्री के नपुसकने दूध पाती होय अने ओ पीनारा शेता गाणक आदिने जमीन पर भूझीने लेजन पान आपे तो साधु जे के ‘ओवे आहार अने कल्पता नथी’ अही तात्पर्य ओ छे के ले गाणक दूधमुथ (दूध पर न) होय अथवा दूध पीतु होय तथा अन्न पणु भातु होय, तो ओवा गाणकने स्तनपान छोडावीने आहार पाएँ आपे, अथवा केँ गाणक स्तनपान

ઉપત્રિષ્ઠા ત્રોત્તિષ્ઠેદેય તદ્વા દીયમાનમાહારાદિક્રમકલ્પક(ત) મ્યાદિતિ । તતાન્પ-  
 ર્યાડપ્રધારણેનેદમાયાતિ-ઉત્થિતા તાદગ્ની ગર્ભવતી યગૃત્થિતૈય, ઉપત્રિષ્ઠા વોપત્રિષ્ઠૈવ  
 દઘાત્તદા સાધુના નાડકલ્પક(ત) ણિન્તુ ગ્રાગમેષેતિ સ્થવિરકલ્પકાપેક્ષમિદમ્ ।  
 જિનકલ્પમિસ્તુ પ્રથમદિવસાદેય તયા દીયમાન ન ગૃહ્યતે ડતિ ટદ્વાઃ ॥

‘કાલમાસિની’ પદેન, પૃષ્ઠમાસાનન્તર ગર્ભસ્ય ગુરુત્વેનોત્યાનાદિક્રિપાયા  
 તત્સન્ચલનાદિના તસ્યા ગર્ભસ્ય ચ પીડાડપ્રશ્યમાપિનીતિ સમૃચિતમ્ ॥૪૦॥૪૧॥

મૂલમ્-થળગ પિજ્જમાણી (ય), દારગં વા કુમારિયં ।

૬ ૮ ૭ ૧૦ ૮  
 ત નિમ્લિખવિન્તુ રોયતં, આહરે પાણ-ભોયણ ॥૪૨॥

૧૧ ૧૬ ૧૨ ૧૩ ૧૪ ૧૫  
 ત ભવે ભન્ત-પાણ તુ, સજયાણ અકપ્પિય ।

૧૭ ૧૮ ૨૧ ૨૦ ૨૨ ૧  
 દિતિય પડિયાઙ્કલ્લે, ન મે કપ્પઙ્ તારિસ ॥૪૩॥

આહાર દેવે તો વસસે દિયા જાનેવાલા આહાર અકલ્પ્ય હોતા હૈ। ડસકા  
 તાત્પર્ય યહ હુઆ કિ એસી ગર્ભવતી સ્ત્રી યદિ વૈઠી હો ઓર વૈઠી વૈઠી હી  
 આહાર દેવે યા ઁવડી હો ઓર ઁવડી ઁવડી હી આહાર દેવે તો સાધુઓકે  
 લિયે અકલ્પ્ય નહી હૈ, કિન્તુ કલ્પનીય હી હૈ। યહ વાત, સ્થવિર-કલ્પકી  
 અપેક્ષાસે સમજ્ઞની ઁાહિયે। વૃદ્ધોંકા મત હૈ કિ જિનકલ્પી મહારાજ,  
 ગર્ભકે પ્રથમ ડિનસે હી ગર્ભવતી સ્ત્રીકે હાથસે ડિયા જાનેવાલા આહાર  
 સર્વથા નહી લેતે હૈ ।

‘કાલમાસિની’ પદસે યહ સૂચિત કિયા હૈ કિ-ઁઠે મહીનેકે વાદ  
 ગર્ભ ભારી હો જાતા હૈ, ડસ કારણ હિલને ઁોલનેસે ગર્ભવતીકો તથા ઁસકે  
 ગર્ભકો પીડા અવશ્ય હોતી હૈ ॥ ૪૦ ॥ ૪૧ ॥

રીતે આપવામા આવતો આહાર અકલ્પ્ય ગને છે એતુ તાત્પર્ય એ થયુ કે  
 એવી ગર્ભવતી સ્ત્રી જો બેઠી હોય તો બેઠી બેઠી જ આહાર આપે યા ઁલી હોય  
 તો ઁલી ઁલી આહાર આપે તો સાધુને માટે તે અકલ્પ્ય નથી, પરતુ કલ્પનીય છે  
 આ વાત સ્થવિર કલ્પની અપેક્ષાએ સમજવી જોઇએ વૃદ્ધોના મત એવો છે  
 કે જિનકલ્પી મહારાજ ગર્ભના પ્રથમ ડિવસથી જ ગર્ભવતી સ્ત્રીના હાથથી આપવામા  
 આવતો આહાર સર્વથા હૈતા નથી

કાલમાસિની એ શબ્દથી સૂચિત કરવામા આંચુ છે કે છઠા મહીના પછી  
 ગર્ભ ભારે થઇ જાય છે તેથી હીલ ચાલ કરવાથી ગર્ભવતી તથા એના ગર્ભને  
 અવશ્ય પીડા થાય છે (૪૦-૪૧)

श्या—स्तन्य पाययन्ती (च), दारक वा कुमारिकाम् ।  
 त निक्षिप्य रुदन्त, -माहरेत्पान-भोजनम् ॥४२॥  
 तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामकल्पिक(त)म् ।  
 ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे रूपते तादृशम् ॥४३॥

सान्वयार्थः—दारक=लडके कुमारिक=लडकी वा=अथवा नपुसक किसीभी वच्चेको थणग=स्तन्य दूध पिज्जमाणी=पिलाती हुई त=उस वच्चेको रोयत=रोते हुएको निक्खित्तु=भूमि आदि पर रखकर (यदि) पाण-भोयण=आहार-पानी आहरे=देवे, त तु=तो वह भत्तपाण=आहार-पानी सजयाण=साधु-ओके लिए अकप्पिय=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतिय=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पड= नहीं कल्पता है ॥४२-४३॥

टीका—‘यणग’ इत्यादि । दारक=शिशुम्, कुमारिका=वालिकाम्, ‘वा’ शब्दात्सगृहीत नपुसकञ्च, स्तन्य=दुग्ध पाययन्ती, त=पिपन्त शिशुमभृतिरु रुदन्त=क्रन्दन्त निक्षिप्य=भूम्यादौ निधाय पान-भोजनमाहरेत् तदा तद्भक्त-पान तु सय-तानामकल्पिक(त) भवेत्, अतो ददतीं प्रत्याचक्षीत—तादृश मे न कल्पत इति ।

अत्रायमभिसन्धिः—यदि दारकादिः केवल स्तन्यपानोपजीवी स्तन्यपानान्न-भोजनोभयोपजीवी वा भवेत् त पाययन्ती स्तन्यपान सन्त्याज्य पानभोजनदद्यात्,

‘यणग’ इत्यादि, ‘त भवे’ इत्यादि ।

स्त्री यदि, लडके, लडकी या नपुसकको दूध पिलाती हो और उस पीनेवाले रोते हुए बालक आदिको, जमीन पर रख कर, पान-भोजन देवे तो साधु कहे कि ‘ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है,’ यहाँ तात्पर्य यह है कि, यदि बालक दूधमुहाँ हो अथवा दूध भी पीता हो और अन्न भी खाता हो, उस बालकको स्तनपान छोड़ा कर आहार पानी देवे,

थणग० धत्यादि, त भवे० धत्यादि

जे श्री पुत्र पुत्री के नपुसकने दूध पाती होय अने जे पीनाग शैता गाणक आदिने जमीन पर भूझीने लोअन पान आपे तो साधु कहे के ‘अवेो आहार भने कल्पते नथी’ अही तात्पर्य अे छे के जे गाणक दूधमुध (दूध पर न) होय अथवा दूध पीतु होय तथा अन्न पणु आतु होय, तो अेवा गाणकने स्तनपान छोडवीने आहार पाणी आपे, अथवा कौण गाणक स्तनपान

उपविष्टा रोचिष्ठेदेव तदा दीयमानमाहारादिकमरुल्पिक(त) म्यादिति । तत्तात्पर्यं  
याऽऽधारणेनेदमायाति-उत्थिता तादृशी गर्भवती यशुत्थितैव, उपविष्टा योपविष्टैव  
दद्यात्तदा साधुना नाऽरुल्पिक(त) किन्तु प्राणमेवेति स्थविररुल्पिकापेक्षमिदम् ।  
जिनरुल्पिभिस्तु प्रथमदिवसादेव तथा दीयमान न गृह्यते इति वृद्धाः ॥

‘कालमासिनी’ पदेन, षष्ठमासानन्तर गर्भस्य गुरुत्वेनीत्यानादिक्रियाया  
तत्सञ्चलनादिना तस्या गर्भस्य च पीडाऽऽवश्यमाग्निनीति समुचितम् ॥४०॥४१॥

मूलम्-थणग पिज्जमाणी (य), दारग वा कुमारियं ।

त निम्बिखविज्जु रोयतं, आहरे पाण-भोद्यण ॥४२॥

त भवे भत्त-पाण तु, सजयाण अकप्पिय ।

दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पड तारिस ॥४३॥

आहार देवे तो उससे दिया जानेवाला आहार अकल्प्य होता है। इसका  
तात्पर्य यह हुआ कि ऐसी गर्भवती स्त्री यदि बैठी हो और बैठी बैठी ही  
आहार देवे या खड़ी हो और खड़ी खड़ी ही आहार देवे तो साधुओंके  
लिये अकल्प्य नहीं है, किन्तु कल्पनीय ही है। यह बात, स्थविर-कल्पकी  
अपेक्षासे समझनी चाहिये। वृद्धोंका मत है कि जिनकल्पी महाराज,  
गर्भके प्रथम दिनसे ही गर्भवती स्त्रीके हाथसे दिया जानेवाला आहार  
सर्वथा नहीं लेते हैं ।

‘कालमासिनी’ पदसे यह सूचित किया है कि-छठे महीनेके बाद  
गर्भ भारी हो जाता है, इस कारण हिलने डोलनेसे गर्भवतीको तथा उसके  
गर्भको पीडा अवश्य होती है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

रीते आपवाभा आवतो आहार अकल्प्य गने छे अेनु तात्पर्यं अे थयु के  
अेवी गर्भवती स्त्री ने बैठी होय तो बैठी बैठी न आहार आपे या जली होय  
तो जली जली आहार आपे तो साधुने भाटे ते अकल्प्य नहीं, परंतु कल्पनीय छे  
आ बात स्थविर क पनी अपेक्षाअे समझवी नेधअे वृद्धोना मत अेवे छे  
के जिनकल्पी महाराज गर्भना प्रथम दिवसथी न गर्भवती स्त्रीना हाथथी आपवाभा  
आवतो आहार सर्वथा देता नहीं

कालमासिनी अे शण्ठथी सूचित करवाभा आव्यु छे के छडा महीना पछी  
गर्भ भारे थध नय छे तेथी हील बाल करवाथी गर्भवती तथा अेना गर्भने  
अवश्य पीडा थाय छे (४०-४१)

टीका—‘ज भवे०’ इत्यादि । यद्भक्त-पान तु कल्प्याकल्प्ये=कल्प्य च अकल्प्यञ्चेति समाहारद्वन्द्वे कल्प्याकल्प्य तस्मिन्, भावप्रदानश्चाय निर्देशस्ततश्च कल्प्यत्वेऽकल्प्यत्वे चेत्यर्थः, कल्प्यत्प्रमुद्गमादिदोषरहितत्वमकल्प्यत्व च तत्सहितत्वम्, तत्र शङ्कित=शङ्का(सशय)युक्तत्वम् ‘इदं भक्तपानं कल्प्यमकल्प्य वे’-त्येवविधसशय-विषयीभूतमित्यर्थः, भवेत् तत् ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृश मे न कल्पत इति ॥४४॥

१ ११ २ ३ ४  
मूलम्-दग्वारेण पिहिय, नीसाए पीढएण वा ।

५ ६ ७ ८ १० ८  
लोढेण वा विलेवेण, सिलेसेण वि केणइ ॥४५॥

१२ १३ १५ १६ १४ १८ १७  
त च उच्चिदिआ दिज्जा, समणट्टाए व दावए ।

१८ २० २३ २० २४ २१  
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४६॥

उाया—दग्वारेण पिहित, निश्रया पीठकेन वा ।

लाष्टेन वा विलेपेन, श्लेषेण वा केनापि ॥४५॥

तच्चोद्भिद्य दद्यात्, श्रमणार्थं वा दापयेत् ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४६॥

सान्त्वयार्थं.—दग्वारेण=जलके भरे हुए घड़ेसे नीसाए=पटीके पुडियेसे या पीसनेकी शिलासे वा=अथवा पीढएण=पीढेसे लोढेण=लोढेसे वा=अथवा विलेवेण=मिट्टी आदिके लेपसे वि=अथवा केणइ=दूसरे किसी प्रकारके सिलेसेण=मोम लाख आदि चिकने पदार्थसे पिहिय=आच्छादित या मुद्रित किया-हुआ अशनादिका वरतन हो, त च=उसे यदि समणट्टाए=साधुके लिए उच्चिदिआ=उघाड (खोल) कर दिज्जा=गुठ देवे वा=अथवा दावए=दूसरेसे दिलावे तो दितिय=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=रुहे कि तारिस=ऐसा आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नही कल्पता है ॥४५-४६॥

‘ज भवे’ इत्यादि । ‘यह भक्त पान कल्प्य है या अकल्प्य’ इस प्रकार जिममे सन्देह हो वह भक्त-पान देनेवालीसे साधु कहे कि ऐसा आहार मुझे ग्राह्य नहीं है ॥ ४४ ॥

ज भवे० इत्यादि ‘आ भोजन पान कल्प्य छे के अकल्प्य?’ ओ प्रकारने जेभा स देह उत्पन्न याय ते भोजन पान आपनारीने साधु कहे के जेवा आहार भने ग्राह्य नहीं (४४)



અથવા ય શિશુઃ સ્તન્યમપિયન્નક્રે સમીપે યા તિષ્ઠેત્ત પરિત્યજ્ય દાતુ પૃથગ્ભૂતાયા તસ્યા યદિ સ રુગ્નાત્ તદાપિ તપા દીયમાનમાહારાદિકુ સયતાનામકલ્પિક(ત)મ્, શિશ્યાગ્રાહારાન્તરાય-કર્કશહસ્ત-ભૂમિ-મશ્ચક્રાદિસ્પર્શજનિતપીડા-માસાગિ માર્ગીર-કુક્કુરાદિજન્તુક્રતોપઘાતાદિસમ્ભવાત્, દશ્યતે ઠિ ક્વચન નિર્જનાદૌ સ્થાને શૃગા-લાદયો માલાનપદ્ધત્ય પલાયન્ત ઇતિ ॥૪૨॥૪૩॥

મૂલ્મ-જ<sup>૧</sup> ભવે<sup>૨</sup> ભત્તપાણ<sup>૩</sup> તુ<sup>૪</sup>, કપ્પાકપ્પમિ<sup>૫</sup> સંકિય<sup>૬</sup> ।

દિતિય<sup>૭</sup> પડિયાઙ્ક્વે<sup>૮</sup>, ન મે<sup>૯</sup> કપ્પઙ્ તારિસ<sup>૧૦</sup> ॥૪૪॥

ઝાયા—યદ્ભવેદ્ભક્ત-પાનન્તુ, કલ્પ્યાકલ્પ્યે શક્કિતમ્ ।

દદતીં પ્રત્યાચક્ષીત, ન મે કલ્પતે તદશમ્ ॥૪૪॥

સાન્વયાર્થ-જ=જો ભત્તપાણ તુ=અશનાદિ કપ્પાકપ્પમિ=કલ્પ્ય અકલ્પ્યકે વિપયમે સંકિય=શક્કિત શક્કાર્પદ ભવે=હો તો દિતિય=દેનેવાલીસે પડિયા-ઙ્ક્વે=રહે કિ તારિસ=ઇસ પ્રકારના આહારાદિ મે=મુણ્ને ન કપ્પઙ્=નહીં કલ્પતા હૈ ॥૪૪॥

યા કોઈ બાલક, સ્તન પાન ન કરતા હુઆ મી ગોદમેં યા સમીપમે બેઠા હો, ઉસે ઝોડકર સ્ત્રી આહાર દેનેકે લિયે જાવે ઓર બાલક રોને લગે તો મી ઉસકે દ્વારા દિયા જાનેચાલા આહાર, સયમિયોકો ગ્રાહ્ય નહીં હૈ, ક્યોંકિ ઇસસે ઉસકે બાલકકે આહારમેં અન્તરાય પડતી હૈ, માતૃ-વિરહજન્ય દુઃખ હોતા હૈ, કઠોર હાથ, ભૂમિ, ચાટ આદિકે સ્પર્શસે પીડા હોતી હૈ ઓર માસમોજી ચિલાહ કુલ્સે આદિ જાનવરોકે દ્વારા ઉપઘાત હોનેકા સમ્ભવ રહતા હૈ । કર્હીંર (પહાડી પ્રદેશોમે) શૃગાલ (ગીદડ), બાલકોંકો ઉઠા કર લે ભાગતે હૈ એસા દેખા જાતા હૈ ॥ ૪૨ ॥ ૪૩ ॥

ન કરતુ હોય પણ ખોળામા યા સમીપમા બેઠુ હોય, તેને છોડીને સ્ત્રી આહાર આપવાને માટે નય અને બાળક શેવા લાગે તોપણ તેણે આપેલી આહાર સ યમીએને માટે ગ્રાહ્ય નથી, કારણ કે તેથી તેના બાળકના આહારમા અતરાય પડે છે, માતૃવિરહજન્ય દુઃખ થાય છે, કઠોર હાથ, ભૂમિ, ખાટલા આદિના સ્પર્શથી પીડા થાય છે અને માસલોહણ ધીલાડા દ્વારા આદિ જાનવરો દ્વારા ઉપઘાત થવાનો પણ સંભવ રહે છે કયાક કયાક (પહાડી પ્રદેશોમા) શિયાળ બાળકોને ઉઠાવી નય છે, એવુ બોવામા આવે છે (૪૨-૪૩)

छाया—अशन पानक वापि खाद्य स्वाद्य तथा ।

यज्जानीयात् शृणुयाद्वा, दानार्थं प्रकृतमिदम् ॥४७॥

तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामकल्पिक(त)म् ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४८॥

सान्त्वयार्थः—ज=जो असण=ओदन आदि अशन पाणग=दाख आदिका धोवन वाचि=अथवा खाडम=केला आदि खाद्य तथा=और साइम=एलची लूग आदि स्वाद्य इम=यह 'दाणट्टा' पथिकोको देनेके लिए पगड=उपकल्पित-निकाला हुआ है जो अपने या अपने कुटुम्बके लिए काममें नही लाया जावे ऐसा जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसीसे सुन लेवे तो त=वह भत्तपाण तु=आहार-पानी सजघाण=साधुओके लिए अकप्पिग्ग=अन्नपनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतिय=देती हुईसे साधु पडिघाइक्खे=रुहे कि तारिस= इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पड=नहीं कल्पता है ॥४७-४८॥

टीका—'असण०' इत्यादि, 'त भवे०' इत्यादि च । यत् अशन=भोज्य-मोदन-पूरिकादिक, पानक=द्राक्षादिजलम्, अपिवा=अथवा खाद्य=रुदलीफला-दिक, स्वाद्यम्=एला-लवङ्ग-कर्पूर-पूगीफलादिकम्, 'दानार्थं=देशान्तरादागतेन वणिगादिना साधुवादार्थं स्वकीयप्रशसानिमित्त दातुम्, इदं प्रकृतं=नियतरूपेणोप-कल्पितम्' इति जानीयात्=आमन्त्रणादिना अवगच्छेत्, शृणुयाद्वा=कुतश्चि-

'असण०' इत्यादि, तथा 'त भवे०' इत्यादि ।

ओदन आदि अशन, दाखका जल आदि पान, केला आदि खाद्य, लोंग, कपूर, इलायची, सुपारी आदि स्वाद्य, 'यह देना तरसे आये हुए वणिक् आदिने अपनी प्रशसाके निमित्त देनेके लिये रक्खा है।' ऐसा जो समझे या किसीसे सुने तो वह अशनादि, सयमियोंको कल्पनीय नहीं है,

असण इत्यादि, तथा त भवे० इत्यादि

ओदन आदि अशन, द्राक्षना धोवणुनुं ञ्ण आदि पान, देणा आदि खाद्य, लचीग, कपूर, इलायची, सुपारी आदि स्वाद्य, "आ देशान्तर्धी आवेला वणिक् आदिने पेतानी प्रशसाने लीधे आपवने भाटे राणेल छे" ओवु जे सम्भवाभा के डोड पासेथी सासणवाभा आवे तो ओ अशनादि सयमीओने

टीका-‘दकवारेण०’ ‘त च’ इत्यादि । दकेति दक=जल (भोक्त प्राज्ञैर्भुवनममृत जीवनीय दक च’ इति हलायुधः,) वारयति=वर्धनिःसरणतो निरुणद्भीति दक वारः=जलसमृत्त रूतसादिभाजन तेन, निश्रया=परद्रेन पेपणचक्रेण शिवापट्रेन (पेपणार्थपापाणेन) वा, पीठकेन=काष्ठनिर्मिताऽऽसनेन, लोष्टेन=शिलादि खण्डेन, विलेपेन=मृत्तिकादिलेपेन, केनापि श्लेषेण=सिन्धु लाक्षादिना वा पिहितम्=आच्छादित मुद्रित वा यदन्नादिभाजनमिति प्रसङ्गलभ्य भवेत्, तच्च श्रमणार्थं मुद्दिघ्न=उद्धाटय (स्वयं) दद्याद्वापयेद्वा तदा गुरुतरस्तूत्यापनकेशर्हिसादि- सम्भावनया ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्वम् ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मूलम्-असण पाणगं वा वि, खाइम साइम तहा ।

ज जाणेजा सुणेजा वा, दाणटा पगडं इम ॥४७॥

त भवे भत्त-पाण तु, सजयाण अकप्पिय ।

दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पड तारिस ॥४८॥

‘दकवारेण०’ इत्यादि, ‘त च’ इत्यादि ।

जलसे भरेहुए वर्त्तनसे, चक्की के पुडसे, मसाला आदि पीसनेकी शिलासे, पीड़े (बाजोट) से, लोडे (मसाला आदि पीसनेके वजनदार पत्थर) से ढके हुए, तथा मिट्टी आदिके लेपसे, अथवा अन्य किसीसे छादे या लाख आदिसे मुद्रित किया हुआ अन्न-पान, साधुके लिये उघाडकर स्वयं देवे या दूसरेसे दिलावे तो क्लेश और हिंसाकी सम्भावनाके कारण देनेवालीको कहे कि ऐसा आहार हमे ग्राह्य नहीं है । तात्पर्य यह है कि, भारी वस्तुके उठानेमे स्व-पर-विराधना आदि अनेक दोषोंकी सम्भावना होनेसे यह निषेध किया गया है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

दकवारेण० इत्यादि, त च इत्यादि

जगथी बरेला वासजुथी, धमीना पडथी, मसालो वाटवाना औरशियाथी गालेठथी, मसालो वाटवाना वजनदार पत्थरथी, ढाकेलु तथा भाटी आदिना लेपथी अथवा अन्य कोई पदार्थथी छाडेलु के लाभ आदिथी गध जरेलु वासजु साधुने भाटे उघाडीने अन्न-पान पोते आपे या पीजत पासे अपावे तो क्लेश अने हिंसाणी सभावनाथी आपनारीने साधु कडे डे जेवो आहार मने ग्राह्य नथी तात्पर्य जे छे के बारे वस्तु उपाडवामा स्वपर-विराधना आदि अनेक दोषोनी सभावना डोवाथी जे निषेध करवामा आव्यो छे (४५-४६)

माणत्वाद्वा दीनेभ्यो वितरणार्थमिदं प्रकृतम्=उपकल्पितम्-स्व-स्वपोष्यवर्गोभयो-  
पभोग्यभिन्नतया स्थापितमिति यावत्' इति जानीयात् शृणुयाद्वा तद्भक्तपान-  
मित्यादि पूर्ववत् । पूर्वगाथाया 'दाणद्वा' इत्यत्र दान-शब्देन स्वप्रशसार्थं दान  
गृह्यते, प्रकृते 'पुण्णद्वा' इत्यत्र पुण्य शब्देन स्वप्रशसाव्यतिरिक्तफलाभिसन्धानेन  
दान गृह्यते, इति दानपुण्ययोर्भेदः । 'महाव्रतधारिभ्य एव यदीयते तत्रैव पुण्यं न  
तु तदितरेभ्यः प्रदाने, तथा सति हि प्रत्युत पापकलापः समुत्पद्यते' इति  
केचिदाहुः, ('तेरहपथी' शब्देन प्रसिद्धाः साधव आहुः,) तद् भ्रान्तिविलसितम्,

देनेके लिये है-अर्थात् पुण्यार्थ वनाया गया है' ऐसा जाने या सुने तो  
वह सयमीके लिये ग्राह्य नहीं है, अत एव ऐसा आहार देनेवालीसे कहे  
कि-'यह भक्त-पान लेना मुझे नहीं कल्पता है' । पहली गथामें आये  
हुए 'दाणद्वा' पदके 'दान' शब्दसे 'अपनी प्रशसाके लिये दिया  
जानेवाला दान' अर्थ ग्रहण किया है, किन्तु इस गाथामें 'पुण्णद्वा'के  
'पुण्य' शब्दसे अपनी प्रशसाके सिवाय अन्य किसी प्रयोजनसे दिया  
जानेवाला दान' अर्थ होता है-दान और पुण्यमें यही अन्तर है ।

'कोई कोई कहते हैं कि-"महाव्रतधारी मुनियोको जो दान दिया  
जाता है उसीमें पुण्य है-दूसरोको देनेमें नहीं, दूसरोको देनेसे उलटा पाप  
लगता है" । उनका यह कहना भ्रान्ति-मूलक है, क्योंकि, भगवान्ने

१ तेरहपथी संप्रदाय के साधु ।

भाटे छे, अर्थात् पुण्यार्थ जनानववाभा आव्या छे" जेवु जणववाभा या साल  
जववाभा आवे तो जे सयमीने भाटे ग्राह्य नहीं तेथी करीने जेवो आहार  
आपनारीने साधु ठहे दे-जे जेजानन पान लेवा भने कल्पता नहीं पडेही  
गाथाभा आवेला दाणद्वा पढना दान शब्दथी 'पोतानी प्रशसाने भाटे  
आपववाभा आवतु दान' जेवो अर्थ अहल्लु कर्यो छे, पण आ गाथाभा पुण्णद्वा  
माना पुण्य शब्दथी 'पोतानी प्रशसा सिवायना अन्य कोछ प्रयोजनथी  
आपववाभा आवतु दान' जेवो अर्थ थाय छे दान भने पुण्यभा जे अतए छे

जेजो जेठो कहे छे दे- 'महाव्रतधारी मुनिजोने जे दान आपववाभा आवे छे  
तेभा पुण्य छे जीनजोने देवाभा पुण्य नहीं, जीनजोने देवाभा उलटु पाप  
लाजे छे" जेभनु जेवु कहेवु भ्रान्तिमूलक छे, कारण जे लगवाने पुण्णद्वा पगड

दारुण्येद्वा तद्भक्तपान तु सयतानामकल्पिक भवेत्, अतस्तद्दतीं प्रत्याचक्षीत-तादृश  
मे न कल्पत इति ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

२ ३ ४ ५ ६ ७  
मूलम्-असण पाणग वावि, खाडम साडमं तथा ।

९ १२ १३ १४ ६ १९ १०  
ज जाणेज्ज सुणेज्जा वा, पुण्णट्टा पगडं इम ॥४९॥

१५ २० १६ १७ १८ १६  
त भवे भक्त-पाण तु सजयाण अकप्पिय ।

२१ २२ २५ २४ २९ २३  
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसि ॥५०॥

छाया—अशन पानक वापि, खाद्य स्वाद्य तथा ।

यज्जानीयाच्चट्टणुयाद्वा, पुण्यार्थं प्रकृतमिदम् ॥४९॥

तद्भक्तेभक्तपान तु, सयतानामकल्पिक(त)म् ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५०॥

सान्वयार्थः—ज असण पाणग वावि खाडम तथा साडम=जो अशन पान  
खादिम स्वादिम इम पुण्णट्टा पगडं=‘यह करुणाबुद्धिसे दीन हीन-जनोंके  
लिए पुण्यार्थ निकाल रखा है’ इस प्रकार जाणेज्ज=ज्ञान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=  
किसी दूसरेसे सुन लेवे तो त=वह भक्तपाण तु=आहार-पानी सजयाण=  
साधुओंके लिए अकप्पिय=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दितिय=देती  
हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसि=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे  
(लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४९॥-५०॥

टीका—‘असण०’ इत्यादि, ‘त भवे०’ इत्यादि च । यदशनादिक  
‘पुण्यार्थं=पुण्याय=सुकृतायेद दयाधिया, वनीय(प)क-भ्रमणार्थोपकल्पितस्याग्रे वक्ष्य-  
इसलिये ऐसा भक्त पान आदि देनेवाली से कहे कि यह मुझे नहीं  
कल्पता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

‘असण०’ इत्यादि, तथा ‘त भवे०’ इत्यादि ।

जो ‘अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य दया बुद्धिसे दीन हीन जनोंको

भाटे कटपनीय तथा तेथी जेवा लोअन पान आदि आपनारीने साधु कडे के  
जे भने कटपता नथी (४७-४८)

असण० इत्यादि, तथा त भवे० इत्यादि

“आ अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, दया बुद्धिसे दीन हीन जनोने आपवाने ।”

माणत्वादत्र दीनेभ्यो वितरणार्थमिदं प्रकृतम्=उपकल्पितम्-स्व-स्वपोष्यवर्गोभयो-  
पभोग्यभिन्नतया स्थापितमिति यावत्' इति जानीयात् शृणुयाद्वा तद्भक्तपान-  
मित्यादि पूर्ववत् । पूर्वगाथाया 'दाण्डा' इत्यत्र दान शब्देन स्वप्रशसार्थं दान  
गृह्यते, प्रकृते 'पुण्यदा' इत्यत्र पुण्य शब्देन स्वप्रशसाव्यतिरिक्तफलाभिसन्धानेन  
दान गृह्यते, इति दानपुण्ययोर्भेदः । 'महाव्रतधारिभ्य एव यदीयते तत्रैव पुण्य न  
तु तदितरेभ्यः प्रदाने, तथा सति हि प्रत्युत पापकलापः समुत्पन्नते' इति  
केचिदाहुः, ('तेरहपथी' शब्देन प्रसिद्धा साधर आहुः,) तद् भ्रान्तिविलसितम्,

देनेके लिये है-अर्थात् पुण्यार्थ वनाया गया है' ऐसा जाने या सुने तो  
वह सयमीके लिये ब्राह्म नहीं है, अत एव ऐसा आहार देनेवालीसे कहे  
कि-'यह भक्त-पान लेना मुझे नहीं कल्पता है' । पहली गधामे आये  
हुए 'दाण्डा' पदके 'दान' शब्दसे 'अपनी प्रशसाके लिये दिया  
जानेवाला दान' अर्थ ग्रहण किया है, किन्तु इस गाथामें 'पुण्यदा'के  
'पुण्य' शब्दसे अपनी प्रशसाके सिवाय अन्य किसी प्रयोजनसे दिया  
जानेवाला दान' अर्थ होता है-दान और पुण्यमें यही अन्तर है ।

'कोई कोई कहते हैं कि-"महाव्रतधारी मुनियोको जो दान दिया  
जाता है उसीमें पुण्य है-दूसरोको देनेमें नहीं, दूसरोको देनेसे उलटा पाप  
लगता है" । उनका यह कहना भ्रान्ति-मूलक है, क्योंकि, भगवान्ने

१ तेरहपथी सप्रदाय के साधु ।

भाटे उे, अर्थात् पुण्यार्थ वनाववामा आव्या छे " जेवु जणववामा या साल  
जवामा आवे तो जे सयमीने भाटे आह्य नथी तेथी करीने जेवो आहार  
आपनारीने साधु उहे उे-जे जेज्जन् पान लेवा मने कल्पता नथी पडेली  
गाथामा आवेला दाण्डा पदना दान शब्दथी 'पोतानी प्रशसाने भाटे  
आपवामा आवतु दान' जेवो अर्थ अहण्य कर्यो छे, पणु आ गाथामा पुण्यदा  
माना पुण्य शब्दथी 'पोतानी प्रशसा सिवायना अन्य जेथ प्रयोजनथी  
आपवामा आवतु दान' जेवो अर्थ थाय छे दान मने पुण्यमा जे अतर छे

जेथ जेथ कहे छे उे-"महाव्रतधारी मुनियेने जे दान आपवामा आवे छे  
तेमा पुण्य छे जीज्जनेने हेवामा पुण्य नथी, जीज्जनेने हेवामा उलटु पाप  
लागे छे " जेमनु जेवु कहेवु प्रातिभूलक छे, जणु उे लगवाने पुण्यदा पगड

भगवता हि 'पुण्णट्टा पगड' इत्यनेन 'पुण्यार्थमुपकल्पित द्रव्य साधुनामकल्प्य' मिति बोधित, तत्र महाप्रतधारकेतरेभ्यः प्रदातुमुपकल्पितस्य द्रव्यस्य तन्मते पुण्यार्थत्वाभावेन 'पुण्णट्टा पगड' इति नाम्य निर्विषयतामप्येत ।

ननु पुण्यार्थोपकल्पितद्रव्यस्यामल्पत्वस्वीकारे साधोः शिष्टकुले भिक्षाग्रहण मेरुकल्प्य स्यात्, पुण्यार्थमेव तेषां पारुषट्तेन तु क्षुद्रजन्तुस्त्वोदरपूर्तिमात्रार्थ मिति चेन्न, तथाहि-यत्रपि शिष्टकुले सम्पादितमन्न पुण्यार्थमकृत तथापि यदन्येभ्यो

'पुण्णट्टा पगड' इस कथनसे पुण्यके लिये निकाले हुए द्रव्यको साधुओंके वास्ते अकल्पनीय बताया है। यदि महाव्रतियोंको जोड़कर अन्य किसीको देनेमें पुण्य न हो तो भगवान् का क्रिया हुआ यह निषेध किस पर लागू पड़ेगा?, तात्पर्य यह है कि पुण्यके लिये निकाले हुए द्रव्यको, मुनियोंके लिये अकल्प्य बतानेसे यह सिद्ध होता है कि दूसरोंको दान देनेसे भी पुण्यकी प्राप्ति होती है।

शका-यदि पुण्यार्थ निकाला हुआ द्रव्य, साधुओंको ग्राह्य नहीं है तो शिष्टकुलमें साधु, कभी भिक्षा ग्रहण कर ही नहीं सकते, क्योंकि शिष्ट जन, पुण्यके लिये ही रसोईका आरम्भ करते हैं, साधारण (क्षुद्र) प्राणियोंकी तरह अपने ही उदरकी पूर्तिके लिये नहीं।

समाधान-यद्यपि शिष्टकुलमें तैयार किया हुआ आहार पुण्यके लिये ही संपादित होता है तथापि जो आहार दूसरोंको ही देनेके लिये बनाया

ये कथन वडे पुण्यने माटे कढेला द्रव्यने साधुजोने माटे अकल्पनीय जातायु छे जे महाव्रतीजो सिवायना भीजजोने आपवाने पुण्य न होय तो भगवाने करेको जे निषेध कोने लागु पडसे?, तात्पर्य जे छे के पुण्यने माटे कढेला द्रव्यने मुनिजोने माटे अकल्प्य जातायु होवाथी जेभ सिद्ध थाय छे के भीज जोने दान आपवाथी पणु पुण्यनी प्राप्ति थाय छे

शका-जे पुण्यार्थ कढेलु द्रव्य साधुजोने माटे ग्राह्य न होय तो शिष्ट कुलमा साधु कदापि भिक्षा ग्रहण करी शकसे न नहि, कारणु के शिष्टजन पुण्यने माटे न समोधाने अरल करे के साधारण (क्षुद्र) प्राणीजोनी पडे मात्र पोतानुं उदर भरवाने माटे नहि

समाधान-जे के शिष्ट कुलमा तैयार करवाने आवतो आहार पुण्यने माटे न संपादित होय छे, तोपणु जे आहार भीजजोने आपवाने माटे जनाववाने आवे छे, पोताना उपभोगने माटे नहि, ते पुण्णट्टा पगड (पुण्यार्थ निष्पादित

दातुमेव निष्पादित न तु स्रोपभोगार्थं तदेवान्न 'पुण्यार्थप्रकृत'-शब्देनात्र गृह्यते, एतदेव देयमित्युच्यते। ईदृशस्यैव ग्रहणे प्रतिषेधः, आरम्भान्तरायादिदोषप्रसङ्गात्। यत्तु स्वस्य स्वपोष्यवर्गस्य चोपभोगार्थमुदारतुद्ध्या सम्पादित, तच्चानियत-दानार्थत्वाददेयमित्युच्यते। अस्य ग्रहणे सात्रोर्नारम्भादिदोषप्रसङ्गः, साध्वर्थपा-कपट्टेतरभावात्। किञ्च-शास्त्रे, शिष्टकुले भिक्षाग्रहणस्य विधानान्न तथाविधाऽऽ-हारग्रहणे दोष इत्यल पठवितेन ॥ ४९ ॥ ५० ॥

२ ३ ४ ४ ६ ८ ७  
मूलम्-असण पाणग वावि, खाडम साडम तहा ।

१ १२ १३ १४ ६ १९ २०  
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, वणिमट्टा पगड इमं ॥५१॥

जाता है अपने उपभोगके लिये नहीं, वही 'पुण्यार्थ निष्पादित' और वही 'देय' कहलाता है। इस प्रकारके आहारको ही ग्रहण करनेका निषेध किया गया है। क्योंकि, उसे लेलेनेसे आरम्भ और अन्तराय आदि दोषोंका प्रसंग होता है।

जो आहार, अपने और अपने आश्रित जनोके उपभोगके लिये उदार बुद्धिसे निष्पन्न किया जाता है, वह अनियत दानके लिये होनेसे 'अदेय' कहलाता है। इस अदेय आहारको ग्रहण करनेसे साधुको आरम्भ-आदि दोष नहीं लगते हैं, क्योंकि वह साधुके निमित्त नहीं बनाया जाता है, तथा शास्त्रमें, शिष्टकुलमें भिक्षा ग्रहण करनेका विधान है, इसलिये भी शिष्टकुलमें आहार ग्रहण करनेमें दोष नहीं आसकता, इतना ही समाधान काफी है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अने अेव 'देय' कडेवाय छे अे प्रकारना आहारने पणु अणु करवाने। निषेध करवामा आव्ये छे, वारणु के अे लेवाथी आरभ अने अतराय आदि दोषोने प्रसंग उत्पन्न थाय छे

जे आहार पोताने माटे अने पोताना आश्रित जनोना उपभोगने माटे उदार-बुद्धिथी निष्पन्न करवामा आवे ते ते अनियत दानने माटे होवाथी 'अदेय' कडेवाय छे अे अदेय आहार अणु करवाथी साधुने आरभ आदि दोषो लागता नथी, वारणु के अे साधुने माटे पनापवामा आवेला होतो नथी तथा शास्त्रमा शिष्टकुलमा भिक्षा अणु करवानु विधान छे, तेथी पणु शिष्ट कुलमा आहार अणु करवामा दोष लागी शकतो नथी अेटलु ज समाधान पूरतु छे (४९-५०)



૨૫ ૨૦ ૨૧ ૧૭ ૧૮ ૧૬  
ત ભવે ભક્ત-પાણં તુ, સજયાણ અકપ્પિય ।

૨૧ ૨૨ ૨૫ ૨૮ ૨૬ ૨૩  
દિત્તિય પડિયાઢમ્ખે, ન મે કપ્પહ તારિસ ॥ ૫૨ ॥

છાયા—અશન પાનક ગાપિ, સ્વાઘ સ્વાઘ તથા ।

યજ્ઞાનીયાન્વૃણુયાદ્વા, વ્નીય (પ)-કાર્થ પ્રકૃતમિદમ્ ॥૫૧॥

તદ્ભવેદ્ભક્ત-પાન તુ, સયતાનામન્લિપકમ્ ।

દદર્તી પ્રત્યાચક્ષીત, ન મે ક્લપતે તાદશમ્ ॥૫૨॥

સાન્વયાર્થઃ—જ અસણ પાણગ વાચિ ગ્વાઢમ તદ્દા મ્માઢમ=જો અશન પાન  
સ્વાદિમ સ્વાદિમહમ વણિમદ્વા પગટ=યહ મિલારી ઓર દરિદ્રોકે લિપ ઉપકલ્પિત  
હે એસા જાણેજ્ઞ=જાન લેવે વા=અથવા સુણિજ્ઞા=કિસી દસરેસે સુન લેવે તો ત=  
વહ ભક્તપાણ તુ=આહાર-પાની સજયાણ=સાધુઓકે લિપ અકપ્પિય=અકલ્પનીય  
ભવે=હોતા હૈ, (અતઃ) દિત્તિય=દેતી હુઈસે સાધુ પડિયાઢમ્ખે=રુહે કિતારિસ=  
ઇસ પ્રકારકા આહારાદિ મે=મુણે (લેના) ન કપ્પહ=નહીં કલ્પતા હૈ ॥૫૧-૫૨॥

ટીકા—‘અસણ૦’ ઇત્યાદિ ‘ત ભવે૦’ ઇત્યાદિ ચ । યદ્ અશનાદિક વ્નીય-  
(પ)કાર્થમ્=વ્નીય(પ)ક =યાચન્માત્ર, યદ્વા સિદ્ધાન્નમારોપજીવી, અથવા  
વ્ની=સ્વકીયદુરવસ્થાપ્રદર્શનપુર સર મિયાડ્ડલાપાદિના લભ્યદ્રવ્ય, તા યાતિ=  
પ્રાપ્નોતીતિ વ્નીય’, સ એવ વ્નીયક, ‘વ્નીપકે’તિપાઠપક્ષે તુ તા પૂર્વોક્તા વ્ની  
પિવતિ=આસ્વાદયતીતિ, પાતિ=રક્ષતિ વા વ્નીપઃ, સ એવ વ્નીપક’, અથવા વ્નુતે=  
પ્રાયો દાતુ’ સમ્માનનીયેવાત્મનો ભક્તિ પ્રવટગન્ યાચત ઇતિ વા, (‘વ્નુ યાચને’  
અસ્માદ્દાતોરીણાદિક ઈપન્પ્રત્યય ।) યદિવા વ=સાન્વન-બુધુક્ષાજનિતતાપો-

‘અસણ૦’ ઇત્યાદિ, તથા ‘ત ભવે૦’ ઇત્યાદિ ।

યાચકમાત્રકો અથવા સિદ્ધ (તૈયાર) ભિક્ષા લેકર જીવન-નિર્વાહ  
કરનેવાલેકો વ્નીયક કહતે હૈ, ‘વ્નીપક’ પાઠપક્ષમે—દાતાકે માનનીય  
ગુરુ આદિમે ભક્તિ પ્રકટ કરકે લીજાનેવાલી ભિક્ષાકો વ્ની કહતે હૈ, ઓર  
એસી ભિક્ષા લેનેવાલા ‘વ્નીપક’ કહલાતા હૈ, અથવા જો, ભૂલકા તાપ

અસણ૦ ઇત્યાદિ તથા ત ભવે૦ ઇત્યાદિ

યાચક માત્રને અથવા સિદ્ધ (તૈયાર) ભિક્ષા લઇને જીવન નિર્વાહકર  
નાશને ‘વ્નીયક’ કહે છે વ્નીપક પાઠના પક્ષમા—દાતાના માનનીય ગુરુઆદિમા  
લલિત પ્રકટ કરીને લેવામા આવતી ભિક્ષાને વ્ની કહે છે, અને એવી ભિક્ષા  
લેનાર વ્નીપક કહેવાય છે અથવા જે ભૂખને તાપ મિટાવીને સાત્વના આપે

पशमनलक्षण नयति=प्रापयतीति वनीः, यद्वा वन्यते=यान्यते=भिक्षयत इति वनी=  
भिक्षणीयद्रव्यम्, ('वनु याचने' अस्मादौणादिकृ इन् कृदिकारादिति ङीप्) ता  
पाति=उपरुल्प्य रक्षतीति वनीपः=गृहस्थस्त कायति=पार्थयते प्रियोत्त्वादिनेति  
वनीपरुस्तदर्थमिदं प्रकृतमित्यादि पूर्ववत् ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

२ ३ ४ ५ ६ ७  
मूलम्-असण पाणगं वावि, खाडमं साडमं तथा ।

१ १२ १३ १४ ६ ११ १०  
ज जाणेज्ज सुणेज्जा वा, समणट्ठा पगडं डमं ॥५३॥

१५ २० १९ १७ १८ १६  
त भवे भत्त-पाण तु, सजयाण अकप्पियं ।

२१ २२ २५ २४ २९ ३  
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तादिस ॥५४॥

उाया—अशन पानक वापि, खात्र स्वात्र तथा ।

यज्जानीया=दृणुयाद्वा, श्रमणार्थं प्रकृतमिदम् ॥५३॥

तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामरुलिपकम् ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे रूपते तादृशम् ॥५४॥

सान्त्वयार्थः—ज असण पाणग वावि खाडमं तथा साडमं=जो अशन पान  
खादिमं स्वादिमं इमं समणट्ठा पगडं=यह निर्ग्रन्थ शाक्य तापस गैरिक और  
आजीवरु, इन पाच प्रकारके श्रमणोंके लिए उपरुलिपत है, ऐसा जाणेज्ज=ज्ञान  
लेवे वा=अथवा सुणेज्जा=किसी दूसरेसे मुन लेवे तो त=वह भत्तपाण तु=  
आहार-पानी सजयाण=साधुओंके लिए अकप्पियं=अरुल्पनीय भवे=होता है,  
(अत) दितिय=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=रुहे कि तारिस=इस प्रकारका  
आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं रूपता है ॥५३-५४॥

मिटाकर सान्त्वना प्रदान करे उसे वनी (भिक्षा देनेके लिये रखा हुआ  
अन्नादि) कहते हैं, उसको सुरक्षित रखनेवाला गृहस्थ 'वनीप' कहलाता है,  
और उस वनीप (गृहस्थ)से प्रार्थना करके भिक्षा प्राप्त करने वालेको  
'वनीपक' कहते हैं। उस वनीपकके लिये बनाया हुआ देवे तो देनेवा-  
लीसे कहे कि ऐसा आहार मुझे कल्पना नहीं है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

तोने वनी (भिक्षा आपवाने राधेवा अन्नादि) कहे थे अने सुरक्षित राधना  
गृहस्थ वनीप उठेवाथ थे, अने अने वनीप (गृहस्थ)ने प्रार्थना करीने भिक्षा  
प्राप्त करनारने वनीपक उठे थे अने वनीपकने भाटे गनावेवे। आहार आपे तो  
आपनारीने साधु कहे थे अने आहार भने कल्पतो नहीं (५१-५२)

टीका—‘असणं०’ इत्यादि, तथा ‘त भवे०’ इत्यादि । श्रमणार्थं=श्रमणाः  
लोकप्रसिद्धयनुरोधतो निर्ग्रन्थ शास्य तापस-गैरिका-ऽऽजीवरुमेतेन पञ्चधा,  
तत्र निर्ग्रन्थाः=पञ्चमहाव्रतधारिणः, शासयाः=सौगताः, तापसाः=जटाधारिणः,  
गैरिका=रक्तवर्णधातुविशेषरक्षितरत्नधारिणः, परित्राजका इत्यर्थः, आजी  
वकाः=गोशालरुमतानुयायिनस्तदर्थमिदं प्रकृतमित्यादि प्राग्वत् ॥५३॥५४॥

मूलम्—उद्देशिय कीयगड, पूडकम्म च आहडं ।

अज्झोयरय पामिच्च, मीसजाय विवज्जए ॥५५॥

छाया—औद्देशिक क्रीतकृत, पृतिर्म चाभ्याहृतम् ।

अभ्यप्रूरु प्रामित्य, मिश्रजात विवर्जयेत् ॥५५॥

सान्त्वयार्थः—उद्देशिय=औद्देशिक-किसी एकको उद्देश करके बनाये हुए  
अशनादिको कीयगड=खरीदे हुएको पूडकम्म=आधारमर्मादिदोषसे दूषित  
ऐसे आहारसे मिले हुएको आहड=सामने लाये हुएको पामिच्च=उधार लाये  
हुएको च=और मीसजाए=अपने तथा साधुओंके लिए मिश्रित (भेला) करके  
बनाये हुए अशनादिको (साधु) विवज्जए=वरजे, अर्थात् ऐसा आहार हो तो नहीं  
लेवे ॥ ५५ ॥

‘असणं०’ इत्यादि तथा ‘त भवे०’ इत्यादि ।

लोकमें पाँच प्रकारके श्रमण होते हैं—(१) निर्ग्रन्थ (पञ्च महाव्रतधारी),  
(२) सौगत (बुद्धके अनुयायी), (३) तापस (जटाधारी), गैरिक  
(गेरुआ वस्त्र पहिननेवाले), (४) आजीवक (गोशालके मतानुयायी) ।  
इनके लिये जो आहार बनाया गया हो वह, समयियोंके लिये कल्प्य  
नहीं है, अत एव ऐसा आहार देनेवालीसे साधु कहे कि मुझे नहीं  
कल्पता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

असणं० इत्यादि तथा त भवे० इत्यादि

लोकमा पाच प्रकारना श्रमणो होय ते (१) निर्ग्रन्थ (पञ्चमहाव्रतधारी),  
(२) सौगत (बुद्धना अनुयायी), (३) तापस (जटाधारी) (४) गैरिक  
(गेरुआ वस्त्रो पहिननेवाला), (५) आजीवक (गोशालना मतानुयायी) जेभने  
भाटे ते आधार गनाववाभा आण्यो होय ते समयीजोने भाटे कल्प्य नथी,  
तेथी जेयो आधार आपनारीने साधु कडे दे ते भने कल्पता नथी (५३-५४)

टीका-‘उद्देशिय०’ इत्यादि । १-औद्देशिकम्=उद्देशनमुद्देशस्तेन कृत मौद्देशिकम् । तद्विविध-सामान्यौद्देशिक विशेषौद्देशिक च, तत्राप्य-प्रतिदिन स्वार्थ सम्पाद्यते तावत्सम्पादनप्रवृत्तौ सत्या ‘भिक्षादान गृहस्थाऽऽचारः’ इति बुद्ध्या ‘यः कश्चित्साधुरागच्छेत्तस्मै देय’-मिति सामान्यत उद्दिश्य समधिः निष्पादितम् । द्वितीय-रूपव्येक साधु व्यक्ति-विशेषरूपेणोद्दिश्य सम्पादितम् । २-क्रीतकृत=क्रयण गृह्यरुचुक, तेन सम्पादित क्रीतकृत क्रीतमित्यर्थः, तत्रिविध-द्रव्यक्रीत, भावक्रीत, मिश्रक्रीतश्च, तत्र द्रव्य क्रीत=स्वपरतदुभयभेदेन त्रिधा-स्वद्रव्यक्रीत, परद्रव्यक्रीतम्, उभयद्रव्यक्रीतश्च । तदपि सचित्ताऽ-चित्त-मिश्रभेदात्प्रत्येक

‘उद्देशिय०’ इत्यादि । [१] किमीको उद्देश करके बनाया हुआ आहार, औद्देशिक कहलाता है । वह दो प्रकारका है-१-सामान्य-औद्देशिक और २-विशेष औद्देशिक । जितना आहार, प्रतिदिन गृहस्थ बनाता है उतना आहार बनाते समय ऐसा विचार करना कि ‘भिक्षा देना गृहस्थका कर्त्तव्य है, इसलिये जो कोई साधु आवेगा उसे दे देंगे’ ऐसा विचार कर बनाया हुआ आहार ‘सामान्य-औद्देशिक’ और किसी एक साधुके निमित्त बनाया हुआ आहार, ‘विशेष-औद्देशिक’ कहलाता है ।

[२] खरीद किया हुआ आहार क्रीतकृत कहलाता है । वह तीन प्रकारका है (१)-द्रव्य क्रीत (२)-भावक्रीत (३)-मिश्रक्रीत । द्रव्यक्रीत तीन प्रकारका है- (१)-अपने द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)-पराये द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३)-दोनों द्रव्योंसे खरीदा हुआ । ये तीनों भेद तीन प्रकारके हैं । स्वद्रव्य

उद्देशिय० इत्यादि (१) दोषने उद्देशीने गणावेला आहार औद्देशिक कहेवाय छे ते गे प्रकारने छाय छे (१) सामान्य औद्देशिक अने (२) विशेष औद्देशिक कहेला आहार प्रतिदिन गृहस्थ गणावे छे अहेला आहार गणावती वपते अयेवा विचार करवे छे ‘भिक्षा आपनी अे गृहस्थनु कर्त्तव्य छे, तेथी ने दोष साधु आवशे तो तेने आपीथ’ अयेवा विचार करीने गणावेला आहार सामान्य औद्देशिक, अने दोष अेक साधुने निमित्ते गणावेला आहार विशेष-औद्देशिक कहेवाय छे

(२) परीद करेला आहार क्रीतकृत कहेवाय छे ते त्रय प्रकारने छे- (१) द्रव्यक्रीत (२) भावक्रीत, (३) मिश्रक्रीत द्रव्यक्रीत त्रय प्रकारने छे-(१) पीत ना द्रव्यथी परीदलेला, (२) परया द्रव्यथी परीदलेला, (३) जेठ द्रव्यथी परीदलेला

त्रिभिध-सचित्तद्रव्यक्रीतम्, अचित्तद्रव्यक्रीत, मिश्रद्रव्यक्रीत, सचित्तपरद्रव्यक्रीतम्, अचित्तपरद्रव्यक्रीत, मिश्रपरद्रव्यक्रीत, सचित्तोभयद्रव्यक्रीतम्, अचित्तोभयद्रव्यक्रीत, मिश्रोभयद्रव्यक्रीतश्चेति । इत्थं द्रव्यक्रीत नवधा भवति ।

भावक्रीत द्विभिध-स्वभावक्रीत परभावक्रीतञ्च, तत्र स्वभावक्रीत-साधुसमुपागते तदर्थं गृहस्येन स्वविश्रा-मन्त्रादि दत्त्वा क्रीतम् । परभावक्रीत-विश्रा

१-विश्रा-ससाधना रोहिणीप्रज्ञप्त्यादिरूपा, मन्त्रः--असाधनो वशीकरणादि ।

क्रीतके भेद-(१) अपने सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)-अपने अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३)-अपने सचित्त और अचित्त, दोनों प्रकारके द्रव्यसे खरीदा हुआ ।

परद्रव्यक्रीतके भेद-(१)-दूसरेके सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)-दूसरेके अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३) दूसरेके दोनों प्रकारके द्रव्यसे खरीदा हुआ ।

उभयक्रीतके भेद-(१)-दोनोंके सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ (२) दोनोंके अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ (३) दोनोंके सचित्त और अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ । ये सब द्रव्यक्रीत हैं ।

भावक्रीत, दो-प्रकारका है-(१)-स्व-भावक्रीत, (२)-पर-भावक्रीत । साधुके आने पर, साधुके लिये, अपनी विद्या या अपना मन्त्र दे कर, गृहस्थद्वारा खरीदा हुआ आहार स्व-भावक्रीत है, दूसरेने विद्या मन्त्र

ये त्रये भेद त्रय प्रकारना छे स्वद्रव्यक्रीतना भेद-(१) पोताना सचित्त द्रव्यथी परीहेलो, (२) पोताना अचित्त द्रव्यथी परीहेलो, (३) पोताना सचित्त अने अचित्त भेद प्रकारना द्रव्यथी परीहेलो ।

परद्रव्यक्रीतना भेद-(१) भीतना सचित्त द्रव्यथी परीहेलो, (२) भीतना अचित्त द्रव्यथी परीहेलो, (३) भीतना भेद प्रकारना द्रव्यथी परीहेलो ।

उभयक्रीतना भेद-(१) भेदना सचित्त द्रव्यथी परीहेलो, (२) भेदना अचित्त द्रव्यथी परीहेलो, (३) भेदना सचित्त अने अचित्त द्रव्यथी परीहेलो ये त्रये द्रव्यक्रीत छे ।

भावक्रीत के प्रकारना छे (१) स्व-भावक्रीत, (२) पर-भावक्रीत, साधु आवे त्परे साधुने माटे पोतानी विद्या या पोताना मन्त्र आपीने गृहस्थद्वारा परीहेलो आहार ये स्व-भावक्रीत छे भीतने विद्या मन्त्र आपीने साधुने माटे

मन्त्रादि दत्त्वा साधुकृते परेण क्रीतमुपलभ्यान्वेन गृहस्थेन दीयमान तदनेकविधं स्वयमूहाम् ।

मिश्र-(द्रव्य-भावरूप)-क्रीतस्य च नव भङ्गाः, यथा—

- १—स्वकीयेन द्रव्येण स्वकीयेन भावेन ।
- २—स्वकीयेन द्रव्येण परकीयेण भावेन ।
- ३—परकीयेण द्रव्येण स्वकीयेन भावेन ।
- ४—परकीयेण द्रव्येण परकीयेण भावेन ।
- ५—स्वकीय-द्रव्य भावाभ्यां परकीयेण द्रव्येण ।
- ६—स्वकीय-द्रव्य भावाभ्यां परकीयेण भावेन ।

देकर, साधुके लिये आहार आदि खरीदा हो और साधुके आने पर उस आहारको दूसरा लेलेवे तो उसे परभाव-क्रीत कहते हैं, वह अनेक प्रकारका है सो स्वयं समझ लेना चाहिये ।

मिश्र (द्रव्य-भावरूप) क्रीतके नौ भग होते हैं—

- १-अपने द्रव्यसे अपने भावसे ।
- २-अपने द्रव्यसे परके भावसे ।
- ३-परके द्रव्यसे अपने भावसे ।
- ४-परके द्रव्यसे परके भावसे ।
- ५-अपने द्रव्य-भावसे परके द्रव्यसे ।
- ६-अपने द्रव्य-भावसे परके भावसे ।

आहारार्थि भरीदिला डोय अने साधु आवे त्यारे अे आहारने पीने वरुं वे ते ते परभावक्रीत कहेवाय छे ते अनेउ प्रकारने डोय छे ते पोतानी भेजे समथु लेवु

मिश्र (द्रव्य भावरूप) क्रीतना नव भागा थाय छे

- १ पोताना द्रव्यथी पोताना भावथी
- २ पोताना द्रव्यथी परना भावथी
- ३ परना द्रव्यथी पोताना भावथी
- ४ परना द्रव्यथी परना भावथी
- ५ पोताना द्रव्य भावथी परना द्रव्यथी
- ६ पोताना द्रव्य भावथी परना भावथी

त्रिविध-सचित्तद्रव्यक्रीतम्, अचित्तद्रव्यक्रीतम्, मिश्रद्रव्यक्रीतम्, सचित्तपरद्रव्यक्रीतम्, अचित्तपरद्रव्यक्रीतम्, मिश्रपरद्रव्यक्रीतम्, सचित्तोभयद्रव्यक्रीतम्, अचित्तोभयद्रव्यक्रीतम्, मिश्रोभयद्रव्यक्रीतश्चेति । इत्थं द्रव्यक्रीतं नयथा भवति ।

भावक्रीतं द्विविध-स्वभावक्रीतं परभावक्रीतम्, तत्र स्वभावक्रीत-साधुसमुपागते तदर्थं गृहस्थेन स्वविद्या-मन्त्रादि दत्त्वा क्रीतम् । परभावक्रीत-विद्या

१-विद्या-ससाधना रोहिणीप्रहृष्यादिरूपा, मन्त्रः-असाधनो वशीकरणादि ।

क्रीतके भेद-(१) अपने सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)-अपने अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३)-अपने सचित्त और अचित्त, दोनों प्रकारके द्रव्यसे खरीदा हुआ ।

परद्रव्यक्रीतके भेद-(१)-दूसरेके सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)-दूसरेके अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३) दूसरेके दोनों प्रकारके द्रव्यसे खरीदा हुआ ।

उभयक्रीतके भेद-(१)-दोनोंके सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ (२) दोनोंके अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ (३) दोनोंके सचित्त और अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ । ये सब द्रव्यक्रीत हैं ।

भावक्रीत, दो-प्रकारका है-(१)-स्व-भावक्रीत, (२)-पर-भावक्रीत । साधुके आने पर, साधुके लिये, अपनी विद्या या अपना मन्त्र दे कर, गृहस्थद्वारा खरीदा हुआ आहार स्व-भावक्रीत है, दूसरेने विद्या मन्त्र

ये त्रये भेद त्रय प्रकारना छे स्वद्रव्यक्रीतना भेद-(१) पोताना सचित्त द्रव्यथी भरीहेलो, (२) पोताना अचित्त द्रव्यथी भरीहेलो, (३) पोताना सचित्त अने अचित्त भेद प्रकारना द्रव्यथी भरीहेलो ।

परद्रव्यक्रीतना भेद-(१) भीजना सचित्त द्रव्यथी भरीहेलो, (२) भीजना अचित्त द्रव्यथी भरीहेलो, (३) भीजना भेद प्रकारना द्रव्यथी भरीहेलो ।

उभयक्रीतना भेद-(१) भेजना सचित्त द्रव्यथी भरीहेलो, (२) भेजना अचित्त द्रव्यथी भरीहेलो, (३) भेजना सचित्त अने अचित्त द्रव्यथी भरीहेलो । ये गयी द्रव्यक्रीत छे ।

भावक्रीत के प्रकारना छे (१) स्व-भावक्रीत, (२) पर-भावक्रीत, साधु आवे तयारे साधुने भाटे पोतानी विद्या या पोतानो मन्त्र आपीने गृहस्थद्वारा भरी हेलो आहार के स्व-भावक्रीत छे भीजनाके विद्या मन्त्र अ साधुने भाटे

यानपि सुराससर्गः, यद्वा पायसादिपवित्रभोक्तव्यपदार्थे क्षतादिक्षरद्रक्त-पूयादि-  
त्रिन्दुमात्रस्यापि मिश्रणम् ।

भावतः—विशुद्ध आहारादावाधाकर्मादिदोषदूषितान्नादेः सिक्थमात्रेणापि  
मेलनम्, तद्दशनेन च साधूना चारित्रमालिन्य भवतीति भावपूर्तिरभिधीयते ।

दोषोऽयमाधाकर्मादिदोषदूषितान्नादिसष्टष्टइस्तभाजनादिनिमित्तेनापि सम्भ-  
वति ।

४-आहृत=साधुनिमित्त गृहादितोऽभिमुखमानीतम् । ५-'अज्ज्ञोयस्य' इति लुप्त-  
विभक्तिरु पदम्, 'अध्यवप्ररक' मिति तच्छाया, स्वार्थ पाकक्रियाया समारम्भगाया

खाने योग्य खीर आदिमें रक्त पीप आदि अपवित्र पदार्थका मिल जाना ।

(२) विशुद्ध आहार आदिमें आधाकर्मी आदि दोषोंसे दूषित अन्नका  
एक भी सीध (कण) मिल जाना, भाव-पूर्तिकर्म है । ऐसा आहार लेनेसे  
मुनियोंके चारित्रमें मलिनता आजाती है, इस कारण इसे भावपूर्ति  
कहते हैं ।

आधाकर्मी दोषसे दूषित अन्न आदिसे भरे हुए हाथ या वर्तनके  
निमित्तसे भी यह दोष लग जाता है ।

[४]-आहृत-साधुक लिये साधुके सामने लाया हुआ आहार आदि  
अभ्याहृत कहलाता है, ऐसा आहार लेना अभ्याहृत-दोष-दूषित  
आहार है ।

[५] अध्यवप्ररक-अपने लिये भोजन बनाना प्रारम्भ किया हो उस  
समय, 'गाँवमें माधु पधारे हैं' यह सुनकर और अधिक मिला कर

दोही पड़ आदि अपवित्र पदार्थोंको पकी जलु (२) विशुद्ध आहारदिमा आधा  
कर्मी आदि दोषोपेथी दूषित अन्नने अके पक्ष कक्ष भणी जये। अे लावपूर्ति  
कर्म उे अेवे आहार लेवाथी मुनिअेना चारित्रमा मलिनता आवी नय छे  
तेथी तेने लावपूर्ति छडे छे

आधाकर्मी दोषोपेथी दूषित अन्नादिथी लरेला हाथ या वासधुना निमित्तथी  
पक्ष अे दोष लागी नय छे

(४) आहृत-साधुने माटे साधुनी सामे लावेले आहार आदि अभ्याहृत  
कहेवाय छे अेवे आहार अभ्याहृतदोष दूषित आहार छे

(५) अध्यवप्ररक-पोताने माटे लोअन जनाववाने प्रारम्भ कथे होय, ते  
समये 'गाँवमा साधु पधारे छे' अेभे सामणीने भील्लु पधारे भेजनीने जना



७—परकीय-द्रव्य-भावाभ्यां स्वकीयेन द्रव्येण ।

८—परकीय-द्रव्य-भावाभ्यां स्वकीयेन भावेन ।

९—स्वकीय-द्रव्य-भावाभ्यां परकीय-द्रव्य-भावाभ्यां च क्रीतम्, इति ।

एष च दोष उद्गमदोषान्तर्गतत्वेन गृहस्थोत्थितः, उक्तञ्च—

“सोलस उगम-दोसे, गिह्णिणो उ समुट्टिए त्रियाणाहि ।

उप्पायणा य दोसे, साहूओ समुट्टिए जाण ॥ १ ॥ इति’

३-पूतिकर्म=पूतेः=अपवित्रस्य कर्म=मिलनरूप पूतिकर्म लक्षणया तेन युक्त पूतिकर्म । पूतिकरण द्रव्यभावाभ्यां द्वाह्मिकारणम्, तत्र-

द्रव्यतो यथा-भुचिद्रव्येऽपवित्र-सम्मेलन, यथा पेय-पयःपरिपूरितपात्रेऽप्ये

७-परके द्रव्य-भावसे अपने द्रव्यसे ।

८-परके द्रव्य-भावसे अपने भावसे ।

९-अपने द्रव्य भावसे और परके द्रव्य-भावसे खरीदा हुआ ।

यह क्रीतकृत दोष, उद्गमदोषोंके अन्तर्गत है, इसलिये गृहस्थके द्वारा लगता है । कहा भी है—

“सोलह उद्गम दोष, गृहस्थके द्वारा लगते हैं और उत्पादना दोष, साधु द्वारा लगते हैं ।”

[३] पूतिकर्म—पवित्र वस्तुमें अपवित्र वस्तुके मिल जानेको पूतिकर्म कहते हैं, यह दो प्रकारका है—(१)—द्रव्य पूतिकर्म और (२) भाव पूतिकर्म । (१)—पवित्र द्रव्यमें अपवित्र द्रव्य मिलाना द्रव्य पूतिकर्म है, जैसे पीने योग्य दूधसे भरे हुए बर्तनमें थोड़ीसी भी मदिराका मिलजाना, अथवा

७ परना द्रव्य लावथी पोताना द्रव्यथी

८ परना द्रव्य लावथी पोताना भावथी

९ पोताना द्रव्य लावथी अने परना द्रव्य लावथी परीदेवो

अने क्रीतकृत दोष उद्गम दोषनी अहर रहैलो छे, तेथी करीने गृहस्थनी द्वारा लागे छे कहु छे के—“सोण उद्गमदोष गृहस्थद्वारा लागे छे अने उत्पादनादोष साधुद्वारा लागे छे ”

(३) पूतिकर्म—पवित्र वस्तुमा अपवित्र वस्तु भणी जय तेने पूतिकर्म कहे छे अने प्रकारनु छे (१) द्रव्य पूतिकर्म अने (२) भाव पूतिकर्म (१) पवित्र द्रव्यमा अपवित्र द्रव्य मेलववु अने द्रव्य-पूतिकर्म छे, जेभके पीवा योग्य दूधथां लरेला वासलुमा थोडीक मदिरानु भणी जय, अथवा पीवा योग्य भीर आदिमा

यानपि सुराससर्गः, यद्वा पायसादिपवित्रभोक्तव्यपदार्थे क्षतादिक्षरद्रक्त-पूयादि-  
मिन्दुमात्रस्यापि मिश्रणम् ।

भावतः—विशुद्ध आहारादावाधाकर्मादिदोषदूषितान्नादेः सिक्थमात्रेणापि  
मेलनम्, तद्दशनेन च साधूना चारित्रमालिन्य भवतीति भावपूर्तिरभिधीयते ।

दोषोऽयमाधाकर्मादिदोषदूषितान्नादिसष्टष्टहस्तभाजनादिनिमित्तेनापि सम्भ-  
वति ।

४-आहत=साधुनिमित्त गृहादितोऽभिमुखमानीतम् । ५-'अज्ज्ञोयरय' इति लुप्त-  
विभक्तिक पदम्, 'अध्यवपूरक' मिति तच्छ्रया, स्वार्थ पाकक्रियाया समारब्धाया

खाने योग्य खीर आदिमें रक्त पीप आदि अपवित्र पदार्थका मिल जाना ।

(२) विशुद्ध आहार आदिमें आधाकर्मी आदि दोषोंसे दूषित अन्नका  
एक भी सीध (कण) मिल जाना, भाव-पूर्तिकर्म है । ऐसा आहार लेनेसे  
मुनियोंके चारित्रमे मलिनता आजाती है, इस कारण इसे भावपूर्ति  
कहते हैं ।

आधाकर्मी दोषसे दूषित अन्न आदिसे भरे हुए हाथ या वर्त्तनके  
निमित्तसे भी यह दोष लग जाता है ।

[४]-आहत-साधुके लिये साधुके सामने लाया हुआ आहार आदि  
अभ्याहृत कहलाता है, ऐसा आहार लेना अभ्याहृत-दोष-दूषित  
आहार है ।

[५] अध्यवपूरक-अपने लिये भोजन बनाना प्रारम्भ किया हो उस  
समय, 'गाँवमे साधु पधारे हैं' यह सुनकर और अधिक मिला कर

बोली पड़ आदि अपवित्र पदार्थनुं पडी जसु (२) विशुद्ध आहारदिमा आधा  
कर्मी आदि दोषोथी दूषित अन्नने अेक पषु कषु भणी जवेो अे भावपूर्ति  
कर्म छे अेवो आहार लेवाथी मुनियोना आरित्रमा मलिनता आवी जय छे  
तेथी तेने भावपूर्ति उडे छे

आधाकर्मी दोषथी दूषित अन्नादिथी लरेला हाथ या वासखना निमित्तथी  
पषु अे दोष लागी जय छे

(४) आहृत-साधुने माटे साधुनी सामे लावेवेो आहार आदि अख्याहृत  
कडेवाय छे अेवो आहार अख्याहृत दोष दूषित आहार छे,

(५) अध्यवपूरक-पोताने माटे भोजन बनाववाने प्रारंभ कर्यो होय, ते  
सभये 'गाँवमे साधु पधारे छे' अेभ सामणीने जीणु वधारे भेजवीने जना

ग्रामे साधुसमागमन निश्चय्य तदर्थमधिःनिक्षेपणेन सम्पादितमिति तदर्थः । इ  
 मत्र हृदयम्-यत्रैरमन्यलिङ्गनिमित्तमधिक पूरित, तत्र तद्दानानन्तरमवशिष्टमन्नादिक  
 साधुभिर्ग्राह्य, तत्रान्तराययोगानवतारादिति । ६ प्रामित्य=साधुनिमित्तमुदाररूपेण  
 कुतश्चिदानीय दीयमानम् । ७ मिश्रजात=मिश्रेण मिश्रमावेन 'पूर्वत एव दातुं मिस्रा  
 चरोमयानुसन्धानेनेत्यर्थः जात=निष्पन्नम् । तद्विभिध सामान्यमिश्रजात विशेषमि  
 श्रजात चेति, तत्र-सामान्यमिश्रजात=सामान्यरूपेण स्वपोष्यवर्गार्थं गृहस्थाशुश्रूष्य  
 साधु-पाखण्डिमभृतिमिक्षाचरार्थञ्चैकत्र रन्धितम्, विशेषमिश्रजात यदावनिमित्त

१ पूर्वत=प्राकार्थं प्रवृत्तेः प्रागेव ।

बनाया हुआ आहार अन्धवपूरक कहलाता है, तात्पर्य यह कि यदि  
 अन्यलिङ्गियोंके निमित्त अधिक आहार मिला कर बनाया हो तो उन्हें  
 दे देनेके बाद बचा हुआ आहार, साधुओंको ग्राह्य है, क्योंकि वहाँ  
 अन्तराय दोष नहीं लगता ।

[६] प्रामित्य साधुके निमित्त कहींसे उधार लेकर दिया जानेवाला  
 आहार, प्रामित्य कहलाता है ।

[७] मिश्रजात-पहलेसे ही दाता और भिक्षु दोनोंके लिये बनाया  
 हुआ आहार, मिश्रजात है ।

मिश्रजातके दो भेद हैं-(१) सामान्य मिश्रजात और (२) विशेष  
 मिश्रजात । (१) साधारण तौर पर अपने पोष्यवर्गके लिये तथा गृहस्थ,  
 अगृहस्थ, साधु, पाखण्डी आदिके लिये मिलाकर राधा हुआ आहार  
 'सामान्य मिश्रजात' कहलाता है । (२)-जो आहार आदि अपने लिये

वेदो आहार अन्धवपूरक कहेवाय छे तात्पर्य अे छे के जे अन्यलिङ्गीओ  
 (अन्यधर्मीओ)ने निमित्त वधारे आहार भेजवीने जनाव्यो डाय तो तेने  
 आपी हीधा पछी वधेदो आहार साधुओने भाटे ग्राह्य जने छे, कारण के तेभा  
 अतराय दोष लागतो नथी

(६) प्रामित्य-साधुने निमित्त कहींथी उधार लावीने आपवामा आवेदो  
 आहार प्रामित्य कहेवाय छे

(७) मिश्रजात-पहलेसे ही दाता अने भिक्षु जेठने भाटे जनावेदो आहार  
 मिश्रजात छे मिश्रजातना जे भेद छे (१) सामान्य मिश्रजात (२) विशेष मिश्र  
 जात (१) साधारण तौर पर आपेताना पोष्यवर्गने भाटे तथा गृहस्थ, अगृहस्थ, साधु  
 पाखण्डी आदिने भाटे अेकठो करीने राधेदो आहार 'सामान्य मि' - कहेवाय छे

केवल<sup>१</sup> साधुनिमित्तञ्च सहैव निष्पन्नमन्नादिकम्, तद् विवर्जयेत्=परित्यजेत् न गृह्णी-  
यादित्यर्थः, साधुरिति शेषः । औद्देशिका-अध्यवपूरक-मिश्रजातेषु परस्परमेव विशेषः-  
औद्देशिक-पाकप्रवृत्त्यनन्तर सा<sup>७</sup>न्वागमनात्प्रागे<sup>५</sup>रुमेव सा<sup>६</sup>धु सामान्यरूपेण विशेष-  
परूपेण बोद्धिश्य सम्पादिते सम्भवति । अयत्रपूरक=साधुसमागमश्रवणसमनन्तर-  
मधिकनिक्षेपेण जायते । मिश्रजात-पाकप्रवृत्तिसमय एव गृहस्थ-भिक्षाचरयोः  
कृते समिश्रितेऽन्नादीं समुत्पद्यते ॥ ५५ ॥

मूलम्-उगम से अ पुच्छिजा, कस्सट्ठा केण वा कड ? ।

सुच्चा निस्सकिय सुद्ध, पडिगाहिज्ज संजओ ॥५६॥

छाया—उद्गम तस्य च पृच्छेत्कस्यार्थं केन वा कृतम् ? ।  
श्रुत्वा निःशङ्कित भुद्र, प्रतिगृह्णीयात्सयतः ॥५६॥

१ इतरभिक्षाचरव्यतिरेकेण ।

और साधुके लिये मिलाकर बनाया जाय उसे 'विशेषमिश्रजात' कहते हैं ।  
ऊपर कहे हुए सब प्रकारके आहारका अनगारको परिहार करना चाहिये ।

औद्देशिक, अध्यवपूरक और मिश्रजात दोषोंमें यह भेद है—भोजन  
बनानेमें प्रवृत्त होनेके पश्चात् और साधुके आनेसे पहले, किसी भी एक  
साधुके लिये अथवा अमुक एक साधुके लिये बनाये हुए आहारमें  
औद्देशिक दोष होता है । आहार बनाते समय, साधुका आगमन  
सुन कर अधनमे अधिक ऊर (डाल) कर बनानेसे अयवपूरक दोष  
होता है । भोजन बनाते समय, गृहस्थ और भिक्षु, दोनोंके लिये भोजन  
बनानेसे मिश्रजात दोष लगता है ॥५५॥

(२) वे आहार आदि पोताने भाटे अने साधुने भाटे अकेले करीने जनाववाभा  
आवे तेने विशेषमिश्रजात कडे छे उपर कडेला पधा प्रकारना आहारने  
अलुगारे परिहार करवे जेधअ

औद्देशिक, अध्यवपूरक अने मिश्रजात दोषोभा आ लेह छे—लोअन  
जनाववाभा प्रवृत्त धया पछी अने साधु आव्या पडेला, जेध पधु अके साधुने  
भाटे अथवा अमुक अके साधुने भाटे जनावेला आहारभा औद्देशिक दोष  
लागे छे आहार जनावती वपने साधुनुं आगमन सालजीने आधलुभा वधारे ओरी  
हेवायी अध्यवपूरक दोष लागे छे लोअन जनावती वपते गृहस्थ अने भिक्षु  
जेउने भाटे लोअन जनाववायी मिश्रजात दोष लागे छे (५५)

ग्रामे साधुसमागमन निशम्य तदर्थमधिऋनिक्षेपणेन सम्पादितमिति तदर्थः । इदं मत्र हृदयम्-यत्रेयमन्यलिङ्गनिमित्तमधिक पूरित, तत्र तद्दानानन्तरमत्रश्लिष्टमन्नादिक साधुभिर्ग्राह्य, तत्रान्तरायदोषानयतारादिति । ६-प्रामित्य=साधुनिमित्तमुद्धाररूपेण कृतविदानीय दीयमानम् । ७ मिश्रजात=मिश्रेण मिश्रभावेन 'पूर्वत एव दातुं मिश्रा चरोमयाजुसन्धानेनेत्यर्थः जात=निष्पन्नम् । तद्विप्रिथ सामान्यमिश्रजात विशेषमिश्रजात चेति, तत्र-सामान्यमिश्रजात=सामान्यरूपेण स्वपोष्यवर्गार्थं गृहस्थाण्डस्य साधु-पाखण्डिमभृतिभिक्षाचरार्थञ्चैकत्र रन्धितम्, विशेषमिश्रजात यदातनिमित्त

१ पूर्वत.=प्राकार्यं प्रवृत्तेः प्रागेव ।

बनाया हुआ आहार अथवपूरक कहलाता है, तात्पर्य यह कि यदि अन्यलिङ्गियोंके निमित्त अधिक आहार मिला कर बनाया हो तो उन्हें दे देनेके बाद बचा हुआ आहार, साधुओंको ग्राह्य है, क्योंकि वहाँ अन्तराय-दोष नहीं लगता ।

[६] प्रामित्य साधुके निमित्त कहींसे उधार लेकर दिया जानेवाला आहार, प्रामित्य कहलाता है ।

[७] मिश्रजात-पहलेसे ही दाता और भिक्षु दोनोंके लिये बनाया हुआ आहार, मिश्रजात है ।

मिश्रजातके दो भेद हैं-(१) सामान्य मिश्रजात और (२) विशेष मिश्रजात । (१) साधारण तौर पर अपने पोष्यवर्गके लिये तथा गृहस्थ, अगृहस्थ, साधु, पाखण्डी आदिके लिये मिलाकर राधा हुआ आहार 'सामान्य मिश्रजात' कहलाता है । (२)-जो आहार आदि अपने लिये

वेलेो आहार अथवपूरक कहेवाय छे तात्पर्य्य अे छे के ले अन्यलिङ्गीओ (अन्यधर्मीओ)ने निमित्ते वधारे आहार भेजवीने बनान्येो छेय तो तेरे आपी रीधा पछी वधेलेो आहार साधुओने भाटे ग्राह्य गने छे, कारणु के तेभा अतराय होय लागतो नथी

(६) प्रामित्य-साधुने निमित्ते कहींथी उधार लावीने आपवामा आवेलेो आहार प्रामित्य कहेवाय छे

(७) मिश्रजात-पहलेसे ही दाता अने भिक्षु भेउने भाटे बनानेलेो आहार मिश्रजात छे मिश्रजातना ये लेह छे (१) सामान्यमिश्रजात (२) विशेषमिश्रजात (१) साधारण्य रीते पाताना पोष्यवर्गने भाटे तथा गृहस्थ, अगृहस्थ, साधु पाखण्डी आदिने भाटे अेकठेो करीने राधेलेो आहार 'सामान्य मिश्रजात' कहलाता छे

सान्वयार्थः—असण पाणग चावि खाडम तथा साडम=अशन पान खादिम  
 तथा स्वादिम (यदि) पुष्फेसु=सचित्त फूलोसे धीएसु=शालि आदि बीजोसे वा=  
 अथवा हरिएसु=हरित कायसे उम्मीस=मिश्रित होज्ज=हो तो त=वह भक्त-  
 पाण तु=अशनादि सजयाण=साधुओंके लिए अकप्पिय=अकल्पनीय भवे=है,  
 (अतः) दितिय=देती हुईसे साधु पडियाडक्खे=कहे कि तारिस=इस प्रकारका  
 आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥५७॥-५८॥

टीका—‘असण०’ इत्यादि, ‘त भवे०’ इत्यादि च । यदशनादिक सचित्त-  
 पुष्प-बीज-हरितकायैरुन्मिश्र=सयुक्त भवेत्तदकल्प्यमिति वाक्यार्थः । सूत्रे ‘पुष्फेसु’  
 इत्यादौ तृतीयार्थे सप्तमी ॥५७॥५८॥

१ २ ४ ३ ५ ७ ९  
 मूलम्-असणं पाणग चावि, खाडम साडम तथा ।

८ १२ ११ ६ १०  
 उदगम्मि होज निक्खित्तं, उत्तिंगपणगेसु वा ॥५९॥

१३ १८ १४ १५ १६ १७  
 त भवे भक्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।

१६ २० २३ २२ २४ २१  
 दितिय पडियाडक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥६०॥

छाया—अशन पानक चापि, खाद्य स्वाद्य तथा ।

उदके भवेनिक्षिप्तमुत्तिङ्गपनकेषु वा ॥५९॥

तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामकल्पिक(त)म् ।

ददती मत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥६०॥

सान्वयार्थः—असण पाणग चावि खाडम तथा साडम=जो अशनादि  
 चार प्रकारका आहार (यदि) उदगम्मि=सचित्त जलके ऊपर वा=अथवा  
 उत्तिंगपणगेसु=मीडियोंके दरके ऊपर या लीलन-फूलन पर निक्खित्त=रखा

‘असण०’ इत्यादि, तथा ‘त भवे’ इत्यादि । जो अशन पान आदि,  
 सचित्त पुष्प, सचित्त धीज और हरितकायसे युक्त हो वह, सयमीके  
 लिये कल्पनीय नहीं है, अत ऐसा आहार देनेवालीसे साधु कहे कि-  
 ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

असण० इत्यादि, तथा त भवे० इत्यादि के अशनपान आदि, सचित्त  
 पुष्प, सचित्त धीज अने हरितकाय (वनस्पति) थी युक्त होय तो सयमीने  
 भाटे कल्पनीय नहीं, अतः ऐसी आहार आपनारीने साधु कहे कि-  
 ऐसी आहार मुझे नहीं कल्पता है (५७-५८)

सान्यार्थः—से=उग आहारान्त्री उग्गम=उत्पत्ति पुच्छिज्जा=पूछे  
 कि-(यह अशनादि) कस्मट्टा=किसके लिए चा=और केण=किमने कड्ड=बनाया  
 है?, फिर सुचा=गृहस्थके मुखसे अशनादिकी उत्पत्ति सुनकर (यदि वह)  
 निस्सकिय=आदेशिक आदि शङ्कारहित य=और सुद्धं=निर्दोष हो तो  
 सजण=साधु पडिगाहिज्ज=ग्रहण कर लेवे ॥५६॥

टीका—‘उग्गम’ इत्यादि । कस्यार्थे=किंनिमित्तम्, केन वा कर्मा कृत=  
 निष्पादितम्, अत्रादी ‘विशुद्धमविशुद्ध वे’ति सशये तस्मिन्नाकरणाय तस्य  
 सशयितस्यान्नादेः उद्गमम्=उद्गमनमुद्गमस्तम् उत्पत्तिमित्यर्थ, पृच्छेत्=प्रतिवचनेन  
 ज्ञातुमिच्छेत्, श्रुत्या ‘प्रतिवचन’-मितिशेषः, सयतः=शङ्किताऽऽहारग्रहणभीरुः साधु,  
 निःशङ्कित=दोषशङ्कारजितम् अत एव शुद्ध=निरवद्य प्रतिशुद्धीयात्-निरवद्यत्वेन  
 निश्चये सतीति भावः ॥ ५६ ॥

१ २ ४ ३ ५ ७ १  
 मूलम्-असणं पाणगं वावि, खाडमं साडमं तथा ।

८ १३ १२ ६ १० ११  
 पुप्फेसु होज्ज उम्मीस, वीएसु हरिएसु वा ॥५७॥

१४ १६ १५ १९ १७ १८  
 त भवे भत्त-पाण तु, संजयाण अकप्पिय ।

२० २१ २४ २३ २५ २२  
 दितिय पडियाडक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥५८॥

छाया—अशन पानक वाऽपि, खाद्य स्वाद्य तथा ।

पुष्पैर्भवेदुन्मिश्र, वीजैर्हरितैर्वा ॥५७॥

तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामकल्पिक(त)म् ।

ददती प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५८॥

‘उग्गम०’ इत्यादि । ‘आहार अशुद्ध है या विशुद्ध है’ इस प्रकारक  
 सन्देह होने पर साधु, ऐसा पूछ लेवे कि यह आहार, किसके लिए  
 बनाया गया है और किसने बनाया है?, इसका उत्तर सुन कर निर्-  
 वद्यताका निश्चय करके निःशङ्कित अत एव निरवद्य आहार हो तो  
 साधु, ग्रहण करे ॥५६॥

उग्गम० इत्यादि ‘आहार अशुद्ध छे के विशुद्ध छे’ ओ प्रका नो सदे  
 पडता साधु ओषु पूछी ले के आहार होने भाटे बनावेला छे अने ओह  
 बनाये छे?, ओनो उत्तर साधुजाने निरवद्यतानो निश्चय करीने निःशङ्कित  
 ओहले निरवद्य आहार छेय तो साधु ग्रहण करे (५६)

खादिम स्वादिम तेजस्मि=तेजस्काय पर निम्निखत्त=रखा हुआ हुज्ज=हो च=  
अथवा त=उस तेजस्कायको सघट्टिया=सघट्टा (छू) करके दए=देवे तो त=वह  
भक्तपाण तु=अशनादि सजयाण=साधुओके लिए अकप्पिय=अकल्पनीय  
भवे=है, (अत) दितिय=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=उस  
प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पइ=नही कल्पता है ॥६१॥६२॥

टीका—‘असण०’ इत्यादि, ‘त भवे०’ इत्यादि च । यदशनादिक तेजसि=  
तेजस्कायोपरि निक्षिप्त=निहित भवेत्, यच्च तत्=तेजः-अग्निकायमित्यर्थः, सघट्ट्य=  
सस्पृश्य दद्यात्, तत्=उभयविध भक्तपाण तु सयतानामकल्पिक(त) भवेत्, अतस्त-  
ददती प्रत्याचक्षीत-तादृश मे न कल्पत इति ॥६१॥६२॥

१ २ ३ ४ ५  
मूलम्-एव उस्सिक्कया ओसिक्किया, उज्जालिया पज्जालिया ।

६ ७ ८ ९ १० ११  
निवाविया उस्सिचिया, निस्सिचिया ओवत्तिया ओयारिया दए ॥६३॥

१२ १७ १३ १४ १५ १६  
त भवे भक्त-पाण तु, सजयाण अकप्पियं ।

१८ १९ २२ २१ २३ २०  
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥ ६४ ॥

छाया—एवम् उत्क्षिप्य अवक्षिप्य, उज्ज्वालय प्रज्वालय ।

निर्वाप्य उत्सिच्य, निपिच्य अपवर्च्य अवतार्य दद्यात् ॥६३॥

तद्भवेद्भक्त पान तु, सयतानामल्पिक(त) म् ।

ददती प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥६४॥

अग्निकायके साक्षात् सघट्टेका निषेध करके अत्र परम्परा-सघट्टेका निषेध करते हैं—  
सान्वयार्थः,=एव=जिस प्रकार अग्निकायको स्पर्श करके दिया जानेवाला  
अशनादि नहीं लेते, उसी प्रकार उस्सिक्किया=चूल्हे आदिमें इन्-गनको अन्दर

‘असण०’ इत्यादि, तथा ‘त भवे०’ इत्यादि । जो अशान पान आदि,  
तेजस्काय पर रख्वा हो अथवा अग्निकायका सघट्टा करके देवे तो वह,  
साधुके लिये ग्राह्य नहीं है । अत देनेवालीसे कहे कि—‘ऐसा आहार,  
मुझे नहीं कल्पता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

असण० इत्यादि, तथा त भवे० इत्यादि ने अशान पान आदि तेजस्काय  
पर राखेलेो छेय अथवा अग्निकायतु सघट्टन करीने आपे तो ते माधुने माटे  
आह्य नहीं ओखे ते आपनारीने साधु छेडे डे ‘ओवे आहार भने कल्पते  
नथी’ (६१-६२)



हुआ होज्ज=हो तो त=रह भक्तपाण तु=भगनादि सजयाण=साधुओंके लिए  
 अकल्पिय=भक्तपनीय भवे=, (अतः) दितिय=देती हुईसे साधु पडियाडक्खे=  
 कहे कि तारिस=उस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कल्पइ=नहीं  
 कल्पता है ॥५९॥६०॥

टीका—‘असण०’ इत्यादि, ‘त भवे०’ इत्यादि च । यदशननादिकमुदके=  
 सचित्तजलोपरि, उत्तिहपनकादिपु=उत्तिहाः=भूमौ रत्तुलपिरविधायिनो गर्दममु  
 खाऽऽकृतय. क्षुद्रकीटविशेषाः, फीटिकानगरादयो वा, पनयः=अङ्कुरितोऽनङ्कुरितो  
 वा पञ्चवर्णानन्तकायनस्पतिविशेषः, तत्र निक्षिप्त=स्यापित भवेत्, तद्भक्त पान  
 सयतानामकल्पक(त)-मित्यादि पूर्वम् ॥५९॥६०॥

मूलम्—असण पाणग वावि, खाइम साइम तथा ।

तेउम्मि हुज्ज निम्खत्त, त च सघट्टिया दए ॥६१॥

त भवे भक्तपाण तु, सजयाण अकल्पियं ।

दितिय पडियाडक्खे, न मे कल्पइ तारिस ॥ ६२ ॥

छाया—अशन पानक वापि, खाद्य स्वाद्य तथा ।

तेजसि भवेन्निक्षिप्त, तच्च सप्रवृत्त्य दद्यात् ॥६१॥

तद्भवेद्भक्तपान तु, सयतानामकल्पक(त)म् ।

ददती प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥६२॥

सान्वयार्थ—असण पाणग वावि खाइम तथा साइम=जो अशन पान

‘असण०’ इत्यादि, तथा ‘त भवे०’ इत्यादि । जो अशन, पान,  
 खाद्य, स्वाद्य सचित्त जल पर रखा हुआ हो तथा किडीनगर (चिड-  
 टियोंके समूह) या लीलन फूलन पर रक्खा हो वह, सयमियोंके लिये  
 कल्प्य नहीं है, अतः ऐसा आहार देनेवालीसे कहे कि ‘ऐसा आहार  
 मुझे कल्पता नहीं है’ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

असण० इत्यादि, तथा त भवे० इत्यादि ने अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य  
 सचित्त जल पर रखेया होय, तथा कीडीनगर (कीडीयानो समूह) या  
 लीलन-फूलन पर रखेया होय, ते सयमीयाने भटे कल्पनीय नहीं क्येद्वे  
 क्येवे आहार आपनानीने साधु कहे दे-‘क्येवे आहार मने कल्पते नहीं’ (५९-६०)

निधाय, अवतार्य=अन्नादिसहित भाजनमेवोत्तार्य वा दद्यात्, तद्भक्त-पान तु सयता-  
नामकल्पिक(त) भवेदतस्तद्दतीं प्रत्याचक्षीत-‘तादृश मे न कल्पते’ इति ६३॥६४॥

११ २ ५ ४ ३ ८ ७ ६ ९  
मूलम्-हुज्ज कट्ट सिल वावि, इट्टाल वावि एगया ।

१० ६ १२ १३ १५ १४  
ठवियं संकमट्टाए, त च होज्ज चलाचल ॥६५॥

१६ १६ १८ २० २६ २४ २५  
न तेण भिक्खू गच्छेज्जा, दिट्ठो तत्थ असंजमो ।

२२ २३ २१ १६  
गभीरं झुसिर चैव, सच्चिदिय-समाहिए ॥ ६६ ॥

छाया—भवेत्काष्ठ शिला वाऽपि, इट्टाल वाऽयेरुदा ।

स्थापित सक्रमार्थं, तच्च भवेच्चलाचलम् ॥ ६५ ॥

न तेन भिक्षुर्गच्छेद्दृष्टस्तत्रासयमः ॥

गम्भीरं शुषिरं चैव, सर्वेन्द्रिय-समाहितः ॥ ६६ ॥

सान्त्वयार्थं--एगया=किसी समय अर्थात् वर्षा आदिके समय सक्रमट्टाए=  
जाने-आनेके लिए कट्ट=काठ वावि=या सिल=शिला वावि=अथवा इट्टाल=  
ईंटका डुरुडा ठवियं=रखा हुआ हुज्ज=हो च=और त=वह (यदि) चलाचल=  
अस्थिर-डग मगाता हुज्ज=हो तो तेण=उस मार्गसे तथा जो गभीर=ऊँडा-गहरा  
और झुसिर=पोला स्थान हो उससे सच्चिदियसमाहिए=समस्त इन्द्रियोंको  
वशमें रखनेवाला भिक्खू=साधु न गच्छेज्जा=नहीं जावे, (क्योंकि) तत्थ=वहा  
पर केवली भगवानने असंजमो=असयम दिट्ठो=देखा है ॥६५॥६६॥

टीका—‘हुज्ज कट्ट’ इत्यादि, ‘न तेण’ इत्यादि च। एकदा=एकस्मिन् काले  
वर्षादी यत् काष्ठ=सञ्चरणोपयोगि दारु, अपिवा शिला=प्रस्तरखण्डम् अपिवा

वर्त्तनको नीचे उतार कर यदि आहार देवे तो वह आहार अनगारके  
लिये ग्रहण करने योग्य नहीं है। अतः देनेवालीसे कहे कि—‘ऐसा  
आहार मुझे नहीं कल्पता है’ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

‘हुज्ज कट्ट’ इत्यादि, तथा ‘न तेण’ इत्यादि ।

नदी आदिमे वरसात आदिके समय, जाने-आनेके लिये जो काठ,

बिचारीने जो आहार आपि तो तो आहार अनगार ने भाटे अङ्गुलु करवा योज्य नयी  
अट्ठे ते आपनारीने साधु छडे ठे—‘अयेवा आहाड भने कल्पता नयी’ (६३-६४)

हुज्ज कट्टं इत्यादि तथा न तेणं इत्यादि

नदी आदिमा वरसादने वषते आववा ज्वा भाटे के लाउअ, पत्थर, छट

सरका कर ओमिधिया=अधिक इन्धनको चूल्हेके अन्दरमे बाहर निकालकर उज्जालिया=गुदी हुई अग्निको फूँक आदिसे उद्दीपित-सलगा-कर पज्जालिया=जलती हुई अग्निको अधिक प्रदीप्त कर निःश्यायिया=अग्निको पानी आदिसे बुझाकर उस्सिचिया=अग्निपर पकते हुए अन्नादिको कुछ बाहर निकाल कर निस्सिचिया=उमरते हुए दुग्धादिमें जल छिड़कर ओवसिया=अग्निपर रहे हुए अन्नादिको दूसरे वरतनमें निकालकर ओयारिया=अग्निपर रहे हुए अन्नादिके वरतनको नीचे उतारकर अर्थात् अग्निकायका परम्परासे सघटा करके दण=अशनादि देवे तो त=इह मत्तापाणं तु=अशनादि सजयाण=साधुओंके लिए अरुप्पिय=अल्पनीय भवे=है, (अत) दितिच=देती हुईसे साधु पडि याइस्खे=रुहे कि तारिस=उस प्रकारका आहारादि से=मुझे (लेना) न कप्पइ= नहीं कल्पता है ॥६३॥६४॥

टीका-‘एच०’ इत्यादि, ‘त भवे०’ इत्यादि च । एचम्=उक्तप्रकारेण तेज स्कायत्रिपय इवेति भावः, उत्क्षिप्य=‘यावत्काल साधवेऽन्नादिक ददामि तावत्काल मग्निर्मां प्रशाम्यतु’ इति बुद्ध्या चुल्लयादाग्निन्धनमुत्सार्य, अत्रक्षिप्य=दाहभया दि धन निःसार्य, उज्ज्वाल्य अनुज्ज्वलित फूत्कारादिनोद्दीप्य, प्रज्ज्वाल्य=उद्दीप्त प्ररूपेण सवर्धय, निर्वाप्य=प्रशान्तीकृत्य, उत्सिच्य=अग्न्युपरिस्थितमन्नादिक किञ्चिद्बहिष्कृत्य, निपिच्य=उद्वलद्गुग्धादिक जलेन प्रशाम्य, अपत्र्य=भाजनान्तरे

‘एच उस्सिक्किया०’ इत्यादि, तथा ‘त भवे’ इत्यादि ।

‘जब तक आहार देती है तब तक, अग्नि न बुझ जाय’ ऐसा विचार कर चूल्हेमे इधन सुलगाकर, अन्न आदि जलनेके भयसे इधन बाहर निकाल कर, फूँक आदिसे चूल्हा जला कर, जलती अग्निको तेज कर या बुझा कर, अग्नि पर पकते हुए आहारको कुछ एक ओर कर, तथा पानी डाल कर उबाल (उफान) को शान्त कर, अथवा अन्न आदि सहित

एच उस्सिक्किया० इत्यादि, तथा त भवे० इत्यादि

‘न्या सुधी आहार आपती डोढि, त्या सुधी अग्नि डोढिवारं न नय,’ अथवा विचार करीने चूलाभा धंधला सजगावीने, अन्नादि गणी नवाना लयथी धंधला गडार काढीने, कुछ आदिथी चूला सजगावीने, गणता अग्निने तेज करीने या शुभावीने, अग्नि पर पाकता आहारने डोढि अथवा पावुअे करीने तथा पाणी नाभीने डोढारने शांत करीने, अथवा अन्नादि सहित प्रासधुने नीचे

निधाय, अवतार्य=अन्नादिसहित भाजनमेवोच्यते वा दद्यात्, तद्भक्त-पान तु सयता-  
नामकल्पिक(त) भवेदतस्तद्दती प्रत्याचक्षीत-‘तादृश मे न कल्पते’ इति ६३॥६४॥

११ २ ५ ४ ३ ८ ७ ६ ९  
मूलम्-हुज्ज कट्ट सिल वावि, इट्टालं वावि एगया ।

१० ६ १२ १३ १५ १४  
ठवियं संकमट्टाए, त च होज्ज चलाचल ॥६५॥

१६ १६ १८ २० २६ २४ २५  
न तेण भिक्खू गच्छेज्जा, दिट्ठो तत्थ असंजमो ।

२२ २३ २१ २६  
गभीरं झुसिर चैव, सव्विदिय-समाहिए ॥ ६६ ॥

छाया—भवेत्काष्ठ शिला वाऽपि, इट्टाल वाऽयेरुदा ।

स्थापित सक्रमार्थं, तच्च भवेच्चलाचलम् ॥ ६५ ॥

न तेन भिक्षुर्गच्छेत्तृष्टस्तत्रासयमः ॥

गम्भीरं शुषिरं चैव, सर्वेन्द्रिय-समाहितः ॥ ६६ ॥

सान्त्वयार्थं -एगया=किसी समय अर्थात् वर्षा आदिके समय सक्रमट्टाए=  
जाने-आनेके लिए कट्ट=काठ वावि=या सिल=शिला वावि=अथवा इट्टाल=  
ईटका टुकड़ा ठविय=रखा हुआ हुज्ज=हो च=और त=वह (यदि) चलाचल=  
अस्थिर-डग मगाता हुज्ज=हो तो तेण=उस मार्गसे तथा जो गभीर=ऊँडा-गहरा  
और झुसिर=पोला स्थान हो उससे सव्विदियसमाहिए=समस्त इन्द्रियोको  
वशमें रखनेवाला भिक्खू=साधु न गच्छेज्जा=नहीं जावे, (क्योंकि) तत्थ=वहा  
पर केवली भगवानने असंजमो=असयम दिट्ठो=देखा है ॥६५॥६६॥

टीका—‘हुज्ज कट्ट’ इत्यादि, ‘न तेण’ इत्यादि च । एकदा=एकस्मिन् काले  
वर्षादौ यत् काष्ठ=सञ्चरणोपयोगि दारु, अपिवा शिला=प्रस्तरखण्डम् अपिवा

वर्त्तनको नीचे उतार कर यदि आहार देवे तो वह आहार अनगारके  
लिये ग्रहण करने योग्य नहीं है । अतः देनेवालीसे कहे कि-‘ऐसा  
आहार मुझे नहीं कल्पता है’ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

‘हुज्ज कट्ट’ इत्यादि, तथा ‘न तेण’ इत्यादि ।

नदी आदिमे वरसात आदिके समय, जाने-आनेके लिये जो काठ,

लितारीने ने आहार आये तो ते आहार अनगार ने भाटे ग्रहण करवा योग्य नवी  
अट्टले ते आपनारीने साधु कडे डे-‘अपेवे आहार मने कल्पतो नथी’ (६३-६४)

हुज्ज कट्टं इत्यादि तथा न तेणं इत्यादि

नदी आदिमा वरसादने वषते आपवा जवा भाटे ने लाउअ, पत्थर, धट

इष्टालम्=इष्टकाशकम्, सक्रमार्थं=गमनागमनार्थं स्यापितम्=भारोपितं भवेत्, तत्र  
 काष्ठादिकं यदि चलाचलम्=अस्थिरं कम्पमानं भवेत् तदा तेन काष्ठादिना संनि  
 यसमाहितः=शरीरुतसकलेन्द्रियो भिक्षुः=साधुः न गच्छेत् । 'वेव'-शब्दः समुच्चये  
 अपिचेत्यर्थः, गम्भीर-निम्नत्वेन प्रकाशशून्यं, धूपिर=गहरत्स्मात्प्रकाश 'प्रदेश'  
 मिति शेषः, न गच्छेदिति पूर्वेषु सम्बन्धः । अगमने हेतुमाह-तत्रेति, तत्र=तस्मिन्  
 असयमः=स्वपरविराधनादिरूपो ह्यः=अश्लोक्तः केवलमिदमिति शेषः ।  
 चलाचलविशेषणककाष्ठादिपदेन प्रखलनपतनादिनाऽऽत्मविराधना, एकेन्द्रिय  
 द्वीन्द्रियादिप्राणिगणोपमर्दनेन पर-विराधनासम्भावना च सूचिता । गम्भी  
 रादिप्रदेशगमनेनापि प्रोक्तदोषसमधिकहिंस्रादिजन्तुजनितोपघातादिप्रचुरदोष  
 सम्भवः सूचितः ।

‘सन्निदियसमाहिए’ इतिपदेन साधोरिन्द्रियविषयाऽऽसक्तिनिराकरण

પથર યા ફેટ આદિ રોપ દિયા હો ઓર યદિ વહ હિલતા હો તો સમાધિ  
 માનુ સયમી, ઉસ માર્ગસે ગમન ન કરે । ઓર જો પ્રદેશ, નીચા હોનેસે  
 અન્ધકારમય હો યા સ્વદેવાલા હો ઉસસે મી સાધુકો ગમન નહીં કરના  
 યાહિયે, ક્યોંકિ એસે માર્ગમેં ગમન કરનેસે સ્વ-પર-વિરાધના-રૂપ અસયમ  
 કેવલી ભગવાનને દેલા હૈ ।

હિલતે હુએ કાઠ આદિપર ચલનેસે રપટને યા ગિર પડનેસે આત્મવિરાધ-  
 નાકી ઓર એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય આદિ પ્રાણિયોંકે ઉપમર્દનસે પર-વિરાધનાકી  
 સમ્ભાવના સૂચિત કી હૈ । ગહરે (નીચે) પ્રદેશમેં ગમન કરનેસે ઉક્ત  
 દોષોંકે સિવાય હિંસક જન્તુઓંસે ઉત્પન્ન હોનેવાલા ઉપઘાત આદિ બહુતસે  
 દોષોંકા હોના સૂચિત કિયા હૈ । ‘સન્નિદિયસમાહિયે’ પદસે યહ

વગેરે શેષેલા હોય અને જો તે હલતા હોય તો સમાધિવાન સયમી એ માર્ગે  
 ગમન ન કરે અને જે પ્રદેશ નીચો હોવાથી અધકારમય હોય યા ખાડાવાળો  
 હોય તે માર્ગે પણ સાધુએ ગમન કરવું ન જોઈએ, કારણ કે એવા માર્ગે  
 ગમન કરવાથી સ્વ પર વિરાધનારૂપ અસયમ કેવળી ભગવાને જોયો છે

હલતા લાકડા આદિ પર ચાલવાથી લપસી જવાથી યા પડી જવાથી આત્મ  
 વિરાધનાની અને એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય પ્રાણીઓના ઉપમર્દનથી પર વિરાધનાની  
 સભાવના સૂચિત કરી છે નીચાણવાળા પ્રદેશમા ગમન કરવાથી ઉક્તદોષો  
 ઉપરાત હિંસક જન્તુઓથી ઉત્પન્ન થનારો ઉપઘાત આદિ ઘણા દોષો હોવાનું  
 સૂચિત કર્યું છે સન્નિદિયસમાહિયે પદથી એમ કહેવામા આવ્યું છે કે સાધુઓએ

परायणता प्रतिपादिता । 'भिक्षु' पदेन च यमनियमपूर्वकमेव भिक्षाग्राहित्वमिति बोधितम् ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

मूलम्-<sup>४</sup>निस्से<sup>५</sup>णिं<sup>६</sup> फल<sup>१०</sup>गं<sup>१२</sup> पीठं, <sup>१०</sup>उस्स<sup>१२</sup>वि<sup>१२</sup>त्ताण<sup>१२</sup>मारुहे ।

<sup>७</sup>मचं<sup>८</sup> कीलं<sup>६</sup> च<sup>११</sup> पासायं, <sup>२</sup>समण<sup>३</sup>ट्ठाए<sup>१</sup> व<sup>१</sup> दावए ॥ ६७ ॥

<sup>१३</sup>दुरूह<sup>१४</sup>माणी<sup>१५</sup> पवडे<sup>१६</sup>ज्जा, <sup>१७</sup>हत्थं<sup>१८</sup> पायं<sup>१९</sup> च<sup>२०</sup> लूसए ।

<sup>२१</sup>पुढवी<sup>२२</sup>जीवे<sup>२३</sup>वि<sup>२४</sup> हिसे<sup>२५</sup>ज्जा, <sup>२६</sup>जे<sup>२७</sup> य<sup>२८</sup> तन्नि<sup>२९</sup>स्सिया<sup>३०</sup> जगे ॥ ६८ ॥

<sup>३१</sup>एयारि<sup>३२</sup>से<sup>३३</sup> महा<sup>३४</sup>दोसे, <sup>३५</sup>जाणि<sup>३६</sup>ऊण<sup>३७</sup> महे<sup>३८</sup>सिणो ।

<sup>३९</sup>तम्हा<sup>४०</sup> मालो<sup>४१</sup>हड<sup>४२</sup> भिक्खं, <sup>४३</sup>न<sup>४४</sup> पडि<sup>४५</sup>गिण<sup>४६</sup>हति<sup>४७</sup> सजया ॥ ६९ ॥

उया-<sup>४८</sup>निश्रेणिं<sup>४९</sup> फलक<sup>५०</sup> पीठम्, <sup>५१</sup>उत्सृज्य<sup>५२</sup> आरोहेत् ।

मञ्च कीलञ्च प्रासाद, भ्रमणार्थमेव दायिका ॥६७॥

दुरा ( दू ) रोहन्ती प्रपतेत्, हस्तौ पादौ च लुपयेत् ।

पृथ्वीजीवानपि हिंस्या, धानि च तन्निःश्रितानि जगन्ति ॥६८॥

एतादृशान्महादोषान्, ज्ञात्वा महर्षयः ।

तस्मान्मालापहता भिक्षा, न शृङ्खन्ति सयताः ॥६९॥

सान्त्वयार्थ-<sup>५३</sup>दावए=<sup>५४</sup>दान देनेवाली स्त्री यदि <sup>५५</sup>समणट्ठा एव=<sup>५६</sup>साधुके लिएही <sup>५७</sup>निस्सेणिं=<sup>५८</sup>नैसैनी-<sup>५९</sup>निसरणी-<sup>६०</sup>सीढी <sup>६१</sup>फलगं=<sup>६२</sup>पाटे <sup>६३</sup>पीठं=<sup>६४</sup>पीढे <sup>६५</sup>मचं=<sup>६६</sup>खाट <sup>६७</sup>चं=<sup>६८</sup>और <sup>६९</sup>कीलं=<sup>७०</sup>कीलेको <sup>७१</sup>उस्सवित्ताणं=<sup>७२</sup>ऊचा-<sup>७३</sup>खडा करके <sup>७४</sup>पासायं=<sup>७५</sup>प्रासाद-<sup>७६</sup>मजिल पर <sup>७७</sup>आरुहे=<sup>७८</sup>चढे तो <sup>७९</sup>दुरूहमाणीं=<sup>८०</sup>इस प्रकार ऋष्टसे चढती हुई वह <sup>८१</sup>पवडेज्जा=<sup>८२</sup>शायद <sup>८३</sup>गिर जायगी <sup>८४</sup>चं=<sup>८५</sup>और <sup>८६</sup>अपना <sup>८७</sup>हत्थं=<sup>८८</sup>हाथ <sup>८९</sup>पायं=<sup>९०</sup>पैर <sup>९१</sup>लूसए=<sup>९२</sup>तोड़ <sup>९३</sup>वैठेगी तथा <sup>९४</sup>पुढ-<sup>९५</sup>वीजीवे <sup>९६</sup>अवि=<sup>९७</sup>पृथिवीकायके <sup>९८</sup>जीवोको <sup>९९</sup>नी <sup>१००</sup>चं=<sup>१०१</sup>और <sup>१०२</sup>जे=<sup>१०३</sup>जो <sup>१०४</sup>तन्निस्सिया=<sup>१०५</sup>उस <sup>१०६</sup>पृथ्वीको <sup>१०७</sup>नेसरायमें <sup>१०८</sup>रहे हुए <sup>१०९</sup>जगे=<sup>११०</sup>द्वीन्द्रियादि <sup>१११</sup>जीव हैं <sup>११२</sup>उन्हें भी <sup>११३</sup>हिंसेज्जा=<sup>११४</sup>मारोगी ॥६७॥६८॥

प्रकट किया गया है कि साधुओंको इन्द्रिय चपलताका त्याग करना चाहिये । 'भिक्षु' पदसे बोधित किया गया है कि साधुओंको यम-नियमोंका पालन करते हुए ही भिक्षा ग्रहण करना चाहिये ॥६७॥६८॥

इन्द्रिय चपलताने त्याग करके लोभसे भिक्षु शपथी से प्रकट करवाना आव्यु छे उे साधुओंसे यम नियमोंनु पालन करता व भिक्षा ग्रहण करवी लोभसे ( ६५-६६ )

દટાલમ્=શ્લેષકાશરુલ, સમમાર્થ્ય=ગમનાગમનાર્થ મ્યાપિતમ્=આરોપિત મન્વેત્, તથ  
 ફાષ્ટાદિક યદિ ચલાચલમ્=અસ્થિર ફમ્પમાન મન્વેત્ તદા તેન કાષ્ટાદિના સર્વેન્દ્રિ  
 યસમાહિતઃ=ચીઠ્ઠતસકલેન્દ્રિયો મિત્યુઃ=સાધુઃ ન ગચ્છેત્ । 'વેવ'-શબ્દઃ સમુચ્ચયે  
 અપિચેત્યર્થઃ, ગમ્મીર-નિમ્નત્વેન પ્રમાણશૂન્યં, શુપિર=ગહરત્સ્માત્રમાત્ર 'પ્રદેશ'-  
 મિતિ શેષઃ, ન ગચ્છેદિતિ પૂર્વેણ સમ્યગ્ચઃ । અગમને હેતુમાહ-તત્રેતિ, તત્ર=તસ્મિન્  
 અસયમઃ=સ્વપરવિરાધનાદિરૂપો દષ્ટઃ=અયલોકિત' કેવલ્મિરિતિ શેષઃ ।  
 ચલાચલવિશેષણકાષ્ટાદિપદેન પ્રસ્ત્યલ્લન પતનાદિનાઽઽસ્તમવિરાધના, એકેન્દ્રિય  
 દ્વીન્દ્રિયાદિપ્રાણિગણોપમર્દનેન પર-વિરાધનાસમ્ભાવના ચ સૂચિતા । ગમ્મી  
 રાદિપ્રદેશગમનેનાપિ પ્રોક્તદોષમધિકર્હિસાદિજન્તુજનિતોપઘાતાદિપ્રચુરદોષ-  
 સમ્ભવઃ સૂચિતઃ ।

‘સર્વિન્દ્રિયસમાહિષ્ટ’ ઇતિપદેન સાધોરિન્દ્રિયત્રિપયાઽઽસક્તિનિરાકરણ

પથર યા ઈટ આદિ રોપ દિયા હો ઓર યદિ વહ હિલતા હો તો સમાધિ  
 માન્ સયમી, ઉસ માર્ગસે ગમન ન કરે । ઓર જો પ્રદેશ, નીચા હોનેસે  
 અન્ધકારમય હો યા યાદેવાલા હો ઉસસે મી સાધુકો ગમન નહીં કરના  
 યાહિયે, ક્યોંકિ એસે માર્ગમેં ગમન કરનેસે સ્વ-પર-વિરાધના-રૂપ અસયમ  
 કેવલી ભગવાન્ને દેલા હૈ ।

હિલતે હુએ કાઠ આદિપર ચલનેસે રપટને યા ગિર પડનેસે આત્મવિરાધ  
 નાકી ઓર એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય આદિ પ્રાણિયોંકે ઉપમર્દનસે પર વિરાધનાકી  
 સમ્ભાવના સૂચિત કી હૈ । ગહરે (નીચે) પ્રદેશમેં ગમન કરનેસે ઉક્ત  
 દોષોંકે સિવાય હિંસક જન્તુઓંસે ઉત્પન્ન હોનેવાલા ઉપઘાત આદિ બહુતસે  
 દોષોંકા હોના સૂચિત કિયા હૈ । ‘સર્વિન્દ્રિયસમાહિષ્ટ’ પદસે યહ

વગેરે શેષેલા હોય અને જો તે હલતા હોય તો સમાધિવાન સયમી એ માર્ગે  
 ગમન ન કરે અને જો પ્રદેશ નીચો હોવાથી અધકારમય હોય યા ખાડાવાળો  
 હોય તે માર્ગે પણ સાધુએ ગમન કરવું ન જોઈએ, કારણ કે એવા માર્ગે  
 ગમન કરવાથી સ્વ પર વિરાધનારૂપ અસયમ કેવળી ભગવાને જોયો છે

હલતા લાકડા આદિ પર ચાલવાથી લપસી જવાથી યા પડી જવાથી આત્મ  
 વિરાધનાની અને એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય પ્રાણીઓના ઉપમર્દનથી પર વિરાધનાની  
 સભાવના સૂચિત કરી છે નીચાણવાળા પ્રદેશમા ગમન કરવાથી ઉત્તરોપો  
 ઉપરાત હિંસક જન્તુઓથી ઉત્પન્ન થનારો ઉપઘાત આદિ ઘણા દોષો હોવાનું  
 સૂચિત કર્યું છે સર્વિન્દ્રિયસમાહિષ્ટ પદથી એમ કહેવામા આવ્યું છે કે સાધુઓએ

श्रितानि जगन्ति=प्राणिनस्तानि हिंस्यादिति पूर्वेण सम्बन्धः तस्मात्=यतो निश्रे-  
ण्यादिना समारोहणे पतनादिद्वारा दातुः स्व-परोभयविराग्ना सम्भवति अतः  
कारणात् एतादृशान्=उत्कलक्षणान् महादोषान्=दातृप्रभृतीना मृत्योरपि सम्भवेन  
दारुणकर्मविपाकहेतुत्वात्प्रकृष्टदूपणानि ज्ञात्वा सयताः=समलसावययोगसमुपरताः  
महर्षयः=योरपरीपहोपसर्गसहिष्णुत्वान्महामुनयः, मालापहता=मालो<sup>१</sup> भूमिका-  
वाची देशीयशब्दः, ततः अपहताम्=आनीता भिक्षा न प्रतिगृह्णन्ति=न स्वीकुर्वन्ति ।

मालापहता भिक्षा भूमिकाया ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्भेदेन त्रिविधा-ऊर्ध्वमालापहता,  
अधोमालापहता, तिर्यग्मालापहता चेति । तयो र्वमालापहता पूर्वं व्याख्याता ।  
अधोमालापहता=यस्या भूमिकाया निश्रेण्यादिनाऽवरुह्य आनीता । तिर्यग्माला-

१ मालः 'मजिल' इति भाषाप्रसिद्धः ।

तथा जो प्राणी, पृथ्वीपर सञ्चार कर रहे हों उनकी भी हिंसा होजाय,  
इसलिये ऐसी अवस्थामें स्व, पर और उभयकी विराधनाका होना  
सम्भव है, यहाँ तककि दाताकी मृत्यु भी हो जा सकती है, अतः इन  
महादोषोंको अत्यन्त दुःखदायी जान कर, सयमी महामुनि, नसैनी (सीढ़ी)  
आदि द्वारा माला (मजिल) से उतारा हुआ आहार आदि स्वीकार  
नहीं करते ॥

मालाके भेदसे मालापहृत भिक्षा, तीन प्रकारकी है-(१) ऊर्ध्व-माला  
पहृत (२)-अधो-मालापहृत और (३)-तिर्यग्मालापहृत । इनमें, ऊर्ध्व-  
मालापहृत भिक्षाका विवेचन, पहले कह आये हैं । ऊपरके मजिलसे  
नीचेकी ओर नसैनी ( निसरणी ) लगाकर, लाई हुई भिक्षा, अधोमाला-

विराधना याय, तथा जे प्राणी पृथ्वी पर सञ्चार करी रखा होय तेमनी पण  
हिंसा थर्ष नथ, तेथी जेवी अवस्थाभा स्व, पर अने उलयनी विराधना थवी  
संभावित छे, अतएव सुधी छे दातानुं मृत्यु पण थर्ष थडे छे, तेथी करीने  
जे महादोषेने अत्यन्त दुःखदायी जालीने सयमी महामुनि नीसरणी आदिद्वारा  
माणथी उतारेवै आहार आदि स्वीकारे नहि

माण मजिलाना बेटे करीने मालापहृत भिक्षा त्रय प्रकारनी छे (१) ऊर्ध्व  
मालापहृत, (२) अधोमालापहृत अने (३) तिर्यग्मालापहृत जेभा ऊर्ध्व  
मालापहृत भिक्षानुं विवेचन पड़ेला करवामा आब्यु छे उपरना मजलाथी  
नीसरणी लगावनी लावेवी भिक्षा अधोमालापहृत कहेवाय छे



तस्मात्=इसीलिये एयारिसे=ऐसे पूर्वोक्त प्रकारके महादोसे=दाताकी कृप्य  
तरु होनेकी सभारनाके कारण महादोषोंको जाणिऊण=जानकर सजय=  
सरल सायय व्यापारसे विरत हुए महेशिणो=महर्षि लोग मालोहड=मालापहत  
(मालसे लाई हुई) भिक्षु=भिक्षाको न पढिगिणहति=नहीं लेते हैं ॥६९॥

टीका—मालापहतभिक्षादोषमाह—‘निस्सेणि’ इत्यादि । ‘दावण’  
इत्यत्र प्राकृतत्वाद्भिन्नव्यत्ययस्तथा च दायिका=दात्री, श्रमणार्थमेव=साधुनिमित्त  
मेव साधवे भिक्षादानार्थमेवेत्यर्थः, निश्रेणि=शशादिनिमित्त सोपान, फलक=शय  
नोपयोगि दास्ययाऽऽसन, पीठ=काष्ठनिर्मितोपवेशनोपयोगि लघ्वासन ‘पीडा’  
इति प्रसिद्ध, मञ्च=खट्वा शशदलादिरचितोच्चासन या, कील=शङ्कु, चकारान्धु  
सलादिकम् उत्सृज्य=ऊर्ध्वीकृत्य, प्रासादम्=उच्चगृह तत्रानेकभूमिकासम्भवेना  
ऽऽरोहणादिक युज्यत इति तद्भूमिकाया लक्षणा, तथा च=उच्चगृहभूमिकामित्यर्थः,  
आरोहेत्=उपलक्षणया गच्छेदित्यर्थः । तेन तिस्रषु वक्ष्यमाणेषु मालापहतासु  
भिक्षासु समन्वयः । निश्रेण्यादिना सदुःखमारोहण भवतीत्यत आह—दुरा (दू)  
रोहन्ती=सदुःखमूर्ध्वप्रदेशमासादयन्ती सती प्रपतेत्, हस्तौ पादौ च लक्षयेत्=  
चोटयेत्, पृथ्वीजीवानपि हिंस्यात्=पीडयेत्, यानि च तन्निश्रितानि=पृथिव्या

मालापहत भिक्षाके दोष बताते हैं—‘निस्सेणि’ इत्यादि, ‘दुरूहमाणी’  
इत्यादि, तथा ‘एयारिसे’ इत्यादि ।

दाता, यदि साधुके लिये नसैनी, सीढी (निसरणी), पाटा, पीठा  
(बाजोट), माचा, खूटी अथवा मूसल आदिको ऊँचा करके ऊँचे  
मकानकी दूसरी मजिल पर चढ़ कर, आहार लावे तो वह आहार आदि,  
मालापहत कहलाता है । नसैनी (सीढी) आदि पर चढ़नेसे यदि गिर  
पड़े तो हाथ पैर टूट जायँ, पृथ्वीकाय आदि जीवोंकी विराधना होजाय

इसे मालापहत भिक्षाना दोषो गतावे छे—निस्सेणि इत्यादि, दुरूहमाणी,  
इत्यादि, तथा एयारिसे इत्यादि

जे दाता साधुने माटे सीढी (नीसरणी), पाट, पालेड, माचा, खूटी  
अथवा मूसल (साजेलु) आदिने उचा ठरीने उचा मकानना पीठ मजला  
पर चढ़ीने आहार लावे तो ते आहार मालापहत कहेवाय छे सीढी आदि पर  
चढ़वाधी जे पडी नथ तो हाथ-पग टूटी नथ, पृथ्वीकाय आदि जीवोंकी

त्रितानि जगन्ति=प्राणिनस्तानि हिंस्यादिति पूर्वेण सम्मन्त्रः तस्मात्=यतो निश्रेण्यादिना समारोहणे पतनादिद्वारा दातुः स्व-परोभयविरागना सम्भवति अतः कारणात् एतादृशान्=उक्तलक्षणान् महादोषान्=दातृप्रभृतीना मृत्योरपि सम्भवेन दारणकर्मविपाकहेतुत्वात्प्रकृष्टदूषणानि ज्ञात्वा सयताः=सकलसावत्रयोगसमुपरताः महर्षयः=योरपरीपहोपसर्गसहिष्णुत्वान्महामुनयः, मालापहता=मालो<sup>१</sup> भूमिकावाची देशीयशब्दः, ततः अपहताम्=आनीता भिक्षा न प्रतिगृह्णन्ति=न स्वीकुर्वन्ति ।

मालापहता भिक्षा भूमिकाया ऊर्ध्वांधस्तिर्यग्भेदेन त्रिविधा-ऊर्ध्वमालापहता, अगोमालापहता, तिर्यग्मालापहता चेति । तत्रो र्वमालापहता पूर्वं व्याख्याता । अगोमालापहता=यस्या भूमिकाया निश्रेण्यादिनाऽवरोह आनीता । तिर्यग्माला-

१ मालः 'मजिल' इति भाषाप्रसिद्धः ।

तथा जो प्राणी, पृथ्वीपर सञ्चार कर रहे हों उनकी भी हिंसा होजाय, इसलिये ऐसी अवस्थामें स्व, पर और उभयकी विरायनाका होना सम्भव है, यहाँ तककि दाताकी मृत्यु भी हो जा सकती है, अतः इन महादोषोंको अत्यन्त दुःखदायी जान कर, सयमी महामुनि, नसैनी(सीढ़ी) आदि द्वारा माला (मजिल) से उतारा हुआ आहार आदि स्वीकार नहीं करते ॥

मालाके भेदसे मालापहृत भिक्षा, तीन प्रकारकी है-(१) ऊर्ध्व-मालापहृत (२)-अधो-मालापहृत और (३)-तिर्यग्मालापहृत । इनमें, ऊर्ध्व-मालापहृत भिक्षाका विवेचन, पहले कह आये हैं । ऊपरके मजिलसे नीचेकी ओर नसैनी ( निसरणी ) लगाकर, लाई हुई भिक्षा, अगोमाला-

विराधना थाय, तथा जे प्राणी पृथ्वी पर सञ्चार करी रह्या होय तेमनी पणु हिंसा थध नय, तेथी अेवी अवस्थामा स्व, पर अने उभयनी विराधना थवी सभावित छे, अेटवे सुधी डे दातानुं मृत्यु पणु थध नध शडे छे, तेथी करीने अे महादोषेने अत्यन्त दुःखदायी नालीने सयमी महामुनि नीसरणी आदिद्वारा भाणथी उतारेलो आहार आदि स्वीकारे नछि

भाण मजला ना छेदे करीने मालापहृत भिक्षा त्रयु प्रकारनी छे (१) ऊर्ध्व-मालापहृत, (२) अधोमालापहृत अने (३) तिर्यग्मालापहृत अेमा ऊर्ध्व-मालापहृत भिक्षानुं विवेचन पछेला करवामा आणु छे उपरना मजलाथी नीचेनी भाणअे नीसरणी लगावीने लावेदी भिक्षा अधोमालापहृत छेवाय छे

तम्हा=इसीलिप एग्यारिसे=ऐसे पूर्वोक्त प्रकारके महादोसें=दाताकी वस्तु  
 तरु होनेकी समाप्ताके कारण महादोषोंको जाणिऊन=जानकर सजय=  
 सकल सायण व्यापारसे विरत हुए महेशिणो=महापि लोग मालोहड=मालापहत  
 (मालसे लाई हुई) भिक्षु=भिक्षाको न पढिगिणहति=नहीं छेते हैं ॥६९॥

टीका—मालापहतभिक्षादोषमाह-‘निस्सेणि’ इत्यादि । ‘दावण’  
 इत्यत्र माकृतत्वालिङ्गपत्ययस्तथा च टायिका=दात्री, श्रमणार्थमेव=साधुनिमित्त  
 मेव-साधवे भिक्षादानार्थमेवेत्यर्थः, निश्रेणि=शशादिनिर्मित सोपान, फलक=शय  
 नोपयोगि दारुमयाऽऽसन, पीठ=काष्ठनिर्मितोपवेशनोपयोगि लम्बासन ‘पीठा’  
 इति प्रसिद्ध, मञ्च=खट्वा शशदलादिरचितोद्यासन या, कील=शङ्कु, चकारान्ध  
 सलादिकम् उत्सृज्य=ऊर्ध्वीकृत्य, मासादम्=उच्यते तत्रानेकभूमिकासम्भवेना  
 ऽऽरोहणादिक युज्यत इति तद्भूमिकाया लक्षणा, तथा च-उच्यतेभूमिकामित्यर्थः,  
 आरोहेत्=उपलक्षणया गच्छेदित्यर्थः । तेन तिसृषु वक्ष्यमाणेषु मालापहताषु  
 भिक्षासु समन्वयः । निश्रेण्यादिना सदुःखमारोहण भवतीत्यत आह-दुरा (दृ)  
 रोहन्ती=सदुःखमूर्धमदेशमासादयन्ती सती प्रपतेत्, हस्ता पादां च लूषयेत्=  
 श्रोतयेत्, पृथ्वीजीवानपि हिंस्यात्=पीडयेत्, यानि च तन्निःश्रितानि=पृथिव्या

मालापहत भिक्षाके दोष बताते हैं-‘निस्सेणि’ इत्यादि, ‘दुरुहमाणी’  
 इत्यादि, तथा ‘एग्यारिसे’ इत्यादि ।

दाता, यदि साधुके लिये नसैनी, सीढी (निसरणी), पाटा, पीठा  
 (बाजोट), माचा, खूटी अथवा मूसल आदिको ऊँचा करके ऊँचे  
 मकानकी दूसरी मजिल पर चढ़ कर, आहार लावे तो वह आहार आदि,  
 मालापहत कहलाता है । नसैनी (सीढी) आदि पर चढ़नेसे यदि गिर  
 पड़े तो हाथ पैर टट जायँ, पृथ्वीकाय-आदि जीवोंकी विराधना होजाय

इसे मालापहत भिक्षाना दोषो गतावे छे-निस्सेणि इत्यादि, दुरुहमाणी  
 इत्यादि, तथा एग्यारिसे इत्यादि

जे दाता साधुने माटे सीढी (निसरणी), पाट, पालेक, माचा, खूटी  
 अथवा मूसल (सागेलु) आदिने उचा करीने उचा मकानना पीठ मजला  
 पर चढ़ीने आहार लावे तो ते आहार मालापहत कहेवाय छे सीढी आदि पर  
 चढ़वाथी जे पीठ नय तो हाथ-पग टूटी नय, पृथ्वीकाय आदि जीवोनी

टीका—‘कद्’ इत्यादि । कन्द, मूलम्, इमे प्राग्व्याख्याते, वा=अथवा प्रलम्ब=तालादिफलम् आमम्=अपक्व-सचित्तमित्यर्थः । च=गुनः उन्न=कृत्तित-मपि सन्निर=पत्रशारु-यास्नूकादिक, तुम्बकम्=अलातूत्रिशेष, शृङ्गेरम्=आर्द्रक चकारादन्यदपि प्रत्येकसाधारणवनस्पतिमानम् आमकम्=अपक्व सचित्त परि-वर्जयेत्=त्यजेत् -न गृह्णीयादित्यर्थः ॥७०॥

मूलम्-तहेव सत्तुचुन्नाइ कोल-चुन्नाइ आवणे ।

सक्कुलि फाणिय पूअ, अन्न वावि तहाविह ॥७१॥

विक्रायमाण पसढं, रएण परिफासिय ।

दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥७२॥

छाया—तथैव सक्तु-चूर्णानि, कोल-चूर्णानि आपणे ।

शक्कुली फाणित, पूपमन्यद्वापि तथाविधम् ॥७१॥

विक्रीयमाण पसह्य, रजसा परिस्पष्टम् ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥७२॥

सान्वयार्थ’-तहेव=जिसप्रकार सचित्त कन्दादि अग्राह्य है उसीप्रकार सत्तु-चुन्नाइ=भुने हुए जो या चनेका आटा-सत्तू कोलचुन्नाइ=नेरोका चूरा सक्कुलि=तिलपापडी फाणिय=गीला गुड पूअ=मालपूवा (तथा) तहाविह=उसीप्रकारके अन्न वावि=औरभी पदार्थ जो आवणे=दुकानपर विक्रायमाण=बेचनेके लिए रखे हुए है वे (यदि) पसढं=सखसे आच्छादित होनेपर भी रएण=सचित्त सूक्ष्म रजसे परिफासिय=व्याप्त हो तो दितिय=ढेनेगालीसे पडियाइक्खे=रुहे कि

‘कद्’ इत्यादि । सचित्त कन्द, मूल, ताडफल आदि तथा कटा हुआ भी सचित्त पत्तोका शाक बजुआ आदि, और सचित्त तुम्बा तथा अदरख भी मातु ग्रहण न करे । ‘च’ शब्दसे यह भी समझना चाहिये कि इनके सिवाय कोई भी सचित्त-प्रत्येक या साधारण वनस्पति, साधुको नहीं कल्पती है ॥ ७० ॥

कदं इत्यादि सचित्त कद, मूल, ताडफल आदि तथा कापेला छोटा छोटा सचित्त पाददानु गाक-गथुआनी साठ आदि अने सचित्त इंधी आदि तथा आहु पणु साधु अहण न करे च शब्दही अंग पणु समझणु के ते उपरात कौं पणु सचित्त-प्रत्येक या साधारण वनस्पति साधुने कल्पती नहीं (७०)

पद्धता तु यस्यां भूमिगायां गयिका तिष्ठेत्तस्यामेव, नयादी जम्बवाहावरोधिसेतु  
वन्निश्रेण्यादिकं तिर्यक् सस्थाप्य तद्वारा अगश्चिष्टापभागे गमनागमनेनाऽऽनीता।  
दुष्पापशिरयादिस्थस्यातिगम्भीरकृमूलादिभ्यस्य चास्त्रादेर्ग्रहणे चरणोन्नमनादिनाऽ-  
नेकमिषकष्टसम्भवादेऽग्निधापि भिक्षा तदन्तर्ज्ञेयेति ॥६७॥६८॥६९॥

<sup>१</sup> मूलम्-<sup>२</sup>कंदं <sup>३</sup>मूल <sup>४</sup>पलव <sup>५</sup>वा, <sup>६</sup>आम <sup>७</sup>छिन्नं <sup>८</sup>च <sup>९</sup>सन्निर ।

<sup>६</sup>तुवाग <sup>१०</sup>सिंगवेर <sup>११</sup>च, <sup>१२</sup>आमगं <sup>१३</sup>परिवज्जण ॥ ७० ॥

छाया—कन्द मूल पलव वा, आम छिन्न च सन्निरम् ।

तुम्भश्च शृङ्गरेश्च, आमक परिनिर्जयेत् ॥७०॥

सान्वयार्थः—आम=सचित्त कद=मूरण आदि कन्द मूल=विदारिकादि मूल  
पलव=ताल आदिके फल वा=तथा छिन्न च=काठी हुई भी सन्निर=त्रयुष  
आदिकी भाजीको (तथा) आमग=सचित्त तुवाग=तूवे च=और सिंगवेर=  
अदरख-आदे-को साधु परिवज्जण=वरजे ॥७०॥

पह्त कहलाती है। जिस मजिलमें देनेवाली मौजूद हो उसीकी बराबरी  
पर, दूसरी ओर जानेके लिये पुलकी तरह नसैनी (निसरणी) या  
लकड़ी आदिको तिरछा रख कर बढे तो वहाँसे लाई हुई भिक्षा, तिर्यग्  
मालापह्त कहलाती है। बडी कठिनाईसे पहुँचने योग्य छीके या आलेमें  
तथा गहरी कोठरीमे रक्खी हुई भिक्षा ग्रहण करनेसे पैर उठाने आदि  
अनेक कष्ट होते हैं इसलिये, ऐसी भिक्षा भी इसी मालापह्त भिक्षामें  
अन्तर्गत समझनी चाहिये। यह सब प्रकारकी भिक्षा साधुको  
अकल्प्य है ॥ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

ये भज्जामा भिक्षा आपतरी डाबर छाय, तेनी गरामर भील यान्त्रि  
जवाने भाटे पूतनी पेडे नीक्षरणी या लाडु पाटियु तीछ् राभीने अडे तो  
त्याथी लावेली भिक्षा तिर्यग्मालापह्त कहेवाय छे अहु मुश्केलीथी पडोथी  
शक्य अेवा सी का, या छाल्लीमा तथा उडी डोटडीमा रापेला अशनादि अकल्प  
करवाथी पग उपाडवा आदिना अनेक कष्टो पडे छे, तेथी अेवी भिक्षा पलु या  
(मालापह्त) भिक्षामाज सभायली समलु लेवी अे सर्व प्रकारनी भिक्षा साधुने  
भाटे अकल्प्य छे (६७-६८-६९)

टीका—‘कद्’ इत्यादि । कन्द, मूलम्, इमे प्राग्व्याख्याते, वा=अथवा प्रलम्ब=तालादिकफलम् आमम्=अपक्व-सचित्तमित्यर्थः । च=मुनः छिन्न=कृत्तित-मपि सन्निर=पत्रशाक-गासृकादिक, तुम्बकम्=भलागुनिशेष, शृङ्गरेरम्=आर्द्रक चकारादन्यदपि प्रत्येकसाधारणवनस्पतिमात्रम् आमकम्=अपक्व सचित्त परि-वर्जयेत्=त्यजेत्-न गृह्णीयादित्यर्थः ॥७०॥

मूलम्-तद्देव सत्तुचुन्नाइं कोल-चुन्नाइं आवणे ।

सक्कुलि फाणिय पूअ, अन्न वावि तहाविह ॥७१॥

विक्रीयमाण पसढ, रएण परिफासियं ।

दित्तिय पडियाडक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥७२॥

छाया—तथैव सक्तु-चूर्णानि, कोल-चूर्णानि आपणे ।

शक्कुली फाणित, पूपमन्यद्वापि तथावियम् ॥७१॥

विक्रीयमाण प्रसह्य, रजसा परिस्पृष्टम् ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते ताद्रशम् ॥७२॥

सान्न्वयार्थः—तद्देव=जिसप्रकार सचित्त कन्दादि अग्राह्य हैं उसीप्रकार सत्तु-चुन्नाइं=भुने हुए जो या चनेका आटा—सत्तु कोलचुन्नाइं=पेरोका चूरा सक्कुलिं=तिलपापडी फाणिय=गीला गुड पूअ=मालपूवा (तथा) तहाविह=उसीप्रकारके अन्न वावि=औरभी पदार्थ जो आवणे=दुकानपर विक्रीयमाण=बेचनेके लिए रखे हुए हैं वे (यदि) पसढ=बख्खसे आच्छादित होनेपर भी रएण=सचित्त मूक्ष्म रजसे परिफासिय=व्याप्त हो तो दित्तिय=देनेवालीसे पडियाडक्खे=कहे कि

‘कद्’ इत्यादि । सचित्त कन्द, मूल, ताड-फल आदि तथा कटा हुआ भी सचित्त पत्तोका शाक वयुआ आदि, और सचित्त तुम्बा तथा अदरख भी साधु ग्रहण न करे । ‘च’ शब्दसे यह भी समझना चाहिये कि इनके सिवाय कोई भी सचित्त-प्रत्येक या साधारण वनस्पति, साधुको नहीं कल्पती है ॥ ७० ॥

कद्० इत्यादि सचित्त कद्, मूल, ताड-फल आदि तथा कापेला डोवा छता सचित्त पादशानु शाक-वयुआनी लाए आदि अने सचित्त इंधी आदि तथा आहु पणु साधु ग्रहण न करे च शब्दशी अेभ पापु सभ-पु डे ते उपगत डेठ पणु सचित्त-प्रत्येक या साधारण वनस्पति साधुने कल्पती नहीं (७०)

तारिस=इस प्रकारका आढारादि मे=मुझे (लेना) न कल्पइ=नहीं कल्पता है ॥७२॥

टीका—‘तहेत्र’ इत्यादि, ‘विक्रायमाण’ इत्यादि च । तये=पवा  
 पूर्वोक्त सचिचकन्दादिकमप्राप्त तैनेत्र प्रकारेण सक्तु-चूर्णानि=सक्तु एव चूर्णानि  
 तानि सक्तुनित्यर्थः, भृष्टयरादिचूर्णान्येत्र सक्त्र उच्यन्ते, कोल-चूर्णानि=वदरी-  
 फलचूर्णानि, शक्कुलीं=तिलपर्वटिका, फाणित=द्वुतगुड, पूषम्=अपूपम्, तथाविष=  
 तादृशम् अन्यदपिवा दफ्यादिकम्, आपणे=ऋय विक्रयस्थाने, विक्रीयमाण=  
 विक्रयार्थं स्थाप्यमान, रजसा=सचिचरेणुना, प्रसद्य=ऋटात् वस्त्रादिनाऽऽच्छादनेऽपि  
 यथारूपञ्चित्प्रकारेणेति भार, परिस्पृष्ट=व्याप्त-वायुसमुत्थितरजःसस्पृष्टम् ददतीं  
 प्रत्याचक्षीत-‘तादृश मे न कल्पत’ इति ॥७१॥७२॥

मूलम्—<sup>१</sup>बहु<sup>२</sup>अद्वि<sup>३</sup>य पुग्गल, अणिमिस वा बहुकटयं ।

अच्छिय तिंदुय विह्ल, उच्छुखड व सिंवलि ॥७३॥

अप्पे सिया भोयणजाए, बहु उज्झणधम्मिए ।

दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पड तारिस ॥७४॥

‘तहेव’ इत्यादि, तथा ‘विक्रायमाण’ इत्यादि ।

जैसे, सचिच कन्द, मूल आदि त्याज्य हैं वैसेही सक्तू, बेरोंका  
 चूर्ण, तिलपापडी, पिघला हुआ गुड, पूआ तथा ऐसी दही आदि अन्यान्य  
 वस्तुएँ, बेचनेके लिये दुकानमें रक्खी हों, और सचिच रजसे व्याप्त हों,  
 अर्थात् वस्त्रसे ढँक रखने पर भी पवनके द्वारा पहुँची हुई सूक्ष्म सचिच  
 रजसे युक्त हों तो वह आहार कल्पनीय नहीं है । इसलिये साधु,  
 देनेवालीसे कहे कि ‘ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

तहेव धत्यादि तथा विक्रायमाण धत्यादि

लेम सचिच कंदमूल आदि त्याज्य छे, तेमज सक्तू, गोरतु शुष्क  
 तिलपापडी, नरम गोण, तथा जेवा प्रकारनी पीछ दही आदि नरम वस्तुओ  
 वेचवाने भाटे दुकानमा राणी होय अने सचिच रजथी व्याप्त होय अर्थात्  
 वस्त्रथी ढाकी राभ्या छता पवनद्वारा पहुँचेदी सूक्ष्म सचिच रजथी युक्त होय  
 ते ते आहार कल्पनीय नहीं तेथी साधु ते आपनारीने कहे के जेवा आहार  
 अने कल्पतो नहीं (७१ ७२)

छाया—वहृष्टिक पुद्गलम्, अनिमिष वा बहुकण्टकम् ।

अक्षीव तिन्दुक तिलम्, इक्षुरखण्ड वा शाल्मलिम् ॥७३॥

अल्प स्याद्भोजनजात, बहुज्वनधर्मिकम् ।

ददती प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥७४॥

सान्त्वयार्थः—वहुअद्विय=वहुबीजा अर्थात् सीताफल अणिमिस=अननास

बहुकटय=पनस-कटहल अच्छिद्य=शोभाञ्जनकी फली, जो 'मुनगा' नामसे प्रसिद्ध है, तिन्दुय=तेन्दु तिल्ल=तेल सिंमलिं=सेमल इन नामके पुग्गल=फलोको च=और उच्छुखड=गन्ने-शेरडी-के टुकडोको, तथा जिस पदार्थमें भोजनजाए=खानेयोग्य अश अप्पे सिया=थोडा हो और उज्ज्वणधम्मिण=डालदेनेयोग्य अश बहु=वहुत हो ऐसे फल आदि दित्तिय=देनेवालीसे मायु पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=इस प्रकारका आहारादि मे=मुखे (लेना) न कप्पड=नहीं कल्पता है ॥७३॥७४॥

टीका—'वहुअद्विय' इत्यादि, 'अप्पे सिया' इत्यादि च। वहस्थिकम्=वहूनि, अस्थीनि=बीजानि-अस्थि=बीजमिति रायमुकुटः, वैद्यकश्चेति शब्दकल्पद्रुमः, यस्मिन्, यद्वा वहूनि अस्थिकानि 'अस्थिकम्=बीजे मेदोजघातौ चेति राजनिघण्टु' इति वैद्यकशब्दसिन्धुः, यस्मिस्तत्, बहुबीजक-योगरूढमेतत्, सीताफलादिकमित्यर्थ —

'वहुअद्विय' इत्यादि तथा 'अप्पे सिया' इत्यादि । 'अस्थि' शब्दका अर्थ, बीज होता है, रायमुकुट तथा वैद्यकोपोमें 'अस्थि' शब्दका बीज ही अर्थ है, ऐसा 'शब्दकल्पद्रुम' अभिधानमें भी लिखा है । अत एव वहस्थिक शब्दका अर्थ है बहुत बीजोंवाला । यह शब्द योगरूढ है, अत एव सीताफल अर्थ होता है । निघण्टुमें भी सीताफल (सरीफा)के इतने नाम गिनाये हैं—

वहुअद्विय० इत्यादि, तथा अप्पे सिया० इत्यादि 'अस्थि' शब्दको अर्थ पीण (पीयो) थाय छे रायमुकुट तथा वैद्यकोपोमा अस्थि शब्दको पीण अप्पो अर्थ छे, अप्पे शब्दकल्पद्रुम' मा पण्य लण्युं छे अप्पेत्ते वहस्थिक शब्दको अर्थ थाय छे गण्डु पीणे वाणु, अप्पे गण्डु योगण्डु छे, अप्पेत्ते सीताङ्गण अर्थ थाय छे निघण्टुमा पण्य सीताङ्गणा आटला नाम गण्णुव्या छे—



“सीताफल गण्डमात्र, वैदेहीवृक्षं तथा ।

कृष्णबीजं चाग्निमात्रमात्रप्य बहुबीजकम् ॥१॥” इति निवण्डकोषः ।

यदा ‘बहुअद्वियं’ इत्यस्य ‘बहद्विष्टा’ मिति-श्रुत्या, ‘फलबीजे पुमानद्विष्टि’ इति कोषात्, अर्थ-सूक्त एव । पुद्गलम्=रगद्वारात्तमकपूरणपरिपाकानन्तराः पतनात्प्रकृत-लक्षणमकृत्यात्पुद्गलः फलमामान्य तम्, अग्रेऽप्यस्य सम्बन्धः, सीताफलान्निभकं फलमिति भावः । अनिमिपम्=अनक्षामम् अन्तर्बहिःसरुष्टक वृक्षादिद्वेषसिद्धम् । बहुकण्टकम्=कण्टकिक-पनस ‘कटहर’ इत्यनेन प्रसिद्धम्, अस्य स्वभावे, सर्वा-रयाराज-द्वेदेन कण्टकल्याप्त्या बहुकण्टकम् सिध्यति, अनिमिपपदार्थस्य स्वन्तर्बहिः-सरुष्टकत्वेऽपि त्रिरुष्टकत्वाद्दस्माद्धेद । असीय=शोभाजनम् फलप्रकरणात्तत्फलिकाम्, त्वचः स्थौल्यकार्श्याधिक्यदोषेभ्यो बीजाना वाहुल्याच्चात्यधिकृत्याज्यभागा ‘मुनिगा’ इति देशविशेषमसिद्धाम् । तिन्दुम्=अण्डाकृतिक फलविशेषम् अल्पा-कारस्याप्यस्य फलस्य बीजाना स्थौल्यवाहुल्यादिद त्वाज्याशयहुल ‘तिन्दु’ इति

“सीताफल, गण्डमात्र, वैदेहीवृक्ष, कृष्णबीज, अग्नि, आतृष्य और बहुबीजक ॥१॥”

इनमें ‘बहुबीजक’ शब्द भी सीताफलके लिये आया है, और यह ऊपर बताया ही जा चुका है कि ‘अस्थि’ शब्दका अर्थ बीज होता है । इसलिये बहुबीजक और बहुस्थिक एक ही है, अतः बहुस्थिकका अर्थ सीताफल ही है । अथवा ‘अद्विय’ की छाया, ‘अधिक’ होती है, कोषमें लिखा है कि फलके बीजका ‘अद्वि’ कहते हैं । इससे भी पूर्वोक्त अर्थ ही सिद्ध होता है, इसलिये, सीता फलको तथा बग आदि अन्य अन्य देशोंमें प्रसिद्ध अनन्नास (अनास) फल विशेष, कटहर, मुनिगा (सोहिजन) की फली, तेन्दू, बेल, गन्नेका खण्ड

“सीताफल, गण्डमात्र, वैदेहीवृक्ष, कृष्णबीज अग्नि, आतृष्य अने बहुबीजक”

येमा ‘बहुबीजक’ शब्द पणु सीताफलने माटे आये। हे, अने उपर-पतापवामा आये। न छे के ‘अस्थि’ शब्दने अर्थ ‘बीज’ थाय छे अद्वि बहुबीजक अने बहुस्थिक अर्थ छे, अर्थात् बहुस्थिकने अर्थ सीताफल न छे अथवा अद्विय नी छाया अद्विक थाय छे, दोषमा लपु छे के इणना बीजने ‘अद्वि’ कहे छे तेथी पणु पूर्वोक्त अर्थ न सिद्ध थाय छे अे रीते सीताफल, तथा ग ग आदि अन्य-अन्य देशेमा प्रसिद्ध अनन्नास, कटहर, मुनिगानी (अर्थ प्रकारनी) इणी, तेन्दू, गिण्डक, (बीजा) शेरकीनी काली मेल आदि इण, येमा आध

प्रसिद्धम् । विल्वम्, इक्षुखण्ड, शान्मलि च, एतानि प्रसिद्धार्थकानि । तथा यत्र भोजनजात=भोज्याशः अल्प=स्त्रल्पम्, उज्जनधर्मिक=त्याज्याशः बहु=अधिक स्यात्=भवेत् तत्फलादिकमन्यदपि ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृश मे न कल्पते इति । सामान्यलक्षणेन त्याज्यफलादिज्ञान शिष्याणा दुष्कर स्यादिति प्रथम विशेषरूपेण कतिचित्फलानि प्रदर्श्य त्याज्यसामान्यलक्षण निरूपित तेन न पूर्वगाथायास्ता-त्पर्यानुपपत्तिरिति दिक् ॥७३॥७४॥

१ मूलम्-तहेनुच्चावय पाण, ३ अदुवा वार-धोयण ।

५ ससेइम चाउलोदग, ७ अहुणाधोय विवज्जए ॥७५॥

एव सेमल आदि फल, जिनमें खाद्य अन्न कम हो तथा त्याज्य अंश अधिक हो उन सब फल आदिको देनेवालीसे कहे कि ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है ।

अनन्नासमें भीतर भी काँटे होते हैं और बाहर भी, और कटहरके छिलकेमें सर्वत्र काँटे ही काँटे होते हैं । दोनों बहुकण्टक हैं, किन्तु अनन्नासमें काँटे कम और तीखे होते हैं, अतः वह कटहरसे भिन्न है । अन्य भेद लोकप्रसिद्ध ही हैं ।

सामान्य लक्षण करनेसे त्यागने योग्य फलोंका ज्ञान शिष्योंको कठिनतासे होता, अतः पहले कुछ विशेष फलोंके नाम गिना कर, उस प्रकारके सभी फलोंका त्याग बताया है । इसलिये, पहली गाथासे इसका सम्बन्ध ठीक बैठता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

अश ओछा डोय तथा त्याज्य अश वधारे डोय अे गधा इण आदि आपनारीने साधु कडे के अेयो आहार भने कल्पते नधी

अनन्नासमा अहर काटा डोय छे अने गडार पणु डोय छे, अने कटहरना छेतरामा सर्वत्र काटा न डोय छे गेठ गडुक टक छे, परन्तु अनन्नासमा काटा ओछा अने तीखा डोय छे, तेथी ते कटहरथी गृहु इण छे अन्य वेद लोक प्रसिद्ध छे

सामान्य लक्षण गताववाथी त्यागवा योग्य इणोनु ज्ञान शिष्योने मुश्केतीथी थाय छे, अेटवे पडेला केटलाक विशेष इणोना नाम गणुपीने अे प्रदानना गधा इणोना त्याग गताव्ये छे तेथी पडेती गाथाथी आने सणध ठीक गध गेस छे (७३-७४)

“सीताफलं गण्डमात्र, वैदेहीवृक्षं तथा ।

कृष्णबीजं चाग्निमात्रस्यमात्रस्य बहुबीजम् ॥१॥” इति निरुद्धकोष  
 यद्वा ‘रघुअष्टियं’ इत्यस्य ‘बहृष्टिः’ मिति-त्राया, ‘फलबीजे पुमान्छिः’ इ  
 कोपात्, अर्धस्मृक्त पर। पुद्गलम्=रघुवृक्षमात्रमकपूरणपरिपाकानन्तराःपतनात्  
 लाघर्मेकस्यात्पुद्गलः फलसामान्यं तम्, अग्नेऽप्यस्य सम्बन्धः, सीताफलादिनाम  
 फलमिति भावः। अनिमिपम्=अनन्नासम् अन्तर्वृष्टिःसरुष्टक वृक्षादिदेशप्रसिद्धम्  
 बहुफण्टक=फण्टकिक-पनस ‘कटहर’ इत्यनेन प्रसिद्धम्, अस्य स्वभावे, सर्व  
 वपयारुच्छेदेन फण्टकव्याप्त्या रघुवृष्टकत्वं सिध्यति, अनिमिपपदार्थस्य स्वन्तर्वृष्टि  
 सरुष्टकत्वेऽपि विरलत्वादस्माद्धेद । अक्षीर=शोमाञ्जनम् फलप्रकरणात्तत्कलिकाम्  
 त्वचः स्थौल्यकार्कश्याधिबवदोपेभ्यो बीजाना वाहुल्याच्चात्यधिसत्याज्यभाग  
 ‘सुनिगा’ इति देशविशेषप्रसिद्धाम् । तिन्दुस्मू=अण्डाकृतिक फलविशेषम् अल्पा  
 कारस्याप्यस्य फलस्य बीजाना स्थौल्यवाहुल्यादिदं त्याज्याशरुहल ‘तेन्दु’ इति

“सीताफल, गण्डमात्र, वैदेहीवृक्ष, कृष्णबीज, अग्नि, आतप्य  
 और बहुबीजक ॥१॥”

इनमें ‘रघुबीजक’ शब्द भी सीताफलके लिये आया है,  
 और यह ऊपर बताया ही जा चुका है कि ‘अस्थि’ शब्दका  
 अर्थ बीज होता है। इसलिये बहुबीजक और बहुस्थिक एक ही  
 हैं, अतः बहुस्थिकका अर्थ सीताफल ही है। अथवा ‘अष्टिय’की  
 छाया, ‘अष्टिक’ होती है, कोपमे लिखा है कि फलके बीजको ‘अष्टि’  
 कहते हैं। इससे भी पूर्वोक्त अर्थ ही सिद्ध होता है, इसलिये, सीता  
 फलको तथा वग आदि अन्य अन्य देशोमे प्रसिद्ध अनन्नाश (अनास) फल  
 विशेष, कटहर, सुनिगा (सोहिंजन) की फली, तेन्दू, बेल, गन्नेका खण्ड

“सीताङ्गण, गण्डमात्र, वैदेहीवृक्ष, कृष्णबीज अग्नि, आतप्य अने बहुबीजक’  
 ज्येमा ‘बहुबीजक’ शब्द पणु सीताङ्गणे माटे आण्यो छे, अने उपर  
 पताववामा आण्यो न छे के ‘अस्थि’ शब्दने अर्थ ‘बीज’ थाय छे ज्येतेले बहुबीजक  
 अने बहुस्थिक ज्येक न छे, अर्थात् बहुस्थिकने अर्थ सीताङ्गण न छे अथवा  
 अष्टिय नी थाया अष्टिक थाय छे, जेवमा लण्यु छे के ङ्गणा बीजने ‘अष्टि’  
 कहे छे तेथी पणु पूर्वोक्त अर्थ न सिद्ध थाय छे ज्ये रीते सीताङ्गण, तथा  
 गण आदि अन्य-अन्य देशोमा प्रसिद्ध अनन्नास, कटहर, सुनिगानी (ज्येक प्रकारनी)  
 ङ्गणी, तेन्दू, गिद्वङ्गण, (पीला) शेरडीनी कालणी मेमल आदि ङ्गण, ज्येमा अथ

मूहूर्त्तान्तर्धौ चैदित्यर्थस्तदा विवर्जयेत्—न गृह्णीयात् । उपलक्षणमेतत्,  
उक्तञ्चाऽऽचाराङ्गे श्रीभगवता—

“सेः भिक्खु वार जाव अणुपविट्ठे समाणे से ज पुण पाणगजाय जाणेज्जा,  
त जहा—उस्सेइम वा ससेइम वा चाउलोदग वा अन्नयर वा तहप्पगार पाणगजात  
अहुणाधोय अणविल अबोक्कत अपरिणत अविद्धत्थ अफासुय जाव णो पडि-  
गाहेज्जा । अह पुण एव जाणेज्जा चिराधोय अविल बोक्कत परिणत विद्धत्थ फासुय  
जाव पडिगाहेज्जा । से भिक्खु वार जाव अणुपविट्ठे समाणे से ज पुण पाणगजात

जाया-१-“अथ भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा यावत्-अनुपविष्टः सन् स यत्पुनः पानक-  
जात जानीयात्, तद्यथा-उत्स्वेदिम वा सस्वेदिम वा तण्डुलोदक वा अन्यतरद् वा  
तथाप्रकार पानकजातम् अधुना गीतम् अनम्लम् अव्युत्क्रान्तम् अपरिणतम् अवि-  
ध्वस्तम् अमासुक यावत् नो प्रतिगृह्णीयात् । अथ पुनरेव जानीयात्-चिरयौतम्  
अम्ल व्युत्क्रान्त परिणत विध्वस्त मासुक यावत् प्रतिगृह्णीयात् । अथ भिक्षुर्वा २  
यावत्-अनुपविष्टः सन् स यत्पुनः पानकजात जानीयात्, तद्यथा-तिलोदक वा

इनकी ग्रहण न करे । ये तो उपलक्षण मात्र हैं, आचाराग सूत्रमे  
भगवानने कहा है—

“साधु अथवा साध्वी पानीके लिए गृहस्थके घरमे प्रवेश करके-  
आटेके बरतनका धोवन, शाक आदिका बाफा हुआ पानी, चावलका  
धोवन तथा इस प्रकारका और भी कोई पानी तुरतका धोया हुआ हो,  
स्वादसे चलित न हुआ हो अर्थात् जिसका धोवन हो उस वस्तुका  
स्वाद न आता हो, जिसका वर्ण रस गन्ध स्पर्श न बदला हो-सर्वथा  
अचित्त न हुआ हो, शस्त्र परिणत न हो तो ग्रहण न करे । यदि तुरतका  
धोया हुआ न हो-बहुत देरका धोया हुआ हो, स्वादसे चलित हो गया हो

अर्थात् अतर्मुहुर्त्तानी अहर अहरनी धोयेवा डोय तो तेने अडुषु करवा नहिं ये  
तो उपलक्षणमात्र छे आचाराग सूत्रमा भगवाने कहु छे उ-

“साधु अथवा साध्वी पाणीने भाटे गृहस्थना घरमा प्रवेश करीने,  
आटाना वासणुनु धोवण शाक आदि नेमा गाहेला डोय ते पाणी, चापानु  
धोवण, तथा ये प्रकारनु भीसु पणु जेठ पाणी तुरतनु धोयेछु डोय, स्वादथी  
चलित थयु न डोय, अर्थात् नेनु धोवणु डोय ते वस्तुने स्वाद न आवतो  
डोय, नेना पणु रस गन्ध स्पर्श न बदलाया डोय सर्वथा अचित्त न थयु डोय,  
शस्त्रपरिणत न डोय, तो ते अडुषु न करे ने तुरतनु धोयेछु न डोयणु  
पथतनु धोयेछु डोय, स्वादथी चलित थयु डोय, अने शस्त्रपरिणत डोय तो

छाया—तद्गैरीचारा पान, मय्या राखधावनम् ।

सस्वेदिम तण्डुलोदकम्, अगुनाधौत विवर्नयेत् ॥७५॥

अत्र पान ग्रहण करने की विधि बताते हैं—

सान्त्वयार्थः—तद्देव—जैसे अशन उसीमकार पाण=पान उच्चावच=उच्च सुन्दर वर्णादिसे युक्त, जैसे दाख आदिका धोवन, अवच—सुन्दर वर्णादिसे रहित जैसे मेथी केर आदिका धोवन राखधोयण=गुडके घडेका धोवन ससेइम=माजीका तथा आटेकी धालीका धोवन अदुचा=अथवा चाउलोदक=चाँगलोंका धोवन (ये सब यदि) अहृणाधोय=तुरन्तका धोया हुआ हो तो उसे (सागु) विवज्जण=वर्ज—न लेवे ॥७५॥

टीका—अशनग्रहणविधेरनन्तर पानग्रहणविधिमाह—‘तद्देवुच्चावच’ इत्यादि । तथैव=यथाऽशन तैत्रै प्रकारेण, पान=पेय, र्मणि न्युद, उच्चावचमिति-उदक च अवाक् च उच्चावचम्-अनेकरूपकारम्, उत्कृष्टानुत्कृष्टमित्यर्थः, तत्र उत्कृष्ट=हचिर वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्त द्राक्षादिधावनजल प्रपाणकादिक च, अनुत्कृष्ट=हचिर वर्णादिहीन मेथिका करीर-शमीफलिका-तिलादिधावनजलम् । वारकधावन=गुड घट-घृतघटादि धावनजल, सस्वेदिम=मथितशाकादिजल पिष्टस्थालीप्रक्षालनजलश्च, तण्डुलोदक=तण्डुलधावनजलम् । एतत्सर्वम् अधुनाधौतम्=तत्काल धौतम् अन्त

अशन ग्रहण करनेकी विधि बताकर अब पान ग्रहण करनेकी विधि दिखाते हैं—‘तद्देवुच्चावच’ इत्यादि ।

उच्च (उत्कृष्ट) मनोज्ञ वर्ण गन्ध रस स्पर्शवाला दाख आदिका धोवन तथा शर्वत आदि पान, अवच (अनुत्कृष्ट) अमनोज्ञ वर्ण गन्ध रस स्पर्शवाला मेथी केर साँगरी तथा तिल छाउ आदिका धोवन आदि पान, गुड या घीके घडेका धोवन, औटाये (उवाले) हण हरा शाक आदि का पानी, आटेकी धाली आदिका धोवन, चावलका धोवन । ये सब यदि तत्कालके धोये हण हों अर्थात् अन्तर्मुहूर्तके अभ्यन्तरके धोये हों तो

अशन अहृण करवानी विधि गतावीने हवे पान अहृण करवानी विधि गतावे छे—तद्देवुच्चावच इत्यादि

उच्च (उत्कृष्ट) मनोज्ञ वर्ण गन्ध रस स्पर्शवाणु द्राक्ष आदिनु धोवणु तथा शरणात आदि पान, अवच (अनुत्कृष्ट) अमनोज्ञ वर्ण गन्ध रस स्पर्शवाणु मेथी, केरा, पीनडानी इणां (सागरिओ) तथा तल छाग आदिनु धोवणु आदि पान, गोण या धीना घडानु धोवणु, उकाणेला लीवा शाक आदिनु पाणी आटानी थाणी आदिनु धोवणु, शोषानु धोवणु, अथवा ते ताल धोवणु

१“तिलतडुल-उसणोदय, चणोदय-तुसोदय-अविद्धत्थ ।

अण्ण तहाविह वा, अपरिणद णेव गेण्हिज्जा ॥४७३॥” इति ।

इति गायार्थः ॥७५॥

तर्हि कीदृश पान गृहीयात् ? इत्यत आह—‘ज जाणेज्ज’ इत्यादि, ‘अजीव’ इत्यादि च ।

मूलम्—<sup>७</sup>ज <sup>६</sup>जाणेज्ज <sup>८</sup>चिराधोय, <sup>१</sup>मईए <sup>२</sup>दसणेण <sup>३</sup>वा ।

<sup>४</sup>पडिपुच्छिऊण <sup>५</sup>सुच्चा वा, <sup>६</sup>ज <sup>१०</sup>च <sup>११</sup>निस्सकिय <sup>१२</sup>भवे <sup>१३</sup>॥७६॥

<sup>१४</sup>अजीव <sup>१५</sup>परिणयं <sup>१६</sup>नच्चा, <sup>१८</sup>पडिगाहिज्ज <sup>१७</sup>संजए ।

<sup>१६</sup>अह <sup>२०</sup>सकिय <sup>२१</sup>भविज्जा, <sup>२२</sup>आसाइत्ताण <sup>२३</sup>रोयए ॥७७॥

छाया—यज्जानीयाच्चिराद्धौत, मत्या दर्शनेन वा ।

प्रतिपृच्छ्य श्रुत्वा वा, यच्च निश्शङ्कित भवेत् ॥७६॥

अजीव परिणत ज्ञात्वा, प्रतिगृहीयात्सयतः ।

अथ शङ्कित भवेत्, आस्वाद्य रोचयेत् ॥७७॥

सान्वयार्थ—मईए=बुद्धिसे वा=अथवा दसणेण=देखनेसे पडिपुच्छिऊण=

छाया-१ तिलतडुलोष्णोदक चणकोदक तुपोदकम् अविध्वस्तम् ।

अन्यत् तथाविध वा, अपरिणत नैव गृहीयात् ॥४७३॥

“तिलोदक, तन्दुलोदक, उष्णोदक, चनेका पानी, तुपका पानी, तथा इस प्रकारका और भी जल यदि अविध्वस्त (सचित्त) हो और शस्त्रपरिणत न हो तो ग्रहण नहीं करना चाहिए अर्थात् शस्त्रपरिणत हो तो लेना कल्पना है ॥१॥” (मूलाचार गा (४७३) ॥७५ ॥

कैसा धोवन ग्रहण करना चाहिए ? सो बताते हैं—‘ज जाणेज्ज’ इत्यादि, ‘अजीव’ इत्यादि ।

‘तिलोदक, तन्दुलोदक, उष्णोदक, यथानु पाणी, तुपनु पाणी तथा ये प्रकारके पानी पण न्ण ने अविध्वस्त (सचित्त) होय अने शस्त्रपरिणत न होय तो अडणु करणु न लेधये अर्थात् शस्त्रपरिणत होय तो लेणु कये छे (मूलाचार गा ४७३) (७५)

कैसे धोवन अडणु करणु लेधये ? ते बतावे छे —जं जाणेज्ज० इत्यादि, तथा अजीव इत्यादि

जाणेजा तजहा-तिलोदकं वा तुपोदक वा यवोदक वा आयाम वा सोवीर वा  
 सुदण्डियड वा अण्यगर वा तहस्पगारं पाणगजायं पुत्र्यामेव आलोपजा-आउसोत्ति  
 वा० ७ । से मिसम् वा० जाय समाणे मे ज पुण जाणेजा तजहा-अवपाणग  
 वा अवाडगपाणग वा कचिद्रपाणग वा मातुल्लिगपाणग वा मुदियापाणग वा  
 दालिमपाणग वा खज्जूरपाणग वा नालिकेरपाणग वा करीरपाणग वा कोलपाणग  
 वा आमलगपाणग वा चिचापाणग वा अत्रयरं वा तहस्पगार पाणगजाय” इत्यादि ।

उक्त दिगम्बराचार्येण वृक्षेरस्वामिनाऽपि मूलाचारे—

तुपोदक वा यवोदक वा आयाम वा सोवीर वा सुदण्डिकृत वा अन्यतरत् वा तथा  
 प्रकार पानरुजात पूर्वमेव आलोचयेत्-आयुष्मन् ! इति वा ७ । अथ भिसुर्वार  
 यावत् अनुमप्रिष्ट सन् स यत्पुनर्जानीयात्, तत्रया-आम्रपानक वा आम्रातरुपानक  
 वा कपित्थपानक वा मातुल्लुङ्गपानक वा मृद्वीकापानक वा दाडिमपानक वा खजूर  
 पानक वा नालिकेरपानक वा करीरपानक वा कोलपानक वा आमलपानक वा  
 चिञ्चपाानक वा, अन्यतरद्वा तथाप्रकार पानरुजातम्” इत्यादि ।

और शस्त्रपरिणत हो तो ग्रहण करे । तिलोदक, तुपोदक, यवोदक,  
 ओसामण, सोवीर (अगलण), उष्णोदक तथा इस प्रकारका और भी  
 पानी गृहस्थका दिया हुआ कल्पता है । साधु यदि आमका धोवन,  
 अवाडगका धोवन, कचिठ (कैथ)का धोवन, विजौरेका धोवन, द्राक्षका  
 धोवन, अनारका धोवन, खजूरका धोवन, नारियलका पानी (धोवन),  
 केरका धोवन, बेरका धोवन, आँवलेका धोवन, इमलीका धोवन,  
 अथवा इस प्रकारका और भी धोवन जाने और यदि वह अत्यस्लन हो,  
 तुरतका धोया हुआ न हो, स्वादचलित हो और शस्त्रपरिणत हो तो  
 कल्पता है ।”

दिगम्बराचार्य वृक्षेर-स्वामीने भी मूलाचारमें कहा है—

अहंशु करे तिलोदक, तुपोदक, यवोदक, ओसामण, सोवीर उष्णोदक तथा ओ  
 प्रकारनु भीणु पण पाणी गृहस्थे आपेणु डोय ते कटपे छे जे साधु डेरी  
 धोवण अण्डग (आणोणियानु) धोवण, डोलानु धोवण, पीलेरानु धोवण  
 द्राक्षनु धोवण अनारनु धोवण, अण्णूरनु धोवण, नारियेणु पाणी (धोवण)  
 डेरानु धोवण, गोरनु धोवण, आणणानु धोवण, आणदीनु धोवण, अथवा ओ  
 प्रकारनु भीणु पण धोवण नोणु अने जे ते गहु अम्ल (भाटु) न डोय  
 तुरतनु धोवण न डोय, स्वादचलित डोय अने शस्त्रपरिणत डोय तो कटपे छे”  
 दिगणराचार्य वृक्षेर-स्वामीने पण मूलाचारमा कथु छे —

१“तिलतडुल-उसणोदय,-चणोदय-तुसोदय-अविद्धत्थ ।

अण्ण तहाविह वा, अपरिणद णेव गेण्हिज्जा ॥४७३॥” इति ।

इति गाथार्थः ॥७५॥

तर्हि कीदृश पान गृह्णीयात् ? इत्यत आह—‘ज जाणेज्ज’ इत्यादि, ‘अजीव’ इत्यादि च ।

मूलम्—<sup>७</sup>ज <sup>६</sup>जाणेज्ज <sup>८</sup>चिराधोय, <sup>१</sup>मईए <sup>२</sup>दंसणेण <sup>३</sup>वा ।

<sup>४</sup>पडिपुच्छिऊण <sup>५</sup>सुच्चा <sup>६</sup>वा, <sup>१०</sup>ज <sup>११</sup>च <sup>१२</sup>निस्सकिय <sup>१३</sup>भवे ॥७६॥

<sup>१४</sup>अजीव <sup>१५</sup>परिणय <sup>१६</sup>नच्चा, <sup>१८</sup>पडिगाहिज्ज <sup>१७</sup>संजए ।

<sup>१९</sup>अह <sup>२०</sup>सकियं <sup>२१</sup>भविज्जा, <sup>२२</sup>आसाइत्ताण <sup>२३</sup>रोचए ॥७७॥

छाया—यज्जानीयाच्चिराद्धौत, मत्या दर्शनेन वा ।

प्रतिपृच्छय श्रुत्वा वा, यच्च निश्शङ्कित भवेत् ॥७६॥

अजीव परिणत ज्ञात्वा, प्रतिगृह्णीयात्सयतः ।

अथ शङ्कित भवेत्, आस्वाद्य रोचयेत् ॥७७॥

सान्त्वयार्थः—मईए=बुद्धिसे वा=अथवा दसणेण=देखनेसे पडिपुच्छिऊण=

छाया—१ तिलतण्डुलोष्णोदक चणकोदक तुपोदकम् अविध्वस्तम् ।

अन्यत् तथाविध वा, अपरिणत नैव गृह्णीयात् ॥४७३॥

“तिलोदक, तन्दुलोदक, उष्णोदक, चनेका पानी, तुपका पानी, तथा इस प्रकारका और भी जल यदि अविध्वस्त (सञ्चित) हो और शस्त्रपरिणत न हो तो ग्रहण नहीं करना चाहिए अर्थात् शस्त्रपरिणत हो तो लेना कल्पता है ॥१॥” (मूलाचार गा (४७३) ॥७५ ॥

कैसा धोवन ग्रहण करना चाहिए ? सो बताते हैं—‘ज जाणेज्ज’ इत्यादि, ‘अजीव’ इत्यादि ।

‘तिलोदक, तन्दुलोदक, उष्णोदक, अणु पाणी, तुपतु पाणी, तथा ये प्रकारतु पीणु पणु णे अविध्वस्त (सञ्चित) होय अने शस्त्रपरिणत न होय तो अणु करणु न लेधये अर्थात् शस्त्रपरिणत होय तो लेणु करणे छे (मूलाचार गा ४७३) (७५)

तेणु धोवणु अणु करणु लेधये ? ते बतावे छे —जं जाणेज्ज० इत्यादि, तथा अजीव इत्यादि



पूछकर चा=भयना सुना=पान करते हुए सुनकर ज=जिग श्रोतको चिराधोय=  
 गिराधोय रहत देरका धोया हुआ जाणेज्ज=जाने, च=तया ज=तो निरसकिय=  
 'इससे तथा शान्त होगी या नहीं?' इस प्रकारकी शङ्कारहित भवे=हो तो उस  
 अजीव=जीररहित-भयित-और परिणय=तमपरिणत नभा=ज्ञानकर सजण=  
 साधु पढिग्गाहिज्ज=लेवे; अह=भय-अगर यह सकिय='इससे तथा बूझेगी या  
 नहीं?' इस प्रकारकी शङ्कामे युक्त भयिज्जा=ही तो उसे आसाइत्ताण=बस  
 करके रोयण=निर्णय करे ॥७६॥७७॥

टीका—मत्या=मुद्धया दर्शनेन=दृष्टया या धौतजले तदीयर्णादिपरिज्ञानाय  
 तत्राऽऽगमानुगामिन्या मनीषया दृष्टिनिपातेन चेति भावः, प्रतिपृच्छय=सम्पक्  
 पृष्ठा श्रुत्वा या तत्प्रतिपचन मश्रमन्तरेणाऽपि कस्यचिन्मुखाद्वा निशम्य यत्चिरा  
 द्दौत जानीयात्, यच्च निशङ्कितम्=अनुपयोगित्वशङ्कारहित भवेत् तद् अजीव=पा  
 सुक परिणत=स्वपरशस्त्रादिनाऽयस्यान्तर प्राप्त ज्ञात्वा सयत =साधु प्रतिपृष्ठीयात्।  
 ये तु 'घटिकाद्वयानन्तर धावनजल सचित्त भवतीति मुहूर्त्तात्पर तत्तौयमनुपा  
 देय' मित्याह, तत्र समीचीनम्, व्यञ्जनाद्युपलक्षणरद्वीधावनार्थे पाठप्रदेशे पूर्व

आगमानुसार बुद्धि अथवा दृष्टिसे धोवनका वर्ण आदि जान कर  
 पूछ कर अथवा किसीसे सुन कर धोवन बहुत देरका धोया हुआ हो तो  
 ग्रहण करे । तथा 'उपयोगी है या अनुपयोगी ?' इस प्रकारकी शकाका  
 निर्णय करके प्राप्त तथा अवस्थान्तरको प्राप्त होगया जानकर साधु  
 ग्रहण करे ।

जो लोग यह कहते हैं कि—' धोवन जल दो घडीके बाद सचित्त  
 होनेसे अशुद्ध है ' यह उनका कहना ठीक नहीं, क्योंकि, यदि दो  
 घडीके बाद धोवन जल सचित्त हो जाय तो शाक आदिसे लिप्त हाथ

आगमानुसार बुद्धि अथवा दृष्टिसे धोवणुने। वर्णादि नाली पूछीने अथवा  
 दोष पासेधी साभणीने धोवणु गहु वभतधी धोवणु होय तो ते अडणु करे तेमन्  
 'उपयोगी छे के अनुपयोगी?' अ प्रकारनी शकाने निर्णय करीने प्रासुक तथा  
 अवस्थातरने प्राप्त थणुने नालीने साधु ते अडणु करे

ने दोडो कडे के—' धोवणु पाछी मे घडी पडी सचित्त होवधी  
 अशुद्ध छे ' ते तेमनु कडेवानु पराभर नहीं करणु के ने मे घडी पडी धोवणु  
 नण सचित्त थं नथ तो शाक आदिथी पराथला हाथ या कडडी आदि

स्थापितजलस्य मुहूर्तान्तर तन्मते सचित्ताया तदानीं तद्दुदकक्षालितकरदर्व्या-  
दिना निरवघ्राशनग्रहणमपि तेषा दोषावह भवेत्, तत्संमतसचित्तजलसंस्फुरकरदर्वी-  
संसर्गवत्त्वात् । मुहूर्तात्परमेव धामनजलस्य सचित्त्वाङ्गीकारे 'अहुणाधोय विव-  
ज्जण' इति प्रकृतमूत्रस्य 'ज जाणेज्ज चिराधोय' इति प्रकृतमूत्रस्य च विरोधा-  
पत्तिः, तथाहि-अधुनाधौतस्य मुहूर्तान्तर्गततया तत्र तन्मते सचित्ताया अभावे  
तद्वर्जनोपदेशाऽसङ्गतिः, चिराद्धौतस्य च मुहूर्तान्तर तन्मते सचित्ताया तदुपादा-  
नोपदेशस्य चासङ्गतिः स्यात्, तस्मात् पिपासापनोदनशक्तिशालिनधिराद्धौतस्य ग्रहण  
शास्त्रसंमतमित्यत्र ज्ञेयम् ।

या कुड्डी आदि धोनेके लिए गृहस्थ (रसोया) रसोईके समय अपने  
पास एक पानीका बरतन रखता है, उस जलसे हाथ और कुड्डी वो  
धो कर दाल आदि परोसता है, ऐसी दशामे उक्त मतसे देर तक रक्खे  
रहनेके कारण यदि वह हाथ या कुड्डी आदिका धोवन सचित्त हो  
जाता है तो उस धोवनमे धोयी हुई कुड्डी या हाथसे दिया जानेवाला  
निरवघ अन्नादि भी उनको अग्राह्य हो जायगा । 'तद्देवुच्चावय' इस  
गाथाके अन्तिम चरणमें 'अहुणाधोय विवज्जण' यह कह कर भगवानने  
यह स्पष्ट कर दिया है कि तुरतका धोया हुआ जल अग्राह्य है, और  
इसीको 'द्विर्वद्ध सुबद्ध भवति' इस न्यायसे 'ज जाणेज्ज चिराधोय'  
इस गाथासे सुस्पष्ट कर दिया है कि देरका धोया हुआ धोवन ग्रहण  
करना चाहिए । अतः दो घडीके बाद धोवनमें जीवोंकी उत्पत्ति मानना  
जैनागमसे विरुद्ध है और उत्सृज-प्ररूपणाका भागी बनना है ।

धोवाने माटे गृहस्थ (रसोद्ये) रसोद्ये समये पोतानी पाने पाणीतुं जे  
पासवु राणे ठे, जे न्जथी हाथ अने कड्डी धोई-धोईने दाण आदि पीरसे छे,  
जेनी दशामा उक्त मत प्रमाणे डेटलाक समय सुधी रहेलु होवाने गरले  
जे जे हाथ या कड्डी आदिनु धोववु सचित्त थई नय तो जे धोववुमा  
धोयेली कड्डी या हाथयी आपवामा आपवतु निरवघ अन्नादि पवु जेभने अथाह  
णनी नय तद्देवुच्चावय जे गाथाना अन्तिम अरवुमा अहुणाधोय विवज्जण  
जेभ कड्डीने लगवाने जे स्पष्ट करी आप्यु छे ते तुरततुं धोयेलु न्ज अथाह  
छे, अने जेने द्विर्वद्ध सुबद्ध भवति जे न्याये करीने ज जाणेज्ज चिराधोय जे  
गाथायी सुस्पष्ट करी आप्यु छे ते डेटलाक समय पडेलातु धोयेलु धोववु  
अहणु करवु जेधोये जेटले जे घडी पडी धोववुमा जेवोनी उत्पत्ति मानवी  
जे जैनागमथी विरुद्ध छे अने उ सृजप्ररूपणाना भागी बनवु छे

अथ शङ्कितं=‘पिपासाऽपनोदकं न या?’ इति संशयत्रिपयो भवेत्तदा आस्वाद्य= उक्तसंशयापनोदयार्थं किञ्चित्पीत्वा रोचयेत्=निर्णयेत् ॥

“अजीव”-मित्यनेन जीवराहित्य ‘परिणत’-मित्यनेन च सर्वथाऽचित्तस्य सूचितम् ॥७६॥७७॥

आस्वादनविधिं प्रदर्शयन् निर्णयप्रकारमाह-‘धोव०’ इत्यादि ।

मूलम्-<sup>१</sup>धोव<sup>२</sup>मासायण<sup>३</sup>ट्टाए, ह<sup>४</sup>त्थग<sup>५</sup>म्मि द<sup>६</sup>लाहि मे ।

<sup>१२</sup>मा<sup>११</sup> मे अ<sup>६</sup>च्च<sup>७</sup>विल<sup>१०</sup> पू<sup>८</sup>य, ना<sup>८</sup>ल<sup>९</sup> ति<sup>९</sup>ण्ह<sup>९</sup> वि<sup>९</sup>णि<sup>९</sup>त्त<sup>९</sup>ए ॥७८॥

छाया—स्तोत्रमास्वादनार्थं, हस्तके देहि मे ।

मा मे अत्यम्ल पूति, नाल तृष्णा विनेतुम् ॥७८॥

सान्त्वयार्थः—( निर्णय करनेके लिए साधु दातासे कहे कि-हे आयुष्मन् ! )  
आसायणट्टाए=चखनेके लिए धोच=थोडासा धोवा मे=मेरे हत्थगम्मि=हाथमें दलाहि=दो, (हाथमें लेकर चखने पर यदि निश्चय हो जाय कि वह धोवन) अच्चविल=अत्यन्त खटा पूय=दुर्गन्धित और तिण्ह=प्यास विणित्तए=बुझानेके लिए नाल=समर्थ नहीं है इसलिये यह मे=मेरे लिए उपयोगी मा=नहीं है ॥७८॥

तथा ‘इससे प्यास मिट जायगी या नहीं?’ ऐसा सन्देह उत्पन्न हो जाय तो उस सन्देहको दूर करनेके लिए थोडासा पानी चख कर निर्णय करे ।

‘अजीव’ पदसे जीवराहित्य और ‘परिणत’ पदसे मिश्रकी शकाका अभाव सूचित किया है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

आस्वादन ( चखने ) की विधि बताते हुए निर्णय करनेका प्रकार बताते हैं—‘ धोव० ’ इत्यादि ।

तेमज्ज ‘अथी तरस मट्ठे के नहि?’ अथो सहेह उत्पन्न थाय तो अथे सहेह हर करवाने थोडु पाणी खाणीने निष्पत्ति करवो अजीव शब्दथी लुवराहित्य अने परिणय शब्दथी मिश्रणी शकाने अभाव सूचित कर्यो छे ( ७६-७७ )  
आस्वादन (खाभवा)ना विधि बतावता निष्पत्ति करवाने प्रकार बतावे छे-धोव० इत्यादि

टीका—आस्वादनार्थम्=उपयोगित्वाऽनुपयोगित्वज्ञानार्थं स्तोत्र स्वल्प तिल-  
तण्डुलादिजल मे=मम हस्ते 'देहि' इति दात्रीमुद्दिश्य वदेदिति भावः । तद्वत्  
धौतजलमास्वाय निश्चिनुयात्-इदम् अत्यम्ल पूति=अनिष्टगन्धयुक्त तृष्णा=पिपासा  
विनेतुम्=अपारुर्तु नाल=न समर्थम्, इति मे=मम मा=नहि उपयोगीति शेषः ॥७८॥

निश्चयानन्तर कर्त्तव्यमाह—'त च' इत्यादि ।

मूलम्—<sup>१</sup>तं <sup>२</sup>च <sup>३</sup>अच्चविल <sup>४</sup>पूय, <sup>५</sup>नाल <sup>६</sup>तिण्ह <sup>७</sup>विणित्तए ।

दितिय <sup>८</sup>पडियाइक्खे, <sup>९</sup>न <sup>१०</sup>मे <sup>११</sup>कप्पड <sup>१२</sup>तारिसं ॥ ७९ ॥

छाया—तच्चाऽत्यम्ल पूति, नाल तृष्णा विनेतुम् ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥७९॥

तत्र वह साधु क्या करे ? सो उताते है—

सान्वयार्थ—अच्चविल=अत्यन्त खट्टे पूय=दुर्गन्धयुक्त और तिण्ह  
विणित्तए नाल=प्यास मिटानेके लिए असमर्थ त च=उस धोवनको दितिय=  
देनेवालीसे साधु पडियाइक्खे=रुहे कि तारिस=इस प्रकारका धोवन मे=मुझे  
न कप्पड=नही कल्पता है ॥७९॥

टीका—तच्च धौतजलमत्यम्ल पूति तृष्णा विनेतु नालमिति ददती प्रत्याच-  
क्षीत-तादृश मे न कल्पते इति ॥७९॥

'धोवन उपयोगी है या नहीं?' इस शकाका निवारण करनेके लिए  
देनेवाली वाईसे साधु कहे कि—'मेरे हाथमे थोडासा पानी दो।' उस  
दिये हुए धोवनका आस्वादन करके निश्चय करे कि—'यह बहुत खट्टा है,  
दुर्गन्धवाला है, प्यास शान्त करनेके लिए समर्थ नहीं है अतः मेरे लिए  
उपयोगी नहीं है ॥ ७८ ॥'

ऐसा निश्चय करके क्या करना चाहिए ? सो कहते हैं—'त च' इत्यादि ।

उस बहुत खट्टे, दुर्गन्धित और प्यास बुझानेमे असमर्थ धोवनको  
देनेवाली वाईसे कहे कि ऐसा धोवन मुझे नहीं कल्पता है ॥ ७९ ॥

'धोवण उपयोगी छे उे नाइ ?' अे शकनुं निवारण करवाने माटे धोवण  
आपनारी गांठने साधु उडे डे "भारा हाथमा थोडु पाणी आपो" अे आपेला  
धोवणनु आम्वाहन डरीने निश्चय करे डे 'आ गडुं आडुं छे, दुर्गंध वाणु छे,  
तरस शात करवा माटे समर्थ नथी, तेथी भारे माटे उपयोगी नथी' (७८)

अेवा निश्चय करीने शु करणु जेअे ? ते हवे कडे छे—त च० इत्यादि

अेवा गडुं आटा, दुर्गंधित अने तरस छीपाववामा असमर्थ धोवणने  
आपनारी गांठने साधु कडे डे अेषु धोवण भने उरूपतु नथी (७९)

१ २ १ ३ ४ ५  
मूलम्-त च होज्ज अकामेण, विमणेण पडिच्छियं ।

० ८ ६ १० ११ १३ १२ १४  
त अप्पणा न पिवे, नो वि अन्नस्स दावण् ॥८०॥

छाया—तच भवेद् अकामेन, विमनसा प्रतिगृहीतम् ।

तद् आत्मना न पिवेत्, नो अपि अन्यस्मै दापयेत् ॥८०॥

सान्त्वयार्थ—त=उह उस प्रकारका धोवन यदि अकामेण=विना इच्छासे दाताके अनुरोधसे च=तथा विमणेण=मनके दूरी तरफ होनेके कारण पडिच्छिय=लेलिया गया हो तो त=उस धोवनको न=न तो अप्पणा=अपने सुद पिवे=पिये और नो=न अन्नस्स अवि=दूसरोंकोभी दावण=देवे ॥८०॥

टीका—‘त च’ इत्यादि । तच धौतजल यदि अकामेन=स्वानिच्छया, दाव्यनु रोधेनेति भावः, विमनसा=अन्यमनस्कतया, ‘हेतो वतीया’ प्रतिगृहीत तद् आत्मना स्वय न पिवेत् नो अपि अन्यस्मै दापयेत् ॥८०॥

तर्हि किं कुर्यात् ? इत्याह—‘एगत०’ इत्यादि ।

१ २ ३ ४  
मूलम्-एगतमवक्कमित्ता, अचित्त पडिलेहिया ।

५ ६ ७ ८  
जय परिट्टविज्जा, परिट्टप्प पडिक्कमे ॥ ८१ ॥

छाया—एकान्तमवक्रम्याऽचित्त प्रत्युपेक्ष्य ।

यत परिष्ठापयेत्, परिष्ठाप्य प्रतिक्रामेत् ॥ ८१ ॥

उस धोवनका क्या करे ? सो बताते हैं—

सान्त्वयार्थ—एगत=एकान्त स्थानमें अवक्कमित्ता=जाकरके अचित्त=एकेन्द्रियादिप्राणीरहित अचित्त स्थानको पडिलेहिया=पूजकर उस धोवनको जय=

‘त च’ इत्यादि । यदि ऐसा पानी अनिच्छापूर्वक दाताके अनु रोधसे अथवा विना ध्यानसे ग्रहण कर लिया हो तो स्वय उसे न पिये और न दूसरेको पिलावे ॥ ८० ॥

फिर क्या करे सो कहते हैं—‘एगत०’ इत्यादि ।

त च इत्यादि जे अणु पाणी अनिच्छापूर्वक दाताना अनुरोधशी अथवा अ-ध्यानशी अक्षु करी दीधु डोय तो पीते ते न पीअे अने न पीकाने पीवअवे (८०)

पछी शु करे ते कडे छे—एगत० इत्यादि

यतनासे परिद्विज्जा=परिठवे-डाळे, परिद्वप्प=परिठवके आकर पडिक्कमे=इरियावहिया पडिक्कमे-रुरे ॥८१॥

टीका—एकान्त विविक्तप्रदेशम्, अवक्रम्य=गत्वा तत्र अचित्तम्=एकेन्द्रियादिप्राणिवर्जित प्रत्युपेक्ष्य=निरीक्ष्य यत=सयत्न यथास्यात्तथा परिष्ठापयेत्, सवित्रि “वोसिरे” इति त्रिरुच्चार्य व्युत्सृजेत् । परिष्ठाप्य=परिष्ठापनानन्तर ग्रामाद्दहिरवहिरांऽऽसन्नभूमिमागत्य प्रतिक्रामेत्=ऐर्यापथिकीं कुर्यात् ॥८१॥

अशनपानग्रहणविप्रेरनन्तर भोजनविप्रिमाह-‘सिया’ इत्यादि, ‘अणुन्नचित्तु’ इत्यादि च ।

मूलम्-<sup>१</sup>सिया <sup>२</sup>य <sup>३</sup>गोयरग्गओ, <sup>४</sup>इच्छिज्जा <sup>५</sup>परिभुत्तुड ।

<sup>७</sup>कुट्टग <sup>८</sup>भित्तिमूल वा, <sup>९</sup>पडिलेहित्ताण <sup>१०</sup>फासुयं ॥८२॥

<sup>११</sup>अणुन्नचित्तु <sup>१४</sup>मेहावी, <sup>१२</sup>पडिच्छन्नम्मि <sup>१३</sup>सवुडे ।

<sup>१६</sup>हत्थग <sup>१७</sup>सपमजित्ता, <sup>१८</sup>तत्थ <sup>१९</sup>भुजिज्ज <sup>२०</sup>सजए ॥८३॥

जया-स्याच्च गोचराग्रगत. इच्छेत् परिभोक्तुम्

कोष्ठक भित्तिमूल वा, प्रत्युपेक्ष्य प्राप्तुम् ॥८२॥

अनुज्ञाप्य मेधावी, प्रतिच्छन्ने सवृते ।

हस्तक सप्रमृज्य तत्र भुञ्जीत सयत ॥८३॥

एकान्त स्थानमे जाकर एकेन्द्रिय आदि प्राणियोंसे रहित स्थान देखकर यतनापूर्वक “वोसिरे” ऐसा तीन बार उच्चारण करके परिठवे। परिठवनेके पश्चात् गाँवमे या गाँवके बाहर ठहरनेके स्थान पर आकर इरियावहियाका प्रतिक्रमण करे ॥८१॥

अशन-पान ग्रहण करनेकी विधि बतानेके बाद आहार करनेकी विधि बताते हैं-‘सिया य’ इत्यादि, ‘अणुन्नचित्तु’ इत्यादि ।

अत्रैकान्त स्थानमा बधने अकेन्द्रिय आदि प्राणीभ्योऽथै रहित स्थान जेधने यतनापूर्वक ‘वोसिरे’ अेषु त्रयुवार उच्चारण करीने परिठवे परिठव्या पथी गाभमा या गाभनी णडा रडेवाना स्थान पर आवीने इरियावहियानु प्रतिक्रमण करे (८१)

अशन-पान अडुषु करवानी विधि णताव्या णाह आहार करवानी विधि णतावे छे-सिया य इत्यादि तथा अणुन्नचित्तु इत्यादि

सान्त्वयार्थः-गोपरगगओ=गोनरीमं गया हुआ मेहावी=सामाचारीका  
 जानकार संजण=साधु मिया य=रुदाचित् अगर बाल्यावस्थाके अथवा ग्लान-  
 पनेके कारण वहाँ परिसुस्तुड=आहार करना इच्छिज्जा=चाहे तो वहाँ फासुय=  
 प्रासुक-एकेन्द्रियादिमाणी रहित कुट्टग=कोठेको वा=अथवा भित्तिमूल=भीतके  
 समीपके स्थानको पडिलेहिसाण=पूजकर तथा दृष्टिसे देखकर अणुभविस्तु=  
 गृहस्थकी आज्ञा मागकर तत्थ=यहा पडिच्छन्नम्मि=ऊपरसे छाये हुए और  
 सवुटे=चारों तरफसे घिरे हुए स्थानमें हत्थग=हार्थोंको अथवा अपने शरीरको  
 सपमज्जिच्चा=पूजकरके (साधु) भुजिज्ज=आहार करे ॥८२॥८३॥

टीका—स्याच=रुदाचित् गोचराग्रगतः=मित्तमनुपविष्टो मुनिः, बाल्य-ग्लान-  
 नत्प-पिपासादिकारणशगात्परिभोक्तुमिच्छेत् तदा प्रासुकम्=एकेन्द्रियादिमाणि  
 विवर्जित कोष्ठरुम्=अन्तर्गृहादिक या=अथवा भित्तिमूल=कुडयसमीपवर्तिप्रदेश प्रत्यु  
 पेक्ष्य=दृष्ट्या विलोक्य अनुज्ञाप्य=तत्स्वामिनोऽनुज्ञामादाय तत्र प्रतिच्छन्ने=ऊपर  
 तस्त्वणादिभिराच्छादिते, सवृते=समन्तत आवृते किन्तु प्रकाशयुक्ते प्रदेशे, यदा  
 'सवृतः' इति प्रथमान्त सयतस्य विशेषण तेन, मेधावी=साधुसामाचारीकुशलः  
 सयत.=साधु. सवृतः=मनोवाकायगुणः सन् हस्तम्=हस्तौ सप्रमृज्य=सशोध्य,  
 अथवा 'हस्तकम्' इति तृतीयार्थे प्रथमा, तथा च-हस्तकेन=हस्त कायति=घातुना

यदि भिक्षाके लिए गये हुए भिक्षुको बालकपन, ग्लानता अथवा  
 प्यास आदि किसी कारणसे आहार करनेकी इच्छा हो जाय तो वहाँ  
 प्रासुक कोठा अथवा भीतके पास कोने आदिकी प्रतिलेखना करके  
 मकानके स्वामीकी आज्ञा लेकर ऊपरको तृण आदिसे छाये हुए चारों  
 ओरसे बन्द किन्तु प्रकाशयुक्त स्थानमें स्थित होकर मन वचन कायकी  
 सम्यक् प्रकार प्रवृत्ति करता हुआ साधुसामाचारीका ज्ञाता मुनि हार्थोंको

जो भिक्षाने माटे गयेला भिक्षुने पाणकपत्रा, ग्लानता अथवा तरस आदि  
 डोह डारणे आहार करवानी इच्छा थल नथ तो त्या प्रासुक डोडो अथवा  
 लीतनी पास पूत्रा आदिनी प्रतिखेपना करीने मकानना स्वामीनी आज्ञा  
 लधने उपर घास आदिथी छायेला चारे पाण्थी पध परन्तु प्रकाशयुक्त  
 स्थानमा न्हीने मन वचन कायानी सम्यक् प्रकारे प्रवृत्ति करता साधुसामाचारीने  
 ज्ञाता मुनि छाथने प्रभाजित करीने (साक्ष करीने) या हस्तक (हस्तगत रणेडरु)थी

मनेकार्थत्वात्प्राप्नोतीति हस्तकम्, ('आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्ययः,) रजोहरण तेन, तस्य धारणे हस्तस्य सर्वथा निमित्तत्वात्, प्रायः कक्षप्रदेशे धारणेऽपि हस्ताश्रय विना तदीयधारणासम्भवाच्च । सप्रमृज्य=तत्स्थान काय च सशोध्य भुञ्जीत=अभ्यवहरेत् ।

यत्तु "हस्तक मुखवस्त्रिकारूपमादाय तेन काय सप्रमृज्य" इति व्याख्यान तदयुक्त, 'हस्तक' पदार्थस्य 'सप्रमृज्य' पदार्थेऽन्वयसम्भवे 'आदाये'-ति पदान्तराक्षेप-पूर्वकमन्यपदार्थेऽन्वयरूपपनाया अनाचित्यात् । किञ्च कोप-व्याकरणादिपु हि हस्तक-शब्दो मुखवस्त्रिकारूपेऽर्थे न दृश्यते । शास्त्रेऽपि-"मुहपत्तिं पडिलेहिता" इत्यादि दृश्यते न तु 'हत्यग' पडिलेहिता' इत्यादि ।

यच्च "विधिना तेन मुखवस्त्रिकारूपेण हस्तकेन काय प्रमृज्य तत्र भुञ्जीत"

प्रमार्जित ( साफ ) करके या हस्तक अर्थात् हस्तगत रजोहरणसे काय और स्थानकी प्रमार्जना करके आहार करे ।

किसी-किसीने 'हस्तक सप्रमृज्य' का ऐसा अर्थ किया है कि 'मुखवस्त्रिका लेकर उससे शरीर-प्रमार्जना करे' ऐसा अर्थ करना ठीक नहीं है, क्योंकि मुखवस्त्रिकाके साथ प्रमार्जन करनेका सम्बन्ध मिलते न देख उन्हें एक 'आदाय' शब्द (लेकर) अपनी ओरसे मिला दिया है । इस प्रकार सम्बन्ध मिलाना उचित नहीं है । इसके सिवाय कोपोंमें कही 'हस्तक' शब्दका अर्थ मुखवस्त्रिका नहीं किया है और न व्याकरणमें ही ऐसा देखाजाता है । आगमोंमें 'मुहपत्तिं पडिलेहिता' इत्यादि पद देखे जाते हैं, किन्तु 'हत्यग पडिलेहिता' कही नहीं देखा जाता ।

तथा "मुखवस्त्रिकारूप हस्तकसे कायकी प्रमार्जना करके आहार करे"

काया अने स्थानकी प्रमार्जना करीने आहार करे

ठोड ठोडये हस्तक सप्रमृज्य ने। येवे। अर्थ कथीं छे डे- 'मुखवस्त्रिका लधने तेथी शरीरकी प्रमार्जना करे,' पण येवे। अर्थ क-वे। ये धारणर नथी, धारण उ मुखवस्त्रिकानी साथे प्रमार्जन करवाने। सगंध भणतो नडि नेवाथी तेमळे येक आदाय शण्ड (लधने) पोतानी तरकथी मिलावी दीधे छे आ प्रमाणे सगंध मिलावी हेवे। ये उचित नथी वणी कथोमा काय 'हस्तक' शण्डने। अर्थ मुखवस्त्रिका कथीं नथी अने व्याकरणमा पण येवे। अर्थ नेवामा आवतो नथी, आगमोमा मुहपत्तिं पडिलेहिता इत्यादि पद नेवामा आवे छे, किन्तु हत्यग पडिलेहिता ज्याय नेवामा आवतु नथी

तथा 'मुखवस्त्रिकाऽप्यु हस्तकथी कायकी प्रमार्जना करीने आहार करे"



इति व्याख्यात तदप्ययुक्ततरम् । इन्ते मुग्गवस्त्रिकाधारणे मुग्गवस्त्रिकाधारणोद्देश्यभू  
 तायाः सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवाहिसानिष्टेतरसिद्धया मुग्गवस्त्रिका  
 मुख एव धारणीयेत्याशयस्य जागरूक्यान्, अत एव भगवताऽपि सूक्ष्मव्यापि  
 सम्पातिमवायुकायादिजीवाऽयतनानिष्टेये मुग्गोपरि धारणीयसदोरकाष्टपुटमुख  
 मणानवस्त्रखण्डरूपेऽर्थे मुखवस्त्रिकाशब्दः प्रयुक्तो, न तु हस्तवस्त्रिकाशब्द इति न्य  
 मपि हस्तवस्त्रिकाशब्देन मुखवस्त्रिकारूपोऽर्थो न लभ्यते । एव च तेन कायप्रमार्जन  
 कथन सर्वथाऽऽगमविरुद्धमेवेति बोध्यम् ॥८२॥८३॥

ऐसी व्याख्या करना भी अत्यन्त अयुक्त है, क्योंकि मुखवस्त्रिका  
 धारण करनेका प्रयोजन सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम तथा वायुकाय आदि  
 जीवोंकी हिंसाका परिहार करना है । मुखवस्त्रिकाको हाथमें रखनेसे  
 उक्त प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । इससे यह सिद्ध होता है कि मुख  
 वस्त्रिका मुखपर ही धारण करनी चाहिए । इसलिए मुखके निमित्तसे  
 होनेवाली, सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम और वायुकाय आदि जीवोंकी  
 विराधनाकी निवृत्तिके लिए मुख पर धारण करने योग्य उस मुख  
 परिमाण सदोरक और आठ पुडवाले वस्त्रखण्डको भगवानने 'मुख  
 वस्त्रिका' शब्दसे कहा है, 'हस्तवस्त्रिका' शब्दका प्रयोग कही नहीं  
 किया, अत एव 'हस्तक' शब्दसे मुखवस्त्रिकाका अर्थ किसीभी प्रकार  
 नहीं निकल सकता । इस प्रकार 'उससे कायकी प्रमार्जना करना'  
 यह अर्थ आगमसे सर्वथा विरुद्ध है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

એવી વ્યાખ્યા કરવી એ પણ અત્યંત અયુક્ત છે, કારણ કે મુખવસ્ત્રિકા ધારણ  
 કરવાનું પ્રયોજન સૂક્ષ્મ વ્યાપી, સંપાતિમ તથા વાયુકાય આદિ જીવોની હિંસાનો  
 પરિહાર કરવો એ છે મુખવસ્ત્રિકાને હાથમા રાખવા ઉપર પ્રયોજાત સિદ્ધ થતું  
 નથી એથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર જ ધારણ કરવી જોઈએ  
 તેથી મુખના નિમિત્તે થનારી સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સંપાતિમ અને વાયુકાય આદિ  
 જીવોની વિરાધનાના નિવૃત્તિને માટે મુખ પર ધારણ કરવા યોગ્ય એ મુખ  
 પરિમાણ દેરા સાથેના અને આઠ પડવાળા વસ્ત્રખંડને ભગવાને 'મુખવસ્ત્રિકા'  
 કહી છે, 'હસ્તવસ્ત્રિકા' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો નથી એટલે 'હસ્તક' શબ્દથી  
 મુખવસ્ત્રિકાનો અર્થ કોઈ પણ પ્રકારે નીકળી શકતો નથી એ રીતે 'મુખવસ્ત્રિકા  
 કથી કાયાની પ્રમાર્જના કરવી' એ અર્થ આગમથી સર્વથા વિરુદ્ધ છે (૮૨-૮૩)

१ ३ २ ४ ५ १२  
मूलम्-तत्थ से भुंजमाणस्स, अट्टिय कटओ सिया ।

८ ७ ९ ६ १० ११  
तण-कट्ट-सक्कर वावि, अन्नं वावि तहाविहं ॥८४॥

१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९  
तं उक्खिवित्तु न निक्खिवे, आसएण न छड्डए ।

२१ २० २२ २३ २४  
हत्थेण त गहेऊण, एगतमवक्कमे ॥ ८५ ॥

छाया—तत्र तस्य भुञ्जानस्य, अष्टिक कण्टकः स्यात् ।

तृण-काष्ठ-शर्करा वाऽपि, अन्यद्वापि तथाविधम् ॥८४॥

तद् उत्क्षिप्य न निक्षिपेत्, आस्येन नोज्जेत् ।

हस्तेन तद् गृहीत्वा, एगन्तमपक्रामेत् ॥८५॥

सान्न्वयार्थः—तत्थ=ब्रह्म कोठे आदिमें भुजमाणस्स=आहार करते हुए से=उस साधुके (आहारमें) अट्टिय=बीज कटओ=काटा तण=तिनका कट्ट=काठ वावि=और सक्कर=छोटा ककर वा=तथा अन्न वावि=औरभी तहाविह=उस प्रकारका पदार्थ सिया=आगया हो तो त=उसे उक्खिवित्तु=निकालकर न निक्खिवे=इधर-उधर नहीं डाले, तथा आसएण=मुखसे भी न छड्डए=न फेंके-न थूके (फिन्तु) त=उसे हत्थेण=हाथसे गहेऊण=लेकर एगत=एकान्त स्थानमें अवक्कमे=जावे ॥८४॥८५॥

टीका—‘तत्थ से’ इत्यादि, ‘त उक्खिवित्तु’ इत्यादि च । तत्र कोष्ठकादिस्थाने भुञ्जानस्य तस्य भिक्षोर्भोजने अष्टिक=बीज, कण्टक=तीक्ष्णाग्रो द्रुम-गुल्म लता-घट्टविशेषः, अपिवा तृण-काष्ठ-शर्करा=तृण च काष्ठ च शर्करा चैतेषा समाहारः । तत्र तृण=कुशादिक, काष्ठ=खदिरादिसमुद्भव दारु, शर्करा=सुद्रपापाणखण्डम् । अन्यदपि वा तथाविध=तज्जातीय स्यात्=भवेत् तद्=अष्टिकादिकम् उत्क्षिप्य न निक्षिपेत्=उत्क्षेपण कृत्वा यत्र तत्र न क्षिपेत्, आस्येन=मुखेनापि नोज्जेत्=थूत्कृत्य

‘तत्थ से’ इत्यादि, ‘त उक्खिवित्तु’ इत्यादि । उस कोठे आदिमें आहार करनेवाले भिक्षुके भोजनमें बीज, काँटा, तिनका, लकड़ी, किरकिरी-ककर या और कोई उम प्रकारकी वस्तु हो तो उसे निकाल कर जहाँ तहाँ न डाले तथा मुखसे भी न थूके फिन्तु उसको हाथमें

तत्थ से० इत्यादि, तथा त उक्खिवित्तु० इत्यादि से ठोठाया आहार करनेवाले भिक्षुना भोजनमा भीज, काटा, तणुभला लाडडु, धाकरी धाकरी या जेवा प्रजननी गी० डेठ वस्तु डोय तो ते दादी नापी न्यात्या नाये नडि, तथा

इति व्याख्यात तदप्ययुक्ततरम् । हस्ते मुखवस्त्रिकाधारणे मुखवस्त्रिकाधारणोद्देश्यभू-  
तायाः सूक्ष्मव्यापिमम्पातिमवायुकायादिजीवहिंसानिवृत्तेरसिद्ध्या मुखवस्त्रिका  
मुख एव धारणीयेत्याशयस्य जागरूकत्वान्, अत एव भगवताऽपि सूक्ष्मव्यापि  
सम्पातिमवायुकायादिजीवाऽयतनानिवृत्तये मृगोपरि धारणीयसदोरकाष्टपुटमुख  
प्रमाणवस्त्रखण्डरूपेऽर्थे मुखवस्त्रिकाशब्दः प्रयुक्तो, न तु हस्तवस्त्रिकाशब्द इति स्थ-  
मपि हस्तवस्त्रिकाशब्देन मुखवस्त्रिकारूपोऽर्थो न लभ्यते । एव च तेन कायप्रमार्जन-  
कथन सर्वथाऽऽगमविरुद्धमेवेति बोध्यम् ॥८२॥८३॥

ऐसी व्याख्या करना भी अत्यन्त अयुक्त है, क्योंकि मुखवस्त्रिका  
धारण करनेका प्रयोजन सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम तथा वायुकाय आदि  
जीवोंकी हिंसाका परिहार करना है । मुखवस्त्रिकाको हाथमें रखनेसे  
उक्त प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । इससे यह सिद्ध होता है कि मुख  
वस्त्रिका मुखपर ही धारण करनी चाहिए । इसलिए मुखके निमित्तसे  
होनेवाली, सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम और वायुकाय आदि जीवोंकी  
विराधनाकी निवृत्तिके लिए मुख पर धारण करने योग्य उस मुख  
परिमाण सदोरक और आठ पुडवाले वस्त्रखण्डको भगवानने 'मुख  
वस्त्रिका' शब्दसे कहा है, 'हस्तवस्त्रिका' शब्दका प्रयोग कहीं नहीं  
किया, अत एव 'हस्तक' शब्दसे मुखवस्त्रिकाका अर्थ किसीभी प्रकार  
नही निकल सकता । इस प्रकार 'उससे कायकी प्रमार्जना करना'  
यह अर्थ आगमसे सर्वथा विरुद्ध है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

ऐसी व्याख्या करनी जो पण अत्यन्त अयुक्त है, कारण उ मुखवस्त्रिका धारण  
करवानु प्रयोजन सूक्ष्म व्यापी, सम्पातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी हिंसाने  
परिहार करवे जो है मुखवस्त्रिकाने हाथमें राखना उक्त प्रयोजन सिद्ध थतु  
नही जोही जोम सिद्ध थाय है उ मुखवस्त्रिका मुख पर व धारण करवी जोहजो  
तेही मुपना निमित्त थनारी सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम अने वायुकाय आदि  
जीवोंकी विराधनानी निवृत्तिने भाटे मुख पर धारण करवा योग्य जो मुख  
परिमाण होरा साथेन अने आठ पुडवाला वस्त्रखण्डने भगवाने 'मुखवस्त्रिका'  
कहा है, 'हस्तवस्त्रिका' शब्दने प्रयोग कहीं नही जोटले 'हस्तक' शब्दकी  
मुखवस्त्रिकाने अर्थ जोह पण प्रकारे नीजणी शकते नही जो हीते 'मुखवस्त्रि-  
कथी कायानी प्रमार्जना करवी' जो अर्थ आगमकी सर्वथा विरुद्ध है (८२-८३)

विनयेन प्रविश्य, सकाशे गुरोर्मुनिः ।

ऐर्यापथिकीमादाय, आगतश्च प्रतिक्रामेत् ॥८८॥

सान्वयार्थः—सिया य=अगर भिक्खू=साधु सिञ्ज=वसति उपाश्रयमें ही आगम्म=आकर भुत्तुउ=आहार करना इच्छिञ्ज्जा=चाहे तो सपिण्डवाय=भिक्षाके सहित आगम्म=आकर विणएण='मत्थएण वदामि निस्सीहि' इस प्रकार बोलनेरूप विनयसे पचिसित्ता=उपाश्रयमें प्रवेश करके से=वहा उड्डय=भोजनके स्थानको पडिलेहिया=अच्छी तरह देखकर गुरुणो=रत्नाधिकके सगासे=समीप आगओ य=आया हुआ मुणी=मुनि इरियावहिय=इरियावहियाका पाठ आयाय=लेकर पढकर पडिक्कमे=कायोत्सर्ग करे । तात्पर्य यह है कि प्रबल पिपासा आदि खास कारण के बिना तो उपाश्रयमें आकर ही साधुको आहार करना चाहिये किन्तु गृहस्थके घरमें नहीं करे ॥८७॥८८॥

टीका—'सिया य' इत्यादि, 'विणएण' इत्यादि च । भिक्षुः=साधुः शय्या=वसति स्यात्=एव आगम्य भोक्तुमिच्छेत् । 'अत्र स्यादित्यव्ययमवधारणार्थं तेन 'प्रबलपिपासादिकारणाभावे वसतिं विहायाऽन्यत्र न भोक्तव्य'मिति तात्पर्यं गम्यते । तदा सपिण्डपान=पिण्डपातो-भिक्षालाभस्तेन सहाऽऽगम्य विनयेन="मत्थएण वदामि निस्सीहि" इतिपठनलक्षणेन प्रविश्य उपाश्रयमिति शेषः, से=सः, यद्वा सेशब्दो मगधदेशप्रसिद्धः 'तत्र'-शब्दार्थं वर्त्तते तेन से=तत्र उन्दुरु=स्थान प्रत्यु-

'सिया य' इत्यादि, 'विणएण' इत्यादि । साधु उपाश्रयमें आकर ही आहार करनेकी इच्छा करे । यहाँ 'स्यात्' अव्यय निश्चय-बोधक है इससे यह तात्पर्य प्रगट होता है कि पिपासा आदि किसी प्रबल कारणके बिना उपाश्रयके सिवाय अन्यत्र आहार नहीं करना चाहिए । अत एव भिक्षा लाकर "मत्थएण वदामि निस्सीहि" यह पाठ उच्चारण करके उपाश्रयमें प्रवेश करे फिर भोजन करनेके स्थानकी

सिया य० इत्यादि, तथा विणएण इत्यादि साधु उपाश्रयमा आवीने न आहार करवानी इच्छा करे, अर्थां स्यात् अव्यय निश्चयबोधक छे, तेथी अे तात्पर्यं प्रकट थाय छे उे तरस आदि उेछ प्रणज कारण बिना उपाश्रय सिवाय अन्यत्र आहार न करवो न्नेछअे अेटले लिक्षा लावीने मत्थएण वदामि निस्सीहि अे पाठ उच्चारिने उपाश्रयमा प्रवेश करे पछी लेजन करवाना स्थाननी सम्बद्ध

न क्षिपेत् । तर्हि किं कुर्यात् ? इत्याह—तद् हस्तेन गृहीत्वा एकान्तमपक्रामेत्—  
गन्तेत् ॥८४॥८५॥

मूलम्—एगं<sup>१</sup>तमवक<sup>२</sup>मित्ता, अचि<sup>३</sup>त्त पडिले<sup>४</sup>हिया ।

जय परि<sup>५</sup>ट्टविज्जा, परि<sup>६</sup>ट्टप्प पडि<sup>७</sup>क्कमे ॥ ८६ ॥

छाया—एकान्तमपक्राम्याऽचित्ता मत्स्युपेक्ष्य ।

यत् परिष्ठापयेत्, परिष्ठाप्य प्रतिक्रामेत् ॥८६॥

एकान्त में जाकर क्या करे ? सो बताते हैं—

सान्प्रयार्थ —एगत=एकान्त स्थानमें अवकमित्ता=जाकरके अचित्त=एके  
न्द्रियादिप्राणीरहित अचित्त स्थानको पडिलेहिया=पूजकर उस धोवनको जय=  
यतनासे परिट्टविज्जा=परिठवे डाले, परिट्टप्प=परिठवके आकर पडिक्कमे=इरि  
यावहिया पडिक्कमे=करे ॥८६॥

टीका—‘एगत०’ इत्यादि । विजनप्रदेश गत्या अचित्ता भूमिं वसुषा निरीक्ष्य  
बीजादिक सयत्न व्युत्सृजेत्, तदनु स्थानमागत्य प्रतिक्रामेत्=एर्यापधिकीं कुर्या  
दिति भावः ।

मूलम्—सिया<sup>८</sup> य भिक्खू<sup>९</sup> इच्छि<sup>१०</sup>ज्जा, सिज्जमागम्म<sup>११</sup> भुत्तु<sup>१२</sup>उ ।

सपिण्डपायमागम्म उडुअ<sup>१३</sup> से पडिले<sup>१४</sup>हिया ॥ ८७ ॥

विणण<sup>१५</sup> पविसित्ता, सगासे<sup>१६</sup> गुरुणो मुणी ।

इरियावहियमायाय, आगओ<sup>१७</sup> य पडिक्कमे ॥ ८८ ॥

छाया—स्याच्च भिक्षुरिच्छेत्, शय्यामागम्य भोक्तुम् ।

सपिण्डपातमागम्य, उन्दुक से (तत्र) मत्स्युपेक्ष्य ॥८७॥

लेकर एकान्त स्थानमें जावे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

‘एगत०’ इत्यादि । एकान्तमें जाकर अचित्त भूमि देख कर वहाँ  
यतनाके साथ उस बीज कांटे आदिको डाले । फिर अपने स्थान पर  
आकर ईरियावहियाका प्रतिक्रमण करे ॥ ८६ ॥

मुपथी पणु थूके नडि, परतु तेने डायमा लधने ओकान्त स्थानमा नय (८४-८५)

एगत० इत्यादि ओकान्तमा लधने अचित्त भूमि लेधने त्या यतनापूर्वक  
ओ षीणु डाटा आदिने नाणे पणी पोताना स्थान पर आवीने इरियावहियाय  
प्रतिक्रमण करे (८६)

टीका—सयतः=कायोत्सर्गस्थो मुनिः, गमनागमने=गतागते चैव भक्ते पाने च सजात निरशेष=समग्रम् अतिचार=मुनिमर्यादालङ्घनलक्षणम् यथाक्रमम् आभोग्य=सोपयोग विचिन्त्य ऋजुप्रज्ञः=सरलबुद्धिः अनुद्विग्रः=प्रशान्तः, अव्याक्षिप्तेन=अव्याकुलेन चेतसा=मनसा गुरुसकाशे=शुद्ध प्रमादादिवशेनाऽशुद्ध वा यद् यस्माद् यत्र वा यथा गृहीत भवेत् तदपि गुरुसमीपे कथयेदित्यर्थ ।

‘उज्जुप्पन्नो’ इत्यनेनाऽकुटिलमतिरेव सम्यगालोचयतीति सूचितम् । ‘अणु-  
न्विग्गो’ अनेन क्षुधादिपरिपहजेतृत्वमावेदितम् । ‘अव्वक्खित्तेण चेषसा’ इत्यनेन  
‘एकाग्रचित्तेनैवाऽतिचारस्य सम्यक् स्मरण भवती’-ति स्पष्टीकृतम् ॥८९॥९०॥

कायोत्सर्गमें स्थित होकर गमनाऽऽगमनमें, तथा-आहार पानीके लेनेमें जो अतिचार लगे हों उन सबका क्रमशः चिन्तन करके सरलबुद्धि शान्त चित्तवाला सयमी व्याकुलतारहित चित्तसे गुरुके समीप आलोचना करे । प्रमाद आदिके वशसे जहा जैसा शुद्ध या अशुद्ध आहार आदि लिया गया हो वह भी गुरुसे निवेदन करे ।

‘उज्जुप्पन्नो’ पदसे यह सूचित किया है कि कुटिलतारहित बुद्धि-वाला ही यथार्थ आलोचना कर सकता है । ‘अणुन्विग्गो’ पदसे क्षुधा आदि परीपहोंका जीतना प्रगट किया है । ‘अव्वक्खित्तेण चेषसा’ पदसे यह सूचित किया है कि एकाग्र-चित्तसे ही अतिचारोंका अच्छी तरह स्मरण हो सकता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

कायोत्सर्गभा स्थित थडने गमनागमनभा, तथा आहारपाणी लेवाभा ने अतिचार लाग्या होय ते सर्वानुं क्रमश चित्तन करीने सरलबुद्धि शान्त-चित्तवाणे। सयमी व्याकुणता-रहित चित्तथी शुद्धी समीपे आलोचना करे प्रमाद आदिने वश थडने न्या नेवे। शुद्ध या अशुद्ध आहार आदि लेवाभा आवेल होय ते पणु शुद्धे निवेदन करे

उज्जुप्पन्नो शब्दथी अेम सूचित करवाभा आण्यु उं के कुटिलतारहित बुद्धिवाले न यथार्थ आलोचना करी शके छे, अणुन्विग्गो शब्दथी क्षुधा आदि परीपहोने छतवानुं प्रकट करवाभा आण्यु छे अव्वक्खित्तेण चेषसा शब्दथी अेम सूचित कथुं छे के एकाग्र-चित्तथी न अतिचारेनु सारी रीते नभरण थड शके छे (८९-९०)

पेक्ष्य=सम्पद निरीक्ष्य गुरोः=रत्नाधिरम्य सफाशे आगतश्च मुनिः पेर्यापथिकीम्  
 “इच्छामि पडिक्कमिउ” इत्यादि लक्षणाम् आदाय=पठित्वा प्रतिक्रामेत्=कायोत्सर्गं  
 कुर्यात् ॥८७॥८८॥

तत्र (कायोत्सर्गं) किं कुर्यात्? इत्याह—‘आभोइत्ताण’ इत्यादि, ‘उज्जुप्पन्नो’  
 इत्यादि च ।

मूलम्-आभोइत्ताण नीसेस, अइयार जहक्कम ।

गमणागमणे चैव, भक्ते पाणे च सजए ॥ ८९ ॥

उज्जुप्पन्नो अणुविग्गो, अव्वमिक्खत्तेण चैयसा ।

आलोए गुरुसगासे, ज जहा-गहिय भवे ॥ ९० ॥

छाया—आभोग्य निशेषम्, अतिचार यथाक्रमम् ।

गमनागमने चैव, भक्ते पाने च सयतः ॥८९॥

उज्जुप्पन्नः अनुद्विग्नः, अव्याक्षिप्तेन चेतसा ।

आलोचयेद् गुरुसफाशे, यद् यथा शृणीत भवेत् ॥९०॥

सान्प्रयार्थः—सजए=कायोत्सर्गमें रहा हुआ मुनि गमणागमणे=जानेआनेमें  
 चैव=और भक्ते=आहार य=तथा पाणे=पानीके ग्रहण करनेमें (लगे हुए)  
 नीसेस=सम प्रकारके अइयार=अतिचारोंको, तथा ज=जो अज्ञादि जहा=  
 जिस प्रकार गहिय भवे=ग्रहण किया हुआ हो उसे भी, जहक्कम=यथाक्रम  
 अनुक्रमसे आभोइत्ताण=उपयोगसहित चिन्तन करके, उज्जुप्पन्नो=सरल बुद्धि-  
 वाला अणुविग्गो=उद्वेगरहित वह मुनि अव्वमिक्खत्तेण=विक्षेपरहित-एकाग्र  
 चैयसा=चित्तसे गुरुसगासे=गुरुके समीप आलोए=आलोचने ॥८९॥९०॥

सम्यक् प्रकार प्रतिलेखना करके दीक्षामे बडे मुनिके समीप आकर  
 “इच्छामि पडिक्कमिउ” इत्यादि ईरियावडियाका पाठ बोल करके  
 कायोत्सर्ग करे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

कायोत्सर्गमें क्या करना चाहिए सो कहते हैं—‘आभोइत्ताण’  
 इत्यादि, ‘उज्जुप्पन्नो’ इत्यादि ।

प्रकारे प्रतिलेखना करीने दीक्षामे मोटा मुनिनी समीपे आनीने इच्छामि पडिक्कमिउ  
 धत्यादि धरियावडियाने पाठ बोलीने कायोत्सर्ग करे (८७-८८)

कायोत्सर्गमा शु कश्चु नोभवे ते कडे छे—आभोइत्ताण० धत्यादि तथा  
 उज्जुप्पन्नो० धत्यादि

छाया—अहो ! जिनैः असावत्रा, वृत्तिः साधुभ्यो देशिता ।

मोक्षसाधनहेतोः, साधुदेहस्य धारणाय ॥९२॥

सान्त्वयार्थः—अहो=आश्चर्य है कि-मोक्षस्वाहाणहेउस्स=मोक्ष प्राप्तिके निमित्तभूत साधुदेहस्स=साधुशरीरके धारणा=निर्वाह-स्थितिमात्र-के लिए साहाण=मुनियोंको जिणेहिं-तीर्थङ्कर भगवानने असावज्जा=निर्दोष वित्ती=भिक्षावृत्ति-(आचार) देसिया=बताई है ॥९२॥

टीका—अहो=आश्चर्य मोक्षसाधनहेतोः=अपवर्गसिद्धिनिमित्तभूतस्य साधु-शरीरस्य धारणाय=स्थितिमात्रार्थे साधुभ्यः=मुनीनुद्दिश्य जिनैः=तीर्थङ्करैः, असावत्रा=दोषरहिता वृत्तिः=भिक्षालक्षणा देशिता=उपदिष्टा ॥९२॥

मूलम्-णमुक्कारेण पारित्ता, करित्ता जिणसंथव ।

सज्झाय पट्टवित्ताण, वीसमेज्ज खण मुणी ॥९३॥

छाया—नमस्कारेण पारयित्वा, कृत्वा जिनसस्तवम् ।

स्वाध्याय पठित्वा, विश्राम्येत् क्षण मुनिः ॥९३॥

सान्त्वयार्थः—कायोत्सर्ग में पूर्वोक्त प्रकार से चिन्तन करनेके बाद मुणी=साधु नमुक्कारेण=नमस्कार मन्त्रसे पारित्ता=कायोत्सर्गको पार-समाप्त करके जिण-सथव="लोगस्स उज्जोयगरे" इत्यादि सपूर्ण जिणसथव (जिन भगवानकी स्तुति) करित्ता=करके तथा सज्झाय=मज्झाय-मसे कम मूलशास्त्रकी पाच गाथाओंका स्वाध्याय पट्टवित्ता=पढ़कर खण=क्षणभर 'जितनेमें दूसरे मुनिराज भी शामिल हो जाते हैं' इस अभिप्रायसे कुछ देर वीसमेज्ज=विश्राम करे ॥९३॥

टीका—'णमुक्कारेण' इत्यादि । मुनि सयतः नमस्कारेण='णमो अरिहताण' इत्युच्चारणलक्षणेन कायोत्सर्गमिति शेषः, पारयित्वा=समाप्य जिनसस्तव "लोगस्स

अहो ! यह शरीर मोक्षकी सिद्धिका कारण है अतः इसकी स्थितिके लिए तीर्थङ्कर भगवानने साधुओंको निर्दोष भिक्षा लेनेका उपदेश दिया है ॥ ९२ ॥

'णमुक्कारेण' इत्यादि । मुनि 'णमो अरिहताण' पदका उच्चारण करके कायोत्सर्गको समाप्त करे । फिर 'लोगस्स उज्जोयगरे' इत्यादि

अहो ! आ शरीर मेक्षणी सिद्धिनु कारण छे, अतएव अनी स्थितिने भाटे तीर्थंकर भगवाने साधुअने निर्दोष भिक्षा लेवाने अ उपदेश आप्पे छे (९२)

णमुक्कारेण इत्यादि मुनि णमो अरिहताण पढतु उच्चारण करीने कथे । उत्सर्गने समाप्त करे, पछी लोगस्स उज्जोयगरे इत्यादि जिनसस्तव पूरु करीने



८ १ ७ ६ १ ३ ४ १ ५  
 मूलम्-न सम्ममालोडय हुजा, पुर्वि पच्छा व ज कडं ।

११ १२ १० १३ १४ १४  
 पुणो पडिकमे तस्स वोसटो चितए डमं ॥ ९१ ॥

छाया—न मय्यगात्रोचित भवेत्, पूर्वं पश्चाद्वा यत्कृतम् ।

पुनः प्रतिक्रामेत्तस्य, व्युत्सृष्टश्चिन्तयेदिदम् ॥ ९१ ॥

सान्त्वयार्थः—ज=जो अतिचार पुर्वि=पहले व=तथा पच्छा=पीछे कड=किया है वह सम्म=सम्पत् प्रकारसे-अच्छी तरह याने-‘पहले लगे हुए पापको पहले आलोचे और पीछे लगे हुए पापको पीछे आलोचे’ इस प्रकार आलोच्य=आलोचित न कुज्जा=नहीं किया हो तो तस्स=उस अतिचारको पुणो=फिरसे पडिकमे=आलोचे, (और) वोसटो=कायोत्सर्गमें रहा हुआ साधु डम=इस-‘आगे रूढ़ा जानेवाला’ प्रकार चितण=चिन्तन करे ॥ ९१ ॥

टीका—‘न सम्म०’ इत्यादि । यत्=यस्माद्धेतोः पूर्वं पश्चाद्वा कृतमतिचार सम्यक्=प्राकृत प्रागालोचितव्य पश्चात्कृत च पश्चादालोचितव्यमिति क्रमेण आलोचित=प्रकाशित न भवेच्चेदतः तस्य=अतिचारस्य (सम्बन्धसामान्ये पृष्ठी) पुनः प्रतिक्रामेत् । व्युत्सृष्टः=कायोत्सर्गस्थः इदं=वक्ष्यमाण चिन्तयेत् ॥ ९१ ॥

तदेवाऽऽह—‘अहो’ इत्यादि ।

१ ६ ७ ५ ६  
 मूलम्-अहो जिणेहि असावजा, विन्ती साहूण देसिया ।

२ ३ ४  
 मोक्खसाहणहेउस्स, साहुदेहस्स धारणा ॥ ९२ ॥

‘न सम्म०’ इत्यादि । आगे पीछे किये हुए अतिचारोंकी सम्यक् प्रकार अर्थात् पहले किये हुए अतिचारोंकी पहले और पश्चात् किये हुएकी पश्चात्—आलोचना न की गई हो तो अतिचारोंका पुन प्रतिक्रमण करना चाहिए और कायोत्सर्गमें स्थित होकर ऐसा ( अगली गाथामें कहे जानेवाला ) विचार करे ॥ ९१ ॥

उसी विचारको कहते हैं—‘अहो’ इत्यादि ।

न सम्म० इत्यादि आगण पाछण करेला अतिचारिणी सम्यक् प्रकारे अर्थात् पहिले करेला अतिचारिणी पहिले अने पाछण करेला अतिचारिणी पाछण आलोचना न करेवाभा आवी होय तो अतिचारिणी पुन प्रतिक्रमण करवु न्नेछिये, अने कायोत्सर्गमा स्थित थजने जेवो ( आगवी गाथाभा कहेवाभा आवनारो ) विचार करे ( ६१ )

जे विचार छवे कडे छे-अहो० इत्यादि

एव विचिन्त्य स पूर्वं स्वभागमन्नादिकं ग्राहयितु सर्वेषु मुनिषु रत्नाधिकं प्रार्थयेत् । यद्वि गृह्णीयात्तद्वि सम्यक्, नाङ्गीकुर्याच्चिदेव निवेदयेत्-“आर्यपादाः । कस्मैचिन्मुनये भवद्भिः स्वयमेव वितीर्यता”-मिति । अथ रत्नाधिको यथेच्छं दद्यात् । यद्वि चाऽदत्त्वा रत्नाधिकः ‘त्वमेव यथेच्छं प्रयच्छे’-ति ब्रूयात् तदा तेन शिष्येण किं कर्त्तव्यम् ? इत्याह-‘साहवो’ इत्यादि ।

मूलम्-साहवो तो चियत्तेण, निमतिज्ज जहक्कम् ।

जह तत्थ केड डच्छिज्जा, तेहि सद्धिं तु भुजए ॥ ९५ ॥

छाया—साधुन् ततः चियत्तेण, निमन्त्रयेद् यथाक्रमम् ।

यदि तत्र केऽपि डच्छेयुः, तैः सार्द्धं भुञ्जीत ॥९५॥

कर्मोकी निर्जराम्ना अभिलाषी साधु विश्राम करते समय इस मुक्ति रूप हितके करनेवाले अर्थका चिन्तन करे—यदि कोई मुनिराज मुझ पर अनुग्रह करके मेरे भागके अन्न आदिको ग्रहण करे तो मैं इस दुस्तर भवसागरसे तिर जाऊँ ॥ ९४ ॥

ऐसा विचार करके प्रथम सब मुनियोंमें जो रत्नाधिक (दीक्षामें बड़े) हों उनसे अपना भाग ग्रहण करनेकी प्रार्थना करे । यदि ग्रहण करे तो अच्छा ही है । न ग्रहण करे तो ऐसा निवेदन करे—‘हे भदन्त ! आप ही किसी मुनिको यह आहार वितीर्ण कीजिए’ फिर रत्नाधिक इच्छानुसार देदें । यदि वे न देकर यह आज्ञा दें कि—‘तुम्हीं इच्छानुसार देदो’ तो शिष्यको क्या करना चाहिए ? सो बताते हैं—‘साहवो’ इत्यादि ।

उर्मेनी निर्जराम्ना अभिलाषी साधु विश्राम करती वपते आवा मुक्तिरूप हितना उरवावाणा अर्थतु अितन करे—जे डोछ मुनिराज मारा पर अनुग्रह करीने मारा भागना अन्न आदिने अडणु करे तो हु आ दुस्तर भवसागरथी तरी जठि (६४)

ऐवो विचार करीने पडेलो गधा मुनिओमा जे रत्नाधिक (दीक्षामा वडा) होय तेमने पोताने भाग अडणु करवानी प्रार्थना करे जे ते अडणु करे तो साड, न अडणु करे तो ऐवु निवेदन करे जे—‘हे भदन्त ! आप जे डोछ मुनिने आ आज्ञा वडेथी आपो’ पछी रत्नाधिक इच्छानुसार आपे जे ते न आपता ऐथी आज्ञा करे जे ‘तमे इच्छानुसार आपी हो’ तो शिष्ये शु करवु जेथे ? ते गतावे छे—साहवो० इत्यादि

उज्जोयगरे” इत्यादिलक्षण सम्पूर्ण कृता=विधाय स्थाप्याय=“धम्मो मगलमुक्किट्ठो”  
इत्यादिगाथापञ्चादन्वून मूलशास्त्रं पठित्वा क्षण=क्षणमात्र ‘मण्डलेऽन्यमुनयोऽपि  
समागत्य समिलिता भवन्तु’ इत्याशयेन विश्राम्येत्=विश्रान्तिं कुर्यात् ॥९३॥

विश्राम्यन् मुनिः किं कुर्यात् ? इत्याह—

मूलम्-वीसमतो डमं चित्ते, हियमट्ट लाभमट्टिओ ।

जइ मे अणुग्गह कुज्जा, साहू हुज्जामि तारिओ ॥९४॥

छाया—विश्राम्यन् (मुनिः) इदं चिन्तयेत्, हितमर्थं लाभार्थिकः ।

यदि मम अनुग्रहं कुर्यात्, साधुर्भवामि तारितः ॥९४॥

विश्रामके समय मुनि क्या करे ? सो बताते हैं—

सान्वयार्थः—वीसमतो=विश्राम करता हुआ लाभमट्टिओ=कर्मनिर्जराका  
अभिलाषी साधु इम=इस इसी गाथाके उत्तरार्द्धमें कहेजानेवाले प्रकार हिय=  
मोक्षप्राप्तिरूप हितके करनेवाले अट्ट=भागी प्रयोजनको चित्ते=चिन्तन करे, जैसे  
जइ=यदि-अगर साहू=कोईभी मुनिराज मे=मेरे ऊपर अणुग्गह कुज्जा=अनुग्रह  
करे अर्थात् मेरे भागके आहारमेंसे कुछ आहार लेलें तो मैं तारिओ हुज्जा=  
इस ससार-समुद्रको तैर जाऊ पार कर जाऊ ॥९४॥

टीका—विश्राम्यन्=विश्रान्तिं कुर्यात् लाभार्थिकः=कर्मनिर्जराभिलाषी इदं=  
गाथोत्तरार्द्धं वक्ष्यमाण हित=मुत्तयवाप्तिरूपम् अर्थ=भाविप्रयोजन चिन्तयेत्=विचार  
येत्, यदि कोऽपि साधु=मुनि, मम=मदुपरि अनुग्रह=मया मदर्थं वोपनीतस्याभा  
देर्ग्रहणलक्षणं कुर्यात् तर्हि अहं तारित=दुस्तरभवसागरतः समुच्चारितो भवा-  
मीत्यर्थः ॥९४॥

जिन सस्तव पूर्ण करके ‘धम्मो मगलमुक्किट्ठ’ इत्यादि कमसे कम पांच  
गाथाओंकी मूल शास्त्रकी सज्झाय करके थोड़ी देर विश्राम करे कि  
जिससे अन्य मुनि भी आकर शामिल हो जावे ॥ ९३ ॥

विश्राम करता हुआ मुनि क्या करे सो कहते हैं—‘वीसमतो’  
इत्यादि ।

धम्मो मगलमुक्किट्ठ इत्यादि ओछाभा ओछी पांच गाथाओंकी मूलशास्त्रकी सज्झाय  
करे थोड़ीदेर विश्राम करे क जैसी अन्य मुनि पक्ष आपीने शामिल थथ अन्य (६३)  
विश्राम करता मुनि शु करे ते कडे छे-वीसमतो० इत्यादि

छाया—अथ कोऽपि न इच्छेत्, ततो भुञ्जीत एककः ।

आलोके भाजने साधुः, यतम् अपरिशातयन् ॥९६॥

सान्वयार्थः—अह=अथ-यदि कोइ=कोई न इच्छिज्जा=आहार लेना नहीं चाहे तो तओ=फिर साह=वह साधु एगओ=अकेला-द्रव्यसे स्वय एक ही, भावसे राग-द्वेष-सग-रहित आलोए=प्रकाशयुक्त-चौंटे मुहवाले भायणे=पात्रमें जय=यतनापूर्वक अर्थात् माडलेके दोपोको टालकर अपरिशाडिय=सीध-कणका विन्दु मात्र भी आहार नहीं गिराता हुआ भुजिज्ज=आहार करे ॥९६॥

टीका—‘अह’ इत्यादि । यदि कोऽपि ग्रहीतु न्नेच्छेत् तदनन्तर साधु एककः=द्रव्येण स्वयमेव, भावेन रागद्वेषरहितः आलोके प्रकाशमाने भाजने मशकादि-क्षुद्रजन्तवो यथा दृष्टिपथमागच्छेयुस्तदर्थमिति भावः । यत=सयतन मण्डलदोष-भावानुसन्धानपूर्वकम् अपरिशातयन् सिक्थादिक्रमविकिरन् भुञ्जीत ॥९६॥

मूलम्—<sup>२</sup>तित्तग च <sup>३</sup>कडुय च <sup>४</sup>कसायं, <sup>५</sup>अविल च <sup>६</sup>महुर <sup>७</sup>लवणं वा ।

<sup>१२</sup>एय <sup>१४</sup>लद्धमन्नदृपउत्तं, <sup>१३</sup>महुघय व <sup>१५</sup>भुजिज्ज <sup>१६</sup>सजए ॥९७॥

छाया—तित्तक च कडुक च कपायम्, अम्ल च मधुर लवण वा ।

एतल्लब्धमन्यार्थप्रयुक्त, मधु-घृतमिव भुञ्जीत सयतः ॥९७॥

सान्वयार्थः—वह आहार यदि-तित्तग=तीखा कडुय=रुड़वा च=और कसाय=रूपायला च=और अविल=खट्टा च=और महुर=मीठा वा=अथवा

‘अह’ इत्यादि । यदि कोई भी मुनि आहार ग्रहण करने की इच्छा प्रकाशित न करे अर्थात् न ले तो अकेला रागद्वेषरहित वह साधु, ऐसे पात्रमें भोजन करे जिसमें प्रकाश पड रहा हो । प्रकाश-युक्त पात्रमें आहार करनेका विधान इसलिए किया है कि मच्छर आदि सूक्ष्म जन्तु दीख सके । मण्डल दोषोंका विचार करता हुआ सीध मात्र भी अन्नादि न बिखेरता हुआ आहार करे ॥ ९६ ॥

अहं धत्यादि ने कोइ पण्य मुनि आहार अडण्य करवानी धन्या प्रकाशित न करे अर्थात् न ले तो अकेला-रागद्वेषरहित ते जेवा पात्रमा लेजन करे के जेमा प्रकाश पडता होय प्रकाशयुक्त पात्रमा आहार करवानुं विधान अटला भाटे कथुं छे के मच्छर आदि सूक्ष्म जंतु देणी राकाय मउल होपाने। विचार करता अके कण्य अटण्य पण्य अन्न न वेरावा देता आहार करे (६६)

पूर्वोक्त प्रकार से चिन्तन करके अपने हिस्से का अक्षनादिको लेनेके लिये सत्र मुनियोंमें से रत्नाधिक-दीक्षाम वड़े मुनिसे पहले प्रार्थना करे, यदि वे लें तो अच्छा ही है, अगर वे न लें तो उनसे कहे—'हे भगवन् ! आपही अपने हाथ से किसी दूसरे सन्त को दीजिये'। ऐसा कहने पर यदि वे अपने हाथ से किसीको दें तो ठीक ही है, यदि सुद न देकर उसीसे कह दें कि 'तुमही तुम्हारी इच्छाके अनुसार जो लेवे उसको दे दो' तब उसे क्या करना चाहिये, सो बताते हैं—

सान्वयार्थः—तो=इस प्रकार गुरु महाराजकी आज्ञा प्राप्त होने पर वह साधु साहचो=सत्र सन्तोंको चियत्तेण=त्याग बुद्धिसे अर्थात् उदार चित्तसे जहकम=रत्नाधिकके क्रमानुसार निमनिज्ज=निमन्त्रण करे-आहार धामे, जह=यदि-अगर तत्थ=उनमेंसे केइ=कोई साधु इच्छिज्जा=आहार लेना चाहें तो (उन्हें देकर) तेहिं सद्धि तु=उनके साथ बैठकर भुजए=खुद भी आहार करे ॥९५॥

टीका—तो=ततः गुरोरादेशानन्तरम् असौ साधून् चियत्तेण=देशीयशब्दोऽयम्' परमप्रीत्या उदारचेतसेत्यर्थ, यथाक्रम=रत्नाधिकक्रममनुसृत्य निमन्त्रयेत्=स्वभागग्रहणाय प्रार्थयेत्-'इदं गृहीत्याऽनुगृह्यता'-मिति वदेदित्यर्थः । यदि तत्र=मुनीना म ये केऽपि मुनय इच्छेयुः='ग्रहीतुमभिलषेयुस्तदा तेभ्योऽपि वितीर्य तै' सार्द्धं स्वयमपि भुञ्जीत='चपड चपडे' ति शब्दमकुर्वन्नभ्यवहरेत् ॥९५॥

मूलम्—अह<sup>१</sup> कोइ<sup>२</sup> न इच्छिज्जा<sup>३</sup>, तओ<sup>४</sup> भुजिज्ज एगओ<sup>५</sup> ।

आलोए<sup>६</sup> भायणे<sup>७</sup> साहू<sup>८</sup>, जयं<sup>९</sup> अपरिस्साडियं<sup>१०</sup> ॥ ९६ ॥

गुरुकी आज्ञा मिलनेके अनन्तर प्रसन्न चित्तसे उदारताके साथ दीक्षामे वड़े-छोटेके क्रमसे साधुओंको अपना भाग ग्रहण करनेकी प्रार्थना करे, अर्थात् 'यह आहार ग्रहण करनेका अनुग्रह कीजिए' ऐसा वहे । उन मुनियोंमेंसे कोई ग्रहण करनेकी इच्छा करें तो उन्हें वितीर्ण करके उनके साथ आप भी चपड चपड शब्द न करता हुआ आहार करे ॥ ९५ ॥

शुद्धी आज्ञा भज्या पछी प्रसन्न चित्तथी उदारतानी साथे दीक्षामा भेटी नानाना कमे ठरीने साधुओंने पोताना भाग अडधु करवानी प्रार्थना करे अर्थात् 'आ आहार अडधु करवाना अनुअड करे' अथवा अडे अडे मुनिओंभाथी अडे अडधु करवानी भेटी करे तो तेभने वडेथी आपीने तेभनी साथे पोते पड अडधु अडधु अवाज् कयां गिना आहार करे (८५)

यद्वा अर्द्धस्विन्नमापः 'उडदवाकुला' इति भाषाप्रसिद्ध । एतत् पूर्णोक्त सर्वम् उत्पन्न=शास्त्रमर्यादयोपलब्ध, मासुरु=निर्जीर, मुधालब्ध=मन्त्रतन्त्रादिप्रकारमन्तरेण प्राप्त, तद् यदि अल्प=स्त्रल्प सरसमन्नादिक, या=अथवा बहु प्रचुरम् असारमशनादिकम्, उपलक्ष्येति शेषः, नातिहीलयेत्=न निन्देत् । अल्पीयसि सरसवस्तुनि लब्धे-"कथमेतावतैरोदरपूर्त्तिर्भवेत्" इति, एवमसारवस्तुनि प्रचुरतरे लब्धे सति "किमनेन प्रचुरतरेणापि निष्प्रयोजनेने"-त्येवरूपा निन्दा न कुर्वीदिति हृदयम् । किन्तु मुधाजीवी=मुधा-व्यर्थ-निष्प्रयोजन शरीरेन्द्रियपुष्टिप्रयोजनविकल जीवितु शीलमस्येति सः, समययात्रानिर्वाहार्थमेव भिक्षाग्रहणशील इति भावः । यद्वा मुधाजीवी=निर्दोषभिक्षाजीवी-जात्याद्यनापिष्करणपूर्वकभिक्षाग्राहक इत्यर्थः, दोषवर्जितं=सयोजनादिमण्डलदोषा यथा न भवेयुस्तथा भुञ्जीत । 'उत्पन्न' इत्यनेन

भोजन । ये सब यदि शास्त्रोक्त विधिसे प्राप्त हुए हों, प्राप्तुक हों, मन्त्रतत्र आदिका प्रयोग किये बिना मिले हों, थोड़े हों या बहुत हों अर्थात् सरस अन्नादि थोड़ा हो और नीरस आहार बहुत हो तो मुधाजीवी-अर्थात् समययात्राके निर्वाहके लिए जीवन धारण करनेवाला, अथवा निर्दोष अर्थात् जाति-आदिको न प्रगट करके भिक्षा लेनेवाला साधु उस आहारकी अवहेलना न करे । तात्पर्य यह है कि-सरस आहार कम मिले तो ऐसा न कहे कि-'इतने थोड़े आहारसे उदरपूर्त्ति कैसे होगी ।' नीरस आहार अधिक मिले तो ऐसा न कहे कि-'इस बहुतेरे व्यर्थ आहारसे क्या लाभ ?' इस प्रकार आहारकी निन्दा न करे, किन्तु आहारके सयोजना आदि मण्डल दोषोंको टाल कर भोगे ।

अथवा कण्ठी या अडहना जाकणानुं लोञ्जन, ये सर्वं जे शास्त्रोक्त विधिधी प्राप्त थया होय, प्राप्तुक होय, मन्त्र तत्र आदिने प्रयोग कर्था बिना मज्या होय, थोडा होय या वधारे होय, अर्थात् सरस अन्नादि थोडु होय अने नीरस आहार वधारे होय, तो मुधाजीवी-अर्थात् समययात्राना निर्वाडिने भाटे एवम धारणु करनारे अथवा निर्दोष अर्थात् जाति आदिने प्रकट कर्था बिना भिक्षा लेनारे साधु जे आहारनी अवहेलना करे नहि, तात्पर्य जे छे डे-सरस आहार ओओ भणे तो जेम न कडे डे 'आटला थोडा आहारथी उदरपूर्त्ति केवी रीते थये ?' नीरस आहार वधारे भणे तो जेम न कडे डे 'आ धणु गधा व्यर्थ आहा रथी थो लाभ ?' जे प्रभाजे आहारनी निन्दा न करे, परन्तु आहारना सये जना आदि मडव होयेने टाणीने भोगये

छाया—अरस विरस राऽपि, सूचित वा असूचितम् ।

आर्द्रं वा यदि वा शुष्क, मन्थु-कुलमाप-भोजनम् ॥९८॥

उत्पन्न नातिहीलयेत्, अल्प वा बहु प्रासृकम् ।

मुधालध मुधाजीरी, भुञ्जीत दोषवर्जितम् ॥९९॥

सान्त्वयार्थः—अरस=नमक आदि रसरहित वाचि=तथा विरस=अधिक दिनोंकी बनी हुई विरस=वासी-मुखी-रोटी आदि या पुराने चॉत्रल आदिका भोजन सूह्य=हींग आदिका बघार (छोक) दिया हुआ वा=अथवा असूह्य= नहीं बघार दिया हुआ शाक आदि उह्ल=गीला करवा, राइता आदि वा=तथा सुह्य=सूखा-भुने हुए चने भूगडे-आदि जहवा=अथवा मयुकुम्मासभोजण=वेरके चूरेका भोजन या कुलथीका भोजन अथवा उड़दका बाकूला (यह पूर्वोक्त सब प्रकारका अशनादि) उप्पण=जो गोचरीके समय शास्त्रमर्यादासे मिल गया वह अप्प=थोड़ा हो वा=या बहु=बहुत हो उसकी नाइहीलिज्जा=अवहेलना न करे, किन्तु फासुय=प्रासृक-अचित्त और मुहालद्ध=निष्काम-विना किसी प्रत्युपकारके प्राप्त हुए-उस अशनादिको मुहाजीवी=निष्काम-सिर्फ समय यात्राका निर्वाहसे जीनेवाला अर्थात् निरपेक्ष भिक्षा लेनेवाला साधु दोसवज्जिघ=भोजनके संयोजनादि दोषोको टालकर भुजिज्जा=भोगवे ॥९८॥९९॥

टीका—‘अरस’ इत्यादि, ‘उप्पण’ इत्यादि च । अरस=लवणादिरसरहितम्, अप्राप्तरस बालचणकादिनिष्पादित वा, अपिवा विरस=चिरकालनिष्पादितत्वेन विगतसरस, पुराणौदनादिक वा, सूचित=हिङ्गवादिस्फुट वा=अथवा असूचित= तद्वर्जितम्, आर्द्र=करम्भादिक, शुष्क=भर्जितचणकादिकम् । मन्थुकुलमापभोजन= मन्थुश्च कुलमापश्चाऽनयो. समाहारे मन्थुकुलमाप, तद्, भुज्यते यत्तद्भोजन, मन्थुकु लमाप च तद्भोजन चेति विग्रहः, तत्र मन्थु.=वदरचूर्णादिकम्, कुलमापः=कुलथः,

‘अरस’ इत्यादि, ‘उप्पण’ इत्यादि च । नमकरहित तथा बाल चणक आदि अरस या बहुत पुराना ओदन आदि विरस, हींग आदि द्वारा छोंका हुआ या न छोंका हुआ, गीला करवा आदि, सूखे भुने हुए चने आदि, वेरका चूर्ण आदि, अथवा कुलथी या उड़दके बाकूलाका

अरस इत्यादि, तथा उप्पण० इत्यादि भीहाथी रहित तथा बालचणका आदि अरस या गहुं गूने। ओदन-आदि विरस, हींग आदिथी बघारेलु या न बघारेलु, लीला करणे आदि, सूख-भूजेला अथवा आदि, गोरनु शूर्ण आदि





शास्त्रमर्यादयैव गीतार्थेनान्नादि ग्राणमिति सूचितम् । 'फासुय' अनेन सचित्तमचित्त वेति परीक्ष्य ग्रहीतव्यमिति दर्शितम् । 'मुहालद्ध' इतिपदेन दातुरुपकार विधाय भिक्षाग्रहणे आधाकर्मादयो षड्यो दोषाः समापतन्तीति तथा नोपादेयमिति प्रकटितम् । 'दोसवज्जिय' इतिपदेन निर्दोषभिक्षामाप्तायपि मण्डलदोषवत्त्वेन सदोपत्व दुर्निवारमिति मण्डलदोषरहित भोक्तव्यमिति प्रादुष्टम् ॥९८॥९९॥

मूलम्-दुल्लहाओ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा ।

मुहादाई मुहाजीवी, दोवि गच्छंति सुग्गइ ॥१००॥

॥ तिवेमि ॥

छाया—दुर्लभा मुधादातारः, मुधाजीपिनोऽपि दुर्लभाः ।

मुधादातारः मुधाजीविनः, द्वावपि गच्छतः सुगतिम् ॥१००॥

इति ब्रवीमि ॥

सान्त्वयार्थः—मुहादाई=निष्काम-प्रत्युपकारकी आशा न रखकर-देनेवाले दुल्लहाओ=दुर्लभ हैं और मुहाजीवीवि=निष्काम-दाताके कार्यकी अपेक्षा न

'उप्पन्न' पदसे यह सूचित किया है कि गीतार्थ साधुको शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार ही आहार ग्रहण करना चाहिए । 'फासुय' पदसे सचित्त-अचित्तकी परीक्षा करके ग्रहण करना द्योतित किया है । 'मुहालद्ध' पदसे यह दर्शाया है कि दाताका उपकार करके भिक्षा ग्रहण करनेसे आधाकर्म आदि बहुतसे दोष आते हैं, अतः ऐसी भिक्षा नहीं लेनी चाहिए । 'दोसवज्जिय' पदसे यह प्रगट किया है कि निर्दोष भिक्षा उपलब्ध होजाने पर भी मण्डल दोष लगनेसे वह भिक्षा अवश्य दूषित होजाती है, इसलिए उनका परिहार करके ही आहार करना चाहिए ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

उप्पन्न शब्दकी अर्थ सूचित करवाभा आण्यु छे के गीतार्थ साधुके शास्त्रनी मर्यादाने अनुसार न आहार अल्लु करवे जेधुके फासुय शब्दकी सचित्त अचित्तनी परीक्षा करीने अल्लु करवानु कहेवाभा आण्यु छे मुहालद्ध शब्दकी अर्थ दर्शाववाभा आण्यु छे के दाताने उपकार करीने भिक्षा अल्लु करवाथी आधाकर्म आदि धणु होये लागे छे, तेथी अर्थी भिक्षा न लेवी जेधुके दोसवज्जिय शब्दकी अर्थ जलतववाभा आण्यु छे के निर्दोष भिक्षा उपलब्ध वता पणु मउठ होय लागवाथी अर्थ भिक्षा अवश्य दूषित थु जय छे, तेथी अर्थी उनका परिहार करीने न आहार करवे जेधुके (६८-६९)

निष्पादित शीतमुष्ण वाऽन्नम्, अम्लतक्रपाचित खल्वचणरुचूर्णनिष्पादित शीतमुष्ण वा शाकविशेषादिक, पर्युपिततक्रादिरूप पान च, तेपाममनोज्ञगन्धवत्त्वादिति भावः। सुगन्ध=सुरभिगन्धयुक्त वा घृतपूरपायसादि तस्यैलालवद्गकेसरकर्पूरादिमनोज्ञगन्धवत्त्वादिति भावः। सर्य=मनोज्ञामनोज्ञरूपं सकल भुञ्जीत न तु मुञ्चेत्=परित्यजेत्-नावशेषयेदिति भावः ॥ १ ॥

<sup>१</sup> मूलम्-<sup>२</sup>सेज्जा <sup>४</sup>निसीहियाए, <sup>५</sup>समावन्नो <sup>६</sup>य <sup>३</sup>गोयरे ।

<sup>९</sup>अयावयद्वा <sup>७</sup>भुञ्चाणं, <sup>८</sup>जइ <sup>९</sup>तेण <sup>१०</sup>न <sup>११</sup>सथरे ॥ २ ॥

<sup>१२</sup>तओ <sup>१३</sup>कारणमुप्पण्णे, <sup>१४</sup>भत्तपाण <sup>१५</sup>गवेसए ।

<sup>१६</sup>विहिणा <sup>१७</sup>पुव्वउत्तेण <sup>१८</sup>इमेणं <sup>१९</sup>उत्तरेण <sup>२०</sup>य ॥ ३ ॥

छाया—शय्याया नैषेधिक्या, समापन्नश्च गोचरे ।

अयावदर्थं भुक्त्वा, यदि तेन न सस्तरेत् ॥ २ ॥

ततः कारणे उत्पन्ने, भक्त-पान गवेपयेत् ।

विधिना पूर्वोक्तेन, अनेन उत्तरेण च ॥ ३ ॥

सान्वयार्थः—सेज्जा=वसति-उपाश्रय-में निसीहियाए=आहार करनेके स्थान पर य=अथवा गोयरे=भिक्षाचरीमें समावन्नो=प्राप्त हुआ मुनि अयावयद्वा=जरूरीसे कम अर्थात् थोड़ा भुञ्चाण=खाकर-खालेनेपर जइ=यदि-अगर तेण=उस अज्ञानादिमे न सथरे=न सरे अर्थात् समययात्राका निर्वाहके लिए पर्याप्त-पूरा न हो तओ=तो कारण=क्षुधा वेदनीयकी शान्ति न होनेरूप कारण के उत्पन्ने=उत्पन्न होनेपर साधु पुव्वउत्तेण=पूर्वोक्त-“सपत्ते भिक्खकालम्मि”

खट्टी छाछकी बनी-हुई ठही या गर्म कही आदि शाक, पर्युपित (वासी) खट्टी छाछ आदि पान, ये अमनोज्ञ गन्धवाले होते हैं। और घेवर पायस आदि, एलची लवग केसर आदिके मिश्रित होनेसे मनोज्ञ गन्धवाले होते हैं, इन सबको समभावसे भोगवे ॥१॥

यथा आदिनी गनावेली ठही या गरम शेटली आदि अन्न, भाटी छाशनी अनेली ठही या गरम कही आदि शाक, पर्युपित भाटी छाश आदि पान, ये अथा अमनोज्ञ गन्धवाणा होय छे अन्न घेवर, पायस (दूधपाक) आदि, अनेली, लवीग केसर आदिथो मिश्रित होछने मनोज्ञ गन्धवाणा होय छे, ये अधाने समभावे भोगवे (१)

॥ अथ पञ्चामाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ॥

मयमोद्देशकथितपिण्डैषणाया अवशिष्टविधिमाह—‘पडिग्गह’ इत्यादि ।

मूलम्-<sup>१</sup>पडिग्गह<sup>३</sup> संलिह्त्ताणं<sup>१</sup>, लेवमायाइ<sup>४</sup> सजए ।

<sup>५</sup>दुगंध वा<sup>६</sup> सुगंध वा, सव्व भुंजे न छडुए ॥ १ ॥

छाया—प्रतिग्रह सल्लिह, लेपमर्यादया सयतः ।

दुर्गन्ध वा सुगन्ध वा, सर्वं भुञ्जीत न मुञ्चेत् ॥ १ ॥

सान्त्वयार्थः—पडिग्गह=पात्रको लेवमायाए=लेपकी मर्यादासे अर्थात् जब तक छाल आदिका लेप लगा रहे तब तक सल्लिहत्ताण=अगुलीसे पोंछकर सजए=साधु दुगंध वा=अनिष्ट गन्धवाला हो चाहे सुगंध वा=सुरभि गन्धवाला पदार्थ हो उस सव्व=सबको भुजे=भोगवे; किन्तु न छडुए=कुठभी न छोड़े जूठन न डाले ॥१॥

टीका—प्रतिग्रह=पात्र लेपमर्यादया=लेप मर्यादीकृत्य यथा लेपसम्बन्धः पात्रे नावतिष्ठेत तथा सल्लिह पात्रस्थ तक्रादिलेपमद्गुल्यादिना निश्शेष प्रोठ्ठय सयतः=मुनि, दुर्गन्धम्=अनिष्टगन्धयुक्त पुरातनगोधूमवर्जरिकावल्लवणकादि

। पांचवों अध्ययनका दूसरा उद्देश ।

प्रथम उद्देशमे कही हुई विधिके अतिरिक्त-अवशिष्ट पिण्डैषणाकी विधि इस दूसरे उद्देशमे कहते हैं—‘पडिग्गह’ इत्यादि ।

आहार करनेके पात्रमे जो लेप लगा रह जाय उसे अगुली—आदि द्वारा पोंछकर मुनि अमनोज्ञ गन्ध या मनोज्ञ गन्धवाले समस्त अन्न पानको भोगे, उसे छोड़े नहीं, अर्थात् सीध मात्र भी जूठा न डाले । पुराने गेहूँ, बाजरे, बाल, चने आदिकी बनी हुई ठंडी या गर्म रोटी आदि अन्न,

अध्ययन पात्रसु—उद्देश थीने

प्रथम उद्देशमा छोडेली विधि उपरात अवशिष्ट पिण्डैषणानी विधि आ थीने उद्देशमा छोड़े छे—पडिग्गह इत्यादि

आहार करवामा पात्रमा जे लेप लागेवो रही जाय, तेने आगणी आदि वडे लूछीने मुनि अमनोज्ञ गंध या मनोज्ञ गंधवाला अथवा अन्न पानने लोगवे, तेने छोड़े नहि, अर्थात् जरा पखु जाडी न राखे नूना घडे, पान्दरी, बाल,

तमेव विधिमुपदर्शयन् कालयतनामाह- 'कालेण' इत्यादि ।

मृत्म्-कालेण<sup>२</sup> णिक्खमे<sup>३</sup> भिक्खू<sup>१</sup>, कालेण<sup>४</sup> य<sup>५</sup> पडिक्खमे<sup>६</sup> ।

अकाल<sup>७</sup> च<sup>८</sup> विवज्जिता<sup>९</sup>, काले<sup>१०</sup> काल<sup>११</sup> समाचरे<sup>१२</sup> ॥ ४ ॥

छाया-कालेन निष्क्रामेद् भिक्षुः, कालेन च प्रतिक्रामेत् ।

अकाल च विवर्ज्य, काले काल समाचरेत् ॥ ४ ॥

अथ भिक्षा लेने की विधि बताते हैं—

सान्वयाथः-भिक्खू=पुधाजीवी मुनि कालेण=गोचरीके समयसे-जिस देशमें जो समय भोजनका हो उस समयके होनेसे णिक्खमे=भिक्षाके लिए जावे, य= और कालेण=समयसे ही-वापस आनेका उचित समय हो जानेसे पडिक्खमे= वापस लौट आवे, च=और अकाल=भिक्षाके अनुचित समयको विवज्जिता= छोड़कर काले=उचित समयमें काल=भिक्षादिक समाचरे=आचरे-गोचरीके लिए घूमे ॥ ४ ॥

टीका-भिक्खुः=पुधाजीवी मुनिः कालेन=भिक्षोचितसमयेन यस्मिन् देशे यो गृहस्थाना भोजनसमय स एव भिक्षुणा भिक्षामालस्तेनेत्यर्थः निष्क्रामेत्=निर्गच्छेत्, भिक्षायै इति शेषः, कालेनैव=प्रत्यागमनोचितसमयेनैव, यथा स्वाध्याय-प्रतिबन्धो न भवेत् तथा भिक्षा गतस्य साधोः परावर्त्तनसमयो निर्दिष्टस्तेनैवेति भावः । (करणे सहार्थे वा तृतीया) । 'चकारोऽत्र 'एव'-कारार्थकः' प्रतिक्रामेत्=प्रत्यागच्छेत् । अकाल=भिक्षानुचितसमय विवर्ज्य=परित्यज्य काले=भिक्षोचितवेलाया काल=लक्षणया तत्कालोचितकृत्य भिक्षादिक समाचरेत्=भिक्षार्थ

उसी विधिको दिखाते हुए कालकी यतना कहते हैं-'कालेण' इत्यादि ।

जिस देशमें गृहस्थोंके भोजनका जो समय हो वही समय भिक्षुको भिक्षाके लिए उचित है, अत एव भिक्षाके लिए उसी समय जाना चाहिए और गोचरीके लिए गये हुए साधुको ऐसे उचित समय पर लौट आना चाहिए, जिससे स्वाध्याय आदि क्रियाओंमें अन्तर्गमन पड़े ।

ये विधिने बतावता काण्णी यत ॥ ४६ ॥ -कालेण० इत्यादि

ने देशमा गृहस्थाना भोजनने ने समय होय ते समय भिक्षाने भाटे उचित छे, तेथी भिक्षाने भाटे ते समये व्युत्पन्ने अने गोचरीने भाटे गयेला साधुने अथवा उचित समये पाछा धरवुत्पन्ने उ नेथी स्वाध्याय आदि क्रियाओंमा अन्तर्गमन पडे तथा ने समय भिक्षाने

इत्यादिरूप विधिसे य=तथा इमेण=इस उच्चारेण=आगे कहे जानेवाली-“कालेण गिक्खमे भिक्खू” इत्यादिरूप विधिसे भक्तपाण=आहार-पानी गवेसण=गवेषे अर्थात् भिक्षा लेनेके लिए जावे ॥२॥३॥

टीका—‘सेज्जा’ इत्यादि, ‘तओ’ इत्यादि च। शय्याया=वसती, नैपेधिक्या= निपदनस्थाने स्वाध्यायभूमिकायामित्यर्थः, गोचरे=भिक्षाचर्याया च=त्रा समा पन्न =सम्प्राप्तो मुनि, उपलब्धमन्नादिकम् अयादर्थम्=अपरिसमाप्तम् अल्प= क्षुधोपशमनानर्हमित्यर्थः समयनिर्वाहार्थं यायताऽच्चादिकेन भाव्य तावन्नेति यावत्, भुक्त्वा यदि तेन भोजनेन न सस्तरेतु=सयमयात्रा निर्बोद्धु न शक्नुयात् ।२।

तत =तदनन्तर कारणे=प्रयोजने आर्पत्यात्सप्तम्यर्थे प्रथमा, उत्पन्ने सति= क्षुधावेदनोपशमनाभावे पूर्वोक्तेन=“ सपत्ते भिक्खकालम्मि ” इत्यादिरूपेण अनेन उत्तरेण=“ कालेण गिक्खमे भिक्खू० ” इत्यादिवक्ष्यमाणलक्षणेन विधिना=प्रकारेण भक्तपाण गवेपयेत्=अन्वेपयेत् पुनर्भिक्षार्थं गच्छेदिति सूत्रार्थ ॥३॥

‘सेज्जा’ इत्यादि, ‘तओ’ इत्यादि । उपाश्रयमें बैठनेके स्थानमें अर्थात् स्वाध्याय भूमिमें तथा गोचरीमें गए हुए मुनिको अल्प, अर्थात् क्षुधाकी शान्ति न हो सकने योग्य अन्न आदिमिला हो और उससे सयमयात्राका निर्वाह न हो सके, अर्थात् लाया हुआ आहार पर्याप्त नहीं तो ऐसा कारण उत्पन्न होने पर, अर्थात् क्षुधावेदनीयके शान्त न होने पर “सपत्ते भिक्खकालम्मि” इत्यादि पूर्वोक्त विधिसे, तथा “कालेण गिक्खमे भिक्खू” इस गाथासे प्रारम्भ करके आगे बताई जानेवाली विधिसे भक्त पानकी गवेपणा करे, अर्थात् भिक्षाके लिए फिर गमन करे ॥ २ ॥ ३ ॥

सेज्जा० इत्यादि, तथा तओ० इत्यादि उपाश्रयमा गेसवाना स्थानमा अर्थात् स्वाध्यायभूमिमा तथा गोचरीमा गच्छेत्ता मुनिने अल्प अर्थात् क्षुधानी शान्ति न थई शकै अर्थात् लावेला आहार पूरता न होय, तो अल्प कारण उत्पन्न थता अर्थात् क्षुधावेदनीय शान्त न थवाने कीधे सपत्ते भिक्खकालम्मि इत्यादि पूर्वोक्त विधिथी, तथा कालेण गिक्खमे भिक्खू अे गाथाथी प्रारम्भ करीने आगण षताववाभा आवनारी विधिथी लक्त पाननी गवेपण्ठा करे अर्थात् भिक्षाने भाटे इरीथी गमन करे (२-३)

पडिलेहिंसी=नहीं देखते, अतः अप्पाण=आत्माको किलामेसि=किलामना-  
खेद-पहुचाते हो च=और सनिवेश=गामकी गरिहसि=निन्दा करते हो ।  
तात्पर्य यह हुआ कि गोचरीका समय हुए बिना घूमनेसे साधु भगवानकी  
आज्ञाका विराधक होता है, और दीनता प्रगट करनेके कारण उसके चारित्र्यमें  
मलिनता होती है; अतः जिस देशमें जो भिक्षाका समय हो उसी समयमें साधुको  
भिक्षाके लिए जाना चाहिये ॥५॥

टीका—हे भिक्षो ! त्वम् अकाले=असमये चरसि=भिक्षार्थं गच्छसि किन्तु  
काल=भिक्षोचितसमय न प्रत्युपेक्षसे=नाद्रियसे, तेन च हेतुनाऽऽत्मानं क्लमयसि=  
पीडयसि भिक्षालाभाभावेन भ्रमणाधिक्येन चेति भाव । सनिवेश=ग्राम च पुनः  
गर्हसे=निन्दसि । भगवदाज्ञाविराधकत्वेन दैन्यप्रकाशनेन च चारित्र्यमालिन्यं  
जायते, ततोऽनुचितकाले भिक्षार्थं न गन्तव्यमिति ॥ ५ ॥

<sup>३</sup> मूलम्-<sup>२</sup>सङ्काले<sup>४</sup> चरे<sup>१</sup> भिक्षुः, <sup>६</sup>कुञ्जा<sup>५</sup> पुरिसकारिय ।

<sup>७</sup> अलाभु-<sup>८</sup>त्ति न<sup>९</sup> सोइज्जा, <sup>१०</sup>तवु-<sup>११</sup>त्ति अहियासए ॥ ६ ॥

छाया—सति काले चरेद् भिक्षुः, कुर्यात्पुरुषकारम् ।

अलाभ इति न शौचेत्, तप इति अधिपहेत ॥ ६ ॥

सान्त्वयार्थः—भिक्षुः=साधुको काले=भिक्षाका समय सङ्काले=होनेपर चरे=  
गोचरीके लिए घूमना चाहिए और पुरिसकारिय=उत्साह पूर्वक घूमनेरूप

हे भिक्षु ! आप असमयमें भिक्षाके लिए जाते हैं, समयका खयाल  
नहीं रखते। इसी कारण अधिक भ्रमण करनेसे या भिक्षाके न मिलनेसे  
तुम अपनी आत्माको पीडित करते हो, और ग्राम नगरकी निन्दा  
करते हो। अकालमें भिक्षाके लिये गमनरूप भगवानकी आज्ञाकी  
विराधना करनेसे तथा दीनता प्रगट करनेसे चारित्र्यमें मलिनता आती है  
इसलिए अनुचित समयमें भिक्षाके लिए नहीं जाना चाहिए ॥५॥

हे भिक्षु ! आप असमयमें भिक्षाके लिए जाते हैं, समयका खयाल  
रखना नहीं और काले वधारे इरवाथी या भिक्षा न भगवानकी तम तमारा  
आत्माने पीडित करे छे अने ग्राम नगरकी निन्दा करे छे अत्राणे भिक्षाके  
भाटे जवाड्पी भगवानकी आज्ञानी विराधना इरवाथी तथा दीनता प्रगट इरवाथी  
आरित्र्यमा मलिनता आवे छे, तेथी अनुचित समयमें भिक्षाके लिए जाते जवु न  
जेथे ( ५ )

क्रामेदित्यर्थः । बहुशः कालशब्दोपादान 'मृनीना यथाकालमेव सकल कृत्यं निश्रेय'-मिति धनयति ॥ ४ ॥

अकालचारित्वेनाऽत्र प्रभिक्षो भिक्षुः केनचित्साधुना "भोः ! भिक्षा त्वया लब्धा न मा" इति पृष्टो यदति-"कृतोऽत्र मितम्पचाना हीनदीनाना ग्रामे भिक्षालाभः?" तदाऽसौ अकालचारिण कथयति-"अकाले" इत्यादि ।

मूलम्-अकाले चरिसी भिक्खू, काल न पडिलेहिसि ।

अप्पाणं च किलामेसि, सन्निवेश च गरिहसि ॥ ५ ॥

छाया—अकाले चरसि भिक्षो !, काल न प्रत्युपेक्षसे ।

आत्मान च क्लमयसि, सन्निवेश च गर्हसे ॥ ५ ॥

अकालचारी होने के कारण भिक्षा नहीं मिलने पर असन्तुष्ट हुए साधुको कालचारी साधु पूछता है—हे साधु! आपको भिक्षा मिली कि नहीं?, तब वह कहता है—इस कजूसों के गाम में भिक्षा कहाँ पड़ी है। इस पर वह कालचारी साधु उससे कहता है—

सान्वयार्थः—भिक्खू=हे भिक्षु! आप अकाले=असमयमें भिक्षाका समयन होनेपर ही चरिसी=गोचरी फिरते हो, च=और काल=गोचरीका समय न

तथा जो समय भिक्षाके लिए उचित न हो उसका परिहार करके द्रव्य क्षेत्र काल भावसे उचित समय पर ही भिक्षाके लिए जाना चाहिए । गाथामें बहुत चार काल शब्दका प्रयोग करनेसे यह आशय प्रगट होता है कि—साधुओंको प्रत्येक क्रिया उचित समय पर ही करनी चाहिए ॥ ४ ॥

कोई साधु असमयमें भिक्षाके लिए जानेवाले दूसरे साधुसे पूछा गया कि—'हे भिक्षु ! तुम्हें भिक्षाका लाभ हुआ या नहीं?' तब उसने कहा—'इन काल कजूसोंके गाँवमें भिक्षा कहाँ प्राप्त होसकनी है?' तब वह अकालमे गोचरी करनेवालेकेप्रति कहता है—'अकाले' इत्यादि ।

भाटे उचित न होय तेना परिहार करीने द्रव्य क्षेत्र काण भावथी उचित समये न भिक्षाने भाटे ननु नेधये गाथामा धर्मीवार काल शब्दने प्रयोग करवाथी ये आशय प्रकट थाय छे ते-साधुओये प्रत्येक क्रिया उचित समये न करनी नेधये (४)

कैठ साधु असमयमा भिक्षाने भाटे ननारा थीन साधुने पूछथु के- 'हे भिक्षु ! तमने भिक्षाने लाभ थये के नहि?' त्यारे तेछे कहु 'आ क गाल क नुसोना गाममा भिक्षा क्याथी प्राप्त थर्थ थके?' त्यारे ये अकाले गोचरी करनारा साधु प्रत्ये कडे छे-अकाले० इत्यादि

क्षेत्रयतनामाह—‘तहेवु०’ इत्यादि ।

मूलम्—तहेवुञ्चावया पाणा, भक्तद्वाए समागया ।

त उज्जुयं न गच्छिञ्जा, जयमेव परक्रमे ॥ ७ ॥

छाया—तथैवोच्चावचाः प्राणाः, भक्तार्थं समागताः ।

तेपाम् ऋजुः न गच्छेत्, यतमेव पराक्रामेत् ॥ ७ ॥

सान्त्वयार्थः—तहेव=उसीप्रकार उच्चावचा=उच्च जातिके हसादिक अवच-नीच जातिके कोए आदि पाणा=प्राणी (यदि) भक्तद्वाए=चुगा-पानीके लिए समा गया=आये हो-इकडे हुए हो तो त उज्जुय=उन प्राणियोंके सामने न गच्छिञ्जा=नही जावे, (किन्तु) जयमेव=यतनापूर्वक ही आसपाससे अथवा अन्य मार्गसे अर्थात् जिस तरह उन प्राणियोंको किसी प्रकारका त्रास न पहुँचे उसीतरह परक्रमे=जावे ॥७॥

टीका—तथैव=तद्वत् उच्चावचाः=तत्र उदञ्चः=उच्चजातीया हसादयः, अवाञ्चः=नीचजातीयाः कारुप्रभृतयः, यद्वा उच्चावचाः=अनेकविधाः, “उच्चावच नैकभेद”-मित्यमरात्, प्राणा =प्राणिनः भक्तार्थम्=अन्न-पानार्थं मार्गादौ समागताः=समायाता भवन्ति चेत् ‘त’-तेपाम्, आर्पत्वात् पण्ठीऽहुत्वे प्रथमैरुवचनम्, ऋजुः=समुख न गच्छेत्, तेपामन्नपानान्तरायादिप्रचुरदोषापातात् । तर्हि किं कुर्यात् ? यतमेव=सयतनमेव=यथा तेपा सत्रासो न भवेत्तथा पराक्रामेत्=चरेत् अन्यमार्गेण

अथ क्षेत्रकी यतना हैं—‘तहेवु०’ इत्यादि ।

हस-आदि उच्च-जातीय और काक-आदि नीच-जातीय प्राणी यदि भोजन पानके लिए रास्तेमें आये हों तो उनके सामने न जावें । सामने जानेसे उनके चुगे-पानीमें विष पड जानेके कारण भक्त पानकी अन्तराय आदि अनेक दोष लगते हैं, अतः यतना-पूर्वक, अर्थात् जिससे वे भयभीत न हों उस प्रकार दूसरे मार्गसे या एक किनारेसे गमन करें ।

इये क्षेत्रकी यतना कडे छे—तहेवु० इत्यादि

इस-आदि उच्च-जातीय अनेक जातों-आदि नीच जातीय प्राणी जो भोजन-पानने आटे रस्तामा आवेला होय तो तेनी सामे न जयु सामे जवाथी तेमने पाणी पीवा अणुवा वगेरेमा निध्न पडवाथी भक्त पाननी अन्तराय आदि अनेक दोषो लागे छे अेटवे यतनापूर्वक अर्थात् जो शीते तेओ लयलीत न थाय ओ शीते भीजे मार्गे या ओक जाणुओथी गमन करतु तात्पर्य ओ छे के



पुरुषार्थ भी कुञ्जा=करना चाहिये, और भिक्षा न मिलनेपर वह अलाभु=आज मुझे भिक्षा नहीं मिली त्ति=इस प्रकार न सोइञ्जा=सोच न करे, किन्तु तबु=आज मेरे अनशन ऊनोदरी आदि तप हुआ है त्ति=इस प्रकार सोचकर अहियासप=क्षुधा परीपहको सहन करे-सन्तुष्ट रहे। तात्पर्य यह है कि-साधु ओको सिर्फ भिक्षाके ही लिए गोचरीमें घुमना नहीं है किन्तु वीर्याचारके लिए भी भगवान्ने गोचरीमें घुमना कहा है ॥६॥

टीका—‘सइ’ इत्यादि। भिक्षुः काले=भिक्षोचितसमये प्राप्ते सति, यद्वा ‘सइकाले’ इत्यस्य ‘स्मृतिकाले’ इतिच्छाया तत्र स्मर्यन्ते साधवो दातृभिर्दानार्थं यस्मिन् समये तस्मिन्नित्यर्थ, चरेत्=भिक्षार्थं गच्छेत्। पुरुषकार=पराक्रमम् उत्साहपूर्वकभिक्षार्थभ्रमणलक्षण कुर्यात्=विदयात्। रुदाचिदलाभे सति अलाभ=अथ भिक्षालाभो न सजात इति न शोचेत्=न परितपेत्, किन्तु तपः=अत्र मेऽनशनावमौदरिकादिरूप तप’ सम्पन्नमिति कृत्वा अधिपहेतु=सन्तुष्येत्। भिक्षाया अलाभेऽपि वीर्यचारो मया सम्यगाराधित’, यतो न केवलमन्नायर्थमेव भिक्षा चरण भिक्षुणा, किन्तु वीर्याचारार्थमपि भगवता समादिष्टमिति भावार्थः ॥ ६ ॥

‘सइ काले’ इत्यादि। भिक्षु उचित समय प्राप्त होनेपर ही भिक्षाके लिए जावे। उत्साहपूर्वक भिक्षार्थ भ्रमणरूप पुरुषार्थ करे। कभी भिक्षाका लाभ न हो तो ऐसा सोच न करे कि-‘आज मुझे भिक्षा नहीं मिली,’ किन्तु ऐसा विचार करके सन्तुष्ट रहे कि-आज भिक्षा न मिली तो सहज ही मेरे अनशन आदि तप होगया, अर्थात् भिक्षाका लाभ न होनेपर भी मैंने भली भाँति वीर्याचारका आराधन किया है। साधु केवल अन्नादिककी प्राप्तिके लिए भिक्षाचरी नहीं करते किन्तु वीर्याचारकी आराधनाके लिए भी भिक्षाचरीमें जाना भगवान्ने बताया है ॥६॥

सइ काले० इत्यादि भिक्षु उचित समय यत्ना न भिक्षाने माटे नथ उत्साहपूर्वक भिक्षार्थ भ्रमणरूप पुरुषार्थ करे केवलवार भिक्षाने लाभ न थाय तो अथेवा विचार न करे क ‘आज भने भिक्षा न भणी’ परतु अथेवा विचार करीने सन्तुष्ट रहे के-‘आज भिक्षा न भणी तो सडेके भारार्थी अनशन आदि तप थइ गथु अर्थात् भिक्षाने लाभ न थाथी पथु मे लदीपडे वीर्याचारनु आराधन कथुं छे’ साधु केवल अन्नादिनी प्राप्तिने माटे न भिक्षा चरी करता नथी, किन्तु वीर्याचारनी आराधनाने माटे पथु भिक्षाचरीमा नथु भगवाने गताथु छे (६)

क्षेत्रयतनामाह—<sup>१</sup>‘तहेवु<sup>२</sup>०’<sup>३</sup> इत्यादि।<sup>४</sup>

मूलम्—<sup>५</sup>तहेवु<sup>६</sup>च्चावया<sup>७</sup> पाणा<sup>८</sup>, भक्त<sup>९</sup>ट्टाए<sup>१०</sup> समागया<sup>११</sup> ।

त उज्जुयं न गच्छिज्जा, जयमेव परक्कमे ॥ ७ ॥

छाया—तथैवोच्चावचाः प्राणाः, भक्तार्थं समागताः ।

तेपाम्त्रज्जुरु न गच्छेत्, यतमेव पराक्रामेत् ॥ ७ ॥

सान्त्वयार्थः—तहेव=उसीप्रकार उच्चावचा=उच्च जातिके हसादिक अवच-नीच जातिके कौए आदि पाणा=प्राणी (यदि) भक्तट्टाए=चुगा-पानीके लिए समागया=आये हो-इरुडे हुए हो तो त उज्जुय=उन प्राणियोंके सामने न गच्छिज्जा=नहीं जावे, (किन्तु) जयमेव=यतनापूर्वक ही आसपाससे अथवा अन्य मार्गसे अर्थात् जिस तरह उन प्राणियोंको किसी प्रकारका त्रास न पहुँचे उसीतरह परक्कमे=जावे ॥७॥

टीका—तथैव=तद्वत् उच्चावचाः=तत्र उदञ्चः=उच्चजातीया हसादयः, अवाञ्चः=नीचजातीया क्लृप्तभृतय, यद्वा उच्चावचाः=अनेकविधा, “उच्चावच नैकभेद”-मित्यमरात्, प्राणा =प्राणिन भक्तार्थम्=अन्न-पानार्थ मार्गादौ समागताः=समायाता भवन्ति चेत् ‘त’-तेपाम्, आर्पत्वात् पष्ठीरहुत्वे प्रथमैकवचनम्, ऋजुरु=समृख न गच्छेत्, तेपामन्नपानान्तरायादिप्रचुरदोषापातात् । तर्हि किं कुर्यात् ? यतमेव=सयतनमेव=यथा तेपा सत्रासो न भवेत्तथा पराक्रामेत्=चरेत् अन्यमार्गेण

अथ क्षेत्रकी यतना हैं—‘तहेवु० इत्यादि ।

हस-आदि उच्च-जातीय और काक-आदि नीच-जातीय प्राणी यदि भोजन पानके लिए रास्तेमें आये हो तो उनके सामने न जावें । सामने जानेसे उनके चुगे पानीमें विघ्न पड जानेके कारण भक्त-पानकी अन्तराय आदि अनेक दोष लगते हैं, अत यतना-पूर्वक, अर्थात् जिससे वे भयभीत न हों उस प्रकार दूसरे मार्गसे या एक किनारेसे गमन करें ।

इवे क्षेत्रनी यतना कडे छे—तहेवु० इत्यादि

इस-आदि उच्च-जातीय अने कगडो-आदि नीच जातीय प्राणी जे

भोजन-पानने माटे रस्तामा आवेला छे।य तो तेनी सामे न जवु सामे जवाथी तेभने पाणी पीवा यजुवा वगेरेमा विघ्न पडवाथी लक्षत पानना अतराय आदि अनेक दोषो लागे छे अेटले यतनापूर्वक अर्थात् जे रीते तेयो भयभीत न थय जे रीते थीजे मार्गे या जेक गाजुजेथी गमन करवु तात्पर्य जे छे के

पुरुषार्थ भी कुञ्जा=करना चाहिये, और भिक्षा न मिलनेपर वह अलाभु=आज मुझे भिक्षा नहीं मिली त्ति=इस प्रकार न सोहज्जा=सोच न करे, किन्तु तजु=आज मेरे अनशन ऊनोदरी आदि तप हुआ है त्ति=इस प्रकार सोचकर अहियासण=क्षुधा परीपहमो सहन करे-सन्तुष्ट रहे। तात्पर्य यह है कि-साधु ओको सिर्फ भिक्षाके ही लिए गोचरीमें घुमना नहीं है किन्तु वीर्याचारके लिए भी भगवान् ने गोचरीमें घुमना कहा है ॥६॥

टीका—‘सह’ इत्यादि। भिक्षुः काले=भिक्षोचितसमये प्राप्ते सति, यद्वा ‘सहकाले’ इत्यस्य ‘स्मृतिकाले’ इति-श्रुत्या तत्र-स्मर्यन्ते साधवो दातृभिर्दानार्थं यस्मिन् समये तस्मिन्नित्यर्थ, चरेत्=भिक्षार्थं गच्छेत्। पुरुषकार=पराक्रमम् उत्साहपूर्वकभिक्षार्थभ्रमणलक्षणं कुर्यात्=विद्यात्। रुदाचिदलाभे सति अलाभ=अत्र भिक्षालाभो न सजात इति न शोचेत्=न परितपेत्, किन्तु तप=अत्र येऽनशनावमौदरिकादिरूप तप सम्पन्नमिति कृत्वा अधिपहेतु=सन्तुष्येत्। भिक्षाया अलाभेऽपि वीर्याचारो मया सम्यगाराधितः, यतो न केऽलमन्नाद्यर्थमेव भिक्षा चरण भिक्षुणा, किन्तु वीर्याचारार्थमपि भगवता समादिष्टमिति भावार्थः ॥ ६ ॥

‘सहकाले’ इत्यादि। भिक्षु उचित समय प्राप्त होनेपर ही भिक्षाके लिए जावे। उत्साहपूर्वक भिक्षार्थ भ्रमणरूप पुरुषार्थ करे। कभी भिक्षाका लाभ न हो तो ऐसा सोच न करे कि-‘आज मुझे भिक्षा नहीं मिली,’ किन्तु ऐसा विचार करके सन्तुष्ट रहे कि-आज भिक्षा न मिली तो सहज ही मेरे अनशन आदि तप होगया, अर्थात् भिक्षाका लाभ न होनेपर भी मैंने भली भाँति वीर्याचारका आराधन किया है। साधु केवल अन्नादिककी प्राप्तिके लिए भिक्षाचरी नहीं करते किन्तु वीर्याचारकी आराधनाके लिए भी भिक्षाचरीमें जाना भगवान् ने बताया है ॥६॥

सह काले० इत्यादि भिक्षु उचित समय तथा न भिक्षाने माटे न्य उत्साहपूर्वक भिक्षार्थ भ्रमणरूप पुरुषार्थ करे डोर्धवार भिक्षाने लाभ न थाय तो ओवे विचार न करे के ‘आन भने भिक्षा न भणी’ परतु ओवे विचार करीने सतुष्ट रहे के-‘आन भिक्षा न भणी तो सडेने माराधी अनशन आदि तप थड गयु अर्थात् भिक्षाने लाभ न थाथी पणु मे लक्ष्मीपडे वीर्याचारनु आराधन कर्युं छे’ साधु डेवण अन्नादिनी प्राप्तिने माटे न भिक्षा चरी करता नथी, किन्तु वीर्याचारनी आराधनाने माटे पणु भिक्षाचरीमा नु भगवाने गतांथुं छे (६)

छाया—वनीपकस्य वा तस्य, दायरुस्योभयोर्वा ।

अप्रीतिक्र स्याद् भवेत्, लघुत्व प्रवचनस्य वा ॥ १२ ॥

पूर्वोक्त विधिके अपालन में दोष बताते हैं—

सान्वयार्थः—(पैसा न करनेसे) सिया=कदाचित्-शायद तस्स=उस वनी-  
मगस्स=श्रमणादि वनीपक पर्यन्तको वा=अथवा दायगस्स=दाताको वा=या  
उभयस्स=दोनो-दाता और याचक को अप्पत्तिथ=अप्रीति द्वेष या मनमें खेद  
हो जाती है, वा=और पवयणस्स=जिनशासनकी लहुत्त=लघुता हुज्जा=  
होती है ॥ १२ ॥

टीका—स्यात् कदाचित् वनीपरुस्य=याचकविशेषस्य वा=अथवा तस्य=  
श्रमणादेः, दायरुस्य=दातुर्वा, उभयोः=दातृ-याचकयोर्वा अप्रीतिक्र=द्वेषः, मनः-  
खेदो वा भवेत्, प्रवचनस्य=जिनशासनस्य लघुत्व=लघुता वा भवेदिति  
सम्पन्नः ॥ १२ ॥

कदा गन्तव्य ?—मित्याह—‘पडिसेहिए’ इत्यादि ।

मूलम्—पडिसेहिए व दिन्ने वा, तओ तम्मि नियत्तिए ।

उवसकमिज्ज भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए ॥ १३ ॥

छाया—प्रतिपेधिते वा दत्ते वा, ततस्तस्मिन् निवृत्ते ।

उपसक्रामेत् भक्तार्थं, पानार्थं वा संयतः ॥ १३ ॥

कव जाना चाहिये, सो बताते हैं—

सान्वयार्थः—पडिसेहिए=दाताके निषेध कर देने पर व=अथवा दिन्ने=  
अन्नादिके दिये जाने पर वा=या दाताके मौन साधने पर तओ=उस स्थानसे

सभव है, उन्हें उलझन करके जानेसे या उनके सामने खड़े रहनेसे  
उस वनीपक या दाताको अथवा दोनोंको द्वेष तथा खेद उत्पन्न  
होजाय । तथा प्रवचनकी लघुता होती है । अतः उन्हें उलझन करके  
जाना साधुका कल्प नहीं है ॥ १२ ॥

कव जाना चाहिए ? सो कहते हैं—‘पडिसेहिए’ इत्यादि ।

संभावित छे तेमने ओणगीने ज्वाथी या ओमनी सामे जिला रडेवाथी  
ओ वनीपक या दाताने अथवा जेठने द्वेष तथा ओह उत्पन्न थज् ज्ञय तथा  
प्रवचननी लघुता थाय छे, ओट्ठे ओमने ओणगीने ज्जु ओ साधुने क.प  
नथी (१२)

क्यादे ज्जु ओधओ ? ते छडे छे—पडिसेहिए० इत्यादि

सान्ग्यार्थः-सजण=साधु भक्ताद्या=अन्नके लिए और पाणट्टा णव=पानीके लिए ही उवसरुमत=गृहस्थके घर पर आते हुए समण=निर्ग्रन्थ मुनिको वावि=अथवा माहण=ब्राह्मणको क्रिविण=कृपण वा=अथवा वणीमग=वट्टी भिखारीको (देखकर) त=उन श्रमणादिको अहकमिच्छु=लाघकर न पविसे=गृहस्थके घरमें न जावे, नवि=और न चक्ररुगोयरे=उनके दृष्टिगोचर दृष्टिमार्गमें चिद्वे=ठहरे, (किन्तु) एगत=एकान्त स्थानमें-जहा उनकी दृष्टि न पडती हो ऐसी जगह अवकमिच्छा=जाकर सजण=इन्द्रियोंका समय करता हुआ-बुप-चाप तत्थ=वहा चिद्वे=खडा रहे ॥१०॥११॥

टीका—‘समण’ इत्यादि, ‘तमइ०’ इत्यादि च। सयतः, गृहस्थद्वारे भक्तार्थमेव पानार्थमेव, एवशब्दस्योभयत्र सम्बन्धः। उपसक्रामन्त=समीपमायान्त यान्त वा श्रमणादिकु दृष्टेति शेषः। तत्र वनीपकः=याचकविशेषः, अन्यत् सुगमम्। त=श्रमणादिकम् अतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य तस्याग्रतो भूत्वेत्यर्थः। गृहस्थगृह न प्रविशेत्, एतावदपि न, तेपा चक्षुर्गोचरेऽपि=दृष्टिपथेऽपि न तिष्ठेत् किन्तु स सयत एकान्त=यत्र तेपा दृष्टिर्न पतेत् त प्रदेशम् अवक्रम्य=गत्वा तत्र तिष्ठेत् ॥१०॥११॥

पूर्वोक्तविधेरपालने दोषमाह—‘वणीमगस्स’ इत्यादि।

मूलम्-वणीमगस्स वा तस्स, दायगस्सुभयस्स वा।

अप्पत्तिय सिया हुज्जा, लहुत्त पवयणस्स वा ॥१२॥

‘समण’ इत्यादि, ‘तमइ०’ इत्यादि। श्रमण, ब्राह्मण, कृपण और वनीपकको गृहस्थके दर्वाजे पर भोजन या पानीके लिए आया देखकर साधु उसे उल्लङ्घन करके गृहस्थके घरमें प्रवेश न करें, इतना ही नहीं, जहाँ उनकी दृष्टि पडती हो ऐसे स्थान पर भी खडे न हो, किन्तु एकान्त प्रदेशमें जाकर स्थित होवें, जहा उनकी दृष्टि न पहुँचे ॥१०॥११॥ ऐसा न करनेमें दोष कहते हैं—‘वणीमगस्स’ इत्यादि।

समण० इत्यादि तथा तमइ० इत्यादि श्रमणु ब्राह्मणु, कृपणु अने वनी पकने गृहस्थना दरवाजा पर भोजन या पानीने माटे आवेला नोधने साधु अने अने आणगीने गृहस्थना घरमा प्रवेश न करे, ओठकु न नडि न्या अनेनी दृष्टि पडती होय अथवा स्थान पर पणु ओलो न रहे, किन्तु अत्र प्रवेशमा नोधने ओलो रहे के न्या अनेनी दृष्टि पडोवे नडि (१०-११)

अत्र न करवाभा हे प डडे छे—‘वणीमगस्स०’ इत्यादि

टीका—'उष्पल' इत्यादि 'त भवे' इत्यादि च। उत्पल=श्यामल-धवल-लोहित-भेदेन त्रिविध कमलम्, अपिवा पद्म=सूर्यविकासि कमल, कुमुद=चन्द्रविकासि कमल वा=अथवा मगदन्तिका=मालतीपुष्पम्, अन्यद्वा पुष्पसचित्त=पुष्पेषु सचित्त पुष्पसचित्त सचित्तपुष्पमात्रमित्यर्थः, तच्च सलुब्धच्य=सलुब्ध यदि दात्री भक्त-पान दद्यात्, तर्हि तद् भक्तपान तु सयतानामग्राह्यं भवेदिति ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृश=दोषयुक्त मे=मम न कल्पत इति ॥ १४ ॥ १५ ॥

१ ४ ३ २ ५ ६ ७  
मूलम्-उष्पलं पउमं वात्रि कुमुयं वा मगदतिय ।

८ ९ १० ११ १२ १३ १४  
अन्न वा पुष्पसचित्तं, त च समदिया दए ॥ १६ ॥

१५ २० २६ १७ २८ २९  
त भवे भक्तपाणं तु, सजयाण अकप्पिय ।

२१ २२ २५ २४ २६ २३  
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥ १७ ॥

उाया—उत्पल पद्म वाऽपि कुमुद वा मगदन्तिकाम् ।

अन्यद्वा पुष्पसचित्तं तच्च समर्थं दद्यात् ॥ १६ ॥

तद् भवेद् भक्तपान, तु सयतानामकल्पिकम् ।

ददती प्रत्याचक्षीत न मे कल्पते तादृशम् ॥ १७ ॥

सान्वयार्थः—उष्पल=नील कमल पउम=रक्त कमल वात्रि=अथवा कुमुय=चन्द्रविकासी कमल वा=या मगदतिय=मालती-मोगरेके फूलको वा=अथवा अन्न=दूसरे भी इसी प्रकारके जो पुष्पसचित्त=सचित्त पुष्प हैं तच्च=उनको भी (अगर) समदिया=पैरो आदिसे कुचलकर दए=देवे तो त=वह भक्तपाण तु=

'उष्पल' इत्यादि, 'त भवे' इत्यादि। दाता नीला सफेद और लाल कमल, सूर्यविकासी कमल, चन्द्रविकासी कमल, मालतीका फूल तथा अन्य सचित्त पुष्प तोड़ कर आहारपानी देवे तो वह सयमियोके लिए ग्राह्य नहीं है इसलिए देनेवालीसे कहे कि ऐसा दोषयुक्त आहार सुझे नहीं कल्पता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

उष्पल० इत्यादि तथा त भवे० इत्यादि ने दाता, नीलु सफेद या लाल कभण, सूर्यविकासी कभण, चन्द्रविकासी कभण, मालतीनुं फूल तथा अन्य सचित्त पुष्प ताडीने पछी आहा० पाछी आपे तो ते सयमियोने भाटे ग्राह्य नहीं तेथी ते आपनारीने साधु कडे के जेवे दोषयुक्त आहार भने कल्पतो नथी (१४-१५)

तस्मिन्=उन श्रमणादिकोके नियन्त्रिण=चले जाने पर सजण=माधु भक्त्या=  
आहार च=अथवा पाणट्टाए=पानीके लिए उवसकमिज्ज=जावे ॥१३॥

टीका—प्रतिपेधिते=द्वारा प्रतिपेध माप्ते वा=अथवा दत्ते अन्नादिके, वास-  
व्दाहातुस्तृष्णीभायावलम्बनाद् विलम्बादिनिमित्तशब्दा ततः=तत्स्थानात्  
तस्मिन्=पानीपकादीं निरृते प्रतिनिवृत्ते सति सपतः भक्तार्थं पानार्थं वा उपस-  
क्रामेत्=भिक्षा ग्रहीतुं गच्छेत् ॥ १३ ॥

मूलम्-उप्पलं पउम वावि, कुमुय वा मगदतियं ।

अन्न वा पुप्फसच्चित्तं, तच्च सल्लुच्चिया दए ॥ १४ ॥

त भवे भक्तपाण तु, संजयाण अकप्पिय ।

दितियं पडियाइवखे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ १५ ॥

छाया—उत्पल पद्म वाऽपि, कुमुद वा मगदन्तिकाम् ।

अन्यद्वा पुष्पसच्चित्तं, तच्च सल्लुच्च्य दद्यात् ॥ १४ ॥

तद् भवेद् भक्तपानं तु सयतानामकल्पिकम् ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥ १५ ॥

सान्त्वयार्थं-उप्पलं=नील कमल पउम=रक्त कमल वावि=अथवा कुमुय=

चन्द्रविभासी कमल वा=या मगदनियं=मालती-मोगरेके फूलको वा=अथवा  
अन्न=दूसरे भी इसी प्रकारके जो पुष्पसच्चित्तं=सच्चित्त पुष्प हो तच्च=उनको भी  
(अगर) सल्लुच्चिया=लोच करके दए=देवे तो त=वह भक्तपाण तु=आहार-  
पानी संजयाण=सयमियोंको अकप्पिय=अकल्पनीय भवे=होता है, अत  
दितियं=दनेवालीसे पडियाइवखे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहार मे=  
मुझे न कप्पइ=नही कल्पता है ॥१४॥१५॥

दाताके वनीपक आदिको दान देनेकी मनाकर देने पर, अथवा अन्न  
आदिके दे देने पर या मौन साध लेने पर, अथवा विलम्ब होने आदिके  
कारणसे जब वह वनीपक आदि उस घरसे लौट जाय तब सयमीको  
भक्त पानके लिए उस घरमे जाना चाहिए ॥ १३ ॥

दातये वनीपक आदिने दान देवानी मनाई कर्या पछी अथवा अन्न  
आदि आपी श्रुत्या पछी या मौन साधी लीधा पछी अथवा विलम्ब होये  
धन्यादिने कारणसे अथवा अथवा वनीपक आदि ये घरशी य... ..  
भक्त पानने गाटे ये घरमा श्रुत नोछये (१३)

टीका—‘उष्पल’ इत्यादि ‘त भवे’ इत्यादि च । उत्पल=श्यामल-धवल-लोहित भेदेन त्रिविध कमलम्, अपिवा पद्मं=सूर्यविकासि कमल, कुमुद=चन्द्र-विकासि कमल वा=अथवा मगदन्तिका=मालतीपुष्पम्, अन्यद्वा पुष्पसचित्त=पुष्पेषु सचित्त पुष्पसचित्त सचित्तपुष्पमात्रमित्यर्थः, तच्च सलुञ्च्य=सल्लिप्य यदि दात्री भक्त-पान दद्यात्, तर्हि तद् भक्तपान तु सयतानामग्राह्यं भवेदिति ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृश=दोषयुक्त मे=मम न कल्पत इति ॥ १४ ॥ १५ ॥

मूलम्—उष्पलं पउमं वावि कुमुय वा मगदतिय ।

अन्न वा पुष्पसचित्त, त च समदिया दए ॥ १६ ॥

तं भवे भक्तपाणं तु, संजयाण अकप्पिय ।

दितिय पडियाडक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ १७ ॥

अथा—उत्पल पद्म वाऽपि कुमुद वा मगदन्तिकाम् ।

अन्यद्वा पुष्पसचित्त तच्च समर्थं दद्यात् ॥ १६ ॥

तद् भवेद् भक्तपान, तु सयतानामरुलिपरम् ।

ददतीं प्रत्याचक्षीत न मे कल्पते तादृशम् ॥ १७ ॥

सान्वयार्थः—उष्पल=नील कमल पउम=रक्त कमल वावि=अथवा कुमुय=चन्द्रविकासी कमल वा=या मगदतिय=मालती-मोगरेके फूलको वा=अथवा अन्न=दूसरे भी इसी प्रकारके जो पुष्पसचित्त=सचित्त पुष्प हैं तच्च=उनको भी (अगर) समदिया=पैरो आदिसे कुचलकर दए=देवे तो त=वह भक्तपाण तु=

‘उष्पल’ इत्यादि, ‘त भवे’ इत्यादि । दाता नीला सफेद और लाल कमल, सूर्यविकासी कमल, चन्द्रविकासी कमल, मालतीका फूल तथा अन्य सचित्त पुष्प तोड़ कर आहारपानी देवे तो वह सयमियोंके लिए ग्राह्य नहीं है इसलिए देनेवालीसे कहे कि ऐसा दोषयुक्त आहार सुझे नहीं कल्पता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

उष्पल० इत्यादि तथा त भवे० इत्यादि जे दाता, नील सफेद या लाल कमल, सूर्यविकासी कमल, चन्द्रविकासी कमल, मालतीनु फूल तथा अन्य सचित्त पुष्प तोड़ने पछी आहार पाणी आपे तो ते सयमियोंने माटे ग्राह्य नहीं तैथी ते आपनारीने साधु कहे के अर्थे दोषयुक्त आहार मने कल्पतो नहीं (१४-१५)



आहार-पानी सजग्याण=सयमियोंको अकृष्णिय=अकल्प्य भवे=होता है, (अतः) दिंतिय=देनेवालीसे पडियाठस्ते=रुहे कि तारिस=उस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पइ=नही कल्पता है ॥१६॥१७॥

टीका—‘उप्पल’ इत्यादि, ‘त भवे’ इत्यादि च । उत्पलादिक समर्प=करचनादिना तत्संमर्दनं कृत्वा, अशनादि दयात् तद् भक्त-पान तु सयतानाम-ग्राह्यमित्यादि पूर्वपद व्याख्येयम् । अत्र ‘समर्प’ शब्देन समर्दनं यथा कथञ्चि त्स्पर्शमात्रमपि गृह्यते, उत्पलादिगतमृक्षमजीराना तात्रताऽपि पीडोत्पत्तेरवश्यम्भावात् । ‘समहमाणी पाणाणि वीयाणि हरियाणि य’ इत्यस्यैव प्रथमोद्देशके सपस्तवनस्पतीना ग्रहणेऽपि पुनरातोत्पलादीना ग्रहणं न पुनरुक्तिदोषजनकं, पूर्वत्र सामान्यरूपेणाऽत्र च विशेषरूपेणोपादानादिति बोध्यम् ॥ १६ ॥ १७ ॥

‘उप्पल’ इत्यादि, ‘त भवे’ इत्यादि । पूर्वोक्त उत्पलादिकोंमेंसे किसी सचित्त फूलको मर्दन करके अथवा सघटा मात्र भी करके आहार देवे तो देनेवालीसे साधु कहे कि ऐसा आहार लेना मुझे नहीं कल्पता है । यहा ‘मर्दन’ शब्दसे स्पर्शमात्रका भी ग्रहण होता है, क्योंकि कमल आदिके जीवोंको स्पर्श करनेसे भी अवश्य पीडा होती है । प्रथम उद्देशमे “समहमाणी पाणाणि वीयाणि हरियाणि य’ इस पदसे ही सब वनस्पतिकायका ग्रहण कर लिया था, यहाँ फिर उत्पल आदिका ग्रहण किया है यह पुनरुक्ति दोष नहीं समझना चाहिए, क्योंकि पहले सामान्यरूपसे निषेध किया था और यहा विशेषरूपसे निषेध किया है ॥ १६ ॥ १७ ॥

उप्पल इत्यादि, तथा त भवे इत्यादि पूर्वोक्त कर्मण आदिभाषी केशर सचित्त फूलनु मर्दन करीने अथवा मात्र सघटन पणु करीने आहार आपे तो आपनारीने साधु कहे के ओवे आहार लेवे भने कल्पतो नथी अही ‘मर्दन’ शब्दधी स्पर्श-मात्रनु पणु अहणु थाय छे, कारणु ठे कर्मण आदिना एवेने स्पर्श करवाधी पणु अवश्य पीडा थाय छे प्रथम उद्देशमा समहमाणी पाणाणि वीयाणि हरियाणि य ओ पदधी न थधी वनस्पतिकायनु अहणु करवाभा आयु हुतु, अही इरीधी कर्मण आदिनु अहणु कथुं छे, ओ पुनरुक्ति दोष समज्यो नहि, कारणु ठे पडेलो सामान्यरूपे निषेध कथे हुतो, अने अही विशेषरूपे निषेध कथे छे, (१६-१७)

१ २ ३ ४ ५  
मूलम्-सालुयं वा विरालियं, कुमुयं उप्पलनालिय ।

६ ७ ८ ९  
मुणालियं सासवनालियं, उच्छुखडं अनिव्वुडं ॥ १८ ॥

१० ११ १२ १३ १४  
तरुणगं वा पवालं, रुक्खस्स तणगस्स वा ।

१५ १६ १७ १८ १९ २० २१  
अन्नस्स वावि हरियस्स, आमगं परिवज्जए ॥ १९ ॥

छाया—शालूक वा विरालिका, कुमुदम् उत्पलनालिकाम् ।

मृणालिका सर्पपनालिकाम्, इक्षुखण्डम् अनिवृतम् ॥ १८ ॥

तरुणक वा प्रवाल, वृक्षस्य, तृणकस्य वा ।

अन्यस्य चाऽपि हरितस्य, आमक परिवर्जयेत् ॥ १९ ॥

सान्प्रयार्थः—सालुय=कुमुदादिका मूल विरालिय=पलाशका कन्द-साधारण वनस्पतिविशेष कुमुय=चन्द्रविकासी श्वेत कमल उप्पलनालिय=कमलनाल मुणालिय=कमलतन्तु सासवनालिय=सरसोकी भाजी या कान्दल वा=अथवा उच्छुखड=गन्धके टुकड़े, (ये सब यदि) अनिव्वुड=शस्त्रपरिणत-अचित्त-न हो तो, (तथा) रुक्खस्स=इमली आदि वृक्षके वा=अथवा तरुणगस्स=म्पुधुर तृणादि-कोके वा=और अन्नस्सवि=दूसरे प्रकारके भी हरियस्स=हरित कायके तरु-णग=कोपल पत्ते आदि वा=अथवा पवाल=रुक्मी कोपल-नहीं खिले हुए पत्ते-आदि आमग=सचित्त हों तो उन्हें परिवज्जए=वरजे-नही लेवे ॥१८॥१९॥

टीका—‘सालुय’ इत्यादि ‘तरुणग’ इत्यादि च । शालूक=कुमुदादिमूल, विरालिका=पलाशकन्द साधारणवनस्पतिजातिविशेष, कुमुद=चन्द्रविकासिश्वेत-कमलम्, उत्पलनालिका=कमलनाल, मृणालिका=विस ‘मे’ इति भाषामसिद्धा, सर्पपनालिका=सर्पपत्रशाक, सर्पपकन्दलीं वा, इक्षुखण्डम्=इक्षुशकल वा, एत-त्सर्वम् अनिवृतम्=शस्त्राऽपरिणतम् । तथा वृक्षस्य=अम्लिकादेः वा=अथवा

‘सालुय’ इत्यादि, ‘तरुणग’ इत्यादि । कमलका मूल, पलाश (डाक) का मूल अर्थात् साधारण वनस्पतिकी जातिविशेष, तथा सफेद कमल, कमलकी नाल, सरसोकी पत्तेका शाक, गन्धका खण्ड, ये सब

सालुय० इत्यादि, तरुणग० इत्यादि कमलतु मूल, पलाशतु मूल, अर्थात् साधारण वनस्पतिनी जाति विशेष, तथा सफेद कमल, कमलनी नाला, सरसवना पादतु शाक, शेरडीनी कातणी, ये यथा ज्ञे शस्त्रथी परिणत न होय तो ज्ञेना

तृणकस्य=मधुरतृणादे', अन्यस्य हरितस्यापि या हरितकायमात्रस्य तरुणम्=तरुण-  
दशाऽऽपन्न पत्रादिक, प्रयाल=सुकुमार पत्रादिक या, आमम्=सचित्त परिवर्जयेत्  
॥ १८ ॥ १९ ॥

१ ५ ० ६ ४ ३  
मूलम्-तरुणियं वा छिवाडिं, आमिय भजिय सड ।

० ८ ११ १० १२ ६  
दितिय पडियाडक्खे, न मे कप्पड तारिस ॥ २० ॥

छाया—तरुणिमा या छियाडीम्, आमिका भजिता सकृद् ।  
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥ २० ॥

सान्प्रयार्थः—तरुणिय=रुची जिसके बीज पके नहीं हो ऐसी वा=अथवा  
सह=एक बार भजिय=भुनी हुई आमिय=सचित्त छिवाडिं=फलीको दितिय=  
देनेवालीसे (साधु) पडियाडक्खे=रुहे कि तारिस=इस प्रकारका आहार मे=  
मुझे न कप्पड=नहीं कल्पता है ॥ २० ॥

टीका—'तरुणिय' इत्यादि। तरुणिकाम्=अपरिपक्वबीजाम् अपरित्यक्तत्वक्-  
संश्लेषावस्थापन्नमित्यर्थः, छिवाडिं='देशीयोऽय शब्द.' मुद्ग चवल तुवरिका-  
दिफलिका सकृद्भजिताम्=एकवार भुष्टा वा=अथवा आमिका=सचित्त ददतीं  
प्रत्याचक्षीत तादृश मे न कल्पत इति ॥२०॥

यदि शस्त्रसे परिणत न हों तो इनका, तथा—इमली आदि वृक्षके, मधुर  
तृण आदिके तथा अन्य हरेक वनस्पतिके पत्ते कौपल आदि जो सचित्त  
हों तो उनका त्याग करना चाहिए ॥ १८ ॥ १९ ॥

'तरुणिय' इत्यादि। जिसके बीज न पके हो ऐसी मूँग, चवला,  
तुअर (अरहर) आदिकी फली एक बार भूँजी हुई हो तथा सचित्त हो तो  
देनेवाली चाईसे साधु कहे कि यह लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥ २० ॥

तथा आणवी आदिना पृक्षना मधुर तृण आदिना, तथा पीलु अथी वनस्पतिना  
पादस्य, कुपण, आदि जे सचित्त होय तो जेना त्याग करयो जेधजे (१८) (१९)

तरुणिय इत्यादि जेना पीलु पाक्या न होय जेवा भग, जेणा, तुवेर  
आदिनी सीग जेकवार लूजेवी होय तथा सचित्त होय तो ते आपनारी पाधने  
साधु कहे के जे लेवी भने कल्पती नथी

मूलम्-तहा कोलमणुस्सिन्न, वेलुयं कासवनालिय ।

तिलपप्पडग नीम, आमगं परिवज्जए ॥ २१ ॥

छाया—तथा कोलमनुत्स्विन्न, वेणुक काश्यपनालिकाम् ।

तिलपर्पटक नीपम्, आमक परिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

सान्न्वयार्थः—तहा=उसी प्रकार अणुस्सिन्न=विना उवाले हुए कोल=वेर तथा वेलुय=वेर या वासकी कोपल कासवनालिय=श्रीपर्णीका फल तिल-पप्पडग=तिलपापड़ी नीम=कदम्बका फल (ये सब यदि) आमग=सचित्त हों तो उन्हें परिवज्जए=वर्ज ॥ २१ ॥

टीका—‘तहा’ इत्यादि । तथा=तद्वत् अनुत्स्विन्न=सलिलानलसयोगेनाऽनु-त्कालितम् - अकथितमित्यर्थः, कोल=वदरीफलम्, आमकम्=अशस्त्रोपहतम्, अस्य वेणुकादौ सर्वत्र सम्बन्धः, वेणुक=वशाकरीर वशाङ्कुरमित्यर्थः, काश्यप-नालिका=श्रीपर्णीफलम्, अत्र - ‘आमग’-मित्यस्य लिङ्गविपरिणामेनान्वयः । तिलपर्पटक प्रसिद्धमेव, नीप=कदम्बफल परिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

मूलम्-तहेव चाउल पिट्ट, वियड वा तत्तनिव्वुड ।

तिल-पिट्ट पूइ-पिन्नागं, आमगं परिवज्जए ॥ २२ ॥

छाया—तथैव ताण्डुल पिट्ट, विकट वा तत्तनिव्वृतम् ।

तिलपिट्ट प्रतिपिण्याकम्, आमक परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥

सान्न्वयार्थः—तहेव=उसी प्रकार चाउल पिट्ट=चाँवलोका आटा तथा और भी किसी तरहका आटा वा=अथवा तत्तनिव्वुड=पहले गर्म किया हुआ किन्तु

१ ‘नोम’ इत्यत्र ‘नीपाऽऽपीडेमो वा’ (प्रा. ८।१।२३४) इति प्राकृतमूत्रेण पस्य मः ॥

‘तहा कोलं’ इत्यादि । इसी प्रकार जल और अग्निमें नहीं उवाले हुए वेर, सचित्त वाँसके अकुर तथा काश्यपनालिका (गभारीफल) तिलपापड़ी और कदम्बके फल ये सब यदि सचित्त हों तो इनका त्याग करे—ग्रहण न करे ॥ २१ ॥

तहा कोलं इत्यादि अत्र प्रभाषे ऋण अने अग्निमा नडि उक्ताणेत्या गौर, सचित्त वासना अकुर तथा काश्यपनालिका (गभारी इण), तिलपापड़ी अने कदम्बना इण अत्र सचित्त छाय तो अनेना त्याग करवा—ग्रहण नडि (२१)

फिर ठडा होया हुआ चियड=पानी तिलपिट्ट=तिलकुट्टा पृष्ठपिन्नाग=सरसोंकी खल (ये) आमग=सचित्त हों तो परिचज्जण=वरजे ॥२२॥

टीका—‘तहेव’ इत्यादि । तथैव=तेनैव प्रकारेण ताण्डुल=तण्डुलसम्बन्धि पिष्ट=चूर्णम्, उपलक्षणमेतद्गोधूमादेरपि, ग=अथवा तप्तनिर्वृत=पूर्व तप्त पश्चात्निर्वृत=शीतल यत्तत्तथोक्तम्, उष्णोदक यदा शैत्यापन्न ततः कालादारभ्य ग्रीष्मे यामपञ्चकादूर्ध्वं शीतकाले यामचतुष्टयात्पर, वर्षाकाले च प्रहरत्रयानन्तर सचित्त जायते । अत्रेय सद्ग्रहगाथा-

“जम्भि समयम्भि उष्णे, -दग च सीय भवे तओ पच्छ ।

पच चउ त्तिय-जामा, गिम्हे हेमत पाऊसे ॥ १ ॥” इति ॥

त्रिकट=समयपरिभाषया सलिलं, तिलपिट्ट=तिलकुट्ट प्रसिद्ध, पृतिपिण्याङ्क=सर्पपल्लकम् आमङ्क=सचित्त परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥

१ छाया-“यस्मिन् समये उष्णोदकं च शीतं भवेत्तत् पश्चात् ।

पञ्चचतुस्त्रिरुयामाः, ग्रीष्मे हेमन्त-मातृपो ॥ १ ॥

‘तहेव’ इत्यादि । इसी प्रकार तत्कालका पीसा हुआ चाँवल गेहूँ आदिका आटा तथा पहले अचित्त होने पर भी कालकी मर्यादा व्यतीत होने पर पुनः सचित्त हुआ जल, तुरतका बना हुआ तिलकुट्ट, तत्कालकी सरसों आदिकी खली, इन सचित्त वस्तुओंको ग्रहण न करे । गर्म पानीके अचित्त रहनेकी मर्यादा-ठडा होजाने पर ग्रीष्म ऋतुमें पाच पहर, शीतकालमें चार पहर और वर्षाकालमें तीन पहरकी होती है, उसके बाद वह (जल) सचित्त होजाता है । इस विषयमें एक सग्रह गाथा है जो संस्कृत-टीकामें लिखी गई है ॥ २२ ॥

तहेव० इत्यादि अथ प्रभाषे तत्कालने। दण्ये। योभा धड आदिने आटे, तथा पडेदा अचित्त होवा छता पण काणनी मर्यादा व्यतीत थता पुन सचित्त थअधेळ ळण, तुरतने। गनावेदे। तलकुट्ट, तुरतनी सरसव आदिनी भोण अथ सचित्त वस्तुओने पण अडधु न करे गरम पाणी अचित्त रहेवानी मर्यादा ठडु थड गया पछी ग्रीष्म ऋतुमा पाथ पडेर, शीयाणाभा थार पडेर अने वर्षाऋतुमा त्रधु पडेरनी होय छे, त्थारणाद अथ ळण सचित्त गनी नय छे अथ विषयमा अथ सग्रहगाथा छे ते संस्कृत टीकाभा लपी छे (२२)

मूलम्-कविट्ट<sup>१</sup> माडलिंग<sup>२</sup> च, मूलग<sup>४</sup> मूलगत्तियं<sup>४</sup> ।

आमं<sup>६</sup> असत्थपरिणय<sup>७</sup>, मणसावि<sup>८</sup> न पत्थए<sup>९</sup> ॥ २३ ॥  
छाया—कपित्थ मातुल्लिङ्ग च, मूलक मूलकर्त्तिकाम् ।

आमम् अशस्त्रपरिणतं, मनसाऽपि न प्रार्थयेत् ॥ २३ ॥

सान्वयार्थः—कविट्ट=कैय-कविठ माडलिंग=विजौरा मूलगं=मूला च=और मूलगत्तियं=मूलेके कन्दका टुकड़ा आम=रच्चा असत्थपरिणय=स्वकाय परकाय आदि शस्त्रसे परिणत न हुआ हो तो उसे मणसावि=मनसे भी न पत्थए=न चाहे ॥२३॥

टीका—‘कविट्ट’ इत्यादि । कपित्थ ‘कैय कविठ’ इति भाषाया, मातुल्लिङ्ग=बीजपूरक ‘विजौरा नीवू’ इति भाषाया, मूलगं=सपत्र, मूलकर्त्तिका=मूलक-कन्दखण्डम्, आमम्=अपकम्, अशस्त्रपरिणतम्=अलब्धस्वपरकायादिशस्त्रयोग मनसाऽपि न प्रार्थयेत्—एतद्विपरिणीमिच्छामपि न कुर्यादित्यर्थः । ‘आमम्’ इत्यस्य ‘अशस्त्रपरिणतम्’ इत्यस्य च लिङ्गविपरिणामेन ‘मूलकर्त्तिका’-मित्यत्र सम्बन्धः । मूलकस्याऽनन्तकायत्वात् शस्त्रपरिणतिर्दुष्करेति बोधयितुमेकार्थकस्याऽऽमादिशब्दद्वयस्योपादानम् ॥ २३ ॥

मूलम्-तहेव<sup>१</sup> फलमथूणि<sup>२</sup>, वीयमथूणि<sup>३</sup> जाणिय<sup>४</sup> ।

विहेलग<sup>६</sup> पियाल<sup>७</sup> च, आमग<sup>८</sup> परिवज्जए<sup>९</sup> ॥ २४ ॥

छाया—तथैव फलमन्वृन् वीजमन्वृन् ज्ञात्वा ।

निभीतक प्रियाल च, आमक परिवर्जयेत् ॥ २४ ॥

‘कविट्ट’ इत्यादि । कैय (कविठ) विजौरा नीवू, मूला और मूलेके खण्ड यदि अचित्त-शस्त्रपरिणत न हों तो इन्हें ग्रहण करनेकी इच्छा भी नहीं करनी चाहिए । मूला अनन्तकाय है, अतः उसका शस्त्रपरिणत होना कठिन है इसीसे यहा एक अर्थवाले ‘आमक’ और ‘अशस्त्रपरिणत’ ये दो शब्द दिये हैं ॥ २३ ॥

कविट्ट— इत्यादि कोडु, पीलेरा-लीयु, भूणा अने भूणाना ककडा ले अचित्त-शस्त्रपरिणत न होय तो ते अडणु करवानी उच्छा पणु न करवी लेअये भूणा अनन्तकाय छे अटले ये शस्त्रपरिणत येवा कठिन छे, तेथी अही अेक अर्थवाणा ‘आमक’ अने ‘अशस्त्र परिणत’ येवा छे शब्दो आपेला छे (२३)

सान्प्रयार्थः—तद्देव=इसी प्रकार फलमधूणि=वेर आदि फलोंका चूर्ण-चूरा  
वीजमधूणि=शालि आदि बीजोंका चूर्ण-चूरा विहेलग=गहेडा च=और  
पियाल=रायण अथवा दाख (इन्हें) आमरु=सचित जाणिय=जानकर=जाने  
तो परिवज्जए=रजे-न ले ॥ २४ ॥

टीका—‘तद्देव फल०’ इत्यादि । तथैव=तद्वत् फलमन्धून=वदरादिचूर्णान्,  
वीजमन्धून=फलबीजचूर्णान्, विभीतरु ‘गहेडा’ इति प्रसिद्ध, च=पुनः  
पियाल=राजादनफल ‘रायण’ इति भाषाप्रसिद्धम् । यद्वा ‘पियाला’—मिति  
ञ्जाया, पियाला=द्राक्षाम्, आमरु=सचित ज्ञात्या परिवर्जयेत्, सचित चेन्न गृही  
यादित्यर्थः । यद्वा ‘जाणिय’ इत्यस्य ‘याँश्चे’-ति ञ्जाया, याँश्च बीजमन्धूनि-  
त्यन्वयः ॥ २४ ॥

मूलम्—समुयाण चरे भिक्षू, कुल उच्चावय सया ।

नीय कुलमइक्कम्म, ऊसढ नाभिधारए ॥ २५ ॥

छाया—समुदान चरेद् भिक्षु, कुलमुच्चावच सदा ।

नीच कुलमतिक्रम्य, उच्छित्त नाभियारयेत् ॥२५॥

सान्प्रयार्थ—भिक्षू=साधुको सया=हमेशा उच्चावय=ऊच-नीच अर्थात्  
धनवान् और गरीब कुल=कुल-घर-में समुयाण=शुद्ध भिक्षाका अनुसन्धान पूर्वक  
चरे=धूमना चाहिए, (किन्तु) नीय=गरीब कुल=कुल घर को अइक्कम्म=जोडकर  
ऊसढ=धनवान्के घरपर नाभिधारए=नहीं जाना चाहिए ॥२५॥

टीका—‘समुयाण’ इत्यादि । भिक्षुः सदा=नित्यम् उच्चावचम्=उदक्=  
उच्च प्रनधान्यादिसमृद्धम्, अत्राक्=अवच=तद्विकल कुल प्रति समुदान=गृहस्थ

‘तद्देव फल०’ इत्यादि । इसीप्रकार वेर आदिका चूरा, फलके  
बीजोंका चूरा, तथा गहेडा, रायण अथवा दाख, ये सचित हों तो ग्रहण  
न करे ॥ २४ ॥

‘समुयाण’ इत्यादि । भिक्षु सदा धन-धान्य आदिसे समृद्ध कुलोंमें  
तथा धन-धान्यहीन कुलोंमें समुदानी भिक्षाके लिए गमन करें । एकही

तद्देव फल० इत्यादि अे प्रकारे गोर आदिनु चूर्ण, इणना पीजेनु चूर्ण  
तथा गडेडा, रायण अथवा द्राक्ष अे सचित होय तो अइणु करवा नहिं (२४)

समुयाण० इत्यादि भिक्षु सदा धन धान्य आदिथी समृद्ध कुलोभा तथा  
धन धान्यही हीन कुलोभा समुदानी भिक्षाने भाटे गमन करे अेक ० घरथी

समुदायसम्पत्तिरभिक्ष्य, न त्वेकस्मिन्नेव गृहे तत्राऽऽधाकर्मादिदोषसम्भवादिति भावः, चरेत्=गच्छेत् । नीच=विभवविधुर कुलम् अतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य परित्यज्येति यावत्, उच्चिद्रुतं=समृद्ध कुल नाभिधारयेत्=न गच्छेत् प्रचुरसरसभक्तपानादिलिप्सया निर्धन विहाय विभवसपन्न सदन नाभिगच्छेत्, किन्तु उभयत्रापि यायादिति भावः । 'समुयाण' इति-पदेनाऽनेकगृहतः स्वल्प-स्वल्प ग्रहणाद् भिक्षाया निर्दोषता सूचिता । 'उच्चावय' इति-पदेन समभावो व्यक्तीकृतः । 'नीय कुल' इत्युत्तरार्द्धेन रसलोलुपतापरित्याग आविष्कृत इति ॥ २५ ॥

मूलम्-अदीणो वित्तिमेसिज्जा, न विसीएज्ज पडिण्ण ।

अमुच्छिओ भोयणम्मि, मायन्ने एसणारए ॥ २६ ॥

छाया—अदीनः वृत्तिमेपयेत्, न विपीदेत् पण्डितः ।

अमुच्छितो भोजने, मात्राज्ञ एणारतः ॥२६॥

सान्त्वयार्थः-पडिण्ण=शुद्धिमान् साधु भोयणम्मि=भोजनमें अमुच्छिओ=गृद्धि-लोलुपता-रहित मायन्ने=आहार-पानीकी मात्राको जाननेवाला एसणारए=आहारकी शुद्धिमें तत्पर अदीणो=दीनता नहीं दिखलाता हुआ वित्ति=भिक्षा-गोवरी की एसिज्जा=गवेपणा करे, (किन्तु भिक्षा न मिलने पर)न विसीएज्ज=खेद न करे ॥२६॥

घरसे भिक्षा न लें, क्योंकि आधाकर्म आदि दोष लगनेकी सम्भावना है । निर्धन कुलको छोड़कर सरस भक्त पानकी लालसासे सम्पत्तिशाली कुलमें भिक्षाके लिए नहीं जाना चाहिए ।

'समुयाण' पदसे यह सूचित किया है कि अनेक कुलोंसे थोड़ी-थोड़ी भिक्षा लेनेसे ही भिक्षाकी निर्दोषता होती है । 'उच्चावय' पदसे समभाव सूचित किया है । 'नीय कुल' इत्यादि उत्तरार्द्धसे रसलोलुपताका त्याग व्यक्त किया है ॥ २५ ॥

भिक्षा न ले, कारण के आधाकर्म आदि दोष लागवाने। सत्त्व छे निर्धन कुणने छोडीने सरस लसत पाननी लालसाथी सपत्तिशाली कुणभा भिक्षाने माटे ननु न लेधये

समुयाण पदथी येम सूचित करवामा आण्यु ठे छे अनेक कुणोमाथी थोडी थोडी भिक्षा लेवाथी न भिक्षानी निर्दोषता नणवाय ठे उच्चावय शब्दथी समभाव सूचित क्यो छे नीय कुल धत्यादि उत्तरार्धथी रस-लोलुपताने त्याग व्यस्त क्यो ठे (२५)



टीका—‘अदीणो’ इत्यादि । पण्डितः=सकलभिक्षादोषज्ञः साधुः भोजने=आहारे अमूर्च्छित=अमृत्तुः मात्राज्ञः=मात्रा=भक्तपानेन स्वकीयोदरपूर्तिप्रमाणभुक्तिमित्तस्वैक्यप्रशमनैकसाधनप्रमाण वा जानातीति मात्राज्ञ, प्रमाणाधिक भोजनेन प्रमादादिदोषोद्भवस्य सभवेन साधुनामाहारप्रमाणमवश्य त्रिप्रेयमिति । एषणारत=उद्दमादिदूषणव्यतिरिच्यमानगवेषणपरायणः, अदीन=दैन्यरहितः सन् वृत्ति=भिक्षालक्षणां एषयेत्=अन्वेषयेत्, अन्नाभे सति न विपीदेत्=न खिद्येत् । ‘अदीणो’ इति-पदेन सद्दैन्याऽऽतिपरणेनाऽऽत्मनोऽधःपतनशासनलघुता च प्रसज्यते, इति व्यज्यते । ‘न विसीएज्ज’ अनेन भिक्षाया अन्नाभेऽपि स्वात्मप्रसन्नता न परित्यजेदिति शीतितम् । ‘पण्डिण’ इत्यनेन सर्वथापरिशुद्ध

‘अदीणो’ इत्यादि । भिक्षाके समस्त दोषोंका ज्ञाता मुनि आहारमें मूर्च्छा न रखें और आहारके परिमाणका ख्याल रखें । जितने आहारसे क्षुधावेदनीय उपशांत होजाय वही आहारका परिमाण है, उससे अधिक आहार करनेसे प्रमाद आदि दोष उत्पन्न होते हैं, इसलिए साधुओको आहारका परिमाण अवश्य करना चाहिए । साधु उद्दम आदि दोषोंको न लगाते हुए दीनताका त्याग करके भिक्षाकी गवेषणा करें, और भिक्षाका लाभ न हो तो खेद न करें ।

‘अदीणो’ पदसे यह प्रगट होता है कि दीनता दिखानेसे आत्माका अधःपतन और जिनशासनकी लघुता होती है । ‘न विसीएज्ज’ पदसे यह सूचित किया है कि आहार-लाभ न हो तो भी आत्मिक प्रसन्नताका परित्याग न करना चाहिए । ‘पण्डिण’ पदसे सर्वथाशुद्ध भिक्षा ग्रहण

अदीणो० इत्यादि भिक्षाना गधा दोषेना ज्ञाता मुनि आहारमा मूर्च्छा न राणे अने आहारना परिभाषणेन ख्याल राणे नेटला आहारथी क्षुधा वेदनीय उपशान्त धर्ष नाय ते न आहारनु परिभाषु छे अथी वधारे अहार करवाथी प्रमाद आदि दोष उत्पन्न थाय छे, तेथी साधुओअये आहारनु परिभाषु अवश्य करवु नेधअये साधु उद्दम आदि दोषो न लागवा देता दीनतानो त्याग करीने भिक्षानी गवेषणा करे, अने भिक्षानो लाभ न थाय तो तेथी खेद न करे

अदीणो शब्दथी अेभ नकट थाय छे के दीनता जताववाथी आत्मानु अधःपतन अने जिनशासनकी लघुता थाय छे न विसीएज्ज शब्दथी अेभ सूचित करवु छे के आहारलाभ न थाय तो यधु आत्मिक प्रसन्नतानो परित्याग न करवो नेधअये पण्डिण शब्दथी सर्वथा शुद्ध भिक्षा ग्रहण करवानी योग्यता

भिक्षाग्रहणयोग्यताऽऽवेदिता । 'अमुच्छिओ' इतिपदेनाऽऽहारादिलोलुपता निराकृता । 'मायन्ने' इत्यनेन निर्दोषसरसभक्तपानादो प्राचुर्येण दीयमानेऽपि प्रमाणाधिकं न ग्राह्यमिति स्पष्टीकृतम् । 'एसणारण' इति-पदेनाऽऽयाकर्मादि-सकलभिक्षादीपानुसन्धानेनैव विशुद्धभिक्षाग्रहणं भवितुमर्हतीत्याविष्कृतम् ॥२६॥

मूलम्-वहु परघरे अत्थि विविह खाडम साडम ।

न तत्थ पडिओ कुप्पे, इच्छा देज्ज परो न वा ॥ २७ ॥

छाया—वहु परगृहे जस्ति विविध खाद्य स्वाद्यम् ।

न तत्र पण्डितं कुप्येत्, उच्छा दयात् परो न वा ॥२७॥

सान्वयार्थं—परघरे=गृहस्थके घरमें विविह=नाना प्रकारका खाद्य=द्राक्ष-पिस्ता बादाम आदि खाद्य साडम=एलची लृग आदि स्वाद्य बहु=बहुत अत्थि=हैं, (किन्तु) इच्छा=इच्छा मरजी है कि परो=गृहस्थ देज्ज-देवे वा=अथवा न=न देवे । नहीं देने पर नत्थ=उस गृहस्थ पर पडिओ=बुद्धिमान साधु न कुप्पे=कुपित न होवे ॥२७॥

टीका—'बहु' इत्यादि । परगृहे=गृहस्थभवने विविध=नैऋतकार खाद्य=द्राक्षा-पिस्तवाढामादिक, स्वाद्यम्=एलालवङ्गादिकम् बहु=प्रभूतमस्ति, किन्तु इच्छा चेत्

करनेकी योग्यता व्यक्त होती है । 'अमुच्छिओ' पदसे आहार आदिकी लोलुपताका त्याग ध्वनित होता है । 'मायन्ने' पदसे यह सूचित किया है कि निर्दोष और सरस आहार अधिक प्राप्त हो रहा हो तो भी प्रमाणसे अधिक नहीं ग्रहण करना चाहिए । 'एसणारण' पदसे यह द्योतित किया है कि आधाकर्म आदि भिक्षाके समस्त दोषोंका अनुसन्धान करनेसे ही विशुद्ध भिक्षाका ग्रहण होना सम्भव है ॥ २६ ॥

'बहु' इत्यादि । गृहस्थके घरमें भौति-भौतिके खाद्य और भौति-भौतिके स्वाद्य विद्यमान रहते हैं, उसकी इच्छा हो तो देवे, न हो तो

व्यक्त थाय छे अमुच्छिओ शण्ठथी आहार आदिनी लोलुपतानो त्याग ध्वनित थाय छे मायन्ने शण्ठथी अन्न सूचित करवामा आण्यु छे डे निर्दोष अने सरस आहार वधारे प्राप्त थछ रह्यो होय तो पणु प्रमाणथी वधारे अडणु न करवो लोथअे एसणारण शण्ठथी अन्न सूचित करवामा आण्यु छे डे आधाकर्म आदि भिक्षाना गधा दोषानु अनुसधान करवथी न विशुद्ध भिक्षानु अडणु सलपित छे (२६)

बहु० इत्यादि गृहस्थना घरमा तरेडु तरेडुना पाद्य अने लातलातना स्वाद्य विद्यमान होय छे, तेनी इच्छा होय तो आपे अने न होय तो न आपे

परः=गृहस्थः दद्यात् न वा दद्यात्, तत्र=दातरि, यद्वा तत्र=ग्यात्रे स्यात्रे तु अग्नी  
यमाने सति न कुप्येत्=न क्रुप्येत्—‘क्रोधोऽयमविवेकी? प्रचुरेऽपि बहुविज-  
खात्रादिके विद्यमाने साधवे न ददातीति क्रोधावेशदूषितान्तःकरणो न भवेत् ।  
अत्र ‘पडिए’ इति पदेन सदसद्विवेकशालित्व, तेन च मनोविजयित्वमात्रेदितम् ॥२७॥  
एतदेव प्रपठ्यते—‘सयणा०’ इत्यादि ।

मूलम्—सयणासणवत्थ वा, भक्त पाण व सजए ।

अदितस्स न कुप्पेज्जा, पच्चक्खेवि य दीसउ ॥ २८ ॥

छाया—शयनासनवत्थ वा, भक्त पान या सयतः ।

अददतो न कुप्येत्, प्रत्यक्षेऽपि च दृश्यमाने ॥२८॥

पूर्वोक्त विषय को ही विशद करते हुए कहते हैं—

सान्वयार्थः—सयणासणवत्थ—शयन वसति, आसन-पाटलादिक, वस्त्र-चादर  
आदि वा=अथवा भक्त=आहार व=तथा पाण=पानी आदि किसी भी वस्तुके  
पचक्खेवि य=प्रत्यक्ष-सामने पड़ी दीसउ=दीखने पर भी अदितस्स=नहीं देते  
हुए गृहस्थ पर सजए=साधु न कुप्पेज्जा=कोप न करे, (क्योकि)—“इच्छा देज्ज  
परो न वा” देवे न देवे गृहस्थकी मरजी है, ऐसा पूर्व गाथासे सबध है ॥२८॥

टीका—सयतः शयनासनवत्थ=शयन च आसन च वस्त्र चेत्येषा समाहारः,  
तत्र शयतेऽस्मिन्निति शयन वसतिः, आस्यते=उपविश्यतेऽस्मिन्निति आसन=  
पीठफलकादिक, वस्यते=आच्छाद्यते शरीरमनेनेति वस्त्र=शाटकादि, भक्त=

न देवे । यदि न दे तो साधुको ऐसा क्रोध न करना चाहिए कि—‘यह  
कैसा अविवेकी है कि इतना बहुत खाद्य स्वाद्य मौजूद होने पर भी  
साधुको नहीं देता ।’ यहाँ ‘पडिए’ पदसे सत् और असत्का विवेक  
प्रगट किया है और उससे मनको जीतना सूचित किया है ॥ २७ ॥

इसीका विस्तार पूर्वक कथन करते हैं—‘सयणा०’ इत्यादि ।

यदि कोई गृहस्थ शय्या, आसन, वस्त्र, भक्त या पान सामने

ले न आपे तो साधुको जेवो क्रोध न करवो जेधजे के, ‘आ देवो अविवेकी  
छे के ‘आटला गधा पाध स्वाध डाब्बर छोवा छता पणु साधुने आपतो नथी’  
अही पडिए शण्ठथा सत् अने असत्तो विवेक प्रकट कर्यो छे, अने तेथी  
मनने छतवानु सूचित कर्यु छे (२७)

जेनु विस्तारपूर्वक कथन करे छे—सयणा० इत्यादि

जे केछ गृहस्थ शय्या, आसन, वस्त्र, भक्त या पान सामे देयाता

भोज्य, पान=पेयम् अददतः=अप्रयच्छतः, (अत्र सम्बन्धसामान्ये पठ्ठी,) प्रत्यक्षेऽपि दृश्यमाने शयनादीं न कुप्येत्=कोपावेशेन चित्तविकृतिं न कुर्यादिति सूत्रार्थः ॥२८॥

मूलम्—इत्थिय<sup>१</sup> पुरिस<sup>४</sup> वावि<sup>३</sup>, डहर<sup>२</sup> वा महल्लग<sup>५</sup> ।

वदमाण<sup>८</sup> न जाण्जा<sup>६</sup>, नो अ<sup>१०</sup> ण फरुस<sup>१४</sup> वण<sup>१२</sup> ॥ २९ ॥

छाया—स्त्रिय पुरुष वाऽपि, डहर वा महान्तम् ।

वन्दमान न याचेत्, नो च त पुरुष वदेत् ॥ २९ ॥

सान्त्वयार्थः—इत्थिय=स्त्री वावि=अथवा पुरिस=पुरुष डहर=डोटा-वालक वा=या महल्लगं=जुडा-जुवान या वृद्धा हो वदमाण=वन्दना करते हुएको न जाण्जा=न जाँचे-उससे भिक्षाके लिए याचना न करे, (और दूसरे समय याचना करने पर यदि किसी कारण वश वह भिक्षा न दे तो) ण=उस गृहस्थके प्रति साधु फरुस=मठोर वचन नो य=नही वण=गोले ॥२९॥

टीका—‘इत्थिय’ इत्यादि । स्त्रियम् अपिवा पुरुष डहर=वालक, ‘देशीयोऽय शब्द’ जन्मतः पञ्चदशवर्षं यावत्, वा=अथवा महान्त=तरुण स्थविर वा वन्दमान=वन्दना कुर्वन्त न याचेत्=न भिक्षेत । वन्दनप्रवृत्तस्य गृहस्थस्य याचनाया चित्त-विक्षेपादिना वन्दनान्तराय’, चित्तप्रैरस्यप्रसङ्गश्च - ‘कीदृशोऽय कुक्षिम्भरिः साधु-र्यद्वन्दनसमयेऽपि न धैर्यं दधाति, भिक्षायामेव दत्तचित्तो रङ्कव’-दित्यादि ।

दिखाई देनेपर भी साधुको न दे तो भी साधु क्रोध न करे ॥ २८ ॥

‘इत्थिय’ इत्यादि । स्त्री, बालक, युवक (जुवान) या वृद्ध, वन्दना कर रहा हो तो उससे उस समय भिक्षाकी याचना नहीं करनी चाहिए । कोई वन्दना कर रहा हो और उससे याचना करे तो वन्दनामें अन्तराय पड़ती है, और गृहस्थके मनमें ऐसा विचार आता है कि—‘देखो यह साधु कैसा पेट (पेट-भरा) है कि वन्दना करते समय भी धीरज नहीं

छोपा छता पशु साधुने न आवे तो पशु साधु क्रोध न करे ( २८ )

इत्थिय० इत्यादि स्त्री, बालक, जुवान या वृद्ध वन्दना करी रक्षा छोय तो ते वधते तेमनी पास भिक्षानी याचना करवी न नोभये केध वदना करी रक्षा छोय अने तेमनी पास याचना करवाभा आवे तो वदनाभा अतराय पडे छे, अने गृहस्थना मनमा अवेवे विचार आवे छे के ‘जुवो, आ साधु देवो पेट भरौ छे के वदना करती वधते पशु धीरज धरतो नथी, रकनी पेटे

अन्यदा याचितेऽपि भक्तपानाद्यभावाददाने त च गृहस्थ परप=निगुरवाक्य  
न वदेत् मुनिरिति शेष' । यथा व्यर्थं तद्बन्दनचेष्टा, नाल साधुतोपाय, केवल-  
मिच्छुकुमुमवद्धारमणीयतामात्रमाकलयसी' त्यादि ॥२९॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९  
मूलम्-जे न वदे न से कुप्पे, वदिओ न समुक्कसे ।

१० ११ १२ १३  
एवमन्नेसमाणस्स, सामन्नमणुचिट्ठई ॥ ३० ॥

छाया—यो न वन्दते न तस्य कुप्येत्, वन्दितो न समुत्कर्षयेत् ।

एवमन्वेपमाणस्य, श्रामण्यमनुतिष्ठति ॥ ३० ॥

सान्त्वयार्थः—जे=जो गृहस्थ न वदे=साधुको वन्दना न करे तो से=उस पर  
न कुप्पे=क्रोध न करे (और) वदिओ=वन्दना क्रिया हुआ न समुक्कसे=गर्वित  
न होवे-घमड न करे। एव=इस प्रकार अन्नेसमाणस्स=जिनशासनकी आराधना  
करनेवालेके सामन्न=साधुपना चारित्र अणुचिट्ठई=आराधित स्थिर=होता है,  
अर्थात् मान अपमानमें समान रहनेवाले मुनिको ही सम्यक् प्रकारसे चारित्रकी  
आराधना होती है ॥३०॥

टीका—'जे' इत्यादि । यो गृहस्थः साधु न वन्दते से=तस्य अवन्दमानस्य  
न कुप्येत्=रीहगय विवेकविकल, यन्माणुपस्थित साधुमवमन्यते' इति कृत्वा

धरता, रक्की तरह केवल भिक्षाकी चिन्ता कर रहा है । अन्य समय  
याचना करने पर भी यदि गृहस्थ भिक्षा न दे तो कठोर वचन न बोले  
कि—'बस रहने दे, तेरी वन्दना बृथा है, इससे साधुओंको मन्तोष  
नही हो सकता, तू टेसू (पलाश-केसूडा) के फूलकी नाईं दिखावटी  
रमणीयता (नम्रता) धारण करता है' इत्यादि ॥ २९ ॥

'जे' इत्यादि । कोई साधुको वन्दना न करे तो उसे उसपर कुपित  
न होना चाहिए कि—'यह कैसा अविवेकी है कि सामने उपस्थित साधुका

डेवण भिक्षानी चिता करी रह्यो छे' भील्ल सभये याचना करता पणु जे  
गुहस्थ भिक्षा न आपे तो साधु कठोर वचन न बोले के 'अस, रहेवा हो,  
तारी वदना बृथा छे, तेथी साधुज्जेने सतोष नथी थज शकतो, तु डेसूडाना  
डूलनी पेठे देभाडवानी रमणीयता (नम्रता) धारणु करनारे छे,' इत्यादि (२९)

जे० इत्यादि डेअ साधुने वदना न करे तो साधुज्जे तेना पर कुपित न  
थवु जेअज्जे के 'आ डेवो अविवेकी छे डे सामे जेबेला साधुने अनाहर करे छे ?'

कोपावेशेन मनो विकृतं न विद्वयात् । वन्दितं=सार्वभौमादिनाऽपि नमस्कृतं च  
न समुत्कर्षयेत् आत्मानमिति शेषः, 'अहमेतादृशो माननीयो जगति, यदेतन्निवा  
नरेन्द्रादयोऽपि मम चरणौ प्रणमन्ती'त्याग्रभिमानं न कुर्यादित्यर्थः । एवम्=  
उक्तप्रकारेण अन्वेषमाणस्य=जिनशासनमनुतिष्ठत् सायोः श्रामण्य=साधुत्व  
चारित्र्यमिति यावत् अनुतिष्ठति=स्थिरीभवति, मानापमानसमानमानसस्यैव  
साधोर्निरतिचारचारित्र्य सम्पद्यत इति भावः ॥ ३० ॥

स्वपक्षे चौर्यं निषेधयति-'सिया' इत्यादि ।

मूलम्-सिया एगडओ लड्डुं, लोभेण विणिगूहड् ।

सामेयं दाइय सत्, ददुण सयमायए ॥ ३१ ॥

छाया—स्यात् एकक' ल'वा, लोभेन विनिगूहते ।

ममेद दर्शितं सत्, ददुवा सयमाददीत ॥ ३१ ॥

अथ स्वपक्ष-साधुपक्ष में चोरी का निषेध बताते हैं—

सान्वयार्थः-सिया=रुदाचित् अगर एगडओ=जपन्यप्रकृतिवाला अकेला  
गोचरी गया हुआ साधु लड्डुं=सरस अशनादि पाकर लोभेण=खानेके लोभसे  
(उसे) विणिगूहड्ड=छिपा छेपे-नीरस वस्तुको ऊपर रखकर सरस वस्तुको उसके  
नीचे दया रखे, क्योकि मम=मेरी दाइय सत्=दिखलाई हुई एय=इस वस्तुको  
ददुण=सरस देखकर सय=स्वय आचार्य आदि खुद आयण=छेलेंगे अर्थात् मुझे  
नहीं देंगे या थोड़ी देंगे ॥३१॥

अनादर करता है?, तथा चक्रवर्ती आदि राजा महाराजा भी वन्दना  
करे तो आत्मप्रशसा (धमड) न करे कि-'मैं ससारमें ऐसा माननीय  
हूँ कि ऐसे राजा महाराजा भी मेरे चरणोंमें गिरते हैं । इस प्रकार  
जिन शासनमें स्थित साधुका चारित्र्य स्थिर (दृढ) रहता है, अर्थात्  
सत्कार और तिरस्कार होने पर अन्तःकरणमें विकार न करनेवाले अन-  
गारका आचार निरतिचार पलता है ॥ ३० ॥

स्वपक्षमें चौर्यका निषेध करते हैं-'सिया' इत्यादि ।

तथा अकवर्ती आदि राजा महाराजा पण्य पहना करे तो आत्मप्रशसा  
(धमड) न करे कि-हूँ जगतमा ऐसे माननीय हूँ कि ऐसे राजा महाराजा  
पण्य मान्य चरणोमा पडे छे 'मेरी शीते जिनशासनमा स्थित हूँ साधु  
आदि स्थिर (दृढ) रहे छे, अर्थात् सत्कार अने तिरस्कार यथा पण्य अतःकरणमा  
विकार न बनना अनगारका आचार निरतिचार पण्य पडे छे (३०)

स्वपक्षमा चौर्यको निषेध करे छे-'सिया' इत्यादि

टीका—स्यात्=इदाचित् एकरुः=कश्चिज्जघन्यपकृतिकः साधुः लब्धः=मास्य आहारादिकमिति शेषः लोभेन=उत्कृष्टसरसस्तुलिप्सया विनिगृहते=सवृणुते नीरसस्तुजातमुपरि कृत्योत्कृष्टसरसद्वस्तु समपहृते । अपहृत्वे हेतुमाह—ममेदमुत्कृष्ट वस्तु 'दाड्य' =दग्धित सत् दृष्ट्वा आचार्यादिः स्वयमेवाऽऽदीत=गृह्णीयात्, न मद्य दास्यति अल्प गा दास्यतीति भावः ॥ ३१ ॥

अपहृत्करणस्य दोषमाह—'अत्तद्वा' इत्यादि ।

मूलम्—अत्तद्वागुरुओ लुब्धो, बहु पाव पकुर्वई ।

दुत्तोसओ य से होइ, निव्वाण च न गच्छई ॥ ३२ ॥

छाया—आत्मार्थगुरुको लुब्ध., बहुपाप प्रकुरुते ।

दुस्तोपमथ स भवति, निव्वाण च न गच्छति ॥ ३२ ॥

पूर्वोक्त आचरण करने वाले साधु की क्या दशा होती है? सो बताते हैं—

सान्ययार्थ'—अत्तद्वागुरुओ=अपने स्वार्थ साधनमें लगा हुआ लुब्धो=

जिह्वाका लोलुपी से=वह साधु बहुत=बहुत पाव=पाप पकुर्वई=करता है, य=और (इस भवमें) दुत्तोसओ=असन्तोपी होइ=बना रहता है, च=तथानिव्वाण=मोक्षको न गच्छई=नहीं पाता है, अर्थात् अनन्तससारी होकर चतुर्गतिमें भटकता है ॥ ३२ ॥

टीका—आत्मार्थगुरुकः=आत्मनः अर्थ =प्रयोजनमित्यात्मार्थ स एव गुरु.=

प्रधान यस्य स तथोक्त. स्वार्थसाधनसमर्थ इत्यर्थः, यद्वा आत्मार्थमेव गुरु=प्रधान

वस्तु यस्य स तथोक्त. अन्याऽलक्षितोत्कृष्टसरसवस्तुजाताऽऽस्वादकः अत एव

लुब्ध =मनोरमरसाभिलाषी सन् बहु=प्रचुर पापम्=आत्ममालिन्यजनक दुष्कर्म

जो क्षुद्रप्रकृतिवाला साधु उत्कृष्ट सरस आहार प्राप्त करके इस

विचारसे उसे छिपा लेता है कि—मैं इसे दिखा दूंगा तो आचार्य आदि

इसे ले लेंगे—मुझे न देंगे अथवा थोड़ासा देंगे ॥ ३१ ॥

'अत्तद्वा' इत्यादि । वह दूसरोंसे छिपाकर सरस आहार करनेवाला

स्वार्थ साधनमें समर्थ साधु मनोज्ञ रसका अभिलाषी होकर अत्यन्त ही

ले क्षुद्र प्रकृतिवालो साधु उत्कृष्ट सरस आहार प्राप्त करीने से वा विचारशी

सेने छुपाव के—हुं सेने जतावीश तो आचार्य आदि से लई लेशे, मने नहि

आपे अथवा थोडा न आपसे' ( ३१ )

अत्तद्वा० इत्यादि से भीजती छुपावीने सरस आहार करनारे स्वार्थ साधनमा समर्थ साधु मनोज्ञ रसना अभिलाषी थधने अत्यंत पापकर्म

करोति=विधत्ते, स चाऽस्मिन् जन्मनि दुस्तोषकः=अन्तप्रान्ताग्राहारेण दु.सम्पा-  
दनीयतोपः-असन्तोषी भवति, निर्वाण=मोक्ष च न गच्छति=नोपैति ।

‘अत्तद्वागुरुओ’ इत्यनेन पुद्गलानन्दित्व, ‘लुद्धो’ अनेन मायापरत्व  
तस्करवृत्तित्व च प्रकटितम्, ‘दुत्तोसओ’ इत्यनेन चेप्सितवस्त्वप्राप्तौ सन्तोषा-  
भावः सूचितः ॥ ३२ ॥

गुरुसमक्षापहारकमुक्त्वा गुरुपरोक्षतोऽपहारकमाह-‘सिया’ इत्यादि ।

मूलम्-सिया एगइओ लद्धु, विविह पाण-भोयण ।

भद्गं भद्गं भोच्चा विवन्नं विरसमाहरे ॥३३॥

छाया—स्यात् एरु. लब्ध्वा, विविध पान-भोजनम् ।

भद्रक भद्रक भुक्त्वा, विवर्णं विरसमाहरेत् ॥ ३३ ॥

सान्वयार्थ -एगइओ=अकेला पूर्वोक्त स्वभाववाला रसलोलुपी साधु गोचरी  
गया हुआ सिया=रुदाचित्-कोई वस्तु ऐसा भी करे कि विविह=नाना प्रकारके  
पाण भोयण=आहार-पानीको लद्धु=पाकर (उसमेंसे) भद्गं-भद्गं=अच्छे-अच्छे  
सरस आहारको भुच्चा=वही रुहीं एकान्त स्थानमें खाकर विवन्नं=विकृत वर्ण-

पापकर्मका उपार्जन करता है । वह इस जन्ममें साधारण, नीरस आहारसे  
कभी सन्तुष्ट नहीं होता, न मोक्ष प्राप्त कर सकता है ।

‘अत्तद्वागुरुओ’ इस पदसे पुद्गलानन्दीपन, ‘लुद्धो’ पदसे  
मायाचारमें परायणता तथा तस्करवृत्ति ( चोरी ) और ‘दुत्तोसओ’  
पदसे अभीष्ट वस्तु न मिलने पर असन्तोष सूचित किया है ॥ ३२ ॥

गुरुसमक्षका अपहार कहकर अब गुरुके परोक्षका अपहार कहते हैं-  
‘सिया’ इत्यादि ।

उपान्वन उरे छे त आ जन्ममा साधारण्य नीरस आहारथी कदापि सन्तुष्ट  
न थता मोक्षने प्राप्त करी शक्ते। नथी

अत्तद्वागुरुओ अे पदथी पुद्गलानन्दीपण, लुद्धो पदथी मायाचारमा  
परायण्यता तथा तस्करवृत्ति ( चोर्यवृत्ति ) अने दुत्तोसओ पदथी अभीष्ट वस्तु  
न मजवाथी उपन्यते। अमताय सूच्यत कर्ये छे (३२)

शु३ स क्षने अपहार कडीने छे शु३नी परोक्षने अपहार कडे छे-  
सिया० इत्यादि



वाले बाल चने आदिका बना हुआ तृण आदि जिसमें बहुत हों ऐसे (तथा) विरस=रवणादि रस सहित अशनादिको आहरे=उपाश्रयमें लावे ॥३३॥

टीका—स्यात्=रदाचित् एरुः=रश्चित् रसलोलुपी विविध पान भोजन लब्ध्वा भिक्षाचर्यायामेव यत्र कुत्रचिदलक्षितप्रदेशे भद्रक भद्रकम्=उत्कृष्टमुत्कृष्ट बहुविधानादिषु प्रशस्त प्रशस्तमेव घृतपूराऽपूपादिकं श्रुत्वा विवर्ण=विकृतवर्णं वल्लचणकादिनिष्पन्न तृपादिवहुल विरस=रवणादिरसवर्जितमन्नादिकम् आहरेत्=आनयेत् वसताविति शेषः ॥३३॥

एव करणे किं प्रयोजनम् ? इत्याह—‘जाणतु’ इत्यादि ।

मूलम्—जाणतु ता इमे समणा, आययट्टी अय मुणी

सतुट्ठो सेवई पत, ल्हवित्ती सुतोसओ ॥३४॥

छाया—जानन्तु तावत् इमे श्रमणाः आत्मार्थी अय मुनि ।

सन्तुष्टः सेवते प्रान्त, रूक्षवृत्तिः सुतोपकः ॥ ३४ ॥

वह ऐसा क्यों करता है ? इसमें कारण कहते हैं—

सान्त्वयार्थ,—ता=प्रथम इमे=ये-उपाश्रयमें रहे हुए दूसरे समणा=साधु (मुझे इस प्रकार) जाणतु=जानें कि अय=यह मुणी=साधु आययट्टी=मोक्षार्थी आत्मार्थी है, सतुट्ठो=जैसा मिला उसीमें सन्तोप करनेवाला ल्हवित्ती=सरस स्निग्धादि आहारकी अभिलाषारहित सुतोसओ=थोड़े आहारसे भी सतोषी है और पत=वासी कुसी तथा निस्सार अन्नादिका सेवई=सेवन करता है ॥३४॥

कदाचित् कोई रसलोलुपी साधु विविध प्रकारका पान भोजन पाकर अच्छा-अच्छा भोजन भिक्षाचरीमें ही किसी एकान्त स्थानमें खावे, और बाल चणक आदि अन्त-प्रान्त तथा विना नमक मसालेका ठढा आहार उपाश्रयमें ले आवे ॥ ३३ ॥

ऐसा करनेका प्रयोजन कहते हैं—‘जाणतु’ इत्यादि ।

कदाचित् केर्छ रसलोलुपी साधु विविध प्रकारका पान भोजन भेजनीने साउ-साउ भोजन भिक्षाचरीमा ज ठाँ छेकाल स्थानमा भाँछे ले अने बाल चण्णा आदि अन्त-प्रांत तथा भीक्षा भरया विनाने नीरस ठंडो आहार उपाश्रयमा ले आवे ( ३३ )

ऐस करवानुं प्रयोजन कहे छे—जाणतु० इत्यादि

टीका—तावत्=निश्चयेन इमे=मानसप्रत्यक्षविषयाः उपाश्रयस्थाः श्रमणाः=साधवः- 'अयमुनिः आत्मार्यी=आत्महितार्थी सन्तुष्टः=यथाव्यसन्तोपी रक्षवृत्तिः=सरसाञ्जभिक्षाद्वी सुतोपक'=<sup>१</sup>जल्पेनापि <sup>२</sup>परितोपशीलः <sup>३</sup>प्रान्त=पर्युपित निस्सार वाऽन्नादिक सेवते' इति मा जानन्तु ॥ ३४ ॥

किमर्थं स्वदोषगोपनमाचरती ?-त्याह-'पृथण्टा' इत्यादि ।

<sup>१</sup> मूलम्-<sup>२</sup>पृथण्टा <sup>३</sup> जसोकामी, <sup>४</sup>माणसम्मानकामम् ।

<sup>५</sup> बहु <sup>६</sup> पसवई <sup>७</sup> पाव, <sup>८</sup> मायासल्ल <sup>९</sup> च <sup>१०</sup> कुवड ॥ ३५ ॥

छाया—पूजनार्थः यश'कामी, मानसम्मानकामुकः ।

इह प्रवृत्ते पाप, मायाशल्य च कुरुते ॥३५॥

उपर्युक्त साधु के दोष बताते हैं—

सान्वयार्थ'-पृथण्टा=ब्रह्म-पात्रादिसे सत्कार चाहनेवाला जसोकामी=अपने महत्त्व और प्रसिद्धिका इच्छुक माणसम्मानकामम्=मान-सम्मानका अभिलाषी साधु वह=बहुत पाव=पाप मोहनीयादि को पसवई=पैदा करता है, च=और मायासल्ल=रूपटरूप भावशल्यको कुवड=उत्पन्न करता है । तात्पर्य यह है कि हृदयमें खुबे हुए पापके अग्रभागरूप द्रव्य शल्यकी तरह हृदयमें रहा हुआ यह मायारूप भाव-शल्य मनुष्यको, अनन्त दुस्सह दु खोका कारणभूत चतुर्गतिक समारमें घृमाता हुआ अविचलशान्तिमय सुखसे वञ्चित कर देता है ॥३५॥

ये उपाश्रयमें स्थित साधु मुझे ऐसा समझें कि-' यह साधु आत्मार्यी है, जैसा मिला उसीमें सन्तोपी है, सरस आहारकी आकाक्षा नहीं करता, थोड़े ही आहारसे सन्तुष्ट हो जाता है और साररहित ठठा अन्न-प्रान्त आहारका सेवन करता है' ॥३४॥

अपना दोष छिपाता क्यों है? सो कहते हैं-'पृथण्टा' इत्यादि ।

आ उपाश्रयमा रहेला साधु भने जेवो माने के- 'आ साधु आत्मार्यी' छे, जेवो आहार भज्जे। तेमा सतोप माननासे छे, सरस आहारनी आकाक्षा करतो नथी थोडा न आहारथी सन्तुष्ट थं नथ छे, अने साग्दित ठठा अन्न प्राप्त आहारनु सेवन करे छे, ' (३४)

पोताना दोष उभ छुपावे छे ? ते कहे छे-पृथण्टा० इत्यादि

टीका—पूजनार्थः=पूजन=वल्ल पात्रा ऽन्न पानादिना सत्कारः स एवार्थः= प्रयोजन यस्य स तथोक्तः प्रशस्तवस्तुपभोगार्थीत्यर्थः, अत एव यश.कामी=यश.= स्वमहत्त्वप्रसिद्धिस्तत्कामयते=इच्छतीति 'अहो! अयमेव सः' इत्येव प्रशंसावचना भिलापीत्यर्थः, मानसम्मानकामुकः=मानश्च सम्मानश्चेति मानसम्मानो तयोः कामुक इति विग्रहः, तत्र मान=अभ्युत्थानादिलक्षण आदरः, सम्मानः= गुणोत्कीर्त्तनेन गौरवप्रकटनम्, आदरगौरवभिलाषुक इत्यर्थः। एव कुर्वन् साधु. किं सम्पादयती? त्याह गहु=प्रभूत पाप=दुष्कृत प्रमूते=जनयति, च=पुनः माया शल्य=माया=शाठ्येन मनोवाक्यप्रवृत्तिः, सैव शल्य=शल्यते=ग्राह्यते पीडयते आत्माऽनेनेति विग्रहः, मायालक्षणं भावशल्य कुरुते=उत्पादयति, हृदयनिखात चुटितनाणाग्ररूपद्रव्यशल्यवदिदमायारूप भावशल्य हृदयस्थित सत् निरन्तराऽनन्त दुस्सहदुःखकारणीभवत् चतुर्गतिकससारे भ्रामयत् अविचलशान्तिमुखाद् दूर तरीकरोति तादृश साधुमिति भावः ॥३५॥

अच्छे-अच्छे वल्ल पात्र अन्न पान आदिसे अपना सत्कार चाहनेवाला, प्रशस्त वस्तुओंके भोगका लोलुपी, 'अहो! यह वही है' ऐसे यशका अभिलाषी, मान (आनेपर खड़ा होजाना) तथा सम्मान (गुणगान द्वारा गौरव प्रकट करना) की इच्छावाला साधु बहुत पापोंको तथा कपटरूप मायाशल्यको उत्पन्न करता है। छातीमें चुभकर वही टूट जानेवाले द्रव्य-शल्य (नीरकी नोक) की तरह हृदयमें स्थित मायारूप भाव-शल्य निरन्तर असीम व्यथाका कारण होता है, तथा चतुर्गति ससारमें इधर-उधर भटकाता हुआ अविचल शान्तिमय सुखसे उस साधुको वञ्चित (अलग) कर देता है ॥३५॥

सारा-सारा वल्ल पात्र अन्न पान आदिथी पीतानो सत्कार खाडनार, प्रशस्त वस्तुओंनाभोगने लोलुपी-अहो! ओ आ न छे' ओवा यशने अभिलाषी, मान (आवता न उला थर्ध नवु) तथा सम्मान (गुणगानद्वारा गौरव प्रकट करवु) नी छच्छावाणे साधु धव्वा पापाने तथा कपटरूप माया शल्यने उत्पन्न करे छे छातीमा पेसीने त्या न तूटी ननारा द्रव्य शल्य (तीरनी अण्णी) नी पेंडे हृदयमा रडेछे मायाश्लय भाव शल्य निरन्तर असीम व्यथानुं कारवु पने छे, तथा चतुर्गति ससारमा अडी-तडी भटकाता अविचल शान्तिमय सुखथी ओ साधुने वञ्चित (रहित) करी नाणे छे (३५)

मद्यपानप्रतिषेधमाह-‘सुर वा’ इत्यादि ।

५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२  
मूल्-सुर वा, मेरुगं चावि, अन्न वा मज्जगं रस ।

१३ १४ १५ १ ३ ४ २  
ससम्बन्ध न पिवे भिक्षुः, जस सारखमप्पणो ॥ ३६ ॥

जाया—सुरा वा मेरु वाऽपि, अन्यद् वा मायक रसम् ।

ससाक्षि न पिवेद् भिक्षुः, यशः सरक्षन् आत्मनः ॥३६॥

अथ मद्यपान का दोष बताते हैं—

सान्प्रयार्थः—भिक्षुः=साधु अप्पणो=अपने जन्म=सयमको सारखन्व=

वचाता हुआ सुर=गौडी, मा वी और पैष्टी, इन तीनों प्रकारकी मदिराको वा=

‘वा’ शब्दसे अथवा गारहो प्रकारकी मदिराको चावि=तथा मेरुग=सरकेको

अन्न वा=और भी दूसरे प्रकारके मज्जग=मदजनक भग गाजा अफीम चरसआदि

मादक रस=रस द्रव्य को ससम्बन्ध=केवली भगवानकी साक्षीसे अर्थात् उनका

ज्ञान सर्वव्यापक होनेसे एकान्तमें भी न पिवे=नही पिये ॥ मदिराके वारह भेद

इस प्रकार हैं—(१) महुआ, (२) फणस, (३) द्राख, (४) खजूर, (५) ताड

(ताडी), (६) गन्ना=गेरडी, (७) धावडीके फूल, (८) मक्खियोंकी शहद, (९)

मैठ (कठोती), (१०) मजु (अन्य प्रकारकी शहद), (११) नारियल, और (१२)

पिष्ट (आटा), मदिरा इन वारह वस्तुओसे बनती है ॥३६॥

टीका—भिक्षु आत्मनः=स्वस्य यशः=सयम सरक्षन् सुरा=मदिरा, सा च

त्रिविधा गौडी, मा वी, पैष्टी चे’-ति । तत्र गौडी=गुडनिपादिता, मा वी=मधु-

(महुडा) सपादिता, पैष्टी=त्रीद्यादिपिष्टनिर्वृतेति । यद्वा ‘पिट्टेण सुरा होइ’ इति

मद्यपानका निषेध कहते हैं—‘सुर वा’ इत्यादि ।

जो साधु अपने सयमकी रक्षा करना चाहते हैं उन्हें मदिरा या

सिरका एकान्तमें भी कदापि न पीना चाहिए । मदिरा तीन प्रकारकी है

(१) गौडी (२) मा-वी और (३) पैष्टी । गुडसे बनाई हुई गौडी, महुआसे

बनाई हुई मा-वी तथा धान्य आदिके पिष्ट (आटे) से बनाई हुई पैष्टी

कहलानी है । ‘पिट्टेण सुरा होइ’ इस वचनसे यही जान पड़ता है कि—

मद्यपानको निषेध कहे है—सुर वा० इत्यादि

वे साधु पीताना मद्यम पी न्ना उरवा ध्वजे छे, तेखे मदिरा या सरके

जेअतमा पणु उदापि पीये न न्नेअमे भदिग त्रण प्रकारनी छे (१) गौडी,

(२) माध्वी, (३) पैष्टी गोजमाथी बनावेली गौडी, महुआमाथी बनावेली

माध्वी तथा धान्य आदिना पिष्ट (आटा) माथी बनावेली पैष्टी कहेवाय छे

वचनाद् ग्रीवादिपिष्टनिर्वृत्तैश्च सुरेत्युच्यते । चन्द्रहासाभिध मद्यमिति वा । मेरु-  
सरकानामधेय मद्यम् । अन्यद्वा मात्रक=मदजनक रसम् । मादस्त्वेन द्वादशविध  
मद्यस्य तदितरस्य विजयादेश्च सर्वस्य समग्रः, तदृक्तमितरत्र मदहेतुद्रव्य मद्य  
मित्यभिधीयते' इति । द्वादशविधमद्यानि यथा—

“ माध्वीक पानस द्राक्ष, खार्जूर तालमैक्षवम् ।

मैरेय माक्षिक टाङ्क, माधुक नारिकेलजम् ॥१॥

मुख्यमन्नविकारोत्थ, मद्यानि द्वादशैव च ।” इति ।

एतत्सर्वं सुरादिक ससाक्षि न पिबेत्, साक्षिभिः केवल्यादिभिः सहेति ससाक्षि

धान्य आदिके आटेसे मदिरा बनती है। अथवा पैट्टी मदिरा 'चन्द्रहास'  
नामकी मदिरा समझनी चाहिए। इनके सिवाय भग गाँजे आदि  
और कोई भी नशैली वस्तुका साधुको सेवन नहीं करना चाहिए  
जैसा कि कहा है—'मदके कारण-स्वरूप पिघले हुए पदार्थको मद्य कहते हैं'  
मद्य बारह प्रकारके समझने चाहिए वे ये हैं—

“(१) महुआका, (२) पनसका, (३) दाखका, (४) खजूरका, (५)  
ताडका ( ताडी ), (६) साठेका, (७) मैरेय-धौ-धावडीके फूलका, (८)  
माक्षिक (मखिख्योंकी शहद) का, (९) टक (कवीठ कैथ) का, (१०)  
मधुका, (११) नारियलका और (१२) पिष्ट (आटे) का बना हुआ  
मद्य । ये मद्यके मुख्य भेद बारह हैं ।”

इन सबको केवली भगवानकी साक्षीसे न पिये । केवल भगवानकी

पिट्टेण सुरा होइ अे वचनथी अेम भाद्रुम पडे छे डे-धान्य आदिना आटाथी  
मदिरा जाने छे अथवा पैट्टी मदिरा 'चन्द्रहास' नामनी मदिरा समझनी लेइअे  
ते उपरात लाग, गान्जे, पील पील डोई / पणु डेरी वस्तुनु सेवन साधु  
न करे, अेमडे कछु छे डे—

'मदना कारण स्वस्व पीगणेल्ल पदार्थ'ने मद्य कडे छे' मद्य बार प्रकारना  
समझवा, ते नीचे मुजण—

“(१) महुआना, (२) इण्डुसना, (३) द्राक्षना (४) खजूरना (५) ताडना  
(ताडी), (६) शेरडीना, (७) मैरेय धावडीना फूलना, (८) माक्षिक-मधना (९) टक  
(डोई)ना, (१०) मधुना, (११) नारियेणना, अने (१२) पिष्ट (आटा) ना  
जानेले मद्य अेम मद्यना मुख्य लेइ बार छे

अे जधाने डेवणी भगवाननी साक्षीअे पीअे नहि डेवणी भगवाननी साक्षी

केवल्यादीना साभित्य कदापि कचिदपि प्रतिरोद्धमशम्य, तेषा सर्वज्ञत्वात्सर्वदर्शि-  
त्वाच्च, तेन एकान्तेऽपि न पिबेदित्यर्थः ॥३६॥

मूलम्-पियए एगओ तेणो, न मे कोई वियाणड ।

तस्स पस्सह दोसाड, नियडि च सुणेह मे ॥ ३७ ॥

छाया—पिरति एरू. स्तेनः, न मे कोऽपि विजानाति ।

तस्य पश्यत दोषान्, निरुक्तिं च शृणुत मे ॥३७॥

सान्वयार्थ—तेणो=जो भगवानकी आज्ञाके बिना ग्रहण करनेवाला होनेके कारण चोर साधु एगओ=अकेला, एका-तमें रहा हुआ अर्थात् अपने सहचर धर्मको भी छोडा हुआ, 'मे=मेरे-इस मदिरापान-को या मुझे कोई=कोईभी न वियाणड=नही जानता है' (ऐसा समझ कर) पियए=मदिरा पीता है, तस्स=उस साधुके दोसाड=सयममें मलिनता पैदा करनेवाले दोषोंको पस्सह=देखो, च=और नियडि=एक कपटको छिपानेके लिए किये जानेवाले दूसरे कपटको मे=मेरेसे सुणेह=सुनो ॥३७॥

टीका—'पियए' इत्यादि । यं स्तेन. तीर्थङ्करानादिदृष्ट्वेनाऽदत्ताऽऽदापि त्वाचौरः, एरूः=एकान्तस्थितः आत्मसहचर धर्ममपि विहाय वर्त्तमानः सन् 'न मे=न मा, न मम सुरादिपान वा कोऽपि विजानाति' इति मत्वा पिबति=गल-मिलाध.सयोगानुरूपव्यापारमिपय करोति सुरादिकमिति शेषः, तस्य=द्रव्यलि-

साक्षी कभी कही नहीं रूक सकती, क्योंकि वे सर्वदर्शी है, अतः तात्पर्य यह हुआ कि एकान्तमें भी मद्य न पिये ॥ ३६ ॥

'पियए' इत्यादि । हे शिष्य ! भगवान् तीर्थङ्करकी आज्ञाके बिना ग्रहण करनेवाला, अत एव चोर, आत्माके सहचर धर्मको भी त्याग कर एकान्तमें स्थित होकर ऐसा समझता है कि—'मुझे या मेरे मदिरा-पानको कोई नहीं जानता' ऐसा जानकर मदिरा पान करता है, उस द्रव्यलिङ्गी

कदापि क्याय शैकाती नहीं, जरूण उ ते सर्वदर्शी छे, अेटले तात्पर्य अे छे डे अेकातमा पणु भद्य पीवो नडि (३६)

पियए० इत्यादि छे शिष्य ! भगवान् तीर्थंकरनी आज्ञा बिना ग्रहण करनार अेटले अेण, आत्माना सहचर धर्मने पणु त्यागीने अेकातमा स्थित थधने अेम समझे छे डे—'भारा आ मदिरापानने केंधं नलणतु नहीं' अेम समझने के मदिरापान करे छे ते द्रव्यलिङ्गी साधुना सयमने इषित करनारी अेष्टाअे।

દ્વિનઃ સાધોઃ દોપાન્=સયમમાલિન્યકારિચેષ્ટાપ્રિશેપાન પશ્યત=જ્ઞાનવિપયીકુરુત,  
 ચ=પુનઃ નિકૃતિઃ=પૂર્વકૃતકપટાપરણાય કપટાન્તરકરણલક્ષણા માયા, પ્રથમકપટ  
 સુરાપાન, દ્વિતીયમનૃતભાષણેન તત્સગોપનમિતિભાવઃ, મે=મમ નિરૂપયતઃ સકાશાત્  
 શૃણુત=શ્રવણગોચરીકુરુત । ગુરુઃ શિષ્યાનામન્ય કથયતીતિ ભાવઃ ॥૩૭॥

પૂર્વપ્રતિજ્ઞાતદોપાનુપદર્શયતિ-‘વઢૂઈ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-વઢૂઈ<sup>૧૩</sup> સુડિયા<sup>૪</sup> તસ્સ<sup>૧</sup>, માયા<sup>૧</sup> મોસં<sup>૫</sup> ચ<sup>૨</sup> ભિક્કુણો ।

અયસો ય અનિવાણ, સયયં ચ અસાહુયા ॥ ૩૮ ॥

છાયા—વર્દતે શૌણ્ડિકા તસ્ય, માયા મૃપા ચ ભિક્ષોઃ ।

અયશ્ચ અનિર્વાણ, સતત ચ અસાધુતા ॥૩૮॥

સાન્વયાર્થઃ-તસ્સ=ઉસ મદિરા પીનેચાલે ભિક્કુણો=સાધુકી સુડિયા=  
 મઘપાન સવન્થી આસક્તિ માયા=રૂપટ ચ=ઔર મોસ=શૂઠ અયસો=અપકીર્તિ  
 ય=તથા અનિવાણ=અવૃત્તિ, યે સવ દોષ સયય=નિરન્તર વઢૂઈ=વઢતે રહતે  
 ચ=ઔર (આખિર ઉસકે) અસાહુયા=અસાધુતા હો જાતી હૈ, અર્થાત્ વહ  
 અસાધુપનકો પ્રાપ્ત હો જાતા હૈ, યાની ચારિત્રસે ભ્રષ્ટ હો જાતા હૈ ॥૩૮॥

ટીકા-તસ્ય=સુરાપાયિનઃ ભિક્ષોઃ=સાધોઃ સતત=નિરન્તર શૌણ્ડિકા=મઘ-  
 પાનવિપયાસક્તિ, ચ=પુનઃ, માયા=નિકૃતિઃ, મૃપા=અસત્યભાષણમ્, યદ્વા ‘માયા

સાધુકે સયમકો દૂષિત કરનેવાલી ચેષ્ટાઓં (દોષોં) કો તો દેલો !  
 ઇક તો મદિરાપાનકા માયાચાર, ફિર ઉસે છુપાનેકે લિઇ દૂસરે અનેક  
 માયાચાર ઔર મૃપાવાદ આદિકા સેવન કિયા જાતા હૈ સો મુઝસેં  
 સુનો, અર્થાત્ ગુરુમહારાજ શિષ્યકો આમન્ત્રિત કરકે કથન કરતે હૈ ॥૩૭॥

પૂર્વપ્રતિજ્ઞાત દોષ કહતે હૈ-‘વઢૂઈ’ ઇત્યાદિ ।

મદિરાપાન કરનેવાલા સાધુ સદા મદિરા પીનેમેં હી મગ્ર રહતા હૈ ।  
 વહ માયાચાર કરતા હૈ, મૃપા બોલતા હૈ, અથવા કપટ-સહિત શૂઠ

(દોષો)ને તો જુઓ ! એક તો મદિરાપાનને માયાચાર, વળી તેને છુપાવવા  
 માટે ધીજા અનેક માયાચાર અને મૃપાવાદ આદિનું સવન કરવામા આવે છે તે મારી  
 પાસેથી સામળો-અર્થાત્ ગુરુ મહારાજ શિષ્યને આમન્ત્રિત કરીને કથન કરે છે (૩૭)

પૂર્વપ્રતિજ્ઞાત દોષો કહે છે-વઢૂઈ ઇત્યાદિ

મદિરાપાન કરનાર સાધુ સદા મદિરા પીવામા જ મગ્ર રહે છે તે માયા  
 ચાર કરે છે, મૃપા બોલે છે, અથવા કપટસહિત શૂઠ બોલે છે દુરાચારી હોવાને

मोम' इत्येक पद तेन मायया सह मृषा मायामृषा=परप्रतारणपूर्वकमसत्यभाषण-  
मित्यर्थः, च=पुनः, अयशः=असद्गुणत्वेनाऽपकीर्त्तिः, अनिर्वाणम्=अनुपशान्तिर-  
वप्तिः उत्तरोत्तरस्पृहावर्द्धनात्, च=तथा असाधुता=असयतत्व साधुचिन्ताचार-  
राहित्येन साधुपदाऽनर्हत्वमित्यर्थः, वर्द्धते=वृद्धिं गच्छति ।

'सुडिया' इत्यनेन मन्त्रपायिनो मन्त्रासक्तिरपरिहार्या भवतीति सूचितम् ।  
मघासक्तौ सत्या माया मृषा च कदापि त न विजहाति, मायामृषावृद्धौ स्वपरपक्षे  
निन्दाऽवश्यम्भाविनी, निन्दायामपि सत्या मद्यपानासक्तस्याऽनिर्गतिः साहचर्यं  
न मुञ्चति, तथा मति सर्वथा साधुपदानधिकारित्वमुपजायतेऽतः सर्वानर्थमूल  
मद्यपानमिति यो यम् ॥३८॥

बोलता है । दुराचारी होनेके कारण उमकी अपकीर्त्ति फैल जाती है ।  
उसकी लोलुपता अधिकाधिक बढ़ती चली जाती है—उसे कभी तृप्ति  
नहीं होती । तथा मुनिके योग्य आचरणसे हीन होनेके कारण वह साधु  
कहलाने योग्य नहीं रहता, अतः उसकी असाधुता बढ़ती है ।

'सुडिया' पदसे यह सूचित किया है कि शरायीकी शराब पीनेकी  
आदत छूटनी कठिन होती है । मदिरामे आसक्ति होने पर माया मृषा  
मदिरापायीका काना पीज नहीं छोडती, अर्थात् वह माया-मृषा दोषोंमें  
तत्पर रहता है । माया और मृषाकी वृद्धि होनेपर स्वपक्ष परपक्षमें  
निश्चय ही निन्दा होती है और निन्दा होनेपर भी मदिरा पानमें मस्त  
होकर मदिरा-पान नहीं त्यागता । ऐसी अवस्थामें वह साधु कहलाने  
योग्य बिलकुल ही नहीं रहता ॥ ३८ ॥

कारणों ते ॥ अपकीर्त्ति इलाख न्य छे, अनी लोलुपता अधिकाधिक बढ़ती न्य छे,  
तथी कदापि तृप्ति थती नथी मुनिने योग्य आचरणथी हीन होवाने कारणे  
अ साधु कहेवावाने योग्य नथी रहेतो, अतले अनी असाधुता वधे छे

'सुडिया' शब्दथी अम सूचित कर्तुं छे के शरायीनी शराब पीवानी  
आदत छूटनी कठिन होय छे मदिरामे आसक्ति थता माया मृषा मदिरापान  
करनारने पीछे छोडती नथी, अर्थात् अ माया मृषा दोषोमे तत्पर रहे छे माया  
अने मृषानी वृद्धि थता स्व पक्ष पर पक्षमे अउर निहा थाय छे, अने निहा थता  
छता पक्ष मदिरापानमे मस्त थधने ते मदिरापान त्यागतो नथी अवी अवस्थामे  
ते अरामे साधु कहेवावाने योग्य रहेतो नथी (३८)



ઉક્તમેયાર્થ પ્રકારાન્તરેણ દ્રઢયતિ-‘નિચ્ચુલ્લિગ્ગો’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-નિચ્ચુલ્લિગ્ગો જહા તેણો, અત્તકમ્મેહિં દુમ્મઈ ।

તારિસો મરણતેડપિ, નારાહેડ સવર ॥ ૩૯ ॥

છાયા—નિત્યોદ્વિગ્ગઃ યથા સ્તેનઃ, આત્મકર્મભિર્દુર્મતિઃ ।

તાદૃશઃ મરણાન્તેડપિ, ન આરાધયતિ સવરમ્ ॥ ૩૯ ॥

સાન્વયાર્થઃ—જહા=જિસ પ્રકાર તેણો=ચોર અત્તકમ્મેહિં=અપને ક્રિયે દુષ્ટ  
દુશ્ચરિત્રોસે નિચ્ચુલ્લિગ્ગો=દ્વેશા વ્યાકુલ યના રહતા હૈ, ઉસી તરહ  
તારિસો=મદિરા પીનેચાલા યહ દુમ્મઈ=દુર્ચુદ્ધિ સાધુ મી નિત્ય ઉદ્વિગ્ગ  
બના રહતા હૈ, ફિર યહ મરણતેવિ=મરણ સમય તરુ મી સવર=સવરધર્મ-  
ચારિત્રકો નારાહેડ=નહીં આરાધ સક્રતા હૈ, અર્થાત્ વહ સાધુ જિન્દગીભર  
ચારિત્રસે વચ્ચિત રહતા હૈ ॥૩૯॥

ટીકા—યથા સ્તેનઃ=તસ્કરઃ આત્મકર્મભિઃ=સ્વકીયદુશ્ચરિતૈઃ નિત્યોદ્વિગ્ગઃ=  
સદા વ્યાકુલઃ ચિત્તોપશાન્તિરહિતો ભવતિ, તાદૃશઃ=સ્તેનસદૃશઃ, યથા ચોરઃ-  
‘મદીયમિદ દુશ્ચરિત કોડપિ મા વિદ્યાત્, અન્યથા રાજગૃહીતસ્ય મમ પ્રાણાદ્યપ-  
હારો ભવે’-દિતિ ચિન્તયા કદાચિદપિ ચેતસિ નોપશાન્તિ ગન્હતિ, તથા મદ્યસેવી  
સાધુરપિ સ્વકીયે દુશ્ચરિતે પ્રકૃતિતે સતિ પૂજાપ્રતિષ્ઠાદિપ્રતિઘાતશક્ત્યા સ્વકૃત-

હસી વિષયકો દૂસરી તરહસે કહતે હૈં-‘નિચ્ચુલ્લિગ્ગો’ ઇત્યાદિ ।

જૈસે ચોર અપને કુકર્મોકે કારણ સદા વ્યાકુલ બના રહતા હૈ અર્થાત્  
ઉસે સદા યહીં ભય બના રહતા હૈ કિ મેરે કુકર્મકો કોઈ જાન ન લે,  
નહીં તો રાજા મુક્તે પકડ લેગા ઓર પ્રાણોસે હાથ ધોના પહેગા । હસ  
પ્રકારકી ચિન્તાસે ચોરકે ચિત્તમે સદા ધુક ધુકી (ચલ બલી) મચી  
રહતી હૈ । ઉસી પ્રકાર મદિરા પાન કરનેવાલે મુનિકે મનમેં દ્વેશા  
અસમાધિ રહતી હૈ કિ—કહી મેરા મદિરા પાનકા દુરાચાર પ્રગટ ન હો જાય,  
નહીં તો માન સમ્માન સબ મિટ જાયગા । હસ પ્રકારકી આશકાસે વહ

એ વિષયને ધીજી રીતે કહે છે-નિચ્ચુલ્લિગ્ગો ઇત્યાદિ

જેમ ચોર પોતાના કુકર્મને કારણે સદા વ્યાકુલ રહ્યા કરે છે, અર્થાત્  
તેને સદા એવો ભય રહે છે કે મારા કુકર્મને કોઈ બાણી ન લે નહિ તો  
રાજા મને પકડી લેશે અને પ્રાણુ શુભાવવા પડશે એ પ્રકારની ચિંતાથી ચોરના  
ચિત્તમા સદા ખળભળાટ મચ્યા કરે છે એજ રીતે મદિરાપાન કરનાર મુનિના  
મનમા દ્વેશા અસમાધિ રહે છે કે-કયાક મારા મદિરાપાનને દુરાચાર પ્રકટ ન  
થઈ બધ, નહિ તો માન સન્માન ણધુ નાશ પામશે એ પ્રકારની આશકાથી તે

दुष्कृतसगोपनाय नवनवमायामृपाकल्पितवचनरचनादिनानाप्रकारकोपायमनुस-  
दधानो न जातु सयमसमाधिमधिगच्छतीति भावः । दुर्मतिः=विपर्यस्तबुद्धिः  
साधुः, मरणान्तेऽपि मरणावधिसमयेऽपि सवर=सर्वसावद्यविरतिलक्षण चारित्र  
कदापि नाराधयति=न निष्पादयति, चारित्रसाधकशुद्धपरिणामाभावात् ।

‘निच्छुन्विग्गो’ इत्यनेन पापात्मना नित्यशुद्धित्वं सूचितम् । ‘दुम्मई’-  
पदेन व्यसनिना मतिमालिन्यमवश्यम्भावीत्याविष्कृतम् ॥ ३९ ॥

मूलम्-आयरिए नाराहेइ समणे आवि तारिसो ।

गिहत्था वि णं गरिहति, जेण जाणति तारिस ॥ ४० ॥

छाया—आचार्यान् नाराधयति, श्रमणोश्चापि तादृशः ।

गृहस्था अपि त गर्हन्ते, येन जानन्ति तादृशम् ॥४०॥

सान्त्वयार्थः-तारिसो=उस पूर्वोक्त-प्रकारका दुराचारी साधु आयरिए=  
रत्नाधिकोको अवि य=तथा समणे=साधुओको भी नाराहेइ=विनय वैयावच्च  
आदिसे नहीं आराध सकता है, जेण=जिस कारणसे गिहत्था वि=गृहस्थ भी ण=

अपने किये हुए दुराचारको छिपानेके लिए मायाचार और असत्य  
आदिके नये नये उपाय सोचा करता है । उसकी सयम सम्बन्धी समाधि  
किसी प्रकार भी नहीं रहती । ऐसा दुर्बुद्धि साधु मृत्युकी अवधिके  
समय भी सर्वसावद्ययोगके त्यागरूप सवर की आराधना नहीं  
करता, क्योंकि उसके वैसे विशुद्ध भाव नहीं होते ।

‘निच्छुन्विग्गो’ इससे ऐसा सूचित किया है कि पापी सदा सशक  
रहता है । ‘दुम्मई’ पदसे यह प्रगट किया है कि कुच्यसनीकी मतिमें  
मलिनता अवश्य आजाती है ॥ ३९ ॥

पोताना दुराचारने छुपाववाने मायाचार अने असत्य आदिना नवा नवा  
उपायो विचार्या करे छे अनी सयम सगंधी समाधि डोई प्रकारे रहेती नथी  
अथे दुर्बुद्धि साधु मृत्युनी अवधिना समये पणु सर्वसावद्ययोगना त्यागरूप  
सवरनी आराधना करतो नथी, कारणु के तेना अथे विशुद्ध भाव थता नथी

निच्छुन्विग्गो शब्दथी अथे सूचित करवामा आण्यु छे के पापी सदा  
सशक रहे छे दुम्मई शब्दथी अथे प्रकट कर्यु छे के दुर्व्यसनीनी मतिमा मलि  
नता अवश्य आवे छे (३६)

उसे तारिस=उस प्रकारका अर्थात् मय पीनेयात्र जाणति=जानलेते हैं (अतः वे उसकी) गरिहनि=निन्दा करते हैं ॥४०॥

टीका—‘आयरिण’ इत्यादि । तादृश=पुरोदीरितदुराचारशीलः साधुः आचार्यान् अपिच श्रमणान्=रत्नाधिकान साधुन नाराधयति क्लृपितान्तः-करणत्वादिति भाव, येन हेतुना गृहस्था अपि तादृश=तथापि दुराचारिण जानन्ति तेन हेतुना ण=त साधु गर्हन्ते=निन्दन्ति, स समलजननिन्दनीयो भवतीति सूत्रार्थः ॥ ४० ॥

अकृत्यसेविदोपानुपसहरन्नाह-‘एव तु’ इत्यादि ।

मूलम्-एव तु अगुणप्पेही, गुणाण च विवज्जए ।

तारिसो मरणतेवि, नाराहेड सवर ॥ ४१ ॥

छाया—एव तु अगुणपेक्षी, गुणाना च विवर्जकः ।

तादृशः मरणान्तेऽपि, नाराधयति सवरम् ॥४१॥

सान्न्वयार्थ-‘एव तु’=इस प्रकार अगुणप्पेही=प्रमादादि दोषोको ग्रहण करने-वाला च=और गुणाण=ज्ञानादि गुणोका विवज्जए=त्यागी तारिसो=उस प्रकारका साधु मरणतेवि=मरणकालमें भी सवर=सवर चारित्र की नाराहेड=आराधना नहीं कर सकता ॥४१॥

टीका—एवम्=उक्तरीत्या तु अगुणपेक्षी=दोषदर्शी प्रमादादिदोषनिरत

‘आयरिण’ इत्यादि । ऐसा दुराचारी साधु आचार्य तथा रत्नाधिक श्रमणकी भी आराधना नहीं करता, क्योंकि उसका अन्तःकरण क्लृपित होजाता है, जिससे कि गृहस्थ भी उस साधुको पहचान लेते हैं और उसकी निन्दा करते हैं । तात्पर्य यह है कि ऐसा साधु सबका निन्दनीय बन जाता है ॥ ४० ॥

‘एव तु’ इत्यादि । प्रमाद आदि दोषोमे लीन, सम्यग्ज्ञान-दर्शन-

आयरिणं इत्यादि अयेवो दुराचारी साधु आचार्य तथा रत्नाधिक श्रमणुनी पणु आराधना करतो नथी, कारणु के अणु अत करणु क्लृपित थणु नय छे, नेथी गृहस्थ पणु अे साधुने पिछाणी ले छे अने अेनी निदा करे छे तात्पर्य अे छे के अेवो साधु सोने निन्दनीय णनी नय छे (४०)

एव तु० इत्यादि प्रमाद आदि दोषोभा लीन, सम्यग्ज्ञान दर्शन-चारित्र

इत्यर्थः, गुणाना च=ज्ञानदर्शनचारित्र्यलक्षणाना क्षान्त्यादीना वा विवर्जकः=परित्याजकः गुणाऽनाराजक इत्यर्थः, तादृशो मरणान्तेऽपि सन्न नाराधयतीति व्याख्यातपूर्वं सुगम चेति ॥ ४१ ॥

पूर्वोक्तदोषपरित्यागिनो गुणानाह-‘तव’ इत्यादि ।

मूलम्-तवं कुव्वड मेहावी, पणीय वज्जए रसं ।

मज्जप्पमायविरओ, तपस्सी अडउक्कसो ॥ ४२ ॥

अथा—तपः कुरुते मेधावी, प्रणीत वर्जयति रसम् ।

मद्यप्रमादविरतः, तपस्वी अत्युत्कर्षः ॥४२॥

सान्त्वयार्थ-मज्जप्पमायविरओ=जो मद्य और प्रमादसे रहित तवस्सी=तपस्वी साधु मेहावी=आगमोक्त मर्यादामें चलनेवाला अडउक्कसो=घमड नहीं करता हुआ तव=तपस्या कुव्वड=करता है, (और) पणीय=स्निग्ध रस=रसवाले पदार्थ यी दूध घेवर आदिको वज्जए=त्यागता है ॥४२॥

टीका—यः तपस्वी=साधु मद्यप्रमादविरतः=मादयति=विवेकचिकलीकरो-त्यात्मानमिति मद्य=मादरुद्रज्य, तदेव प्रमादजनकत्वात्प्रमाद इति मद्यप्रमादस्तस्माद्विरतस्तद्वर्जक इत्यर्थः, मेहावी=आगमोक्तविध्यनुस्मरणशीलः सयममर्यादाऽवस्थित इत्यर्थः, अत्युत्कर्षः=उत्कर्ष=‘अह तपस्वी’-त्याग्रभिमानस्तमतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य=परित्यज्य वर्त्तत इति अत्युत्कर्षः, तपःप्रधानगुणाभिमानशून्यः सन् तपः=

चारित्र्य तथा क्षान्ति आदि गुणोंका त्याग करनेवाला ऐसा साधु मृत्यु-समय भी सवरकी आराधना नहीं करता ॥ ४१ ॥

पूर्वोक्त दोषोंके त्यागीके गुण कहते हैं-‘तव’ इत्यादि ।

जो तपस्वी साधु आत्माको विवेक-चिकल बनानेवाले शराबसे विरत रहते हैं, प्रवचन-प्रतिपादित सयम मर्यादामें स्थित हैं, ‘सबसे बड़ा तपस्वी मैं ही हूँ’ ऐसा तपका दर्प (अभिमान) नहीं करते हुए चतुर्थ

तथा क्षान्ति आदि शुभाना त्याग करनेवाले साधु मृत्यु समये પણ सवरकी आराधना करते नहीं (४१)

पूर्वोक्त दोषाना त्यागीना शुष् कळे छे-तव० छत्यादि

जे तपस्वी साधु आत्माने विवेकविषय बनानेवाले शराबशी विरत रहे छे, ते प्रवचन प्रतिपादित सयममर्यादाभा स्थित रहे छे, ‘सौथी मोटो तपस्वी हुं छु’ जेवो तपने दर्प (अभिमान) न करता चतुर्थोक्त आदि तप कर छे,

चतुर्थभक्तादिक करोति पुनरपि प्रणीत=गलत्स्नेहविन्दुक गृहस्नेह या भोज्य, स्ने-  
हावगाढ कृशरादि, गृहस्नेह घृतपूरादिक, रस=घृतदुग्धादिक वर्जयति=परि-  
त्यजति ॥४२॥

मूलम्-तस्स<sup>१</sup> पस्सह<sup>२</sup> कल्लाणं<sup>३</sup>, अणेगसाहुपूडय<sup>४</sup> ।

विउल<sup>५</sup> अत्थसजुत्त<sup>६</sup>, कित्तइस्स<sup>७</sup> सुणेह<sup>८</sup> मे<sup>९</sup> ॥ ४३ ॥

छाया—तस्य पश्यत कल्याणम्, अनेकसाधुपूजितम् ।

त्रिपुलार्थसयुक्त, कीर्त्तयिष्यामि शृणुत मे ॥४३॥

सान्वयार्थः—तस्स=उस साधुके अणेगसाहुपूडय=अनेक मुनियोंके बन्दीय

विउल=मुक्तिपदका साधक होनेसे महान् अत्थसजुत्त=मोक्षरूप अर्थ प्रयोजनसे  
युक्त ऐसे कल्लाण=कल्याण समय को पस्सह=देखो, (और मैं उसके गुणोंका)  
कित्तइस्स=वर्णन करूंगा, (तुम) मे=मुझसे सुणेह=सुनो ॥४३॥

टीका—‘तस्स’ इत्यादि । तस्य=उक्तगुणवत् साधु अनेकसाधुपूजित=  
मुनिवृन्दवन्दित त्रिपुल=महत् मुक्तिपदसाधकत्वात्, अर्थसयुक्तम्=अर्थ=समुद्देश्या  
प्रयोजन मोक्षलक्षण तेन सयुक्त=सबलित तत्फलदावृत्त्वात्, कल्याण=नितान्तसु-  
खावहत्वात्सयम पश्यत=अवलोकयत भोशिष्या ! इति शेष । कीर्त्तयिष्यामि=  
तद्गुणान् वर्णयिष्यामि मे=मम सकाशात् शृणुत=आकर्णयत ॥४३॥

भक्त आदि तप करते हैं, तथा घेवर आदि प्रणीत भोजनको और  
घी दूध आदि पुष्टिकर रसोंको त्याग देते हैं ॥ ४२ ॥

‘तस्स’ इत्यादि । हे शिष्य ! उस उक्तगुणविशिष्ट साधुके  
अनेक-मुनि-समूहसे प्रशंसित, मुक्तिपदका साधक होनेसे महान्,  
मोक्षरूपी अर्थसे युक्त, अनन्त सुखदाता कल्याण अर्थात् समयको  
देखो । मैं उसके गुणोंका वर्णन करूंगा, तुम मुझसे सुनो ॥ ४३ ॥

तथा घेवर आदि प्रणीत भोजनने अने घी दूध आदि पुष्टिकरक रसोंने  
त्यागे छे (४२)

तस्स० इत्यादि हे शिष्य ! उक्तगुणविशिष्ट भोवा साधुना अनेक-मुनि-  
समूहशी प्रशंसित, मुक्तिपदने साधक थावाशी महान्, मोक्षरूपी अर्थशी युक्त,  
अनन्तसुखदाता कल्याण अर्थात् समयने सुखे हे भोवा सुखेनु वर्णन करीश,  
ते तमे साधणे (४३)

कहेता दुग्च्छा मोहनी २, मिथ्यात्व मोहनी १, कषाय १६  
 अनतानुमधीक्रोध, मान, माया, लोभ, ४ एम अप्रत्यारयानी  
 ४ पठी प्रत्याख्याती ४ सज्वलन ४, जानारणी ५, दर्श-  
 नारणी ४, अतराय ५, ए राम सडताळीस ४७ प्रकृति  
 द्रुवमधि छे ए मध्ये नत्र नामकर्मनी ९ ओगगीस मोहनीनी  
 १९ पाच ज्ञानारणी ५, दर्शनारणी च्यार ४, पाच अतराय  
 ५, एव ४७ सुडताळीस द्रुवमधी जाणवी द्वार १ ॥ २ ॥

तणुवगांगिईसंघयण, जाई गई खगई पुंवि जिणसास ।  
 उज्जोयां यवं परघां, तसवीसां गोयं वेयणिय ॥३॥

अर्थ—हवे अद्रुवमधि ७३ कहे छे, तिहा तणु कहेता  
 शरीर १, औदारिक १, वैक्रिय २, आहारक ३ तैजस, कार्मण  
 द्रुवमधिमे गण्या छे माटे इहा न कख्या उपाग ३, अने  
 सस्थान ६ संघयण ६, जाति ५, गति ४, खगति, कहेता  
 विहायोगति २, आनुपूर्वी ४, जिननाम १, उश्वास १, उद्योत-  
 नाम १, आतप १, पराघात १, त्रस दशक थावरनी दस  
 एव वीस गोत्र २, वेदनीयकर्म २, हास्य रतिनो जोडो १,  
 अरति शोकनो जोडो एव जुगल ॥ ३ ॥

हासाइजुयलदुर्गं, वेयं आउं तेवुत्तरीअधुववधी<sup>५३</sup> । दारं ।  
 भगा अणाइ साइ, अणत सतुत्तरा चउरो ॥ ४ ॥

अर्थ—हास्यादि जुगल वे, वेद ३, आउखा ४ च्यार  
 ए ७३ अद्रुवमधि ते कोइवार बधाय कोइवार न बधाय, ए  
 मध्ये ७ प्रकृति मोहनीनी, २ वेदनीयनी, २ गोत्रनी, ४ आ-

युनी, ५८ नामकर्मनी छे एव ७३ छे अने ध्रुववधि ४७  
अध्रुववधि ७३ मिळ्या १२० एकसोवीस प्रकृति थइ, हवे  
चउ ४ भगी अणाइ कहेता अनादि १, साइ सादि २ तथा  
अनत तथा सात जोडीये, तिवार अनादिअनत १, प्रथमभग  
अनादि सान्त ए द्वितीयभग, सादि अनत ए त्रीजो भग  
सादिसान्त ए चोथो भग, ए चोभगी जाणवी ॥ ४ ॥

पढसवियाधुवउदइसु, ध्रुववधिसु तइय वज्जभग तिग ।  
मिच्छमि तिन्निभगा, दुहावि अधुवा तुरिय भगा ॥५॥

अर्थ—तिहा ध्रुवउड्यी प्रकृतिमध्ये प्रथम १, तथा २,  
वीजो ए वे भागा छे—अनादि सान्त भव्यमे २, ए वे भगा  
छे तथा ध्रुववधि प्रकृतिनेविषे त्रीजो वर्जाने तीन भग छे  
तिहा अभव्य आश्रयि अनादि अनत छे जे कारणे अनादि-  
काल प्राप्ते छे, अने ते सदाकाल बाधे तिणे अनतवध छे,  
भव्यजीने अनादे सान्त छे, ए योग्यतानो सूत्र छे सादि  
अनत ए भग कर्म स्वरूपे सभवे नहीं अने सादिसान्त  
भग जीव उपशम श्रेणिए चढी इग्यारमे गुणठाणे सर्व प्रकृ-  
तिनो अवध थयो, ते वळी पाछो पडीने सर्व बध करे ते  
सादि, अने ते जीव वळी कर्म क्षय करीने सिद्ध थाय तिवारे  
सान्त थाय, ए तीन भग छे, मिथ्यात्वने ध्रुवोदये तीन  
एहिज भग छे, तथा अध्रुववध तथा अध्रुवोदयनेविषे एक  
चोथो भागो सादिसान्त ए छे ॥ ५ ॥

निमिर्णं यिरं अथिरं अगुर्यं, सुहं असुहं तेअ कम्म  
चउवन्ना ।

नाणं तरायं दसणं, मिच्छं ध्रुवउदय सगवीसां ॥६॥

कहेता दुगच्छा मोहनी २, मिथ्यात्व मोहनी १, कषाय १६  
 अनतासुमधीक्रोव, मान, माया, लोभ, ४ एम अप्रत्यारयानी  
 ४ पठी प्रत्यारयानी ४ सज्वलन ४, जानापरणी ५, दर्श-  
 नापरणी ४, अतराय ५, ए सर्व सट्ताळीस ४७ प्रकृति  
 द्युमधि छे ए मध्ये नव नामऋग्मनी ९ ओगणीरा मोहनीनी  
 १९ पाच ज्ञानापरणी ५, दर्शनापरणी च्यार ४, पाच अतराय  
 ५, एव ४७ सुट्ताळीस द्युमधी जाणवी द्वार १ ॥ २ ॥

तणुवर्गागिईसंघयण, जाईं गईं खगईं पुँधि जिणसासं ।  
 उज्जोयां यवं परघां, तसवीसां गोयं वेयणिय ॥३॥

अर्थ—हवे अद्युवधि ७३ कहे छे, तिहा तणु कहेता  
 शरीर १, औदारिक १, वैक्रिय २, आहारक ३ तैजस, कार्मण  
 द्युवधिमै गण्या छे माटे इहा न कह्या उपाग ३, अने  
 सस्थान ६ सवयण ६, जाति ५, गति ४, खगति कहेता  
 विहायोगति २, आद्यपूर्वी ४, जिननाम १, उश्वास १, उद्योत-  
 नाम १, आतप १, पराघात १, त्रस दशक थावरनी दस  
 एव वीस गोत्र २, वेदनीयकर्म २, हास्य रतिनो जोडो १,  
 अरति शोकनो जोडो एव जुगल ॥ ३ ॥

हासाइजुयलदुर्गं, वेयं आउं तेवुत्तरीअधुववधी<sup>५३</sup> । दारं<sup>३</sup>  
 भगा अणाइ साइ, अणत सतुत्तरा चउरो ॥ ४ ॥

अर्थ—हास्यादि जुगल वे, वेद ३, आउखा ४ च्यार  
 ए ७३ अद्युवधि ते कोइवार बघाय कोइवार न बघाय, ए  
 मध्ये ७ प्रकृति मोहनीनी, २ वेदनीयनी, २ गोत्रनी, ४ आ-



युनी, ५८ नामकर्मनी छे एव ७३ छे अने ध्रुववधि ४७  
अध्रुववधि ७३ मिळ्या १२० एकसोवीस प्रकृति थइ, हवे  
चउ ४ भगी अणाइ कहेता अनादि १, साइ सादि २ तथा  
अनत तथा सात जोडीये, तिवार अनादिअनत १, प्रथमभग  
अनादि सान्त ए द्वितीयभग, सादि अनत ए त्रीजो भग  
सादिसान्त ए चोथो भग, ए चोभगी जाणवी ॥ ४ ॥

पढमवियाध्रुवउदइसु, ध्रुववधिसु तइय वज्जभग तिगं ।  
मिच्छमि तिद्धिभगा, दुहावि अधुवा तुरिय भगा ॥५॥

अर्थ—तिहा ध्रुवउदयी प्रकृतिमध्ये प्रथम १, तथा २,  
वीजो ए वे भागा छे—अनादि सान्त भव्यमे २, ए वे भगा  
छे तथा ध्रुववधि प्रकृतिनेविषे त्रीजो वर्जने तीन भग छे  
तिहा अभव्य आश्रयि अनादि अनत छे जे कारणे अनादि-  
काल बाधे छे, अने ते सदाकाल बाधे तिणे अनतवध छे,  
भव्यजी ने अनादे सान्त छे, ए योग्यतानो सूत्र छे सादि  
अनत ए भग कर्म स्वरुपे सभवे नहीं अने सादिसान्त  
भग जीव उपशम श्रेणिए चढी इग्यारमे गुणठाणे सर्व प्रकृ-  
तिनो अबध थयो, ते वळी पाछो पडीने सर्व वध करे ते  
सादि, अने ते जीव वळी कर्म क्षय करीने सिद्ध थाय तिवारे  
सान्त थाय, ए तीन भग छे, मिथ्यात्वने ध्रुवोदये तीन  
एहिज भग छे, तथा अध्रुववध तथा अध्रुवोदयनेविषे एक  
चोथो भागो सादिसान्त ए छे ॥ ५ ॥

निमिर्णं थिरं अथिरं अगुरुयं, सुहं असुहं तेअ कम्म  
चउवन्नां ।

नाणं तरायं दसर्णं, मिच्छं ध्रुवउदय सगवीसां ॥६॥

अर्थ—निर्माण नाम १, स्थिरनाम १, अगुरुत्तु नाम १, शुभ नाम १, जपुभनाम १, तैजसशरीर १, कामेशरीर १, वर्णनाम १, गणनाम १, रसनाम १, स्पर्शनाम १, एत १२, तार नाम कर्मनी प्रकृति पाच ज्ञानावर्णी ५, पाच उत्तराय ५, च्यार दर्शनावर्णी ४, एरु मिथ्यात्व मोहनी १, ए सत्तावीस २७, प्रकृति पुत्रदयी जाणनी ते मन्वे वर्ण गव रस, स्पर्श, ४, नी ए रीत छे, जे पाच वर्ण मन्वे को-इक वर्ण नियमा मुख्यताए उदय होये, तिणे पुत्रदयी इम गधादिकनो जाणवो ए सत्तावीस मन्वे ज्ञानावर्णी पाच, उत्तराय पाच, दर्शनावर्णी ४, मोहनी १, नाम कर्मनी १२, एत २७ छे ॥ ६ ॥

थिरं सुभिं अरं विणु अधुव—,वर्धां मिच्छ विणुमोह  
धुववर्धा ।

निदो<sup>१</sup>वधायं मीस, सम्म पण नवई<sup>२</sup> अधुवुदया ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे अधुवोदयी कहे छे—जे अधुववधि प्रकृति ७३, ते मन्वे थिर १, अथिर २, शुभ ३, अशुभ ४, ए ४, च्यारविना ६९ लेवी, अने मोहनीनी १९ पुत्रवधि कही छे, तेमायी मिथ्यात्व मोहनी वरजीने शेष १८, रहे ते पिण अधुवोदयमे गणी छे शरीर ३, उपाग ३, सस्थान ६, सधयण ६, जाति ४, गति ४, विहायोगति २, आनुपूर्वी ४, जिननाम १, श्वासोच्छ्वास १, उद्योत १, आतप १, पराघाट १, थिर १, सुभविना तसादि ८, अथिर अधुवविना थावरादि ८, गोत्र २, वेदनीय २, हास्य १, रति १, अरति १, शोक १, वेद १, आउ ४, ए ६९, सोळ क्रसाय भय १,

दुग्धा १, निद्रा ५, उपवात १, मिश्र १, सम्यक्त्वमोहनी  
१, ए ९५ अद्रुवउदर्या सर्व गतिना जीवने सर्वकाले उदय न  
हुवे ते माटे अद्रुवकहीजे ए मव्ये दर्शनावरणी, ५, वेदनीय २,  
मोहनीय २७, आयु ४, नामकर्मनी ५५, गोत्र २, ए ९५,  
अद्रुवोदयि जाणवी ॥ ७ ॥

तसवन्नवीसं—सगतेयकम्मं ध्रुववधिसेसं वेयतिगं ।  
आगिइतिगं वेयणियं, दुजुयलं सगउरलं सासचउ ८॥

अर्थ—हवे द्रुवसत्ता—त्रसवीस कहेता त्रस १०, धावर  
१०, वर्ण २०—५, वर्ण २, गव ५, रस ८, स्पर्श, एव २०,  
तैजसकर्मण ७ तैजसशरीर, तैजसवधन २, तैजससघातन ३,  
कर्मणशरीर ४, कर्मणवधन, ५, कर्मणसघातन ६, तैजसका-  
र्मणवधन ७, शेष द्रुववधि ४१, ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी  
नव ९, मोहनीय १९, अगुरुलघु १, निर्माण १, उपघात १,  
अतराय ५, एव ४१, वेद ३, आकृतित्रिक ३, तेहनी प्रकृति  
१७ सस्थान ६, सघयण ६, जाति ५, एव १७, वेदनीय २,  
हास्य १, रति १, अरति १, शोक १, ए च्यार औदारिक  
सात—औदारिक शरीर १, औदारिकउपाग २, औदारिकवधन ३,  
औदारिक तैजसवधन ४, औदारिक तैजसकर्मणवधन ५,  
औदारिक सघातन ६, औदारिककर्मणवधन ए ७, एव सात  
श्वासोच्छ्वासयी च्यार ४,—श्वासोश्वास १, उद्योत १, आतप  
१, परावात १, ए च्यार ॥ ८ ॥

खगई तिरिदुगं नीयं, ध्रुवत्तं सम्मसीसमणुयदुग ।  
विउविकारजिणाऊ, हारसगुच्चा अध्रुवसता ॥ ९ ॥

अर्थ—निर्माण नाम १, स्थिरनाम १, अगुरुलु नाम १, शुभ नाम १, अशुभनाम १, तैजसशरीर १, कर्मणशरीर १, वर्णनाम १, गद्यनाम १, रसनाम १, स्पर्शनाम १, एउ १२, वार नाम कर्मनी प्रकृति पाच ज्ञानावर्णी ५, पाच अतराय ५, च्यार दर्शनावर्णी ४, एऊ मिथ्यात्व मोहनी १, ए सत्तावीस २७, प्रकृति पुत्रउदयी जाणनी ते मध्ये वर्ण गत्र रस, स्पर्श, ४, नी गृ रीत छे, जे पाच वर्ण मध्ये को-इक वर्ण नियमा मुख्यताए उदय होये, तिणे पुत्रउदयी इम गधादिकनो जाणवो ए सत्तावीस मध्ये ज्ञानावर्णी पाच, अतराय पाच, दर्शनावर्णी ४, मोहनी १, नाम कर्मनी १२, एव २७ छे ॥ ६ ॥

थिरं सुभिं अरं विणु अधुव—,वर्धां मिच्छ विणुमोह  
धुववर्धा ।

निदो<sup>१</sup>वघायं मीसं, सम्म पण नवई<sup>२</sup> अधुवुदया ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे अघुवोदयी कहे छे—जे अघुववधि प्रकृति ७३, ते मध्ये थिर १, अधिर २, शुभ ३, अशुभ ४, ए ४, च्यारविना ६९ लेवी, अने मोहनीनी १९ ध्रुववधि कही छे, तैमायी मिथ्यात्व मोहनी वरजीने शेष १८, रहे ते विण अघुवोदयमे गणी छे शरीर ३, उपाग ३, सस्थान ६, सघयण ६, जाति ४, गति ४, विहायोगति २, आनुपूर्वी ४, जिननाम १, श्वासोच्छ्वास १, उद्योत १, आतप १, पराघाट १, थिर १, शुभविना रसादि ८, अधिर अशुभविना थावरादि ८, गोत्र २, वेदनीय २, हास्य १, रति १, अरति १, शोक १, वेद १, आउ ४, ए ६९, सोळ क्रसाय भय १,

दुग्धा १, निद्रा ५, उपवात १, मिश्र १, सम्यक्त्वमोहनी  
१, ए ९५ अद्रुवउदयी सर्व गतिना जीवने सर्वकाले उदय न  
हुवे ते माटे अद्रुवकहीजे ए मव्ये दर्शनावरणी, ५, वेदनीय २,  
मोहनीय २७, आयु ४, नामकर्मनी ५५, गोत्र २, ए ९५,  
अद्रुवोदयि जाणवी ॥ ७ ॥

तसवन्नवीसं—सगतेयकम्मं ध्रुववधिसेसं वेयतिगं ।  
आगिइतिगं वेयणियं, दुजुयलं सगउरलं सासचउ ८॥

अर्थ—हवे द्रुवसत्ता—त्रसवीस कहेता नस १०, थावर  
१०, वर्ण २०—५, वर्ण २, गध ५, रस ८, स्पर्श, एव २०,  
तैजसकर्मण ७ तैजसशरीर, तैजसवधन २, तैजससघातन ३,  
कर्मणशरीर ४, कर्मणवधन, ५, कर्मणसघातन ६, तैजसका-  
र्मणवधन ७, शेष द्रुववधि ४१, ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी  
नव ९, मोहनीय १९, अगुरुलघु १, निर्माण १, उपघात १,  
अतराय ५, एव ४१, वेद ३, आकृतित्रिक ३, तेहनी प्रकृति  
१७ सस्थान ६, सघयण ६, जाति ५, एव १७, वेदनीय २,  
हास्य १, रति १, अरति १, शोक १, ए च्यार औदारिक  
सात—औदारिक शरीर १, औदारिकउपाग २, औदारिकवधन ३,  
औदारिक तैजसवधन ४, औदारिक तैजसकर्मणवधन ५,  
औदारिक सघातन ६, औदारिककर्मणवधन ए ७, एव सात  
श्वासोच्छ्वासयी च्यार ४,—श्वासोश्वास १, उद्योत १, आतप  
१, परावात १, ए च्यार ॥ ८ ॥

खगई तिरिदुगं नीयं, ध्रुवसत्तां सम्ममीसमणुयदुग ।  
त्रिउविकारजिणाऊ, हारसगुच्चा अधुवसता ॥ ९ ॥

अर्थ—खगतिदुग्-शुभविहायोगति १, जशुभविहायोगति २, तिरिदुग् कहेता निर्यचगति १, निर्यचातुपूर्णा २, नीच-गोत्र १, पुरुसोत्रास पुत्रसत्ता जाणवी ज्ञानारणी ५, दर्श-नावरणी ९, वेदनी २, मोहनीप २६, नामकर्मनी ८२, गोत्र १, अतराय ५, एव १३० पुत्रसत्ता जाणवी द्रुव जे च्यार ४ गनिना जीवमा सदा छती पामीये ते पुत्र कहीने हवे अट्टासत्ता २८ ना नाम कहे छे सक्रियमोहनी १, मिश्र मोहनी २, मह्यगति १, मनुष्यावृष्टी २ वैक्रिय शरीर १, वैक्रिय उपाग २, वैक्रिय बधन ३, वैक्रियतैजसबधन ४, वैक्रियकर्मणबधन ५, वैक्रियतैजसकर्मणबधन ६, वैक्रिय सचातन ७, नरकगति १, नरकावृष्टी २, देवगति १, देवा-वृष्टी २, एव ११, जिननाम १२, आयु ४, आहारक ७, आहारक शरीर १, आहारक उपाग २, आहारक सचातन ३, आहारक बधन ४, आहारकतैजसबधन ५, आहारककर्म-णबधन ६, आहारकतैजसकर्मणबधन एव ७ मिळ्या २८ अट्टावीस अवृवसत्ता ए मध्ये २ मोहनी, २१ नामकर्मनी, ४ आउखो, १ गोत्र, एव २८ अवृवसत्तानी प्रकृती जाणवी ॥ ९ ॥

पढमतिगुणेषुमिच्छ, नियमा अजयाइ अट्टगे भज्ज ।  
सास्त्राणे खलु सम्म, रात मिच्छाइ दसगे वा ॥१०॥

अर्थ—हवे सत्ताने भागा कहे छे—पढमतिगुणेषु—पेहेला तीन गुणठाणा मध्य मिथ्यात्व मोहनीनी सत्ता नियमा छे, एतले मिथ्यात्व गुणठाणे मिथ्यात्वनो उदय नियमा छे, तेहनी सत्तापिण नियमा-छे, सास्त्रादन गुणठाणे २८ नी सत्ता नि-

यमा छे ने मिश्र गुणस्थाने २८, २७ ने २४ ए ऋण सत्तामा मिथ्यात्व अवश्य होय माटे, तथा अयत कहेता चोथा गुणठाणायी ११ मा गुणठाणा लगे आठ गुणठाणे भजना जाणवी तिहा उपशम समकीतीने तथा क्षयोपशमकीतीने मिथ्यात्वनी सत्ता छे अने क्षायिक समकीतीने सप्तक क्षय गयो छे तेहने ए मिथ्यात्वनी सत्ता नयी सास्वादन गुणठाणे समकीत मोहनी नियमा सत्ताये होय हवे मिथ्यात्वयी माडी उपशान्तमोह पर्यंत दस गुणठाणे समकीत मोहनी सत्तानी भजना जाणवी तिहा अनादि मिथ्यात्व तथा समकीत मोहनी उवेली हवे ते जीवने मिथ्यात्व गुणठाणे वर्त्तते समकीत मोहनीनी सत्ता नयी, अने जे त्रिपुर्जाकरण करीने मिथ्यात्वे आव्या छे तेहने छे सम्यकत्वमोह उवेलीने जे मिश्र गुणठाणे आव्या छे, त्या तेहने समकीत मोहनीनी सत्ता नयी उवेलया विना जे मिश्र गुणठाणे आव्या छे, तेहने सत्ता छे अने चोथा गुणठाणायी इग्यारमा पर्यंत, तथा उपशमीने समकीत मोहनीनी सत्ता छे क्षायिकसमकीतीने ऋणे मोहनीनी सत्ता नयी ते माटे भजना जाणवी ॥ १० ॥

सान्णमीसेसु ध्रुव, मीस मिच्छाइ नवसु भयगाए ।  
आइटुगे अण नियमा, भइया मीसाइ नवगामि ॥११॥

अर्थ—सास्वादन गुणठाणे, मिश्र गुणठाणे ध्रुव नीश्रययी मिश्रमोहनीयनी सत्ता छे, जे कारणे कृतत्रिपुजी जीव ए गुणठाणे आवे, अने मिथ्यात्व १, अविरति समकीतयी उपला ८ उपशान्तमोह सुधी एव ९ नव गुणठाणे भजना जाणवी हवे न हवे तिहा अनादि मिथ्यात्वी छवीस सत्ताधत छे,

तेहने मिथ्यात्व गुणठाणे उता मिश्रमोहर्तानी सत्ता नयी, अने जे निपुजीकरण करीने पड्या जे मिथ्यात्व गुणठाणे आया छे तेहने मिथ्यात्वनी सत्ता हुये ए भजना, ए अविरति समकीर्ती माडी उपशान्तमोह पर्यंत ८ गुणठाणे उपशम समकीर्तीने मिश्रना सत्ता होय क्षायिक समकीर्तीने सप्तक क्षय घयो छे, ते माटे मिश्रमोहर्तानी सत्ता नयी ते माटे भजना जाणवी आईदुगे-मिथ्यात्व, सास्वादन ए वे गुणठाणे अनतानुबधीनी सत्ता नियमा होवे अने मिश्रादिक नव गुणठाणे भजना जाणवी तिहा मोहर्तानी कर्मनी २४ सत्तापाळो क्षयोपशमसमकीर्ती जीव चोयायी पडीने मिश्रे आव्यो, तेहने मिश्र गुणठाणे अनतानुबधीनी सत्ता नयी, अने जे २८ अष्टावीस सत्तावत क्षयोपशमसमकीर्ती चोयायी पडी मिश्रे आव्यो, ते अथवा २८ सत्तावत मिथ्यात्वी मिथ्यात्व मुक्ती मिश्रे आव्यो, तेहने अनतानुबधीनी सत्ता छे, तथा अविरतियी उपशान्तमोह सुधी क्षायिकसमकीर्तीने नयी, तथा उपशमीने छे ए भजना जाणवी ॥११॥

आहारगसत्तगवा, सबगुणेवितिगुणे विणा तित्थ ।

नोभयसतेमिच्छो, अतमुहुत्तं भवे तित्थे ॥ १२ ॥

अर्थ—आहारकसप्तकनी सत्ता सर्व गुणठाणे १४ गुणठाणानेविधे वा कहेता भजना होय अथवा न होय जे जीव ७ तथा ८ गुणठाणे आहारक बाधीने ते पड्यो अथवा चड्यो, तेहने तो आहारकनी सत्ता होय, अने जे जीव आहारक बाध्यनि पडे अथवा चडे तेहने न होय अथवा आहारक करी उवेळी काढ्यो तेहने



पण आहारक ७ नी सत्ता नयी तथा तित्थे—तीर्थकर, नामनी सत्ता वीजे सास्वादने नीजे मिश्र गुणठाणे सर्वथा नयी मिथ्यात्व तथा अविरति समकीती प्रमुख अयोगी पर्यंत १२ वार गुणठाणे भजना जाणवी जिणे जीव ४, तथा ५, तथा ६, तथा ७ मेने ८ में गुणठाणे जिननाम बाधी ए १२ गुणठाणे आश्या होवे, तेहने जिननामनी सत्ता पामीजे जिणे बाध्यो न होय अथवा बाधीने उवेली आव्यो होय, तेहने जिननामनी सत्ता न होये तथा जिननाम, आहारकनी युगपत् सत्ता जेहने होय, ते उभय सनावत मिथ्यात्व गुणठाणे न आवे तथा जेहने तीर्थकर नाम विपाकी सत्ता होय, ते जो मिथ्यात्व गुणठाणे ( नरकायुना ) निकाचित उदय माटे आवे, ते पिण अतर्मुहूर्तकाल मिथ्यात्वपणे रहे, पिण ववतो काल रहे नहीं इम जाणवो ॥ १२ ॥

केवलजुयलावरणां, पणनिदां वारसाइमकसायां ।

मिच्छंति सबघाई, चउनाणंति दसणावरणां ॥१३॥

अर्थ—हवे घातीमव्ये २०, सर्व घाती कहे छे—केवलजुगल केहेता २, केवलज्ञान १, तथा केवलदर्शन २, तेहना आवरण—केवलज्ञानावरणी १, तथा केवलदर्शनावरणी २, पाच निद्रा ५, आदि बुरला १२, कषाय अनतानुगधी ४, अपत्याख्यानी ४, प्रत्याख्यानी ४, ए १२, मिथ्यात्व १, ए २०, वीस सर्वघाती जाणवी, तथा देशघाती २५, पचीस प्रकृति छे ते कहे छे, च्यार ४, ज्ञानावरणी ४, त्रण्य दर्शनावरणी ॥१३॥

सजलण नोकसाया, विग्घ इअ देसघाइय अघाइ ।

पत्तेय तणुट्टाऊ, तसवोसा गोअदुग वणणा ॥ १४ ॥

अर्थ—सजलणा ४, नोरुपाय ९, अतराय ५, एम प्रोक्त मेळवता २५, पचीस ए देशगती छे तथा अगती ७५, छे तिहा पराघात १, उश्वास १, आत्तप १, उद्योत १, निर्माण १, अगुरुलघु १, तीर्थकर १, उपघात १, तणु आटनी प्रकृति ३५, शरीर ५, उपाग ३, सस्थान ६, सव-यण ६, जाति ५, गति ४, खगति २, आनुपूर्वी ४, आउखा ४, नस १०, यावर दस १०, गोयदुग-वे गोत्र २, वेदनी वे २, वर्ण १, गध, २, रस ३, स्पर्श ४, ए ७५, अघाती प्रकृति जाणवी, जे गुणनो घात न करे ते अघाती कहेवी ॥ १४ ॥

सुरनरतिगुच्चसाय, तसदसं तणुवगं वइरं चउरस ।

परघासगं तिरिआउ, वन्नचउं पणिदि सुभखगइं ॥ १५ ॥

अर्थ—हवे पुन्यप्रकृतिना ४२, मेद कहे छे—सुरत्रिक-देवगति १, देवायु २, देवानुपूर्वी ३, तथा मनुष्यगति १, मनुष्यानुपूर्वी २, मनुष्यायु ३, नरात्रिक मळी ६, उच्चैर्गोन ७, सातावेदनी ८, तसदशक, १८, शरीर पाच २३, उपाग त्रण २६, वन्नरुषभनाराच २७, समचोरस सस्थान २८, पराघात सप्तक पराघात २९, उश्वास ३०, आत्तप ३१, उद्योत ३२, अगुरुलघु ३३, निर्माण ३४, तीर्थकरनामकर्म ३५, तीर्थच-आयु ३६, शुभवर्ण ३७, गध ३८, रस ३९, स्पर्श ४०, पचेन्दी जाति ४१, शुभविहायोगति ४२, ए ४२, बेताळीस पुन्यप्रकृति जाणवी जेहना विपाक भोगवता मीठा लागे ते पुन्यप्रकृति ॥ १५ ॥

वायालपुत्रपगई, अपढम सठार्ण खगई सघयैणा ।  
तिरिदुग असाय नीओ-वघाय इग विगल निरयतिग १६

अर्थ—४२, पुण्यप्रकृति यइ हवे ८२, पाप प्रकृति कहे छे, अपढम-पेहेलु सस्थान, पेहेली खगति-विहायोगति, सवयण ए ३ वर्जने बीजी सर् पाप प्रकृति छे न्यग्रोध सस्थान १, सादि, २, वामन, ३, कुन्ज, ४, हुट ५, ए पाच सस्थान, तथा अशुभविहायागति ६, तथा रुपभनाराच सवयण ७, नाराच ८, अर्धनाराच ९, कीलिका १०, छेवट्टो ११, तिरिदुग-तिर्यचगति १२, तिर्यचानुपूर्वी १३, असातावेदनी १४, नीचगोत्र १५, उपवात १६, एकेन्द्रीनी जाति १७, विगलतिग द्वान्द्रिय १८, त्रीन्द्रिय १९, चौरैन्द्रीनी जाति २०, नरकत्रिक-ते नरकगति २१, नरकानुपूर्वी २२, नरकायु २३, ॥ १६ ॥

थावर दम वन्नचउक, घाइपणयालसहिअ वासीई ।  
पावपयडित्ति दोसुवि वन्नाइगहा सुहा असुहा ॥१७॥

अर्थ—थावरनो दशक ३३, अशुभवर्ण ३४, रस ३५, गव ३६, रपर्श ३७, तथा घातीनी ४५, ते ज्ञानावरणी ५, मोहनी २६, अतराय ५, एव ४५, सहीत करीये, एटले ८२, प्रकृति पापनी जाणवी इहा पापना ८२, भेद, तथा पुण्यना ४२ भेद, ते भेळता १२५, एइ ते वर्जने तो १२०, छे १ ते नो उत्तर-जे शुभवर्णादि ४, पुण्यभ गवेया, अशुभवर्णादि पापमे गवेया, ते माट दुवारे ( बेवार ) गणता १२४, याय छे इमज ॥ १७ ॥

नामधुववधिं नवग, दंसर्णं पणनाणं विग्घं परघाय।  
भय कुच्छ मिच्छ सास, जिणगुणतीसा अपरिअत्ता १८

अर्थ—हवे अपरावर्त्तमान प्रकृति कहे छे—नामनी धुव-  
वधी ९, वर्णादि ४, निर्माण १, अगुरुल्लु १, उपवात १,  
तैजस १, कर्मण १, ए ९, तथा दर्शनावरणी ४, पणनाण-  
ज्ञानावरणी पाच, विग्घ—अतराय पाच, परावात १, भय, डुगठा,  
मिथ्यात्व, उश्वास, जिननाम ए इगुणतीस २९, ए अपरावर्त्त-  
मान जाणवी अपरावर्त्तमान एट्ठे जे प्रकृति कोनो बध तथा  
उदय रोक्या विना पोताना हेतु सद्भावे बधाय, तथा उदय  
आवे, ते अपरावर्त्तमान कहीये ॥१८॥

तणुअट्ठ वेअं दुजुअल, कसँय उज्जोअ गोअँदुगनिहँ।  
तसँवीसा उँ परित्ता, खित्तविवागाणुपुद्दीओ ॥१९॥

अर्थ—परावर्त्तमान प्रकृति ११, कहे छे, जे तणुअट्ठ-  
शरीर ३, उपाग ३, सस्थान ६, सघषण ६, जाति ५, गति  
४, खगति २, आनुपूर्वी ४, एव ३३, तथा वेद त्रण ३६,  
दुजुअल—हास्य रति, तथा शोक अरति ४०, कषाय सोळ  
५६, उद्योत ५७, आतप ५८, गोत्र वे ६०, वेदनीय वे  
६२, निद्रा पाच ६७, त्रस थावरना दसकानी मळी वीस  
८७, चार आउखा ९१, ए एकाणु परावर्त्तमान प्रकृति जाणवी  
जे ए बध तथा उदयमा एकने रोक्याने बधाय अथवा उदये  
आवे ते परावर्त्तमान कहीजे हवे क्षेत्रविपाकी—क्षेत्र कहेता  
आकाश तिहा जेहनो विपाक जे ते क्षेत्रविपाकी च्यार ४,  
आनुपूर्वी छे, जे एक भवथी वीजे भव जता वाटे विपाके

उदय पामीये छीये, जो प्रदेशोदय न मानीयेतो एहनी स्थिति  
किहा भोगवाये ते माटे ॥ १९ ॥

घणघाई दु गोअ जिणा, तसिअरतिग सुभंग दुभंग  
चउ सांस ।

जाइ तिगै जियविवागा<sup>७८</sup>, आउ चउरो भववि-  
वागा ॥ २० ॥

अर्थ—हवे जीवविपाकीनी ७८, प्रकृति कहे छे तिहा  
जे कार्मण वर्गणापणे जे बाध्यो कर्म, ते मुख्यपणे जीवनेज  
विपाक देखाडे, ते जीवविपाकी कहीये तिहा घनघाती ४७,  
जे ज्ञानावरणी पाच, दर्शनावरणी नव, मोहनी अष्टावीस, अत-  
राय पाच, ए ४७, दुगोय वे गोत्र, वे वेदनीय ४, जिननाम १,  
त्रसत्रिक नस १, वादर २, पर्याप्त ३, इअर-थावरत्रिक थावर  
१, सूक्ष्म २, अपर्याप्त ३, सुभगचउ-सुभग १, सुस्वर २,  
आदेय, जश ४, दुभगचउ-दुभंग १, दुस्वर २, अनादेय  
३, अजश ४, श्वासोश्वास १, जातित्रिक कहेता—जाति  
५, गति ४, खगति २, ए ११ इग्यार ए सर्व मिळी ७८  
प्रकृति जीवविपाकी जाणवी तथा आउखा च्यार ४ भववि-  
पाकी जाणवा आउखा पोताना भवमेज उदये आवे, पण  
वीजे भवे सक्रमण तथा देशपणे पिण उदय न आवे, ते  
माटे भवविपाकी कहेता ॥ २० ॥

नामधुवोदर्यं चउतणु, वघाय साहारणियर जोयतिग ।  
पुगलविवागि वधो, पयइट्टिइ रस पएसत्ति ॥२१॥

अर्थ—नामकर्मनी द्रुप्रोदयी १२, वर्णादि ४, तैजस १, कार्मण १, निर्माण १, अगुस्लु १, धिर १, अथिर १, अशुभ १, ए १२ चउतणु-शरीर ३, उपाग ३, सस्थान ६, सवगण ६, ए १८ तथा उपजात १, साचारण १, प्रत्येक १, उद्योतत्रिव-उद्योत १, आतप २, परावात ३ एउ ३६ ठ्यास प्रकृति पुद्गलविपाकी जाणयी पुद्गलविपाकी कहेता जे बधकाले कार्मण वर्गणाणणे बाव्या, ते उदयकाले शरीरप्रत्ये विपाक देखाडे, ते पुद्गलविपाकी कहीजे इहा कोई पूछस्ये जे कार्मणनी तो वर्गणा नवि लेवाये, ते पिण सोल-गुणी ठे, तो उन्नामनीपरं जीवविपाकीमे का गणता नथी? तेहने उत्तर जे.—कार्मणवर्गणा तो आहारपर्याप्तिने बले लेवाये, ते माटे पुद्गल विपाकी छे श्वासोश्वास, सुस्वर, ते तो उश्वासपर्याप्ति तथा भाषापर्याप्तिने उदयबले ले छे ते माटे जीवविपाकी गणी छे हवे जवना भेद ४ च्यार कहे छे प्रकृतिबध १, स्थितिबध, २, रसबध ३, प्रदेशबध ४ तिहा पेहेला प्रकृतिबधना भेद कहे छे ॥ २१ ॥

**मूलपयडीण अड सत्त, छेग बधेसु तिन्निभूगारा ।  
अप्पत्तरा तिअ चउरो, अवट्ठिआ न हु अवत्तवो ॥२२॥**

अर्थ—मूळ कर्म आठ छे, तिहा मूळ आठ प्रकृति एक सभे एक जीव बाधे जे नवा भवनो आउखो बाधतो हुवे ते आठ बाधे, जे जीव आउखो न बाधतो हुवे ते सात बाधे, तथा दसमे गुणठाणे वर्तता मुनिने आउखो, मोहनी, न बाधे तिवारे छ ६ बधाये, तथा इग्यारमे, बारमे, तेरमे गुणठाणे एक सातावेदनीय बाधे, ते माटे एकविध बध छे

एतले मूळ प्रवना यानक ४ च्यार छे इहा तीन ३ भूय-  
स्कार जाणवा, इग्यारमे गुणठाणे एक वचक हतो, ते इग्यार-  
मायी पडी दशमे आवी ६ उ वावे, तिवारे ? भूयस्कार,  
वळी नवमे गुणठाणे आवे तिवारे ७ सात वावे, ते वीजो  
मूयस्कार, तथा ते जीव जीवारे आठ वावे तिवारे वीजो मूय-  
स्कार जाणवो, अल्पतर तीन छे, ते जे आठनो वचक ते सात  
वावे तिवारे एक अल्पतर, सातयी उ वावे ते वीजो अल्प-  
तर, अने उ थी एक वावे तिवारे वीजो अल्पतर, ए तीन अल्पतर  
जाणवा तथा आठनो ?, अवस्थित सातनो वीजो अवस्थित,  
उनो वीजो अवस्थित, एकनो चोयो अवस्थित, ए ४ च्यार  
अवस्थित जाणवा मूळ प्रवे अवक्तव्य वच नयी, जे मूळयी  
अवचक थइने पाठो वचक थतो नयी ॥ २२ ॥

एगादहिगे भूओ, एगाईऊणगम्मि अप्पतरो ।

तम्मत्तोऽवट्ठियओ, पढमे समये अवत्तवो ॥ २३ ॥

अर्थ—एकादिक अल्पप्रथयी जे अधिनो प्रव वावे ते भूयस्कार  
वच कहीये जिम एक वच करतो तिणे वळी एक अधिको वाध्यो, तिणे  
पहेले समये भूयस्कार कहीये, अने जे पूर्व वचयी एक तथा वणा पिण  
ऊणा वावे ते अल्पतर जिम जाठनो प्रव करतो ते सात वावे  
ए अल्पतर जाणवो, अने जे यानक वावतो हतो तेहिज  
वीजे समे वावे, ते अवस्थित कहीये, ते मान ते ते प्रमाणेज  
वावे ते अवस्थित वच जाणवो, अने अवच थइ प्रथम समये  
जे वावे तेहने अवक्तव्य कहीये, जिम दसमे, इग्यारमे, मो-  
हनी कर्मनो अवचक हतो, ते पडता नवमे गुणठाणे आवे

अर्थ—नामकर्मनी त्रयोदशी १२, वर्णादि ४, तैजस १, कार्मण १, निर्माण १, अशुरुल्लु १, धिर १, अधिर १, अशुभ १, ए १२ चउत्तणु-शरीर ३, उपाग ३, सस्थान ६, सवयण ६, ए १८ तथा उपमात १, सावारण १, प्रत्येक १, उद्योतत्रिक-उद्योत १, आतप २, परायात ३ एउ ३६ ठास प्रकृति पुद्गलविपाकी जाणवी पुद्गलविपाकी कहेता जे बधकाले कार्मण वर्गणापणे बाध्या, ते उदयकाले शरीरप्रत्ये विपाक देखाडे, ते पुद्गलविपाकी कहीजे इहा कोई पूछस्ये जे कार्मणनी तो वर्गणा नविलेवाये, ते पिण सोल-गुणी छे, तो उन्वामनीपरं जीवविपाकीमे का गणता नथी? तेहने उत्तर जे.-कार्मणवर्गणा तो आहारपर्याप्तिने बले लेवाये, ते माटे पुद्गल विपाकी छे श्वासोश्वास, सुस्वर, ते तो उश्वासपर्याप्ति तथा भाषापर्याप्तिने उदयबले ले छे ते माटे जीवविपाकी गणी छे हवे जवना भेद ४ च्यार कहे छे प्रकृतिबध १, स्थितिबध, २, रसबध ३, प्रदेशबध ४ तिहा पेहेला प्रकृतिबधना भेद कहे छे ॥ २१ ॥

मूलपयडीण अड सत्त, छेग बधेसु तिन्निभूगारा ।

अप्पत्तरा तिअ चउरो, अवट्ठिआ न हु अवत्तवा ॥२२॥

अर्थ—मूळ कर्म आठ छे, तिहा मूळ आठ प्रकृति एक सभे एक जीव बाधे जे नवा भवनो आउखो बाधतो हुवे ते आठ बाधे, जे जीव आउखो न बाधतो हुवे ते सात बाधे, तथा दसमे गुणठाणे वर्तता मुनिने आउखो, मोहनी, न बाधे तिवारे उ ६ बधाये, तथा इग्यारमे, बारमे, तेरमे गुणठाणे एक सातावेदनीय बाधे, ते माटे एकविध बध छे



छट्टो ५ नो, सातमो ४ नो, आठमो ३ नो, नवमो २ नो, दसमो १ नो, ए दस वधस्थानक जाणवा, इहा नव मूरस्कार वध छे तिहा एकथी वे वाधे ते पेहेलो मूरस्कार, वेथी तीन वाधे ते वीजो मूरस्कार, तीनथी च्यार ४ वाधे ते वीजो मूरस्कार, च्यारथी पाच वाधे ते चोथो मूरस्कार, पाचथी नवनो पाचमो, नवथी तेरनो छट्टो, तेरथी सत्तरनो सातमो, सत्तरथी एकवीसनो आठमो, एकवीसथी २२ नो नवमो मूरस्कार जाणवो, अल्पतरमा बावीसथी २१ एकवीसनो वध करे नही, जे माटे मिथ्यात्वथी सास्वादन गुणठाणे जीव न आवे, ते माटे बावीसथी सत्तरनो पेहेलो अल्पतर, सत्तरथी १३ नो वीजो, तेरथी ९ नो वीजो, नवथी पाचनो, पाचथी ४ नो, ४ थी ३ नो, ३ थी वेनो, वेथी एकनो, ए ८ अल्पतर जाणवा तेह दस स्थानक ते दस अवस्थित जाणवा ते जे मुनि इग्यारमें चढी मोहनीकर्मनो अत्रवक ययो, ते पडतो नवमे आवी पेहेले समये १ लोभ वाधे, ते माटे एकनो अवक्तव्य वाधे ते पेहेलो अवक्तव्य, एह कोथी अधिको गथी अल्प नथी अने अवध थइ प्रथम वाव्यो ते माटे १ नो अवक्तव्य कहीये, तथा जे जीव इग्यारमें काल करे ते चोथे गुणठाणे आवी १७ सत्तर वाधे ए वीजो अवक्तव्य, इहा मूरस्कार, तथा अल्पतर, तथा अवक्तव्य वधनो एक समय काल छे शेष सर्व अवस्थितनो काल छे ॥ २४ ॥

ति<sup>३</sup> पण<sup>४</sup> छ<sup>५</sup> अट्ठ<sup>६</sup> नव<sup>७</sup>हिया, वीसा तीस<sup>८</sup>तीस इंग नामे छेस्संग अट्ठ<sup>९</sup> ति<sup>१०</sup> वधा, सेसेसु य ठाण भिक्खि ॥२५॥  
पयडिवधो समत्तो ॥

एक बाधे एहने अवक्तव्यवध कहीये, कोयरी अधिको नयी  
तिणे मूयस्कार नहीं, कोयरी ऊणो नयी, तिणे अल्पतर नयी,  
तेनो ते पण नयी ते माटे अवस्थितपण नयी ए अवक्तव्य  
कहीये ॥ २३ ॥

नव छ चउ दसे दु दु, तिदु मोहे दु इगवीस सत्तरस।  
तेरसनव पण चउ तिदु, इको नव अट्ठ दस दुन्नि ॥२४

अर्थ—हवे दर्शनावरणी कर्मना वधस्थानक ३ तीन छे  
पेहेलो नवनो स्थानक छे, ए मिथ्यात्व, सास्वादन गुणठाणे  
छे पछे सास्वादनने अते थीणद्धी तीन काडीजे तिवारे, मि-  
श्रथी माडी आठमा गुणठाणा सीम छनो वध स्थानक छे,  
तथा आठमाना बीजा भागथी माडी दसमा गुणठाणाना सीम  
च्यार ४ नो वध इम थानक च्यार ४ नो छे, दर्शनावरणी  
कर्मने मूयस्कार बे छे जे दसमे गुणठाणे च्यार ४ बाधतो  
हतो ते आठमे आव्ये ६ छ बाधे ते एक मूयस्कार, छथी  
सास्वादनमे आवी नव बाधे ते बीजो मूयस्कार, ए बे मूय-  
स्कार जाणवा अथवा नव बाधी छ बाधे ए पेहेलो अल्पतर,  
तथा ६ बाधी, ४ बाधे ते बीजो अल्पतर, तथा ९, तथा  
६, तथा ४ ए तीन अवस्थित, तथा कोइ जीव इग्यारमे  
गुणठाणेथी पडी १० मे आवे ते अवधक थइ च्यार ४ बाधे  
ते पेहेलो अवक्तव्य, अथवा इग्यारमे मरण पामीने चोथे आवी  
६ बाधे ए बीजो अवक्तव्य जाणवो

हवे मोहनीय कर्मना वधस्थानक १० छे ते प्रथम २२ नो  
बीजो २१ नो, त्रीजो १७ नो, चोथो १३ नो, पाचमो ९ नो,

वीसयरकोडिकोडी, नामे गोएय सत्तरी मोहे ।

तीसयरचउसुउदही, निरय सुराउमि तित्तीसा ॥२६॥

अर्थ—हवे मूळ कर्म आठ त्हेनी उत्कृष्ट स्थिति छे ते कहे छे—वीसयर—वीसकोडाकोडी सागर नामकर्म तथा गोत्र-कर्मनी उत्कृष्टी स्थिति छे ते जाणवा, मोहनीकर्मनी ७० सीत्तेर कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्टी स्थिति छे, चउसु—ज्ञानावणी, १ दर्शनावणी २, वेदनीय ३, अतराय ४, ए च्यार ४ कर्मनी ३० कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्टी स्थिति जाणवी नरकना आयु तथा देवताना आउखानी उत्कृष्टी स्थिति, तेचीस सागरोपमनी जाणवी उत्कृष्ट स्थिति उत्तर प्रकृतिनी पिण इहायी गणज्यो हवे मूळ कर्मनी जवन्यस्थिति कहे छे, मुत्तु—अकषायवेदनीयनी स्थिति, वर्जिने शेष सकषायीजीव, वेदनीयकर्मनी स्थिति जवन्य अतमूहूर्तनी बाध छे अथवा १२ मूहूर्तनी बाधे छे ए दसमे गुणठाणे जावे इहा दसमा गुणठाणाना आदि अध्यवसाये ॥२६

मुत्तुअकसायठिइ, वारमुहुत्ता जहन्न वेअणिए ।

अट्टट्टनामगोए—सु सेसएसु मुहुत्ततो ॥ २७ ॥

अर्थ—अकषायी ते ११ मु, १२ मु, १३ मु, ए ३ गुण-ठाणामा काषायिक स्थिति जे छे तेने मुक्तीने एट्टे १० दसमे गुणठाणे जे जीव छे ते जीवने वेदनीयनी स्थिति १२ बार मुहूर्त जवन्यथी होय, दसमा गुणठाणाना पेहेले अध्यवसाये मुहूर्त मोटो लेवो, अत्यअध्यवसाय मुहूर्त न्हानो लेवो, तथा क्षपकथी उपशमश्रेणिमा विमणो बध जाणवो, नामकर्म, गोत्रकर्मनी जवन्य स्थिति आठ मुहूर्तनी छे शेष जे ज्ञानावणी तथा दर्शना-

अर्थ—हृवे नामकर्मना स्थानक ८ जाठ छे, तिहा पेहेलो त्रेवीसनो, वीजो २५ नो, त्रीजो २६ ठवीसनो, चोयो अठ्ठा-  
वीस २८ नो, पाचमो २९ नो, छट्टो ३० नो, सातमो एक-  
त्रीसनो ३१ नो, आठमो एक १ नो, ए मूयस्कार ६ ठ  
जाणवा, तेवीसयी पचवीसनो पेहेलो मूयस्कार, पचवीसयी २६  
नो वीजो, २६ यी २८ नो त्रीजो, २८ यी २९ नो चोयो,  
२९ यी ३० नो पाचमो, ३० यी ३१ नो छट्टो, मूयस्कार छे  
अल्पतर ७ छे ते ३१ यी १ नो पेहेलो अल्पतर, ३१ यी  
३० नो वीजो अल्पतर, इहा कोइक जीव ३० यी १ नो  
बध करे, पिण ते एकना अल्पतर मव्येज गणयो तिणे जुदो  
गणवो नथी, तथा ३० यी २९ नो त्रीजो, २९ यी २८ नो  
चोयो, २८ यी २६ नो पाचमो, २६ यी २५ नो छट्टो, २५  
थी २३ नो सातमो अल्पतर जाणवो, बधस्थानक तेहज ८  
अवस्थित जाणवा इहा अवक्तव्य ३ तीन छे—ते जे मुनि  
इग्यारमे गुणठाणे नामकर्मनो अबधक छे, ते इग्यारमाथी पड्या  
१० मे आवी १ बावे, ए पेहेलो अवक्तव्य, तथा जे इग्यारमे काल  
करे ते चोथे आवे ते देवप्रायोग्य २८ जावे ए वीजो, अयवा  
कोइक जीव २९ जिननाम सहित बावे ए त्रीजो अपक्तन्य,  
३१ यी १ नो पेहेलो, ३१ यी ३० नो वीजो, ३० यी २९  
नो त्रीजो, ए नामकर्मना ३ अवक्तन्य जाणवा शेष जे ज्ञाना-  
वरणी आयु, वेदनीय, गोत्रकर्म अतराय, ए पाच कर्मनो एकेक  
बधस्थानक, वेदनीय विना ४ च्यार कर्मने अवस्थित तथा अव-  
क्तव्य ए बे बध छे, वेदनी कर्मने एक अपस्थित बध छे,  
वेदनीयनो अबधक थइ बध करे नही, ते गाटे अवक्तन्य नथी ए  
प्रकृतिबध अधिकार कह्यो, इति प्रकृतिबध समाप्त द्वा० १७ ॥२५॥

वीसयरकोडिकोडी, नामे गोएय सत्तरी मोहे ।

तीसयरचउसुउदही, निरय सुराउमि तित्तीसा ॥२६॥

अर्थ—हवे मूळ कर्म आठ त्हेनी उत्कृष्ट स्थिति छे ते कहे छे—वीसयर—वीसकोटाकोडी सागर नामकर्म तथा गोत्र-कर्मनी उत्कृष्ट स्थिति छे ते जाणवी, मोहनीकर्मनी ७० सीत्तेर कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्ट स्थिति छे, चउसु—ज्ञानावणी, १ दर्शनावणी २, वेदनीय ३, अतराय ४, ए च्यार ४ कर्मनी ३० कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्ट स्थिति जाणवी नरकना आयु तथा देवताना आउखानी उत्कृष्ट स्थिति, तेनीस सागरोपमनी जाणवी उत्कृष्ट स्थिति उत्तर प्रकृतिनी पिण इहायी गणज्यो हवे मूळ कर्मनी जवन्यस्थिति कहे छे, मुत्तु—अकपायवेदनीयनी स्थिति, वर्जिने शेष सकषायीजीव, वेदनीयकर्मनी स्थिति जवन्य अतमूर्त्तनी बाध छे अथवा १२ मूर्त्तनी बाधे छे ए दसमे गुणठाणे बाधे इहा दसमा गुणठाणाना आदि अव्यवसाये ॥२६

मुत्तुअकसायठिइ, वारमुहुत्ता जहन्न वेअणिए ।

अट्टट्टनामगोए—सु सेसएसु मुहुत्ततो ॥ २७ ॥

अर्थ—अकपायी ते ११ सु, १२ सु, १३ सु, ए ३ गुण-ठाणामा कापायिक स्थिति जे छे तेने मुक्तीने एट्टे १० दसमे गुणठाणे जे जीव छे ते जीवने वेदनीयनी स्थिति १२ वार मुहूर्त्त जवन्ययी होय, दसमा गुणठाणाना पेहेले अव्यवसाये मुहूर्त्त मोटो लेवो, अत्यव्यवसाय मुहूर्त्त न्हानो लेवो, तथा क्षपकथी उपशमत्रेणिमा विमणो बव जाणवो, नामकर्म, गोत्रकर्मनी जवन्य स्थिति आठ मुहूर्त्तनी छे. शेष जे ज्ञानावणी तथा दर्शना-

अर्थ—हवे नामकर्मना स्थानक ८ आठ छे, तिहा पेहेलो त्रेवीसनो, बीजो २५ नो, त्रीजो २६ छवीसनो, चोयो अष्टा-  
वीस २८ नो, पाचमो २९ नो, छट्टो ३० नो, सातमो एक-  
त्रीसनो ३१ नो, आठमो एक १ नो, ए मूयस्कार ६ ठ  
जाणवा, तेवीसथी पचवीसनो पेहेलो मूयस्कार, पचवीसथी २६  
नो बीजो, २६ थी २८ नो त्रीजो, २८ थी २९ नो चोयो,  
२९ थी ३० नो पाचमो, ३० थी ३१ नो छट्टो, मूयस्कार छे  
अल्पतर ७ छे ते ३१ थी १ नो पेहेलो अल्पतर, ३१ थी  
३० नो बीजो अल्पतर, इहा कोइक जीव ३० थी १ नो  
बध करे, पिण ते एकना अल्पतर मव्येज गण्यो तिणे जुदो  
गणवो नथी, तथा ३० थी २९ नो त्रीजो, २९ थी २८ नो  
चोयो, २८ थी २६ नो पाचमो, २६ थी २५ नो छट्टो, २५  
थी २३ नो सातमो अल्पतर जाणवो, बधस्थानक तेहज ८  
अवस्थित जाणवा इहा अवक्तव्य ३ तीन छे—ते जे मुनि  
इग्यारमे गुणठाणे नामकर्मनो अवक्त छे, ते इग्यारमाथी पड्या  
१० मे आवी १ बाधे, ए पेहेलो अवक्तव्य, तथा जे इग्यारमे काल  
करे ते चोथे आवे ते देवप्रायोग्य २८ जाधे ए बीजो, अथवा  
कोइक जीव २९ जिननाम सहित जाधे ए त्रीजो अवक्तव्य,  
३१ थी १ नो पेहेलो, ३१ थी ३० नो बीजो, ३० थी २९  
नो त्रीजो, ए नामकर्मना ३ अवक्तव्य जाणवा शेष जे ज्ञाना-  
वरणी आयु, वेदनीय, गोत्रकर्म अतराय, ए पाच कर्मनो एकेक  
बधस्थानक, वेदनीय विना ४ च्यार कर्मने अवस्थित तथा अव-  
क्तव्य ए बे बध छे, वेदनी कर्मने एक अवस्थित बध छे,  
वेदनीयनो अवक्त थइ बध करे नहीं, ते गाटे अवक्तव्य नथी ए  
प्रकृतिबध अधिकार कह्यो, इति प्रकृतिबध समाप्त द्वा० १७ ॥२५॥

सागरनी स्थिति जाणवी, मिउ-मृदुस्पर्श सित-उजळो वर्ण, मधुर-मीठो रस, ए उ प्रकृतिनी दस कोडाकोडी सागरोपमनी उत्कृष्टी स्थिति जाणवी, तथा हवे एफ वर्णे एफ रसे अडी कोडाकोडी वधारवी एटले ङालिद्-पीळोवर्ण, अचिल-खाटो रस तेहनी साटार १२॥ कोडाकोडी सागरनी स्थिति जाणवी, रातो वर्ण, कसायलो रस, तेनी पनर कोडाकोडी स्थिति, नीलोवर्ण, कडुवो रस तेहनी १७॥ साडासत्तर कोडाकोडी सागर स्थिति, काळोवर्ण, तीखोरस तेनी वीस कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति जाणवी ॥ २९ ॥

दससुहविहगइ उच्चे, सुरदुगथिरछक्कपुरिसरइहासे।  
मिच्छेसत्तरि मणुदुग, इत्थीसाएसु पण्णरस ॥३०॥

अर्थ—शुभ विहायोगति १, उच्चगोन १, सुरदुग-देव-गति, देवतानुपूर्वी २, थिरछक्क-थिर १, शुभ २, सुभग ३, सुस्वर ४, आदेय ५, यश ६, ए छ थिरछक्क पुरुषवेद १, रति १, हास्य १, ए १३, तेर प्रकृतिनी दस कोडाकोडी सागर उत्कृष्टी स्थिति छे मिथ्यात्व मोहनीनी सितेर ७०, कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्टी स्थिति छे, मनुष्यगति, मनुष्यानु पूर्वी, स्त्रीवेद, सातावेदनी ए ४ नी पन्नर १५ सागर कोडा-कोडी स्थिति छे ॥ ३० ॥

भयकुच्छ अरइ सोए, विउव्वि तिरि उरल निरयदुग  
नीए ।

तेयपण अथिर छक्के, तस चउ थावर इगपणिदि ३१

अर्थ—भयमोहनी १, कुच्छ-दुगडा १, अरति १,

वरणी, आउखो तथा मोहनी, तथा अतरायनी जवन्य स्थिति  
 ? एक अतर्मुहूर्तनी जाणवी ॥ २७ ॥

विग्घाँ वरणँ असाए, तीस अट्टार सुहुम विगलतिगे ।  
 पढमागिई सघयणे, दसटुसुचरिमेसु दुगवुही ॥२८॥

अर्थ—हवे उत्तर प्रकृतिनी उत्कृष्ट स्थिति जणावे छे अतराय  
 पाच ५, ज्ञानावरणी पाच, दर्शनावरणी नत्र एव आवरण १४  
 असातावेदनीय ? ए वीस प्रकृतिनी तीस कोडाकोडी सागर  
 उत्कृष्ट स्थिति जाणवी तथा सृष्टमत्रिक, विकलत्रिक, ए उ  
 प्रकृतिनी अट्टार कोडाकोडी, प्रथम सघयण वज्रक्रपभनाराच,  
 प्रथम सस्थान समचउरसनी उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी  
 सागर, पछी उपरले एक सघयणे एक सस्थाने दुग केहेता वे  
 कोडाकोडी सागरनी स्थिति वधास्वी, एट्टले ऋषभनाराच सघ-  
 यणे तथा न्यग्रोध सस्थाने चार कोडाकोडी सागरनी स्थिति,  
 तथा नाराच सघयणे, सादि सस्थाने चउद १४ कोडाकोडी  
 सागरनी स्थिति, अर्द्ध नाराचसघयणे, वामनसस्थाने १६ सोळ  
 कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति, किलीकासघयणे, कुब्ज सस्थाने  
 अट्टार १८ कोडाकोडी सागरनी स्थिति, छेवहु सघयण, हुडक  
 सस्थाननी स्थिति वीस कोडाकोडीनी जाणवी ए गाथा मध्ये  
 ३८ प्रकृतिनी स्थिति कही ॥ २८ ॥

चालीसकसाएसु, मिउ लहु निद्धुणह सुरहि सिय  
 महुरे ।

दस दोसहु समहिया, ते हालिदविलाईण ॥२९॥

अर्थ—सोळ १६ कषायनी स्थिति ४० चाळीस कोडाकोडी



आहारक दुग्नी स्थिति उत्कृष्टी जाणवी तथा अमावा प्रदेशोदयनी भिन्नमुहु-अतर्मुहुर्त्तनी जाणवी जवन्य स्थिति सख्यात गुण ऊणी वे जे अत कोडाकोडी स्थिति छे तेहने सख्यातगुणी ऊणी करीये, जेटली थाय तेटली ऊणी जवन्य स्थिति जाणवी एटले असख्याता अव्यवसायनो फेर पडे छे नर-मनुष्यनु आयु तथा तिर्यचायुनी उत्कृष्टी स्थिति तीन ३ पत्योपमनी जाणवी ॥ ३३ ॥

इगविगलपुवकोडि, पलियाऽसखस आउचउ अमणा ।  
निरुवकमाण छ मासा, अवाह सेसाण भवतसो ३४

अर्थ—हवे जे जीवो आवता भवनो आयु जेटलो वाघे ते कहे छे एकेन्द्रि तथा विकलेन्द्रिय आवता भवनु, आयु उत्कृष्ट वाघे तो पूर्वकोडि ? एकनो वाघे एयी अधिक न वाघे. तथा अमणा असञ्जि पचेन्द्रितिर्यच पर्याप्ता च्यार ४ गतिनो आउखो वाघे तो उत्कृष्टो पत्योपमने असख्यातमें भाग प्रमाण वाघे, निरुपक्रम आउखावाळा देवता तथा नारकी तथा युगलिया एटला छ मास शेष यकी नवा भवनो आउखो वाघे. शेष जे सोपक्रमी तथा निरुपक्रमी मनुष्य तिर्यचनु आयुष्य ते, भवने त्रीजे भागे शेषे वाघे पिण पेहेला वे भाग मध्ये न वाघे, जो त्रीजे भागे न वधाय तो नवमा भागे, अथवा २७ मे भागे इम त्रिभाग करता शेष अतर्मुहुर्त्ते पिण वाघे. वर्णादिक वीसनी जुदी स्थिति कही तिणे एकसोछत्रास प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थितिकही हवे जवन्य स्थितिकहे छे ॥३४॥  
लहु ठिइवधो सजलण, लोहपणविग्घनाण दसेसु ।  
भिन्नमुहुत्त ते अट्ठ, जसुच्चे वारस य साए ॥३५॥

शोकमोहनी १, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय उपाग, ए वे, तिर्यचगति  
 तिर्यचानुपूर्वी, ए वे, औदारिक शरीर, औदारिक उपाग ए वे,  
 नरकगति, नरकानुपूर्वी ए वे, नीचैर्गोन ? तैजस पाच-तैजस  
 १, कार्मण २, अगुरुलघु ३, निर्माण ४, उपवात ५, ए  
 पाच अधिरठक ते अधिर १, अशुभ २, दुर्भग ३, दुस्वर  
 ४, अनादेय ५, अजस ६, ए छ नस ४, नस, वादर, प-  
 र्याप्त, प्रत्येक ए च्यार ४, थावर १, एकेन्द्री १, पचेन्द्री  
 १ ॥ ३१ ॥

नपुकुखगइसासचउ, गुरु कक्खड रुख्खसीय दुग्गधे ।  
 वीस कोडाकोडी, एवइआवाहवाससया ॥ ३२ ॥

अर्थ—नपुसकवेद १, अशुभविहायोगति १, श्वासोश्वास  
 चतुष्क-४, उश्वास १, उद्योत १, आतप १, परावात १,  
 गुरु-भारेफरस १, कर्कश फरस १, रुक्ष-ल्लखो फरस १, शीत-  
 टाढो फरस १, दुर्गव १, ए ४२ वेताळीस प्रकृतिनी उत्कृष्टी  
 स्थिति वीस २० कोडाकोडी सागरनी जाणवी एवइया एटला  
 वरस सय-सो वर्ष अबाधा जाणवी एटले जे कर्मनी जेटली  
 कोडाकोडी स्थिति तेटला सो वरसनी अबाधा बाध्या पळी  
 तेटला सो वरस सीम ( सुवी ) उदय न आवे ते अबाधा  
 कहीये ॥ ३२ ॥

गुरु कोडि कोडिअतो, तित्थाहाराणभिन्नमुहुवाहा ।  
 लहुठिइसखगुणूणा, नरतिरियाणाउपल्लतिग ॥ ३३ ॥

अर्थ—गुरु केहेता उत्कृष्टी अतो केहेता माही एटले  
 काइक उणी एक कोडाकोडी सागर तीर्थकर नामनी तथा

आहारक दुग्नी स्थिति उत्कृष्टी जाणवी तथा अत्रावा प्रदे-  
शोदयनी भिन्नमुष्ट-अतर्मुहूर्तनी जाणवी जवन्य स्थिति  
सरस्यात गुण ऊणी ते जे अत कोटाकोडी स्थिति छे  
वेहने सरस्यातगुणी ऊणी करीये, जेटली थाय तेटली ऊणी  
जवन्य स्थिति जाणवी एटले असख्याता अध्यवसायनो फेर  
पटे छे नर-मनुष्यनु आयु तथा तिर्यचायुनी उत्कृष्टी स्थिति  
तीन ३ पत्योपमनी जाणवी ॥ ३३ ॥

इगविगलपुवकोडि, पलियाऽसखस आउचउ अमणा ।  
निरुवकमाण छ मासा, अवाह सेसाण भवतसो ३४

अर्थ—हवे जे जीवो आवता भवनी आयु जेटलो बाघे ते  
कहे छे एकेन्द्रि तथा विकलेन्द्रिय आवता भवतु, आयु उत्कृष्ट  
बाघे तो पूर्वकोडि ? एकनो बाघे एथी अधिक न बाघे.  
तथा अमणा असजि पचेन्द्रितिर्यच पर्याप्ता च्यार ४ गतिनो  
आउखो बाघे तो उत्कृष्टो पत्योपमने असख्यातमें भाग प्रमाण  
बाघे, निरुपक्रम आउखावाळा देवता तथा नारकी तथा युग-  
लिया एटला उ मास शेष यकी नवा भवनी आउखो बाघे.  
शेष जे सोपक्रमी तथा निरुपक्रमी मनुष्य तिर्यचनु आयुष्य ते,  
भवने त्रीजे भागे शेषे बाघे पिण पेहेला वे भाग मध्ये न  
बाघे, जो त्रीजे भागे न बघाय तो नवमा भागे, अथवा  
२७ मे भागे इम विभाग करता शेष अतर्मुहूर्ते पिण बाघे.  
वर्णादिक वीसनी जुदी स्थिति कही तिणे एकसोठ्ठास प्रकृ-  
तिनी उत्कृष्टी स्थितिकही हवे जवन्य स्थितिकहे छे, ॥३४॥  
लहु ठिइवधो सजलण, लोहपणविग्घनाण दसेसु ।  
भिन्नमुहुत्त ते अट्ठ, जसुच्चे वारस य साए ॥३५॥

अर्थ—जे सज्वलन लोभ ? , तथा पाच अतराय ५, तथा पाच ज्ञानावरणी तथा दसेसु च्यार ४, दर्शनावरणी १५ पत्तर, प्रकृतिनी जवन्य स्थिति अतर्मुहूर्तनी जाणवी तथा जसनामकर्म, उच्चैर्गोत्र ? नी आठ मुहूर्तनी जवन्य स्थिति जाणवी सातावेदनीयनी जवन्य स्थिति चार मुहूर्तनी ते दसमे गुणठाणे राघे, इग्यारमे, बारमे, तेरमे गुणठाणे साता वधाय ते वे समयनी वधाय ॥ ३५ ॥

दो इग मासो पक्खो, सजलणतिगेपुमट्ठवरिसाणि ।  
सेसाणुक्कोसाओ, मिच्छत्तठिईए ज लद्ध ॥ ३६ ॥

अर्थ—सज्वलनना क्रोधनी जवन्य स्थिति मास वेनी छे सज्वलननामाननी ? , एक मासनी छे, सज्वलन मायानी पक्ष ? , ते पदर दिवसनी छे, तिहा जे प्रकृति नवमे गुणठाणे वेहेली खपे तेहनी स्थिति जवन्यपणे कही हवे जे मोडी खपे तेहनी जवन्य स्थिति थोडी जाणवी पुरुषवेद खपे तिहा सर्व प्रकृतिनी स्थिति एटलीज वधाय छे, पुरुषवेदनी स्थिति जवन्य छे, हवे शेष जे एकसोएक प्रकृति वर्णादिक वीसनी उत्कृष्टी स्थितिने मिथ्यात्वनी उत्कृष्टी स्थितिनी भाग आपता ज्या जे आवे ते त्या प्रकृतिनी जवन्य स्थिति जाणवी तिहा निद्रा पाचनी जवन्य स्थिति सागर ? एकना जे सात भाग एहवा तीन भागनी जाणवी असातावेदनीय पिण सात इया तीन भागनी जाणवी, बार कषायना जवन्ये सातइया ४ च्यार भागनी जाणवी हास्य ? , रतिनी सातइया वे भाग भय, दुगळा, अरति, शोक ए च्यार ४ प्रकृतिनी जवन्य स्थिति वे भाग, नपुसकवेदनी स्थिति सातइया वे भाग,

स्त्रावेदनी स्थिति सातइयो दोढ भाग, नामकर्ममध्ये देवगति देवानुपूर्वीनी एक हजार भाग नरकगति, नरकानुपूर्वीनी सातइया वे हजार भाग, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वीनी दोढ भाग एकेन्द्री जाति, पचेन्द्री जातिनी जवन्य स्थिति सातइया वे भाग, विकल्पिकनी सातइया पौणा वे भाग झाझेरा, औदारिक शरीर, औदारिक उपागनी वे भाग, वैक्रिय शरीर वैक्रिय उपागनी वे हजार भाग, तैजसकर्मणना वे भाग, प्रथम सवयण प्रथम सस्थाननी सातइयो १, एक भाग, वीजो सवयण वीजा सस्थाननी स्थिति ३५ सीया ४ ६ भाग, त्रीजो सवयण त्रीजो सस्थान ३५, सीया ७, भाग चोथे सवयणे चोथे सस्थाने पात्रीसीया ( ३५ या ) ८, भाग पाचमो सवयण पाचमो सस्थानना पात्रीसीया नव ९ भाग, छट्टो सवयण, छट्टो सस्थानना पात्रीसीया दस भाग, एटले सातइया वे भाग श्वेतवर्ण मधुररसनी १, भाग पीतवर्ण खाटारसनी सवा भाग रातावर्ण कसायला रसनी दोढ भाग नीलोवर्ण, कडुयो रस पोणावे भाग, काळोवर्ण, तीखारसनी वे भाग सातइया, सुरभिगध, मृदुस्पर्श, लघुस्पर्श, स्निग्धस्पर्श, उणस्पर्श, नो सातइयो १, भाग शुभविहायोगतिनो जवन्य सातइयो १, एक भाग अशुभविहायोगति, पराघात, उश्वास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात, त्रस, अथिरठक, थावरनाम ए सर्वना सातइया वे भाग, आहारक शरीर, आहारक उपागनी, जिन नामनी एक कोडाकोडी सागर केटलाएक सागरोपमना त्सेकडा ओठा, सूक्ष्मत्रिकनी सातइया पौणा वे भाग झाझेरा, थिर ५ नो सातइयो १, भाग जवन्य स्थिति जाणवी ॥३६॥

अयमुक्कोसो गिदिसु, पलियाऽसखस हीणलहुवधो ।  
कमसो पणवीसाए, पन्ना सय सहस्स सगुणिओ ॥३७॥

अर्थ—एक भाग उ भाग तीनभाग प्रमुख स्थिति कही ते एकेन्द्रीने उत्कृष्ट स्थिति जाणवी, नादर पर्याप्तो उत्कृष्टी वाधे, ए जे एकेन्द्रीयनी उत्कृष्ट स्थिति कही, ते माहेयी पत्योपमनो असख्यातमो भाग हीण कहेता ओगो करीये, तिवारे एकेन्द्रीयनी जवन्य स्थिति जाणवी कमसो अनुक्रमे पणवीसाए एकेन्द्रीयी वेन्द्री पचसीस गुणी स्थिति वाधे, तेन्द्री पचासगुणी स्थिति वाधे, चोरेन्द्री १०० सोगुणी वाधे, अने अससि पचेन्द्री हजारगुणी स्थिति वाधे ॥ ३७ ॥

विगलिअसन्निसुजिट्ठो, कणिट्ठओ पल्लसखभागूणो  
सुर निरयाउ समादस, सहस्स सेसाउ खुडु भव ॥३८॥

अर्थ—विकलेन्द्री ( वेन्द्री, तेन्द्री, चोरेन्द्री ) ने, अससिने ए स्थिति उत्कृष्टी जाणवी कणिट्ठओ—जवन्य स्थिति पल्यनो सख्यातमो भाग ऊणी, करवी ते पल्यनो सख्यातमो भाग ऊणो कीजे तिवारे वेन्द्रीयादिकनी जवन्य स्थिति जाणवी सुर देवतानो आउखो, नरय—नास्कीना आउखानी जवन्य स्थिति हजार १० दस हजार वरसनी जाणवी शेष जे मनुष्य तिर्यचना आउखानी जवन्य स्थिति क्षुल्लक भव प्रमाण, क्षुल्लक भव २५६ आवलीनी छे ते जवन्य जाणवी ॥३८॥

सवाणवि लहुवधे, भिन्नमुडु अवाह आउजिट्ठेवि ।  
केइ सुराउसमजिण, मतमुहू विति आहार ॥३९॥

अर्थ—सर्व प्रकृतिना जवन्य स्थितिमे जवन्य अत्राधा अतर्मुहूर्त्तनी जाणवी एट्ठे सर्वजवन्य स्थितिनी जवन्य अत्राधा अतर्मुहूर्त्तनी ते उपर स्थिति कडक एक ववे एक समय अत्राधा ववे इम उत्कृष्ट स्थितिमा उत्कृष्ट अत्राधा जाणवी, अने आउखा च्यारनी उत्कृष्टी स्थिति जवन्य अत्राधा दुवे, इहा चौभगी छे, आउखो उत्कृष्टे अत्राधा उत्कृष्टी १, आउखे उत्कृष्टे अत्राधा जवन्य २, आउखो जवन्य अत्राधा उत्कृष्ट ३, आउखो जवन्य अत्राधा जवन्य ४ जाणवी वळी वाचनान्तर कहे छे कोइक आचार्य जिन नामनो जवन्य स्थितिमे देवताना आयु प्रमाण जाणवो, एट्ठे आठमा गुणठाणाना उट्टा भागना चरम समये जीननामकर्मनो जवन्य स्थितिमे १० हजार वर्ष प्रमाणनो होयछे आहारक दुगनी विपाकनी जवन्य स्थितिमे अतर्मुहूर्त्तनी छे, जे आठमा गुणठाणाना छट्टा भागना चरम समये—आहारनो जवन्य स्थितिमे अतर्मुहूर्त्त होय छे ॥ ३९ ॥

सत्तरसमहियाकिर, इगाणुपाणुंमिहुतिखुइभवा ।

सगतीस सयतिहुत्तर, पाणू पुण इग मुहुत्तमि ॥४०॥

अर्थ—दुवे क्षुलकभवनी मान कहे छे एक आणपाण श्वासोश्वास मध्ये सत्तर भव पुरा अदारमा भवना १३९५ भाग अधिक एट्ठे सत्तर भव झाझेरा एक श्वासोश्वास माहे थाय. ए क्षुलक भव जाणवो, क्षुलक एट्ठे सर्वथी न्हानो भव ए भाग उश्वासना ३७७३ भाग करीये तेहवा १३९५ भाग लेवा, सट्टीसमे तिहुत्तर ३७७३ पाणू, पुण कहेता श्वासोश्वास गये एक मुहूर्त्त थाय, ॥ ४० ॥

पणसठि सहसपणसय, छत्तीसाइगमुहुत्त खुइभवा ।  
आवलियाण दोसय, छप्पन्ना एग खुइभवे ॥ ४१ ॥

अर्थ—एक मुहूर्त ते वे घडी प्रमाणमे पैंसठहजार पा-  
चसे छत्तीस भव थाये, सुद्धमनिगोदीयायी माडी समुच्छिम  
मनुष्य पर्यंत ए प्रमाण जाणयो, तथा सुल्लक भव मव्ये  
आवली, २५६ जाये एउठे मुहूर्तमे एक कोडि सडसठ लाख  
सित्तोत्तर हजार दोयसेने सोळ आवली जाणवी ॥ ४१ ॥

अविरयसम्मोत्तिथं, आहारदुगामराउ अपमत्तो ।  
मिच्छदिष्टि वधइ, जिट्ठं ठिइ सेस पयडीण ॥ ४२ ॥

अर्थ—हवे उत्कृष्टी स्थितिभयना स्वामी कहेछे तीर्थंकर  
नामनी उत्कृष्टी स्थिति अविरति समकीतीवधक, समकितथी माडी  
अपूर्वकरणना छट्टा भाग पर्यंत छे, ते सर्व जीवयी अधिक  
कषायी अविरति समकीती छे, ते अधिक कषायी तेयी स्थिति  
ते उत्कृष्टी बाधे आहारकदुग—२ आहारक शरीर तथा उपाग  
ए वे अमर—देवतानो आउखो उत्कृष्ट स्थिति अप्रमत्त गुण-  
ठाणे बाधे, तिहा आहारक अप्रमत्त अति सक्केशना अच्यव-  
साये बधक उत्कृष्ट स्थिति बधे देवायु अप्रमत्त विशुद्धाध्यवसाये  
उत्कृष्ट स्थिति बाधे, शेषप्रकृति वर्णादिक वीस मिन्नगवेखेतो,  
१३२, तथा वर्णादि ४, गवेखीयेतो ११६, नी उत्कृष्टी स्थिति  
सज्ञीपचेन्द्री पर्याप्तो मिथ्यादृष्टि बाधे ॥ ४२ ॥

विगलसुहुमाउत्तिगं, तिरिमणुया सुरविउवि निरयदुग  
एगिदिथावरायव, आईसाणा सुरुक्कोस ॥ ४३ ॥



अर्थ—हृवे मिथ्यात्वे च्यार ४ गतिना छे ते ते मव्ये जे वाघे ते छिखीये छे विगल ३ सुधम ३ तिर्यचायु १, मनुष्यायु १, नरकायु १, ए ३ आउखा देवगति ? देवानुपूर्वी, १ ए देवद्विक, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय उपाग, ए वे वैक्रियदुग, नरगति, नरकानुपूर्वी, ए नरकाद्विक, ए १५ प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थिति सञ्जिपचेन्द्रीपर्याप्तमिथ्यात्वी तिर्यच मनुष्य वाघे एना ऋवक एज छे तथा एकेन्द्रीजाति, यावरनाम, आतपनाम, ए तीन प्रकृति आडसाणा-भवनपति, व्यतर, ज्योतिपी, सुधर्म, इशान देवलोक पर्यतना देव उत्कृष्टी स्थिति वाघे, आकरे तीव्र अशुद्धता ए परिणम्यो ए जीव एकेन्द्रीपणो उपार्जे वीजीहीणी गतिमा एने जवु नयी ते माटे ॥ ४३ ॥

तिरिउरलदुगुज्जोअ, छिवठ सुरनिरय सेसचउगडया।  
आहारजिणमपुधो, अनियट्टि सजलण पुरिसलहु।४४।

अर्थ—तिर्यचदुग, औदारिकदुग, उद्योतनाम, छेवठो-सघयण, ए ६ प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थिति मिथ्यात्वी देवता अथवा मिथ्यात्वी नारकी वाघे, शेष १०८ एकसो आठ, प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थिति च्यार गतिना मिथ्यात्वी वाघे, सञ्जि-पर्याप्त वाघे

अथ जवन्य स्थितिना स्वामी कहे छे आहारक तथा जिननामनी जवन्य स्थिति अपर्वकरण गुणठाणे वाघे, ए प्रकृतिना ऋवक मव्ये अति निर्मल परिणाम अहिज छे अनिवृत्ति गुणठाणे सजलना कषाय च्यार, पुरुषवेद, ए पाच प्रकृतिनी जवन्य स्थिति वाघे ॥ ४४ ॥

सायं जंसुच्चावरणा, विग्ध सुहुमो विउवि छ असन्नि।  
सन्नीवि आँउ वायर, पजेगिंदी उ सेसाण ॥४५॥

अर्थ—सातावेदनीय १, जसनाम २, उचैगोंन १, जाना-  
वरणी पाच ५, दर्शनापरणी ४, अतराय पाच ५, ए १७  
प्रकृतिनी जवन्य स्थिति सूक्ष्मसपराय दसमे गुणटाणे वाघे  
देवद्विक २, नरकद्विक २, वैक्रियाद्विक २, ए ६ उ प्रकृतिनी  
जवन्य स्थिति असज्जिपचेन्द्री पर्याप्तो वाघे, जे कारणे एहनो  
प्रथमत्रय एहिज छे, आउखा ४, नी जवन्य स्थितिनो बचक  
सज्जिपण छे असज्जिपण छे एहनो बच परिणामनी तीव्रम-  
दताये छे, शेष १०१, अथवा ८५, प्रकृतियोनी जवन्य स्थितिना  
बचक वादरपर्याप्ता एकेन्द्री जाणवा स्थितिबधमें सूक्ष्मसपरायी  
साधुयी बीजे बोले स्थितिबचक एकेन्द्री पर्याप्तो छे ॥४५॥

उक्कोसजहणणीयर, भगासाई अणाइ धुवअधुवा।  
चउहा सग अजहन्नो, सेसतिगे आउ चउसुदुहा॥४६॥

अर्थ—हवे स्थितिबधना भागा कहे छे—तिहा उत्कृष्ट  
१, जवन्य १, इतर अनुत्कृष्ट अजवन्य १, ए ४, च्यार  
भागा छे तिहा जे प्रकृतिनी जे उत्कृष्ट स्थिति छे ते बाघे  
ते उत्कृष्टबध कहेवाय, उत्कृष्टबध एक जीवने लागट  
रहे तो अतर्हूर्त रहे ते माटे ए सादि अघुव छे, तथा  
जे प्रकृतिनी जवन्य स्थिति जे बाघे ते जवन्य बचक  
कहीये ते एकएक समयमाज बाघे, एहने पिण सादि  
अघुव भेदज लागे, तथा उत्कृष्टी नही ते अनुत्कृष्ट, ते इहा

उत्कृष्टोऽथ सादि अद्रुव जे हुवे पर ए अर्थ इहा लीधो नयी  
 ( टामा लीधो नयी एम छे ) इहा तो जवन्य वधकयी  
 वीजो वध ते सर्व अजवन्यमें गवेरयो छे, अने प्रथम अर्थ  
 करीये तो पिण अनादि सूक्ष्मनिगोदीया जीवने सदा अजव-  
 न्य वध छे जे जवन्य वध तो वादर एकेन्द्राने छे, अथवा  
 गुणाधिकने छे ते माटे ए भागे ४, भेद भासे छे, सातकर्म  
 ( आउखा विना ) अजवन्य स्थिति बाधेतो सादि एक १,  
 अनादि २, द्रुव ३, अद्रुव ४, ए च्यारभेदे बाधे जे उ  
 कर्मनो जवन्य वध १०, मे गुणठाणे, मोहनी कर्मनो जवन्य  
 वध नममे गुणठाणे अत्य अव्यवसाय क्षपकश्रेणिने, अने उप-  
 शमश्रेणि ते क्षपकयी वमणी स्थितिबाधे, ते माटे अजवन्य  
 वधक छे, तेहने इग्यारमे आव्ये अत्रथ थयो, ते अद्रुव, पाठो  
 पढी वळी बाधे ते सादि, ए गुणठाणे आव्यो नयी तेहने  
 अनादि, अभव्यने द्रुव भव्यने अद्रुव ए रीते जाणज्यो १, सर्व  
 जीवने अजवन्य वध ते ए गुणठाणे चढ्या पढ्याने सादी, चडस्ये  
 तेहने अद्रुव, तथा अभव्यने अनादि द्रुव छे, तेयी एज सात-  
 कर्म उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जवन्य ए तीन भागे सादि अद्रुव वध  
 छे, ए ३, ना वधनो काल अल्प छे, तथा आउखो कर्म उत्कृष्ट  
 जवन्य, अजवन्य, ए ४, च्यारे भागे स्थिति बाधे तो सादि  
 अद्रुवकालज बाधे, जे कारणे भवमें आयु एकवार तथा अत-  
 मुहूर्त सीम ववाय ते माटे बे भेदज छे, शेष तीन उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट  
 जवन्य १, अनुत्कृष्ट भागे बाधे तो सादि अद्रुवकालसीम बाधे,  
 जे कारणे जवन्यवधनो एक समय काल छे, उत्कृष्टवधनो १,  
 समयकाल छे, अनुत्कृष्ट ते उत्कृष्ट पछी याय ते माटे सादि  
 अद्रुव छे, उत्कृष्टयी एक समये ऊणबाधे ते अनुत्कृष्ट वध,

कहीये ए पिण उत्कृष्ट यवक यया पठी वावे ते माटे सादि अद्रुव लामे, तथा जवन्ययवक यइने एरु समय अधिक अधिक वधाय ते अजवन्य गणीये तो ॥ ४६ ॥

चउभेओ अजहन्नो, सजलणावरणनवगविग्वाण ।  
सेस तिगिसाइ अधुवो, तहचउहा सेसपयडीण ॥४७॥

अर्थ—अजवन्ययव च्यार भेदे पामीये, सजलण च्यार ४, ज्ञानावरणी पाच, दर्शनावरणी ४, ए नय, अतराय पाच, ए १८ प्रकृतिनी अजवन्य स्थिति च्यार ४, भेदे छे, जे ए १८ प्रकृतिनो जवन्ययव नवमे, दसमे, गुणठाणे छे तेहयी वीजा जीव सर्प अजवन्ययवक छे, तेहमा जे ए गुणठाणे चढी पड्या छे तेहने सादि अद्रुव छे, अभव्यने अनादि ध्रुव छे एहिज अठार प्रकृतिना, शेष तिग-शेष ३ भागा सादि १, अद्रुव २, भेदे छे, भावना पूर्ववत् शेष १०२ प्रकृतिनी, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जवन्य, अजवन्य, ए च्यार ४ प्रकारनी स्थिति सादि अद्रुव भागे वधाय, तिहा ७३ प्रकृति तो अद्रुव बधिज छे ते माटे किवारे ववाये किवारे न वधाये ते माटे सादि अद्रुव छे, २९ द्रुवबधिमाहेली छे ते सदा वधाय, पिण ए २९ नो जवन्ययवक पिण एकेन्द्रीय छे, ते एकेन्द्रीयपणामे जवन्ययव करे ते माटे जवन्य कर्या पठी अजवन्ययव ते पिण सादि अद्रुव छे, ते माटे ए २९ प्रकृतिने सादि अद्रुव छे ॥ ४७ ॥

साणाई अपुवते, अयरतो कोडि कोडिओ नहिणो,  
वधो न हु हीणो नय, मिच्छे भवियर सन्निमि ॥४८॥

अर्थ—हवे गुणठाणे स्थिति कहे छे. सास्वादन गुणठाणायां माटी अपूर्वकरण पर्यंत अयर—सागरोपम अतो—कोडाकोडी एक काइक ऊणी स्थिति बाघे, एट्ठे ए ७ गुणठाणे ? कोडाकोडी देशे उणी स्थिति बाघे, मिण नहिगो—अधिकी न बाघे, समकीतीया देश विरति नवपल्य ओछी बाघे, तेथी सर्वविरति केटला सागर ओछी बाघे, तेथी अपूर्वकरण सख्याता सागरना सेंकडा ओछी बाघे, तथा मिथ्यात्व गुणठाणे अत कोडाकोडीयां ओछी न बाघे, अनादि मिथ्यात्वी जघन्य अत कोडाकोडी, उत्कृष्ट ७० कोडाकोडी बाघे ए मिथ्यात्वी भव्य तथा अभव्य सर्जी आश्रयि कह्यो छे ॥ ४८ ॥

जइ लहुवधो वायर, पज्जअसखगुण सुहुमपज्जहिगो।  
एसिं अपज्जाण लहू, सुहुमेअर अपज्जपज्जगुरु ॥४९॥

अर्थ—हवे ३६ बोलना स्थितिनो अल्पबहुत्व कहे छे सर्वथी यती लहु—जघन्य स्थिति बधके सूक्ष्मसपराय चरमसमयी सर्वथी थोडी ? बाघे ? अतर्मुहूर्त बाघे छे तेहथी बादर पर्याप्तो जघन्य स्थितिबधक असख्यातगुणी बाघे, ए सागरना भागनो बधक छे ते असख्यातो काल छे ते माटे तेहथी सूक्ष्म एकेन्द्री पर्याप्तो जघन्यबधक काइक अधिकी बाघे, एहने योडो काल वधे छे, एहज बे अपर्याप्ता लहु—जघन्यबधकना बे बोल कहेवा तेहथी बादर पर्याप्तो जघन्यबधक स्थिति अधिकी बाघे ४, तेहथी सूक्ष्मअपर्याप्तो जघन्यबधक अधिकी बाघे ५, तेहथी सूक्ष्म अपर्याप्तो उत्कृष्टबधक अधिकी बाघे ६, तेहथी बादर अपर्याप्तो उत्कृष्ट स्थितिबधक अधिकी बाघे ७, तेहथी सूक्ष्म अपर्याप्तो उत्कृष्टबधक अधिकी बाघे ८,

तेहथी वादर पर्याप्तो उत्कृष्टवचक स्थिति अधिकी वाचे एके-  
न्द्रापणामे एज उत्कृष्टवचक छे ९ ॥ ४९ ॥

लहु विअ पज्ज अपज्जे, अपज्जेयर विअ गुरु हिगो एव।

तिचउ असन्निसु नवर, सखगुणो विअ अमणपत्ते ५०

अर्थ—लहु—जवन्यवचक वेन्दी पर्याप्तो सरयातगुणी वाचे  
१० तेहथी वेन्दी अपर्याप्तो जवन्यवचक अधिकी वाचे, ११  
तेहथी वेन्दी अपर्याप्तो उत्कृष्टवचक अधिकी वाचे, १२ तेहथी  
वेन्दी पर्याप्तो उत्कृष्टवचक अधिकी वाचे १३ इहा एकेन्द्रायी  
वेन्दीने २९ गुणो बध, ते माटे पेहेले बोले सरयातगुणो कख्या  
पछी ते पल्पना असरयातमे भागे वृद्धि छे, ते माटे अधिकी  
वाचे एव—ए रीते च्यार ४ बोल कहेवा तिहा १४ मे बोले  
तेन्दी पर्याप्तो जवन्यवचक स्थिति अधिकी वाचे, तेहथी १५  
मे बोले तेन्दी अपर्याप्तो जवन्यवचक स्थिति अधिकी वाचे,  
तेहथी तेन्दी अपर्याप्तो उत्कृष्टवचक अधिकी वाचे १६ तेहथी  
तेन्दी अपर्याप्तो उत्कृष्टवचक ते अधिकी वाचे १७ तेहथी  
चौरेन्दी पर्याप्तो जवन्यवचक अधिकी वाचे १८ तेहथी  
चौरेन्दी अपर्याप्तो जवन्यवचक अधिकी वाचे, १९ तेहथी  
चौरेन्दी अपर्याप्तो उत्कृष्टवचक अधिकी वाचे २० तेहथी चो-  
रेन्दी पर्याप्तो उत्कृष्टवचक अधिकी वाचे, २१ तेहथी असज्जि  
पचेन्दी पर्याप्तो जवन्य वे० सरयात गुणवचक छे ते २२  
ए हजारगुणी वाचे ते चौरेन्दीथी नवगुणी साधिक थइ छे  
ते माटे तेहथी असज्जि पचेन्दी अपर्याप्तो जवन्यवचक अधिकी  
वाचे २३ तेहथी असज्जि पचेन्दी अपर्याप्तो उत्कृष्टवचक अ-  
धिकी वाचे २४ तेहथी असज्जि पचेन्दी पर्याप्तो उत्कृष्टी

बधक अधिकी बाधे २५ नवर-विशेष एटलो फेर छे जे वेन्द्री  
 तथा असञ्जि पर्याप्तो तेनो पाठ ते सख्यातगुणो कहेवो ॥१०॥  
 तोजइ जिट्ठो वंधो, सखगुणो देसविरयहस्सिअरो ।  
 सम्मचउ सन्निचउरो, ठिइवधाऽणुकम सखगुणा ५१

अर्थ—तेहयी प्रमत्त गुणठाणे वर्त्तमान ते मुनिपणामे  
 उत्कृष्ट बधक छे सख्यात गुणी स्थितिबाधे २६ ॥ केटलाएक  
 सागर उणी एक कोडाकोडीना बधक छे, तेहयी देशविरति  
 जघन्यबधकनी सख्यातगुणी स्थिति वृद्धि तो योडी छे ते पर  
 स्थितिस्थानक कषायनी चोकडीना बध्या, माटे असख्यातगुणा  
 बधे छे ते माटे असख्यातगुणपणे लीघी छे २७ । तेहयी  
 देशविरति उत्कृष्ट बधक असख्यात गुणीबाधे २८ । तेहयी  
 समकीतीना न्यार जेल कहेवा, तिहा समकिति पर्याप्तो जघन्य  
 बधक सख्यातगुणी बाधे २९ । तेहयी समकित्ती अपर्याप्त  
 जघन्यबधकने सख्यातगुणी बधाय ३० । तेहयी समकित्ती अप-  
 र्याप्तो उत्कृष्ट बधक सख्यातगुणी बाधे ३१ । तेहयी समकित्ती  
 अपर्याप्तो उत्कृष्टबधक सख्यातगुणी ३२ । तेहयी समकित्ती पर्याप्तो  
 उत्कृष्टबधक अधिकी बाधे, तेहयी सञ्जी पर्याप्तो जघन्यबधक  
 सख्यातगुणी बाधे ३३ । तेहयी सञ्जी अपर्याप्तो जघन्यबधक  
 सख्यातगुणी बाधे ३४ । तेहयी सञ्जी अपर्याप्तो उत्कृष्टबधक  
 सख्यातगुणी बाधे ३५ । तेहयी सञ्जी पर्याप्तो उत्कृष्टबधक  
 सख्यातगुणी बाधे ३६ । एम स्थितिवध सख्यातगुणा छे १५१ ।

सद्वाणवि जिट्ठठिई, असुहा ज साइ सकिलेसेण ।  
 इअरा विसोहिओ पुण, मुत्तु नरअमर तिरिआउ ५२

अर्थ—सर्वं प्रकृतिनी जिह्व-उत्कृष्टी स्थिति ते अशुभ जाणवी, जे साईं-ते अति सक्लेश परिणामे एटले जिननामनो बध चोया गुणटाणायी माटी जाटना गुणटाणा लगे छे, पिण चोवे स्थिति उत्कृष्टी बावे तेमें गुड परिणाम छे ते माटे जवन्य बावे ए सर्वं प्रकृतिनी ३-२१-जवन्य स्थितिने विशुद्ध परिणामे बावे, एक तीन प्रकृति नर-मनुष्यायु, देवायु, तिर्य-चायु, ए तीन प्रकृति मूकीने, एटले ए तीन प्रकृतिनी जवन्य स्थिति सक्लेश परिणामे बावे, उत्कृष्टी स्थिति विशुद्ध परिणामे बावे ॥ ५२ ॥

सुहृमनिगोआइखणप्प-जोगवायर य विगलअमणमणा  
अपज्जलहु पढमदुगुरू, पजहस्सिअरो असखगुणो।५३॥

अर्थ—हवे २८ बोलना योगबलनो अल्पबहुत्व कहे छे सुहृमनिगोदादि प्रथम क्षणे प्रथम समये उपनो अपर्याप्त पणाथीज आव्यो तेहनो सर्वथी योगबल अल्प जाणवो ? तेहथी बादर एकेन्द्री अपर्याप्तो प्रथम समय उपनो अपर्याप्तो अपर्याप्तपणाथीज आव्यो, तेहनो सर्वथी योगबल अल्प जाणवो ? तेहथी बादर एकेन्द्री अपर्याप्तो प्रथम समय उत्पन्न ज-घन्ययोगीनो योगबल असख्यातगुणो, २, तेहथी वेन्द्री अ-पर्याप्ता जघन्ययोगीनो योगबल असख्यातगुणो, ३ तेथी तेन्द्री० ४ तेथी चोरेन्द्री० ५ तेहथी अखण-असज्जि अप-र्याप्तानो जवन्य योगबल असख्यातगुणो, ६ तेहथी मणा-सज्जि अपर्याप्तानो जवन्य योगबल असख्यातगुणो ७, तेहथी पढम-पेहेला बे बोल गुरू-उत्कृष्टबधक एटले सुहृम अपर्याप्तानो उत्कृष्ट योगबल असख्यातगुणो, ८ तेहथी बादर अपर्याप्तानो



उत्कृष्ट योगत्रय असख्यातगुणो ९ सूक्ष्म पर्याप्त जवन्य यो-  
गीनो योगत्रय असख्यातगुणो १० तेहथी वादर पर्याप्त ज-  
वन्य योगीनो योगत्रय असख्यातगुणो, ११ तेहथी सूक्ष्म  
पर्याप्त उत्कृष्ट योगीनो योगत्रय असख्यातगुणो १२ तेहथी  
वादर पर्याप्त उत्कृष्ट योगीनो योगत्रय असख्यातगुणो १३ ॥५३॥

असमत्ततमुक्कोसो, पज्जजहन्नियर एव ठिइठाणा ।  
अपज्जेयर सखगुणा, परमऽपजवीए असंखगुणा ॥५४॥

अर्थ—असमत्त-अपर्याप्त ५, नो उत्कृष्ट योगीनो योग-  
त्रय असख्यातगुणो ते पळी त्रस ५, पर्याप्ता जवन्य योगीनो  
योगत्रय असख्यातगुणो, तेथी त्रसना ५, पर्याप्ता उत्कृष्टयोगीनो  
असख्यातगुणो योग छे ते कहे छे—चौदमे बोले अपर्याप्त  
वेन्द्रि उत्कृष्टयोगीनो योगत्रय असख्यातगुणो १५, तेहथी अप-  
र्याप्त चौरेन्द्रिनो उत्कृष्टयोग असख्यातगुणो, १६, तेहथी अप-  
र्याप्त असज्ञिपचेन्द्रिनो उत्कृष्ट योगत्रय असख्यातगुणो १७  
तेहथी अपर्याप्त सज्ञिपचेन्द्रिनो उत्कृष्टयोग असख्यातगुणो १८,  
तेहथी पर्याप्त वेइन्द्रिनो जवन्ययोग असख्यातगुणो १९, ते-  
हथी पर्याप्त तेइन्द्रिनो जवन्ययोग असख्यातगुणो २०, तेहथी  
पर्याप्ता चौरेन्द्रिनो जवन्ययोग असख्यातगुणो २१, तेहथी पर्याप्ता  
असज्ञिपचेन्द्रिनो जवन्ययोग असख्यातगुणो २२, तेहथी पर्याप्ता  
सज्ञिपचेन्द्रिनो जवन्य योग असख्यातगुणो, २३ तेहथी पर्याप्त  
वेन्द्रिनो उत्कृष्टयोग असख्यातगुणो, २४ तेहथी तेन्द्रिपर्याप्तो  
तेनो उत्कृष्ट योग असख्यातगुणो, २५ तेथी चौरेन्द्रि पर्याप्ता-  
नो उत्कृष्ट योग असख्यातगुणो, २६ तेहथी असज्ञिपचेन्द्रि  
पर्याप्तानो उत्कृष्ट योग असख्यातगुणो, २७ तेथी सज्ञिपचेन्द्रि

पर्याप्तानो उत्कृष्ट योग असख्यातगुणो २८ ए रीते स्थिति स्थानकनो अल्पमदुत्त २८ मोलनो जाणवो, वीर्यनी वृद्धि स्थितिनी तीत्रमदताना भेद पडे ते इहा लेज्यो अपर्याप्तार्थी इअर—पर्याप्ताना स्थितिस्थानक असख्यातगुण छे, इहा जीव भेद एके स्थिति जवन्य मिथ्यात्वनी एकसागर पत्यने असख्यातमे भागे ऊणी राघे, पिण कोइक तीत्र राघे, कोइक जीव मद तथा मदतर रीते एक स्थितिस्थानकमे ते स्थिति राघवाना अव्यवसाय स्थानक असख्यात याये एहवा एक जीवभेद सूक्ष्म अपर्याप्ताने राघवाना अव्यवसाय स्थानक असख्यात छे तेहर्था सूक्ष्मपर्याप्ताना बधाध्यवसाय सख्यातगुणा छे, तेयी बादर अपर्याप्ताना सख्यातगुणा छे, तेयी वेइन्द्रि अपर्याप्ताना बधाध्यवसाय असख्यातगुणा छे, तेयी वेन्द्रिपर्याप्ताना बधाध्यवसाय सख्यातगुणा छे इम १४ जीवभेदे कहेता पण एटलो भेद जे वेइन्द्रि अपर्याप्ताना असख्यातगुणाज नसपणानो वीर्य तेहने वाव्यो ते माटे तथा इहा स्थिति अपेक्षाए पहेला (१) ॥५४॥

पइ खण मसखगुणविरिय, अपज्जपइठिइमसखलोग-  
समा ।

अज्झवसाया अहिया, सत्तसु आउसु असखगुणा ५५॥

अर्थ—हवे जीवने क्षयोपशमी वीर्य जे उपजवाने प्रथम समये छे ते असख्यातो छे ते पछी पइखण—प्रतिसमये एटले समय समयमे असख्यातगुणो वीर्य वघे पण अपर्याप्तावस्थासीम इम वीर्यवृद्धि जाणवी एटले पेहेला समयथी बीजे समये असख्यातगुणो वीर्य वघे, नीजे समये असख्यातगुणो

वीर्यं वधे, अने वळी पड्ठिइ-प्रतिस्थितिए ( स्थिते ) अध्य-  
वसाय असंख्याता छे, ते अलोकमध्ये लोक जेहवा असंख्याता  
खड कल्पीये तेहना प्रदेश जेटला एकस्थितिस्थानक स्थिति-  
वधना अध्यवसाय छे, ते ए सर्प जीवभेदे जाणज्यो कपायना  
तरतमयोगे अध्यवसायना भेद जाणवा, ए अध्यवसाय अनेत-  
जीवमा पण पामीये अने कोइक वेळा असख्याता अध्यवसाय  
जीव रहित पिण पामीये हवे सातकर्मनी जवन्य स्थिति वाधे  
तेहना अध्यवसाय असख्याता छे, अने एक समयाधिक वाधे  
तेहना पुठली स्थितिना अध्यवसाययी काइक अधिक जाणवा  
इम तृतीय समयाधिकना अध्यवसाय अधिका इम वधारते २  
उत्कृष्ट स्थितिस्थानकसीम अधिकाधिक कहेवा, आउखाक-  
र्मना जवन्य स्थितिस्थानकयी समयाधिकनो जे स्थितिस्थानक  
तेहना अध्यवसाय असख्यातगुणा कहेवा, सर्व वर्चतो आउखो  
वाधे पिण आउखानी स्थिति थोडी तिणे स्थितिस्थानक  
थोडा अने कपायस्थानकने वहेचता असख्यातगुणा आवे, इम  
सात कर्मने पण स्थितिस्थानके करी कपायस्थानकनो अल्प  
बहुत्व कहेवो, हवे जे प्रकृति जेटला काल अवव रहे ते प्र-  
कृतिनो अवधकाल कहे छे तिहा ४७ प्रकृति तो द्रुववधि छे  
ते निरतर वधाये छे, तेथी वीजानी भावना करीये छे ॥५५॥

तिरिनिरय ति जोयाण, नरभव जुअ स चउ पल्ल तेसठ ।

थावर चउ इग विगलाय—, वेसु पणसीइ सयमयरा ५६

अर्थ—तिहा तिर्यच ३, नरक ३, उद्योतनामकर्म ए  
७ सात प्रकृतिनो उत्कृष्ट मनुष्यभवयुक्त पल्योपम च्यार अने  
एकसो तेसठ सागरोपम पर्यंत वाधे नहीं, तिहा भावना—कोइ

युगलपणे तीन पल्योपम रहीं सौवर्म देवलोके एक पल्यने आउखे उपनो, तिहा समकित रहीं, ते माडे ए प्रकृति ७ न वाघी तिहायी मनुष्यपणे समकित सहित विरतिपणे रहीं अच्युतनो २२, सागरनो आउखो वाघी देवलोक गयो, तिहायी मनुष्य, वळी तारमे देवलोक, तिहायी मनुष्य, वळी ३? सागरने आउखे नवमे त्रैवेयके, तिहायी मनुष्य, ३३ सागरने आउखे अनुत्तर विमाने, इम एकसोनेसठ १६३ सागर पल्य ४ च्यार केटलाएक मनुष्यभव अधिककालसीम ए ७ सात प्रकृति न वाघे तथा वावर ४, एकेन्द्रि जाति १ विगल ३ आतपनाम ए नव प्रकृति एकसो पच्यासी १८५ सागर पल्य ४ केटलाएक मनुष्यभव अधिककालसीम न वाघे तिहा भावनाजे छट्टी नरकें नारकीपणे २२, सागरने आउखे समकितपणे रहीं त्यांथी चवी मनुष्य थयो ते युगलीयो पल्य ३ ने आउखे, तिहायी पल्य १ ने आउखे देवता, तिहायी मनुष्य, तिहायी अच्युत, एम एकातरे ३ वार मनुष्य ३ वार अच्युते जइ मनुष्य थइ ३? सागरने आउखे नवमात्रैवेयके जाय तिहायी मनुष्य थइ ३३ सागरने आउखे विजयादिविमाने, तिहायी मनुष्य थइ ३३ सागरने आउखे विजयादिविमाने जाय इम सर्व भवें १८५ एकसो पच्यासी सागर, पल्य ४ नरभव अधिककाल सीम ए नव प्रकृति जाणवी ॥ ५६ ॥

अपढमसघयणांगिइ, खगई अणं मिच्छ दुभर्गथीण  
तिग ।

नियनपु इत्थि दुतीस, पणिंदिसु अबघं ठिइ परमा ५७

अर्थ—पेहेला सघयण विना पाच सघयण, पेहेला सस्थान

विना पाच सस्थान, अशुभविहायोगति १, अनतानुमर्षी ४, मिय्यात्वमोहिनी १, दुर्भग ३, यीणद्वी ३, नीचगोन १, नपुस-कवेद १, स्त्रीवेद १, ए पचीस प्रकृति १३२ सागर, पल्य ४ नरभव अधिककालसीम न बाघे तिहा कोइक युगलिओ पल्य ३ आयुवाळो ते देवता पल्य १ ने आउखे उपजे, ते मनुष्य थइ तीनवार वारमे देवलोकें २२ सागरने आउखे जाय, ए ६६ सागर थाय, वळी मनुष्यभव करी विजयादिविमाने जाय इम सर्व भवे एकसोत्रतीस सागर पल्य ४ मनुष्यभव प्रमाण अधिककाल थाय ए सर्व पचेन्द्रीपणे रहे ते जीवने ए प्रकृति ४१ नी अत्र स्थिति परमा-उत्कृष्टी कही जघन्ये सर्वनो अत्रकाल एक समय १ नो छे, शेष प्रकृतिनो उत्कृष्ट काल गवेख्यो नयी ते नीयमित नयी ते माटे इम घाखो ॥५७॥

विजयाइसुगेविज्जे, तमाइ दहिसय दुतीस तेसट्ठ ।  
पणसीइ सयय वधो, पल्लतिभं सुरविउवि दुगे ॥५८॥

अर्थ—विजयाइसु-वे भवे विजयादिविमाननी, आदि शब्दयी तीन भव अच्युतना मेळा करीये तो १३२ सागर कालमान थाय, ते वारमाना ३ भव कर्या पछी १ भव न-वमा त्रैवेयकनो थाय तो एकसोत्रेसठ सागरनो मान थाय, अथवा तमाइ-तमा ६ छट्टी नरकथो आदि भव माडी अ-च्युतना ३ भव, त्रैवेयकनो १ भव विजयादिकना वे भव, इम गवेखायतो १८५ एकसोपच्यासी सागरमानकाल थाय ए रीते सर्व भावज्यो हवे ७३ अत्रुवधोनी सतत-निरतर वधका-लनो मान कहे छे-तिहा सुर-देवदुग, वैक्रियदुग, ए ४ प्र-कृतिनो पल्य ३ तीन सीम निरतर वंजाये, जे ३ पल्यने

आउखे युगलिया तेहने वीजी गति जापो नयी ठे माटे नि-  
रतर ए ४ प्रकृति बाधे ॥ ५८ ॥

समयादसखकाल, तिरिदुगनीएसुआउअतमुहू।  
उरलि असखपरदा, सायट्टिठइ पूर्वकोडूणा ॥५९॥

अर्थ—समया—जवन्ये १ समय उत्कृष्ट असख्यातोकाल,  
तिरिदुग २, नीचगोन, ए ३ तीन प्रकृति निरतर बवाय, जे  
कारणे सातमी नरकनो नारकी ३३ सागर सीम ए प्रकृति  
निरतर बाधे, जे मिथ्यात्वी होय तेहने वीजी गति, ऊच-  
गोननो बध नयी, आउखो जवन्ये तथा उत्कृष्टे अतमुहूर्त्त  
सीम निरतर बाधे, जवन्य मुहूर्त्तयी उत्कृष्ट मुहूर्त्त मोटो जाणवो,  
औदारिक शरीर, असख्याता पुद्गलपरावर्त्त सुधी निरतर बाधे,  
सूक्ष्म, बादर, निगोद, प्रत्येक, एकेन्द्रि मळीने गवेखी जोज्यो  
जासीम (ज्या सुधी) वेदनीयनो बध तासीम अतमुहूर्त्तयी अ-  
धिककाल ए वे माहेळी प्रकृति बवाय नहा परावर्त्तन छे ते  
माटे, सातावेदनी देशेऊणी पूर्वकोडि सीम निरतर बाधे ए  
सयोगी केवळी गुणठाणानी अपेक्षाए छे ॥ ५९ ॥

जलहिसय पणसीय, परधुस्सासे पणिदितसचउगे।  
वत्तीस सुहविहगइ, पुम सुभगतिगुच्च चउरसे ॥६०॥

अर्थ—पूर्व रीते १८५ एकसोपच्यासी सागर, पलय ४  
नरभव अधिक कालमान सीम, पराघात, उश्वासनाम, पचेन्द्रि  
जाति, त्रसच्यार ४, ( त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक ) एम ए ७  
प्रकृति निरतर बधाये तथा आगळ कहेशे ते प्रकृति एकसो-  
बर्वास कालमान निरतर बाधे १३२ सागरोपम पूर्वोक्त रीते

निरतर बाधे शुभविहायोगति १, पुरुषवेद १, सुभगत्रिक ३,  
उचगोत्र १, समचौरस १ ॥ ६० ॥

असुहखगइ जाइ आगिइ, सघयणाहारनिरयुजोयदुगं।  
थिरसुभजसथावरदस, नबुइत्थीदुजुअलमसाय ॥६१॥

अर्थ—अशुभविहायोगति १, एकेन्द्रि, विकल्पिक, ए जाति  
४ अशुभ सस्थान पाच, अशुभ सवयण पाच, आहारकद्विक,  
नरकद्विक, २ उद्योत, आतप, २, स्थिरनाम १, शुभनाम १,  
जसनाम १, यावरदसक १०, नपुसकवेद १, स्त्रीवेद १, दुजुयल-  
हास्य, रति, २ अरति, शोक, २ ए ४ असातावेदनीय १ ॥६१॥

समयादतमुहुत्त, मणुदुगजिणवइरउरलुवगेषु,  
तेत्तीसयरा परमी, अतमुह लहु वि आउ जिणे ॥६२॥

अर्थ—ए सुडताळ स ( टवामा ४१ लखी छे ) प्रकृति  
जघन्य एक समय बाधे, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्तमान काल बाधे,  
मनुष्य दुग-मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी २, जिननाम १, वज्र-  
ऋषभनाराच सवयण १, औदारिक उपाग १, ए पाच प्रकृति  
तेत्रीस सागरोपम सीम निरतर बाधे, समकृती सर्वार्थसिद्ध विमाने  
रह्यो निरतर बाधे ते अपेक्षाए उत्कृष्ट काल जाणवो, जघन्य  
वधकाल, जाउखा ४, जिननाम १, ए पाच प्रकृति, जघन्य पण  
एक अतर्मुहूर्त कालमान जाणवो शेष प्रकृति ६८ नो जघन्य  
वधकाल एक समय जाणवो ॥ ६२ ॥

ए स्थितिबध अधिकार पूरो थयो हवे रसबध अधिकार  
कहे छे इति सततबध द्वा० १८

तिघो असुहसुहाण, सकेसविसोहिओवित्रज्जयओ ।  
मंदरसो गिरिमहिरय, जलरेहा सरिसकसाएहि ॥६३॥

अर्थ—तिघो—तित्र उल्कष्टो अशुभनो तीत्ररस सक्केश  
परिणामे ऋघे, शुभनो तीत्ररस विशुद्ध परिणामे ऋघे,  
विपर्ययपणे मंदरस ऋघे, जिहा अशुभनो तीत्ररस ऋघे  
तिहा शुभनो मंदरस ऋघे, जिहा शुभनो तीत्र वावे तिहा  
अशुभनो मंदरस ऋघे, इहा दृष्टात जे अनतानुबधि कषाय  
गिरिरेखा समान तेथी चोठाणीयो रस, तथा अप्रत्याख्यान  
कषाय महीरेखा समान एथी त्रिठाणीयो रस, प्रत्याख्यानी  
रजरखा समान एथी वेठाणीयो रस, सज्वलनो जलरेखा समान  
तेथी एकठाणीयो रस जाणवो ए दृष्टान्ते जाणवो ॥ ६३ ॥

चउठाणाई असुहो, सुहन्नहा विग्घ देसघाइ आवरणा ।  
पुम सजलणिग दुति-चउट्ठाणरसासेस दुगमाई ६४

अर्थ—चउट्ठाणी—चोठाणीयादि ( प्रमुख ) रस अशुभनो  
तेथी अन्यथा बीजी रीते शुभ, एट्ठे जिहा अशुभनो चोठ-  
णीयो तिहा शुभनो वेठाणीयो, जिहा अशुभनो त्रिठाणीयो  
तिहा शुभनो वेठाणीयो, जिहा अशुभनो वेठाणीयो तिहा  
शुभनो त्रिठाणीयो, जिहा अशुभनो एकठाणीयो तिहा शुभनो  
चोठाणीयो एग भाववु

तिहा विग्घ—पाच अतराय, तथा देशघाती आवरण ज्ञा-  
नावरणी ४, दर्शनावरणी ३, ए सात, पुरुषवेद १, सजलणा-  
कषाय ४ ए १७ प्रकृति तेनो एकठाणियो रस बाधे, तथा  
वेठाणीयो बाधे, तथा त्रिठाणीयो बाधे, चोठाणीयो बाधे,



शेष-नाकी र्ही जे १०३ प्रकृति, तेहनो दुगमाइ-वे ठाणीयो,  
तिठाणीयो, चोठाणीयो, ए ३ जातिनो रस वाघे ॥ ६४ ॥

निवुइच्छुरसो सहजो, दु तिचउ भाग कडिइक भा-  
गतो ।

इगठाणाई असुहो, असुहाण सुहो सुहाणं तु ॥६५॥

अर्थ—अशुभ प्रकृतिनो रस लींउडाना रससमान जाणवो  
तथा शुभ प्रकृतिनो रस इक्षु सेलडीना रससमान जाणवो, तिहा  
सहज मूलगो रस ते डकठाणीयो जाणवो, ते मध्ये वे भाग  
कट्टीय-उकाळ्यो एटले अर्द्ध उकाळ्यो, अर्द्ध र्ह्यो ते वेठा-  
णीयो रस जाणवो तथा तिठाणीयो रस ते तीन भाग  
कडी उकाळ्यो ने १ भाग र्ह्यो ते तिठाणीयो रस, अने  
चउभाग-जे मध्ये च्यार ४ भाग उकाळ्यो अने एक भाग  
र्ह्यो ते चोठाणीयो रस जाणवो, ए अशुभ कर्मनो जेम  
रस वघे तेम अशुभ थाय, शुभ कर्मनो रस शुभ थाय, ए  
सर्व अशुभ कषाये अशुभ रस वाघे, शुभ कषाये शुभ रस  
वाघे ॥ ६५ ॥

तिवमिग थावरायव, सुरमिच्छा विगल सुहुम निरय-  
तिग ।

तिरिमणुआउ तिरि नरा, तिरि दुग छेवट्ठ सुरनि-  
रया ॥ ६६ ॥

अर्थ—हवे उत्कृष्ट रसवध स्वामी कहे छे-तीव उत्कृष्टो  
रस एकेन्द्री जाति १, थावर नाम १, आतप नाम, ए तीन

तिवो असुहसुहाण, सकेसविसोहिओविवज्जयओ ।  
मदरसो गिरि महिरय, जलरेहा सरिसकसाएहि ॥६३॥

अर्थ—तिवो—तित्र उत्कृष्टो अशुभनो तीत्ररस सक्केश  
परिणामे वाधे, शुभनो तीत्ररस विशुद्ध परिणामे वाधे,  
त्रिपर्ययपणे मदरस वाधे, जिहा अशुभनो तीत्ररस वाधे  
तिहा शुभनो मदरस वाधे, जिहा शुभनो तीत्र वाधे तिहा  
अशुभनो मदरस वाधे, इहा दृष्टात जे अनतानुबधि कषाय  
गिरिरेखा समान तेथी चोटाणीयो रस, तथा अप्रत्याख्यान  
कषाय महीरेखा समान एथी त्रिठाणीयो रस, प्रत्याख्यानी  
रजरखा समान एथी वेठाणीयो रस, सज्वलनो जलरेखा समान  
तेथी एकठाणीयो रस जाणवो ए दृष्टान्ते जाणवो ॥ ६३ ॥

चउठाणाई असुहो, सुहन्नहा विग्घ देसघाड् आवरणा  
पुम सजलणिग दुति-चउट्टाणरसासेस दुगमाई ६४

अर्थ—चउट्टाणी—चोटाणीयादि ( प्रमुख ) रस अशुभनो  
तेथी अन्यथा बीजी रीते शुभ, एटले जिहा अशुभनो चोटा-  
णीयो तिहा शुभनो वेठाणीयो, जिहा अशुभनो त्रिठाणीयो  
तिहा शुभनो वेठाणीयो, जिहा अशुभनो वेठाणीयो तिहा  
शुभनो त्रिठाणीयो, जिहा अशुभनो एकठाणीयो तिहा शुभनो  
चोटाणीयो एग भाववु

तिहा विग्घ—पाच अतराय, तथा देशघाती आवरण ज्ञा-  
नावरणी ४, दर्शनावरणी ३, ए सात, पुरुषवेद १, सजलणा-  
कषाय ४ ए १७ प्रकृति तेनो एकठाणीयो रस वाधे, तथा  
वेठाणीयो वाधे, तथा त्रिठाणीयो वाधे, चोटाणीयो वाधे,

शेष-गामी रही जे १०३ प्रकृति, तेहनो दुगमाइ-वे ठाणीयो,  
निठाणीयो, चोठाणीयो, ए ३ जातिनो रस बाधे ॥ ६४ ॥

निंबुइच्छुरसो सहजो, दु तिचउ भाग कडिइक भा-  
गतो ।

इगठाणाई असुहो, असुहाण सुहो सुहाणं तु ॥६५॥

अर्थ—अशुभ प्रकृतिनो रस लॉनडाना रससमान जाणवो  
तया शुभ प्रकृतिनो रस इक्षु सेलडीना रससमान जाणवो, तिहा  
सहज मूलगो रस ते इकठाणीयो जाणवो, ते मध्ये वे भाग  
कड्डीय-उकाळ्यो एटले अर्द्ध उकाळ्यो, अर्द्ध रह्यो ते वेठा-  
णीयो रस जाणवो तथा तिठाणीयो रस ते तीन भाग  
कड्डी उकाळ्यो ने १ भाग रह्यो ते तिठाणीयो रस, अने  
चउभाग-जे मध्ये च्यार ४ भाग उकाळ्यो अने एक भाग  
रह्यो ते चोठाणीयो रस जाणवो, ए अशुभ कर्मनो जेम  
रस वधे तेम अशुभ थाय, शुभ कर्मनो रस शुभ थाय, ए  
सर्व अशुभ कषाये अशुभ रस बाधे, शुभ कषाये शुभ रस  
बाधे ॥ ६५ ॥

तिवमिग थावरायव, सुरमिच्छा विगल सुहुम निरय-  
तिग ।

तिरिमणुआउ तिरि नरा, तिरि दुग छेवट्ठ सुरनि-  
रया ॥ ६६ ॥

अर्थ—हवे उत्कृष्ट रसवध स्वामी कहे छे-तीव उत्कृष्टो  
रस एकेन्द्री जाति १, थावर नाम १, आतप नाम, ए तीन

प्रकृतिनो सुरमिच्छा-मिथ्यात्वी देवता उत्कृष्ट रस बाधे, तथा विगल ३, सूक्ष्म ३, सूक्ष्म, अपयोत्ता, साप्राण ए ३, नरक-गति १, नरकानुपूर्णा २, नरकायु ३, ए नरकानिक तथा तिरिआयु १, मनुष्यायु १, ए ११ प्रकृतिनो उत्कृष्टो रस तिर्यच तथा मनुष्य मिथ्यात्वी बाधे, तथा तिर्यच दुग्-तिर्यच गति १, तिर्यचानुपूर्णा ए वे अने छेपटो सवयण ए ३ प्र-कृतिनो उत्कृष्ट रस देवता, नारकी मिथ्यात्वी बाधे ॥ ६६ ॥

विउवि सुराहारग दुग्, सुखगड वन्न चउ तेय जिण साय समचउपरघा तसदस, पणिदि सासुच्च खवगा उ ॥६७

अर्थ—वैक्रिय दुग्-वैक्रिय शरीर १, वैक्रिय उपाग २, देवद्विक २, आहारकद्विक २, शुभ विहायोगति १, वर्णादि ४, तैजस शरीर १, कार्मण १, अगुरुलघु १, निर्माण १, जिननाम १, सातावेदनीय १, समचौरस सस्थान १, परावात १, व्रसनो दशको १०, पचेन्द्री जाति १, श्वासोश्वास १, उच्चगोत्र १, ए बनीस ३२ प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस खवगाउ-क्षपकश्रेणिमा बाधे तिहा साता वेदनीय १, उच्चगोत्र १, यशनाम १, ए ३ तीन प्रकृतिनो सूक्ष्मसपराय गुणठाणे उत्कृष्ट रस बाधे, शेष २९ प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस अपूर्वकरण गुणठाणे बाधे ॥६७

तमतमगा उज्जोय, सम्मसुरा मणुय उरलदुग् वइर। अपमत्तो अमराउ, चउगइमिच्छा उ सेसाण ॥६८॥

अर्थ उग्रोतनामकर्मनो उत्कृष्ट रस तमतमगा-तमतमा नरकना नारकी बाधे, मनुष्यदुग् २, औदारिकदुग् २, वज्र ऋषभनाराचसवयण १, ए पाच प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस मणु-

किती सुरा-देवता उत्कृष्ट रस वाधे, तथा अमराउ-देवतानो  
आउखो उत्कृष्टरसे अप्रमत्त गुणठाणे वाधे, शेष ६४ प्रकृतिनो  
उत्कृष्ट रस च्यार ४ गतिना मिथ्यात्वी तीव्रकषायी वाधे ए  
उत्कृष्ट रसना स्वामी कल्या ॥ ६८ ॥

थिणतिग अण मिच्छ, मदरस संजमुम्मुहो मिच्छो ।  
वियतियकसाय अविश्य, देसपमत्तो अरइ सोए ॥६९॥

अर्थ—हवे जघन्य रसना स्वामी कहे छे—थिणद्धी तीन  
निद्रानिद्रा १, प्रचलाप्रचला २, थिणद्धी ३, ए तीन, अन-  
तानुमधी ४, मिथ्यात्वमोहनी १, ए आठ प्रकृति मदरसे  
सयमने सन्मुख मिथ्यात्वी वाधे, एह प्रकृतिना वयकमे वि-  
शुद्ध परिणामी एहिज जीव छे, वियकषाय-बीजो कषाय  
अविश्य-अविरति समकीती वाधे, बीजो कषाय जघन्य रसे  
देशविरति वाधे, अरति, शोक, ए बे प्रकृति प्रमत्त गुणठाणे  
मुनि जघन्यरसे वाधे ॥ ६९ ॥

अपमाइ हारगदुग, दुनिइ असुवन्न हास रइ कुच्छा ।  
भयमुवघायमपुवो, अनियट्टी पुरिससजलणे ॥७०॥

अर्थ—अप्रमत्त गुणठाणाना आदि समये आहारकडुग ज-  
घन्यरसे वाधे, बे निद्रा, निद्रा १, तथा प्रचला २, अशुभव-  
र्णादि ४, हास्य, रति, दुगळा, भय, उपघात, ए इग्यार ११  
प्रकृतिनो अपूर्वकरण गुणठाणे जघन्यरस वाधे, पुरुषवेद, सज-  
लणा ४, ए पाच प्रकृति अनिवृत्तिनादर गुणठाणे जघन्यरसे  
वाधे ॥ ७० ॥

विग्धावरणे सुहुमो, मणुतिरिआ सुहुम विगलतिगआऊ  
वेउवि छक्रममरा, निरया उज्जोय उरलदुग ॥ ७१ ॥

अर्थ—विग्ध-अतराय पाच, आपरण-जानावणी पाच, दर्शनावरणी ४, ए ९, एम तर्धी मळी १४, चोद प्रकृतिनो सुहुमो-सुक्ष्मसपराय गुणठाणे जवन्य रस बाधे, तथा सुक्ष्मत्रिक रे, विकलत्रिक रे, आउखा ४, वेक्रियठरू-देवद्रिक २, नरकद्रिक २, वैक्रियद्रिक २, ए ६, ठ मळी सर्प १६, प्रकृति मणुतिरिय-मनुष्य ने तिर्यच जवन्यरसे बाधे, उद्योतनाम, औदारिक २, अमरा-देवता निरया-नारकी जवन्य रसे बाधे ॥ ७१

तिरिदुग निय तमतमा, जिण मविरय निरयविणिग  
थावरय ।

आसुहु मायव सम्मो, वसाय थिर सुह जसा सियरा ७२

अर्थ—तिर्यचद्रिक २, नीचगोत्र १, ए ३ प्रकृतिनो जवन्य रस तमतमानारक ७ मीना नारकी बाधे जिननामकर्मनो जवन्य रस अविरति समकिती बाधे, एकेन्द्री जाति थावरनामकर्म, नरक-गतिविना तीन गतिना जीव जवन्य रसे बाधे, आतपनामकर्म आसुहुमा-सौधर्म देवलोक पर्यतना देवता, जवन्य रसे बाधे, सौधर्म कहेवाथी इशान पिण ग्रहवो, सम्मोवसाय-सातावेदनी १, थिरनाम १, शुभनाम १, जश १, ए ४, प्रकृति समकिती पटनो जवन्यरसे बाधे सि-रा-एहथी इतर असाता, अथिर, अशुभ, अजश, ए ४, प्रकृति समकिती चढतो होय त्यारे जवन्यरसे बाधे ॥ ७२ ॥

तस वन्न तेअ चउ मणु, खगइ दुग पणिदि सास परधुच्चो  
सवयणा गिइ नपु थी, सुभगिअर ति मिच्छचउ  
गइआ ॥७३॥

अर्थ—वस, वादर, प्रत्येक, ए ४, तथा वर्णादि ४, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, ४ मणुअदुग-मनुष्यद्विक २, खगईदुग-शुभ, तथा अशुभविहायोगति, पचेन्द्रानीजाति, श्वासोश्वास, परावात, उच्चैगात्र, सवयण ६, सस्थान ६, नपु-सफ़ेद १, स्त्रीवेद १, सुभगात्रिक ३, इअर-दुर्भगात्रिक ३, एव ४० चार्लीस प्रकृति मिच्छ-मिध्यात्वी च्यार गतिना जवन्य रसे बाधे इहा भावना कहीये छीये-शुभ प्रकृति जिहा प्रथ-मयी पंथाय तिहा उत्कृष्टरसे बाधे, अने अशुभप्रकृति प्रथम वधाये तिहा उत्कृष्टरसे बाधे अने जिहा खपे तिहा जव-न्यरसे बाधे, ए रीते विचारवो. ॥ ७३ ॥

चउ तेय वन्न वेअणि, अनामणुक्कोस सेस धुववधी ।  
घाईण अजहन्नो, गोए दुविहो इमो चउहा ॥७४॥

अर्थ—हवे उत्कृष्ट रसवधना भागा कहे छे-चउतेय तैजस च्यार ४ तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, ए ४, तथा वर्णादि ४, च्यार ४, वेदनीय शब्दे साता वेदनीय, नाम कहेता जसनाम अणुक्कोस-अनुत्कृष्ट बाधेतो चउहा-च्यारभेदे-सादि १, अनादि २, व्रुव ३, अव्रुव ४, ए च्यार भेदे बाधे तिहा ए प्रकृतिनो उत्कृष्टरस क्षपकश्रेणि ए चउतो जीव बाधे, तथा वीजा जीव सर्व अनुत्कृष्टरस बाधे, ते अभ-व्यने अनादि व्रुव छे भव्यने घोलना परिणाभे सादि छे,

विग्धावरणे सुहुमो, मणुतिरिआ सुहुम विगलतिगआऊ  
वेउवि छकममरा, निरया उज्जोय उरलदुग ॥ ७१ ॥

अर्थ—विग्ध-अतराय पाच, आपरण-ज्ञानावणी पाच, दर्शनावरणा ४, ए ९, एम र्धी मर्ली १४, चांद प्रकृतिनो सुहुमो-सूक्ष्मसपराय गुणठाणे जवन्य रस बाधे, तथा सूक्ष्मनिक ३, विकलनिक ३, आउखा ४, प्रक्रियऊऊ-देवद्विक २, नरकद्विक २, वैक्रियद्विक २, ए ६, उ मर्ली सर्प १६, प्रकृति मणुतिरिय-मनुष्य ने तिर्यच जवन्यरसे बाधे, उद्योतनाम, औदारिक २, अमरा-देवता निरया-नारकी जवन्य रसे बाधे ॥ ७१

तिरिदुग निय तमतमा, जिण भविरय निरयविणिग  
थावरय ।

आसुहु मायव सम्मो, वसाय थिर सुह जसा सियरा ७२

अर्थ—तिर्यचद्विक २, नीचगोत्र १, ए ३ प्रकृतिनो जवन्य रस तमतमानारक ७ मीना नारकी बाधे जिननामकर्मनो जवन्य रस अविरति समकिती बाधे, एकेन्द्री जाति थावरनामकर्म, नरक-गतिविना तीन गतिना जीव जवन्य रसे बाधे, आतपनामकर्म आसुहुमा-सौधर्म देवलोक पर्यतना देवता, जवन्य रसे बाधे, सौधर्म कहेवाथी इशान पिण ग्रहवो, सम्मोवसाय-सातावेदनी १, थिरनाम १, शुभनाम १, जश १, ए ४, प्रकृति समकिती पटतो जवन्यरसे बाधे सि-रा-एहथी इतर असाता, अथिर, अशुभ, अजश, ए ४, प्रकृति समकिती चढतो होय त्यारे जवन्यरसे बाधे ॥ ७२ ॥



तस वन्न तेअ चउ मणु, खगइ दुग पणिंदि सास परघुचं।  
सघयणा गिइ नपु थी, सुभगिअर ति मिच्छचउ  
गइआ ॥७३॥

अर्थ—तस, तदर, प्रत्येक, ए ४, तथा वर्णादि ४, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, ४ मणुअदुग-मनुष्यादिक २, ग्गईदुग-शुभ, तथा अशुभविहायोगति, पचेन्द्रिनीजाति, श्वासोश्वास, पराघात, उच्चेगोत्र, सवयण ६, सस्थान ६, नपु-सऋवेद १, स्त्रीवेद १, सुभगत्रिक ३, डअर-दुर्भगत्रिक ३, एव ४० चाळीस प्रकृति मिच्छ-मिथ्यात्वी च्यार गातिना जवन्य रसे वाघे इहा भावना कहीये छीये-शुभ प्रकृति जिहा प्रथ-मयी व्वाय तिहा उत्कृष्टरसे वाघे, अने अशुभप्रकृति प्रथम व्वाये तिहा उत्कृष्टरसे वाघे अने जिहा खपे तिहा जव-न्यरसे वाघे, ए रीते विचारवो. ॥ ७३ ॥

चउ तेय वन्न वेअणि, अनामणुक्कोस सेस धुववधी ।  
घाईण अजहन्नो, गोए दुविहो इमो चउहा ॥७४॥

अर्थ—हवे उत्कृष्ट रसप्रवना भागा कहे छे-चउतेय तैजस च्यार ४ तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, ए ४, तथा वर्णादि ४, च्यार ४, वेदनीय शब्दे साता वेदनीय, नाम कहेता जसनाम अणुक्कोस-अनुत्कृष्ट वाघेतो चउहा-च्यारभेदे-सादि १, अनादि २, व्रुव ३, अव्रुव ४, ए च्यार भेदे वाघे तिहा ए प्रकृतिनो उत्कृष्टरस क्षपकश्रेणि ए चढतो जीव वाघे, तथा बीजा जीव सर्व अनुत्कृष्टरस वाघे, ते अभ-व्यने अनादि व्रुव छे भव्यने घोलना परिणामे सादि छे,

अने अत्रय थशे ते माटे अध्रुव छे, ने घाती त्रुपघी जे १९ ओगणीस अने मोहनी पाच, जानापरणी पाच, दर्शना-  
वरणी ९, अतराय पाच ए ३० नो, अजवन्यरस ४, च्यारेभेदे  
जघाय, इहा पण जवन्ययी वीजो ते सर्व अजवन्य, ते ए  
३८ प्रकृतिनो जवन्य वध जिजारे प्रकृतिनो त्रुप टळे तेहयी  
प्रथम समये छे, तेतो एरु समये त्रुव छे, तेहयी पेहेला  
अजवन्यरस वध छे, ते अभव्यने अनादि त्रुप छे, भव्यने  
घोलना परिणामे सादि छे, अने अत्रय यये अत्रुव छे, तथा  
गोनकर्ममव्ये उच्चगोत्रनो अनुत्कृष्टरस सादि, अनादि, त्रुव,  
अत्रुव, पूर्वनीपेरे जाणवो, नीचगोत्र अजवन्यरसे सादि, अनादि,  
त्रुव, अत्रुव, ह् च्यार ४ भेदे छे, घातीनीपेरे भापना करवी  
तथा इहा पयडीने आशये अर्थ लिखीये छीये—जे वेदनीय  
नामकर्म ए मूळकर्मनी अपेक्षाये अनुत्कृष्ट रस च्यार ४, प्रकारे  
कहेवो पण—उत्तर प्रकृतिमा वर्णादि ४, तेजस च्यार ४, ए  
आठनो अनुत्कृष्टरस सादि, अनादि, त्रुव, अत्रुव, कहेवो, त्रुव-  
वधी छे ते माटे पण जशनाम सातावेदनीयना कोईभागे  
च्यार ४, प्रकार न कहेवा अत्रुव वधी छे ते माटे बे सादि,  
अत्रुवपणोज पामीये, इम गोत्रकर्मनो पिण मूळकर्मनी अपेक्षाये  
च्यार ४, भेद कहेवा पिण उच्चगोत्र, नीचगोत्र, ए बे अत्रुव  
वधी छे ते माटे सादि अत्रुव बे भेदे पामीये इम जाणवो,  
एटळे सात मूळकर्ममा च्यार भेद कहेवा इम जाणज्यो ॥७४॥

सेसम्मि दुहा ( अनुभाग वधो समत्तो ) इग दुग,

णुगाइजाअभवणत गुणिआणू ।

खधा उरलोचिअवग्गणाउ, तह अगहणतरिया ॥७५

अर्थ—सेसम्भि-तैजसादि १०, प्रकृतिनो उत्कृष्ट, जघ-  
न्य, ए तीन ३, भागे रस बाधे, ते दुहा सादि, अद्रुव, ए वे  
भेदे बाधे, जे एहनो बवकाल अल्प छे ते माटे, तथा घाती  
३८ नो उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्यरस, सादि, अद्रुव वे भेदे  
बधाये तथा उच्चगोत्रनो, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य-  
रस सादि अद्रुव वे प्रकारे बधाय छे, तथा नीचगोत्रनो उत्कृष्ट  
अनुत्कृष्ट, जघन्य ए तीन भागे रस बाधे ते सादि अद्रुव बाधे  
तथा शेष प्रकृति ७२ नो जघन्य, अजघन्य, उत्कृष्ट, अनु-  
त्कृष्ट ए च्यारे ४, प्रकारनोरस ते सादि, अद्रुवभेदे बाधे,  
इहा पयडीने आशये शेषप्रकृति ७४ ग्रहे छे, गोत्रनी प्रकृति  
पिण अद्रुव बधी छे ते माटे तथा उपघात १, द्रुवबधी छे,  
पर ए प्रकृतित्रये द्रुवबधी छे ते माटे ए अनुभाग रसबधनो  
अधिकार कछो

हवे प्रदेशबध अधिकार कहे छे—तिहा प्रथम वर्गणानु  
स्वरूप कहे छे—<sup>१०</sup>—एकपरमाणु दुग—वे परमाणुआनो स्कध, इम  
त्र्यणुक, इम सख्याताणुक, असख्याताणुक, अनतापरमाणु मिळे  
ते अभव्ययी अनतगुणा मिळे जे खब नीपजे तिवारे उरलोचिअ-  
औदारिकने उचित कहेता ग्रहेवा योग्य वर्गणा जघन्य थाय,  
तह—तिमहीज अतरित—एयी पाठली ते सर्व अग्रहण जाणवी  
ए औदारिक वर्गणा बादर वीसगुणी छे ॥ ७५ ॥

एमेव विउद्वा हार, तेय भासा णुपाण मण कम्मे ।  
सुहुमा कमावगाहो, उणूणगुल असखसो ॥७६॥

अर्थ—एमेव—इमही विउब्ब—वैक्रिय वर्गणा, बीजी २,  
अने बीजी आहारक वर्गणा ३, तैजस वर्गणा ४, भाषावर्गणा

अने अग्रय यशे ते माटे अग्रय छे, ने घाती ऋषी जे  
 १९ ओगणीस अने मोहनी पाच, ज्ञानापरणी पाच, दर्शना-  
 वरणी ९, अतराय पाच ए ३० नो, अजवन्यरस ४, च्यारभेदे  
 ऋषाय, इहा पण जवन्ययी वीजो ते सर्व अजवन्य, ते ए  
 ३८ प्रकृतिनो जवन्य ऋषि जिगारे प्रकृतिनो ऋषि टळे तेहरी  
 प्रथम समये छे, तेतो एक समये ऋषि छे, तेहरी पेहेला  
 अजवन्यरस वव छे, ते अभव्यने अनादि ऋषि छे, भव्यने  
 घोलना परिणामे सादि छे, अने अग्रय यशे अग्रय छे, तथा  
 गोत्रकर्ममध्ये उच्चगोत्रनो अनुत्कृष्टरस सादि, अनादि, ऋषि,  
 अग्रय, पूर्वनीपेरे जाणवो, नीचगोत्र अजवन्यरसे सादि, अनादि,  
 ऋषि, अग्रय, ए च्यार ४ भेदे छे, घातीनीपेरे भावना करवी  
 तथा इहा पयडीने आशये अर्थ लिखीये छीये—जे वेदनीय  
 नामकर्म ए मूळकर्मनी अपेक्षायें अनुत्कृष्ट रस च्यार ४, प्रकारे  
 कहेवो पण—उत्तर प्रकृतिमा वर्णादि ४, तेजस च्यार ४, ए  
 आठनो अनुत्कृष्टरस सादि, अनादि, ऋषि, अग्रय, कहेवो, ऋषि-  
 ऋषी छे ते माटे पण जशनाम सातावेदनीयना कोईभागे  
 च्यार ४, प्रकार न कहेवा अग्रय ऋषी छे ते माटे वे सादि,  
 अग्रयपणोज पामीये, इम गोत्रकर्मनो पिण मूळकर्मनी अपेक्षायें  
 च्यार ४, भेद कहेवा पिण उच्चगोत्र, नीचगोत्र, ए वे अग्रय  
 ऋषी छे ते माटे सादि अग्रय वे भेदे पामीये इम जाणवो,  
 एटळे सात मूळकर्ममा च्यार भेद कहेवा इम जाणवो ॥७४॥

सेसम्मि दुहा ( अनुभाग वधो समत्तो ) इग दुग,

पुगाइजाअभवणत गुणिआणू ।

खधा उरलोचिअवग्गणाउ, तह अगहणतरिया ॥७५

ए ४ छे शेष ४ नयी तैजसवर्गणा किहाएक सुक्ष्म कही छे ॥ ७६ ॥

उक्किहियासिद्धा-णतसो अतरेसु अग्गहणा ।  
सवत्थ जहन्नुचिया, नियणतसाहिआ जिट्ठा ॥७७॥

अर्थ—जे वर्गणा मोटी याये ते पिण सिद्धने अनतमे भागे जेटला परमाणुआ थाये एक वर्गणाना, एम अनती-वर्गणा जे एक समयमा अनत प्रमाण दलिक थाय एह अनता दलिक एक समय मध्ये जीव ग्रहण करे, ग्रहणने आतरे विचाले ते अग्रहण जाणवी, कर्मण उत्कृष्ट थाय पिण अधिका ते अग्रहण जाणवा सर्वे जघन्य वर्गणायी निय-पोताने अनतमे अशी अधिक ते उत्कृष्ट वर्गणा जाणवी ॥ ७७ ॥

अतिम चउफास दुग्ध, पचवन्नरस कम्मखधदल ।  
सवजियणंतगुणरस, अणुजुत्त मणतयपएसं ॥७८॥

अर्थ—हवे कर्मपणे जे परमाणुआ लेवराये तेहनो स्वरूप कहे छे—अतिम छेहेला जे चार स्पर्श—गढो, उन्हो, लखो, चीजणो, तिमहीज वे गध तथा पाच वर्ण तथा पाच रस सयुक्त सोल गुणी खध तेहनो समूह ते कर्मपणे लेवा योग्य दल जाणवो ते दलना जे परमाणुआ तेमाहे जे रस कषाय प्रत्ययी ते सर्वे जीवयी अनतगुणो रस एक एक परमाणुमा हुवे ते अणुयुक्त-परमाणुआयुक्त अनत प्रदेशी कहेता अनता परमाणुआनो खध ते कर्मपणे लेवाने योग्य जाणवो ॥ ७८ ॥

૫, શ્વાસોશ્વાસવર્ગના ૬, મનોવર્ગના ૭, કાર્મણવર્ગના ૮, એ આટલવર્ગના કમા-અતુક્રમે-સૂક્ષ્મ છે-એટલે ઔદારિકથી વૈક્રિય સૂક્ષ્મ, માધારી ઉગ્રાસ સૂક્ષ્મ, ઉશ્વાસથી મન સૂક્ષ્મ, મનથી કાર્મણ સૂક્ષ્મ જાણવી, અવગાહના એક વર્ગનાની અગુલને અસરયાતમે ભાગે છે, એકથી વીંજી વર્ગનાની તેહથી ઊર્ણી અવગાહના છે, એક એક પરમાણુ વગરતા જે ઔદારિક જવન્ય ગ્રહણયોગ્ય વર્ગના તેહને અનતમે ભાગે જેટલા પરમાણુઆ તેટલા પરમાણુઆ વધે, તિવારે ઔદારિક ઉત્કૃષ્ટ ગ્રહણયોગ્ય વર્ગના થાય, તે વર્ગનામધ્યે એક પરમાણુ વધે તે વર્ગના ઔદારિકને મોટા પડે, વૈક્રિયાદિકને ન્હાના પડે તે માટે અગ્રહણયોગ્ય જાણવી, ઇમ ઔદારિક ઉત્કૃષ્ટ ગ્રહણયોગ્ય વર્ગનાથી અનતગુણા પરમાણુ વધે એહવો જે સ્વધ તે વૈક્રીયની જવન્ય ગ્રહણ યોગ્ય વર્ગના જાણવી તે વૈક્રિય જવન્ય ગ્રહણયોગ્ય વર્ગના એક એક પરમાણુ વધતા ( વધારતા ) જિવારે વૈક્રિય જવન્ય વર્ગનાથી અનતમા ભાગ જેટલા પરમાણુઆ વધે તે વૈક્રીયને ઉત્કૃષ્ટ ગ્રહણયોગ્ય વર્ગના થાયે તેહથી ઉપરાત તે અગ્રહણયોગ્ય જાણવી તે વૈક્રીય ઉત્કૃષ્ટ ગ્રહણ વર્ગનાથી અનતગુણ પરમાણુઆ વધે, તિવારે આહારકની જવન્ય ગ્રહણયોગ્ય વર્ગના થાયે આહારક જવન્ય ગ્રહણયોગ્ય વર્ગનાથી અનતમે ભાગે વધે. તિવારે આહારકની ઉત્કૃષ્ટ ગ્રહણયોગ્ય વર્ગના થાયે, તે જિવારે અનતગુણી વધતા સીમ અગ્રાહ્ય પછી તૈજસની ગ્રહણ યોગ્ય થાયે, એ રીતે તે કાર્મણપર્યંત વર્ગના કેહેવી એ મધ્યે ઔદારિક ૧, વૈક્રિય ૨, આહારક ૩, તૈજસ ૪, એ ચ્યારે વર્ગના બાદર વીસગુણી છે, અને માયા, ઉશ્વાસ, મન, કાર્મણ, ૪ એ ચ્યાર વર્ગના સૂક્ષ્મ, સોલગુણી છે, સ્પર્શ-રુક્ષ, સ્નિગ્ધ, શીત, ઉષ્ણ,

नाम गोत्रनी स्थिति घणी ते माटे घणा दल आवे, इहा कोई पूडस्ये जे आउखायी नामनी स्थिति सख्यातगुणी छे तो ते सख्यातगुणो भाग का न कह्यो ? इहा उत्तर जे ए दलिक भोगवता काल वधतो लागे, आउखाना दलिक भोगवता काल योडो लागे ते माटे, तथा सक्रम्या दल ७ मव्ये घणा छे, घणी स्थिति सीम पहोचे पर दलिक अधिका लेवे पर सख्यातगुणा न लेवे एम सर्वत्र भाग्यो ए अर्थ ॥ ८० ॥

निअजाइलद्धदलिआ-णतसो होइ सबघाईण ।

वज्झतीण विभज्जइ, सेस सेसाण पइसमयं ॥८१॥

अर्थ—हवे उत्तरप्रकृतिनो वहेचवो कहे छे तिहा निय-पोतानी जे जाति ज्ञानावरणी आदिक तेहने भाग प्रमाण लीया जे दल तेहनो अनतमो भाग ते सर्वघातीने आवे, शेष रहे ते याकती प्रकृतिने आवे, तिहा जे ज्ञानावरणीने भागे आव्या जे दल तेहनो अनतमो भाग अति रसवत ते केवलज्ञानावरणीपणे परिणमे, शेष र्हा जे दल ते च्यार ४ भागे मतिज्ञानावरणी प्रमुखने आवे, तथा दर्शनावरणीने ६ भागे आवे, शेष रह्यो ते चक्षुदर्शनावरणी प्रमुखने ३ भागे आवे मोहनीने जे भाग आव्यो तेहना वे भाग याय, ते-मायी एक भागनो तेने मळे तथा मोहनीनु अर्ध दल सिध्या-त्वने मळे छे, ए प्रमाणे तेमाहे जे स्थानके जेटला बघाता हुवे तेटले भागे आवे, शेष रही जे ते जेटली देशवाती ब-घाती हुवे तेटला भाग पडे, अतरायने सर्ववाती नयी, तिणे एहना ५ भाग पडे नामकर्मनो भाग जे काले २३ थी ३१

एगपएसागाढ, निअसवपएसओ गहेइ जिओ ।  
थोवो आउ तदसो, नामेगोए समोअहिओ ॥७९॥

अर्थ—एक प्रदेश अवगाओ जे कर्मदल तेने आत्मा सर्व प्रदेशने बले करीने ग्रहण करे, एटले एक प्रदेशे ले तो असख्याते लेवराय, अने एक प्रदेशनो कर्म ले तो वीर्य चलनानो कपन सर्व प्रदेशनो याय, ते माटे सर्व प्रदेशे ग्रहे इम कह्यो छे ते जे आकाशप्रदेशे कर्मदल ते प्रदेशे जे आत्मप्रदेश हुवे ( होये ) ते आत्मप्रदेशे ग्रहे, सिन्न प्रदेशी दल न ग्रहे, हवे ते जीव एक समये आठ कर्म आवे, ते कर्मदलिकनो वेहेचण कहे छे जे सर्वथी थोडा दल आउखाने भागे आवे, तेथी नाम कर्म तथा गोत्रकर्मने अधिका दल आवे पिण वेने माहो-माहे समान आवे ॥ ७९ ॥

विग्धावरणे मोहे, सवोवरिवेअणीइ जेणप्पे ।  
तस्स फुडत्त न हवइ, ठिई विसेसेण सेसाण ॥८०॥

अर्थ—नाम गोत्रथी विग्घ—अतराय तथा ज्ञानावरण, दर्श-नावरणीने अधिक आवे, ए तीनने परस्पर समान आवे, एहथी मोहनीकर्मने दल अधिक आवे सर्व सात कर्मथी उपरि कहेता अधिका दल वेदनीय कर्मने आवे, जे कारणे तस्स—ते वेदनीय कर्मनो फुड—प्रगट उदयपणो थोडे पुद्गले थाय नहीं, जे बीजा कर्मथी वेदनीनो विपाक—व्यक्त छे, शेष जे सात कर्म तेहने जे दलनो भाग आव्यो ते स्थितिने विशेषे एटले आउखानी स्थिति थोडी तिणे सर्वथी थोडा दल आवे, तेथी



गीकेवळी तेरमागुणठाणा रुप श्रेणि १०, इग्यारभी अयोगीके-  
वळीयें चौदमा गुणठाणारुप श्रेणि ११ ए इग्यारे श्रेणि जा-  
णवी ॥ ८२ ॥

गुणसेढी दलरयणा, गुसमयमुदया दसखगुणणाए ।  
एअगुणा पुण कमसो, असखगुण निजरा जीवा ॥८३॥

अर्थ—गुणसेढी—गुणश्रेणि ते दलरचना कहीये, दलनो  
वहेचवो एटले दलसमवपणें हतो ते चल करी जुदा जावा  
योग्य करवा ते दलरचना कहीजे, तथा श्रेणिमव्ये जे दल  
उदय आवे ते प्रथम समयथी वीजे समये असख्यातगुणा दल  
उदय करे अने श्रेणि वर्तते जीवने ज्ञानादिकने असख्यात  
गुणा ववारे निरावरण थाये वळी श्रेणि चढ्यो जीव प्रतिसमयें  
असख्यातगुण निर्जरा करे, इम श्रेणि पेहेलीथी वीजीए अस-  
ख्यातगुणा निर्जरा थाय, इम सर्वश्रेणिमा जाणज्यो हवे गुण-  
ठाणानो अतर कहे छे—१४ चौद गुणठाणामे बारमो, तेरमो,  
चौदमो गुणठाणो जीव एकवार पामे, वीजीवार कोइ जीवने  
स्पर्शवो न पडे, तिणे तेहने अतर न कहेवाये, अने ११  
गुणठाणा एक जीव अनेकवार पामे ते माटे ते इग्यार  
गुणठाणानो अतर कह्णुछ ॥ ८३ ॥

पलियासखसमुहू, सासणइअरगुणअतरहस्स ।  
गुरुमिच्छि वे छसट्ठी, इयरगुणे पुग्गलद्धतो ॥८४॥

अर्थ—पलियासखस—पल्योपमनो असख्यातमो भाग  
-सासाणि—सास्वादन गुणठाणानो अतर हस्स—जघन्य आतरो  
छे जे कारणे सास्वादनथी मिथ्यात्वे आवेला जीवने सम्यक्-

सुधीना नवस्थानमा जेटली प्रकृतिनु नवस्थान वते तेडला भाग पडे, तेमा नवन सवातनने शरीर नामकर्ममार्गी भाग मले, तथा वर्णादि मूल प्रकृतिना भागमा आपेला दलिक ते पोतानी उत्तर प्रकृतिमाज वहेंचाय कारणके एरु समये सर्व उर्णग्रादि नवाय छे तथा गत्यादि पीड प्रकृतिओना भागमा जावेछु दलिक ते सर्व एकेरु प्रकृतिनुज होय, कारणके एक समयमा गत्यादि एकज प्रकृति नवाय छे तथा गोत्र वेदनीयने आयुष्य ए उण मूलकर्मनो भाग नवाती एकेरु प्रकृतिनेज मले ए सर्व वहेंचण जे समये वाघे तेज समये करे छे एटले नव-समयेज वहेंचे छे ते सर्व कार्य एक समये याय छे

सम्म देस (दर) सबविरई, उअणविसजोअ दंस  
खवगेअ ।

मोह सम सत खवगे, खीण सजोगीअर गुणसेढी ८२

अर्थ—हवे ?? श्रेणि कहे छे—तिहा प्रथम सम्म—सम-  
कितनी श्रेणि १, वीजी देशविरतिनी श्रेणि २, त्रीजी सबविरइ-  
सर्व विरतिनी श्रेणि ३, चौथी अण—अनतानुवधी सत्तामाथी  
काढवा खपाववानी ते श्रेणि ४, पाचमी दस—दर्शनमोहनी ३  
खपाववा रूप श्रेणि ५, तथा छट्टी ते मोहनीनी २? प्रकृति  
शमाववा रूप आठमागुणठाणाथी दसमाना अतलगे मोहशमरूप  
श्रेणि ६, सातमी सर्व मोह उपशमी रख्यो एहवी ?? गुण-  
ठाणा रूप श्रेणि ७, आठमी नववग—मोहनीनी २? प्रकृति  
खपाववारूप आठमाथी दशमापर्यंत श्रेणि ८, नवमी सर्वमोह  
खव्यो ते रूप क्षीणमोह गुणठाणारूप श्रेणि ९, दशमी सयो-

समये एक केश-वालाय अवहारो-(काढता) योजननो कुवो खाली यवे उद्धार ( पल्योपम ) थाय, तथा सो वरसे एक वालाय काढीये तो कुवो खाली यवे अद्धार पल्योपम थाय, तथा एक समये योजन प्रमाण कुवानो एक आकाश प्रदेश काढीये कुवो खाली थये क्षेत्र पल्योपम थाय तिहा द्वीप समुद्रनो गिणवो ते उद्धार पल्योपमे करवो पचवीस कोटा-कोडी पल्योपमना जेटला समय थाय तेटला द्वीप समुद्र छे आउखो ते अद्धार पल्योपमे गिणवो, रस जीवनो मान ते क्षेत्रपल्योपमे गिणवो, जिम पल्योपमना ३ तीन मेद तिम सागरोपमना तीन मेद जाणवा ॥ ८५ ॥

हवे पुद्गल परावर्त्तनो स्वरूप कहे छे

दवे खित्ते काले, भावे चउह दुह वायरो सुहुमो ।  
होइ अणतुस्सप्पिणि, परिमाणो पुग्गलपरट्ठो ॥८६॥

अर्थ—ते पुद्गल परावर्त्तनना मेद आठ छे तिहा द्रव्य पुद्गल परावर्त्तन १, क्षेत्र पुद्गल परावर्त्तन २, काल पुद्गल परावर्त्तन ३, भाव पुद्गल परावर्त्तन ४, ए च्यार ४ मेद ते एकेकना वे मेद छे—द्रव्य पुद्गल परावर्त्तन वादर १, द्रव्य पुद्गल परावर्त्तन सूक्ष्म २ ए वे, इम क्षेत्र पुद्गल परावर्त्तन वादर १, क्षेत्र पुद्गल परावर्त्तन सूक्ष्म २, काल पुद्गल परावर्त्तन वादर १, काल पुद्गल परावर्त्तन सूक्ष्म २, भाव पुद्गल परावर्त्तन वादर १, भाव पुद्गल परावर्त्तन सूक्ष्म २, ए आठे मेद जाणवा, वादर पुद्गल परावर्त्तन ते न्हानो छे, सूक्ष्म पुद्गल परावर्त्तन ते मोटो छे अनत उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी प्रमाणे पुद्गल परावर्त्तननु मान थाये ८६॥

त्व ने मिश्रपुज अवश्य सत्तामा होय, ते जन्मे पुजने मिथ्या-  
 त्वे प्रथम समययो उवेल्या माडे ते यावत् पल्योपमना अस-  
 रयातमे भागे उवेली रहे, ने ज्यासुधी ए वे पुज सत्तामा  
 होय त्या सुधी पुन उपशम पामे नहि, ने सास्वादने पण  
 न आवी शके, ते माटे जवन्य अतर पण पल्योपमनो अस-  
 ख्यातमो भाग पडे, तथा इयरगुण-वीजा जे गुणठाणा-  
 मिथ्यात्व १, मिश्रादिक उपशान्तमोह पर्यंत नत्र १० गुणठाणे  
 जवन्य अतर अतर्मुहूर्त्तनो पडे, जे कारणे ए गुणठाणे चढतो  
 तथा पडतो पिण आवे ते माटे तथा गुरु-उत्कृष्टो अतर  
 मिथ्यात्व गुणठाणानो वे असट्टी-१३२ एकसोवनीस सागरो-  
 पमनो उत्कृष्टो अतर पडे, जे कारणे आसठ सागर क्षयोपशम  
 समकितपणे रहे, पछी अतर्मुहूर्त्त मिश्रपणे रहीं वळी आसठ  
 सागरोपम क्षयोपशम समकितपणे रहे तिवारे मनुष्यभव साधिक  
 १३२ सागर काल पर्यंत मिथ्यात्व स्पर्शो नही, ते मिथ्यात्वनो  
 अतर इयर-सास्वादानादिक दश गुणठाणानो उत्कृष्ट अतर अर्द्ध  
 पुद्गल परावर्त्तकाल देश ऊणो जे एटलो काल समकितथी  
 पळ्यो मिथ्यात्वमे रहीं पछी पाळो समकित पामी मोक्षे जाय  
 ते माटे अतर कह्यो ॥ ८४ ॥

उद्धार अद्ध खित्त, पलिय तिहा समयवाससयसमए।  
 केस वहारो दीवो, दहि आउतसाइ परिमाण ॥ ८५ ॥

अर्थ—हवे पुद्गल परावर्त्तननो मान कहेवा माटे पल्यो-  
 पमनो स्वरूप कहे छे पल्योपमना ३ त्रण भेद छे उद्धार-  
 पल्योपम १, अद्धापल्योपम २, क्षेत्रपल्योपम ३ ए पल्योप-  
 मना ३ तीन भेद छे, तिहा उद्धार पल्योपमनो मान समये

अनुक्रमे त्रयो लोक मरणे स्पर्शे ते आवा पाठा प्रदेशे जे मरण थाये ते न गणीये, इम सप्रर्ण लोक स्पर्शे त्यारे क्षेत्रयी सूक्ष्म पुद्गल परावर्त्तथाय तथा एहनो जवन्य अनर २५६, आवळीनो उत्कृष्ट अतर अनतकालनो तथा उत्सर्पिणी अपसर्पिणीने प्रथम समये जन्म पाम्यो, तेहिज वळी किहाक मरण पाम्यो, इम जे क्षेत्रे जे प्रदेशमे मरण पाम्यो, इम अनुक्रम विना जे हरकोइ स्थानकनो प्रदेश स्पर्शो, तिम उत्सर्पिणी अवसर्पिणीना समय मरणे स्पर्शे तिवारे कालयी बादर पुद्गल परावर्त्त थाये तेहज कोइ उत्सर्पिणी अपसर्पिणीना प्रथम समये मरे पळी जघन्ये वीस कोडाकोडी सागर जाय तिवारे वळी वीजा कालचक्रनो वीजो समय आवे तिवारे मरण पामे अथवा अनतेकाले अनतमा कालचक्रने वीजे समये मरण, वळी जघन्ये वीस कोडाकोडी सागर पळी अथवा अनताकाल पळी वीजे समये मरण, इम अनुक्रमे मरण करता उत्सर्पिणी अवसर्पिणीना समयो मरणे करी स्पर्शे अनुक्रमे, तिवारे कालयी सूक्ष्म पुद्गल परावर्त्तन थाये, इम रसबधना स्थानक जे मरणे करी जेम तेम स्पर्शे ते भावयी बादर पुद्गलपरावर्त्त थाये, तेहिज रसबधना स्थानक अनुक्रमे, मरणे स्पर्शे त्यारे भावयी सूक्ष्म पुद्गल परावर्त्तन थाये ते भाव पुद्गल परावर्त्त कोइ जीवने थयो नयी इम आठ भेद जाणवा ॥ ८८ ॥

अप्परपयडिवधी, उक्कडजोगी अ सन्निपजत्तो ।

कुणइ पएसुकोस, जहन्नयं तस्स वच्चासे ॥ ८९ ॥

अर्थ—जे जीव अप्पर—अल्पतर थोडी प्रकृति वावे, उक्कडयोगी—योगे उत्कृष्ट योगी हुवे अ कहेता च शब्दे सन्नि

उरलाइ सत्तगेण, एग जिओ मुअड फुसिय सवअणु ।  
जित्तिअ कालि स थूलो । दवे सुहुमो सगऽन्नयरा ॥८७॥

अर्थ—द्वे द्रव्य पुद्गल परावर्तननो मान रुहे छे उरलाइ-  
ओदारिकादिक सात वर्गणा, आहारक विना, ते एक विना ते  
एक जीव सर्व पुद्गल ए ७ सात वर्गणाए फुसीय-स्पर्शनिं  
मुइय-मूफ्या जे सर्प परमाणु पिण अनुक्रमे नहीं जिवारें जे,  
फरसे ते तिवारे गणीये तेहनो जे काल लागे ते द्रव्ये बादर  
पुद्गल परावर्तन थाये तथा सर्प परमाणु सगन्नयरा-सात वर्ग-  
णापणे अन्यतर एक एक वर्गणापणे फरसे ते विचें वीजी व-  
र्गणापणे फरसे ते स्पर्शना गणवी नहीं, इम अनुक्रमें एक  
एक वर्गणापणे सर्व पुद्गल फरसी मुके तिवारे द्रव्यथी सूक्ष्म  
पुद्गल परावर्तन थाये ॥ ८७ ॥

लोगपएसोसपिणि; समयाअणुभागवधट्ठाणा य ।  
जह तह कममरणेण, पुट्ठाखित्ताइथूलियरा ॥८८॥

अर्थ—लोकप्रदेश सर्व स्पर्श क्षेत्रपुद्गलपरावर्त, उत्सर्पिणी  
अवसर्पिणीना समय स्पर्श ते काल पुद्गल परावर्त, अनुभाग  
बधना स्थानक स्पर्श भावपुद्गलपरावर्त, ते जहतह-जेम  
तेम स्पर्श तो ए ३ तीने थूल-बादर पुद्गलपरावर्त, अने  
अनुक्रमे स्पर्श तो सूक्ष्म थाये ते देखाडे छे जे लोकना प्रदेशमा  
लोकना अतप्रदेशे मरण पामे, इम जेम तेम आगल प्राछल  
करीने बधो लोक मरणे करी स्पर्श तिवारें क्षेत्रथी, थूल-बादर  
पुद्गलपरावर्तन थाये, तेहज जे लोकने अत्यप्रदेशे मरण करी  
वळी ते प्रदेशथी लगते प्रदेशे मरण करे ते भव गणवो, इम

अर्थ—सजलणा ४, पुरुषवेद १, ए पाच प्रकृति अनि-  
वृत्ति गुणठाणे उत्कृष्ट प्रदेशे वाघे, शुभविहायोगति १, मनु-  
ष्यायु १, सुरनिक ३, सुभगनिक ३, वैक्रियदुग २, समचौरस  
सस्थान १, असातावेदनीय १, वज्रऋषभनाराच सघयण १, ए  
१३ प्रकृतिनो उत्कृष्ट प्रदेशत्रय मिथ्यात्वी वाघे अथवा सम-  
किती वाघे ॥ ९१ ॥

निद्रा पयला दुजुअल, भयकुच्छातित्य समगो सुजई ।  
आहारदुग सेसा, उक्कोस पएसगा मिच्छो ॥ ९२ ॥

अर्थ—निद्रा १, प्रचला १, दुजुअल-हास्य १, रति  
२, अरति १, शोक २, भय १, दुगठा १, तीर्थकर नाम  
१, ए नव प्रकृति समकिती उत्कृष्ट प्रदेशत्रये वाघे, सुजई-  
जे अपूर्वकरणी अथवा अप्रमत्त, आहारक दुगनो उत्कृष्ट प्र-  
देशत्रय वाघे, शेष ६६ छासठ प्रकृतिना उत्कृष्ट प्रदेश सज्जि  
मिथ्यात्वी वाघे ॥ ९२ ॥

सुमुणी दुन्नि असन्नी, नरयतिग सुराउ सुरविउधि दुगां  
सम्मो जिणे जहन्न, सुहुमनिगोआइखणि सेसा ॥ ९३ ॥

अर्थ—हवे जघन्य प्रदेशत्रय वाघे ते कहे छे सुमुणी-  
भलो मुनि अप्रमादी, दुन्नी-आहारक दुगनो जघन्यत्रय वाघे,  
असज्जी वाघे, नरकनिक ३, देवनिक ३, वैक्रियदुग ( त्वामा  
सुराउनो अर्थ नथी लख्यो माटे देवनिकने ठेकाणे देवायु पछी  
देवदिक अने वैक्रियदिक, एम वेसे छे, तत्त्व बहुश्रत जाणे )  
ए ६ प्रकृतिनो जघन्य प्रदेशत्रय असज्जी पर्याप्तो वाघे, जिन  
नामनो जघन्य प्रदेशत्रय समकिती वाघे, शेषा-शेष १०९

पर्याप्तो कुण्डै-करे, प्रदेशवध उत्कृष्टपणे वाधे, एट्ठे योडी प्रकृति वाधे तेहने भाग थोडा उत्कृष्ट योगप्रत्यय प्रदेश लेवे, घणा ते माटे, उत्कृष्टयोग वाला जे जीव ते जने अतिशये अल्प प्रकृति वध करे, जहन्नयं-तेह्यो पिपर्यासे जवन्य प्रदेश वाधे, जे प्रकृति घणी वाधतो हुवे, योग मद हुवे, असशि पर्याप्तो हुवे ते प्रदेशवध जवन्य वाधे इम भावो ॥८९॥

मिच्छ अजय चउ आऊ, वि ति गुणविणु मोहि सत्त मिच्छाइ ।

छणह सतरस सुहुमो, अजया देसा वि ति कसाए ॥९०॥

अर्थ—हवे प्रदेशवध उत्कृष्टना स्वामी कहे छे-मिथ्यात्व गुणठाणे अजयचउ-चोथा गुणठाणायी माडी ४ च्यार गुण-ठाणा एट्ठे मिथ्यात्व ?, अविरति ?, देशविरति ?, प्रमत्त ?, अप्रमत्त ?, ए पाच गुणठाणे आउखा कर्मनो उत्कृष्ट प्रदेश वाधे, बीजा बीजा गुणठाणाविना मिथ्यात्व ?, अविरति ?, देशविरति ?, प्रमत्त ?, अप्रमत्त ?, अपूर्व ?, अनिवृत्ति, ?, ए ७ सात गुणठाणे मोहनीकर्मना उत्कृष्ट प्रदेश वाधे मूल कर्म छनो, तथा उत्तर प्रकृति ज्ञानावरणी पाच, दर्शना-वरणी ४ च्यार, अतराय पाच, सातावेदनी ?, उच्चगोन ?, यशनाम ?, ए १७ सत्तर प्रकृतिनो उत्कृष्ट प्रदेशवध सूक्ष्म सपराय गुणठाणे वाधे, तथा 'अविरति' गुणठाणे बीजा चोक-डीनो उत्कृष्ट प्रदेश वाधे, देशविरतिबीजा चोकडीनो उत्कृष्ट प्रदेश वाधे ॥ ९० ॥

पणअनिअट्टी सुखगइ, नराउ सुर सुभगतिग विउविदुग समचउरस मसाय, वइर मिच्छो व सम्मो वा ॥९१॥



अर्थ—सजलणा ४, पुरुषवेद १, ए पाच प्रकृति अनि-  
वृत्ति गुणठाणे उत्कृष्ट प्रदेशे वाचे, शुभविहायोगति १, मनु-  
ष्यायु १, सुरनिक ३, सुभगनिक ३, वैक्रियदुग २, समचौरस  
सस्थान १, असातावेदनीय १, वज्रऋषभनाराच सवयण १, ए  
१३ प्रकृतिनो उत्कृष्ट प्रदेशनव मिथ्यात्वी वाचे अथवा सम-  
किती वाचे ॥ ९१ ॥

निद्रा पयला दुजुअल, भयकुच्छातित्य समगो सुजई ।  
आहारदुग सेसा, उक्कोस पएसगा मिच्छो ॥ ९२ ॥

अर्थ—निद्रा १, पयला १, दुजुअल-हास्य १, रति  
२, अरति १, शोक २, भय १, दुगठा १, तीर्थकर नाम  
१, ए नव प्रकृति समकिती उत्कृष्ट प्रदेशनवे वाचे, सुजई-  
जे अपूर्वकरणी अथवा अप्रमत्त, आहारक दुगनो उत्कृष्ट प्र-  
देशनव वाचे, शेष ६६ छासठ प्रकृतिना उत्कृष्ट प्रदेश सञ्ज्ञि  
मिथ्यात्वी वाचे ॥ ९२ ॥

सुमुणी दुन्नि असन्नी, नरयतिग सुराउ सुरविउव्वि दुगां  
सम्मो जिणे जहन्न, सुहुमनिगोआइखणि सेसा ॥ ९३ ॥

अर्थ—हवे जघन्य प्रदेशनव वाचे ते कहे छे सुमुणी-  
भली मुनि अप्रमादी, दुन्नी-आहारक दुगनो जघन्यनव वाचे,  
असन्नी वाचे, नरकनिक ३, देवनिक ३, वैक्रियदुग ( त्वामा  
सुराउनो अर्थ नथी लख्यो माटे देवनिकने ठेकाणे देवायु पळी  
देवदिक अने वैक्रियदिक, एम वेसे छे, तत्त्व बहुश्रत जाणे  
ए ६ प्रकृतिनो जघन्य प्रदेशनव असन्नी पर्याप्त वाचे, जिन  
नामनो जघन्य प्रदेशनव समकिती वाचे, शेषा-शेष १०९

पर्याप्तो कुण्ड-करे, प्रदेशानव उत्कृष्टपणे बाधे, एट्ठे योही प्रकृति बाधे तेहने भाग थोडा उत्कृष्ट योगप्रलयन प्रदेश लेवे, घणा ते माटे, उत्कृष्टयोग वाला जे जीव ते अने अतिशये अल्प प्रकृति नव करे, जहन्नयं-तेह्या विपर्यासे जवन्य प्रदेश बाधे, जे प्रकृति घणा बाधतो हुवे, योग मद हुवे, असाक्षि पर्याप्तो हुवे ते प्रदेशानव जवन्य बाधे इम भावो ॥८९॥

मिच्छ अजय चउ आउ, वि ति गुणविणु मोहि सत्त मिच्छाइ ।

छणह सतरस सुहुमो, अजया देसा वि ति कसाए ॥९०॥

अर्थ—हवे प्रदेशानव उत्कृष्टना स्वामी कहे छे—मिथ्यात्व गुणठाणे अजयचउ—चोथा गुणठाणायी माडी ४ च्यार गुण-ठाणा एट्ठे मिथ्यात्व १, अविरति १, देशविरति १, प्रमत्त १, अप्रमत्त १, ए पाच गुणठाणे आउखा कर्मनो उत्कृष्ट प्रदेश बाधे, बीजा बीजा गुणठाणाविना मिथ्यात्व १, अविरति १, देशविरति १, प्रमत्त १, अप्रमत्त १, अपूर्व १, अनिष्टति १, ए ७ सात गुणठाणे मोहनीकर्मना उत्कृष्ट प्रदेश बाधे मूल कर्म छनो, तथा उत्तर प्रकृति ज्ञानावरणी पाच, दर्शना-वरणी ४ च्यार, अतराय पाच, सातावेदनी १, उच्चगोत्र १, यशनाम १, ए १७ सत्तर प्रकृतिनो उत्कृष्ट प्रदेशबाधे सूक्ष्म सपराय गुणठाणे बाधे, तथा अविरति गुणठाणे बीजा चोक-डीनो उत्कृष्ट प्रदेशबाधे, देशविरतिबीजा चोकडीनो उत्कृष्ट प्रदेश बाधे ॥ ९० ॥

पणअनिअट्टी सुखगइ, नराउ सुर सुभगतिग विउविदुग समचउरस मसाय, वइर मिच्छो व सम्मो वा ॥९१॥

सेडिअसखिज्जसे, जोगट्ठाणाणिपयडिठिइभेआ ।  
ठिइबंधज्झवसाया, णुभागठाणा असखगुणा ॥९५॥

अर्थ—घनीकृत लोकनी सातराजनी एकप्रदेशी श्रेणि तेहने असख्यातमे भागे जेटला आकाश प्रदेश तेटला योग स्थानक छे, तेयी प्रकृतिना स्थानक तीव्र मदता रूप असख्यात गुणा छे, तेयी स्थितिभेद स्थितिना स्थानक असख्यातगुणा छे, तेयी स्थितिबधना अव्यवसाय जीवभेदे तीव्र मदतारूप ते असख्यातगुणा छे, जे एकेके स्थितिस्थानके स्थितिबधना अव्यवसाय असख्यात छे, ते माटे ४ तेयी रसबधना स्थानक असख्यातगुणा छे, जे उठाणवृद्धिरूप रसबधना स्थानक अग्निकायनी सुइ छ दिशा फरतीना आकाशप्रदेश प्रमाण छे ॥ ९५ ॥

तत्तो कम्मपएसा, अनतगुणियातओरसच्छेआ(या) ।  
जोगापयडिपएस, छिइअणुभागकसायाओ ॥ ९६ ॥

अर्थ—ते माटे तेहयी कर्मवर्गणाना एकसमयगृहीत परमाणुआ अनतगुणा छे, ६ तेहयी कर्मत्रपणे जे परमाणुआ बधाणा तेमा जे एक परमाणु तेमाहे कषायप्रत्ययी रसना छेद ते अनतगुणा छे, जे कारणे सर्व जीवथी अनतगुणो रस हुवे (होय) तेहिज कर्मपणे बधाय ७, ते माटे, तथा प्रकृतिबध, ? ते योगथी बधाय, स्थितिबध तथा रसबध ते कषायथी बाधे, मिथ्यात्व, अविरत ते दृढीकरणनो हेतु छे ॥ ९६ ॥

चउदसरज्जूलोगो, बुद्धिकओ होइ सत्त(ज्जु) घणो ।  
तहीहेग पएसा, सेढी पयरो अ तवग्गो ॥ ९७ ॥

अर्थ—हवे श्रेणिनो स्वरूप कहे छे—चौदराज प्रमाण लोक छे, बुद्धिये करीये तियां सातराज प्रमाण घन थाय तेहनी दीर्घ लानी एरुप्रदेशनी श्रेणिने सेठी कहीये, ते सेठीनो वर्ग एटले तवुगुणो-गुणाकार करीये ते प्रतर थाय, तेहने वर्ग करे घन थाय ॥ ९७ ॥

अणदस नपुंसि ल्थी, वेअ छक्क च पुरिसवेअ च ।  
दो दो एगतलिए, सरिसे सरिस उवसमेइ ॥९८॥

अर्थ—हवे उपशम श्रेणि कहे छे—इहा उपशम श्रेणें उपशम समकित्ती लीघो छे, ते कहे छे—प्रथमयी चोथायी माडी सातमा गुणठाणा सीम अनतानुबधी ४ उपशमावे, पछे दर्शन मोहनी ३ तीन उपशमावे, पछी आठमे गुणठाणे आवी स्थिति घातादिक पाच ५ करण करीने नवमे गुणठाणे आवी नपुसकवेद उपशमावे, १ पछी खीवेद उपशमावे १, पछी हास्पलक ६ उपशमावे, पछी पुरुषवेद उपशमावे, पछे वे वे-कषाय उपशमावे, पछे एक उपशमावे (?) आतरे अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी क्रोध २, उपशमावे, पछे सजलणो क्रोध, १ उपशमावे पछे अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी मान उपशमाव्या पछी सजलणमान उपशमावे पछी अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी माया उपशमावे, पछी सजलणनी माया उपशमावे, पछी प्रत्याख्यानी अप्रत्याख्यानी लोभ उपशमावी, सजलना लोभनी किट्टी करे, तेहनो अनतमो भाग सजलना लोभनो ते दसमे गुणठाणे उपशमावे ए रीते सरखु सरखु उपशमावे पछी उपशातमोही थाय. हवे क्षपकश्रेणिनो क्रम कहे छे ॥ ९८ ॥

अणमिच्छ मीससम्मं, तिआउ इग विगल थीण  
तिगुजोअ ।

तिरि निरय थावर दुग, साहारायव अड नपु थी ॥९९॥

अर्थ—जे कोइ जीव लाघे स्वकृच्च रसे ससारोद्विग्न आ-  
त्मालवी थकी चोथे तथा पाचमे, छठे, सातमे गुणठाणे क्षयो-  
पशम, अनतासुबधी ४ खपावे, पछी मिथ्यात्वमोहिनी खपावे,  
पछी मिश्रमोहिनी खपावे, पछी समकितमोहनी खपावे, पछी  
देवता १, नारकी १, तिर्यच १, ना आउखा खपावे, खपावीने  
नवमे गुणठाणे चढे पछी नवमाने वीजे भागे इग-एकेन्द्री-  
जाति, विगल ३, थीणद्धी ३, उग्रोत १, तिर्यचद्विक २, नरक-  
द्विक २, थावर, सूक्ष्मद्विक २, साधारण १, आतप १, ए  
१० सोळ प्रकृति नवमाने वीजे भागे खपे, अड-आठ कषाय  
खपावे, वीजे भागे, तेथी पछी चोथे भागे नपुसकवेद खपावे,  
पाचमे भागे खीवेद खपावे ॥ ९९ ॥

छग पु सजलणा दो, निद्दाविग्धावरण खए नाणी ।  
देविदसूरि लिहिअ, सयगमिणं आय सरणट्ठा ॥१००

इति शतकनामा पचमकर्मग्रथः समाप्त. ॥ ५ ॥

अर्थ—पळे छठे भागे हास्य ६ छ खपावे, पछी पुरुष-  
वेद खपावे, पछी आठमे भागे सज्वलन क्रोध खपावे, नवमे  
भागे सज्वलन मान खपावे, नवमा गुणठाणाने अते सज्वल-  
ननी माया खपावी दसमे सूक्ष्मसपरायगुणठाणे आवी सज्वल-  
ननो लोभ खपावी बारमे गुणठाणे आवे तिहा वे निद्रा

खपावे, पठी चारमाने अते अतराय पाच, ५, ज्ञानावरणी, ५, दर्शनावरणी च्यार, ४, ए १४ चौदने स्वपे जात्मा नाणी-केवलज्ञानी वाये-लोकालोक प्रत्यक्ष देखे, ए देवेन्द्रसूरि आचार्य महाराजे लिख्यो शनक नामे कर्मग्रन्थ पिण आय-पोताने सरणटा-सभारवाने अर्थे इति पचमकर्मग्रन्थट्यार्य समाप्त १००

अथ ट्याकार प्रशस्तिकार कायम्

श्रीमत् पाठक राजसारकृतिना शिष्या जिनाज्ञापरा ।

श्रीमत् पाठक ज्ञानधर्मप्रवरा श्रीदीपचन्द्राह्वया ।

अहंन् मार्गसुपाठका गुणलया तद्राज्यसेवानुग ।

सचार्य गणिदेवचन्द्रमतिमान् सदर्शयन् शोभते ॥१॥ इति ॥५॥

सत्रत् १८६८ श्रावण शुक्लाष्टम्या ( श्रावण सुदि ८ ) रवि-वासरे लिपिकृते सकल पंडित सिरोमणि भट्टारक तपागच्छा-धिराज पुरदरप्रभु भट्टारक श्रीश्रीश्री १०८ श्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्री शीर्तिरत्नसूरीश्वरान् चिरजीवी तत्शिष्य प० बुद्धिरत्नेन लिपिकृते तत् शिष्य मुनि कान्तिरत्न पठनार्थं पठित श्रीसूर्यपुरवरे श्री शान्तिनाथचरणप्रसादात् श्रीकल्याणमस्तु ( ए जे उपरथी प्रेसकॉपी थइ ते प्रति लिख्यानी शाल विगेरे तेमायी लीघेल छे )

इति श्रीपचम शतकाख्य कर्मग्रन्थस्य ट्यार्यः समाप्तः ॥

श्रीमद् देवचद्रजी कृत

## विचार रत्नसार.

प्रणम्य श्रीमहावीर, शंकर परमेश्वर ।

विचाररत्नसारस्य, क्रियते वालवो एक ॥ १ ॥

### श्री जीनवाणीमहिमा वर्णन.

श्रीवीतरागनी वाणी भववेलकृपाणी, ससारसमुद्र तारिणी, महामोहान्धकार दिनकरालुकारिणी, क्रोधदावानलोपशमिनी, मुक्तिमार्गप्रकाशिनी, कलिमलप्रलयिनी, मिथ्यात्वछेदिनी, त्रिभुवनपालिनी, पापविशोधिनी, मन्मथस्तमिनी, अमृतरस आस्वादिनी, हृदय आल्हादिनी, आगमोद्गारिणी, चतुर्विध सघमनोहारिणी, भव्यजनकर्णामृतश्राविणी, सकल कुमतिनिवारिणी, सर्वसशय निवारिणी, योजनप्रमाण विस्तारिणी, एहवी श्रीवीतरागनी वाणी महा प्रभाविक अतिशयवत जाणवी

ते वाणी भव्य प्राणीओए अवश्य सदगुरु पासे साभळवी, केमके १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आस्रव, ६ सवर, ७ निर्जरा, ८ बव, ९ मोक्ष, १० वर्म, ११ अवर्म, १२ हेय, १३ जेय, १४ उपादेय, १५ निश्चय, १६ व्यवहार, १७ उत्सर्ग, १८ अपवाद, १९ आस्रव, २० परि-स्रव, २१ अतिचार, २२ अनाचार, २३ अतिक्रम, २४ व्य-तिक्रम, इत्यादि साभळ्या विना शास्त्रना भेद न जणाव.

परतु पुण्यानुग्रही पुण्य विना श्रांजिनयाणी स्रभळ्यानी रुचि  
 जीवने यती नयी, केम जे सुटाम, सुगाम, सुजात, सुप्रात,  
 सुतात, सुमात, सुवात, सुकुल, सुनळ, सुखी, सुपुत्र, सुपात्र,  
 सुक्षेत्र, सुदान, सुमान, सुरूप, सुविद्या, सुदेव, सुगुरु, सुवर्म,  
 सुवेश, सुदेश, ए बावीस प्रकारनी उत्तम जोगवाड सुपुण्य  
 विना न पमाय, अने ते पुण्ययत्र तो सत्सगसेवन तथा कु-  
 सगना त्यागवडेज पाय छे, माटे सुमति, शीलवत, सतोपी,  
 स्वजन, साचानोल, सत्पुरुष, सुमेला, सुलक्षण, सुकुलीन, ग-  
 मीर, गुणवत, गुणज्ञ, एहवा पुरुषोनो सग करीए तो वर्म  
 षामीए, तथा चुगल, चोर, उल्ल्याही, अवर्मी, अवम, अधि-  
 नीत, अधिकत्रोल, अनाचारी, अन्यायी, अनीर, अधुरा,  
 नि स्नेही, कुलक्षणा, कुबोला, कुपान, कूटात्रोला, कुशीलिया,  
 कुशासनी, कुलखण्ण, मूडा, मूळ एहवा पुरुषोनो सम न कीजे

## प्रश्नोत्तर रत्नसार

\*\*\*333E666\*\*

१ प्र०—जीव धर्म केम पासे- ?

उ०—जीव त्रण प्रकारे धर्म पासे-? गुरुना उपदेश्याही,  
 २ पूर्वभवना अभ्यासथी, ३ सहज स्वभावे-वैराग्यादि-  
 सयोगे पासे एम उपदेशसार नदीपघीशीमा कळु छे

२ प्र०—अभ्यास केटला प्रकारना छे ?

उ०—चार प्रकारना-? सूत्रअभ्यास, २ अर्थ अभ्यास, ३  
 वस्तु अभ्यास, ४ अनुभव अभ्यास,



३ प्र०—जीवने पुण्य, पाप, अने वैर केवी रीते बढाय छे, अने ते केवा फळरूपे परिणमे छे ?

उ०—जीवने दयावडे पुण्य उपजे छे, अने हिंसावडे पाप निपजे छे, छकायना जीवने हणवाना परिणाम थाय, त्या पाप निपजे, ते छकायना जीवने त्रिकरण योगे हणता, वैर अने पाप वे निपजे, त्या पापना उदये अशाता, आक्रुळता, उद्वेगता, अस्थिरता उपजे, तथा वैरना बोधे ते जीव आवी यथायोगे पीडे

४ प्र०—धर्म, पुण्य, अने पाप कर्म शायी उपजे ?

उ०—त्रण प्रकारे —? दर्शनमोहनीय कर्मना क्षयोपशमयी धर्म उपजे, २ चारित्रमोहनीयना उदययी पुण्य पाप उपजे, तेमा अविरतिनो उदय मद थाय तथा क्षयोपशम थाय त्यारे विरतिनो उदय थाय, ते वारे षट्कायना जीव उपर दया परिणाम उपजे, तेयी पुण्य उपजे, ३ अविरतिना तीव्र उदये पाप निपजे

हवे जे पुण्य पाप छे, ते चारित्रमोहनीयना उदयना मदपणाए तीव्रपणाए होय; अने धर्म, दर्शनमोहनीय कर्मना क्षयोपशम के क्षययी होय; तथा पुण्य पापना फळ भोगवावे, ते वेदनीय कर्म तेना उदय वेदावे ( फळ देखाडे ), तथा पुण्य पापनो बध पडे ते मोहनीय कर्मनी मुझवणे; पुण्य पाप परिणमे ते अतराय कर्मने क्षयोपशमे

ज्या राजा न्यायी अने सौम्यदृष्टि होय, अने आचार्य निस्पृही होय, त्या जैन धर्म विशेष प्रकारे प्रबर्ते छे

५ प्र०—देशना कोने कहिये ?

३०—ज्या मिथ्यात्वनी पुष्टि न थाय, मार्ग विरुद्ध न प्रकाशे, आत्मरत्नरूप उपादेयरूपे प्ररूपे, तथा शुभ क्रियाने अत्यादरपणे प्ररूपे, शुभ क्रियाना फळनी वाळा न कराये, पापनी आमंत्रणा टाळे, निरस्कार स्वभाव इत्यादि आगमोक्तरीते शुद्ध प्ररूपणा ते देशना कहीये

६ प्र०—पुण्य क्रिया अत्यादरपणे सेवनी, पण तेना फळनी वाळा न कर्वी तेनु रहस्य शु ?

३०—जो पुण्यक्रिया शुभ व्यापारे शुभयोगे न आदरे तो मार्ग विरुद्ध थाय, परपराए पण वीतराग मार्गे न जोडाय, अने जो पुण्यना फळनी वाळा करे तो निदान ( नियाणा ) रूप मिथ्यात्व परिणमे, जो सहजस्वरूपे शुभ क्रिया करे तो कर्मनो काट निवारी शीघ्र मुक्तिपद पामे, ए रहस्य छे

७ प्र०—हेय, ज्ञेय, उपादेय एट्ठे शु ?

३०—समभावे हेय, यथार्थे ज्ञेय, स्वरूपे उपादेय, साराश के आत्मा स्वभावमा रहेता सर्व अनात्मिक परभावनो हेय एट्ठे त्याग थाय छे, यथार्थ ज्ञान थये ज्ञेय एट्ठे जाणवा योग्य पदाथोनु ज्ञान थाय छे, अने ज्ञान दर्शनादि गुणोने अनुयायी चेतना थये स्वरूप ग्रहणरूप उपादेय थाय छे, एट्ठे आत्मानु पोतानु स्वरूप आत्माए ग्रहण करवु ते उपादेयनो भावार्थ छे

८ प्र०—काउससगनु विशेष स्वरूप कहो ?

उ०--काउस्सग्ग द्रव्य अने भाव वे प्रकारे क्ह्यो छे उव-  
वाइ सूत्रमा द्रव्य काउस्सग्ग चार प्रकारना छे —  
शरीर काउस्सग्ग, २ उपधि काउस्सग्ग, ३ भत्तपाण  
काउस्सग्ग, अने क्रोधादि चार कषायना त्याग रूप  
काउस्सग्ग ( कषायकायोत्सर्ग )

भाव काउस्सग्ग त्रण प्रकारे छे - १ कषाय काउ-  
स्सग्ग, २ ससार काउस्सग्ग, ३ कर्म काउस्सग्ग, ते  
मध्ये कषाय काउस्सग्ग क्रोधादि चार प्रकारना छे,  
ससार काउस्सग्गने ( देव, मनुष्य, तिर्यच, अने नरक  
ए गतिनी इच्छा रहितपणा रूप ) चार प्रकारनो  
जाणवो, कर्म काउस्सग्ग आठ प्रकारनो; ते ज्ञाना-  
वरणीयादि आठ कर्मना भेदे आठ प्रकारनो जाणवो

९ प्र०--विधि अने अविधिणु करेली क्रिया यथाक्रमे केवा  
फळ रूपे परिणमे ?

उ०--शुभ क्रिया जे विधिनी छे ते स्वभावरूपे परिणमे,  
त्या निर्जरा निपजे, तथा शुभ क्रिया जे अविधिनी  
छे ते बधरूपे परिणमे, ते लौकिक यश सौभाग्यादि  
फळरूप परिणमे, तथा पुण्यरूप परिणमे ते बधरूप  
थाय, अने तेथी ससार भ्रमण विशेष निपजे

१० प्र०--जीवने खेद उपन्यो केम टळे ?

उ०--जीवने खेद निवारवाने अर्थे पूर्वकृत कर्म सभारीणु  
जेवा जीवे पूर्वे कर्म बाध्या छे, तेवा उदये आवे  
छे, ते मध्ये केटलाएक कर्म प्रदेशयी वेदीने खेखे  
छे, केटलाएक निविड कर्म बाध्या ते विपाके (रसो-

दये) वेदीने खेरे, पण दृष्टिमान् जानी तो, ते कर्मोने समभावे भोगप्रता वक्रा उदयने निष्फळ करे छे, आलोड, निंदी, पश्चात्ताप करे, तेवारे अल्पप्रय याय, वदु निर्जरा करे, ते माटे प्रय निवारवाने अर्थे उदय निष्फळ करे, एटले कर्मनो विपाक समभावे भोगवे, अने शुद्धोपयोगे स्वरूप विचारे त्वारे प्रय अल्प करे

११ प्र०-वर्म कथा केटला प्रकारनी ?

उ०-चार प्रकारनी - १ आक्षेपिणी, २ त्रिक्षेपिणी, ३ निर्वेदिनी ४ सवेदिनी, त्या सत्य मार्गने विषे जीवने जोडावे ते आक्षेपिणी, अने मिथ्यात्व मार्गयी निवर्तावे ते त्रिक्षेपिणी, तथा निर्वेदिनी ते वैराग्य उपजावे एटले ससार जे विषयकषायनी मलीनपरिणति ते थकी जीवने उद्विग्न रखावे, अने सवेदिनी ते मोक्षामिलाय उत्पन्न करावे

१२ प्र०-भावथकी नव निधान कथा ?

उ०-केवळीआश्रिने नव क्षायिक लब्धि उपजे ते नव निधान जाणवा, अने मुनिआश्रि पाच इद्रियना विषयना विकारथकी, तथा क्रोधादिक चार कषाय थकी जे निवर्त्या ते महाभागने भाव थकीअच्छुट नव निधान प्रगट्या जाणवा

१३ प्र०-पाच इद्रियोना विकार मटे त्वारे कथा गुण निर्मळ थास ?

उ०-चक्षु इद्रियनो विकार मटे त्वारे हृदयने विषे निर्मळ

ज्ञानचक्षु प्रगट्वारूप गुण निपजे, श्रोत्रेन्द्रियनो विकार मटता जिन वचन श्रवण प्रीतिसहित प्रतीति पूर्वक थाय, जीव्हा इन्द्रिय विकार मटता आत्मिक अनुभव रसस्वाद प्रगटे, घ्राणेन्द्रिय विकार मटता आत्मिक गुण सुवासना प्रगटे, स्पर्शेन्द्रिय विकार गये आत्मप्रदेशे स्वभाव परिणति स्पर्शन गुण प्रगटे

१४ प्र०—क्रोध, मान, माया, लोभ गये कया गुण प्रगटे ?

उ०—क्रोध गये समता गुण प्रगटे, मान गये मार्दव गुण प्रगटे, माया गये आर्जव गुण प्रगटे, लोभ गये सतोष गुण नीपजे

१५ प्र०—चार प्रकारे मिथ्यात्व छे ते केवी रीते ?

उ०—१ प्रदेश मिथ्यात्व, २ परिणाम मिथ्यात्व, ३ प्ररूपणा मिथ्यात्व, ४ प्रवर्तन मिथ्यात्व, ते मध्ये जीव व्यवहार समकित पामे त्यारे प्ररूपणा तथा प्रवर्तन मिथ्यात्व टळे, अने अधिभेद यई उपशम, क्षयोपशम, समकित पामे त्यारे परिणाममिथ्यात्व टळे, अने क्षायिक समकित पामे त्यारे प्रदेश मिथ्यात्व टळे

१६ प्र०—देशना केटला प्रकारनी छे ?

उ०—१ वर्म देशना, २ गति देशना, ३ बध देशना, ४ मोक्ष देशना, ते मध्ये वर्म एटळे जीवनी शुद्धात्मपरिणति तेनी सन्मुख जीव जेयी थाय, तच्चासिलाष जेयी प्रगटे, एवो उपदेश ते धर्म देशना, जे थकी जीवने विषय कषायनी मलीन परि-

गति ऋषे, चतुर्गति गमण विस्तार पाप्मे एवी सावद्य  
देशना ते गति देशना, जे उपदेशकी जीवने  
नाना प्रकारना कर्मोनी ऋष पडे एवी प्रवृत्ति कर-  
जावु मन वाय ते ऋष देशना, जे साभळपायी जीव  
वैराग्य परमरस पाप्मी, ययार्थ ऋष लही पोतानु  
शुद्ध आत्मस्वरूप जे सकळ कर्मयी रहित मोक्षरूप  
छे, ते निपजावजानी तीव्र रुचि प्रगटे ते मोक्ष  
देशना कहिए

१७ प्र०—अनर्थ दटना चार प्रकार कया ?

उ०—१ अपध्यान एटले आर्त अने रौद्र ध्यान, २ प्रमा-  
दाचरण, ३ हिंसकशस्त्रप्रदान, अनर्थ दड एटले जीव  
हिंसाना सावनो शस्त्रादि पूरा पाडवा ते, ४ पापनो  
उपदेश देवो

१८ प्र०—आठ प्रकारना वचन परिसह कया ?

उ०—१, हीलणा परिसह ते मुनिनी पूर्व गृहस्थाश्रम  
अवस्था हीन जात्यादि दूषणो काढी कठोर भर्म  
वचने साधुने हीले निंदे ते, २ खिसणा परिसह  
ते साधुना पूर्व कृत कर्म (जनित) अवगुण उघाडा  
पाडी निंदे, ३ निंदण परिसह ते साधुपुरुषनो  
निरादर करे दुगळादि दर्शावे, ४ गर्हणा परिसह  
ते साधुओना समक्ष छता अछता अवगुणो बोले,  
५ ताडणा परिसह ते साधुने मारे, कुटे, ६ तर्जना  
परिसह ते साधु प्रत्ये अतिशय आक्रोश करी अत्यंत  
कठोर वचन कहे, भयकरता दर्शावे, ७ पराभव

परिसह ते साधुना वस्त्र पानादिक सज्जम उपकरणो  
हरे, भागे, तोडे, फोडे ८ एषणा परिसह ते सा-  
धुने भातपाणी प्रमुखनो अतराय पाडवानो भय  
देखाडी नास उपजावे, ए आठ वचन परिसह, साधु  
पुरुषे सम्यक् प्रकारे सहन करावा, पण वर्मयी च-  
लायमान थवु नहि

१९ प्र०-१ सिद्धझड, २ बुद्धझड, ३ मुच्चड, ४ परिनिव्वाड  
एटले शु ?

उ०-१ सिद्धझड एटले परिणामनी निर्मळतावडे कर्मनु  
ओछु करवु, आत्मप्रदेशथफी कर्माश पुद्गलो घटा-  
ट्वा ते २ बुद्धझड एटले वस्तु स्वरूपतु तदनतर  
ज्ञान थवु ते ३ मुच्चड एटले कर्मपुद्गलोनु  
आत्मप्रदेशथी क्षय थवु, कर्म सत्तानो नाश थवो,  
फरी तेवो वध कर्दी न पडे तेवा परिणाम ते ४  
परिनिव्वाड एटले आत्मा ठरणपणाने पाम्यो, निज-  
स्वरूप आलवि समाधिष्ठ थयो ते

२० प्र०-बुद्धे, मुत्ते, पडिनिव्वुडे, अडगडे शब्दोनो भावार्थ  
कहो ?

उ०-१ बुद्धे एटले आत्मा सपूर्ण ज्ञानस्वरूपी थयो ते  
२ मुत्ते एटले सर्व कर्मथी मुक्काणो माटे मुत्ते ३  
पडिनिव्वुडे एटले सर्व कर्म शिथिलमूत एटले जर-  
जरित थया ते ४ अडगडे एटले अतकृते कहेता  
ससारनो अत कर्यो भवे स्थिति सदतर नाश करी ते

૨? પ્ર૦—ચાર પ્રકારે વર્મ કેવી રીતે છે? તે તેના ફળ પરિણામ સહિત યથાર્થ સમજાવો

૩૦—? આચાર ધર્મ તે રુટા આચારનુ સેવન કરવુ જેવી અનાચારનો ત્યાગ થાય ૨ દયા ધર્મ તે સર્વ પ્રાણોમાત્રને જાતમત્ જાણી સર્વ પ્રત્યે સમાન મૈત્રીભાવ દર્શાવી, યથાશક્તિ ઉપકારાદિ કરી, તેમનુ નિરતર મહુ ચિંતવણુ, પળ અતર્મા કદાપિકાલે અપરાધી ઉપર પળ હુરુ ચિંતવવાના દ્વેષિપરિણામ ન રાખે, તેમ વેપસ્વાઈ પ્રવૃત્તિ પળ ન દાખવે ૩ ક્રિયા વર્મ તે સામાયિક, પોસહ, પ્રતિક્રમણ, પૂજાદિ શુભ કર્ણી વિધિણુ આદર સહિત કરે, જેવી કર્મનો કાટ ઉતરે, ભવસતતિ ઘટે, પરપરાયે મુક્તિ માર્ગે જોડાય અને ૪ વસ્તુધર્મ તે જે થકી વસ્તુ ઇટલે આત્મ સ્વરૂપાનુગત પૂર્ણ બોધ ઉપજે, સ્વરૂપાચરણ સ્વરૂપરમણ થાય અને શુભાશુભ સમસ્ત કર્મ નિર્જરે તેવો સર્વોત્તમ વર્મ, ઇમ ઇ વર્મના ચાર પ્રકાર વસ્તુગતે પરમાત્માણુ પ્રકાશ્યા છે, અને તેના કારણરૂપ ચાર વ્યવહાર વર્મ તે દાન, શિયલ, તપ અને ભાવ ધર્મો છે, આ ચાર ધર્મવહે અનાચાર દૂર થાય, લૌકિક-યશ પ્રતિષ્ઠા પામે, અન્ય તીર્થિઓ પળ જૈનધર્મની પ્રશશા કરે, જૈનાચાર અનુમોદે, માટે આચાર પ્રથમો વર્મ ઇતિ વચનાત્, દયાવર્મવહે હિંસક કર્મ પ્રવૃત્તિ ટલે, શુભ પુણ્ય પુષ્ટ કરી પરપરાયે જીવ મુક્તિને યોગ્ય થાય, ઇ રીતે ફળ પરિણામ પ્રવક વર્મના



चार प्रकारने यथाशक्ति सविनय सेवम करी कोइ परस्पर दुहनाय नहि, एम जे उत्तम प्राणी यथार्थ स्याद्वाद रीते जाणीने पाळे ते सुलभनोधी यइ वहेलो सिद्धि वरे, एवीज रीते जे प्राणी क्रियाविधि आदरे, ध्यानपूर्वक उपयोग शुद्ध राखे, ते प्राणीना सर्व मनोवाछित पूर्ण यत्रा साधे शीघ्र परमात्मस्वरूपने पामे

२२ प्र०—त्रण प्रकारना कर्मनु स्वरूप समजावो ?

उ०—द्रव्य कर्म ते ज्ञानावरणायादि आठ कर्मोनी पुद्गल-दलिक वर्गणा, २ नोकर्म ते औदारिकादि पाच शरीर ३ भावकर्म ते आत्माना अनादि काळनी प्रदेशे लागेळी रागद्वेषनी अशुद्ध परिणति, ते मध्ये द्रव्यकर्म तथा नोकर्म पुद्गलाश्रित छे, भावकर्म आत्माश्रित छे, पहेला वे कर्म विनाशी छे केमजे अनादि अनत अभव्याश्रि अने भव्याश्रि अनादि तथा सादि सात भागे आत्मप्रवृत्तिरूप होवायी छे, तथा हर्षोल्लास ते भावकर्म आश्रित छे अहि दृष्टातथकी आ वात विशेष स्पष्ट यशे तेयी कहीए छीए—के जेम एक चोखा नामना वान्यनी कोठी छे, तेमा धान्य जे छे ते द्रव्य कर्म, अने कोठी ते नोकर्म, अने चोखाने लागेले जे मिणो ते समान भावकर्म चीकासरूप आत्माना अशुद्ध परिणति जाणवी

२३ प्र०—अरिहतादि नव पदनो भावार्थ तथा ते प्रत्येकनु

तन्मय ध्यान करता वक्रा शु? शु? गुण निपजे ते  
मिन्न मिन्न कहो ?

३०-अरिहतादि पंचपरमेष्ठिमहाराजनु स्मरण करता उद-  
यकर्मनु निवारण थाय, अरिहतादिनु द्रव्ययी शरण  
करे तो द्रव्ययी उदय आपना सर्व पाप निष्कळ  
थाय, विपाक वेदना पण अल्प थाय, इत्यादि बणो  
गुण निपजे, सर्व द्रव्यपापनो नाश थाय, एम  
आत्मा आत्मानु स्मरण करे, ध्यानगत वज्रपिंजखत्  
पोताने स्वरूपे परिणमे, त्यारे सर्व कर्मनो नाश  
करे, एम आत्मस्मरण तथा निमित्तस्मरणनु स्वरूप  
जाणवु, हवे अरिहतने सभारता, समरता, परिणमता  
आत्माने जे गुण निपजे ते कहिए छीए, १, अरि  
एटले रागद्वेषरूप भावशत्रु तेनो नाश थाय, अने  
वीतराग स्वरूप प्राप्त थाय, २ तेम सिद्धपदनु तन्मय  
ध्यान वरता आत्मा निष्पन्न अरुपि परमात्मभावने  
पामे, ३ तेम आचार्यपदनु ध्यान वरता शुद्ध पचा  
चार प्रवर्तन शुलभ उदय आवे, भवातरे आचार्य  
गणधरादिपद पामे, ४ उपाध्यायपदनु ध्यान वरता  
शास्त्रार्थ सूत्रार्थ सुलभ थाय, अध्यापक शक्ति भवा-  
तरे प्रगटे, साधुपदनु ध्यान धरता मुक्तिमार्गनी  
साधना सुगम थाय, सुलभबोधिपणु प्रगटे, वळी  
चारित्र सुकर थाय, गजसुकुमालनी पेठे शीघ्र मुक्ति-  
पद पामे, ६, दर्शनपद आराधता सम्यक्त्व निर्मळ  
करे, वस्तु प्रतीति दृढ थाय, परमात्मस्वरूपनो

अवगाढ पुष्ट परिचय निपजे, ७ ज्ञानपद आराधता बोधशुद्धि याय, तच्चभासन प्रकाश विस्तरे, ८ चारित्र्यपद आराधता निरतिचारपणे पच महाव्रतनी शुद्ध प्रतिपालना पूर्वक सामायकादि पाच भावचारित्र्य परिणति थाय, स्वरूप रमणता सुलभ थाय, ९ तपपद आराधता इच्छा निरोध थाय, समस्त पौद्गलिक पीपासा टळे, तृष्णा दाह उपशमे, अने ममत्वभाव मळ गळी जाय इति भाव

२४ प्र०—कर्मनो उदय तथा बध जीवने केवी रीते थाय छे ?  
ते स्पष्ट समजावो

उ०—बाध्या कर्म उदय आवे छे, जेवे रसे बाध्या होय, तेवेज रसे तथाविध द्रव्य क्षेत्र काळ भाव पामीने, प्रदेशे तथा विपाके भोगवे, ते भोगवता जेवा नवा बधाय पण समभावे वेदेतो निर्जरा थाय, अने विषम भावे एटळे रागद्वेषादि मलीनभावे वेदे तो नवा बवाय तथा विषमभावे भोगवीने पछी पश्चात्ताप करे तो कर्मबधनो रसघात करी चीकास मटाडे, ते उदयकाळे सुगमतायी खरी जाय, अने जो कर्म विषमभावे भोगवे, दुर्घ्यान करे तो, उदयकाळे अत्यंत दोहिला भोगवीने खपावे, वळी वेदता थका नवा कर्मनो गाढ बध करे

२५ प्र०—बोध अने समाधिचु स्वरूप समजावो

उ०—सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, रत्नत्रयी सुगम प्राप्ति ते बोध, अने अहिं तेम भवान्तरने विषे निर्वेदन-

પણે તેની સુલભતા તે સમાધિ, ઇટ્ઠે વિક્તની સ્થિરતા  
વિશ્રાંતિભાવ જાણવો

૨૬ પ્ર૦—વૈરાગ્ય અને સવેગમા શો ફેર ?

૩૦—સત્તાર ઇટ્ઠે ત્રિપય કપાયાદિ મહા મર્લાનતાના કા-  
રણરૂપ શરીર, સ્વજન પરિચાર, ભોગ વૈભવાદિયક્રી  
વિરક્ત બુદ્ધિ ઇટ્ઠે રાગનો ત્યાગ તેને વૈરાગ્ય કહીએ  
અને ઇકાત મોક્ષનીજ અમિલાપા, શાસ્વત સ્વાભા-  
વિક ચિદાનદવનમય પરમાત્મપ્રાપ્તિનીજ ઇચ્છા તેને  
સવેગ કહીએ, અને ઇયા સમેગે કરીને સહિત હોય  
તેજ સ્વરાસવેગી જાણવા

૨૭ પ્ર૦—દાન, શીલ, તપ અને ભાવ ઇ ચાર કયા સાધનના  
વચ્ચે પ્રાપ્ત થાય ?

૩૦—દાન, ધનવચ્ચી । શીલ, મનવચ્ચી । તપ, તનવચ્ચી  
વચ્ચે । અને ભાવ, સુજ્ઞાન વચ્ચે

૨૮ પ્ર૦—કઈ વસ્તુની પ્રાપ્તિ સ્વરા ભાગ્યોદયવચ્ચે થાય ?

૩૦—૧ સદ્ગુરુની દેશના, ૨ સુદેવની સેવના, ૩ અને  
સુધર્મની આરાધના

૨૯ પ્ર૦—તિર્યક્ પરિચય અને ઊર્ધ્વ પરિચય કોને કહીએ ?

૩૦—વર્માસ્તિકાયાદિ પાચ દ્રવ્યો જે સપ્રદેશી છે, તેની  
તિર્યક્ પરિચય સજ્ઞા છે, અને અપ્રદેશી ઇક કા-  
લદ્રવ્યને ઊર્ધ્વ પરિચય સજ્ઞા છે

૩૦ પ્ર૦—ધર્મનું સ્વરૂપ ચતુર્વિધ કહ્યું છે તે કેવી રીતે ?

૩૦—૧ વસ્તુનો મૂલ સ્વભાવ તે વર્મ, ૨ ક્ષમાદિ દશવિધ

यति वर्म, ३ दर्शन ज्ञान चारित्र्यरूप रत्नत्रयीवर्म,  
४ लुकाय जीवनी रक्षारूप वर्म

३१ प्र०—मुनिने चतुर्विध समय छे ते शी रीते ?

उ०—१ प्राण समय, ते षट्कायजीववधनी अविरति टळी माटे, २ इन्द्रिय समय ते पाच इन्द्रियोना विषय विकारोने टाळे माटे, ३ कषाय समय ते त्रण कषायनी चोकडीना उदय मट्या माटे, ४ मन समय ते द्रव्य तथा भाव मनना विकल्प सवर्षा माटे

३२ प्र०—द्रव्य मन अने भावमननो अर्थ समजावो

उ०—द्रव्य मन ते पाच इन्द्रियोना विषयरूप, मनोवर्गणा दलिकने अवलवन मनन शक्ति, मनोयोगद्वाराए चिंतन परिणाम, निर्विकारी निर्विकल्पी शक्ति विशेष ते केवळीने पण होय भावमन ते व्यक्ताव्यक्त सकल्प विकल्परूप विकारी मोहजनित, शुभाशुभ परिणामरूप छे

३३ प्र०—स्वभावे तथा विभावे आत्मानु परिणमन थाय त्या शु शु फळ निपजे ?

उ०—आत्मा स्वभावे परिणमे तिहा सम्यकत्व गुण निपजे, तेना फळ ज्ञान अने आनद ए वे उपजे, अने ज्यारे आत्मा देहगेहादि परभावे परिणमे तिहा मिथ्यात्व निपजे, तेना फळ विषय कषायरूप मलीन परिणति, चतुर्गति भ्रमणरूप ससार सतति छे सुख दुखरूप छे, एम जाणी उत्तम जीवोए विभावद-  
शानो त्याग करी जेम वने तेम सत्संगे रही स्व-

આત્મન, સ્વભાવ પરિણમન, શુદ્ધોપયોગે કરા પ્ર-  
યત્ન રૂઠો

૩૪ પ્ર૦-જાંવના દ્રવ્ય ગુણ પર્યાયના ઘાતક કોણ છે ?

૩૦-? અજ્ઞાનપણ તે આત્મદ્રવ્ય ઘાતક છે, ૨ મિ-  
થ્યાત્વ તે આત્મગુણ ઘાતક છે, ૩ અવિરતિ તે  
આત્મિક સુખ પર્યાય ઘાતક છે, ૪ તથા અજ્ઞાન  
અને મિથ્યાત્વ તે આત્માનુ જીવપણ દાવે છે, આ-  
ત્મસ્વભાવ પરિણતિ રુઠે છે, અને અવિરતિ દોષ,  
આત્મિક સુખ રુઠે છે

૩૫ પ્ર૦-જીવ દ્રવ્યનિર્જરા અને ભાવનિર્જરા કેવી રીતે કરે ?

૩૦-જીવ શુદ્ધ જ્ઞાનોપયોગે ભાવનિર્જરા કરે છે, અને  
વૈરાગ્યભાવ ઉદાસીનતાએ દ્રવ્યનિર્જરા કરે છે

૩૬ પ્ર૦-પૌદ્ગલિક ઇચ્છા તથા મૂર્છાભાવે કરી જીવ શુ પુષ્ટ  
કરે ?

૩૦-ઇચ્છાએ અજ્ઞાનપણ, અને મૂર્છાએ મિથ્યાત્વ પુષ્ટ કરે

૩૭ પ્ર૦-ગુણ પર્યાયના ઘાતક કોણ ? તેનું સ્વરૂપ કહો

૩૦-આત્માના ગુણપર્યાયના ઘાતક -? જ્ઞાનાવરણીય, ૨  
દર્શનાવરણીય, ૩ મોહનીય, ૪ અતરાય એ ચાર  
ઘનવાતી કર્મ છે અને શેષ વેદનીય આદિ મૂલ્લ તો  
અઘાતી છે, પણ મોહમિશ્રિત થયે તે પણ ઘાતકપણે  
પરિણમે છે, તે મધ્યે અતિપ્રબલ મોહ કર્મ છે, તેની  
અઠાવીસ પ્રકૃતિયો છે તે મોહ, રાગ અને દ્વેષ એ  
ત્રણ ભાગે વહેતીએ ત્યા મોહશબ્દે મિથ્યાત્વ મોહ-  
નીય જાણવી, રાગ, દ્વેષ શબ્દે ચારિત્ર મોહનીય જાણવી,

પ્રથમની મિથ્યાત્વમોહનીયની ત્રણ પ્રકૃતિ છે, તે નિર્મલ સમ્યક્ત્વ ગુણની ઘાતક છે, અને વીજી ચારિત્રમોહનોય કર્મની પચીસ પ્રકૃતિયો છે, તે મધ્યે ક્રોધ માન એ વે ચાર ચોકડીની લેતા આઠ થાય, અને નવ નોકષાયમાયી અરતિ, શોક, ભય અને દુઃગઠા એ ચાર ગણતા સર્વે મઠી એ વાર પ્રકૃતિ દ્વેષના ઘરની વા અથવા રાગદ્વેષ જનિત છે, અને શેષ માયા લોભાદિ આઠ કષાય અને હાસ્ય, રતિ, અને ત્રણ વેદ એ પાચ મઠીને તેર પ્રકૃતિઓ રાગના ઘરની છે

૩૮ પ્ર૦—શરીરગતિ, પરિણામગતિ, શ્રદ્ધાગતિ, જે રીતે પરિણમે છે તે રીતે કહો ?

૩૦—૧ શરીરનીગતિ ઔદયિકભાવે વેદનીય મધ્યે છે, ૨ પરિણામગતિ, વિષય કષાયની પ્રવૃત્તિ મધ્યે ઇશ્વાનિષ્ટરૂપે છે, શ્રદ્ધાની ગતિ, તત્ત્વ અતત્ત્વ વિવેચન કર્ણરૂપે છે

૩૯ પ્ર૦—જીવના દ્રવ્ય, ગુણ, અને પર્યાય શાયી સમરે એટલે સુધરે ?

૩૦—દર્શન, જ્ઞાન, અને ચારિત્ર ગુણે કરી અનુક્રમે સમરે

૪૦ પ્ર૦—તે શી રીતે છે, તે વિસ્તારથી સ્પષ્ટ સમજાવો ?

૩૦—આત્મા દ્રવ્ય અસંખ્યાત પ્રદેશી છે, તેનો જિન વચન પ્રતીતે તથા અનુમાને કરી અનુભવ કરે તે દર્શન, તથા પરોક્ષ અને પ્રત્યક્ષે જે પ્રતીતાત્મક ધર્મ ભાસન થયો, જે આત્મદ્રવ્ય દર્શન દ્વારા

આત્મન, સ્વભાવ પરિણમન, શુદ્ધોપયોગે કરના પ્ર-  
યત્ન કરવો

૩૪ પ્ર૦—જીવના દ્રવ્ય ગુણ પર્યાયના ઘાતક કોણ છે ?

૩૦—૧ અજ્ઞાનપણ તે આત્મદ્રવ્ય ઘાતક છે, ૨ મિ-  
થ્યાત્વ તે આત્મગુણ ઘાતક છે, ૩ અવિરતિ તે  
આત્મિક મુખ પર્યાય ઘાતક છે, ૪ તથા અજ્ઞાન  
અને મિથ્યાત્વ તે આત્માનુ જીવપણુ દાવે છે, આ-  
ત્મસ્વભાવ પરિણામિ રુષે છે, અને અવિરતિ દોષ,  
આત્મિક મુખ રુષે છે

૩૫ પ્ર૦—જીવ દ્રવ્યનિર્જરા અને ભાવનિર્જરા કેવી રીતે કરે ?

૩૦—જીવ શુદ્ધ જ્ઞાનોપયોગે ભાવનિર્જરા કરે છે, અને  
વૈરાગ્યભાવ ઉદાસીનતાએ દ્રવ્યનિર્જરા કરે છે

૩૬ પ્ર૦—પૌદ્ગલિક ઇચ્છા તથા મૂર્છાભાવે કરી જીવ શુ પુષ્ટ  
કરે ?

૩૦—ઇચ્છાએ અજ્ઞાનપણુ, અને મૂર્છાએ મિથ્યાત્વ પુષ્ટ કરે

૩૭ પ્ર૦—ગુણ પર્યાયના ઘાતક કોણ ? તેનું સ્વરૂપ કહો

૩૦—આત્માના ગુણપર્યાયના ઘાતક—૧ જ્ઞાનાવરણીય, ૨  
દર્શનાવરણીય, ૩ મોહનીય, ૪ અતરાય એ ચાર  
ઘનવાતી કર્મ છે અને શેષ વેદનીય આદિ મૂલ્લ તો  
અઘાતી છે, પણ મોહમિશ્રિત થયે તે પણ ઘાતકપણે  
પરિણમે છે, તે મધ્યે અતિપ્રબલ મોહ કર્મ છે, તેની  
અઠાવીસ પ્રકૃતિયો છે તે મોહ, રાગ અને દ્વેષ એ  
ત્રણ ભાગે વહેલીએ ત્યા મોહશબ્દે મિથ્યાત્વ મોહ-  
નીય જાણવી, રાગ, દ્વેષ શબ્દે ચારિત્ર મોહનીય જાણવી,



४१ प्र०—योगप्रत्ययिक सत्तागत, मिथ्यात्वप्रत्ययिक अने अविरतिप्रत्ययिक बंधकर्मो शी रीते टळे ?

उ०—अशुभ योगे बाधेला कर्म तप सजमादि शुभ क्रिया व्यापारवटे, सत्तागत कर्मो शुद्धोपयोगे, स्वद्रव्य पर्याय परिणाम वडे, स्वभावाचरण शुद्ध व्यानालप्रनवडे निर्जरे, सम्यक्दर्शनवडे मिथ्यात्व प्रत्यङ्ग्या टळे, अने अविरति प्रत्यङ्ग्या, विरति परिणामे टळे, ते विषे कहु छे जे —

दृष्टा

आगमे अध्यातमतणा, कल्या घणा प्रनव,  
द्रव्यगुणयोगे परिणामे, तो सोडु अने सुगध

४३ प्र०—कषाय, प्रमाद, इन्द्रियविषयराग, अने योग प्रत्यङ्ग्या बाधेला कर्म टाळवाना उपाय क्या ?

उ०—कषाय प्रत्यङ्ग्या, उपशमादि समताभावे टळे, प्रमादे बाधेला अप्रमाद दशावडे टळे, विषय राग प्रत्यङ्ग्या तपस्यावडे टळे, अने योग प्रत्यङ्ग्या अयोगी दशाए शैलेशीकरणे प्रवर्तता टळे

४४ प्र०—निश्चयनय अने व्यवहारनय जीवने शु गुणकारी छे ?

उ०—सम्यक्दृष्टि जीव श्री जिणप्रणीत स्याद्वादाना जाण, जैनशैलिना उपयोगी बोधवान भव्यप्राणीओने निश्चयनय दृढता, आस्तिकना करणहेतु छे, अने व्यवहारनय ते जीवना पर्याय शुभाशुभ कर्मरूपे जे भया छे, तेने सभान्वाना हेतुरूप छे, व्यवहारनय केडे उद्यम छे, अने निश्चयनय केडे चित्तनी स्थि-

ભાસ્યો દિટો તે જ્ઞાન, તે સમ્યક્દર્શન ગુણે કરી આત્મદ્રવ્ય સમરે, સમ્યક્દર્શન ગુણ હેતુ તે દ્રવ્ય દર્શન, તથા તે પ્રતીતાત્મક વર્મરૂપ અનત ગુણતુ જાણપણુ થયુ તે ગુણ હેતુ સમ્યક્જ્ઞાન જાણતુ, તથા દ્રવ્ય અને ગુણરૂપે જે ઉપયોગના પલટણપણા રૂપ પરિણમન યાય તેને પર્યાય કહિયે, તે પર્યાયનો હેતુ સ્વરૂપાચરણ ચારિત્ર ગુણ હેતુ છે, અર્થાત્ જીવના પર્યાય ચારિત્ર ગુણે કરી સમરે, અને જ્ઞાન ગુણે જીવના ગુણ સમરે, તથા દર્શનગુણે આત્મ દ્રવ્ય સમરે, સુધરે એ ભાવ જાણવો

૪૧ પ્ર૦-જન્મ, જરા, અને મરણતુ દુ સ્વ કેમ ટલે ?

૩૦-શુદ્ધ સ્તનત્રયીની પ્રાપ્તિ, તે આવી રીતે કે જીવે પૂર્વે સમ્યક્ત્વ પામ્યા પહેલા અનત પુદ્ગલ પરાવર્તન કાલ સુધી જન્મ કર્યા તે હવે સમ્યક્દર્શન પામ્યો, માટે ઉત્કૃષ્ટ કદાચ જન્મ કરે તોપણ અર્થ પુદ્ગલ પરાવર્તન કાલ ઉપરાત જન્મ ન કરે, માટે દર્શન-ગુણે જન્મની પીડા ટલે, તથા જરા જે શુભાશુભ કર્મ ઉદયાગતે આવે છે તે સુસ્વદુસ્વરૂપ વેદાવે, વેદનીય વિપાકે સમ્યક્જ્ઞાન ગુણે ટલે, અને સ્વરૂપા ચરણ એટલે શુદ્ધ વ્રતાચરણ રૂપે ચારિત્ર ગુણે મરણ પર્યાય, ગત્યતર જન્મ ટલે એટલે ચારિત્રગુણે મરણ વેદના ટલે સારાશ જે સમ્યક્દર્શને જન્મની, જ્ઞાન ગુણે જરાવસ્થાની, અને ચારિત્ર ગુણે મરણની વેદના ટલે છે, એ ભાવ જાણવો

४१ प्र०—योगप्रत्ययिक सत्तागत, मिथ्यात्वप्रत्ययिक अने अविरतिप्रत्ययिक प्रवृत्तकर्मों शी रीते टळे ?

उ०—अशुभ योगे वाघेला कर्म तप सजमादि शुभ क्रिया व्यापारखटे, सत्तागत कर्मों शुद्धोपयोगे, स्वद्रव्य पर्याय परिणाम वडे, स्वभावाचरण शुद्ध व्यानालग्नवडे निर्जरे, सम्यग्दर्शनवडे मिथ्यात्व प्रत्यइया टळे, अने अविरति प्रत्यइया, विरति परिणामे टळे, ते विषे कळ्हे जे —

दुहा

आगमे अध्यात्मतणा, कळ्या घणा प्रभव,  
द्रव्यगुणयोगे परिणमे, तो सोडु अने सुगव

४३ प्र०—कषाय, प्रमाद, इन्द्रियविषयराग, अने योग प्रत्यइया वाघेला कर्म टाळवाना उपाय क्या ?

उ०—कषाय प्रत्यइया, उपशमादि समताभावे टळे, प्रमादे वाघेला अप्रमाद दशावडे टळे, विषय राग प्रत्यइया तपस्यावडे टळे, अने योग प्रत्यइया अयोगी दशाए शैलेशीकरणे प्रवर्तता टळे

४४ प्र०—निश्चयनय अने व्यवहारनय जीवने शु गुणकारी छे ?

उ०—सम्यक्दृष्टि जीव श्री जिणप्रणीत स्याद्वादना जाण, जैनशैळिना उपयोगी बोधवान भव्यप्राणीओने निश्चयनय दृढता, आस्तिकना करणहेतु छे, अने व्यवहारनय ते जीवना पर्याय शुभाशुभ कर्मरूपे जे भयां छे, तेने सभासजाना हेतुरूप छे, व्यवहारनय केडे उद्यम छे, अने निश्चयनय केडे चित्तनी स्थि-

रता, दृढता छे, एम ए रे नयो जात्मद्रव्यने समा-  
खामा समकाले गौणता मुरयनाए गुणकारी छे,  
माटे एमायी एरूपण नयने उत्थापे के एकाते  
निपेघे तो जीव एकातमादी मिथ्यात्वी जाणयो,  
एम श्री जिनेश्वर भगवतनी वाणी छे, ते यथार्थ  
सदहवी

४५ प्र०-निश्चय अने व्यवहारसु सम्यक्स्वरूप स्पष्ट समजावो ?

उ०-श्री जिनवाणी प्रतीते ग्रहिने षड् द्रव्यना यथार्थ-  
पणे गुणपर्याय वारे, अनुभव प्रत्यक्षे स्वरूपने वेदे,  
तथा गुणपर्यायसु विलेखन करे, तथा पुद्गलादिक  
कर्म पर्यायमा तदाकार न परिणमे, पाच इन्द्रियना  
भोग विषयो इष्टानिष्टरूप न वेदे, पोताना स्वरूपने  
भेद रत्नत्रयीरूपे आराधे, तेने व्यवहार सम्यक्त्वी  
कहिये, तथा पोताना गुण गुणी पर्याय अमेकरूपे  
रत्नत्रयरूपे, निर्विकल्प समाधि परिणमे तेहने नि-  
श्चयसम्यक्त्वी कहीए, त्या व्यवहार सम्यक्त्व ते  
निश्चय सम्यक्त्वनु कारण छे, अने निश्चय सम्यक्त्व  
ते केवळज्ञाननु कारण छे

४६ प्र०-पूर्वोक्त उभय सम्यक्त्वीने व्यवहार प्रवृत्तिए शु  
लाभ याय ?

उ०-नवतत्त्व, षड्द्रव्यादिकनु आस्तिकभावे दृढ श्रद्धान,  
देव गुरु वर्मनु यथार्थ श्रद्धान, तच्च बुद्धिना विशेष  
प्रकाशे करी तत्त्वातत्त्वनु नयभगरूपे, अनेकात  
मार्ग विशेष रीते अवलम्बन यता आगळ परपराए

वस्तु व्यवहारसम्यक्त्व जे पूर्वे कथु छे, ते रूपने मेळवी आपे

४७ प्र०-वर्म, कर्म, पुण्य अने पाप केवी रीते थाय छे, अने तेना मित्र मित्र फळ शा शा छे ? ते बराबर कहो

उ०-जीव शुद्धोपयोगे वर्तता एटले पोताना द्रव्यगुण पर्यायची तन्मयपणे परिणमे त्या ते वर्म करे, अने रागद्वेषमय अशुद्धोपयोगे वर्तता कर्म वाचे, एम शुद्धोपयोगे वर्म अने अशुद्धोपयोगे कर्म निपजे छे, तथा शुद्धोपयोगे शुभयोगे पुण्य जाचे, अर्थात् मन वचन कायाना योग प्रशस्तभावे तथाविध गुणानुरागे पूजा, सामायक, प्रतिक्रमण, पोसह, सिद्धात श्रवण, अभ्यास, मनन, दानादि शुभ योगे प्रवर्तता जीव पुण्यानुवर्धी पुण्यनो रस ढाळे तेमज वर्ळी अशुभ मन वचन कायाना योगे विषयादि प्रवृत्तिए, अप्रशस्तभावे, तदाकार असिंरूपे परिणमता जीव निविड पापत्रय कर, हवे तेना फळ कहिये छीए-पुण्यची शुभ गति, शुभ सामग्री, शाता, अतुकुळतादि शुभ सयोग जीव पामे, तथा शुद्धोपयोगी वर्मवडे कर्मनी निर्जरा करी मुक्तिपद पामे, तथा अशुद्धोपयोगे वर्तता पाप वाचे, तेथी जीव ससारमा घणो काळ रहे, घणा भव करे, अशुभोपयोगे कठीन पापत्रय करीने जीव ज्या त्या घणो अशाता पामे, साराश जे पापे अशाता, पुण्ये शाता, कर्मे ससार अने वेम मोक्ष थाय छे

૪૮ પ્ર૦—અલ્પ પાપત્વ અને અલ્પ કર્મત્વ શી રીતે થાય ?  
તે તેની ચૌભગી સહિત કહો

૩૦—પાચ ઇન્દ્રિય અને ત્રણ યોગના અશુભ વ્યાપારમા તદાકારપણે ન પરિણમે, સસેદ પ્રવર્તે તો અલ્પ પાપત્વ થાય, તે આલોચણે નિંદાગર્હા કરતા ઝૂટે, તથા શુદ્ધોપયોગે જે કર્મ ત્રણ નીપજે તે ભોગને છુટે, પાપ પ્રવૃત્તિ કરતા તીવ્ર મર્હાન પરિણામે તન્મય થતા તીવ્રરસે ઘણા નિવિડ કર્મ ગાથે, અને ઘણા અશુભ યોગની હલચલે પાપ પુદ્ગલ ઘણા મેલ્લે, પણ તદાકારપણે તીવ્ર કપાય અનુત્તર ન હોય તો શિથિલ વધ કરે, એમ કોઈ જીવને પાપ ઘણ અને કર્મત્ત્વ અલ્પ, કોઈને કર્મત્ત્વ વહુ અને પાપ અલ્પ, કોઈને પાપ ઘણ અને કર્મત્ત્વ પણ ઘણો, અને કોઈને પાપત્ત્વ કર્મત્ત્વ એકે નહિ, એમ કર્મત્ત્વ અને પાપત્ત્વ આશ્રિ ચૌભગી જાણવી

૪૯ પ્ર૦—ધર્મ, કર્મ અને ભર્મ શાથી નીપજે ?

૩૦—શુદ્ધોપયોગે ધર્મ અને ક્રિયાએ કર્મ અને મિથ્યાત્વે ભર્મ નિપજે

૫૦ પ્ર૦—પાપ, પુણ્ય અને વર્મ એ એક વસ્તુ છે કે જુદી ?

૩૦—વર્મ, પુણ્ય અને પાપ એ ત્રણે વસ્તુમિત્ર, ગતિમિત્ર, ઉપયોગે મિત્ર અને ફલપણે મિત્ર મિત્ર છે, ધર્મ ક્ષમાદિ દશવિધ યતિ વર્મરૂપ છે, શુદ્ધોપયોગ પરિણતિ એ સવરૂપ છે, અને તેનું ફલ મોક્ષ છે, પુણ્ય નવ પ્રકારે વધાય છે શુભ પરિણામે કરી, તે

वेताळीश भेदे अनुकुळपणे शाताफळरूपे भोग-  
वाय छे, पुण्य पौद्रलिक जट वस्तु सोनानी वेडी  
रूप विनाशी ससार हेतुरूप होवार्थी मुनिने निश्च-  
यनय त्याज्य छे, पाप अशुभ परिणामे अदार प्र-  
कारे उवाय छे, वीयासी प्रकारे प्रतिकुळपणे अ-  
शाता फळरूपे दृ खदायिपणे लोढानी वेडी समान  
भोगवाय छे, ते तो सर्वथा प्रकारे हेय छे एम  
वर्म स्वभाव जनित आत्मिक छे, अने पुण्य पाप  
कर्म जनित पौद्रगलिक छे, वर्म उपादेय छे सर्वथा  
प्रकारे, शुभ कर्म व्यवहारे, अपवादे उपादेय छे,  
निश्चय स्वरूपे हेय छे, अने अशुभ कर्म तो स-  
र्वथा प्रकारे अने नये हेय एट्टे त्यागवा योग्य छे.

५१ प्र०—वर्म जीवने शार्थी निपजे ?

उ०—ज्या सुवी जादमा परिणाम सकल्प विकल्पमा वर्ते  
छे, त्या सुवी शुभाशुभ कर्मवच निपजे, अने ज्यारे  
निर्विकल्प दशामा परिणामे, प्रवर्ते त्यारे शुद्ध वर्म  
प्रगटे, एम विकल्पे कर्म लाभ अने निर्विकल्पे धर्म-  
लाभ जाणवो

५२ प्र०—स्वाभाविक रत्नयी गुणनु लक्षण स्वरूप कहो ?

उ०—त्रोधप्रकाश अने विलक्षण विचक्षणताए ज्ञाननु  
स्वाभाविक लक्षण जाणवु, हृद आस्तिकता, प्रती-  
तात्मक श्रद्धानुगुण ते स्वाभाविक दर्शन लक्षण  
जाणवु, तथा चित्तनी स्थिरता, अनुकुळता, स्वरूप  
रमणता ते स्वाभाविक चारित्र्य लक्षण जाणवु, एम

४८ प्र०—अल्प पापवध अने अल्प कर्मवध शी रीते थाय ?  
ते तेनी चौभगी सहित कहो

उ०—पाच इन्द्रिय अने त्रण योगना अशुभ व्यापारमा तदाकारपणे न परिणमे, सखेद प्रयत्ने तो अल्प पापवध थाय, ते जालोयणे निद्रागर्हा करता छटे, तथा शुद्धोपयोगे जे कर्म वध नीपजे ते भोगये छुटे, पाप प्रवृत्ति करता तीन मर्दान परिणामे तन्मय यता तीनरसे घणा निविड कर्म थावे, अने घणी अशुभ योगनी हलचले पाप पुद्गल घणा मेळवे, पण तदाकारपणे तीन कषाय अनुभव न होय तो शिथिल बध करे, एम कोइ जीवने पाप घणु अने कर्मवध अल्प, कोइने कर्मवध बहु अने पाप अल्प, कोइने पाप घणु अने कर्मवध पण घणो, अने कोइने पापवध कर्मवध एके नहि, एम कर्मवध अने पापवध आश्रि चौभगी जाणवी

४९ प्र०—वर्म, कर्म अने भर्म शायी नीपजे ?

उ०—शुद्धोपयोगे धर्म अने क्रियाए कर्म अने मिथ्यात्वे भर्म निपजे

५० प्र०—पाप, पुण्य अने वर्म ए एक वस्तु छे के जुदी ?

उ०—वर्म, पुण्य अने पाप ए त्रणे वस्तुमित्र, गतिमित्र, उपयोगे मित्र अने फळपणे मित्र मित्र छे, धर्म क्षमादि दशविध यति धर्मरूप छे; शुद्धोपयोग परिणति ए' सवरूप छे, अने तेनु' फळ मोक्ष छे, पुण्य नव प्रकारे बधाय छे शुभ परिणामे करी, ते



मूळ वे भेद छे —? ज्ञानचेतना, २ अज्ञान-  
चेतना, ते मध्ये अज्ञानचेतना वे प्रकारे छे ते  
? कर्मचेतना, २ कर्मफल चेतना, तेमा कर्मचेतना  
ते रागद्वेषादिने विषे जीवतु परिणमन जाणवु, अने  
शुभाशुभ कर्मफलतु वेदवु ते कर्मफल चेतना जा-  
णवी, ज्ञानचेतनानो कोइ भेद छे नहि, ते आ-  
त्माना शुद्धोपयोगरूप शुद्ध परिणति स्पर्शन ज्ञानरूप  
छे, ते सम्यग्दृष्टि आत्माने होय छे, अने अज्ञान-  
चेतना अशुद्धोपयोगना घरनी विभाविकपरिणतिरूप  
मोहितमिथ्यादृष्टि जीवने होय छे, ज्ञानचेतना जीवने  
प्रगटे त्यारे ते कर्मचेतना तथा कर्मफल चेतनारूप  
अज्ञानचेतना टळे

५५ प्र०—त्रणे काळे जीव जे पापकर्मनो बन्ध करे छे तेना  
निवारण हेतु क्या ?

उ०—गया काळना पापकर्म ते प्रतिक्रमणे मटे, अने वर्त-  
मानकाळना पापकर्म ते आलोयणे मटे, अने अना-  
गतकाळना पापकर्म पञ्चरखाणे टळे

५६ प्र०—चार प्रकारे व्यवहार छे ते क्या ?

उ०—? अनुपचरित सद्भूतव्यवहार ते अनत ज्ञान,  
अनत दर्शन, अनत सुख, अनत वीर्य आदे दइने  
आत्मांनी अनत गुणात्मक शुद्धतारूप जाणवो, २  
उपचरित सद्भूत व्यवहार ते क्षयोपशमिकज्ञान-  
दर्शन, चारिनादिरूप जाणवो, ३ अनुपचरित अ-  
सद्भूत व्यवहार ते जीवना अनादि कर्मसबव ए-

ए सामान्यपणे रत्नत्रयीनु वस्तुगते लक्षण जाणवु, विशेष प्रकारे तो, वस्तु अनन वर्मात्मक सामान्य अने विशेष स्वभाप्रत समकाळे छे, तेमा जे विशेषात्मक वर्म एटले वस्तुने जाति क्रियादि अनेक विशेषणोयुक्त यथार्थ जाणवी ते ज्ञानगुण, अने वस्तुगते सामान्याप्रबोध ते दर्शन गुण, तथा स्वपर वहेचण भेदज्ञानरूप जे विवेक, सदाचरण, अपि तु, स्वरूपाचरण ज ज्ञानना फलरूप विरति परिणति गुण छे ते चारित्र लक्षण जाणवु

५३ प्र०—वर्म साभळवो, जाणवो, अने आदरवो ते केवी रीते ?

उ०—वीतरागनी वाणी स्याद्वादरूपे छे तेने आत्मस्वरूप प्ररुपणानी मुख्यताए, जे वर्मनो सद्गुरु महाराज उपदेश करे छे, ते वर्मने अत्यादर सहित साभळवो, स्वसमय एटले स्वशास्त्रानुसार अने परसमय एटले परशास्त्रावबोध एम स्वपरज्ञान परीक्षापूर्वक जेम शुद्ध-शुद्ध वर्मनो प्रकाश भासन याय, तेम ते शुद्ध रत्नत्रयी आराधनरूप धर्मने विवेक बुद्धिए जाणवो, तथा जेने पोताना द्रव्यगुण पर्याय पोतानाज शुद्धात्म द्रव्य गुण पर्यायपरिणतिरूपे परिणम्या छे, तेनो प्ररुपेलो धर्म आदरवो इतिभाव

५४ प्र०—चेतना एटले शु ?

उ०—ज्ञान दर्शन स्वभावरूप आत्मलक्षण एटले सुखदु खनु जे भान थवु, चेतबु एटले सुखे दु खे जे चेत तेने चेतना कहिये ते जीवनु लक्षण छे हवे ते चेतनाना

५९ प्र०-निव्विध मोक्षभेद समजावो ?

उ०-१ भावमोक्ष सम्यग्दृष्टिने होय, २ द्रव्य मोक्ष सा-  
धुने होय, ३ गुणमोक्ष ते तेरमा चौदमा गुणस्थानि  
केवली भगवतने होय

६० प्र०-निव्विध चेतना केवी रीते कोने होय ? ते कहो

उ०-१ कर्मचेतना नसर्जावने, २ कर्मफळ चेतना एकें-  
द्रियादिकने, ३ ज्ञान चेतना सम्यग्दृष्टिनेज होय

६१ प्र०-निव्विध ससारी जीवहु स्वरूप समजावो ?

उ०-१ भवामिनदी जीव ते जेने ससारने विषे देह, गेह,  
स्त्री, पुत्र, वनादि परिग्रह उपर तन्मय राग आनद  
वर्तवारूप ससारामिमुखपणु मस्तपणे होय, विषय  
कषायादिमलीनपरिणतिमा अक्यता वर्ते, अने वर्म-  
ध्यानादि साधनमा भेदभाव रहे एवु भवामिनदी-  
पणु मिथ्यादृष्टि मोहमूढ जीवोने होय छे, तेना  
नाम-लोभि, कृपण, दयामणो, कपटी, मत्सरी एट्ळे  
अदेखो, विक्रण एट्ळे सदा भयवान, अज्ञानि जेना  
सघळा आरभ कामो निष्फळ थाय छे एवो ते  
कठोर जाणवो, २ पुद्गलानदि, जीव ते सम्यक्त्विने  
कहिये, केम जे तेने शुभाशुभ कर्मोदयो पुद्गलनेविषे  
रति वेदावे एट्ळे उपरयी सारा लागे, पण अतरमा  
सुखरूप वेदवापणु न होय, खेद थाय, केम जे  
ससारमा तेने काइपण खरेखरा आनदरूप नयी, एम  
एणे जिनवचनानुसार अतरग प्रतीतिपूर्वक जाण्यु  
छे मटे तेने ससार प्रवृत्ति करता अनादि भववा-

टले जानावरणीयादि अष्ट कर्मपुद्गलोनु आत्मप्रदेशे अवस्थान छे ते जाणवो, ४ उपचरित असद्मृत व्यवहार ते लौकिक मान्यनारूप देशाचार रुद्विरूप, ज्ञाति, पच विगेरेना कल्पित ऋयदा, नियमरूप, तथा अनादिकाळयी जीवने लागेली परवस्तुनेविषे मारापणानी बुद्विरूप स्त्री, पुत्र, वनु, माता, पिता, स्वजनपरिवार, मित्र, शत्रु, घर, हाट, वस्त्रादि सर्व परिग्रह ममतानी मिथ्या कल्पनारूप उपचरित असद्मृतव्यवहार जाणवो

५७ प्र०—त्रिविध कर्मनु स्वरूप समजावो ?

उ०—१ द्रव्यकर्म ते ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मपुद्गलो जे आत्मप्रदेशे लागेला छे ते, २ भावकर्म ते रागद्वेषादि आत्मानी अशुद्धविभाविक परिणति, ३ नोकर्म ते औदारिकादि पाच शरीररूप जाणवा

५८ प्र०—चतुर्विध दयानु स्वरूप कहो ?

उ०—१ द्रव्यदया ते मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीवने होय ते परपौद्गलिकभावरूप परदृस्ते वेचाणी, रागद्वेषे दृणाइ ते नयी जाणतो एवी जे अनुपयोगरूप नाम मात्र दयास्वरूप, ते द्रव्यदया एक रीते परदयामा, पण अतरभवे छे, २ परदया ते खटकाय जीविक्षारूप विरतिवत जीवने होय ते सम्यग्दृष्टि अने मिथ्यादृष्टि बनेने सभवे छे, ३ भावदया ते शुद्धात्मोपयोगरूप सम्यग्दृष्टिने ज होय, केम जे पोतानो आत्मा दयारूपज छे एम जाणीने ते प्रवर्ते छे, ४ स्वदया ते सम्यग्दृष्टि मुनि, क्षपकश्रेणि आरुढने होय छे.

३०-घणो काळ रहे ते रोग कहिए, अने तत्काळ प्राणघात करे ते आनक

६४ प्र०-बळ, वीर्य, अने पराक्रममा शु फेर ?

३०-शारीरिक शक्ति ते बळ, अने आत्मिक शक्ति ते वीर्य अने शुभाशुभ कर्मोदयानुसार पराक्रम जाणवु

६५ प्र०-सम्यक्त्वी अने मिथ्यात्वीने मोहादिकर्मवध स्थितिमा शो फेर छे ?

३०-सम्यक्त्व ते जीवनी सत्तारूप स्वद्रव्य तत्त्वमूत छे, ते प्यारे पोतानो समय पामीने पडे तोपण तेने मिथ्यात्व पर्याय, द्रव्यगुणरूपे न परिणमे तेयी तेने मोहादिकर्मनी उत्कृष्ट स्थिति बवाती नयी, माटे तेने मिथ्यात्व पर्याय परिणमता तीव्रकषायोदये पण सम्यक्त्व प्राप्तने एक कोटाकोड सागरोपम माठेरो स्थितिबध धाय छे, एम समजाएल छे, पठीतो जानवत बहुश्रुत कहे ते सत्य, अने अनादि गाढ मिथ्यादृष्टिने तो तीव्रकषायोदये उत्कृष्ट सित्तेर कोडा-कोडी सागरोपमनो मोहनीयवध पडे छे

६६ प्र०-हवे पुद्गल ते कर्म छे, अने जीव ते पण कर्म छे, ते शी रीते ?

३०-पुद्गल परमाणु विभागरूपे परिणमे त्यारे द्वयणुकादि स्कन्धकर्म निपजे, अने जीवपण पोतानो स्वभाव म्हेलीने विभावरूपे परिणमे त्यारे ते पण कर्मरूप थइ पुद्गल कर्मवर्णाने ग्रहे, तेयी जीव पण परमार्थे

સના આવી જગારૂપ પુદ્ગલાનદ હોય પણ મગમિ-  
નદિપણુ ટચ્યુ છે માટે સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને પુદ્ગલા-  
નદિ કહિયે, ૨ આત્માનદિ જીવ તે જીને કેવલ  
આત્મિક આનદ, શુદ્ધ રત્નત્રય વર્મે, તન્મયપણે, સ્વરૂપ  
લીનતાણુ, સમસ્ત વ્યાકુલ્યતા રહિત, સદ્જસ્વભાવ વિલા-  
સિપણારૂપ મુનિ મહાત્માઓને-યોગીશ્વરોને હોય છે

૬૨ પ્ર૦-સદ્ગતિ અને દુર્ગતિ તે શાર્યા યાય છે ? તે વિસ્તા-  
ર્યા સ્પષ્ટ સમજાવો

૩૦-શુભોપયોગે સદ્ગતિ, અને અશુભોપયોગે દુર્ગતિ,  
અશુભોપયોગે સસાર લાભ અને શુદ્ધોપયોગે ઇટલે  
સ્વભાવ પરિણતિણુ તન્મયપણે પરિમણતા મુક્તિ થાય,  
કારણ કે શુભ પ્રકૃતિને ઉદયે જીવના યોગ શુભ  
વતે, તેથી વર્મ હેતુ શુભ ક્રિયા સાધના કરે, તેથી  
પુણ્ય વાવે અને તેથી સદ્ગતિ થાય છે, તથા અ-  
શુભોપયોગે અશુભ કર્મનો ઉદય થતા યોગ અશુભ  
વર્તે, તેથી અશુભ ક્રિયા વિષયાદિ સેવે તેથી પાપ  
વધાય છે, અને તેથી દુર્ગતિ યાય છે, તે માટે પુણ્ય  
પાપ શુભાશુભયોગને આયત છે, અને વર્માવર્મ તે  
શુદ્ધાશુદ્ધ ઉપયોગને આયત છે, અર્થાત્ રાગ, દ્વેષ,  
મોહજનિત અશુદ્ધોપયોગે અવર્મ છે, તેજ મિથ્યાત્વ  
છે, અને અશુદ્ધોપયોગ તે રત્નત્રયરૂપ શુદ્ધાત્મ  
પરિણતિ, વીતરાગભાવ તેજ વર્મ છે, અને તેજ  
સમ્યક્ત્વ છે

૬૩ પ્ર૦-રોગાતક તે શુ ? અથવા રોગ અને આતક ઇટલે શુ ?

गुण, ४ अधोगति, सङ्केशरूप अशातादि दुःख  
आपे ते पापनो गुण, ५ शुभाशुभ कर्मतु आवबु ते  
आस्रवनो गुण, ६ शुद्धोपयोगे शुभाशुभ कर्म आ-  
श्रवनो निरोध ते सवरनो गुण, ७ नर्वा कर्म पूर्व  
कर्मनी साथे मळीने द्वाय ते वधनो गुण, ८ शु-  
भाशुभकर्म, आत्मप्रदेशयी साटन थाय, देशथकी ते  
निर्जरे ते निर्जरानो गुण, ९ आत्मप्रदेशयी सर्वांगे  
कर्म पुद्गलोनो क्षय ते मोक्षनो गुण जाणवो

६९ प्र०—केवा श्रावकने स्वसमय परसमयना जाण कहिये ?

उ०—जीवाजीवादिक नवतत्त्वने यथार्थ जाणे एटले  
जाव निर्जरा, सवर अने मोक्षने उपादेयरूपे जाणी  
आदरे, अने अर्जाव पुण्य, पाप, आस्रव, अने  
वधने हेयरूपे जाणी तेनो त्याग करे तथा नव  
तत्त्वने चार प्रमाणे, साते नये, चार निक्षेप, द्रव्य-  
भाव भेदे, स्याद्वादशैल्लिए षड् द्रव्यादि तेना गुण  
पर्यायना यथार्थ स्वरूप भासन पूर्वक जेणे भले  
प्रकारे जाण्या छे तेने जानी श्रावक कहिये

७० प्र०—कर्ताए कर्म अने क्रियाए वध ते शी रीते ?

उ०—जेवो कर्ता होय तेवु कर्म निपजे, तथा ज्या जेवा  
हेतु त्या तेवी क्रिया थाय, अने ते शुभाशुभ क्रियाए  
शुभाशुभ कर्म वध नीपजे, कहु छे के—

दुहो

कर्ता परिणामी द्रव्य, कर्मरूप परिणाम,  
क्रिया परजायकी फरे, वस्तु एक त्रय नाम

કર્મરૂપ જડ અજીવજ કહેવાય, તે જ્યારે સમ્યક્ત્વ પામે ત્યારે પોતાપણ ઓઢ્યે, પર્યા પોતાને ન્યારો લ્યે અને તેથી તે પરપરાયે અકર્મરૂપ થાય છે, માટે તેને પુદ્ગલકર્મ પુદ્ગલ પ્રત્યક્ષ્યા ઉદયઆત્રિ રહ્યા પણ આત્મપ્રત્યક્ષ્યા ગવા એ ભાવ જાણવો

૬૭ પ્ર૦—ચાર પ્રકારે નવ તત્ત્વનું સ્વરૂપ વિસ્તારથી કહો ?

૩૦—? નામથી એટલે જીવ અજીવ પુણ્ય પાપાદિ નવ તત્ત્વના નામ સૂચથી ગાથાનુસાર જાણે, ૨ ગુણથી એટલે જીવાજીવાદિ નવ તત્ત્વના ગુણ ભેદાદિક અર્થથી જાણે, લક્ષણ, સ્વરૂપ લક્ષણથી એટલે જીવનું લક્ષણ ચેતના, અજીવનું લક્ષણ અચેતનપણુ ઇત્યાદિ લક્ષણ સ્વરૂપે નવ તત્ત્વ ઓઢ્યે, ૪ પરિણામથી એટલે જીવ જીવરૂપે પરિણમે, અજીવ અજીવરૂપે પરિણમે ઇત્યાદિ નવે તત્ત્વ આપ આપરૂપે પરિણમે તે પરિણામથી ચોથો ભેદ જાણવો

૬૮ પ્ર૦—નવે તત્ત્વોનું ઢક લક્ષણ સ્વરૂપ કહો

૩૦—? જીવ અસંખ્યાત પ્રદેશી, અનત ગુણમય તે શુદ્ધ ચેતનાગુણ તે જીવનું લક્ષણ જાણવું, ૨ વર્ણાદિ પાંચ અજીવના ગુણ તે જેમ ધર્માસ્તિકાયનો ગુણ ચલણ સહાયકતા, આકાશાસ્તિકાયનો ગુણ અવગાહન દાન સમર્થતા, કાઢનો ગુણ સમયવર્તના લક્ષણ અને પુદ્ગલાસ્તિકાયનો સડણ, પડણ, નાશ, મિલ્ણ, વિચ્છરણાદિ વર્ણ ગદ્ય રસાદિરૂપ જાણવો, ૩ તથા ઉર્ધ્વગતિ, ઇન્દ્રિયસુખ, જ્ઞાતા આપે તે પુણ્યનો



जीव परिणामे द्रव्य छे, तेने सगे जीवने बुद्धि-  
पूर्वक निज परिणाम देखाया - वादळे ढाकेलो सूर्य  
मेव घटाए आच्छादित छे, तोपण सूर्यप्रभा प्रगट  
अनुमाने करी जाणी लेको दिवस अने रात्रिनो  
विभाग समजी अफे छे, तेयी सूर्य दीटो जेम  
तेम आत्मा पण जिन प्रकृत

परिणामद्वाराए निर्मळ

जेम वृक्ष दिटे अ

आत्मा, सम्यग्दर्श

अनुभवरूपे देखे

छे, एवाज रीते

पणु थाय तेने रु

निज स्वरूपे एकाते

जाण्यो, तेवोज रागद्वेष

स्वरूपाचरण चारित्र प्र

पूआइसु वयसहिय पूण

मोहकोहविहीणो, परिण

ए स्वरूप चोथा गुणठाणेथ

विशुद्धतर, विशुद्धतम यथाये

( ६३ प्रश्न )

७३ प्र०-निर्जरानु स्वरूप, द्रव्ययी तथा  
अने मिथ्यादृष्टिने जेम होय ते

उ०-निर्जरा एटले कर्मनु साटन करवु,

मिथ्यादृष्टिने निर्जरा, आसन्नवन्नयपूर्व

માટે શ્રી જૈન દર્શન, ઉપયોગે તથા અનિયમાને છે જૈન દર્શન શ્રદ્ધાન શુદ્ધોપયોગે છે, અને શુદ્ધોપયોગ આત્મભાવે છે, અનિયમાને છે, અને વીજા યોગે ક્રિયા કર્મ છે, એમ સ્યાદ્વાદ શૈલી પૂર્ણતારૂપ સર્વોત્કૃષ્ટ સર્વોત્તમ રીતે મહા ફલ્યાણદાયક શ્રી જિન-શાસન જયપત્રુ વર્તે છે, તેને હે ચેતન । । । તુ અત્યત આદરપૂર્વક સ્વિકાર ।

૭૧ પ્ર૦—સવરતત્ત્વનુ સ્વરૂપ દ્રવ્યથી અને ભાવથી કહો ?

૩૦—યોગ પ્રત્યયિકુ કર્મને મુનિ તપ સજમાદિકે કરી નિર્જરાવે છે, અને વીજા આપતા કર્મનો રોધ કરે છે, તથા અશુદ્ધોપયોગ પ્રત્યયિક કર્મને રત્નત્રયીરૂપ આત્મિકધર્મને વિપે પ્રણમાવી શુદ્ધોપયોગે કરી આત્મસત્તાને શુદ્ધ કરી કર્મ મળથી મુક્ત થાય છે એમ યોગસવર આરાધક મુનિ, ઉદય આવતા કર્મને નિષ્ફળ કરે, રોકે તે દ્રવ્યસવર, અને ઉપયોગ સવરે કરી મુનિ આત્મસત્તા શોધે એટલે પ્રદેશથી કર્મ ક્ષય કરે તે ભાવસવર, અર્થાત્ યોગ સવર તે દ્રવ્ય અને ઉપયોગ સવર તે ભાવ

૭૨ પ્ર૦—છદ્મસ્થ સમ્યક્દષ્ટિ, પ્રત્યક્ષ સ્વરૂપ કેમ દેખે ?

૩૦—પરોક્ષ પ્રત્યક્ષ અનુભવગોચર અનુમાન પ્રમાણ પ્રતીતે પ્રત્યક્ષ વસ્તુ સ્વરૂપ દેખે એટલે માને, તે આવી રીતે—પોતાના પરિણામ જે શુભાશુભ કર્મ જનિત છે તે રાગદ્વેષદ્વારે, સમ્યક્ બુદ્ધિમાર્ગે તે પરિણામને પોતે યથાર્થ લખે, તે પ્રત્યક્ષ દેખવુ કહિયે તે પરિણામ આત્મદ્રવ્યથી શાથી ઉઠે છે ? તો કે

३०-आत्मद्रव्यमा द्रव्यनी शक्ति ते सम्यग्दर्शन, गुणनो प्रकाश ते सम्यग्ज्ञान, अने पर्यायनु टरणपणु अर्थात् स्थिरता ते सम्यक्चारित्र जाणवु, एमज दर्शन गुणे द्रव्य शक्ति प्रगटे, ज्ञानगुणे गुणो प्रकाशे अने चारित्रगुणे स्थिरता गुण एटले स्वरूप रमणता प्रगटे, वधे

७६ प्र०-उपयोग एटले शु ? ते केटला छे, वगेरे फळ भेद स्वरूप स्पष्ट कहो

३०-चेतनानु शुद्धाशुद्ध परिणमन, तेने उपयोग कहिये ते वे प्रकारे छे, एक शुद्ध अने बीजो अशुद्ध, शुद्धोपयोगे सिद्धिगति एटले मोक्ष थाय, अने अशुद्धोपयोगना वे भेद छे, एक शुभ अने बीजो अशुभ, त्या दान पूजादि परिणाम ते शुभोपयोग कहिये, तेणे करी पुण्यवध थाय, अने तेथी सद्गति पामे, अने हिसादि पापपरिणाम ते अशुभोपयोग कहिये, तेथी पापवध थाय, अने तेथी जीव दुर्गति पामे ( प्र ६८ )

७७ प्र०-पूर्वोक्त शुद्धाशुद्धोपयोग सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि आश्रि केवी रीते होय ? ते समजावो

३०-शुद्धोपयोग सम्यक्त्व पाम्या पछी होय छे, माटे ते सम्यक्दृष्टिने जाणवो, ते चोया गुणठाणाथी बामा सुधी शुभोपयोग मिश्रित होय छे, पछी तेरमे पूर्ण पद थाय छे, अशुद्धोपयोग सेवे ससारी मिथ्यादृष्टि जीवोने होय छे, ते मन्ये मिथ्यादृष्टिने

દષ્ટિને સમરપૂર્વક દ્રવ્યભાવનિર્જરા હોય, કેમજે તેને જ્ઞાનશક્તિ અને પ્રાગ્યતુ મલ છે તેથી, ત્યા જ્ઞાનશક્તિ તે શુદ્ધ સ્વરૂપનો અનુભવ, અને પ્રાગ્યતુલ તે અશુદ્ધોપયોગતુ નિવારણ, હવે જ્ઞાનોપયોગે ભાવ નિર્જરા શી રીતે થાય ? તે દેસાડે છે —રાગ, દ્વેષ મોહાદિ મલીનપરિણતિને ઘટાટવી તે ભાવ નિર્જરા અને કર્મવર્ગણાતુ ઘટાટવુ થાય ત્યા દ્રવ્ય નિર્જરા જાણવી, ઇટલે જે ઉદય આપે તે નિર્જરે, તેવા પાઠા ન પ્રાય, ત્રય જતપ અને નિર્જરા ઘણી, એવી રીતે જ્ઞાનશક્તિયે વૈરાગ્યતુલે સમ્યગ્દષ્ટિ, દ્રવ્ય ભાવ નિર્જરા કરે છે, મિથ્યાદષ્ટિને કર્મ નિર્જરા અલ્પ અને ફરી ત્રય ઘણો થાય છે માર્ગાનુસારી સન્મુખભાવી પળ કર્મ નિર્જરા અવસરે અલ્પ ત્રય કરે, તોપળ વસ્તુગતે સત્તા ઇટલે કર્મ શક્તિની નિર્જરા તો સમ્યગ્દષ્ટિને જ થાય છે ( મન્ન પા ૬૪ )

૭૪ પ્ર૦—આત્મપ્રદેશે ગુણ પર્યાયની ઘટના શી રીતે છે ?

૩૦—આત્માના અસરહ્યાત પ્રદેશ છે, એકેક પ્રદેશે અનતા જ્ઞાનાદિ ગુણો, અનત શક્તિ છે, વર્ણી એકેક પ્રદેશે ઉપયોગ પલટણરૂપ જ્ઞાનાદિ ગુણોના અનત પર્યાયો છે, આવી શુદ્ધાત્મપ્રદેશે ઘટના જાણવી, અને અશુદ્ધ આત્મપ્રદેશે પૂર્વોક્ત ગુણ પર્યાયો એકેક પ્રદેશે રહેલી અનત કર્મ વર્ગણાયુક્ત છે, તેથી અશુદ્ધ સંસારીપણે વતે છે ( પા પ્ર ૬૫ )

૭૫ પ્ર૦—દર્શન, જ્ઞાન, ચારિત્રની પ્રાપ્તિ, આત્માના દ્રવ્ય ગુણ પર્યાયથકી સિદ્ધ કરો

छे के चढी गयो छे, ते जाणवा माटे ते टोपमाथी  
एक चोखो तपासी जोता सर्वनी खात्री थाय छे,  
तेम लक्षणे लक्षित सम्यग्दर्शननु स्वरूप जाणवु

७९ (पा प्र ७०) प्र०—सम्यग्दृष्टि देशविरति तथा सर्वविरति  
महात्माओ सम्यग्दर्शनबडे आत्मानो अनुभव केवी  
रीते करे ?

उ०—जेम वस्तु विचारता, व्यान धरता मन विश्राम पामे  
छे, रस स्वाद सुख उपजे छे, परिणाम ठरे छे, ते  
अनुभव प्रत्यक्ष जाणवु, जेम साकरना एक गाग-  
टाने चाखी जोता हजार मण साकरनो अनुभव  
थाय छे, तेम सम्यग्दृष्टि जीव असे आत्माने वळी  
केवळी सदृश प्रत्यक्ष अनुभवे तेथीज कह्यु छे जे -

असे होय इहा अविनाशी पुद्गल तमासीरे,  
चिदानंद घन सुजश विलासी, केम होय जगनो आसीरे  
ए गुण वीरतणो न विसारु, सभारु दिन रातरे,  
पशु टाळी सररूप करे जे, समकितने अवदातरे ?

८० (पा प्र ७०) प्र०—मुनिने सम्यग्दर्शननाबळे आत्मा स्वरूप  
प्रत्यक्ष अनुभवगोचर केवी रीते होय ?

उ०—ज्या द्रव्य गुण पर्याय एकीभूत अभेद रत्नत्रयरूपे  
मुनि प्रणमे, त्या स्वरूप निजपद कद प्रत्यक्ष देखे,  
स्वरूप रमण सुखास्वादन अनुभवे

८१ प्र०—दर्शन अने ज्ञानमा मूळ शु फेर छे ? तथा छद्म-  
स्थ सम्यग्दर्शनी अने केवळदर्शनी ए वेना देखावामा  
शो फेर ?

શુભ ક્રિયા હોય પણ શુભોપયોગ નહિ, કેમજે શુભોપયોગ તો શુદ્ધના ઘરનો છે, તે તો સમ્યગ્દષ્ટિને અણદ્વચ્છકરૂપે નિર્વૈકલ્યભાવે હોય છે, અને મિથ્યાત્વને શુભોપયોગ શુભ ક્રિયારૂપ, શુભાચારરૂપ હોય પણ નિયાણારૂપ એટલે પૈત્રલિકા ગુરુ ઝાઝારૂપ હોય, તે માટે અશુભ જાણવો ( પ્રત્યન્તરમા પ્ર ૬૧ )

૭૮ પ્ર૦-સમ્યગ્દર્શનનુ સ્વરૂપ અનુમાને તથા લક્ષણે સિદ્ધ કરો

૩૦-શ્રી વીતરાગ દેવના વચનની દૃઢ પ્રતીતિ એટલે શ્રી જિને ભાર્યુ તેજ સત્ય તે કદાપિ કાલે અન્યથા ન હોય, મહે મારી બુદ્ધિમા નથી આવતુ તોપણ વીતરાગ દેવને મિથ્યા કથન કરવાનુ કહૂ પણ પ્રયોજન દિસતુ નથી, જેવુ પોતે કેવલજ્ઞાને દીઠુ છે, તેવુજ યોગ્ય પ્રાણિયોને કેવલ હિત બુદ્ધિએ પરમ-કરુણાભાવે પ્રકાશ્યુ છે, માટે સુદ્ધની અળી જેટલા પ્રદેશમા અનતા જીવો પણ તેજ વચન પ્રતીતિરૂપ આગમ અને અનુમાન પ્રમાણે સમ્યક્ત્વી માને છે તેવીજ રીતે આત્મા પણ સાક્ષાત્ દીઠો માને છે, વઠ્ઠી જીવ ચેતના લક્ષણવત છે, ચેતના તે સુખ દુઃખનુ ભાન, અને સુખ દુઃખનો અનુભવ વેદનીય કર્મ દ્વારે પ્રત્યક્ષ છે, તેથી તે લક્ષણે સુખ દુઃખનો જાણનાર આત્મા છે, એમ પ્રતીતિ કરે છે એમ અશ પ્રત્યક્ષે સર્વ પ્રત્યક્ષ થયો, જેમ એક મોટા ટોપમા એક ટાકી માત રધાયેલ તૈયાર થયો છે, તે કાચો

छे के चढी गयो छे, ते जाणवा माटे ते टोपमार्थी  
एक चोखो तपासी जोता सर्वनी खात्री याय छे,  
तेम लक्ष्णेलक्षित सम्यग्दर्शननु स्वरूप जाणवु

७९ (पा प्र ७०) प्र०—सम्यग्दृष्टि देशविरति तथा सर्वविरति  
महात्माओ सम्यग्दर्शनवडे आत्मानो अनुभव केवी  
रीते करे ?

उ०—जेम वस्तु विचारता, ध्यान धरता मन विश्राम पामे  
छे, रस स्वाद सुख उपजे छे, परिणाम ठरे छे, ते  
अनुभव प्रत्यक्ष जाणवु, जेम साकरना एक गाग-  
टाने चाखी जोता हजार मण साकरनो अनुभव  
याय छे, तेम सम्यग्दृष्टि जीव असे आत्माने वळी  
केवळी सदृश प्रत्यक्ष अनुभवे तेथोज कहु छे जे -

असे होय इहा अविनाशी पुद्गल तमासीरे,  
चिदानंद घन सुजश विलासी, केम होय जगनो आसीरे  
ए गुण वीरतणो न विसारु, सभारु दिन रातरे,  
पशु टाळी सररूप करे जे, समकितने अवदातरे ?

८० (पा प्र ७०) प्र०—मुनिने सम्यग्दर्शनना बळे आत्मा स्वरूप  
प्रत्यक्ष अनुभवगोचर केवी रीते होय ?

उ०—ज्या द्रव्य गुण पर्याय एकीभूत अभेद रत्नत्रयरूपे  
मुनि प्रणमे, त्या स्वरूप निजपद कद प्रत्यक्ष देखे,  
स्वरूप रमण सुखास्वादन अनुभवे

८१ प्र०—दर्शन अने ज्ञानमा मूळ शु फेर छे ? तथा छद्म-  
स्थ सम्यग्दर्शनी अने केवळदर्शनी ए वेना देखावामा  
शो फेर ?

શુભ ક્રિયા હોય પણ શુભોપયોગ નહિ, કેમજે શુભોપયોગ તો શુદ્ધના ઘરનો છે, તે તો સમ્યગ્દષ્ટિને અણદ્વચ્છક્રૂરૂપે નિર્મટક્રમાપે હોય છે, અને મિથ્યાત્વને શુભોપયોગ શુભ ક્રિયારૂપ, શુભાચારરૂપ હોય પણ નિયાણારૂપ ઇટલે પૌંદ્રલિકા સુરત પ્રાઠારૂપ હોય, તે માટે અશુભ જાણવો ( પ્રત્યન્તરમા પ્ર ૬૧ )

૭૮ પ્ર૦-સમ્યગ્દર્શનતુ સ્વરૂપ અનુમાને તથા લક્ષણે સિદ્ધ કરો

૩૦-શ્રી વીતરાગ દેવના વચનની દૃઢ પ્રતીતિ ઇટલે શ્રી જિને ભાસ્થુ તેજ સત્ય તે કદાપિ કાલે અન્યથા ન હોય, મહે મારી બુદ્ધિમા નથી આવતુ તોપણ વીતરાગ દેવને મિથ્યા કથન કરવાતુ કહૂ પણ પ્રયોજન દિસતુ નથી, જેવુ પોતે કેવલજ્ઞાને દીઠુ છે, તેવુજ યોગ્ય પ્રાણિયોને કેવલ હિત બુદ્ધિણુ પરમકરુણાભાવે પ્રકાશ્યુ છે, માટે સુઝની અણી જેટલા પ્રદેશમા અનતા જીવો પણ તેજ વચન પ્રતીતિરૂપ આગમ અને અનુમાન પ્રમાણે સમ્યક્ત્વી માને છે, તેવીજ રીતે આત્મા પણ સાક્ષાત્ દીઠો માને છે, વઠ્ઠી જીવ ચેતના લક્ષણવત છે, ચેતના તે સુખ દુઃખતુ માન, અને સુખ દુઃખનો અનુભવ વેદનીય કર્મ દ્વારે પ્રત્યક્ષ છે, તેથી તે લક્ષણે સુખ દુઃખનો જાણનાર આત્મા છે, એમ પ્રતીતિ કરે છે એમ અશ પ્રત્યક્ષે સર્વ પ્રત્યક્ષ યયો, જેમ એક મોટા ટોપમા એક ઝાઢી માત રવાયેલ તૈયાર થયો છે, તે કાચો



तथा काययोगे षट्कायनी दयारूपे जयणापूर्वक  
प्रवर्तन छे जयचरेजयचिद्धे, इत्यादि

८३ प्र०—मुनि, रत्नत्रयना शुद्धाराधनयी जन्म जरा अने मर-  
णना भय शी रीते टळे ?

उ०—सम्यग्दर्शनयी घणा जन्म मटे, सम्यग्जानयी जरा  
दु ख जे वेदना ते मटे, तथा सम्यग्चारित्र गुणे  
मरण भय टळे, एम त्रण गुणे जन्म जरा मरणना  
भय मटे

८४ (७१) प्र०—आगमप्रमाण, अनुमानप्रमाण, उपमाप्रमाण, अने  
प्रत्यक्षप्रमाणे, आत्मानी सिद्धि दाखवो, अने ते  
प्रत्येक प्रमाण मानता जे फळ याय ते कहो

उ०—१ आगमप्रमाणे, षड्द्रव्य, षट्कायस्वरूपे जे वीत-  
रागे भाख्या छे ते वचनोने तहत्ति करी मानवा,  
पण सदेह के दुक्तायुक्तपण न करवु, ते मानता  
आत्माने प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन वर्मनी पुष्टि थाय,  
२ अनुमानप्रमाणे लक्ष्य लक्षणो निर्धार थाय, जेम  
मुख दु ख वेदता आत्मानु चेतना लक्षण जणाय  
छे, तथा जेम वृष दिठे अग्नि होयानी प्रतीति  
थाय छे, अहि आत्माने वस्तुगते अनुभवीने वस्तु-  
ना गुणनो अशे प्रत्यक्ष अनुभव थाय, ३ उपमा  
कहेवी ते, जेम “ आजने काळे सम्यक्त्व पाम्यो  
ते जाणे केवलजान पाम्यो ” एम, ए मानता  
आत्माने विनयगुणनी पुष्टि थाय, ४ प्रत्यक्ष प्रमाणे  
जेवा परमात्माए कह्या छे, तेवाज अत्रे पुण्य पापना

३०—उद्भस्थने प्रथम देखतु एटले दर्शन उपयोग अने पठी जाणतु एटले ज्ञानोपयोग होय, उउमव्याण दसणपुवनाण ॥ दर्शन ते सामान्यप्रमोत्र, अने ज्ञान ते विशेषप्रमोत्र जाणतो, दर्शन ते सामान्याप्रमोत्र छे आत्काररूप प्रतिभास वाय थोटो काल रहि पछे ज्ञान माहे मले ज्ञान विशेषप्रमोत्र छे धणो काल रहे ते माटे आत्मदर्शन जेणे कर्यु ' तेणे मुद्यो भयभय रूपर " एम श्रीयशोपिजयजीए पण कर्यु छे तथा " प्रवचन अजन जो सद्गुरु करे तो देखे परमनिज्ञान जिनेशर एवु श्री लाभानदर्जीए पण कर्यु छे उद्भस्थ सम्यग्दृष्टि आत्मस्वरूपने देखे, पण साक्षात् करामत्कप्रत् एटले हायनी हयेळीमा रहेला पाणीमाजे हयेळीनी रेखाओ स्पष्ट देखाय तेम साक्षात् असख्यात प्रदेशी, अरूपी आत्माने केवळदर्शनी ज देखे, पण उद्भस्थ तो प्रतीते, अनुमाने अनुभवे, स्वरूपे देखे एटले जिनवचनप्रतीते आत्मद्रव्य स्वरूप दिठु, अनुमाने चेतनालक्षणगुणे प्रत्यक्ष दिठो, अनुभवे ते परिणमनपर्यायरूपे अने स्वरूपे ते अभेदरत्नानयात्मकनिजपदकद दिठो ए रीते आत्मस्वरूपतु दर्शन उद्भस्थ सम्यग्दृष्टिने सभवे छे

८२' प्र०—मुनिने त्रणयोग रत्नत्रयरूपे केवी रीते परिणमे छे ?

३०—मनयोगे दर्शन श्रद्धानरूपे छे, जे वस्तुना निर्वास्थी चळे नहि, वचनयोगे ज्ञान भणवु, यथार्थ उपदेश करे छे, सत्य प्ररूपणी ज्ञानरूप परिणमन होय,

तथा काययोगे षट्कायनी दयारूपे जयणापूर्वक  
प्रवर्तन छे जयचरेजयचिह्ने, इत्यादि

८३ प्र०-मुनि, रत्नयना शुद्धाराधनयी जन्म जरा अने मर-  
णना भय शी रीते टळे ?

उ०-सम्यग्दर्शनयी घणा जन्म मटे, सम्यग्ज्ञानयी जरा  
दु ख जे वेदना ते मटे, तथा सम्यग्चारित्र गुणे  
मरण भय टळे, एम ण गुणे जन्म जरा मरणना  
भय मटे

८४ (७१) प्र०-आगमप्रमाण, अनुमानप्रमाण, उपमाप्रमाण, अने  
प्रत्यक्षप्रमाणे, आत्माणी सिद्धि टाखवो, अने ते  
प्रत्येक प्रमाण मानता जे फळ याय ते कहो

उ०-१ आगमप्रमाणे, षड्द्रव्य, षट्कायस्वरूपे जे वीत-  
रागे भाख्या छे ते वचनोने तहति करी मानवां,  
पण सदेह के दुक्तायुक्तपण न करवु, ते मानतां  
आत्माने प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन वर्मनी पुष्टि थाय,  
२ अनुमानप्रमाणे लक्ष्य लक्षणे निर्धार थाय, जेम  
मुख दु ख वेदता आत्मानु चेतना लक्षण जणाय  
छे, तथा जेम वृद्ध दिठे अग्नि होयानी प्रतीति  
थाय छे, अहि आत्माने वस्तुगते अनुभवीने वस्तु-  
ना गुणनो अशे प्रत्यक्ष अनुभव थाय, ३ उपमा  
कहेवी ते, जेम “ आजने काळे सम्यक्त्व पाम्यो  
ते जाणे केवलज्ञान पाम्यो ” एम, ए मानता  
आत्माने विनयगुणनी पुष्टि याय, ४ प्रत्यक्ष प्रमाणे  
जेवा परमात्माए कख्या छे, तेराज अने पुण्य पापना

प्रत्यक्ष फल देगीं छीं, इत्यादि जाणतु, ए मानता आत्माने भवैराग्यता गुणनी पुष्टि याय, विषय कषायकी निवर्ते एणी रीते चार प्रमाणे आत्माने गुण नीपजे

८५ प्र०—त्रिविध कर्मरोग कयो ?

उ०—१ द्रव्यकर्म ते आठ कर्मनी वर्गणा, २ भावकर्म ते अशुद्धोपयोग एट्ठे आत्मानी रागद्वेषादि अशुद्ध परिणति, ३ नोकर्म ते औदारिकादि पाच शरीर, द्रव्यकर्मनी समीपे कारण कार्यभावे रूढा माटे तेने नोकर्म कहिये, ते त्रण कर्मरोगना वैद्य श्री परमात्मा तथा गणधरादि महात्माओ छे, तेओ पण त्रिविध औषधरूप त्रण प्रकारनी देशना आपे छे—  
१ यथार्थवाद, २ विधिवाद, ३ चरितानुवाद, तेनो अर्थ—१ यथार्थवाद देशनामध्ये जीवाजीवादिक स्वरूप वार्थी, परिणम्या तेथी वस्तु तत्त्वनो प्रकाश थाय, तेणे करी, भावकर्म रोग मटे, रागद्वेषादि विपर्यासपणु टळे, अजाननो उच्छेद थाय, २ विधिवाद देशना मध्ये देशविरतिपणु, सर्वविरतिपणु इत्यादि क्रियानो आदर, शुभोपयोगे आचरतो, प्राणीनो द्रव्यकर्म रोग नाबुद थाय, अनादि कर्मकाट उतरे, आत्मप्रदेश निर्मळता निपजे, तेथी जीवने घणी शांति प्रवर्ते, ३ तथा चरितानुवाद देशना मध्ये शरीर सबधी काम भोग विषयकषायादि मळिनताडु निवर्तन थाय, जेम जडुस्वामी, सुदर्शन

शेठ, मेतार्यजी आदि महात्माओना चारित्र साभळे थके परम वैराग्य ज्ञात रस प्रगटे, तेथी नोकर्मनो रोग टळे

८६ प्र०-दर्शनादि अनंत चतुष्क प्राप्तिना कारण तथा स्थान कहे

उ०-१ वर्म रूचिर्या साभळवो, तथा ज्ञानाम्यासमा उद्यम रूचि होय तेदलार्थी सम्यग्दर्शन गुण प्रगटे, २ तत्त्वातत्त्वगवेषक बुद्धि होय तेथी सम्यग् ज्ञानगुण प्रगटे, ३ पाच इन्द्रिय विषय विकार, क्रोधादि कषाय, पाच प्रमाद इत्यादिनी जे त्याग बुद्धि होय तेथी चारित्रगुण निपजे, ४ वस्तुगते, स्वरूपानुभव लग्नता, तद्धोनता होय तेथी वीर्यगुण प्रगटे, हवे ते चारेना स्थान कहे छे -दर्शनगुणनु स्थान चक्षु, ज्ञानगुणनु स्थान हृदय, चारित्रगुणनु स्थान चरण, अने उत्साह इच्छादिरूप वीर्यगुणनु स्थान बाहू छे

८७ प्र०-अहिंसानु स्वरूप तथा तेना विविधभेदो दृष्टात सहित समजावो उ० मूल ज्ञानी हस्तलिखित प्रतिमा हिंसाना भेदो सत्रधी प्रश्न छे स्वरूप हिंसा, अनुबध हिंसा, द्रव्य हिंसा, भाव हिंसा, बाह्य हिंसा, परिणाम हिंसा, योग हिंसा, इत्यादि हिंसाना घणा भेद छे साधुजी नदी उतरे छे पण मोक्षवर्ति (मुख्यताए) हिंसाना परिणाम नथी तेथी ते स्वरूप हिंसा जाणवी तथा सम्यग्दृष्टिने देव पूजा, गुरुवदना, साधुने आहारदान इत्यादि कार्ये हिंसा अल्पप्रवरूप छे ते माटे ते स्वरूप हिंसा कहेवी,

रागद्वेष परिणामे जे मद्बुद्धियो उक्ताय जांघोने हणे ते तस्तमअव्यवसाये महाकर्मवध करे तेना अशुभ विपाक उदये आपे ते अनुग्रह हिंसा जाणगी अनुपयोगे द्रव्यहिंसा अने तीन परिणामे भाव हिंसा वाय स्वरूप हिंसामाहे ग्राह्य हिंसा तथा योग हिंसा भळे छे तथा एक जीवमे हिंसा अल्प पण उदयकाले दुःख विशेष पामशे ते शोणे ? दुष्ट अध्य-  
 प्रसायना अभावे उदय आख्या कर्म निष्फल करे छे द्रव्य प्रहारीनी पेटे इत्यादि चौभगीजो अहिंसा अष्टक ग्रन्थमव्ये विस्तारे छे यथा एकस्यात्पाहिंसा ददाति काले तथा फलमनल्प अन्यस्यमहाहिंसा स्वल्पफला-  
 भवतिपरिपाके इत्यादि ॥

३०-१ स्वरूप अहिंसा, ते जीववध न करवो, तेनु वीजु नाम बाह्य अहिंसा के योग अहिंसा पण छे, २ हेतु अहिंसा ते जयणाए प्रवर्तन, छकाय जीवनी रक्षा प्रवृत्ति, ३ अनुवध अहिंसा ते रागद्वेषादि म-  
 लिन अव्यवसाय, तीव्र विषय कषायना परिणामे हिंसानो त्याग जेथी फळ विपाकरूपे आकरो कर्म-  
 वध न पडे ते, ४ द्रव्यअहिंसा एटले अनुपयोग हिंसानो त्याग, ५ परिणाम अहिंसा के भाव अ-  
 हिंसा ते उपयोग पूर्वक परिणामीने इरादायी जे हिंसा करवी तेनो त्याग इत्यादि अनेक भेद जाणवा, हवे क्रिया फळ भेदरूप चौभगी देखाडे छे-१ हिंसा अल्प, फळ विपाक अल्प, २ हिंसा अल्प, फळ विपाक तीव्र, ३ हिंसा तीव्र, फळ विपाक अल्प,

४ हिंसा तीव्र, अने फळ विपाक तीव्र, ए भेद  
जीवना अध्यवसाय भेद विपेशे, विपाक फळनो पण  
भेद जाणवो, अहि जमाली, द्रढप्रहारी, चिलाती पुत्र  
कुर्गडुजा इत्यादि दृष्टातो यथासभवे भाववा

८८ प्र०-इच्छादिक ऋण योगानु स्वरूप समजावो

उ०-१ इच्छायोग ते शुभ करणी व्रतादि आदरवानी  
उत्सह इच्छा, दश प्रकारे यतिधर्म आदरवानी इच्छा  
२ शास्त्रयोग ते हेय, ज्ञेय अने उपादेय मध्येर्था  
उपादेय ते अर्गीकार करवु ते प्रमाणे शास्त्रानुसार  
विधिपूर्वक व्रतादि पाळवु ते, ३ सामर्थ्ययोग ते  
कोइ आत्मा, ज्ञान अने वैराग्यनी प्रकळ शक्तिये  
अनंत काळ भोगववा योग्य जे कर्म तेने योडा  
काळमा भोगवी क्षय करे, योगदृष्टिसमुच्चय ग्रन्थे  
ऋण योगनी व्याख्या करी छे श्री गजसुकुमालजीनी  
पेठे, कहु छे जे —

दुहा

क्रियायोग अभ्यास हे, फळ हे ज्ञान अग्रध,  
दोनकु ज्ञानी भजे, एकमति मतिअव १  
इच्छा शास्त्र समर्थता, निविध योग हे सार,  
इच्छा निज शक्ति करी, विकल योग व्यवहार २  
शास्त्रयोग गुणठाणको, पूरण विधि आचार;  
पद अर्तात अनुभव कहुओ, योग तृतीय विचार ३  
रहे यथावळ योगमे, ग्रही सकळ नय सार,  
भावजैनता सो लहे, चहे न सिध्याचार ४

८९ प्र०—द्रव्य, गुण, पर्याय, शार्दा जगड्या छे ?

उ०—द्रव्य, ज्ञानावर्णादि कर्मना आवरणे, तथा गुण, रागद्वेष विभावपरिणतिष्ठ, अने पर्याय, मनोयोग कर्पनाए विकारभायने पाम्या छे

९० प्र०— मति तथा श्रुतज्ञानी अने अज्ञानी जे जिनवाणी साभळे तेने शी रीते परिणमे ?

उ०—मति अज्ञानीने निरुल्लपरूपे तथा लामडोळपणे परिणमे, तथा मतिज्ञानीने निर्विकल्पपणे तथा निर्धारितारूपे परिणमे, श्रुत ज्ञानीने वैराग्यरूपे तथा नास्तिकपणे परिणमे, श्रुत अज्ञानीने विषयरूप तथा नास्तिकरूपे परिणमे, एटले (माटे) सम्यग्दृष्टि जीवो जिनवाणी साभळवाना अधिकारी जाणवा

९१ प्र०—जीव कर्म साधे केवी रीते मळेल छे ? ते दृष्टात सहित समजावो

उ०—द्रव्यार्थिकनये जीव, तुवीमृत्तिका न्याये कर्म सगाधे मळेल छे, एटले जेम तुबडी उपर माटीनो थर लाग्यो होय पण तुबडीनी अदर कई बगाड न होय तेम आत्माने कर्मनो सबव जाणवो, तथा पर्यायार्थिकनये आत्मा, कर्म सगाधे खीरनीरपरे, एकरूपे लोलिभूत थयो थको चतुर्गति भ्रमण करे छे

९२ प्र०—सोळ सज्ञा ते कइ अने तेमार्थी कया जीवने के-टली होय ते कहो ?

उ०—१ आहार, २ भय, ३ भैयुन, ४ परिग्रह, ५ क्रोध, ६ मान, ७ माया, ८ लोभ, ९ ओघ, १० लोक,



११ सुख, १२ दुःख, १३ मोह, १४ वितिगिच्छा,  
१५ शोक, १६ वर्म, ए सोळ सज्ञाओमायी पेहेली  
दस सज्ञा एकेन्द्रियने, तथा ओघ सिवाय बाकीनी  
पदर वेन्द्रियादिकने होय अने पचेन्द्रियने सोळे  
सज्ञा होय

९३ प्र०—क्रोधादि दोषोनी मुख्यता जावमेद विशेषताए कहो

उ०—चारगतिमा, क्रोध, नरकमा, मान मनुष्यमा, माया  
तिर्यचमा अने लोभ देवगतिमा मुख्य होय छे, हवे  
मनुष्य जातिमा क्रोध रजपुतने, मान क्षत्रियादि  
कुळवानने, माया गणिका तथा वणिकने, लोभ  
ब्राह्मणने, राग स्नेही मित्रादिने, खेद तथा द्वेष ते  
कायर क्लेशी, अदेखा, तथा दीनदुःखीआ सोगीने  
होय, शोक जुगारीने, चिन्ता चोरनी माताने, भय  
ते कायरने तथा कृपणादिने विशेष होय

९४ प्र०—वर्म अने कर्म विषे यथायोग्य खुलासो करो

उ०—धर्म ते आत्मभावे शुद्धोपयोगे होय, अने कर्म ते  
अशुद्धोपयोगे करणी क्रियाए तथा शुभाशुभभावे  
भवितव्यताए याय, कर्म ते क्रियाए अने धर्म ते  
अक्रियारूपे होय जेवी शुद्धोपयोगनी तीव्रता तेवी  
धर्मनी वृद्धि जाणवी

९५ प्र०—जिनना चार निक्षेपाना स्थान शरीरमा ज्या छे ?

उ०—नाम जिननु स्थान जीभमा छे, स्थापना जिननु चक्षुमा,  
द्रव्यजिननु मनोयोगमा, केम जे श्रद्धा मनमव्ये छे  
तेयी, अने भावजिननु स्थानक हृदयमा छे

८९ प्र०-द्रव्य, गुण, पर्याय, शारीर जगज्या छे ?

उ०-द्रव्य, जानापरणीदि कर्मना आरणे, तथा गुण, रागद्वेष विभावपरिणतिए, अने पर्याय, मनोयोग कपनाए विकारभाएने पाम्या छे

९० प्र०- मति तथा श्रुतज्ञानी अने अज्ञानी जे जिनवाणी साभळे तेने शी रीते परिणमे ?

उ०-मति अज्ञानीने विरक्तपरूपे तथा आमडोळपणे परिणमे, तथा मतिजानीने निविरक्तपरूपे तथा निर्धारितारूपे परिणमे, श्रुत ज्ञानीने वैसागरूपे तथा आस्तिकपरूपे परिणमे, श्रुत अज्ञानीने विषयरूप तथा नास्तिकरूपे परिणमे, एटले (माटे) सम्यग्दृष्टि जीवो जिनवाणी साभळवाना अधिकारी जाणवा

९१ प्र०-जीव कर्म साथे केवी रीते मळेल छे ? ते दृष्टात सहित समजावो

उ०-द्रव्यार्थिकनये जीव, तुवीमृत्तिका न्याये कर्म संगाथे मळेल छे, एटले जेम तुबडी उपर माटीनो थर लाग्यो होय पण तुबडीनी अदर कई बगाड न होय तेम आत्माने कर्मनो सबव जाणवो, तथा पर्यायार्थिकनये आत्मा, कर्म संगाथे खीरनीरपरे, एकरूपे लोलिमूत ययो यको चतुर्गति भ्रमण करे छे

९२ प्र०-सोळ सजा ते कइ अने तेमाथी कया जीवने केटली होय ते कहो ?

उ०-१ आहार, २ भय, ३ मैथुन, ४ परियह, ५ क्रोध, ६ मान, ७ माया, ८ लोभ, ९ ओघ, १० लोक,

११ सुख, १२ दुःख, १३ मोह, १४ वित्तिगिच्छा,  
१५ शोक, १६ वर्म, ए सोळ सज्ञाओमार्था पेहेर्ली  
दस सज्ञा एकेन्द्रियने, तथा ओघ सिवाय वाक्कीनी  
पदर वेन्द्रियादिकने होय अने पचेन्द्रियने सोळे  
सज्ञा होय

९३ प्र०—क्रोधादि दोषोनी मुख्यता जावभेद विशेषताए कहो

उ०—चारगतिमा, क्रोध, नरकमा, मान मनुष्यमा, माया  
तिर्यचमा अने लोभ देवगतिमा मुख्य होय छे, हवे  
मनुष्य जातिमा क्रोध रजपुतने, मान क्षनियादि  
कुळवानने, माया गणिका तथा वणिकने, लोभ  
ब्राह्मणने, राग स्नेही मित्रादिने, खेद तथा द्वेष ते  
कायर क्लेशी, अदेखा, तथा दीनदुःखीआ सोगीने  
होय, शोक जुगारीने, चिन्ता चोरनी माताने, भय  
ते कायरने तथा कृपणादिने विशेष होय

९४ प्र०—धर्म अने कर्म विषे यथायोग्य सुलासो करो

उ०—धर्म ते आत्मभावे शुद्धोपयोगे होय, अने कर्म ते  
अशुद्धोपयोगे करणी क्रियाए तथा शुभाशुभभावे  
भवितव्यताए याय, कर्म ते क्रियाए अने धर्म ते  
अक्रियारूपे होय जेवी शुद्धोपयोगनी तीव्रता तेवी  
धर्मनी वृद्धि जाणवी

९५ प्र०—जिनना चार निक्षेपाना स्थान शरीरमा क्या छे ?

उ०—नाम जिननु स्थान जीभमा छे, स्थापना जिननु चक्षुमा,  
द्रव्यजिननु मनोयोगमा, केम जे श्रद्धा मनगव्ये छे  
तेयी, अने भावजिननु स्थानक हृदयमा छे

૧૬ પ્ર૦—દ્રવ્યેન્દ્રિય તથા માનેન્દ્રિયનો ભેદ સમજાવો તથા તે શાયી ભરેલ છે ? તે કહો

૩૦—દ્રવ્યેન્દ્રિય તે આકાર વિશય જાણતી તે મઠ્ઠ, મૂત્ર, રુધિર, માસાદિ અશુભ પુદ્ગલ્યાં ભરી છે, માનેન્દ્રિય તે ઇન્દ્રિયદ્વારા ઉપલબ્ધ વિકારી જ્ઞાન તે રાગદ્વેષાદિ વિકારોથી ભર્યું છે

૧૭ પ્ર૦—આહારાદિ ચાર સજ્ઞાનુ સ્વરૂપ સવિસ્તર કહો

૩૦—૧ આહારસજ્ઞાવર્તી જીવ અનાદિકાલનો પુદ્ગલ શ્વાન-પાનાદિ વાસનાથી નિરતર ભરેલો અતૃપ્ત વર્તે છે, ૨ ભયસજ્ઞાણ ચારે ગતિમા સદા કપતો રહે છે, ૩ મૈથુનસજ્ઞાણ ઇન્દ્રિય વિષયમિલાષિપણે ભમતો ફરે છે, ૪ પરિગ્રહસજ્ઞાણ ધન, સ્ત્રી, પુત્રાદિની નિરતર મમતાણ મેઢવુ મેઢવુ કરી રહ્યો છે, તેણે કરીનેજ સદા કષાયતાપે તપેલો, સસારમા ઢોકઢાની પેટે સીજાય છે, છતા સુખ માની રહ્યો છે, ૫ ચાર સજ્ઞામધ્યેથી પહેલી આહારસજ્ઞા તે વેદનીય કર્મ-જનિત છે, શેષ ત્રણ મોહનીયજનિત છે, વઢી આ-હારસજ્ઞાણ શરીરપરત્વે હિંસાદિ અનેક પાપકર્મ હેતુ પ્રવર્તે છે, હિંસાથી કર્મો ઘણા થાય છે, ણથી પાપત્રય વધે છે, અને તેથીજ અશાતા વેદનીય પ્રવઢ પામે છે, તથા ભયસજ્ઞાણ કલ્પના કર્મયોગે વ્યક્તાવ્યક્તકર્મ વધાય છે, તથા મૈથુનસજ્ઞાણ વિષ-યના અને પરિગ્રહસજ્ઞાણ કષાય વૃદ્ધિના ઘણા તીવ્ર કર્મ વધાય છે, ૫મ્ ચારને જોરે જીવ અધોગતિણ

जाय छे, ससार परिभ्रमण घणो थाय छे, वर्डी  
 यीजी रीते विचारीए तो आहारसज्ञाए शरीरपुष्टि  
 तेणे करी हिंसक प्रवृत्ति, तेणे करी दुख प्राप्ति,  
 तेयी जातध्याननी वृद्धि तेयी दुर्गतिमा अनतोकाळ  
 जीव भमे छे, माटे उत्तम जीवोने आहार अने  
 निद्रा अल्पज होय छे, एमज भयसज्ञाए कल्पना-  
 जाळ वधे छे, तेयी रागद्वेषादि मलिनपरिणाति ववे  
 छे, तेयी अष्टकर्मनो निविडनव याय छे, चतुर्गति-  
 भ्रमण वारवार याय छे, तेमज भैयुनसज्ञाए विषय  
 सेवे, तेयी पोताना रत्नत्रयी गुणने आवरे, तेयी  
 जीव ससारमा सर्वेन हीणअकल, मूढ, दरिद्री ययो  
 थको घणी अशाता सर्वेन पामे, एवी रीते  
 परिग्रह सज्ञाए कषायवध घणो याय, तेयी ससार  
 दीर्घ थाय, एम आ ससारना मूळ हेतुरूप जीवने  
 आ महा बाधककारी अनादिकाळनी लागेली भव-  
 वासना टाकणोरूप चार सज्ञाओ छे, तेने जेम बने  
 तेम उत्तम जीवे जान ने वैराग्य शक्तिये, परमात्मा-  
 ना शरणे जइने वश करवानो प्रयत्न करवो, ए  
 चारमायी पहेली बे आहार अने भय सज्ञा साधुने  
 छद्दा सातमा गुणठाणायी निवर्तेछे मैथुनसज्ञा नवमे  
 गुणठाणे निवर्ते छे, अने परिग्रह, लोभ, ममतादि  
 दसमे गुणठाणे निवर्ते छे, माटे गुणठाणानी विशुद्ध  
 परिणाति पामवा माटे ए चार सज्ञानी मदता थवी  
 जोइए, तेनी तीव्रताए जीव निगोद सुधी जाय छे,  
 अने मदताए उर्वर्गतिए चढे छे, केम जे जीवने

મૂલ જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્ર એ મુખ્ય ગુણ છે, તેમા દર્શન તો સામાન્ય અપ્રમોધરૂપ હોવાથી તે વિશેષ અપ્રમોધરૂપ જ્ઞાનગુણમા સમાય છે, તેથી જ્ઞાન અને ચારિત્ર તે રહ્યા, તેમા તે નિમિત્ત કારણ, અને ચારિત્ર તે ઉપાદાન કારણરૂપ છે, તે ઉપાદાન કારણ સેવનરૂપે ચાર સજાની મદતાણુ જીવ ઉચો ચઢે છે

૧૮ પ્ર૦—સિદ્ધના જીવને અનતા ગુણ છે, તે સમપણે છે કે વિષમપણે છે ?

૩૦—નિરાવરણઆશ્રયી સમગુણે છે, પણ આપ આપણા ગુણના પર્યાય વર્માશ્રયીવિષમપણે છે

૧૯ પ્ર૦—પ્રાણેકરી જે જીવે તેને જીવ કહિણુ તો સિદ્ધને જીવ કેમ કહેવામા આવે છે ?

૩૦—સિદ્ધને દ્રવ્યપ્રાણ નથી, પણ ભાવપ્રાણ ચાર છે, તેના નામ—૧ અનતજ્ઞાન, ૨ અનતદર્શન, ૩ અનતમુખ, અને ૪ અનત વીર્ય, એ ચાર ભાવપ્રાણે સિદ્ધ જીવે છે, તેથી સિદ્ધને જીવ કહીણુ, એ ભાવપ્રાણ આવરણે દ્રવ્યપ્રાણ સાપડે છે, તે કર્મજનિત છે કેમ જે સ્વાભાવિક અનતદર્શનરૂપ ભાવપ્રાણને આવરણે ઇન્દ્રિયપ્રાણ થયા, તેમજ સ્વજ્ઞાનરૂપ ભાવપ્રાણને આવરણે શ્વાસોશ્વાસ પ્રાણ ઉપજ્યો, સ્વાભાવિકમુખરૂપ ભાવપ્રાણને આવરણે આયુપ્રાણ ઉપજ્યો, સ્વાભાવિક અનતબલ વીર્યપ્રાણને આવરણે મનોબલ, વચનબલ, કાયબલ, એ વિભાવિક પ્રાણ ઉપજ્યા એ અધિકાર અધ્યાત્મસાર ગ્રન્થ મધ્યે કહ્યો છે

१०० प्र०-लेश्या कया कर्मयोगे छे ?

उ०-लेश्या, योग प्रत्ययिक नामकर्मजनित छे, अने शुभा-  
शुभ परिणामरूप लेश्या भागकर्मजनित छे

१०१ प्र०-वीस विहरमान तीर्थकरो सन्धी जवन्य, मध्यम,  
अने उत्कृष्ट, समकाले जन्म दीक्षा, जानादि हकी-  
कत सविस्तर समजाओ

उ०-महाविदेहक्षेत्रमा श्री विहरमान तीर्थकरो केवळीपणे  
विचरे छे, वळी कोड जाळकपणे, कोड राज्यावस्थाए,  
कोड गर्भमा होय, त्यारे जवन्यकाले अढीद्वीपमा  
१६० विजयमा १६८० होय, हवे हाल वीस प्रभु  
छे, ते जेवारे जन्मयकी एक लाख पूर्व आयुना  
याय त्यारे वीजा प्रभु जन्मे, वळी गर्भमा पण  
होय, एम गर्भना तीर्थकर प्रभु न गणाय, तेथी  
चोरासी लाख पूर्वायुमा तीर्थकरना जीवो बाल्या-  
वस्थामा, युवास्थामा, राज्यावस्थामा तथा भ्रमणा-  
वस्थामा तथा केवळी अवस्थामा सर्वे मळी ८३  
तीर्थकरो होय, ते सख्याने वीसगुणा करीए त्यारे  
१६६० थाय, ते मध्ये वीस विचरता मेळीए त्यारे  
१६८० याय, अने ज्यारे उत्कृष्टपणे अढी द्वीपमा  
१७० प्रभु केवलपणे विचरे छे, त्यारे एकएकना  
अवतारमाहे ८३ तीर्थकर उपजे, तेने १६० गुणा  
करीए त्यारे १३२८० थाय तेमा १७० वर्तता  
मेळीए त्यारे १३४५० थाय एटलु अचलगच्छ  
नायके कबु छे, जिम साभळ्यु तिम लख्यु छे  
पछे तो जेम केवलज्ञानीए प्रकाश्यु तेम सत्य,

મૂલ જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્ર એ મુલ્ય ગુણ છે, તેમા દર્શન તો સામાન્ય અમોઘરૂપ હોવાથી તે વિશેષ અમોઘરૂપ જ્ઞાનગુણમા સામાય છે, તેથી જ્ઞાન અને ચારિત્ર તે છા, તેમા તે નિમિત્ત કારણ, અને ચારિત્ર તે ઉપાદાન કારણરૂપ છે, તે ઉપાદાન કારણ સેત્તનરૂપે ચાર સજ્જાની મદતાણુ જીવ ઉચો ચઢે છે

૧૮ પ્ર૦-સિદ્ધના જીવને અનતા ગુણ છે, તે સમપણે છે કે વિષમપણે છે ?

૩૦-નિરાવરણઆશ્રયી સમગુણે છે, પણ આપ આપણા ગુણના પર્યાય ઘર્માશ્રયીવિષમપણે છે

૧૯ પ્ર૦-પ્રાણેકરી જે જીવે તેને જીવ કહીણુ તો સિદ્ધને જીવ કેમ કહેવામા આવે છે ?

૩૦-સિદ્ધને દ્રવ્યપ્રાણ નથી, પણ ભાવપ્રાણ ચાર છે, તેના નામ - ૧ અનતજ્ઞાન, ૨ અનતદર્શન, ૩ અનતમુલ્ક, અને ૪ અનત વીર્ય, એ ચાર ભાવપ્રાણે સિદ્ધ જીવે છે, તેથી સિદ્ધને જીવ કહીણુ, એ ભાવપ્રાણ આવરણે દ્રવ્યપ્રાણ સાપડે છે, તે કર્મજનિત છે કેમ જે સ્વાભાવિક અનતદર્શનરૂપ ભાવપ્રાણને આવરણે ઇન્દ્રિયપ્રાણ થયા, તેમજ સ્વજ્ઞાનરૂપ ભાવપ્રાણને આવરણે શ્વાસોશ્વાસ પ્રાણ ઉપજ્યો, સ્વાભાવિકમુલ્કરૂપ ભાવપ્રાણને આવરણે આયુપ્રાણ ઉપજ્યો, સ્વાભાવિક અનતબલ્ક વીર્યપ્રાણને આવરણે મનોબલ્ક, વચનબલ્ક, કાયબલ્ક, એ વિભાવિક પ્રાણ ઉપજ્યા એ અધિકાર અધ્યાત્મસાર ગ્રન્થ મલ્કે કહ્યો છે



आठमायत्री नथी बळी, एम सित्तेरादि षाय,	
परपरा पूर्वे जेम कही, लेवी एम सदाय	११
दशवीशना एकण समे, जिनवर जन्म कहात,	
भरतैखते दिन हुए, पाच विदेहे रात	१२
आगमे एणिपरे भाखियु, च्यवन जन्म अवरात,	
भरतैखत रजनि होय, दिवस विदेह विख्यात	१३
वीश सिंहासन सह्यु, दोय मेरु पच लाव,	
दो दो पूर्व पश्चिमे, एक दक्षिण उत्तर साध	१४
चार जन्म एक विदेह प्रत्ये, पाचे मळीने वीश,	
भरतैखते दश हुए, एक समये जन्म लहीश	१५
वीश वीश जन्मे विदेहे सही, साठसो विजय पुराय,	
लाख चोराशी पूर्वायु तस, वनुध्य पाचशें काय	१६
चढते दोय पटते ञणे, आरे वर्म कहाय,	
भरतैखत ते सही, विदेहे वर्म सहाय	१७
परावर्तन काळ भरहेखय, लेखो इहायी लेय,	
चोथो नित्य विदेहमा, आणढरुचि भणेय	१८
जिनवर ए नित्य समरता, लहिये सपद कोट,	
पडित पुण्यरुचि गुरु, शिष्य कहे करजोड	१९

१०२ प्र०—चक्रवर्तिना १४ रत्न क्या अने ते क्या उपजे ?

उ०—१ चक्र, २ असि, ३ ञ्ज, अने ४ दड ए चार रत्नो आयुधशाळामा उपजे, ५ मणि रत्न, ६ कागणी रत्न, ७ चर्म रत्न, ए ञ्ण निवानमा निपजे ८ पुरोहित ९ सेनापति, १० गाटापति, ११ वारिक, ए चार रत्नो पोताने नगरे उपजे १२ स्त्री

गाथा-सत्तरिसायमुज्जोस, जहन्पय वीस विहरमाण जिणा,  
समयसित्ते दस मा, जम्मपड वीसदसग मा ॥ ए प्रवचन  
सारोच्चार ग्रन्थनी गाथा जाणनी तथा दोहराया गाथानो  
भाव जाणवो

विहरमाण जिन चैत्यवटन

- विरो ए गाथातणो, कपि लेज्यो सभाल,  
सित्तरिसो जिनपर हुवे, कहे के अड काल १
- चडते काळ उत्सपिणी, वार अष्टम जिन,  
एकसो सित्तर जिनपर हुवे, एणीपरे सुणो सज्जन २
- पाच विदेहे मेळवी, साठसो विजय उप्पन,  
भरतैखत दस मीळे, सित्तेरसो होय जिन ३
- पटते काळे अपसपिणी, सोलम जिन लगे हुत,  
भरतैखते जिन हुवे, साठसो विदेह लहत ४
- केवळी कइ बाळ परण्या, वयणे एहज सोय,  
आठमा जिनयी सोलम लगे, विरह विदेह न होय ५
- सोलमा जिन साथे सह, मुक्ते जाय जिन भाण,  
विरहसमे सह क्षेत्रमा, अक्षर एह पिठाण ६
- सत्तरमा जिन होय भरह, पच औरवत मली दश,  
समयक्षेन दश कह्या, लेहवा एह अवश्य ७
- सत्तर अटारह जिन वचे, जन्मे वीश विदेह,  
वीस एकवीसमा वचे, समय केवळ देह ८
- भरतैखत दश मळे, मध्यम साप्रत वीश,  
चोवीशमा जिन शिव गये, विदेह विचरे वीश ९
- अनागत चोवीशी सातमा, आठमा वच्चे निर्वाण,  
विरह पडे सह क्षेत्रमा, अष्टमे न होय जिनभाण १०

उ०—जघन्यथी साडामार लाख अने उत्कृष्टथी साडीमार  
क्रोड सोनैया वरसावे

अद्वतेरस कोडी, उक्रोसा तत्य होई वसुधारा ।

अद्वतेरस लक्रवा, जहन्निया होई वसुधारा ॥ १ ॥

१०५ प्र०—चउद् मोटी विद्याना नाम कहो ?

उ०—१ नभोगामिनी, एटले आकाशमा गमन करवानी  
विद्या, २ परशरीर प्रवेशिनी, ३ रूप परावर्तिनी, ४  
स्तमिनी, ५ मोहिनी ६ सुवर्ण सिद्धि, एटले सोनु  
प्रनाववानी विद्या, ७ रजत सिद्धि, एटले रुपु बना-  
ववानी विद्या, ८ रससिद्धि, एटले रसकूपिकादि रस  
करवानी विद्या, ९ ब्रध मोक्षिणी, एटले गमे तेवा  
बधनमायी मुक्त करवानी विद्या, १० शत्रु पराभ-  
विनी, ११ वश्य करणी, १२ मृतादि दमिनी, एटले  
सर्व अग्निना उपद्रवने समाप्तनारी विद्या, १३ सर्व  
सपत्करी, १४ शिवपद प्रापिणी

१०६ प्र०—आचार्य महाराज आत्मस्वरूप पच प्रस्थानने ध्यावे  
एटले शु ?

उ०—ध्याननी पाच अवस्था साववामा साववान आचार्य  
भगवत, पचपद आराधे छे, तेना नाम ? अभय,  
ते जरिहतनु ध्यान, २ अकरण, ते सिद्धनु ध्यान,  
३ अहमिंद्र, ते आचार्यनु ध्यान, ४ तुल्य एटले  
उपाध्यायनु ध्यान, ५ कल्प एटले साधुनु ध्यान,  
ते समान अवस्थाए पच प्रस्थानमय आचार्यजी छे

રત્ન તે રાજકુળે ઉપજે, ગજરત્ન અને અશ્વરત્ન ણ  
ને પૈતાઢ્ય પર્વત ઉપર ઉપજે

૧૦૩ પ્ર૦—નવ નિગ્ઢન તે કયા અને તે કયા પ્રગટે ?

૩૦—ગગાનદીને તટે નવનિધાનની નવ પેટી પ્રગટે છે, તે પ્રત્યેક પેટી ૧૨ યોજન લાઢી, નવ યોજન પ્હોઢી, અર્ધ યોજન ઉર્ધ્વા, તે યોજન આત્માગુલ પ્રમાણ જાણના, અને નવનિધિ મજુસને આકારે છે, ટૈડુર્યમણિરત્નમય કમાડ છે, તેના તથા તેમાની વસ્તુના નામ કહે છે — ૧ નૈસર્પિક, તેમા નગર નિવેસ ગ્રામાદિ ઉત્પાદક વિધિ છે, ૨ પાડુક, તેમા વાન્ય વીજાદિકની સર્વ સપત્તિ છે, ૩ પિંગલ, તેમા નર નારી હય ગયના વિવિધ આભરણો છે ૪ મહાપદ્મ, તેમા ચડે જાતિના રત્નો છે, ૫ મહિ, તેમા વિવિધ પ્રકારની સુગધિ પુષ્પાદિ વિગેરે વસ્તુઓ છે, ૬ કાલ, તેમા વિકાલ જ્ઞાનના પુસ્તકો છે, ૭ મહાકાલ, તેમા સોનુ, રુપુ, ઙ્ઙવેરાત, લોહ વિગેરે સર્વ દ્રવ્ય અસ્ત છે, ૮ માણક નામે તેમા રાજનીતિ, યુદ્ધનીતિ અને સર્વ હયાયાર યુદ્ધની નીતિ છે; ૯ સુખનિધિ, તેમા ચતુર્વિધ નાટકાદિ સગીત શાસ્ત્રાદિના ગ્રથો છે, તે પ્રત્યેક નિધાને ંક હજાર વ્યતર, દેવો અધિશાયક છે, તેનુ આયુ ંક પલ્યો-પમનુ છે

૧૦૪ પ્ર૦—પ્રભુ જ્યા પારણ કરે ત્યા વનવૃષ્ટિ દેવતાઓ કેઢ્ઢી કરેછે ?

पामे, अने अविरति उदये चारित्र गुणस्थान न  
पामे, पण ज्यारे जीवने तथाविध परिणमन उपयोग  
एकाग्रता थाय, त्यारे ते सुखरूप ज्ञानचारित्रमय  
सपूर्ण वर्मने पामे

११० प्र०—द्वादशांगीना केटला पदो छे ?

उ०—“ कोटीशत द्वादशशै व कोट्यो लक्षाण्यशीति  
अधिकानिचैव पञ्चशदष्टौ च सहस्र सरण्यामेतत्क्षुत  
पञ्चपदननामि ” ॥ १ ॥ एटला पद छे,

“ एकावन्न कोडीओ, लक्खा अष्टे व सहस्र बुल-  
सिही । सयठक्क साढा, एकवीस पयगथा ॥ १ ॥ ’  
एटला एक पदना लोकनी सरण्या जाणवी

१११ प्र०—चौद पूर्वना नाम तथा ते प्रत्येकना पदनी सरख्या कहो ?

उ०—१ उत्पाद पूर्व, पदसरख्या ११ क्रोट, २ अग्रायणीय  
पूर्व, तेमा ९६ लाख पद छे, ३ वीर्यप्रवाद पूर्व  
तेमा ७० लाख पद छे, ४ अस्ति नास्ति प्रवाद  
पूर्व, तेमा ६० लाख पद छे, ५ ज्ञान प्रवाद पूर्व,  
तेमा ३६ क्रोट पद छे, ६ सत्य प्रवाद पूर्व, तेमा  
एक क्रोट अने ६० लाख पद छे, ७ आत्म प्रवाद  
पूर्व, तेमा ३६ क्रोट पद छे, ८ कर्मप्रवाद पूर्व, तेमा  
एक क्रोट आठ लाख पद छे, ९ प्रत्याख्यान प्रवाद  
पूर्व तेमा ८४ लाख पद छे, १० विद्या प्रवाद पूर्व  
तेमा ११००१५००० पद छे, ११ कल्याण प्रवाद  
पूर्व, तेमा ६२ क्रोट पद छे, १२ प्राणवाद पूर्व, तेमा  
एक क्रोट ५६ लाख पद छे, १३ क्रियाविशाल

१०७ प्र०-जीवनं मिश्रगुणग्राण्य चङ्गता के पटता कोने केवी रीते आपे ते कहो

उ०-अनादि मिथ्यात्वी होय तेने चङ्गता न आपे केमजे ते प्रथम उपशम सम्यक्त्व पामे, ग्रथिभेद करी चोवे आपे, माटे अनादि मिथ्यात्वी पहेलेयी चोवे आवे, माटे तेने गंजु मिश्र चङ्गता न आवे, अने सादि मिथ्यात्वी जीव सम्यक्त्व पामीने पडयो होय ते पाठो क्षयोपशम सम्यक्त्व पामे, तेने गंजु चङ्गता पटता आपे

१०८ प्र०-समोहिया, असमोहिया, मरण ते कोने कहीए ?

उ०-समोहिया मरण ते जीव अहिंयी नीकळे त्यारे सम-काळे सर्व प्रदेशे नीकळी परभवे जाय, जेम सीधो दटो फेकता दडाना प्रदेश एक वखते दडा साथेज जाय छे तेम जाणवु, अने असमोहियामरण ते जीवना प्रदेश श्रेणिवद्ध आगळयी जाय, एटले अहि तथा परभवे आत्म प्रदेशनी मरणावसरे श्रेणि मडाय ते जेम पतगनी दोरी हाथने अने पतगने लागेली छे तेनी पेठे जीव प्रदेश नीकळे ते

१०९ प्र०-जीवनो शुद्धोपयोग गुण जे सम्यक्त्व, तथा ठरण गुण ते चारित्र तेने आवरवाने कोण बळवत्तर छे ?

उ०-आत्मोपयोग गुण, आत्मवस्तु जीवन गुण जे सम्यक्त्व छे, तेने आवरवाने मिथ्यात्व समर्थ छे, अने एनु परिणमनसुख एटले स्थिरता गुण आवरवाने अविरति समर्थ छे, माटे मिथ्यात्वोदये समकित न

ते तेमज क्षायिकसमकितीने तथा क्षयोपशमसम-  
कितीने वीजु वीजु न होय पण उपशमसमकिती  
पटता वीजे वीजे आवे तेने जिननामनो वव नयी,  
वीजे वीजे सत्ताए १४७ प्रकृति होय, उपशम सम-  
कित आखा भवमा पाच वखत आवे छे, तेमा  
चारवार श्रेणिगत अने पाचमीवार पटता आठमे गुण-  
ठाणे अटकी क्षपकश्रेणि माडीने केवळज्ञान पामे

११३ प्र०-क्षयोपशम, उपशम अने क्षायिक सम्यक्त्वन्तु स्वरूप  
तेना भेद सहित डकमा कहो

उ०-क्रोधादि चार अनतालुवधी चारित्रमोहनी प्रकृति अने  
मिथ्यात्वमोहनीनी त्रण प्रकृति, ए सातने उपसमावे  
त्यारे उपशमसमकित अने सातेनो क्षय करे त्यारे  
क्षायिक अने सात प्रकृतिना उदयनो क्षय करे अने  
उदयमा न आवेला उपशमावे तेने क्षयोपशम सम्य-  
क्त्व कहे छे हवे ते विषे जे काइ विशेष जाणवा  
योग्य छे ते कहे छे —

दुहो

चार खपे त्रण उपशमे, पच क्षय उपशम दोय,  
षट् उपशम एक एम, क्षयोपशम त्रिक होय

अथवा

क्षयोपशम वरते त्रिविध, वेदक चार प्रकार,  
क्षायिक उपशम युगल युत, नवधा समकित धार

दुहानो खुलासो:—

सात प्रकृति मध्ये चार चारित्रमोहनीनी छे, त्रण प्रकृति

પૂર્વ તેના નવ ક્રોડ પદ છે, ૧૪ લોક વિદુસાર તેમા સાડાતેર ક્રોડ પદ છે, ત્યાં એક પદમા ૫૧૮૮૮૪૦ બક્ષર છે

૧૧૨ પ્ર૦-વીજે ગુણઠાણેજિનનામકર્મસત્તાપન જાંવ કેમ ન આવે ?

૩૦-ક્ષયોપશમ સમકિર્તી, જિનનામ ત્રાધી પટતા પહેલે આવેછે, તેને સત્તાણ ૧૪૮ પ્રકૃતિ હોય છે, કર્મ-ગ્રયની અમ્ચૂર્ણિમવ્વે ક્ષુ છે સતેઅડયાલસય જાડ-વસમવિજિણુ વિયત્તય-અસ્યાર્ય સત્તા એ કર્મની પ્રકૃતિ ૧૪૮ મિથ્યાત્વ ગુણઠાણામાડી યાવત ૧૧ અગિયારમા સુધી હોય, પણ વીજે ત્રીજે ગુણઠાણે જિન નામકર્મ વિના ૧૪૭ પ્રકૃતિ સત્તાણ હોય તે કેમ ? તેનો અભિપ્રાય કહે છે ચોથે ગુણઠાણે ક્ષયોપશમ સમકિત છે તે જિન નામકર્મ બાધે તે ત્રાધીને પાછો પડે સમકિતથી પડેતો તે મિથ્યાત્વે આવે પણ વીજે ત્રીજે ગુણઠાણે નાવે તેમાટે મિથ્યાત્વ ગુણઠાણે ૧૪૮ પ્રકૃતિ હોય અને સાસાદન ગુણઠાણુ તે ઉપશમ ભાવ આશ્રયી છે, અને ઉપશમ સમકિત છતાં જિન નામકર્મ ન બાધે ચોથે ગુણઠાણે જ્યાં સુધી ઉપશમ સમકિત હોય ત્યાં સુધી જિન નામકર્મ ન બાધે સ્તોતકાલ માટે, ક્ષયોપશમ તથા ક્ષાયિકસમકિત છતે -જિનનામ બાધે તે પાછો વમે તે ક્ષયોપશમ સમકિતથી પડતો જિન નામકર્મવાલો પ્રથમ ગુણસ્થાનકે આવે પણ વીજે ત્રીજે નાવે, તિહા ૧૪૮ પ્રકૃતિ સત્તાણ હોય તેથી



जिनवचन मध्ये शकाकरवादि काडक विग्रमत्तरूप  
चित्त मलिनता करावे ते तथा अनतो छे अनुवच  
कर्मविपाकरस जेनो तेने अनतानुवधि कषाय कहिये

११४ प्र०—सापेक्ष अने निरपेक्ष ते केवी रीते ?

उ०—सापेक्ष एटले अपेक्षा सहित एटले कार्य पडे त्यारे  
कदाच प्रसगने लडने ताटना तर्जनादि करवु पडे  
तोपण ते अतरयी के बहारयी निर्दयपणे, अविचारी  
रीते न करे, जीवने कोड् व्यथा न उपजे तेनी  
सभाळ राखीने काम जेटलो आक्रोशादि होय ते करे,  
अने तेयी विपरीतपणे, निर्दय रीते निष्कारण गमे  
तेम माडु बोले तथा करे ते निरपेक्षव्यवहार जा-  
णवो, वळी वर्मने विपे सापेक्ष एटले वस्तु स्वरूपनी  
अपेक्षा राखीने उत्सर्गने तथा निश्चयने पामवा माटे  
जे अपवाद के व्यवहारनु सेवन करवु ते, अने ते  
यकी रहित एकात व्यवहारप्रवृत्ति, अविवेके आचरे  
ते निरपेक्ष ज़टो व्यवहार जाणवो, अने ज्या व्यव-  
हार ज़टो छे, त्या वर्म तो होयज कयायी । । ।

कथ्यु छे जे -

वचन निरपेक्ष व्यवहार ज़टो कळ्यो,

वचन सापेक्ष व्यवहार साचो,

वचन निरपेक्ष व्यवहार ससार फळ,

सामळी आदरी काड राचो

११५ प्र०—समदृष्टिनु स्वरूप उपादान अने निमित्तयी कहो

उ०—सम्यक्दृष्टिने उपादानपणे रागद्वेषनी हलचलधाराडु

મિથ્યાત્વમોહનીની છે તે મત્તે ઝ પહેલી તે ગ્રાવણ જેહવી છે, એક સમ્યક્તમોહની તે કુન્તરી સરીસી છે તેહનો વિગરો એ સાત પ્રકૃતિ જિહા ઉપશમે તિહા ઉપશમ સમકીત કહિએ એ સાતે પ્રકૃતિ સત્તામાહિયી ક્ષય કરે તિહા ક્ષાયિક સમકીત એ સાતમાહિયી કાઈકે રખે કાઈ ઉપશમે તિહા ક્ષયોપશમ સમકિત કહિએ જ્યા એ સાતમાની ચાર રખે, વે ઉપશમે, અને એક વેદે તે પહેલો મેદ, તથા એ સાતમાની પાચ રખે, એક ઉપશમે અને એક વેદે તે વીજો મેદ, એમ વે પ્રકારે ક્ષયોપશમ વેદક છે, તથા હવે ત્રણ પ્રકારે ક્ષયોપશમ સમકિત છે, તે કહે છે તે આવી રીતે—૧ ચાર રખે ત્રણ ઉપશમે, ૨ પાચ રખે વે ઉપશમે, ૩ છ રખે એક ઉપશમે, એમ એ ત્રિવિધ ક્ષયોપશમસમકિત અને પૂર્વોક્ત દ્વિવિધ વેદક ભાવનો મઠ્ઠી ક્ષયોપશમ પઘવિધ સ્વરૂપ કહ્યુ, હવે ક્ષાયિકવેદકનો એક મેદ તે કિમ ? ઝ રખાવે, એક વેદે તે ક્ષાયિકવેદક કહિયે તથા ઝ ઉપશમાવે અને એક વેદે તે ઉપશમવેદક કહિયે, તથા સાતને ક્ષયે ક્ષાયિક અને સાતને ઉપશમે, ઉપશમિક એમ સમ્યક્ત્વ નવ પ્રકારે કહ્યુ

૧૧૪ પ્ર૦—મોહનીયકર્મનુ લક્ષણસ્વરૂપ કહો

૩૦—૧ જે વિગ્રમપણે આત્મસ્વરૂપને વિપરીત જાણે, જેમ છીપને રૂપુ કહે તે મિથ્યાત્વ મોહની, ૨ મિશ્ર-મોહની તે કાઈક ડામાડોળપણે, સદેહયુક્ત, અનિ-ધારપણે જાણે, પણ આત્મજ્ઞાન પ્રતે પામવા ન દે, ૩ સમ્યક્ત્વ મોહની તે સમ્યક્ વસ્તુ ઉપર મોહ ઉપજાવે, દેવગુરુઆદિપર મારાપણારૂપ મમતા કરાવે,

मोहनु दरिद्रपण जाय, चरण टरण गुण प्रगटे तथा कर्मनु देवु एट्ठे करज ट्ठे ते जायी रीते के-दर्शनगुणे जन्म करवा रूप भयपरपग मटे, ज्ञानगुणे जराती वेदना मटे, चारित्रगुणे भय भय मटे, तेयी अमरपद पामी सिद्धिदारे, एम दर्शनगुणे ज्ञान चारित्र वेड अनुक्रमे प्रगटे जने ए स्तनयना लामे जन्मजरामरणादि भय ट्ठे, जेम कोइ निर्वनने लक्ष्मी वणी मळे, त्यारे तेइ दवृ जने दरिद्रपणु जने ट्ठे छे, स्तनय प्राप्तिशी आत्मप्रम-रूप वन प्रगटे, रागद्वेष मोहरूप दरिद्रपणु जाय, अने जन्म जरा मरणरूप करनना भय ट्ठे

११८ प्र०-मोहराजानो मूळ मन रूपो ? जने तेयी जीव उ प्रकारे घणा कर्मो भावे छे ते केयी रीते ?

उ०-रागद्वेष ते जीवना परिणाममा र्तन छे, तेयी रूप वावे, ते उदय आपे त्यारे आर्त्त अने राइ न्यान थाय, तेयी विषय रूपाय सेवे, तेयी तने घणा रूप ववाय, तेयी भय परपग जीवने ट्ठे नहि, ए मोहनो मूळमनरीज जाणतो

११९ प्र०-सम्यग्दृष्टिनो शब्दार्थ तथा लक्षणा क्वतो.

उ०-सम्यक् कहेता यथार्थ, दृष्टि कहेता अज्ञान, सम्यग् ज्ञान ते यथार्थ जाणवृ, सम्यक् धारित्र ते यथार्थ आचखु, तथा उदयकाळे सम्यक् प्रकारे मदन करे अने स्वरूपे जोउ ए लक्षणा, सम्यग्दृष्टि श्रासाधुना जाणवा

समपणु थयु, परिणति मव्यस्य वइ तथा निमित्त-  
पणे पुण्य पापना उदय काळे हर्ष के खेद न करे,  
मव्यस्य साक्षिरूप रहे

११६ प्र०—जिननी चार निक्षेपे भक्ति शी रीते करवी ?

उ०—पवित्रतायी एकाग्रचित्तेआशातना टाळी, जिननु  
नाम जर्पाए ते नाम निक्षेपे जिनभक्ति, २ स्थापना  
निक्षेपे जिनप्रतिमाजीनी अष्ट प्रकारी, सत्तर भेदी  
आदि पूजा भक्ति विधिया करता भावपूजा तन्मय  
वइ परिणमे ते, ३ तथा द्रव्यनिक्षेपे जिनभक्ति ते,  
जिनना जीव तेना गुणे भावे जिनना जीव जाणी  
तेमनी भावथकी वदनादि करवु ते, ४ तथा भाव  
निक्षेपे जिनभक्ति ते, षिंगटे वेठा समोसरणे अनेक  
भव्यजीवोने प्रतिबोध आपता एवा जेम हाल श्री  
सीमधरादि स्वामी छे तेमने वदना नमस्कार गुण  
स्तुति इत्यादि करवी ते

११७ प्र०—जीवने कर्म सगधी करज तथा कर्म जनित भाव-  
दरिद्रपणु केम टळे ?

उ०—जीव अनादि काळनो राग द्वेष मोहे परिणमे छे,  
तेने देवु तथा दरिद्रपणु वेउ वधे छे, ते टाळवानो  
उपाय ए छे जे समकित गुणनी प्राप्ति थए, शुद्ध  
रत्नत्रय वर्म प्रगटवायी टळे, ते आवी रीते के  
दर्शनगुण थए द्वेषभाव टळे समभाव प्रगटे, तेथी  
ज्ञान गुण प्रगटे माटे, तेथी पुद्गलादि परवस्तु उपर मोह  
टळे, वैराग्य प्रगटे, तेथी चारित्रगुण प्रगटे, तेथी

परमार्थी, शुभमति, एकांत निस्पृही, निर्भमत्वी, निरमिमानी, सपूर्ण रीते सरळ, प्रौढपणे गर्भीर, परम-समान, दृष्टिमत्, दयाळु, कृपाळु, पोताना आश्रितोने विषे पूर्ण विश्वासी, सर्वमिथ्याग्रम रहित यया थका सदानदपणे प्रवर्तमान होय पण हा । इति खेदे आ विषम काळना प्रभावे उपर कह्या तेवा सुशि-ष्यो तथा सुगुरुओ मळवा दुर्लभ छे, अने ज्या होय त्या तेओ निश्चय कल्पवृक्ष समान जाणवा

१२१ प्र०-शाता, अशाता, सुख, दु ख विषे निमित्त तथा उपादान कारण समजावी

उ०-शाताऽशातासुखदु खयोश्चाय विशेष शाताऽशाताऽ-नुक्रमेण उदयप्राप्ताना वेदनीयकर्मपुद्गलाना अनुभवरूप तथा सुखदु खेन परोदीर्यमाणवेदनीय अनुभवरूप शातादि पूर्वोक्त चारे अनुक्रमे उदयप्राप्त शातादि वेदनीय कर्मना पुद्गलो नो शाता, अशाता, सुख, दु खरूप अनुभव छे, तथा सुख दु खने उदयमालावनारा उदीरणारूप जे मूळ हेतु ते वेदनीयकर्म अनुभवरूप शातादि उपादान कारण छे, अने शाता अशाता उदय आव्या जे कर्मपुद्गलो तेनु वेदवु, भोगववु ते अशुद्ध उपादानरूप छे, अने सुख, दु ख तेहना फळ छे, ते फळ पाक्या एटले उदय आव्या ते वेदनीयकर्मनु भोगववु ते भोगवटो निमित्तरूप थयो, अर्थात् सुख दु खने भोगवता थका जो हर्ष शोक करे, मदोन्मतता के झर्णा

१२० प्र०—गुणग्राही, गुणगवेपी, सहजकारी (सहायकारी) ते शु ?

उ०—१ गुणग्राही एटले जे जांव सद्गुरु पास स्रु सिद्धान्त साभळीने घणी प्रशसा करे, कीर्ति करे, गर्वादिकना कोइ कर्म आदयिक अपगुण देखीने तेने द्वेष न उपजे, केमके जो खेद के अरुचि थाय तो भक्ति विनयादि रुचिकर मन भग्न थइ जाए, तेयी आगळ गुण यतो अटके, अने होय ते पण कदाच वर्मी नाखे, २ गुणगवेपी एटले गुर्वादिमाहे कोइपण उपकारादि गुण होय ते सभारीने आक्रोशादिकने लीघे खेदाय नहि, कदाच माठु लागे पण पाछु तेमयी हित बुद्धि, प्रीति, विश्वास, कृपादि अनेक निस्पृहिपणे करेला उपकारने सभारी मन निर्मळ थाय, अवगुण, दृष्टिमा न आवे, तेयी विनयादि भक्ति चूके नहि, ३ सहायकारि ते गुर्वादिकने अन्न, पाणी, वस्त्र, औषधादयी घणी सहाय करे, पोते गाठयी, खरचे, गाठे न होय तो कोइ योग्य जीव पासेयी लावीने गुरुनी सहाय करे, तथा सेवा, भक्ति, वैयावच्च, पोते जाते त्रिकरण शुद्धि करी महा शाता उपजावे, प्रसन्नता करावे, जेने परिणामे पोताने अनत पापनी निर्जरा अने ज्ञानादिकनी परम शुद्धि तथा वृद्धि थाय, जेम शिष्योमा गुर्वादि उपर अतरग प्रेम, भक्ति, रुचि, विशेष रसिकता सहित दीप्तिमान् दिन प्रतिदिन अधिकने अधिक थता जाय तेम उत्तम

ते अभ्युपगामिनी वेदना अने एक उदीरणाइ करी उदय लावीने वेद कर्मना पुद्गल समभावे वेदी खपावे ते उपक्रामिनी वेदना जाणवी ए भाव,

१२३ प्र०—देशना शुद्ध स्याद्वादे जेनधर्मनी छे एम क्यारे कहेवाय ?

उ०—जिनवचनानुसार देशना चतुर्विध छे — १ कारण कार्यरूप, २ निमित्त उपादान सहित, ३ द्रव्य भाव युक्त, ४ निश्चय व्यवहारनययुक्त

१२४ प्र०—त्रावीस परिषहमा शीत केटला अने उष्ण केटला ? शीत अने उष्ण ते शु ? अनुकुळ अने प्रतिकुळ केटला, अष्ट कर्मना विभागे कया कर्मना कया कया परिषहो छे ?

उ०—स्त्री अने सत्कार ए वे शीत एटले मनने शाताकारी माटे अनुकुळपरिषहो छे, बाकीना उष्ण एटले मनने सतापकारी माटे प्रतिकुळ छे, एम आचारागे तृतीयाध्ययने बुरेटीकामध्ये कहु छे तथा उत्तराध्ययनसूत्रमा कहु छे हवे ज्ञानावरणीयना क्षयोपशमे प्रज्ञा अने ज्ञानावरणना उदये अज्ञान ए वे छे, वेदनीयना उदये — १ क्षुधा, २ पिपासा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ डस, ६ चर्या, ७ मळ, ८ सज्जा, ९ वध, १० रोग, ११ तृण स्पर्श, मोहनीयना उदये — १ अचेलक, २ स्त्री, ३ अरति, ४ आक्रोश, ५ याचना, ६ निसिहिया, ७ सत्कार अने ८ सम्यक्त्व परिषह ते मिथ्यात्वमोहना उदये

करे तो फरी तेजाज शाता अशातारूप वेदनीकर्म  
 गावे, ते नउ उपादान कारण जाणउ, अने पूर्वोक्त  
 हर्ष शोकादि प्रवृत्ति ते निमित्त वयु जाणउ, एम  
 कारण कार्ये निमित्तर्था उपादान अने उपादानर्था  
 निमित्त एम जेवा वृक्ष तेजा फळ तथा जेम बीज-  
 मायी वृक्ष अने वृक्षमायी बीज नीपजे छे तेम  
 कर्मयी शाता अशातादि जीव पामे छे, अने फरी  
 अज्ञानपणे समभावे न रहेवायी एवाज बाधी स-  
 सार परपरामा भमे छे, शाता अशाता आत्माश्रित  
 जीवविपाकी प्रकृति छे, अने सुख दु ख पुद्गलाश्रित  
 होवायी पुद्गलविपाकी प्रकृति छे

१२२ प्र०—वेदना केटला प्रकारनी, कइ, तेनु स्वरूप दृष्टातयी  
 समजावो

उ०—१ वेयणादुविहा, अभ्युपगमिया उवक्कमिया, स्वय-  
 मभ्युपगम्यते वेद्यते यया साधव केशलुञ्चनातापना-  
 दिमि वेदयन्तीति अभ्युपगमिकी वेदना, उपक्रामिकी  
 तु स्वयमुदीर्णस्योदीरणाकरणेन च उदय उपनीतस्य  
 वेद्यस्य अनुभव इत्यर्थ, जे वेदनीयकर्म काळ परि-  
 पाके स्वयमेव सहज उदय आवे ते समभावे वेदीने  
 खपावे ते उपक्रामिकी, अने २ जेम साधुमहाराजा  
 केशलोच आतापनादि परिषह वेदनाने पोते उदीर-  
 णाए उदीरी समभावे वेदी कर्मनी निर्जरा करे छे  
 ते वेदनाने अभ्युपगामिकी कहिये तथा पाठान्तरे  
 जूनी प्रतिमा नीचे प्रमाणे छे—एक वेदनीकर्मकाळे  
 पाकीस्वभावे उदय आपे ते समभावे वेदीने खपावे



अक्कोसेअर्डईत्थी, निसिहिआचेव जायणाचेव,  
सक्कारपुरसक्कारो, ईक्कारसवेपणिज्जम्मि ॥ २ ॥  
पचेवअणुपुत्थी, चरियासिज्जातहेवजल्लेय ।

वहरोगतणुफासा, सेसेसुनत्थिवियारो ॥३॥ इति भाव

१२८ प्र०-उपसर्ग अने परिषहमा शो फेर छे ?

उ०-उपसर्ग ते आत्मकर्मजनित छे, उपसर्मीपे स्रष्टु  
उपसर्ग ते माटे, तथा परिषह ते परजनित छे परना  
निमित्तथी कह्या ते सहेवु ' परिसमन्तात्सह्यते इति  
परिषह ' इति उपसर्ग परिषहनो अर्थ विचारवो  
इति भाव

१२९ प्र०-चार प्रमाणे करी वीर परमात्मा मळ्या न्यारे गणाय ?  
ते सिद्ध करो

उ०-जूनी प्रतिमा नीचे प्रमाणे पाठ छे " तद्यथा अथ  
प्रमाण च्यार अनुयोगसूत्रे कह्या छे, अनुमान प्रमाण  
१, उपमान प्रमाण २, आगम प्रमाण ३, प्रत्यक्ष  
प्रमाण ४, ते मध्ये आज श्री वीर स्वामी प्रत्यक्ष  
प्रमाणे किम मले ? ते यापना निक्षेपाथी मले ते  
किम ? समभाव शात मुद्रापर्यकासननो उत्पादे अने  
रागद्वेषनो विनाश एहवी असलनी नकल ( थापना )  
जिनप्रतिमा ते देखीने भावथी श्रीवीरस्वामी प्रत्यक्ष  
प्रमाणे मिले जिन प्रतिमा ते जिन सरिखी ते  
जिनप्रतिमानी भक्ति जिनभावे कीवाना फल  
श्रावकने महानिसिधसूत्रे कहु छे ' अयकएसढो,  
इति वचनात्, तिह्वारे जिन प्रतिमानी भक्ति कीधी

होय, तथा जलाभ ते अनरायना उदये होय ते  
सॅ मुनिमहाराजा शुद्रात्मोपयोगस्वरूप विचारी महा  
वैराग्यभाजने भावतायका सम्यक्प्रकारे सहे पण  
अस्थिरता के खेदादि काई न करे, त्या परिषह  
एटले समस्त प्रकारे समभावे सहबु, जे कर्मोदये  
आवे ते, अने उपसर्ग ते स्वकृत या परकृत पीडा  
जे प्रगटे ते समभावे सहेवी, अथवा मतातरे उप  
एटले समीपे अने सर्ग एटले आवीने उपजे जे ते  
उपसर्ग स्वाश्रित छे अने पराश्रित परिषह छे

१२५ प्र०—वध, उदय, उदीरणा अने सत्ता ए चारमा केटली  
आत्मिक अने केटली पौद्गलिक छे ?

उ०—उदय अने सत्ता पौद्गलिक, वध अने उदीरणा आ-  
त्माश्रित छे

१२६ प्र०—अष्ट पुद्गल वर्गणानु अल्प बहुत्व कहो

उ०—आठ वर्गणामाहे औदारिकना थोडा, तेयी अनत-  
गुणा वैक्रिय, तेयी घणा आहारक, तेयी घणा तै-  
जस, तेयी घणा भाषाना, तेयी घणा श्वासोच्छ्वा-  
सना, तेयी घणा मनना अने तेयी घणा कार्मणनी  
वर्गणाना पुद्गलो जाणवा

१२७ प्र०—बाबीश परिषह पैकी कया कया परिषहो कया कया  
कर्मथी उपजे छे ?

उ०—ज्ञानावरणीथी २, मोहनीना ८, वेदनीना ११, अत-  
रायनो १, ए कर्मथी उपजे अत्र गाथा  
दसणमोहेदसण परिसहोपनाणनाण पढममि ।  
चरिमेअलाभ परिसहसत्तेव चरित्तमोहमि ॥ १ ॥

परिपह उपसर्ग सहन करवामा निर्भय, साहासिक, केसरि सिंहसमान पराक्रमी, वीरपरमात्मा उपमा प्रमाणे पण सिद्ध यथा जाणवा, ४ प्रत्यक्ष प्रमाणे जिनप्रतिमा जिन सरखी होवायी वीरपरमात्मा-स्थापना निक्षेपे सिद्ध थया, कारण जे समभाज, शात मुद्रा, विशुद्ध पर्यकासन इत्यादिनो उत्पाद, रागद्वेषनो व्यय, अने मूळस्वरूपे द्रुव, सच्चिदानंद घनमय एवी असलनी नकल श्री जिन प्रतिमाजी छे ते देखी भावयी श्री वीरपरमात्मा प्रत्यक्ष सिद्ध थया जाणवा, स्थापनाजीनी भक्ति ते साक्षात्नी बराबरज छे, कारणे कार्य उपचारे सत्य छे

१३० प्र०-जीव अष्टकर्मवर्गणादलिक केवी रीते वहेची आठे कर्मने आपे छे ?

उ०-समय समय जीव कर्मवर्गणा ग्रहे छे, ते आठे कर्मने वहेची आपे छे ते आवी रीते-सर्वथी थोडा आयुकर्मने, तेथी विशेषाधिक नाम अने गोत्रने, ते वेउमा माहोमाहे सरखा, तेथी ? ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ तथा अतराय ए ऋणने विशेषाधिक पण माहोमाहे सरखा दळ आपे, तेथी मोहनीयने सख्यातगुणाधिक, तेथी वेदनीयने अधिक, एम वेदनीयकर्मने सर्वथी अधिक दळ मळे छे, केम जे वेदनीय विपाक जीवने थोडा दळे प्रगटपणे जणाय नहि तेथी इति भगवतीसूत्रे कबु छे

१३१ प्र०-जीव विग्रहगति करे तो तेनो उत्कृष्ट काळ केटलो ?

ते जिननी कीर्ती इम 'कारणे कार्योपचारात्' इम  
जिननी स्थापनाथी आज प्रत्यक्ष प्रमाणे श्री वीर  
मत्या कहीए 'अत्र सदेहोनास्ति' इति भाव "   
तथा उपेही प्रतिमा नीचे प्रमाणे पाठ छे

अविरोध, अखलित, अविसवादि, नि स्वार्थ,  
एकांत, दयामय, सपूर्ण सत्य, मयुर, प्रिय, गमीर,  
अमर्म प्रकाशक, सर्वज्ञ अने सर्वदर्शिपणाना लक्ष-  
णोए पूर्ण, तथा मुद्राकारे शांत सुधारसमय रागद्वे-  
षादि चिन्ह रहित इत्यादि अनेकशास्त्रवचन  
गोचर वीरपरमात्मा आगमपणे सिद्ध करीए २  
अनुमान प्रमाणे जेम वृष दिठे अग्निनो निश्चय  
थाय तेम पूर्वापर महात्माओना ऐतिहासिक सबध  
तेना विधविध उत्कृष्ट सदाचार प्रवर्तक पुरुषोना  
प्रमाणोए ज्यारे ऐसी नेवु वातो अनुभवथी सत्य  
सिद्ध थाय तो तेनी शेष दस वातो पण सत्यज  
मानी लेवाय छे, अने होय छे पण तेमज एवीज  
रीते श्री वीर परमात्माना अनेक वचनो अत्यारे  
वीजा अन्य दर्शनिना वचनो करता सत्य, अविरोधी,  
अने प्रमाणभूत थाय छे, तो कोइक सूक्ष्म, अगम,  
अगोचर वात छद्मस्थ मदबुद्धिना ग्राह्यमा न आवी  
शके, तोपण बीजी घणी वात मळे छे तेने अनु-  
भवे ते पण सत्यज होवी जोइए, एम वीरप्रभुना  
वचनो पण युक्ति तथा न्याय सिद्ध सत्य होवार्थी  
वीरपरमात्मास, अनुमानपणे पण सिद्ध थया, ३  
उपमा प्रमाणे सुरिससिहाण्य एटले तप वेजे तथा

करे तो अधिक गुणठाणी कहेवाय, नहितो भावनी  
शुद्धाशुद्ध तारतम्यता कहेवाय

१३४ प्र०—सम्यक्त्व मोहनीयने कोण वेदे, अने ज्या सुधी वेदे,  
अने तेनु स्वरूप शु ?

उ०—क्षयोपशम समकित्तीने समकित मोहनीनो उदय होय  
अने उपशमिक अने क्षायिकने ते न होय, तेमज  
वेदकने एक समयनोज अतिमूक्ष्म काळ होवायी  
गणत्रीमा लीघु नथी, सम्यक्त्व मोहिनी ते क्षयो-  
पशमीने होय तथा उपशमीने सत्ताए होय, तेयी  
प्रदेशे अने रसे अनुक्रमे, ते सकाकरादि सहज  
विभ्रमता वेदे, कोइक जिनप्रणीत सूक्ष्म अर्थभाव मध्ये  
मुझाय ते सम्यक्त्वमोहनीयतु स्वरूप जाणवु

१३५ प्र०—उत्सर्ग अने अपवादतु शु स्वरूप छे ?

उ०—उत्सर्ग ते व्यवहारमार्ग अपवाद ते निश्चयमार्ग यथा  
साउने पृथ्वीकायादि षट्कायनी विराधना निषेधी  
छे कश्चित् कारणे नदी उतरवी पडे तथा आहा-  
रादिकने अर्थे गुरुदेव वदनाने अर्थे चालता विरा-  
वना थाय ते उत्सर्ग ते माटे अपवावादे पञ्चक्खाण  
महाव्रतना होई अने काइक अण कारण पडे  
उत्सर्गमार्ग होय, तथा वाचानान्तरे कोइक ग्रन्थे  
उत्सर्ग ते उत्कृष्टो निश्चयमार्ग कह्यो छे, अने  
—अपवाद ते कोमलमार्ग माटे व्यवहारमार्ग—कह्यो  
छे, तेहनो स्वरूप आगे लख्यो छे ए भाव, उत्सर्ग  
मार्गनी चर्चा घणी छे, पण इहा तो अल्पबुद्धिए  
जेहवु जाण्यु तेहवु लख्यु छे इति भाव

૩૦-વસનાઢી ગ્રહાર પૂર્વેદ્રિયથાપરકાયજીવ વિદિશીણ  
ઉપજનારને પાચ સમય ઢાગે છે

૧૩૨ પ્ર૦-અમિસધિવીર્યં અને અનમિસધિવીર્યં તે શુ ?

૩૦-અમિસધિ વીર્યં તે ઉપયોગ પૂર્વક આત્મવીર્ય, અને  
અનુપયોગ આત્મવીર્યં તે અનમિસધિવીર્યં

૧૩૩ પ્ર૦-સમકિતી શ્રાવકને ગૃહસ્થપણે છઢુ ગુણઠાણુ સ્પર્શ  
કે નહીં ?

૩૦-સમ્યગ્દષ્ટિણુ દેશવિરતિ ગૃહસ્થાવાસ ડતા કોઢુ જા-  
ણસ્યે જે તે ચોથા પાચમા ગુણઠાણાવાલાને નિર્મલ  
અધ્યવસાણુ ઢ્યાનદશાણુ શુભયોગે શુભ ધર્મધ્યાને  
છઢુ સાતમા ગુણઠાણાના પરિણામ આવે પછે તે  
કાલાન્તરે અતર્મુદ્ધૂર્તમાત્ર રહીને પછે મટી જાય  
પોતાના ગુણઠાણા માફક પરિણામ રહે ણુ કહે તે  
અસત્ય સ્વમતિ કલ્પના પળ કોઢુ ગ્રન્થોક્ત નહીં  
તપોત્તર ચોથા પાચમાથી માવચારિત્ર ગુણ આવે  
ચઢ્ઢે ૧૩ મા ૧૪ સુધી ચઢીને મરુદેવ્યાદિનાપરે  
પુણ્યાઢ્યરાજાનીપરે સિદ્ધિવરે પાછો તે ગુણઠાણા ફરસીને  
પઢે નહિ ગૃહસ્થવાસી ગમે તેવો ઉત્કૃષ્ટ શ્રાવક હોય,  
તોપળ તેને ગુણઠાણુ પાચમુજ હોય છે, પળ છઢુ  
સાતમુ ન કહેવાય, કેમજે ગુણઠાણાની પ્રાપ્તિ કષાયના  
ક્ષયોપશમને આધીન છે, અને અધ્યવસાયની નિર્મ-  
લતા તે નિજ પરિણતિને આધીન છે, તે પરિણતિ  
પોતાના અધ્યવસાયની નિર્મલતાણુ કષાયનો ક્ષયો-  
પશમ કરીને અધિક ડચા ગુણઠાણાની પરિણતિરૂપ

करे तो अधिक गुणटाणी कहेवाय, नहितो भावनी  
शुद्धाशुद्ध तारतम्यता कहेवाय

३४ प्र०—सम्यक्त्व मोहनीयने कोण वेदे, अने ज्या सुधी वेदे,  
अने तेनु स्वरूप शु ?

उ०—क्षयोपशम समकिर्ताने समकित मोहनीयानो उदय होय  
अने उपशमिक अने क्षायिकने ते न होय, तेमज  
वेदकने एक समयनोज अतिमूक्षम काळ होवार्थी  
गणार्थीमा लीयु नथी, सम्यक्त्व मोहिनी ते क्षयो-  
पशमिने होय तथा उपशमिने सत्ताए होय, तेथी  
प्रदेशे अने रसे अनुक्रमे, ते सकाकरादि सहज  
विग्रमता वेदे, कोइक जिनप्रणीत सूक्ष्म अर्थभाव मध्ये  
मुझाय ते सम्यक्त्वमोहनीयनु स्वरूप जाणवु

३५ प्र०—उत्सर्ग अने अपवादनु शु स्वरूप छे ?

उ०—उत्सर्ग ते व्यवहारमार्ग अपवाद ते निश्चयमार्ग यथा  
सागुने पर्वकायादि पदकायनी विराधना निषेधी  
छे कश्चित् कारणे नदी उतरती पडे तथा आहा-  
रादिकने अर्थ गुस्तेन वदनाने अर्थे चालता विरा-  
धना थाय ते उत्सर्ग ते माटे अपवादादे पध्दखाण  
महाव्रतना होई अने काइक अण कारण पडे  
उत्सर्गमार्ग होय, तथा वाचानान्तरे कोइक ग्रन्थे  
उत्सर्ग ते उत्कृष्टो निश्चयमार्ग कछो छे, अने  
अपवाद ते कोमलमार्ग माटे व्यवहारमार्ग कछो  
छे, तेहनो स्वरूप आगे लख्यो छे ए भाव. उत्सर्ग  
मार्गनी चर्चा घणी छे, पण इहा तो अल्पबुद्धि  
जेहवु जाण्यु तेहवु लख्यु छे. इति भाव.

१३६ प्र०—दीवा प्रमुख ज्योतिमय पदार्थोना प्रकाश पडे छे, ते दीवामध्ये रहेला अग्निमाय जीवना पर्याय छे ?

उ०—दीवा मध्ये जे अग्निना जीव छे, ते माहेज परिणामी रूपा छे, पण दाहकरूप पर्याय छे ते बाहेर नीकळे नहि, तथा दीवाना प्रकाशरूप पुद्गल जे बाहेर दीसे छे, तेतो विस्त्रसा पुद्गलनी पर्याय ठाया छे तथा दीवाना बाहेर जे प्रकाशरूप पुद्गल दीसे छे ते, तथा प्रकाशरूप पुद्गलना निमित्ते, अपर विस्त्रसा पुद्गल श्रेणिवद्ध जमाव थाय छे ते अचित्त दीसे छे पण ते अग्निमाय जीवना पर्याय नहि, तेना (अग्निना) गुण पर्याय तो दाहकरूपे छे, ते ज्या व्यापे त्या बाळी भस्म करे, माटे चाहिर पटतो प्रकाश विस्त्रसा पुद्गल पर्याय (अचित्त) जाणवा, जेम आरसीमा मुख जोता आपणा शरीर समान सर्व प्रतिबिंबित पुद्गल दीसे छे, ते काड आपणा शरीरना पर्याय, आरसीमा जता नयी, पण ते आरसीनु निमित्त पामीने त्या शरीर मुखादि जेवा विस्त्रसा पुद्गल, तत्काल श्रेणिवद्ध तद्रूप परिणामिने जमाव थाय छे, पण ते जीवना पर्याय न जाणवा, एवीज रीते शरीरनी छाया विगेरे विस्त्रसा पुद्गलजमाव जाणवो, तेम दीवा प्रमुखना प्रकाशादिमा पण जाणवु \*

\* श्रीमद् देवचन्द्रजीए दीवाना प्रकाशने विस्त्रसा पुद्गल मानी अचित्त कह्यो छे आ बाबतमा बे मत छे केटलाक मुनियो श्रीमद् देवचन्द्रजीनी पेठे दीपकना प्रकाशने विस्त्रसा पुद्गल मानी अचित्त गणे छे



१३७ प्र०—वक्ता तथा श्रोताना चौद चौद गुण कया कया छे ते कहो

उ०—वक्ताना चौद गुणो — १ आगमोक्त सोळबोलना जाण, २ शास्त्रार्थ विस्तारवत, ३ वाणीमा मीठाश, ४ प्रास्ताविक अवसर ओळखे, ५ सत्य बोले, ६ साभळनारना सदेह छेदे, ७ बहु शास्त्रवेत्ता गीतार्थ उपयोगी होय, ८ अर्थ विस्तारी सवरी जाणे, ९ व्याकरण रहित कठिनभाषा के अपशब्द न बोले, १० वाणीए सभाने रीझावे, ११ वाणी साभळीने श्रोता रसस्वाद पामे, १२ प्रश्नार्थवत, १३ अहकार रहित, १४ सतोपादिधर्मवत श्रोताना चौद गुणो — १ भक्तिवत, २ प्रियभाषी, ३ निरभिमानी, ४ साभ-

अने रात्रे उपाश्रयमा दीपकना प्रकाशमा पुस्तको वाचे छे शरीरपर प्रकाश पडे छे ते अट्टाह्नविद्यसा पुद्गलरूप छे एम माने छे अनन्त परमाणुओनो स्वरूप बने छे तेनी अवश्य उया होय छे. अग्निकायना पुद्गलोनी, मणिनी उयानी पडे उया पडे छे दीवानी चारे तरफ प्रकाश मय विद्यसा पुद्गलो छे, तेज अग्निना उया—प्रतिविम्ब पुद्गलो छे माटे उया प्रतिविम्ब पुद्गलो छे ते विस्रमरूप होई अचित्त छे अन्य सचित्त मनुष्य वगरे उकायना प्रतिविम्ब उया पुद्गलोनी पेटे—ए प्रमाणे आगमोक्तयुक्तियो अनेक जणावे छे श्रीमद् देवचन्द्रजी बहुश्रुत गीतार्थ द्रव्यानुयोगी हता तेमना गुरुआना परपरापण ए मान्यतावाळी होवी जोईए तपागच्छमा पण कट्टलाक मुनियोनी तेवी मान्यता तथा प्रवृत्ति सभळाय छे बीजा पक्षवाळाजो दीवाना पुद्गलोनी उजेही माने छे तेओ ग्रथना पाठनी साक्षी आपे छे ( तत्त्व केवल्लिगम्यम् ) शो उ सू

माण, ३ काल्थी अनादिअनत, ४ भाव्यी अरूपी (अवर्णादि),  
५ गुण चलणसहायक

२ अवर्मास्तिकाय - १ द्रव्य्यी एक, २ क्षेत्र्यी लोकप्र-  
माण, ३ काल्थी अनादिअनत, ४ भाव्यी अरूपी (अवर्णादि),  
५ गुण स्थिरतासहायक

३ आकाशास्तिकाय - १ द्रव्य्यी एक, २ क्षेत्र्यी लो-  
कालोकप्रमाण, ३ काल्थी अनादिअनत, ४ भाव्यी अरूपी  
( अवर्णादि ), ५ गुण अपकाशदानसमर्थ

४ काळ - १ द्रव्य्यी अनेक एटले अनताअनत, २  
क्षेत्र्यी मनुष्य लोक मध्ये, ३ काल्थी अनादिअनत, ४  
भाव्यी अरूपी ( अवर्णादि ), ५ गुण नवा, पुराणा, वर्तना  
लक्षण

५ पुद्गलास्तिकाय - १ द्रव्य्यी अनेक एटले अनता, २  
क्षेत्र्यी लोक मध्ये, ३ काल्थी अनादिअनत, ४ भाव्यी  
रूपी एटले वर्णादियुक्त, ५ गुण पुरण, गलण, मिलण, विख-  
रण, सडण, पडण, विध्वसन, वर्मलक्षण

६ जीवास्तिकाय - १ द्रव्य्यी अनेक एटले अनत, २  
क्षेत्र्यी लोक मध्ये, ३ काल्थी अनादिअनत, ४ भाव्यी  
अरूपी ( अवर्णादि ), ५ गुण चेतनाउपयोगवत

एवी रीते षट्द्रव्यना द्रव्यादि अपेक्षाए, त्रीश भेद  
दर्शाव्या प्रकारातरे, प्रकारातरे निश्चयव्यवहारनये द्रव्य क्षेत्र  
काल भावे कथचित् सप्रदेशी, कथचित् अप्रदेशी, एम भज-  
नाए विध विध अपेक्षाए अनेक भेद स्वरूप विस्तारित ग्रथा-  
तस्थी गुरुगम्य जाणी लेबु जूनी प्रत्यन्तरे नीचे मुजब छे

पुनरपि द्रव्ययी क्षेत्रयी कालयी भावयी स्यु ? ते कहे छे ? द्रव्ययी अपदेशी, वीजु क्षेत्रयी अपदेशी २, नीजे कालयी अपदेशी ३, चोये भावयी अपदेशी ४, हवे क्षेत्रयी ते नियमा अपदेशी ते द्रव्ययी स्यात् सप्रदेशी अपदेशी ४ हवे कालयी स्यात् सप्रदेशी अपदेशी कालयी पण भजना, क्षेत्रयी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अपदेशी, हवे भावयी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अपदेशी एणी रीते लेजो ए भाव, हवे जे द्रव्ययी सप्रदेशी ते क्षेत्रयी सप्रदेशी छे, जे कालयी सप्रदेशी छे ते भावयी सप्रदेशी छे ४ हवे सप्रदेशी ते क्षेत्रयी स्यात् सप्रदेशी, अपदेशी ते द्रव्ययी सप्रदेशी नियमा ते द्रव्ययी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अपदेशी ते द्रव्ययी सप्रदेशी होइने अपदेशी पण छे हवे अपदेशी कालयी स्यात् सप्रदेशी, सप्रदेशी स्यात् अपदेशी, कालयी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अपदेशी, ते क्षेत्रयी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अपदेशी, हवे भावयी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अपदेशी भावथकी भजना भावथकी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अपदेशी ने कालयी पण स्यात् सप्रदेशी स्यात् अपदेशी इति भाव

१४२ प्र०-षट्द्रव्यना गुणपर्यायनु शुद्धाशुद्ध स्वरूप यथार्थ विस्तारे समजावो

उ०-षट्द्रव्यमध्ये प्रथम जीवद्रव्य लइए, ए जीव वे प्रकारे छे, एक शुद्ध अने वीजो अशुद्ध, द्रव्यकर्म, भावकर्म अने नोकर्मादि सर्व कर्मकलके रहित शुद्ध निष्पन्न, स्वरूपी सिद्धालये अनादि तथा सादि अनत भागे, लोकाग्रे विराजता सिद्धपरमात्माओना

જીવદ્રવ્ય શુદ્ધ જાણવા, તથા કર્માવરણે સહિત મ-  
 લિન આત્મપ્રદેશી, રાગદ્વેષાદિ ભાવ મલિન પરિણ-  
 તિવત ચતુર્ગતિ ભ્રમણ લક્ષણરૂપ અશુદ્ધ જીવદ્રવ્ય  
 જાણવા, હવે તેના ગુણ અને પર્યાય વિષે લક્ષી-  
 છીએ — જીવના ગુણ પણ વે પ્રકારે છે. ૧ શુદ્ધ,  
 ૨ અશુદ્ધ, ત્યા શુદ્ધગુણ તે કેવલજ્ઞાનાદિ અ-  
 નતગુણલક્ષ્મીરૂપ પરમશુદ્ધક્ષાયિક ભાવના ગુણ  
 તે તથા મતિજ્ઞાનાદિ દશ ભેદ શુદ્ધાશુદ્ધ ક્ષાયો-  
 પશમિક ભાવના ગુણ તે અશુદ્ધ જાણવા હવે  
 જીવના પર્યાય પણ વે ભેદે છે, એક વ્યજનપર્યાય  
 અને વીજા અર્થ પર્યાય, વળી વ્યજન પર્યાય પણ  
 વે ભેદે છે, એક શુદ્ધ અને વીજા અશુદ્ધ, ત્યા  
 શુદ્ધ વ્યજન પર્યાય તે ચરમ શરીર પ્રમાણ કિંચિત્  
 ઊની અવગાહનાવત, સિદ્ધાવસ્થાવત તે શુદ્ધ વ્યજન  
 પર્યાયવત જીવ જાણવા, તથા નરનારકાદિ ચતુ-  
 ર્ગતિરૂપ અશુદ્ધ વ્યજનપર્યાય જાણવા, અર્થ પર્યાય  
 પણ વે ભેદે છે — એક શુદ્ધ અને વીજા અશુદ્ધ  
 ત્યા આપણી ગુણશ્રેણિ મધ્યે ષડ્ગુણહાનિવૃદ્ધિરૂપ-  
 અશુદ્ધલઘુપર્યાય તે શુદ્ધઅર્થપર્યાય, અને મતિ-  
 જ્ઞાનાદિ અવલોકન અવસ્થિતિ એક અક્ષરને અન-  
 તમે ભાગે પર્યાયરૂપ જે જ્ઞાનાદિ ચેતન ઉપયોગ  
 સ્થિતિ તે અશુદ્ધ પર્યાય જાણવો, તથા ઉત્પાદ  
 વ્યયદ્રવરૂપ જીવના શુદ્ધાશુદ્ધ દ્રવ્યગુણપર્યાય  
 જાણવા, જેમ મતિજ્ઞાન ઉપયોગનો વ્યય, શ્રુતજ્ઞાનો-  
 પયોગનો ઉત્પાદ અને જ્ઞાનગુણ ઘુવ તે શુદ્ધ ભેદ,

तथा मनुष्यगतिनो व्यय, देवगतिनो उत्पाद अने  
 जीवद्रव्य तो शाश्वत द्रुवरूपे छे, ते अशुद्धभेद  
 जाणवो हवे पुद्गलद्रव्यना गुणपर्याय विचारीए,  
 त्या ते पुद्गलद्रव्य पण वे भेदे छे, एक शुद्ध  
 अने बीजो अशुद्ध, आकाशप्रदेशे रहेल शुद्ध  
 अविभागी अच्छेद अभेदरूप परमाणुओ ते शुद्ध  
 पुद्गलद्रव्य, अने द्वयणुक त्र्यणुकादि परमाणुओना  
 मनेला जे स्कंधो ते अशुद्ध पुद्गलद्रव्य, हवे पौद्ग-  
 लिक गुण पण वे भेदे छे, एक शुद्ध अने बीजो  
 अशुद्ध, त्या शुद्ध ते निर्विभागी वीसगुणयुक्त  
 पुद्गलद्रव्यगुण जाणवा वीसगुणादि सहित अनंत  
 गुणमिश्रित द्वयणुकादि स्कंधरूप मुख्य गमन  
 रूपान्तर गुणनी गौणता अने सत्तागुणनी मुख्यता  
 तेने अशुद्धपुद्गल गुण कहीए, वळी पुद्गलपर्याय  
 पण शुद्ध अने अशुद्ध एम वे भेदे छे, ते पण  
 व्यजन अने अर्थना भेदे द्विविध छे, त्या शुद्ध  
 आकाशप्रदेशे अविभागी षट्गुणहानिवृद्धिरूप शुद्ध  
 परमाणु पर्याय ते अने अशुद्धव्यजनपर्याय ते  
 स्थूल सूक्ष्म परिणामरूप द्वयणुकादि स्कंध पर्याय  
 ते, वळी शुद्धअर्थपर्याय ते पोतानी गुणश्रेणि मध्ये  
 षट्गुणहानिवृद्धिरूप परिणमन पर्याय ते, तथा  
 अशुद्धअर्थपर्याय ते द्वयणुकादि स्कंधरूप गुण-  
 विगति, तीव्र मन्द तारतम्यभेद परिणमन पर्याय  
 ते, जेम पूर्व स्कंधनो व्यय, वर्तमाननो उत्पाद

अने पुद्गल द्रव्य तो शाश्वत छे, एट्ठे जेम सो-  
 नानो कदोरो भागीने सोनाना त्राजुय्य कराव्या त्या  
 कदोरानो व्यय, त्राजुय्यनो उत्पाद अने सोनु ते  
 युय हवे वर्मास्तिकायना द्रव्य गुण पर्याय विचारे  
 छे धर्मास्तिकाय शुद्धद्रव्य लोकप्रमाण, असख्यात  
 प्रदेशी, अखड, एक आकृतिरूप अरूपि शुद्धव्यजन  
 पर्यायरूप वर्मास्तिकायद्रव्य जाणनु, तथा पो-  
 तानी गुणत्रेणि मव्ये षट्गुणहानिवृद्धिरूप परिण-  
 मन करे त्या शुद्ध अर्थपर्याय वर्मास्तिकायना  
 कहिये, गुण ते जीव पुद्गलने गतिसहायकरूप,  
 तथा उत्पादव्ययध्रुवपणे षट्गुणहानिवृद्धिरूप पर्याय  
 जाणवा—जेम चलणगतिनो उत्पाद, स्थितिनो  
 व्यय अने द्रव्यसत्ता दुव शाश्वत जाणवी, एवीज  
 रीते अधर्मादि बीजा त्रण द्रव्योनु पण किंचित्  
 स्वरूप लखीए छीए—अधर्मनो गुण जे पुद्गलने  
 स्थितिसहायक, असख्यातप्रदेशी, लोकप्रमाण,  
 अखड, षट्गुणहानिवृद्धिरूप परिणाम, ते शुद्ध प-  
 र्याय, त्या अखडआकृतिरूप शुद्ध व्यजनपर्याय  
 जाणवो अने ज्या षट्गुणहानिवृद्धि करे त्या शुद्ध  
 अर्थपर्याय जाणवो, जेम स्थितिनो उत्पाद, गतिनो  
 व्यय, अने द्रव्यसत्ता दुव जाणवी, काळ द्रव्यनो  
 गुण वर्तना लक्षण, पचद्रव्यनो वर्तना पर्याय सर्व  
 द्रव्यनो पर्याय, असख्यात लोकप्रमाण शुद्ध पर्याय  
 कहीए वर्तमान समयनो व्यय, अनागत समयनो

ઉત્પાદ, દ્રવ્ય સત્તા ધ્રુવ, ઉપચારે એક કાલદ્રવ્ય આકૃતિ તે શુદ્ધ વ્યજનપર્યાય, હવે આકાશદ્રવ્યનો ગુણ અવકાશદાનલક્ષણ, લોકાલોકપ્રમાણ, અનતપ્રદેશી, ઘટાકાશનો ઉત્પાદ, પૂર્વઘટાકાશનો વ્યય અને દ્રવ્ય સત્તા ધ્રુવ જાણવી તથા લોકાલોક પ્રમાણ અઘટઆકૃતિરૂપ શુદ્ધવ્યજનપર્યાય કહીયે, એમ પદદ્રવ્યનુ પર્યાયાદિ કિંચિત્ સ્વરૂપ કહિને તેમા જે કાઙ વિશેષ જાણવા યોગ્ય છે તે કહે છે —

ગાથા—પરિણામી જીવમુક્તા, સપણસા ઇગલિત્તકિરિયાય  
ગિચ્ચકારણકત્તા, સવ્વગય ઇયર અપ્પવેસે ( ? )

૧ જીવ અને પુદ્ગલ પરિણામી, શેષ ચાર અપરિણામી, ૨ જીવદ્રવ્ય તે જીવ ચેતનરૂપ અને શેષ પાચ અજીવ અચેતન જડરૂપ છે, ૩ પુદ્ગલ રૂપી મૂર્તિમત છે, શેષ પાચ અરૂપી છે, ૪ કાલ, અપ્રદેશી છે, શેષ પાચ સપ્રદેશી છે, ધર્મ, અધર્મ અને આકાશ એ ત્રણ એક અને શેષ ત્રણ અનેક, ૬ આકાશ ક્ષેત્ર છે, અને શેષ પાચ ક્ષેત્રી છે, ૭ જીવ અને પુદ્ગલ બે સક્રિય છે, શેષ ચાર અક્રિય છે, ૮ જીવ અને પુદ્ગલ બે વ્યવહારથી અનિત્ય શેષ ચાર નિત્ય છે, ૯ જીવ અકારણરૂપ અને શેષ પાચ કારણરૂપ છે, ૧૦ જીવ કર્તા અને શેષ પાચ અકર્તા છે, ૧૧ આકાશ સર્વગત છે, અને શેષ પાચ અસર્વગત છે.

અને પુદ્ગલ દ્રવ્ય તો શાશ્વત છે, પૃથ્લે જેમ સો-  
 નાનો કદોરો માર્ગને સોનાના ગાયુત્ર કરાવ્યા ત્યા  
 સ્ફોરાનો વ્યય, ગાયુત્રનો ઉત્પાદ અને સોતુ તે  
 ગુણ હવે ધર્માસ્તિકાયના દ્રવ્ય ગુણ પર્યાય વિચારે  
 છે ધર્માસ્તિકાય શુદ્ધદ્રવ્ય લોકપ્રમાણ, અસહ્યાત  
 પ્રદેશી, અસ્વડ, પુરુ આકૃતિરૂપ અરૂપિ શુદ્ધવ્યજન  
 પર્યાયરૂપ ધર્માસ્તિકાયદ્રવ્ય જાણવું, તથા પો-  
 તાની ગુણત્રેણિ મત્વે ષટ્ગુણહાનિવૃદ્ધિરૂપ પરિણ-  
 મન કરે ત્યા શુદ્ધ અર્થપર્યાય ધર્માસ્તિકાયના  
 કહિયે, ગુણ તે જીવ પુદ્ગલને ગતિસહાયકરૂપ,  
 તથા ઉત્પાદવ્યયઘ્નરૂપે ષટ્ગુણહાનિવૃદ્ધિરૂપ પર્યાય  
 જાણવા—જેમ ચલણગતિનો ઉત્પાદ, સ્થિતિનો  
 વ્યય અને દ્રવ્યસત્તા દુઃખ શાશ્વત જાણવી, ઈવીજ  
 રીતે અધર્માદિ વીજા ત્રણ દ્રવ્યોત્તુ પળ કિંચિત્  
 સ્વરૂપ લક્ષીએ છીએ—અધર્મનો ગુણ જે પુદ્ગલને  
 સ્થિતિસહાયક, અસહ્યાતપ્રદેશી, લોકપ્રમાણ,  
 અસ્વડ, ષટ્ગુણહાનિવૃદ્ધિરૂપ પરિણામ, તે શુદ્ધ પ-  
 ર્યાય, ત્યા અસ્વડઆકૃતિરૂપ શુદ્ધ વ્યજનપર્યાય  
 જાણવો અને જ્યા ષટ્ગુણહાનિવૃદ્ધિ કરે ત્યા શુદ્ધ  
 અર્થપર્યાય જાણવો, જેમ સ્થિતિનો ઉત્પાદ, ગતિનો  
 વ્યય, અને દ્રવ્યસત્તા દુઃખ જાણવી, કાલ દ્રવ્યનો  
 ગુણ વર્તના લક્ષણ, પચદ્રવ્યનો વર્તના પર્યાય સર્વ  
 દ્રવ્યનો પર્યાય, અસહ્યાત લોકપ્રમાણ શુદ્ધ પર્યાય  
 કહીએ વર્તમાન સમયનો વ્યય, અનાગત સમયનો





૧૪૩ પ્ર૦-વેદના સમર્થી ચૌભગી કહો

૩૦-૧ અત્પવેદના અલ્પનિર્જરા તે દેવનાઓને, ૨ મહા-  
વેદના અત્પનિર્જરા તે નારકીને, ૩ મહાવેદના મહા-  
નિર્જરા તે અપ્રમત્ત સાગુને, ગજસુકુમાલનીપરે, ૪  
અલ્પવેદના મહાનિર્જરા તે શૈલેશીકારકમહાત્મા  
ચૌદમા ગુણટાળી પરમાત્મસ્વરૂપ સન્મુસી જાણવા

૧૪૪ પ્ર૦-સમ્યક્ત્વ અને મિથ્યાત્વની ચૌભગી મિત્ર મિત્ર જી-  
વાશ્રિત કહો

૩૦-અનાદિઅનતમિથ્યાત્વ અભવ્યને, ૨ અનાદિસાત  
મિથ્યાત્વ ભવ્યને, ૩ સાદિસાતમિથ્યાત્વ પ્રાપ્ત  
સમ્યક્ત્વવમનારને, ૪ સાદિ અનત ભાગો શૂન્ય છે

૧૪૫ પ્ર૦-વ્રતઅગીકાર તથા પાલનમા સિંહપણા તથા શિયા-  
લ્લપણાની ચૌભગી દૃષ્ટાત સહિત કહો

૩૦-૧ સિંહપરે વ્રત ગ્રહે અને સિંહની પરે પાલે તે  
જબુસ્વામી સ્થૂલભદ્રાદિની પરે, ૨ સિંહપરે ગ્રહે અને  
શિયાલ્લનીપરે પાલે, તે મરિચાદિવત્, ૩ શિયાલ્લ-  
પરે ગ્રહે અને સિંહની પરે પાલે, તે મેતાર્યમુનિ-  
આદિવત્, ૪ શિયાલ્લપરે ગ્રહે અને શિયાલ્લપરે પાલે  
તે અગારમર્દકાચાર્ય, કુલવાલુકાદિવત્ જાણવા

અર્થપય। યોગ તે કયા

વ્યય, અને

ગુણ વર્તના લક્ષણે, ષદ્દ્રવ્ય વિષયક ગુણપર્યાય સ્વરૂપ  
દ્રવ્યનો પર્યાય, અસત્ય વિવેચનમુખ્યાધિકાર, ૨ ધર્મ-  
વહીણ વર્તમાન સમય સતી મહાત્માઓના ચરિત્રોનું

कथन स्वरूप, ३ गणितानुयोग ते द्वीप, समुद्र,  
क्षेत्रादिनु, क्षेत्रफळादिमापनु गणित कथन स्वरूप,  
४ चरणकरणानुयोग ते क्रियानुष्ठान चारिनादि व्रत  
पञ्चखाण नियमादि विधि कथनस्वरूप

१४७ प्र०-जीव दुर्लभबोधिपणु केटला कारणे पामे ?

उ०-छहिठाणेहिंदुलभबोहिमाणकम्मपकरति अरिहताणअव-  
न्नवयमाणे ॥१॥ अरिहतपन्नत्तस्सधम्मस्सअवन्नवयमाणे  
॥२॥ आयरियाण अवन्नवयमाणे ॥३॥ उवज्झायाण  
अवन्नवयमाणे ॥४॥ चाउवन्नस्ससधस्स अवन्नवयमाणे  
॥५॥ समदीठीदेवाण अवन्नवयमाणे ॥ ६ ॥

१ श्रीअरिहत, २ तथा तेमनो भाखेलो जे धर्म  
तथा तेमनी प्रतिमाजी तथा तेमना वचनरूप जे  
सिद्धात इत्यादिक अरिहत सबधी अवर्णवाद निद्रा,  
द्वेषादि करवारूप अविनयादि कारण थकी, ३ जिन  
आज्ञाकारी, जिनशासनस्थभरूप श्रीआचार्यभग-  
वतनो अवर्णवाद करवा यकी, ४ श्रीसूत्रसिद्धा-  
तना पारगामी आचार्यपदने योग्य, अनेक शिष्योने  
सारणावारणादि हित शिक्षा, सूत्रसिद्धातार्थ अभ्या-  
सना दाता श्रीउपाध्यायजी भगवतनो अवर्णवाद  
करवा थकी, ५ ज्ञाने करीने एकात मोक्षमार्गनाज  
साधक श्रीसावु मुनिमहाराजानो अवर्णवाद करवा  
यकी, ६ जिन आज्ञाकारी सुशील श्रीअरिहतादिकने  
पण पूजनिक एवो श्रीचतुर्विधसव तेनो अवर्ण-  
वाद करवा थकी, जीव दुर्लभबोधिपणु पामे, अर्थात्

अनतकाळ ससारपरिग्रमण करता थका पण धर्म सामग्रीनी जोगवाड पामवी महादुर्लभ थड पडे, तो पथी धर्म प्राप्तिनी दुर्लभतानी पातनु तो कहेवुज शु ?

१४८ प्र०—आठ प्रकारना आत्मा ते कया ?

उ०—१ द्रव्यात्मा एटले असख्यातप्रदेशी शुद्धजीव-द्रव्य स्वगुणपर्यायसहित सत्ताए छे ते शुद्ध द्रव्यात्मा, अने तेना ज्ञानदर्शनादि उपयोगे रहित ते अशुद्धद्रव्यात्मा कहीये, २ कषायात्मा, सोळ कषाय तथा नव नोकषाय प्रवर्तमान जीव ते कषायात्मा, ३ मनवचनादि योगप्रवर्तमान आत्मा ते योगात्मा, ४ ज्ञान अज्ञानादि उपयोगी आत्मा ते उपयोगात्मा, ५ ज्ञानात्मा एटले जीवाश्रित सच्चिदानंदन ज्ञानस्वरूपे प्रवर्तमान आत्मा ते, ६ दर्शनात्मा ते सम्यग्दृष्टिजीव ते, ७ चारित्रात्मा ते सत्तागत स्वरूपरमणरूपस्थिरतागुणे प्रवर्तमान जे जीव ते, ८ वीर्यात्मा, मन वचन कायादिना बळ पराक्रम-रूप अशुद्ध वीर्यात्मा कहीए, पण आत्मसत्तागत रहेल अनतशक्तिनी स्फुरतिए शुद्धात्मोपयोगे प्रवृत्ति करी अनादि अनतकाळना कर्म मळने निकदन करणरूपशक्तिनी व्यक्ति ते शुद्धवीर्यात्मा कहीए

१४९ प्र०—पूर्वोक्त अष्टविध आत्माओमायी कड गतिमा केटला होय ते कहो

उ०—नारकी तथा देवताओ मध्ये सात आत्मा होय, पण चारित्रात्मा न होय, तथा एकेंद्रिय मध्ये छ आत्मा

सभवे पण ज्ञानात्मा अने चारित्रात्मा नहि, तथा तिर्यचपचेद्रिय अने मनुष्यगतिमध्ये आठे आत्मा होय, तथा पचमगतिमध्ये एटले श्रीसिद्धपरमात्माने अनतगुणभाजनरूप शुद्ध जीवद्रव्य ते श्रीसिद्ध भगवतनु छे, तेने विषे चतुर्विधआत्मा छे, ते ज्ञानात्मा, दर्शनात्मा, उपयोगात्मा तथा शुद्ध द्रव्यात्मा

१५० प्र०—अष्टविध त्रसजीवो छे ते कया ? ते दृष्टात सहित कहो

उ०—१ अडजा ते पक्षीआदि, २ पोतजा ते गजादि, जरादि ते गवादि, ४ रसजा ते कीटकादि, ५ स्वेदजा ते यूकादि, ६ समुच्छिम ते पतगादिक, ७ उद्भिज ते गिंगोटादि, ८ उत्पादिका ते देव नरकादि

१५१ प्र०—जीवना दस प्रकारना परिणाम ते कया ?

उ०—१ गति, २ इन्द्रिय, ३ कषाय, ४ लेश्या, ५ योग, ६ उपयोग, ७ ज्ञान, ८ अज्ञान, ९ दर्शन, १० चारित्र इति पत्रयणा सूत्रना १३ मा पद मध्ये छे ।

१५२ प्र०—जीवपरिणमन केटला प्रकारे छे ?

उ०—“ ब्रवण ? गई २ सठाणा ३ मेय ४ वन्न ५ गव ६ रस ७ फास ८ अगुरुलघु १० परिणामा ए दसहृतिअजीवा ॥ १ ॥

१ ब्रवन, २ गति, ३ सस्थान एटले आकृति, ४ जाति, ५ वर्ण, ६ गव, ७ रस, ८ स्पर्श, ९ अगुरु लघु, १० शब्द, ए दस रीते परिणामे छे

१५३ प्र०—अतर्मुद्धूत कोने कहीए ?

अनतकाळ सत्तारपरिमण करता थका पण वर्म  
रामग्रीनी जोगनाइ पामनी महादुर्लभ वइ पडे, तो  
पश्टी धर्म प्राप्तिनी दुर्लभतानी जातनु तो कहेवुज शु ?

१४८ प्र०—आठ प्रकारना आत्मा ते कया ?

उ०—१ द्रव्यात्मा एटले असरयातप्रदेशी शुद्धजीव-  
द्रव्य स्वगुणपर्यायसहित सत्ताए छे ते शुद्ध द्रव्या-  
त्मा, अने तेना ज्ञानदर्शनादि उपयोगे रहित ते  
अशुद्धद्रव्यात्मा कहीये, २ कपायात्मा, सोळ कपाय  
तथा नव नोकपाय प्रवर्तमान जीव ते कपायात्मा,  
३ मनवचनादि योगप्रवर्तमान आत्मा ते योगात्मा,  
४ ज्ञान अज्ञानादि उपयोगी आत्मा ते उपयोगात्मा,  
५ ज्ञानात्मा एटले जीवाश्रित सच्चिदानंदघन  
ज्ञानस्वरूपे प्रवर्तमान आत्मा ते, ६ दर्शनात्मा  
ते सम्यग्दृष्टिजीव ते, ७ चारित्रात्मा ते सत्तागत  
स्वरूपरमणरूपस्थिरतागुणे प्रवर्तमान जे जीव ते,  
८ वीर्यात्मा, मन वचन कायादिना बळ पराक्रम-  
रूप अशुद्ध वीर्यात्मा कहीए, पण आत्मसत्तागत  
रहेल अनतशक्तिनी स्फुरतिए शुद्धात्मोपयोगे प्रवृत्ति  
करी अनादि अनतकाळना कर्म मळने निकदन कर-  
णरूपशक्तिनी व्यक्ति ते शुद्धवीर्यात्मा कहीए

१४९ प्र०—पूर्वोक्त अष्टविव आत्माओमाथी कइ गतिमा केटला  
होय ते कहो

उ०—नारकी तथा देवताओ मध्ये सात आत्मा होय, पण  
चारित्रात्मा न होय, तथा एकेद्रिय मध्ये छ आत्मा

अचानक सर्व साभरी आवे, अने तेथी पोते पूर्वे कोण हतो तथा ज्या एवीरीते वगेरे समस्त निजपणासु भान थट आवे तेने जातिस्मरण कहे छे, ते वे प्रकारे छे, एक शुद्धक्षयोपशमानुसार ते पूर्वभवना सम्यग्दृष्टि गाढ धर्माभ्यासी महात्मा-ओने याय ते, जेम श्रीवज्रस्वामी प्रमुखने, अने वीजु अशुद्धक्षयोपशमानुसार ते पूर्वभवना मोहादि विषय कषायादि चेष्टादि स्मरण रागद्वेषजनित निरर्थक जाणवु, जातिस्मरणमा जघन्ययी एक वे त्रण भव हेखे, मध्यम चार पाच छ आदि अने उत्कृष्ट नव भव सुधी देखे ( इति पत्रवणादि वचनात् ) \*

१५५ प्र०—पुण्य अने वर्ममा शु फेर ?

उ०—पुण्य ते शुभकर्मपुढल प्रकृति छे, ते जीवना शुभ परिणामे ए-ले सुपात्रने अन्नपानादि भक्ति नम-रकारादि कर्मे करीने नव प्रकारे बढाय छे, तेना नाम अन्नपुण्ये १ पाणपुण्ये २ लेहणपुण्ये ३ सयणपुण्ये ४ वत्थपुण्ये ५ मनपुण्ये ६ वयणपुण्ये ७ कायपुण्ये ८ नमोक्कारपुण्ये ९ ए नव भेद पुण्यना कह्या अने बेंतालीस प्रकारे शातादिरूपे भोगवाय छे,

\* जूनी प्रतिमा चउद रत्ननो प्रश्न छे तेना उत्तरमा

गाथा—“ चक्रभसिद्धतददा, आयुहसालाद्भुतिवत्तारि ।  
चम्भगणिफागणीनिहि, सिरिगेहेचकीणोद्भुति ॥ १ ॥  
सेणावईगाहावई, पुरोहियवद्दईनीययनगरे ।  
धीरयणरायकुले, वेअइढतेगयत्तुरया ॥ २ ॥

उ०—“ जीवेणरुहविफासिय, अतमुदुत्तपिजेणसामत्त । निय-  
माअवहृपुग्गल, परियट्ठोचेअसासारो ” ॥ १ ॥ पुट्ट-  
लानापरावर्त्तं पुट्टलपरावर्त्तं, अपकृष्टं किञ्चिन्न्यूनोऽ-  
र्द्धपुट्टलं परावर्त्तं अर्द्धपुट्टलपरावर्त्तं अथ अन्तर्मुहूर्त्तं तु  
प्रमाणं. अन्तर्मुहूर्त्तं अष्टसमपोर्द्धवट्टिद्वयं यावदित्यर्थं  
तच्चसम्यक्त्वोपशमिकं अत्रक्षेत्रपुट्टलपरावर्त्तनाधिकारं  
न द्रव्यादि पुट्टलपरावर्त्तंत्युपदेशकम् ।

एक चपटी वगार्डीए अथवा आख भीचीने उपा-  
डीए तेटला वखतमा असख्यातासमय याय तेवा  
नव समययी मारडीने एक मुहूर्त्त जे एक सामायि-  
कनो काल वेघडी प्रमाण छे, तेमा एक समय  
ओछो, तेटला कालने अतर्मुहूर्त्त कहीए, अर्थात्  
जघन्ययी नवसमय, उत्कृष्ट वे घडीमा एक समय  
ओछो, अने ए वेनी वचमा जेटला समयनी सख्या  
ते सर्वे मध्यमअतर्मुहूर्त्त जाणवा, एवी रीते अत-  
र्मुहूर्त्तना असख्याता भेद थाय छे

१५४ प्र०—जातिस्मरण ते शु ? तेना केटला भेद अने तेमा  
केटला भवन्तु ज्ञान थाय ?

उ०—अत्रगाथा “ पुव्वभवासोपिच्छई, एकदोतिन्निजावनवगवा  
उवरितस्सअविसओ, सभावओजाईसमरणस्स ॥ १ ॥

कोइपण वस्तु शब्दरूपादि जे पूर्वे भवातरमा गाढ  
परिचितअभ्यास सहवासरूप थएल होय एवा घर,  
हाट, वाडी, वख, मूषणादि आकृति मात्र देखता,  
शब्द मात्र साभळता थका, पूर्वभवसबधि जे



अर्थ—सर्वार्थसिद्धविमानवासि देवताओं निश्चयया  
एक भवमा सिद्धि पामे छे अने विजयादि विमान  
वासि देओनी स्थिति सख्याताभवनी होय छे

१६० प्र०—श्रावक जवन्य पदे केटला लामे ?

उ०—क्षेत्रपल्योपमने असख्यातमे भागे इति आवश्यक-  
निर्युक्तौ जद्वर्द्धापमन्ये ' क्रीटिकाग्रह्वय अथवा नरा-  
ग्रहव तपोत्तर यदासमृच्छिमाणा विरह तदाक्रीटिका-  
स्तोकानराग्रहव

१६१ प्र०—चार सामायिक ते कया, अने ते प्रत्येकमा कयु सम-  
कित तथा गुणठाणु होय ते कहो

उ०—१ श्रुतसामायिकमा दीपकसमकित अने पहेलु  
गुणठाणु होय, ते अभव्यने पण होय, कारण जे  
जिनवचनानुसार प्ररूपणा करे तेयी परने मार्ग  
दीपावे, वर्म पमाडे पण पोताने अधारु होय, अ-  
पितु श्रद्धा, पाप, नासादि न होय तेयी, २ दर्शन  
सामायिक सम्यग्दृष्टि चोयागुणठाणीने होय, ३  
देशविरतिसामायिक पाचमें गुणठाणे श्रावकने होय,  
४ सर्वविरतिसामायिक ते उद्धेसातमेगुणठाणे वर्तता  
मुनिमहाराजने होय, ए सर्व गुणठाणानी परिणतिरूप  
कषायना क्षयोपशमने लीघे होय छे

१६२ प्र०—छकाय जीवोनी महाविरावनारूप पाच स्थान कया  
कह्या छे ?

उ०—१ घटी स्थान, २ चूला स्थान ते रसोड्ड, ३ पाणी-  
आरु, ४ वासिद्ध, ५ उखण मूसळादि खाडण

જ્યારે ધર્મતો શુદ્ધાત્મપરિણાનિરૂપ ચિત્તની નિર્મલતા,  
વિષયક્રપાયાદિરહિત શુદ્ધજ્ઞાનાનન્દીઆત્મારારૂપ છે

૧૫૬ પ્ર૦--ચારુપયોગમા રૂપી કેટલા અને અરૂપી કેટલા,  
અને તે શા માટે ?

૩૦--કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શન ણ વે આત્મગુણરૂપ  
હોવાયી અરૂપી છે, અને શેષ દસ આત્મપુદ્ગલાશ્રિત  
મિશ્રિત હોવાયી રૂપી છે.

૧૫૭ પ્ર૦--પાચ સમકિતમા, રૂપી કેટલા અને અરૂપી કેટલા?  
તે કારણ સહિત કહો

૩૦--પાચ મલ્લે એક ક્ષાયિક તે શુદ્ધાત્મગુણ પ્રાપ્તિ મળી  
અરૂપી છે, અને શેષચાર પુદ્ગલ ઉપદ્રમી અલ્પકા-  
લિક કિંચિત્ પરાધીનતા મળી રૂપી છે

૧૫૮ પ્ર૦--છઆવશ્યકમલ્લે કેટલા રૂપી અને કેટલા અરૂપી ?  
તથા તેમા સવરમા કેટલા અને નિર્જરમા કેટલા ?

૩૦--સામાયિકાદિ પાચઆત્મગુણ મળી અરૂપી છે, અને  
એક પ્રતિક્રમણ આવશ્યક પાપનિંદા, ગર્હારૂપ આત્મ  
સન્મુખી પળ મદતા મળી રૂપી છે, તથા સામાયિક  
ઘડવીસત્થો તથા વાદળા તે ત્રણ સવરતત્ત્વમા છે,  
અને શેષ ત્રણ નિર્જરાતત્ત્વમા છે

૧૫૯ પ્ર૦--સવાર્થસિદ્ધ વિમાનના દેવતાઓ અને વિજયવિમાનના  
દેવતાઓ કેટલા મલ્લમા સિદ્ધિ પામે

૩૦--“ સવ્વહ્માઓનિયમાણમિભવમિસિજ્જઈઅવસ્સ । વિ-  
જયાદિવિમાણેટ્ઠિય, સલ્લિજ્જમલાઓનાયવ્વા ॥ ? ॥

लक्षणे लक्षित, स्वसपदाए पूर्ण, परसगे परिणम्यो  
 यको ससार उभो कर्यो, स्वज्ञानादिगुणे परिणम्यो  
 यको सिद्धता करे, एवा आत्मद्रव्ययी ओळखाण  
 अनतनये, अनतनिक्षेपे याय ए रीते जे आत्मप्र-  
 तीति करे तेने जैनमार्गी जैनमार्गमा गणे छे, एवो  
 आत्मा अनेकातपणे जैनमार्गी छे, एनी जे प्रतीति  
 ते सम्यग्दर्शन, एनु जे ज्ञान ते सम्यग्ज्ञान, एमा  
 जे रमवु ते सम्यरूचारित्र कहीए

१६४ प्र०—द्रव्यास्तिकनयना छ सामान्य स्वभाव कहो

उ०—१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व,  
 ५ प्रदेशत्व, ६ अगुरुलघुत्व

१६५ प्र०—वस्तुना अग्यार विशेष स्वभाव कहो

उ०—१ नित्य, २ अनित्य, ३ एक, ४ अनेक, ५ सत्य,  
 ६ असत्य, ७ वक्तव्य, ८ अवक्तव्य, ९ भेद, १०  
 अभेद, ११ परम स्वभाव

१६६ प्र०—प्रकारातरे वीजा नव आत्मवस्तुस्वभाव कहो

उ०—१ स्वप्रदेश, २ अप्रदेश, ३ चेतन, ४ अचेतन,  
 ५ मूर्तिमत, ६ अमूर्तिमत, ७ कर्तृत्व, ८ भोक्तृत्व,  
 ९ परिणामिक

१६७ प्र०—षड्द्रव्यमध्ये प्रत्येकना चार चार गुण छे ते कहो

उ०—१ धर्मास्तिकायना—अरूपी, अचेतन, अक्रिय अने  
 गतिसहायक

२ अधर्मास्तिकायना—अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने  
 स्थिरसहायक



लक्षणे लक्षित, स्वसपदाए षण्ण, परसगे परिणम्यो  
 वको ससार उभो कर्षो, स्वज्ञानादिगुणे परिणम्यो  
 वको सिद्धता करे, एवा आत्मद्रव्यया ओळखाण  
 अनतनये, अनतनिक्षेपे याय ए रीते जे आत्मप्र-  
 तीति करे तेने जेनमार्गो जैनमार्गमा गणे छे, एवो  
 आत्मा अनेकातपणे जैनमार्गो छे, एनी जे प्रतीति  
 ते सम्यग्दर्शन, एनु जे ज्ञान ते सम्यग्ज्ञान, एमा  
 जे रमवु ते सम्यरूचारित्र कहीए

१६४ प्र०-द्रव्यास्तिकनयना उ सामान्य स्वभाव कहो

उ०-१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व,  
 ५ प्रदेशत्व, ६ अगुरुलघुत्व.

१६५ प्र०-वस्तुना अग्यार विशेष स्वभाव कहो

उ०-१ नित्य, २ अनित्य, ३ एक, ४ अनेक, ५ सत्य,  
 ६ असत्य, ७ वक्तव्य, ८ अवक्तव्य, ९ भेद, १०  
 अभेद, ११ परम स्वभाव

१६६ प्र०-प्रकारातरे बीजा नव आत्मवस्तुस्वभाव कहो

उ०-१ स्वप्रदेश, २ अप्रदेश, ३ चेतन, ४ अचेतन,  
 ५ मृतिमत, ६ अमृतिमत, ७ कर्तृत्व, ८ भोक्तृत्व,  
 ९ परिणामिक

१६७ प्र०-षड्द्रव्यमध्ये प्रत्येकना चार चार गुण छे ते कही

उ०-१ वर्मास्तिकायना-अरूपी, अचेतन, अक्रिय अने  
 गतिसहायक

२ अधर्मास्तिकायना-अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने  
 स्थिरसहायक.

२ आकाशिकायना-अरूपा, अचेतन, अक्रिय, अने  
अमकाशदानयन

४ पुद्गलास्तिकायना-रूपा, अचेतन, सक्रिय, अने  
पूरणगलण

५ कालना-अरूपा, अचेतन, अक्रिय, अने वर्तना

६ जीवना-अरूपा, चेतन, सक्रिय, चेतनालक्षणवत

१६८ प्र०-पर्यायास्तिकूनयना उ भेद कहो, तथा तेउ किंचित्  
विशेषकथन गुणपर्यायस्वरूप कहो

उ०-१ पर्यायत्व, २ भन्त्यत्व, ३ सिद्धत्व, ४ अभव्यत्व,  
५ कारणत्व, ६ कार्यत्व

वर्गी प्रकारातरे गुणपर्याय स्वरूप कहे छे —

द्रव्यव्यजनपर्याय असख्यप्रदेशत्व, गुणपर्याय  
गुणातरभेद क्षात्यादिभेद, गुणव्यजनपर्याय, एक  
गुणना अनतपर्याय, स्वभाव पर्याय, ते षट्गुणहानि  
वृद्धिरूप, अने विभावपर्याय ते नर नरकादिपर्या-  
यास्तिक सामान्य पारिणामिक, अखड, अलख,  
असहायी, सक्रियना अनतगुणपर्याय समुदायनो  
बादर द्रव्यभेद कहीए

१६९ प्र०-द्रव्य अमेदी ते शु ?

उ०-द्रव्यना बे भाग न थाय माटे

१७० प्र०-भेद द्रव्य ते केम ?

उ०-गुण गुणना करनार जुजुवा भणी भेदस्वरूपी कहीए  
जेम के-ज्ञान गुण, दर्शन गुण, चारित्र गुण, सुख

गुण, दान गुण, लाभ गुण, भोग गुण, वीर्य गुण,  
इत्यादि अनन्तगुणभेदे भेदस्वरूपी कहीए

१७१ प्र०-सम्यक्त्वना पर्यायनामो कहो

उ०-आस्ता, श्रद्धा, प्रतीति, निर्धार, रूचि, अभिलाष,  
बहुमान, अर्थिपणु, तच्चइहा, गुण अद्भुतता, गुण  
गुणी आश्चर्यता, तद्विरहाकारकता, वस्तु प्रेम, तच्चार्थ  
सदहणा, इत्यादि

१७२ प्र०-सम्यग्ज्ञानना पर्यायनामो कहो

उ०-अवलोकन, भासन, परिच्छेदन, विवेचन, अमूर्ति-  
चेतनत्त्व, सर्ववेत्ता, अप्रतिपातित्व निरावरणत्व, ज्ञाय-  
कता, स्वरूपओळखाण, स्वरूपानुभव इत्यादि

१७३ प्र०-सम्यक्चारित्रना पर्याय नामो कहो

उ०-स्थिरता, तच्चरमण, निश्चयत्वानुमृति, परमक्षमा, प-  
रममार्दव, परमार्जव, परमनिर्लोभता, अकामता,  
अनासगता, सुख, स्वरूपविलास, टरणता, सतोष,  
समता, स्वरूपस्वादता, स्वरूपानन्द, सहजता, स्वा-  
धीनता, इत्यादि

१७४ प्र०-सम्यक्त्वनी दशरुचि कहो

उ०-१ निसर्ग रुचि, २ उपदेश रुचि, ३ ज्ञान रुचि,  
४ सूत्र रुचि, ५ वीज रुचि, ६ अभिगम रुचि,  
७ विस्तार रुचि, ८ क्रिया रुचि, ९ सक्षेप रुचि,  
१० वर्म रुचि

१७५ प्र०-सम्यक्त्वना पाच लक्षण कहो

૩૦-૧ સમ ઇટ્લે ઉપશમ રૂહેતા પારમાયિક અક્રપાયિ-  
 પણુ ઇટ્લે અપરાધિશતુનુ પળ ચિત્તમા અતરગ  
 પરિણામે રૂદી માતુ ચિત્તમે નહિ, ૨ સયેગ તે  
 ઇકાત શુદ્ધપરમાત્મસ્વરૂપસુખનીજ અમિલાપા,  
 ૩ નિર્વેદ તે સસાર ચકી ઉદાસીનતા તીવ્રઉદ્દિ-  
 ગ્નતા, ૪ અનુરૂપા, તે પ્રાણીમાત્રને આત્મવત્  
 લેણી કોડુ ઉપર પળ મારાતારાપણાનો મિત્રભાવ  
 ન ગણે, છુલા વ્યવહારે વેતે, અતરગચી સદા ન્યારો  
 લખે ઊતા સર્વઉપર આપ સમાન દયા ભાવ દષ્ટિ,  
 ૫ આસ્તિકતા તે શુદ્ધ જિનવચન ઉપર ઇકાત  
 દઢ ચિત્ત પ્રતિમધરૂપ શ્રદ્ધા, ગાઢ સત્ય માન્યતા

૧૭૬ પ્ર૦-આત્મા વધક છે, અવધક છે, ભોક્તા છે, અભોક્તા  
 છે, કર્તા છે, અકર્તા છે તે શુ ?

૩૦-નિશ્ચયનયે અવધક, વ્યવહારનયે વધક, ઇમજ  
 ભોક્તા કર્તાદિ વ્યવહારે આત્મા જાણવો, અને  
 નિશ્ચયે ઇટ્લે મૂલસ્વરૂપે અપરિણામિકપણે ઇટ્લે  
 સ્વરૂપપરિણામે અભોક્તા, અકર્તા, સ્વરૂપભોક્તા  
 સ્વરૂપ કર્તાજ કહિયે

૧૭૭ પ્ર૦-ત્રણઆત્માનુ મૂલસ્વરૂપ કહો

૩૦-૧ બહિરાત્મા તે દેહાદિકને આત્મબુદ્ધિએ અહભાવે  
 ઇકાતે બ્રાહ્મદષ્ટિએ પોતારૂપ સમજે, જેવુ દેલે તે-  
 વુજ માને, પળ અતરગદષ્ટિએ કઈ વિચારે નહિ કે  
 સમજે નહિ તે ઇકાતમિથ્યાદષ્ટિ પહેલેશુણઠાણે  
 જાણયા, ૨ અતરાત્મા તે આત્મા અને દેહાદિક



पौद्गलिक भावने मित्रमित्र लखे स्वरूप गवेखे पर्या उदासीनता चितवे इत्यादिभेदजानी चोवेयी वारमा गुणठाणा सुधी जाणत्रा, ३ परमात्मा ते अतिनिर्मळ, शुद्धस्वरूपानुभवी, निष्कल्की निरावरणी सच्चिदानंदवनस्वरूपमय, अतरात्माने ध्येय व्यानरूप जाणत्रा ज्ञानि प्रतिमा त्रण आत्मानु स्वरूप नीचे प्रमाणे छे

हवे आत्मानो स्वरूप लखे छे आत्मा त्रण प्रकारे ते आत्मानो स्वरूप सम्यग्दृष्टिए त्रारवो जेम स्थिरता याय ते लखे छे ते त्रण प्रकार ते क्या ? एक बहिरात्मा १, एक अतरात्मा २, एक परमात्मा ३ हवे बहिरात्मा कहे छे शरीर, कुडन, माल, वन, घर, परिवार, नगर, देश, रागद्वेष, मिथ्यात्व, मे मायो, जीवाड्यो, मे सुखी कर्यो, में दु खी कयो, रसेविमोहप्रमुख ए सर्प निजस्वभाव जाणे तेहने बहिरात्मा कहिए तेहने बहिरदृष्टि होइ ते प्रथम मिथ्यात्वगुणठाणे होवे ? अथ अतरात्मानो स्वरूप कहे छे प्रथम कर्मत्राव्यानो कारण जाणे ते लखे छे मिथ्यात्व ५ अविरति १२ कषाय २५ योग १५ ए सत्ताउन हेतु ए जीव कर्मबाधे ते बलना भोगवे ते भोगवता मोहनीकर्मना जोरे दु ख पामे तिहारं इम जाणे जे मारो स्वभाव नहि किसी वस्तु जाइ तथा मरण आवे तिहारे इम जाणिजे माहरा प्रदेशयी काइ जातो नथी, हु सर्व वस्तुथी

मित्र छु कियारे कुलाभ पामे तियारे जाणे जे ए  
वस्तुर्था सत्र ट्यो छे वेदनादिक दृष्टि आये सम-  
भावे राखे परमत्र पुट्टलादिक आत्मार्या भिन्न जा-  
णवो उडवानीखपकरी परमात्माना वात्र करे ध्यान  
सज्जाय विशेष करे भावना रीणखीण भावे सत्र  
आदरे निज स्वभावे जे ज्ञान तेहने विशेषे इम मन  
रहे ते अतरात्मा ध्यान करवा परमात्माने जोग्य  
चोथा गुणठाणार्था वारमा गुणठाणा सुधि अतरात्मा  
जाणवो, एहवो जे अतरात्मा ओलखे तियारे पर-  
मात्मा पामे, परमात्मानो स्वरूप लखिए छीए सा-  
क्षात् पोतानो स्वरूप देखे कर्मनी उपाधि रहित ते  
परमात्मा तेरमे तथा चौदमे गुणठाणे होय तथा सिद्ध  
जाणवा ए परमात्मा ध्यान योग्य, अतरात्मा ध्याव-  
वा योग्य ता ध्येय ते परमात्मा ध्यान ते एकाग्रता  
एम त्रणआत्माना स्वरूप जाणवा इति भाव

७८ प्र०-सद्दहणा, फरसणा अने प्ररूपणा, सबधी अष्टभगी  
दृष्टात सहित कहो

उ०-सद्दहणा, फरसणा अने प्ररूपणा, एटले जाणे आ-  
दरे अने पाळे, ते भागे श्री गौतमादि महात्मा जाणवा,  
२ सद्दहणा, फरसणा, पण प्ररूपणाए असमर्थ ते जे  
सामान्य साधु उपदेश देवाने असमर्थ छे, पण पोते  
पाळे छे तेने जाणवो, ३ सद्दहणा पण फरसणा,  
प्ररूपणा नहि, ते अनुत्तर विमानवामी देवने, जाणे  
न आदरे पण पाळे ते भागे जाणवु, ४ सद्दहणा

तथा प्ररुपणा पण फरसणा नहि ते सवेगपाक्षि-  
कने जाणे, आदरे पण पाळवा असमर्थ ते भागे  
जाणवु ५ फरसणा पण सदहणा ने प्ररुपणा नहि,  
ते वाळ तपस्वी प्रमुखने न जाणे पण आदरे अने  
पाळे ते भागे जाणवु, ६ प्ररुपणा होय पण सह-  
हणा अने फरसणा नहि, ते आदरे पण न जाणे  
अने न पाळे ए भागो असजयति सन्यासी आदिने,  
७ फरसणा तथा प्ररुपणा होय पण सदहणा नहि,  
ते न जाणे पण आदरे पाळे ते भागो पासत्या-  
दिकने तथा अभव्यदीपकसमकितीने पण होय,  
८ असदहणा, अपरुपणा ते अनादिमिथ्यात्विने,  
न जाणे न आदरे न पाळे ए भागो जाणवो, ते  
निगोदिया प्रमुख एकेन्द्रियादिकने होय

१७९ प्र०-श्रीतीर्थकर प्रभुना दानाधिकार सवधी उ अतिशयो  
वर्णवो

उ०-प्रतिदिन एकक्रोड अने आठलाख सोनैया  
आपे, ते सोनैयो आठरति के मतातरे अंसीरति-  
नो पण कह्यो छे, उ घडी दहाडो चढता आपवा  
माडे ते पोणावेपहोर सुधी जमवानी वेळा पर्यंत  
मनवाछित दान सोने भाग्यप्रमाणे प्रभु आपे,  
सोनैयामा प्रभुनु तथा प्रभुना मातपिताना नाम  
होय, ते एक दिवसना दानना सोनैया नवहजार  
मण थाय, चालीस मणनु एक गाड भरता कुल  
२२५ गाडा भराय, ते गाडा तथा मण वगेरे सर्व

મિત્ર છ કિનારે કુલાભ પામે તિવારે જાણે જે એ વસ્તુથી સમય ટચ્ચો છે વેદનાદિક દષ્ટિ આંત્ર સમ-ભાવે રાખે પરમ્ત્ર પુદ્ગલાદિક આત્માથી મિત્ર જાણવો છડવાનીખપકરી પરમાત્માની વાઝા કરે ધ્યાન સજ્ઞાય ત્રિશેષ કરે ભાવના સ્ત્રીણસ્ત્રીણ ભાવે સવર આદરે નિજ સ્વભાવે જે જ્ઞાન તેહને ત્રિશેષે ડમ મન રહે તે અતરાત્મા ધ્યાન કરવા પરમાત્માને જોગ્ય ચોથા ગુણઠાણાથી વારમા ગુણઠાણા સુધિ અતરાત્મા જાણવો, એહવો જે અતરાત્મા ઓલ્ચે તિવારે પરમાત્મા પામે, પરમાત્માનો સ્વરૂપ લલિવે ઈએ સાક્ષાત્ પોતાનો સ્વરૂપ દેલે કર્મની ઉપાધિ રહિત તે પરમાત્મા તેરમે તથા ચૌદમે ગુણઠાણે હોય તયા સિદ્ધ જાણવા એ પરમાત્મા ધ્યાન યોગ્ય, અતરાત્મા ધ્યાવવા યોગ્ય તા ધ્યેય તે પરમાત્મા ધ્યાન તે એકાગ્રતા એમ ત્રણઆત્માના સ્વરૂપ જાણવા ડ્વિતિ ભાવ

૧૭૮ પ્ર૦-સદ્દહણા, ફરસણા અને પ્રરૂપણા, સવધી અષ્ટમગી દષ્ટાત સહિત કહો

૩૦-સદ્દહણા, ફરસણા અને પ્રરૂપણા, એટલે જાણે આદરે અને પાલે, તે ભાગે શ્રી ગૌતમાદિ મહાત્મા જાણવા, ૨ સદ્દહણા, ફરસણા, પળ પ્રરૂપણાએ અસમર્થ તે જે સામાન્ય સાહુ ઉપદેશ દેવાને અસમર્થ છે, પળ પોતે પાલે છે તેને જાણવો, ૩ સદ્દહણા પળ ફરસણા, પ્રરૂપણા નહિ, તે અતુત્તર વિમાનવામી દેવને, જાણે ન આદરે પળ પાલે તે ભાગે જાણવું, ૪ સદ્દહણા

‘अप्पाणभावेमाणेविहरई’ इम आत्मध्यान करे छे ते सर्व कर्म खपावाने अर्ये ते किहा कर्म खपावे, खपाववाना तो त्रण कर्म छे, उदयकर्म अने वधकर्म ने सत्ताकर्म, उदीरणाकर्म तो उदयना पेटा मव्ये गवेरवीए, तथा कर्म ते मव्ये उदय सेणे खपावे छे, तथा सत्ताकर्म सेणे शोधे छे, इति वधकर्म किम मटे ?

उ०—शुभयोगे पाच महात्रत सवरूपक्रियाए नवा वध पडे ते कर्मनिवारे ते माटे वधकर्म निवारे ते वतादिक शुभक्रियाए तथा पाच प्रकारना सज्झाय ध्याने उदयकर्म खपावे छे, ते निष्फल करे छे, तथा शुद्धोपयोगे आत्मध्याने सत्ताए जे कर्म छे ते सोधे खपावे इम मुनि आत्मगुणे निर्मल करी सिद्धि वरे ए भाव

१८१ प्र०—ज्ञानीने आस्रव ते सवरूपे केवी रीते परिणामे छे

उ०—ज्ञानीने शुद्धोपयोगे आत्मपरिणामे आस्रवना कारण ते सवरूपे थाय छे आचाराग सूत्रना चौथा अध्ययने द्वितीयोद्देशके समकितना अध्ययन मव्ये “आसवा ते परिसवा” एवी गाथा छे

१८२ प्र०—हवे श्रीजीवामिगमसूत्र मव्ये निर्लेपपदे श्रीगौतमे पुछयु के स्वामिन् ? पाच स्थावरना जीव हमणा वर्तमानमा जेटला छे ते निर्लेप थारी गत्यन्तरे जाशे ?

उ०—एक वनस्पतिकायविना पाचकायना जीव निर्लेप थारी पृथ्वीअप्पतेउवाउत्रसकायना जीव सर्वस्था-

માપ જે જે સમયમા પ્રભુ વયા હોય તે તે સમય તથા તે તે દેશના જાણવા, સપ્તસરી દાનના સોનેયા સર્વેં ઇંદ્રોના આદેશે વૈશ્વમળ દેવતા આટસમયમા નિપજાર્વી પ્રભુના ગૃહભટારમા ભરે, હવે તે દાનના ઠ અતિશય કહે છે - ૧ તીર્થકરના હાથને વિષે સૌધર્મેંદ્ર ઈવી સ્થિતિ કરે કે જેવી પ્રભુ દાન દેતા થાકે નહિ, જોકે પ્રભુતો અનત શક્તિના ધર્મી છે, તોષણ આ ઉત્સવ અવસરે ઈ પ્રયમદ્વનો અધિકાર લ્હાવો લેવારૂપ છે, તે અનાદિની ઈવી મર્યાદા જાણવી, ઇશાનેંદ્ર સુવર્ણમય રત્નજડિત છઢી, દડ લડ્ડ ઉભો રહે અને ચોસઠડ્ડ સિવાય વીજા સામાનિક પ્રમુખ દેવોને દાન લેતા નિવારે, અને યાચકના ભાગ્યાનુસાર ઇશાનેંદ્ર તેના મુખે બોલાવે અને ૨ ધર્મેંદ્ર તથા બ્હીન્દ્ર પ્રભુની મુઠીમા વધારે હોય તો પાઢી નાખે, અને ઓછુ હોય તો પૂરુ કરી આપે, સામાની પ્રાપ્તિને અનુસારે મઠે, ૩ મુવનપતિદેવતા ભરતક્ષેત્રના મનુષ્યને તેહી આવે, ૪ અને વાળવ્યતર દેવો તેમને પાછા મૂકી આવે, ૫ જ્યોતિષી દેવો, વિદ્યાધરોને પ્રભુના દાનની સ્વર આપે, ૬ તથા પ્રભુના પિતા વ્રણ મોટી દાનશાઢા કરાવે, ઈક્રમા ભરતક્ષેત્રના મનુષ્યને અન્નપાનાદિ સ્વાદ્ય વસ્તુ આપે, બીજીઈ વસ્ત્ર આપે, અને ત્રીજીઈ આભરણ આપે

૧૮૦ પ્ર૦-હવે સાધુ સજ્ઞાય કરે છે. શુભયોગે વ્રતાદિકની શુભક્રિયા કરે છે તથા શુદ્ધોપયોગે, શુદ્ધ સ્વભાવે

चरवळो, ५ पटलाइ ते गोचरीए जाता पात्रा उपर  
कपडु राखे ते, ६ रयत्ताण ते पात्रवीटवानु लूगडु,  
७ गुठओ ते कत्रलमयखड पात्राउपर वट्टेछे ते,  
ए सात पात्राना उपगरणो जाणवा, तथा ८, ९,  
१० वे सुतराउ कपडा, अने एक उननु मळी घण  
कपडा राखे, ११ ओघो, १२ मुहपत्ति, ए वार  
जिन कल्पिने होय, तथा १३ मातरीउ, १४ चो-  
लपट्टो एव चउदस्थविरकल्पने जाणवा

१८६ प्र०—श्री युगप्रधानआचार्यना विहार शोभा लक्षण कहो.

उ०—काव्य येषाहिवस्त्रे न पतति यूका,

न राष्ट्रभङ्गो न च देशचिन्ता ।

गदा प्रणश्यतिपदोदकेन,

युगप्रधाना (मुनिवृन्दपूज्या.) ॥ १ ॥

उत्तम शारीरिकसौंदर्यवळयुक्त, आचार्यना छत्रीस  
गुणे सहित, तथा ज्या विचरे त्या अढीयोजन प्रमाण  
मरकीप्रमुखनो उदद्रव न थाय, उत्कृष्टपणे दशविध  
यतिधर्म पाळता पळावता, निजकाळने विषे सर्वयी  
श्रेष्ठपुरुष एकावतारी महात्मा युग प्रधान आचार्य-  
भगवत जाणवा

१८७ प्र०—नीचे जणावेला शब्दोनो अर्थ कहो

भावना, अव्यात्म, मुनि, मैत्री, कारुण्य, मन्व्यस्थ,

अने प्रमोद भावनाओ

उ०—जूनि प्रतिमा नीचे प्रमाणे लखेल छे

दुर्गतौप्रपतज्जन्तूधारयतीतिधर्म ,

सयमादिदशविधसर्वज्ञोक्तोभवति ॥ १ ॥

नान्तरे निर्लेप थाशे, पण वनस्पतिक्रायनिगोदगो-  
लकना जीव निर्लेप “ नत्वितत्यअत्वियणता जीवा  
जेहिंनपत्तोतसाई परिणामो । उत्रयन्तियचयतियपुणोवि-  
तत्येवतत्येव ॥ १ ॥ एणे न्याये वनस्पतिक्रायना  
जीव निर्लेप न याय ए भाव

१८३ प्र०—वादरअप्पकाय उपरदेउलोकमा क्या, सुधी छे ? तथा  
तेउकाय केउले सुधी छे ?

उ०—वादरअप्पकाय वारमादेवलोक सुधी अने वादरतेउकाय  
तीर्ठा मनुष्यलोकखूपअर्डीद्वीपमाहे, उची मेरुपर्वतनी  
बुलिका सुधी

१८४ प्र०—सातमी तथा छट्टी नरकमा, कुमिमा उपजवालु थाय  
छे के आलियामा थाय छे

उ०—सातमी तथा छट्टी नरके आलीया छे जेम नदीनी  
मेखडे वील होय छे एउले सूला छे ते उपर शरीर  
विंघाय तिवारे पडे एम साभळ्यु छे ए भाव.

१८५ प्र०—साधुना १४ उपगरणो ते क्या क्या

उ०—पत्तपत्ताबधो, पायठवणचपायकेसरिया ।

पडलाईरयत्ताण, गोच्छओपायनिज्जोगो ॥ १ ॥

तिन्नेवयपत्च्छागा, रयहरणचेवहोइमुहपत्ती ।

एसोडुवालसविहो, उवहीजिणकप्पियाणतु ॥ २ ॥

एएचेवडुवालस, मत्तगअइरेगचोलपट्टोउ ।

एसोचउदसरुवो, उवहिपुणत्येरकप्पमि ॥ ३ ॥

पत्त कहेता पात्रु, २ पत्ताबध ते झोळी, ३  
पायठवण ते काबळीनो कडको, ४ पायकेसरिया ते



चरवळो, ५ पटलाइ ते गोचरीए जाता पात्रा उपर  
कपड राखे ते, ६ रयत्ताण ते पात्रवाटवातु ल्हाड,  
७ गुठओ ते कत्रलमयखड पात्राउपर वांटेछे ते,  
८ सात पात्राना उपगरणो जाणवा, तथा ८, ९,  
१० वे सुतराउ कपडा, अने एक उननु मळी प्रण  
कपडा राखे, ११ ओवो, १२ मुहपत्ति, ए वार  
जिन कल्पिने होय, तथा १३ मातरीउ, १४ चो-  
लपटो एव चउदस्थविरकल्पने जाणवा

१८६ प्र०—श्री युगप्रधानआचार्यना विहार शोभा लक्षण कहो.

उ०—काव्य येपाहिवखे न पतति यूका,

न राष्ट्रभङ्गो न च देशचिन्ता ।

गदा प्रणश्यतिपद्मोदकेन,

युगप्रधाना (मुनिवृन्दपूज्या) ॥ १ ॥

उत्तम शारीरिकसौंदर्यमळयुक्त, आचार्यना छत्रीस  
गुणे सहित, तथा ज्या विचरे त्या अर्धीयोजन प्रमाण  
मस्कीप्रमुखनो उदद्रव न थाय, उत्कृष्टपणे दशविध  
यतिधर्म पाळता पळावता, निजकाळने विषे सर्वयी  
श्रेष्ठपुरुष एकावतारी महात्मा युग प्रधान आचार्य-  
भगवत जाणवा

१८७ प्र०—नीचे जणावेला शब्दोनो अर्थ कहो

भावना, अव्यात्म, मुनि, मैत्री, कारुण्य, मध्यस्थ,

अने प्रमोद भावनाओ

उ०—जुनि प्रतिमा नीचे प्रमाणे लखेल छे

दुर्गतौप्रपतज्जन्नुन्धारयतीतिधर्म,

सयमादिदशविधसर्वज्ञोक्तोभवति ॥ १ ॥

नान्तरे निर्लेप थासे, पण वनस्पतिकायनिगोदगो-  
लरुना जीम निर्लेप “ नत्पितत्यअत्पिअणता जीवा  
जेहिंनपत्तोतसाई परिणामो । उत्रयन्तियचयतियपुणोवि-  
तत्वेवतत्वेन ॥ १ ॥ एणे न्याये वनस्पतिकायना  
जीम निर्लेप न याय ए भाव

१८३ प्र०—वादरअप्पकाय उपदेवलोकरुमा भवा सुधी छे ? तथा  
तेउकाय केटले सुधी छे ?

उ०—वादरअप्पकाय मारमादेवलोक सुधी अने वादरतेउकाय  
तीर्ठा मनुष्यलोकरूपअर्धाद्वीपमाहे, उची मेरुपर्वतनी  
चुलिका सुधी

१८४ प्र०—सातमी तथा छट्टी नरकमा, कुमिमा उपजवानु थाय  
छे के आलियामा थाय छे

उ०—सातमी तथा छट्टी नरके आलीया छे जेम नदीनी  
भेखडे वील होय छे एटले सूला छे ते उपर शरीर  
विधाय तिवारे पडे एम साभळ्यु छे ए भाव.

१८५ प्र०—साधुना १४ उपगरणो ते कया कया.

उ०—पत्तपत्ताबधो, पायठवणचपायकेसरिया ।

पडलाईरयत्ताण, गोच्छओपायनिज्जोगो ॥ १ ॥

तिन्नेवयपत्च्छागा, रयहरणचेवहोइमुहपत्ती ।

एसोडुवालसविहो, उवहीजिणकप्पियाणतु ॥ २ ॥

एएचेवडुवालस, मत्तगअइरेगचोलपट्टोउ ।

एसोचउदसरुवो, उवहिपुणत्थेरकप्पमि ॥ ३ ॥

पत्त कहेता पात्रु, २ पत्ताबध ते झोळी, ३  
पायठवण ते काबळीनो कडको, ४ पायकेसरिया ते

इशान देवलोके, अने नववीं सोळ सुधीना प्रभुना पिता त्रीजा सनत्कुमारदेवलोके, अने सत्तरवीं चोवीस सुधीना पिता चोथा महेंद्रदेवलोके प्राप्त थया छे प्रथमना आठजिननीं माताओ मोक्षे, नववीं सोळसुधीना जिननीं माताओ त्रीजा सनत्कुमार देवलोके, अने शेष सत्तरवीं चोवीस सुधीना आठ जिननीं माताओ चोथा महेंद्रदेवलोकने प्राप्त थएल छे

१८९ प्र०-श्रीजिनवाणीश्रवण, चारवातीकर्मना क्षयोपशमे केवीं रीते थाय ?

उ०-१ अतरायकर्म तथा दर्शनावरणीयकर्मना क्षयोपशमे जिनवाणी साभळवानी रुचि थाय, २ दर्शनावरणीय तथा जानावरणीयकर्मना क्षयोपशमे वाणी काने साभळे तथा समजे, अने ३ मिथ्यात्वमोहनीयना क्षयोपशमे जिनवचन आत्मस्वरूप ज्ञानरूप यथार्यसंहणामा आवे

१९० प्र०-श्री जिनवाणीतु ध्यानरूप एकाग्रप्रणमन महाफल शायक क्यारे थाय ?

उ०-धर्मान्तरायना क्षयोपशमे समयफलपामीने एकाग्रतारूपध्यानमाहि सिद्धि वरे, तथा चारकर्म क्षायिक भावे थये थके केवळज्ञान अने केवळदर्शनादि अनतलक्ष्मी प्रगट करी महानदपद पावे

१९१ प्र०-चारप्रकारनी बुद्धितु स्वरूप टुकमा दृशत सहित समजावो

उ०-१ औत्पातिकी बुद्धि ते मतिजानावरणीयकर्मना क्षयो-

हवे-आत्मानभाषयतीतिभाषना, आत्मानअधिकृत्यकरोतीति  
अव्यात्म, मन्यतेजगत तच्च, स मुनि प्रकीर्तित  
सम्यक्त्वमेवतन्मौन, सम्यक्त्वतच्चमेव ॥ १ ॥

इतियोगविन्दुग्रन्थे हरिभद्रस्वरिणा अव्यात्मभावनाच-  
बुर्धाकथिता यथा ॥

परहितचिंताभैरी, परदु खविनाशिनीतथाकरुणा ।

परसुखतुष्टिर्मुदिता, परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥ १ ॥ ए भाव,

हवे छद्मस्थजीवानाध्यानकथित, अतमुहुत्तमित्त, चिंता-  
वत्याणमेगप्रत्युभि, च्छुउमत्याणज्ज्ञाण, योगनिरोहो-  
जिणाणतु इतिध्यानम् ।

आत्माप्रत्ये भावबु अने आत्मचित्वन करबु ते  
भावना, आत्माने अधिकारीपणे कार्य करनार ते  
अध्यात्मपचास्तिकायरूपजगत्तत्त्वने जे यथार्थ माने  
तेने मुनि कहीए, परहित चिंता ते मैत्री भावना,  
परदु ख विनाशनी इच्छा ते कारुण्य भावना,  
परसुखदिठे सतोष तथा प्रमोद आणे ते प्रमोद  
भावना, पर दोषनी उपेक्षा ते मध्यस्थ भावना

१८८ प्र०-वर्तमानचोवीसजिनना मातपितानी गति कही.

उ०-उसभपियानागेषु, सेसाणसत्तहुतिईसाणे ।

अद्वय सणकुमारे, माहिंदे अद्व बोधव्वा ॥ १ ॥

अद्वण जणणीओ, तित्थयराण हुति सिद्धिओ ।

अद्वय सणकुमारे, माहिंदेअद्वबोधव्वा ॥ २ ॥

प्रथमतीर्थकरना पिता श्री नाभिराजा ते नागकुमार  
मच्ये; बीजायी आठमा सुधीना प्रभुना पिताओ बीजा

एहने आत्मिकएकारूप परिणमे तिवारे ए सुखरूप  
सुखमय सपूर्णधर्म पाने ए भाव ।

१९५ प्र०—भावकर्म, द्रव्यकर्म, अने नोकर्म ते शु ?

उ०—अनादिअशुद्धोपयोगरूप विभावताइ रागद्वेषमोहरूप  
आत्मा परिणमे ते भावकर्म, ते आकर्षणेकर्मरूप  
वर्गणा व्हाय ते द्रव्यकर्म, ते वर्गणा जेवारे पाच  
शरीररूपे परिणमे ते नोकर्म कहिए एम वण प्रकारे  
कर्मनी वस्तव्यता जाणवी

१९६ प्र०—अविरतिसमकिती, देशविरति तथा प्रमत्त अप्रमत्तादि  
मुनि सम्यक्त्व वमी मिथ्यात्वे जाए तो तेओ प्र-  
त्येककर्मनी स्थिति उत्कृष्ट केटली वाधे ?

उ०—अविरतिसमकिती, वमीने मिथ्यात्वे उत्कृष्ट स्थिति  
आयुवर्जिने शेष सातकर्मनी एकपल्योपमने अस-  
ख्यातमेभागे अतर्मुहर्त्तन्यूनएककोडाकोडीसागरोपम-  
माहे वाधे, तथा देशविरति उत्कृष्ट नव  
पल्योपमन्यूनएककोडाकोडीसागरोपम उत्कृष्ट वव  
करे, पण नेयी अधिक न करे ज्ञनि प्रतिमा नीधे  
प्रमाणे छे सम्यक्दृष्टिजीव मिथ्यात्वने उदये सम-  
कितवमीने पाठो मिथ्यात्वगुणठाणे जाय तोपण  
आयुवर्जित सातकर्मनी स्थिति पल्योपमने असख्या-  
तमेभागे ऊणा एककोडाकोडीसागरनो वव करे,  
उत्कृष्टो वव एटलो करे, देशविरति नवपल्योपम  
ऊणा एककोटाकोडीसागरनो वव उत्कृष्टो करे  
तथा मुनिपण्डु पामीने पडे पाठो मिथ्यात्वे जाय,

पशमे क्याय पण न दिवु होय न साभळ्यु होय छता सहज स्वभावे पोतानी बुद्धिने जोरे सम-यसुचककार्य करी शके, ते अभयकुमार तयारोहानी परे, २ वैनयिकी ते गुर्जादिकनो विनय बहुमान करता मतिज्ञानावरणीयकर्मनो क्षयोपशम थड्ने बुद्धि उपजे ते नागार्जुनादिकनी परे, ३ कार्मणिकी ते विज्ञान, कळा, व्यापारादिनो अभ्यास करता करता जे बुद्धि प्रगटे ते, ४ पारिणामिकी ते वृद्ध अरु-भवी पुरुषोनी सगते रहेवारीं तथा वयना परिपाके जे बुद्धि उत्पन्न थाय ते

१९२ प्र०-जातिस्मरणज्ञान अने विभगज्ञान ते शामा समाय छे ?

उ०-जातिस्मरणज्ञाननो मतिज्ञानमा समावेश थाय छे, अने विभगज्ञाननो अवधिदर्शनमा समावेश थाय छे

१९३ प्र०-राशिगतसूर्य प्रश्न

उ०-मेषराशिनी सूर्य होय त्यारे कन्याराशिना सूर्यनी तथा चन्द्रनी चाल उत्तरभणी थाय, तथा तूळाराशि थकी माडी मीनराशि सुधिना चन्द्रनी चाल दक्षिणदिशा तरफ थाय छे

१९४ प्र०-मिथ्यात्वअविरतिना हेतुनो प्रश्न ,

उ०-जैहवो आत्मानो शुद्धोपयोग वस्तु आवरवाने जेम मिथ्यात्वबलवत्तर छे, तेम आत्माना परिणमन सुख निवारवाने अविरति बलवत्तर छे, अविरतिनो उदय टळवाथी आत्मानु विरतिपरिणमन थाय छे ने तेथी सुखमय आत्मा स्वस्वरूपे परिणमे छे

एहने आत्मिकएकाग्ररूप परिणमे तिवारे ए सुखरूप  
सुखमय सपूर्णधर्म पाने ए भाव ।

१९५ प्र०—भायकर्म, द्रव्यकर्म, अने नोकर्म ते शु ?

उ०—अनादिअशुद्धोपयोगरूप विभावताइ रागद्वेषमोहरूप  
आत्मा परिणमे ते भायकर्म, ते आकर्षणेकर्मरूप  
वर्गणा वधाय ते द्रव्यकर्म, ते वर्गणा जेवारे पाच  
शरीररूपे परिणमे ते नोकर्म कहिए एम व्रण प्रकारे  
कर्मनी वस्तव्यता जाणवी

१९६ प्र०—अविरतिसमकिती, देशविरति तथा प्रमत्त अप्रमत्तादि  
मुनि सम्यक्त्व वसी मिथ्यात्वे जाए तो तेओ प्र-  
त्येककर्मनी स्थिति उत्कृष्ट केटली बाधे ?

उ०—अविरतिसमकिती, वसीने मिथ्यात्वे उत्कृष्ट स्थिति  
आयुवर्जिने शेष सातकर्मनी एकपल्योपमने अस-  
ख्यातमेभागे अतर्मुहर्त्तन्यूनएककोडाकोडीसागरोपम-  
माहे बाधे, तथा देशविरति उत्कृष्ट नव  
पल्योपमन्यूनएककोडाकोडीसागरोपम उत्कृष्ट बध  
करे, पण नेयी अधिक न करे ज्ञनि प्रतिमा नीचे  
प्रमाणे छे सम्यक्दृष्टिजीव मिथ्यात्वने उदये सम-  
कितवसीने पाछे मिथ्यात्वगुणठाणे जाय तोपण  
आयुवर्जित सातकर्मनी स्थिति पल्योपमने असख्या-  
तमेभागे ऊणा एककोडाकोडीसागरनो बध करे,  
उत्कृष्टो बध एटलो करे, देशविरति नवपल्योपम  
ऊणा एककोडाकोडीसागरनो बध उत्कृष्टो करे  
तथा मुनिपण्ण पामीने पडे पाछे मिथ्यात्वे जाय,

तोपण आयुर्जित सातऋर्मनो स्थितिः नवसागरे  
ऊणा एककोडाकोडीसागरोपमनो उत्कृष्ट ऋव करे  
तथा उपशमश्रेणिया पढीने मिथ्यात्वे जाय तेपण  
आयुर्जित सातऋर्मनी उत्कृष्टि स्थिति ऋघे तो नव  
हजारसागरोपममे ऊणी एककोडाकोडीसागरनो उत्कृष्टो  
ऋव करे इति भुवनभानुचरिभे कथु छे

१९७ प्र०-जीव मार्गाभिमुखथइ समकिन ज्यारे पामे ?

उ०-भवित यताने योगे अकामनिर्जराए कर्मखपावता वे  
पुद्गलपरावर्तकाल ससार रहे, त्यारे जीव आस्तिकपणे  
जिनमार्गसन्मुखी थाय, पढी त्यायी ससारपरिभ्रमण  
करतो जीव उचो आवे त्यारे ते मार्गपतित दोढ-  
पुद्गलपरावर्तससार रहे त्यारे जिनोक्त मार्गे रुचिवत  
थाय, वळी कर्मयोगे त्यायी पढी ससारभ्रमण करतो  
ज्यारे एकपुद्गलपरावर्तकालससार रहे, त्यारे जीव  
मार्गानुसारीपणु पामे, त्या मित्रादिकदृष्टि प्रगटे,  
न्यायसपन्नविभवादि पात्रीशगुणयुक्त थाय, त्या जि-  
नोक्त मार्गे चाली मिथ्यात्व मद करतो करतो नदी  
गोळपाषाण न्याये घचना घोळ परिणामे (एटले जेम  
नदी काठेयी छुटो पड्यो एक पत्थर, ते जेम पाणीनी  
छोळमा अथडातो कुटातो पोतानी मेळे गोळ थइ जाए  
एम ) ज्यारे जीव अर्धपुद्गलपरावर्तकाल माहे आवे  
त्यारे आर्यदेश, सजीपचेन्द्रियमनुष्य उत्तम जैनकुल  
सपन्न थइ सद्गुरु उपदेशे के सहजस्वभावे कोइ  
निमित्तपामीने यथाप्रवृत्तिकरण लही उज्वल आत्म-



वीर्योल्लास यकी अपूर्णकरणे रागद्वेषनी ग्रथि भेदी  
सिध्यात्त्रमोहनीयनी सातप्रकृतिने उपशमावतो अतर-  
करणमा थइ अनिर्वृत्तिकरणे आवी सम्यग्दृष्टि याय,  
त्यारे जीवने मार्गप्राप्त कहीए, वस्तु सत्ता वर्म अशे  
प्रगट कर्यो त्या तेनी केवी दृष्टि वते तो कहु छे के -

काव्य

अशे होय इहा अविनाशी, पुद्गल जाल तमाशी,  
चिदानदधन स्वरूप विलासी, केम होय जगनो आसी,  
ए गुण वीरतणो न वीसारु सभारु दिन रातरे,  
पशु टाळी सुररूप करे जे, समकितने अत्रदातरे ?

१९८ प्र०-साधुने जे त्रणयोग छे ते रत्नत्रयगुणे प्रणम्या छे  
ते केवी रीते ?

उ०-मनोयोग ते सम्यग्दर्शनगुणे दृढासक्तिकरूपे परिणमे  
छे, तथा वचनयोग ते जिनप्राणीमाहे ज्ञानगुणे प्र-  
णम्यो छे, तथा काययोग ते चारित्रगुणे “जयचरे  
जयचिद्वे जयमासे जयसये ” इत्यादिकरूप प्रगट्यो  
छे तेयी यावज्जीवसुधि सावद्ययोगयी निवर्त्तीने मुनि  
सयमयोगे परिणमे छे इतिभाव

१९९ प्र०-ससारमा जीव भव्यअभव्यादि त्रणप्रकारना छे ते  
कया ? तेनु स्वरूप दृष्टातसहित स्पष्ट समजावो

उ०-१ भव्य, २ अभव्य, ३ भव्याभव्य अथवा जातिभव्य,  
त्या भव्य त्रणप्रकारे छे -निकटभवी, मध्यमभवी,  
अने दुर्भवी, निकटभवी सोहागण स्त्री समान, ते  
जेम सोहागणी स्त्री पतिसमागमे ४ मासमा गर्भ

प्राप्त ५इ पुनप्राप्ति फळ लहे, तेम निकटभवी  
सद्गुरु उपदेश योगपामी शुद्ध श्रद्धा लही, शुद्ध  
चारिन पाळी तत्काळ सिद्धि वरे, बीजा मध्यमभवि  
ते कोइ स्त्रीने पति समागमे वे चार वर्षे गर्भ रही  
पुनप्राप्ति याय तेम मध्यमभवी थोडा सख्याता  
भवमा सिद्धि वरे, अने बीजा दुर्भवि ते जेम कोइ  
स्त्रीने घणे कष्टे घणे काळे पतियोगे गर्भ रही पुत्र  
प्राप्ति याय तेम वर्मपिरावक, पडवाइ जहुलकर्मी  
भारेकर्मीपणाने लीघे घणे काळे, घणे कष्टे, घणे उप-  
देशे कर्मखपावी सिद्धि वरे

२ अमव्यस्वरूप वाझणी स्त्री समान जाणवु, एटले  
जेम वध्यादोषवत स्त्रीने पतिनो समागम छता पुत्र  
प्राप्ति थायज नहि, तेम अभव्यने मुक्तिगमन यो-  
ग्यतास्वभाव न होवार्थी गमे तेटली वर्म सामग्रीनी  
जोगवाइ मळे, तोपण शुद्ध श्रद्धारूप खरेखरु ससार  
यकी उद्विग्नपण, स्वपरओळखाणपणु भेद ज्ञान न  
थाय पण पौद्गलिकआशीभावे चारित्रादिक पाळे,  
नवमा त्रैवेयक सुधी जाय छे, पण तेनु सवळ फोक  
निष्फळ जाय छे, केम जे तेना ज्ञानक्रियादि मो-  
क्षने अर्थे यथार्थ न होय तेथी

३ तथा भव्याभव्य जीवने सत्ताए भव्य समान  
योग्यता वरावे छे, तोपण कोइ भवितव्यताज ज्ञा-  
नीए एवी दिठेली के तेनो स्वभाव व्यवहारराशिमा  
आववारूप न थाय अत्र गाथा—

“ सामग्री अभावाओ व्यवहाराशीअप्पवेसाओ ।

भव्वावितेअणता, जे सिद्धिसुहनपावति ॥ १ ॥ ”

अर्थात् ते अव्यवहाराशियोज जीव रह्यो यको अनताअनतकाळ वाळविधवा स्त्रीनी परे सूक्ष्म-निगोदादिमा जन्मभरण करतो रहे, जेम वाळविधवा स्त्रीने सुकुलीनताने लीघे कदी पण भरथारनो योग न याय तेयी पुन प्राप्ति न सभवे एम जाणवु

२०० प्र०—अध्यात्मसारग्रन्थमा त्रणप्रकारना जीव कख्या छे ते कया ?

उ०—भवामिनदी ते मिथ्यादृष्टि ? वीजो पुद्गलानदी, से चोथा पाचमा गुणटाणावाळा सम्यग्दृष्टि, २ आत्मानदी ते मुनि, ३ इतिभाव

२०१ प्र०—वैराग्यना त्रणप्रकारनु टक स्वरूप कहो

उ०—दु खगर्भित वैराग्य, त्या जीव ससारमा नानाविध दु ख क्लेश पामतो विषयकपाययी विरक्तबुद्धि-वाळो थइ वर्मसन्मुखी याय पण सम्यग्ज्ञान न होवायी पाछु पौद्गलिकसुख मळता वैराग्य नष्ट थवानो सभव छे, तेने दु खगर्भितवैराग्य कहीए, पण ते जो वर्म साधन करता थका सद्गुरु उपदेशयोगे भेदज्ञान पामे तो पछी तेनो वैराग्य सत्य स्थायी ज्ञानगर्भित कहेवाय, एटले ज्ञानगर्भित वैरागी परमार्थे ससारनो एकात त्यागी होय, लखी वृत्तिए ससारमा रहे अने पूर्णमोक्षामिलायी होय, ज्यारे मोहगर्भितवैरागी कोइ स्त्री, पुत्र, धनादि

वस्तुना अभावे मोहमयनिपयकपाययुक्तमलिन परि-  
णतिमत ययो थको मोहितदु खना भारने लीघे  
ससारथी जद्विग्न रहे, पण ते साचो दु खगर्भित वैराग्य  
भागे पण न गणाय

- २०२ प्र०—चतुर्विध ससारीप्राणीनु स्वरूप दृशतयी समजावो  
उ०—? सघनरात्रि समान, एटले घन कहेता जे मेघनी  
घमचोर घटाए आच्छादित यएली अमासनी रात्रिमा  
काइपण सृझ न पडे तेम जीवने गाढमिथ्यात्वना  
उदये तीव्रमोहनी प्रप्रलताए कइपण हिताहित  
सत्यासत्य के कृत्याकृत्यनी सृझ न पडे तेवा प्रथम  
गुणठाणी भवामिनदी मिथ्यात्वदृष्टि जीव जाणवा,  
२ अघनरात्रि समान ते जेम मेघना वादळा रहित  
रात्रिमा घटपटादिक सृझे, तेम जीव काइक मि-  
थ्यात्वनी मदताए मोहादिकना किचित्क्षयोपशमे  
वर्ममार्गसन्मुखी मार्गानुसारीजीव अघनरात्रि समान  
जाणवा, ३ सघनदिन समान ते जेम वादळाए  
आच्छादितसूर्यवाळा दिवसमा निर्मळ रात्रि करता  
विशेष स्पष्ट घटपटादि पदार्थो सृझे छे, तेम  
मिथ्यात्वनय क्षयोपसमादि गुणेकरी सम्यग्दृष्टि  
चोथा गुणठाणाथी बारमा गुणठाणा सुधीना परमा-  
त्माना मार्गप्राप्त ज्ञानिमहात्माओ जाणवा, ४ अने  
अघनदिन समान एटले मेघरहित निर्मळसूर्यवत  
दिवसनी परे पूर्णज्ञान प्रकाशवत केवळज्ञानी भगवतो  
जाणवा.

- २०३-प्र०—ससारीजीवने आठ दृष्टि कहि छे तेना नाम कहो

उ०-१ मित्रा, २ तारा, ३ बला, ४ दीप्रा, ५ स्थिरा,  
६ काता, ७ प्रभा, ८ परा, ए आठ दृष्टि कहि  
तेनो विस्तार योगदृष्टिसमुच्चयथकी जाणघो

२०४ प्र०-सर्वपदार्थमात्रमा चारकारण छे ते दृष्टातयी कहो

उ०-१ उपादानकारण ते जेम घटमा मृत्तिका, २ नि-  
मित्तकारण ते जेम घटनी उत्पत्तिमा चक्र, दट, ची-  
वरादि छे तेम जाणवु, ३ असाधारणकारण ते जेम  
प्रट निपन्न करवामा कुभार हेतुभूत छे तेम जाणवु,  
४ अपेक्षा कारण ते वस्तु जेम छे तेमनी तेम रहे  
पण तेना आलपने, सहायताए आश्रये आपणु कार्य  
करीए, जेम घट नीपन्यो तेमनो तेम रहे पण  
तेटनी साहाये जलभरणपानरूप काम नीपजे, तथा  
जेम सूर्य दीपे छे, तेनी साहाये आपणा काम  
करीए छीए तेम जाणवु, वळी बीजा पण नण  
कारण कहा छे -समवायिकारण ते सहचारी सबव  
कारण जेम घटनु उपादान मृत्तिका छे तेम, २ अस-  
मवायिकारण ते असहचारी मित्रनिमित्त, जेम  
घटनी उत्पत्तिमा कुभार छे तेम, ३ निमित्तकारण  
ते चक्रदटचीवरादिरूप जाणवु

२०५ प्र०-सर्ववस्तु, द्रव्याधिकनय अने पर्यायार्थिकनय वडे  
प्ररूपाय छे ते माहेथी सातनय ते कया ?

उ०-१ नेगम, २ सग्रह, ३ व्यग्रहार, ४ ऋतुसूत्र, ५  
शब्द, ६ समसिरुट, ७ एवमूत ए सात नय ते-  
दना उपनय ए विस्तारनयचक्रयी जाणवो, तथा

रूपाय उपने पूर्वमोडितु पात्युचारित क्षय कर ते  
 उपर गाथा आचारगनी दीपिका मव्ये छे यत  
 “ सामणमणुचरनस्स, कसायजस्सउक्कडाहुति, मत्रामि-  
 ईल्लुपुप्फन्न, निप्फलतस्ससामण्णम् ॥ १ ॥ जअजियचरित,  
 देसुणएविपून्वकोडीए तपिरुसायमित्तोहारेईनरोमुहु-  
 त्तेण ॥ २ ॥ ”

२०६ प्र०—आविल एट्ठे शु ?

उ०—आवश्यकनी टीका मव्ये क्यु छे के आय कहेता  
 ओसामण काढ्यु होय ते मव्येयी जेम अन्न काडीए  
 ते रीते काडीने आहार करयो, अने जे आम्ल जे  
 खाटोरस पद्विगय ए वे वर्जिने ते आविल कहिए

२०७ प्र०—नियाणानो प्रश्न

उ०—नियाणानव प्रकारे दशाश्रुतस्कध मव्ये कह्या छे,  
 तथा जे नियाण समकितनु छे, अने बीजु अव्रतनु  
 छे ए वे मव्ये जे समकितनो घात करी नियाण  
 बाधे ते समकित पामवो दुर्लभ करे, तथा अविर-  
 तनु भोगप्रतियुनियाण बाधे ते भोग पूरा थये  
 व्रत उदये आवे जेम द्रौपदीना जीवे भोगप्रतियु  
 नियाण बाध्यु ते पाच भर्तारी यइ भोग पुरा थया  
 पछी व्रत उदये आव्यु ते माटे अविरतिआसरीनियाण  
 कहीये पण ते समकितनो इत्यर्थ

२०८ प्र०—चार प्रकारना सामा

उ०—१ श्रुतसामायिक, २

सामायिक, ४,

लाभ ते भव्यमिथ्यात्विने होय अभव्यने पण द्रव्ययी  
श्रुतनो लाभ याय, तथा समकितसामायिक ते स-  
म्यगृह्णने होय पाचमे गुणटाणे देशविरतिसामा-  
यिकनो लाभ होय, सर्वविरतिसामायिक ते उद्धा  
गुणटाणायी मुनिने होय

२०९ प्र०—व्यवहार अने निश्चय समकितीनु टक स्वरूप कहे

उ०—जिनवाणी प्रतीतेग्रहीने प्रत्यक्षस्वरूपने वेदे, गुण  
पर्यायनो विलउन करे, भेदरूप रत्नत्रये आराधे, तेने  
व्यवहारसमकिती कहीए, तथा जेने जिनवाणी गुण  
पर्यायअभेदरूपरत्नत्रये द्रव्य द्रव्यरूपे निर्विकल्प  
समाधिपणे परिणमे तेने निश्चयसमकिती कहीए,  
ते आगळ जता व्यवहारे प्रवर्तता वस्तुधर्मरूप  
शुद्धात्मनिश्चयपरिणतिरूप समकितने मेळवे

२१० प्र०—कया जानयी अने कइक्रियायी मोक्ष याय ?

उ०—क्रिया वेप्रकारनी छे—? योगक्रिया ते शुभाशुभ  
वधरूप छे, अने उपयोगक्रिया ते पोताने स्वरूपे  
परिणमे, त्या कर्म निर्जरा याय, योगक्रिया जाते  
आस्रवरूप होइ कर्मवध निपजावे, अने उपयोग  
क्रिया ते स्वरूप प्रकटावे, एटले योगक्रिया कर्म  
ग्रहण त्यागरूप मुलट पुलट छे, परतु सर्वथा मोक्षार्थे  
नधी, केम जे सर्वथा मोक्षरूप र्म ते शुद्धोपयोगे  
छे, माटे उपयोगशून्यक्रिया आस्रवरूप मोक्षनी  
एटले आत्मस्वरूपनी कत्तरणी एटले आच्छादन कर-  
नारी छे ( नाश करनारी छे )

रूपाय उपने पूर्वकोडितु पात्युचारित क्षय करे ते  
उपर गाथा आचारगनी दीपिका मव्ये छे यत  
“ सामणमणुचरतस्स, कसायजस्सउक्कडाहुति, मनामि-  
ईल्लुपुप्फन, निप्फलतस्ससामणम ॥ १ ॥ जअजियचरित,  
देसुणएविपूञ्चकोडीए तपिक्सायमित्तोहारेईनरोमुड-  
त्तेण ॥ २ ॥ ”

२०६ प्र०—आविल एट्ठे शु ?

उ०—आवदयकनी टीका मव्ये कहु छे के जाय कहेता  
ओसामण काट्यु होय ते मव्येयी जेम अन्न काडीए  
ते रीते काडीने आहार करयो, अने जे आम्ल जे  
खाटोरस पदविगय ए वे वर्जिने ते आविल कहिए

२०७ प्र०—नियाणानो प्रश्न

उ०—नियाणानव प्रकारे दशाश्रुतस्कध मव्ये कहु छे,  
तथा जे नियाण समकितनु छे, अने वीजु अव्रतनु  
छे ए वे मव्ये जे समकितनो घात करी नियाण  
बाधे ते समकित पामवो दुर्लभ करे, तथा अविर-  
तनु भोगप्रतियुनियाण बाधे ते भोग पूरा थये  
व्रत उदये आवे जेम द्रौपदीना जीवे भोगप्रतियु  
नियाण बाध्यु ते पाच भर्तारी थइ भोग पुरा थया  
पछी व्रत उदये आव्यु ते माटे अविरतिआसरीनियाण  
कहीये पण ते समकितनो नथी इत्यर्थ

२०८ प्र०—चार प्रकारना सामायिक कया ?

उ०—१ श्रुतसामायिक, २ समुक्तिसामायिक, ३ देशविरति-  
सामायिक, ४ सर्वविरतिसामायिक ते मव्ये श्रुतसामायिकनो



२१३ प्र०—स्थावर पर्याप्तानी निश्राए अपर्याप्त जीव केटला होय?

उ०—पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति प्रत्येक एटले स्थानके एकेका पर्याप्तानी निश्राए असख्याता अपर्याप्त होइ पण सूक्ष्म निगोदीया पर्याप्तानी निश्राये अनता अपर्याप्ता न होइ, ते अनता अपर्याप्ताना शरीर ज़दा तेहनो पण आयु वसेंठपन आवलित्तु होय पण अपर्याप्तो मरे इम नहोय सर्वे क्षुल्लक भविया छे ते माटे तथा पर्याप्तानु आयु एटल्ल पण तेटला माहे पर्याप्ति पुरीने मरे एहबु वार्युं छे इति तत्त्वम्

२१४ प्र०—व्यवहाराशियोजीव निगोदमा जाय तो त्या उत्कृष्ट केटलो काळ रहे ?

उ०—ते क्षेत्रयकी अढीपुद्गलपरावर्तनकालप्रमाण पछी सूक्ष्मत्रादरनिगोदमा आवी वळी जाय तो उत्कृष्ट अढीपुद्गलपरावर्तन, वळी त्यायी नीकळी एकेन्द्रियादि चक्रमा भ्रमण करी पाओ जायतो वळी उत्कृष्ट एटलो काळ रहे एम आव जा करता सर्व काळ तिर्यच-गति आश्रिने गणीए तो उत्कृष्ट असख्याता पुद्गल-परावर्तन काळ रहे, ते केटला ? स्तोके एक आवळीना असख्यातमे भागे जेटला समय थाय तेटला असख्याता प्रमाण पुद्गल परावर्तन जाणवा एम पन्नवणा मध्ये तथा कायस्थितिस्तोत्रनी टीका मध्ये कह्यु छे.

૨૧૧ પ્ર૦—નવઅનતાણુ જે જે પદાર્થો છે તે કહો

૩૦—પ્રથમના ત્રણઅનતે કોઈ પદાર્થ ન હોવાથી શૂન્ય છે, અને ચોથેઅનતે અભયર્જીવરાશિ છે, પાચમે અનતે મધ્યમ ભાગે સમ્યક્ત્વ પડવાઈ છે, વર્ષી તેહજ પાચમે અનતે શુદ્ધ સિદ્ધના જીવો છે, પળ તે પૂર્વોક્ત પડવાઈઓથી અનતગુણા જાણવા, પઠી ડુદ્ધો અનતો શૂન્ય, સાતમુ શૂન્ય પઠી આઠમે અનતે સર્વે નિગોદીયાર્જીવો, તથા તેથી અનતા અનતગુણા પુદ્ગલપરમાણુ, તેથી કાઠ, તેથી સર્વ આકાશ પ્રદેશ, તેથી કેવલજ્ઞાન તથા કેવલદર્શનના પર્યાય, એ સર્વે એક એકથી અનતગુણા પળ આઠમે અનતે છે, નવમેઅનતે કોઈ વસ્તુ વિશેષ નથી, માટે શૂન્ય જાણવો

૨૧૨ પ્ર૦—સર્વ સમકિતમા પહેલુ કયુ સમકિત ઉત્પન્ન થાય છે ?

૩૦—સિદ્ધાન્ત આગમમાહિ પ્રથમ ક્ષયોપશમ સમ્યક્ત્વ પામે, ઉપશમનો તત નહિ તે શ્રી જિનભદ્રગણિ ક્ષમાશ્રમણની કીધેલી સમકિત પચવીસી મધ્યે કહ્યુ છે, જે પહિલો ક્ષયોપશમ સમ્યક્ત્વ પામે ઉપશમનો તત નહિ તથા કર્મગ્રન્થમધ્યે પહિલો ઉપશમ સમકિત પામે ત્યારપછી ક્ષયોપસમકિત પામે ઉપશમનો તત નહિ એહવો આચાર્યનો મત છે અથ ત્યારપછી કાલસિત્તરી ગ્રન્થમધ્યે કાલિકાચાર્યે ત્રણ જુદા કહ્યા છે તથા કલકી યાસ્યે એ અધિકાર પળ કાલસિત્તરી મધ્યે છે

२१३ प्र०—स्थावर पर्याप्तानी निश्चाए अपर्याप्त जीव केटला होय?

उ०—पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति प्रत्येक एटले स्थानके एकेका पर्याप्तानी निश्चाए असख्याता अपर्याप्त होइ पण सूक्ष्म निगोदीया पर्याप्तानी निश्चाये अनता अपर्याप्ता न होइ, ते अनता अपर्याप्ताना शरीर ज़दा तेहनो पण आयु वसेठपन आवळिनु होय पण अपर्याप्तो मरे इम नहोय सर्वे क्षुल्लक भविया छे ते माटे तथा पर्याप्तानु आयु एटलु पण तेटला माहे पर्याप्ति पुरीने मरे एहवु वायु छे इति तत्त्वम्

२१४ प्र०—व्यवहाराशियोजीव निगोदमा जाय तो त्या उत्कृष्ट केटलो काळ रहे ?

उ०—ते क्षेत्रयकी अढीपुद्गलपरावर्तनकालप्रमाण पळी सूक्ष्मनादरनिगोदमा आवी वळी जाय तो उत्कृष्ट अढीपुद्गलपरावर्तन, वळी त्यायी नीकळी एकेन्द्रियादि चक्रमा भ्रमण करी पाठो जायतो वळी उत्कृष्ट एटलो काळ रहे एम आव जा करता सर्व काळ तिर्यच-गति आश्रिने गणीए तो उत्कृष्ट असख्याता पुद्गल-परावर्तन काळ रहे, ते केटला ? स्तोके एक आप-ळीना असख्यातमे भागे जेटला समय थाय तेटला असख्याता प्रमाण पुद्गल परावर्तन जाणवा एम पन्नवणा मव्ये तथा कायस्थितिस्तोत्रनी टीका मव्ये कथु छे.

- ૨૧૫ પ્ર૦—દર્શનની ક્ષપક શ્રેણિ કયા ગુણટાણાથી માટે અને ચારિત્રની ક્ષપક શ્રેણિ કયા ગુણટાણાથી માટે ?  
 ૩૦—દર્શનની ક્ષપક શ્રેણિ તે ચોથા ગુણટાણાથી માટે, ચારિત્રની ક્ષપક શ્રેણિ આટમાથી માટે
- ૨૧૬ પ્ર૦—જ્ઞાનાપરણીય કર્મનો જવન્ય અને ઉત્કૃષ્ટત્રય કેટલો ?  
 ૩૦—કર્મનોત્રય જવન્યથી એક સમયનો, જવન્ય સ્થિતિ તે અતર્મૂહતાઈ ભોગમે, ઉત્કૃષ્ટ જ્ઞાનાપરણીય કર્મની વીસ કોડાકોડી ઇમ એ રીતે છે
- ૨૧૭ પ્ર૦—સર્વ જીવોની મૂલ મૃમિકા કહી ?  
 ૩૦—ભવ્ય, અભવ્ય, સર્વ જીવ સૂક્ષ્મ નિગોદથી નીકળ્યા છે મૂલ મૃમિકા તે જાણવી
- ૨૧૮ પ્ર૦—જવન્ય અને ઉત્કૃષ્ટ યોગનો કાલ કેટલો છે ?  
 ૩૦—મનોયોગનો જવન્યકાલ એક સમયનો, ઉત્કૃષ્ટો અતર્મૂહર્તનો કાલ એમ વચનયોગનો પણ કાલ એ રીતે છે એમ ધાર્યું છે
- ૨૧૯ પ્ર૦—વસ્તુને વિષે ષડ્ગુણ હાનિ વૃદ્ધિનું સ્વરૂપ ટુકામા કહો  
 ૩૦—ગુણ પર્યાય સહિત જે વસ્તુ તેને દ્રવ્ય કહીએ, તે ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રુવરૂપ ત્રણ અવસ્થાએ સહિત છે, પરિણામી છે, તે પરિણમન ઉત્પાદ વ્યયરૂપ પર્યાયરૂપે પરિણમન, જવન્ય, મધ્યમ, અને ઉત્કૃષ્ટ સ્વરૂપે છે, તેને લઈને વસ્તુમા ષડ્ગુણ હાનિ વૃદ્ધિ-રૂપ અગુરુકૃષ્ટ પર્યાય જે દરેક વસ્તુ માત્રમા નિસ્તર વર્તે છે, તે નિપજે છે, તે આવી રીતે --

सख्यातगुण वृद्धि, २ असख्यातगुण वृद्धि, ३ अनत गुण वृद्धि, ४ अनत भाग हानि, ५ असख्यात भाग हानि, ६ सख्यात भाग हानि, एम द्रव्ययी द्रव्य परिणमन षड्गुण हानि वृद्धि रूप अगुरुलघु पर्याय सिद्धमा पण छे

२२० प्र०—आठ कर्मनी वर्गणा अने कार्मण शरीरमा शो फेर छे ?

उ०—कार्मण शरीर ते नामकर्मनी प्रकृति ते नामकर्मनी वर्गणारूपे कार्मण शरीर जाणीए, बाकी बीजा सात कर्मनी वर्गणा ते एहने विषे छे इम आधारावेय भावे छे जेम कणनी गाठडी पिण वस्त्रमिन्नतिम कर्मनी वर्गणा जुदी ते किम जाणीइ ? जिम केवली भगवतने ज्ञानावरणीयादि चार कर्मनी वर्गणा मूलथी गइ पण तोहि कार्मण शरीर छे त्यारे ते अनुमाने अन्य कर्मनी वर्गणामिन्न, कार्मण शरीर ते मिन्न, इम कार्मण शरीरनो स्वरूप जाणवो, पछी तो जेम तीर्थकर देवे कह्यु ते सत्य सदह्यो छे इति भाव ।

२२१ प्र०—चतुर्विध बध हेतु पूर्वक कहो

उ०—योग अने कषाय प्रतैया बध चार प्रकारे छे, त्या एकला योगनी हलचले प्रकृतिबध अने प्रदेशबध थाय छे, अने कषाये करी स्थितिबध अने रसबध निपजे छे

२२२ प्र०—केवळी भगवतने योग प्रतैयो शाताबध छे, ते शी रीते ?

૩૦—કેવળી ભગવતને કાઢ શુભ સફ્ટપરૂપ વ્યવહાર નથી, તેમને ઇક શુદ્ધ લેશ્યાનો ઉદય છે, તે યોગદ્વારે પરિણમે છે, અને યોગનુ પરિણમન તે જૌદયિક ભાવે જડ પરિણમે, કેમ જે પુદ્ગલને પુદ્ગલનો વિશ્રામ છે, તેથી તે લેશ્યાય યોગ પ્રત્યક્ક ઇક સાતા પ્રકૃતિનો ઇક સમયનો ત્ર છે, તે વીજે સમયે સક્રમે, અને ત્રીજે સમયે યેરવે અર્થાત્ ઉત્તમ પુદ્ગલ ગ્રહે, વીજે સમયે તેને વેદે અને ત્રીજે સમયે યેરવે ઇટલે યપાવે

૨૨૩ પ્ર૦—સમ્યગ્દષ્ટિને અને મિથ્યાદષ્ટિને શુભાચાર અને શુભ ઉપયોગ કેવી રીતે હોય છે ?

૩૦—મિથ્યાદષ્ટિજીવને શુભાચાર હોય પળ શુભોપયોગ ન હોય, અને સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને શુદ્ધોપયોગ હોય તેહને શુભોપયોગ આચરણરૂપે હોય પળ આદર ન હોય અને મિથ્યાદષ્ટિ જીવને શુભાચારરૂપ હોય પળ અશુદ્ધોપયોગના ઘરનો અશુભોપયોગ હોય પળ અશુભોપયોગ ઉપચારે કહિયુ ઇતિ ભાવ, હવે ચોથે ગુણઠાળે સમ્યગ્દર્શન પામે અનતાનુવધિયા રાગદ્વેષ તથા મિથ્યાત્વમોહનોક્ષય તથા ક્ષયોપશમ યાય

૨૨૪ પ્ર૦—ભામડલ કરવાની શી જરૂર છે ?

૩૦—આણદ શ્રાવકની સધિ યરતરગચ્છે મુનિશ્રીસારની કીધી ગાથા ત્રણસેને ઇકાસીમી છે તે મધ્યે અટ્ટ-પ્રતિહાર્ય અધિકારે દેવતા ભામડલ કિમ કરે છે ? તત્ર ગાથા—તેજ અરિહત અતિઘળો ઇ, યમી ન શકે નરનારી । તે તેજ લડ યુઘ કરે ઇ, પુઠે ભામડલસાર ॥ ૧ ॥ પરમઉદારિક શરીરના તેજ

विशेष छे ते तेजना पुत्रल सहरीने प्रभुने पुठे  
भामडल करे इति भाव ।

२२५ प्र०—आनन्द श्रावकने पाचसे हलवडे मनि खेटवानु  
मान केवी रीते हतु ?

उ०—तत्र गाथा-क्षेत्र खेटयु हल पाचस्ये, मुझने अवि-  
रति एतिरे । घरवरनी पण मोक्ली, एऊ सानी  
वरती जे तिरे ॥ १ ॥ तेनी वरतीनो अर्थ लखीण  
छीए दशमि हस्तेरकोवश पिगत्यागणे एकोनिर्त्तन  
पञ्चशतै निवर्त्तने एकदल इट्ठी हलमूमिका पञ्चशत-  
मूमिघरवरीनी जावी एतद मूमिका घर रहेवानी छे  
टाकी पाचसे हलमूमिका हल खेटवानी छे उवाडी  
इतिभाव ।

२२६ प्र०—कर्मचतुर्थकतपनी विधि केवी रीते छे ?

उ०—पूर्व अष्टम ?, चतुर्थ ८०, प्रान्ते अष्टम इति तपो-  
दिन ६६, पारणक दिन ६२, उभयदिन मळीने  
दिन १२८ इति कर्मचतुर्थतपयतोवसुदेव हिंदौ-  
सापउमाअज्जिया, तेनीज्जाएसयासोओ । कम्मचउत्थ  
उपवणा, दुगितिरित्ताणी सट्टिचउत्थाणिति ॥ १ ॥  
ते पदमाआर्याए ते ऋणे आर्यादनेसमीपेकर्म चउत्थतप  
कीवो, इति शान्तिनाथ भवाधिकारे, इदुपेणविदुषेण  
भवाधिकारे गुणीकाने भवे ए तप कीवो इतिभाव ।

२२७ प्र०—वर्मचक्रवाल तपनी विधि केवी रीते छे ?

उ०—अष्टम ?, एकातर चतुर्थ ३७, प्राते अष्टम इति  
वर्म चक्रवाल तपनी विधि जाणवी, अथ विधि प्रथम





हना नाशवडे झेर टळे, वर्की मुनिने उड्डा गुणठा-  
णायी आगळ विषयराग उदयमायी टळे विषय,  
कषाय, उत्सूत्रप्ररूपणा दोषो दूर थाय, अने राग-  
द्वेष अने मोह सत्तामार्था टळता आत्मा परमात्मा  
वीतराग स्वरुपी केवळजानी केवळदर्शी आदि अन-  
तगुणी अनतसुखमय अने छे

२३१ प्र०-उद्वेगता, अस्थिरता, अशाता, आकुळता ए चार  
जीवने शार्थी उपजे छे ?

उ०-१ अज्ञान अने मिथ्यात्वना उदये उद्वेगता, २ वेदनी  
कर्मना उदये अशाता, ३ अविरति तथा चारित्र  
मोहना उदये आकुळता अने ३ वीर्यातरायना उ-  
दये अस्थिरता जीवने उपजे छे

२३२ प्र०-१ अपात्रदान, २ कुपात्रदान, ३ पात्रदान, ४ सु-  
पात्रदान ते कोने कहीए ?

उ०-१ अपात्रदान ते श्वानादि पशु तथा अदिवानादिने  
आपवु ते, तेनु फळ आ लोकनेविषेज यश प्र-  
तिष्ठारूप लेशमात्र फळ छे २ कुपात्रदान ते वेरागी  
सन्यामी, कापडी, तापसादिकने आपवु ते, तेनु फळ  
परभवे राज्यादिक प्राप्ति करी पापात्रबधिपुण्य बाधी  
कुगति दळ मेळवी ससार भ्रमण ववारे, ३ पात्रदान  
ते सम्यगदृष्टि देशविरति साधर्मी प्रमुखने भक्ति ब-  
हुमानथी पोषवा ते, तेथी पुण्यानुभवी पुण्य उपार्जन  
करी भवभ्रमण घटाडे, ४ सुपात्रदान ते महामुनि  
गणवर तीर्थकरादि योगी महात्मारूप पात्रने बहु

પઠ્ઠ તત ઇકાન્તરોપમાસ ૬ ઇતિ પ્રકાર દ્વયેન  
 વર્મચક્રવાલ તપનીવિધિ તત્ર પ્રથમ પ્રકારે દિન  
 સર્વાગ્ર ૮૨ દ્વિતીય પ્રકારે દિન સર્વાગ્ર ૧૨૩

૨૨૮ પ્ર૦—તીર્થંકરની માતા ચૌદ સ્વપ્નને મુખમા પેસતા દેખે ?

૩૦—શાન્તિનાથ ચરિત્રાધિકારે તીર્થંકરની માતા ૧૪ સ્વપ્ન  
 મુખમાહે પેસતા દેખે યત ચતુર્દશ મહાસ્વપ્નાન્  
 સુખ સુપ્તા તદાચસા મુખે પ્રવિશતોપદ્યન્તી તત્તસ્પા-  
 કારધારિણ , ઇતિશ્રી ઉત્તરાધ્યયનેભાત્ર વિજયની ટીકા  
 મલ્યે તથા શાન્તિનાથ ચરિત્રાધિકારે કથ્યુ છે આવશ્ય  
 ચૂર્ણો પચ્ચાશક્રવૃત્તૌ યોગશાસ્ત્રવૃત્તૌ નવપદપ્રકરણ  
 વૃત્તૌ, શ્રાદ્ધદિનકૃતૌ શ્રાદ્ધવિધિ પ્રમુખે છે ।

૨૨૯ પ્ર૦—શ્રાવકનો દિગ્વ્રત સન્ધ્યા પ્રશ્ન ?

૩૦—પ્રથમ સામાયિક પશ્ચાત્ ઇર્યાવથિકી શ્રાવકને દિગ્-  
 વ્રત હોય પણ સાધુને નહીં મેરુરુચક જવા માટે  
 ઇત્યર્થ ।

૨૩૦ પ્ર૦—ચોથે ગુણઠાણે સમ્યક્ત્વ ગુણ પ્રગટે અને સ્વાર, વૈર,  
 અને ક્ષેરરૂપ અવગુણ ટકે તે શી રીતે ?

૩૦—સર્વ ગુણમા અગ્રેસરી ગુણ સત્ય સ્થાયી ગુણ, પરપ-  
 રાણુ, પરમાત્મ સ્વરૂપને પમાડનાર, જ્ઞાન વ્રતાદિ અ-  
 નેક ગુણને સ્વેચ્છી લાવનાર, અને તે ગુણના પ્રતિ-  
 પક્ષી અનેક દોષને ટાલનાર, જીવને પરમ હિતકારી  
 સદા સર્વદા ઇક સમ્યગ્ દર્શનરૂપ સમક્તિ ગુણ છે,  
 તે ગુણ પ્રગટે યકે સ્વાર ટકે, સમ્યગ્ જ્ઞાનગુણે  
 વૈરભાવ ટકે, અને સ્મિધ્યાત્વ મોહ અને ચારિત્રમો-

प्रमाण अतर छेतेथी आवेला पुद्गलोनो अष्ट प्रकारे स्पर्श छे तेना विकारो ९६ छे, २ रसेन्द्रियनी आकृति सरपलो तथा कमळना पत्र सराखी छे, नव योजन अतरे रहेला पुद्गलोनो स्वाद वायुपी खेंचाइ आवे थके धाय, तेना छ रसरूप छ विषयना ७२ विकारो छे, ३ घ्राणेन्द्रियनी आकृति तलना फूल सराखी छे, तेनो विषय क्षेत्रफळ नव योजननो तेना विषय २ अने विकार १२ छे, ४ चक्षुइन्द्रिय, तेनी आकृति मसुरनी दाळ समान, एक लाख योजन विषय क्षेत्रफळ, तेना विषय पाच अने तेना विकार ६०, काननो चार योजन आत्मागुल प्रमाणे चार गाउनो योजन जाणवो तथा सूर्यनो त्रिंश तो आत्मागुल प्रमाणे घणा लाख योजन थाय ते माटे चक्षुनो एटलो विषय नथी तो सूर्यनो त्रिंश किं, देखाय छे तत्रोत्तर सूर्यनो विमान देवका एक योजनना एकसठिया अटतालीस भागनो छे तेना आपणा गाउ १३०० ने आशरे मोटो विमान छे. ते सपूर्ण आखे देखातो नथी पण तेना विमानना तलीयाना तेजनो आभासमान झलक काति दिसे छे पण सपूर्ण विमान आखे न देखाय ते माटे आत्मागुल प्रमाणेनो लाख योजन विषय कहेवो श्रीनेन्द्रियनी आकृति अगर्थाआ वृक्षना फूल समान, तेनो १२ योजन विषय क्षेत्र, तेना विषय ३ अने विकार १२ एम एकदर पाच इन्द्रिय विषय २३ अने विकार २५२ ते विकारो रहित मात्र

માનવી અન્ન પાનાદિનું દાન દેતા યજ્ઞ જીવ મહા  
પુણ્યાનુગ્રહી પુણ્ય ઉપાર્જીને દેવ મનુષ્યાદિ ઉત્તમ ભવ  
કરતા યજ્ઞ શીઘ્ર સિદ્ધિ વરે

૨૩૩ પ્ર૦—ઊકાયના ગોત્રના નામ કયા ?

૩૦—૧ સ્વિધાવરકાય, ૨ ઝમીધાવરકાય, ૩ સિપિધાવર-  
કાય, ૪ સમુદ્ધાવરકાય, અસસ્થિધાવરકાય, જગમ  
ધાવરકાય, ઇન્દ્રિયધાવરકાયનું પૃથ્વીકાય ગોત્ર, પી-  
તવર્ણ પુઢ્વીનામ જીવ, ઇન્દ્ર દેવતા, ઝમી ધાવરનો  
અપકાયગોત્ર, શ્વેતવર્ણ મહા દેવતા અપકાય જીવ,  
સિપીધાવરકાયનો તે જસગોત્ર રક્તવર્ણ શિલ્ય દેવતા  
તેઊકાય જીવ, સમુદ્ધાવરકાયનો ગોત્ર, વાયુકાય,  
હરિતવર્ણ સમુદ્રદેવતા વાયુકાય જીવ, આવશાઙ્કધાવર-  
કાયના વનસ્પતિગોત્ર, નાનાવર્ણ પાતાલદેવતા, વનસ્પતિ  
જીવ, સાત નરકના ગોત્રની પેઠે ણ પૂજા જાણવા

૨૩૪ પ્ર૦—દશ પ્રકારના સત્ય તે કયા ?

૩૦—૧ જનપદ સત્ય, ૨ સમય સત્ય, ૩ સ્થાપના સત્ય,  
૪ નામ સત્ય, ૫ રૂપ સત્ય ૬ પ્રત્યેય સત્ય, ૭  
વ્યવહાર સત્ય, ૮ ભાવ સત્ય, ૯ યોગ સત્ય, ૧૦  
ઉપમા સત્ય ગાથા—

જપાવયણ સમયવણા, નામેરૂપેપહુષ્ણ સષ્ણે ય ।

વવહારભાવ યોગે, દસમે ઉવમસષ્ણે ય ॥

૨૩૫ પ્ર૦—પાચ ઇન્દ્રિયોની આકૃતિ તેમનો વિષય ક્ષેત્ર, તથા  
વિષય વિકાર, કેટલા અને કયા કયા છે તે કહો

૩૦—૧ સ્પર્શેન્દ્રિયનો આકાર અને પ્રકારે છે, નવ યોજન

गद्य, स्पर्शादि ग्रहण शक्ति उपजे तेनी उपयोग उपलब्धि ते भावेन्द्रिय ऋहेयाय छे, अने आकृति ते द्रव्य इन्द्रिय जाणवी एम पत्रवणामा कस्यु छे- मनुष्य यको सिजे तेने आठ इन्द्रिय जाणवी नारकी यकी मनुष्य थइ सिजे तेने १६, सोळ इन्द्रिय जाणवी तिर्यचयकी तथा पृथिवीयकी मनुष्य थइ सिजे तेने १७, सत्तर इन्द्रिय तथा देवतायकी पृथिवी मनुष्य थइ सिजे तेने १७ सत्तर इन्द्रिय जाणवी तथा पृथिवी, पाणी उनस्पति माहेयी मनुष्य थइ सिजे तो ९ नव इन्द्रिय तथा इम सर्व विचार पत्रवणा मव्ये कह्यो छे पण एनो अर्थ आमनाय गीतार्थगुरुयी जाणवो

२३७ प्र०-आत्मबोधरूप सम्यक्त्व प्राप्तिमा पाच लब्धिनी आवश्यकता छे, ते पाच लब्धिनु स्वरूप कहो

उ०-१ काळ लब्धि, ते आयुवर्जित शेष सात कर्मनी उत्कृष्ट स्थितिने घटाडी एककोडाकोडी सागर प्रमाण करे, एवा यथाप्रवृत्तिकरणपूर्वक चर्मावर्ते जीव आच्यो त्यारे काळलब्धि पाकी कहीए, पहेली लब्धि पाम्या पछी छेली एकठी एकसमे प्रगटे २ इन्द्रिय लब्धि ते सञ्ज्ञि पचेन्द्रियपण, ३ उपदेश लब्धि ते सद्गुर्वादि-कना योगे उपदेश पामी बूझे, ४ उपशम लब्धि ते निर्मळ परिणामनी वाराए चढतो विषय कषायनी उपशाति भावमा अपूर्वकरणे करी ग्रथिभेद करे, ५ प्रयोग लब्धि, पछी अत करण पूर्वक अनिवृत्ति-करणना परिणामे रह्यो यको स्वपर भेदज्ञानरूप

इन्द्रियोना आङ्गार युक्त पोताना आत्मवर्मनु एकाते  
 प्रतिपालन करता थका, दशवित्र रायम वर्मनो उत्तम  
 रीते निर्वाह करता, एसा जे महा मुनि महाराजो,  
 तेमने मागे प्रिकरणशुद्धिये नमस्कार छे ऋण प्र-  
 कारना शब्द शुभ, अशुभ भेदे ७ भेद थया राग  
 अने द्वेष ए चार भेद चतु इन्द्रियर्था पाचवर्ण तेने  
 शुभ अशुभ वे भेदे गुणता दश तेने सच्चित्त अ  
 चित्त ए ऋणे गुणता ३०, रागद्वेषे गुणता साठ  
 थाय सुरमिदुरमिगवने सच्चित्तादि ऋण भेदे गुणता  
 ६ थाय तेने रागद्वेषे गुणता चार भेद थाय दशने  
 शुभ अशुभे गुणता चार थाय तेने सच्चित्तादि ऋण  
 भेदे गुणता ३६ थाय तेने रागद्वेषे गुणता ७२  
 थाय आठ प्रकारना स्पर्श तेने सच्चित्तादि ऋण भेदे  
 गुणता २४ थाय, तेने शुभाशुभे गुणता ४८ थाय  
 तेने रागद्वेषे गुणता ९६ थाय सर्व सख्याए  
 २५२ थाय गाथा—

चारसहितो सोतस्स, सेसाण नवाहिजोयणेहितो ।

गिण्हतोपत्तगथ्थ, एतो परतो नगिण्हति ॥

२३६ प्र०—पाच इन्द्रियोनु द्रव्य तथा भावर्था स्वरूप कहो

उ०—? द्रव्येन्द्रिय, वे प्रकारे छे सूक्ष्म अने बादर, बादर  
 ते बाहेर दिसे छे, आकृतिरूप छे ते, सूक्ष्म ते  
 विषय ग्रहणव्यापारे आभ्यतर प्रवृत्तिरूप, जवन्यर्था  
 अंगुळनो असख्यातमो भाग, अने उत्कृष्ट पूर्वे कह्यु  
 छे तेदलो विषय क्षेत्र जाणवु, २ भावेन्द्रियपणु ते  
 जीवने दर्शनावरणीकर्मना क्षयोपशमे शब्द, रूप, रस,

जाणे ते अग्रद्विप्र ४, कोइक तुरतग्रहे ते क्षिप्र  
 ५, कोइक शेषग्रहे ते वीर कहीये ६, कोइक धू-  
 मादिक लिंगे करी अग्न्यादिक जाणे ते सलिंग  
 ७ तथा जे लिंग विना जाणे ते अलिंग ८, एक  
 सदेहालो जाणे ते सदिग्ध कहीए ९, सदेह रहित  
 जाणे ते असदिग्ध १०, कोइकवेला कहु ते वीजी-  
 वेलाए अणकह्ये ते जाणे ते ब्रुव कहीए ११, को-  
 इक वारवार जणावे जाणे ते अद्ब्रुव १२, एम  
 अवग्रहादिक २८ भेद ते वार गुणा करता ३३६  
 भेद याय एटला श्रुतनिश्चितना भेद तथा अश्रुत-  
 निश्चितना ४ भेद ते १ ओत्पातिकीबुद्धि, २  
 वेनयिकीबुद्धि, ३ कर्मीया ते कार्मणिकीबुद्धि, ४  
 परिणामिया ते पारिणामिकीबुद्धि, एव ते अश्रुत-  
 निश्चित सेव मली मतिज्ञानना ३४० भेद कर्मग्र-  
 यनी टीका मन्ने कह्या छे

२४० प्र०—ज्योतिष देवतामा कया जीवो न उपजे ?

उ०—पन्नवणा सूत्रना उट्टा वक्कतिपद मध्ये कहु छे के  
 ज्योतिषि देवतामाहे समूर्च्छिममनुष्यअसक्षियो तथा  
 तिर्यच असक्षियो समूर्च्छिम असख्यात आयुष्य-  
 वाळा युगळिया पखी तथा अतरद्वीप युगळिया  
 मनुष्य एटला माहेयी आव्यो ज्योतिषि देवतापणे  
 न उपजे

२४१ प्र०—एक योजननु प्रमाण परमाणुयी माडीने शी रीते  
 याय छे ? ते कहो

सम्यक्त्व पामे, त्यारे वीतराग वर्मनी रुचिपूर्वक  
प्रतीतात्मरु वर्मरूप शुद्ध तच्चार्य श्रद्धाने आत्म-  
स्वरूपतु दर्शनज्ञान, स्वरूपाचरणरूपे जीवने वाय

२३८ प्र०—आत्मागुल उच्छेदागुल प्रमाणागुलना मान क्या  
केवा छे ?

उ०—आवश्यक नियुक्तिमा तेनु मान नीचे प्रमाणे क्यु छे

गाथा—उस्सेहगुलमेग, हउइ पमाणागुल सहसगुण ।

तचेव दुगणीयखल, वीर सायगुल भणिय ॥१॥

आयगुलनवथ्यु, सरीर मुस्मेहगुलेण तहा ।

नग पुढर्वा विमाणाइ, मिणसुयमाणगुलेणतु ॥२॥

२३९ प्र०—मतिज्ञानना केटला भेद छे ?

उ०—मतिज्ञानना श्रुतनिश्चित अने अश्रुतनिश्चित ते मव्ये  
श्रुतनिश्चितना ४ भेद अवग्रह, १ ईहा, २ अपाय, ३  
धारणा ४ अवग्रहना वे भेद ? व्यजनावग्रह, २ अर्थावग्रह  
व्यजनावग्रहना ४ भेद ? स्पशेद्रिय, २ रसेन्द्रिय,  
३ घ्राणेन्द्रिय, ४ श्रोत्रेन्द्रिय, अर्थाग्रहना ६ भेद  
पाच इन्द्रिय छहु मनएम छ चोक चोवीस अने ४  
व्यजनावग्रहना इम ईहा अपाय धारणा करता एव  
२८ एम एकेकना १२ भेद थाय ? बहु, २ अ-  
बहु, ३ बहुविध, अबहुविधादिक बार भेद तिहां  
अनेक जीव वार्जिजना शब्द साभले छे ते मव्ये  
क्षयोपशमिक विचित्रताए करी कोइक जीव घणा  
शब्दग्रहे ते बहु ?, कोइक जीव थोडाग्रहे ते अबहु  
२, कोइक शब्दना व्यापार माहे इत्यादिक घणा  
विशेष जाणे ते बहुबिध ३, कोइक थोडा विशेष



काढता जेटला समयमा ते पल्य खाली थाय तेटला कालने एकत्रादरउद्वारपल्योपम कहिए, ते सख्यातो कहिए केमके वालाग्रखडसख्याता थाय माटे पछी ते वालाग्रखटना एक एकना असख्याताखड कल्पिए, अने ते कल्पनाखड समय समय काढता जेटला काळमा खाली थाय तेटला समयने एक सूक्ष्मउद्वारपल्योपम कहिए, एवा पचीस कोडाकोडी-उद्वारपल्योपम एकअर्डीउद्वारसागरोपम प्रमाणे तिच्छालोके द्वीप अने समुद्र असख्य छे, २ पछी पूर्वोक्त वालाग्रखड एक एकने सो सो वरसे काढता ज्यार खाली थाय तेटला समयने एक पान्तरअद्वापल्योपम कहिए, अने ते वालाग्रखटना, असख्याताखड कल्पिने प्रत्येक खड सो सो वरसे काढता जेटला समयमा पल्य खाली थाय तेटला वखतने एक सूक्ष्मअद्वापल्योपम कहिए, तेवा दशकोडाकोडीपल्योपमे एक सागरोपम, तेवा दसकोडाकोडीसागरोपमे एक अवसपिणी ने उत्सपिणी काळ, ते वे मळीने वीसकोडाकोडीसागरोपम प्रमाण एक कालचक्र, एवा अनताकाळचक्रे एक पुद्गलपरावर्त्तनकाल प्रमाण आ जीव ससार मव्ये निगोदादिकथी माळीने जन्म मरण करतो करतो अकाम निर्जराए कुटातो पीटातो, कोइ महापुण्यना उदये शुभपरिणामे करी नदी गोळपाषाणना घचनाघोळ न्याये करी आ अत्यतदुर्लभ एवो उत्तम कुळ सयोगवाळो उत्तम निरोगी देहसहित मनुष्यभव पाम्यो छे, उता

३०-अनता सूक्ष्म परमाणुए एक अप्रहार परमाणु, आठ प्रसरेणुए एक उर्ध्वरण, आठ उर्ध्वरणुए एक रथरण, आठ रथरणुए उत्तर कुरु युगलीयाना तुरत जन्मेल वाळकनो एक वाळाय, एवा आठ वाळाये एक महा हिमवन्त क्षेत्र युगलीक वाळ वाळाय, एवा आठ वाळाये, एक महाविदेह क्षेत्र मनुष्य वाळाय, एवा आठ वाळाये एक भरतक्षेत्र मनुष्य वाळाय, एवा आठ वाळाये एक लीख, आठ लीखे एक जु, आठ जुए एक जव, आठ जव एक आगळ, २४ आगळनो एक हाथ, चार हाथनो एक वनुष, अने वे हजार धनुषे एक कोश, एवा चार कोशनो एक योजन जाणरो

२४२ प्र०-पृथ्विध पल्योपमनु स्वरूप कहो

३०-उद्धार, अद्धार, क्षेत्र पल्योपम, सूक्ष्म अने वादर भेदे करीने छ प्रकारे छे ते आवी रीते-१ पूर्वोक्त योजन चार प्रमाणे लागो पहोळो, अने उडो कुवो कल्पिए तेने पल्य कहिए, तेनी छे उपमा ते जेने तेने पल्योपम कहिए ते पल्यने देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्रना युगलिक तुरत जन्मेल वाळकना वाळाय एकना आठ आठ खड सातवार करीए, ते वाळाय खडे करी टासी टासीने भरवो, एवो के ते उपरथी चक्रवर्तिनी सेना चाली जाय, तथा गगा नदीनो प्रवाह पूर जोरथी ते उपरथी वहन करे, तोपण एक पण वालाय तेमाथी खसे नहि, एवो ठासीने भरीए, पछी ते वालायने समय समय एक एक

वादमा एकेंद्रिय के त्रसादि जीव सख्यानुमान कराय छे ए असख्यातउत्सर्पिणी प्रमाणे इम त्रण सूक्ष्म-पल्यो शास्त्रने विसे उपयोगी होइ तिन वादर कइया ते सूक्ष्मनो सुखावप्रोद्यार्थ इहा प्राय घणो अद्वा-पल्योपमनो प्रयोजन छे, इम कोटाकोडी सागरोपमें एककालचक्र तेणे अने ते कालचक्रे पुद्गलपरावर्त्त होइ ते आठ प्रकारना छे ते त्यायी जो जो अस्य गाथा-उद्धार अद्वखित्त, पलियतिहा समय वा समय समए किसवहारोदीवोदही, आउसस्साइ परिमाण ॥ १ ॥ ॥ पाचमें कर्म ग्रन्थे उक्त

२४३ प्र०-आत्मसमअवस्थानउपयोगरूप ध्यानदशा केवी रीते पमाय ?

उ०-मोहवशे जीव परभावअनुयायि प्रवृत्ति करे छे मिथ्या सुखनी तृष्णाए मूल्यो यको ससार भ्रमण करे छे, ज्यारे मोहस्थिति घटे त्यारे परप्रवृत्ति छुटे, अने ज्यारे परप्रवृत्ति टळे त्यारे विषयथकी विरक्त बुद्धि याय, अने तेणे करी मनोरोध थाय, केमजे कारण विना कार्य बनतु नथी, मनने भ्रमवानु कोइ कारण के ठाम न होवाथी ते सकल्प विकल्प श्याना करे ? जेम तृण विनानी भूमिमा एटले उखर भूमिमा पडेलो अग्नि केने बाळे, अर्थात् पोतानी मेळे उपशमी जाय छे, तेम विषय वाठा टळवाथी मन पोतानी मेळेज स्वाय अने मन रुधायाथी मननी चचळता मटे, तेवारे मन एकाग्र थइने आ-

अनादिकाळना अज्ञान, मोह, भ्रमिवात्त्र, प्रमादादि  
 रूपभयनासनाना जोर आनी उत्तम योगवाइवाळा  
 मनुष्यभयनु लेशमान पण प्रदुमान नयी आवतु,  
 हा । इति खेदे केनी अफसोसनी जात छे, माटे  
 हे चेतन । आ परमात्माना उचने करीने हवे चेत।  
 अने जे कुळमा उत्तम कुळना प्रभाये करीने हिं-  
 सानो आचारज नयी तेजा अहिंसक कुळनी प्राप्ति  
 उता श्रीजिनेश्वरभगतनो वर्म पाळवामा प्रमा-  
 दने त्रोट, अने तारु खरु कर्तव्य आ मनुष्य भव-  
 मा शु? छे, तेनो विचार करी विषयकपायनी प्र-  
 गतिनो जेम जे तेम सकोच कर, अने तत्त्वमार्गने  
 आदर, सुदेव, सुगुरु, अने सुधर्मने ओळख, अने  
 ते ओळखाण पूर्वक शुद्धक्रियानु सेवन कर, अने  
 सरळता, कोमळता, विनयादि गुण वारण करता  
 शीख जेथी परपराये तारा आत्मानु चिरकाळ क-  
 ल्याण थशे, तथास्तु शुभभवतु, शाति शाति  
 शाति । पूर्वोक्त सूक्ष्मअद्रा काळे करी आयुष्य-  
 मान, कर्मस्थिति, कायस्थिति, तथा अन्य काळ-  
 मानादिनु प्रमाण थाय छे, ३ पूर्वोक्त वाळाग्रखड  
 स्पर्श्या जे आकाश प्रदेश तेने प्रत्येकने समय समय  
 काढता जेवारे पल्यवाळाग्रथी खाली थाय तेटला  
 काळने बादरक्षेत्रपल्योपम कहिए, अने वाळाग्रने  
 स्पर्श्या सर्व आकाश प्रदेश पल्यना समय समय  
 खाली करता जेवारे पल्य निर्लेप थाय एटला का-  
 ल्ने सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपम कहिए, तेणे करी दृष्टि-

२४४ प्र०—उत्सर्ग अने अपवाद मार्ग परमार्थे एकज आत्मार्थि-  
पणारूप मोक्ष साधक दशाज छे, ते शी रीते ?

उ०—उत्सर्गमार्ग घणो कठीण, घोरतपस्या शुद्धनद्ध-  
चर्यादि पाळे, जिनकल्पिपणे प्रवृत्ते ते जाणवो, अने  
अपवादमार्ग ते पूर्वोक्त उत्सर्गनी अपेक्षाए एटले  
ज्यारे ते उत्सर्गदशामा न टर्फी शक्याय, त्यारे तेमा  
पाठा स्थिर थवाने माटे, जे काइक कोमळ  
मार्गनु अवलम्बन साधनादि करवु एटले मुनि पच-  
महाव्रत शुद्ध पाळे, उग्रविहार तपस्यादि करी श-  
रीर गाळे, जेयी विषय कपायादि मोहवासना गाळे,  
क्षिष्य, गच्छ, शाखादिनी वारणा करे, ते प्रत्ये पर-  
स्पर स्वाध्याय करे करावे, भव्यप्राणीओने धर्मो-  
पदेश आपी स्वपर महानिर्मलता करे करावे, पोते  
उत्तम मार्गे चाले वीजाने चलावे, अने चालता होय  
तेने अनुमोदनरूप उपष्टभ एटले सहायतादि दइ  
स्थिर करे, इत्यादि अपवादमार्गनु सेवन करी,  
मुनि पाठा उत्सर्गमार्गमा लीन रहे छे, एम परमार्थे  
उत्सर्ग अने अपवादमार्गी आत्मार्थीज छे, उभय  
मार्ग शास्त्रानुसार छे, पण जे निष्कारण दूषित  
मार्गनु सेवन करे, अने कहे जे अमे उत्सर्गने माटे  
अपवाद सेवीए छीए, ते चारित्रघातीनी मिथ्या वात  
छे, केमजे मुनिने कोइ अतिचाररूप दूषण प्रास-  
गिक लागीजवारूप सभव छे, पण मन यकी अ-  
तिचार सेवनकरवारूप प्रमादादि रुदापि काळे न

त्माने विषे प्रवर्त्त, यत जोरपेइ मोहखल, सोविसय  
 विरत्तो मणो णिरुमिक्ता। समप्रवृद्धिसाभावे, सो अप्पाण  
 हवई ज्ञाया ॥ १ ॥ इति उक्त प्रवचनसारे, आत्म-  
 भावनानी गाथा-रण लखाए छीए एगोहहोमिपरे  
 सिं, ण मे परे णत्थि मज्झमिहकिंवि। इय आय भावणाए,  
 रागदोसाविलय जति ॥ १ ॥ नाणस्सप्पिसुद्धिए, अ-  
 प्पा एगतउ ण ससुद्धो। जम्मानाणअप्पा, अप्पाणच अ-  
 णवा ॥२॥ आयासामाइए, आयासामाइयस्सअठोत्ती ।  
 तेणेव इमसुत्त, भासई आयपरिणाम ॥ ३ ॥ ए सूत्रे  
 पण चारित्र्णे आत्मपरिणामरूपज कहीए छीए पण  
 ग्राह्यक्रियारूप नथी कहु तत्र काव्य-वेषानचेतो  
 ललनासुलभ, मग्न न साहित्यसुधासमुद्रे । ज्ञास्यति  
 ते किंममहाप्रयासा-नन्वो यथा वारवधूविलासान्  
 ॥ इत्यर्थ ॥ त्यारे शुद्धात्मोपयोगअवस्थानरूप  
 निर्मळ ध्यानदशानी परम शीतळ शात सुगधिनी  
 अनुभवलेहेरीओनु आत्मा आस्वादन करे, ते सुख  
 आपणे पौत्रलिक सुखना भीखारीओ शु जाणीए,  
 कहु छे जे —

सघळ परवश ते दुख लक्षण, निजवश ते सुख लहिए,  
 ए दृष्टे आतमगुण प्रगटे, कहो सुख ते कोण कहीपरे  
 भविका वीरवचन चित्त धरीए १  
 नागर सुख पामर नवी जाणे, वल्लभ सुख न कुमारी,  
 अनुभव विण तेम ध्यानतणु सुख, कोण जाणे नरनारीरे भ २  
 विषय भोग क्षय शात वाहिता, शिव मारग द्रुव नाम,  
 कहे असग क्रिया इहा योगी, विमल सुजस परिणामरे भ ३

पक्रमि तथा निरुपक्रमिभेदे जघन्यथा अतर्मुहूर्त्त  
 अने उत्कृष्ट ३३ सागरोपम सुधीनु अध्यवसायनी  
 तारतम्यताए मित्र मित्र जीवने नानाविध व्वाय छे,  
 त्या देवता नारकीने आ भव आयु उमास या-  
 कता बाकी रहेता परभवायु व्वाय, तथा युगलिक  
 मनुष्यो तथा तिर्यच तेमज तीर्यकरादि विषष्टि श-  
 लाकापुरुष अने चरमशरीरी एटलानु आयु निरु-  
 पक्रमि व्वाय, शेषने सोपक्रमी आयुवध होय, त्या  
 उपक्रम एटले उपवानादि कारण विशेषे आयु तूटे,  
 एवो मद मदतरादि परिणामविशेषे जीवे आयुवध  
 कर्षो होय, तेवो उपक्रम पण आयुना वधनी साथेज  
 व्वाय छे, एथा जेम तेले करीने वाट सहित सपूर्ण  
 रीते दीवानु कोडीउ भरेलु होय, ते दीवाने कोड-  
 पण पवनादि उपवान न लागे तो तो ते ठेठ सुधी  
 सारी रीते वळे छे, नहि तो पवनना एक सखत स-  
 पाटाग उते तेले अने वाटे ठरी पण जाए, एम  
 सोपक्रम आयुना वध पण एवाज ढीला जाणवा, ते  
 व्यवहारे विष, शस्त्र, अकस्मातादि सात कारणे तूटे  
 छे, पण निश्चये तो जीवे तेवीज रीतनु तेटलाज  
 समयकाळनु बाघेलु ज्ञानीनी दृष्टिए दीठेलु भोगवे  
 छे, एक समयमात्र पण आवु पाछु करवाने कोड  
 पण समर्थ नथी, देव नारकीआदि शिवायना सोप्र-  
 क्रमी आयुवत प्राणीओ घणु करीने पोताना भव  
 आयुना अतमा अतर्मुहूर्त्त थाकता परभव आयु बाघे  
 छे, ते बाधता जीवने अतर्मुहूर्त्त लागे छे, ते वध

होय स्वविरूपमा पण आ कालमा सापेक्ष अ-  
पवादनी मुरपतापु घारिण छे

२४५ प्र०—पाच नोधर्मीया प्राणी कथा छे ते कया ?

उ०—भट्टोदेवायघो, विसयासत्तो अज्जियापुत्तो । गुरु देवा-  
यणहुट्टो, नोधम्मा पचपत्ता ॥ ? ॥ अस्यार्थ—  
? प्रष्ट ज्ञात कुळयी वटेला जीव, २ देवादिक धर्म-  
खाताना नि शूक मने हराम दानते पगार खानारा  
पूजारादिक तथा देव गुर्वादिक द्रव्यना खानारा,  
३ विषयाशक्त लोलुपी लपटी, ४ व्यभिचारवडे  
साव्वीने पेटे अवतरेल पुन, ५ देव, गुरु, धर्मादि-  
रूनो निंदक, घातक उत्थापक ए पाच अधर्मी एट्ठे  
नोधम्मिया जाणवा, ते वीतराग भाषित धर्मयी  
पराइमुख रहे

२४६ प्र०—समूर्च्छिममनुष्य मरी केटला दडकमा जाय छे ?

उ०—दशदडकमा जाय छे ५ पाच थावरमा ३  
विकलेन्द्रियमा ९ पचेन्द्रियमनुष्यमा १० पचेन्द्रिय  
तिर्यचमा जाय पण युगलियो न थाय तथा ए  
दशदडकमा तेउकाय वायुकाय ए बे दडक वर्जिने  
वीजा आठ दडकना आव्या समूर्च्छिममनुष्य थाय

२४७ प्र०—जीवने परभवआयु शी रीते बधाय छे, अने ते  
केटला प्रकारनु छे ?

उ०—जीवने आयुकर्म परभवसत्रधिनु आ भव भोगवता  
थका एरुजवार निकाचितपणे त्रण आकर्षे करी सो-



३, आरमिकी ४, मायाप्रत्ययिकी ५, ए पाच क्रियावती जीवोन्तु अल्पगुह्यत्व कहो

उ०-मिथ्यात्वप्रत्ययिकीक्रियावती सर्वायी योटा, १ ते थकी अपञ्चस्वखणीक्रियावतजीव असख्यातगुणा अधिक केमजे तेमा अविरति भळ्या, २ ते थकी परिग्रहिकीक्रियावतजीवो असख्यातगुणाधिक जे भणी तेमा देशविरति भळ्या माटे, ३ ते थकी आरमिकीक्रियावत असख्यातगुणाधिक जे भणी सर्वविरति उद्धा गुणठाणाना मुनि तेमा भळे तेथी, ४ मायाप्रत्ययिकीक्रियावत तेथी सख्यातगुणाधिक जे भणी तेमा नवमा गुणठाणावति मुनि उध्या तेथी ए भाग पत्रवणासूत्रमन्ये छे इति ।

२५० प्र०-देवगतिने विपे उ लेश्या आसरी अल्पगुह्यत्व कहो

उ०-१ शुक्लेश्यावतदेवताओ सर्वायी योटा, २ ते थकी पद्मलेश्यावत असख्यातगुणाधिक, ३ तेथी कृष्णलेश्यावत असख्यातगुणाधिक, ४ ते थकी नीललेश्यावत असख्यातगुणाधिक, ५ ते थकी कापोतलेश्यावत असख्यातगुणाधिक, ६ ते थकी तेजोलेश्यावत ज्योतिपीदेवो असख्यातगुणाधिक जाणवा

२५१ प्र०-सोपक्रमिआयुषवतजीव आयु पुरु भोगवता थका पण अकाळे चवजीवियाओवरोविया-॥ मरण पाम्यो एम कहे छे तेनु शु समजवु ?

उ०-जेम राजाए कोइएक चोरने पकडीने शळीये के फासीए दीवो, त्या ते जीवे सर्प आयु कर्मना दळ

दरमियाने षण आरुर्ष ( डचका ) कर छे, जेम  
गाय पाणी पांती वीसामे वीसामे पाये, तेम जीव  
पण आयुर्गर्भना पुद्गलने लेइ आरुर्षि षाघे, त्या  
मति तेवी गति अथवा गति तेवी मति अनुसारना  
परिणाम विशेषे षय पडे

२४८ प्र०-आकुट्टी, दर्प, प्रमाद अने कल्प ए चार शब्दार्थ कहो

उ०-आकुट्टीकया अनाभोगतयाउपेत्यसाव्यकरणोत्साहो-  
त्मिका १, दर्पोधावनप्लवनादिक वलगनादिक ।  
हास्यजनको वा नाट्यादिकदर्परूपोवा २, प्रमादो  
रानौ दिवाप्रतिलेखनाप्रमार्जनाद्यनुपयुक्तता ३, कल्प-  
कारणे दर्शनादिचतुर्विंशतिरूपेसति गीतार्थस्यकृत-  
योगी उपयुक्तस्य अयतनतया आधाकर्माद्यादानरूपा  
४, इति । अस्यार्थ ।

आकुट्टी एटले अनाभोगे उपयोग रहित सहसात्कारे  
उद्धतपणे सावद्यकार्य प्रवृत्ति, २ दर्प एटले अह-  
कारे वा इर्ष्याए चडसाचटसीए नाटक कौतकादि  
जोवा जता वाटमा अश्ववृषभादिने खूब दोडाववा  
वगरे अयत्नाए निर्दय सावद्य कर्माचरण, ३ प्रमाद  
एटले राने वा दिवसे प्रमार्जन प्रतिलेखनादि सावद्य  
क्रिया अयत्नाए जेम तेम बेदरकारीथी करवी ते  
४ कल्प एटले गीतार्थ बहुश्रुतादिना वचन निरपे-  
क्षपणे निष्कारण आधाकर्मादि द्रवित आहार ग्रहण  
करवो वगरे मार्गथी भ्रष्ट आचार प्रवृत्ति ते

२४९ प्र०-मिथ्यात्वप्रत्ययिकी १, अप्रत्याख्यानिकी २, परिग्रहिकी

३, आरम्भिकी ४, मायाप्रत्ययिकी ५, ए पाच क्रियाप्रती  
जीवोनु अत्पमहृत्व कहो

उ०—मिथ्यात्वप्रत्ययिकीक्रियाप्राळा सर्वथी योटा, १ ते  
थकी अपच्चरखाणीक्रियाप्रतर्जाव अमर्यातगुणा  
अधिक केमजे तेमा अविरति भळ्या, २ ते थकी  
परिग्रहिकीक्रियाप्रतर्जावो असख्यातगुणाधिक जे  
भणी तेमा देशविरति भळ्या माटे, ३ ते थकी  
आरम्भिकीक्रियाप्रत असख्यातगुणाधिक जे भणी  
सर्वविरति उद्धा गुणटाणाना मुनि तेमा भळे तेथी,  
४ मायाप्रत्ययिकीक्रियाप्रत तेथी सर्यातगुणाधिक  
जे भणी तेमा नत्रमा गुणटाणावनि मुनि ग्रध्या तेथी  
ए भाव पत्रप्रणाम्प्रमन्ये छे इति ।

२५० प्र०—देवगतिने विषे उ लेश्या आसरी अत्पमहृत्व कहो

उ०—१ शुक्लेश्याप्रतदेवताओ सर्वथी योटा, २ ते  
थकी पद्मलेश्यावत असख्यातगुणाधिक, ३ तेथी  
कृष्णलेश्यावत असख्यातगुणाधिक, ४ ते थकी  
नीललेश्यावत असख्यातगुणाधिक, ५ ते थकी का-  
पोतलेश्यावत असख्यातगुणाधिक, ६ ते थकी तेजो-  
लेश्यावत ज्योतिषीदेवो असख्यातगुणाधिक जाणवा

२५१ प्र०—सोपक्रमिआयुषप्रतजीव आयु पुरु भोगवता थका पण  
अकाले चैवजीवियाओववरोत्रिया—॥ मरण पाम्यो एम  
कहे छे तेनु शु समजवु ?

उ०—जेम राजाए कोइएक चोरने पकडीने शळीये के  
फासीए दीवो, त्या ते जीवे सर्व आयु कर्मना दळ

हता ते आत्मप्रदेशोदये भोगी, आयुर्म वाव्यु  
 हतु तेष्टु पूरु भोगी लीयु, तथा काळ आसरी  
 अकाळे मुओ एटले जे आयु मुखे समावे जीव  
 विपाकोदये भोगीने मरत, ते वोडा काळमा ते  
 आयुना दळने प्रदेशोदये वेदीने रपावीने मुओ  
 तेयी तेने अकाळमरण कहे छे अर्थात् जेष्टु  
 आयुष वाव्यु हतु तेष्टु प्रदेशोदये भोगीने पूरु  
 कीधु तेयी सपूर्ण आयुषे मुओ तेम कहेवाय अने  
 घणा काळे विपाकोदये भोगवानु आयु कर्म थोडा  
 काळमा भोगीने खपाव्यु माटे अकाळ मरण कहिये

२५२ प्र०—कोने सवनी वहार काढवो तथा कोने दीक्षा न  
 आपवी जोडए ?

उ०—अथ प्रास्ताविक गाथा—

जो भणईनत्थिधम्मो, न सामाइय न चेव वयाइ ।  
 सो समणसववज्झो, कायव्वो समणसघेण ॥ १ ॥  
 अट्टारसपुरिसेसु, वीसइत्थीसु दसनपुसेसु ।  
 जिणपडीकुतित्थियाओ, पव्वावेउ न कप्पति ॥ २ ॥  
 बालेवुट्ठेनपुसयेय, किवेजडेयवाहिए ।  
 तेणेरायावगारिय, उमत्ते य अदसणे ॥ ३ ॥  
 दासेदुट्ठेअमूट्ठेय, अणतेजुगए एय ।  
 अवबघए यमिएय, सेहेनिप्फोडीयाइय ॥ ४ ॥  
 एटलाने दीक्षादेवी न कल्पे,

२५३ प्र०—सोळ सज्ञाओ कइ ?

३०-गाथा—

आहारभयपरिग्गह, मेहुणतह कोहमाणमायाए ।  
लोहोहलोगसण्णा, दससनाहुतिसव्वेसिं ॥ १ ॥  
सुहडुहमोहसना, वितिगिच्छाचउद समुणेपन्वा ।  
सोगे तहधम्मसन्ना, सोलस ए हुति मणुएसु ॥ २ ॥

२५४ प्र०-दश सजा कया कया जीवोमा छे

३०-गाथा—

रुक्खाणजलाहारो, सकोयणीयाभएण सकुयड् ।  
नीयततुएण वेड्ड, वलीरुक्खेण परिग्गहेय ॥ ३ ॥  
इत्यापरिरमेण, कुरुकतरुणोफलती मेहुणे ।  
तहकोकनदससकदो, हुकारोमुयड् कोहेण ॥ ४ ॥  
माणेण झरईरुदती, च्छायई वलीं फलाईमायाए ।  
लोहेवील्लपलासा, खिवतिमूले घणाणुवरिं ॥ ५ ॥  
रयणीएु सकोओ, कमलाण होईलोगसन्नाह ।  
ओहे चईत्तु मग्ग, चढति रुखेसु वल्लीओ ॥ ६ ॥  
इति १० सज्जाना उदाहरण ।

२५५ प्र०-अठार भावदशा तथा अठार द्रव्यदशानु स्वरूप कहो

३०-तत्र गाथा--

तिरियामणुआकाया, तह अग्गवीयाय चउरो ।  
देवाय नेरइया-अद्वारसभावरासीओ ॥ १ ॥  
वेरेन्द्रिय, तेरेन्द्रिय, चोरेन्द्रिय, पचेन्द्रिय, ए चार  
तथा समूर्च्छिममनुष्य कर्ममूसिजा अकर्ममूसिजा  
१३०

अतरद्दीपना, ह्ये अग्रनीज, मूलनीज, पर्वनीज, स्क-  
वनीज, ए चार उनस्पतिना भेद पृथ्वीकाय, अप्-  
काय, तेउकाय, वाउकाय, ए चार तथा देवता  
अने नारकी ए अद्धार १८ भागदिशा आचाराग  
सुत्रमव्ये शस्त्रपरिजाअन्ययनमाहे भागदिशा वखाणी  
छे तथा अद्धार द्रव्यदिशा चारदिशि, चारविदिशि,  
आठदिशि, विदिशिना आतरा ऊर्वदिशा, अधोदिशा  
ए १८ द्रव्यदिशा जाणवी

२५६ प्र०—नीलीगलीए रोगला पत्रमा केटला वखतमा जीव  
पडे छे ?

उ०—नीलीगलीए रोगला वखयी मनुष्यससंगे तत्काल  
कुशुप्रमुख तसजीव घणा उपजे छे एम रत्नसचय  
ग्रन्थमा कह्य छे

२५७ प्र०—लब्धिपर्याप्तानु तथा करणपर्याप्तानु केवु स्वरूप छे ?

उ०—पर्याप्तद्विधा लब्धि करणश्च तत्र ये स्वयोगपर्याप्ति  
सर्वाअपि समर्था भ्रियन्ते न अर्वाग् ते लब्धिपर्याप्ता  
ये पुन करणानि शरीरेन्द्रियादीनि निवर्तन्त ते  
करणपर्याप्ता इति, ननुचास्यशरीरपर्याप्तौ च शरीरभवि-  
ष्यति किं प्राग् अभिहितेन शरीरनाम्ना ? नैतदस्ति  
साध्यभेदात् तथा जयसोमकृत बालावबोधमा एम  
लख्यु छे

२५८ प्र०—उ पर्याप्तानु स्वरूप कह्ये

उ०—जे कर्मना उदयथी आरभी पर्याप्ति प्री कर्या विना  
न मरे ते पर्याप्तिनामकर्म, तेणे एकेन्द्रियने चार

विगलेन्द्रिय तथा असञ्ज्ञापचेन्द्रियने भाषा होय  
 सञ्ज्ञापचेन्द्रियने मन होय उत्पत्ति प्रथम सम्यया  
 आरम्भा पर्याप्ति परी कर्या विना न मरे परी करीने  
 मरे ते लब्धिपर्याप्तो जाणवो शरीर इन्द्रिय  
 पर्याप्ति परी न वाय त्या सुधी तेने अकरणपर्याप्तो  
 कहेवो जथवा जे जे पर्याप्ति पूर्ण नया यद् तेनी  
 अपेक्षाए अकरणपर्याप्तो जाणवो जे जे पर्याप्ति  
 परी करी ते अपेक्षाए करणपर्याप्तो जाणवो जे  
 कर्मना उदये आरमेळी पर्याप्ति परी कर्या विना मरे  
 ते लब्धिअपर्याप्त नामकर्म पुद्गलना उपचयया ययो  
 पुद्गल परिणामन हेतु शक्ति विशेष ते पर्याप्ति विषय  
 भेदे छे

२५९ प्र०—पर्याप्ति ने प्राणमा शो फेर छे ?

उ०—पर्याप्ति ते उपजतावेलाए होय अने प्राण ते जावर्जाव  
 लगे होय

२६० प्र०—सम्यग्दृष्टिनी केवी दशा होय ?

उ०—गाथा—

ब्रवोअविरडहेउ, जाणतो रागदोसप्रधच ।

विरडसुह इच्छतो, विरड काउ च असमत्वो ॥ १ ॥

एस असजयसम्मो, निदतोपावकम्मकरणच ।

अहिगयर्जावाजीवो, अचलियदिट्ठीअलियमोहो ॥ २ ॥

सम्मदसणसहिओ, गिण्हतोविरडमापसात्तिए ।

एगवइयचरमो, अणुमइमित्तत्तिदेसजर्द ॥ ३ ॥

अतरद्वापना, हवे अग्रनीज, मूलनीज, पर्वनीज, स्क-  
वनीज, ए चार अनस्पतिना भेद पृथ्वीकाय, अष्-  
फाय, तेउफाय, पाउफाय, एउ चार तथा देवता  
अने नारकी एउ अद्वार १८ भागदिशा आचाराग  
सूत्रमव्ये शस्त्रपरिज्ञानन्ययनमाहे भागदिशा वखाणी  
छे तथा अद्वार द्रव्यदिशा चारदिशि, चारविदिशि,  
आठदिशि, विदिशिना आतरा ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा  
ए १८ द्रव्यदिशा जाणनी

२५६ प्र०—नीलीगलीए रगला उखमा केटला वखतमा जीव  
पडे छे ?

उ०—नीलीगलीए रगला वखती मनुष्यससंग तत्काल  
कुयुप्रमुख त्रसजीव घणा उपजे छे एम रत्नसचय  
ग्रन्थमा कह्यु छे

२५७ प्र०—लब्धिपर्याप्तानु तथा करणपर्याप्तानु केवु स्वरूप छे ?

उ०—पर्याप्तद्विधा लब्धि करणश्च तत्र ये स्वयोगपर्याप्ति  
सर्वाअपि समर्था भ्रियन्ते न अर्वाग् ते लब्धिपर्याप्ता  
ये पुन करणानि शरीरेन्द्रियादीनि निवर्तन्त ते  
करणपर्याप्ता इति, ननुचास्यशरीरपर्याप्तौ च शरीरभवि-  
ष्यति किं प्राग् अभिहितेन शरीरनाम्ना ? नैतदस्ति  
साध्यभेदात् तथा जयसोमकृत बालावबोधमा एम  
लख्यु छे

२५८ प्र०—उ पर्याप्तानु स्वरूप कह्यु

उ०—जे कर्मना उदययी आरभी पर्याप्ति प्री कर्मा विना  
न मरे ते पर्याप्तिनामकर्म, तेणे एकेन्द्रियने चार



सतो जीव सिद्धि गतिए जाय, पण वचमा विषम श्रेणिना आकाशप्रदेश न फरसे माटे ते अपेक्षाए सिद्धनी अफुसमाणगति कहिए, तथा समश्रेणिए आकाशप्रदेश फरसतो फरसतो जाय, ते अपेक्षाए क्षेत्रआश्रिफुसमाणगति कहीए, अने एक समयथी वीजा समयना अतरने न फरसे ते माटे आश्रि अफुसमाण गति कहे छे

२६५ प्र०-त्रणप्रकारना पुद्गलो दृष्टातथी समजावो

उ०-विश्रसा ते स्वभावे कोइ निमित्त पामी तदाकार थाय, जेम इद्रवनुष्यादि अभ्रप्रतु, २ प्रयोगसा ते जीव व्यापारे, उद्यमे करीने जे निपजे, जेम भवन, घटपटादि, ३ मिश्रसा ते काइक सहज स्वभावे अने वाइक प्रयोगे जेम ते माणसे जुनो पटो वाच्यो अथवा जुनी पाचडी वाघी इत्यादिमा पुद्गलोनु जीर्णगणु यधु ते स्वभावे कहीए, अने बधनकर्म ते मनुष्यना प्रयोगवडे थाय छे, एम स्वभाव अने प्रयोगे मळी अनेल वस्तुने मिश्रसा पुद्गल कहे छे

२६६ प्र०-श्रीतीर्थकरना जन्मादिककल्याणक बखते साते नरके केटलु अजवाळु थाय ते कहो

उ०-पहेली नरके सूर्यसमान उद्योत, २ वीजीए वादळे ढाकेला सूर्यसमान, ३ वीजीए पूनमना चद्रसमान, ४ चौथीए वादळे ढाकेला चद्रभासमान, ५ पाचमीए ग्रहोना उद्योत समान, ६ उठीए नक्षत्रना उद्योत समान, ७ सातमीए ताराना उद्योत समान

ए गाथानो गुरुगमर्या अर्य चारज्यो सम्यग्दृष्टिने  
उदयस्थिति प्रतियोत्रव होय पण आत्मप्रतियोत्रव  
न होय

२६१ प्र०—छद्मस्थ कोने कहे छे ?

उ०—छाद्यते केवलज्ञानदर्शने आत्मन अनेनेतिछद्म-  
ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीयान्तरायकर्मोदयेसति  
तस्य केवलज्ञानदर्शनस्यानुत्पादात् तदपगमानन्तर  
चोत्पादात् ज्ञानावरणादिछद्मनि तिष्ठतीतिछद्मस्थ ॥  
केवलज्ञान विना बाकीना चार ज्ञान प्रगटता पण  
छद्मस्थ गणाय छे

२६२ प्र०—मुनिने अप्रमत्तदशाए समय समय अनतगुणविशुद्धि  
कही छे ते शी रीते ?

उ०—आत्मोपयोग एकाग्रध्यान भणी मुनिने आत्मप्रदेशे  
रहेल अनतीकर्मवर्गणानी निर्जरा थता आत्मानी  
अनती विशुद्धि समय समय थाय छे

२६३ प्र०—आहारकआहारक मिश्र जीव किम करे ?

उ०—जेवारे पूर्वधरे सदेह पुठवा निमित्ते आहारकशरीर  
मोकल्यु होय तिहा ज्ञानवत नहीं तिवारे तिहायी  
वली बीजु आहारक करे ते करती वेलाए पूर्वआ-  
हारक सघाते मिश्र होय ते भाटे इति भावार्थ ।

२६४ प्र०—सिद्धने अफुसमाण के फुसमाण गति शी रीते  
समजवी ?

उ०—एक समयमा समश्रेणिना सर्वआकाशप्रदेश, फर-

रती छाया उता उायते घूमाडा वगरेना पुद्गलो नजरे देखाय छे, पण हाथमा ग्रहवाय नहि, माटे वादरसूक्ष्म, ४ सूक्ष्मवादर ते गध, रस, स्पर्श शब्दादिकना पुद्गलो आखे देखाता नथी, परतु स्पर्शादिके लक्षणे जणाय छे, माटे तेने सूक्ष्मवादर कहिए, ५ सूक्ष्म ते अष्टकर्मवर्गणाना पुद्गलो चार स्पर्शवाळा छे ते नजरे देखाता नथी माटे, ६ सूक्ष्मसूक्ष्म ते छुटो शुद्धपरमाणुपुद्गल ते बे स्पर्शवाळा अत्यतसूक्ष्म छे माटे ए रीते उ प्रकारना पुद्गल ससारमन्ये व्यापी रह्या छे, जेम उ कायना जीव व्यापी रह्या छे तेम जाणवा

२६८ प्र०-ज्ञानावरणीयादिकर्मनो बध, उदय, उदीरणा, सत्ता केटला गुणठाणा सुधी होय

उ०-ज्ञानावरणीयनो बध गुणठाणा १० मासुधी, दर्शनावरणीयनो बध १० मा सुधी, वेदनीयनो बध गुणठाणा १२ मा सुधी, मोहनीयनो बध गुणठाणा नवमा सुधी, आयुकर्मनो बध गुणठाणा सातमा सुधी, नामकर्मनो बध गुणठाणा १० सुधी, गोत्रकर्मनो बध गुणठाणा दशमा सुधी, अतरायकर्मनो बध गुणठाणा दशमा सुधी, हवे ज्ञानावरणीयकर्मनो उदय गुणठाणा १२ मा सुधी, दर्शनावरणीयकर्मनो उदय गुणठाणा १२ मा सुधी, वेदनीयकर्मनो उदय गुणठाणा १४ मा सुधी, मोहनीयकर्मनो उदय गुणठाणा १० मा सुधी, आयुकर्मनो उदय गुणठाणा १४ मा सुधी,

अथ प्रास्ताविक गाथा—

कालेसुपत्तदाण, समत्तविसुद्धिओहिलाभ च ।  
 अते समाहिमरण, अभञ्जजीपा न पावति ॥ १ ॥  
 अखडियचउत्थो, वयगहणाउ जोय गीयत्थो ।  
 तस्स सगासे दसण, वयगहणसोहिगहण च ॥ २ ॥  
 कत्थय जीवो पलीओ, कत्थय कम्माइ हुति पलीआइ ।  
 जीवस्सय कम्मस्सय ॥ ३ ॥  
 कालसहानोनियइ, पुच्चकयपुरसकार ए गता ।  
 मिच्छ तत चेवओ, समासओ होतिसमत्त ॥ ४ ॥  
 नव हि जीववहकरण, करायण अणुमोदिय जोगेहि ।  
 कालतिण्हिगुणीए, पाणीअहुदुस्सतेयाल ॥ ५ ॥ अस्यार्थ

साधुने पहेलात्तना नवकोटी पञ्चस्खाण छे पण  
 तेहना भागा २४३ थाय इम २७ करवाना २७  
 कराववाना २७ अनुमोदवाने विपे निषेधे इम ८१  
 थाय ते काले अणेगुणेगुणी त्रिगुणाकरता २४३  
 भेदे साधुने पञ्चस्खाण होय जावजीवलगे इत्यर्थ ।

२६७ प्र०—छ प्रकारना पुद्गलनु स्वरूप कहो

उ०—१ बादर ते खडी माटी पाषण प्रमुख जाणवा,  
 केमजे ते पदार्थोने छेद्या थका तेना खडो एकमेक  
 न रहे, पण भिन्नभिन्न नजरे देखाय छे, माटे बादर  
 बादर ते पहेलो भेद, २ बादर ते घी, दूध, पाणी,  
 तेल, मध, गोळ, खाड इत्यादिकना पुद्गलने बादर  
 कहिये, केमजे तेमने छेद्या थका भिन्न न थाय  
 एकमेक मळेलाज रहे छे ३ बादरसूक्ष्म ते शरी-

माहेली एकनिगोद लइए ते निगोदमा अनता जीव छे, ते माहेलो एकजीव लइए तेमा असख्याता प्रदेश छे, ते एकजीवने प्रदेशे प्रदेशे अनतीकर्मवर्गणा छे, ते माहेली एक कर्मवर्गणा लीजीए ते माही अनतापुद्गलपरमाणुआ छे, ते माहेलो एक परमाणु लीजीए, ते माही अनता पर्याय समकाळे परिणमे, एवी जीव अने पौद्गलिक शक्तिनी अत्यतसुक्ष्मता जाणवी, एवु श्रीवीतराग वचन तहति करी मानीए हवे निगोदीआ जीवना भवनी संख्या काळ मान विचारे छे — असख्यात समयनी एक आपली याय, २५६ आवलिनो एक निगोदीआ जीवनो क्षुद्रक भव याय, एक श्वासोच्छ्वासमाहे चुवालीससेने साडीच्छेतालीस आवली याय तेवा भव निगोदीओ जीव एक श्वासोच्छ्वासमा १७ भव झाझेरा करे, एटले ते जीव सत्तरवार मरे अने अठारमी वार उपजे, केमजे एक श्वासोच्छ्वासमा १७ भव अने ९४॥ आवळी जेटलो काळ याय छे ते प्रमाणे गणता वे घडीमा ३७७३ श्वासोच्छ्वास थाय छे, तेदलामा निगोदीआ भव ६५५३६ थाय, ए लेखे एक दिवसमा श्वासोच्छ्वास ११३१९० अने तेमा भव एटला श्वासोच्छ्वास निरोगी युवान पुरुषना याय, तेवा एक दिवसमा १९६६०८० भव निगोदीओ जीव करे, ते हिसावे एक मासना श्वासोच्छ्वास ३३९५७०० गणता निगोदीआ भव ५ क्रोट ८९ लाख ८२ हजार अने ८०० थाय,

वान् समुद्रवात आठ समयनो करे पण वीजा नहि,  
पठी एम पोताना जात्मप्रदेशे चौदराजलोकमा  
रहेल प्राणीमात्रना जात्मप्रदेश सावे मेळवी प्रदे-  
शोदये कर्म भोगरीने दट, कपाट, मथानादि अनु-  
क्रमे सवरीने अयोगी यया यका सिद्धि वरे इत्यादि  
स्वरूप विस्तारे, ग्रयान्तरयी ( लोकप्रकाशग्रन्थे कथु  
छे ) गुरुगमयी जाणनु

२७० प्र०—निगोदनु स्वरूप कहो तथा जीव अने पुद्गलनी  
शक्तिनी सूक्ष्मता जिनप्रचनानुसार दर्शावो

उ०—असख्यातप्रदेशी लोक ते प्रमाणे गोला पण अस-  
ख्याता छे, गोलो ते शु ? असख्याति निगोदे एक  
गोलो इति ते उपर गाया—

लोएअसखजोयण, माणेपर्इय जोयणगुला सख्खा ।

पइत असखअसा, पइअमसखया गोला ॥ १ ॥

गोलो असख निगोओ, सोअणअसखपर्इपएस ।

कम्माणवग्गणाणता ॥ २ ॥

पइवग्गणाअणता, अणुअ पइअणत पज्जाया ।

एव लोगसरुव, भाविज्ज तहत्तिजिणवुत्त ॥३॥ अस्यार्थ —

चौदराजलोक असख्याती कोडाकोडी जोजननो छे,  
ते मध्ये एक जोजन लइए, तेना अगुल असख्याता  
थाय, ते मध्येयी एक अगुल लीजीए, तेना अस-  
ख्यातमा भागप्रमाण, एकभाग लइए, ते माहे  
असख्याता गोळा छे, ते माहेलो एकगोळो लइए  
ते एकगळेळामाहि असख्याति निगोद छे, ते

माहि आव्या छे अनताकदादिक माहे छे तथा जेटला जीव सूक्ष्मनिगोदगोलकमाहेयी निकल्या छे ते व्यवहाराशिमाहे आव्या ते कालादिक लब्धि पामी सिद्धिवरे तेटला अव्यवहारनिगोदमाहेयी नीकळी उचा व्यवहाराशिमाहे आवे पण व्यवहाराशि तो ओठा न याय, कदापि मुक्ति जावानो विरहकाल होय तेटला काल सुधी सूक्ष्म अव्यवहाराशि निगोदनो जीव कोड् व्यवहाराशिमा न आवे एहउ उपमितिभवप्रपचग्रथमाहे कथु छे

२७१ प्र०—त्रादरसाधारणवनस्पतिकायमायी जीव मरीने सूक्ष्म गोलकनिगोदमा जाय तो त्या केटलो काळ उत्कृष्ट रहे

उ०—अढीपुद्गलपरावर्तन, मतातरे असख्याति उत्सर्पिणी अवसर्पिणी सुधी पण कथु छे, त्यायी नीकळी त्रादर निगोद कदमूळ माहि उत्कृष्ट ७० कोडाकोडी सागरोपम सुधी रहे, एकनिगोदनो गोळो असख्याताआकाशप्रदेश अवगाही रह्यो छे, तथा अव्यवहाराशिया निगोदीआ जीव जे गोलकमा छे ते भवस्थितिपाकता उचा आवे ते एकसमये उत्कृष्ट केटला नीकळे ? तोके जेटला अढीद्वीप माहीयी सकळकर्म खपावी एकसमये जेटला जीव सिद्धि वरे, तेटला सूक्ष्मनिगोदमायी नीकळी व्यवहाराशीमा आवे, ते जवन्य एकसमयमा एक, वे, त्रणयी उत्कृष्ट १०८, अने तेटलाज सूक्ष्म

अने एक वरसमा ४ कोड, ७ लाख, ४८ हजार, अने ८०० गणता तेने विपे निगोदीओ जीव ७० कोडी ७७ लाख ८८ हजार अने ८०० वार जन्ममरणरूप भव करे, एया भव पूं आ जीवे असख्यातेकाले असरयाता अधिक भव कीधा, एम अनताकाले अनता भव कीधा, अनता अतीतकालमा अनताअनत भव कर्या, ते श्री वीतराग परमात्माउ वचन सदहिने, हे चेतन । तु मनमा काइक पापनो नास आण अने आ तारा पोताना जीवनी दया चितवीने तेने आवा भयकर जन्ममरणना फेरामायी मुक्त करवानो श्रीजिन प्रणीत मार्ग छे, तेने अप्रमत्तपणे यथार्थ आदर इतिभाव जूनी प्रतिमा नीचे प्रमाणे पाठ छे तथा एक गोलामाहे असख्याति निगोद छे निगोदशरीर एकशरीरे अनता जीव छे, एटले अनते जीवे मलीने एक शरीर बाव्यु छे, आप आपणा तेजसकार्मण जूदा छे औदारिक एक छे साथे आहारनिहार साथे मरण २५६ आवलीनो आयु भोगवी पर्याप्ति पूरी करीने मरे तेहनी निश्चाए बीजा कोइ अपर्याप्ता होय नहीं ते अनत केटला छे ? जेटला कदमूल मध्ये अनता छे ते कदमूल चौदराज प्रमाणे ढग करीए तेमाहे पण सूक्ष्मनिगोदना एकशरीरना अनता निकल्या तेमाहे न समाय एहना अनताअनत भव घणा छे. तिहाना निकळ्या तेमाहेज समाय, तथा कदमूलना ते नादरनिगोदिया छे व्यवहाराशि-



सिद्धपरमात्माओ विराजे छे, तेमने मारो श्रिकरण  
शुद्धिए नमस्कार हो

२७३ प्र०-अष्टमहासिद्धिना नाम अर्थसाहित कहो

उ०-प्रथमलविमा ते शरीरनु हलप्रापणु थाय जलपुष्प  
उपरि तथा कटकउपर मुनि चाले पण किलामना न  
पामे १, बीजी वसिमासिद्धि तेहथी सिंह, सर्प,  
देवमनुजादिक वश्य थाय २, त्रींजी सत्यसिद्धि  
परमेश्वर्यपणु पामे चक्रवर्ति इन्द्रादिक यकी अधिकी  
ऋद्धिविकुर्णे ३, चोयी काम्यसिद्धि तेथी अत्यत  
जलसपदाहोय, पृथ्वीपर्वतादिक उपाडे अचिनित परा-  
क्रमी होय ४, पाचमी महिमासिद्धि तेथी मोड  
लाखजोजनु शरीर करे ५, छट्टी अणिमासिद्धि तेथी  
नाहनु कुयुआ जेवड रूप करीने भीतमायी तथा  
पर्वतमायी निकळे अने पोते विघ्न न पामे ६, सा-  
तमी यत्रकामात्रसायित्वसिद्धि तेथी जिहा उपयोग  
दे तिहा जाणे निर्मल श्रुतज्ञान अवधिज्ञानने योगे  
७, आठमी प्राप्तिसिद्धि तेथी सकल मोटीवस्तु  
प्रत्यक्षपणे देखे रूपिवस्तु देखे अवधिज्ञानदर्शन  
रण योगे ८, ए अष्टमहासिद्धि मुनिराजने होय  
तेहना शब्दार्थ जाणना

२७४ प्र०-क्षणमात्र सुख अने बहुकाल दुख ते शी रीते ?

उ०-आ जीव आ ससारना अनुकूल इन्द्रिय प्रियना  
भोगादिकने पिपे लुब्ध थयो यको मनुविदुआना  
दृष्टाते क्षणमात्र सुख अने बहुकाल दुख भोगव्या

तो अनता सुग्रां एरुसमये निकळे पण अग्र्यव-  
हारिया ते एरुसमये उत्कृष्टे १०८ निकळे तेमाहे  
भव्य अभव्य वे होय ते सूक्ष्मनिगोदना अनता  
निकळ्या नादरमाहि समाय वीजामा नहीं, तथा एक  
सूक्ष्मनिगोदमाहे अनताजांय केटला छे ते त्रण  
कालना समय अनता छे तेहर्था अनताजांय एक  
निगोदमाहे छे, तेणेकरी जेवारेजेवारे पुछीए तेवारे  
जिनेश्वर कहे छे जे " एकस्सनिगोअस्स अणत तमो  
भागो य सिद्धिगओ " एटले सूक्ष्मनिगोदर्था नादर-  
निगोदमाहे निरतर आवे छे ते ते आवे तो एक-  
समये १०८ सुर्धा उत्कृष्टे आपे तथाचोक्त-  
सिज्झति य तियाखल्ल, इहय ववहाररासिमज्झाओ ।  
इतिअणाईवणस्सईमज्झाओ, तित्तियाचेव ॥ १ ॥  
इतिश्रीभुवनभानुकेवली चरित्रम'ये उक्त एम निगोदना  
विचार लख्यो छे

२७२ प्र०—सिद्धशिलानु किचित् स्वरूप वखाणो

उ०—जेम साबुनो गोळो उपर जाडपणे समो अने नीचे  
टेकरारूपे विस्तरतो तेम अथवा उधी उवाडी राखेल  
अर्धछत्रआकारे, श्वेत, सुवर्णमय, स्फटिकरत्नमय  
सरखी निर्मळ मध्ये आठजोजन जाडी परिधि-  
विस्तारमा ४५ लाख जोजन प्रमाणे अढीद्वीपरूप  
मनुष्यक्षेत्रनी उपरे ढाकण समान, छेडे जाता  
माखीनी पारख समान पातळी, लोकना अग्रभागे  
रहेली अतिनिर्मळ सिद्धशिला शोभी रही छे, जेनी  
उपर १ गाउए एटले एक गाउने छेडे भागे अनता

सिद्धपरमात्माओ विराजे छे, तेमने मारो विकरण  
शुद्धिए नमस्कार हो

२७३ प्र०—अष्टमहासिद्धिना नाम अर्थसाहित कहो

उ०—प्रथमलचिमा ते शरीरनु हलवापणु थाय जलपुष्प  
उपरि तथा कटकउपर मुनि चाले पण किलामना न  
पामे १, वीजी वसिमासिद्धि तेहथी सिंह, सर्प,  
देवमनुजादिक वश्य थाय २, तीजी सत्यसिद्धि  
परमेश्वर्यपणु पामे चक्रवर्ति इद्रादिक यकी अधिकी  
ऋद्धिविकुर्षे ३, चौथी काम्यसिद्धि तेथी अत्यंत  
बलसपदाहोय, पृथ्वीपर्वतादिक उपाडे अचिंतित परा-  
क्रमी होय ४, पाचमी महिमासिद्धि तेथी मोड  
लाखजोजनु शरीर करे ५, छठी अणिमासिद्धि तेथी  
नाहनु कुथुआ जेवड रूप करीने भीतमायी तथा  
पर्वतमायी निकळे अने पोते विघ्न न पामे ६, सा-  
तमी यत्रकामावसायित्वसिद्धि तेथी जिहा उपयोग  
दे तिहा जाणे निर्मल श्रुतज्ञान अवधिज्ञानने योगे  
७, आठमी प्राप्तिसिद्धि तेथी सकल मोटीवस्तु  
प्रत्यक्षपणे देखे रूपिवस्तु देखे अवधिज्ञानदर्शन  
त्रण योगे ८, ए अष्टमहासिद्धि मुनिराजने होय  
तेहना शब्दार्थ जाणवा

२७४ प्र०—क्षणमात्र सुख अने बहुकाल दुख ते शी रीते ?

उ०—आ जीव आ ससारना अनुकूल इन्द्रिय विषयना  
भोगादिकने विषे लुब्ध थयो यकी मनुत्रिदुआना  
दृष्टाते क्षणमात्र सुख अने बहुकाल दुख भोगव्या

करे छे, ए मधना एरुटीपानी तृणामा पोतानी आसपास अननगण व्यापी रहेलु दु स हिसात्रमा गणतो नयी, तेम स्त्रीसेवनमा जाणे साक्षात् अमृतसार महास्वादिष्टभोजन प्राप्त न थयु होय, तेवो लोलुपी थयो थको भुड सुकरनी पेठे निज स्वरूपने तन्न पिसारीने अथवा उपेखाने खरज खणवाना स्वादना परे अथवा मधुलिप्त खड्गधाराने चाटवानी परे प्रथम सेवन करता सुख वेदे, अने पाठळयी तत्काल एकक्षणवारमा शरीर वीर्य क्षय यता घाभरा जेवो थड्पडी निर्माल्य नपुसकरूप अनुभवे छे, अने त्यारेज ते पोतानी भुटसुकरपणानी निर्लज्ज बाळचेष्टाने अतरदृष्टि धिक्कारे छे, तेम आ ससारने विषे चक्रवर्ति आदिना विषयना उत्कृष्ट पौद्गलिक सुख नकादिकने विषे तेना विपाककाळ आगळ तुच्छ अल्पकालिक क्षणिक छे, छता हा । इति खेदे आ भवनी अनादि काळनी विषय वासना जाणताने पण बाळरूप करनार एवी महामोहमय प्रबळताथी चेतनने सावधान रहेवानु छे, जुओ बारमा ब्रह्मदत्त चक्रवर्तिनु आयुष्य मात्र ७०० वरसनु हतु ते भोगवीने नरके गयो, तिहा ३३ सागरनु आयु भोगवे छे तेटलो काल विषयसुख भोगव्या ते उपर केटलु दु ख तेहनी विगत वर्ष १०० दिवस ३६००० थाय तेवारे ७०० वर्षना दिवस २५२००० थाय



ठाणानी त्रेणिए चढे अने स्वरूपाचरण चारिस्वरूप शुद्धात्मो-  
पयोग तीव्र वर्ते

२७५ प्र०—मिथ्यादृष्टि अने सम्यग्दृष्टिना आचार तथा उपयोगने  
सरस्वाप्तो

उ०—मिथ्यादृष्टिर्जावने शुभाचार होय पण शुभोपयोग  
न होय, अने सम्यग्दृष्टिर्जावने शुद्धोपयोग होय  
तेने शुभोपयोग आचरणरूपे होय पण आदरण न  
होय, अने मिथ्यादृष्टिर्जावने शुभआचाररूप होय,  
पण ते अशुद्धोपयोगना धरतो अशुभोपयोग होय  
छता तेने शुभोपयोग उपचारे कहिये

२७६ प्र०—युगप्रधानना गुणो कहो

उ०—युगप्रधानना गुणो १४ छे तत्र गाथा—

पडिरुवोतेयस्सि, जुगप्पहाणागमोमहुरवक्को ।

गंभीरोर्धामतो, उवएसपरोयआयरिओ ॥ १ ॥

अपरिस्सविसामो, सगहसिलो अमिग्गहमईय ।

अविकत्थणोअचवलो, पसंतहियओगुरुहोई ॥२॥

एव चतुर्दशगुणा भवन्ति ।

२७७ प्र०—क्या ठेकाणे त्रणयोयो कर्वी

उ०—भद्रबाहुस्वामीकृत ओघनिर्युक्तिमा ७२ मी गाथामा

त्रणयोयो कवी कही छे, यथा—

अवस्सगतुक्काओ, जिणोपइठ्ठगुरुवएसेण ।

तिन्निथुईअडिळेहा, कारस्सविहिइमोतत्थ ॥ १ ॥

२७८ प्र०—तपेदान अने अनशनत्रु शु फल छे ?

उ०-तवसयमेण मुक्खो, दाणेणहुतिउत्तमाभोगा ।  
देवचणेणरज्ज, अणसणमरणेणईदत्त ॥ १ ॥

२७९ प्र०-अभव्यजीवो शु नयी पामता

उ०-इदत्त चक्रीत्त, पचोत्तरविमाणवासित्त ।  
लोगतादेवत्त, अभव्यजीवा नपावति ॥ १ ॥

२८० प्र०-क्रया अभव्यजीवो यया

उ०-सगमकालयमुरि, कविलाअगारपालयादोवि ।  
एएसत्तअभव्वा, उदाडनिवमारओचेव ॥ १ ॥

२८१ प्र०-तुच्छुत्तु स्वरूप कहो

उ० तुच्छभत्तपाणु, तुच्छानिंदाय तुन्उमारभो ।  
तुच्छा जदा कसाया, ताह तुत्तुच्छससारे ॥ १ ॥

२८२ प्र०-क्रया जीव अहीथी मरीने महाविदेहमा नवमे वर्ष  
केपरी दाय छे ?

उ०-इहभरहेकेइजीया, मिच्छादिट्टीभइयाभव्वा ।  
तेमरीउणनवमे, वरसे होहतिकेवलीणो ॥ १ ॥

२८३ प्र०-चमरेन्द्रनो केवो परिवार छे ?

उ०-चमरेन्द्रने पाचअग्रमहिपी छे आइआइसहस्व दे-  
वीनो परिवार एम ४० सहस्र देवीओयी भोग  
भोगवतो विचरे छे

२८४ प्र०-षट्दर्शनना नाम कहो

उ०-१ बौद्ध, २ नैयायिक, ३ साख्य, ४ जैन, ५ वै-  
शेषिक, तथा ६ चार्वाकदर्शन ए छ दर्शनना नाम,

ઠાણાની શ્રેણિ ચઢે અને સ્વરૂપાચરણ ચારિત્રરૂપ શુદ્ધાત્મો-  
પયોગ તીવ્ર વર્તે

૨૭૫ પ્ર૦—મિથ્યાદષ્ટિ અને સમ્યગ્દષ્ટિના આચાર તથા ઉપયોગને  
સરસ્વાતો

૩૦—મિથ્યાદષ્ટિર્જાતને શુભાચાર હોય પણ શુભોપયોગ  
ન હોય, અને સમ્યગ્દષ્ટિર્જાતને શુદ્ધોપયોગ હોય  
તેને શુભોપયોગ આચરણરૂપે હોય પણ આદરણ ન  
હોય, અને મિથ્યાદષ્ટિર્જાતને શુભઆચારરૂપ હોય,  
પણ તે અશુદ્ધોપયોગના ઘરનો અશુભોપયોગ હોય  
છતા તેને શુભોપયોગ ઉપચારે કહિયે

૨૭૬ પ્ર૦—યુગપ્રધાનના ગુણો કહો

૩૦—યુગપ્રધાનના ગુણો ૧૪ છે તત્ર ગાથા—

પહિરુત્તેયસ્સિ, યુગપ્પહાણાંગમોમહુરવક્રો ।  
ગંભીરોઘામતો, ઉવણ્ણપરોયઆયંરિઓ ॥ ૧ ॥  
અપરિસ્સવિસામો, સગહસિલો અમિગ્ગહમઈય ।  
અવિકલ્થણોઅચત્તલો, પસંતહિયઓગુરુહોઈ ॥૨॥  
એવ ચતુર્દશગુણા ભવન્તિ ।

૨૭૭ પ્ર૦—કયા ઠેકાણે ત્રણયોયો કરવી

૩૦—ભદ્રબાહુસ્વામીકૃત ઓઘનિર્યુક્તિમા ૭૨ મી ગાથામા  
ત્રણયોયો ક વી કહી છે, યથા—

અવસ્સગતુક્કાઓ, જિણોપડ્ડગુરુવણ્ણેણ ।

તિત્તિથુઈન્નિલેહા, કાન્સવિહિઈમોતત્થ ॥ ૧ ॥

૨૭૮ પ્ર૦—તંપેદાન અને અનશનત્તુ શુ ફલ છે ?



३०-तवसयमेण मुक्खो, दाणेणहुतिउत्तमाभोगा ।  
देवचणेणरज्ज, अणसणमरणेणईदत्त ॥ १ ॥

२७९ प्र०-अभव्यजीवो शु नयी पामता

३०-इदत्त चक्कीत्त, पचोत्तरविमाणवासित्त ।  
लोगतादेवत्त, अभव्यजाया नपावति ॥ १ ॥

२८० प्र०-कया अभव्यजायो यया

३०-सगमकालयमुरि, कविलाअगारपालयादोवि ।  
एएसत्तअभव्वा, उदाइनिवमारओचेव ॥ १ ॥

२८१ प्र०-तुच्छुत्तु स्वरूप कहो

३० तुच्छभत्तपाण, तुच्छानिदाय तुच्छमारभो ।  
तुच्छा जहा कसाया, ताह तुच्छससारे ॥ १ ॥

२८२ प्र०-कया जीव अहीयी मरीने महाविदेहमा नवमे वर्षे  
केवरी दाय छे ?

३०-इहभरहेकेइजाया, मिच्छादिद्धीभदयाभव्वा ।  
तेमरीउणनवमे, वरसे होहतिकेवलीणो ॥ १ ॥

२८३ प्र०-चमरेन्द्रनो केवो परिवार छे ?

३०-चमरेन्द्रने पाचअग्रमहिपी छे आट्टआट्टसहस्र दे-  
वीनो परिवार एम ४० सहस्र देवीओयी भोग  
भोगवतो विचरे छे

२८४ प्र०-षट्दर्शनना नाम कहो

३०-१ बौद्ध, २ नैयायिक, ३ साख्य, ४ जैन, ५ वै-  
शेषिक, तथा ६ चार्वाकदर्शन ए छ दर्शनना नाम,

ઠાણાની શ્રેણિયુ ચઢે અને સ્વરૂપાચરણ ચારિત્રરૂપ શુદ્ધાત્મો-  
પયોગ તીવ્ર વર્તે

૨૭૫ પ્ર૦—મિધ્યાદષ્ટિ અને સમ્યગ્દષ્ટિના આચાર તથા ઉપયોગને  
સરસ્વાતો

૩૦—મિધ્યાદષ્ટિર્જાવને શુભાચાર હોય પણ શુભોપયોગ  
ન હોય, અને સમ્યગ્દષ્ટિર્જાવને શુદ્ધોપયોગ હોય  
તેને શુભોપયોગ આચરણરૂપે હોય પણ આદરણ ન  
હોય, અને મિધ્યાદષ્ટિર્જાવને શુભઆચારરૂપ હોય,  
પણ તે અશુદ્ધોપયોગના ઘરનો અશુભોપયોગ હોય  
છતા તેને શુભોપયોગ ઉપચારે કહિયે

૨૭૬ પ્ર૦—યુગપ્રધાનના ગુણો કહો

૩૦—યુગપ્રધાનના ગુણો ૧૪ છે તત્ર ગાથા—

પડિરુવોતેયસ્સિ, જુગપ્પહાણાગમોમહુસ્વકો ।  
ગંભીરોઘામતો, ઉવણ્ણપરોયઆયંરિઓ ॥ ૧ ॥  
અપરિસ્સવિસામો, સગહસિલો અસિગ્ગહમર્ય ।  
અવિકત્થણોઅચવલો, પસંતહિયઓગુરુહોઈ ॥ ૨ ॥  
એવ ચતુર્દશગુણા ભવન્તિ ।

૨૭૭ પ્ર૦—કયા ઠેકાણે ત્રણયોયો કાવી

૩૦—મદ્દ્વાહુસ્વામીકૃત ઓઘનિર્યુક્તિમા ૭૨ મી ગાથામા  
ત્રણયોયો કાવી કહી છે. યથા—

અવસ્સગતુકાઓ, જિણોવદ્દ્વગુરુવણ્ણેણ ।  
તિત્તિર્યુઈપડિલેહા, કાસ્સવિહિદ્મોતત્થ ॥ ૧ ॥

૨૭૮ પ્ર૦—તેપેદાન અને અનજાનનું શું ફલ છે ?





ते स्त्रीओने समागमे पचिस पचिस छोकरा रूप नानाविध रोगोनी उत्पत्ति छे, पूर्वोक्त प्रत्येक रोगने २५ गुणा करता १०० रोग याय, ते मध्ये आठ बीजा रोग भेळीए तेवारे वैदकशास्त्रमा वर्णवेल १०८ रोगनी सरख्या थाय छे तेनी चिकित्सा निपुण नाडीपरीक्षाना अनुभवी वैद्य यथार्थ करी शके, पण ते सर्वद्रव्यरोग, अने तेना मटाडनार पण द्रव्यवैद्य जाणवा, पण जे थकी ते द्रव्यरोगो उत्पन्न याय छे ते भावरोग जीवनी विषयकषायरूप अनादिकाळनी मलिन विकारी परिणति छे, तेना वैद्य तो सनत्कुमार सरखा परिणतिवत महात्माओ गणधर तीर्थकरादि जाणवा, जे सर्वऔषधना जाण, तथा सर्वरोगना मटाडनारा छे, माटे हे चेतन । तु मिथ्या शारीरादिकनी ममताने ओडीने तेओने शरणे जा, तेमना वचनने आदरथी स्वीकार अने तेमने मार्गे चालतो अनादि अनतअव्याबाध सुखने अचलपणे अनुभवीश

२९२ प्र०—एकसौधमेंद्रना आउखामा केटली इद्राणीओ चवे ?

उ०—कोडाकोडी दुविस, पचासीलफ्रखाहुतिकोडीओ ।  
इगुत्तरीसहसाकोडी, चत्तारिसयायतहकोडी ॥ १ ॥  
अष्टावीसकोडी, सत्तावनहवतिलफ्रखाइ ।  
सहस्साचउदससया, च्छासीइदेगजमित्थि ॥ २ ॥  
इयसफ्रखादेवीओ, चवतिइगइदजम्ममि ॥ ३ ॥

इद्र विषयसुख भोगवता एकलाख अठावीस

णोठी ), ३ गुजानो एरु वाल, सोळपालनो एक  
गदीआणो, दशगदीआणे एरु पल, दोडसोपळे  
एकमण, दशमणनी एरुपडी, दश वडीनो एक  
भार जाणवो

२८९ प्र०—अदारभारवनस्पति कहेवाय छे त्या भारनु प्रमाण  
केटल, तथा ते वनस्पति अदारभार कइ कइ छे  
ते कहो

उ०—३ क्रोट, ८१ लाख १२ हजार नवसैं सीतोतेर  
मणे एकवनस्पतिभार थाय छे, तथा प्रत्येक  
जातनी वनस्पतिनु एक एक पान लइने एकटो  
दगलो करीए, ए प्रमाणमा चारभार वनस्पति  
केवल फुल्मय छे, तथा आठभार वनस्पति फळ  
फुलपानमय छे तथा उभार वनस्पति वेलनी छे,  
एम एकदर १८ भार वनस्पति जाणवी

२९० प्र०—मुनिराज कया चोविसपरिग्रहना त्यागी होय

उ०—क्षेत्रवास्तुधनधान्यद्विपदचतुष्पदयानशज्जासयन भाण्ड  
कुप्यचेति ब्रहिर्दश, मिथ्यात्ववेदहास्यादिषट्कषाय  
चतुष्टयरागद्वेषावाभ्यतरा चतुर्दश ॥

२९१ प्र०—महारोग केटला तथा तेनो सतानपरिवार केटलो  
कह्यो छे ?

उ०—चार मोटा रोग कह्या छे — १ ज्वर, २ भगदर, ३  
कोढ, ४ धातुक्षय तेनी चार खीओना नाम —  
तावनी खी तरस, भगदरनी खी हेडकी, कोढनी खी  
भूख, धातुक्षयनी खी निद्रा तथा ते

उदय न आवे, आटमाना धणीने सर्वविरति उदय  
न आवे, नवमाना वर्णाने मुक्ति न याय

२९५ प्र०—पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुसकवेद, पचेन्द्रियपण, अने  
त्रसपण, कायस्थितिए लागल्गाट तेने तेज पर्याये  
रहे तो उत्कृष्ट केटलो काळ रहे ?

उ० ? पुरुषवेद, उत्कृष्ट ६०० सागरोपम झाझेरा,  
२, स्त्रीवेद, ११० पत्योपम ६ क्रोडपूर्व सुधी,  
३, नपुसकवेद, अनती उत्सर्पिणी अवसर्पिणी सुधी,  
४, पचेन्द्रियपण, १००० सागरोपम झाझेरा,  
५, त्रसपण, २००० सागरोपम झाझेरा,

प्र० २९६—पाचज्ञान त्रणअज्ञान कालयफी जघन्य तथा उ-  
त्कृष्टे केटलो काल रहे

उ०—मतिज्ञान अने श्रुतज्ञाननोकाल जघन्यथी एकसमय  
उत्कृष्ट ६६ सागरोपझाझेरो, अवधिज्ञान एकसमय ते  
केम ? विभगज्ञान समकित पडवजे तेवारे विभग  
फीटी अवधिज्ञान थाय त्यारे एकसमय रहिं  
वली पडे, विभगज्ञाननो विभगज्ञानेज आवे एम  
अवधिज्ञान जघन्यथी एकसमय होय, मन पर्यज्ञान-  
जघन्यथी एकसमय उत्कृष्टे देशेउणा पूर्वकोडी एक  
समय ते किम ? जेवारे अप्रमत्तगुणठाणे वर्तता  
मन पर्यवज्ञान उपजीने जाय, तिहा एकसमय जाणवो,  
केवलज्ञानना वर्णाने सादिअनतोकाल जाणवो हवे  
मतिअज्ञानने श्रुतअज्ञानना भागा कालआसरी त्रण-  
जाणवा, एकअनादि ने अनतए अभव्यने ? अनादि

हजाररूप विक्रम, तेनी आठअग्रमहिर्षीओ प्रत्येक  
 १६ हजाररूप विक्रम, त्यारे ते हिसामे इद्रउ  
 आयुष्य जे बेसागरोपमनु छे तेमा २२ कोडा-  
 कोडी ८५ लाख ७१ हजार चारसो अठावी-  
 स कोडी ५७ लाख १४ हजार त्रसो छीयासी  
 उपर आठ गुणी एटली देवागनाओ एकद्वदना  
 आयुष्यमाहि घये

२९३ प्र०—पाच स्थावर, विगलेन्द्रि, तथा पचेन्द्रिय क्या क्या होय

उ०—एगेन्द्रियपचेंदीया, उद्वेअहेयतिरियलोएय ।

विगलेन्द्रियर्जावापुण, तिरियलोएसु मुणेयव्व ॥ १ ॥

पुढ्वीआउवणस्स, वारसकप्पेसु सत्तपुढ्वीसु ।

पुढ्वीआ सिद्धसिळा, तेउनरखित्तिरियलोए ॥ २ ॥

सुरलोए वावीमज्झे, मच्छअनत्थीजलयराजीवा ।

गेविज्झेत्तज्जावि, वाविअभावेजलनत्थी ॥ ३ ॥

२९४ प्र०—नवनियाणानु स्वरूप तथा ते नियाणाना करनारने  
 केवा हीनफळनी प्राप्ति थाय छे ते कहो

उ०—१ राजादिक थवानी इच्छा, २ अमात्य थवानी

इच्छा, ३ स्त्री थवानी इच्छा, ४ देवभोगनी इच्छा,

५ देवीभोगनी इच्छा, ६ भोग न पामवानु निवाण,

७ श्रावक थवानी इच्छा, ८ दरिद्र थवानी इच्छा,

९ कर्मरहित थवानी इच्छारूपनिवाण, प्रथमना

ठ नियाणाना धणी दुर्लभबोधी थाय, प्राय धर्म

सदहे नहि, सातमानियाणाना धणीने देशविरति



आत्मा अतद्वापरद्वाचेव ५ सापराधने निरापराधे करी  
 वसा २॥ अपराधे हणे पण निरापराधे नहीं २॥  
 सापेक्षने दया निरपेक्षे वसो १। रहे तथा अत्र गाथा,  
 तसाथावराय जीवा, सकप्पारभओभवे द्विविहा ।  
 सावराहनिरावराहा, सावक्रखा चेव निरवक्रखा ॥ १ ॥  
 जीव वे प्रकारे सूक्ष्म ने बादर जे मध्ये सूक्ष्मना १०  
 भेद तथा १० बादरना, सूक्ष्मना १० ते पाच स्था-  
 वर पर्याप्ता ने अपर्याप्ता, एव १० नी दया श्रावकने  
 न होय, एव १० बादर ते किहा ? वेइद्रि ?  
 तेंद्रि २ चैरेंद्रि ३ पचेन्द्रि ४ ए पर्याप्ता ने अपर्याप्ता  
 एव भेद ८ पचेन्द्रिसजीनो ९ ने असजीनो १०  
 एव भेद बादरना यया, ते मध्ये श्रावकने सकल्पी  
 न मारवु आरभे जयणा एव ५ भेद रह्या, ते मध्ये  
 अपराधे हणे निरपराधे नहीं एटले २॥ वसा रह्या,  
 ते मध्ये सापेक्ष अने निरपेक्ष निर्दयपणे न हणे एव  
 १। वसानी दया श्रावकने असर्जावनी रही इति  
 प्राणापातनी जीवदया ? । वसानी इति । मृषावाद-  
 अणुव्रत २ समस्तमृषावादनियम साधुने २० वसा  
 सूक्ष्म ने बादर करता वसा १० उपयोगे अनुपयोगे  
 “ अतद्वापरद्वा ” आत्मपर एव ५ स्वजन परजन  
 करता एव २॥ धर्म अपर अधर्म परमार्थे १। तत्र  
 गाथा—

सुहुमनायरमलीय, अप्पाणपरभेयग भवे द्विविह ।

सयण परग च तहा, वम्मत्थ केवलपरमत्थ ॥ १ ॥

गुण ८, आचार्यना ३६, "पञ्चिन्द्रियसरणो" इत्यादि  
 गाथा त्रेथी जाणज्यो, उपाध्यायना २५ इग्यार अग  
 भणे भणारे एम १२ उपाग भणे भणारे तथा चरण-  
 सित्तरि करणसित्तरि आरणे एव २५ हवे सापुना  
 २७ गुण ते छत्रत पाले उकायररपनाले १२ पचेन्द्रियनो  
 नियह १७ लोभनियहसचर १८ क्रोधनियहसमागुण  
 एव १९ भावविशुद्ध २० पडिलेहणाविशुद्ध २१  
 सग्रहयोगयुक्त २२ मनचनकायनु कुशलपणु २५  
 शितादिक पीडानो सहवो २६ मरणात उपसर्गनो  
 सहवो २७ ए सर्व मली १०८ गुण पचपरमेष्ठिना  
 तेहनी नोकारवाली कहिए इत्यर्थ इति ।

प्र० ३०१-साधु सोएवसा पचमहाव्रत पाले अने श्रावक सवाळ  
 वसाए पचअणुव्रत पाले ते केवी रीते

उ०-पहेळु प्राणातिपात श्रावकने अणुव्रत तिंहा दया  
 श्रावकने वसा १। नी होय पाचस्थावर ते सूक्ष्म ने  
 बादर एव १० ते पर्याप्ताने अपर्याप्ता एव २० एम एणि  
 रिते साधु सोवसाए पचमहाव्रतपाले, श्रावकने पाचअणु-  
 व्रतमलीने सवाच्छवसा इत्यर्थ, तथा वली पाच  
 अणुव्रत श्रावकने होय तेहनो विवरो लखीए छीए,  
 स्थूलबेंद्रियादिकु व्रसजीव निराप्राध उपेतकरणी न  
 हणे ए प्राणानेपात अणुव्रतनी दया वसा १। नी  
 होय ते पूर्वे लख्यु हे तेहथी जो जो, तथा वीजा  
 अणुव्रत मन्हे आपणे काजे स्वसाधुने समस्तजीव रक्षा  
 वसा २० सूक्ष्मने बादर वसा १० काढ्याने परने

यल साधु पाळे तिहा वसा ?। नु होय श्रावकने इति । अथ परिग्रहअणुवत पाचमु साधु ते समस्त विरमण २० अभ्यन्तरने बाह्य करता ?० “ अ- तद्धा य परद्धा ” ए वे भेदे ५ स्त्रीपिहरआत्मनिद्वानु २ ॥ स्त्री आत्मदत्त एव वसा ? । तत्र गाथा—

अब्भतरत्राहिर परिगहो परसकीयगाचेवईत्थी ।  
पियअप्पोईत्थी नियदत्तनीउय ॥ ? ॥

वनधान्य ? खेतवत्थु २ रुधुसोनु ३ कुवइते वासण ४ द्विपद चतुष्पद एव ५ ते बाह्यने अभ्यतरे ?० ते इच्छामुच्छारूपे २० ते मध्ये श्रावकने वसा ? । परिग्रहपळे इति पूर्ण । अथ गाथा—

तसाथावरायजीवा, सकप्पारभओ भवे दुविहा ।  
सावराहानिरावराहा, सावक्खा चेव निरवक्खा ॥१॥  
इति प्राणातिपातविरमण ।

सुहुमवायरमलीय, अप्पाणपरभेयग भवे दुविह ।  
सयण परगचतहा, वमत्थ केवलपरमत्थ ॥१॥इति।२॥

सुहुमथुलमदिन्नदाण, निवरायदड कारिय ।  
रायगहकारियपुण, दुविहकहियगुरुजणेहि ॥ ? ॥  
नविराह० ? इति ३, मणवयकायमेहुण० ? इति ४ । अब्भ० ?, ५ । स्वजनकाजे धर्मकाजे मुकी पर- काजे बोलवानियम ए मृषावादअणुवत समस्तमृषा नियम २० सूक्ष्मने बादरभेदे ?० आत्मकाजे पर- काजे ५ स्वजनपरकाजे २॥ वर्मपरकाजे ?। एव द्वितीय, हवे तृतीयअणुवत राजनिग्रहकारिष परायु

पाच मोटकाजूटा ते सूक्ष्म ने वादर एव १० ते  
 उपयोगे ने अनुपयोगे एव २० वसानु मृषापाद साधु  
 न बोले पण श्रावकने १। वसानु मृषापाद श्रावकयो  
 पले इति भाव । अथ अदत्तादानअणुव्रत ३ समस्त  
 अदत्तविरमणसाधुने २० वसा सूक्ष्म वादर मेद धइने  
 वसा १० सराजनियह ने निराजनियहथी ५ आत्म-  
 निमित्त परनिमित्तथी २॥ याच्यु तथा अणयाच्यु १।  
 वसा तत्र गाथा—

सुदुमयुलमदिन्नदाण, निवरायदडकारिय ।  
 रायनिगहकारियपुण, दुविहकहिय गुरुजणेहिं ॥ १ ॥  
 नविराहनिगहकर, अप्पाणमेयग दुविह ।  
 दिन्नमदिन्नच पर, भासियव निउणबुद्धिहिं ॥ २ ॥

अदत्त पाच स्थलजीव अदत्त १ जिन २ गुरु ३  
 स्वामी ४ सागारिअदत्त ५ ते सूक्ष्म ने वादर एव  
 १० उपयोगे तथा अनुपयोगे एव २० वीसगुणी  
 ए इति । हवे मैथुनअणुव्रततुर्य ४ साधुने समस्त  
 मैथुनविरमण २० मनवचनकाया ३ एव १०  
 स्वदारा परस्त्री करता एव पाच वेश्या तथा परस्त्री  
 २॥ कुमारी तथा अपरस्त्री १ । तत्र गाथा—

मणवयकायमेहुण, मविनिययअविरई ।  
 ईत्थीओवेसापरत्थीओ, कुमारीपरईत्थीनियमो य ॥१॥  
 स्वदारा १ परस्त्री २ वेश्या ३ दासी ४ कुमारी ५  
 एव ते मनवचन तथा कायाए करी एव १० ते  
 सुपने तथा जागृतपणे एव वीस २० वसानो शी-

स्त्रीआत्मा एव स्त्रीआत्मादत्तआत्मा ?। अभ्यन्तर परिग्रह क्रोधमानादिकनो नहीं पळे अने बाह्य परिग्रह ?० प्रकारनो ते ते पलसे एव ?० बाह्य परिग्रहमाहि वे भेद ते क्रिया ? एक आत्मपरिग्रह अने परपरिग्रह ते मध्ये आत्मपरिग्रहनो नहा पळे, परपरिग्रहनो पलसे एव ५ वली परिग्रहमा वे भेद ते क्रिया ? आत्मनियोग अने स्त्रीपिहरआत्मनियोग अने स्त्रीपिहरआत्मनियोग ते शु कहीए ? जे वाणोतरादिकनो जे गर्व ते आत्मनियोग पलसे अने स्त्रीना पिहरनो जे परिग्रह ते आत्मनियोगनो नहीं पळे एव २॥ स्त्रीना पिहरनो परिग्रह तेहना वे भेद ते क्रिया ? एक स्त्रीदत्त अने अस्त्रीदत्त एव ?। सवावसो थयो इति पचाण्व्रतानि एम श्रावकने ५ अण्व्रते ?। सवावसानो होय ते विवरण कष्टु इति सपूर्ण ।

३०२ प्र०—ससारमा सार शु ?

उ०—ससार पोतेतो नि सार छे, एटले ससार जे विषय कषायनी परिणति तेमा आत्माने काइपण सारमूत नथी, अने अधर्म मार्गमा सम्यग्दर्शनरूप धर्म सार छे, तेमा पण सम्यग्ज्ञान सार छे, वळी तेमा पण सम्यक्चारित्र सारमूत छे, तेमा निर्वाणपद जे मोक्ष ते सारमूत छे

३०३ प्र०—चौदपूर्वी आहारकशरीर केटळीवार करे ?

अणदियु लेया नियम समस्तअदत्तादानपञ्चखाण  
 २० सूक्ष्मनादरभेदे १० सराजनिग्रह निराजनिग्रह  
 ५ आत्मकाजनिग्रह परकाजनिग्रह २॥ पियारी दिधी  
 पियारीअणदीधी १। एउ राजनिग्रह पडे तेहनो  
 पञ्चखाण ते सराजनिग्रहमाहि वे भेद एक आत्म-  
 राजनिग्रह परराजनिग्रह कहिए, हवे ते आत्मराज-  
 निग्रह ते मोकळो, परराजनिग्रहनु पञ्चखाण, हवे  
 परराजनिग्रहना वे भेद ते किया ? एक पियारी  
 दीधी, पीयारीअणदीधी परकीयवस्तु आणी आपे  
 ते कोइनी दृष्टि वची न लीये एटले सवावसो राजा  
 व्रतनो जाणवो, अथ चतुर्थ स्वदारासतोष परदारा  
 विवर्जनारूप ए माहे सर्व फलामणी छे, समस्त  
 मैथुनविरमण मनवचनकाया १० स्वदारा परस्त्री ५  
 वेश्या अपरस्त्रीमाहे वे भेद ते किया ? वेश्याने  
 अपरस्त्री ते मध्ये वेश्यानो नहीं पळे, अपरस्त्रीनो  
 पलसे एव २॥ अपरस्त्रीमाहि वे भेद छे ते किया ?  
 कुमारी अने परणी अपरस्त्री ते कुमारी नहीं पळे  
 परणीस्त्रीनो पलसे कुमारीश्या माटे मोकळी ? जे  
 विवाह मल्यो छे परण्या नथी ने ते उपरे स्त्रीनो  
 अभिलाष धरे ते माटे एटले सवावसो रह्यो " आणद  
 श्रावकस्य सपादो विशेषाधिक " अथ पाचमे  
 आपणोपरिग्रह स्त्रीयादिकनो करी आपणे कायें  
 आण्यो होय ए परिग्रहअण्व्रत तिहा समस्तपरि-  
 ग्रहविरमण २० अभ्यन्तर ने बाह्य परिग्रह विश्वा  
 १० परआत्म एव ५ स्त्रीमिहर आत्मा एव २॥

३०—यथा एटले जेवा कर्म उदय आवे तेवा प्रवृत्ति एटले वेदीने खेरवे, करण एटले शुभ परिणामे करी, अर्थात् यथाप्रवृत्तिकरणमा जीव अकाम निर्जराए तथा कषायनी मदताए पूर्वना औदयिककर्मने खपावे, पण नवा रागद्वेषप्रत्ययिक बव न करे एम यथाप्रवृत्तिकरणमा जीव अकाम निर्जराए तथा कषायनी मदताए पूर्वना औदयिककर्मने खपावे, पण नवा रागद्वेष प्रत्ययिक बव न करे एम यथाप्रवृत्तिकरणे तो अभवीजीव पण असख्यातीवार गठीदेश सुधी आवे, पण ते गठीने भेदवाना अपूर्वकरणरूपी परिणाम न थाय तेयी पाछो पडे, इहा गठी ते अनादिरागद्वेषनी निविडगाठ, जेम कोइ वृक्षना काष्ठप्रमुखनी निविडगाठ भेदी न जाय, तेम आत्मानो पुद्गल उपर तन्मय एकीभावरूप ममता ते ग्रथि जाणवी ते अपूर्वकरणपरिणामविशेषे भेद प्रारमे तेहने अते भेदाने अनिवृत्तिकरण पामे ए सर्व क्रियाअतर्मुहूर्तनी त्यारपछी मिथ्यात्वनो जाणवो उपशम समकितनु यवु ते अतरकरण एकसमयनो इति ४ करणनो भावार्थ ।

३०९ प्र०—सम्यक्त्वनी प्राप्तिए शु पामे शु समरे

३०—समकित पामे थके जीवनो शुद्धोपयोग समयो, ते उपयोग समरे, जीव समयो, जीव समरे योग समयो, योग समरे परिणाम समयो, परिणाम समरे अध्यवसाय समयो, वळी वीजी रीते कहीए तो

३०-गाथा—

धतारियाराओ, चउदसपुर्वी करेइ आहार ।  
ससारमिपसतो, एरुभने हुनिपाराओ ॥ १ ॥

३०४ प्र०-आहाररुशरारनु जवन्य अने उत्कृष्ट आतरु केट्लु ?  
समयोजहनमतर, उक्कोसेणजापठमासा ॥

३०-आहारसरीराण, उक्कोसेण तु नपसहसा ॥ २ ॥

३०५ प्र०-पाच प्रकारना समकित जिनेश्वरे कया प्ररुप्या छे ?

३०-खईउ खओवसर्मीय, वेयगमुवसर्मीय च सासाणा ।  
पचविह समत्त, परुवियजिणवरदेहिं ॥ १ ॥

३०६ प्र०-क्षेन अने कालमायी सूक्ष्म कोण छे

३०-सुहुमोयहोइकालो, ततोसुहुमतरहवइखित्ते ।  
अगुसेठीमित्ते, उसप्पिणीओअसखिज्जा ॥ १ ॥

३०७ प्र०-अभव्य, दुर्भव्य, अने निकटभव्य, ए त्रणने ग्रथि-  
भेदयी पाछा पाडवामा मुख्य हेतु कोण छे ?

३०-अनादिमिथ्यात्वनी वासनाए पतितपणु ते अभव्यने  
होय तथा विषय लालसाए पतितपणु दुर्भव्यने होय,  
कर्मवर्णणामायी कोइककर्मोदये पतितपणु निकट  
भवीने यथाप्रवृत्तिकरणग्रथिदेश थफी कोइ कर्मना  
उदये पतित थाय, पण विषयवासनाए के लाल-  
साए नहि, आमा अभव्यने मदता यथाप्रवृत्तिकरणे  
करी तीव्रभाव एटले उत्साहने पामे, निकटभवीनी  
मदता क्षयोपशमभावने पामे

३०८ प्र०-यथाप्रवृत्तिकरणनो शब्दार्थ कहो



रसातिरेकयोजनसहस्रमानत्वादौदारिक, वैक्रियद्विधा  
भवधारणीय उत्तरवैक्रिय च यदेकमत्वा अनेकभवति  
अनेकमत्वा एकचभवति शेषशरीरापेक्षया बृहत्प्रमाण  
वैक्रिय ॥ उक्तच ॥

कज्जमि समुप्पन्ने, सयकेवल्लिणाविसुद्धलद्धिण्णु ।

जएत्थआहारिज्जइ, भणियआहारक तत्तु ॥ १ ॥ अथैतजस  
सव्वस्ससिद्धरसाइ, आहारपाकजणगच ।

तेयगलद्धिनिमित्त, तेयग होइ नायव्व ॥ १ ॥

भुक्ताहारपरिणमनकारण ३। अत्यतशुभैक्रियत्वात्  
इत्याहारक ४। कर्मणाजातकर्मण कर्मपरिणामच आ-  
त्मप्रदेशसहक्षीरनीरवत्, कर्मणो विकार कर्मण इतिवा,  
यदुक्त यत ॥

कम्मविगारोकम्मण, मद्धविहचित्त कम्मनिप्पन्न ।

सव्वेसिं सरीराण, कारणभूत्तमुणेयव्व ॥ १ ॥

३१४ प्र०-मिथ्यात्व अने चारित्रमोहनो तात्त्विक अर्थ कहो  
उ०-शुद्धआत्मादि नवतत्त्वने विषे जे विपरीतबुद्धि तेज  
मिथ्यात्व, निर्विकारी आत्मज्ञानथकी विपरीत प्रवर्तन,  
अर्थात् वीतरागचारित्रने विषे मुझवण, विकळता ते  
चारित्र मोह

३१५ प्र०-रागद्वेष ते कर्मजनित छे के जीवजनित छे

उ०-एकदेशे शुद्धनिश्चयनये ते कर्मजनित छे, अने अ-  
शुद्धनिश्चयनये जीवजनित छे, पण वास्तविक रीते  
शुद्ध परम अर्थ ग्रहता वस्तुगते, रागद्वेष ए नथी  
पुद्गलनो स्वभाव, के नथी जीवनो स्वभाव मूळरूपे,  
पण ते बनेना सयोगिकभावथकी एक नवीन वर्ण-

जीवत्व समरे शुद्धोपयोग समरे, अने तेयीं शुद्ध  
श्रद्धानरूप समकित पागे, तेयीं योग समरे, तेयीं  
मतपद्यस्वागादि रुटी रीते उदय आपे तेयीं परि-  
णाम सारा थाय, तेयीं अभमत्तता जांयने आवे,  
अने तेयीं जीवना अध्ययसाय समरे, अने शुद्ध-  
ध्यान प्रगटे, अने तेने योगे श्लेषकश्रेणिआरोही  
कर्मक्षय करी केवळज्ञान पामी मुक्तिपद वरे, एम  
परिपाटि सुधारा अने रगाडानी उल्ट पुल्ट जाणवीं

३१० प्र०-पर्याप्ति अने प्राणमा शु फेर ?

उ०-भवोत्पत्तिकाले जतमुद्धूर्तमा जीव जे करे ते पर्याप्ति,  
पठी जीवित्यासुधी सहचारी रहे ते प्राण कहिए,  
अर्थात् भवभव प्रत्ये उपग्रहण थाय ते पर्याप्ति अने  
सहचारी भवोपग्राही सचव ते प्राण जाणवा

३११ प्र०-परमाणु अने प्रदेशमा शु विशेष ?

उ०-स्वाभाविक ते परमाणु, अने विभाविक ते प्रदेश, जे  
परमाणु स्कधने वळग्यो छे, त्यासुधी प्रदेश कहेवाय,  
छुटो पडे तेने परमाणु कहिए.

३१२ प्र०-श्रीआदीश्वर भगवान् सिद्धाचळजी पूर्वनवाणु वार  
आव्या तेनी अक सख्या लखो ?

उ०-६९ कोडाकोडी ८५ लाख ने ४४ हजार कोडवार  
आव्या, एने पूर्वनवाणुवार कहिए

३१३ प्र०-पाच शरीरनो शब्दार्थ कहो

उ०-पन्नवणानी टीका मध्ये कहु छे, यत उदार प्रधान  
शरीरमौदारिक तीर्थकरगणघरमधिकृत्य तथा उदा-

रसातिरेकयोजनसहस्रमानत्वादौदारिक, वैक्रियद्विधा  
भवधारणीय उत्तरवैक्रिय च यदेकमत्वा अनेकभवति  
अनेकमत्वा एकचभवति शेषशरीरापेक्षया बृहत्प्रमाण  
वैक्रिय ॥ उक्तच ॥

कज्जमि समुप्पन्ने, सयकेवल्लिणाविसुद्धलद्धिए ।

जएत्थआहारिज्जइ, भणियआहारक ततु ॥१॥ अथतैजस  
सच्चस्ससिद्धरसाइ, आहारपाकजणगच ।

तेयगलद्धिनिमित्त, तेयग होइ नायव्व ॥ १ ॥

भुक्ताहारपरिणमनकारण ३। अत्यतशुभवैक्रियत्वात्  
इत्याहारक ४। कर्मणाजातकर्मण कर्मपरिणामच आ-  
त्मप्रदेशसहक्षीरनीरवत्, कर्मणो विकार कर्मण इतिवा,  
यदुक्त यत ॥

कम्मविगारोकम्मण, मडुविट्ठित्त कम्मनिप्पन्न ।

सच्च्वेसिं सरीराण, कारणमत्तमुणेयव्व ॥ १ ॥

३१४ प्र०-मिथ्यात्व अने चारिनमोहनो तात्त्विक अर्थ कहो  
उ०-शुद्धआत्मादि नवतत्त्वने विषे जे विपरीतबुद्धि तेज  
मिथ्यात्व, निर्विकारी आत्मज्ञानथकी विपरीत प्रवर्तन,  
अर्थात् वीतरागचारित्रने विषे मुझवण, विकळता ते  
चारिन मोह

३१५ प्र०-रागद्वेष ते कर्मजनित छे के जीवजनित छे

उ०-एकदेशे शुद्धनिश्चयनये ते कर्मजनित छे, अने अ-  
शुद्धनिश्चयनये जीवजनित छे, पण वास्तविक रीते  
शुद्ध परम अर्थ ग्रहता वस्तुगते, रागद्वेष ए नयी  
पुद्गलनो स्वभाव, के नयी जीवनो स्वभाव मूलरूपे,  
पण ते बनेना सयोगिकभावथकी एक नवीन वर्ण-

શકર ઉપત્તિ છે, તેવાજ જે જાંત્ર રાગદ્વેષી છે તેઓ  
વર્ણશકરરૂપ દેસાસ સસારમા કરે છે, અને તેઓને  
સાઢ્ઢીલાવનમખનાડ્યને વિષે મગ્ન જોડ રહ્યા છે

૨૧૬ પ્ર૦—શ્રી યુગપ્રધાન આચાર્યજી મહાત્માના 'ચાર મુઢ્ય અ-  
તિશય કયા ?

૩૦—૧ જેમના વસ્ત્રમા જૂન પડે, ૨ જ્યાં 'વિચરે તેદેશનો  
મગ ન યાય, ૩ તયા તે દેશમા ચિંતા ન ઉપજે,  
૪ તેમના પગ ઘોડને પીણ તેના સર્વ રોગ નાશ પામે

૨૧૭ પ્ર૦—ઉત્સેધાગુલ, આત્માગુલ, અને પ્રમાણાંગુલ નો અર્થ  
કહો, તયા તેણે કરી કડ કડ વસ્તુઓ મપાય છે  
તે પળ કહો

૩૦—૧ ઉત્સેધાગુલ એટલે સ્વદેશે, સ્વક્ષેત્રે, સ્વકાલે પોતાહ  
જેવહ શરીર હોય તેના પ્રમાણનો એકજાગુલ  
જાણવો તેણે કરી શરીરાદિક મપાય છે ૨ આ-  
ત્માગુલ તે ઉત્સેધાગુલથી બમણો જાણવો, અને તેણે  
કરી ઘર, હાટ વગેરે મપાય છે, ૩ આત્માગુલથી  
હજારાંગુલો પ્રમાણાંગુલ જાણવો, તેણે કરી પૃથ્વી,  
પર્વત, વિમાનાદિ મપાય છે

૨૧૮ પ્ર૦—ભાવના, અધ્યાત્મ મૌનપણ, 'મુનિ અને સમ્યક્ત્વ  
તેનો ઢુક તાત્ત્વિકશબ્દાર્થ કહો

૩૦—૧ આત્માને જ્ઞાનાદિકેકરી 'ભાવીણ' તે ભાવના, ૨  
આત્માને અધિકારી કરીને 'જે કરીણ' તે અધ્યાત્મ  
૩ સત્ય યથાર્થ જિનવચનાનુસાર બોલવુ, તે સ્વરુ  
મૌન એટલે મુનિપણ જાણવુ તયા '૪ જગત્તત્ત્વને

पचास्तिकायने यथार्थ माने तेने मुनि कहीए, अने  
जे मुनिपण छे तेज खरु सम्यक्त्व कहिये

३१९ प्र०-दीक्षाने अयोग्य केवा प्राणीओ कह्या छे

उ०-१८ प्रकारना पुरुष, २० प्रकारनी स्त्रीओ, तथा  
१० प्रकारना नपुसक जातिना प्राणीओने दीक्षा  
आपवाने जिनराजे वर्जन कर्युं छे, तेमा प्रथम १८  
प्रकारना पुरुष कया ते कहे छे-१ बाळ, २ वृद्ध,  
३ क्लीत्र ते नपुसक, ४ जड ते मूर्ख, ५ रोगिष्ठ,  
६ चोर, ७ राजानो अपराधी, ८ उन्मत्त, ९ अध,  
१० दास एटले कोइनो गोलो प्रमुख, ११ दुष्ट  
कषायवत एटले अत्यतक्रोधी मानी वगरे, १२  
मूढ ते मोहमयी, १३ करजदार, १४ हीनजाति-  
वत, १५ विद्यादिक कोइपण गूढस्वार्थरागवत,  
१६ सिद्धक मागीखानार निर्लज्ज प्रमुख, १७ चो-  
रीने के भरमावीने के अन्य कोइपण अयोग्य  
प्रकारे मेळवेला शिष्यने, १८ हीनसत्त्ववत ते  
वीकण प्रमुख, ए रीते ए अढारदोषवत पुरुष  
तथा १९ गर्भवती स्त्री तथा २० स्तनपान करनार  
बाळकवत स्त्री ते धावप्रमुखस्त्री एम ए बे युक्त  
वीशदोषवत स्त्री जातिना प्राणीओ दीक्षाने अयोग्य  
कह्या छे, वकी एज रीते दशप्रकारना नपुसक  
पण ग्रथातरथी जाणी लेवा

३२० प्र०-कोइ जे अल्पससारी छे ते कया लक्षणथी जाणीये

उ०-अल्पआहार, अल्पनिद्रा, अल्पआरम, तथा अल्प-  
कषाय होय ते नियमा अल्पससारी जाणीये

३२१ प्र०-साम, दाम, भेद अने दंड ए चार नीतिनो टरु शब्दार्थ कहो

उ०-१ साम ते प्रेमनाळु मगुर वचन, २ दाम ते दंड  
आर्पाने झवडो मटाडो सनोपयो ते, ३ भेद ते  
शत्रुवर्गमा कोइ उळभेदफरी लाच रुशवतादिके  
पुरुषोने फोडी शत्रुनी अदत्ने अदर फाटफुट पडा-  
ववी ते, अथवा एरूपक्षनी सामे वीजापक्षनी तर-  
फेण करीने भेद पडावयो ते, ४ दंड पूर्वोक्त वणयी  
न माने तो छेवटे युद्धादि करी शिक्षा आपवी ते

३२२-आजकाल कोइने पण सम्यक्त्वगुण प्रगट्यो छे, तेनी  
कोइ पण शीघ्र जणाय एवी कोइ परीक्षा रीति छे  
तेनी खात्री शी रीते करी शकाय ?

उ०-वीतरागपरमात्मा श्रीअरिहत जिनेश्वरदेवतु नाम साभ-  
ळता जे जीवने रोमाच खटा याय, तीव्र शोकाव-  
स्थामा पण जेमनु गुण स्वरूप साभळता, मुद्रा नीहा-  
ळता तमाम शोक दु ख पीडादि मूली जइने अतरग  
अने बहार अत्यंत हर्षोल्लास प्रगटे, ए परमात्मा उपर  
परिणतितु शीघ्र परखाय एवु खास लक्षण चिह्न छे

इति श्रीविचाररत्नसारग्रन्थसिद्धान्तना प्रश्न ।

प श्री देवचन्द्रजीकृत प्रश्न समाप्तम् ॥

श्रेय म्यात् सवत् १८७५ ना वर्षे माहसुदि २ दिने  
बुधवारे लि प श्रीरूपचन्द्रजीगणि तच्छिष्य रत्नचन्द्रेण श्रीम-  
त्खरतरगच्छे भट्टारकक्षेमशाखाया श्रीअहमदावादे घाचीनीपोल  
मध्ये श्रीसभवनाथप्रसादात् लिपीचक्रेअधिकहीननामिथ्याडुकृतम्  
॥ ग्रन्थाक २५२७ ॥

# श्री देवचंद्रजीकृत छूटक प्रश्नोत्तर ग्रन्थ

॥ अथ छूटक प्रश्नोत्तर लिख्यते ॥ श्री खरतरगच्छे प  
प्र महाराज श्रीदेवचंद्रजीने श्रावके प्रश्न कर्षातेना उत्तर दिधा  
ते प्रश्नोत्तर अमोए देवचंद्रजी महाराजनी चोपडीमाहे दीठा ते  
लख्या छे राधनपुरना सधे प्रश्न पूज्यु जे श्रावक सूत्र वाचे  
अथवा न वाचे ? तेहनो उत्तर=आगम रीते जे छे ते लिखीए  
छीए, जे सूत्र नदीसूत्रमव्ये जेटलाना नाम छे तथा ठाणगे पण  
सूत्र ४ ना नाम छे ए सूत्रमव्ये श्री ४५ योगनी विधि श्री  
अनुयोगद्वारचूर्णमव्ये छे तेहथा प्रीठज्यो तथा अनुयोगद्वारसूत्र  
मव्ये सूत्र भणवानी विधिना बोल छे ते चूर्णमव्ये ए अधिकार  
छे तथा योगवही सूत्र भणवा ए परमार्ग छे श्रीउत्तराव्ययन  
सूत्रे कह्यो छे ॥ गाथा ॥

सद्यगुरुकुलेनिचे, जोगवहउवहाणव ।

पीयकरे पीयवाई, चेसिरक लद्धुमरिहइ ॥ १ ॥

इहा योगवत उपधानवत ते शीखवा योग्य छे तथा  
श्रीठाणगे ” तिहिंठाणेहिंसपन्नेअणगारे अणाइय अणवदग्दी-  
हमद्व चाउरतससारकतारविइवएज्झा त अणिदाणयाए, दिठिसपन्न-  
याए, जोगवाहियाए ” इहा जोग वहेवाना अक्षर छे केइक  
दुर्मतिजीव इहा योगशब्दे मनवचनकायाना योग कहे तेहने  
कहीए जे मनवचनकाया विना सर्जा जीव कोण छे ? तो  
योगवाही ए पद किम उपजे ? तथा शुभयोगपणे ते शुभपद

तो सूत्रमन्त्रे दीसतो नयी तथा टाणागमूत्रमे दशमेटाणागे कयु छे "दसहि टाणेहि जीया अगमेसिभद्रताण्णम्म पग्गेति त अनिदाणयाण्, दिठीसपनयाण्, योगगार्हीययाण्, सतीखमणयाण्, जीइदियाण्, अमाइल्लयाण्, अपासत्थयाण्, सुसामनयाण्, पवयणवडल्लयाण्, पवयणउज्झाणयाण् तथा उत्तराव्ययने पण कयु छे

नीयावत्तीअचवले, अमाइ अकुतूहले ।

विणीय विणएदत्ते, जोगवं उवहाणव ॥ १ ॥

इत्यादि, वचन अनेक छे उत्तीसयोगसग्रहमन्त्रे पिण्-सूत्र भणवानो, मत्तोरथ कय्यो नयी तथा सर्व सूत्रे श्रावक लद्धक कय्या छे, पण आचाराणादिकसूत्रना, पारगामी किहाइ कय्या नयी तथा उत्तराध्ययने १३ मा अध्ययनमाहे गाथा छे जे ॥

महत्थरूवा वयणप्पभूआ, गाहाणुगीयानरसघमज्जे ।  
ज भिक्खुणो सीलगुणोवनेवा, इहज्जयत्तेत्तमणोमिजाओ

ए गाथामे कय्यो, एहवी गुणवत्, गाथा ते भिक्षु भण्ते ते माटे हु पिण श्रमण ययो इहा पण सूत्र भणवाना अधिकारी मुनि दीसे छे, तथा सुगढागे १४ मा अध्ययने कय्यो छे

गथविहाय इहसिखमाणा, उठायसुबभूचरे वसिज्जा ।  
उक्कयकाराविणयसिरके, जे छेएवि पमायत्तकुज्जा ॥१॥

ए गाथाइ पण ग्रथ छे ते मुनि योग्य छे, इम छे, इम अनेक सूत्रे पाठ छे, तथा समुवायाग सूत्रे" सेणअगङ्गायाण्पपदभे



अगेदोसुअखवापणवीस अज्झायणापचासी उदेसणकाला, पचासी-समुदेसणकाला," इम सप आगमनाउदेशासनाकालग्रहण कइया छे ते पिण कालग्रहण ते जोगवह्ये थाय ते माटे योग वइया 'विना सूत्र भण्णा नयी कइया इम नदी तथा भगवतीसूत्र मध्ये पाठ छे 'तथा व्यवहारसूत्रे सर्व आगमनना भणवानो पर्याय कइयो छे दीक्षायी वीस वरस पर्याय, सर्व आगम भणे तथा 'निशीथ सूत्रमाहे कइयो छे " जेमिरकु अणत्थियवागारत्थिय वा वाण्डय तसाइज्जइ तस्सचाउम्मासीयपरिहारठाण " इहा जे गृहस्थने वाचनोदे अथवा ग्रहस्थने वाचता अनुमोदन करे तेहने च्यार मासनो पाल्योचारित्र जाय इत्यादि प्रगटाक्षर छे ते माटे गृहस्थने सूत्र भणवो वाचवो नही तथा प्रश्नव्याकरण सूत्रे कइयो छे " त सब भगव तित्थगरसुभासिअ दसविह चउदसपुवेह पाहुँडत्थपवेदिअ महारिसीणंसमपिदिन देविदनरिदिणभासीअत्थ " इहा पण सावुने सूत्र दीवो, अर्ये देविद्रनरिद्रने दीधो तथा कोइ कहेसे जे सुबुद्धीमनीये च्यार महाव्रतरूपधर्म कइयो ते माटे अम्हे कहु छु तेतो सुबुद्धीमनीये वातरूप उपदेस कइयो, पण अंगादिक वाच्या नयी जातासूत्रे सुबुद्धीमनीने अधिकारे दीक्षा लीवा पछे आचारागादि भण्णा, जी गृहस्थपणे आचारादि भण्णा हीत तो दीक्षा लीधा पछे स्याने भणे ते विचारज्यो तथा वली कोइक कहेस्ये जे श्रावक सुअपरिग्गहिआ, कइया छे तेतो फक्त शब्दे आवश्यकदिक तथा अर्थ-नोधरणतेपिणश्रुत छे ते माटे 'सुअपरिग्गहिआ कइया छे शुभज्ञानी समकिती देशविरतीने कहा छे, आचारागादि सूत्र नी ना छे तथा ठाणगे तो " अवायणिज्जापन्नत्ता तज्जहा अविणीए, विगयपडिबद्धे अंबुसिआ पाहुँडे, विगयवडिबद्धेनो अर्थ

તો સૂત્રમત્વે દીસતો નયી તયા ટાણાગમુખમે દશમેટાણાગે  
કયુ છે. " દસહિં ટાણેહિં જીના અગમેસિમદતાણક્રમ્મ પર્ગેતિ ત  
અનિદાણયાણ, દિઠીસપનયાણ, યોગપાહીયયાણ, સત્તીરવમણયાણ,  
જીહ્વદિયાણ, અમાહ્લયાણ, અપાસત્વયાણ, સુસામનયાણ, પવયણ-  
વઠલ્લયાણ, પવયણઉજ્જાવણયાણ તયા ઉત્તરાવ્યયને પળ કયુ છે

નીયાવત્તીઅચવલે, અમાહ્ અકુતૂહલે ।

વિણીય વિણણદત્તે, જોગવં ઉવહાણવ ॥ ૧ ॥

ઇત્યાદિ, વચ્ચન અનેક છે પ્રત્તાસયોગસગ્રહમત્વે વિણ-  
સૂત્ર મળવાનો, મત્તોરથ કહ્યો નયી તયા સર્વ સૂત્રે શ્રાવક  
લદ્ધદ્ધા કહ્યા છે, પળ આચારણાદિકસૂત્રના, પારણામી કિહાહ્  
કહ્યા નયી તયા ઉત્તરાધ્યયને ૧૩ મા અધ્યયનમાહે ગાથા  
છે જે ॥

મહત્થરૂવા વયણપ્પમૂઆ, ગાહાણુગીયાનરસઘમજ્જે ।  
જ મિસ્કુણો સીલગુણોવવેયા, ઇહજ્જયત્તેસમ્પોમિજ્જાઓ

૯. ગાથામે કહ્યો, એહવી ગુણવત, ગાથા તે મિશ્ચ મળે તે  
માટે હુ વિણ શ્રમણ થયો ઇહા પળ સૂત્ર મળવાના અધિકારી  
મુનિ દીસે છે, તયા સુગઢાગે ૧૪ મા અધ્યયને કહ્યો છે

ગથ્થ વિહાય્ ઇહ્સિખમાણા, ઉટ્ટાયસુવમ્મચેરે વસિજ્જા ।  
ઉવયકાસવિણુયસિરકે, જે છેએવિ પમાયત્તકુજ્જા ॥૧॥

૯ ગાથાહ પળ ગ્રંથ છે તે મુનિ યોગ્ય છે, ઇમ છે, ઇમ  
અનેક સૂત્રે પાઠ છે, તયા સમ્પ્રવાસાગ સૂત્રે<sup>૨</sup> સેણઅગઢાયાણપદ્ધમે

अगेदोसुअखवापणवीस अज्झायणापचासी उदेसणकाला, पचासी-समुदेसणकाला," इम सर्व आगमनाउद्देशासनाकालग्रहण कइया छे ते पिण कालग्रहण ते जोगवह्ये थाय ते माटे योग वइया 'विना सूत्र भण्या नयी कइया इम नदी तथा भगवतोसूत्र मध्ये पाठ छे 'तथा व्यवहारसूत्रे सर्व आगमनना भणवानो पर्याय कइयो छे दीक्षायी वीस वरस पर्याय, सर्व आगम भणे तथा 'निशीथ सूत्रमाहे कइयो छे " जेमिरकु अणत्थियवागारत्थिय वा वाण्डय तसाइज्जइ तस्सचाउम्मासीयपरिहारठाण " इहा जे गृहस्थने वाचनोदे अथवा ग्रहस्थने वाचता अनुमोदन करे तेहने च्यार मासनो पाल्योचारिन जाय इत्यादि प्रगटाक्षर छे ते माटे गृहस्थने सूत्र भणवो वाचवो नहीं तथा प्रश्नव्याकरण सूत्रे कइयो छे " त सब भगव तित्थगरसुभासिअ दसविह चउदसपुवेह पाहुडत्थपेवेदिअ महारिसीणसेमप्पदिन देविदनरिंदाणभासीअत्थ " इहा पण सापुने सूत्र दीपो, अये देविद्रनरिंद्रने दीधो तथा कोइ कहेसे जे सुबुद्धीमत्रीये च्यार महाव्रतरूपधर्म कइयो ते माटे अम्हे कहु छु तेतो सुबुद्धीमत्रीये वातरूप उपदेस कइयो, पण अंगादिक वाच्या नयी ज्ञातासूत्रे सुबुद्धीमत्रीने अधि-कारे दीक्षा लीधा पछे आचारागादि भण्या, जो गृहस्थपणे आचारोदि भण्या हीत तो दीक्षा लीधा पछे स्थाने भणे ? ते विचारज्यो तथा वली कोइक कहेस्ये जे श्रावक सुअपरिग्गहिआ, कइया छे तेतो फक्त शब्दे आवश्यकदिक तथा अर्थ-नोधारणतेपिणश्रुत छे ते माटे सुअपरिग्गहिआ कइया छे शुभज्ञानी समकिती देशविरतीने कहा छे, आचारागादि सूत्र नी ना छे तथा ठाणगे तो " अवायणिज्जापिन्नत्ता तजहा अवि-प्रीण, विगयपडिबद्धे अंबुसिआ पाहुडे, विगयवडिबद्धेनो अर्थ

तो सूत्रमव्ये दीसतो नयी तथा टाणागमुत्रमे दशमेटाणागे  
कयु छे "दसाहिं टाणेहिं जीया आगभेसिभदत्ताण्कम्म पणेंति त  
अनिदाणयाण्, दिठीसपनयाण्, योगग्राहीययाण्, खर्तीखमणयाण्,  
जीइदियाण्, अमाइल्लयाण्, अपासत्वयाण्, सुसामनयाण्, पवयण-  
वठल्लयाण्, पवयणउज्झाणयाण् तथा उत्तराव्ययने पण कयु छे

नीयावत्तीअचवले, अमाइ अकुतूहले ।

विणीय विणएदते, जोगवं उवहाणव ॥ १ ॥

इत्यादि, वचन अनेक छे उत्तीसयोगसग्रहमव्ये पिण-  
सून भणवानो, मतोरथ कय्यो नयी तथा सर्व सूत्रे श्रावक  
लद्धा कय्या छे, पण आचारग्रादिकसूनना, पारगामी, किहाइ  
कय्या नयी तथा उत्तराध्ययने १३ मा अध्ययनमाहे गाथा  
छे जे ॥

महत्थरूवा वयणप्पभूआ, गाहाणुगीयानरसघमज्जे ।  
ज भिखुणो सीलुणुणोववेवा, इहज्जयत्तेसमणोमिजाओ

ए गाथामे कय्यो एहवी गुणवत, गाथा ते मिक्षु भणे ते  
माटे हु पिण श्रमण थयो इहा पण सूत्र भणवाना अधिकारी  
मुनि दीसे छे, तथा सुगडागे १४ मा अध्ययने कय्यो छे

गथविहाय इहसिखुमाणा, उठायसुवभचेरे वसिज्जा ।  
उवयकाराविणुग्रसिरके, जे छेएवि पमायनकुज्जा ॥१॥

ए गाथाइ पण ग्रथ छे ते मुनि योग्य छे इम छे, इम  
अनेक सूत्रे पाठ छे, तथा समुत्तायाग सूत्रे" सेणअगइयाएपदमे

साधुने पिण उपदेश देवानी प्रगहरीति नयी, तो गृहस्थलिङ्गे उपदेश करे ते किम पाल्वे ? घण्टु स्यु लखीइ ? आगमगमीरमुखे मिल्या अनेकअर्थ कहेवाये इम प्रीठज्यो

तथा कडकमती कहे छे जे पोरसीप्रमुखपञ्चखाणे जो पहोरथी बधतो काल याय तो दोष छे तेहनो उत्तर जे पञ्चखाणनी शुद्धि ६ कही तिहा तीरीयसमदायकाल ए पाठ आवश्यकनिर्धुक्ति-प्रवचनसारोद्वार पञ्चखाणभाष्यने विपे छे वली भगवती टीकामव्येखदाधिकारे तीरइतिप्रणैपि भवद्बो स्तोककालवस्थानात्ए पाठ छे

तथा केइकगच्छना चउसठ अठम तपने अधिकारे आगल पाउल वे एकासणा करे तेवारे चउत्थादिक तप याय ते माटे अनेक कुयुक्ति करे छे तेहनो उत्तर श्रीभगवती टीकामव्ये खदाधिकारे चउत्थचउत्येण विचतुर्थभक्तयावद्भक्तत्यज्यते यत्रचतुर्थमियचोपवासस्यसजाएव षष्ठादिकमुपवासद्रयादेरिति

तथा केइक सडासा पूजवो मानता नयी तिहा श्रीभगवतीसूत्र टीकामध्ये एवनिसीइयवति निषितव्य उपवेष्टव्य सदसकभूमिप्रमार्जनादिन्यायेनेत्यर्थ

तथा श्रीनवानगरना सधे मह० अमरचदशेठ जादवजी सा मदन मह० रायचद भ० डोसा मह० मीम मह० माहवीजे प्रमुखे नवानगरथी पृठाव्या तेहनो आगमशाखें उत्तर लीखीइ छे, प्रश्न पुढ्यु जे देवता शय्यामे उपजे ते देवतानो मूलगो शरीर शय्यामे रहे के न रहे ? तेहनो उत्तर जे देवता शय्यामे उपन्या पछी रहे नही देवता देवलोक मध्ये जे कार्य करे ते मूलगे रूपे करे छे तिहा श्रीरायपश्रेणिसूत्रे कहु छे ” तयाणसेसुरीयाभेदेवे तेसिं सरिसावव-

ટાળો ટીકામે ઉપાનતપ વિના વિગયપ્રતિવદ્ધ તે અવાચ  
 નીક છે તે માટે યોગ ઉપાનપનને સૂત્ર મળ્યા કહ્યા છે  
 તથા કોઈક કહેસે જે યતિલિંગે યોગવ્યા વિના સૂત્ર વાચે  
 છે તે કિમ ગાચે છે ? તેહનો ઉત્તર જે યોગવદ્યા વિના  
 જે સૂત્ર ગાચે તેહને અરિહત આગાની વિરાધના છે જો પોતાને  
 ડ્રો કરે તેને કોળ કહે ? પણ જો પોતાને તથા શ્રોતાને  
 લાભના અર્થ હોય તે તો આજ્ઞા પ્રમાણે રૂંતે શ્રીઅનુયોગદ્વાર  
 ટીકાણે અવિધિર્ફરી સૂત્ર વાચે તે પોતે જાનાવરણીયકર્મ ચીકળો  
 કરે છે, અને જે સામળે છે તે દર્શનાવરણીય કર્મ ચીકળો કરે  
 છે તથા સાઠિસો પ્રકરણે કહ્યો

ઉસ્સુત્તભાસગાળ, વોહીનાસોઅણતસસારો ।

પાળચણ્વિ ધીરા, ઉસ્સુત્ત ત ન ભાસતિ ॥ ૧ ॥

ઇમજાણી ઉત્સૂત ન બોલવો તથા જીતવ્યવહારેસર્વનેયોગ-  
 વહીનેજ સિદ્ધાત મળવા ઇહની હુડી તથા હીરપદ્મ તથા વિધિ-  
 પ્રપાપ્રમુખ અનેકગ્રથે અધિકાર છે ઇહા કોઈકવત્નોઅણગાર  
 વેરસ્વામીપ્રમુખનો દષ્ટાત દેહને કુચુક્તિ કરે તે પોતાના આ-  
 ત્માને અહિત કરે છે વત્નોઅણગારપ્રમુખઆગમ વ્યવહારે છે  
 તેહને જીતનો નિર્ધાર નહી, પણ હવણા તો જીતનો વ્યવહાર  
 છે તે માટે યોગવહી સિદ્ધાત વાચે તેપિણ નયપ્રમાણસપ્તમગી  
 નિક્ષેપાતથાદ્રવ્યભાવતથા નિમિત્તઉપાદાન ઉત્સર્ગ અપવાદનાજાણ  
 હુવે તે પ્રશ્નવ્યાકરણમે બોલ કહ્યા તેહનો જાણ હવે ઇ સિ-  
 દ્ધાતનો ઉપદેશ કરે ઇ માર્ગ છે મુખ્યપણે અર્થના કથક  
 આચાર્ય, સૂત્રના દાયક ઉપાધ્યાય ગુણવતને આજ્ઞા છે ત્રીજા

प्रगट छे तेपण तुम्हे जोज्यो तथा विचरता तीर्थकरने फूले  
पूजे एहमे शका आणे तेहनी बुद्धिनो दोष छे, उवत्राइमध्ये  
अप्पेगरयापूयणवत्तीया ए वचन छे ते ए पदनी टीका पूजनपुष्प-  
मालादिना ए अर्थ कह्यो छे, अभयदेवसूरिकृत टीकामध्ये पाठ  
दीसे छे

तीर्थकरसचित्तने अडके नहीं इम कहे तेपण समझता  
नयी केवलीना पगयी तीतरना उचा कुकडाना बचा पारेवाना  
बचा मरे तोपण सपरायकीकिरिया न लागे ए पाठ भगवतीसूत्र-  
मध्ये प्रगट छे ते जोजो तो भक्तो फूल चढावे तेमव्ये स्यो  
दोष छे ? ।

तथा बुचे पाणी पीता अरघी पाणी कलसीयामे रहे ए  
मव्ये समूर्द्धिम उपजवानो तत दीसेतो नयी पत्रवणा टीकाने  
आस्यैइम जणाय छे पिण ए चालकरवो नहींजो

तथा राते तो अपकायजीवनी तमसकाययी वृष्टि थाय  
छे ते अगासे थाए एतो निरधार दीसे छे अने ते वृष्टि में  
बीजा जीव तो जाण्या नयी अने किहाइक ग्रथे अन्यजाति  
मव्ये उपजता पण कह्या छे योगशास्त्र टीकामे ए चरचा लिखी  
छे, ते माटे उपजता पिण जणाय छे, शीतस्पर्शने योगे  
रसीया उपजवानी हा दीसेतो छे पिण घणेकाल गये योनिपलटे  
उपजे परभाते रविकिरण उवडे ते हणाय छे ए जाणवो पिण  
आगमरीते तमसकायिया ठरे छे

तथा आहारकशरीर करे प्रदेशनीछेभागे जे दिशे केव-  
लीने निर्धार ते दिशे नीकले छे, दसमाद्वारनो काइ प्रयोजन  
नयी किहाइ पाठ पण नयी अने मुख्यपणे हृदय प्रमुख आगला

गाणदेवाण अतीयेण्यमठसोद्या निसम्महद्वुटेजाप सणिआउ अ-  
 म्भुठेइ अम्भुठियत्ता उपयापसभाप पुरिच्छिमिह्णेण दारेण नि-  
 ग्गछेइ जेणेउदारे तेणेउत्रागच्छनि हरपअणुप्पदाहिगीरमाणे  
 पुरिखिमिह्णेण तोरणेण अणुप्पविसति" इत्यादि पाठे नवावक्रिय  
 कर्पा विना सर्व पाठ छे ते माटे शय्यामध्ये जोइ देवतानो  
 शरीर न रहे तो शय्या खाली रहे छे, ए पाठ जीवामिगम  
 मव्ये विजयदेवाधिकारे छे तथा भगवतामूत्रे चमरोत्पातअधिकारे  
 सौधम्मेट्रे वज्र मुफ्या पठी श्रीवीरनिआसातना जाणी तेवारे  
 वज्रने लेवा माटे उत्तरवैक्रिय अणकरे पडतो मुफ्यो इहा पण  
 उत्तरवैक्रियनो पाठ नथी तेमाटे देवलोकमध्ये मूलगेरूपेज प्रवर्ते  
 पण उन्पात शय्यामध्ये मूलगेरूप रहे ए पाठ फीहाइ नथी

तथा वीजे प्रश्नेसगमाने देवलोकथी मूलगेशरीरे काढियो छे  
 जेसगमानी देवागनाए इद्र आगल विनती करी जे अम्हने  
 सी आज्ञा छे तेवारे इद्रे कद्यु जे तुम्हे मेरु जावो अने वली  
 पाठा इहा सुखे आवज्यो पिण सगमाने देवलोकमध्ये आण-  
 स्योमा इणेकरी जाणीये छे जे ते मूलगो' शरीर तिहा र्ह्यो  
 हवे तो देवागनाने स्थाने जावो पडे तेमाटे मूलगा शरीरे  
 काढ्यो छे ए कल्पकिरणावलिमध्ये अधिकार छे

तथा केवलीसमुद्घात जे केवलीने छ मासनो शेष आउखो  
 हवे ए अवसरे केवलज्ञान उपजे ते नियमा समुद्घात नियमा  
 करे तेहथी अधिक आउखा वाला केवलीने समुद्घातनी भजना  
 छे करे अथवा न करे ए अधिकारपत्रवणा टीका तथा गुण-  
 स्थानक्रमारोह टीका मध्ये छे ॥ ३ ॥

तथा पुष्प परोवानो पाठ पचासकमध्ये तथा हीरप्रश्न मध्ये



तथा साधुजीने चोथे कर्मग्रथ मध्ये भगवती २५ मे शतके  
 लेइया उ दीसे छे ते माटे तेजससमुद्घाते परने बालवाने तेजो  
 लेइया मूके ते काले कृष्णलेइया पण हवे वीजी पिण हवे  
 जा सीम शासनकामे करे ता सीम प्रशस्त लेइया हवे पछी  
 परिणाम पलटे अप्रशस्तपणे परिणमे तो अप्रशस्त लेइया पिण  
 हवे इम वाखोजी ए प्रश्ननी शाखतो पुस्तकयी जोइ लेजो

नवानगरना श्रावक भणसाली डोसाए प्रश्न पछ्या  
 तेना उत्तर लख्या छे —समवसरणमध्ये फूलनी वृष्टि थाय  
 छे ते उपर साधुजी किम चाले छे तेहनो उत्तर तदुलवेयाली  
 पयन्नानी टीका मध्ये लिख्या छे ते कोइक आचार्य कहे छे  
 जेविचे मारग रहे छे जिम वाडी मध्ये जेम क्यारी करे छे  
 तिम मारग रहे छे पिण ए उत्तर पचागीने लेखे ठहरतो  
 नयी ते वली एहज टीका मध्ये कह्यो छे जे फूलतो सर्वत्र  
 व्यापीने वृष्टि करी छे ते उपर साधु चाले छे तिहा ते टीका  
 मध्ये पूछ्यु छे जे फूलने किलामना उपजे के न उपजे ?  
 तिहा इम उत्तर छे, जे कोइक समवसरणे देवना विकुर्व्या फूल  
 करे से तो अचित्त छे अने समवायागने पाठे सचित्त फूल छे  
 पण देवताने सामर्थ्य वेदना थाती नयी तथा कदापि थाय तो  
 पण साधुजीने प्राणातिपातकी क्रिया न लागे तथा जिन-  
 भक्ते हिंसानो बध न थाय इम जाणवो, गुरु साहमा सूत्र  
 सुण्याना फल उत्तराध्ययनमध्ये कह्यो छे ते श्रीअरिहत  
 विचरता ते गुरुतत्त्वमध्ये छे उपदेशक माटे तथा वली पूछ्यो  
 जे समवसरण उपाडे तेवारे फूलनो किम थाय छे ? तेहनो  
 उत्तर जे फूल सचित्त छे तेतो कमलाय एटले देवता विखेरा

પ્રદેશી નિકલે છે ઇમ અધિકાર છે ઇ અધિકાર ચરિતાનુપદ  
મલ્યે છે અને કર્મગ્રથના આશયી પિણ ઇમ જણાય છે

તથા મહીયપુટ્ટુ ઇ પાટનો અર્થ નદીટાંકામે નયા તે  
નદીટાંકા તો અમ્હ પાસે નયા પળ અનુયોગદ્વાર આવશ્યક  
વૃત્તિમલ્યે ઇ પાટના અર્થ કહ્યા છે તેહયા જાણ્યા છે નદી  
ટાંકા મલ્યે વીજો કોડુ અર્થ ઊરયો નયા સુગમ માટે સુલ્લે  
ઇ રીતે વારજ્યો

તથા અષ્ટાપદના ચૈત્યનો તથા મિત્ર ભરાન્યાનો અધિકાર  
આવશ્યકનિર્ણુક્તિમલ્યે તથા ગ્રાવીસહજારીમલ્યે છે તથા ભગવતી  
ટાંકામલ્યે વિરપરચીયો સિગોયમા ઇ આલાવામેં અધિકાર છે

તથા ચક્રવર્તિને કોડુકને મિથ્યાત્વગુણટાણો છે અને  
ભરતાદિક જીવોને ચોથો છે વલી પરિણામ વધે તો મુનિપણો  
સાતમો તથા ઊઠો ગુણટાણો થાય પળ પાચમો ફરસે નહીં  
ઇ અધિકાર પદવીના લાભના અધિકાર પત્રવળાટાંકાપ્રમુલે તે  
વલી અવસરે સમારવુજી

પલાલ્યાધાનમલ્યે અનતાજીવ ઉપજે તે ઇ પ્રત્યેક છે તેમ  
મલ્યે સાધારણ કિમ ઉપજે તથા” સલ્લોકિંસલયલ્લુ ઉગવમાણોઅ-  
ણત્ત ઉ મળીઓ” ઇહા પહિલા અનતકાય છે તે મલ્યે પછી પ્રત્યેક  
ઉપજે ઇમ પિણ છે તેહનો ઉત્તર જે મનુષ્યનીના શરીરે યોનિ  
મલ્યે અસલ્લ્યાતાસમૂર્છિમનીયોનિલ્લુ છે પિણ અવસરે ગર્ભજ  
જીવ પળ ઉપજે છે તે માટે અન્યની, યોનિપણો થાય છે  
સુગડાગસૂત્રે પૃથવીપ્રમુલ સ્થાવરમલ્યે અપપ્રમુલસ્થાવર તથા  
સમૂર્છિમની યોનિ કહી છેજી

इहा सख्यानो नियम कछो छे पण भव्य अभव्य नियम नयी ते माटे पचागीनी रीते इम जणाय छे पछी तो श्री केवलीना जाण्यामे हुवे ते प्रमाण छेजी तथा समवसरण मव्ये फूलनी वृष्टि याय छे ते सचित्तफूलनी छे श्री यशोविजय उपाध्यायजा प्रतिभाशतकमव्ये पण ए घणो चच्यो छेजी इम सदहवो जे कारणे प्रशस्तमार्ग जे करे ते मव्ये आ स्रव नयी ए मूनी परिपाटी छेजी कोइक प्रगटाक्षरमार्ग तो उत्तराव्ययन मूत्रे मृगी पुत्राव्ययने कछो छे

अपसत्थेहिदारेहि, सवओपिहीयासवो ।

अज्जप्पज्झाणजोगेहि, पसत्थदमसासणो ॥ १ ॥

इत्यादिक अनेकआचारादिसूत्रे घणा पाठ छे ते जोइ लेजो तथा प जानकुसलनो प्रश्न जे सूत्रे द्रव्य छे कछा छे तथा विशेषावश्यक मध्ये पाचज द्रव्य कछाछे तेहनो स्वरूप लिखीये छे जे वस्तुगते विचारता हालनो वस्तुपणो पिंडरूप द्रव्यपणो नयी ते माटे अस्तिकायपणो नयी अस्तिकायपणो बहुप्रदेश मिले बहुपरमाणु मिले थाये ते कालने नयी कोइक कालना रेणु असख्याता माने छे लोकाकाशप्रदेशप्रमाण माने छे पिण ए वात प्रमाण नयी जे रेणुआमान्या अस्तिकायपणो थाय कदापि रेणुआने मित्रद्रव्य मानीये तो कालद्रव्य असख्याता थाये अने सूत्रे कालद्रव्य अनतो मान्यो छे ते माटे रेणुआनो मानवो तो सभवे नहां तथा सूत्र परपाटीये श्रीजीवामिगमसूत्रे पण इम दिसे छे " जे किम-यभतेकालोत्तिबुच्चइ गोयमा जीवाचेव अजीवाचेव" एरले जीव

नाखे छे, जने प्रभु विहार पश्री पण विरोरां नाखे छे तथा फल समोसरणमाहे सचित्तनी मुग्घना छे इम जाणजोर्जी तथा तीजे प्रन्न पूज्यो जे प्रभुनी मानाए सरोवर दीठो ते किह्वा छे ते कल्पना टीकामव्ये तथा जवूदापफलात्तिनी अपेक्षाबे तो चुल्हेमजत उपर पद्मद्रहते जणाय छेजी. जेम कमलप्रमाण ए रीतनो सर्व वर्णयो छेजी. तथा प्राचमे प्रभे जे व्यवहार रासी मव्ये जेटला जाय मोक्ष जाय तेटला अन्ववहारीनिगो-दमार्या नीकले ए पाठ छे तेहना उत्तर माटे लिखाये छे जे अन्ववहारीनिगोदमव्ये पिण भव्य तथा अभव्य वे जीव छे व्यवहारराशिमव्ये पिण भव्य अभव्य वे जातिना जीव छे ते मव्ये भुवनभानुकेवली चरित्रे भवभायनीटीका तथा उपमि-तिभव प्रपचामव्ये अनादिनिगोदयी अभव्य नीकली व्यवहार-राशिमव्ये आवे छे ए प्रगट अक्षर छे ते माटे इहा पूउस्ये जे भव्यजीव तो व्यवहारराशिमार्या अवसरे मोक्ष जाय छे तिणे वधे नही पिण अभव्य जे व्यवहारीया थया ते तो व्यवहार राशिमव्ये उता पामीये तेहनो उत्तर जे घणो काल तो भव्य सभे छे छे अने कोइक वेला १० जीव मोक्ष जाय तेवारे ध्यानमव्ये राशिनिगोदयी १० जीव नीकले ९ भव्य १ अभव्य न निकले छे केइक कहस्ये जे ए रीते करता व्यवहार राशि वधती जणाय छे तेहनो उत्तर जे मूल तो इम वधे नही कदापि कोइ कला उपजे तो पिण अल्प माटे गिण्या नयी तथा ॥

सिज्जतिजित्तीयाकिर, गुणयोगेणविवहाररासीओ ।

एइतितित्तियाकिर, अणाइनिगोअरासीओ ॥ १ ॥

इम पाठ छे पण मूलद्रव्यानुयोगमव्ये नजर देता तथा जीवाभिगम अनुयोगद्वारमूत्र तथा पत्रवणा भगवतीना अल्प बहुत्व विचारता कालद्रव्य जूदो नयी पचास्तिकायनी वर्तना छे, तिहा कोइ पूछस्ये जे जेवारे पचास्तिकायनीवर्तनाने काल मानीये तेवारे कालने एकलो अरूपीपणोटहरे नहि जे पुद्रलास्तिकायनी वर्तना रूपी जोईये, तेहनो उत्तर जे पुद्रलनी वर्तना मुख्यपणे रूपी सभवे पिण वर्तना ते पिंड नहीं वर्णादिक तथा अगुरुलघुनो पलटण उत्पादव्ययरूप छे ते व्यक्तअवस्था याये नहीं तेमाटे अरूपीज बहु यतिये गिण्यो तथा कोइक पूछस्ये जे काल जेवारे जीवनी वर्तना गवेषीये तेवारे कालने चेतनपणो आवस्ये तेने कहे छे जे जेवारे पर्यास्तिकनयनी भेद व्याख्या करे तेवारे चारित्रादिक गुणमव्ये ज्ञानगुणनी नास्ति कहीइ जे सर्वगुणस्वरूपे अस्ति छे पररूपे नास्ति छे तो वर्तनापर्यायने चेतनपणो किम कहेवाये ? तेमाटे कालद्रव्यने पिण अचेतनज कह्यो, इम कालने उपचारे निक्षेपा द्रव्यादिक च्यार गुण पर्याय सर्व कहेवा, पिण मूलव्याख्याये काल ते पचास्तिकायनी वर्तना छे सूत्र तथा निर्युक्ति तथा भाष्यकार सर्व गीतार्थ तथा गणवर सर्वनी एहिज व्याख्या छेजी, तथा पुछे जे द्रव्य उ छे के पाच छे ? ते जीवाभिगमसूने तो द्रव्य पाच कह्या छे अने भगवतीप्रमुखमध्ये द्रव्य ६ कह्या छे, पिण सूत्रना वचन विरोधी हुवेज नहीं तेहनो परमार्थ वारवो पण जिहा उत्तराव्ययन भगवती तथा टीकाप्रमुख सर्वत्र जिहा ६ द्रव्य एहवो पाठ तिहा नियमापचास्तिकायनी वर्तना तेहने उपचारे मित्र व्याख्याये मित्र द्रव्य कह्यो ते सर्वत्र उपचार जाणज्यो तथा कोइक कहेस्ये जे एहनी साख किहा छे तेहने कहीये

अजीवनी वर्तनात्प्राण सङ्ग पपाय वर्तना ते काल जाणवो  
 ए सूत्र वचन ते तथा उत्तराध्ययो २८ अत्रयने" अननाणिय  
 दवाणिकालो पुग्गलजनयो" ए पाठ ते ए पाठे कालद्रव्य अ-  
 नता कथा ते जीवअजीवद्रव्य अननानी जुदी जुदी वर्तना  
 तेहने कालद्रव्य मानाने अनतद्रव्य कथा ते ते माटे काल-  
 द्रव्य उठो वस्तुगते जूदो नयी अने पर्याय ते वस्तुनो आरोप  
 करीये तो एहने द्रव्यपणे कहीये जिम वट्टद्रव्य ते वट्ट ते  
 ते पुद्गलनो नव ते ते विभाग पर्याय ते ते पिण उपचारे  
 द्रव्य कहीइ छे तिम ए पिण जाणवो तथा कोइ पूछे जे  
 काल ए उठो ते के अउठो ते ? उत्तर-जे कालवर्तनारूप पर्याय  
 पचास्तिकायमव्ये छतो छे, पण पचास्तिकायथी भिन्न नथी  
 ते माटे इम कहेवो अने जे भगवतीसूत्रे उठो कालद्रव्य  
 छे ते अर्द्धद्वीपप्रमाण ज्योतिश्चक्रने वारे जे व्यवहारकाल तेहने  
 कालपणे मानाने ए वचन कथो ते ते माटे व्यवहारनये छ  
 कहीजे, निश्चयनये तो पचास्तिकाय ते तथा तत्त्वार्थटीका  
 मध्ये कथु छे जे द्रव्यास्तिकायनयन गवेपीये तो पर्यायास्तिकायने  
 द्रव्य मानीये तेवारे कालद्रव्य कहीये, तेमाटे ए श्रद्धा राखवी  
 तथा सिद्धातना आलावा तथा द्रव्यानुयोगनीपरिणति सर्व इम  
 ठरे छे तथा धर्मसग्रहणीमध्ये बे मत कथा छे तत्त्वार्थकारे  
 पिण" सोऽनतसमय" ए सूत्रसद्वहवो ते काल छ द्रव्य अनतसमय  
 रूप छे इम कथो तथा श्री हेमाचार्ये पिण कालना रेणुक कथा  
 ते पाठ जो जो ॥

लोकाग्रदेशस्याभिन्ना कालाणवस्तुयेभावानां ।  
 परिवर्त्तापिमुख्य. कालसउच्यते ॥ १ ॥ (?)

ऋतुस्वभावादि बोल्या ए सर्व व्यवहारनय तथा आदित्यादिगति परिछित्तिरूप वायकाल लेइने बोल्या छे, ते परमार्थे नयी ते श्रीभगवतीसूत्रे प्रश्न छे जे केटलीक वनस्पति उष्णकाले फले ते स्वामि फीम छे ? तेवारे श्रीर्वातराग कहे छे ए जीवने उष्ण फरसी पुद्गलनो आहार घणो लेवराय छे तेमाटे उनाले फले छे तिहा जीवनो उदीतकर्मकारण छे, पिण एकात कालनी मुरयता नयी वली काल अपरिणामी अकर्ताद्रव्य छे ते स्याने परमव्ये परिणमे स्याने परकार्य करे, तेमाटे वृक्षादिकनो जीव पुद्गलद्रव्य छे तेमाटे ते फलजीव पुद्गल मध्ये एहनी वर्तना मान्याज सर्व समो पडे, पिण मित्रद्रव्य मान्या कोइ समो पडे नहीं, वली कोइक पूउस्ये जे वर्मास्तिकायपण अपरिणामी अक्रिय अकर्ताद्रव्य छे ते किम चलणसहायी थाय छे ? तेहनो उत्तर जे गति परिणामी जीवद्रव्य तथा पुद्गल द्रव्यने सहायी थाय छे पिण ते वर्मास्तिकायरूप छे अने काल ते अस्तिकाय नयी तथा भावप्रकरणे “कालोऽतिकलन काल एव द्विधा वर्तना लक्षण ? समयावलिकादिलक्षणश्च अतस्तत्रवर्ततेभवति भावास्तेनतेन रूपेण तान् प्रतियोजकत्व वर्तना सा लक्षणलिंगऽस्येतिवर्तना लक्षण अय समस्तद्रव्यक्षेत्रभावव्यापीति” ? एहनो अर्थ जेवते थाये ते रूपे प्रतियोगी सहकारीपणे ते वर्तना कहीये, ते वर्तमानज छे लक्षण जेहनो ते वर्तनालक्षण काल कहीये द्रव्य वर्मादिक क्षेत्र सर्वना प्रदेशभाव सर्व द्रव्यना गुणपर्याय ते मध्ये व्यापकपणे छे एउले पचास्तिकायनी वर्तना तेहज निश्चयकाल कह्यो, ए मध्ये जूदा कालद्रव्यनी ना यई बीजो समयावलिकालक्षण ते व्यवहारकाल जाणज्यो ते समय वर्तमान एक उतो मित्रद्रव्य मानीये

जे जीवामिगम तथा महाभाग्यकी प्रती सात कोनी मागो जे ? वली पृथगे जे पृष्ठे टेहागे ६ द्रव्य रूपा छे तो पाच किम मनाय ? तेहने कहीये जे जीवामिगम तथा भाग्यकारे ते ए अक्षर सर्व जाण्या हता तेह्या अजाण्या नहीं अनयोगद्वारे अनादिसिद्ध रूपा ते पण ए उपयोगेज कद्या छे, तथा वाच्यवाचकभावे कालनो नियम जूदो क्यो छे तेमाटे द्रव्य जूदो वाच्यमा सभप्रो घटे छे, तेहने उत्तर सरतत्त्वे वाचक नाम जूदो क्यो छे, तेहनो वाच्यज्ञान चारित्रादिक पण छे तेमाटे सरपदार्य क्यो पण सर ते जीवनी परिणति छे पण पिंडपणे जीवनी सर जूदो नहीं तथा वली कहेस्ये जे सवरने द्रव्य क्यो नहीं पण द्रव्यकी प्राणातिपातादिक कद्या तथा प्राणातिपातादिविरमण पण द्रव्यभाव आगम मव्ये कद्या, तेमाटे ए सर्वकी काई द्रव्य जूदो थाय नहीं तथा कोइक पूछस्ये जे ए ५ समान छठो द्रव्य क्यो, तिहा उत्तर जे पचमहाव्रत भेलो छठो रानीभोजनव्रत क्यो, पिण अपेक्षाए क्यो, तेमाटे रानीभोजन काइ मूलगुण महाव्रतरूप न थाये सर्व गुण, सर्वपर्याय, सर्व परिणाम, सर्ववाच्यवाचकभाव, सयुक्त छे तेमाटे मित्रपिंडी द्रव्यपणो न पामे अने पर्यायने द्रव्य कहीये एहवे नये पिण जैन बोले, ए दीक्षा लेवा माटे कालने छठो द्रव्य क्यो ते रीते कहीये, यावत्मात्र अमिलाप्यभाव होवे ते वाच्यवाचकभावसयुक्तज होवे, तेमाटे द्रव्यपणो न पामे, जिम धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकायनो देशपणो तथा पुद्गलास्तिकायनो देशपणो कदापि खधयी जूदो नहीं, अने अजीवना भेद करता जूदो क्यो, तेमाटे ते रीते एपण मानज्यो प्रवचनसारोद्वारमव्ये तथा पचकारणमध्ये जे वसतादिकना



ऋतुस्वभावादि बोल्या ए सर्व व्यवहारनय तथा आदित्यादिगति परिछित्तिरूप बाराकाल लेइने बोल्या छे, ते परमार्थे नयी ते श्रीभगवतीसूत्रे प्रश्न छे जे केटलीक वनस्पति उष्णकाले फले ते स्वामि कीम छे ? तेवारे श्रीवीतराग कहे छे ए जीवने उष्ण फरसी पुद्गलनो आहार घणो लेवराय छे तेमाटे उनाले फले छे तिहा जीवनो उदीतकर्मकारण छे, पिण एकात कालनी मुख्यता नयी वली काल अपरिणामी अकर्त्ताद्रव्य छे ते स्याने परमव्ये परिणमे स्याने परकार्य करे, तेमाटे वृक्षादिकनो जीव पुद्गलद्रव्य छे तेमाटे ते फलजीव पुद्गल मध्ये एहनी वर्तना मान्याज सर्व समो पडे, पिण भिन्नद्रव्य मान्या कोइ समो पडे नहीं, वली कोइक पृथस्ये जे वर्मास्तिकायपण अपरिणामी अक्रिय अकर्त्ताद्रव्य छे ते किम चलणसहायी थाय छे ? तेहनो उत्तर जे गति परिणामी जीवद्रव्य तथा पुद्गल द्रव्यने सहायी थाय छे पिण ते वर्मास्तिकायरूप छे अने काल ते अस्तिकाय नयी तथा भाषप्रकरणे “कालोऽतिकलन काल एष द्विधा वर्तना लक्षण ? समयावलिकादिलक्षणश्च अतस्त-  
 चवर्त्ततेभवति भावास्तेनतेन रूपेण तान् प्रतियोजकत्व वर्तना सा लक्षणलिङ्गस्येतिवर्तना लक्षण अय समस्तद्रव्यक्षेत्रभावव्यापीति ” ? एहनो अर्थ जेवते थाये ते रूपे प्रतियोगी सहकारीपणे ते वर्तना कहीये, ते वर्तमानज छे लक्षण जेहनो ते वर्तनालक्षण काल कहीये द्रव्य वर्मादिक क्षेत्र सर्वना प्रदेशभाव सर्व द्रव्यना गुणपर्याय ते मध्ये व्यापकपणे छे एटले पचास्तिकायनी वर्तना तेहज निश्चयकाल कह्यो, ए मध्ये जूदा कालद्रव्यनी ना यई बीजो समयावलिकालक्षण ते व्यवहारकाल जाणज्यो ते समय वर्तमान एक उतो भिन्नद्रव्य मानीये

तो ते समयनो क्षेत्र किंवा मानीये, जिहा मानीये तिहा एक प्रदेश मध्ये रगो जोडये तेमार सर्वलोक अलोक मये उत्पादययनी वर्तना किम वाये ? तेमाटे पचास्त्रिकायनी वर्तना ते कालज मान्यो एग्रे कही नयर्जाणना एण्ण कालनोत्पन्न स्थूल छे नयर्जाणवर्म समयनो छे अने कालनी वर्तना सर्वद्रव्य मध्ये छे ते पुद्गलपरमाणु तो नयर्जाण यतो नथा तेमार ए स्पृशहारकालनी अपेक्षाए जाणवो, तथा नयर्जाणता पुद्गलपरमाणुनोपर्याय छे इम लिख्यो ते ए परमाणु तो एकलानो पर्याय छे नही, खवनो उत्पन्न पयाय छे, जिम शब्दपणो छे तिम छे, अत्र तेहने एम छे तेमाटे वर्तमान समय एक छे ते सर्व जीव पुद्गलादिकमें वर्ते छे, ते माटे कालद्रव्य अनतो कहेवाय छे, जो अणुकादिक कोइ काल मानीये तो “जीवापुग्गलसमवा” ए गाथा द्रव्याणुयोगना अल्पबहुत्वनी भगवती टीकामध्ये छे तथा पन्नपणामुत्रे “एसिणभतेतीणपुग्गलाण” इत्यादि प्रश्नसूत्रे उत्तर कह्यो छे “सबथोवार्जावा पुग्गलाअणतगुणा अद्वासमया अणतगुणा सच्चदत्ताविसेसाहीया” ए पाठ छे, तेह जीव अनता, तेहथी पुद्गल अनतगुणा, तेहथी कालसमयअनतगुणा, ते सर्वथी काल अनतगुणो, द्रव्यवर्तना गवेखीये तोज पूरवे ( पालवे ) जो काल भिन्नद्रव्य मानीये तो पूरवे जे कारणे जे एक आकाशप्रदेशे अनताकाल द्रव्य मानीये तो पूरवे जे कारणे जे एक आकाशप्रदेशे अनताकाल द्रव्य मानीये तो अस्तिकायपणो वर्ड ( टळी ) जाये, अने एक आकाशप्रदेशे एकएक काल द्रव्य मानीये तो असख्यातो द्रव्य थाय, पण अनतो न थाय तेवारे सूत्रनो अल्पबहुत्व किम मिले ? तेमाटे जीव तथा पुद्गल वर्म अवर्म आकाशनीवर्तना मान्याज

पूखे ए सूत्रनो पण एहज आशय छे, जिहा “उदघापन्नता” इत्यादिक सूत्र पण व्यवहारकालने उपचार मानां उ कथा ए आशयसहित छे, तेमाटे एहि आशय सिद्धातकारनो छे सिद्धातवादी पण इमज कहे छे इहा ज़दो पोतानी मतिना दोषे समझण बिना सिद्धातवादीपणो ज़दो माने तेहने ससार वधे, अने सिद्धातअनुयायी सिद्धातवादी श्रीजिनभद्रगणि क्षमात्रमणयी वधतो वीजो कोइ नथी, सिद्धातनी खरी आज्ञा प्रमाणजीव छे तेहथी वधतो हीनो चित्तमा विकल्प करे तेहने ससार वधे इम वारज्यो, एटले आवलिकादि व्यवहारकाल ते सर्व लौकिक छे परमार्थे पचास्तिकायर्नावर्त्तनाने काल कहीये छे पण ज़दो नथी, अने कालद्रव्य कह्यो ते उपचारे छे, तिहा बली प्रछे जे उपचार वस्तुनी छती राखीने कह्यो छे के वस्तु पाचज छे ? तेहनो उत्तर जे वस्तुपणे मूलसूत्रने प्रमाण पाचज वस्तु छे छठो वस्तुपणे नथी, अने पचास्तिकायमव्ये स्वकालरूप एक स्वभावपर्याय छे, तेहने काल मान्यो छे ते स्वकालरूप पर्याय ते पचास्तिकायमव्ये छतो छे तेमाटे छतनो उपचार छे इहा कोइ पूछस्ये जे छतो तेहने उपचार छे किम कहीये ? तेहनो उत्तर जे, जिम छे तेहथी वधती अज्ञस्या कहेवी ते उपचार, जे वर्त्तना ते पर्याय स्वभाव हतो तेहने द्रव्यपणो कहेवो ते उपचार छे एटले द्रव्यपणो अछतो छे, इम वारखो, तथा अजीवना १४ भेदमध्ये तथा ५६० भेदमध्ये अछतो होवे तो किम गण्यो ? तेहनो उत्तर जे वर्मास्तिकायदेश ? अवर्मास्तिकायदेश २ ए भेद अछता छे, पण ए भेद मव्ये गण्या छे तेमाटे ए भेद सर्व वस्तुगति तथा उपचार ए वे मेर्लीनेज प्ररूप्या छे, पाचसेसाठ भेदमध्ये

ઘીજા પળ ઉપચારી ભેદ ઘણા છે, સિદ્ધાંતનો ભાગ્યકારનો  
 આશય પૂરુજ છે, અને વ્યાર્યાભેદ છે નવા મોડે કહેસ્યે  
 જે કોઈક ગીતાર્ય પોતાનો આશય પોમે, તે તો જે પોપ્યાનો  
 આશય પોમે તે ગીતાર્ય નવા ગીતાર્યને તો સિદ્ધાંતના સર્વ  
 આલાપા અમાધક રહે તે અર્થને મુરત્ય કહે ઝીજા કોઈક  
 ગ્રથે અર્થ કઢ્યા હુમે તો તે કહે પળ તેપળે કહે ઇ રીત છે  
 ઇહા પચાસ્તિકાય મલ્યે, સ્વમાલ તેહજ કાલ છે, પળ જુદો  
 નયો, ઉત્પાદ વ્યય તે સર્વ દ્રવ્યમા સમયે સમયે યાય છે તે  
 સમય જુદો માનીયે તેમારે સિદ્ધનો તયા વર્માસ્તિકાય અધર્મા-  
 સ્તિકાયમા આકાશમા કાલ મિત્ર દ્રવ્યથી ઉત્પાદવ્યય માનત્રો  
 પહે તેમારે સિદ્ધાદિકનો ઉત્પાદવ્યય પરઅપેક્ષાયે ( ધાય ) તે  
 પરઅપેક્ષાયે ઉત્પાદવ્યય માનતા ઉત્પાદવ્યય ધ્રુવતા તે દ્રવ્યનો  
 લક્ષણ ( પરાપેક્ષા ધાય ) જે લક્ષણ હોવે તે સ્વરૂપેજ હોવે  
 પરઅપેક્ષાયે ધાય નહીં ( સ્વસ્વરૂપેણલક્ષણનપરસ્વરૂપેણલક્ષણ )  
 તયા તુલ્લે સૂનની સાક્ષી માર્ગી તે જીવામિગમમલ્યે “કિમિદભ-  
 તેઅદ્વાસમણ્તિબુચ્ચેઈ ગો૦ જીવાચેવ અજીવાચેવ ” ઇ પદમલ્યે  
 ઇ આવ્યુ છે તયા જિહા છ દ્રવ્ય કહ્યા તિહા લગતોજ  
 પૂઢ્યો જે “ કતિણભતે અત્થિકાયાપન્નત્તા ? ગો૦ પચઅત્થિકાયા  
 પન્નત્તા ” ઇ પદમલ્યે અસ્તિ તે છતાનો નામ છે, તેટલા છતા  
 પિંડપળે કેટલા છે ? તો કહ્યુ જે પાચ છે ઇટલે ઇથી  
 વધતો અક્ષર સ્યો માગો છો ? તયા ઉપચાર હસ્યે તો કિવારે  
 કૈલોક થઈ જસ્યે, સિદ્ધમે સસારીપળો ધાસ્યે તે ઇહવી કલ્પ-  
 ના સ્યાને કરીયે ? જે ઘળીયે તયા પૂર્વાચાર્યે જે ઉપચાર  
 કર્યો તે કરીયે પળ નવા ન કલ્પીયે અને ઉપચાર  
 કરીયે તે પળ કોઈક કાર્ય માટે કરીયે . . . . . સિદ્ધ

कह्या ते उपचारे, इम अनेक उपचार छे ते केटला छिखीये, असत्स्थापनादिक ए सर्व उपचार छे, पण कार्य माटे छे तथा कोइक चार्पा बोलाय ते मध्ये कोइ जीवने लाभ नहींजी तेमाटे एटलो बोलवानो मन करीये, पण खीचाताण मध्ये न पेसीये तथा श्रीभगवतीमूरमध्ये वर्मास्तिकायना नामपर्याय कह्या छे, तिहा वर्मास्तिकाय कहीये प्राणातिपातसवर कहीये इम अढारसवर ते वर्मास्तिकायना नाम कह्या तथा अढार पापस्थानने अवर्मास्तिकायना नाम कह्या ते पण सर्व उपचारे कह्यो छे तेमाटे एहवा उपचार सूने अनेक छे तेमाटे पचास्तिकायनी वर्तना तेहजने काल कह्यो छे अन श्रीतीर्थकरदेवे पण छ द्रव्य कह्या, तेपण आशय मध्ये एहज उपयोगे कह्या छे बीजो कोइये नवे ए आशय न कह्यो “अणागयद्वार्जायद्वा जीवार्जावइ” इत्यादिक जोज्यो तथा श्रीजिनाशयरी भिन्न कह्यो नथी वीरमुखयी सुधर्मास्वामीए अर्थ इमहीज वार्यो हतो ते परपराये चउदप्रवर्धारी भद्रबाहु स्वामी निर्युक्ति मध्ये पण एहज जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण तेपण दशपूर्ववर छे ए वात गणवरसार्धशतक गणधरदोढसाव्रत्ति तथा कल्पचूर्णि मध्ये सुणी छे व्याख्यात छे तेह सुखे करीये पण आशयमूलगो राखीने करीये इम वारवो तेमाटे ए व्याख्या ए रीतेज करज्यो जे वस्तुपिडपणे पाच छे, अने पाचना स्वकालपर्यायने कालद्रव्य कही बोलाव्यो छे, ते आरोपेज छे ए आरोप ते जिम निश्चयअर्यावग्रह एक समयनो छे अने व्यवहारे अर्यावग्रह असख्यात समयी लोकने बोववा माटे मान्यो, तिम मानज्यो तथा वली जे प्रमाणप्रत्यक्ष मध्ये वस्तुगते केवलज्ञान ते सर्व प्रत्यक्ष मान्यो अवधिमन,

पर्यन्ते देशप्रत्यक्ष मान्यो रशी लोहप्रहार उपहार करीने पोडा उद्विगताधिकर्षणी जे ज्ञान ययो तेहने पण व्यग्रहारे प्रत्यक्ष मान्यो ए वे रीत नदीनूनादिक मये छे तेपण कारणे छे तिम कालना वे व्याख्या कारणे छे. पण मूल व्याख्याने निजरारखीने सर्व व्याख्या करीये ए रीते कल्याण छे तथा विशेषाप्रदयेके “नतुपदयतिक्षेत्र कालाप्रसां तयोरमूर्तत्वाद्दधिश्र-मूर्तविषयत्वात्, र्त्तनानुरूपतुकालपदयेत्तद्द्रव्यपर्यायत्वात्, तस्येति” इहा पुद्गलनीवर्तनानी अपेक्षायैकालने रूपीगणेरयो छे तथा गार्वासहजारीमध्ये तथा “कालस्यवर्तनादिरूपत्वात्, द्रव्यपर्याय-त्वात्, द्रव्योपक्रमणोपचारात्, ” श्रीभगवतीमूत्रे १३ मे शतके उदेसे ४ वे कालस्पर्शनाधिकारे नत्यिङ्केणपि ए अधिकारे टीकामध्ये पुद्गलादिकनी वर्तना तेहिज काल गणेष्यो छे राधन-पुरयो प वीरचद गणीण पूज्यु तेहनो पडुत्तरजे वेक्रियशरीर करे तेवारे, अथवा आहारकशरीर करे तेवारे सर्वप्रदेश आहा-रकशरीर मध्ये छे पण औदारिक मध्ये नयी तेहनो उत्तर जे आहारकवेक्रियलब्धिकाले ठाणागवृत्ते ऋण शरीर छे तथा कर्मग्रथ कम्मपयडीमध्ये पण उत्तरवैक्रिय तथा आहारक करता उदयस्थानक नामकर्मना कइया छे “आहारक सयताना उ-दयस्थानानि भवति तत्रथापचविंशति सप्तविंशति अष्टाविंशति एकोनविंशत् ” “ तत्र आहारकमाहारकोपागसमचतुरस्रसस्थान उपघातप्रत्येकइति पचप्रकृतय प्रागुक्तायामनुष्यगतिप्रायोग्याया मेकविंशतौ प्रक्षिप्यते मनुष्यानुपूर्वीचापनीयते ततोजातापच-विंशति ” रित्यादिपाठे, आहारकवालाने औदारिकोदय दीसतो नयी वली जो एहने औदारिकउदय होवे तो सद्यणनो पण उदय जोइये तेमाटे ते आहारकशरीरकाले औदारिक उदय

दीसतो नयी तथा कोइ पउस्येजे औदारिकशरीर छतो देशनादेतो दीसे छे ते एहनो जाशय छे, जे आहारकनो अत मुहूर्त्त नान्हो जणाय छे ते लोकने खबर पडे नर्हा तथा जो ए शरीर मध्ये आत्मप्रदेश छे तेपण तैजसकार्मणशरीरी छे, पण औदारिकावगाही नयी अने जो ए शरीरे आत्मप्रदेश सर्वथा न मानीए तो आहारकशरीरनो सकेलो सभवे नहीं तथा तिहा उत्तर सामलताज आहारक ट्ठी जाय छे अने आत्मप्रदेशो औदारिकशरीरमध्ये समाय छे तथा कोइक पउस्ये जे मूलगे शरीरयी जास्ये आहारक जाइ तां सीम आत्मप्रदेशनी श्रेणि छे ते तैजसकार्मणवत छे, जे समी अवगाहनापन्नवणा सूत्रे पाचराजनी कही छे कार्मणनी अवगाहना १४ राजनी कही छे उत्कृष्टयी जघन्य अगुलने असख्यातमे भागे कही छे, अने आहारककरता शरीरादि पर्याप्ति नवी करवी पडेछे ते कर्मग्रथटीकामव्ये कह्यु छे “शरीरपर्याप्तापर्याप्तस्यसप्तत्रिंशति ” इत्यादि तथा जे आहारकनी अवगाहनामुड हस्ते छे तेमाटे मध्यप्रदेशे तैजसकार्मण छे इम जाणवु तथा औदारिकशरीरवंत प्रथमयी आहारकपुद्गलग्रहे तेपण औदारिकशरीरयी छेतो नयी, जे औदारिकआहारकवधन नयी तेपण आत्मप्रदेशगत आहारकनामकर्मनी प्रकृति तेपण कार्मणवर्गणारूप जे उदय थइ तेहने उदये आहारकसमुद्घात करे, तेणे प्रदेश बाह्य नीकले ते प्रदेश तैजसकार्मणशरीर छे ते शरीरयी नवा आहारकवर्गणाना पुद्गल आहारे ते सर्वप्रदेशे आहारे ते पछे सर्व प्रदेशे आहारकशरीर छे एकअष्टप्रदेश ते अचलछे तथा श्रेणिगत प्रदेश सर्वने तैजसकार्मण शरीर छे ते पछे आहारकशरीर उदय छे इम जणाय छे, इहा किहा औदारिक उदय मान्यो हवे तेजो प्रगस्तआचार्य वचन

૫ તેજોપ્રદેશોદયરૂપ ગળગો પળ ત્રિપાતી નથી તથા વૈક્રિય શરીરને પળ રૂમાલીજ જાળગો રૂંદા ફાડ પડ્ય જ, ચક્રવર્તિ ભોગકાલે ૬૪ હજારરૂપ રૂ છે તિહા સ્વાસ્ત્ય સાથે ભોગ મૂલ્ગોરૂપ રૂ છે તે મૂલ્ગો ઝાંદારિક શરીર છે ? તિહા રૂમ છે જે ચક્રવર્તિ ૬૪ હજારરૂપ રૂ છે તે યદુરૂપિણી વિદ્યાની પેર ઝાંદારિક શરીરનાજ છે પળ વૈક્રિય નથી તથા શ્રીભગવર્તીમુત્રે “પડાઝોપડસહસ્ત ઘડાઝોવડસહસ્ત” ૫ પાઠે ઘડા ૫૦-માર્થી હજારમય ઘડા કાઢે ૫ પળ વૈક્રિય નથી અવકરીયા ભેદે ઘડામાર્થી ઘડા કાઢે છે તિમ ઝાંદારિક શરીરમાર્થી ઝાંદારિક શરીર કાઢે છે ૫ અક્ષર પળ ઘયાતરે ઢીઠા છે પળ તે ઘય માસે નથી આહારક કર્યાધિકા પૂર્વશરીરમવ્યે આત્મપ્રદેશ છે તે તૈજસકાર્મણશરીરી છે પળ ઝાંદારીક શરીરી નથી અને આહારક કરે તેપળ રૂંદા ૩ વર્ગનાનો કરે છે તથા આહારકશરીરી કરતા ઝાંદારિકમિશ્ર માન્યો છે તે પૂર્વઘ્રહીત ઝાંદારિક પુદ્ગલ જે છે, અને નવા ઘ્રહ્યા જે આહારક પુદ્ગલ તે મેલા યયા માટે મિશ્ર છે પર આહારકથી ઝાંદારિક ઘ્રહણ નથી આહારક મૂકતાકાલે પળ પ્રથમથી ઝાંદારિકપુદ્ગલ તે કાર્મણથી લેવરાડ છે રૂમ જળાય છે, પછે તો આગમ અનત છે તથા તુમ્હે વિષ્ણુકુમાર આશ્રી લિચ્ચુ તે વૈક્રિયશરીર કરતા ઝાંદારિક શરીર તે પળ વૈક્રિય માહેજ સમાળો છે અને તે ઝાંદારિક પુદ્ગલ તે વૈક્રિયને ઉદયમલે વૈક્રિયપળે પરિણમે, પુદ્ગલનો પલટણસ્વભાવ છે તેમાટે જે વૈક્રિયસમુદ્ઘાત કરતા સોલ જાતિ સ્તનના પુદ્ગલ તેહ પલટાવી વૈક્રિયપળે પરિણમાવી લેવે છે, અને જે વૈક્રિયશરીર ઘળા કરે છે તેહને ઝાંદારિક મન્યે જે પ્રદેશ છે-તેહની વે પરિપાટી છેજી મૂલગા શરીર પળ પલટીને



वैक्रिय थयो छे, अने लोक औदारिक जेहवो देखे तेतो शक्ति विशेष छे, जिम इद्र कालिकाचापसे निगोदस्वरूप प्रज्वा आव्या वृद्धद्विजरूप करीने ते शरीर वैक्रिय हतो पण लोके औदारिकपणे दीठो, आचाय पण पछे उपयोग दीधे जाण्यो तिम मनुष्य वैक्रिय करे ते मूल शरीर पण वैक्रिय छे, अने वीजा शरीर तेपण वैक्रिय छे ए वैक्रियसमुद्घातना उत्कृष्ट अवगाहना लाख योजननी छे तेमाटे अने जे लाख योजनयी उपरात छे ते तो मूल शरीरे तथा अतरालवर्ती प्रदेश सर्वमव्ये तैजसकर्मणशरीर छे, समुद्घातगत केवली शरीरपरं पण औदारिकशरीर नथी जे उत्तरवैक्रियकाले औदारिकना उदयनी ना कही छे कर्मग्रथने विषे तेमाटे इहा कोइ कहे जे एकरूपे ३ शरीर कइया छे पण रूपभेदे वैक्रियादिक हवे तेहने उत्तर जे कर्म उदय न हवे ते सर्व प्रदेशेज हवे पण कोइ प्रदेश हवे कोइ प्रदेशे न हवे इम हवे नहीं यद्यपि शुभनामकर्म अशुभनामकर्म तेना “भुवरिसिराइमुह” ए पाठे नामि सीम नामियी हेटले अशुभ इम उदय कइयो छे पर तिहा तत्त्वार्थ टीकाकारे कइयो छे जे नामिपर्यंत शुभनो विपाकोउदय ओ नामिथी हेटल शुभनामकर्मनो प्रदेशोदय छे अशुभनो उदय छे इम जाणवो पण कर्म उदय हवे तेदल योडावणा चीकणा लखानो फेर हवे पण कोइ प्रदेशे न हवे इम न हवे, तेमाटे इम जाणवुजी तथा तुम्हे पूछयु जे मनुष्यगतिमार्गणा तथा तिर्यचगतिमार्गणा मन्थे औदारिकद्विक नरकाद्विक वज्ररूपभनाराचसधयण ए पाच ५ प्रकृति मूलओघे ग्रथनयी तो औदारिकमिश्रकाययोगनी मार्गणाए चोथे गुणठाणे ७५ प्रकृतिनो वध तेमव्ये ए ५ प्रकृति गवेपी ते स्थ? तेहनो उत्तर परपराइ इम

साभल्योछे, मनुष्यगति तिर्यचगति मार्गणामा उत्तरप्रैक्रिय कर ते काले वैक्रिय करता वैक्रियद्विक देवद्विक न राघे पण उत्तरप्रक्रिय काल गवेरयोज नयी उपाधिमृत ते कारणिक छे ते गणेखना नयी, इम जणायो छे, अने जे मनुष्यतिर्यच उत्तरप्रक्रियपणे वर्तमान ते वैक्रिययी वैक्रियद्विक न राघे, तेपारे औदारिकद्विकनरद्विक राघे, अने औदारिक प्रत्ययि प्रथमसजयण पण समकिर्तीपणा माटे राघे, ते जीव वैक्रियशरीर मूकता वली औदारिकशरीरि याता औदारिकमिश्रकाय योगी याइ ते कोइककाल सीम ए पाच प्रकृति राघे ते ए आशय जणाववाने ए पाच गणेखी छे, वैक्रिय मूकता औदारिक मिश्र थाइ ए सिद्धातनो मत छे सभारवाने सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयनो आशय छे, ए अक्षर किहाइ दीठा नयी, परपरामध्ये साभल्यो छे तथा जयसोम पन्थासे कर्मग्रथ विषमपदपर्यायना पत्र १०-१२ कर्या छे ते मध्ये लिख्यो छे तिहा बृहद्वधस्वामित्वटीकानी साख लिखी छे ए पण एकवार जीर्णश्रुतवर पासे धारयो छे पण अक्षर दीठा नयीजी ए प्रश्नपडुत्तर तथा कइआमती शा लावा ए प्रश्न पछयोजे, आत्माना मध्ये आठप्रदेश किम रह्या छे ? अथवा सावरण छे, निरावरण छे ? तेहनो उत्तर आठ प्रदेश छे ते च्यार उपर छे, ने च्यार हेठल छे ते निर्मल छे निरावरण छे तेहनी साख लिखीइ छे मध्यात्मप्रदेशा-ष्टाकस्य न कर्मबध यदुक्त श्रीआचारागटीकाया लोकविजया-ध्ययने प्रथमोदेशकस्यादौ ” तदनेन पचदशविधेनापियोगेना-त्माऽथै प्रदेशान्विहायतप्तभाजनोदकवदुद्धर्त्तमानै सर्वैरेवात्म प्रदेशैरात्मप्रदेशावष्टवाकाशदेशस्थ कार्मणशरीरयोग्य कर्मदलिक यद्वन्नाति तत्प्रयोगकर्मेत्युच्यते” एहवा पाठथी आठ प्रदेशतिरा-

वरण छे सिद्धसमान छे केवलज्ञानादिक अनतगुण निरा-  
 वरण छे, तिहां वळी पृथयो जे आठप्रदेश निरावरण, केवल-  
 ज्ञानमयी छे तो लोकालोक का जाणता नयी ? तिहा उत्तर  
 जे पचास्तिकाय मध्ये जड च्यार अस्तिकाय छे. ते अकर्ता  
 छे, जे सर्वप्रदेशे कार्य भिन्नभिन्नपणे करे छे, अने जीवद्रव्य  
 कर्ता छे ते एक जीवना असख्याता प्रदेश वधा मिलीने  
 जाणवारूप कार्यने करे छे, ते सर्व प्रदेश मिल्या जाणपणो  
 करी शके तेमाटे आठ प्रदेश निरावरणा छे पण केवलज्ञान-  
 मयी, छे पण सर्व पदार्थ जाणी न शके जे आठ निर्मला पण  
 असख्याता सावरण छे तेह प्रदेशे तो केवलज्ञानादिगुण अ-  
 वराणा छे ते प्रवृत्ति करी शकता नयी आठ प्रदेशे सर्व भाव  
 जाणी शके नहां वळी कोइ पृथस्ये जे ए आठ प्रदेश नि-  
 रावरण केम रह्या ? तेहनो उत्तर जे भगवती सूत्रे जे “एअइ  
 वेअइ चर्लई फर्दई से वधई” ते जे प्रदेशचलपणे वते ते वधाये  
 तेमाटे ए आठ प्रदेश निश्चल छे तत्त्वार्थवृत्तौ “क्रियावत्व पर्या-  
 योपयोगिता प्रदेशाष्टकनिश्चलता एवप्रकारा- सति मूयास ” तथा  
 भगवती सूत्रे अनादिअनत सवध कह्यो छे, तिणे ए आठ  
 प्रदेश अचल छे, बीजाः सर्व प्रदेश कटाहगत तेल उकालता  
 जिम तेल उपरनो नीचे आवे छे, नीचायी उपर आवे छे तिम-  
 सर्व प्रदेश चली रह्या छे, प्रदेशने चलवे वीर्यनी चलता छे  
 जेकेइ एकला वीर्यनी चलता, माने ते न घटे, जे द्रव्यनोक्षेत्र  
 जे प्रदेश ते मुक्तीने गुणने अन्यक्षेत्रे जवो घटे नहीं, ए  
 तत्त्वार्थकारनो आशय छे तिहा कम्मपयडीमध्ये वीर्यविभागने  
 अधिकारे आत्मप्रदेशे वीर्यनो तरतमपणो कह्यो छे ते क्षयो-  
 पशमज ए रीते छे, परकोइ प्रदेशनो वीर्यकोइ मध्ये आब्यो

साभल्योछे, मनुष्यगति तिर्यचगति मार्गणामा उत्तरवैक्रिय करे ते काळे वैक्रिय करता वैक्रियद्विक देवद्विक न गाघे पण उत्तरवैक्रिय काल गवेरयोज नयी उपाधिकृत ते कारणिक छे. ते गवेखता नयी, इम जणाव्यो छे, अने जे मनुष्यतिर्यच उत्तरवैक्रियपणे वर्तमान ते वैक्रिययी वैक्रियद्विक न गाघे, तेगारे औदारिकद्विकनरद्विक गाघे, अने औदारिक प्रत्ययि प्रयमसवयण पण समकितीपणा माटे गाघे, ते जीम वैक्रियशरीर मूकता वली औदारिकशरीरी वाता औदारिकमिश्रकाय योगी थाइ ते कोइककाल सीम ए पाच प्रकृति गाघे ते ए आशय जणावजाने ए पाच गवेखी छे, वैक्रिय मूकता औदारिक मिश्र थाइ ए सिद्धातनो मत छे सभारवाने सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयनो आशय छे, ए अक्षर किहाइ दीठा नयी, परपरामध्ये साभल्यो छे तथा जयसोम पन्थासे कर्मग्रय विषमपदपर्यायना पत्र १०-१२ कर्या, छे ते मव्ये छिरयो छे तिहा बृहद्वधस्वासित्वटीकानी साख छिखी छे ए पण एकवार जीर्णश्रुतधर पासे धारयो छे पण अक्षर दीठा नयीजी ए प्रश्नपडुत्तर तथा कडूआमती शा लाधा ए प्रश्न पृच्छयोजे, आत्माना मध्ये आठप्रदेश किम रह्या छे ? अथवा सावरण छे, निरावरणं छे ? तेहनो उत्तर आठ प्रदेश छे ते च्यार उपर छे, ने च्यार हेठल छे ते निर्मल छे निरावरण छे तेहनी साख छिखीइ छे मध्यात्मप्रदेशा-ष्टाकस्य न कर्मबध यदुक्त श्रीआचारागटीकाया लोकविजया-ध्ययने प्रथमोदेशकस्यादौ ” तदनेन पचदशविधेनापियोगेना-त्माऽथै प्रदेशान्विहायतप्तभाजनोदकवदुद्धर्तमानै सर्वैरेवात्म प्रदेशैरात्मप्रदेशावष्टवाकाशदेशस्थ कार्मणशरीरयोग्य कर्मदलिक यद्वन्नाति तत्प्रयोगकर्मेत्युच्यते” एहवा पाठयी आठ प्रदेशनिरा-

न हुवे तो सर्व प्रदेशने इन्द्रियजान वेत्तापणो किम याये ?  
 तेमाटे इम सदहवोनिर्धार ठे इहा इन्द्रियक्षयोपशमना माननो  
 अधिकार ठे, तेह मध्ये युक्ति अनेक उपजे पण नव भेदे  
 वारवा ते सर्व आगम रीते सापेक्ष ठेजी अथवा “ यद्यपि  
 असिलाप्याना भावानामनतभाग एवश्रुतनिवद्रस्तथापिप्रसगत  
 सर्वेऽप्यमिलाप्या श्रुतविषयन जानति इति उच्यते” ए पाठ भग-  
 वती टीका मध्ये आठमे शतके उद्देशे २ ठे सा हरखचद दहा  
 प्रश्न प्रत्यो मक्रमूदावादर्थी जे पुद्गलपरमाणुने विषे वर्णादिक  
 परिणमे ठे ? तेहनो उत्तर “ कारणमेवतदत्यसूक्ष्मनित्यश्चभ-  
 वति परमाणु एकरसवर्णगवाद्भिस्पर्श कार्यलिङ्गीच ” ए तत्त्वार्थ-  
 वृत्तिनो वचन ठे, जे सर्वखवनो अत्य कहेता ठेहलो कारण  
 ठे एउले द्वयणुकादि सर्वखध परमाणुयी नीपजे पण परमाणुनो  
 कोइ कारण नयी ए अनादिअनत शास्वत सिद्धद्रव्य ठे ते  
 सूक्ष्म ठे तेहनो परमार्थ जे एक जीवनो एक प्रदेश, तथा  
 आकाशनो एक प्रदेश तथा परमाणु एक सर्वनी अवगाहना  
 तुल्य ठे पण एक आकाशप्रदेशमध्ये एक जीवना असख्याता  
 अने अनताजीवना अनताप्रदेश मावे, एक प्रदेशे कर्मवर्गणापणे  
 परिणम्या अनता परमाणु समाइ रहे ते माटे आकाशप्रदेशयी  
 आत्मप्रदेश समायवे सूक्ष्म ठे, अने आत्मप्रदेशयी परमाणु समाय  
 वे सूक्ष्म ठे, तेमाटे सर्वथी परमाणु सूक्ष्म ठे, तथा ते परमाणु  
 द्रव्यपणे नित्य ठे ते एक परमाणुमे एकवर्ण, एक रस, वे फरस  
 हवे, ते मन्ये फरस लखो तथा चीकणो, उन्हो तथा ताडो, ए  
 न्यार माहेला वे हवे लुखो उन्हो ए वे अथवा लुखो ताडो  
 ए वे अथवा चीकणो उन्हो ए वे, अथवा चीकणो टाडो ए  
 वे ए रीते हवे तेजे परमाणु श्वेत वर्ण हवे ते विश्रसापदि-

नयी तिहा कोइ एउे जे, कार्याभ्यासे सर्व प्रदेशनो वीर्य मिली कार्य करे छे, ते इहा आत्मानो वक्तापणो सर्व प्रदेश मिल्याज छे ते माटे सर्व प्रदेशनो वीर्य स्वस्व प्रदेशे खो साहाय्य करे छे, पण परक्षेत्रागुण वाय नहीं तथा वली पू-  
 ज्योजे “अम्रखरस्स अणतमो भागो निचुगवाडीयो चिटइ” तेएसू छे ? तेहनो उत्तर जे आत्माने असरयात प्रदेशे अम्रखर कहैता ज्ञानगुण तेहनो अनतमो भाग जेम तेनो अश तथा श्रुतनो अश ते सदा उवाडो छे ते क्षयोपशमी छे, एउे छे ए अनतमोभाग जे उवाडो ययो छे, ते एकेन्द्रिययी माडी पचेन्द्रियपर्यंत वेत्तापणो करे छे वली कोइ पूठस्येजे ए अन-  
 तमोभाग जे उवाडो ते सदा उवाडो ? तेहने उत्तर जे अनतमो भाग उवाडो तेतो वली अयथार्यपरभावानुयायी प्र-  
 वृत्तिकार तो जे मतिज्ञानावरणी बधाणी तेहने उदये अवराय छे, पण जे आत्मानो वीर्यक्षयोपशमी छे ते वली बीजा मतिज्ञानाशने क्षयोपशम करे छे, इम सतति रीते सदा ज्ञान-  
 नो अनतमोभाग प्रतिप्रदेशे क्षयोपशमी उवाडो पामीये छे तेहनी साखश्रीविशेषावश्यकयी लिखीये छीए “ तत्रह्यक्षर शब्देनाविशेषितएवज्ञान अभिप्रेततथापिरूढिवशात् ” तथात्रा-  
 प्यऽक्षर शब्दोवर्णएववर्तते इत्यादि पाठयी जोइ लेज्यो ‘सर्व प्रदेश क्षयोपशम प्रतिपादकसूत्र इत्यादि तथानद्या तदपिवाक्षर द्विधाज्ञान आकारादिवर्णजात च इहा नदीटीकामध्ये अधिकार घणो छे वर्णश्चश्रुत ए विशेषावश्यक वचनयी श्रुतज्ञाननो अनतमो अश गवेख्यो छे ते श्रुतज्ञाननो क्षयोपशम ते सर्व प्रदेशीय हवे ए कम्मपयडी प्रमुखयी जोइ लेज्यो तेमाटे अक्षरनो अनतमोभाग ते सर्व क्षयोपशमी छे जो सर्व प्रदेशे

न हुवे तो सर्व प्रदेशने इन्द्रियजान वेत्तापणो किम याये ?  
 तेमाटे इम सहहवोनिर्धार ठे इहा इन्द्रियक्षयोपशमना माननो  
 अधिकार ठे, तेह मव्ये युक्ति अनेक उपजे पण नव भेदे  
 वारवा ते सर्व आगम रीते सापेक्ष ठेजी अथवा “ यद्यपि  
 अमिलाप्याना भावानामनतभाग एवश्रुतनिवद्वस्तथापिप्रसगत  
 सर्वेऽप्यमिलाप्या श्रुतविषयन जानति इति उच्यते” ए पाठ भग-  
 वती टीका मव्ये आठमे शतके उद्देशे २ ठे सा हरखचद दह्य  
 प्रश्न पूढ्यो मकमूदावादीयो जे पुद्गलपरमाणुने विषे वर्णादिक  
 परिणमे ठे ? तेहनो उत्तर “ कारणमेवतदत्यसूक्ष्मनित्यश्चभ-  
 वति परमाणु एकरसवर्णगंधाद्विस्पर्श कार्यालिंगीच ” ए तत्त्वार्थ-  
 वृत्तिनो वचन ठे, जे सर्वखवनो अत्य कहेता उहेलो कारण  
 ठे एटले द्वयणकादि सर्वखध परमाणुयी नीपजे पण परमाणुनो  
 कोइ कारण नयी ए जनादिअनत शास्वत सिद्धद्रव्य ठे ते  
 सूक्ष्म ठे तेहनो परमार्थ जे एक जीवनो एक प्रदेश, तथा  
 आकाशनो एक प्रदेश तथा परमाणु एक सर्वनी अवगाहना  
 तुल्य ठे पण एक आकाशप्रदेशमध्ये एक जीवना असख्याता  
 अने अनताजीवना अनताप्रदेश भावे, एक प्रदेशे कर्मवर्णणापणे  
 परिणम्या अनता परमाणु समाइ रहे ते माटे आकाशप्रदेशयी  
 आत्मप्रदेश समायवे सूक्ष्म ठे, अने आत्मप्रदेशयी परमाणु समाय  
 वे सूक्ष्म ठे, तेमाटे सर्वयी परमाणु सूक्ष्म ठे, तथा ते परमाणु  
 द्रव्यपणे नित्य ठे ते एक परमाणुमे एकवर्ण, एक रस, वे फरस  
 हवे, ते मये फरस लखो तथा चीकणो, उन्हो तथा ताढो, ए  
 न्यार माहेला वे हवे लुखो उन्हो ए वे अथवा लुखो ताढो  
 ए वे अथवा चीकणो उन्हो ए वे, अथवा चीकणो टाढो ए  
 वे ए रीते हवे तेजे परमाणु श्वेत वर्ण हवे ते विश्रसापरि-

णामेज कालो थयो श्रेतपणानो व्यय कालापणानो उत्पाद,  
 इत्यादिक वारवो, तथा तुम्हे पृथ्यो जे ए परमाणुमें पूरणग-  
 लन ते किम ठे ? तेहनो उत्तर एकरुपरमाणुमें जे वर्णादिक  
 गुण हवे ते एकगुणो हवे ते समयमाते सखगुण थाय अ-  
 थवा असखगुण थाय, अथवा अनतगुण थाय, अथवा अनत-  
 गुणो हवे, ते असखगुण सखगुणा एकगुण यइ जाये कोइक  
 समये वर्ण इम थया, कोइक समे वर्ण ते प्रमाणेज रहे तो  
 गवादिक वधे घटे, कदाकाले वर्णादिक च्यार तेह प्रमाणे ते-  
 हनो तेज रहे पण अगुरुलघुगुणतो एकसमययी बीजे समये  
 षट्गुणहानि अथवा वृद्धिपणे नियमापरिणमे ते पूरणगलनतानि-  
 यमा ठे पण अगुरुलघुनी पूरणगलनतागवेखी नयी वर्णादि-  
 कनी जे गवेखी ठे तथा परमाणुमन्वे एक परमाणु अन्यथी  
 मिलवारूप स्निग्धता ठे तेपण घटेवधे ठे “द्वाभ्याद्वाभ्या अधि-  
 काभ्या सन्नध” ए तत्त्वार्थिनो वचन छे ते रस शब्दे तीखा  
 कडुआ माहिली नयी, तथा फरस माहिलो नथी जे रस मन्वे  
 स्वाद धर्म छे, पण मिलवानो धर्म नथी तथा फरस माहिला  
 स्निग्धता छे तो “रुखस्सरुखेण दुयाहिण्ण” एटले लुखो पर-  
 माणुओ बीजा लुखा परमाणुथी द्विगुण अधिकने मिले ए पाठ  
 न ठरे किम तेमाटे मिलवो कारणरूपज स्निग्धता ते पूरणग-  
 लनगुणनी छे ते पण घटेवधे छे, जे पुराण ते पूरण, घटे ते  
 गलन थयो, तथा एक परमाणु एक लामे अस्तिकाय कहेवाय  
 छे ते स्यामाटे जे अन्य परमाणुथी मिलाय तेहनो कारण पूरण  
 गलननी आद्रता ते परमाणुमन्वे छे तेमाटे अस्तिकायना छे  
 जे अगुरु ; सर्व द्रव्यमा छे तेमाटे ते-  
 हनो पूरण ; वर्णादिक ४ नी तथा



पूरणगलननी जे हानिगद्धि ते पूरणगलनपणे लेवी ए रीते ते वळी पुद्गलद्रव्य ठे, तेपण नित्यादिक अनतस्वभावी ठे, अनतगुणपर्यायी ठे, सदाकाल ठे कडकमतीगच्छे सा लाद्दा कृत प्रश्नमे वीरस्वामीनो जीव सातमीनरकथकी सिद्धपणे उपन्यो ते किम ? तेहनो उत्तर “सप्तम्या उद्भूत तिर्यच्येव उत्पद्यते” प्रायोमत्स्येण तथा श्रीविशेषावदयकमध्ये “सत्तममहिनेरईया ते उववाउ अणतरुवटा नयपावेड्मणुस” इतिवचनात् तिरिजचमव्येउपजेमत्स्यतोऽनाइनियामकनही तथा सिद्धर्था नरके गये पण सर्वांसिद्ध नरके जाये ए नियम नयी उक्तंच “वालादाढीपरकीहवति नरगागयाउ अड्कूराजति पुणोनिरणुसुमहुल्लेण न उण नियमो ” ते माटे नियम नयी मनुष्य मरी चक्रवर्ति यया ते किम घटे ? तथाच कल्पटीकायासमयसुदरोपाव्याये “सुरनेरुणहिविहवतिहरि अरिहचक्किप्रलदेवाइत्युक्तत्वात्कथमनुष्योमृत्वाचक्रवर्तिर्जात ” तनोत्तर “यथास्मिन्क्षेत्रेदशाश्रयाणिजातानि तथा तस्मिन्क्षेत्रेइदमाश्चर्यमव्येगणितमस्ति पुनस्तत्रनागकुमारतस्तीर्थकरोजातोस्तिइद विस्तारार्थिनादेवभद्रकृतवीरचरित्रद्रष्टव्य ” तथा स्त्रीपद्यानुत्तरविमानआश्री पूज्यु तेहनो उत्तर जे “श्रीनेमिनाथस्य सप्तमेभवे स्वयत्ररा यशोमती भार्या, तथा द्वावपि अपराजिते-महाविमानेदेवत्वेनोत्पन्नौ” इति भवभावनाटीकाया तथा स्त्रीने वज्रऋषभनाराचसहननअस्ति “तत्राक्षराणिपचसग्रह कम्मपयडीग्रथे नामकर्मेदयभगाधिकारमनुष्यस्त्रीषुषट्सहनन तस्यभगकाकृता, दिगवराभ्नायेपि गोमट्टसारे एवमेववाक्य च मणुस्सणीसु छसपयणा इतिवाक्यात्, तथादिग्पटीयनिभगयायोनिमतीस्त्रीक्षपकश्रेणिस्वरूप तत्रप्रथमनपुसकवेदसत्ताक्षय पश्चात्पुरुषवेदसत्ताक्षय उदितवेदस्यप्रातेक्षतिरितिनीति ” दडकने अधिकारे सक्षेप विस्तर व्याख्या

दिखाडमाने अर्थे ए कथन करयो छे रावनपुरी आविका  
 आणदनाईकृत प्रश्नोत्तराणिपुलाकचारिनायाने श्रुत जवन्य नवमा  
 पूर्वना तीनअस्तु अकृष्टे नवपूर्व पुरा श्रीभगवती २५ मे  
 शतके कइयो छे, ते पुलाकचारिनायाने द्रव्यलिंग तीन कइया  
 छे, गृहलिंग, अन्यलिंग, स्वलिंग ते गृहलिंगी अन्यलिंगी  
 पूर्वकिमभणे ? तेहनो उत्तर जे श्रीभगवतीमूनेकृया छे जे  
 “ भावलिंग पडुच्चनियमासलिंगेदुज्झा ” ए पाटना आशययी  
 जे जे द्रव्ययी तीनलिंग कइया ते वैक्रियलन्विकरता कारणे  
 साधु गृहस्थलिंग अन्यलिंग करेपरे ते साधु छे पण गृहस्थ  
 नयी तथा बीजे प्रश्ने भगवतीमूने जनो उदयनो नीम छे  
 पर सत्तानो नाम नयी ते भगवतीमूने सर्वअधिकार सम-  
 काल कहे ते नियामक नयी पर पन्नवणा तथा समवायागे  
 सत्तानो पाठ छे तथा तीजे प्रश्ने वर्मलाभनो पाठ किहा छे?  
 तेहनो उत्तर जे भवभावना टीका तथा उपमितिभवप्रपचादिक ग्रन्थे  
 पाठ छे चोथे प्रश्ने आलोयणनो तुम्ह कइयो ते किहा कइयो  
 छे ? तेहनो उत्तर जे परपरा जीत दीसे छे तथा नादि माडे  
 तिहा अखीयाणा मुकवानो अधिकार विधिप्रपाप्रमुखविधि ग्र-  
 थमे छे तथा खीनी असज्झाई चोवीसपहोरनो मान, आव-  
 श्यकनिर्भुक्ति तथा प्रवचनसारोद्धारटीका मध्ये छे तथा ति-  
 र्यचणीनी असज्झाइनो जीत दीठो नयी तथा सिद्धातरासामध्ये  
 कइयो छे तिर्यचणीनी असज्झाइकालेदुहली वातु झरे छे  
 पण रुधिर झरतो नयी ते माटे वातु झरे, असिज्झाइ नयी  
 तथा मनुष्यने वातु झरवाँ काले पाणीयेसुचि करे ते समूर्च्छमनी  
 उपज टालवाने नयी तिर्यचना धातुप्रमुख-  
 मलथी सम <sup>१२</sup> जे कुयुक्ति करी जे जीत

उथापे तेहने जीतनी श्रद्धा नथी पण आगमनी आज्ञायें इम  
छे जे गीतार्थनो करयो जीत मानवो तिहा साख छे

असढाइन्नवणज्झ, गीअत्यअवारीयतिमज्झत्था ।

आयरणाविहुआणति, वयणओसुवहुमन्नंति ॥१॥

ए वचनथा उत्तम आचार्ये जे जीत करयो ते प्रमाण  
छे तथा चूर्णिकार टीकाकारना कीधा जे वीजा ग्रथ ते मव्ये  
जे वचन ते पण पचागीनेपरे प्रमाण करवो इति तथा थिरा-  
दनासघे सा टोकर प्रमुखे पूज्यो प्रश्न तेहनो उत्तर जे तुम्हे  
पूज्यु जे पुस्तकनी आगमनी पूजा किम छे ? केटला प्रकारनी  
छे तेहनो उत्तर जे जलनी तो पूजा पुस्तकनी नथी अने  
परपरागत ज्ञानपूजानी गाथा ठे ते गाथा ।

नमतसामतमहीवनाह, देवेहिपुज्झसुविहीयपुव ।

भत्तिहिमुत्तित्तमणिदामएहि, मदारपुप्फपसवेहि-

नाण ॥ १ ॥

तहेवसद्धामणिमुत्तिएहि, सुगंधपुप्फेहिवरसुएहि ।

पूयति वदति नमति नाण, नाणसलाभायभवक्ख-

याय ॥ २ ॥

आशयथी मणि कहेता रत्नजाति, पुप्फ कहेता फूलजाति  
असुकवस्त्रजाति मोतीनीजातिना पूजाना अक्षर ठे तथा  
श्रीपालचरित्रे तथा नवपदप्रकरण श्रीरत्नप्रभसूरिकृतमव्येसिद्ध  
चक्रनी पूजामध्ये ज्ञानपदनी पूजा अष्टप्रकारी करी छे तथा  
शत्रुजयमहात्ममध्ये धनेश्वरसूरिजीए सोनाने कमले ज्ञानपूजानो

अधिकार छे तथा रूपानाणे सोनहारीये गौतमपदनी पूजानो अधिकार छे तथा जानपत्रमीनी रुषामध्ये तथा पूजापट्ट, श्री तत्त्वार्थकारछन छे, तेमध्ये रासपूजा, नाणानीपूजा, मोतीनी, वीटणानी, दीपानी, धूपनी, षट्ठी पूजा लिखा छे तथा जीत-कल्पचूणिमध्ये जिहा आचार्यादिक पुस्तक राचे तिहा वासपूजा वीटणा निमित्त वस्त्रपूजा रूपा सोनाना फल तथा नाणो तथा श्रीफल तथा दीप तथा धूपनी पूजा ज्ञाननी करवी पण गुरु आचार्य ते सचित्तने अडकता नथी जे पुस्तकयी गुरुने अ-टकवो पडे तेह पुस्तकने तो वासनी तथा सोनारूपाना फलनी तथा नाणानी स्तनी तथा लगटानी षट्ठी पूजा करवी ए जीत छे धूपपूजा श्रावक पोते गुरुने अडकवा विना करे तथा गुरुपूजा गुरुने नय अगे रत्नेकरी नाणेकरी सोनारूपाने फूले करी करवी ए अधिकार हीरप्रश्नमध्ये साखसहित छे तथा गुरुने तथा पुस्तकने वधाववाने चोखे तथा मोतीए तथा सोनारूपाने फूले वधाववा एटलानो जीत छे वधतो जीत नथी तथा गूहलीनो अधिकार श्रीविशेषावश्यकमध्ये गणधरस्थापना अधिकारे इद्राणीए करी छे ए सर्व पचागीने रीते लिख्यो छेजी “यत जेणेव वसायसभाणेव उवागच्छति लोमहृत्थगपरामु-सति पोत्थयरयण लोमहृत्थएण पमज्झतिदिवएदगधाराअगेहिव-रेहि गवेहि यमलेहि अचेति” ए पाठयी पाणीनी धारा फूलनी पूजानो अक्षर सूरीयाभने अधिकारे छे शाह लाधाजीना पूछ्या प्रश्ननो उत्तर तुम्हे पूछ्यु जे वायुकायने वैक्रियशरीर छे ते लब्धिप्रत्ययी छे भवप्रत्ययी नथी जे पन्नवणानो वचन छे तिरिगति मनुष्यने लब्धिप्रत्ययी वैक्रियज हुवे तेमाटे वायु-काय-ते तिरियचना ४८ भेदमध्ये छे तथा जे पृठलेभवे जे

वैक्रियद्ग वाव्यो हवे एह्वो पचेद्दी तिरियच मनुष्य मरीने  
 चादरएकेन्द्रिपर्याप्तामे उपन्या ठे औदारिकशरीरने उदये  
 भोगवता पठे लब्धिरूप उदय थाइ तथा सर्व विजयमध्ये ३२  
 हजार देश ठे आर्य २५ जणाय ठे पण अक्षर दीठा नयी  
 तथा महानिशीथे सुमतिघट्ट यया ने परमाधर्मि यया ते अनेक  
 पुद्गलपरावर्त्त ससारभम्यो ते जे समकीतितो अर्धपुद्गलपरावर्त्त  
 ससारभमे अधिकोभमे नहीं ते किम मिल्यो ? एहनो पडुत्तर  
 जे पडवाइने अर्धपुद्गलपरावर्त्त कह्यो ते कालपुद्गलपरावर्त्त लीघो  
 ठे अने जिहा अनेक पुद्गलपरावर्त्त कह्या ठे ते कालपुद्गलप-  
 रावर्त्तमध्ये द्रव्यपुद्गलपरावर्त्त अनेक थाइ तथा अभव्यजीव  
 आश्री श्रीभुवनभानुकेवलीचरित्रमध्ये अव्यवहारराशिमध्येयी  
 निकल्या ए पाठ दीठो ते अव्यवहारमध्ये अभव्य ठे इम ठहरथा  
 ठेजी तथा मासआश्री लिख्यो ते आचारागटीकामध्ये तथा  
 आचारागचूर्णिमध्ये तथा निशीथचूर्णिमध्ये एहज अर्थ करयो  
 ते वीजे कोणे नवो कल्पायेजी तथा जे साउ अव्यापकपणे  
 जे असुज्झताआहारादिक करे तेहने बव नहीं आत्मानो  
 कर्त्तापणो स्वरूपानुयायी हवे तेवारे जे हिंसादिक ते प्रशस्त  
 ठे अने प्रशस्तआस्रवनी आलोयण नयी वदित्तुमध्ये “आयरि-  
 यमप्पसत्थे” इत्यादि पाठ जोज्यो ए चर्चा मुहडामुहडे कहेवराइ



## ॥ कर्मसंवेधप्रकरण ॥

॥ ६० ॥ ऐंनम ॥ श्रीमज्जिनकुशलसूरिसद्गुरुभ्योनम ॥  
 सिरिवीरनाहनाण । वदिअपभ्भठकम्मरयगण । गुणमग्गणठाणे-  
 सु अ । भणामि कम्माणसवेह ॥ १ ॥ नाणतरायडुगभग । दसे-  
 इक्कार खीणमोहजा । केवलडुगेअभावो । वेअणसता अहरकाए  
 ॥ २ ॥ गोयम्मि सत्तभगा । अठयभगाहवतिवेअणीए । पण  
 नव नव पण भगा । आउचउक्केवि अण्णक्कमसो ॥ ३ ॥ चउ-  
 छसुद्धन्निसत्तसु एगेचउगिणसुवेअणीअभगा । गोएपणचउदोतिसु ।  
 एगठसुद्धन्निइक्कम्मि ॥ ४ ॥ अट्टच्छाहिगवीसा । सोलसवीसचवा-  
 रउदोसु । दोचउसुतीसुइक्क । मिठाइसुआउएभगा ॥ ५ ॥ दो-  
 दोतिन्निअदोदो । दुगउगडुगसतखीणमोहजा । गुणपच्चईयाभगा ।  
 भग्गणठाणेषुणेयदा ॥ ६ ॥

दर्शनावरणीयभगा	मार्गणास्थानेषुभगा
म ग पर्चे १ यत्त १ यो ११ ३ चक्षु अचक्षु द २ शुक्क १ भव्य १ सजी १ आहा १॥ १२	अजान ३ लेश्या ५ अ- ४ नाहारक १ अ १ गति ३॥ १३
वेद ३ कसाय ४॥ ७	यथाख्यात १ ४
ज्ञान ४ अ. द १ क्षाय ९	केवल २ ०





होज्ञा ॥ १२ ॥ इक्कगठक्किक्कारस दससत्तचउक्कइक्कगचेव एए  
 चउवीसगया चोविसदुगिक्कम्मिइक्कारा ॥ १३ ॥ मिळेसगाइचउरो  
 सासणमीसेसगाइतिन्नुदया उपचचउरचउगाइ चउचउउदयापमत्तता  
 ॥ १४ ॥ चउगइतिन्निपुव्वे दुगइक्कोवायरेइगोसुहुमे भगाणचप-  
 माण पुव्वुद्विट्टेणनायव्व ॥ १५ ॥ इक्कठडिक्कारिक्कारसेवइक्कार-  
 सेवतिन्नि एएचउवीसगया ञारदुगिपचइक्कम्मि ॥ १६ ॥ अटग-  
 चउचउचउरठ, गाय चउरोय हुतिचोवीसा, मिउइअपुव्वतो, वार-  
 सपणगचअनियट्टी ॥ १७ ॥ अट्टट्टीवत्तीस ञत्तीस सट्टिमेववा-  
 वन्ना चोआलदोसु वीसा, गुणेसुपयसखचोवीसा ॥ १८ ॥

मार्गणासु गोत्र भगा	मार्गणासुआयु कर्मभगा
गति २ इट्टी ४ याव ५ अस १२	३ मनुष्यगति ९
गतिदेव २ वे ३ ले ५ अज्ञान ३ क ४ अवि १ अभ १ मि १ १९	५ नरकगति ५ तिर्यचगति ९
म ग १ पचेद्रीय १ ञस १ भव्य अनाहारक १॥५	७ देवगति ५ इन्द्रिय ४ पृ १ अप १ ५ वनस्पति १ ७
सा १ छेद १ परि १ सूक्ष्म १ । ४	१ तेज १ वायु १ २ ३
यो ३ चक्षु १ अचक्षुद शुक्ल १ सञ्जी १ आहा ८	६ पचेद्रीय १ ञस १ योग ३ २८ क ४ दर्श २ लेइया ६ अज्ञा ३ अच १ मि १
देसवि मिश्र १ २	२ भन्य १ अभ,सञ्जी १॥२५

या ५ इन्द्रिय ४ अम ? अस ? मि ? सा ? ॥ ? ३	२	उपशम ?	६
सामायक ? छेदोप २	५	सूक्ष्म सपराय ?	३
परिहारविशुद्धि ?	२	वे स मिश्र देशवि ३	२

## मार्गणारुवेदनीयभगा

म ग पचेन्द्रिय ? नस ? क्षायिक अनाहारक ? ॥	५	८
केवल २ यथाख्यात ? ॥	३	६
सूक्ष्मसपराय ?		२
शेषमार्गणा ५३		४

बावीसइक्कीसा । सत्तरस(स)तरसेवनवपच । चउतिगदुगचइक्का ।  
बघठाणाणिमोहस्स ॥ ७ ॥ छबावीसेवेअति । हासदुगअरइदुग-  
न्नतमगुणीआ । चउइगवीसिअसद्धा । अणिछिदुगभगसतरतिगे  
॥ ८ ॥ पचाइसु विणुजुअल । भगेक्क मोहणिज्झउदयाइ । इग  
दो चउ पण छ सग अड नव दस इयपयाइ नव ॥ ९ ॥  
दसबावीसे नवइग । वीसेसत्ताइ उदयठाणाणि । छाइनवसत्तरसे ।  
तेरेपचाइअठेव ॥ १० ॥ चत्तारिआइनवबधएसु उक्कोससत्तमुद-  
यसा पचहिवधगेपुण उदउदुण्हमुणेयवो ॥ ११ ॥ इत्तोचउब-  
धार्इ इक्किक्कुदयाहवतिसन्वेवि बधोचरमेवितहा उदयाभावेविवा-

रुअणहारगेदुवीसतिग, ठाईपणेगर्वासाई, अउगुदयातेअअत्राणे  
 ॥३४॥ सतेचउर्वासचउ तेउपम्हासुनवगजावधे चउराईदसउदये  
 इगवीसडवीस जा सते ॥३५॥ मणसामाइयछेए नवओइगजावव-  
 वइउदए इगसत्तजासते, उवीससगवीसविणुसेसा ॥३६॥ परि-  
 हारेनववधो चोराइसत्तवेअइसते, इगदुगतिगचउअडजुअवीसा  
 सुहमेनववस्स, ॥३७॥ उदयइगसतेइग, चउअटयअवीसइग,  
 अहरकाएअणुदयइगसतविणा, देसेववस्सतेरेव ॥३८॥ पचाईअ-  
 डउदए सतेइगदुतिचउठजुयवीसा तिरीएदुवीसओतेरपणओ दस-  
 एगवीसओवरिमा ॥३९॥ उपसमगेसत्तराई इगजावधेयएगओ-  
 अडजा, चउअडवीसासते खत्रगे वगुदयएमेव ॥४०॥ सतेदुगवी-  
 साइ उगविणुसवेअवेअगेवधो सतराईनवणओ नवजादुतिचउड-  
 वीसता ॥४१॥ मीसेसतरसवधो सगअटनवउदयचउसगठयआ-  
 वीसा वीसासतसापुण सासाणेवइगवीस ॥४२॥ उदयएसगठ-  
 नवग सतेअडवीसमग्गणाठाणे, ववाइतिगमोहस्स भणिअभगाय-  
 पुवुत्ता ॥४३॥ तेवीसपन्नवीसा उवीसाअठवीसागुणतीसा तीसे-  
 गतीसमेग ववठाणाणिनामस्स ॥४४॥ चउपणवीसासोलस नव-  
 वाणुईसयायअडयाला एयालुत्तुरआयाल सयायइक्किक्कवविहा  
 ॥४५॥ वुववधिनवगतिरिदुग एगिदीअजाइउरलतणुहुड थावर-  
 मपइइमथिर असुभमणाइइइइगुगवधे ॥४६॥ एगिदिगमणजुग्गो  
 वूलओपरित्तइयरवाजोगे वगइमिच्छेअणिरय सुहमओदेवविणुदुगइ  
 ॥४७॥ परवुस्सासक्खेवे पणवीसइच्छपरित्तथूलाओ थिरमुभजस-  
 इयरेसु भगठयतिगाइपच्चइया ॥४८॥ बायरसाहारणओ सुहम-  
 पत्तेअईयरओभगा जसविणुचउइगजुग्गा दुगइआवीसमिच्छत्ते  
 ॥४९॥ तेवीसवठणे थावरएगिदिविणुठविइइतस उवरिमजाड-  
 सुअणा छेवठोरलउवगच ॥५०॥ चउभगाजाइत्तिचउत्तिं तिरी-

## गुणस्थानेशु मोह सत्तास्थानानि

मि	२८।२७।२६	अम	२८।२४।२३।२२।२१?
सा	२८	अग्र	२८।२४।२?
मि	२८।२७।२४	अनि	२८।२४।२१।१३।१२। ११।५।४।२।१?
अ	२८।२४।२३।२२।२१?	मूक्ष्म	२८।२४।२१।१?
दे	२८।२४।२३।२२।२१?	उपश	१८।२४।२?
प्र	२८।२४।२३।२२।२१?		

ठवीसतिगदसगे नवगेवावीसठक्कअडगेअ इगवीसाइसत्तग स-  
 तेठवीसविणुएए ॥ २५ ॥ तेठपणगेठस्सगवीसविणुचउक्किइग-  
 चउडवीस अडचउइगवीसतेरस वारसइक्कारसचदुगे ॥ २६ ॥  
 दुगतिगठगसगवीस तेरसदुगविणुइगेयसमसता ठवीसतिगदुवीसे  
 इगवीसेअठवीसति ॥ २७ ॥ विणुठवीसइगवीसठक्क, सत्त-  
 रसेतेरसेनवेपच, सगवीसविणापणगे, अडचउइगवीसतेरतिग  
 ॥ २८ ॥ अटचउइगवीसतिग इक्कारसपचउचउगवधे तिग-  
 ववाइसुतिगसत, सतदुगखवगपच्चइआ ॥ २९ ॥ नरत-  
 सपणदिसुक्का, चम्बुदुआहारभवसत्री, सुयोअकसाएवेए, सवे-  
 वबुदयसतसा ॥ ३० ॥ वावीसिगवीसिवधे, भूजलइगविगलतरुअ-  
 सत्रीसु, सगअडनवदसउदये, सतेअटसगछहिअवीसा ॥ ३१ ॥  
 गइतसमिठदुगवीसअठठवीसता, बधेदुवीससते छावीसिगसेसपुव  
 ॥ ३२ ॥ नाणतिगओहिदसे, वावीसिगवीसहीणअडवधे दसविणु-  
 उदयासते, तेरसकेवलदुगेनत्थि ॥ ३३ ॥ लेसतिगदेवनिरये, अवि-

वधाप्रा	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१
एकेन्द्रिय	४२०	१६						
वेन्द्रिय	१				८	८		
तेन्द्रिय	१				८	८		
चोरिन्द्रिय	१				८	८		
तिर्य्यपच	१			४६०८	४६०८			
मनुष्य	१			४६०८	८			१
देवता				८	८	१	१	
नारकी				१				
सर्व	४२५	१६		९९२४८	४६४१	१	१	१३९४५

इग्विगलथावरेसु अजिणविउव्वाअनाणातिरिएसु मिच्छअस-  
 न्नीअभव्वे अजिणाहारा सजिणअजए ॥ ६७ ॥ अविगलविउ-  
 व्विनिए अविरयजासम्मनाणुवहिदमे चरणतिदेसेसुरजा अहरका-  
 यदुकेवलेनत्थि ॥ ६८ ॥ देवपरित्तत्रायर तिरीअनरासेसयासुठा-  
 णभवा भगामगणठाणे वधठाणाणनेयव्वा ॥ ६९ ॥ अणहारे-  
 निरयभवा आहारगतणुभवायनोभगा मणनाणेसामईआभगसखा-  
 मुणेयव्वा ॥ ७० ॥ मिच्छेतेवीसाइ । साणाइसुअट्टवीसओवधे ।  
 छतिन्निदोतिदोदो । चउपणसेसेसुजसव्वो ॥ ७१ ॥ मिच्छेअ-  
 जिणाहारा । अवियलनिरळेवहुडसासाणे । दुहगतिसघयणागिइ ।  
 चउविणुदुगइज्जमीसदुगे ॥ ७२ ॥ सजिणासमत्ताओ, देसदुगे-  
 देवजायसाहारा अपमत्तदुगेभगा अनिअट्टिदुगेयइक्किक्क ॥ ७३ ॥  
 देवभवादेसदुगे अपमत्तदुगेअदेवनरजुग्गा,

आणातिरिदुगविहीण मण्डुगगुत्तमणुण एगभगापणअपइझे २५३।  
 २५४॥ ॥ ५१ ॥ नायरपरित्तपणर्वासा मज्झेजायाअनुअठवीसति  
 अहवाउज्जोअनुअ भगाअडदुगणइगगुगा ॥५२॥ युवनवपण-  
 दितसचउ परवावेउविदेअदुगमुगइ समथिरइयरठगेवा देवडवीसेट-  
 पुव्वता ॥५३॥ मिच्छेदसअपसत्वेहिं इगभगोनिरयजुगअडवीसे  
 पिवविअलेपणर्वासे कुखगइपइझत्तपरिअदुगदुसर ॥५४॥ असम-  
 त्तहीणनर्वासा भगाचोर्वासवियलपच्चइया अइतिरिनरमिच्छा  
 युवतिरिपरवायउरलदुग ॥५५॥ तसचउपणदिर्वासे, सवयणाणि-  
 इसुअन्नतमदुतय थिरमथिरवाठक, खगईइगसच्चगुणतीस ॥५६॥  
 यसओसगपयदुगणा सवयणगुणायआगइगुणआ उयालसयठभगा  
 तिरीएमणुएविएमेव ॥५७॥ देवटवीसेजिणजुअ भगठगसम्मओ-  
 अपुव्वजा विअल्पणदीयतिरिजुग गुणतीसेजोअजुअतीस ॥५८॥  
 पुव्विवभगसामीअ नरगुणतीसेसजिणअडभगा सुरअडवीसेसाहार  
 भगमिगनरअपुव्वजा ॥५९॥ आहारतीसजिणजुअ बधइसुमुणी-  
 अएगजसपगइ एगविहववठाणे, अपुव्वओसुहुमठाणजा ॥६०॥  
 इगविगलथावरेसु अडविसिगतीसएगविणुपच, देवेसुतीसगुणतीस  
 छवीसपणवीसतेवीसा ॥६१॥ तसजोअकसाऐसु चक्खुदुआहार-  
 भव्वनरसन्नी पचदीयविएसु सव्वेदेसेनवडवीसा ॥६२॥ तिरिअ  
 विरयअन्नाणे आइतिलेसेअभव्वअणहारे मिच्छअसन्निमुठाणा पेया-  
 इगतीसएगविणा ॥६३॥ एगविणातेउए तिवीस छवीसहीणप-  
 म्माए सासाणेअटवीसतिअ इगतीसजुयचपरिहारे ॥६४॥ ना-  
 णचउओहिदसे, उवसमषवगेअछेअसामाइए आइतिबध विणायण  
 एगविणावेअगेएए ॥६५॥ अहखायकेवलदुगे अबधसुहुमेएग-  
 विहबधो गुणतीसतीसनिरये मीसेअडवीसगुणतीस ॥६६॥

सुक्काएतेवीसगछवीसहीणाय तेउएभगानिरविगलसुहुमतिगे-  
 हीणाइगविणुपम्माअतिरिसुक्का ॥१॥ इति मा० बधस्था० ॥



वधस्थानानिर्माणसु	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	१३९४५
म प त्र यो ३ वे	४	२५	१६	९	९२४८	४६४१	१	१	
३ क ४ दर्श २ आ-									
हाभ सजा ? शुक्ल॥									
१६									
या ५ इग ? विग ३	४	२५	१६	०	९२४०	४६३२	०	०	१३९१७
ति ? मि असअम	४	२५	१६	९	९२४०	४६३२	०	०	१३९२६
८ अजा ३	०	०	०	८	१६	९	१	१	३५
सम ३ अत्रधि ७ द									
नाण ३									
देव ?	१	१	१६	०	९२१६	४६१६	०	०	१३८५०
नारकी ?	०	०	०	०	९२१६	४६१६	०	०	१३८३२



भगणाइज्ज सुहमेयरदुहअजसेण थूलपज्जत्तजसपच ॥ ७७ ॥  
 एगिदिअइगवीसे, अदुयात्ररइगवितसथूलजुअ पज्जेजसअजसेणय,  
 अजसापज्जेविगलनवग ॥७८॥ नामधुवोदयतिरिदुग पणिदित-  
 सथूलओअ इगभगोलद्विपज्जे असमत्तदुभगणाइज्जअजसेण कर-  
 णअपज्जेपज्जे असमत्तगचउगसेअरेणदु तिरिदुगठाणेनरदुग खेवे-  
 नवभगपुर्विव ॥ ८० ॥ नामधुवमणुअपणत्तस थूलपज्जत्तसुभग-  
 आइज्ज जसवीसेभगेग कम्मणगेफेवलीअजिणे ॥८१॥ जिण-  
 जुअइगवीसते भगेगतत्थमणुअइगवीसे अनरदुसुरदुगजोगे अ-  
 डनिरयेअसुहइगभगो ॥८२॥ एगिदिअ इगवीसे पुव्विविणुउरल-  
 द्ढउवघाया पत्तेगेअरवादस थुलपवणेविउव्विइग ॥८३॥ इगच-  
 उवीसेसपरिच पणवीसथूलओपरित्तिअरे जसअजसेचउसुहुमे परि-  
 त्तजुअभगअटगति ॥८५॥ एवनरखेउव्वे अटसाहारेपसत्थइगभगो  
 देवेअडनिरयेइग भगाइगवीसउदउव्व ॥ ८६ ॥ इगपणवीसेउसास  
 अहदुउज्जोअत्रारपुव्विव पवणेइगइगवीसे विअलेतिरिपुव्विववहारे  
 ॥८७॥ उरलदुगहुड्ढेवदु परित्तउवघायसहिअनवभगा तिरिइग-  
 वीसेपुव्वी हरखिवउवघायपत्तेअ ॥८८॥ उरलदुगागिइउक्के उग-  
 सवयणेसुअन्नतमदुतय सवयणागिइगुणिया अडभगादुसयअडसीइ  
 ॥८९॥ अपजत्तेइगअसुहो एवमणुए सुदुसयगुणनवइ वायरइग-  
 उव्वीसे आयवउज्जोअ अन्नउग ॥९०॥ वेउव्विअपणवीसे ति-  
 रीएपरवासुगइज्जुअअदु एवनराभगा पणवीसुदउव्वेनेअव्वा ॥९१॥  
 विअलउवीसेकुखगइ परवाजुअअदुवीसभगउग तिरिउव्वीसेपरवा  
 खगइसुअअन्नतमएगा ॥९२॥ पुव्वुत्तदुसयअटसीखगई दुगुणा  
 वेउव्विसगवीसेतिरीयेउसासेवा उज्जोएभगसोलसग ॥९३॥ तिरि-  
 अव्वउरलमणुए वेउवेसत्तवीसउस्सासे खित्तेअटउज्जोए इगआहारे-  
 दुभगसुहा ॥ ९४ ॥ सुरसगवीसेउसास उज्जोएवासोलइगनिरये-

नवस्थान	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१
मिथ्यात्व	४	२५	१६	९९२४०	४६३२	०	०	०
सासा	०	०	०	८६४००	३२००	०	०	०
मिश्र	०	०	०	८	८	०	०	०
अवि	०	०	०	८	१६	८	०	०
देस	०	०	०	८	८	०	०	०
प्रमत्त	०	०	०	८	८	०	०	०
अप्रमत्त	०	०	०	८	८	१	१	०
अपूर्व	०	०	०	८	८	१	१	१
अनिवृत्ति	०	०	०	०	०	०	०	१
सूक्ष्म	०	०	०	०	०	०	०	१

सजिणाहाराभंगा, अनिअट्टिदुगे अ इक्किक्क॥७३॥ वीसिग-  
 वीसाचउवीसगाउ, एगाहीआअइगतीसा उदयट्टाणाणिभवे नवअट्ट  
 यहुतिनामस्स ॥ ७४ ॥ एगबियालिक्कारस तितीसाछस्सयाणि-  
 तितीसा बारससत्तरससया णहिगाणिबिपचमीईहिं ॥७५॥ अउ-  
 णितीसिक्कारस सयाणहिअसतरपचसट्टीहि इक्किक्कगचवीसा दट्टु-  
 दयतेसुउदयविही ॥७६॥ नामवुवोदयतिरिदुग धावरएगिदिदु-

	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८
प्रायोग्यउदय												
एकेन्द्रिय	०	५	१	७	१३	६						
द्वेन्द्रिय	०	३			३		२	४	६	४		
तेन्द्रिय		३			३		२	४	६	४		
चौरेन्द्रिय		३			३		२	४	६	४		
प्रा तिर्यंच		९			२८९		५७६	११५२	१७२८	११५२		
तिर्यं चैक्रि				८		८	१६	१६	८			
मनुष्य		९			२८९		५७६	५७६	११५२			
मनुष्यवैक्त्री				८		८	९	९	१	१		
आहा				१		१	२	२	१	१		



सासाणेइगचउपण उनववीसायतीसइगतीसा विणुअडनवतणुयोए  
सुक्काएतेअचउवीसा ३ ॥११६॥ इतिमार्गणासुउदयस्थानानि ॥  
अथमार्गणासुभगका ॥ मणुआइचउगईसु । तिगईविणुनिअगईभ-  
वाभगा एगेदिअनायाला पुढवीगुण चत्तअविउच्चा ६ ॥११७॥  
तावविणावणउदगे तेउसज्जोअहीणसविउच्चा पवणेविअलेविअला  
तसेसुएगिदिभगविणा ८ ॥११८॥ इगविगलविणासगले कसाय-  
चउगे जिणट्टभगविणा ससुएभगावयणे मणवेएतेअविगलविणा ७  
॥११९॥ इगविगलनिरयजिणविणु पुरिसेइत्थीसुहारविणुतेविआ-  
हारतिउसुरविणु सढेतिगनाण्वहिदसे ॥१२०॥ इगविगलदिअ-  
जिणविणु पज्जचउगइभवायसामईए छेएनरपज्जसुहा मणपरहारे-  
अणाहारा ॥११॥१२१॥ सुहमेदुसयरितीसा सजिणाहक्खायगे-  
अअत्राणे २ मिग्राभवेहारग तिउविणासव्वभव्वेसु ७ ॥१२२॥  
केवलदुगिजिणज्जुग्गा तिरिनरसुहेदेससयमेभगा मिछुभभवपज्जत्ता  
इगविगलविणाविभगम्मि ४ ॥१२३॥ अजिणाहाराअजए साहा-  
रालेसतिगअचक्खसुचक्खसु इगवितिइदियजिणविणु वेअगितिना-  
ण्व ७ ॥ १२४ ॥ खवगेतेजिणजुत्ता मीसदुगेठाणगायसन्नासु  
जिणविणुपणदिभगा अडवीसजानरअपज्जा ४ ॥१२५॥ सवयणा-  
गइपणविणु विउव्विणुतिरिअज्जअसन्निसु सेलेससमुग्घायग तणु-  
अपज्जअणाहारे २ ॥१२६॥ पम्हासुनिरयइगजिण विगलविण-  
तिउगेअइगजुत्ता सुक्कासुसजिणइगविणु नाणुव्वाहारविणुवसमे ४  
॥२७॥ नवअडविणुतणयोए मिच्छेआहारतित्यविणुवीए वायर२  
विगल ६ गतिरि ८ नर ८ सुर ८ पज्जाहुतिनत्तीस ॥१२८॥ दोपु-  
णवायरपज्जा पणवीसेअट्टदेवपच्चईया लव्वीसे ५८२ एगिदिय १३  
अपज्ज ५ विणुनवइगुणतीसे ॥ १२९ ॥ तिसेतिरि ११५२ नर  
११५२ सुर ८ जा इगतीसेतिरयजायपज्जत्ता तईए अणेगविगला

केवली	१	१	१	१	१	१	१	१	१		
देवता	८	१६	१६	८	१	१	१	१	१		
नारकी	१	१	१	१	१	१	१	१	१		
सर्व	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२९१७	११६५	१

नाणतिगचम्पुओहिवेअहुगे उवसमनेअगसणीपम्हाअसुए आसग-  
 पणवीसा ॥१११॥ निगले छगतेनिरये इगपणसगअटननहिआ-  
 वीसा देवेते ६ तीसयुआ सुहमेपरिहरागेतीस ७ ॥११२॥ पण  
 सगअटनवसहिआ वीसातीसमणे १ दुसामईए २ देसेइगतीस-  
 युआ ६ गुणतीसतिमीसमणयणे ७ ॥११३॥ सर्वेभजे १  
 नरतस पणदिखवरोसुनच्छिचउवीस इगवीसाईज्जा सगवीसाइग-  
 धावरेपच ११ ॥११४॥ दसचउपणदीसात्रिण केवलहुगिसुद्धस-  
 जमेउदया वीसिगनीसनअड ४ अणहारेसेस ८ आहारे ॥११५॥

२१।२४।२५।२६।२७।	२१।२४।२५।२६।२७।
२८।२९।३०।३१	२८।२९।३०।३१
२१।२४।२५।२६।२७।	२१।२४।२५।२६।२७।
२९।३०।३१	२९।३०।३१
२८।२९।३०।३१	२८।२९।३०।३१
३१।१	३०
अवध	२०।२१।२६।२७।२८।
	२९।३०।३१।३१।९।८



मार्गणासुखदय	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	१	८
स्थानानि	१	१०	०	१२८९	१०	५८७	५८८	५८८	११५५	१	१	१२६५२
मनुज १	०	२३	११	१५३११	१४	५९८	११८०	१७५४	११६४	०	०	०५०७०
तिर्यच १	०	८	०	८	८	१६	१६	१६	८	०	०	६४
देवता १	०	१	०	१	०	१	१	१	०	०	०	५
नारकी १	०	५	११	७	१३	६	६	१२	१८	१२	०	४२
एकेन्द्रिय	०	९	०	९	९	२७	११९६	१७७३	२८९९	११५३	१	१७६८३
विगल	१	२८	०	२६५७८	२७	११९६	१७७३	२८९९	११५३	१	१	३९
पचेन्द्रिय	०	५	१०	६	१२	६	६	१२	१८	१२	०	३६
म्	०	५	१०	६	१२	६	६	१२	१८	१२	०	३६
जल्वण	५	५	१०	६	१२	६	६	१२	१८	१२	०	३६



चक्षु	०	३०	०	२६५८१	२६११९८	१७७६	२९०४	११५६	७६५७
अचक्षुलेशा इ	०	४१	११	३३६००	३२१२०२	१७८४	२९१६	११६४	७७८३
तेज	०	३०	१०	३१५९०	३१११९५	१७७१	२८९८	११५२	७७०८
पद्म	०	२६	०	२५५७८	२५११९५	१७७१	२८९८	११५२	७६७०
शुक्ल	१	२७	०	२५५७८	२६११९५	१७७२	२८९९	११५३	७६७६
भव्य	१	४२	११	३३६००	३३१२०२	१७८५	२९१७	११६५	१७७९१
उपशम	०	२७	०	२५५७८	२५११९४	१७७०	२८९७	११५२	७६६८
क्षायिक	१	२८	०	२६५७८	२७११९६	१७७३	२८९९	११५३	१७६८३
मिश्र						१७७०	२९९७	११५२	०५८१९
सा	०	३२	२	८५८२	०	९	२३१२	११५२	४०९७



दुगअहवसुरदुग रहिआठलसीइअहअसीईयुआनिरयसुरउक्कअसई  
उवलिआतेणउक्केण ॥ १३८ ॥ तेअनरदुअडसयरी उवसमसता-  
निरयतिरिदुचऊजाई यावरआयव दुग साहारणविणासीई ॥ १३९ ॥  
जिणविणुतेगुणसीई ते आहारगविहीणउस्सयरी जिणविणुतेपणस-  
यरी अडनवसताविउदउव्व ॥ १४० ॥ तेवीसतिगेउणग अडवी-  
सेचउगसत्तगुणतीसे तीसेइगतीसइग इग वधेअटसतसा ॥ १४१ ॥  
उदयेसत्तास्थानानि ॥ दुगअडपणसगनवसग अडनवनवपणतिग-  
तिगचकमा वीसाइसुउदएसु सतठाणाणिनेआणि ॥ १४२ ॥ तिदु-  
नउईगुणनऊई अठयउलसीअसीईअडसयरी अविरयपणलेसासुअ-  
तिनउईविणुमिठअन्नाणे १० ॥ १४३ ॥ तेविणुगुणनवई इगया-  
वरविगलामणेसुतिरिए असव्वेतसपणभव्ये अणहारेनवडविणुयोए  
१८ ॥ १४४ ॥ अडसयरिविणामणुए ११ नवठविणुदसकसायच-  
चखुदुगे सुक्काहारगसन्नोअ वेएसुय १३ नाणुवहिदसे ॥ १४५ ॥  
ठलसीअडसयरीविणुअटपवेअगदेसदेवपरिहारे उवसमगेतिदुनवई  
गुणनवईचेवअडसीई ५ ॥ १४६ ॥ युआसीगुणसीई उपणसय-  
रीहिंसुहमसामईए छेएनवडुसहीआ खवगाहक्खावगेनेआ ५  
॥ १४७ ॥ तिनवईचउविणुकेवल दुगिठठाणादुसासणेमीसे दोन-  
वईअडसीईगुणनवईयुआयतेनिए ५ ॥ १४८ ॥ अडसीठलसीसीई  
अडसयरीमिठसभवाभव्ये १ उगदुगदुगचउपचसु दुसुअडतिसु-  
चउउगमेग ॥ १४९ ॥ उदस्सुदीरणाए सामित्ताएनविज्जईविसेसो  
मूत्तूणयइगुयाल सेसाणसव्वपयडीण ॥ १५० ॥ नवउदओअयोगे  
उईरणातेरमेअवुद्धिन्नामणुआउवेअणीए उईरणाअपमत्तजा ॥ १५१ ॥  
सेसाणपयडीण छेअसमयाउआल्लिगामोत्तू पडगहीआणयसमग  
अपडिग्गहीआणविसमति ॥ १५२ ॥ अविभागवग्गफडुग अतर-  
ठाणचकडगायकमा लोगासखगुणाते योगठाणादलनिमित्त ॥ १५३ ॥

सर्षी	०	२७	०	२६१२७८	२६११९६	१७७२	२८९८	११५२	७६७५
अत्सी	३२	११	७	४०	३८	४४	६६	४४	२४८
आहार	०	११	३३	६००	३३१२०२	१७८५	२९१७	११६५	७७४६
अनाहार	१	४२						१	४५
का यो १	१	४२	११	३३६००	३३१२०२	१७८५	२९१७	११६५	७७४६

अजपुमेवदेसेवि ॥१३०॥ सुरनिरयदुहगतिविणा सुहसाहारामञ्जाले अणद्वाराअपमत्ते पुपसपण-  
 तिविणाते ॥१३१॥ इक्किक्कगचपरओ ठाणाइगवीस माइनवमिच्छे चउवीसविणासम्मे गुणतोसनिमीसिस्ता-  
 सणे ॥१३२॥ इगवीसाइसत्तग सगद्वीसविण्णुगतीसजा देसेसगवीसाई पणपणवीसेणयुत्ताते ॥१३३॥  
 इगतीसविण्णुपमाए गुणतीसइअप्पमत्तमिअपुवा खीणजातीसेग अयोगिनवअट्टुगटाणा ॥१३४॥ योगी-  
 जिणेवीसदुग वावीसग छचअट्टाणाइ-अपज्जत्तभवाभागा त्रिविखिआनत्थिमयेआ ॥१३५॥ तिट्ठुनउई-  
 गुणनवई छलसीअसीइगुणसीइ अठयठपत्तत्तरिनवअट्टयनामसताणि ॥१३६॥ तिट्ठुइसन्नेसम्मे  
 जिणवज्जुवसतजावहुनऊई आहारचेगविण्णुण नवइअटसीईजिणरहिआ ॥१३७॥ निरयसु-

सुहमनिगोआइखणप्पजोगत्रायरविगलअमणमणा अपज्जलहुपढम-  
दुगुरु पज्जहसीअरोअसखगुणो ॥१५४॥ असमत्ततसुक्को सो  
पज्ज जहनिअरएवटइठाणा इगओणपएसा-अभव्वओणतगुणी-  
अदला ॥१५५॥ सिद्धाणणतभाए उरलाईवग्गणातीअगुणओ  
सव्वेतेअगमाई चउफासविहीणणतगुणा ॥१५६॥ बुवअबुवाय-  
अचित्ता सुत्रापत्तेअत्रायरेसुहुमे गुरुखधेअवगाहो ऊणुणगुलअ-  
सखसो ॥१५७॥ जजाइलद्वदलीअ णतसोसव्वदेसधाईण तत्तो-  
अघायवाण रसमेएअप्पवहुगति ॥१५८॥ अप्पेपयडीअधे योग-  
ठाणेगुरुअगेगुरुओ लहुएलहुओवधो दलमाणेद्ववमाणमिण ॥  
१५९॥ अवगाहणायचित्त फुसणाअगुलअसखभागोअ सुहमा-  
उदयेसत्तास्थानानि

२३।२५।	५	९२।८८।८६	२०	२७९।७५
२६		८०।७८	२१	८९३।९२।८९।८८।८६।
२८	४	९२।८९।८८		८०।७८।७६
		८६	२४	५९२।८८।८६।८०।७८
२९	७	९३।९२।८९	२५	७९३।९२।८९।८८।८६।
		८८।८६।८०		८०।७८
		७८	२६	९९३।९२।८९।८८।८६।
३०	७	९३।९२।८९		८०।७९।७८।७५
		८८।८६।८०	२७	७९३।९२।८९।८८।८६।
		७८		८०।७६
३१	१	९३	२८	८९३।९२।८९।८८।८६।
९	८	९३।९२।८९		७९।७५।८०
		८८।८०।७९	२९	९९३।९२।८८।८६।८०।
		७६।७५		८९।७९।७६।७५
			३०	९९३।९२।८९।८८।८६।
				८०।७९।७६।७५
			३१	५९२।८८।८६।८०।७६
			९	३८०।७६।९
			८	३७९।७५।८



## ॥ प्रतिमापुष्पपूजासिद्धि ॥

( आगमसारनो अन्तर्भाग—जूनी आगमसारनी प्रतियोमा आ विषय छे )

ऐनम सवत् १८०० ना वर्षे पूजाउपरि फूलनी चर्चा ते उपरे श्रीपडित श्रीदेवचद्रजीकृत प्रश्नोत्तराणि लिख्यते ॥ तथा कोइ पूछे जे प्रतिमानी पूजा तो पहेला आश्रवमध्ये लखी छे तेतो तुम्हे मृषावाद बोले छो इहा प्रश्न व्याकरणमूत्रमा पाठ इम छेनही तिहा पाठ छे ते लिखीये छे ॥ अविजाणओ परिजाणओ विसयहेउ इमेहिंकारणेहिंकिंते करीसणपोरकरणीवा विवप्पणीकूवसरतलागचितिवेतिखाति आरामविहार, धूमपागार, दारगोपूर अट्टालगचरीय सेतुसकमपासायविकप्पभवनघरसरणिलेणआवणचेइयदेवकुलचित्तसभाएवाआयतणवसई मूमिवरमडवाणकएहींसति=इहा पाच थावरना पाच आलावा छे तेइने छेहडे कोहा माणा, माया, लोभा, हिंसा, रती इत्यादि पाठ छे जे जे जीव इद्रीना सवादने माटे चेईअकहेता प्रतिमादिक करे ते आश्रवखाते ए पाठ छे पण पूजानो पाठ नयीं ते मृषास्ये (शा माटे) बोले छो तथा प्रश्न व्याकरणसूत्रे वीजे सवरद्वारे जे आलावो छे ते लिखीये छे खवगयवत्ति आयरीय उवज्झायसेह साहमी-पूतवसिसिसवुद्धकुलगणसत्रचेईयइनेनिज्झरठी वेयावच्च अणस्सी-ओदशविहवहुविहकरेई एआलावे आचारज प्रमुखचेईय कहेता जिनप्रतिमानो वेयावच्च करे निइर्जराना अर्थी अणस्सीओ कहेता जस कीर्तिनी वाठारहितयको वेयावच्च दश प्रकार तथा अनेक

गुरुआलोओ फलोट्टिद्राणमाणत्र ॥१६०॥ अनमत्रफलो  
 अणुदयफलोअसाफलोष तत्राणुणनभागे लोग्गअमत्रमेभागे  
 ॥१६१॥ मोद्वेयमोमीसो चउत्रागुअट्टम्मगुअमेसा भात्रा-  
 पुणजहसभय मग्गणट्टाणेमुनेअत्रा ॥१६२॥ चउदुगतिगण-  
 चउतिग, तीसातीसासगठ दुगतीसा, तीसागुणतीसतेरस चारमभात्रा-  
 गुणट्टाणे ॥१६३॥ वोत्राणुगाउरुचे नामेगोएसमोअअहिओअ  
 ततोपिग्वाअरण दुअहिओमोदेतओअहीओ ॥१६४॥ ततोअये  
 अणिज्ज अहिअगुणमग्गणासुयोराओ उद्वरीअसमयाओ कम्मस-  
 वेहगवमिण ॥ १६५ ॥ इयकम्मअत्रा तत्रेअणओअसुहडु-  
 हपत्ता तत्ययसमभात्रत्य कम्मसत्तपिभावेज्जा ॥१६६॥ परम-  
 प्पानाणपुण ज्ञाणट्टाणचसिअपयनिहाण तपुणकम्मविभेगे कम्म-  
 विवेगोअतत्राणे ॥१६७॥ अप्पगहोपरचाओ मज्जत्यत्तचधम्म-  
 ज्ञाणच आयमसुअहउई कम्मसरूपस्सनाणेण ॥१६८॥ अग्गा-  
 हणीअपुच्चाओ उद्वरीआपगईसगहागया ततोदेविदेण कम्मग-  
 थाकयासुकया ॥१६९॥ ततोऊद्वरिऊण अर्वाईसुकम्मभगसवेह  
 सिरिजिणचदमुनिसर रज्जेभणीअसमासेण ॥१७०॥ सुविहियख-  
 रयरगच्छे ॥ युगवरजिणचदसुरिसाहाए पाटगपुत्तपहाणा तस्सी-  
 सासुमइसागरापुज्जा ॥ १७१ ॥ वरसादुरगत्रायग तस्सीसापाठ-  
 गासुयसमुदा सिरिएयसारअज्जा पुज्जाविज्जानिहाणाण ॥१७२॥  
 सुयवायगागुणद्धा नाणधम्मा सुनाणधम्मधरा निवईणविसपुज्जा  
 रायहसागणिप्पवरा ॥१७३॥ तस्सीसेणयभणीअ देवचदेणआ-  
 यसरणद्धा नाणच्छ(पाययेपाय) सावगवरदेवरायस्स ॥ १७४ ॥  
 इतिश्रीकर्मसवेधभगप्रकरण समाप्त ॥ शुभभवतु ॥ कल्याणमस्तु ॥

स १९७१ वर्षे द्वि आषाढ सुदि १ दिने श्रीजेसलमेर  
 महादुर्गमध्ये लिखित भोजक किशोरचद

श्रीमद् विक्रमपुरवास्तव्य



वम्मायरीया ए पाठ जुदो छे ज्ञाननो अर्थ करे ते सुयए पाठ जुदो छे तेमाटे चेइय शब्दे जिनप्रतिमानो अर्थ छे तथा तुम्हे पुजे जे द्वारका राजग्रहमें देहरा तथा प्रतिमानो पाठ किहा छे ? तेहनो उत्तर नदीसूत्रे अणुत्तरोववाइ तथा अत-गडना नौवनो पाठ जोज्यो तथा तुम्हे कहेस्यो इतला बोल उपासकदशाप्रसुखे दीसता नथी तेहनो उत्तर जे नदी तथा समवायागमे जे पाठ तेहनो कोण उत्थापि शके ते जोज्यो तथा पुब्ज्यु जे किणे श्रावके प्रतिमा पुजी छे ? तेहनो उत्तर घणे श्रावके प्रतिमा पुजी छे ते पाठ श्रीभगवतीसूत्रे तुगीया नगरीना श्रावको वरणव्या तिहा अमिगयजीवाजीवा इत्यादिक पाठ घणा छे तिहा एहवो पाठ छे असहिइइदेवासुरनागसु-वन्नजरकरकसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगवव महोरगादीएहिं देव गणेहिं निग्गथाओपावयणाओ अणतिकम्मणिज्झा निग्गथे पाद-यणेनिस्सकीयानिक्खवीयालद्धङ्गागहीयट्ठा इत्यादि जे श्रावक कोई जातिना देवतानो सहाज वाउता नथी तो कोई बीजा देव-तानी पूजा किम करे ? एहवा श्रावक जे देवने देव बुद्धि मानता हवे तेहनेज पूजे ते श्रावक थिवर आव्या तेवारे एक-वार सर्व एकठा मिल्या एहवो विचार कइयो जे एहवानिय-यनो नाम साभल्यानो पिण महा लाभ छे तो तेहने वाइवा जाता सेवा करता तो महानिज्झंरा महापर्यवसान कहेता मोक्ष थयो इम विचारी पोते पोनाने वरे गया पछी सूत्रे पाठ छे प्हायाकयत्रलिकम्माकयकोउयमगलपायच्छित्ताशुद्राप्यात्रेसाइपपरि-हीआ अप्पमहग्वाभरणालकीयशरीरा सयाजोगिहाओपडिनिरकमति तिहा नाह्या ते अपोल कीवा, कयत्रलिकम्माते देवपूजा कीधी कयकोउयमगल ते तिलकादिक कर्या पछी वस्त्र पेहरने

प्रकारतो ऋ, इहा चंड्य रहेना प्रतिमा छे तो खोटी कल-  
पना स्पामाटे को ठो ? तथा बीजे मन्ने पुठयो जे अहिं-  
साना ६० नाम कथा छे अभओस'रसाविजनायाओबुरकाय-  
वित्तोपुपाविमलप्पभा निम्मलकराति पुत्र माङ्गीनियगुणनिम्मि-  
याइ पज्जपनामाणित्तिआहिंसाए ॥ तिहा प्रतिमा तथा पूजानो  
नाम नया तेहनो उत्तर तिहा अहिंसानो नाम जाणो  
तेहनो अर्थ देवपूजा छे पूजा एहनो दयानो नाम छे  
तो अजाण्योइमस्यं प्ररुपणाको ठो ? बीजु पूजातो  
श्रीअरिहत प्रतिमानी ते तो विनय तथा वेयावच्च ते अम्भि-  
तर तपना भेद छे ते तप मोक्षनो मार्ग छे श्रीउत्तराध्ययन  
सूत्रे २८ मे अध्ययने तप ने मोक्षना च्यार कारण कथा ते  
मध्ये गण्यो छे तथा तो परये पुठयो जे जोलनी खर नहवे  
ते विचारी बोलीये तथा श्रावके कोणे देहरा कराव्या ? तथा  
प्रतिमा पूजी ? तेहनो उत्तर श्रीसमवायागसूत्रे तथा नदीसूत्रे सर्व  
आगमनो नूध छे तेमध्ये ए पाठ छे तिहा उपासकदशानो  
नोंध छे ते आलावो छे ते लखीये छे सेकितउवासगदसाओ  
उवासगदसासृणसमणोवासगाण नगराईउज्झाणाइ चेइआइवणसडाइ  
समोसरणाइरायाणोअम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइ  
आपारलोईया इट्ठिविसेसा भोगापरीआउ सुअपरिग्गहीआ तवोव-  
हाणाइसीलव्वयगुणवेरमणपच्चख्खाणपोसहोववासपडिवज्झणापडि-  
माओ उवसग्गसलिहणाओ भत्तपच्चरकाणइयाउवगमण देवलोगगमण  
सुकुलपच्चायापुण्नोहिलाभो अतकिरीयाआघरिज्झति ए पाठ छे  
इहा चेइयाइशब्दे देहरा तथा जिन प्रतिमा जाणज्यो इहा  
चेइय एहनो अर्थ बीजो थाये नही, जेवननो अर्थ करेतेतो  
उद्यानवनखडनो पाठ जूदो छे कोइ साधुनो अर्थ करे ते

सूत्रमध्ये गुरुनी पाटनी आशातना टाल्वी कही छे, ते पाट अजीव छे तेपीण सर्व गुरुनो बहुमान छे, प्रतिमाने बहुमाने सिद्धनो बहुमान छे तथा सुवर्मा सभामाहि जिननी दाढा छे ते वदनी पूजनीक छे, तेतो अजीव स्कव छे तथा तुमे लख्यो जे परदेशी राजाए प्रतिमा का न करी ? ते परदेशी श्रावक थया पछी केटलोक जीव्या छे ते तथा सर्व श्रावक एकज करणी करे ए स्यो नियम छे ? तथा परदेशीए तथा आणद श्रावके कोइक साधुने पडिलाभ्या नयी तेमाटे तुझे साधुनी वीहराव्यामे दोष मानस्यो ? ए विचारी ज्योज्यो तथा लख्यु छे जे सूरीयामे जे प्रतिमा पूजी ते राजवानीना मगलीक माटे पूजा करी तेतो खोड बोलो छो, ए पाठ सूत्रमें नयी सूत्रमें तो एहवो पाठ छे “हीयाए सुहाए खेमाए निस्सेसाए आणुगामीयत्ताए भविस्सइ निश्रेयस कहेता मोक्षभणी ए अर्थ छे तथा पच्छा शब्दे जे इहलोकनो अर्थ छे इम कहे छे ते मढ छे, दर्दुर देवताने अधिकारे पछा शब्दे आवता भवनो अर्थ छे तथा आचारागसूत्रे जस्सपुबियिनो तस्सपछायिनो इहा पूर्व शब्दे पूठलो भव पछा शब्दे आवतो भव लीधो छे तथा ए भवे समकितनो लाभ ते घणो छे तथा तीर्थकर बाद्याना फलनो पाठ उवायि मय्ये तथा पचमहाप्रत पाल्यानो पाठ आचाराग मध्ये तिहा पण हियाए इत्यादिक पाठ छे ते वे ठेकाणे लाभ मानो ठो तो जिनप्रतिमा ठामे ना स्याने कहो छो अने किहा जिनप्रतिमा प्रजानो पाप कड्यो नथी अने होय तो देखाडो तुमे लिख्यु जे भगवते हिंसानी ना कही छे तेतो अमे किहा कहुछु जे हिंसा करवी, पण भगवते किसे सूत्रे प्रतिमा प्रजानी ना कही नयी प्रतिमानी ? ७ प्रकारनी पूजा सूत्रे कहीछे तथा तुमे

आभरणअल्हार पहैयां, घरयां निरुया ए रीते सिद्धार्थ राजा तथा रुसभदत्त, गुडरशन शैठ इम गुभद पुत्र श्रावकसखपुष्कली श्रावक कार्तिक शैठ गदना गया छे तेपारे कयत्रलिकम्मा तथा पठी घरे आनी साहमीपठल करीने दाक्षा छेवा निकल्या तेपारे न्हाया कयत्रलिकम्मा ए पाठ छे, इत्यादिक श्रावक अन्य देवनी पूजा न करे गोत्रज न पूजे, अरिहत देवनेज पूजे, तथा कोइ कहेस्ये कयत्रलिकम्मा पाठ कठीयारा प्रमुख अनेक यानके छे तेमा स्याना छे ? पोते जेहने देवबुद्धे माने ते तेहने पूजे तथा देवदत्त नालके कीम पूजा करी हशे तेतो नालकने मावीने पूजा करावी तो का न करे ? आज पण वालक पूजा करता दीसे छे तो कयत्रलीकम्मा ए पाठनो वीजो अर्थ शाने करो छे ? तथा दीक्षा महोच्छव घणा दीसे छे पण तिहा देहरा प्रतिमानो पाठ नयी तेहनो उत्तर जे दीक्षाने उतावला ययो तेवा, साधुने वहोराव्या रखा नयी तो देहरा कराववा तो घरे स्याने रहे ? अने पहेला देहरा प्रतिमा छे तेतो नदीसूत्रे आगमनो घणो पाठ जोस्यो तो सर्व समो पडशे तथा तुम्हे पुठ्यु जे तीर्थकरग्रहस्छपणे उता साधु साव्वी श्रावक श्राविकाए वाया नयी तेनो उत्तर घणा वाया छे तं पाठ ज्ञातासूत्रमा छे तथा तुमे लख्यो जे प्रतिमा एकेन्द्रिदल छे तेहवो वचन ससारनो जेहने भय नहुवे ते बोले ? जे कारणे श्रीभगवतीजी तो जिणपडीमा कही बोलावी छे देहराने सिद्धायतन कही बोलाव्यो तो तुमे कटोर वचन स्याने बोले छो तथा तुमे दिसीवदना कतो छो ते दीसी तो अजीव छे तो कीम वादो छो ? तिहा तुम्हे कहेस्यो जे अम्हारा मनमें तो सिद्ध छे तो जिनपडिमा वादता पिण अमारा मनमा सिद्ध छे तथा

नाण्नाओजिणवरोहिं ॥१॥ एहनो अर्थ गीतार्थ होय ते पोते विहार करे अथवा गीतार्थनी निश्राये विहार करवो एयी तिजो विहार अरिहते आज्ञा दीधी नयी ते माटे तुमे किस्या गीतार्थनी निश्राये विहार करो ओ, तथा योग उपधानवहीने सिद्धात भणे तेपण श्रावक आचारागादिक सूत्र भणे नही ते निशीथमा क्यो छे जे भिस्खुअन्नत्यीय वागारतियपवावायण वायजत्त साइज्जति तस्सचोमासीयपरिहारठाण जे ग्रहस्थने सूत्र वचावे अथवा वाचताने अनुमोदे तेहने चारमासनो पाल्यो चारित्र जावे तथा प्रश्न व्याकरणसूत्रे अट्केरिसीयपुणसबनुभासियव जत्थदद्वेहिगुणेहिंपज्जवेहि कम्महेहि बहुविहेहिं आगमेहि नामरकाय निपाय उवसग्ग तद्धिअ समास सधिपद जोग उणादि कीरियावीहीणसर धाउ सर विभत्ति वन्न जुत्त भासियव तथा अनुयोगद्वारे ७ नय ४ निक्षेपाकाल तिन, लिंग तीन, जाण्या पळी उपदेश देवो ते मारग नयी इत्यादिक अनेक बोल छे ते गीतार्थनी सेवनाथी पामीये इतिभद्र ॥ जे केइ श्रीजिनप्रतिमानी प्रजा मव्ये फूल पूजानी शका करे तेहने कहीये जे श्रीरायपसेणीसूत्रे १७ भेद प्रजाना पाठ छे पुष्फारुहण १ मालारुहण २ तहवन्नयारुहण ३ तथा पुष्फपगिहपुष्फपगर एतलीपूजा फूलनी छे ८ तेमाटे पूजा फूलनी ते प्रमाण छे तथा श्रीभगवतीसूत्रे पण सूरीयाभनी पेरे पूजानी भलामणना पाठ अनेक छे तथा ज्ञातासूत्रे द्रौपदीने अधिकारे १७ प्रकारी पूजाना पाठ छे तथा समवायागसूत्रे चोत्रीस अतिशयने अधिकारे " जलय थलय भासुरदसद्ववन्नजजाणस्सेहप्पमाणमित्तेण पुष्फप्रजोवयारकरइ इत्यादि पाठ छे" इहा समवायाग सूत्रमे देवता मनुष्यनो नाम क्यो नयी तथा श्रीउववाईसूत्रे

प्रतिमानी पूजा हिंसामे गणो त्रो ते इम नर्था प्रतिमानी पूजा  
तो प्रिनय तथा वेयापच उर्ममा छे. तथा पूजा हिंसामे गणी  
तो टाणागे नदीमे पडती साचीने साउ क्राटे तेमा हिंसा  
गणी नही, तथा आचारागसूत्रे बीजा साउ अजाणे पण शर्क-  
रानी भूछे लूण बीहरीने पछे जाणे जे लूण बीहरान्यो ते  
जाणी ते पोते साये ते पोते पाये तथा बीजा सायुसभोगीने  
आपे ते सायेपाए तथा साउ प्रियमाटे वेछने रूपने लताने  
गूठाना अमली उत्तरे जे ए पाठ आचारागसूत्रे छे तथा भग-  
वती सूत्रमे सायुना हरस काटे तेहने क्रियाकर्म लागे नहीं  
तथा मल्लिनाथजी पत्रलीमे कपला मूफ्या तेमाटे धर्म माटे  
हिंसा करी तथा सुबुद्धि मत्रिए पाणी पलटान्यो ते धर्म माटे  
करी पिण मदबुद्धी न कया ते भगवतीसूत्रे २५ मे शतके  
सायु शासन माटे तेजोलेइया मुके तेहने आराधक कछ्यो, तथा  
जबुद्धीपपत्रतीए निर्वाण महोउप कयों छे भूभकर्यातेजिणभक्तिए  
धम्मेत्तिए पाठछे इम केटला पाठ लीखीये ? अनेक पाठ छे ॥  
तथा नदी सूत्रे जे आगम कछ्या ते उत्थापीने ३२ मानो  
छो ते केनी आज्ञा छे ? तथा आवश्यक सूत्रपडिकमणा विना  
सायुपणो श्रावकपणो हुवेज नहीं ते तुम्हे आवश्यक सूत्रपडि-  
कमणो मानता नहीं तो श्रावकपणो ने सायुपणो केम धरो  
छो ? धरावो छो ? श्रीभगवतीसूत्रे सायु साची श्रावक श्राविका  
पचमाआराना छेहटा पर्यंत कछ्या छे ते तुमारी श्रद्धामे हिवणा  
सायु साची वीण छे ? तथा सूत्रे आचारज उपाध्याय कुल-  
गणनीनिश्राये विचरे ते आराधक ते तमे कोनी निश्राये  
विचरो छो ? ते छिखज्यो, तथा श्रीभगवतीसूत्रे गाथा छे ॥  
प्रढमोगीयत्थवीहारो वीयोगीयत्थयनिसीओभणीओ इत्तोतइयविहारो

नाण्नाओजिणवरेहिं ॥१॥ एहनो अर्थ गीतार्थ होय ते पोते विहार करे अथवा गीतार्थनी निश्राये विहार करवो एथी तिजो विहार अरिहते आज्ञा दीधी नयी ते माटे तुमे किस्या गीतार्थनी निश्राये विहार करो ओ, तथा योग उपधानवहीने सिद्धात भणे तेपण श्रावक आचारागादिक सूत्र भणे नही ते निशीथमा कह्यो छे जे मिखुअन्नत्यीय वागारतियवावा-यण वायजत्त साइज्जति तस्सचोमासीयपरिहारठाण जे ग्रहस्थने सूत्र वचावे अथवा वाचताने अनुमोदे तेहने चारमासनो पाल्यो चारित्र जावे तथा प्रश्न व्याकरणसूत्रे अटकेरिसीयपुणसवन्नुभासियव जत्थदवेहिगुणेहिंपज्जवेहिं कम्मोहि बहुविहेहिं आगमेहि नामरकाय निवाय उपसग्ग तद्विअ समास सधिपद जोग उणादि फीरियावीहीणसर वाउ सर विभत्ति वन्न जुत्त भासियवे तथा अनुयोगद्वारे ७ नय ४ निक्षेपाकाल तिन, लिग तीन, जाण्या पछी उपदेश देवो ते मारग नयी इत्यादिक अनेक बोल छे ते गीतानी सेवनाथी पामीये इतिभद्र ॥ जे केइ श्रीजिनप्रतिमानी प्रजा मय्ये फूल पूजानी शका करे तेहने कहीये जे श्रीरायपसेर्णासूत्रे १७ भेद पूजाना पाठ छे पुष्फारुहण १ मालारुहण २ तहवन्नयारुहण ३ तथा पुष्फपगिहपुष्फपगर एतलीप्रजा फूलनी छे ८ तेमाटे पूजा फूलनी ते प्रमाण छे तथा श्रीभगवतीसूत्रे पण सूरीयाभनी पेरे पूजानी भलामणना पाठ अनेक छे तथा ज्ञातासूत्रे द्रौपदीने अधिकारे १७ प्रकारी पूजाना पाठ छे तथा समवायागसूत्रे चोनीसँ अतिशयने अधिकारे “ जलय थलय भासुरदसद्ववनेणजाणुस्सेहप्पमाणमित्तेण पुष्फप्रजोवयारकरेइ इत्यादि पाठ छे” इहा समवायाग सूत्रमे देवता मनुष्यनो नाम कह्यो नयी तथा श्रीउववाईसूत्रे

प्रतिमानी पूजा हिराम गणो ओ ते इम नर्था प्रतिमानी पूजा तो विनय तथा नेयान्न धर्ममा छे. तथा पूजा हिंसामे गणी तो टाणामे नदांभ पडनी साव्वीने साउ काडे तेमा हिंसा गणी नही, तथा आचारागमूने नीजा साउ अजाणे पण शर्करानी भूछे लूण वीहरीने पछे जागे जे लूण वीहराव्यो ते जाणी ते पोते खाये ते पोते पीये तथा नीजा साउसभोग्गिने आपे ते खायेपाण तथा साउ पिपमपाटे वेळने रूपने लताने गूग्रना अचरनी उत्तर जे ए पाठ आचारागमूने छे तथा भगवती सूत्रमे साधुना हरस ऋडे तेहने क्रियाकर्म लागे नही तथा महिनाथजी पत्रलीमे कवला मूर्या तेमाटे धर्म माटे हिंसा करी तथा सुबुद्धि मत्रिण पाणी पलटाव्यो ते धर्म माटे करी पिण मदबुद्धी न कया ते भगवतीसूत्रे २५ मे शतके साधु शासन माटे तेजोलेइया मुके तेहने आराधक कख्यो, तथा जंबूद्वीपपत्रत्तीए निर्वाण महोउव कर्यो छे धूमकर्यातेजिणभत्तिए धम्मत्तिए पाठ छे इम केटला पाठ लीखीये ? अनेक पाठ छे ॥ तथा नदी सूत्रे जे आगम कख्या ते उत्थापीने ३२ मानो छे ते केनी आज्ञा छे ? तथा आवश्यक सूत्रपडिकमणा विना साधुपणो श्रावकपणो हुवेज नही ते तुम्हे आवश्यक सूत्रपडिकमणो मानता नथी तो श्रावकपणो ने साधुपणो केम वरो छे ? धरावो ओ ? श्रीभगवतीसूत्रे साधु साव्वी श्रावक श्राविका पचमाआराना छेहटा पर्यंत कख्या छे ते तुमारी श्रद्धामें हिवणा साधु साव्वी कोण छे ? तथा सूत्रे आचारज उपाध्याय कुलगणनीनिश्राये विचरे ते आराधक ते तमे कोनी निश्राये विचरो छे ? ते लिखज्यो, तथा श्रीभगवतीसूत्रे गाथा छे ४ प्रढमोगीयत्थ्वीहारो बीयोगीयत्थयनिस्तीओभणीओ इत्तोतइयविहारो



स्सीओजावअण्णेअहवेवाणमतरादेवादेवीउ अप्पेगतियाउप्पलहत्थ-  
गताजावसतसहस्सपत्तहत्थगयाविजयदेवपिड्डओअणुगच्छइरत्ता ”

इहा फूल चूटी लीधा छे ए आलावे विजयदेवे पोते  
वावडीमें उतरीने फूल चूटी लीधा तथा सामानिक देवता तथा  
बीजे देवताये पिण फूल पोताना हाथयी लीधा छे इहा कोइ  
पूठस्ये जे तिहा कोइ माली नयी ते माटे पोते लिधा तेहनो  
उत्तर जे माली नयी पिण देवता चाकर लोक घणा छे तेहनेज  
पासे का न मगावे जो पुष्प आण्यानो विधि होवे तोपण  
पोताना हाथयी लीधानो विधि छे तेमाटे पोते वावडी मध्ये  
उतरी लीधा छे तथा श्रीरायपसेणीसूत्रे सूरीआभाधिकारे

“ ततेण से सरियाभेदेवे पोत्थरयणगिण्हइ, पो र गि ता  
पोत्थरयणमुयइ, पोत्थरयणविहाडेइ, ता २ पोत्थरयणवाणति, ता २  
धम्मियववसायगिण्हइ, २ ता पोत्थरयणपडिणिकखमति २ ता  
सीहासणाओअम्मट्टेइ २ ता ववसायसभाओपुरत्थिमिल्लेण दारेण  
पडिणिकखमइ २ ता जेणेव णदापोरकरिणि तेणेव उवागच्छइ  
२ ता णदापोकखरिणी पुरत्थिमल्लेण तोरणेणतिसोयाणपडिरूवेण  
पच्चोरुहत्ति २ ता हत्थपायपकखालेइ २ ता आयते चोफ्फे  
परमसुइमूए एगसेयमहरययामय विमलसलि लपुण्ण मत्तगयमुहा-  
गितिसमाणभिगार पगिण्हति पच्चोरुहइ २ ता जाइतत्थउप्पला-  
इजावसयसहस्सपत्ताइगिण्हति णदाओ पुफ्फखरिणीओ पच्चोरुहइ  
२ ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेगमणाए तएण त मूरिया-  
भदेव चत्तारिसामाणियसाहस्सीओ जाव सोलसआयरफ्फखदेवसा-  
हस्सीओ अण्णेयबह्वेसरियाभविमाणे जाव देवा देवीओअप्पे-  
गइया उप्पलहत्थगया जावसत्तसहस्सपत्तहत्थगया सूरियाभ  
देवपिड्डओसमुण्णगच्छति ततेण सूरियाभदेवअहवेआभिओगिय



स्त्रीओजावअण्णेप्रह्वेवाणमतरादेवादेवीउ अप्पेगतियाउप्पलहत्थ-  
गताजावसतसहस्सपत्तहत्थगयाविजयदेवपिट्ठओअण्णुगच्छइरत्ता ”

इहा फूल चूटी लीधा छे ए आलावे विजयदेवे पोते  
वावडीमें उतरीने फूल चूटी लीधा तथा सामानिक देवता तथा  
वीजे देवताये पिण फूल पोताना हाथयी लीधा छे इहा कोइ  
पूठस्ये जे तिहा कोइ माली नयी ते माटे पोते लिधा तेहनो  
उत्तर जे माली नयी पिण देवता चाकर लोक घणा छे तेहनेज  
पासे का न मगावे जो पुष्प आण्यानो विधि होवे तोपण  
पोताना हाथयी लीधानो विधि छे तेमाटे पोते वावडी मध्ये  
उतरी लीधा छे तथा श्रीरायपसेणीसूत्रे सूरिआभाधिकारे

“ ततेण से सरियाभेदेवे पोत्थरयणगिण्हइ, पो र गि ता  
पोत्थरयणमुयइ, पोत्थरयणविहाडेइ, ता २ पोत्थरयणवाएति, ता २  
यम्मियववसायगिण्हइ, २ ता पोत्थरयणपडिणिकखमति २ ता  
सीहासणाओअच्चमूडेइ २ ता ववसायसभाओपुरत्थिमिल्लेण दारेण  
पडिणिकखमइ २ ता जेणेव णदापोरकरिणि तेणेव उवागच्छइ  
२ ता णदापोकखरिणी पुरत्थिमिल्लेण तोरणेणतिसोयाणपडिख्वेण  
पच्चोरुहत्ति २ ता हत्थपायपकखालेइ २ ता आयते चौक्खे  
परमसुइमूए एगसेयमहरययामय विमलसलि लपुण्ण मत्तगयमुहा-  
गितिसमाणमिगार पगिण्हति पच्चोरुहइ २ ता जाइतत्थउप्पला-  
इजावसयसहस्सपत्ताइगिण्हति णदाओ पुक्खरिणीओ पच्चोरुहइ  
२ ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेगमणाए तएण त सूरिया-  
भदेव चत्तारिसामाणियसाहस्सीओ जाव सोलसआयक्खदेवसा-  
हस्सीओ अण्णेयवह्वेसूरियाभविमाणे जाव देवा देवीओअप्पे-  
गइया उप्पलहत्थगया जावसत्तसहस्सपत्तहत्थगया सूरियाभ  
देवपिट्ठओसमुण्णुगच्छति ततेण सूरियाभदेवप्रह्वेआमिओगिय

देवाय देवीओय अप्णेगइयाअन्त्रसहृत्वगपाओ जात्रअप्णेगइया वू  
 ररुडअहृत्वगपा दृष्टतुष्टाजात्रजामूरियाभ देवपिट्टओसमण्णुगच्छति  
 तेतेण णे सूरियाभेदेने चउहि सामाणियसाहस्सीहिजात्रअप्णेहियम-  
 हृहिंसूरियाभविमाणवासीहि देवेहि देवीदियसाद्विसपरिवुडेसावृष्टीए  
 जात्रणाइपरत्तेण जेणेव सिद्धाययणे तेणेव उपागन् उइ सिद्धायणपुर-  
 त्तिमिल्लेण दारेणे अणुपविसति २त्ता जेणेव देवउदए जेणेव जिण  
 पडिमाउ तेणेव उपागन् उइ जिणपडिमाणआलोए पणामकरेति २त्ता  
 लोमहृत्वगगिण्हइ २त्ता जिणपडिमाण लोमहृत्वएण पमज्झइ  
 २त्ता जिणपडिमाओमुरभिणागधोदएणण्टाणेनि ण्हाणित्तासरसेण  
 गोसीसचदणेणगायाण अणुलिप्पइ २त्ता जिणपडिमाणअहि-  
 याइदेउदसाइ जुयलाइ णियसेइ २त्ता पुण्फस्सहण मल्लारहण  
 च्चण्णारूहण गवारूहण उण्णारूहण चुण्णरूहण वत्थारहण  
 आमस्सहण करेइ करेत्ताआसत्तासत्तविउलवववग्गवारियमल्लदामक-  
 लाव करेइ २त्ता कयग्गहगहित्तकरयल पम्भट्ट विप्पमुक्केण दस-  
 द्वउण्णेण कुसुमेण सुक्कपुण्फ पुजोवयारकलिय करेति करेत्ता जि-  
 णपटिमाण पुरतोअच्छेहिंसण्हेहिंसेएहिरयणामएहिं अच्छरसतडुले-  
 हिं, अट्टट्टमगळेआलिहइ तजहासत्थियजावदप्पणतयाण तरचणचद-  
 प्पहरयणवइरवेरुलियविमलदडकचणमणिरयणभत्तिचित्तकालागुरुप-  
 वरकुदस्सक तुरुक्कवूवमवमघतगवत्तामाणुचिट्ठति वूववट्ठिविणिमुयत  
 वेरुलियमयकडुळयपग्गहियपयतेणधूवदाऊण जिणवराण अट्टसय-  
 विसुद्धगधजुत्तेहिंअपुणरत्तोहि महाचित्तेहि सथूणइ सत्तट्टपयाहि  
 पच्चोसरूहइ २त्ता वामजाणुअवेइ दाहिण जाणुधराणितलसिनिहट्टड-  
 तिकखूत्तोमुद्दाण वरणितलसि णिव्वोडेत्ति २त्ता इसपच्चूणमइ  
 इंसिपच्चूणमित्ता करयलपरिग्गहियसिरसावत्त मत्थएयज एव-  
 वयासी णमोत्थुणअरिहताणजावसपत्ताणवदति णमसइ २त्ता



છે તિહા પૂજા તે ત્યા ફક્ત છે તે પાઠ છિસ્ત્રીંડ છે. અમ-  
 ઉસન્વસાવિજનાપાજો પુસ્તકપદ્ધત્તીપયાવિમલપ્યમાનિમ્મલકગતિ  
 પુમાણિનિયગુણનિમ્મિયાડપજ્જાપનામાણિનિ અહિંસાપ ભગવદ્  
 પુ ઇત્યાદિ પાઠે પૂજા તે અહિંસામે ગર્ગી છે, તો તુમ્હે  
 હિંસામે કિમ ગળો ઓ ? તયા ભગવતી મૂને “ શુભયોગપટ્ટવ-  
 અળારમા ” પુ પાઠ શુભયોગ પ્રશ્તિને આરભના ના કર્હા છે  
 વિનય તયા વેયાવચ્ચ તે તપના મેદ છે તપ તે મોક્ષમાર્ગ-  
 મધ્યે શ્રીઉત્તરાધ્યયને ૨૮ મે અધ્યયને વ્યો તે તુમે હિંસામે  
 કેમ કહો ઓ ? તયા વિવહારમૂને સિદ્ધવેયાવચ્ચેણ મદ્દાનિજ્જ-  
 રામહાપજ્જપસાળભવતિ” તેમાટે સિદ્ધવેયાવચ્ચ તે પૂજા છે તયા  
 કોડ પૂછે જે શ્રાવકે પ્રતિમા કિહા પુર્જી છે તેહને કેહવો  
 જે શ્રીભગવતીમૂને તૂર્ગીયા નગરીને શ્રાવકે પુજા કરી છે શશ્વ  
 પુષ્કલીયે પૂજા કરી છે તયા સમયાયાગમૂને દ્વાદશાગીની  
 હૂડીને અધિકારે ઉપાસકદશાની હૂડીમધ્યે દશ શ્રાવકના  
 ચૈત્ય એહથો પાઠ છે એ પાઠમે ચૈત્ય તો સાવુ થાય નહીં,  
 જાન થાય નહીં, વૃક્ષ થાય નહીં તે સર્વના પાઠ જુદા છે,  
 તયા નદીમૂને પિણ પાઠ છે તયા નદીમધ્યે જે આગમ કહ્યા  
 તે સર્વ માને તેજ સમક્તિ જાણવો શ્રીઅનુયોગદ્વારમૂને નિ-  
 ર્યુક્તિની હા કર્હા છે તે નિર્યુક્તિમધ્યે પૂજાના અનેક અધિ-  
 કાર છે, તયા તદૂલ્લવેયાલીપયન્નાની ટીકામધ્યે સમવસરણના ફૂલ  
 સચિત્ત તે ઉપર સાવુ સાન્વી ચાલે પ્રવચનસારોદ્વાર ટીકાયે પળ  
 એ મત છે તયા કોડ કહેરયે જે ફૂલને પ્રોડ નહો તેહને વહીયે  
 જે હીરપ્રશ્નમધ્યે કહ્યુ છે તે પાઠ ॥ શ્રાદ્ધવિનકૃત્ય તયા પચાસ-  
 કમધ્યે ફૂલ પ્રોવાનો પાઠ છે તેહ હીરપ્રશ્નમધ્યે જોડ લેજ્યો ॥

# ॥ गुणठाणाधिकार ॥

( आगमसारान्तर्गत )

प्रथम गुणठाणानो विचार लखीइ छे प्रथम मिथ्यात्वगुणठाणु १, सास्वादनगुणठाणु २, मिश्रगुणठाणु ३, अविरत समकित गुणठाणु ४, देशपिरति गुणठाणु ५, प्रमत्तगुणठाणु ६, अप्रमत्तगुणठाणु ७, अपर्वकरण गुणठाणु ८, अनिवृत्तिनादर गुणठाणु ९, सूक्ष्मसपराय गुणठाणु १०, उपशातमोह गुणठाणु ११, क्षीणमोह गुणठाणु १२, सयोगीकेवली गुणठाणु १३, अयोगिकेवलि गुणठाणु १४, अरिहतनाभाख्या वचन साचा करी सदहेनहि ते मिथ्यात्व गुणठाणो कहीइ, तेहना भेद पाच छे अभिगहिय मिथ्यात्व जे लीधो हठ मुकी सके नही १, अनभिग्रहिक मिथ्यात्व जे देव तथा कुदेव तथा गुरु तथा कुगुरु वर्म, अवर्म सरिखा करी माने परीक्षाबुद्धीनही २, अभिनिवेशमिथ्यात्व जे खोटाने खोड जाणे पण हठ मुकि सके नही ३, साशयिक मिथ्यात्व जे केवलिनाभाख्या वचन तेमा सशय उपजे प्रीपरतीत आवे नही ४, अनाभोग मिथ्यात्व जे काई जाणपणु उपजे नहि एकद्वीविकलेद्वीनी पेरे तथा श्रीठाणागसूत्रे मिथ्यात्वना दसबोल कहा छे, जीवने अजीव करी माने ते मिथ्यात्व १, तथा अजीवने जीव करी माने ते मिथ्यात्व २, तथा वर्मने अवर्म करी माने ते मिथ्यात्व ३ तथा अवर्मने वर्म करी माने ते मिथ्यात्व ४, मोक्षमार्ग ज्ञानदर्शन चारित्रतप तेहने मोक्षमार्ग न माने ते मिथ्यात्व ५, तथा मोक्षनो मार्ग नथी ससारनो हेतु छे तेहने मोक्षमार्ग करि माने ते मिथ्यात्व ६, तथा मोक्ष गया नथी तेहने मोक्ष माने

ते मिथ्यात्व ७, जे मोक्ष गया तेहने मोक्ष न माने ते मिथ्यात्व ८, जे सातु विषयविचार त्यागी तेहने जसातु माने ते मिथ्यात्व ९, तथा जे सातु नर्वा तेहने सातु करी माने ते मिथ्यात्व १० ते मिथ्यात्वनां चाल तीन प्रकारनी छे देवगत मिथ्यात्व ते ह्दये मराणि तेहने देव करी माने १, बीजो गुरुगत जे गुरुने गुरु करी माने बीजो पर्यगत मिथ्यात्व ससारिपरने वर्मनापर करी माने ते मिथ्यात्व ते मिथ्यात्वनी स्थिति तीन प्रकारनी छे अनादि जनननी अभय जीवने, अनादि सात भयजीवने, सादिसात पड्याइने, ते जन्य अतमुद्धृत उत्क्रथ अर्द्रपुद्गल्परापत्त काईक उणी छे बीजु गुणठाणु सास्वादन ते कोईक जीव उपसमकितयी पटतो मिथ्यात्व गुणठाणे पोतो नवी वचे उजावळिका रहे ते सास्वादन गुणठाणु कहीइ तेहनो दृष्टात छे कोइ पुरुष सीरखाड वृत जमीने तुरत वमतो होइ ते जमता काईक स्वाद आवे तिम समकितयी पटता पिण काइक जासना रहे तेहने सास्वादन कहीइ २ बीजो गुणठाणो मिश्र कोइ जीव क्षयोपशम समकितयी पडी मिश्रमोहनीने उदये मिश्रगुणठाणे आवे अथवा मिथ्यात्वयी निकली समकित गुणठाणे आवता वचे मिश्रमोहनीने उदये मिश्र गुणठाणे आवे ते जीव अतमुद्धृतकालसीम रहे एहने समकित मिथ्यात्वदृष्टि कहीइ एहनो दृष्टात कहे छे जे कोई जीव नालियरदीपमा वसतो होइ ते नालियरखाइ तेहने अनदीठे राग न उपजे तेम द्वेष पण न उपजे तिम ए जीवने जिनवर्म साचो साभलता राग पण न उपजे द्वेष उपजे नही एहवा जीवने मिश्रगुणठाणु कहीइ एहनी स्थिति अतमुद्धृतनी ३ चोथो अविरत समकित, तेहना वे भेद छे वण छे, तेहनो



पेहलो भेद उपसमसमकित जे जीव अनादि मिथ्यात्व सज्ञी पचेन्शी पर्याप्तो कोई कारण पामीने ससारयी उभगे नरक निगोदयी ते पामे, जनममरणना हु खयी वीहे तेवारे ए सर्व ससार खोटो जाणे, वर्म जाणवानी रुचि घणी करे, दयापाले, क्लनदे, तप करे, श्रावकना वार व्रत पाले, साजुना महाव्रत पाले ते जीव यथाप्रवृत्तिकरणे वर्तता कहीइ, एतली करणीसुधी भव्य तथा अभव्य जीव आवे, नवग्रेवेयकसुधी जाए पण समकित पाम्यो नयी ते माटे लेखामा नावे, तोपण कोई जीव वैराग्य परिणाम सहित ससारने असार जाणतो साचा वर्मनी परीक्षा करतो सातकर्मनी वीति उत्कृष्टी खपावे, एक कोडाकोडी सागरोपम चाक्री वीति सातकर्मनी रहे तेवारे अपूर्वकरण करे तेवारे एक ज्ञान मार्ग साचो कश्च माने, उद्दिग्दमभाव जाणवानी विशेष याड तेवारे पछे एक आत्मा पोताना शरीरने पिपे र्ह्यो, पण अशरीरिछे अरुपी छे, अविनासी छे, अनतज्ञानमयी अनतदर्शनमयी, अनतचारित्रमयी, अनतअगुरुलघुमयी, अनततपमयी, अनतवीर्यमयी, निर्मल अलेप अखड छे, तेहना प्रदेश असख्याता छे, प्रदेशे २ अनता गुण अनता पर्यायछे, उपयोग लक्षण ते माहरो वर्म छे, ए वर्म जे जे करता प्रगट थाये, गुणीश्री, अरिहत, सिद्ध, आचारज, उपाव्याय, साबु तथा सिद्धात तेहनो विनय तथा वैयावच्च करवो, अरिहतना आगम प्रमाणप्रतीत राखे ते समकित कहीइ, ते समकितना तिन भेद छे उपसम समकित ? क्षयोपशम समकित २ क्षायकसमकित तिहा अनतानुप्रधिकपाये मिथ्यात्वमोहनी, मिश्रमोहनी, समकितमोहनी एसातप्रकृति उदये आवे ते खपावी अने उदये नयी आवी ते विपाकेउपसमावी छे, प्रदेशे उदये छे, समकितमोहनी उदय

ते मिथ्यात्व ७, जे मोक्ष गया तेहने मोक्ष न माने ते मिथ्यात्व ८, जे सातु विषयविहार त्यागी तेहने असातु माने ते मिथ्यात्व ९, तथा जे सातु नयी तेहने सातु करी माने ते मिथ्यात्व १० ते मिथ्यात्वनी चाल तीन प्रकारनी छे देवगत मिथ्यात्व ते श्रद्धेय सरागि तेहने देव करी माने १, बीजो गुरुगत जे गुरुने गुरु करी माने बीजो परमगत मिथ्यात्व ससारिपरने वर्मनापर करी माने ते मिथ्यात्व ते मिथ्यात्वनी स्थिति तीन प्रकारनी छे अनादि अनतनी अभय जांयने, अनादि सात भयजांयने, सादिसात पड्याइने, ते जवन्य अतमुद्धृत उत्क्रशे अर्द्धपुद्गल्पपरापत्त काईक उणी छे बीजु गुणठाण सास्वादन ते कोईक जांय उपसमकितयी पटतो मिथ्यात्व गुणठाणे पोतो नयी वचे उजायलिका रहे ते सास्वादन गुणठाण कहीइ तेहनो दृशात छे कोइ पुरुष सीरखाड वृत जमीने तुरत वमतो होइ ते प्रमता काईक स्वाद आवे तिम समकितियी पटता पिण काइक वासना रहे तेहने सास्वादन कहीइ २ बीजो गुणठाणो मिश्र कोइ जांय क्षयोपशम समकितयी पडी मिश्रमोहनीने उदये मिश्रगुणठाणे आवे अथवा मिथ्यात्वयी निकली समकित गुणठाणे आवता वचे मिश्रमोहनीने उदये मिश्र गुणठाणे आवे ते जीव अतमुद्धृतकालसीम रहे एहने समकित मिथ्यात्वदृष्टि कहीइ एहनो दृशात कहे छे जे कोई जीव नालियरदीपमा वसतो होइ ते नालियरखाइ तेहने अनदीठे राग न उपजे तेम द्वेष पण न उपजे तिम ए जीवने जिनधर्म साचो साभलता राग पण न उपजे द्वेष उपजे नही एहवा जीवने मिश्रगुणठाण कहीइ एहनी स्थिति अतमुद्धृतनी ३ चौथो अविरत समकित, तेहना बे भेद छे प्रण छे, तेहनो

साचा जाणे ते निसर्गरुचि ? अभिगमरुचि जे जिनागमनासूक्ष्म अर्थ जाणवानी रुचि गुरुना मुख्या उपदेश्या जाणे ते उपदेशरुचि २ श्रीअरिहतकेवलीना कद्या वचननी आणा प्रमाण करे ते आणारुचि ३ मूर्खरुचि जिनसूत्र साभलता साचा मारगनी परतीत उपजे समकित पामे ४ वीजरुचि सिद्धातनु एकपद साभलता वयात्रोलनु जाणपणु आवे श्रद्धासमीयाड ५ अभिगमरुचि जे ११ अगादिक ८४ आगम तथा निर्युक्तिभाष्य चर्णिटीकाना अर्थ जाणे सर्व शोलना परमार्थ जाणवानी रुचि ६ विस्ताररुचि ६ द्रव्यनाभाष ४ निक्षेपेसातनये करी च्यार प्रमाणे करी जाणे ७ क्रिया रुचि जे जीव जिनशासननी क्रिया साची करी सूत्रमा कही ते रीते कर आधीपाठी न करे ८ सक्षेपरुचि, जे जीव सिद्धातना जाणगीतार्थ आगमने अनुसारे जे अर्थ कहे ते साचा करी माने ९ वर्मरुचि, आतमानो वर्म जानदर्शन चारित्रमयी अरूपी आतमानो परिणाम भावदया प्रमुख गुणी श्री अरिहतादिकनो बहमान वेयावच्च ते वर्म करी माने धीजा बाह्य तपनाह्य किरिया जे आगमना कद्या परमाणे करे ते वर्मनो कारण करी माने ते वर्मरुचि समकित मोक्षमार्ग मूल छे, समकित विना जे करणि ते ससार खाते छे (पण) मोक्षमारगनी न जाणे ए चोथो गुणटाणो कह्यो ४ पाचमो देशविरति गुणटाणो इहा जीवने व्रतपञ्चखाण आवे जघन्ये एक नवकारसीपञ्चकाण तथा कदमूलना पञ्चखाण साची श्रद्धा सहीत थया होवे तेहने श्रावक कहीइ उत्कृष्टे इद्रीसुखनी वाळा विना श्रावकना वारव्रतपाळे ते उत्कृष्टो श्रावक कहीइ वारव्रतना नाम ? स्थलप्राणाति पात विमरण, जे व्रस जीवने निरापराध हणे नहि २ स्थलमृषावादा विमरण, जे मोटका पाच

आफ्रो छे तेणे समाप्तिमा अतिचार लागे ते तेहने अयो-  
 पशम समाप्ति रुडीइ, एहनी नियमि नान्य अतर्मुहूर्त छे  
 उनूहृष्टि ६६ साठठिसागरोपम केनलाएक मास्यभय अधिक  
 एतली स्थिति रहे ए समाप्तिने पाच अतिचार लागे तेहना  
 नाम ॥ सका जे आगममा रुद्रो ते साचो धिण कार्दक सदेह  
 उपजे १, अतिचार ॥ करुा वीजा मतना ग्राह्य तथा देव  
 हरिहरादिक सगमि तथा ते मन गुरुमाचारे तेहने कार्दक  
 रुद्रापणे जाणि यात्रा करिण २ अतिचार, विनिगडाजे वर्मअ-  
 रिहतनो कपो करीइ पण एहनो फल वामे के नहीं थाय  
 अथवा जिन सासनयी वीजा कार्दक वीजा मतनी करणी रुडी  
 छे एहवो परिणाम आपे ते वीजो ३ अतिचार पसस जे  
 परमतनी परससा करे जे वीजा मतना देव तथा लिंगियाता  
 कष्टकरणी तथा कोई चमत्कार देखीने ते उपरे राग आवे  
 तेहने पगे लागे तेहना गुण बोले ए चोयो ४ अतिचार  
 जाणवो ॥ सयवो जे वीजा मतना देव तथा गुरु तथा ते मतना  
 जे सेवक तेहनो परिचय भेलाप घणो करे वीजा मतनी वात  
 करे साभले पाचमो अतिचार ॥ ए क्षयोपशम समकित एक  
 जीवने असख्यातीवार आवे अने वली असख्यातीवारजाए, जे  
 आगमने आवारे राखे तेहने रहे तेपळे क्षायिक समकित थाइ  
 ते क्षायिकनो अर्थ लिखीइ छे अनतानुवधी च्यार ४ मिथ्यात्व  
 मोहनी १ मिश्रमोहनी २ समकितमोहनी ३ ए सात प्रकृति  
 सर्वथा जे जीव खपावीने निरमलीपरतीतकिधी ते क्षायिकसम-  
 कित्ती कहीइ ए आव्या पळे जाय नहा ए समकितवाला जी-  
 वने दस जातिनी रुचि उपजे ते लिखीइ छे निसर्गरुचि नव  
 त्त्व ९ छे द्रव्य तेहना ४ निक्षेपा सातनय पोतानी बुद्धियी

साचा जाणे ते निसर्गरुचि ? अभिगमरुचि जे जिनागमनासूक्ष्म अर्थ जाणवानी रुचि गुस्ना मुखयी उपदेशयी जाणे ते उपदेशरुचि २ श्रीअरिहतकेवलीना कद्या वचननी आणा प्रमाण करे ते आणारुचि ३ सूत्ररुचि जिनसूत्र साभलता साचा मारगनी परतीत उपजे समकित पामे ४ वीजरुचि सिद्धातनु एकपद साभलता वधापोलनु जाणपणु आवे श्रद्धासमीयाइ ५ अभिगमरुचि जे ?? अगादिक ८४ आगम तथा निर्युक्तिभाष्य चृणिटीकाना अर्थ जाणे सर्व बोलना परमार्थ जाणवानी रुचि ६ विस्ताररुचि ६ द्रव्यनाभाव ४ निक्षेपेसाननये करी च्यार प्रमाणे करी जाणे ७ क्रिया रुचि जे जीव जिनशासननी क्रिया साची करी सूत्रमा कही ते रीते कर आधीपाळी न करे ८ सक्षेपरुचि, जे जीव सिद्धातना जाणगीतार्थ आगमने अनुसारे जे अर्थ कहे ते साचा करी माने ९ वर्मरुचि, आतमानो वर्म जानदर्शन चारित्रमयी अरुपी आतमानो परिणाम भावदया प्रमुख गुणी श्री अरिहतादिकनो ब्रह्मान वेयावच्च ते वर्म करी माने वीजा ग्राह्य तपग्राह्य किरिया जे आगमना कद्या परमाणे करे ते वर्मनो कारण करी माने ते वर्मरुचि समकित मोक्षमार्ग मूल छे, समकित विना जे करणि ते ससार खाते छे (पण) मोक्षमारगनी न जाणे ए चोथो गुणठाणो क्ह्यो ४ पाचमो देशविरति गुणठाणो इहा जीवने व्रतपञ्चखाण आवे जवन्ये एक नवकारसीपञ्चकाण तथा कदमूलना पञ्चखाण साची श्रद्धा सहीत थया होवे तेहने श्रावक कहीइ उत्कृष्टे इंद्रीसुखनी वाञ्छा विना श्रावकना वारत्रतपाळे ते उत्कृष्टो श्रावक कहीइ वारत्रतना नाम ? स्त्रलप्राणाति पात विमरण, जे तस जीवने निरापराध हणे नहि २ स्त्रलमृषाराद विमरण, जे मोटका पाच

कर्णालीक १, गार्गीक २, भौमाष्टिक ३, थापिणमोसो ४,  
 कुर्डीसारु नरोले ५ ॥ ३ भूलजदत्तादान विरमण, जे चोरी कीवे  
 राजा दडे तथा च्यार दंड माणम टपको दे अय्या पोताने  
 भय लागे अय्या सामाना जांरने प्राप्को पडे ते मोटी चोरी  
 करवी नहि ४ भूलभैयुन विरमणव्रत, जे परस्त्री मनुष्यणी तथा  
 तिर्यचणी तथा देवतानी भोगप्रीनहीं पाच इद्राना स्वाद घणा  
 मगनपणे सेवे नहीं ५ भूलपरिग्रह विरमण जे वनादिक नव  
 भेदनो परिग्रहनो पञ्चखाण कर, ईद्रा परिमाण कर अयवा  
 पोता पासे जे वन द्रोड ते रागी मीजानो पञ्चरकाण करे ६  
 दिकु परिमाणव्रत जे च्यार दिश तथा ऊचो तथा नीचो दिसी  
 जावानो मान करे ७ भोगोपभोग परिमाण व्रत जे नीम सा-  
 चवे पन्नर कर्मादान न कर, जे पोताने खावेपीने तथा वस्त्रोनु  
 मान राखे ८ अनर्थ दंड विरमणव्रत, ते जे मोटका पाप रगवा  
 खेतर खेडवा, भाठी जे चूना प्रमुखनी करवाना पञ्चरकाण  
 करे ९ सामायिकव्रत जे जवन्य २ घडी सुद्धी ससारना काम  
 मूकी कुडन वननो राग तर्जी कोड्यी द्वेष न करवो एहवो  
 समपरिणाम राखवो ते सामायिक कहिड १० देसावगासिक-  
 व्रत जे बे घडीयी च्यार पोहोरयी उणुकाल दिसनु मानकरि-  
 थीरचित्तसमतापणे रहेवु ते देसावगासिकव्रत जाणवु ११ पो-  
 षधव्रत च्यार पोहर अथवा आठ पोहोर सूधी समतापणे  
 साधुपेरे श्रावकवरते, मन वचन काया समताइ राखे ते पोष-  
 धव्रत कहीड १२ अतिथिसविभाग बारमुव्रत जे श्रावक जे  
 ते साधुने विहरावीने पछे जिमवु जो तेहवा साधुनो  
 योग न मिले तो साधर्मिक श्रावकने जीमाडीने जमवा  
 बेसवु बेठा पछे थोडीसीकवार साधुजीनी वाटजोवी इम करता

साधुजी नाव्या तो एहवी भावना भाववी जे वन ते श्रावक  
जे साधुजीने वहोरावीने जिमता हस्ये इम करता चितवी  
जिमवा वेसे ए वारवत वरे ते श्रावक कहीइ श्रावकने जवन्व  
३ वार उत्कृष्टे ७ वार चैत्यवदन करवु, अरिहतदेवसिद्ध भग-  
वतने वदना करवी तथा नित्य पडिक्कमणु वे वार करवु जो  
नित्य न याये तो पाखीनो पटिकमणु नियमा करवु तथा  
पञ्चरकाण प्रभातना नोकारसी, अवस्य साचववी, रात्रिचउ  
विहार तिविहार दुविहार ए ३ माहि एक पञ्चरकाण अवस्य  
करवु ए पाचमा गुणठाणानी स्थिति जवन्व अतमुद्धर्त्त  
उत्कृष्टे उणी पूर्वकोडी र्पनी जाणवी ए जीव अढार  
पाप स्थानक आलोइने निर्मल ययो चारित्रफरसे ते कहे  
छे, अथ अढारे पाप स्थान लिखाइ छे कोइ भव्य जीव अ-  
वसर पामीने जैनागम सृणता ससारथी उभग्यो थको मोक्ष  
सुखनो अमिलाष करे पण आलवन विना कार्य नीपजवो  
दुक्कर छे तेयी प्रथम देवतच्च श्री वीतराग अनत ज्ञानमय  
अनतदर्शनमय शुद्ध स्वरूपी आत्म रुद्धिभोगी आत्मालवी अ-  
त्मपरणामी जेहने अवलवीने अनता जीव अव्याप्राध सुख  
वरे ते देवतत्व तेहने सेववे सर्व जीव ससारभयथी छुटे तथा  
निग्रथपच महाव्रतवारी सवरस्वरूपी एक निर्मल मोक्षमार्गने विषे  
जेहनी दृष्टि छे, शरीर इद्रिय, कषाय, जोगनी प्रवृत्तिजापता  
मुनिराज अतीतकाल विषय सभालता नथी, वर्त्तमानविषे रम  
णता नथी, अनागतकाल विषयनी आससा नथी, पोताना अनत-  
गुणपर्याय निर्मल करवाने उत्कृष्ट उद्यमवत छे ते साधु महा-  
त्मा गुरुपणे वारवा, तथा वर्मतच्च जे जीव द्रव्य असख्यात  
प्रदेशी स्याद्वाद रीते पोतानी गुणपर्याय परणति ते वर्म श्री

रूपार्थीरु १, गराश्रीरु २, भौमाष्टिक ३, थापिणमोसो ४, कुडीसात्त नमोले ५ ॥ ३ भूतअदत्तादान प्रिमण, जे चोरी कीवे राजा दडे तथा न्यार दडा माणम टपफो दे अथवा पोताने भय लागे अथवा सामाना जांपो त्रास्को पडे ते मोटी चोरी करवी नहि ४ भूलभयुन प्रिमणव्रत, जे परस्त्री मनुष्यणी तथा तिर्यचणी तथा देवनानी भोगरा नही पात्र इद्राना स्वाद घणा मगनपणे सेवे नही ५ भूलपरियह प्रिमण जे वनादिक नव वेदनो परियहनो पञ्चसाण करे, इंडा परिमाण करे अथवा पोता पासे जे वन द्रोड ते रागी मीजानो पञ्चक्राण करे ६ दिरु परिमाणव्रत जे न्यार दिश तथा ऊचो तथा नीचो दिसी जावानो मान कर ७ भोगोपभोग परिमाण व्रत जे नीम साचवे पन्नर कर्मादान न कर, जे पोताने खापेपीवे तथा वस्त्रोतु मान राखे ८ अनर्थ दड प्रिमणव्रत, ते जे मोटका पाप रगवा खेतर खेडवा, भाठी जे चूना प्रमुखनी करवाना पञ्चक्राण करे ९ सामायिकव्रत जे जवन्य २ घडी सुद्धी ससारना काम मूकी कुट्टम धननो राग तजी कोइयी द्वेष न करवो एहवो समपरिणाम राखवो ते सामायिक कहिइ १० देसावगासिकव्रत जे वे घडीयी च्यार पोहोरयी उणुकाल दिसतु मानकरिथीरचित्तसमतापणे रहेवु ते देसावगासिकव्रत जाणवु ११ पोषधव्रत च्यार पोहर अथवा आठ पोहोर सूधी समतापणे साधुपेरे श्रावकवरते, मन वचन काया समताइ राखे ते पोषधव्रत कहीइ १२ अतिथिसविभाग बारमुव्रत जे श्रावक जे ते साधुने विहरावीने पछे जिमवु जो तेहवा साधुनो योग न मिले तो साधर्मिक श्रावकने जीमाडीने जमवा बेसवु बेठा पछे थोडीसीक्वार साधुजीनी वाटजोवी इम करता



तेउकाय, वाउकाय, वनस्पतिकाय, रसकाय हणया, सताप्या छेद्या  
 भेद्या, तपाव्या, परने सक्केअ उपजाव्यो, परणति सक्रत्पे प्रवत्ते  
 हे श्रीवीतराग तुम सर्प जाणो ठो, ते हिसाने वर्म करी मान्यो  
 हिसामध्ये राच्यो ए रीते हिसा जो ते ए भावे पाउळे अन-  
 तेभवे जे जे हिसा परणति करी, करावी, करता, अनुमोदि मने  
 वचने कायाए ते सर्व श्रीप्रभुजीनीसाखे गुरुसाखे मिच्छामिदु-  
 क्कड ए प्रथम पापस्थान ? हवे वीजो पापस्थान ते मृषावाद  
 जे जूडु गोलवु, लौकिक ससारमध्ये लोकोत्तर वर्मकार्यमध्ये ते  
 पिण भाव मृषावाद स्वरवरूपशुद्ध अध्यात्मभाव पोतानी पर-  
 णतिने पोतानी न माने, शरीर इन्द्रिय वन कुट्टर ते परभाव  
 ससार हेतु दुष्टता मूल तेहने पोताना कहे क्रोधेमृषा बोळे,  
 भयेमृषा बोळे, लोभेमृषा बोळे ते सर्प माहरे जीवे ससार भमता  
 चार गतीमाही जे मृषावाद बोलया होय, बोलाव्या होय, बोलता  
 अनुमोद्या होय, ते मने वचने कायाए ते सर्व श्रीप्रभुजीनीसाखे  
 गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कड २ हवे वीजो पापस्थानक  
 अदत्तादान ते जे पारकी प्रस्तु अणदीवा लेवी ते लौकिक जे  
 ससारी असयमीना वनकचन द्विपद चतु पद आदिक अणदीवा  
 लेवा, लोकोत्तरते जे चैत्यउपगरण पूजाउपगरण चारित्र्यउपगरण  
 तेहनो चोखो ते द्रव्य ग्राह्य वस्तुनो लेयो भाव तप जीवपर  
 पुद्गल खवाडिकनो आत्मानेविषे ग्राहकतारूप परिणमन करयो  
 हवे, कराव्यो, हवे, करता अनुमोद्यो हवे, ते मन वचन कायाए  
 ते सर्व श्रीप्रभुजीनी साखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदु-  
 क्कड ३ हवे चोयो पापस्थान भेषुन जे कामी भोगीपणे इक्षी  
 विषे पुद्गलना वर्णादिकनो भोगवो लोकोत्तर वर्मलिगे वर्मा  
 महाजन सा १ सा वी नमोपकरण चैत्यादिने विषे र्नीनी पो-

સિદ્ધ ભગવાનને પ્રગટ છે, ધર્મ અર્જિત આદ્યો આત્મ તે  
 વર્મ સાપ્રાને જાનાદિક પન્નામ માટે છે, ધર્મપ્રાપ્તિ તે  
 વર્મની ગોષ્ઠા કર છે, માનિય તે વર્મ સાપ્રાને રાજ્ય  
 તર્જી ઉદ્વિય વિપત તન્ના તન્ના માનુ શોભા મને જવપા પુસ્ત્ર  
 પાસી પન્નાસી ગુણાનિપાસી પન્નાની શીયા ઉપર ઉનાલે જા  
 તાપના શીતશાષ્ટે નર્મને તટે જીવ રામે છે, જન્યર્થી જ યા-  
 પક્રુષ્ણે રાગદ્વેષ મારા સમનામદ્વિનમપાત્ત્યાગ્નિસપાવિચર છે  
 તયા દેશવિરતિ તે સુદ્રમર્મ પ્રગટ ત્વમા પ્રાપ્તે દેસાવિરત ભેડ  
 સર્વવિસ્તીની ઠહા કરનો સસાર તાર્ય તે નિવિપરીની પેર ઉદા-  
 સાનપણે કરે છે, સમ્યગ્દષ્ટિ તે વર્મની રૂઠા કરતા

કર્ડયાસિદ્ધીલમો કર્ડયાસવેગુણનિરાવળા

કર્ડયાઅવાવાહ સુહસમુહમયેસિજ્ઞે ॥૧૧॥

કર્ડયાપુગ્ગલરહિયો રમામિસિવમયલ

નિરુવમસહાવો, પાસતોસવપય ભુજતોઅપ્પળોભાવર ॥

એ ભાવના ભાવિને વર્મનો જમિલાષ કરતા સસારપ્રવૃત્તી  
 તમ્મ લોહપટ્ટ વરવાની રીતે કરી છે સસારસપદા ચાલક રમ-  
 વાના વૂલધર સમાન જાણે છે, તે વર્મ પ્રગટ કરવાની રુચિ  
 સર્વ જીવે કરવી, પણ તે વર્મ આઠ કર્મ આવરયો છે તે આઠ  
 કર્મને ક્ષયે પ્રગટે તે આઠ કર્મનો ક્ષય, પાપસ્થાન આલોચતા  
 યાયે તે પાપસ્થાનની આલોચના કરવી જે માહરે જીવે સસાર  
 અમતા સ્વસ્વરૂપની મૂલે હિસા પાપસ્થાન કરયો આપના જ્ઞા-  
 નાદિક પ્રાણ હૃણ્યા તે આવહિમા અને રાગદ્વેષે અસયમે પરના  
 પ્રાગ હૃણ્યા તે દ્રવ્યહિસા તે લોકિત્ત રીતે પ્રૃથ્વીકાય અપ્કાય

पापस्थान मान, अहकार रुपनो, वननो, राज्यनो, परिवारनो, बल-  
नो, तपनो, विद्यानो, कुलनो तथा गुणी नही ते गुणीनो मान  
आचार्य उपाध्याय साजुपणानो अभिमान ससारकार्य यशामि-  
लाषे मान वर्मकार्ये सयात्राचैत्य प्रमुखनो कराव्या रखवाल्या-  
नो मान कर्षो हवे, लौकिक ब्राह्मलोकोत्तर गुणनो गुणीथी,  
महत्व कर्षो हवे ते सर्व मने वचने कायाइ करि कर्षो हवे  
कराव्यो ह्रीवे करता अनुमोद्यो ह्रीवे ते श्रीप्रभुजीनी साखे  
आत्म साखे मिश्रामिदुक्कट ७ हवे आठमो पापस्थान माया  
कपट नियडि वक्रता जे कोइथी वचननो द्रोह ठगाई करवी ते  
माया अलौकिक ससारी सबवथी लोकोत्तर आचार्य साजु सा-  
वर्मिकर्षी वर्म पद्धतिनो कपट करणो ते द्रव्यत कोइने वचवो  
भावत आर्जवता रहित परिणामे जे माहारे जीवे कर्षो कराव्यो  
करता अनुमोद्यो ते मने वचने कायाये करी श्रीजगवत्सल परम  
करुणानिधिनी साखे गुरु यथार्थवादिनी साखे, आत्म साखे मि-  
श्रामि दुक्कड ८ हवे नवमो पापस्थान लोभ, लालच परिणाम  
इच्छा गृत्रता ते लौकिक ब्राह्म पोताने इष्ट वस्तु तेहनी लालच  
जे घणी जडे इद्रिय सुख प्रमुख आवे एहवो परिणाम ते  
लोभ ते लोकोत्तर वर्मलिंगे वन विषय जसनो लाभ वाछे  
तथा द्रव्यत कथु जे भावत परभावामिलाष सर्व ते जे मा-  
हारे जीवे कर्षो कराव्यो करता अनुमोद्यो ते मने करि वचने  
करि कायाये करि श्रीप्रभुजीनी साखे गुरु साखे आत्म साखे  
मिश्रामिदुक्कड ९ हवे दसमो पापस्थान रागप्रीत परिणाम वा-  
ल्हारसे जीव पोताने विषे पोषणीये लौकिक तथा लोकोत्त-  
रथी द्रव्य तथा भावथी ते राग परणति अनती आत्मायी  
उपनी अन्य द्रव्यने विषे रागनी रीजते माहारे जीवे करी

पणा फरी ते र्जा द्व पयो इ ३ उदये जे कामविकरणीणे  
 भोगविलासादिक, भावना आत्मपरणति परभोगीणे पर वस्तु  
 अशुचिपरिणाममध्ये मगोहना ते माहार जीने, एकेन्द्रिणे  
 त्रैरिन्द्रिणे, तैरिन्द्रिणे, धोरिन्द्रिणे, पंचेन्द्रिणे करसन १ रसन  
 २ घ्राण ३ घ्राण ४ श्रोत्रेन्द्रिय ६ इन्द्राना त्रेयीस विषये वाच्य ।  
 सेव्या सेवाया भेदना अनुमोद्या होइ ते मन वचन कायाए  
 करी श्रीप्रभुजीनी साखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कड ४ हवे  
 पाचमो पापस्थान परियग्रह जे कोई आत्मजर्मयी अन्यभात्र  
 सरक्षण परिणामे राखना ते लौकिक परियग्रह द्विपद चतु पद  
 वनवान्य गृहस्थेन प्रसप्रमुख, लोकोत्तर परियग्रह सम्यक्त्वनो  
 हेतु मोक्षकारण श्रीअरिहतनो चेत्य तथा जिनवित्र तथा ज्ञा-  
 ननो कारण पुस्तक नमकारवाली प्रमुखचारिजना उपकारण  
 तेहने ममत्वभावे गृहे द्रव्य परियग्रह पुद्गल खवादि नमत्वभावे  
 ग्रहे भावपरीग्रह क्रोधादिक अशुद्ध परिणाम परभावस्वामित्व-  
 ग्राहकत्वादिक परिणति ते परियग्रह राख्यो हवे परद्रव्यनी इच्छा  
 करे हवे, परियग्रह सुख मान्यो हवे, परियग्रह वासते धर्मआचरण  
 करयो हवे ते परियग्रह पापस्थान मने वचने कायाए करी सेव्यो  
 होये सेवता अनुमोद्यो होवे ते श्रीअरिहतनी साखे गुरुसाखे  
 आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कड ५ हवे उद्यो पापस्थानक क्रोधतप्त  
 परिणाम क्षमानो रोधक ते लौकिक भाई पिता प्रमुख कुडव  
 उपर तथा अन्य जीव उपर क्रोध परिणाम लोकोत्तर देवगुरु  
 सावर्मिक उपर क्रोध परिणामते द्रव्यत तथा सकठोरता भाव  
 तथा रुद्र परिणाम ते जो कोई रीतनो अप्रशस्त क्रोध कर्यो होवे  
 कराव्यो होवे करता अनुमोद्यो होवे तेथी त्रिभुवनपति निरजन  
 देवनीसाखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कट ६ हवे सातमो

बोलवो ते बोल्यो होये बोलव्यो होवे बोलताने अनुमोद्यो होवे ते मने वचने कायाए करीने श्रीप्रभुजीनी साखे गुरु साखे आत्म साखे मिछामिदुक्कड १४ पत्ररमो पापस्थान रति तथा अरति उपजे असाता दु खवियोग हानि प्रमुख उपजे ने अरति आकुलता किहाइ सुहाय नहीं ते अरति लौकिक विपेनी ऊणी असुहा- मणे तथा लोकोत्तर आगम सुणता देवयात्राये तप सामायकपो- सह भणवो प्रमुख ते मध्ये अरति करि होवे तथा रति, इद्री विपे-मव्येरीझ सुहामण रक्तता विश्राम ते रति लौकिक तथा लोकोत्तर चैत्य पुस्तकादिकनी शुद्धता देखीने जे इद्री विपे रीझ पामे ते रीझ ए नवा कर्म बाववाने आकरिचिकणता जे माहारे जीवे करी, करावी, करता अनुमोदी ते मने वचने का- याये करी श्रीपरमात्मानी साखे गुरुनी साखे आत्म साखे मि- छामिदुक्कड १५ हवे सोलमो पापस्थान पैशुन्य पारकी चाडी करवी ते जे द्वेपे थाये आगल्या जीवनेकष्ट असातानो हेतु राजा तथा आचार्यादिक अधिक आगळे तेहना छता अथवा अछता दोष कही तेहनो आश्रय भाजवो ते पैशुन्य कहिये ते जे माहारे जीवे करयो कराव्यो करता अनुमोद्यो मनेवचने कायाए करी श्रीप्रभुजीनी साखे, आत्मसाखे गुरुसाखे मि- छामिदुक्कड १६ हवे सत्तरमो पापस्थान माया मृषा कपटे परने ठगवा वास्ते मिदु बोले, कोइ कपटर्लिग बगलानी पेरे देखाडीने गुणी नहि ने गुणी रीते वदाववो, पूजाववो मनाववो कराववो अथवा लौकिक वचने व्यापार प्रमुख मध्ये कपटे मृषा बोले तथा धर्मचाले जैनागम मध्ये कपट रीते प्रवृत्ति करवी ते लिंगी जीव प्रमुख करवा ते जे माहारे जीवे करया करान्या करता अनुमोद्या ते मने वचने कायाए करी श्रीप्रभुजीनी साखे

करारी करना जापोति ते सर्व मन प्रचने कायाए  
 करी श्री-अरिहन्ता माता गुणा माते मि प्रणि हउ १० हवे  
 अण्वारमो पापस्थानक ३५ जपति पारणाम जाप तथा अर्जाप  
 उपर पोतानी विषयादि उपाते जगता जे जमृहामणा ते  
 लौकिक उपर जेप तथा लोकोत्तर उपर जेप जे र्थों होवे  
 करायो होवे रत्नापत्ये अनुमोत्रो दोष ते मन प्रचने कायाये  
 करी ते श्रीसर्वजनी माते गुण साते मित्रमिदुक्कट ११ हवे  
 वारमो पापस्थान कलह विद्वान्त कोइकी द्रव्य वासने जस उ-  
 डाई वासने आहोग वृत्तनादिक करवा तथा वर्म मन्वेना-  
 मार्ग वासते इयुक्ति पोतानो मन वापवाने जे कलह करवे  
 प्रशस्त करता जगत्तन थयु होवे ते सर्व मन प्रचने कायाए  
 करी कर्यु करान्यु अनुमोत्रु ते देवसाखे गुरुसाखे आत्मसाखे  
 मिच्छामिदुक्कट १२ तथा तेरमो पापस्थान अभ्याख्यान कुटोवाल  
 देवोद्वेपे तथा हास्ये गुणीना गुण ओलववा, आगलाने सहसा-  
 त्कारे द्विगो वचन कहेयो तथा वस्तुगते लोपाने फरकार क-  
 रवो ते लौकिक अन्यजीवने ससारी रीते लोकोत्तर अरिहत  
 सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु सा प्रम्मिक देशविरति समकिती  
 तेहनी औदयि चाल देखी कलक देवो ते अभ्याख्यान कर्या  
 होवे करान्या होवे करता अनुमोत्रा होवे ते मन प्रचने कायाए  
 करी श्रीप्रभुजीनीसाखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कट १३  
 हवे चउदमो पापस्थान परपरिवाद परकी निद्या ते द्वेपे पारका  
 अवगुण कह्या, कोइना अपजस वासती पारकी कुयली करी  
 अथवा सामा मनुषने खिसाणो पाडवा वासते जे निद्या करी  
 ते मध्ये लौकिक ते जे ससारी जीवनी लोकोत्तर गुणी जैनमार्ग  
 अवलवता मार्गातुसारिथी माडी सिद्धभगवान लगे जे अवर्णवाद

पोताना आत्माने तथा अन्य ससारी जीवने सिण (स्नेह) सरा-  
गता, परिग्रहता हिंसादिकनो हेतु थाये तिणे गुणीनी भक्ति  
जोडतो निरधिःरणी थाये ते माटे जे अरिहतनी भक्ति कारजे कर्यो  
जे वनादिक ते देवको कहिये ते जे खाधो होवे अथवा पोते  
विणसाड्यो होवे अथवा उवेख्यो होवे ते सर्व देवकाना दूषण  
थयो ते माटे देवका दोषनी आलोचना करवी ते लखीये छे  
जे माहारे जीवे ऐकेंद्री पृथ्वीकायपणे जिनत्रिंजादिकनी आसा-  
तना करी अथवा पृथ्वीकायपणे मूऱ्या जे शरीर तेहथी जे  
गुणी अथवा गुणीनी थापना चैत्यादिक तेहने व्याघात थयो  
तथा अपकायपणे पाणिमे चैत्य बहराव्या पड्या जिन त्रिज  
बहाव्या तथा अग्निकायपणे जे चैत्यत्रिंजादिक बाल्या होवे,  
तथा वायुकायपणे चैत्य पड्यो होवे तथा वनस्पतिकायपणे  
जे चैत्य मध्ये रुखडा झाड खापणे उगीने चैत्य पड्या होवे,  
जसकायपणे चैत्यमध्ये मालादिक करी रह्या हवे परखीने भवे  
चैत्य तथा जिनत्रिंज उपर वेसी असमजस आचरण करचा होवे,  
तथा देवकाद्रव्य मनुष्यपणे जाणि तथा जाण्या विना खाधा  
होवे अथवा अवधि वावर्या होवे तथा देवका उपर अन्याय हुकम  
कर्या होवे, अथवा देवकी वस्तु वावरीने पोताना यश बोलाव्या  
होवे, देवका दोकडा व्याजे राखे थोडो व्याज भरी आप्यो  
होवे अने घणो लाभ लीधो होवे, तथा बीजो पण देवकी  
इद्री सुख यशवडाई प्रमुख जे करी होवे तथा अरिहत देव  
प्रते सासारिक कामे मान्या ईडा होवे ते मने वचने कायाए  
करी मिछामिदुक्कड हिवे माहारे ए कार्य अशुद्धाचरणरूप न  
करवु आज पळी माहारो आत्मा अनतगुणमयी प्रगट करवानी  
रुचि करवी श्रीअरिहतनो कर्यो मार्ग तहत्त करी सदहवो,

गुरु साखे आत्म साखे मिश्रामिभुशुद्ध १७ हवे अत्रारमो पाप-  
 स्यान् मिथ्यात्व जे कुदेव विपरी कर्मातीन परग्रहना पुण्य-  
 प्रकृति भोगि तेहने देव माने, पुगुरु थारिप्रर्म रहित जे अन्य  
 लिगी तथा सलिगी गुणप्रष्ट परग्रहनो लोभी अत्रार पापस्यान  
 भरषा ते गुरु करी माने, धर्म यथायं आत्मपरणति विना अ-  
 यथा तेहना साधन विना धर्म माने तथा जात्रादिक नत्र तत्त्व  
 जिम वस्तुपुन वस्तुपणे पोतानी परगति छे पद्द्रव्ये जिम  
 पोतानी परणति गुणपर्याय स्वभाव स्याद्वाद रीते जिम छे तिम  
 न सदहे कटिपत रीते सदहे तेने मिथ्यात्व कहे छे, तेहना मूल  
 भेद ५ अमिग्रहमिथ्यात्व खोटो कदाग्रह जात्यो मूके नहि ?  
 अनमिग्रह मिथ्यात्व गुणअप्रगुणना परख्या विना सर्व सरिखा  
 माने २ अमिनिपेश मिथ्यात्व जाणीने खोटो कदाग्रह खेंचे ३  
 सशयमिथ्यात्व जे सर्व सशय मव्ये रहे ४ अनाभोग मिथ्या-  
 त्व जे काइ जाणे नहि तथा साध्य साधननिमित्त तथा उपा-  
 दान उत्सर्ग अपपेद विपर्यास रीते करि एहवी अशुद्ध सह-  
 हणा जे वेदातादिकनी ते सर्व मिथ्यात्व जाणवो, ते जे सेव्यो  
 होवे, सेव्यो होवे सेवतां अनुमोद्यो होवे मने वचने कायाए  
 करीने ते श्रीप्रभुजीनी साखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामि  
 बुक्कड, ते मिथ्यात्व जीवने महोडु खंकारी छे, अनादि ससारनो  
 बीज छे, लोकीत्तर श्रीजिनेद्रनो केशो शुद्धमार्ग जीव पामे  
 नही ते मिथ्यात्व महोपापस्यान छे ते थका धर्म करणी  
 पिण साधक न थाये ते माटे मिथ्यात्वनो पश्चात्ताप घणो कर-  
 वो ते मिथ्यात्व टळतो नथी ते जे पूर्व जीवे गुणीनी आशातना  
 तथा गुणनो अनादर कर्यो छे ते महोगुणी अरिहत देव  
 तेहनी भक्तिने काजे उत्तम भव्यजीवे जे धनादिक रह्यो थको



यतिना वर्मना पात्रयका निराशसी एक आत्मा निरमल कर-  
 वाना उद्यमयकी विचरे ते पच महाव्रत तिहा पहेलो, महाव्रत  
 सच्चाओपाणाईवायाओविरमण" विवहारे उकायना जीवना द्रव्य  
 प्राण १० हणे नही हणावे नही हणताने अनुमोदे नही  
 मन वचन कायाए करीने निश्चययी ज्ञानदर्शन चारित्र सुख  
 प्रमुख भावप्राण पोताना परना कर्म आवरणपणे हणे नहि, हणावे  
 नहि, हणता अनुमोदे नही, तथा बीजे महाव्रते, सच्चाओ मोसा  
 वायाओ वेरमण द्रव्यत क्रोधि मानने भये लोभी सूक्ष्मज्ञादर  
 लौकिक तथा लोकोत्तर जूड पोते बोले नही बोलावे नहि  
 मोलता अनुमोदे नहि मन वचन कायाए करी भावथी सर्व  
 द्रव्य पर्यायनो यथार्थ जाणवो, सत्य भासनरूप ज्ञायकता  
 शक्ति साधि ज्ञान सत्यपणे पाले तथा श्री वीतरागना आगम  
 प्रमाणे अर्थ भाव छे तेहनी सझाय करि जेहथी पोताना  
 ज्ञानदर्शन चारित्र निर्मल थाये ते भाषा मोले तीजो महाव्रत  
 सच्चाओ अदिनादाणाओ वेरमण जे द्रव्य ते त्रणतुस मात्र पण  
 अण दीवो लेवे नही, लेवरावे नही, जे लेवे तेहने सारो कहे नही,  
 मने वचने कायाए करीने लौकिक चोरी जे ससारी जीवनी  
 वस्तु चोरी लेवी, लोकोत्तर चोरी जे तीर्थकर आणमे जे न  
 लेवानो क्हो ते लेवो ते चोरी न करे, भावथी आत्मानी  
 ग्राहकता शक्ति ते स्वरूप ग्रहणरूप कार्यना कर्ता छे ते  
 अनादिनी परभाव ग्राहकता करी रहु छे ते निवारीने स्वरूप  
 ग्राहकपणे परणभावे, ते अदत्तादान विमरणव्रत थयो ते अदत्तादान  
 चार भेदे छे ते तीर्थकर अदत्तजे तीर्थकरनी आणामे न लेवो क्हो  
 सर्व परभाव ते लेवे १ बीजो गुरुअदत्त जे गुरु परपरा वि-  
 नामूत्र अर्थ कहेवा २ तीजो स्वामी अदत्त जे वस्तुनो जे

अन्य सर्व भिव्या, श्रीरानरागे रशो निग्रये आचर्या समकिर्ती  
जांने सन्धो श्रीगणर देवे जागम मये गुण्यो शुद्ध वर्म  
माहरो तथा सर्व जापनो दिन छे ते माहार प्रमाण ते सद्-  
हरो. ते जाणरो ते आदरो ते नीपजापरो जे समये समये  
गुणस्थान चर्डी कर्मरुप करी सठेशी अने पोनानी सिद्ध स-  
पदा प्रगट वास्ये ते समयगार मानरो जने जेने ए मारगनी  
परतीत प्रगटी तेने शरणे रहेरो तथा गाध्य शुद्धसत्ता साउन  
गुणठाणे चर्डी ते रत्नरुपी परणमनी ए मार्ग माहरो सग  
अविहड होज्यो इति ॥

॥ वृद्धा ॥

परम अध्यात्मने लखे, सद्गुरुकेरे सग,  
तिणकु भव सफलो होवे, अविहड प्रगटे रग १  
वर्मव्यानको हेत यह, शिव साधनको खेत,  
ऐसो अपसर कन मिले, चेत सके तो चेत २  
वक्ता श्रोता सम मिले, प्रगटे निजगुणरूप,  
अक्षय खजानो ज्ञानको, तीन भ्रवनको भूप ३  
एह पत्र अनुपहे, समझे जे चित्तलाय,  
देवचद्र कवि इम कहे, निज आत्म थिर थाय ४

इति अडार पापस्थान जाणवा सारु हवे उठो गुणठाणो  
प्रमत्त साधु एहवे नामे कहीये जे प्रत्याख्यानी चोकडीनो उदय  
टल्यो सर्व विरति प्रगटी, समय साधन माटे पौद्गलिक भावे ग्रहेपण  
पुद्गलने भोगिपणे पुद्गलीक थाय नही स्वरूपरमणी आत्मधर्म  
थिरता रूप सर्वपरभाव उपर अग्राहकतारूप चारित्रधर्म प्रगट्यो  
छे ते साधु उत्सर्ग अपवाद मार्गेपचमहाव्रत पाले छे, तिहा  
द्रव्यभाव पच महाव्रत सहित पाच समिति तीनगुपतिना दश

तीन पहोर लगे बैसवु नहीं, चौथी वाडे खीनु रूप नजर जोडीने जोवु नहीं पाचमी वाडे जिहा खी भरतार काम भोग भोगवता होवे ते भीतने अतरे ब्रह्मचारीये राते रहेवु नहीं, तेहना शब्द काने पट्वा देवा नहीं छडी वाडे गृहस्थपणे जे भोग भोगव्या ते सभारवा नहीं सातमी वाडे सरस आहार जेहथी काम दीपे ते आहार करवो नहीं, आठमी वाडे अतिमात्राए आहार करवो नहीं, नवमी वाडे शरीर सिणगार लगडाना तथा घरेणानो करवो नहीं, सनान उगटणा न करवा, एकली खी साथे एकलु वाटे चालवु नहीं, तथा नानु बालक तथा बालिकाथी एक शय्याए सुवु नहीं, सात वरस पछी, पाचमे महाव्रते सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण जे द्रव्यथी परिग्रह सूक्ष्मवादर राखे नहीं रखावे नहीं राखे तेहने अनुमोदे नहीं जे सयम पालवा माटे सुखे सिझाय थाये तेमाटे उपगरण १४ राखे, कारणे अधिको जोडए तो गृहस्थनायका पाडेरु वाररे एथि थिरकल्पीनो विवहार छे, जिनकल्पी कोई उपगरण न राखे, अपवादे दस उपगरण राखे, वारकषाय उदय टल्या तेहने छटो गुणठाणो कहीये सावु कहीये पण ५ परमाद सेवे निद्रा १ विक्रथा २ आहार ३ अल्पविषय ४ मानादिक ५ ए अल्प सेवे अनाभोगे जाणे, सेवे नहीं, ए छट्टा गुणठाणानी स्थिती जघन्ये एक समय उत्कृष्टे अतर्मुद्वृतः ए गुणठाणे तीन चारित्र, सामायक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि ए तीन चारित्र छे. तेहनो स्वरूप जे परभाव परत्यागे स्वरूप एकत्वते चारित्र कहीये, ते मध्ये जे तजवा योग्य भाव तजे ते द्वेष विना अने रत्नत्रयीज आत्मवर्म ते ग्रहे स्ववर्म माटे पण लौकिकादिक इष्टता राग विना एहवो समपरिणाम ते

यणी होये तेहनी अण दीनी जे पस्तु लेनी ते ६ चोपु  
 जीव अदत्त जे कोइ जीये पम इन्दी नधी जे माहग प्राण-  
 हणो अने पोताने इन्द्रासाद माटे परभावना प्राणहणे ते जीव  
 अदन ४ तथा प्रशस्त काम करता कोइ जीवना प्राणगत  
 थाये ते श्रीभगवते होसा कशी नधी, ते विनय तथा वैपावस्य  
 मागण्यु छे ए द्रव्यभाव अदत्तादान त्रिविधि त्रिविधिपणे होवे  
 चोये महावते सत्ताओ मेहूणाओ वेरमण जे द्रव्यधी पाव इन्द्रिना  
 त्रेवीस विपे सेवे नही, सेवता अनुमोदे नहीं, मनुष्य तिर्यच  
 देवताना विपयनी वाठा न करे, न करावे, अनुमोदे नहीं, भावधी  
 जे आत्मा द्रव्य आत्म गुणनो भोगी छे ते पण करम करवा  
 माटे परभावने भोगये ते भाव मैयुन छे, ते सर्व परभाव  
 भोगीपणे भोगवे नहीं, ते आत्मानि कर्मा करवा माटे परभाव  
 साधनपणे ग्रहे पण अभोग्य अग्राह्यपणे अरमणिक माने जे  
 माहरो आत्मा आत्मानदनो भोगी ते परभाव अनत जीवे  
 अनतवार छेइ भोगवीने वम्यो ते मने ग्रहवो भोगवो घटे  
 नहीं ए अनत जीवे अनतीवार भोगवीजे अँठ जडचल तेहने दु  
 भोगवु नहीं इम सर्व परभाव भोगीपणो तजी स्वभाव भोक्ता-  
 पणे रहेवो ते द्रव्यधी मैयुनना कारणरूपी खध तथा रूपी  
 खध मिल्या जीवनो, खेनधी मैयुन तीन लोकने विषे इन्द्रिना  
 सवादनी ईच्छा, कालधी मैयुन दिवस तथा रात्री, भावधी मैयुन  
 रागधी तथा द्वेषधी ते सर्वधी सेववो नहीं तेहनी वाड नवे  
 पालवी १ वाडे जे थानके स्त्री पशु पडक रहे ते थानके  
 ब्रह्मचारी रात्रीये रहेवु नहीं वीजी वाडे स्त्री साथे हासि तथा  
 कामकथा करवी नहीं, वीजी वाडे जे पीठ पाटले स्त्री बेठी होये  
 ते पाटले वे घडी लगे ब्रह्मचारी पुरुषे-बेसवु नहीं, स्त्रीये

फोरेवे तेनु साधुपणु जाय नहीं ७ आठमो अपूर्वकरण गुणटाणो  
जे जीव भावनाभावतो आत्मातो स्वरूप अनतज्ञानमयी, अ-  
नतदर्शनमयी, अनतचारित्रमयी, अनतदानमयी, अनतलाभमयी,  
अनतभोगमयी, अनतउपभोगमयी, अनतवीर्यमयी, अनतअव्या-  
वाधसुखमयी, परमआनदमयी, अरूपी, अवेदी, अकपाई, अलेसी,  
अशरीरी, अनाहारी, सर्वआनदरूप माहरो वर्म छे ए शरीर,  
आहागतेहुनहीं, एहवी भावनामाहे परणम्यो जीव शुक्लन्या-  
ननो पेहलो पायो न्यावे, इहा पाच अपूर्वकरणकर एवें किंवारे  
नकरचा होय ते कर तेहना नाम पहलो अपूर्वकरण थिति-  
पान जे जीव कने अमरयाता थित म्कयना योकडा हता ते  
कर्मथिति सचली खपावी अथवा उपगमावी बीजो अपूर्वसवात  
जे कर्मना रस चीकणास हती ते खपावी पानलु कग्बु बीजो  
अपूर्णगुण त्रेणि जे जीवने मत्तामाहे करमल हता ते सरये  
विखेगी नाखवा, चोयो अपूर्वगुणसक्रम आत्माना गुणमे रमवो  
पाचमो अपूर्व जे नवोस्थितियव न कग्बो एहवा परिणामथी कषाय  
खपावीने आतमा जातल परिणामे परणम्यो कर्म निर्जग करे  
ते ए गुणटाणे जयन्य एक समय उत्कृष्ट अर्तमुहर्तनी स्थिति  
छे, ए गुणटाणे चाग्रि सामायिक तथा छेनोपस्थापनीय ए त्रे  
छे ८ नवमो गुणटाणो अनिउत्तिवादर छे ते शुक्ल न्याननो  
पहलो पायो तेयी आये, ए गुणटाणे वर्तना जीव एक अन्ध-  
वसाये नेटला होवे तेटला सर्वनो एक सरखो परिणाम एक  
सरखो सवर, एकमरखी निर्जग, एहने सामायिक तथा छेनोप-  
स्थापनीय ए वे चारित्र होवे, एहने अते तीन वेद जाये  
तथा तीन कषाय मजलनो क्रोयमान माया लोभ जाये ए  
गुणटाणे सरयाता जीव होवे ए गुणटाणानी स्थिति जयन्य

સામાયક ઋષીણ, તથા જે સામાયક મધ્યે સજ્યલ્નના તીવ્રોદયે  
 જે આકારા અતિચારે અવગ્રા ચાર ક્રાપાને ઉદયે ઝરાજમપરિણામ  
 ફરમે જે પૂર્વે પર્વાપ છેદીને અમિત્ર નિમંત્ર પર્વાપનો અર્ગીકાર  
 કર્યો તે છેદોપસ્થાપનીય ઋષીયે, અને છેદોપસ્થાપનીયચારિત્ર ભરત  
 ૫ તથા પેરવન ૫ તે મધ્યે પ્રથમ ધરમ તીર્થક્રમ્ના સાપુર્જને  
 હોવે તથા તીર્થક્રમ તથા ગણપરજીના શિષ્ય નર પૂર્વથી ઉપરાત  
 શ્રુતવત મપ મુગાનરયિ પ્રથમ સરયણે અઢાર માસનો ઉગ્રતપ  
 તે અપ્રમાદી નિદ્રા રહિત નરજગા પનગાસી વક્રા જે તપ કરે  
 તે પરિહાર ત્રિશુદ્ધ ચારિત્ર કહિજે, દશમે ગુણઠાળે શુક્લવ્યાન  
 સુક્ષ્મ લોભનો ઉદય છે તે સુક્ષ્મ સપરાય ચારિત્ર કહિજે, તથા  
 સર્વથા કપાયનો ઉદય નયી તે યથાર્યાત ચારિત્ર વહીયે તે  
 મવ્યે ૧૧ મે ગુણઠાળે ઉપશાત યથાર્યાત છે ૧૨, ૧૩,  
 ૧૪ મે ગુણઠાળે ક્ષાયિક યથાર્યાત છે, હવે સાતમો અપ્રમત્ત  
 ગુણઠાળો લિલીયે છે, છઠે ગુણઠાળે જે ભાવ સાધુજીના કહ્યા  
 તે સર્વ હોવે પણ પાચ પ્રમાદ ન હોવે, તે માટે અપ્રમાદ એ  
 છઠે ગુણઠાળે વરતતો સાધુજન શાસનને કામે લલ્લિ ફોરવે પણ  
 સાતમે ગુણઠાળે વરતતો સાધુ લલ્લિ ન ફોરવે, એહની સ્થિતિ  
 જઘન્ય એક સમે ઉત્કૃષ્ટ અતર્મુહૂર્તની છે છઠે તથા સાતમે  
 ગુણઠાળે મિલીને સાધુ દેશે ઊળી પૂર્વ કોડી રહે શ્રી મગવતી  
 સૂત્રે એ બે ગુણઠાળાની દેશે ઊળી પૂર્વ કોડી સ્થિતિ ચૂદી  
 કહી છે તે વ્યવહાર નયે છે સમે તથા બે સમે વચ્ચે ગુણઠાળો  
 પલટે તે ગવેલ્યો નથી તેમાટે અતર્મુહૂર્તની સ્થિતિ કહી છઠે  
 બે ગુણઠાળે સામાયક તથા છેદોપસ્થાપનીય તથા પરિહાર વિ-  
 શુદ્ધિ ચારિત્ર છે, તથા સાતમે ગુણઠાળે સાધુ લલ્લિ ફોરવે  
 નહીં અને છઠા ગુણઠાળાના સાધુ જિનશાસનને કાજે લલ્લિ

फोरवे तेनु साधुपणु जाय नहो ७ आठमो अपूर्वकरण गुणठाणो जे जीव भावनाभावतो आत्मानो स्वरूप अनतज्ञानमयी, अनतदर्शनमयी, अनतचारित्रमयी, अनतदानमयी, अनतलाभमयी, अनतभोगमयी, अनतउपभोगमयी, अनतवीर्यमयी, अनतअव्यावायसुखमयी, परमआनदमयी, अरूपी, अवेदी, अकपाई, अलेसी, अशरीरी, अनाहारी, सर्वआनदरूप माहरो धर्म छे ए शरीर, आहाग्तेहुनही, एहवी भावनामाहे परणम्यो जीव शुक्लन्याननो पेहलो पायो न्यावे, इहा पाच अपूर्वकरणकर प्रे किवार नकरचा होय ते कर तेहना नाम पेहलो अपूर्वकरण थितिघान जे जीव क्रमे जसखाता थित स्कधना योकडा हता ते करमथिति मपली खपावी अथवा उपग्रामावी बीजो अपूर्वसपात जे करमना रस चीकणास हती ते खपावी पातलु करवु बीजो अपूर्वगुण थ्रेणि जे जीवने सत्तामाहे करमन्ल हता ते सरवे विखेरी नाखवा, चोथो अपूर्वगुणसक्रम आत्माना गुणमे रमवो पाचमो अपूर्व जे नवोस्थितिप्रव न करवो एहवा परिणामथी कषाय खपावीने आतमा शीतल परिणामे परणम्यो करम निर्जग करे ते ए गुणठाणे जवन्य एक समय उत्कृष्ट अर्तमुहूर्तनी रियति छे, ए गुणठाणे चाग्रि सामायिक तथा छेदोपस्थापनीय ए वे छे ८ नवमो गुणठाणो अनिग्रतिचादर छे ते शुक्ल व्याननो पेहलो पायो तेथी जाये, ए गुणठाणे वर्तता जीव एक अन्यवसाये जेटला होवे तेटला सर्वनो एक सरखो परिणाम एक सरखो सवर, एकसरखी निर्जग, एहने सामायिक तथा छेदोपस्थापनीय ए वे चारित्र होवे, एहने अते तीन वेद जाये तथा तीन कषाय सजलनो क्रोप्रमान माया लोभ जाये ए गुणठाणे सरख्याता जीव होये ए गुणठाणानी स्थिति जवन्य

एक समय उत्कृष्ट अर्तमुहूर्तनी छे ० दशमो गुणशास्त्रो मूक्षम  
 सपराय इहा मूक्षम सजलनो लोभ उदय होय इहा त्रे जानना  
 जीव पामीये, उपशम त्रेणि तथा नपक त्रेणि करमने उपश-  
 माये द्वेषसपावनो जाय नपकत्रेणि फर्म मोहर्तनीं स्वपाये, ए  
 गुणशास्त्रे एक मूक्षम सपराय चारिय होये, व्यान शुकु होय  
 परिणाम निरमल होये, ते अयेदी छे एहनी स्थिति जस्य  
 एक समय उत्कृष्ट अर्तमुहूर्तनी छे १० इग्यारमो गुणशास्त्रो  
 उपशातमोह तिहा जे जीव उपशमत्रेणि आट्टमेदुनोवोलना  
 परणामगत मोह कर्मनी प्रकृतिउपशमावनो जाय, तेहनो  
 उशाणपुरवीज उपशमावनो छे ते नवमे आवी मोहप्रकृति  
 उपशमावी दशमे लोभ उपशमावीने रूपायना उदयरहीन छे  
 ते इग्यारमे आवे ते यवाख्यात चारिय पाये, एहने चोवीस  
 सपरायकी क्रिया उतरी एकद्विरियात्रहिकी क्रिया रहे प्रकृति तथा  
 परदेश ए ते नव ग्या छे हेतु न पाछे, न ए एक माताये-  
 र्त्तनीनो छे, व्यान शुकु छे ए गुणशास्त्रे जे जीव मरण पाय्या  
 पडी चोथे गुणशास्त्रे आवे ते देवता लयसत्तमीया थाए, एका-  
 यतारी थाए, अथवा कोइक जीव अगीयारमे गुणशास्त्रे उपशात  
 अत्रा ते जर्द पात्रो पटे ते इग्यारमायी दशमे आवे नशमायी  
 नवमे आवे नवमेयी आठमे आवे, आठमेयी सातमे आवे  
 सातमेयी उट्टे आवे, इहायी पात्रो पडे नचढे तो पात्रो  
 पाचमे गुणशास्त्रे आवे, पाचमायी चोथे आवे, जोक्षायक  
 समकृती होए तो चोथे गुणशास्त्रे टके अने उपशम समकृती  
 होए तो चोथेयी पडी बीजे सास्वादन गुणशास्त्रे थईने पहेले  
 मिथ्यात्व गुणशास्त्रे आवे, कोई एक जीव अर्तमुहूर्त रहे, कोइक  
 जीव देश ओणोअर्प पुद्गल परावर्त मिथ्यात्ववीपणे रहे, पछे



समकित पामे, एअगीयारमो गुणठाणो एक जीव च्याग्वार पामे, एक जीव एकभवमाहि वेवार पामे, एहनी स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अर्तमुहूर्तनी छे एअगीयारमो, हे वारमो क्षीणमोह गुणठाणो ते जे जीव आठमा गुणठाणायी कर्म खपावतो तीव्र वीगज निरमल उपयोग शुद्ध शुद्ध व्यानने वले नवमे ऽथमे गुणठाणे मोहनी कर्म खपावी ग्रामे गुणठाणे जावे, एहशुद्ध शुद्ध व्याननो वीजो पायो एकत्ववितर्क अप्रविचार न्यावे, एहयी आयु वले घनघाती तीन कर्म जानावर्णीय दर्शनावर्णीय अतराय खपावे, एहनी स्थिति अर्तमुहूर्तनी छे १० तेरमो गुणठाणो सयोगी केवली जे जीव वाग्माने अने जानावर्णी, दर्शनावर्णी, अतराय, ए खपे केवलजान केवलदर्शन प्रगटे, लोक अलोकना सर्व भाव जतीतकाल अनागतकाल वर्तमानकाल सर्व प्रत्यक्ष आत्मवले इन्द्रिय विना जाणे देखे, इहा जे अतगट केवली होवे ते केवली समुदधान करीने मोक्ष जाय अने जे केवलीनो आऊखो वणो हावे ते अनेक जीवने उपगार कर्ना अनेकदेशना देता विचर दशे उणीपूर्व कोडी लगे विचर तथा जे तीर्थकरदेव केवलीपण विचरे ते चोर्नाश अतिशय तथा आठ प्रातिहाज विराजमान थका नवा सोनाना कमले पग यापता चाले योजनप्रमाण माटलेसमोक्षरणे सोनाने मिहासने तीन उग्र माथे वीगजना वे पासे चामर्णी जोट विज्ञाना हजार राजा इद्रयजा लहेकता देशना देता जयन्य बहोतेर वगसने जाऊखे उत्कृष्ट चारासी लाख पग्वने आऊखे विचर, अनेक जीवने धरम उपदेश दे, गणपत थापना कर, साधु साध्वी श्रावक श्राविका ए च्याग्व सय थापे, द्वाग्शागी सिद्धान प्ररूपे, अने सामान्य केवलीने

अनीशप नहोते ते छेडे जाण्जीसण्ण हर पत्री जो जाऊवो  
 जो बीजा हरम सरसा हों तो केवली समुद्रवान न हर,  
 वन जो जाऊवोया हरम ण्णा होय तो केवली समुद्रवान  
 हर तेहने जाठ समयतागे ७ तेंग्या गुणदाणानी म्थिति ज-  
 पय जतमूर्हतनी छे उत्क्रष्ट देश उणांपा मोडी रपना छे  
 १३ चउत्तमे गुणदाणे जयोगी केवली ते जे जीव नेरमे गुण-  
 दाण जोगरोय करवा मांडे, सूक्ष्म सिया अप्रतिपात गुरू  
 ध्याननो राजो पायो न्यापतो ते चउत्तमे गुणदाणे चढे तिहा  
 प्रथमयी सान् मनोजोग रोके पत्री सान् रचनजोग रोके  
 पत्री सान् कायाजोग रोके पत्री मृदम मनोयोग रोके पत्री  
 सूक्ष्म रचनजोग रोके पत्री सूक्ष्म कायाजोग रोके शरीरहित  
 थाणु जेटले देहमान होये जपन्य वे हाथनो उत्क्रष्टो पाचसे  
 वनुपनो राजे भागे वटाटे, तेवार जपन्य त्रीस आगुल्नी  
 उत्क्रष्ट तीनसेनेत्रीस वनुप त्रीस आगुल्नी अवगाहना रहे,  
 तेवार आत्मा अयोगी अक्रिय, अलेसी, अनाहारी, अशरीरी, शुकु  
 ध्याननो चोथो पायो थईने अवाती करम च्यार, वेदनीकर्म १  
 आउखोकर्म २ नामकर्म ३ गोत्रकर्म ४ नो क्षय करीने मोक्ष  
 जाय ॥ इतिश्री चउत्तमु गुणस्थानक सपूर्णम् ॥

श्रीमद् देवचन्द्र प्रथमभागनुं अशुद्धि  
शुद्धिपत्रक



पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
१	७	सागरोपग	सागरोपम
२	२५	जीवाने	जीवोने
३	८	बीजु	बीजु
४	१	पहेलो	पहेला
६	१४	अमे	अने
८	७	प्रमाणखद्य	प्रमाणखद्य
८	१८	शिष्य	शिष्य
१७	१	सग्रह	सग्रह
१९	१०	द्वयणुक	द्वयणुक
२०	७	निश्चय	निश्चय
२०	१९	अनगत	अनागत
२१	२५	घोडा	घोडा
२४	५	नाणीहि	नाणीहि
२४	९	विना	विणा
२४	१७	प्रकृति	प्रवृत्ति
२५	१५	सुतत्थो	सुत्तत्थो
२५	१५	निज्जुत्ति	निज्जुत्ति
२५	१९	सुतत्थो	सुत्तत्थो
२५	२३	सुतत्थो	सुत्तत्थो
२९	१४	ससारे	सथारे
३३	२१	भाग	भागो

७	१	अगुद्धि	शुद्धि
३५	५	बीजा	बीजो
३५	२३	धर्मास्तिकानो	धर्मास्तिकायनो
३६	६	धर्मास्तिकाय	धर्मास्तिकाय
३७	२४	इन्द्रियमि	इन्द्रियमि
३८	९	मुद्धर्तमा	मुद्धर्त
४१	१५	कहेतु	कहेतो
४२	८	सन्त्रगुण	सन्त्रगुणा
४४	२४	निश्चयी	निश्चययी
४६	१८	नतत्याग	त्यागव्रत
”	२५	दालीने	दालीने
५०	१८	अनमी	अनामी
५३	८	क्रियानुवृत्ति	क्रियानिवृत्ति
५६	१४	राखनो	राखवी
५७	२५	उवराइ	उववाइ
५८	२	वन्दिदिशा	वन्दिदसा
”	८	उत्तराध्यन	उत्तराध्ययन
६०	१०	निखेद्य	निर्वेद
६१	२	परच्छ	परमत्थ
६३	५	अनेअने	अने
६७	१२	यणाहा	अणाहा
”	९	आराधक	आधार
६८	१३	सहा	सहाव
६९	३	प्रमुए	प्रमुखे

## नयचक्र.

पृ	प	अशुद्धि .	शुद्धि
७४	४	अव्यावात्राधा	अव्यावाधा
”	९	ऋणादि	वरणादि
”	२५	वर्मना	धर्मनी
७६	१७	तथाप्रवृत्ति	यथाप्रवृत्ति
७९	१३	मतातूरीओ	मतातरीओ
८०	१३	भरणादिक	आभरणादिक
८२	१४	प्रतिप्रदेशे	प्रतिप्रदेश
९०	१०	तदन्य	तदन्त्य
९०	२२	अत्यत	अन्त्य
९१	१९	विसरी	विखरी
९२	८	परिणामिक	पारिणामिक
९७	१	क्रियारित्व	क्रियाकारित्व
९७	४	तिरोभाव्यभाव	तिरोभावाभाव
९७	७	सत्व	सत्त्व
१००	२	उत्पत्ति	उप्पत्ति
१००	९	इत्येव	इत्येव
१००	२०	अस्तिव	अस्तित्व
१०३	१	परिणमयी	परिणमइ
१०३	१	”	”
१०३	१४	भवेन	भयेन
१०३	१७	कुभ	कुभ
१०५	४	द्वितीयो	द्वितीयो
१०५	१६	एकैकन	एकैकेन

पृ.	प	अशुद्धि	शुद्धि
१०६	१६	पयांपग्लोन	पयायासत्त्वेन
१०७	५	सकेतिकेन	साकेतिकेन
१०७	१९	"	"
११०	१९	धर्मा	यका
१११	२	आण्या	आण्यु
१११	३	गुपयांय	गुणपयांय
११२	२	तृतीयो	तृतीयो
११६	४	स्याद्वाद्	स्याद्वाद्
११८	९	प्रदेशादिना	प्रदेशादीना
११९	७	काय	काय
१२०	२२	उत्पादव्यय	उत्पाद
१२२	११	घटापटादि	घटपटादि
"	१४	घटा	घट
"	१९	दिष्ववि	दिष्वपि
१२५	४	सयु	सयुक्त
१२६	९	उत्पाद	उत्पाद
१२९	५	गुणीलक्ष	गुणिलक्ष्य
१३०	९	सोने	सौने
१३१	९	उत्थित	उत्थित
"	१२	प्रकाश	प्रकाश
"	१६	छिन्न	च्छिन्न
१३५	९	पूर्ण	पुरण
१३६	२५	योग्यरूप	योग्यतारूप
१३७	१२	कर्म	धर्म

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
१३९	१०	सैर्वैवा	सैर्वेवा
१४२	१०	पूर्ण	पुरण
"	१२	लघ्व	लघ्व
१४३	८	षट्गुण	षड्गुण
१४४	२०	नियुत्ति	निज्जुत्ति
१४५	७	जाणिज्झा	जाणिज्जा
"	"	निरिक्खेवनिरिक्खवे	निरिकेवनिरिकवे
१४६	६	पज्झाया	पज्जाया
१४७	१६	त्यर्थ	त्यर्थ
१५१	२	जानी	ज्ञान
"	६	वर्त्तन	वर्त्तमान
"	७	तेम	ते
१५२	८	वस्तु	वस्तू
"	२१	जाता	जात
१५३	१२	विष	विषे
१५६	६	लोकिका	लौकिका
"	"	त्रेधा	त्रिधा
१५७	२०	द्वादशसार	द्वादशार
"	२३	ऋजु	उज्जु
१५८	१	अवक्रम	अवक्र
"	५	वक्क	वक्क
"	५	तदेव	तएव
"	७	मात्मीय	मात्मीय
"	८	ऋजु	ऋजु

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
१५८	९	तस्यार्तुं	तस्यर्तुं
"	१२	गाही	ग्गाही
"	१३	ति	त्ति
"	१७	ऋतु	ऋतु
१६२	९	इन्दन	इन्दन
"	१०	शकून	शकून
१६३	११	व्यज्यते	व्यज्यते
"	१३	वाच्येनोपेन	वाच्येनोपेन
१६५	१४	ऋतु	ऋतु
"	१२	देशा	दशा
"	२१	मेको	मेक
१६६	२०	पणे	पणो
१६९	६	दिनयातर	दीन्यवातर
१७४	११	प्रवृत्ति	प्रवृत्ति
"	२१	लवि	लवी
१७८	२०	सदृश्या	सादृश्या
१८१	२५	दश	दस
१८३	१८	पण	तथा
"	१०	निज्झरा	निज्जरा
१८४	२१	अयोगी	अयोगि
"	२२	नाब्राधनिरूपाधिनि-	नाब्राधनिरूपाधिनि-
		धिरूप चरित्रानयाशा-	रूपचरितानायासा
१८५	२४	पयद्विआ	पइद्विआ
१८६	४	उव्वाइ	उव्वाइ



पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
"	५	वग्गो	वग्ग
"	१८	तत्शिष्य	तच्छिष्य
१८८	७	द्वादशसार	द्वादशार
"	१४	उवज्जाय	उवज्जाय

### श्रीज्ञानसार

१९२	१७	उपेक्षते	उपेक्ष्यते
१९५	२०	शरी	शरीर
१९६	९	समभिरुद्धेन	समभिरुद्धत
"	१०	एवमूतेन	एवमूतत
"	१७	समाधान	समाधाय
१९७	४	साधरुचिमतो	साधनरुचिमतो
"	११	रथाप्य	सस्थाप्य
"	१५	द्रव्य	द्रव्ये
१९८	१	आत्मानतानदसप- न्नमय	आत्मानमनतान- दसपन्न
"	२१	निक्षेपाना	निक्षेपाणा
२००	२१	तेज	तेजो
२०१	८	चारित्रादिना	चारित्रादीना
२०४	७	प्राप्नोति	सुख प्राप्नोति
२०६	२	पूर्ण	पुरण
२१३	२२	अगमनो	आगमतो
२१५	१५	मम	मम न

श.	प	अशुद्धि	शुद्धि
२१६	१४	ज्ञानपात्र	ज्ञानपात्र
२१८	१	द्वयेन	द्वये
"	२	असगादि इत्यादि	
"	५	आश्रय	आश्रय
"	११	नर	नर
"	२१	अन	अन
२२०	५	ज्योति	ज्योति
"	६	मिन्त	मित्र
२२१	१९	हेतु	हेतु
२२३	२	तत्र	तत्र
"	१३	विष्टा	विष्टा
२२९	८	उपशाताद्वा	उपशान्ताद्वा
"	१४	अव्यवसानानि	अव्यवसायप्रति
२३२	२१	आगात्रलेन	आगालेन
२३३	२१	शुद्धात्मानदने	शुद्धात्मनदने
२३६	८	परिष्ट	पटिष्ठ
२३८	२१	अश्व	अश्व
२३९	१२	अतीत	अनागत
२४२	८	जइतव्य	जेतव्य
२४३	१	ता	स्ता
"	११	मुह्यता	मूढता
२४६	१९	मृगो	गधासक्तो भृगो
२५३	६	स्वरूप	स्वरूपे
२५६	२०	द्वद्व	द्वद्व

पृ	पं	अशुद्धि	शुद्धि
२५७	१०	सुगमा	सुगमा
२६१	२३	यश नाम	यशोनाम
२७३	६	आश्लेषेण	आश्लेषेण
"	१८	चित्र	चित्रै
"	२२	यावती	यावत्
२७८	६	एकादशमम्	एकादशम्
२८३	४	मता	वन्त
"	१३	भायामिभि	भावानि
२८४	६	गुणित्व	मुणित्व
"	१७	तत्	स्तत्
२८५	१	कर्त्ता	कर्त्तृ
२९६	२२	धर्मादिना	धर्मादीना
२९७	६	तुलयानापि	तुलयानामपि
३०२	१४	ऽअनादीन	ऽअनादिर्न
३०७	९	चक्रमाया	चक्रमयी
३०८	८	तदेव	सैव
"	१२	ज्ञानाधिष्ठ	ज्ञानाधिष्ठ
"	१३	कृष्टा	कृष्ट
"	१७	निर्वृत्त	निवृत्त
"	२०	पचदशमम्	पचदशम्
३१४	२०	ज्वसनादि	ध्वसनादि
३१९	४	व्यवहार	व्यवहारे
३२३	१५	रौदयिक	रौदयिक
"	२१	भय	भय

पृ	प.	अग्रदि	शुद्धि.
३२५	२२	नि गार	निधारे
३२९	९	त्रिन	वृत
"	१८	ग	भद्र
३३०	३	जा मो	आत्मीय
३३१	२४	तहा	महा
३३२	१	कार्तमाग्व	कार्तस्वरद्व
३३३	५	अनशठिता	अनवच्छिन्ना
"	१४	दीनता	दीनता
३३४	४	ममा मत	ममात्मन
"	५	द्यौयात्प	द्यौव्यत्व
"	२०	आत्य	आत्म
३३६	७	अय	अह
"	८	हन्त्रया	हन्त्र्या
३३८	२	दु खामा	दु खाना
"	१९	वाह	बहि
३३९	१	भवन्ति	भवति
"	५	दाग्	दाग्
३४१	१५	भार्वादि	भार्वादि
"	२१	दाष्टि	दाष्टि
३४४	१०	मुनि	मुनि
"	१८	योगिन	योगिनो
३४६	१०	प्रत्यक्ष	न प्रत्यक्ष
३४७	१६	मान	माण
३५१	१५	धर्म	धर्म

पृ	प	अष्टाद्वि	शुद्धि
"	२३	दिष्टता	द्विष्टता
३५३	१८	यस्म	यस्य
"	२०	भवाभोवौ	भवाभोवौ
३५४	१९	व्यावात	व्याघाताः
३५५	१०	तानिश	तानिश
३५६	१६	यदौ	ययौ
"	१८	विष	विष
"	"	कश्चिन्	कश्चिद्
"	१९	सर्व	सर्प
३५८	८	विरित	विरत
३६०	३	लोकानुयायी	लोकानुयायिना
"	७	णार्थिन	णार्थिनो
"	९	स्तोका	स्तोका
३६१	२	साक्षिक	साक्षिक
"	८	धर्म	धर्मो
"	१२	साधु	साधु
३६२	२३	क्षयोपशो	क्षयोपशनो
३६४	१६	मार्गोपदेशक	मार्गोपदेशकम्
३६८	१०	परिग्रहापदेशात्	परिग्रहग्रहापेशात्
३७३	२१	कथमत्तजन्तुभय	कथमतोऽजन्तुभव
३७४	८	प्रयासा	प्रयास
"	११	सद्गुरु	सद्गुरु
३८०	८	तत्त्वयाप्ति	तत्त्व्याप्ति
३८१	२४	सर्वोत्तमा	सर्वोत्तमो

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि.
३८२	१४	कस्मात्	कस्मात्
३८४	१४	ध्यायया	ध्यायया
"	२२	थै	सायथै
३९७	४	त्वोपयोगसाव्य	त्वोपयोग साव्य
४०७	१३	परिणत	परिणत
४१६	१२	ज्ञानमात्मा	ज्ञानभेमात्मा
४२२	८	भवता	मूमास्व
"	२२	साधक	साधकौ

### गुरुगुणपट्टत्रिशिका.

४३०	१०	भोजनकाति	भोजनजाति
४३५	१	विणओ	विणए
४३९	२	चउ	चउ
४४२	४	कुवते	कुव्वते
"	४	मेहणु	मेहण
"	४	रीइ	राइ
"	१६	भायय	भाय
"	१६	धित्ठूण	धित्ठूण
"	२२	प्यस्सावि	अस्सावि
४४४	११	प्रभाववना	प्रभावना
४५४	११	सूरिवराणा	सूरिवराण
	२१	देवनदीधे	देवनदीधे
४५७	१५	असमान	समान

पृ	प	अशुद्धि.	शुद्धि.
४५८	२५	लेष्य	लेष
४५९	१७	एहकठै	एकले
४६१	१९	रागादिक	रागादिक
४६२	१५	क्रम	कर्म
४७०	८	काकाताली	काकताली
"	६	मय	मद
४७२	११	पवि १	पवित्र ३
"	१२	च्यार	च्यार
"	१३	सुषेय	सुष्येय
४७३	१०	वले	चले
"	१७	वटी	वली
"	१७	आपण	आषण
४७५	२०	वैदिक	वैदक
४७८	७	बुहत	बहुत
४८१	१४	तत्त्वतत्त्व	तत्त्वातत्त्व
"	२१	सूषिम	सूक्ष्म
"	२२	चोद	चोभेद
४८२	१६	समकितरै	समकितरो
४८३	१०	तीम	तीन
"	१०	अविधि	अवधि
४८४	५	दुरति	दुरित
"	७	वनमय	वनमें
"	८	मोहनीन	मोहनीना
४८६	९	मुष	मूर्ख

पृ	प.	अशुद्धि-	शुद्धि
"	११	मुप	मुप
"	१३	जीगदया	जीवदया
४८७	१८	निव्याग्रय	मिध्याग्रह
"	२५	मुपयी	मुखयी
४८८	२४	केर	करे
४९०	२४	लाने	लाने
४९३	२२	साझ	सापे
"	५	त्रम	धर्म
४९९	३	मुझाय	मुझाय
"	२२	पढ्या	खड्या
५००	१	मन वशीलः	मानव शील
"	१०	विंव्योजात	विंव्यो न जात
"	११	भारण	वारण
५०२	९	केकीर	केकी
५११	१९	वृष	वृक्ष
५१४	१५	स्मरणिक	रमणिक
"	"	आदेय छे	आदे अछे
५१५	४	गधपेमे -	गधपेमे -
५१६	२१	सूद्रा	सुद्रा
५१८	१०	छे	छ
"	१२	द्वे	द्वे
५२०	८	नित	नवि
५२१	३	तास	नास
५२८	२०	उदयाचलि-	उदयावलि-



पृ.	प	अशुद्धि	शुद्धि
५२९	४	जीवे	जावे
५३९	१५	शिशि	शशि
५४७	१६	सधिर	अधिर
५५१	१२	ताना रे	वधारे
५६०	१०	सत्र	सत्र
५६१	१६	षोटश	षोडशदळ
५६६	८	व्यय	अव्यय
"	१३	थानपान	यानपान
"	१४	गुणराणा	गुणखाण
५६८	१	अलेष	अलष
५६९	९	वाय	वाय
५७१	११	निये	निचे
५७२	१५	आदरे	आदर
"	२४	घात	थात
५७३	४	भटता	जडता
५७५	१०	मनपर्ये	मनपर्यव
५७९	४	कुभकरण	कुभकरण
"	१०	षष्ठमो	षष्ठ

---

कर्णग्रन्थः

५८५	१६	विरोप	विशेष
५८९	१२	उसन	ओसन्न
६००	७	उवग	उवग
६०२	२२	सस्थान	सस्थान

पृ.	प.	अनुदि.	शुदि.
६२८	७	नम्पो	नम्पा
६३२	१	तीर्थस्तो	तीर्थकर न
६३४	५	अपथांस्वामि	अपथांस्तअस्वामि
६३९	६	मार्गगाम	मार्गगामे
६४५	५	कमुल	कमुल
६४६	१०	मय	मइ
६४८	५	किण्णहा	किण्णहा
६४९	३	जीवमे	जीव
"	१२	मार्गणा	मार्गणामे
"	१५	तिरि	तिरि
६५३		असत्यामृषा	असत्यामृषा (सर्वत्र)
६५८	१८	पहेली	पहेलो
"	१८	मनोयोग	मनोयोगे
६७३	५	लद्वि	लद्वि
६८१	१	मध्यय	मध्यम
६८३	९	नवामा	नवमा
"	१३	चतुर्यो	चतुर्य-
"	१३	कर्मग्रन्थ	कर्मग्रन्थ
"	१४	समेत	समेत
"	१४	समाप्तम्	समाप्त
६८४	५	सद्धार	सद्धार
६८८	१३	निदो	निदो
"	१४	अधुवोदयी	अधुवोदयी
७१०	२०	आवलीनी	आवलिनी

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि.
७१८	४	पत्ते	पज्जे
७३५	९	अनुव	अनुवो]
७५२	१०	मोटा	मोटी
"	१०	न्हाना	न्हानी
"	८	प्रवरा	प्रवरा
"	१०	सत्रार्थ	सूत्रार्थ
"	१४	श्वरान्	श्वरात्
७६१	२३	भवे	भन
७६३	१	सेवम	सेवन
७६७	१४	विकृत्य	विकल्प
७६९	१६	कर्ण	करण
७७२	७	निश्चय	निश्चय
७७४	६	शुद्धोपयोगे	अशुद्धोपयोगे
७७५	४	निश्चयनय	निश्चयनययी
"	१२	एट्टे	एट्टे
७८०	२१	अशुद्धोपयोग	शुद्धोपयोग
७८१	२०	त्रिभाग	त्रिभाव
७९०	२	पुव्य	पुव्य
७९५	२	विपेक्षे	विशेषे
७९८	११	विषयमिलापी	विषयामिलापी
८०७	७	पञ्चाशद्	पञ्चाशद्
"	८	ननालि	नमालि
८०८	२१	स्तोत	स्तोक
८१४	४	गर्वादिक	गुणोदिक

पृ	प	अशुद्धि.	शुद्धि.
८१७	२	वेद	वेदनीय
८१८	२४	परिसाहोपनाणनाण	परिसाहपनाणनाण
८१९	१	घेन	घेठ
"	२	पुरसाहारा	य सम्मत
"	६	स्रष्टु	स्रष्ट
८२०	२५	पुरिसासिहाण	पुरिसासिहाण
८२५	६	कम्म	कम्म
"	९	अवत	अवत
८३७	१६	जीव	अजीव
८३८	५	समयोर्व्व	समयोर्व्व
"	६	सम्पत्तयोपशमिक	सम्पत्तौषमिक
"	१९	पिच्छइ	पिच्छइ
८३९	२२	मणि	मणि
"	२४	रयण	रयण
"	२४	वेअइठ	वेयठ्ठ
८४०	१४	त्तिर्जर	त्तिर्जरा
"	२२	सव्वट्ठाओ	सव्वट्ठाओ
८४१	३	देओनी	देवोनी
८४२	१०	अत्तेन्द्रि	अतीन्द्रिय
"	१६	अनावगाहि	अनवगाही
"	२२	द्रव्ययणे	द्रव्यपणे
८४३	१३	सत्त्व	सत्त्व
"	१४	असत्त्व	असत्त्व
"	१७	स्वप्रदेश	सप्रदेश

पृ	प	अशुद्धि -	शुद्धि.
८४७	१५	सस	शसंय
८५३	१६	उदद्रप	उपद्रव
८५४	९	वत्युमि	वत्युम्मि
"	९	च्छउउम	छउम
"	२१	अड्डण	अड्डणं
"	२१	जीवने	जीव'
८६०	२१	मिथ्यात्पनम	मिथ्यात्वना
८६२	१९	कसाय	कसाया
८६४	३	अजिय	अज्जिय
"	४	चरित	चरित्त
"	४	सम्यक्य	सम्यक्त्व
८६६	१५	समकिन	समकित
"	१७	क्षयोप'	क्षयोपेशम
"	२०	रतोके'	तोके
८६७	१९	वीस	वीस
८६८	८	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व
८७०	१८	सुख	सुखरे
"	२४	मूनि	मूनि
८७१	३	निमर्त्तन	निवर्त्तन
"	८	दठ	हळ
"	९	तपयतो	तपवत
"	१६	वृत्तौ	वृत्तौ
८७२	१०	दिनकृतौ	दिनकृत्ये
"	११	इयांविथिनी	इयांपथिनी
"	१३		

पृ.	प.	अशुद्धि.	शुद्धि.
८७४	५	रदि	इदि
"	५	नमी	नमी
"	७	इदि	इदि
"	१०	शित्प	शित्प
"	२०	जपा	जण
"	३०	रुपे	रुपे
"	२१	योगे	जोए
"	२४	अने	अनेक
८७७	१७	चमात्रने	चरमात्रने
८७८	४	उच्छेदागुल	उत्सेवागुल
"	७	पमागागुल	पमागगुल
"	८	दुगणिय	दुगणिय
"	८	वीरसायगुल	वीरसायगुल
"	१०	यमागगुलेण	पमागगुलेण
"	१६	अर्थाग्रहना	अर्थावग्रहना
"	९	आयगुलन	आयगुलेन
८८३	८	वासमय	वास तय
"	९	किस	केस
"	९	सस्ताइ	तसाइ
८८८	७	आकुट्टिकया	आकुट्टिका
"	७	त्साहोत्मिका	त्साहात्मिका
"	९	कदर्प	कदर्प
"	१०	कल्प	कल्पः
"	१२	योगीउप	योगोप

पृ.	प	अष्टद्वि	शुद्धि.
"	१२	रुपा	रुप
८९०	१९	उमत्ते	उम्मत्ते
"	२०	अमृढेय	य मृढेय
८९१	२	लोहोह	लोहोय
"	८	वली	वली
"	१३	सन्नाह	सन्नाए
"	१६	भावदशा	भावादशा
"	१६	द्रव्यदशा	द्रव्यदशा
८९२	१५	स्वयोग	स्वयोग्य
"	१५	पर्याप्ति	पर्याप्ति
"	१६	समर्था	समर्थ्य
"	१८	च	हि
८९३	२१	बलिय	दलिय
८९५	६	आश्री	समयआश्री
८९६	८	पुरसकार	पुरिसकार
"	११	गुणिए	गुणिए
"	११	पाणीवह	पाणीवह
"	११	दुस्सतेयाल	दुसयतेयाल
८९८	११	११ मा सुधी	१२ ना सुधी
९००	१७	पइअमसखया	पइअसमसखया
९०६	१२	यतिया	जतिया
"	१३	इति	इति
"	१३	तित्तिया	तत्तिया
९१०	१८	णयोयो	नणयोयो

पृ	प	अशुद्धि-	शुद्धि.
९१६	१३	वायी	वायि
"	१४	गेविदक्षे	गेविज्जे
"	१९.	नियाणु	नियाणु
"	२१	नियाणु	नियाणु
"	१.१	वणरस	वणरसइ
९१९	४	पादोपगमः	पादपोपगम
"	९	सचित्तः	अचित्त
"	९	अचित्तः	सचित्तः
"	१५	अत्र	अवः
"	१८	असरूपता	असरूपाता
९२०	१४.	प्राणातिपात	प्राणातिपात विरमण
"	१८	सवाच्छ	सवाः उ
९२२	१.१-	निगह	निगहः
९२६	१२.	अशुसेठी	अशुल सेठी
९२९	५-	सयकेवल्लि	सुयकेवल्लि
"	९६	कारण	कारण तैजसम्
"	१४.	मूत	मूय
९३५	२.	उद्देशासना-	उद्देशाना
"	५	आगमनना	आगमना
"	२५.	वडिबद्धे	पडिबद्धे
९४०	१.७-	उगवमाणो।	उगमर्माणो
९४२	१२	प्रपचा	प्रपच
"	२१।	कला	वेला
९४४	२४.	काल	काले?



पृ.	प	अशुद्धि	शुद्धि.
१५५	१५	मुवरि -	मुवरि
१५८	५	निचुग्वाडीओ	निचुग्वाडीओ
१५९	५	भाग	भाग
"	९	तदत्य	तदत्य
"	९	सूक्ष्म	सूक्ष्मो
१६०	१५	नवी	नयी
"	१७	दुयाहिष्णा	दुयाहिष्ण
१६१	५	तिर्यच्येत्र	तिर्यचएव
"	१३	अरिह	अरिह

कर्मसंवेध

१६७	८	अट्टळा	अट्टळा
"	९	छदोसु	छदोसु
"	९	मिछाइ	मिच्छाइ
"	१३	म ग	म. ग ?
१७७	९	अनहारक	अनाहारक
१८०	८	वणसय	पणसय
"	१०	इक्कासय	इक्कासय
"	१४	खविज्ज	खविज्ज
"	१७	तित्थज्जुआ	तित्थज्जुआ
"	१९	पच्च	पच्चत्त
"	१९	तिठयर	तित्थयर
"	२३	पुव्वत्ता	पुव्वत्ता

पृ.	प	जशब्दि.	शुद्धि
"	२४	घासाग	कगाप
"	२४	मिच्छजगती	मिच्छअसन्नि
१८२	१०	पणदि	पणिदि
"	१०	नच्छि	नन्धि
"	११	दीग	दस
१८३	९	तिउ	नित्य
"	९	विगउदि	विगलिदि
"	१०	परहारे	परिहारे
"	१२	मिठा	मिच्छा
"	१२	निउ	नित्य
"	१३	मिउम्	मिच्छ
"	१८	अज्ज	अपज्ज
१८६	११	अविरतति	अविरति
१८८	१०	छच	पच
"	११	तिवुइ	तिनवइ
१८९	१५	युआ	युआ
"	१९	मिउ	मिच्छ
"	२०	उदस्सु	उदयुवु
"	२३	पडगही	पडिगहि
१९१	३	जणुनिअर	जहन्निपर
"	३	ठइठाणा	ठिइठाणा
"	६	उणु	उणू
"	७	दळिअ	दळिआ
१९२	१२	मज्जत्थ	मज्झत्थ

पृ	प.	अशुद्धि	शुद्धि
"	१३	ज्जाण	ज्ञाण
"	१४	अग्गाहणीअ	अग्गायणी
"	१५	ततो	तत्तो
११३	१६	निज्झर	निज्जर
"	१८	निर्झरा	निर्जरा
११६	१७	ग्रहस्सु	ग्रहस्थ
११८	२०	श्राविक	श्राविका
१००३	१०	णजुत्त	अणजुत्त
"	१०	पेठइ	पेच्छइ
"	११	कुसुमाचुअराइणा- येगा मजरागहिया	कुसुमियचूयतेणएगा मजरी गहिया
"	११	खवावारेणलयतण	खवावारेण लयतेण
"	१२	पडिनियत्तओ	पडिनियत्तो
"	१२	कहे	कहिं
"	१३	अमच्चणादसाओ	अमच्चेण दसणाओ
"	१३	पच्छसञ्चण	पच्छासञ्चेण
"	१२	कट्ठाविसेसी	कट्ठावसेसो
१००६	११	उपसमकितथी	उपशमसमकितथी
"	१९	अतमुद्धूत	अतमुद्धूत
"	२४	"	"
१००७	१२	बुद्धि	बुद्धि
१०१२	११	निरावणा	निरावरणा
"	१४	भुजतो	भुजतो
१०१४	५	६	५

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
१०१५	८	मिडामि	मिड्यामि
"	१४	"	"
"	२२	"	"
१०१६	२	"	"

### अशुद्धि शुद्धि अगे सूचना.

- पृ १ प. ज्या " २९ कोडाकोडी " इत्यादि खपा-  
व्यालु कयु छे त्या साधिक पत्थोपमना असख्या-  
तमा भाग अधिक २९ को को इत्यादि जाणवु
- पृ २ प ३ ? " एक कोडाकोडीसागर " स्थाने देशण  
एक कोडाकोडीसागर वाचवु
- पृ २ प ४ थी ९ "मुदूर्त" ने स्थाने अन्तर्मुदूर्त वाचवु
- पृ - २१ प ९ " अरुपी " स्थाने रुपी अरुपी बन्ने ग्रहण  
करवा.
- पृ ४० प ८ थी १० " कोइ एक प्रदेशे असख्य, अनत,  
वा सख्यात अगुरु लघु गुण कह्यो छे " परन्तु  
प्रति प्रदेशे अनत अगुरु लघु सर्वदा होय छे अने  
समय तथ. प्रदेशेमा परस्पर असख्यगुण वा अनत-  
गुण वा सख्यगुण हानी वृद्धि ए परिणमे ए अर्थ  
ग्रहण करवो
- पृ ५२ प ६ पर्याय ते गणमा सक्रमावे इत्यादि वाक्यमा  
मनोयोगनेज पर्यायथी उतारी गुणमा सक्रमावे इत्यादि

जाणतु कारण के द्रव्य, गुण, पर्यायनो परस्पर सक्रम होय नहि

- पृ ५३ मा जीव अवोगनीगु दा तीच्छो केम नथी जतो ?  
एना उत्तरमा मुरय उत्तर जीवनी स्वाभाविक गति ऊर्ध्वज छे एदलु जाणतु
- पृ ९८ प १२ "दर्शनगुणते विशेष छे" ए स्थाने "ज्ञानगुण ते विशेष छे" एम जाणवु
- पृ ५५० प १७ "सादि अनादि अउगतछेदरे" ए पदना अर्थमा प्रथम "अनादि" ने पठी "सादि" ए अनुक्रम राखवो
- पृ ५५४ प ९ "त्रिविधवायु आवार छे" ए स्थाने त्रिविधवलय आवार छे" ए अर्थ सभवे
- पृ ५८५ गाथा ७ मीना अर्थमा पर्यायसमामादिकना अर्थमा ज्या ज्या "सर्व" पद आवे त्या त्या "एकथी अधिक" वा 'अनेक' एवो अर्थ करवो
- पृ ५९० प ६ "एक कोडाकोटी" ने स्थाने "देशूणपल्योपमना असख्यातमा भाग हीन एक कोडाकोडी" एम जाणवु
- पृ. ६३६ प १८ "ते आहारपर्याप्त ताइज सास्वादन भावमे वरते" एम कहु छे परन्तु सास्वादनपणं, तो आहार पर्याप्तियी आगळ शरीर पर्याप्ति सुधी होय छे कशुण के आहारपर्याप्ति तो ? समय मात्र छे ने अने अपचेन्द्रिय जीवोने सास्वादनपणु समय मात्र होय एम कहेवांचु प्रयोजन नहि.

૫. ૬૫૫ ગાથા ૩? ના ટપામા કેવળિને ૭ યોગમા " અસત્ય-  
મનયોગ તથા " અસત્યમનયોગ " ગણત્વો છે તે  
સ્થાને અસત્યામૃયામનયોગ તથા અસત્યામૃષાવચન-  
યોગ ગણવો

૫. ૬૬? ૫ ૧૦ " માનકથાપીથી ક્રોધીમુ માયાત્રી કપટી  
અધિકાર છે " ૫ સ્થાને માનકથાપીથી ક્રોધી અ-  
ધિક છે ને ક્રોધીથી માયાત્રી કપટી અધિક છે  
એમ વાચવું.

૫ ૬૬? ૫ ૫ ૧૪ " ચ્યારગતિમેં સમક્રીતે સર્વે જીવ છે. "   
૫ સ્થાને " ચરે ગતિમા સમક્રીતી જીવને અવધિ-  
જ્ઞાન હોય છે માટે " એમ વાચવું

૫ ૭૩૬ ૫ ૨ " ઔદારિકથી વૈક્રિય સૂક્ષ્મ, માષાથી ઉશ્વાસ-  
સૂક્ષ્મ, " એમા મલ્લે રહી ગયેલો પાઠ આ પ્રમાણે  
જાણવો ઔદારિકથી વૈક્રિય સૂક્ષ્મ, વૈક્રિયથી આહા-  
સ્ક સૂક્ષ્મ, આહારકથી તૈજસ સૂક્ષ્મ, તૈજસથી માષા-  
સૂક્ષ્મ, માષાથી ઉશ્વાસસૂક્ષ્મ

૫. ૮૦૯ " ચાર વાર શ્રેણિગત અને પાચમીવાર પડતા " એ  
પ્રમાણે ઉપશમ સમ્યક્ત્વની ૫ વાર પ્રાપ્તિ કહી છે  
પરન્તુ અનાદિ મિથ્યાત્વીને સમ્યક્ત્વની પ્રથમ પ્રા-  
પ્તિમા એકવાર અને ચારવાર શ્રેણિમા, એ રીતે ૫-વાર  
ઉપશમ સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ જાણવી.

તથા આઠમે ગુણઠાણે અટકીને ક્ષપકશ્રેણિ માં-  
ઢીને કેવલ જ્ઞાન પામે" એમ કહ્યું છે, પરન્તુ શ્રેણિથી  
પઢી ૭ મે અપ્રમત્ત ગુણઠાણે આવીનેજ ક્ષપકશ્રેણિ  
માઢી શકાય પરન્તુ ૮ મેથી નહિ એમ જાણવું

घणे स्थाने सयुक्त “ वृ ” ने बदले मात्र “ ठ ” छमायलो छे अने “ निर्जरा ” शब्दमा जङ्ग छपायलो छे, “ निज्जरा ” इत्यादि शब्दमा ज्ज ने स्थाने जङ्ग छपायलो छे, ने तेरा घणा शब्दो होवार्थी ते सर्व शब्दोनी शुद्धि आपेळी नथी तोपण आ सूचनाथी तेवा शब्दो सुधारिने वाचवा

तथा जे शब्दोनी एकवार शुद्धि आपी छे तेवा प्रकारना वीजा सर्व सरखा शब्दो पण तेवीज शुद्धिवाळा जाणीने वाचवा कारण के तेवा अनेक शब्दो आवेला होवार्थी सर्व शब्दोनी शुद्धि दाखल करता ग्रथ वर्धी जाय छे.

तथा कइक स्थाने अक्षरो एक वीजा शब्दमा जोडाइ गयेला होवार्थी वा एक वर्गने अर्थ समजवो अशक्य थाय ते सम्भित छे तो तेवे स्थाने अक्षरो अर्थने अनुसारे मेलवीने वाचवा तेमाना कइक स्थान नीचे प्रमाणे छे

- पृ. ५०० प १ “ मन वशील विनागत तेज छे रे ” ए स्थाने “ मानव शीलविना गततेज छेरे ” एम वाचवु
- पृ ५०३ प. ७ “ करे जसु वाणि रे ” ए स्थाने “ करेज सुवाणि रे ” एम वाचवु
- पृ ५०६ प १४ चलचित्तकारि जन विसरे रे ” ए स्थाने “ चलचित्त कारिज नवि सरे रे ” एम वाचवु.
- पृ. ५४४ प. ४ “ मोहनीदलय लीन ” ए स्थाने “ मोहनिदलयलीन ” वाचवु
- पृ ५५३ प. २१ “ कन्नसें जेम न खन ” ए स्थाने “ सन्न सेजे मन खत ” एम वाचवु. इत्यादि.

૫. ૬૫૫ ગાયા ૩? ના દ્વામા કેરળિને ૭ યોગમા “ અસત્ય-  
મનયોગ તથા “ અમન્યવચનયોગ ” ગણાયો છે તે  
સ્થાને અસત્યામૃગામનયોગ તથા અસત્યામૃષાવચન-  
યોગ ગણવો
૫. ૬૬? પ ૧૦ “ માનકપાર્થીયી ક્રોધીસુ માયાર્થી કપટી  
અધિકાર છે ” ૫ સ્થાને માનકપાર્થીયી ક્રોધી અ-  
ધિક છે ને ક્રોધીયી માયાર્થી કપટી અધિક છે  
૫મ વાચવું.
- ૫ ૬૬? પ. પ. ૧૪ “ ચ્યારગતિમે સમક્રીતે સર્વે જીવ છે ”  
૫ સ્થાને “ ચારે ગતિમા સમક્રીતી જીવને અવધિ-  
જ્ઞાન હોય છે માટે ” ૫મ વાચવું.
- ૫ ૭૩૬ પ ૨ “ ઔદારિકથી વૈક્રિય સૂક્ષ્મ, ભાષાર્થી ઉશ્વાસ-  
સૂક્ષ્મ, ” ૫મા મલ્લે રહી ગયેલો પાઠ આ પ્રમાણે  
જાણવો ઔદારિકથી વૈક્રિય સૂક્ષ્મ, વૈક્રિયથી આહા-  
રક સૂક્ષ્મ, આહારકથી તૈજસ સૂક્ષ્મ, તૈજસથી ભાષા-  
સૂક્ષ્મ, ભાષાર્થી ઉશ્વાસસૂક્ષ્મ
૫. ૮૦૯ “ ચાર વાર શ્રેણિગત અને પાચમીવાર પડતા ” ૫  
પ્રમાણે ઉપશમ સમ્યક્ત્વની ૫ વાર પ્રાપ્તિ કહી છે  
પરન્તુ અનાદિ મિથ્યાત્વીને સમ્યક્ત્વની પ્રથમ પ્રા-  
પ્તિમા એકવાર અને ચારવાર શ્રેણિમા, ૫ રીતે ૫-વાર  
ઉપશમ સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ જાણવી.
- તથા આઠમે ગુણઠાણે અટકીને ક્ષપકશ્રેણિ મા-  
ડીને કેવલ જ્ઞાન પામે” ૫મ કહ્યું છે, પરન્તુ શ્રેણિયી  
પટ્ટી ૭ મે અમમત્ત ગુણઠાણે આવીનેજ ક્ષપકશ્રેણિ  
માડી શકાય પરન્તુ ૮ મેથી નહિ ૫મ જાણવું



# श्रीमद् बुद्धिसागरश्च ग्रन्थमालायां प्रगट्थयेत्ता ग्रन्थाः.

	पृष्ठ
१ क भजन सत्रक भाग १ को	२०० ०-८-०
१ अध्यात्म व्याख्यानमाला	२०६ ०-४-०
२ भजनसत्रक भाग २ को	३३६ ०-८-०
३ भजनसत्रक भाग ३ को	२१५ ०-८-०
४ समाधि शतकम्	३४० ०-८-०
५ अनुभव परिचयरी	२४८ ०-८-०
६ आत्मदीप	३१५ ०-८-०
७ भजनसत्रक भाग ४ को	३०४ ०-८-०
८ परमात्मदर्शन	४३२ ०-१२-०
९ परमात्मज्योति	५०० ०-१२-०
१० तत्त्वपिंडु	२३० ०-४-०
११ सुष्मानुराग (आश्रित्तीक्ष्ण)	२४ ०-१-०
१२-१३ भजनसत्रक भाग ५ को तथा मानदीपिका	१६० ०-६-०
१४ तीर्थयात्रानु विमान (आश्रित्तीक्ष्ण)	६४ ०-१-०
१५ अध्यात्म भजनसत्रक	१६० ०-६-०
१६ सुश्रमाधि	१७२ ०-४-०
१७ तत्त्वज्ञानदीपिका	१२४ ०-६-०
१८ गङ्गुलीसत्रक	११२ ०-३-८
१९-२० श्रावकधर्मस्वरूप भाग १-२ (आश्रित्तीक्ष्ण)	४०-४० ०-१-०
२१ भजन पदसत्रक भाग ६ को	२०८ ०-१२-०
२२ वचनामृत	३०८ ०-१४-०
२३ योगदीपक	२६८ ०-१४-०
२४ जैन ऐतिहासिक रासमाला	४०८ १-०-०
२५ आनन्दधन पदसत्रक भावार्थ सहित	८०८ २-०-०
२६ अध्यात्म शान्ति (आश्रित्तीक्ष्ण)	१०२ ०-३-०
२७ कौव्यसत्रक भाग ७ को	१५६ ०-८-०
२८ जैनधर्मनी प्राचीन अने अर्वाचीन नियति	६६ ०-२-०
२९ कुमारेपाल चरित्र (जिदी)	२८७ ०-६-०
३० वी ३४ सुभसागर सुश्रुतीता	३०० ०-४-०



# श्रीमद् बुद्धिसागरश्च ग्रन्थमाणामां प्रगट् थयेला ग्रन्थो.

	पृष्ठ
१ क भजन सग्रह भाग १ को	२०० ०-८-०
१ अध्यात्म व्याख्यानमाणा	२०५ ०-४-०
२ भजनसग्रह भाग २ को	३३६ ०-८-०
३ भजनसग्रह भाग ३ को	५१५ ०-८-०
४ समाधि सतकम्	३४० ०-८-०
५ अनुभवा परिचयली	२४८ ०-८-०
६ आत्मदीप	३१५ ०-८-०
७ भजनसग्रह भाग ४ को	३०४ ०-८-०
८ परनात्मदर्शन	४३२ ०-१२-०
९ परमात्मव्योति	५०० ०-१२-०
१० तत्त्वणि हु	२३० ०-४-०
११ गुणानुराग (आवृत्ति पीछ)	२४ ०-१-०
१२-१३ भजनसग्रह भाग ५ को तथा गानदीपिका	१६० ०-६-०
१४ तीर्थयात्रानु विमान (आ पीछ)	६४ ०-१-०
१५ अध्यात्म भजनसग्रह	१६० ०-६-०
१६. गुणगोष	१७२ ०-४-०
१७ तत्त्वगान्ती काल	१२४ ०-६-०
१८ गङ्गुली सग्रह	११२ ०-३-०
१९-२० आवकधर्मस्वरूपा भाग १-२ (आवृत्ति पीछ)	४०-४० ०-१-०
२१ भजन पद सग्रह भाग ६ को	२०८ ०-१२-०
२२ वचनामृत	३०८ ०-१४-०
२३ योगदीपक	२६८ ०-१४-०
२४. जैन ऐतिहासिक रासमाणा	४०८ १-०-०
२५ आनन्दधन पदम सग्रह भावार्थ सहित	८०८ २-०-०
२६ अध्यात्म शान्ति (आवृत्ति पीछ)	१०२ ०-३-०
२७ कोव्यसग्रह भाग ७ को	१५५ ०-८-०
२८ जैनधर्मनी प्राचीन अने अर्वाचीन नियति	६६ ०-२-०
२९ कुमारपाख यात्रा (जिडी)	२८७ ०-६-०
३० पी ३४ सुप्रसाभर गुणगीता	३०० ०-४-०





૩૫. વૃદ્ધા વિચાર.	૨૪૦	૦-૧-૦
૩૬. વિભાવુર દવાન	૬૦	૦-૪-૦
૩૭. સાગરમતી કબ્જ	૧૫૬	૦-૧-૦
૩૮. પ્રાંતજ પા ૧૧.	૧૧૦	૬-૫-૦
૩૯-૪૦-૪૧ લીલગ-ગન પ્રમથ નવરમણિ લીલગીતા	૧-૦-૦	
૪૨ લીલ ધાતુરતિમા લખ સમદ	૧-૦-૦	
૪૩ મિનમતી	૦-૮-૦	
૪૪ લિખોપનિષદ્	૦-૨-૦	
૪૫ લીલોપનિષદ્	૮૮	૦-૨-૦
૪૬-૪૭ ધાર્મિક ગણિત નવ તપા પત્રલકુપેય ભાગ ૧ લો	૬૦૬	૩-૦-૦
૪૮ શ્રીમદ્ દેવવ્રજ પ્રથમભાગ	૧૦૨૮	૨-૦-૦

### નીચેના ગ્રન્થો ગ્રેસમાં છપાય છે

(૧) કમયોગ (૨) ભજનપદ્યસમ્રઠ ભાગ ૮ મો (૩) શ્રીમદ્ દેવવ્રજ  
અથ ત્રયમ્ દ્વિતીયભાગ

### નિચલા સ્થળે પુસ્તકો મળે છે.

મુબાઇ, પાયધુપુત્રી ખુશ્મેલ-મેપજી હીરજી

,, અપાગરી અધ્યાત્મ જ્ઞાન પ્રસાદક મડળ.

